भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उद्भव और विकास

बिपन चंद्र

अनामिका प्रकाशन

द्वितीय संस्करण की भूमिका

मुझे खुशी है कि एक लंबे अंतराल के बाद मेरी पुस्तक का हिंदी संस्करण आखिर प्रकाशित हो रहा है। 19 वीं सदी के अंतिम पच्चीस वर्षों के दौरान, औपनिवेशिक भारत में घटित आर्थिक परिवर्तनों के बारे में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की स्पष्ट समझ विकसित हुई। यही नहीं, औपनिवेशिक विश्व का यह पहला आंदोलन था जिसमें भारतीय औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की बड़ी प्रभावपूर्ण मीमांसा प्रस्तुत की गई और यह बताया गया कि इसका अल्पविकास और आर्थिक गतिरोध से क्या संबंध है। इस मीमांसा के आधार पर राष्ट्रवादियों ने भारत के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए एक व्यापक आर्थिक रणनीति का विकास किया।

भारतीय राष्ट्रवादियों ने यह तर्क भी दिया कि भारत का आर्थिक पिछड़ापन न तो प्राक्-औपनिवेशिक अतीत से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुआ है और न क्रूर प्रकृति अथवा जलवायु और भौगोलिक स्थिति का परिणाम है। यह तो भारतीय अर्थव्यवस्था के उपनिवेशीकरण का नतीजा है। और इस पिछड़ेपन की स्पष्ट अभिव्यक्ति थी भारतीय जनता की घोर गरीबी जो उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। इसलिए राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के स्वरूप, उसके आधारभूत लक्षणों और उसकी आर्थिक क्रियाविधि के विश्लेषण का सिलसिला शुरू किया।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का सार तत्व उन तौर-तरीकों में निहित था जिनका सहारा लेकर ब्रिटेन भारत के आर्थिक अधिशेष को हड़प लेता था। पहले तो करारोपण, लूट तथा उपहार, अंग्रेजों को व्यापक स्तर पर रोजगार मुहैया कराने और एशिया तथा अफ्रीका में फैले ब्रिटिश साम्राज्य को जीतने और फिर उसपर शासन करने के लिए भारतीय सेना के उपयोग के माध्यम से वह प्रत्यक्ष रूप से उस अधिशेष को आत्मसात कर लेता था। दूसरे, मुक्त व्यापार तथा असमान विनिमय की छद्म, परोक्ष और जटिल पद्धति थी जिसने भारत को ब्रिटेन का पिछलग्गू बना दिया था : वह कच्चे माल और खाद्य सामग्री का निर्यात करता था और बने-बनाए सामान का आयात करता था। तीसरे, शोषण का नया दौर आया जिसमें आधुनिक बागानों, यातायात के साधनों, खानों, उद्योगों, बैंक, व्यापार आदि में पूंजी-निवेश को माध्यम बनाया गया।

उपनिवेशवाद द्वारा आर्थिक विकास की उपेक्षा की आलोचना करते हुए भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने राज्य के प्रकार्यों के सिद्धांत के रूप में अहस्तक्षेप-सिद्धांत और मुक्त व्यापार की नीति पर जोरदार

हमला किया । इसके बजाय उन्होंने भारत के उद्योगीकरण में राज्य की सक्रिय भूमिका और विकास के आरंभिक दौर से गुजर रहे भारतीय उद्योगों के लिए शुल्क-दर-संरक्षण की मांग की ।

राष्ट्रवादियों ने अपनी उपनिवेशवाद-विषयक आलोचना को धन की निकासी के सिद्धांत में अंतिम रूप दिया । इस सिद्धांत के माध्यम से उन्होंने औपनिवेशिक आर्थिक शोषण की पूरी कार्यविधि को जनता के सामने उघाड़कर रख दिया ।

हालांकि राष्ट्रवादियों ने किन्हीं नए आर्थिक सिद्धांतों की खोज नहीं की, फिर भी उन्होंने भारत की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था और उसके अल्पविकास की सुसंगत, समेकित और परस्पर संबद्ध तस्वीर पेश की । उन्होंने आर्थिक विकास के प्रति एक समन्वित दृष्टि का विकास भी किया और कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे वित्त, यातायात, विदेश-व्यापार और कृषि-क्षेत्र में वृद्धि को अपने आप में विकास का घटक मानने से इनकार कर दिया । इन सभी को संपूर्ण अर्थव्यवस्था से उनके संबंध के संदर्भ में देखा जाना चाहिए । इस समन्वित आर्थिक ढांचे के अंतर्गत, राष्ट्रवादियों ने यह दावा किया कि आर्थिक विकास का सार आधुनिक विज्ञान और तकनोलाजी के आधार पर तीव्र औद्योगिक विकास में निहित है ।

औपनिवेशक अल्पविकास के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने उनसे अलग और नितांत भिन्न नीतियों को सामने रखा जो वैकल्पिक, आत्मनिर्भर और स्वतंत्र आर्थिक विकास की दिशा में अग्रसर करने में सहायक सिद्ध हों ।

इन राष्ट्रवादियों के आर्थिक चिंतन की सबसे कमजोर कड़ी थी उनका कृषि-विषयक दृष्टिकोण — विशेष रूप से जमींदार-किसान संबंध की आलोचनात्मक दृष्टि से जांच-पड़ताल करने में उनकी असफलता । कराधान की उच्च दर पर आधारित राजकीय लगान नीति की उन्होंने उचित ही आलोचना की । इसलिए उन्होंने जमीन पर कम लगान तय किए जाने की मांग की । किंतु कृषि-संबंधों का जो उत्तरोत्तर सामंतीकरण या जमींदारीकरण हो रहा था उन्हें महत्व देने में अधिकतर राष्ट्रवादी असफल रहे ।

कुछ अपवादों को छोड़कर आरंभिक भारतीय राष्ट्रवादियों ने विदेशी पूंजी के प्रवेश का विरोध किया क्योंकि इसमें आर्थिक निर्भरता और प्रभुत्व के और बढ़ जाने का खतरा था । भारतीय अर्थव्यवस्था में विदेशी पूंजी की भूमिका के बारे में उन्होंने बहुत गहरी समझ विकसित की । उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि वास्तविक आर्थिक विकास तभी संभव है जब मुख्यतः देशी पूंजी पर निर्भरता रहे ।

परवर्ती राष्ट्रीय आंदोलन को अपनी गतिविधियों और आर्थिक चिंतन का गठन उसी ढांचे के अंतर्गत करना था जिसे उन्नीसवीं सदी में उनके पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों ने विकसित किया था । फिर आगे चलकर हमारे स्वतंत्र राज्य के संस्थापकों ने जो आर्थिक रणनीति अपनाई उसपर भी इस ढांचे का भारी प्रभाव पड़ना था ।

आधुनिक राष्ट्रवादी चिंतन का राजनीतिक प्रभाव भी काफी महत्वपूर्ण रहा । आरंभिक राष्ट्रवादियों ने औपनिवेशिक शासकों और भारतीय जनता के हितों में निहित मूलभूत अंतर्विरोध को भी उजागर किया । आर्थिक मुद्दों पर उनके आंदोलन ने भारतीय जनमानस पर औपनिवेशिक शासकों के वैचारिक प्रभुत्व को अंदर-ही-अंदर कमजोर किया । जिन कारकों ने भारत पर ब्रिटिश शासन संभव बनाया उनमें से एक प्रमुख कारण यह था कि ब्रिटिश लोग भारतीयों के कल्याण के लिए कार्य कर रहे

हैं। यह विचार बड़ी सावधानी से विकसित किया गया था। राष्ट्रवादी आर्थिक आंदोलन ने धीरे-धीरे, कदम-दर-कदम, एक-एक मुद्दे पर विचार करते हुए इस विश्वास की जड़ काट दी और ब्रिटिश शासन के नकारात्मक, शोषक और अल्पविकासमूलक चरित्र को उजागर किया। ब्रिटिश शासन के मूल उद्देश्य और चरित्र में यह अविश्वास कालांतर में राजनीतिक क्षेत्र में भी फैलना था और विश्व के अत्यंत सशक्त साम्राज्यवाद-विरोधी जन-आंदोलन को जन्म देना था। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने इस आंदोलन की बड़ी ही मजबूत आधारशिला रखी।

बिपन चंद्र

आमुख

यह पुस्तक 'भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व की आर्थिक नीतियां (1880 से 1905)' शोध प्रबंध का संशोधित रूप है, जो 1963 में दिल्ली विश्वविद्यालय मे पी०एच०डी० की उपाधि के लिए स्वीकार किया गया था। स्वदेशी आंदोलन द्वारा भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक ऊंचे और भिन्न स्तर तक ले जाए जाने से पहले राष्ट्रीय नेताओं की जो आर्थिक नीतियां रहीं, उन्हीं की जांच करना इस पुस्तक का उद्देश्य है।

मैंने उन सभी व्यक्तियों को नेता माना है जिन्होंने आर्थिक प्रश्नों पर उभर रहे राष्ट्रीय जनमत को बनाने और दिशा देने का कार्य किया। इसी तरह मैंने इस अध्ययन मे न केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, प्रांतीय सम्मेलनों, दूसरी लोक संस्थाओं एवं विधान परिषदों की कार्यवाहियों तथा प्रमुख राष्ट्रवादी व्यक्तियों के व्याख्यानों तथा रचनाओं पर, अपितु उन राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं पर भी निर्भर किया है जो उन दिनों राष्ट्रीय आंदोलन के मुख्य मंच और जनमत के प्रभावशाली निर्माता थे। वास्तव में उस समय निरंतर क्रियाशील और सुसंगठित किसी राष्ट्रवादी राजनीतिक दल के अभाव में, क्योंकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तब तक इस प्रकार का संगठन नही बन पाई थी, और तब तक विशाल और आम सभाओं की परंपरा भी नहीं प्रारंभ हुई थी, राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने ही दैनंदिन प्रशासन में विरोध पक्ष की भूमिका निभाई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा दूसरी राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रस्ताव तथा उनकी कार्यवाहियां भी मात्र जितना राष्ट्रवादी समाचारपत्रों के माध्यम से छनकर जनता तक पहुंच पाती थी उसी सीमा तक जनमत को बनाने में समर्थ हो पाती थीं। यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय की बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं को उनके मालिक और संपादक व्यावसायिक दृष्टि से नहीं बल्कि स्वयं कुछ हानि उठाकर भी राष्ट्रवादी पत्र के रूप में निकालते थे। इतना ही नहीं बहुत से संपादकों का शहरी निम्न मध्यवर्गीय जीवन से घनिष्ठ संबंध था।

मैंने अंगरेजी या आंग्ल भाषा में प्रकाशित तत्कालीन अनेक प्रमुख राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं का जिनमें 'मराठा', 'हिंदू', 'अमृत बाजार पत्रिका', तथा 'बंगाली' सम्मिलित हैं मूल रूप में अध्ययन किया है। इसके अलावा भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों के

अध्ययन के लिए मैंने विभिन्न प्रांतों के लिए अप्रकाशित 'रिपोर्ट्स आन द नेटिव प्रेस' का उपयोग किया है। 'रिपोर्ट्स आन दि नेटिव प्रेस' में भारतीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सपादकीय टिप्पणियो व लेखों का साप्ताहिक संक्षिप्त या पूर्ण विवरण सरकार द्वारा दिया जाता था। उन्नीसवी शताब्दी के अंत तक, जब से कि इन रिपोर्टों मे भारतीयों द्वारा चलाए जाने वाले समाचारपत्रो की सामग्री का भी समावेश किया जाने लगा, बंबई रिपोर्ट मे अंगरेजी और भारतीय भाषाओं दोनों के समाचारपत्रो की सामग्री रहती थी, जबकि अन्य प्रान्तों की रिपोर्टों मे केवल भारतीय भाषाओं के पत्रो की। ये रिपोर्टें पूर्ण रूप से गोपनीय थी और केवल डिवीजनल कमिश्नर या इससे ऊपर के स्तर के कर्मचारियों को ही उपलब्ध होती थीं। उनमे सामग्री के निष्पक्ष एवं सही पुनः प्रस्तुतीकरण में उच्च स्तर का निर्वाह किया जाता था, हालांकि कुछेक रिपोर्टों, विशेषकर मद्रास की रिपोर्ट के विवरण पर्याप्त नहीं रहते थे।

प्रस्तुत कृति मे उन तमाम व्यक्तियो, सस्थाओ और पत्र-पत्रिकाओं को राष्ट्रीय माना गया है जिन्होंने भारत को एक उभरते हुए राष्ट्र के रूप मे देखा, जहां के लोगो के हित एवं नियति व्यापक अर्थ मे साझे थे, जिनका अंतिम लक्ष्य अपने लोगों के लिए स्वशासन प्राप्त करना था और जिन्होंने सामाजिक विषयो पर मुट्ठी भर लोगो के दृष्टिकोण को अपनाने की बजाय देश की समस्त या अधिकाश जनता के दृष्टिकोण मे सोचने की चेष्टा की। इस विषय में कसौटी इस बात को माना गया है कि वे क्या दावा करते थे, न कि इस बात को कि वे व्यवहार मे क्या चाहते थे। इस दूसरे पहलू का शोध प्रबंध के मुख्य भाग में विस्तार से विश्लेषण किया गया है। दूसरे शब्दो मे मैंने केवल उनको राष्ट्रीय नेता नही माना है जिन्होने खुलेआम भारत को एक राष्ट्र या इस कीजनता के साझे राजनीतिक भाग्य को मानने मे इनकार किया, या उन्हे जो खुल्लमखुल्ला थोड़े मे लोगों के प्रतिनिधि बन कर सामने आए। इस प्रकार मैंने हिंदू-मुस्लिम और पारसी सप्रदायवादियो तथा 1888 के बाद के 'रास्त गोफ्तार' और 1901 के बाद के 'हिंदुस्तान जैसे समाचारपत्रो' का छोड दिया है। 'दि ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन' तथा 'हिंदू पेट्रियट' को भी छोड़ दिया है क्योंकि 1881 तक वे अपना मौलिक राष्ट्रीय स्वरूप खो चुके थे और खुलकर जमीदारो के हितों की वकालत करने लगे थे।

इस अध्ययन मे मेरी रुचि इस बात मे उतनी अधिक नही रही है कि किसी आर्थिक विचारधारा या नीति के जन्मदाता कौन थे जितनी कि उसके प्रचारको तथा प्रचार की सीमा और उसके पीछे चलने वाले राजनीतिक आंदोलन के परिमाण और प्रकार मे। पाद टिप्पणियों मे बहुत से नेताओं एवं समाचारपत्रों का हवाला इसलिए दिया गया है ताकि इस प्रयत्न मे उस काल मे व्यापक रूप से प्रचलित कुछ नीतियों को प्रकाश मे लाया जाए। इसी प्रकार मैंने यह जानने की चेष्टा नहीं की है कि अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार उक्त राष्ट्रवादी रुख और नीतियां सही थी या नही। मैंने अपने आप को इस बात तक ही सीमित रखा है कि राष्ट्रीय नेताओं ने क्या कहा और कैसे कहा तथा हम इससे उनकी आधारभूत आर्थिक और राजनीतिक समझ तथा दृष्टिकोण के बारे में क्या जान सकते हैं। उपर्युक्त पहले कार्य को करने के लिए तो उस काल के भारत का एक वृहद्

आर्थिक इतिहास ही लिखना पडेगा और संभवत: इससे भी बहुत कुछ अधिक करना पड़ेगा। मैंने समकालीन आर्थिक विकास की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए गौण स्रोतों का उपयोग किया है।

निश्चय ही यह अध्ययन भारतीय राष्ट्रवाद के सामाजिक आधार के बारे मे नही है जिसके मूल मे वर्ग तथा दूसरे मानवीय संबंध होते है बल्कि यह इसके सैद्धांतिक कार्यक्रम संबंधी पहलुओं के बारे मे है। यो पहले को जाने बिना भारतीय राष्ट्रीय आदोलन का पूर्ण ज्ञान संभव नही है। फिर भी मैं आशा करता हूं कि प्रारंभिक राष्ट्रीय नेताओ के मानस मे पडे आर्थिक यथार्थता के प्रतिबिंब का यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि यद्यपि सामाजिक संबधो का अस्तित्व इस बात पर निर्भर नही होता कि लोग उनके बारे मे क्या सोचते है फिर भी इन संबधो के बारे मे लोगो की समझ उनकी सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधि के लिए निर्णायक होती है। इस प्रकार किसी आदोलन के द्वारा यथार्थ को समझने, इसके लक्ष्यो का निर्धारण करने और सही दिशा मे परिवर्तन लाने के लिए प्रयोग किए जाने वाले राजनीतिक एव बौद्धिक साधनो का अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना कि आदोलन को जन्म देने वाली सामाजिक एव आर्थिक शक्तियो का अध्ययन। अत: यह अध्ययन औपनिवेशिक आर्थिक संबधो के विकास या भारत की आधुनिक आर्थिक शक्तियों या वर्गो के उदय की रूपरेखा प्रस्तुत नही करता। हमारी समस्या 1880 से 1905 के बीच भारत मे 'अगरेजी साम्राज्यवाद के आर्थिक आधार एव नीतियो की राष्ट्रीय बोध शक्ति के क्रमिक विकास के साथ साथ एक स्वतंत्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संवर्धन के लिए एक वैकल्पिक राष्ट्रीय कार्यक्रम के विकास का अध्ययन करना रही है। मुझे आशा है कि मै उप-परिणाम के रूप मे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के अग्रदूतो की बौद्धिक क्षमता के स्तर और उनकी राजनीतिक एव बौद्धिक ईमानदारी तथा साहस को प्रकाश मे लाने मे भी सफल हुआ हू। प्रस्तुत अध्ययन मे उद्धरणों की अधिकता के मूल मे राष्ट्रीय आर्थिक आदोलन के प्रकार तथा विशेषता को सही-सही रूप मे प्रकाश मे लाने की इच्छा ही निमित्त कारण रही है। प्राय: राष्ट्रीय नेताओ का किसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का तरीका उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि स्वय वह दृष्टिकोण। इसके अतिरिक्त उसे मूल रूप मे प्रस्तुत करने से उनके अर्थशास्त्रीय ज्ञान का स्वरूप भी और अधिक अच्छी तरह सामने आ जाता है। हर हालत मे, जैसा कि विस्टन चर्चिल ने कहा है 'मौके पर कही गई एक बात बाद मे कही गई हजार बातो के बराबर होती है'।

मैं अपने उन बहुत से मित्रों का अत्यधिक आभारी हूं जिन्होने इस कार्य मे मेरी सहायता की है। दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष डा० विशेश्वर प्रसाद का मैं कितना ऋणी हू, यह शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। इस अध्ययन का आरंभ मैने पूर्णत: उनके प्रोत्साहन से ही किया। मुझे विचारो की पूर्ण स्वतंत्रता देते हुए उन्होने धैर्य व प्रेमपूर्वक मेरा मार्गदर्शन किया है। उन्होने उदारतापूर्वक इस अध्ययन का प्राक्कथन लिखने की भी कृपा की है। उनकी निरंतर बहुमूल्य समालोचना और सुझावो के बावजूद इसमे यदि बहुत सी गलतिया रह गई हों तो उसका एकमात्र कारण मेरे अपने ज्ञान की अपूर्णता है। मोहित सेन, बी० एम० भाटिया, सुलेख

गुप्ता, ओ० पी० कौशिक और सव्यसाची भट्टाचार्य जैसे मित्रों ने पांडुलिपि के अंशों को पढ़ा है और बहुमूल्य सुझाव दिए हैं। मैं अपनी 1961-63 की एम० ए० कक्षा का ऋणी हूं साथ ही विशेषकर श्री अजितकुमार सूद का भी, जिन्होंने शोध प्रबंध के अंतिम रूप से टंकण संबंधी अनेक छोटे-मोटे कार्य किए तथा मेरे साथ लगातार धैर्यपूर्वक विचार-विमर्श किया।

मैं अपने कालेज, हिंदू कालेज, के अधिकारियों का आभारी हूं जिन्होंने मुझे दो वर्ष के अध्ययन के लिए अवकाश दिया तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के अधिकारियों का भी आभारी हूं जिन्होंने मुझे राकफैलर फाउंडेशन द्वारा इतिहास विभाग को दिए गए अनुदान में से शिक्षावृत्ति प्रदान की।

मैं इस अवसर पर हिंदू कालेज पुस्तकालय (दिल्ली), दिल्ली यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी (दिल्ली), दिल्ली स्कूल आफ इकनामिक्स लाइब्रेरी (दिल्ली), सेंट्रल सेक्रेटेरियट लाइब्रेरी (नई दिल्ली), पार्लियामेंट लाइब्रेरी (नई दिल्ली), इंडियन काउंसिल आफ वर्ल्ड अफेयर्स लाइब्रेरी (नई दिल्ली), एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी (बंबई), गोखले इंस्टिट्यूट आफ इकनामिक्स ऐंड पालिटिक्स (पूना), फरगूसन कालेज लाइब्रेरी (पटना), इंडियन एसोसिएशन लाइब्रेरी (कलकत्ता), और सधरना ब्राह्मो समाज लाइब्रेरी (कलकत्ता) के पुस्काध्यक्षो तथा अन्य कर्मचारियों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहूंगा। स्व० श्री हेमन्त प्रसाद घोष ने मुझे पुस्तकों, पेम्फलेटों व समाचारपत्रो की कतरनों के निजी संग्रह को प्रयोग करने की आज्ञा दी, श्री एच० सी० मित्रा ने अपने घर पर 'डान' पत्रिका को पढने, 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हिंदू', व 'केसरी मराठा' ट्रस्ट के प्रबंधकों ने इन समाचारपत्रों की पुरानी फाइलों को देखने तथा कायस्थ सभा इलाहाबाद के अधिकारियों ने 'हिंदुस्तान रिव्यू' और 'कायस्थ समाचार' की पुरानी फाइलों के प्रयोग करने की आज्ञा दी। मैं विशेष रूप से इन सबका आभारी हूं। मैं नेशनल आरकाइवज आफ इंडिया नई दिल्ली और नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के कर्मचारियों को भी धन्यवाद देता हूं जिन्होने बिना किसी संकोच के अपना सहयोग दिया।

अंत में मैं अपनी धर्मपत्नी ऊषा चंद्र को धन्यवाद देना चाहूंगा जिन्होंने इस पुस्तक को पूरा करने में हर चरण पर मुझे बहुमूल्य सहायता दी। उन्होंने पांडुलिपि के हर पन्ने को पढ़ा, कीमती सुझाव दिए, आवश्यकता पड़ने पर मुझे प्रोत्साहन दिया तथा टाइप व प्रूफ-प्रति को ठीक करने में मेरी सहायता की। वास्तव में यदि भाषा एवं छपाई की कोई गलतियां इस पुस्तक में रह गई हों तो इसके लिए मेरे साथ वह भी जिम्मेवार हैं।

बिपन चंद्र

अनुक्रम

अध्याय 1

भारत की निर्धनता

'यदि यह सिद्ध किया जा सके कि अंगरेजी शासनकाल में भारत भौतिक संपन्नता की दृष्टि से पहले की तुलना में और अधिक पिछड़ गया है—तो इसे मैं आत्मनिंदा मानने को एकदम तैयार हूं और स्वीकार करता हूं कि इस स्थिति में हमें भारत को अपने नियंत्रण में रखने का कोई अधिकार नहीं।' जार्ज हैमिल्टन, भारत सचिव

'भारत की घोर दरिद्रता इतनी अधिक उद्वेगजनक है कि किसी भी अन्य देश की सरकार इस प्रकार की स्थिति मे इस प्रश्न को गंभीरतापूर्वक सोचने को विवश होती, अन्यथा देश में क्रांति हो गई होती। जनरल आफ पूना सार्वजनिक सभा[1]

1857 के विद्रोह के तत्काल बाद की दशाब्दियों में शिक्षित भारतीयों, पनपती राष्ट्रीय भावना के उभरते नेताओं, की यह एक आम धारणा थी कि भारत मे अंगरेजी शासन जनता के लिए काफी लाभदायक था। किंतु समय के बीतने पर ओर राजनीतिक चेतना तथा गतिविधि के बढ़ने के परिणामस्वरूप इन लाभों के महत्व तथा इनकी उपयोगिता में संदेह किया जाने लगा यद्यपि लगभग हमारे अध्ययन काल (1880-1905) तक भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का एक वर्ग अंगरेजी प्रभाव में इस देश में आई कानूनी, सांविधानिक तथा अन्य भौतिकेतर परिणतियों को न केवल वांछनीय ही मानता था अपितु उन्हें अभिस्वीकार भी करता था।[2] सामान्य रूप से यह धारणा बढ़ती गई कि आर्थिक दृष्टि से अंगरेजी शासन का परिणाम निराशाजनक ही नही प्रत्युत कदाचित हानिकारक भी था। 1867 में दादाभाई नौरोजी पहले ही कह चुके थे, 'जनसमूह आज तक अंगरेजी शासन के लाभों को समझ ही नहीं पाया है।'[3] 1871 मे उन्होंने लिखा—'देश निरंतर दरिद्र तथा पंगु बनता जा रहा है।'[4] 1865-66 में उड़ीसा में पड़े अकाल के साथ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में[5] भारत में पड़े दुर्भिक्षों की शृंखला ने देश को इस बुरी तरह से जकड़ा कि उसके भयंकर परिणाम ने अंगरेजों द्वारा स्वत: प्रस्तुत विदेशी शासन में शांतिपूर्वक तथा सामान्य गति से उन्नतिशील भारत के चित्र को झकझोर कर रख दिया और साथ ही

विवश प्रजा की स्थिति की ओर ध्यान देने के लिए शासकों को विवश कर दिया।[6]

प्रारंभ मे बहुत से भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास था कि उनके शासक और ब्रिटिश जनता भारत की यथार्थ स्थिति से अपरिचित है।[7] अतएव वे ब्रिटिश जनता, संसद तथा प्रशासकों को वास्तविकता का ज्ञान कराने के लिए एवं समस्याओं की विषमता के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट कराने के लिए देश की सही स्थिति की पूरी जांच-पडताल कराना चाहते थे।[8] इसके अतिरिक्त उनकी इच्छा थी कि भारतीयों की वर्तमान आर्थिक स्थिति अवश्य ही अपने सही रूप मे जाची तथा आकी जाए और इस संदर्भ मे भारतीयों की आर्थिक स्थिति की यथार्थ आवश्यकताओं को भी उदारतापूर्वक स्वीकार कर लिया जाए[9] ताकि शासक प्रभावशाली ढंग मे इसे समझ सकें और सुधार के सर्वोत्तम ढग निकाल सकें।[10] इसके अलावा भारतीय, अपनी एकता तथा राष्ट्रीयता की भावना के प्रति सजग होकर, भारत मे समकालीन ब्रिटिश अर्थनीतियों के प्रति अपने दृष्टिकाण को भी निश्चित करना चाहते थे। इससे पूर्व भारतीयों का इन नीतियों के प्रति दृष्टिकोण तथा राजनीतिक एवं आर्थिक गतिविधि के क्षेत्र में उनकी कार्यनीति ब्रिटिश नीतियो के मूल्यांकन और उनके आर्थिक परिणामो से ही प्रभावित होती थी।[11]

1870 मे भारतीय नेताओ ने अपने देश की आर्थिक बुराइयो की गहरी छानबीन आरंभ की। 27 जुलाई 1870 को दादाभाई नौरोजी ने कला-परिषद लदन की बैठक मे अपना प्रसिद्ध लेख 'भारत की आवश्यकताएं और साधन' पढा।[12] इस लेख में उन्होंने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया : 'क्या इस समय भारत अपनी सभी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पर्याप्त उत्पादन की स्थिति मे है ?' और फिर इसका उत्तर उन्होने नकारात्मक दिया।[13] 1873 मे अल्पजीवी बंगाली त्रैमासिक 'मुखर्जी मैगजीन' के पृष्ठो मे भोलानाथ चद्र ने भारत मे अंगरेजो की आर्थिक नीति पर घातक प्रहार किया।[14] 1876 मे दादाभाई नौरोजी ने अपना 'दी पावर्टी आफ इंडिया' नामक महत्वपूर्ण ग्रथ प्रकाशित किया।[15] 1870 के अंत मे महादेव गोविन्द रानाडे ने पूना मे 'सार्वजनिक सभा' त्रैमासिक पत्रिका निकाली तथा जी० वी० जोशी के साथ लगभग दो दशाब्दियो तक भारतीय अर्थनीति का और व्यावहारिक रूप मे उसके सभी अगों का अत्यंत सजीव और सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया।[16] सत्य तो यह है कि सामयिक विषयों पर लेख लिखनेवाले प्रत्येक तत्कालीन भारतीय ने भारत की आर्थिक स्थिति पर या तो लेख अथवा पुस्तकें लिखी, अथवा इस विषय पर सार्वजनिक मच मे या 'चेंबर आफ कौंसिल' मे भाषण दिए। इस प्रकार व्यावहारिक रूप से उस समय के राजनैतिक क्षेत्र का सारा साहित्य प्रधान रूप मे आर्थिक विषयों से ही संबंधित था। 1901-1903 मे आर० सी० दत्त के दो खडोंवाले बहुमूल्य ग्रंथ 'इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया' ने इन छानबीनो को अपने चरम शिखर पर पहुंचा दिया। उपर्युक्त ग्रथ अगरेजी राज्य मे भारतीयो के व्यापार, उद्योग, कृषि तथा आर्थिक स्थिति आदि के इतिहास को प्रस्तुत करने के विशिष्ट उद्देश्य को लेकर कर्तव्यपालन के रूप मे ही लिखा गया था। वस्तुत. उस समय पराधीन भारत की आर्थिक दुर्दशा की गाथा का वर्णन करना तथा भारतीयो की दरिद्रता के गहरी जड़ पकड़े हुए कारणों का विश्लेषण करना कर्तव्य कर्म ही था।[17]

भारतीयों की जांच-पड़ताल के आगे बढ़ते ही उनके कष्टों की सूची अधिकाधिक लंबी होने लगी। आर्थिक स्थिति को काले-धुधले रंग में रंगा जाने लगा और यह विश्वास फैल गया कि भारतीय मंत्रिमंडल द्वारा भारत की अभूतपूर्व समृद्धि की चर्चा तथा भारत को गण्य-मान्य समृद्ध देश बनाने का आदर्श वाक्य सत्य से कोसों दूर है।[19] शीघ्र ही दरिद्रता का विषय भारत की सभी आर्थिक समस्याओं की चर्चाओं पर हावी होने लगा और भारतीय नेता इस विषय को सर्वोच्च महत्व प्रदान करने लगे। दादाभाई नौरोजी ने इसे एक ऐसी शिला, एक ऐसा तत्व तथा एक ऐसी कसौटी बताया जो अपने निपटारे में या तो ब्रिटेन को भारत के लिए वरदान बना देगी अथवा ईश्वर जाने कौन सी भयंकर विपत्ति उपस्थित करेगी।[18] इस दरिद्रता को अनेकों ने इस प्रकार से परिभाषित किया : 'आज की बहुत बड़ी समस्या'[20], 'सभी प्रश्नों का प्रश्न'[21], 'भारत की समग्र आर्थिक दुर्दशा की मूल व्याधि'[22], 'सर्वोच्च समस्या।'[23] 1901 मे आर० सी० दत्त ने लिखा था, 'मेरे विचार में ब्रिटिश राज्य के किसी प्रदेश मे कोई भी प्रश्न भारत की वर्तमान स्थिति की अपेक्षा अधिक विषम नही।'[24] जबकि उग्रवादी दल के एक प्रवक्ता विपिनचंद्र पाल ने उसी वर्ष अपने संघर्षपरक साप्ताहिक 'न्यू इंडिया' के प्रथम अंक मे ही लिखा : 'मेरे विचार में नवीन भारत को व्यग्र बनानेवाली सभी उलझनभरी समस्याओ मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा सर्वाधिक संपीड़क आर्थिक समस्या है।'[25] न्यायाधीश रानाडे ने 1892 मे अपने 'इंडियन पोलिटिकल इकोनामी' निबंध मे राजनैतिक प्रश्नों की अपेक्षा आर्थिक समस्याओं को सर्वोच्च प्राथमिकता देने पर बल दिया था।[26] अपने जन्मकाल से ही राजनीति मे 'उग्रवादी' तथा 19वी शताब्दी के प्रमुख भारतीय राष्ट्रीय समाचार पत्र 'अमृत-बाजार पत्रिका' ने 2 जुलाई 1885 के अंक में लिखा : 'सत्य तो यह है कि यदि भारतीयों को केवल भरपेट भोजन और कुछ अंशों मे न्याय ही उपलब्ध हो सके तो वे संतुष्ट होकर अंगरेजी राज्य के अधीन रहने को तैयार है।'[27] भारतीय नेता भारत मे अंगरेजी शासन के सभी कृत्य इस कसौटी पर परखते थे कि[28] वे करोड़ो भारतीयों की दशा को किस रूप मे प्रभावित करते है ? और क्या देश की प्रगति अंततः देश की आर्थिक स्थिति मे किसी भी रूप मे सुधार लाती है ?[29]

भारत में अंगरेज अधिकारी भी भारतीयो द्वारा निर्धनता की समस्या को सर्वोच्च महत्व देने के प्रति जागरूक थे और उन्होने इस चुनौती को अपने प्रशासन की सफलता के मापदंड के रूप मे स्वीकार किया। तदनुसार 15 अगस्त 1894 को 'हाउस आफ कामंस' मे भारत सचिव सर हेनरी फौलर ने कहा :

> 'मैं इस प्रश्न पर विचार करना चाहता हूं कि सरकार ने भारत में विद्यमान अपने सारे शासन-तंत्र के साथ भारत की सामान्य समृद्धि को बढावा दिया है या नही और भारत ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत एक प्रांत के रूप में अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति मे है अथवा बुरी ? : यही एक मापदंड है।'[30]

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीयतावाद के प्रारंभिक काल मे निर्धनता की समस्या भारतीय राजनैतिक मंच का केंद्रबिंदु बनी रही। भारत में ब्रिटिश शासन के प्रवक्ताओं और उभरते भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व ने केवल इसी एक समस्या पर दीर्घ काल तक बहस

चलाई। तत्कालीन परिस्थिति में लोगों की रुचि का अन्य कोई भी ऐसा विषय न था जिसके बारे में शासक और शासित के विचारों में इतना गहरा मतभेद रहा हो और ऐसा वाद-विवाद भी किसी अन्य विषय पर कम हुआ होगा, जिसने इससे अधिक क्रोध तथा तीव्र निंदा को उकसाया हो।[31]

क्या भारत दरिद्र था

इस गंभीर विवाद का प्रथम पक्ष निर्धनता के अस्तित्व का प्रश्न था। दादाभाई नौरोजी भारत मे व्याप्त अपरिमित निर्धनता के अस्तित्व का उद्घोष करनेवाले प्रथम गण्य-मान्य नेता थे। उन्होंने 1876 में अपने निबंध 'पावर्टी इन इंडिया' मे घोषणा की : 'भारत कई प्रकार से गंभीर रूप से विपन्न है और दरिद्रता मे दबा हुआ है।[32] बहुसंख्यक भारतीय जनता को मूल आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए भी उपयुक्त साधन प्राप्त नहीं हैं।[33] उन्होंने दरिद्रता को अपना 'विशिष्ट विषय'[34] बनाया तथा अपने 'जीवन के लक्ष्य', भारत की वास्तविक स्थिति के प्रति अंगरेजी जनता को जगाना, की पूर्ति के लिए वर्षों तक सारे इंग्लैंड में अभियान जारी रखा।[35] वृद्धावस्था के साथ यह महान वृद्ध पुरुष (ग्रैंड ओल्ड मैन) कोमल होने की अपेक्षा अधिकाधिक उग्र बनते गए तथा कठोर शब्दों का ही नहीं प्रत्युत हिंसापरक भाषा का भी प्रयोग करने लगे। 1881 मे उन्होने 'भारत की दुर्भाग्यग्रस्त हृदय-विदारक तथा खून खौलानेवाली स्थिति' की भर्त्सना की[36] और दुखी भाव में उन्होंने कहा, 'इस समय जहां तक अंगरेजी भारत का संबंध है, उसमे आज प्राच्य वैभव की बात आलंकारिक वर्णन अथवा एक स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[37] 1895 में उन्होंने घोषित किया : 'भारत भूखा मर रहा है, अपर्याप्त भोजन पर रहने को विवश भारतवासी हल्के से धक्के मे भी मरने की स्थिति में हैं।'[38] 1900 में उन्होंने कहा, 'सत्य यह है कि भारतवासी एक प्रकार के दास हैं। उनकी दशा अमरीकी दासों से भी बुरी है क्योंकि अमरीकी दासों के स्वामी अपनी संपत्ति के रूप में अपने दासों की देखभाल तो करते हैं।[39]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1886 में इस प्रश्न को उठाया और शीघ्र ही भारत मे व्याप्त घोर दरिद्रता को अपने कार्यक्रम का एक अंग बना लिया।[40] 1891 मे अपने सातवें अधिवेशन मे कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित किया : 'पूरी पांच करोड़ जनता, जिसकी संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है—एक शोचनीय स्थिति में धंसी हुई भुखमरी के कगार पर खड़ी है और प्रति दशाब्द लाखों व्यक्ति सचमुच ही भुखमरी के कारण मृत्यु का ग्रास बनते हैं।'[41] यह प्रस्ताव प्रतिवर्ष कांग्रेस अधिवेशन में बराबर दोहराया जाने लगा।[42] परवर्ती कांग्रेस सभापतियों ने निर्धनता की समस्या को अपने वार्षिक भाषणों का अनिवार्य भाग बनाते हुए ही उनका उपसंहार किया।[43] राष्ट्रवादी लेखकों और वक्ताओं ने तो निर्धनता को अपनी रुचि का विषय ही बना लिया।[44] उदाहरणार्थ 1881 के प्रारंभ में ही एक अनाम लेखक ने 'जरनल्स आफ दी पूना सार्वजनिक सभा' मे घोषित किया, 'भारत की उजागर घोर दरिद्रता इतनी अधिक उद्वेगजनक है कि किसी भी अन्य देश की सरकार इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार न करने की स्थिति में क्रांति का सामना करने को विवश होती।'[45] भारत का प्रेस भी निरंतर प्रतिदिन, प्रतिसप्ताह भारत की आर्थिक

दुर्दशा तथा दुर्भाग्य के रोने को वाणी देता रहा।[46] भारतीयो की स्थिति का वर्णन इन शब्दो मे किया गया · 'दुर्भाग्यपूर्ण', 'गंभीर', 'शोचनीय', 'दयनीय' तथा 'निरीह जतुओ से भी सर्वथा हीन और विकृत'। भारतीयो को इस रूप मे चित्रित किया गया 'भुखमरी से अर्धमृत', 'जीव मात्र अवशिष्ट', 'साक्षात रेगती, मिमियाती तथा लुढकनी दरिद्रता'।[47] कुछ समाचारपत्रो ने भारतीय दरिद्रता का सजीव चित्र पेश किया। उदाहरणार्थ बगला पत्र 'सुलभ दैनिक' ने भारतीय नागरिक की स्थिति का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया ·

'वह अपनी जीवनशक्ति खो चुका है, वह अपना प्राणतत्व नष्ट कर चुका है। उसका रक्त चूस लिया गया है और अर्थनीति की दृष्टि से देखा जाए तो वह वास्तव मे हड्डियो का ढाचा मात्र होने के अतिरिक्त और कुछ नही। वह आधा भूखा है, आधा नगा है। उसका दैनिक आहार थोडे से चावल और बहुत से कदमूल तथा पौधो के पत्ते हैं। उसने जीवन मे कभी स्वादिष्ट भोजन का आनद नही लिया। उसके वस्त्र फटे हुए चीथडे मात्र है। उसका निवासस्थान एक टूटी-फूटी झोपडी मात्र है, जो मौसम के कष्टो से उसकी रक्षा ही नही कर पाती।[48]

१८९६ मे लोकमान्य तिलक द्वारा सपादित मराठी साप्ताहिक 'केसरी' मे 'शिवाजीज अटरन्सेस' शीर्षक से पद्य प्रकाशित हुए, जिनमे शिवाजी ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत देश की दुर्दशा पर इस प्रकार से शिकायत करते हुए दिखाए गए है हाय! हाय! यह मै अपनी आखो से देश की विनाशलीला को देख रहा हू···हाय! यह कैसा विनाश का ताडव नृत्य है। ···समृद्धि समाप्त हो चुकी है और उसके बाद स्वास्थ्य भी। देश मे दुर्भाग्य का दानव सारे देश को अकाल के शिकजे मे जकडे हुए है।[49] इसी पत्र के 26 जनवरी 1893 के अक मे पजाब के 'विक्टोरिया पेपर' मे यहा तक दृढतापूर्वक कहा गया कि भारतीयो को खाना-पीता बतानेवाले भारतीय वस्तुत देशद्रोही है।[50]

भारतीय राष्ट्रीय नेताओ का ध्यान उस समय वर्ग विशेष की दशा पर न होकर सर्व-साधारण की दशा पर ही केद्रित था। देश के विशाल जनसमूह की घोर दरिद्रता और उनकी आर्थिक दुर्दशा ही चिता तथा विचार के विषय थे।[51] उस समय समाज के निम्न तथा मध्य वर्ग के खेतिहरो की स्थिति इस प्रकार थी, वे भुखमरी के शिकार थे, सिकुडकर ठठरी मात्र बन गए थे, उनके चेहरे झुर्रियो से भरे हुए थे। उन बेचारो को दिन निकलने से अधेरा होने तक उस थोडे से भोजन के लिए कठोर श्रम करते करते थककर चूर हो जाना पडता था, जो देश के अपेक्षाकृत अधिक दरिद्र करोडो लोगो को सामान्य काल मे भी बडी कठिनता मे मिल पाता था। वे प्राय आधे भूखे रहते थे तथा अकाल पडने पर तो कीडो-मकोडो के समान मरते थे। इस प्रकार देश की सपन्नता और विपन्नता की सही कसौटी के लिए जनता के अपेक्षाकृत निम्नवर्ग को ही लिया गया।[52] कृषकवर्ग के अतर्गत भी कृषि-श्रमिको की स्थिति की ही तीव्र भर्त्सना की गई[53] क्योकि ये ही लोग थे जो वर्ष के प्रारभ से अत तक कभी पर्याप्त भोजन उपलब्ध न होने के कारण दुखी रहते थे।[54]

राष्ट्रीय भावना के प्रमुख प्रवक्ताओ ने दरिद्रता की समस्या के कारण की खोज

मे देखा कि वितरण प्रणाली के दोषपूर्ण होने की अपेक्षा उत्पादन की ही कमी है। उन्होंने अनुभव किया कि यह प्रश्न अपने आपमे चाहे कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो कि सभी लोगों के बीच किसके द्वारा और किन स्रोतो से सारी आय वितरित की जाती है किंतु इमसे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या भारत का कुल उत्पादन यहा के निवासियों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त है?[55] समस्या को जब इस दृष्टिकोण से देखा गया तो यह स्पष्ट हो गया कि भारत अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए पर्याप्त उत्पादन नही करता और यह सिद्धात रूप मे स्वीकार किया गया कि देश का उत्पादन देश मे ही रहना चाहिए।[56] अतएव भारत के अर्थशास्त्रियो ने भारतीयो की आर्थिक समृद्धि के लिए कुल उत्पादन को बढाने की आवश्यकता पर बल दिया।[57] निर्धनता की समस्या के इस विशिष्ट विश्लेषण ने भारतीय राजनीति के उदय मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय राजनीति ने निर्धनता को व्यापक राष्ट्रीय प्रश्न बनाया तथा उसके उन्मूलन की सयुक्त माग के प्रस्तुतीकरण हेतु विभिन्न वर्गो को विभाजित करने के बदले उन्हें सगठित करने मे सहायता दी।[58] यह विश्लेषण ही भारतीय आर्थिक विकास के लिए किसी सीमा तक अपवादात्मक सिद्धात (किसी भी अन्य राष्ट्र द्वारा अपनाए गए मार्ग से भिन्न मार्ग पकडना) के लिए उत्तरदायी था। बहुत सारे भारतीयों ने निर्धनता की समस्या व आर्थिक विकास के अभाव के कारण को इन रूपो मे देखा, उत्पादन क्षमता तथा योग्यता मे गिरावट और आर्थिक विकास की अपेक्षाकृत निम्न दर।[59]

कुछ समय तक तो ब्रिटिश प्रशासको ने भारत की घृणित तथा विषम दरिद्रता के अस्तित्व को स्वीकार तक नही किया। वर्तमान तथा भूतपूर्व सरकारी अधिकारियों ने वास्तविकता के विपरीत कृषको की सम्पन्न तथा सन्तुष्ट दशा का चित्र ही प्रस्तुत किया। भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा, भारतीयों के चरम अभाव के सतत अभियोग से पीडित होकर 1885-88 मे भारत के वायसराय लार्ड डफरिन ने 1887 मे भारतीय समाज के निम्न वर्गों की दशा की गुप्त सरकारी जाच-पडताल का आदेश दिया। जाच-पडताल के प्रतिवेदन को प्रकाशित नही किया गया परंतु भारत सरकार ने 1888 मे प्रातीय प्रतिवेदनो के आधार पर एक प्रस्ताव प्रकाशित किया। प्रस्ताव के परिशिष्ट 'ए' मे प्रतिवेदनों का संक्षेप प्रस्तुत किया गया।[60] प्रातीय प्रतिवेदन इस बारे मे एकमत थे कि भारत मे खाद्य पदार्थों की कोई कमी नही। किसानो के अपेक्षाकृत निम्न वर्ग की स्थिति भी अभी कोई विशेष चिन्तनीय नही,[61] सामान्य वर्षों मे तो लोगो के पास आवश्यकता से अधिक सामग्री संचित हो जाती है।[62] 1893 में भारत सरकार इससे भी अधिक आशावादी थी। 1881-91 तक 'भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति' पर प्रातीय प्रतिवेदनो की समीक्षा करते हुए सरकार ने घोषणा की कि देश समृद्ध दशा मे है।[63] तृतीय दशवार्षिक नैतिक तथा भौतिक प्रगति प्रतिवेदन (थर्ड डिसिनिअल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट) (1891-92) मे इस बात की पुष्टि की गई कि, क्रमश: और निरंतर बढ़ते हुए जीवनस्तर के संदर्भ मे खेतिहर किसानों की दशा भौतिक दृष्टि मे आत्मनिर्भरता की है।[64] गैरसरकारी ब्रिटिश लेखकों ने सरकारी मत की पुष्टि की तथा कम उत्तरदायी होने के कारण उन्होने अपने मत को अधिक खुलकर अभिव्यक्त किया।[65]

दरिद्रता का प्रमाण

भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का भारत मे व्याप्त दरिद्रता को प्रमाणित करने का सर्वाधिक प्रचलित ढग था, ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों के लेखों से अवतरण उद्धृत करना। इसका स्पष्ट उद्देश्य विरोधी को उसी के शस्त्र से परास्त करना था। अधिकाशतः उद्धृत दो अवतरण सर डब्लू हटर की पुस्तक 'इंग्लैंड्स वर्क इन इडिया' तथा सर चार्ल्स एलीट की 'टिप्पणी' मे क्रमश इस प्रकार थे प्रथम, 'भारत की चालीस करोड जनता अपर्याप्त भोजन पर जीवन निर्वाह करती है।' द्वितीय, 'मुझे यह कहने मे कोई संकोच नही कि आधी खेतिहर जनता पूरे के पूरे वर्ष के बीतने पर भी एक बार भरपेट भोजन नही कर पाती।'[66]

प्रति व्यक्ति की आय के अनुपात के अको को प्राय साक्ष्य रूप मे उद्धृत किया जाता था। कुल राष्ट्रीय आय को कुल जनसख्या मे बाटकर ये आकडे निकाले जाते थे। इस अकेली अनुक्रमणिका मे प्राप्त आर्थिक योगक्षेम की न्यूनता अथवा अभाव का उपयोग समस्या को उजागर करने, उसे नाटकीय रूप देने तथा अन्य देशो के समकालीन निवासियों के स्तर से तुलना करने मे किया जाता था।[67] इसके अतिरिक्त ये स्पष्ट तथा सुबोध अक अपने मे तर्क का काम करते थे, ठोस आधार लिए ये आकडे[68] ऐसा जादू का प्रभाव रखते थे कि उनमे अशिक्षित भारतीयो की जड-बुद्धि भी सचेत हुए बिना न रह सकी।[69]

साख्यिकी गणना के आधार पर आनुपातिक प्रति व्यक्ति आय का प्रथम विवरण प्रस्तुत करने का श्रेय दादाभाई नौरोजी को है। उन्होने 1873 मे सरल किन्तु प्रभावी ढग का प्रयोग करते हुए गणना की कि 1867-68 मे ब्रिटिश भारत की सत्रह करोड जन-सख्या की कुल राष्ट्रीय आय 3 4 अरब रु० है, अथवा दूसरे शब्दो मे, इस देश की आय बीस रुपये प्रति व्यक्ति है।[70] दादाभाई अपने इस निष्कर्ष के मोटे अनुमान से भली प्रकार परिचित थे परन्तु उनकी दृष्टि मे उन्हे उस समय तक उपलब्ध साख्यिकी सूचना का यही सर्वोत्तम सम्भव अनुमान था।[71] परवर्ती वर्षों मे 'बीस रुपये प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का अक' राष्ट्रीय आदोलन का सगठन मंत्र बन गया तथा इस अक को विनाशात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सभी राष्ट्रवादी समाचारपत्रो, पत्रिकाओ, पुस्तको तथा भाषणो मे बडे विस्तार से उद्धृत किया गया।

दादाभाई द्वारा प्रस्तुत चित्र इतना अधिक घिनौना था कि अधिकारियो के लिए उस समय दादाभाई द्वारा अपनाए गए उसी सरल तथा सुबोध साख्यिकी आधार पर ही उसका उत्तर ढूढना आवश्यक हो गया। 1882 मे भारत सरकार ने वित्त सदस्य मेजर ऐवेलीन तथा डेविड बार्बर द्वारा तैयार किए गए तखमीने को प्रचारित किया, जिसके अनुसार ब्रिटिश भारत की कुल आय सवा पाच अरब रुपये और प्रतिव्यक्ति आय 27 रु० कूती गई थी।[72] 1901 मे लार्ड कर्जन ने घोषणा की कि 1897-98 मे प्रति व्यक्ति आय तीस रुपये थी।[73] जब विलियम डिगबी ने साख्यिकी तर्कों के शस्त्र से इस अंक पर प्रहार किया,[74] तो भारत सरकार के लेखा विभाग के एक उच्चाधिकारी फ्रेड जे० एटकिंसन बचाव के लिए आगे बढ़े। उन्होने 'रायल स्टेटिस्टिकल सोसाइटी' के सामने 1902 मे एक

पेपर पढा जिसमें उन्होंने ब्रिटिश भारत की आनुपातिक प्रतिव्यक्ति आय 1875 में 30.5 रुपए के मुकाबले 1895 में 39.5 रुपए संगणित की।[75]

भारतीय नेता प्रमुख रूप से भारत में व्याप्त निर्धनता को ही प्रमाणित करना चाहते थे, अतः कानूनी अथवा सांख्यिकी दावपेंचों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। यही कारण था कि दादाभाई नौरोजी के अंकों की सत्यता पर विश्वास करते हुए भी तथा यह मानते हुए भी कि प्रति व्यक्ति आय का सरकारी अधिकारियों द्वारा तैयार किया गया बेरिंग-कर्जन तखमीना एक तो अपनी ही त्रुटियों की जाच मे पूर्वग्रह से मुक्त नही, दूसरे वह अतिरंजित भी है फिर भी वे उस पर इसलिए विचार-विमर्श करने को तैयार हो गए कि उसमे भी बराबर भारत की घोर दरिद्रता प्रकट होती थी।[76]

प्रति व्यक्ति आय के अंक अपने आपमे भारतीय दरिद्रता के स्पष्ट उद्घोषक थे। भारतीय प्रवक्ताओ का मत था कि भारत की दरिद्रता --तुलनात्मक और सापेक्ष— दोनों रूपों मे है; अतः भारत की वास्तविक दरिद्रता की सही जानकारी एक तो तभी मिल सकती है जब भारत की आय की तुलना दूसरे देशो की आय से की जाए, अथवा मानव की मूल आवश्यकताओं से उसका अंतर दिखाया जाए, अत उन्होंने यह सिद्ध करने का बीडा उठाया कि इन मानदंडों से भी भारतीयों की स्थिति अपेक्षाकृत विषम ही सिद्ध होती है। उन्होंने सर्वप्रथम भारत की प्रति व्यक्ति आय पर विचार किया और उसके उपरात अन्य देशों की आय मे उसकी तुलना के प्रश्न पर विचार किया। उत्तर सर्वथा प्रतिकूल था। यह तुलना एक बार फिर तालिका के रूप मे प्राय. सरल-सुबोध सांख्यिकी शब्दावली मे अभिव्यक्त की गई।[77] भारतीय नेताओ के अनुसार, तालिकाबद्ध तुलना भारतीयों की आर्थिक स्थिति का अंधकारमय रूप प्रस्तुत करती है। यह प्रमाणित करती है कि कुप्रशासित टर्की जैसे देश भारत की अपेक्षा प्रति व्यक्ति दुगुना उत्पादन करते हैं अथवा भारत इंग्लैंड मे उन्नीस गुना पीछे है, अथवा भारत की दरिद्रता की तुलना में अत्यंत निष्पीड़ित तथा कुप्रशासित रूस भी अपेक्षाकृत समृद्ध है।"[78] इस प्रकार हमारे अध्ययनकाल तथा उसके परवर्ती वर्षों में यह एक व्यापक धारणा बन गई थी कि सभ्य संसार मे भारत दरिद्रतम देश है।[79] यह धारणा भारतीयो के हृदय मे निर्धनता के प्रति सशक्त तथा गहन चिंतन की सूचक थी।[80]

भारतीय नेताओं ने अगला प्रश्न प्रति व्यक्ति आवश्यक व्यय का उठाया। उनके विचार में समस्या के सही रूप को देखने के लिए आनुपातिक आय की जांच वर्तमान जीवननिर्वाह व्यय के संदर्भ में ही की जानी चाहिए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि सामान्य भारतीय की आय इतनी अपर्याप्त है कि वह बेचारा मनुष्य होने के नाते अपने जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी नही कर सकता। उनका यह भी विचार था कि भारत में निर्धनता की व्यापकता का विषय इस प्रकार अनाक्राम्य धरातल पर अवस्थित हो जाएगा। फलतः भारतीय राष्ट्रवादियों में अर्थशास्त्र के पंडितों ने इस दिशा में जांच-पड़ताल प्रारंभ कर दी। उन दिनों जीवननिर्वाह व्यय के अथवा पोषण स्तर के अध्ययन का अस्तित्व ही नहीं था। इसके लिए प्रवासी कुलियों, अकाल-कार्यों में लगे श्रमिकों, सामान्य कृषि श्रमिकों, भारतीय सिपाहियों, खेतिहरों तथा जेल के कैदियों के जीवन की

आवश्यकताओं जैसे बिखरे अनुमानों पर निर्भर करना पड़ता था। उपर्युक्त सभी श्रेणियो के लोगों की प्रति व्यक्ति आय इतनी कम पाई गई कि उससे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति संभव नही थी।[81] जेल के कैदियों के भोजन और भरण-व्यय के संदर्भ में प्रति व्यक्ति आय की तुलना भारत की स्थिति का सर्वाधिक प्रभावी विवरण था। दादाभाई नौरोजी ने विभिन्न प्रातों के 1867-68 के प्रतिवेदनों के आधार पर जेल मे कैदी के भोजन और वस्त्रों पर सरकारी खर्च की गणना इस प्रकार से प्रस्तुत की[82] :

सेंट्रल प्राविंसेज	31 रु०
पंजाब	27 रु० 3 आने
नार्थ-वैस्ट प्राविंसेज	21 रु० 13 आने
बंगाल	31 रु० 11 आने
मद्रास	53 रु० 2 आने
बबई	47 रु० 7 आने

इस [illegible] की संगणना कुछ एक अन्य भारतीय लेखकों द्वारा भी की गई।[83] जेल के कैदियो पर होनेवाले प्रति व्यक्ति व्यय-अक के साथ प्रति व्यक्ति आय की तुलना से यह निष्कर्ष स्वतः स्पष्ट तथा आत्मनिरूपक हो गया कि अनुकूल ऋतु मे भी भारत का उत्पादन एक अपराधी को मिलनेवाले भोजन की तुलना मे भी पर्याप्त नही। फिर थोडी-बहुत विलासिता के लिए, सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताओ के लिए, दुख-सुख के अवसरो पर होनेवाले खर्चों के लिए तथा बुरे दिनो के लिए अतिरिक्त धन की व्यवस्था एवं पूर्ति आदि का तो प्रश्न ही कहा उठता है।[84] इस प्रकार वे सही तौर पर इस निष्कर्ष पर पहुचे कि भारतीयो की बडी संख्या स्थायी रूप से भुखमरी की शिकार है और न्यूनतम जीवन-स्तर से नीचे रहती है।

दादाभाई नौरोजी, जी० वी० जोशी, जी० सुब्रह्मण्य अय्यर तथा सुरेंद्रनाथ बैनर्जी जैसे नेताओ ने यह सम्यक रूप से अनुभव किया कि 'औसत' शब्द एक आर्थिक कल्पना होने के कारण अपार दोषो को छुपा देता है, क्योंकि जनता का अपेक्षाकृत अधिक निर्धनवर्ग तो औसत आय का पूरा भाग ले ही नही पाता है। औसत प्रति व्यक्ति आय मे तो विदेशी पूजीपतियों, सिविल सर्विस के उच्च वेतनभोगियो, विदेशी अधिकारियों, बडे-बडे भूमिपतियों, शहरी व्यापारियों, नगर तथा ग्राम के मध्यवर्गीय तथा उच्च मध्य-वर्गीय लोगों की आय सम्मिलित है। अतएव समाज के निम्न वर्ग की आय तो प्रति व्यक्ति औसत आय से बहुत नीची होगी और इस रूप मे प्रति व्यक्ति औसत आय के अंक से अनुमित स्थिति की अपेक्षा उन्हें अधिक कठिनाइयों का सामना करते हुए जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता होगा।[85]

इसके अतिरिक्त लगातार आनेवाले विनाशकारी दुर्भिक्षों ने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से समस्या पर पूरा प्रकाश डाला और जनता की दयनीय दरिद्रता तथा स्थायी भुखमरी का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत किया। उन्होंने सामान्य वर्षों में भारत की स्थायी दरिद्रता को

अपेक्षाकृत अधिक बड़ी बुराई के रूप मे सूचित किया । उन्होंने 'राष्ट्र की पूर्ण क्षीणता का भांडा फोडा', 'इस देश में बहुसख्यक जनता के चरम दुर्भाग्य, उसकी उदासीनता और विवशता के अतिरिक्त प्रमाण को प्रस्तुत किया', 'अन्य सभी तथ्यों और अंको से बढकर निष्कर्ष रूप में भारत में व्याप्त घोर दरिद्रता को स्पष्ट प्रमाणित किया ।' ···वस्तुत: वे भारत की दरिद्रता के 'बाह्य चिह्न' थे ।[86]

राष्ट्रीय नेताओं ने भारत मे व्याप्त घोर दरिद्रता को प्रमाणित करने के लिए निश्चित प्रमाणों को प्रस्तुत करने के साथ-साथ ब्रिटिश भारतीय प्रशासकों और लेखकों द्वारा देश में समृद्धि और सपन्नता सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत तर्कों का प्रबल खडन करना भी प्रारभ कर दिया । भारतीयो की सपन्नता के सूचक किसी भी वस्तुगत मानदड के अभाव मे ब्रिटिश प्रवक्ताओ ने व्यक्तिगत मानदड को अपनाने का मार्ग ग्रहण किया । उनका तर्क था कि भारतीय जनता अपनी इच्छानुरूप ही समृद्ध है । भारतीयो की निम्न आय उनकी दरिद्रता की सूचक न होकर उनकी आवश्यकताओं की स्वल्पता की ही द्योतक है ।[87] इस प्रकार निरपेक्ष रूप से देखने पर भारत की स्पष्ट दिखाई देनेवाली दरिद्रता जनता की सीमित आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य मे देखने पर सर्वथा भिन्न रूप ग्रहण कर गई । इस तर्क का निर्देशक पक्ष यह था कि खेतिहरो की सन्तुष्टि का अर्थ तथ्यत: उनकी संपन्नता भी है । 1880-91 के वर्षो की 'बगाली रिपोर्ट' ने भारतीयों की भौतिक स्थिति पर इस प्रकार टिप्पणी की : 'बगाल का किसान अपने मानदड के आधार पर ही जाचे जाने पर प्रसन्न तथा सपन्न पाया गया है ।'[88] उत्तर-पश्चिमी प्रान्त और अवध की रिपोर्ट लिखनेवाले ने तो इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया हिंदू कृषक किस प्रकार घटिया खाना खाता है जबकि वह बहुत से अच्छे खाने-पीने लोगो की अपेक्षा अधिक मोटा न सही, पूर्णत स्वस्थ और प्रसन्न अवश्य है ।[89] इस तर्क का पोषक सिद्धात यह कल्पना थी कि धार्मिक शिक्षा तथा दीर्घ काल से प्रचलित सामाजिक मूल्यो के कारण भारतीय कृषक भौतिक आवश्यकताओं की सतुष्टि की अपेक्षा आध्यात्मिक सतोष मे अधिक रुचि रखता है ।[90] ब्रिटिश भूतपूर्व तथा वर्तमान अधिकारी भारतीयो की प्रतिव्यक्ति आय की यूरोप के लोगो की आय से तुलना की प्रवृत्ति के मुकाबले व्यक्तिनिष्ठ और सापेक्षिक सिद्धात पर आधृत विरोधी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने लगे । उनमे से अपेक्षाकृत अधिक गभीर व्यक्तियों ने घोषित किया जीवन आवश्यकताओ और मूल्यो मे गहरे अतर के कारण यूरोप के लोगो के साथ भारतीयो के जीवन निर्वाह तथा जीवन स्तर की तुलना एक अर्थहीन चेष्टा है । उनकी जाच-पड़ताल तो देश की अपनी आवश्यकताओ के सदर्भ मे ही करनी उचित है ।[91] कम सतर्क सरकारी अधिकारी तो टिप्पणी करते हुए इस सीमा तक बढ गए कि तुलना की दृष्टि से यूरोप के खेतिहर की अपेक्षा भारत के किसान की दशा बेहतर है । इसी प्रकार सामान्य भारतीय कृषक को प्राप्त सुख सुविधाओं की दृष्टि से उसकी तुलना यूरोप के बहुत बडे भाग मे विद्यमान किसानो से करते हुए जान स्ट्रैचे ने 1898 मे यह मत व्यक्त किया 'निस्सदेह भारतीय कृषक ही अधिक लाभसंपन्न है ।'[92] मद्रास के भूतपूर्व गवर्नर ग्राट डफ 1887 मे एक पत्रिका मे प्रकाशित अपने लेख मे पहले ही यह दृष्टिकोण प्रकट कर चुके थे ।[93] छोटे अधिकारी तो और भी अधिक असंयत थे ।

ढाका का कमिश्नर 1888 मे इस चौंकानेवाले परिणाम पर पहुचा अपनी आवश्यकताओं के सदर्भ मे बगाल का किसान विश्व मे समृद्धतम है। हुगली का कलक्टर टायनर भी उद्धतता मे पीछे नही था। उसने यहा तक लिखा इस जिले के दरिद्रतम वर्ग की स्थिति इग्लैंड के उसी वर्ग की स्थिति की तुलना मे सभी दृष्टियो से निस्सकोच रूप से बेहतर कही जा सकती है।···और मुझे इस बात मे लेशमात्र भी सदेह नही कि हजारो-हजार निर्धन अगरेज भारतीयो के साथ स्थान परिवर्तन करने मे प्रसन्नता अनुभव करेंगे।[94]

भारतीय नेताओ ने इस विचारधारा के आधारभूत दृष्टिकोण को सर्वथा क्रूर तथा भावनाशून्य[95] बताया। उन्होने बडी तीव्रता से इस सिद्धात का अस्वीकार किया कि भारतीयो की आवश्यकताए सीमित हैं[96] अथवा वे जीवन मे भौतिक सुख-सुविधाओ का आनद लेने तथा उनकी आवश्यकता अनुभव करने के अयोग्य है।[97] उनके वर्तमान निम्न जीवनस्तर को उनकी स्थिति मे सुधार के अधिकार को नकारने के पोषक तत्व के रूप मे नही लिया जा सकता।[98] विषय का सार इस प्रकार था

ब्रिटेन ने प्रथम उनके साधन छीन लिए उन्हे अधिक उत्पादन के अयोग्य बना दिया, अवशिष्ट तुच्छ साधनो की सीमा तक उन्हे अपनी आवश्यकताओ को घटाने को विवश कर दिया और फिर उन्हे कोसना शुरु कर दिया। घाव पर नमक छिडकते हुए उन्हे कहना प्रारभ कर दिया देखो तुम्हारी आवश्यकताए सीमित है। तुम्हे अवश्य ही सीमित आवश्यकताओ वाले निर्धन व्यक्ति बने रहना चाहिए। तुम्हारे लिए [illegible] सेर चावल हम तुम्हे अधिक उदारता से सेर भर चावल रखने की अनुमति दे देगे थोडे से वस्त्र और आश्रय पर्याप्त है। बडी बडी मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि और सुखो का उपभोग तो हमारे लिए है। तुम्हे हमारे भाडे के टट्टू के रूप मे हमारे पशुओ के समान हमारी दासता करनी चाहिए और हमारे लिए श्रम करना चाहिए।[99]

भारतीय नेताओ ने वैराग्यपरक दृष्टिकोण तथा आध्यात्मिकता के नाम पर निर्धनता की महिमा कहने की प्रवृत्ति की निदा की। उन्होने भौतिक सुख-सुविधाओ को बहुत ऊचा स्थान दिया।[100] उन्होने राष्ट्र की भौतिक उत्पादकता मे सभावित वृद्धि के साथ राष्ट्र की भौतिक सपदा मे वृद्धि की इच्छा को जोड दिया क्योकि उनके अनुसार भौतिक सामग्री के उपलब्ध परिमाण का मानवीय आवश्यकताओ की सतुष्टि से सापेक्ष सबध है।[101] उनकी सारी आर्थिक गतिविधि का केद्र दरिद्रता को दूर करना था न कि अप्रसन्नता को। उन्होने अपना तात्कालिक लक्ष्य भूखे मरते लोगो के लिए रोटी के दो टुकडे जुटाना बनाया और इस रूप मे उनके तर्क का सार यह था कि बेचारे भारतीयो की सीमित आवश्यकताओ की भी सतुष्टि नही होती।[102]

क्या दरिद्रता बढ़ रही थी

राष्ट्रीय आदोलन, स्वतत्र जाच-पडतालो तथा बहुत बडे क्षेत्र और बहुत बडी जनसख्या को बहुत बुरी तरह प्रभावित करनेवाले और साथ ही सपन्नता का पर्दाफाश करनेवाले दुर्भिक्षो की निरतरता के फलस्वरूप सारे देश मे व्याप्त घोर दरिद्रता के राष्ट्रीय दृष्टि-कोण को न्यूनाधिक रूप मे न केवल भारतीय जनता ने ही अपितु शासकवर्ग ने भी निर्विवाद

रूप से स्वीकार किया। 1888 की आर्थिक जांच पर प्रस्ताव में यह तो कहा गया था कि खेतिहरों के निम्न वर्गों की स्थिति भी वर्तमान मे ऐसी नही जिसे चिंता का विषय कहा जा सके किंतु यह भी स्वीकार किया गया कि देश के सभी भागों मे बहुसंख्यक जनता के अभावग्रस्त होने के प्रमाण उपलब्ध है[103], और यह कथन अतिशयोक्ति नही कि उस देश के बहुत बड़े भूभाग के छोटे किसान तथा मजदूर, दो समय का भोजन भी नही जुटा पाते।[104] 1898 मे 'लायल दुर्भिक्ष आयोग' ने यह पाया कि कृषक जनता का निम्नवर्ग अभी घोर दरिद्रता के शिकंजे मे इतना कसा हुआ है कि उसके पास सामान्य वर्षो मे भी पर्याप्त भोजन नही होता।[105] अपनी वायसराई के अंतिम वर्षों मे लार्ड कर्जन ने स्पष्टता से स्वीकार किया : 'भारत मे पर्याप्त, यहा तक कि पर्याप्त से बहुत अधिक दरिद्रता है।[106] मेजर बेरिंग तथा लार्ड कर्जन द्वारा प्रसारित प्रति व्यक्ति आय के अनुमान यद्यपि अन्य रूपो मे विवादास्पद है तथापि उनमे प्रभावशाली ढग से भारतीय जनसमुदाय की घोर दरिद्रता का पता चलता है। इस प्रकार 19वी शताब्दी के बीतते-बीतते भारत मे व्याप्त घोर दरिद्रता के विश्वास ने सत्य के रूप मे प्रचार और प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली।

भारत के उदीयमान राष्ट्रीय नेतृत्व तथा ब्रिटिश प्रशासकों के मध्य प्रचार-युद्ध का केंद्र एक अन्य अधिक विस्फोटक यह प्रश्न बन गया कि 'भारत की दरिद्रता पहले की अपेक्षा बढ रही है अथवा घट रही है ?[107] यह प्रश्न इस दृष्टि से महत्वपूर्ण था कि इसके उत्तर में एक निर्णय निहित था और इसीलिए दोनों पक्षों ने इस प्रश्न को उस रूप मे प्रस्तुत किया 'भारत ब्रिटिश उपनिवेश बनने पर पहले की अपेक्षा अच्छी स्थिति में है अथवा बुरी स्थिति मे है ?'[108] भारत मे विद्यमान ब्रिटिश अधिकारी देश मे व्यापक दरिद्रता के प्रश्न की अपेक्षा इस प्रश्न पर अधिक संवेदनशील थे क्योंकि भारत का पूर्वापेक्षा दरिद्र होते जाना मानने का अर्थ केवल आत्मनिंदा ही नही था प्रत्युत उसके गभीर राजनीतिक प्रतिघात भुगतना भी था। उच्च ब्रिटिश अधिकारी सत्य के इस रूप से भली प्रकार परिचित थे। भारत सचिव लार्ड जार्ज हैमिल्टन ने समस्या की इस चुनौती को स्वीकार करते हुए 16 अगस्त 1901 को 'हाउस आफ कामस' मे घोषणा की 'यदि यह सिद्ध किया जा सके कि हमारे प्रशासन में भारत भौतिक सपन्नता की दृष्टि से और अधिक पिछड़ गया है तो मैं इसे एकदम आत्मनिंदा मानने को तैयार हूं तथा स्वीकार करता हू कि इस स्थिति मे हम भारत को और अधिक समय तक अपने नियंत्रण में रखने के विश्वसनीय अधिकारी नही।'[109] यह विषय इस दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि यदि रोग को अभी स्वीकार ही नही किया गया तो उसके कारणो और उपचारों के ढूढने का क्या लाभ हो सकता था ?

वर्षों तक भारतीय नेता इसी स्थिति को सिद्ध करने में लगे रहे कि भारत दरिद्र ही नही प्रत्युत दिन-प्रतिदिन दरिद्रतर होता जा रहा है। उन्होंने भारतीय जनता की निरंतर बढ़ती हुई और उत्तरोत्तर अधिक गहरी जड़ पकड़ती हुई निर्धनता को दिखाने के लिए अथक और निरंतर प्रयत्न किए। उदाहरणार्थ गोपालकृष्ण गोखले ने इसे 1902 के अपने प्रसिद्ध बजट-भाषण का केंद्रबिंदु बनाया और उसके बाद इस समस्या के सभी पक्षों पर विचार करने के उपरात वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत के जनसमुदाय की

भौतिक स्थिति निरंतर बद से बदतर होती जा रही है तथा यह दृष्टिगोचर है कि यह स्थिति विश्व के आर्थिक इतिहास के क्षेत्र विस्तार के अंतर्गत सर्वाधिक दुखद स्थिति है।[110] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने द्वितीय अधिवेशन में ही भारतीय जनता की विशाल संख्या की बढ़ती हुई दरिद्रता के अपने दृढ़ विश्वास को वाणी दी[111] तथा एक के पश्चात दूसरे अधिवेशन में इस प्रस्ताव को दोहराया। राष्ट्रीय प्रेस ने भी प्रतिदिन बढ़ती दरिद्रता को 'स्पष्टगोचर' तथा 'पूर्णत: सिद्ध वास्तविकता' कहते हुए अत्यंत उग्रता से उसकी घोर निंदा की।[112]

दूसरी ओर, भारत में रहनेवाले ब्रिटिश अधिकारी तथा सामान्यत: सभी ब्रिटिश लेखक यह मानते रहे कि ब्रिटिश राज्य से भारतीय जनता की भौतिक दशा निरंतर न केवल सुधर रही है प्रत्युत देश की संपन्नता में वृद्धि भी हो रही है। उनके अनुसार दरिद्रता की कल्पना सर्वथा निराधार और पूर्ण रूप से पाखंड है। सत्य यह है कि भारत पहले से ही समृद्धि के राजपथ पर चलना शुरू कर चुका है; अत: उसका भविष्य उज्वल तथा उत्साहवर्धक है।[113] इस सिद्धांत के प्रबलतम समर्थक 'व्याख्यात' लार्ड कर्जन थे जिन्होंने बार-बार, यहां तक कि लगभग अपने सभी बजट भाषणों में इस विषय को उठाया।[114] 1901 में उन्होंने जैसा हम पूर्व निर्देश कर चुके हैं, संगणना द्वारा यह सिद्ध किया कि भारत की 1882 में 27 रुपये प्रति व्यक्ति आय बढ़कर 1898 में 30 रुपये प्रति व्यक्ति हो गई है। वृद्धि की इस दर से असंतोष प्रकट करते हुए भी उन्होंने दावा किया कि आर्थिक गतिविधि निश्चित रूप से प्रगति की ओर उन्मुख है, अवनति की ओर नहीं।[115] 1901 तक तो वे और अधिक विश्वस्त हो गए थे। उन्होंने गोपालकृष्ण गोखले जैसे भारतीय नेताओं का उपहास करते हुए, 'तपती धूप में वर्षा होने की बात कहकर आत्मरक्षा के लिए छाता ताननेवालों' से उनकी तुलना करते हुए बलपूर्वक कहा कि भारत सभी दिशाओं में हृष्ट-पुष्टता, क्षमता और संपन्नता के संकेतों का स्पष्ट प्रदर्शन कर रहा है।[116] 1906 तक तो उनका यह निश्चित मत था कि भारत की भौतिक प्रगति न केवल भारतीय इतिहास की अभूतपूर्व घटना है प्रत्युत विश्व के किसी भी देश के इतिहास की एक विरल घटना है।[117]

प्रतिद्वंद्वी विवादों की विस्तृत परीक्षा के समय दोनों पक्षों ने समान रूप से स्वीकृत परंतु भिन्न विधि से और विपरीत रूप में विश्लेषित निर्देशकों पर न केवल तर्क-वितर्क किया प्रत्युत भारतीय नेताओं ने भौतिक संपन्नता संबंधी कतिपय पक्षों पर सहमत होते हुए भी यह स्पष्ट कर दिया कि राष्ट्रीय संपन्नता संबंधी बड़े कारणों के अभाव में ये पक्ष आवश्यकता से अधिक कमजोर पड़ गए थे।

राष्ट्रीय नेताओं की दृष्टि में दुर्भिक्ष भारत की दरिद्रता के स्पष्ट प्रमाण थे। दुर्भिक्षों की निरंतर बढ़ती हुई तीव्रता, प्रसार तथा विनाशशीलता[118] भारत की बढ़ती हुई अशक्यता के पक्के अभिसूचक थे।[119] इसके विपरीत ब्रिटिश दृष्टिकोण यह था कि दुर्भिक्ष प्राकृतिक प्रकोप के परिणाम थे और इनके साथ मानवीय प्रयत्नों का कोई संबंध नहीं था।[120] भारतीयों की दृष्टि में खेतिहरों पर बढ़ता हुआ ऋण तथा भूमि जोतनेवालों द्वारा भूमि न जोतनेवालों के हाथों भूमि की बिक्री, साधनों के बढ़ते अभाव के सूचक थे।[121] कुछएक ब्रिटिश अधिकारियों तथा लेखकों ने इस तथ्य को मानने से इनकार कर

दिया कि ऋणग्रस्तता खेतिहरों की निर्धनता की दशा की सूचक है।[122] विकल्पत: उन्होंने ऋणग्रस्तता को निर्धनता का कारण माना, परिणाम नहीं।[123] जी० वी० जोशी और गोखले ने भी अकाल और प्लेग से अलग हटकर बढ़ती हुई मृत्यु-दर के आंकड़े प्रस्तुत करके यह दिखाने का प्रयत्न किया कि बहुत अधिक जनसंख्या को भरपेट खाना नहीं मिलता।[124] एक ओर जहा भारतीय नेता ब्रिटिश अधिकारियों के भारतीय संपन्नता के दावे को झूठा सिद्ध करने के लिए निश्चयात्मक प्रमाण जुटा रहे थे, वहां वे अब यह भी मानने लगे थे कि वस्तुत: प्रमाण जुटाने का उत्तरदायित्व तो निश्चित धारणा के प्रस्तोताओं का ही है।

ब्रिटिश प्रवक्ताओं ने इतिहास को बहुत बड़ा न्यायाधीश मानकर उसके आगे अपील करते हुए अपना पक्ष प्रस्तुत किया। उनका मंतव्य था कि ब्रिटिश राज्य के सापेक्षिक भौतिक परिणामो पर निर्णय देने में पूर्व तुलना के लिए यह देखना चाहिए कि ब्रिटिश पूर्ववर्ती शासको के अधीनस्थ भारत की क्या दशा थी। इस तुलनात्मक विवेचन में उनका तर्क था कि अंगरेजो के आने से पूर्व भारत अत्यधिक दरिद्र था और ब्रिटिश राज्य का पक्ष इस दृष्टि से उज्वल है।[125] भारतीय नेता अपने अतीत पर आधारित निर्णय को स्वीकार करने पर सहमत थे। कुछएक महानुभावो ने तो बडी तत्परता से मान लिया कि भारतीय दरिद्रता की जडे इतिहास के अन्तराल मे है और इस प्रकार दरिद्रता एक पुरानी, बहुत पुरानी विरासत मे प्राप्त बुराई है।[126] भारत अतीत मे कभी समृद्धि का भडार नही रहा।[127] परन्तु उनमे से बहुतों की मान्यता यह थी कि वर्तमान युग की दरिद्रता और दुर्भाग्य अतीत के किसी भी युग में नहीं रहे।[128] इनमें आज के भाग्य को जकडने वाला अगरेजी राज्य सबसे बडा अभिशाप है।[129] उनमे से कुछएक ने तो यह प्रमाणित करने की चेष्टा भी की कि अकबर तथा अन्य भारतीय शासको के समय भारतीयो की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी।[130] कुछएक राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने तो अतीत का गौरव-गान किया और अतीत की समृद्धि और गरिमा के विनाश पर उच्च स्वर से विलाप किया।[131] गिल्फ़ेड नडी के इस विषम प्रश्न ने बड़ी सफाई से सरकारी दृष्टिकोण का खडन किया—क्या अगरेज व्यापारी भारत में गरीबों के दुखों के निवारण के लिए इस देश मे आने को आकृष्ट हुए थे? अथवा उनके अपने ऐतिहासिक कथन के अनुसार, क्या वे इस देश की संपत्ति से आकृष्ट होकर यहा आये थे?[132]

ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों तथा लेखकों ने भारत में असंख्य विभिन्न मूल्यवान धातुओं के बढ़ते हुए आयात तथा उसके फलस्वरूप लोगों के पास उन धातुओं के संचित भंडार को देश की बढ़ती हुई सम्पत्ति को निश्चित संकेत के रूप में ग्रहण किया।[133] उनमें से एक महानुभाव फ्रेड जे० एटकिंसन ने तो 1902 में संगणना की कि 1800-1895 की अवधि मे भारत ने 141,705,000 पौंड का सोना तथा 4792,403,000 पौंड को चाँदी आयात की है। सिक्को आदि के लिए कटौती के पश्चात उसने आंकड़ों से सिद्ध किया कि भारत की संचित आय 26 रु० प्रति व्यक्ति है।[134] उल्लेखनीय यह है कि उसका यह तर्क भारतीय नेताओं को किसी प्रकार दिग्भ्रांत न कर सका। भारतीय नेताओं ने यह स्वीकार किया कि 19वीं शताब्दी की पूरी अवधि में मूल्यवान धातुओं का आयात हुआ है परंतु

इसे वे बढ़ती समृद्धि का अथवा राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी का लक्षण मानने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट किया कि चांदी के कुल आयात का बहुत बड़ा भाग संग्रह अथवा आभूषणों के काम न आकर मुद्रा की अनिवार्य आर्थिक तथा व्यापारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के ही काम आता है। आयातित चांदी प्रमुख रूप से मुद्रानिर्माण के ही काम आती है जिसकी माग इन वर्षों में भूराजस्व की नकद अदायगी तथा देश के विदेश व्यापार के आर्थिक भुगतान के कारण काफी बढ गई थी।[135] मुद्रानिर्माण, टूट-फूट तथा राजकोष-जमा आदि के पश्चात आयातित मूल्यवान धातुओं का अवशिष्ट जनता की बढती समृद्धि को दिखाने के लिए प्रयोग किया जानेवाला एक तुच्छ प्रमाण ही था।[136] इतना ही नहीं, इस तुच्छ राशि का उपयोग भी प्रमुख रूप से उच्च तथा मध्यवर्ग के लोग ही करते हैं। यह धातु तो कदाचित ही जनता के निम्नवर्ग के हाथ में पहुंच पाती है।[137] दादाभाई नौरोजी ने जोर देते हुए कहा कि सोना-चांदी के आयात संपत्ति मे शुद्ध बढोत्तरी नहीं करते क्योंकि उनका उद्देश्य व्यापार के निश्चित संतुलन को बनाए रखना नही है। भारत का निर्यात आयात की अपेक्षा अधिक है। इन मूल्यवान धातुओ के आयात के बदले उसी मूल्य की अन्य वस्तुओ का निर्यात करना पडता है अत: इस रूप में मूल्यवान धातुओं के आयात से संपत्ति में वद्धि की अपेक्षा जीवननिर्वाह के साधनों की हानि ही अधिक होती है।[138]

ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों ने हर्षोत्फुल्ल होकर वर्ष-प्रतिवर्ष मूल्य और परिमाण मे शीघ्र गति से फैलते भारत के विदेश व्यापार को देश की बढती संपन्नता के साक्ष्य रूप मे प्रस्तुत किया। उन्होने एक ओर यह तर्क प्रस्तुत किया कि केवल बढती संपन्नतावाला देश ही नियमित रूप मे और ऊंची दर पर विदेशी सामग्री के आयातों में वृद्धि कर सकता है। दूसरी ओर उनका तर्क था कि बढते हुए निर्यातो मे किसानों की जेबें अधिकाधिक भर रही होंगी।[139] भारतीय नेताओ ने इस प्रपंच के प्रति विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। विदेश व्यापार के प्रति उनके दृष्टिकोण की समीक्षा तो आगे के एक अध्याय मे प्रस्तुत की गई है। यहा इतना लिखना पर्याप्त होगा कि उनके अनुसार विदेश वाणिज्य लाभ का साधन न होकर राष्ट्रीय क्षति का ही एक बहुत बडा साधन है, क्योंकि आयात से थोडे से लाभ की अपेक्षा बहुत बडी हानि इस रूप मे होती है कि स्वदेशी उत्पादकों के अपने क्षेत्र से हट जाने से औद्योगिक उदासीनता छा गई है। इसके अतिरिक्त आयातो मे वृद्धि देश के योगक्षेम मे बढोत्तरी की अपेक्षा देश से धन के निकास में वृद्धि की ही सकेतक है। मजे की बात यह है कि उसकी बुराइया तो भारतीयो को भुगतनी पडती है और उसके लाभो का आनंद विदेशी लेते हैं।[140]

ब्रिटिश भारतीय प्रशासकों ने निरंतर सुधरते हुए भारत के राजस्व की ओर संकेत किया जो करों के अतिरिक्त बोझ को बढाए बिना ही बढता जा रहा था। उन्होंने राजस्व के प्रमुख विषयों द्वारा लचीलापन दिखाए जाने के लिए तथा क्रयशक्ति और समृद्धि के सूचक साधनों से प्राप्ति में निरतर विकास के लिए अपने आपको बधाई दी।[141] उन्होने देश में सुविधाओं और समृद्धि के सीमांत में सुधार के द्योतक के रूप में सीमा-शुल्क, डाक कर, नमक कर, आय कर, मुद्रांक तथा उत्पाद शुल्क से प्राप्त राजस्व में वृद्धि

का उल्लेख विशेष रूप से किया।[142] भारतीय, जिनके दृष्टिकोण को गोपालकृष्ण गोखले ने सभी राष्ट्रवादी विचारकों द्वारा बहुप्रशंसित 1902-3 के अपने बजट भाषणों मे प्रखरता और प्रबलता से प्रस्तुत किया था, राजस्व मे बढ़ोत्तरी को देश की भौतिक प्रगति का संकेत मानने को सहमत नही थे। उनके अनुसार ऊंचा कराधान देश की दरिद्रता का बहुत बड़ा कारण है।[143] वह राजस्व के खातो मे विकास को भारतीय जनता की दरिद्रता के निवारण का सूचक मानने के ब्रिटिश दृष्टिकोण को भी स्वीकार नहीं करते थे। उनका विश्वास था कि उत्पादन राजस्व मे वृद्धि राष्ट्र की संपन्नता की अपेक्षा राष्ट्र के विनाश और दुर्भाग्य के पथ पर बढ़ने की सूचक है। एक सभ्य सरकार को इस स्थिति का अनुमोदन करने के बदले उसकी निंदा करनी चाहिए।[144] सीमाशुल्क मे वृद्धि केवल यथादृष्ट विदेश व्यापार के प्रसार मात्र की ज्ञापक है जिसकी निन्दा पहले ही की जा चुकी है। केवल दो करो, आयकर तथा बिक्रीकर, से प्राप्त आय देश की भौतिक स्थिति का ज्ञान करा सकती है। आयकर मध्यवर्ग की और बिक्रीकर जनसाधारण की स्थिति के परिचायक हैं।[145] यह निर्देश किया गया कि आयकर से प्राप्त होनेवाली आय वर्षों से न्यूनाधिक रूप मे स्थिर ही रही है।[146] बिक्रीकर की आय भी जनसंख्या के विस्तार के अनुपात मे नही बढ़ी है।[147] नमक जैसी मानवीय उपयोग की मूल तथा आवश्यक वस्तुओ की प्रति व्यक्ति खपत मे गिरावट का सूचक यह तथ्य जनसमुदाय की गिरती दशा का सचमुच एक बहुत बड़ा साक्ष्य है।[148]

ब्रिटिश भारतीय अधिकारियो ने कृषियोग्य भूमि के क्षेत्र मे विस्तार तथा कृषि-उपज मे वृद्धि को भारतीय सपन्नता के विकास के एक अन्य प्रमाण के रूप मे उद्‌धृत किया क्योंकि उनके अनुसार इनका परिणाम था कृषि आय मे अपेक्षाकृत अधिकता तथा खाद्य पदार्थों की अपेक्षाकृत प्रचुरता से उपलब्धि।[149] भारतीय नेताओ ने इस तर्क का खंडन निम्नलिखित युक्ति से किया। उसके अनुसार देश मे, विशेषत: पुराने प्रातों मे, कृषि योग्य भूमि का क्षेत्र तथा कुल खाद्य-सभरण बढती जनसख्या के अनुरूप नहीं बढ रहे।[150] इसके अतिरिक्त व्यापारिक फसलो के क्षेत्र की वृद्धि के मुकाबले खाद्य फसलों के क्षेत्र की वृद्धि भी नगण्य है।[151] कृषिक्षेत्र का विस्तार कृषि उत्पादनों के निर्यात मे वृद्धि के परिणाम के अनुरूप नही।[152] प्रत्येक स्थिति मे यह विस्तार जगलों, प्राकृतिक चरागाहो तथा परती धरती पर अनुचित कब्जो का ही परिणाम है।[153] इसके अतिरिक्त उन्होने अंगरेजों के धरती की उत्पादकता मे सुधार के दावे को गलत मानते हुए उसका प्रबल खंडन किया। उनके अनुसार धरती पर जनसख्या के दबाव और उसके फलस्वरूप स्वदेशी उत्पादकों के टूट जाने से, घटिया धरती पर व्ययसाध्य खेती के विस्तार से[154] तथा निरंतर खाद के बिना ही फसल उगाते रहने से धरती की उर्वराशक्ति क्षीण हो जाने से उत्पादन घट गया है।[155] अतएव निष्कर्ष रूप मे उनकी मान्यता थी कि भारत कृषि के क्षेत्र में निरंतर और भयंकर अपकर्ष से विपन्न होता जा रहा है जिसका परिणाम यहां बार-बार पड़नेवाले दुर्भिक्ष हैं।[156]

सुधरती दशा का सरकारी तंत्र द्वारा प्रस्तुत एक रोचक साक्ष्य मूल्यों में वृद्धि था। उनके अनुसार यह एक सत्य था क्योंकि इससे एक ओर खेतिहरों की जेबें भारी हो रही

थीं और दूसरी ओर लोगों की क्रयशक्ति में वृद्धि से प्रेरित खाद्यान्नों तथा अन्य उपभोग वस्तुओं की मांग बढ़ रही थी।[157] राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में मूल्यवृद्धि की भूमिका का तर्क सर्वथा निस्सार और भ्रांतिमूलक था। उन्होंने वर्षों तक तो आंशिक, स्थानीय तथा अस्थायी वृद्धि को छोड़कर देश में सामान्य अथवा उल्लेखनीय रूप में मूल्य वृद्धि को स्वीकार ही नही किया।[158] आगे चलकर उन्होंने मूल्यवृद्धि के तथ्य को तो स्वीकार किया परंतु उसकी सार्थकता का विश्लेषण भिन्न रूप से प्रस्तुत किया। उनके विचार में मूल्यवृद्धि क्रयशक्ति में वृद्धि की सूचक न होकर राष्ट्रीय उत्पादन में गिरावट की और कृषि उत्पादन में ह्रास की द्योतक थी।[159] इसके अतिरिक्त यह कृषि उपजों के बढ़ते निर्यात तथा यूरोप के बाजारों की ऊंची कीमतों का प्रभाव था।[160] उनमें से कुछ एक ने संकेत किया कि किसी भी रूप मे बढी कीमतों का लाभ वास्तविक उत्पादक को न मिलकर बिचौलियों, ऋणदाता, साहूकारों तथा निर्यात व्यापारियों, द्वारा ही हड़प लिया जाता था।[161] उन्होंने अविलंब यह भी संकेत किया कि खेती तथा अन्य प्रकार के श्रम कार्यों में लगे समाज के निम्नतम वर्ग के मजदूरों की आय बढती कीमतों के साथ उसी गति से नहीं बढी है। बल्कि कुछ लोगों की आय तो घट गई है। ऐसे लोगों का तथा उन छोटे किसानों का जिनके पास बेचने के लिए फालतू अनाज नहीं होता और जिन बेचारों को अपनी आवश्यकता के खाद्यान्न का कुछ भाग खरीदना पड़ता है, ऊंची कीमतों से समृद्धि के बदले दुर्भाग्य ही बढा है।[162]

आधुनिक उद्योगों तथा यातायात साधनों का उदय और विकास समकालीन भारतीय आर्थिक विकास का एक ऐसा पहलू था जिसे दोनों पक्षों ने प्रचारात्मकता से हटकर एक मत से समर्थन दिया तथा उसे आर्थिक क्षमता का स्रोत स्वीकार किया। परंतु इस संबंध में भी भारतीय अर्थशास्त्रियो ने स्वदेशी उद्योगों के द्रुतगामी ह्रास पर गंभीर चिंता और निराशा प्रकट की। इस औद्योगिक उदासीनता से भारतीय समाज द्वारा अनुभूत आजीविका की भारी क्षति की पूर्ति आधुनिक मशीनी उद्योग के विकास द्वारा होती दिखाई नही देती।[163] उल्लेखनीय यह है कि विदेशी धन का आधुनिक भारतीय उद्योगों पर प्रभुत्व लाभप्रद परिणामों के बहुत बड़े भाग को अपने अधिकार में कर लेता है।[164] उनकी दृष्टि में रेलें भी विशुद्ध वरदान रूप नही थीं।[165]

भारतीय नेताओं ने एक दृष्टि से अंगरेजी प्रशासन को नीचा दिखाया। भारत में व्याप्त घोर दरिद्रता और उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती गति के संबंध में उनकी धारणाएं दृढ़ थीं। वे सदैव इस तथ्य की सत्यता की परीक्षा के लिए तथा वास्तविकता को उसकी गहराई में देखने के लिए निष्पक्ष तथा खुली जांच-पड़ताल का समर्थन करते थे। वस्तुतः उन्होंने जांच-पड़तालों को भारत की दरिद्रता समस्या संबंधी अपने आंदोलन का अभिन्न अंग बना लिया। दादाभाई नौरोजी अपने संपूर्ण सक्रिय राजनीतिक जीवन में, अपने निबंधों में, हाउस आफ कामंस में, कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में तथा सिलेक्ट कमेटी आन ईस्ट इंडियन फाइनेंस ऐंड दि रायल कमीशन आन दि ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ दि एक्सपेंडीचर आफ इंडिया' (विलेबी कमीशन) के सामने साक्ष्य देते हुए, निरंतर जांच-पड़ताल की मांग करते रहे।[166]

राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1900 मे भारतीयो की आर्थिक दशा की पूर्ण तथा निष्पक्ष जांच की माग प्रस्तुत की।[167] 1901 मे इग्लैड स्थित भारतीय अकाल सघ ने भारत के बहुत से विशिष्ट ग्रामों की आर्थिक स्थिति की विस्तृत जाच की योजना बनाई तो काग्रेस नें उस योजना को अपना हार्दिक समर्थन दिया।[168] भारतीय नेताओ ने 1882 की बार-बूर जाच के और 1888 की डफरिन जाच के परिणामो के प्रकाशन का बार-बार आग्रह किया। उन्होने इन प्रकाशनो को रोकने को विश्वासघात बताते हुए अपने खुद के खुले दावो की पूर्ति के प्रति उपेक्षा के लिए सरकारी तंत्र की अच्छी खबर ली।[169]

दरिद्रता के कारण

भारत की बढती दरिद्रता अथवा सपन्नता विषयक वाग्युद्ध दोनो पक्षो द्वारा प्रबल पराक्रम और उत्कट साहसपूर्वक लडा गया। यद्यपि यह मतभेद वर्षो तक भारतीय राजनीति को जीवन प्रदान करता रहा तथापि अधिकाधिक इसे दो तथ्यो की स्थापना मे सफलता मिली, प्रथम, भारतीय जनता के अपेक्षाकृत अधिक निर्धन वर्ग का जीवन स्तर अत्यत ही निम्न है। इतना अधिक निम्न है कि उसे और अधिक नीचे नही धकेला जा सकता। द्वितीय, यदि भौतिक प्रगति अथवा परागति नाम की कोई स्थिति है भी तो उसकी दर इतनी स्वल्प तथा अपने-आप मे उसका क्षेत्र इतना सकुचित है कि उसे वैज्ञानिक दृष्टि से स्थापित ही नही किया जा सकता।[170] दूसरे शब्दो मे भारत की भौतिक स्थिति दरिद्रता के निम्न स्तर पर स्थिरता की ही है।

भारतीय नेताओ की दृष्टि मे भारत की अर्थव्यवस्था की गति की दिशा का प्रश्न इस दृष्टि मे महत्वपूर्ण था कि इससे प्रमुख रूप से तो भारतीय जनता और सरकार का दरिद्रता की समस्या पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता था और दूसरे बाद मे यह निर्णय करने मे कि इसके लिए किसका दायित्व है—सहायता भी ली जा सकती थी।[171] अध्ययन काल की अवधि के अधिकाश वर्षों मे उनका प्रमुख लक्ष्य भारत की विश्वसम्मत घोर दरिद्रता का उन्मूलन था न कि चिडियो द्वारा खेत चुगे जाने के बाद पछताना था।[172] विदेशी शासको तथा भारतीय नेताओ ने देश की चरम दरिद्रता के लिए उत्तर-दायी तत्वो की समीक्षा करने मे तथा उनके सुलझाने मे अधिक ध्यान दिया क्योकि वे इस तथ्य से भलीभाति परिचित थे कि आर्थिक विकास के मार्ग की बाधाओ को भली प्रकार जान लेने पर ही उनके हटाने के उपायो का अनुशासन अथवा प्रयोग किया जा सकता है।[173] समय-समय पर ब्रिटिश भारतीय लेखको और अधिकारियो ने भारत की असाधारण दरिद्रता के सबध मे अनेक विश्लेषण प्रस्तुत किए। भारतीय राष्ट्रवादियो ने उन्हें प्राय निस्सार, अपर्याप्त तथा असतोषप्रद बताते हुए अस्वीकार कर दिया।

ब्रिटिश प्रशासको ने अनेक बार भारत की निर्धनता के लिए भारत की जनसख्या के आकार व वृद्धि को दोष दिया। उनके अनुसार जनसख्या की वृद्धि आजीविका के साधनो को शीघ्रता से पीछे छोडती जा रही है और इस प्रकार निर्धनता को अनिवार्य बनाती जा रही है।[174] लार्ड डफरिन ने 1888 मे सेंट ऐंड्रयूज के भोज मे पूछा जब इस देश में बड़े-बडे जिलो और इलाकों मे जनसख्या बाढ की तरह बढ़ती जा रही है और

उन इलाकों के लोग प्रतिवर्ष भूमि की अवधारणा शक्ति की उपेक्षा करके कई गुना बढ रहे हैं तो प्रस्तुत ऐसे भयंकर खतरे से बचाव के लिए क्या अवकाश रह जाता है ?[175] मजे की बात यह है कि उसके उत्तराधिकारी वायसराय लार्ड लैंसडौन ने 1891 में जनसंख्या की वृद्धि को देश के भौतिक विकास के साक्ष्य के रूप मे उद्धृत किया था।[176] भारतीय नेताओं ने इस धारणा को पूर्ण रूप से ठुकराया। उन्होंने इस तथ्य को मानने से इनकार कर दिया कि भारत की जनसंख्या तेजी मे कई गुना बढ़ रही है अथवा भारत एक बहुसंख्यक देश है अथवा जनसंख्या का आकार तथा वृद्धि भारत की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी है।[177] वास्तव मे उनके अनुसार भारत मे जनसंख्या की दर इतनी कम है कि भारतीयों के सहज आत्मसंयम पर बहुत-कुछ कहा जा सकता है जिस पर माल्थस के सिद्धातवादी अर्थशास्त्री इतना बल देते हैं और इसके लिए हम सही रूप मे ही श्रेय के भागी हैं।[178] किसी भी रूप मे जीवन के दयनीय स्तर का घनी आबादी के साथ कोई संबंध नही। उदाहरणार्थ पश्चिमी यूरोप के बहुत सारे देश भारत की अपेक्षा अधिक घनी आबादीवाले होने पर भी क्या भारत की अपेक्षा अधिक समृद्ध नही हैं ?[179] और न ही धन की वृद्धि के साथ जनसख्या की वृद्धि असगत है। उदाहरणार्थ इग्लेंड को मिलाकर पश्चिमी यूरोप के बहुत सारे देशों की जनसंख्या अपेक्षाकृत बहुत अधिक तेजी मे कई गुना बढ रही है, फिर भी उनकी भौतिक सुविधाएं घटने के बदले बढ रही है।[180] 1890 मे जी०वी० जोशी ने 'भारत की आर्थिक स्थिति'[181] पर अपने एक लेख, जो आज भी समकालीन आर्थिक विश्लेषण का विशिष्ट उदाहरण है, मे भारत की जनसंख्या अतिरेक के वास्तविक स्वरूप की पोल खोली। उसका प्रारंभिक तर्क था कि जनसंख्या मे वृद्धि अपने-आप मे आवश्यक रूप मे अथवा सदैव एक बुराई नही है, जैसाकि माल्थस सिद्धात के अनुयायी अर्थशास्त्री मानते हैं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि जो देश भौतिक समृद्धि के साधनो की पराकाष्ठा पर पहुच गए हैं तथा विज्ञान, कौशल और श्रम द्वारा और अधिक विकास का अवकाश नही है, वहा जनसंख्या में वृद्धि एक बहुत बडी बुराई है तथा उस पर प्रतिबंध लगाना चाहिए परंतु यह तथ्य भारत जैसे अविकसित देशों पर लागू नही होता जहां उत्पादक सपत्ति के भौतिक साधन, मनुष्य के श्रम, कौशल तथा विज्ञान की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ऐसे देशों मे माल्थस सिद्धांत के अनुसार तो जनसख्या की वृद्धि एक अभिशाप न होकर उसके सर्वथा विपरीत अपने-आप मे समृद्धि का एक बहुत बड़ा साधन है। विश्व के दो बड़े औद्योगिक देशों, यूनाइटिड किंगडम तथा फ्रास के आर्थिक इतिहास इस मंतव्य के साक्ष्य हैं। यूनाइटिड किंगडम की जनसंख्या 1806 की 150 लाख के मुकाबले 1882 मे 340.60 लाख हो गई है फिर भी इसी अवधि मे वहां राष्ट्रीय आय 17 करोड़ पौंड से बढ़कर 124 करोड 70 लाख तक पहुंच गई है। फ्रांस मे जहां 1780 की 260 लाख जनसंख्या 1882 में बढ़कर 376 लाख हो गई है, वहां 1600 लाख पौंड से राष्ट्रीय आय बढकर 9650 लाख पौंड हो गई है। स्पष्ट है कि इस उदाहरण मे माल्थस के जनसंख्या में रेखागणित और उत्पादनों में अंकगणित की गति से वृद्धि का नियम गलत सिद्ध हो गया है। वस्तुतः इसका कारण यह है कि इन देशों मे जनसंख्या की वृद्धि का अर्थ है उत्पादक श्रम की वृद्धि और ऐसी वृद्धि जब श्रम तथा

संपत्ति को अधिक प्रभावी बनाने वाली स्थितियों के विकास के साथ जुड़ जाती है तो उसका निश्चित परिणाम होता है उत्पादन में वृद्धि। भारत में भी जनवृद्धि वांछनीय है क्योंकि इस देश के आर्थिक विकास के आधारभूत प्राकृतिक साधन असीम तथा अप्रयुक्त हैं। इस प्रकार निष्कर्ष सर्वथा स्पष्ट है कि भारत में बुराई की जड़ कल्पित अधिक जन-संख्या न होकर साफतौर से कम जनसंख्या है।[182] जी०वी० जोशी ने निम्नलिखित अवतरण में विषय का अधिक स्पष्टीकरण तथा विश्लेषण इस प्रकार से प्रस्तुत किया है :

> जनसंख्या और उत्पादन में सदैव एक प्राकृत अनुपात रहता है जो प्रत्येक समाज के औसत जीवनस्तर का निर्धारण करता है। जब जनसंख्या और उत्पादन दोनों सामान्य तथा बराबर दर से आगे बढ़ते हैं और अनुपात बनाए रखते है तब राष्ट्र के जीवनस्तर में किसी प्रकार की गड़बड़ी नही होती। इसके विपरीत जब जनसंख्या असामान्य गति से बढ़ती है और उत्पादन अपनी सामान्य स्थिति में रहता है तब सही अर्थों में अत्यधिक जनसंख्या का रोग माना जाता है। जब उत्पादन गिर जाए और जनसंख्या सामान्य गति से बढ़ रही हो तो उसे अपर्याप्त उत्पादन का रोग ही कहना चाहिए। पश्चिम की पूंजीपति राजनीतिक अर्थव्यवस्था केवल एक 'अनु-पात' शब्द को ही देखती हुई दो नितांत भिन्न प्रकृति की बुराइयों को परस्पर मिला देती है। इसी रूप में वह भारत के संबंध मे दोनो स्थितियों में 'अत्यधिक जनसंख्या' का प्रयोग करती है। जैसाकि हम पहले देख चुके हैं, यहां जनसंख्या सामान्य गति का अतिक्रमण करके नही बढ़ रही है और यदि देश का कुल उत्पादन आवश्यकता के परिमाण के अनुरूप नहीं बढ़ता जबकि देश में भौतिक साधनों की प्रचुरता है, तो यह स्पष्टत: राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा घोषित अत्यधिक जनसंख्या का रोग न होकर अपर्याप्त उत्पादन का ही रोग है जिसे वे लोग मान्यता नही देते।[192]

इसके अतिरिक्त यदि जनसंख्या बढ़ रही है तो भी उसके परिणामस्वरूप दरिद्रता में वृद्धि होना आवश्यक नहीं, क्योंकि तेजी से उद्योगीकरण करके इसका प्रतिकार किया जा सकता है। इस देश की बढ़ती जनसंख्या के लिए रोटी जुटाने का प्रश्न इस समय निस्संदेह गंभीर है और दुर्निवार है; परंतु हमारी समझ में बढ़ते हुए मजदूरों के लिए पर्याप्त काम जुटाना उससे भी अधिक गंभीर और दुर्निवार प्रश्न है।[184] परोक्ष रूप से उस समय सभी भारतीय नेताओं ने यही सिद्धांत अपनाया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारतीय कृषि पर सचमुच आवश्यकता से अधिक दबाव है परंतु यह दबाव अत्यधिक जनसंख्या का फल न होकर देशी उद्योग के बलपूर्वक विनाश तथा नियोजन के अभाव का परिणाम है और यह भारत में ब्रिटिश सर्वोच्चता की देन है।[185] इस समय अत्यधिक जनसंख्या की बात कहना किसी व्यक्ति के हाथ काटकर उसपर अपने को पालने में अशक्त अथवा काम करने में अयोग्य होने का व्यंग्य करने के समान है।[186] यह कहा गया कि इन परिस्थितियों में अत्यधिक जनसंख्या का सिद्धांत मूल समस्या मे जनता का ध्यान हटाने की एक चेष्टा है और यह दुखते घावों पर नमक छिड़कने के समान भयंकर रूप से पीड़ादायक तथा अपमानजनक है।[187]

भारतीयों की दरिद्रता के संबंध में एक अन्य घिसा-पिटा सरकारी स्पष्टीकरण

यह था कि भारतीय प्रकृति से उदार तथा फिजूलखर्च हैं जिसके फलस्वरूप वे विवाहो तथा अन्य सामाजिक उत्सवो मे अपरिमित खर्च करते है।[188] 1888 की आर्थिक जाच के प्रतिवेदन मे यह कहा गया, मितव्ययिता का अभाव भारतीयो की एक प्रमुख विशेषता है।··· प्रत्येक प्रतिवेदन मे विवाहो तथा अन्य दूसरे समाराहो मे मुक्तहस्त से व्यय करने की प्रचलित प्रथा का उल्लेख है।[189] किसानो के निरतर कचहरियो मे मुकदमेबाजी करते रहने को भी इसी फिजूलखर्ची का रूप बताया गया।[190] कभी-कभी तो यह भी कहा गया कि भारतीय किसान और मजदूर उत्साहशून्य, बेसमझ और निराशापूर्ण कर्मचारी होने के कारण भला कैसे गरीब न हो ?[191] भारतीय नेताओ ने बडी तीव्रता से इस धारणा का खडन किया कि भारतीय अदूरदर्शी अथवा फिजूलखर्च है और फिजूलखर्ची भारतीयो का चरित्रगत मूल दोष है। इसके विपरीत सत्य यह है कि विश्व मे भारतीय किसान स बढ़कर अधिक अल्पाहारी, मितव्ययी तथा सयमी कोई दूसरी जाति ही नही।[192] जहा तक विवाह तथा इसी प्रकार के अन्य समारोहो पर होनेवाले खर्चो का प्रश्न है, वास्तव मे एक तो ऐसे अवसर विरल है और दूसरे उनपर होने वाले खर्चे स्वल्प ही है।[193] इन परिस्थितियो मे ये खर्चे जनता की निर्धनता का कारण नही बन सकते।[194] क्या भारतीय जनता किसी भी स्थिति मे कुछ क्षण मौज-मेला मनाने का अधिकार नही रखती ? 'क्या भारतीयो का सभ्यता मे, जीवन मे, जीवन के लिए आवश्यक शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा सामाजिक आनदो के उपभोग मे प्रगति का कोई अधिकार अथवा प्रयोजन नही ? क्या उन्हे सदा पशु के स्तर का जीवन ही जीना चाहिए ? उन्हे सामाजिक खर्च नही करने चाहिए ? क्या यह सब फिजूलखर्ची, जडता तथा चितनशक्ति का अभाव है ?[195] इस समस्या को एक भिन्न दृष्टि से देखते हुए अपनी स्वाभाविक प्रतिभा से जी० वी० जोशी ने अपना मतव्य इस प्रकार प्रस्तुत किया कि अपने साधनो की सीमा मे न रहना भी अत्यधिक जनसख्या की तरह एक सापेक्ष धारणा है। इसे दो रूपो मे देखा जा सकता है : (1) आय से अधिक व्यय करना अथवा (2) आवश्यकता की अपेक्षा आय कम होना।' यदि हमारी अर्जन शक्ति इतनी निम्न है जितनी कि इस समय है तो निश्चित है कि हमारी आय हमारे आवश्यक व्यय के स्तर पर नही पहुच पाती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि दोष हमारी फिजूलखर्ची और बचत न करने की प्रवृत्ति का नही प्रत्युत देश के उस औद्योगिक जीवन का है, जिसके कारण हमारा अर्जन इतना निम्न है।[196] भारतीय नेताओ ने भी जाच मे पाया कि भारतीय किसान अन्य देशो के किसानो के मुकाबले उत्सवो और समारोहो के प्रति कोई विशेष अधिक रुचि नही रखता।[197] इसी प्रकार भारतीय किसान पर आलसी और कामचोर होने का दोष भी नही लगाया जा सकता। वस्तुत वह विश्व मे सर्वाधिक कठोर श्रम करनेवालो मे एक है।[198] इसके अतिरिक्त भारतीय किसान मे पाए जाने वाले दुर्गुण, अदूरदर्शिता, अज्ञान तथा निरुत्साह, कारण न होकर उसे अवसर तथा प्रेरणा के रूप मे सुधार के लिए जुटाए गए अपर्याप्त आर्थिक प्रबधो के परिणाम है। फ्रास मे 18वी शताब्दी के अत मे सामतवादी व्यवस्था के उन्मूलन पर वहा के किसानो के स्वभाव और रुचियो मे हुए परिवर्तन के अध्ययन से इस तथ्य की सत्यता को आका जा सकता है।[199] इस प्रकार निश्चित है कि किसानो की फिजूलखर्ची एक अलग प्रसग है, वह

भारत की निर्धनता का बहाना न होकर एक सामाजिक रोग है। इस रूप में भारतीय नेताओं ने सामाजिक उत्सवों पर अनुचित तथा अधिक व्यय की भर्त्सना भी की तथा आत्मसंयम का प्रचार भी किया।[200] जहां तक कचहरियों द्वारा किसान के गरीब होने का प्रश्न था, राष्ट्रवादियों की दृष्टि में इसके लिए स्वयं ब्रिटिश राज्य ही दोषी था, क्योंकि कचहरियां उसकी देन थीं, राष्ट्रवादियों ने तत्परता से इन कचहरियों को समझौता समितियों की स्थापना अथवा पुरानी पंचायत व्यवस्था के पुनरुद्धार द्वारा हटाने का समर्थन किया।[201]

भारतीय नेताओं ने इस मत का भी खंडन किया कि भयंकर दर से सूद वसूलने वाले साहूकार ग्रामीण जीवन के विनाश का तथा भारत की दरिद्रता का महत्वपूर्ण कारण थे।[202] उनके दृष्टिकोण का विस्तृत विवरण इसी ग्रंथ के दशम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। उनके विचार में किसानों की दरिद्रता में साहूकार की भूमिका गौण थी। वस्तुतः वह किसानों की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी कारणभूत तत्व ही नही था। वह तो परिस्थितियों का कारण न होकर परिणाम था क्योंकि केवल पहले से ही अभावग्रस्त और असहाय किसान ही उसके पास सहायता के लिए जाते थे।

19वीं शताब्दी के अंत में जब बार-बार पड़ने वाले भयंकर अकालों से भारत विनाश का ऐसा बुरा शिकार बना कि उसने समस्त विश्व की आत्मा को झकझोर कर रख दिया और जैसाकि हम पहले देख चुके हैं, उन्होंने भारत की दरिद्रता की समस्या को देश की राजनीति का प्रमुखतम प्रश्न बना दिया—दरिद्रता के कारणों को अकालों के उद्गमों से मिला दिया गया—तो ब्रिटिश अधिकारियों ने अकाल के वर्षों मे और उसके परवर्ती वर्षों में फैले दुर्भाग्य तथा भौतिक पदार्थों के नाश को देखते हुए अकालो को भारत की दरिद्रता के लिए दोषी ठहराया। परंतु इस धारणा के विरुद्ध भारतीय नेताओं ने देशवासियों की दरिद्रता को ही निरंतर, तीव्र और विनाशकारी अकालों के लिए उत्तरदायी स्वीकार किया। इस प्रकार प्रश्न उठा कि अकालों के क्या कारण थे? लार्ड कर्जन ने उत्तर देने का दायित्व लेते हुए 1900 मे अपनी सामान्य सशक्त शैली में कहा, 'अकालों का वास्तविक कारण समय पर वर्षा का न होना और उसके फलस्वरूप फसल का सूख जाना ही था। उसका तर्क था कि यदि भारत में पड़े बहुत बड़े सूखे के फलस्वरूप अपरिहार्य कृषि उत्पादन की भारी हानि को ध्यान में रखा जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि कोई भी सरकार न तो आकाश पर नियंत्रण रख सकती है और न ही प्रकृति के इतने बड़े पैमाने पर विनाशकारी रूप की तथा उसके परिणामों की पहले से ही कल्पना कर सकती है।[203] 1902 तक तो भारत के वायसराय और गवर्नर जनरल न्यूनाधिक रूप से यह मानने लगे थे कि भारत के अकाल ईश्वर का विधान थे और उन्हें रोकने अथवा हटाने की दिशा में मानव कुछ भी करने मे असमर्थ है :

> किसी सरकार को उस देश में पड़नेवाले अकालों को रोकने के लिए कहना, जिसकी मौसम संबंधी स्थिति ऐसी हो जैसी भारत देश की है और जिसकी जनसंख्या उस परिमाण में बढ़ रही हो जैसी इस समय भारत में बढ़ रही है, सर्वशक्तिमान विधाता के हाथ से विश्व का नियंत्रण छीनकर अपने हाथ में करने को कहना है।···गत वर्ष

शरद ऋतु में केवल ईश्वर की ही कृपादृष्टि थी कि मानसून फिर से आ गया···
फलतः इस शीत ऋतु में संभावित अकाल की स्थिति संपन्नता में बदल गई। विश्व की सर्वोत्तम सरकार एक क्षण में परिवर्तन को द्रुतगामी नही बना सकती और निकृष्टतम सरकार उसे विलंबित नही कर सकती।[204]

अकाल भारत में सदा से रहे है और आनेवाले अपर्रिमित समय तक पड़ते रहेंगे। एक सभ्य सरकार तो अधिक से अधिक उनकी तीव्रता और विस्तार को ही घटा सकती है।[205]

दूसरी ओर राष्ट्रीय मान्यता यह थी कि दुर्भिक्ष प्रकृति के प्रकोप के फल न होकर मानव की असफलताओ के परिणाम है अतः वे रोके जा सकते है।[206] यह ठीक है कि अकालों का तात्कालिक कारण वर्षा का अभाव है।[207] परंतु स्थिति के इस विश्लेषण पर रुक जाना उचित नही। अपर्याप्त वर्षा अकालो का समुचित विश्लेषण नही क्योंकि सिंचाई जैसे वैज्ञानिक प्रयत्नो द्वारा प्रकृति को मानव के नियंत्रण मे लाया जा सकता है।[208] इससे भी अधिक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय विषय यह है कि अति द्रुतगामी यातायात साधनों के होने पर भी किसी एक विशेष कोने मे केवल एक ही फसल के बिगड़ जाने पर अकाल की स्थिति क्यों उत्पन्न हो जाती है?[209] आखिर सारे देश मे एक साथ ही फसलें शायद ही कभी खराब होती हों? और ऐसा वर्ष कभी नही रहा जब देश का कुल खाद्य उत्पादन यहां की कुल जनसख्या की पूर्ति के लिए अपर्याप्त पड़ा हो।[210] विचारणीय यह भी है कि यूरोप के बहुत सारे देश भी तो अकाल का शिकार बनते है परंतु फिर भी प्रायः वे इस भयंकर दानव के उत्पात से बच जाते है।[211] इंग्लैंड तब भी भुखमरी का शिकार नही हुआ जब सामान्य वर्षो मे ही उसका उत्पादन उसकी खाद्य आवश्यकताओं के मुकाबले कठिनता से 50 प्रतिशत था।[212] भारत मे सामान्य नियम के अनुसार या तो खाद्यान्नों का विदेशों से आयात किया जा सकता था अथवा देश मे ही अतिरिक्त अनाज वाले क्षेत्रों से अभावग्रस्त क्षेत्रों को अनाज भेजा जा सकता था।[213] इन दोनो संभावनाओ को न अपनाना यही सिद्ध करता है कि अकाल फसल के बिगडने का फल नही, बल्कि खाद्य पदार्थो के उपलब्ध संभरण को खरीदने के साधनो के अभाव के ही परिणाम है।[214] यदि भारतीय वर्षा के अभाव के एक ही धक्के को सहन करने का दम नहीं रखते तो यह तथ्य उनकी नितात दरिद्रता को ही सिद्ध करता है।[215] अतएव दुर्भिक्षो का मूल तथा स्पष्ट कारण देश को जकडने वाली दरिद्रता है।[216] दुर्भिक्षों की तीव्रता तथा विस्तार से देशवासियों की अवरोध शक्ति घट रही है, सहनशक्ति का पूर्ण अभाव हो गया है, इसका ही परिणाम फसलों के बिगड़ने का अर्थ समग्र रूप से भुखमरी हो गया है।[217] फसलो का उजड़ना गरीबी का कारण नही बनता बल्कि गरीबी ही तंगी को अकाल का रूप दे देती है।[218] एक दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर यही कहा जा सकता है कि फसलों की असफलता ने भारतीय दरिद्रता पर केवल तीव्र प्रकाश ही डाला है।[219]

भारतीय नेताओं ने सिद्ध किया कि प्रकृति को भारत की दरिद्रता के लिए किसी भी रूप में उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता। देश को प्रकृति ने तो बहुत उपहार दिए हैं। इसके पास भौतिक साधनों का इतना बड़ा अक्षय भंडार है कि जिसे अतुल भले ही न कहा जाए परंतु वह अद्वितीय अवश्य है। भारत को भौतिक प्रगति के लिए अत्यंत

अनुकुल परिस्थितियो के रूप मे प्रकृति से सौभाग्य का वरदान मिला हुआ है।[220] इस विश्लेषण ने समस्या को और अधिक कटु बना दिया और प्रश्न उठा कि जब देश सपन्न है तो देशवासी क्यो विपन्न हैं ?[221]

राष्ट्रवादियो ने अगरेजो के भारत की दरिद्रता विषयक विश्लेषण को निस्सार तथा पक्षपातपूर्ण बताते हुए उसे अमान्य कर दिया। वे भारत की दरिद्रता के सही कारणो को जाचने के लिए प्रवृत्त हुए और अपनी खोज के फलस्वरूप इस निष्कर्ष पर पहुचे कि भारत की दरिद्रता पारपरिक और अपरिहार्य नही। यह मानव निर्मित है अत इसका विश्लेषण तथा निवारण किया जा सकता हैं।[222] भारत कुछ एक आर्थिक तत्वो के फल-स्वरूप निर्धन है। उन तत्वो की खोज, समीक्षा तथा उनपर नियत्रण किया जा सकता है।"[223] इस प्रकार समस्या के प्रति शासक और शासित के दृष्टिकोण मे एक मौलिक अतर था जिसका अभी ऊपर निर्देश किया गया है। ब्रिटिश भारतीय प्रशासको ने भारत की दरिद्रता के दो सभव कारण प्रस्तुत किए। प्रथम, या तो यह प्रकृति के क्रूर कृत्यो का परिणाम है अत यह असाध्य रोग है। कम से कम इस थोडे से समय मे तो इसका प्रतिकार नही किया जा सकता अथवा यह भारतीयो की अपनी सामाजिक अथवा आर्थिक त्रुटियो का फल है जिसका प्रतिकार यदि किया जा सकता है तो स्वय भारतीयो द्वारा अपने आप ही किया जा सकता है।[224] इन दोनो अवस्थाओ मे निर्धनता के अस्तित्व तथा निराकरण के लिए शासको का कोई विशेष दायित्व नही।"[225] दूसरी ओर भारतीय नेताओ ने भारत की दरिद्रता के जन्म के तत्वो और शक्तियो को रेखाकित किया। उनके अनुसार जिन तत्वो ने भारत की निर्धनता मे वृद्धि की वे ब्रिटिश राज्य के वे जाने-अन-जाने तत्व और शक्तिया थी जिन्हे पूरी ढील दी गई और जिनका प्रमुख रूप से प्रशासनिक नीतियो मे परिवर्तन द्वारा प्रतिकार किया जा सकता था।[226] इस प्रकार इतिहास के एक विचित्र व्यग्य के रूप मे यह तथ्य सामने आया कि वैज्ञानिक दृष्टि से उन्नत पश्चिम प्रकृति के तथा वर्तमान सामाजिक शक्तियो के अपरिहार्य प्रभाव की भाग्यवादी धारणा की पुष्टि करता है और पिछडा हुआ पूर्व मनुष्य की प्रकृति और समाज को नियत्रित तथा शासित करने की क्षमता को स्वीकार करता है।

भारतीय जनता की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी कारणो और तदनुसार उसके निवारण के उपायो की खोज की धुन मे ही भारतीय नेताओ ने कुछ एक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न तैयार किए ताकि उनपर अपनी जाच-पड़ताल, वाद-विवाद तथा आदोलन केंद्रित कर सकें। अतत उन्होने अपनी आर्थिक नीतिया और दृष्टिकोण निर्धारित किए तथा भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक तत्र तथा उसकी प्रकृति को समझने की चेष्टा की। निर्धनता को हटाने के सघर्ष के समय तथा आर्थिक नीतियो को कार्यरूप मे परिणत करने के समय उनकी राजनीति चेतना एक रूप ग्रहण करती गई। इस विकास की प्रक्रिया का अध्ययन हम अगले अध्यायों मे करेंगे। यहां इतना स्मरण रखना आवश्यक है कि निर्धनता की समस्या ने भारतीय नेताओ की सभी परवर्ती खोजो, मतभेदो तथा प्रचार आदि के लिए निरतर संजीवनी का काम किया।

संदर्भ

1. दादाभाई नौरोजी के 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज (मद्रास, तिथिरहित) (निर्देश के लिए इसे आगे 'स्पीचेज' से संकेतित किया जाएगा।) पृ० 669-670.
2 जिन लाभो की बहुधा घोषणा की जाती थी वे इस प्रकार थे
शांति, कानून और व्यवस्था, पश्चिमी शिक्षा, केंद्रीकृत प्रशासन, देश का राजनीतिक एकीकरण और इन सबके फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का विकास, रेल, तार, अस्पताल आदि।
देखिए—सी० एल० पारीख द्वारा संपादित—नौरोजी के 'एसेज, स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज' (बंबई 1887) (निर्देश के लिए इसे आगे 'एसेज' से संकेतित किया जाएगा) पृ० 26-7, 37, 131-2 'स्पीचेज'—पृ० 235-6 इंडियन नेशनल कांग्रेस, भाग 1, कांग्रेस प्रेसिडेंटो (अध्यक्षो) के एड्रेसेज (भाषण) मद्रास, तिथि-रहित, (निर्देश के लिए इसे आगे 'सी० पी० ए०' से संकेतित किया जाएगा।) पृ० 6-10 अंग्रेजी शासन के अन्य लाभो की समीक्षा के लिए उदाहरण के रूप मे देखिए, 'सी पी ए' मे अनेक कांग्रेस अध्यक्ष पृ० 4, 81, 115, 307-11, 346, 375-6, 738 जी० वी० जोशी के 'राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज' (पूना 1912), पृ० 616, आर० एन० मुधोलकर की रचना 'दि इकोनामिक कंडीशन आफ दि पीपुल आफ इंडिया, इंडियन पालिटिक्स' (मद्रास, 1898), पृ० 3-8, ऐल्फ्रेड नंडी 'दि पावर्टी आफ इंडिया', वही, पृ० 106, सी० वी० चिंतामणि कृत 'इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन', हिंदुस्तान रिव्यू' तथा 'कायस्थ समाचार' (निर्देश के लिए इसे आगे 'एच० आर०' से संकेतित किया जाएगा)—जून 1901, पृ० 451 आर० सी० दत्त द्वारा लिखित, 'इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया अर्ली ब्रिटिश रूल' (1901 मे प्रथम प्रकाशित संस्करण का लदन मे 1956 मे मुद्रित रूप) (निर्देश के लिए इसे आगे 'इ० एच०' से संकेतित किया जाएगा), पी० वी० एस० एन० बैनर्जी के 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज' (मद्रास, तिथिरहित) (संदर्भ के लिए इसे आगे 'ऐस० डब्ल्यू०' से संकेतित किया जाएगा) पृ० 219-20, 258-9, 303-5, 331 इसके अतिरिक्त देखिए, 'दि अमृतबाजार पत्रिका' (निर्देश के लिए इसे आगे 'ए० बी० पी०' से संकेतित किया जाएगा)—दिसंबर 1878, 24 नवंबर 1897.
3 नौरोजी 'एसेज', पृ० 28
4 वही, पृ० 134-5 भोलानाथ चंद्र मुकर्जी के मैगजीन (कलकत्ता) मे 1875-6 मे बिना नाम के प्रकाशित) अपने अपेक्षाकृत अप्रसिद्ध परंतु अत्यंत बुद्धिमत्तापूर्ण लेख, ए वाइस फार दि कामर्स ऐंड मैनूफैक्चरर्स आफ इंडिया'—(निर्देश के लिए इसे आगे 'एम० एस०' से संकेतित किया जाएगा) मे लिखते हैं 'देश के लिए वास्तविक अर्थनीति को सुझाने मे अक्षम भारतीयो ने अपने चारो ओर की थोथी चकाचौंध से चौंधिया कर अपने शासको पर विश्वास करते हुए उनके दृष्टिकोण को बिना किसी आलोचन-प्रत्यालोचन के स्वीकार कर लिया। भारतीयो ने वेदो के समान अंगरेजी अधिकारियो की व्यापार नीति पर अंधविश्वास ही किया; परंतु दिन-प्रतिदिन ज्ञान का प्रकाश उनके दिमाग की धुंध को साफ कर रहा है। · भारतीय जितना अधिक गहराई से विचार करते गए उतना ही यह तथ्य अपने नग्न रूप मे उनके सामने स्पष्ट होता गया कि अंगरेजी व्यापार नीति उन्नति के मार्ग को निरंतर संकीर्ण बनाती हुई उन्हें घोर दरिद्रता की ओर ले जा रही है'

—खंड II 1873, पृ० 83-4

बाल गंगाधर तिलक ने 1893 में राष्ट्रीय दृष्टिकोण के इस परिवर्तन को अत्यंत ही सजीव

रूप में इन शब्दो मे प्रकट किया 'सर्वप्रथम भारतीय अगरेजो के अनुशासन से अत्यंत चमत्कृत हुए। रेल, तार, सडको, पुलो तथा स्कूलो आदि ने उन्हे विस्मित-विमोहित कर दिया। उपद्रव समाप्त हो गए तथा लोग शाति और स्थिरता का आनद भोगने लगे। लोग यह कहने लगे कि एक अधा व्यक्ति भी खुले रूप मे सोना लेकर बनारस से रामेश्वर तक की यात्रा कर सकता है, परतु जिस प्रकार मदिरा का नशा दीर्घ काल तक नही बना रहता, उसी प्रकार भ्राति के कारण उत्पन्न यह मतिभ्रम भी काफी समय तक न बना रहा लोग यह अनुभव करने लगे कि एक अधा व्यक्ति भी खुला सोना लेकर यात्रा अवश्य कर सकता है परतु दिन-प्रतिदिन सोना दुर्लभ होता जा रहा है'

—जी० पी० प्रधान तथा ए० के० भागवत के 'लोकमान्य तिलक' (बबई, 1958) पृ० 72 से उद्धृत

और देखिए, 'बगाली', 10 मई 1884, 'इडियन स्पेक्टेटर', 18 मई 1884, 'मराठा' 21 दिसबर 1884,6 जून 1886, के 'मराठा' मे प्रकाशित ए० एल० राय का लेख, जी० सुब्रह्मण्य अय्यर की रचना 'सम इकोनामिक आस्पेक्टस आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' (मद्रास, 1903) (निर्देश के लिए इसे आगे 'इ० ए०' से सकेतित किया जाएगा), पृ० 337 एल० एम० घोष की कृति 'सी० पी० ए०' पृ० 762

5 1901 (लदन) मे प्रकाशन के समय से ही भारतीय राष्ट्रवादियो के लिए सचमुच पाठ्यपुस्तक बनने योग्य कृति 'प्रास्परस ब्रिटिश इडिया' मे पृ० 127 8, 131 मे विलयम डिगबी महोदय ने 1876-1900 तक 18 अकालो की क्रमश गणना की है जिनम चार तो अभूतपूर्व रूप से भयकर अकाल थे

6 ' परतु इससे भी गभीर प्रश्न यह उठा कि भारत मे इतने दुर्भिक्ष क्यो पडते है ? भूख से मृत्यु-दर इतनी भयकर क्या है ? विश्व के किसी अन्य सभ्य देश मे उन्होने एस दुर्भिक्ष कभी नही सुने थे'

आर० सी० दत्त 'स्पीचेज एड पेपर्स आन इडियन क्वश्चन्स 1897-1900 (कलकत्ता, 1908) (निर्देश के लिए इसे आग 'स्पीचेज सकेतित किया जाएगा), पृ० 36

इडियन नेशनल काग्रेस (सदर्भ के लिए इसे आगे 'आइ० एन० सी० से सकेतित किया जाएगा) क 1900 वर्ष का प्रस्ताव 11 भी देखिये

7 उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी, 'एसेज पृ० 135, तथा 'जब आप हमारी वास्तविक इच्छाओ को जान लेगे, तब न्याय करेगे इसमे मुझे लेशमात्र भी सदेह नही। वही, और भी देखिए सी० पी० ए०', पृ० 13, 22 3, 91-2, 129, 149 188, 324, 380, 397, 405, 475, 490, 532

8 उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी 'एसेज', पृ० 128

9 जी० के० गोखले 'स्पीचेज (मद्रास 1916), पृ० 52

10 उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी पावर्टी एड अन-ब्रिटिश रूल इन इडिया (लदन 1901) (निर्देश के लिए इसे 'पावर्टी' से सकेतित किया जाएगा) पृ० 147 तथा आई० एन० सी० का 1900 का द्वितीय प्रस्ताव

11 उदाहरण के लिए देखिए, रानाडे एसेज आन इडियन इकानामिक्स' (बबई, 1892) (निर्देश के लिए इसे 'एसेज' से सकेतित किया जाएगा), पृ० 191-2 तथा जी० वी० जोशी की पूर्वोक्त रचना, पृ० 754

12. नौराजी : 'एसेज', पृ० 97-111.
13. वही, पृ० 97.
14. खड 2-5, पृ० 1873-6.
15 नौरोजी . 'पावर्टी' पृ० 1-142 इसके अतर्गत 1876 मे लदन की ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बबई शाखा के सामने पढ़े गए लेख हैं तथा साथ ही लेखक की निम्नलिखित टिप्पणी सलग्न है : ये टिप्पणिया अपने मूल प्रारूप मे 'सिलेक्ट कमेटी आन इडियन फाइनेंस' के सामने रखी गई थी। इनपर विचार भी हुआ था परतु इन्हे प्रतिवेदन के साथ प्रकाशित नही किया गया था। मेरे विचार मे इसका कारण कदाचित यह है कि ये टिप्पणिया न तो अध्यक्ष (श्री आयर्टन) के मतव्य के अनुकूल थी और न ही तत्कालीन अवर भारत सचिव, सर ग्राट डफ को मान्य थी
16 जी० वी० जोशी 19वी शताब्दी के एक अत्यत महत्वपूर्ण अर्थशास्त्री थे। दुर्भाग्य से उनके सरकारी कर्मचारी (पहले वह सरकारी स्कूल के अध्यापक थे और फिर मुख्याध्यापक बने) होने से वह न तो प्रकाश मे आ सके और न ही अपने समकालीन अपेक्षाकृत कम महत्व के व्यक्तियो के समान प्रसिद्धि ही प्राप्त कर सके। बीसवी शताब्दी के पचीस वर्षों के भारतीय व्यावसायिक अर्थशास्त्रियो मे वरिष्ठ वी० जी० काले ने अपनी पुस्तक 'गोखले ऐंड इकोनामिक रिफार्म्स' मे उल्लेख किया है, 'जोशी के प्रशासनिक तथा आर्थिक समस्याओं के ज्ञान का अतिक्रमण लगभग अन्य कोई भारतीय नही कर सकता था।' (पृ०54) जे०के० गोखले ने जोशी को अपने दो गुरुओं (निर्माताओ) मे से एक माना है। (जोशी के साथ) दूसरा नाम जस्टिस रानाड का है। गोखले ने अपने भाषणो आदि को तैयार करने मे प्राप्त सहायता के लिए जोशी के ऋण को बडे सुदर शब्दो मे ज्ञापित किया है। देखिए, 'गोखलेज लैटर्स टु जोशी', दिनाक 16 अप्रैल 1897, 14 मई 1897 तथा 10 अप्रैल 1900 अतिम पत्र मे अपने बजट भाषण की जन प्रशसा का उल्लेख करते हुए गोखले ने लिखा था · 'वस्तुत यह आपका ही भाषण था, न कि मेरा। मैं प्राय यह अनुभव करता हू कि इसका श्रेय स्वय लेकर जनता के साथ मैं सचमुच छल ही कर रहा हू।'
17 दत्त ई० एच० I, क्रमश पृ० V तथा XIII
18 भोलानाथ चद्र पूर्वोक्त स्थल खड II, 2873, पृ० 84
19 नौरोजी 'ब्रिटिश राज्य के लाभ और भारत की दरिद्रता' पर 1888 मे दिया गया भाषण. 'सी० एल० पारीख द्वारा सपादित' 'इन एमिनेट इंडियस आन इडियन पालिटिक्स' (बबई, 1892) (निर्देश के लिए इसे आगे 'एमिनेंट इडियस' से सकेतित किया जाएगा) पृ० 161. 1876 से पूर्व उन्होने इसे 'महत्वपूर्ण प्रश्न' अथवा इससे भी अधिक 'आज का अतिगभीर प्रश्न' बताया था (पावर्टी, पृ० 1).
20. हिंदू, 27 मई 1891
21. नौरोजी . सी०पी०ए०, पृ० 157 उन्होने जोर देकर कहा था . 'यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर हमे अपनी सर्वोच्च शक्ति लगानी होगी।'
22. जी० एस० अय्यर, ई०ए०, पृ० 9
23 बगाली, 14 मार्च, 1902.
24. दत्त स्पीचेज ऐंड पेपर्स आन इडियन क्वेश्चस 1901 ऐंड 1902 (कलकत्ता, 1904) (निर्देश के लिए इसे आगे स्पीचेज II से सकेतित किया जाएगा), पृ० 86.

25 न्यू इंडिया (कलकत्ता), 12 अगस्त 1901 सपादकीय मे आगे कहा गया है . 'और यह सत्य का उद्घाटन करता है कि सभी उग्रवादी राष्ट्रीय नेता प्रमुख रूप से भावात्मक राष्ट्रीयतावाद में रुचि नही लेते थे, ' और 'यद्यपि वे नवीन भारत को प्रभावित करने वाले किसी भी--राजनीतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक—प्रश्न, की उपेक्षा कदापि नही करना चाहते थे, तथापि वे आज की आर्थिक और शैक्षणिक समस्याओ के लिए निरतर आदोलन को ही अपना विशिष्ट विषय बनाना चाहते थे

26 रानाडे, एसेज, पृ० 5.

27 इसी पत्र ने 7 नवबर 1894 के अक मे इस दृष्टिकोण के एक अन्य मौलिक पक्ष की ओर इस प्रकार सकेत किया 'शरीर और आत्मा को एक साथ रख पाने के साधनो से हीन राष्ट्र कभी सतुष्ट नही हो सकता ··कभी स्वामिभक्त नही हो सकता '

28. 1886 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सभापति पद से अपने भाषण मे दादाभाई नौरोजी ने घोषणा की यदि अनत भारत दुर्भाग्य के गढे मे गहरे से गहरे धसता ही गया तो अगरेजी राज्य से प्राप्त लाभ तथा अगरेजी शासको की सुदर कल्पनाए सर्वथा निरर्थक ही हो जाएगी

—सी०पी०ए०, पृ० 22

सुरद्रनाथ बनर्जी द्वारा सपादित 'दि बगाली' ने 9 मार्च, 1902 मे लिखा इस बात को कौन अस्वीकार करेगा कि अशक्त और भूखे लोगो के लिए कानून और व्यवस्था देने वाली एक अच्छी और वैज्ञानिक सरकार की अपेक्षा प्रतिदिन की रोटी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है. निस्सदेह कानून और व्यवस्था बहुत अच्छी चीजें हैं परतु रोटी उनसे भी अधिक अच्छी है

साथ ही देखिए, एस०एन० बनर्जी स्पीचेज (1880-84 खड II), (कलकत्ता 1885), पृ० 3,5, सी०पी०ए०, पृ०697, बगाली, 28 जनवरी, 1882, मराठा 30 दिसबर 1894; पी० मेहता : 'स्पीचेज ऐड राइटिंग्ज' (इलाहाबाद, 1905) (निर्देश के लिए इसे आगे 'स्पीचेज' से सकेतित किया जाएगा) पृ० 451, नौरोजी 'स्पीचेज' पृ० 389; भारतजीवन 11 दिसबर, 'इन दी रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस इन नार्थ-वेस्ट प्राविंसेज एड अवध' (निर्देश के लिए इसे आगे 'आर०एन० पी०एन०' से सकेतित किया जाएगा) 19 दिसबर 1899, एडवोकेट, 27 नवबर (वही, 29 नवबर, 1901)

29. काग्रेस के 1902 के सत्र मे तीसरे प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए जी० एम० अय्यर का तर्क था : काग्रेस अपनी सारी शक्ति और सारा ध्यान, जहा तक सभव हो, विशिष्ट तथा अतिमहत्वपूर्ण प्रश्नो पर ही केंद्रित करे जनता की दरिद्रता का प्रश्न सर्वोच्च और ध्यानाकर्षक प्रश्न है. वस्तुत. इस एक प्रश्न का सतोषप्रद तथा सही समाधान ही अन्य सभी दिशाओ में देश के सुधार का एकमात्र आधार है।' रिपोर्ट आफ इंडियन नेशनल काग्रेस—1902 (निर्देश के लिए इसे आगे 'रिप०आई०एन०सी०' से सकेतित किया जाएगा) पृ० 72 साथ ही देखिए एन०के०एन० अय्यर 'रिप०आई०एन०सी०'—1901, पृ० 142

30. हसार्ड (चतुर्थ वर्ग), खड 27. लगभग 1135.

31 15 अगस्त, 1947 तक क्रोध और भर्त्सना जारी रही, भारतीय इतिहास के ब्रिटिश काल के इतिहासकारो मे आज भी इस सबध में मतभेद है

32. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 1

33. वही, पृ० 31.

34. नौरोजी; इन एमिनेंट इंडियंस, पृ० 161.

35. उनके द्वारा इंग्लैंड में अपने प्रिय विषय पर सैकड़ों भाषाओं में से अधिकांश उनकी उपर्युक्त तीन प्रकाशित कृतियों : 'एसेज, स्पीचेज 'ऐंड पावर्टी' में भी दिए गए हैं। · बहुत सारे अन्य भाषण पूर्ण अथवा संक्षिप्त रूप में भारत मे खोज का विषय हैं। आई०एन०सी० की ब्रिटिश कमेटी का 1890 से लंदन से प्रकाशित जनरल.
36. नौरोजी : पावर्टी, पृ०161.
37. वही, पृ० 88.
38. नौरोजी : स्पीचेज, परिशिष्ट-ए, पृ० 6.
39. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 652.
40. प्रस्ताव II. 1886 के कांग्रेस के प्रतिवेदन की भूमिका में कहा गया है कि जनता में व्याप्त घोर दरिद्रता के प्रति किसी एक प्रतिनिधि ने भी किसी रूप में संदेह अथवा प्रश्न प्रस्तुत नही किया। ब्रिटिश राज्य के प्रत्येक एकल प्रांत तथा उपप्रात के सभी प्रतिनिधियो मे एक के उपरात दूसरे ने अपने प्रात के निम्न वर्ग में व्याप्त दुर्भाग्य के भुक्तभोगी होने का वर्णन किया। (पृ०18).
41. प्रस्ताव III.
42. देखिए 1892 का प्रस्ताव X, 1893 का VII, 1894 का III, 1895 का XXII, 1896 का XII तथा XIII, और इसी प्रकार से अन्य.
43. उदाहरणार्थ · बारहवें कांग्रेसी सभापति आर०एम० सायानी ने दुख प्रकट करते हुए कहा, 'भारत ... इतना दरिद्र राष्ट्र है कि भारतीय दो समय का भोजन भी नही जुटा पाते। सचमुच इनमें से कुछ भारतीय तो वास्तव मे ही भुखमरी के शिकार हैं और बहुत सारे कठिनता से केवल एक समय का भोजन जुटा पाते हैं।' (सी०पी०ए०, पृ०351) 1897 के सभापति सी. शंकरन नैयर ने शोकविह्वल होकर कहा, 'भारत की दरिद्रता प्रत्येक दिशा मे, प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक रूप मे आपन-आपको हमारे सामने स्वत. प्रकट कर रही है, (वही, पृ० 604) सी०पी०ए०, पृ०506 मे एन०पी० चदावरकर ने, सी०पी०ए०, पृ० 761 मे एल०एम० घोष ने तथा अन्य वक्ताओ ने कांग्रेस मच मे वर्षो तक भारतीय जनता की निर्धनता का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया.
44. प्रमाणस्वरूप, बगाली किसान को उद्धृत करते हुए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने उसके दुर्भाग्य की अत्यत दयनीय स्थिति की, उसके भूखे मरते बच्चो की, सूखकर काटा बने उसके पशुओं की तथा सूखे-बंजर पड़े उसके खेतों की दुखभरी कहानी का वर्णन करके बताया कि बस्तुतः उसकी दरिद्रता की गहराई का अथवा उसके दुर्भाग्य की अनतता का वर्णन करने में भाषा असमर्थ है. एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज 1886-1890, खंड III (कलकत्ता, 1890), पृ० 13. 1890 मे उन्होंने अंगरेजों का ध्यान करोड़ों भारतीयों को अपमानित करने वाली, दुर्भाग्यपूर्ण और कुत्सित दरिद्रता की ओर खीचा। (वही, पृ० 195) जस्टिस रानाडे ने 1890 में लिखा : 'इस प्रकार की दरिद्रता के अस्तित्व के प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नही।' 'इस देश की दरिद्रता तो विलक्षण है।' ····हमें केवल अपने रास्ते पर चलना है और अपनी आर्थिक अवस्था के अत्यंत थोथे पक्षों का अध्ययन करना है। यह सत्य हमारे सामने उजागर है कि हमारे साधन सीमित हैं।' एसेज, पृ०182. उसी वर्ष जी०वी० जोशी ने लिखा : 'बढ़ती हुई असामान्य दरिद्रता समाज के निम्न स्तर के लाखों-करोड़ों को पहले से ही चूसने और अपमानित करनेवाली दरिद्रता'····'सारे देश मे पहले से ही व्याप्त दुखों और दुर्भाग्य में और अधिक वृद्धि करने वाली दरिद्रता' पूर्वोद्धृत, पृ० 818. आर० एन० मधोलकर ने 1891 में कांग्रेस अधिवेशन मे 'भारत की दरिद्रता' प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा था, 'आज का भारत अत्यंत विषादपूर्ण तथा सर्वथा अप्राकृतिक चित्र प्रस्तुत करता है।'

रिप०आई०एन०सी० 1891, पृ०19. आर०सी० दत्त ने 1901 में लिखा था : 'आज के भारतीयों की दरिद्रता की तुलना किसी भी सभ्य देश के नागरिकों से नहीं की जा सकती।' ई०एच० 1 पृ० 6. साथ ही देखिए, उनका 'इंग्लैंड और इंडिया' (लंदन, 1897) पृ०125-6. तथा 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया इन दी विक्टोरियन एज' (लंदन, छठा संस्करण, प्रथम 1903 में प्रकाशित) (निर्देश के लिए इसे आगे ई० एच० II से संकेतित किया जाएगा), पृ०5. भारत में कृषि-श्रमिकों की दरिद्रता के विस्तृत विवरण के लिए देखिए : ई०एच०II, पृ०606. 1902 में सी०वाई० चिंतामणि ने लिखा; 'दुर्भिक्ष और महामारी भारत की सामान्य प्रवृत्तियां बन गई हैं और मेरे देश के लाखों निरपराध और शांतिप्रिय नागरिक भुखमरी तथा उसके प्रभाव से मृत्यु का ग्रास बन रहे हैं'। एच०आर०, जुलाई 1901 पृ०447, और देखिए 'मालवीय की 'स्पीचेज' मद्रास, तिथि-रहित).

45. रिव्यू आफ 'इंडियन साल्ट टैक्स' (भारत नमक कर की समीक्षा) जरनल आफ पूना 'सार्वजनिक सभा' (निर्देश के लिए आगे 'जे०पी०एस०एस०' से संकेतित किया जाएगा) जुलाई 1881, (खंड IV, सं०1) पृ० 60.

46. ऐसे हवाले इतने अधिक हैं कि उन्हें यहां देना कठिन है,' 'अमृत बाजार पत्रिका', 'दि बंगाली', 'दि हिंदू', 'मराठा' और विभिन्न प्रान्तों के देसी प्रेस पर प्रतिवेदन तथा समीक्षाधीन अवधि के विभिन्न समाचारपत्र भारत की निर्धनता की टिप्पणियों से भरे पड़े हैं।

47. उदाहरणार्थ देखिए, 'दि अमृतबाजार पत्रिका' 13 अप्रैल, 'इन दि रिपोर्ट आफ नेटिव प्रेस फार बंगाल' (निर्देश के लिए इसे आगे आर०एन०पी० बंग से संकेतित किया जाएगा) 24 अप्रैल, 1880, मित्रविलास—8अक्टूबर, 'इन दि रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार दि पंजाब, नार्थ वैस्ट प्राविसेज ऐंड अवध' (निर्देश के लिए इसे आगे 'आर०एन०पी०पी०एन०' से संकेतित किया जाएगा), 7 अक्तूबर, 1880. 'संजीवनी'—14 जून, 'आर०पी०एन०बंग०'—21 जून 1884, निबंधमाला, मई, 'इन दि रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस फार बंबई (निर्देश के लिए इसे आगे 'आर०एन०पी०बब' से सकेतित किया जाएगा) 23 नवंबर 1880. 'नैरग'— 2 मार्च, 'आर० एन०पी०एन०'—10 मार्च, 1891. 'प्रपच, मित्रन—10 नवंबर, 'इन दि रिपोर्ट आन नेटिव प्रेस फार मद्रास' (निर्देश के लिए इसे आगे 'आर०एन०पी०एम०' से संकेतित किया जाएगा) 30 नवबर, 1899 निबंधमाला'—जून, 'आर० पी० एन० बंम'—31 दिसबर 1881, 'बर्दवान सजीवनी', 30 दिसबर, 'आर० पी० एन० बग' 10 जनवरी, 1881. 'हिंदी प्रदीप', नवबर', आर० एन० पी० पी० एन०'…11 नवबर 1880, 'हरिशचंद्रिका' सं०8 (वही० 25 नवंबर 1880; 'बगाली', 23 जनवरी, 1891 तथा 'हिंदू' 25 अप्रैल, 1884

48. नवबर 1895, 'आर०एन०पी०बग', 9 नव० 1893

49. रामगोपाल द्वारा लिखित 'लोकमान्य तिलक : ए बायोग्राफी' में उद्धृत (बबई, 1956), पृ० 186-8. बाद में सरकार ने तिलक को विद्रोह के अभियोग में दंडित करने के लिए इन पत्रों का उपयोग किया था।

50. 'रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार दि पजाब' (निर्देश के लिए आगे आर०एन०पी०पी० से संकेतित किया जाएगा) 4 फरवरी, 1893.

51. गोखले : स्पीचेज, पृ०16. 1873 के प्रारंभ में ही भोलानाथ चंद्र घोषित कर चुके थे : 'बहु-संख्यक जनसमुदाय को खुशहाल बनाए बिना देश की भौतिक संपन्नता की बात एक भ्रम, कल्पना तथा बकवास के अतिरिक्त और कुछ नहीं।' पूर्वोद्धृत, पृ० 66 1881 में तिलक ने यह विचार

व्यक्त किया था : जब तक देश के बहुसंख्यक मेहनतकशों की स्थिति में सुधार नही होता तब तक आर्थिक दृष्टि से देश के सुधार की बात ही नहीं की जा सकती. डी०वी० ताम्हणकर के 'लोकमान्य तिलक' से उद्धृत (लंदन, 1956), पृ० 319.

52. गोखले : स्पीचेज, पृ० 934 (तथा जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 753); क्रमश: नंडी : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ०106. गोखले : रिप०आइ०एन०सी; 1895, पृ० 105. जी०सी० अय्यर : इ०ए०, पृ०6; जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 818 देखिए। यू०पी० कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता ए० नंदी ने 1898 में 'इंडियन पालिटिक्स' में प्रकाशित अपने एक निबंध 'पावर्टी आफ इंडिया' में स्पष्ट विज्ञापित किया कि वस्तुत: आज कृषक ही भारत हैं अर्थात भारत व्यवहारिक रूप से कृषकों का ही देश है और यदि कृषको की स्थिति दयनीय है तो अवशिष्ट अन्य भौतिक प्रगति का कोई मूल्य ही नही' उन्होने ऐडम स्मिथ को उद्धृत किया : 'जिस समाज का अपेक्षाकृत विशाल समुदाय निर्धन और दुर्भाग्यग्रस्त है, वह कभी समृद्ध और विकसित नही कहा जा सकता।' (पृ० 106). उन्होंने आगे कहा : 'यह देखकर कैसे संतोष किया जा सकता है कि ऋण देने वाले साहूकार निर्धनों के दुर्भाग्य से लाभ उठा रहे हैं अथवा निर्यात व्यापारी देश के जीवन रक्त को ही चूसकर उससे ऊंचा मुनाफा कमा रहे हैं ? (पृ०105). उन्होंने स्वीकार किया : ब्रिटिश राज्य मे मुट्ठी भर राजा और नवाब धनी जमीदार हैं। मुट्ठी भर महाजन और व्यापारी भी धनी हैं। कुछ-एक व्यापारी और व्यवसायी भी खाते-पीते हैं। उन्होंने सारा सोना-चांदी इकट्ठा कर रखा है।' साथ ही उन्होने यह भी स्पष्ट उल्लेख किया : 'जनता का बहुत बड़ा भाग दरिद्रता मे गोते खा रहा है।' (पृ० 112) और देखिए एन०के०एन० अय्यर, रिप०आई०एन०सी० 1901, पृ० 140-1.

53. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 658; दत्त : ई०एच० II, पृ० 605-6; जी०एस० अय्यर : ई०ए०, पृ० 191

54. दत्त; ई०एच० II पृ० 606.

55. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 188, उनके 'एसेज' भी पृ० 98, स्पीचेज, पृ० 591.

56. नौरोजी : 'एसेज', पृ०98, जोशी ने इस बात से इनकार किया कि भारतीय दरिद्रता का कारण धन का असमान वितरण है जैसा कि पश्चिम के कुछ देशो मे है (पृ०75) उन्होंने आगे बताया : हमारी समस्या समाजवादी समस्या नही है जिसे समाजवादी तरीको से सुलझाया जा सके'. (पृ० 753). 'हमारी दरिद्रता की बुराई कुछ विशिष्ट वर्गों तक सीमित नहीं है .... हमारे यहा धन के वितरण मे अधिक असमानता, एक वर्ग व दूसरे वर्ग में अंतर, 'मजदूरों की माग', 'पूजी का दायित्व' और 'संपत्ति' का अधिकार' की समस्याएं नही हैं जिनका सुलझाना आवश्यक है।' (पृ० 819).

57, पी० के० गोपाल कृष्णन: 'डैवलपमेंट आफ इकोनामिक आइडिया इन इंडिया'...1880, 1950 (नई दिल्ली 1959), पृ० 183. जोशी ने इस बात पर बल दिया 'कि निर्धनता की समस्या अनिवार्य रूप से तथा निश्चित रूप से एक औद्योगिक समस्या है.'

58. जोशी : (पूर्वोद्धृत, पृ० 819) 'हमारी स्थिति अपवाद रूप है। प्रतिद्वंद्वी वर्गों के विरोध में खड़े सारे समाज का प्रश्न है। ...हमे न तो महारानी एलिजाबेथ के पंगु कानून की आवश्यकता है और न ही फ्रांस की प्रातीय सरकार के खिलाफ में सजाने योग्य कानून की। . हमें तो सामूहिक प्रयत्न की एक विस्तृत तथा बुद्धिमत्तापूर्ण योजना .... इसी संकेत से भारत मे ब्रिटिश प्रवक्ता एकाएक वर्गभेदवादी बन गए और सारा दोष जमींदारों, साहूकारों और वकीलों पर

डालकर एक वर्ग को दूसरे वर्ग के विरुद्ध करने के प्रयत्न मे लग गए

59. द्वितीय अध्याय मे इसका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाएगा। और देखिए, रानाडे · एसेज, पृ० 23, 183, 185, 191 जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 738, 760, 803-4, दत्त ई०एच०; पृ० VII, केसरी, 31 मार्च, (आर०एन०पी० बंब, 4 अप्रैल, 1903) 'बढ़ते हुए हाथो के लिए उत्तरोत्तर काम की कमी तथा मनुष्यो के लिए खाद्यान्न की कमी' यह हमारी वर्तमान सामान्य औद्योगिक स्थिति की संक्षिप्त रूपरेखा है

(जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 804)

60 देखिए, भारत सरकार का प्रस्ताव, परिपत्र स० 96 एफ/6-59, दिनाक 19 अक्तूबर, 1888 (फैमिन प्राग, स० 19, दिसबर 1888).

61. वही, कडिका 4

62 वही, परिशिष्ट-ए, मद्रास मे यह पाया गया कि 6 रु० मासिक वेतनभोगी व्यक्ति सारे परिवारको पूरा महीना तीन समय प्रतिदिन चावल, बाजरा, ताडी अथवा मछली के साथ समद्र के किनारे के पास का भोजन तथा सप्ताह मे एक दो-बार हलाल किया मास खिला सकता है। बबई मे खाद्य पदार्थों की अपर्याप्तता के अभियोग को पूरे तौर पर अस्वीकार कर दिया गया। प्रांतीय सरकार ने मराठा प्रेस द्वारा क्षेत्र विशेष मे निर्धनता की व्यापकता के अभियोग की चर्चा करते हुए इस बात से इनकार किया कि दक्षिण मे कही भी व्यापक रूप से बुरी दशा है। मध्य प्रात के मुख्य आयुक्त मि० मैकेंजी इस निष्कर्ष पर पहुचे कि निस्सदेह देश मे निर्धनता है फिर भी अवस्था बुरी नही। लोग अच्छा खाते-पीते हैं। नार्थ-वेस्टर्न प्राविसेज (उत्तर-पश्चिमी प्रातो) मे एटा के कमिश्नर मि० कुक ने विचार प्रकट किया 'खतिहर जनता हृष्टपुष्ट है और यह उनकी सपन्नता का प्रमाण है'

63 भारत सरकार का प्रस्ताव, दिनाक 27 नवबर 1893 (राजस्व तथा कृषि विभाग) (सामान्य) फाइल स० 95, क्रमाक 7) बगाल के प्रतिवेदन मे दावा किया गया है. 'निम्न वर्ग के लोग सपन्नता के ऊचे और प्रतिदिन उत्तरोत्तर बढ़ते स्तर का आनन्द भोग रहे हैं'

64. 1891-2 तथा परवर्ती 9 वर्षों मे भारत की स्थिति और नैतिक भौतिक प्रगति का प्रदर्शक विवरण (तृतीय दसवार्षिकी प्रतिवेदन) जे०ए० बंस द्वारा तैयार किया गया (लदन, 1804) पृ० 427

65. उदाहरण के लिए, भारत सरकार के भूतपूर्व वित्त सदस्य सर जान स्ट्रैची ने अपने 'इडिया' (नया तथा अब संशोधित-परिवर्द्धित सस्करण, लदन, 1894), मे लिखा 'अब प्रत्येक किसान प्राचीन काल के ब्राह्मणो अथवा जमीदारो जैसी वेशभूषा धारण करता है। ·· उसकी पत्नी को प्राय. अवकाश रहता है। उसके चादी के गहने चमकते रहते हैं। अपनी जीवन की आवश्यकताओ की तथा सामान्य विलास की पूर्ति के पश्चात भी उसके पास गहने खरीदने के लिए निरतर कुछ बचा रहता है।' (पृ० 303), और देखिए, जान स्ट्रैचे रिचार्ड स्ट्रैचे की 'दि फाइनेंस ऐंड पब्लिक वर्क्स आफ इडिया 1869-1881 (लदन, 1882), पृ० 8. जार्ज चेस्ने की 'इडियन पोलिटी' (लदन, 1884), पृ० 314, 340.

66. सर डब्ल्यू० हटर भारत सरकार के सांख्यिकी विभाग के महानिदेशक थे और सर चार्ल्स हिलट, गवर्नर जनरल की कौंसिल के सार्वजनिक निर्माण सदस्य थे। ये दोनो टिप्पणियां असंख्य लेखो और पुस्तको में दुहराई गईं। उदाहरण के लिए देखिए. नौरोजी 'स्पीचेज', पृ० 587, मालवीय 'स्पीचेज', पृ० 227; जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 76, पी०सी० राज. 'दि पावर्टी प्राब्लम इन इडिया' (कलकत्ता, 1893) (निर्देश के लिए इसे आगे 'पावर्टी' से सकेतित किया जाएगा) पृ० 149;

नंदी : 'इन इंडियन पालिटिक्स', पृ० 115. मधोलकर : वही, पृ० 36. उस समय के राष्ट्रीय साहित्य में अधिकाशतया मिलने वाले अन्य अवतरणों में थे : लार्ड लारेंस (1864) का यह अवतरण : 'कुल मिलाकर भारत एक अति निर्धन देश है. बहुसख्यक जनता कठिनता से जीवन निर्वाह कर पाती है.' सर ई० बेरिंग (1881) का कथन : 'करदाता समाज अत्यंत निर्धन है.' सर ए० कोलविन का कथन : 'भारत की जनता का बड़ा वर्ग इस प्रकार के व्यक्तियों का है जिनकी आय जीवन रक्षा के लिए अनिवार्य आवश्यक सामग्री के खरीदने के लिए कठिनता से पर्याप्त है अत. वे जीवन के लिए अनिवार्य उपयोगी वस्तुओ के अभाव में जीवन बिताने को विवश हैं.' रैंडोल्फ चर्चिल तथा 1898 के अकाल आयोग के प्रतिवेदन को भी प्राय: उद्धृत किया जाता था. अनेक लेखकों और वक्ताओ ने 1888 की डफरिन जाच के परिणामो तथा जिला अधिकारियो के प्रतिवेदन को उद्धृत किया. देखिए, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 763-6. बी०एन०धर. रिप०आई०एन०सी०—1892, पृ० 102, ए०नदी : रिप०आई०एन०सी०—1894, पृ० 55-6, मधोलकर : 'इंडियन पालिटिक्स' पृ० 36. एस०एन०बैनर्जी : सी०पी०ए०, पृ० 686.

67. देखिए, नौरोजी 'पावर्टी', पृ० 188, तुलनीय वी०के०आर०वी० राव : दि नेशनल इनकम आफ ब्रिटिश इंडिया 1931-32' (लंदन 1940), पृ० 7. तथा पी०ए० वधवा और के० टी० मर्चेंट : 'आवर इकोनामिक्स प्राबलम' (बबई, 1946) पृ० 522.

68. डेनियल थार्नर : 'लाग टर्म ट्रेड्स इन आउटपुट इन इंडिया इन इकोनामिक ग्रोथ : ब्राजील, इंडिया, जापान'. सीमॅन कुजनिटस तथा इतर द्वारा सपादित (डरहम एन०सी० 1955) पृ० 105,

69 राव 'दि नेशनल इनकम आफ ब्रिटिश इंडिया-1931-2', पृ० 2.

70. उनकी सगणना विधि को जानने के इच्छुक व्यक्ति देखे उनकी 'पावर्टी' तथा 'अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया', पृ० 4-25, और पृ० 147-73. सक्षेपत: उन्होने कुल वार्षिक कृषि उत्पादन मे खानों, कारखानो, मछली उद्योग के अनुमानित उत्पादन तथा मामूली से विदेशी व्यापार के वार्षिक लाभ के साथ साथ बडी संख्या मे होने वाले दैवी उत्पातो को गिन-जोडकर 1867-8 की कुल राष्ट्रीय आय की संगणना की यहा यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने सेवाओं से प्राप्त आय को स्पष्ट रूप से आय नही माना क्योंकि उनका तर्क था कि यह वास्तविक आय न होकर पूर्व संचित आय का उपयोग मात्र है (पृ० 180-5 तथा 220) दादाभाई के राष्ट्रीय आय संबंधी विचार के औचित्य की समीक्षा के लिए देखिए : आर०पी० ममानी 'दादाभाई नोरौजी, दि ग्रैंड ओल्डमैन आफ इंडिया' (लदन 1939), पृ० 203-4 के०टी० शाह तथा के०जी०खंबात : 'वैल्थ ऐंड टैक्सेबल कैपेसिटी आफ इंडिया' (बंबई 1924) पृ० 7. वी०के०आर०वी० राव : 'ऐन एसे आन इंडियन्ज़ नेशनल इनकम 1925-9' (लंदन 1939) पृ० 19-22 वाडिया और मर्चेंट : पूर्वोद्धृत, पृ० 520-3 सुरेंद्र जे० पटेल : 'लांग टर्म चेंजेस इन आउटपुट ऐंड इनकम इन इंडिया,' 1896-1960. 'इन इंडियन इकोनामिक जनरल' जनवरी 1958 (खंड V, संख्या 3) पाल ए बरन : दि पोलिटिक्स इकोनमी आफ ग्रोथ' (भारतीय संस्करण, नई दिल्ली 1957) पृ० 36-7. दादाभाई के राष्ट्रीय आय सबंधी दृष्टिकोण के सैद्धांतिक गुण-दोषों की चर्चा किए बिना संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'राष्ट्रीय आय को कुल वास्तविक उत्पादन से जोड़ना' उनके दृष्टिकोण की उपयोगिता का एक प्रबल पक्ष था. वस्तुत: पिछड़े देशों में छिपी व्यापक बेकारी की सामाजिक क्षेत्र में सेवा पक्ष के एक बहुत बड़े भाग की परोपजीविता की तथा समाज के गठन संबंधी एवं संस्थागत परिवर्तनों उदाहरणार्थ पश्चिम के संपर्क में आने के समय से ही मुद्रा निर्माण अथवा उपयोगी सामग्री के उत्पादन में वृद्धि आदि की सही जानकारी का तुलनात्मक

अथवा अन्य आर्थिक विश्लेषण के उद्देश्यों का सच्चा आधार उपभोग सामग्री का वास्तविक उत्पादन ही बन सकता है.

71. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 4. अपने निष्कर्षों की परिसमाप्ति पर दादाभाई ने टिप्पणी करते हुए लिखा : 'एक बात स्पष्ट है कि मैं उत्पादन के अवमूल्यन का दोषी नहीं हूं.' (पावर्टी, पृ० 25). उन्होंने और अधिक स्पष्ट सूचनाओं का आग्रह करते हुए कहा : 'किसी भारतीय द्वारा पूरी सूचनाएं देने पर ही वर्ष-प्रतिवर्ष भारत की वास्तविक भौतिक स्थिति की सही रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है.' (वही, पृ० 147) सभी प्रकार की सीमाओं के होने पर भी उनका 20 रु० प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय का अंक इस क्षेत्र के सभी परवर्ती अनुसंधानों की कसौटी बना, यह उनके लिए एक बहुत बड़े गौरव की बात है.' (मसानी, पूर्वोद्धृत, पृ०204) शाह और खबाता : पूर्वोद्धृत, पृ० 201, राव : 'एन एसे आन इंडियाज नेशनल इनकम—1925-29', पृ० 16-22.

72. डिगबी : पूर्वोद्धृत, पृ० 364, 442-3. इस तखमीने में कुल सामग्री के उत्पादन तथा सेवाओ को सम्मिलित किया गया था. उल्लेखनीय यह है कि भारत सरकार ने इन गणनाओ के सआधारभूत विस्तृत जाचो के प्रतिवेदनो को कभी प्रकाशित नहीं किया

73. किडिल्स्टन के लार्ड कर्जन : स्पीचेज खंड I-IV, (कलकत्ता 1900, 1902, 1904, 1906) खंड I, पृ० 289-90.

74. डिगबी . पूर्वोद्धृत, अध्याय XII.

75. फेड जे० अतकिंसन : 'ए स्टेटिस्टिकल रिव्यू आफ दि इनकम ऐंड वैल्थ आफ ब्रिटिश इंडिया' 'जनरल आफ दि रायल स्टेटिस्टिकल सोसाइटी', खंड 65, भाग 2 (जून 1902), पृ 238

76. देखिए, नौरोजी : सी०पी०ए०, पृ० 160-1, स्पीचेज, पृ० 114, 527, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 758, मधोलकर : 'इन इंडियन पोलिटिक्स', पृ० 38, जी०सी० अय्यर: 'दि वायसराय आन दि इकोनामिक कंडीशन आफ इंडिया', एच०आर० मई 1901, पृ० 355 ई ए, पृ० 37-8, गोखले : स्पीचेज, पृ०17, दत्त · ई एच II, पृ० 603, एस० एन० बैनर्जी ने 1895 में पूना कांग्रेस में सभापति पद से दिए गए अपने भाषण में सारे राष्ट्रीय दृष्टिकोण के निष्कर्ष को इन शब्दो में प्रस्तुत किया : 'प्रति व्यक्ति आय बीस रुपये है अथवा सत्ताईस रुपये, इसमें कोई बहुत बडा अनर नही पड़ता । सत्य यह है कि यह भारत की जनता की गर्हित दरिद्रता का एक विश्वसनीय प्रमाण है ।' —(सी०पी०ए०, पृ० 257)

77.

इग्लैंड	41 पौंड	स्काटलैंड	32 पौंड	आयरलैंड	16 पौंड
यूनाइटिड किंगडम	35.2	फ्रांस	25.7		
रूस	9 9	आस्ट्रिया	16 3	जर्मनी	18 7
स्पेन	13.8	पुर्तगाल	13.6	इटली	12
हालैंड	26	डेनमार्क	23.2	बेल्जियम	22 1
स्विटजरलैंड	16	यूरोप	18	स्वीडन तथा नार्वे	16 2
टर्की	4	आस्ट्रेलिया	43 4	यूनाइटिड स्टेट्स	27 2
कनाडा	26.9			इंडिया	2

नौरोजी . स्पीचेज, पृ० 590, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 758, राय पावर्टी, पृ० 340, बैनर्जी ·

सी०पी०ए०, पृ० 257-8. आर० एम० सायानी : सी० पी० ए०, पृ० 346.

78. बैनर्जी : सी०पी०ए०, पृ० 257-8 'नौरोजी इन ऐमिनेंट इंडियन्स', पृ० 164, आर०एम० सायानी : सी०पी०ए०, पृ० 347, नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 310 क्रमशः.

79. 'नौरोजी इन ऐमिनेंट इंडियन्स', पृ० 164 और देखिए, उदाहरणार्थ बैनर्जी स्पीचेज, खंड III, पृ० 12, ए०बी०पी०, 30 मार्च 1882

80. बहुत से आधुनिक अर्थशास्त्रियो की धारणा है 'बहुत सी सांख्यिकी कठिनाइयों तथा सबद्ध मूल्यों में सैद्धांतिकता जुड़ी होने के कारण राष्ट्रीय आय के अक अतर्राष्ट्रीय तुलना की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं रखते.'—(वाडिया तथा मर्चेंट : पूर्वोद्धृत, पृ० 523) परतु यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की तुलना के लिए सामान्य व्यवहार को ही उपयुक्त सूत्र (विधि) के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है.' देखिए कोलिन क्लार्कस : पूर्वोद्धृत, 'कडीशस आफ इकोनामिक प्रोग्रेस', पृ० 528. किसी भी ऐसे विषय मे, जहा आय का अतर अधिक गहरा है यहा तक कि उसे दो अथवा अधिक अंक से गुणा करके मापा जा सकता है जैसा कि तुलना द्वारा भारतीय नेताओ ने पाया था, इस प्रकार के अतर की सार्थकता 'त्वरित और अस्पष्ट' ही मानी जाएगी

81. नौरोजी . पावर्टी, पृ० 25-31, जोशी . पूर्वोद्धृत पृ० 759-60, मधोलकर : रिप०आई०एन०सी, 1891, पृ० 20, जे०सी० अय्यर ई ए, पृ० 28

82. नौरोजी पावर्टी, पृ० 30 और 'स्पीचेज', परिशिष्ट-डी, पृ० 187.

83 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 759-60, मधोलकर : रिप०आई०एन०सी०, 1891, पृ० 19 और 'इन इंडियन पार्लिटिक्स', पृ० 38.

84. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 31. समस्या के इस पक्ष पर डफरिन की जाच तथा 1888 के प्रस्ताव ने सुदर प्रकाश डाला। नौलोर (मद्रास) के सिविल सर्जन ने रिपोर्ट की कि जेल में रहने के कुछ देर उपरात कैदियो का वजन बढ़ गया है मद्रास के राजस्व मंडल का उत्तर था कि इसका कारण जेल मे अत्यत उदारतापूर्ण भोजन का सभरण और कठोर श्रम न कराना है इसके अतिरिक्त जेल उसे घरेलू चिंताओ से मुक्ति प्रदान करती है। 'प्रातीय प्रतिवेदनो पर आधृत सरकारी टिप्पणी का सक्षेप इस प्रकार से है . 'कैद की अवधि मे वजन का बढ़ जाना एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और यह स्थिति अन्य प्रांतो मे भी पाई गई है.' देखिए, भारत सरकार का 19 अक्तूबर 1888 का प्रस्ताव, पूर्वोद्धृत परिशिष्ट-ए.

85. नौरोजी . पावर्टी, पृ० 31. सी०पी०ए०, पृ० 260, स्पीचेज, पृ० 528, 580, परिशिष्ट, पृ० 186. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 62-3. बैनर्जी : सी०पी०ए०, पृ० 258. जी०सी० अय्यर . ई ए, पृ० 28. दादाभाई ने आय के वितरण मे क्षेत्रीय असमानताओ के अस्तित्व को भी स्वीकार किया. देखिए, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 186.

86. दत्त · ई एच II, पृ० 6 ए० बी० पी० 11 मार्च 1897. एन०एम० समर्थ रिप०आई०एन०सी०, 1896, पृ० 158-9, सायानी सी०पी०ए०, पृ० 366, एडवोकेट, 2 फरवरी (आर०एन०पी० एन०, 4 फरवरी 1905) क्रमश· उदाहरणार्थ और भी देखिए, मालवीय स्पीचेज, पृ० 248, आई०एन०सी० 1966 का प्रस्ताव 12, आई०एन०सी० 1897 का प्रस्ताव 9, सी० संकरन नैयर : सी०पी०ए०, पृ० 383, डी०ई० वाचा सी०पी०ए०, पृ० 360 दत्त . स्पीचेज II, पृ० 35. केसरी, 22 जून (आर०एन०पी० बबई, 26 जून 1897) दरिद्रता और अकाल के पारस्परिक सबध की विस्तृत जाच नीचे की गई है

87. लार्ड एलगिन ने 'दरिद्रता और संपन्नता को अतत सापेक्षिक शब्द' घोषित करते हुए अपनी राय

इस प्रकार स्पष्ट की : 'मैं यह नही मानता कि बहुसंख्यक जनता अपने को विपन्न समझती है. यदि उनकी आय कम है तो उसका कारण उनकी सीमित आवश्यकताएं हैं.' स्पीचेज (कलकत्ता 1899), पृ० 491.

88. भारत के भौतिक साधनों पर 1880-91 के प्रांतीय प्रतिवेदन, (शिमला, 1894) बंगाल रिपोर्ट, पृ० 9.

89. वही, नार्थ वेस्ट प्रांतों तथा अवध का प्रतिवेदन, पृ० 19. और देखिए, स्ट्रेचे : इंडिया 1894, पृ० 301-3. ब्रिटिश प्रशासको ने बार बार भारत के सबंध में सपन्नता के इस भाग्यवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया. स्ट्रेचे ने लिखा : 'भारत के जलवायु में जीवन की प्रतिदिन की आवश्यकताओ की पूर्ति आसानी से हो जाती है. भारतवासी की मिट्टी से लिपी-पुती झोपड़ी उसके अपने विचारानुसार शुद्ध और विश्रामप्रद आश्रय है. ·· सामान्य स्थिति मे उसके पास अपनी रुचि का आहार पर्याप्त मात्रा में रहता है।···उसके पास अधिक वस्त्र नही है परतु अधिक वस्त्रो की उसे आवश्यकता भी नही. यहां तक कि शीत ऋतु में भी उसे कोई विशेष कष्ट नही होता' (इंडिया : 1894, पृ० 301-3).

1888 की डफरिन जाच के लिए बहुत से मंडलों और प्रातो के अधिकारियों ने इसी दृष्टिकोण पर आधारित अपने निष्कर्ष भेजे. उदाहरणार्थ, मालदा के कलक्टर ने लिखा . 'सामान्य वर्षों मे एक छोटे से किसान के पास भी देश की जलवायु तथा उसकी अपनी प्रकृति के अनुरूप उसे हृष्टपुष्ट बनाने वाला आहार आवश्यकता से अधिक मात्रा मे रहता है.' हुगली के कलक्टर का तो निश्चित मत था : 'भारतीय अपने मान्य दृष्टिकोण और अपने अपेक्षित स्तर के अनुसार सपन्न तथा संतुष्ट हैं.' (दृढतापूर्वक कहा गया) भारत सरकार का 19 अक्तूबर 1888 का प्रस्ताव, पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट ए

90. 'जनता की भौतिक स्थिति पर प्रातीय प्रतिवेदन', 1880-91 बगाल प्रतिवेदन, पृ० 9 तथा हुगली के कलक्टर ने भारत सरकार के 19 अक्तूबर 1888 के प्रस्ताव को उद्धृत किया, पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-ए. तुलनीय—'भारत के आर्थिक प्रश्न पर विचार हुए यह विशेष रूप से कभी नही भूलना चाहिए कि धन सचय अथवा ऊची आय की अपेक्षा मानसिक सुख तथा आत्मिक शाति की प्राप्ति ही भारतीयों का जीवन लक्ष्य है.' गवर्नर जनरल की कौंसिल के स्वर्गीय सदस्य जे०डी० रोस ने प्रकाशनाधीन 'रियल इंडिया' मे इसे ब्रिटिश राज्य की अनेक देनों में एक बहुत बड़ी देन बताया' (लदन 1908) पृ० 319-20.

91. दि बर्ड डिसिमिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्राग्रेस रिपोर्ट, पृ० 419 और देखिए प्रस्ताव, पूर्वोद्धृत, पृ० 318. थीडोर मौरीसन 'इकोनामिक ट्राजीशन इन इंडिया', पृ० 159-60. मौरीसन का मत था : 'अतुलनीय की तुलना से विचारो में उलझाव के अतिरिक्त कुछ भी परिणाम नहीं निकलता.' (पृ० 160)

92. इंडिया (1894) पृ० 301, जिन अकाल आयुक्तों को वह उद्धृत कर रहा था, उन्होंने यह मजेदार परंतुक जोड़ी जो अनजाने तौर पर व्यग्यपूर्ण है 'यद्यपि उसकी आय अपेक्षाकृत थोड़ी और बड़े जोखिमों से भरी हुई है.' इसी प्रकार 1894 मे भारत सचिव एच०एच० फौलर ने दृढतापूर्वक कहा · 'जलवायु की दृष्टि से ग्रामीण भारत की दरिद्र जनता की इंग्लैंड की जनता की अपेक्षा आवश्यकताए कम हैं और भारत का निर्धन इंग्लैंड के निर्धन की अपेक्षा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक आसानी से कर सकता है.' हंसार्ड (चतुर्थ वर्ग) 15 अगस्त 1894, खंड 27, स्तम्भ 1138-9.

93. नौरोजी की स्पीचेज से उद्धृत, पृ० 583. और देखिए अर्तकिसन के लेख पर रीस की टिप्पणी, पूर्वोद्धृत, पृ 276.
94. बल दिया गया. भारत सरकार का 19 अक्तूबर 1888 का प्रस्ताव—पूर्वोद्धृत परिशिष्ट-ए. बहुत से अन्य सरकारी अधिकारियों ने अपने प्रतिवेदनों में यही दृष्टिकोण अपनाया.
95. जी०सी० अय्यर : ई ए, पृ०20.
96. दूसरी ओर आर०सी०दत्त ने लिखा : 'जीवन भर की भूख बेचारे अधिक निर्धन लोगो को आवश्यकता कम करने का प्रशिक्षण देती है.' ई एच I, पृ०22.
97. दादाभाई नौरोजी ने सकेत किया : 'बबई निवासी धनी हिंदुओ और मुसलमानो की रहन-सहन की स्थिति तो देखिए.' एसेज, पृ० 134.
98. दादाभाई ने पूछा : एक समय ब्रिटेन के लोग इस देश के जगलो मे घूमते थे और उनकी आवश्यकताएं कुछ न थी. यदि वे उसी स्थिति में रहते तो आज का ब्रिटेन कैसा होता ?' (स्पीचेज, पृ० 311).
99. वही, पृ० 311-2.
100. जी०वी० जोशी ने इसे अत्यन्त स्पष्ट करते हुए कहा : 'सुख सुविधाओं का उच्च स्तर तो हमारे लिए एक प्रकार का अवरुद्ध नैतिक बल है जो हमें सकट काल मे अधिक श्रम करने और कष्ट सहने के लिए उत्साहित करता है तथा परिस्थितियो पर विजय पाने के योग्य बनाता है. देश पर पड़ने वाला बुरे से बुरा सकट यदि देश के जीवन स्तर को बुरी तरह प्रभावित नही करता, तो वह किसी भी रूप में भयकर अथवा शोचनीय नही कहा जा सकता. इसके विपरीत बलपूर्वक थोपी गई शांति का वरदान यदि देशवासियो को अपने निम्न जीवन स्तर से समझौता करने के लिए विवश कर देता है तो उसे अभिशाप ही कहा जा सकता है. (पूर्वोद्धृत, पृ०768).
101. गोपालकृष्णन . पूर्वोद्धृत, पृ० 183, तथा काग्रेस का 1892 का नवां प्रस्ताव.
102. देखिए, आई०एन०सी० 1882 का प्रस्ताव 9 तथा कांग्रेस के इसी प्रकार के परवर्ती प्रस्ताव.
103. भारत सरकार का 19 अक्तूबर 1888 का प्रस्ताव, पूर्वोद्धृत कडिका-4.
104. वही, परिशिष्ट-ए. अपने ही प्रस्ताव पर लार्ड डफरिन का मत था . 'इस परिणाम से पर्याप्त संतुष्ट व्यक्ति या तो आशावादी है या कठोर प्रकृति का है.' लार्ड डफरिन : स्पीचेज (कलकत्ता 1889) पृ० 241. वस्तुत. प्रस्ताव के परिशिष्ट-ए मे प्रकाशित बहुत से मडलीय तथा प्रातीय प्रतिवेदनो मे भारत मे व्याप्त घोर दरिद्रता और दुर्भाग्य के अस्तित्व को प्रमाणित किया गया था सरकारी प्रस्ताव केवल यह सिद्ध करने में सफल हुआ कि भारत में स्थाई अकाल नही है वस्तुत: यह एक क्षुद्र सात्वना थी.
105. 1898 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन (कलकत्ता 1898) कडिका, 591-2.
106. कर्जन; स्पीचेज, खड III, पृ० 149, इसी प्रकार भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन इस तथ्य से सहमत थे कि भारत मे 'घनी जनसख्या दरिद्र है. —इडियन डिबेट्स, 3 फरवरी 1902, लगभग 108.
107. लार्ड कर्जन ने इस रूप में बडी विशदता से प्रश्न प्रस्तुत किया. —स्पीचेज खड IV, पृ० 36. 1838 में ही बंगाली युवक सघ से सबधित बाबू रामगोपाल घोष ने इस प्रश्न की जाच पड़ताल करने की इच्छा व्यक्त की—'सपत्ति बढ़ रही है अथवा घट रही है ? क्या बहुसख्यक जनता की सुविधाओं में विस्तार हो रहा है अथवा संकोचन ? तथा इस सबके क्या कारण हैं ?'
रामगोपाल सान्याल के 'ए जनरल बायोग्राफी आफ बंगाल सैलिब्रिटीस' में उद्धृत (कलकत्ता

1889) पृ॰175.

108 और इस बात का उत्तर देना आवश्यक था : सापेक्षिता का कोई तर्क प्रश्न को धूमिल नही कर सकता दोनो पक्ष सही नही हो सकते एक को तो गलत होना ही पड़ेगा—तुलनीय, डिगबी : पूर्वोद्धृत.

109. हमार्ड (चतुर्थ वर्ग) खड XCIX लग॰ 1209. इसी प्रकार 3 फरवरी 1902 को उसने पुनः घोषणा की 'मैं एक से अधिक बार अपना मत व्यक्त कर चुका हूं कि भारत में हमारे प्रशासन का मुख्य और एकमात्र उद्देश्य केवल हमारा यह विश्वास है कि हम दरिद्र भारतीय जनता को भौतिक दृष्टि से समृद्ध बना सकते हैं (इडियन डिबेट्स 3 फरवरी 1902 लगभग 105).

110. गोखले स्पीचेज, पृ॰ 19 और देखिए, वही, पृ॰ 934, नौरोजी : पावर्टी, पृ॰ 186 तथा स्पीचेज, परिशिष्ट-डी, पृ॰ 167. लालमोहन घोष · स्पीचेज (कलकत्ता 1883) पृ॰ 87 सी॰पी॰ए॰, पृ॰ 756 मालवीय स्पीचेज पृ॰ 219, 238, जोशी पूर्वोद्धृत, पृ॰ 738, 752-3. मधोलकर; 'इडियन पालिटिक्स', पृ॰ 35, नदी · पूर्वोद्धृत, पृ॰ 101, वाचा : सी॰पी॰ए॰, पृ॰ 560, जी॰सी॰ अय्यर 3 ग, पृ॰ 6, दत्त : स्पीचेज II, पृ॰ 28 159

111. आई॰एन॰सी॰, 1886 का प्रस्ताव II तथा वाचा : रिप॰आई॰एन॰सी॰, 1886, पृ॰60

112. उदाहरण रूप मे देखिए हिंदू, 10 सितं॰ 1884, 29 अगस्त 1887, 1 फरवरी 1888, मराठा, 21 दिसंबर 1884 11 नवबर 1900, नेटिव ओपीनियन, 13 अप्रैल (आर॰एन॰पी॰, बबई, 19 अप्रैल 1884) नव विभाकर, 7 जनवरी (आर॰एन॰पी॰ बग 7 जून 1884) साधारणी, 27 जुलाई (वही, 27 अगस्त 1884), सजीवनी, 18 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1885) ज्ञान-प्रकाश, 19 मार्च (आर॰एन॰पी॰ बबई 21 मार्च 1885) 'वाइस आफ इडिया' द्वारा आवृत समाचारपत्र (निर्देश के लिए आगे 'वी॰ओ॰आई॰' मे सकेतित किया जाएगा) अक्तूबर 1887 अबाला-गजट, 27 जून (आर॰एन॰पी॰पी॰, 7 जुलाई 1888) 'पैसा अखबार', 13 अप्रैल (वही, 18 अप्रैल 1891) 'दोस्ते हिंद' 12 जून (वही, 20 जून 1891) केसरी, 22 जून (आर॰एन॰ पी॰ बबई, 26 जून 1897). भारत जीवन, 25 जुलाई (आर॰ एन॰ पी॰ एन॰, 3 अगस्त 1898) ए॰ बी॰ पी॰, 17 जून 1898, 12 अक्तूबर 1901, बगाली, 9 मार्च 1902.

113. नौरोजी . स्पीचेज (1886) मे उद्धृत 'ग्रांट डफ' पृ॰ 583. पूर्वोद्धृत के अध्याय 1 मे जान स्ट्रेची और रिचार्ड स्ट्रेची उद्धृत, 1888 के 'स्पीचेज' में डफरिन उद्धृत, पृ॰ 241, स्ट्रेची : 'इडिया' (1894)पृ॰ 303. जनरल सर जार्ज चैसनी : 'इडियन पालिटी' (लदन 1894)पृ॰ 394 हेनरी फौलर-हंसार्ड (चतुर्थ वर्ग) 15 अगस्त 1894 खंड XXVIII लग॰ 1139. ऐलगन; स्पीचेज, पृ॰ 360-1. 1898 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन, कडिका 592. 1901-2 और 9 पूर्ववर्ती वर्षों की अवधि मे भारत की स्थिति और उसकी नैतिक तथा भौतिक प्रगति का विवरण प्रस्तुत करने वाला प्रतिवेदन (चतुर्थ दशाब्दिक प्रतिवेदन होने के कारण) फांस सी॰ ड्रेक द्वारा तैयार किया गया. (लदन 1903). 1901-2 का आर्थिक वक्तव्य (कंडिका, 136). 1902-3 का वक्तव्य (कंडिका, 90). 1902-4 (कडिका 117) 1902 में फ्रेड जे॰ अतकिंसन ने संगणना की कि 1875-95 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 29.5 प्रतिशत बढ गई है (पूर्वोक्त स्थल, पृ॰ 238).

114. कर्जन : स्पीचेज खंड I, पृ॰ 158, खंड II, पृ॰ 165, 288-90, खंड III, पृ॰148-9 तथा खंड IV, पृ॰ 36-7, 211-2.

115. वही, खंड II, पृ॰ 290. इसी प्रकार जार्ज हैमिलटन ने दावा किया : यद्यपि मंद गति के कारण वह लगभग अगोचर सी हो गई है तथापि भौतिक उन्नति में निरंतरता बनी रही है.—हंसार्ड

(चतुर्थ वर्ग) 16 अगस्त 1901, खंड XCIX लग० 1208-9 तथा इंडियन डिबेट्स, 3 फरवरी 1902, लगभग 108, 110.

116 वही, खंड III, पृ० 389.

117 वही, खंड IV, पृ० 212.

118 गत 19वी शती के अंतिम पच्चीस वर्षों की अवधि में भारत को निर्धन बनाने वाले दुर्भिक्ष अपने विस्तार और तीव्रता मे प्राचीन अथवा आधुनिक काल के इतिहास मे अभूतपूर्व उदाहरण हैं (दत्त, ई एच I पृ० VI).

119 1902 मे कांग्रेस सभापति के पद पर आसीन सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने प्रश्न प्रस्तुत किया · 'क्या अपनी बढ़ती हुई तीव्रता तथा बहुलता के साथ जनता की भौतिक अधोगति का मौन किंतु निर्णीत प्रमाण प्रस्तुत करने वाले इन दुर्भिक्षो की सार्थकता को नकारना सभव है ?' (सी० पी० ए०, पृ० 68) और देखिए, जी० सी० अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1900, पृ० 29 दत्त : स्पीचेज II, पृ० 28 तथा नीचे देखिए

120 इस दृष्टिकोण की विस्तृत जाच नीचे की गई है ।

121 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 420, पी०पी० पिल्ले : रिप०आई०एन०सी० 1892, पृ० 98, मधोलकर: 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 39. नदी . वही, पृ० 166-7, जी०एस० अय्यर · भारत के खर्चों के प्रशासन पर रायल कमीशन का प्रतिवेदन (निर्देश के लिए इसे आगे वेलबी कमीशन से सकेतित किया . ....) मिनिट्स आफ इविडेंस (साक्ष्य के सक्षिप्तांश), खड III पार्लियामेंटरी पेपर्स (हाउस आफ कामस) 1900 खड 29 लगभग 130 प्रश्न 19615-6 तथा ई ए, पृ० 13. वाचा : सी०पी०ए०, पृ० 360, दत्त 'ओपन लेटर्स टू लार्ड कर्जन' (लार्ड कर्जन के नाम खुली चिट्ठिया) कलकत्ता 1904 (निर्देश के लिए इसे आगे 'ओपन लैटर्स' से सकेतित किया जाएगा), पृ० 17. बैनर्जी; सी०पी०ए०, पृ० 689, गोखले . स्पीचेज, पृ० 53, 1904 की आई०एन०सी०, का प्रस्ताव और प्रस्ताव पर भाषण, की रिप०आई०एन०सी, 1904, पृ० 128 तथा नीचे अध्याय X

122 ऋणग्रस्तता आवश्यक रूप से न निर्धनता है और न ही दुर्दशा. सामान्य ऋणकर्ता की स्थिति की तुलना उस व्यक्ति से की जा सकती है जो बैंक मे अपना चालू खाता रखता है और कभी-कभार अधिविकर्ष करता (जमा पूजी से अधिक निकालता) है, दि थर्ड डिस्सैनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्राग्रेस रिपोर्ट, पृ०435 एक अन्य सरकारी प्रकाशन इससे भी आगे बढ़ गया : 'ऋण तो आवश्यकताओं की अपेक्षा ससाधनो की अधिकता पर अधिकार का सूचक है ।' प्राविंशल रिपोर्ट आन दि मैटीरियल कडीशन आफ दि पीपुल. 1881-91, पृ०8. आफ दि बगाल रिपोर्ट तथा प्रेजिडेंसी डिवीजन और पटना के कमिश्नरो तथा एन०डब्ल्यू०पी० ऐंड ओ० मे एटा के कलक्टर सेंट्रल प्राविंसेज मे दमोह तथा भडारा के कमिश्नरो के प्रतिवेदन तथा भारत सरकार के 19 अक्तूबर के प्रस्ताव का स्वय सरकार द्वारा सक्षेप, पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-ए

123. ऊपर देखिए, अध्याय X.

124. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ०227, 769-70. गोखले, स्पीचेज, पृ० 18, 52.

125. भूतपूर्व सैनिक सदस्य जनरल जार्ज चिसनी ने 1894 मे लिखा : 'संपत्ति हमारे शासन की ही सृष्टि है हमने भारत को गरीबी मे जकड़ा हुआ पाया जैसाकि यह पहले से रहता आया है. यदि हम इस देश मे न आते तो यह आज भी उसी प्रकार विपन्न होता.' (पूर्वोद्धृत, पृ० 397). लार्ड कर्जन ने 1904 में टिप्पणी की कि यदि आप आज के भारत की सिकंदर, अशोक, अकबर अथवा

औरंगजेब के भारत से तुलना करें तो पाएगे कि पूर्वकाल मे अनुभूत पराश्रितता की अपेक्षा आज भौतिक समृद्धि का स्तर काफी ऊचा है. (स्पीचेज खड IV, पृ० 37).

126 रानाडे : एसेज, पृ० 182.

127. राष्ट्रीय कांग्रेस के बगाल के विषयो मे सक्रिय भाग लेने वाले एक भारतीय युवा लेखक ने तो यहां तक स्वीकार किया कि 'भारतीय इतिहास की वैभव और सपन्नता की सभी विभिन्न अवस्थाओं और युगो मे भारतीय कृषक जनता कुचली और विपन्न रही है' (राय पावर्टी, पृ० 199) परतु उन्होने साथ मे यह अवश्य जोडा 'ब्रिटिश राज्य मे तो दुर्भाग्य और अधिक विषम हो गया है' वही, पृ० 224, इसके साथ देखिए, मघोलकर · रिप०आई०एन०सी०—1891, पृ० 21

128 आनद बाजार पत्रिका, 13 अप्रैल (आर०एन०पी०बग, 24 अप्रैल 1880)

129. नौरोजी पावर्टी, पृ० 579 कलकत्ता रिव्यू मे एक भारतीय लेखक कैलाशचद्र काजीलाल ने लिखा 'ब्रिटिश राज्य ने एक ऐसी दुर्भाग्य की स्थिनि उत्पन्न कर दी है, जो इससे पूर्व किसी भी हिंदू अथवा मुगल शासक अथवा टीपू साहब अथवा पेशवा के राज्य मे कभी नही रही (कलकत्ता रिव्यू अक्तूबर 1901, पृ०309-10)

130 उदाहरणार्थ देखिए, सजीवनी, 14 जून (आर०एन०पी० बग, 22 जून 1884) ग्राम यात्रा प्रकाशिका 9 अगस्त (वही, 16 अगस्त 1884) एस०एन० बैनर्जी रिप०आई०एन०सी०—1896, पृ० 135-6 केसरी, 22 जून (आर०एन०पी० बबई, 26 जून 1897) तथा 14 जनवरी (वही, 18 जनवरी 1902) एन०के०एन० अय्यर रिप०आई०एन०सी०—1901, पृ० 140-1 सी०वाई० चितामणि 'दि इकोनामिक्स आसपेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' एच०आर०दिस० 1901, पृ० 485 6 बगाली 22 अक्तू० 1903 साथ ही देखिए, नौरोजी स्पीचेज, पृ० 389 प्रध न और भागवत मे उद्धृत तिलक, पूर्वोद्धृत पृ० 72 राय पावर्टी, पृ०75

131. अमृत बाजार पत्रिका ने 22 मई 1884 मे लिखा 'एक समय भारत विश्व मे समृद्धतम देश था.' वर्षों तक एक के बाद एक दूसरे कांग्रेसी प्रतिनिधियो ने भारत की विगत सपन्नता का गौरवगान किया 1899-1904 तक के आई०एन०सी० के प्रतिवेदन देखिए दादाभाई नौरोजी ने अपनी पुस्तक 'पावर्टी ऐंड अन-ब्रिटिश रूल इन इडिया' मे 1853 मे लिखे एक निबध 'दि स्टेट ऐंड दि गवर्नमेंट आफ इडिया अडर दि नेटिव रूलर्स' को 1901 मे पुन प्रकाशित किया इसमे उन्होने अनेक ब्रिटिश लेखको को उद्धृत करते हुए यह दिखाने की चेष्टा की कि 'सिकदर के आक्रमण की तिथि और उससे शताब्दियो पूर्व से लेकर मुगल शासनकाल तक भारतीय सपन्नता के उच्च स्तर पर थे' (पृ० 584) इसी निबध को वास्तव मे 1903 मे जी०सी० अय्यर ने अपने 'सम इकोनामिक आसपेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया' मे पुन प्रकाशित किया और देखिए, नदी : 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 103,105, 110, रानाडे : 'दि राइज आफ मराठा पावर इन इडिया' (बबई 1900) वास्तव मे इसी बात के उल्लेख के लिए लिखा गया था और देखिए, आर० एन० सायानी 'ऐबस्ट्रैक्ट आफ दि प्रोसीडिंग्स आफ दि इपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल' (निर्देश के लिए इसे आगे एल०सी०पी० से सकेतित किया जाएगा) 1897 खड XXXVI, पृ०190 पी०ए० चारलू वही, पृ० 232.

132. 'इन इडियन पालिटिक्स', पृ० 110.

133. नौरोजी की स्पीचेज में उद्धृत ग्रांट डफ, पृ० 610, फौलर : हसार्ड (चतुर्थ खड), 15 अगस्त, 1894, खंड XXVIII, 1139-40; जे० पीले, वेलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18235.

विसनी : पूर्वोद्धृत, पृ० 394. अतकिसन पूर्वोक्त स्थल, पृ० 240-51 कर्जन स्पीचेज, खंड II, पृ० 289, खड IV, पृ० 212 स्ट्रेची इडिया (1903) पृ० 192

134. अतकिसन पूर्वोक्त स्थल, पृ० 269 तथा 260 इसमे आभूषण भी शामिल थे

135 नौरोजी पावर्टी, पृ० 86-7 स्पीचेज, पृ० 612 जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 661 मधोलकर : 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 46

136 नौरोजी पावर्टी, पृ० 86-8, स्पीचेज पृ० 611-2 रानाडे एसेज, पृ० 188 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 660-3 मधोलकर 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 46 आर० सी० दत्त 'इग्लैड ऐंड इडिया', पृ० 131 गोखले स्पीचेज, पृ० 16 और वेलबी कमीशन, खड III, प्र० 18238 जी० एस० अय्यर वही, प्र० 18715

137 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 756 दत्त 'इग्लैड ऐड इडिया', पृ० 132, नदी 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 112, गाखले स्पीचेज, पृ० 16 तथा वेलवी कमीशन खड III प्र० 18238.

138. नौरोजी पावर्टी, पृ० 89-9 पुन उद्धरणीय अपने एक अत्यत सारगर्भित अवतरण मे दादाभाई नौराजी ने लिखा 'यदि मै किसी व्यक्ति को 20 पौंड के मूल्य का सामान देता हू और बदले मे पाच पौड के मूल्य का दूसरा सामान और पाच पौंड मूल्य की चादी लेता हू तो यद्यपि मैंने बीस पौड के बदले केवल दस पौंड ही प्राप्त किए हैं तथापि मैं पाच पौंड के लाभ मे हू क्योंकि वे मुझे चादी के रूप मे मिले हैं तब मेरी सपन्नता इस रूप मे सचमुच सर्वथा ईर्ष्या से परे की वस्तु होगी ... यह सिद्धात भ्रामक परिणाम प्रस्तुत करना है इसके साथ ही उपर्युक्त परिस्थितियो पर उचित विचार किए बिना चादी के असख्य आयातो के सबध मे लोगो का आश्चर्य इस प्रकार का है, जिस प्रकार एक छोटे से रोटी के टुकडे से सतुष्ट होने वाला बालक किसी बडी आय के व्यक्ति को पूरो रोटी खाते देख चकित होता है वह भोला बच्चा यह नही जानता कि रूखी-सूखी रोटी उस गरीब आदमी के जीवन निर्वाह का तुच्छ साधन है' (वहीं, पृ० 88) साथ ही देखिए, जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 755-6 गोखले, वेलबी कमीशन, खड III, प्र० 18239-43

139 जान स्ट्रेची और रिचार्ड स्ट्रेची पूर्वोद्धृत पृ० 312, 320 दि थर्ड डिसिनिअल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपार्ट, पृ० 433, विसनी पूर्वोद्धृत, पृ० 328, 394, स्ट्रेची इडिया (1894), पृ० 304, एलगिन स्पीचेज, पृ० 360-1 कर्जन, स्पीचेज, खड I, पृ० XXV तथा खड II पृ० 289 फाइनेंशल स्टेटमेंट्स फार 1901-2 (1901-2 का वित्तीय प्रतिवेदन) (कडिका, 127) 1902-3 का (कडिका 14-5) 1903-4 (कडिका 127) फोर्थ डिसिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 332 जार्ज हैमिल्टन, हसार्ड (चतुर्थ वर्ग) 16 अगस्त 1901 खड XCIX लगभग 1212-3 और इडियन डिबेट्स (भारतीय विवाद) 3 फरवरी 1902 लगभग 110

140 नीचे IV अध्याय देखिए

141. कर्जन स्पीचेज खड II, पृ० 450, और देखिए जार्ज हैमिल्टन 'इडियन डिबेट्स', 3 फरवरी 1902, लगभग 110, फाइनेंशल स्टेटमेंट्स फार 1901 2 (कडिका, 127) 1903-4 का (कडिका, 35)

142 कर्जन स्पीचेज, खड II, पृ० 450 और देखिए, वही, खड III, पृ० 148, विसनी पूर्वोद्धृत, पृ० 328, 332 फाइनेंशल स्टेटमेंट्स फार 1901-2 (कडिका 109-11) 1902-3 का (कडिका 97) 1903-4 का (कडिका 115) 1904-5 का (कडिका 45) फोर्थ डिसिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट पृ० 332 मुद्राक शुल्क मे बढ़ोतरी द्वारा सकेतित मुकद्दमेबाजी मे

बढ़ोतरी को भी भारतीय निर्धनता के एक कारण के रूप में उद्धृत किया गया नीचे देखिए

143 नीचे IX अध्याय देखिए

144 नीचे XI अध्याय मे सीमा शुल्क प्रकरण देखिए इसके साथ ही देखिए, गोखले स्पीचेज, पृ० 17, मालवीय स्पीचेज, पृ० 380-1

145 गोखले स्पीचेज, पृ० 17

146 वही तथा 1904 की रिप० आई० एन० सी०, पृ० 166-7 मालवीय स्पीचेज, पृ० 381 इसके अतिरिक्त इस बात का स्पष्ट निर्देश किया गया कि इस कर से बहुत कम वसूली भारत की निम्नतम दरिद्रता को प्रमाणित करती है, नदी 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 119

147 गोखले स्पीचेज, पृ० 17 तथा 1904 की रिप० आई० एन० सी० पृ० 166 7

148 गोखले स्पीचेज, पृ० 18 जोशी पूर्वोदधृत, पृ० 200, 227 डी० ई० वाचा ने काग्रस के अध्यक्षीय भाषण मे निम्नलिखित आकडे प्रस्तुत किए 1886 7 मे प्रति व्यक्ति नाज 13 9 पौंड थी और 1899-1900 मे 12 7 पौंड थी -सी०पी०ए० पृ० 603 बॅनर्जी सी०पी०ए०, पृ० 660

149 फोर्थ डिसिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 332 कर्जन स्पीचेज खड II, पृ० 290 1 अनकिसन पूर्वोद्धृत, पृ० 215-20, 269 1901 मे कर्जन ने सगणना द्वारा सिद्ध किया कि कृषि भूमि का क्षेत्र 1880 मे 1940 एकड के स्थान पर 1898 मे बढ़कर 2170 एकड हो गया है अथवा दूसरे शब्दो मे कृषि भूमि का विस्तार अन्यथा जनसख्या मे वृद्धि के अनुरूप हुआ है उसने यह भी सिद्ध किया कि 1880 मे 730 पौड प्रति एकड उपज के मुकाबले 1898 मे 840 पौड उपज बढ़ जाने से प्रति व्यक्ति के लिए खाद्यान्न प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध हैं स्पीचेज, खड II, पृ० 290-1 अतकिंसन के अनुसार जो खाद्य उत्पादन 1875 मे 1 701 पौंड प्रति दिन था, वह 1895 मे बढ़कर 1 739 हो गया

150 जोशी पूर्वोद्धत पृ० 227, 334 335, 839 नदी इडियन पालिटिक्स' पृ० 109 सायानी . सी०पी०ए०, प० 363, वाचा सी०पी०ए० पृ० 395, सायानी 15 फरवरी (प्रा० ना० पी० बग) 27 फरवरी 1890, गोखले स्पीचेज, पृ० 33 जोशी ने 1890 मे कहा 1871 2–1888-9 की अवधि मे बबई मद्रास, नार्थवेस्ट प्राविस तथा अवध और सट्रल प्राविसज तथा पजाब मे कृषि भूमि के क्षेत्र मे 45 लाख एकड की वृद्धि हुई है जबकि इसी अवधि मे इन प्रातो मे जनसख्या 110 लाख बढी है (यदि सर डब्ल्यू० हटर का एक एकड का तीसरा-चौथा भाग खाद्यान्न प्रति व्यक्ति का तखमीना स्वीकार कर लिया जाए) तो 45 लाख एकड कृषि भूमि की कमी माननी पडेगी, पृ० 839

151 सायानी सी० पी० ए०, पृ० 363-4 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 900

152 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 839, सायानी सी० पी० ए०, पृ० 363

153 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 841-3, नदी इडियन पालिटिक्स', पृ० 109

154 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 832, 835, 841, 844, 852, नदी 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 109

155 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 227, 333, 338, 753, गोखले स्पीचेज पृ० 19

156 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 836, गोखले स्पीचेज, पृ० 18, 32

157 थर्ड डिसिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 428 रिपोर्ट आफ इडियन फाइनेंस कमीशन, 1898, कडिका 590, आर्थिक विवरण 1904-5 कडिका 67

158 नौरोजी . पावर्टी, पृ० 66, 72, 79 जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 663, 898 जी० सी० अय्यर : 'रेलवेज इन इंडिया इन इंडियन पालिटिक्स'—पृ० 191 वेलबी कमीशन, खड III, प्रश्न

18693.

159 नौरोजी . पावर्टी, पृ० 69, 80 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 900

160 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 900 राय . पावर्टी, पृ० 174-5. जी० सी० अय्यर 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 191 एच० आर—मई 1901, पृ० 352. बाद मे इन दोनो धारणाओ को मूल्य तथा वेतन-वृद्धि की जाच समिति के प्रतिवेदन मे दत्त द्वारा उल्लेखनीय समर्थन मिला, पृ० 61 और 'इंपीरियल गजेट आफ इंडिया' (आक्सफोर्ड 1908) खड III, पृ० 461

161 जी० सी० अय्यर ने बहुत से समाचारपत्रो तथा अन्य लेखो मे इस दृष्टिकोण पर बार बार बल दिया सरल तथा स्पष्ट समीक्षा के लिए उनकी पुस्तक 'सम इकोनामिक आसपैक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया' से एक अवतरण निम्नलिखित है 'सत्य यह है कि मूल्यवृद्धि का लाभ बिचौलिये हड़प जाते है अधिकाशतया भारत के किसान अपने उत्पादन की निकासी के उपयुक्त समय और स्थिति को परख नही पाते बहुत के किसानो का उत्पादन तो इतना थोडा होता है कि वे इससे अपने परिवार का भी वर्ष के कुछ महीनो तक ही कठिनता से भरण-पोषण कर पाते हैं अवशेष की पूर्ति गाव में अथवा निकट के शहर मे मेहनत करने से प्राप्त आय से की जाती है इस प्रकार भारतीय किसान अपने उत्पादन से स्वय अपनी तथा अपने परिवार की आवश्यकताए, सरकार और साहूकार की मागे पूरी नही कर सकता एक या दूसरे, प्राय दोनो कारणो से उसे साहूकार से बडी ऊची दर के सूद पर ऋण लेना पडता है सरकार तथा साहूकार के दबाव बढने पर ही वह अपने उत्पादन को अपनी इच्छा के विपरीत खास मौसम मे मिलने वाले अथवा निकटवर्ती शहरो मे अथवा समुद्री बदरगाहों मे मिल सकने वाले मूल्य से बहुत नीचे मूल्य पर बचने को विवश होता है बढती कीमतो का लाभ कौन हडप जाता है ? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि आशिक रूप से साहूकार और आशिक रूप मे किसान से सस्ते मूल्य पर अनाज खरीदकर महगे बाजार मे बेचने वाला बिचौलिया' (पृ० 235) और देखिए, राय 'इंडियन फैमिन्स', पृ० 63 हिंदुस्तानी, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 21 अप्रैल 1892) गोखले : वेलबी कमीशन—खड III, प्र० 18313, मराठा, 11 नवबर 1902 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 601

162 नौरोजी पावर्टी, पृ० 82, 85 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 228 राय पावर्टी, पृ० 176 और 'इंडियन फैमिंस', पृ० 62-3 नदी पूर्वोद्धृत, पृ० 119-20 जी० एस० अय्यर वेलबी कमीशन, खड III प्र० 18963, 19016 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 192 ई० ए० पृ० 223, 225-6, 259, मराठा, 16 नवबर, 1902 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 601 और देखिए, गोखले, वेलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18308

163 अध्याय II देखिए

164 अध्याय III देखिए

165 अध्याय IV देखिए

166 नौरोजी : पावर्टी, पृ० 147, 193 स्पीचेज, पृ० 124-44 सी० पी० ए०, पृ० 160-3, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 184, 188-189, वही, पृ० 308

167. आई० एन० सी०, 1900, प्रस्ताव II

168. आई० एन० सी०, 1902, प्रस्ताव IV आई० एन० सी०, 1903, प्रस्ताव XIII वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 566-7, 596-7 हिंदू, 28 नवबर 1901. ए० बी० पी०, 27 फरवरी 1902, गोखले : स्पीचेज, पृ० 20, जी० सी० अय्यर : ई० ए०, पृ० 4, 6. आर० एन० पी० बंब में संलग्न पेपर

22 मार्च 1902 1807 मे बहुत सारे भारतीय राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने ऐसी मांग का समर्थन किया था, देखिए, मराठा, 28 फरवरी 1897 एडवोकेट, 23 फरवरी, इंडियन मिरर, 28 फरवरी बिहार हैराल्ड, 27 फरवरी, इंडियन स्पैक्टेटर तथा वाइस आफ इंडिया (निर्देश के लिए इसे आगे आई० एस० बी० ओ० आई० से सकेतित किया जाएगा), 28 मार्च 1897

169. आई० एन० सी० 1903, प्रस्ताव III. एस० एन० बैनर्जी, पृ० 630-1 गोखले स्पीचेज, पृ० 20. और देखिए, वाचा सी० पी० ए०, पृ० 589, 595

170 अनेक सरकारी तथा अर्धसरकारी अधिकृत घोषणाओ मे यह दृष्टिकोण स्वीकार किया गया था देखिए ऊपर 1898 के अकाल आयोग ने एक प्राय उद्धृत मे टिप्पणी मे कहा 'ऋतु सकट तथा घटिया फसल के कारण इस देश के समाज का अपेक्षाकृत निम्न वर्ग सुखसुविधाओ के निम्न स्तर तथा अभाव का जीवन सदा से जीता आया है और आज भी उसी रूप मे जी रहा है यह निम्न वर्ग अपनी विशालता में मजदूरो तथा उपकुशल कारीगरो को बहुत बडी सख्या मे समेटे हुए है. इस कठिन प्रश्न पर साक्ष्यो को सुनने तथा प्रस्तुत आकडो को देखने के उपरांत हम यह धारणा बना पाए हैं कि इन मजदूरो की आय पिछले बीस वर्षों मे जीवन की आवश्यकताओ मे मूल्यवृद्धि के उचित अनुपात मे बढी नही है वर्तमान दुर्भिक्ष का अनुभव यह सिद्ध नही कर पाया कि समाज के इस वर्ग के पास साधनो की प्रचुरता अथवा सहनशक्ति की अधिकता है यह वर्ग कम होने के बदले और अधिक विशेषत अधिक घनी आबादी वाले जिलो मे धीरे धीरे फैलता जा रहा है उसकी पराभूतता अथवा परास्त होने की भावना क्षीण होने के बदले और प्रबल ही होती जा रही है',(भारतीय अकाल आयोग 1898 का प्रतिवेदन, कडिका-592) एक अमरीकी विद्वान जार्ज ब्लेक का नवीन अध्ययन, 'दि ऐग्रीकलचरल क्राप्स आफ इंडिया-1893-4 टू 1945-6 ए स्टेटिस्टिकल स्टडी आफ आउटपुट्स ऐंड ट्रैंड्स',(अप्रकाशित, पांडुलिपि) पेंसलवानिया विश्वविद्यालय के दक्षिण-एशिया क्षेत्रीय अध्ययन विभाग न अनुमान लगाया है अध्ययन काल की अवधि मे प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति खाद्य-उत्पादनो मे निरतर ह्रास हो रहा था 1893-94 वर्षों मे उत्पादन 587 पौंड था, 1936-37 से 1945-6 तक यह गिरकर 399 पौंड हो गया—थर्नर मे उद्धृत पूर्वोद्धृत पृ० 123 एक अन्य समकालीन लेखक ने सगणना की है कि 'सभी साधनो से होने वाली भारत की प्रति व्यक्ति आय 1896 से 1945 मे आठ प्रतिशत गिर गई थी'—सुरद्र जे० पटेल 'लाग टर्म चेंजेज इन आउटपुट ऐंड इनकम इन इंडिया 1896-1960' इंडियन इकोनोमिक जरनल, जनवरी 1958, खड V, स 3

171 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 598

172. एन० पी० बदावरकर सी० पी० ए०, पृ० 512 दादाभाई नौरोजी ने 1898 की इंडियन करसी कमेटी को भेजे गए अपने एक बयान मे वकालत करते हुए कहा, 'मान लीजिए, इस देश का भूतकाल खराब था, रक्तरजित और अपमानजनक था, आप भविष्य को तो उत्तम, संपन्न और गौरवपूर्ण बनाकर दिखाइए'(पावर्टी, पृ० 548) जस्टिस रानाडे का तो सदा से यह विश्वास था कि विदेशी शासन मे उन्नति अथवा अवनति के प्रश्न को तुलनात्मक रूप देना पुरातत्व विषयक इतिहास के प्रश्न के समान है हम सबके लिए व्यावहारिक प्रश्न तो देश की सामान्य रूप से सापेक्षिक नही, पूर्ण दरिद्रता और वर्तमान विवशता पर ध्यान केंद्रित करता है' उन्होंने यह स्वीकार किया कि 'कुछ सीमा तक तो स्थिति का ऐतिहासिक विश्लेषण शिक्षाप्रद भी है'—(एसेज, पृ० 182)

173. जोशी पूर्वोद्धृत; पृ० 770 मालवीय स्पीचेज, पृ० 262-3. वत : 'इग्लैंड ऐंड इंडिया—'

पृ० 126. आई० एन० सी० 1900, प्रस्ताव II तथा परवर्ती कांग्रेस का प्रस्ताव. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 539, दत्त : ई० एच० I, पृ० VI.

174. कर्जन : स्पीचेज, खंड III, पृ० 180 तथा वही, खंड II, पृ० 194, 289. भारत सरकार के 19 अक्तूबर 1888 में बंगाल सरकार का संक्षेप पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-ए. चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 395.

175. डफरिन : पूर्वोद्धृत, पृ० 240-1.

176 लैंसडौन : स्पीचेज (कलकत्ता) खंड II, पृ० 376 तथा थर्ड डिनिमियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 432-3 और जार्ज हैमिल्टन-हमार्ड (चतुर्थ वर्ग) 26 जुलाई 1900, खंड XLV लगभग 539; भारतीयों ने इस असंगति के बड़े मजे से चटखारे लिए. एक ने तो तत्काल व्यंग्य करते हुए कहा कि सचमुच ही जनसंख्या की वृद्धि एक साथ दो प्रयोजन सिद्ध करती है. एक समय वह देश की भौतिक प्रगति का सूचक है तो दूसरे समय देश की बढ़ती दरिद्रता का कारण है. (नदी : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 107).

177. नौरोजी · पावर्टी, पृ० 266-7, स्पीचेज, पृ० 620, जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 773. जी० एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०—1900, पृ० 29, एन० जी० चदावरकर : सी० पी० ए०, पृ० 514. एस० एन० बैनर्जी : सी०पी०ए०, पृ० 684 पिरराजू रिप०आई०एन सी०—1902, पृ० 75. दत्त : 'इंग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 132 स्पीचेज I, पृ० 26 ई० एच० आई०, पृ० VI साधारणी, 27 जुलाई (आर० एन० पी० बंग, 2 अगस्त 1884) हिंदू, 6 जुलाई 1898 मद्रास स्टैंडर्ड, 5 अगस्त, स्वदेश मित्रन, 5 अगस्त (आर० एन० पी० मद्र-10 अगस्त 1901).

178 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 773 तथा दत्त . सी० पी० ए०, पृ० 477 एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 684

179 नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 325-6, 621 ए० बी० पी०, 5 अगस्त 1886 राय पावर्टी, पृ० 168-9.

180. नौरोजी पावर्टी, पृ० 620-1 स्पीचेज, पृ० 324, जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 772 राय : पावर्टी, पृ० 197. दत्त : 'इंग्लैंड ऐंड इंडिया' पृ० 132 ओपन लैटर्स (खुली चिट्ठियां) पृ 17 एन० पी० चदावरकर · सी० पी० ए०, पृ० 514-5 एस० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 684 जी० एस० अय्यर : वेलबी कमीशन, खंड III प्र० 18648-9. रिप० आई० एन० सी० 1900, पृ० 29 हिंदू, 6 जुलाई 1893. संजीवनी, 15 फरवरी (आर० एन० पी०, बंग, 22 फरवरी 1900) केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बंबई 4 अप्रैल 1903) एन० श्रीनिवासाचारियर, रिप० आई० एन० सी० 1903, पृ० 66

181 पूना के 'सार्वजनिक सभा' के जनवरी तथा अक्तूबर 1890 के अंकों में प्रकाशित तथा उनके भाषणों और लेखों में पुन: तथाकथित.

182. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 773-5 (बल दिया गया).

183. वही, पृ० 774-5. कुछ वर्ष पूर्व अमृत बाजार पत्रिका ने 5 अगस्त 1886 को यही दृष्टिकोण थोड़े अस्पष्ट एवं असंबद्ध रूप में इन शब्दों में प्रस्तुत किया था : 'यह सिद्ध हो चुका है कि किसी भी उन्नत सभ्य राज्य में किन्हीं निश्चित विस्तृत सीमाओं के अंतर्गत कृषि अथवा अन्य कार्यों में लगे लोगों की थोड़ी संख्या की अपेक्षा बड़ी संख्या को ही सामूहिक रूप से अधिक साधन जुटाए जा सकते हैं. तथा देखिए, नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 391—ब्रिटिश राज्य भारत पर अपना नियंत्रण छोड़कर देख ले कि जनसंख्या की वृद्धि उसके द्वारा कल्पित अकाल और दरिद्रता का कारण है अथवा इसके सर्वथा विपरीत शक्ति और उत्पादन में वृद्धि का आधारभूत कारण है ? साथ में देखिए, जी० एस० अय्यर : वेलबी कमीशन, खंड III, प्रश्न 18733-6.

184. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 852, तथा रानाडे : एसेज, पृ० 207, वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 600.
185. देखिए अध्याय II.
186. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 217.
187. पी० सी० राय : 'इंडियन फैमिंस' (भारतीय अकाल) (कलकत्ता 1901) पृ० 35 और नौरोजी : पावर्टी, पृ० 217. क्रमश.
188. डफरिन : स्पीचेज, पृ० 240. थर्ड डिनिसिअल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 434. फोर्थ डिनिसिअल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, पृ० 354. कर्जन : स्पीचेज, खंड III, पृ० 149. भारत सरकार का प्रस्ताव, सं० 1, दिनांक 16 जनवरी 1902 (कलकत्ता 1902) कंडिका 31.
189. भारत सरकार का प्रस्ताव, दिनांक 19 अक्तूबर 1888, पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट-ए.
190. कर्जन : स्पीचेज, पृ० 166, खंड II. भारत सरकार का प्रस्ताव, दिनांक 16 जनवरी 1903, पूर्वोद्धृत कंडिका 31.
191. भारत सरकार का प्रस्ताव, दिनांक 19 अक्तूबर 1888, पूर्वोद्धृत परिशिष्ट-ए.
192. दत्त : ई० एच० I, पृ० VI तथा रानाडे : 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकलचरल बैंक्स' (भूमि कानून में सुधार तथा कृषि बैंक) जे० पी० एस० एस० अक्तूबर 1881 (खंड IV सं० 2), पृ० 55 (जी० ए० मानेकर के साक्ष्य के आधार पर यह लेख रानाडे का ही लिखा हुआ है, देखिए उनकी पुस्तक : 'ए स्केच आफ दि लाइफ ऐंड वर्क्स आफ दि लेट मिस्टर जस्टिस एम० जी० रानाडे' दो खंड, बंबई 1902, खंड I, पृ० 215) जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 778. राय : पावर्टी, पृ० 194-5. पी० मेहता : स्पीचेज, पृ० 663-4 एन० जी० चदावरकर · सी० पी० ए०, प० 516 दत्त : सी०पी०ए०, पृ० 478, 480, ओपन लैटर्स', पृ० 17, ई० एच० II, पृ० XIII एन० के० एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०—1901, पृ० 140. श्रीराम · एल० सी० पी० 190, खंड XLI पृ० 146-7. एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 684-5. जे० बैंजामिन . रिप० आई० एन० सी०—1904, पृ० 128.
193. सामान्य किसान के विषय में भी सत्य यह है कि जीवन भर सूर्योदय से सूर्यास्त तक अनवरत और अथक श्रम करने के उपरांत भी वह बेचारा जीवन में समारोह के अवसर पर घर-गृहस्थी में आनंद मनाने के लिए मिट्टी के कुछ नए बरतनों, थोड़े बहुत जंगली फूलों, गांव की टमटम, पेट भर खाना, घटिया पान-सुपारी तथा तंबाकू के पत्तों और कहीं कहीं, कभी कभी, घटिया दिखावटी गहनों को जुटाने में ही टूटकर रह जाता है (पी० मेहता : स्पीचेज, पृ० 663) वस्तुतः भारतीय किसान के लिए कोई भी दिन उत्सव-समारोह का नहीं वह तो सारा वर्ष सूर्योदय से सूर्यास्त तक कठोर श्रम करता है उसे वर्ष में एक दिन का भी अवकाश नहीं मिलता. (ए० बी० पी०, 2 अगस्त, 1901).
194. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 619 स्वदेश मित्रन, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० एम० 30 अप्रैल 1897) नदी : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 117. पी० मेहता . स्पीचेज, पृ० 663. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 14. एन०पी० चदावरकर : सी०पी० ए०, पृ० 516, एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 684-5.
195. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 312 तथा वही, पृ० 619. पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 664. एन० पी० चदावरकर : सी० पी० ए०, पृ० 516.
196. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 775 और वाचा : रिप० आई० एन० सी० 1886, पृ० 61.

197 नौरोजी पावर्टी, पृ० 87-8 एन० पी० चदावरकर सी० पी० ए०, पृ० 515 स्वदेशमित्रन, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० एम, 30 अप्रैल 1897) मद्रास स्टैंडर्ड, 5 अगस्त तथा स्वदेश मित्रन, 5 अगस्त (आर० एन० पी० एम० 10 अगस्त 1901)

198 रानाडे · 'लैंड ला रिफार्म ऐंड एग्रीकलचरल बैंक्स', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 55 नौरोजी एसेज, पृ० 368 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 773 सी० सकरन नैयर सी० पी० ए०, पृ० 384 एन० सी० चदावरकर सी०पी०ए०, पृ० 521 एन० के० एम० अय्यर—रिप० आई० एन०सी०—1901, पृ० 140-1, दत्त ई एच II, पृ० XIII, 7-11

119 रानाडे एसेज, पृ० 52-3, 256 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 347 362 852 870 905 राय पावर्टी, पृ० 190

200 रानाडे एसेज, पृ० 326 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ०852 राय पावर्टी, पृ०191 जी०एस० अय्यर ई ए, पृ० 78 बगाली, 24 मई 1901 एच० आर०, अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 31 मई 1902)

201 ए० बी० पी, 24 दिसबर 1874 17 जुलाई 1884, 31 जनवरी 1892 2 जनवरी 1901 गनेश डब्ल्यू जोशी जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879(खड II, स० 1)पृ० 80 4 मई 1879 को पूना मे जनसभा मे पारित प्रस्ताव, वही, पृ० 84 रानाडे : डिकन एग्रिकलचरिस्ट बिल—जे० पी० एस०—अक्तूबर 1878(खड II स० 2) पृ० 55 तुलनीय मानकर—पूर्वोद्धृत खड I, पृ०214) 'लैंड ला रिफार्म ऐंड एग्रीकलचरल बैंक्स—पूर्वोक्त स्थल, पृ० 43-4, एल० एम० घोष स्पीचेज, पृ० 88 हिंदू 26 नवबर 1885 बगाली, 12 मार्च 1892 राय पावर्टी पृ० 195, 236 एन० पी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 518-9 दत्त सी०पी०ए०, पृ० 493, इग्लैंड 'ऐंड इंडिया', पृ० 147-8 स्पीचेज I, पृ० 14, 27 ई एच I, पृ० XX जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी०—1900, पृ० 29

202 ब्रिटिश दृष्टिकोण के लिए देखिए, डफरिन स्पीचेज, पृ० 240 चिसनी पूर्वोद्धृत, पृ० 395 कर्जन स्पीचेज, खड II, पृ० 166 1901 के अकाल आयोग के अध्यक्ष सर ऐटोनी मैकडानल के डिगबी के नाम पत्र, डिगबी की पुस्तक मे उदधृत, पूर्वोद्धृत पृ० 323

203 कर्जन . स्पीचेज, खड I, पृ० 313 4 'जब किसी देश के वासियो की बहुत बडी सख्या एक ऐसे उद्योग पर निर्भर हो जो स्वय वर्षा पर निर्भर हो तो स्पष्ट है कि वर्षा न होने पर सारी कृषि पर निर्भर जनता का बुरी तरह से प्रभावित होना तथा वर्षा के पूर्णत अभाव की स्थिति म जनता का विपन्न होना स्वाभाविक और निश्चित ही है,' भारत सरकार का 16 जनवरी 1902 का प्रस्ताव पूर्वोद्धृत, कडिका-3 तथा फोर्थ डिसिनियल मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेम रिपोर्ट, पृ० 332

204 कर्जन स्पीचेज, खड III, पृ० 160 और देखिए एलगिन स्पीचेज ,पृ० 345 जार्ज हैमिलटन 'इडियन डिबेट्स', 3 फरवरी 1902 लगभग 108-9 स्ट्रैचे 'इडिया' (1903), पृ० 210

205 कर्जन स्पीचेज, खड III, पृ० 160-1

206 दत्त स्पीचेज II, पृ० 56 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 665 तथा 'प्रकृति कितनी भी क्रूर क्यो न हो अपर्याप्त वर्षा के कारण फसले कितनी भी थाडी क्यो न हुई हो, अपने आप मे दुर्भाग्य और दुखरूप अकाल तथा सूखा, जिससे बहुसख्यक जनता नष्ट हो गई है, रोके जा सकते थे। वाचा सी० पी०ए०, पृ० 356-7, और देखिए, आर० एम० मायानी एल० सी० पी, 1897 खड XXXVI, पृ० 19 एन० के० एन० नैयर, रिप० आई० एन० सी०—1901, पृ 139

207 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ०346, 853 'प्रधान ऐंड भागवत' से तिलक का उद्धरण, पूर्वोद्धृत, पृ०102

एन० पी० चदावरकर सी० पी० ए०, पृ० 514 दत्त 'ओपन लैटर्स', पृ० 18 राय फैमिस, पृ० 24 एन० के० रामास्वामी अय्यर रिप० आई० एन० सी०—1901, पृ० 134 केसरी, 25 दिसबर आर० एन० पी० बबई 29 दिस० 1900)

208 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 346, 869 हिंदू—2 अप्रैल 1900 रामास्वामी अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1900, पृ० 134 दत्त 'ओपन लैटर्स', पृ० 18

209 ए०बी०पी०, 1 मार्च 1897 मधोलकर पूर्वोद्धृत, पृ० 33 आई० एन० सी० 1896 का प्रस्ताव XII, आई० एन० सी० 1900 का प्रस्ताव II आई० एन० सी० — 1892 का प्रस्ताव III. दत्त ई० एच० I, पृ० VII राय फैमिस, पृ० 29-30

210 दत्त ई० एच० I, पृ० VII केसरी, 10 अप्रैल (आर० एन० पी० बबई 14 अप्रैल 1900) मद्रास स्टैंडर्ड, < अगस्त स्वदेशमित्रन, 5 अगस्त (आर० एन० पी० एम० 10 अगस्त 1901) वाचा सी० पी० ए०, पृ० 537 तुलनीय—भारत सरकार कम से कम इस तथ्य से तो सतुष्ट हो सकती है कि भारत मे खाद्यान्न सभरण की लगभग कोई कठिनता नही। यहा तक कि सूखो के दिनो मे भी इस महाद्वीप मे पर्याप्त खाद्य उपलब्ध हैं —भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन का 26 जुलाई 1900 को हाउस आफ कामस मे कथन, ईसाई (चतुर्थ वर्ग) खड LXXXVI लगभग 1346

211 राय फैमिस, पृ० 78 और देखिए, एन० जी० चदावरकर सी० पी० ए०, पृ० 514 श्रीराम एल० सी० पी०, 1901 खड XL पृ० 238 तथा एल० सी० पी०, 1902 XLI पृ० 147 ए० बी० पी०, 13 नवबर 1901, एस०एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 683, केसरी—21 जुलाई (आर० एन० पी० बबई, 25 जुलाई 1903)

212 जी० सी० अय्यर रिप० आई० एन० सी०—1900, पृ० 31 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 656 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 559

213 नौरोजी पावर्टी, पृ० 656 और स्पीचज, पृ० 237 राय फैमिस पृ० 32 दत्त ई० एच० I, पृ० VII तथा ई० एच II पृ० VI, बैनर्जी सी० पी० ए०, 683-4

214 वस्तुत अन्न की न्यूनता अथवा अभाव नही प्रत्युत निर्धनता के कारण क्रयशक्ति के अभाव को ही वस्तुत भारतीय अकाल कहा जाता है, (ए० बी० पी०, 22 मई 1892) और ज्ञानप्रकाश 16 जनवरी (आर० एन० पी० बबई, 18 जून 1879) साम प्रकाश, 1 दिस० (आर० एन० पी० बग, 6 दिस० 1884) मराठा 29 मार्च 1891 मधोलकर पूर्वोद्धृत, पृ० 38 नौरोजी पावर्टी, पृ० 656 केसरी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बबई, 7 अप्रैल 1900) राय फैमिस, पृ० 31 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 557 श्रीराम एल० सी० पी०, 1901 खड XL पृ० 238 एम० के० पटेल रिप० आई० एन० सी०, 1902, पृ० 76 बगाली, 9 मार्च 1902

215 गोखले वेलबी कमीशन, खड III, प्रश्न 18314-8 भारत जीवन, 25 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 3 अगस्त 1898) तिलक रिप० आई० एन सी०, 1900, पृ० 36 बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 684 केसरी, 25 दिस० (आर० एन० पी० बबई, 29 दिसबर 1900) श्रीराम एल० सी० पी०—1902 खड XLI पृ० 147

216 आई०एन०सी०—1896 का प्रस्ताव XII आई० एन० सी०—1897 का प्रस्ताव IX आई०एन० सी०—1901 का प्रस्ताव VII सी० सकरन नैयर सी०पी०ए०, पृ०383 जी०सी० अय्यर रिप० आई० एन० सी०—1900, पृ० 29 एन० के० एन अय्यर : रिप० आई० एन० सी०—1901, पृ० 140 राय फैमिस, पृ० 29, नौरोजी स्पीचेज, पृ० 251. एस० एन० बैनर्जी . सी० पी० ए०, पृ० 683.

217. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 152. आई० एन० सी० — 1896 का प्रस्ताव XII. मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 33. आई०एन० सी०—1900 का प्रस्ताव II. चंद्रावरकर : सी०पी०ए०, पृ० 514. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 560. दत्त : ओपन लैटर्स, पृ० 18. रामास्वामी अय्यर : रिप० आई० एन० सी—1901, पृ० 134 कैसरे हिंद, 22 सितंबर (आर० एन० पी० बंबई 28 सितंबर 1901).

218. यहां तक कि लोग अच्छी फसल के वर्षों में आधे भूखे रहते थे और जब बुरे दिन आते थे तो वे बेचारे शीघ्र ही मृत्यु का ग्रास बन जाते थे—(नौरोजी : पावर्टी, पृ० 656). और देखिए, वर्षा के अभाव से तो देश के किसी भाग की ही फसल नष्ट होती है. वस्तुतः लोगों की दरिद्रता ही तीक्ष्ण अकालो को निमन्त्रित करती है —(दत्त, ई एच II-पृ० 5)

219. ऊपर देखिए.

220. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 752. उपजाऊ धरती, उत्तम भौगोलिक स्थिति तथा उत्पादन के अनुकूल वातावरण की विविधता से सपन्न ऊचे स्तर के खनिज साधनों से समृद्ध तथा अल्पव्ययी, विवेकी, शातिप्रिय तथा परिश्रमी जनसख्या वाला यह देश संपत्ति के उत्पादन और सचय के लिए अपवादात्मक सुविधाओं से सपन्न है. इस प्रकार की स्पृहणीय स्थिति में ऐसा कोई कारण नही होना चाहिए कि भारत न केवल कवियो द्वारा प्रशसित अपितु इतिहासकारों तथा समकालीन लेखकों द्वारा भी समर्थित वैभव मे अतीत की श्रेष्ठता को प्राप्त न करे —(मधोलकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 35). जी० एस० अय्यर ने अठारहवी काग्रेस को निर्दिष्ट किया, भारत के पास समृद्धि की पूर्वाकाक्षित आवश्यकताओ मे एक है, सभी सभव कृषि उत्पादनों तथा दस्तकारियों को खपाने के लिए बहुत बडी मंडी है रिप० आई० एन० सी०—1902, पृ० 72. और, नौरोजी · पावर्टी, पृ० 40. सी सकरन नैयर : सी० पी० ए०, पृ० 384. दत्त · स्पीचेज II पृ० 37. ई एच II, पृ० 611. एन० के० एन० अय्यर रिप० आई० एन० सी०-1901, पृ० 140-1 जी० सी० अय्यर ई ए—परिशिष्ट-ए, पृ० 3.

221. जान आदम : 'दि परमानेंट सेटलमेट क्वैश्चन इन इडियन पालिटिक्स', पृ० 80. जान स्ट्रैची ने शायद 'फाइनेंशल स्टेटमेंट'—1878-9 कडिका-2 मे पहले ही इस विरोधाभास को अभिव्यक्ति दी थी

222. हमारे अपने ही देश के इतिहास का अध्ययन इस महान सत्य का बड़े विलक्षण ढग से उद्घाटन करता है कि हम कितने विपन्न और कितने अपमानित हैं ? हमारा दुर्भाग्य श्रेणीबद्ध और शृखलाबद्ध रूप मे आता रहा है जिसकी प्रत्येक कड़ी का विश्लेषण किया जा सकता है. हम भाग्य के क्रूर हाथो के शिकार नही हुए, हम अभूतपूर्व सकटो का शिकार नही हुए और जहा परिस्थितियो ने वास्तव मे ही हमारी नियति पर पूर्ण अकुश लगाया है, वहा भी यदि हम प्रयत्न करते तो आशिक रूप से उन परिस्थितियों पर नियत्रण कर सकते थे और इसके फलस्वरूप देश का और कदाचित व्यापक रूप से विश्व का चेहरा बदल सकते थे. —एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 26. अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 12 अगस्त 1886 के अक में लिखा—भारत की दरिद्रता और दुर्भाग्य का वास्तविक कारण ईश्वर की कृपणता न होकर मानव की लोभ-लालसा है

223. आर्थिक नियमों का तो यूरोप और एशिया में एक ही रूप है। यदि भारत दरिद्र है तो यह आर्थिक कारणों का ही व्यापारगत प्रभाव है · आर्थिक नियम तो अपने व्यापार में अचल और अपरिवर्तित रहते हैं. दत्त : ई एच II पृ० XVI-XVIII और देखिए उनकी पुस्तक; 'इग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 144, स्पीचेज II, पृ० 63. ई एच I, पृ० VI, XII-XIV तथा वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 560. 'थोड़ी पूर्व सूचना के लिए, भारतीय नेताओं द्वारा भारतीय दरिद्रता के लिए प्रायः प्रस्तुत कारण थे, 'भारत के देशी उद्योगों का विनाश और उसके फलस्वरूप देश का ग्रामीकरण.

किसानों से भारी भू राजस्व की मांग, महंगा प्रशासन और परिणाम में ऊंचे कराधान तथा भारत से इंग्लैंड को धन की निकासी.'

224. 1900 में लार्ड कर्जन ने मद्रास महाजन सभा के सदस्यों को परामर्श दिया कि सरकार की आलोचना करने की अपेक्षा वे किसान को साहूकार और कानूनी कचहरियों से बचाने में अपना समय लगाएं. —कर्जन : स्पीचेज, खंड II पृ० 166 तथा देखिए, डफरिन : स्पीचेज, पृ० 241-2.

225. 1902 के भू-राजस्व प्रस्ताव ने समीक्षकों को चेतावनी दी कि वे स्वयं अपने द्वारा तथाकथित पहचाने रोग और सरकार के कर्तव्य अथवा शक्ति क्षेत्र के अंतर्गत उसके उपचार के प्रयोग के संबंध में अत्यंत विकृत विश्लेषण प्रस्तुत न करें. (बल दिया गया, पूर्वोद्धृत, कंडिका 31).

226. आई० एन० सी०—1891 का प्रस्ताव III. प्रस्ताव के उपसंहार में ग्रेट ब्रिटेन तथा आयरलैंड की जनता से अनुनय विनय की गई कि वह निस्सदेह शुभ इच्छाओ से प्रेरित होते हुए भी पर्याप्त रूप से असंतोषप्रद वर्तमान प्रशासन की त्रुटियो से और अधिक जनहानि न होने दें. —प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मदनमोहन मालवीय ने जोर दिया : इस प्रस्ताव मे हम उन कारणो का उल्लेख कर रहे हैं जिसके लिए सरकार ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी है और साथ ही हम वे उपचार सुझा रहे हैं जिनके प्रयोग का प्रत्यक्ष संबंध सरकार से है, परंतु यह तभी संभव है जब सरकार इस ओर ध्यान देने की चिंता करे. वस्तुतः यदि सरकार को अपने को सभ्य सरकार कहलाने की चिंता है तो इन उपचारों का प्रयोग उसका प्रमुखतम कर्तव्य है. —(मालवीय : स्पीचेज, पृ० 229) और देखिए, उदाहरणार्थ, नौरोजी . पावर्टी, पृ० 216-7, स्पीचेज, पृ० 225, 228, 306 परिशिष्ट पृ० 17, 78. एसेज, पृ० 368. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 785-6, 818. आई० एन० सी०; 1892 का प्रस्ताव IX. नैयर : सी०पी०ए०, पृ० 384. दत्त : 'इंग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 144. स्पीचेज II पृ० 37. ई एच II पृ० 611-2, 614. (वस्तुतः यही भावना उनके आर्थिक इतिहासों के दोनो खंडों की भूमिकाओं में सन्निहित है) जी० सी० अय्यर : वेलबी कमीशन खंड III प्र० 18644 ई०ए, पृ० 3. नंदी : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 134. तिलक : रिप० आई० एन० सी०—1900, पृ० 36 तथा प्रधान ऐंड भागवत में उद्धृत,—पूर्वोद्धृत, पृ० 102, 143-4 वाचा : सी०पी०ए०, पृ०626. एन० श्री निवास वरदाचारी : रिप० आई० एन० सी०—1903, पृ० 66. 9 मार्च 1902 के अंक में 'बंगाली' ने टिप्पणी की : सरकार स्वाभाविक रूप से स्पष्ट कारणो से ही राष्ट्रीय दल द्वारा भारत के अकालों के संबंध में प्रस्तुत विश्लेषण को स्वीकार करने को उद्यत नही । क्योंकि इसकी स्वीकृति का अर्थ वर्तमान सारी प्रशासन व्यवस्था का ऐसे आधार पर पुनर्गठन होगा जो 'भारत पहले अंग्रेजों के लिए और बाद में भारतीयों के लिए' वाले सिद्धांत के विरुद्ध पड़ेगा ।

अध्याय 2

औद्योगिक विकास : एक

भारतीयों की विशाल जनमंख्या कृषि में प्रशिक्षित है। भारतीय शारीरिक दृष्टि से कृषि के उपयुक्त हैं। वे कृषि को छोड अन्य किसी उद्योग में प्रवृत्त ही नहीं हो सकते।

लार्ड कर्जन

भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व जमाने के दिन से ही इंग्लैंड की निश्चित नीति भारत को इंग्लैंड के शिल्पकारों और औद्योगिक व्यापारियों के लाभ के लिए कच्चा माल पैदा करने वाले देश के रूप मे बदलने की रही है।

सुरेंद्रनाथ बनर्जी

स्वदेशी उद्योग-धंधों का ह्रास

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के महत्वपूर्ण परिणामों में से एक था, भारतीय कस्बों की हस्तकलाओं और ग्रामों के हस्तशिल्प उद्योगों के क्रमश: बढते क्षय और विध्वंस के फलस्वरूप कृषि और उद्योग व्यवसायों के सदियों पुराने ऐक्य का छिन्न भिन्न होना।[1] 18वीं शताब्दी तक भारत की आर्थिक दशा अपेक्षित रूप से उन्नत थी तथा भारत की उत्पादन विधियां तथा उसके व्यापारिक और औद्योगिक संगठन विश्व के किसी भी अन्य देश में प्रचलित इस प्रकार की विधियों और संगठनों की तुलना में रखे जा सकते थे।[2] हां, 19वी शताब्दी के अंत तक बहुत से स्वदेशी उद्योग-धंधे या तो पुनरुद्धार की सीमा के बाहर जाकर नष्ट हो चुके थे या विनाश के पथ पर बढ़ते हुए अंतिम सांस ले रहे थे जबकि आधुनिक उद्योग ने अभी पर्याप्त उन्नति नहीं की थी।[3]

प्रारंभिक भारतीय नेताओं की प्रमुख आर्थिक समस्या थी, देश की औद्योगिक दशा। उन्होंने भारत की दरिद्रता का विश्लेषण अधिकांशत: स्वदेशी उद्योगों के विनाश के फलस्वरूप औद्योगिक पंगुता तथा इस विनाश की पर्याप्त क्षतिपूर्ति के लिए आधुनिक उद्योग के द्रुत विकास में असफलता के रूप में ही प्रस्तुत किया।[4] प्रचलित विषयों पर लेख लिखनेवालों ने दिन-प्रतिदिन इस विषय पर अनवरत प्रहार किए तथा एक अथवा दूसरे उद्योग के विनाश पर निरंतर विलाप किया।[5] इस ह्रास की ऐतिहासिक प्रक्रिया

की खोज करते हुए उन्होंने बताया कि भारत कभी एक बहुत बड़ा शिल्प-उत्पादक राष्ट्र था और उसके औद्योगिक उत्पादन शताब्दियों तक एशिया तथा यूरोप के बाजारों की मांग की पूर्ति करते रहे हैं।[6] इस देश के कताई-बुनाई तथा अन्य उद्योग-धंधों ने लाखों नर-नारियों को पूर्णकालिक अथवा अंशकालिक आजीविका जुटाई है।[7] परंतु ब्रिटिश सत्ता के साथ यह सब कुछ लुप्त हो गया है। भारत ने अपना विदेशी बाजार ही नहीं खोया, प्रत्युत अपनी घरेलू मंडी भी खो दी है। इस समय भारत को बराबर बहुत बड़े परिमाण में विदेशी सामान का आयात करना पड़ रहा है।[8] फलस्वरूप जो देश अपने देशवासियों के लिए 50 वर्ष पूर्व तक स्वयं वस्त्रों का उत्पादन करता था, आज वस्त्रों के लिए दूर के मालिकों पर निर्भर हो गया है। यही स्थिति हमारे रेशम, ऊन, चर्बी तथा खाल उद्योगों की है। कुल मिलाकर यही हमारी शोचनीय दशा है और इस सारी स्थिति की सामूहिक समीक्षा करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हम पतन के उस भयंकर कगार पर खड़े हैं कि जहां से मामूली सा धक्का ही हमें निश्चित और पूर्ण विनाश के गहरे गड्ढे मे धकेल सकता है।[9] आर०सी० दत्त के अनुसार, 'विदेशी उत्पादनों द्वारा भारतीय शिल्प-उत्पादनों की स्थानापन्नता ब्रिटिश भारत के इतिहास का निकृष्टतम अध्याय है'।[10] क्योंकि इसमे भारत के आर्थिक स्रोतों में हुए संकोच और भारतीयों की आजीविका में आई और अधिक कृच्छता तथा विषमता के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।[11] भारतीय नेताओं ने स्पष्ट किया कि अर्थव्यवस्था के कृषि संबंधी और उद्योग संबंधी क्षेत्रों के संतुलन में विकार ने और इसके फलस्वरूप औद्योगिक ह्रास ने न केवल राष्ट्रीय आय के एक बहुत बड़े तथा महत्वपूर्ण स्रोत को ही नष्ट-भ्रष्ट किया है प्रत्युत लाखों कारीगरों को परंपरागत व्यवसायों से वंचित करके उन्हें आजीविका के अन्य साधनों के अभाव के कारण, आजीविका के एकमात्र अवशिष्ट साधन कृषि पर अधिकाधिक निर्भर होने को विवश भी किया है।[12] इस प्रकार हस्तशिल्प उद्योगों के ह्रास ने भूमि पर लोगो का दबाव बढ़ा दिया है[13]। इसके फलस्वरूप भारत का ग्रामीकरण बढता जा रहा है और भारतीयों की अकेले कृषि के ही विपम साधनों पर निर्भरता मे वृद्धि हो रही है।[14] भारतीय जनता के आजीविका के लिए कृषि पर निर्भरता के बढ़ते अनुपात से भारत के ग्रामीकरण के विस्तार को नापा जा सकता है।[15] कृषि पर एकांत निर्भरता भी चिंतनीय है क्योंकि अनिश्चित वर्षा के रूप में प्रकृति की कृपा पर निर्भर होने के कारण यह एक अविश्वसनीय उद्योग है।[16] इसके अतिरिक्त देश का ग्रामीकरण भी एक भयकर आर्थिक रोग है क्योंकि कृषि भूमि के सीमित होने के कारण उसमे नए प्रवेश को खपाने की क्षमता नही है।[17] विचारणीय यह है कि एकांततः और पूर्णतया कृषि पर निर्भर रहने वाले राष्ट्र का दरिद्र होना निश्चित ही है।[18] बहुत से राष्ट्रीय नेताओं ने 1880 के अकाल आयोग की राय का अनुमोदन करते हुए उसे उद्धृत किया : भारत के लोगो की अधिकांश दरिद्रता का तथा अभाव के दिनों में अनुभूत खतरों का मूल कारण यह दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति है कि अधिकांशतः भारतीय जनता के लिए एकमात्र व्यवसाय कृषि है।[19] कृषि पर अवांछनीय भार कृषि संबंधी दक्षता को भी प्रभावित करता है।[20] इसके अतिरिक्त इससे खेतों का उपविभाजन हो जाता है, आवश्यकता से अधिक जुताई होने लगती है, घटिया और अनुत्पादक धरती

पर जुताई होने लगती है तथा जंगलों और चरागाहों पर अनुचित कब्जा किया जाने लगता है।[21] इन सबका परिणाम ग्रामो की प्रच्छन्न बेकारी है।'[22] जी० वी० जोशी ने भी निर्देश किया कि एक ओर भूमि को अवांछनीय श्रमिकों का भार सहन करना पड़ता है और दूसरी ओर बचत के अभाव के फलस्वरूप भूमि मे सुधार के लिए आर्थिक साधनो की कमी होती है।'[23] भूमि पर दबाव खेतिहरो मे सर्वथा अलाभकारी तथा बहुत ऊंचे किरायों पर धरती को लेने से विनाशकारी प्रतियोगिता की प्रवृत्ति को बढावा देता है।[24] इस प्रतियोगिता के कारण कृषि श्रमिक एक-दूसरे की मजदूरी का अवमूल्यन करते है।[25] रानाडे ने भी अनुभव किया कि आधुनिक भारत के ग्रामीकरण का अर्थ है उसे असभ्य बनाना अर्थात उसकी शक्ति, प्रतिभा और आत्मरक्षा की भावना का विनाश करना।[26] पारंपरिक उद्योग-धंधों के इस बढते हुए विनाश के साथ उनके स्थान पर नवीन उद्योगों की स्थापना मे असफलता का निकृष्टतम परिणाम यह था कि भारत का आर्थिक जीवन अधिकाधिक विदेशी आर्थिक प्रभुत्व के अधीन हो गया था। विदेशी शासको ने तुच्छ दृष्टि से भारत को ब्रिटिश अभिकर्ताओ द्वारा ब्रिटिश जहाजो पर लादने के लिए कच्चा माल उत्पन्न करनेवाली एक बस्ती के रूप मे ही लिया। भारत का कच्चा माल ब्रिटिश कारीगरी और ब्रिटिश धन से वस्त्रो के रूप मे परिणत होता था और फिर वही सामान ब्रिटिश व्यापारियो द्वारा भारत तथा अन्य अधीनरथ राज्यो मे ब्रिटिश व्यापार सघो के माध्यम से पुन निर्यातित किया जाता था।[27] परतु ग्रामीण तथा शहरी हस्त उद्योगो का यह द्रुत विनाश हुआ कैसे ? क्या यह समय अथवा परिस्थितियो के परिवर्तन का अपरिहार्य परिणाम था ? यदि ऐमा था तो यह एक दु खद प्रतिक्रिया के सिवा और कुछ नही था। इस सबध मे भी भारतीय नेताओ का विश्वास था कि मनुष्यो के नियत्रण मे बाहर की घटनाओ की भी भूमिका रही होगी। किंतु वस्तुत भारत के उद्योग-धधो का विनाश तो निश्चित रूप से हृदयहीन स्वार्थपरता तथा क्रूर अन्याय की एक करुण कहानी थी।[28] उन्होने इसका बहुत बडा उत्तरदयित्व ब्रिटेन पर तथा भारत मे स्थित ब्रिटिश अधिकारियो के कधे पर ही डाला, जिन्होने एक निश्चित सकल्प तथा विनाशक दृढता के साथ[29] भारत के उद्योगो के विनाश की सुविचारित नीति का अनुसरण किया।[30]

भारतीय नेताओ का विश्वास था कि ब्रिटिश अधिकारी ब्रिटेन के व्यापारियो और शिल्प उत्पादको के दबाव के कारण भारतीय उद्योगो पर उसके दुष्प्रभाव की चिता किए बिना, और यहा तक कि उनके मूल्य पर भी, इग्लैड के विकासशील उद्योग को प्रोत्साहन देने को दृढसकल्प थे।[31] उनके अनुसार भारत मे ब्रिटिश नीति का द्विपक्षीय उद्देश्य था, एक तो ब्रिटेन के औद्योगिक उत्पादनो की खपत के लिए भारत को एक मूल्यवान मडी बनाना, भले ही इसके लिए भारतीय उद्योग-धधो के कुचलने के लिए विविध तीव्र साधन ही क्यो न अपनाने पड़ें।[32] दूसरा, ब्रिटेन के तेजी से बढते हुए उद्योगो के लिए ब्रिटेन की बढती हुई आवश्यकता के कच्चे माल को सस्ती दर और सुनिश्चित परिमाण मे संतोषजनक सभरण के लिए भारत को कच्चे माल के उत्पादक कृषि देश के रूप मे परिवर्तित करना।[33] इन दोनों उद्देश्यो की सिद्धि भारतीय उद्योग धंधों को आघात पहुचाकर और

इस प्रकार भारतीय अर्थ व्यवस्था को ब्रिटिश उद्योगों की सहायक बनाकर ही की जा सकती थी।[34]

भारतीय नेताओं को पूरा यकीन था कि ब्रिटेन ने अपने राजनीतिक नियंत्रण का दुरुपयोग करते हुए भारत और ब्रिटेन में व्यापार में प्रतियोगिता की अन्यायपूर्ण परिस्थितियां उत्पन्न करके भारत के उद्योगों का बड़ी ही तत्परता और तेजी से विनाश किया है।[35] उन्होंने इतिहासकार एच०एच० विलसन के इस मत से सहमति प्रकट की कि विदेशी उत्पादन समान शर्तों पर समझौता अथवा बराबरी न कर सकने पर अपने प्रतियोगी को नीचा दिखाने और अंतत: उसका गला घोंटने के लिए राजनीतिक अन्याय के शस्त्र का प्रयोग करता है।[36] 1765 में बंगाल में ब्रिटिश प्रशासन के प्रारंभ काल से यह कहा जाने लगा कि शासकों ने स्वदेशी हस्त शिल्पों को कुचलने के लिए आदेश जारी किए हैं।[37] 1813 और 1833 की संसदीय जांचों का एकमात्र उद्देश्य भारतीय बाजार मे ब्रिटिश निर्माताओं के स्वदेशी उत्पादनों को अपदस्थ करने के साधन खोजना था।[38] भारतीय नेताओं के अनुसार इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए खोजा गया अति महत्वपूर्ण उपाय था, भेदमूलक सीमा शुल्कों का कराधान। भारतीय उत्पादकों के लिए जहां प्रतिबंधों और अत्यधिक ऊंची शुल्क पद्धति के कारण अंगरेजी बाजार तेजी से संकुचित होता जा रहा था, वहां उन्मुक्त व्यापार लागू होने के कारण भारतीय बाजार अंगरेज व्यापारियों के लिए अधिकाधिक विस्तृत होता जा रहा था।[39] 1848 मे भारत के इंग्लैंड को निर्यातों पर निषेधक करों को हटा दिया गया परंतु उस समय तक के कर अपना संहारक प्रहार कर चुके थे।[40] भारत का आंतरिक व्यापार भी अंतर्देशीय सीमा शुल्कों तथा संक्रमण शुल्कों की प्रथा के लागू होने से प्रतिबंधित तथा संकुचित था तथा इससे अपने ही बाजार में स्वदेशी उत्पादनों में एक दूसरे के विरुद्ध भेदभाव पनपता था।[41] ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी जुलाहों तथा अन्य दूसरे उत्पादकों पर एकाधिकारी नियंत्रण रखने के लिए, उन्हें अलाभकारी सस्ते दामों पर माल का उत्पादन करने के लिए विवश किया और इस प्रकार उन्हें अपना पैतृक व्यवसाय छोड़ने को बाध्य करने के लिए राजनीतिक शक्ति का दुरुपयोग किया।[42]

भारतीय अर्थनीति के विचारकों ने विदेशी शासकों द्वारा भारतीय उद्योग-धंधो के विनाश के सुविचारित प्रयत्नों की भूमिका पर विचार करते हुए अपने अंतिम विश्लेषण में इस तथ्य को तत्परता से अभिस्वीकार किया कि वाष्पशक्ति और उत्तम मशीनरी पर आधृत उत्पादन कला की श्रेष्ठता के कारण ही ब्रिटिश उत्पादक स्वयं भारत के बाजारों में ही भारतीय कारीगरों के उत्पादन के मुकाबले अपना बढ़िया और सस्ता उत्पादन खपा कर वास्तव में ही भारतीय उद्योग-धंधों को मंडी से बाहर धकेलने में सफल हुए हैं।[43] उदाहरणार्थ जस्टिस रानाडे ने इस तथ्य की पुष्टि की कि विदेश प्रतियोगिता विदेशी होने के कारण नहीं, प्रत्युत मानव श्रम के साथ प्राकृतिक शक्ति की प्रतियोगिता, अज्ञान और अकर्मण्यता के साथ सुनियोजित शिल्प कौशल तथा विज्ञान की प्रतियोगिता होने के कारण न केवल संपत्ति पर प्रत्युत उससे भी अधिक उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण दूसरों के कौशल, प्रतिभा तथा गतिविधि पर एकाधिकार को स्थानांतरित कर रही है।[44] बहुत से राष्ट्रवादी नेताओं की मान्यता थी कि केवल शिल्प कौशल की श्रेष्ठता से भारतीय हस्तकौशल का

समूल विनाश संभव नहीं था।[45] वस्तुत: सत्य यह है कि इसमें सहायक तत्व थे, रेलवे के शीघ्र निर्माण के रूप में भारतीय यातायात साधनों का विकास[46] तथा भारत में उन्मुक्त व्यापार की अनुमति।[47] ये दोनों तत्व भारत पर ब्रिटिश साम्राज्य के ही राजनीतिक परिणाम थे। इसके अतिरिक्त उनका प्रश्न यह था कि भारत को पराजित करनेवाली इंग्लैंड की द्रुत गति से विकसित शिल्पकला की उत्कृष्टता का आधार क्या था? उनके विचार में इस देश के तथा अन्य अधीनस्थ देशों के वासियों से अपरिमित धन की लूट से ही ब्रिटेन के मशीन उद्योग का पोषण और विकास संभव हुआ था।[48] कुल मिलाकर भारतीय नेताओं का यह मत था कि राजनीतिक शक्तियों के प्रयोग से प्रेरित आर्थिक नियम लागू होने से अतीत में भारतीय शिल्पकला की इंग्लैंड के उद्योगों पर प्रतिष्ठित श्रेष्ठता समाप्त होकर विरोधी को हस्तांतरित हो गई है।[49] यह उल्लेखनीय है कि इस युग के जन नेताओं ने ग्रामों के शिल्पों और कलाओं के ह्रास और विस्थापन पर ध्यान देने के बजाय कस्बों के हस्त उद्योग-धंधों के विनाश पर ही[49a] अपना ध्यान केंद्रित किया। इसमें भी उन्होंने न्यूनाधिक रूप में कच्चे माल के निर्यात तथा ग्राम पंचायतों के ह्रास और लोप के फलस्वरूप भारतीय समाज के उच्च और मध्यवर्ग के लोगों की रुचियों में आए परिवर्तनों के प्रभावों की उपेक्षा कर दी।

राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी उद्योगो के ह्रास को भारत की दरिद्रता का मूल कारण मानते हुए जनता की भौतिक स्थिति मे और अधिक गिरावट को रोकने के लिए तथा देश के आर्थिक पुनर्जागरण के लिए भारतीय हस्त उद्योग-धंधों की सुरक्षा, पुनर्स्थापना, पुर्नियोजन तथा आधुनिकीकरण को स्वाभावत: ही अपने कार्यक्रम का प्रमुख अग बनाया।[50] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बार बार अपनी घोषणा को दोहराया कि देश मे पड़नेवाले अकालों के निवारण की सही औषधि अन्यान्य उपायो के साथ वास्तव में नष्टप्राय स्वदेशी और स्थानीय कलाओं और उद्योगों के विकास को आगे बढानेवाली नीति अपनाना है।[51] इसके साथ ही भारतीय नेताओ ने यह भी स्पष्ट रूप से अभिस्वीकार किया कि अन्य देशों का अनुभव इस ओर संकेत करता है कि आज के मशीनी यंत्रों तथा विशाल उत्पादन के युग मे सस्ते प्राकृतिक अभिकरणों द्वारा संचालित उद्योगों के मुकाबले मे हस्तसचालित उद्योग-धंधों के फलने फूलने की सभावना कम ही है।[52] इन लक्षणों के बावजूद कुछ एक नेताओं का विश्वास था कि भारतीय हस्तशिल्पों के ह्रास की प्रक्रिया कितनी ही अपरिहार्य क्यों न हो, उसका संशोधन और व्यवस्थापन इस रूप में हो सकता है और अवश्य होना चाहिए कि इससे लोगों को यथासंभव न्यूनतम कष्ट हो। इसके अतिरिक्त इन उद्योगो को बड़े पैमाने के उद्योगों मे भी अपेक्षाकृत सुविधाजनक प्रक्रिया से बदलना चाहिए।[53] उनका सरकार पर एक अभियोग यह था कि उसने तकनीकी शक्तियों के प्रवर्तन मे संशोधन अथवा नियंत्रण की कोई चेष्टा नहीं की।[54] इस संबंध में आर्थिक चिंतन की उन्नत गहराई लिए हुई जी० वी० जोशी की टिप्पणियों का विस्तृत पुनर्लेखन समुचित होगा :

> ···कोई भी समझदार, दूरदर्शी, अपनी सत्ता के प्रति जागरूक तथा दायित्वों को समझने वाली सरकार अपने अधिकृत देश के औद्योगिक गठन में ऐसे विनाशकारी मौलिक परिवर्तनों को उन्हें रोकने के सशक्त उपाय किए बिना कदापि न होने देती।

निस्सदेह हस्त उद्योगो का भापशक्ति वाले उद्योगो मे परिवर्तन सर्वथा अनिवार्य है और इसे किसी भी देश मे रोका नही जा सकता, परतु भारत जैसे पिछडे और अर्ध-विकसित देशो मे स्पष्ट रूप से इन देशो की सरकारो का यह वैधानिक दायित्व है कि वह सामयिक और अस्थायी हस्तक्षेप द्वारा इस परिवर्तन को इस प्रकार से नियन्त्रित करे कि जिससे वह वहा के निवासियो के लिए लाभप्रद बन सके।[55]

आधुनिक उद्योगों को प्रोत्साहन

प्रारंभिक भारतीय नेताओ ने आधुनिक उद्योगो की स्थापना और उन्नति पर तो सदैव बल दिया किंतु आधुनिक उद्योगो के विकास के विरोध मे अथवा विकल्प के रूप मे हस्त-शिल्प उद्योगो के सरक्षण और पुनरुज्जीवन की इच्छा को कभी मन मे स्थान नही दिया।[56] उन्होने लगभग एक मत से यह स्वीकार किया कि आधुनिक मशीनो द्वारा देश के अर्थतत्र का पूर्णरूप से परिवर्तन उनकी अर्थनीतियो का प्रमुख लक्ष्य तथा देश के सभी आर्थिक रोगो की अचूक औषधि है। भारतीयों द्वारा आधुनिक उद्योगो की स्वीकृति और वकालत को आधुनिक भारत मे उद्योगीकरण के अग्रदूत जस्टिस रानाडे ने अपने देशवासियो को सबोधित निम्नलिखित प्रबोधन मे सर्वोत्तम रूप से इस प्रकार प्रकट किया है हमे सर्वोत्तम शिक्षको से सीखने के लिए यह ईश्वर द्वारा सुस्थापित व्यावहारिक कार्य है।···हमे अपने कच्चे माल के स्तर को सुधारना है अथवा हमारी धरती के उत्तम स्तर के उत्पादन के अनुकूल न होने पर उसका आयात करना है। हमे सहयोग द्वारा श्रम और पूजी को सग-ठित करना है और उन्मुक्त रूप से विदेशी कौशल तथा मशीनरी का तब तक आयात करना है जब तक हम अपने आप भली प्रकार कार्य करना सीख नहीं जाते है तथा उनकी सहायता की अपेक्षा छोड नही देते। हम बहुत अधिक पिछड गए है, अब हमे नए कामो मे हाथ डालना है तथा और अधिक कठोर श्रम के लिए ईमानदारी से कमर कसनी है। यह एक नागरिक गुण है जो हमे सीखना है। यदि हम इस गुण को अपनाते हैं तो युद्ध मे हमारी विजय निश्चित है। इसके विपरीत यदि हम इस गुण की उपेक्षा करते है तो पराजय मुह बाए खडी है···मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही कठोर श्रम सारे देश का धर्म बन जाएगा तथा प्राचीन भारत मे स्थाई रूप से नवीन भावनाओ का बिगुल बजेगा।[57]

भारतीय नेताओ ने नए उद्योगो की स्थापना की दिशा मे उठाए गए प्रत्येक पग का स्वागत किया तथा किसी भी प्रत्यक्ष रूप से यत्नसाध्य क्षेत्र मे भारतीयो की निश्चेष्टता पर विलाप किया और उन्हे अपने सभी साधनो को जुटाकर उद्योग तथा व्यापार मे प्रवृत्त होने के लिए प्रबोधित किया।[58] उनका युद्धघोष था : हमे अवश्य ही पूजीपति तथा उद्यमी बनना चाहिए। अपने देश को व्यापारियो का देश, मशीन बनाने वालो का देश तथा दुकानदारो का देश बनाना चाहिए।[59] कुछ महानुभावों की दृष्टि मे उद्योगीकरण जनता की प्रगति की एकमात्र भले न सही, अत्यधिक महत्वपूर्ण कसौटी अवश्य था।[60] यह एक-मात्र कसौटी थी जिसके आधार पर देश के आर्थिक विकास की गतिशीलता को देखा-परखा जा सकता।[61]

उद्योगीकरण के बहुत से बढ़ते हुए लाभों के कारण भारतीयों की दृष्टि में आधुनिक

उद्योगों पर बल देना सर्वथा न्यायसंगत था, क्योंकि वस्तुत: भारत की आर्थिक कठिनाइयों के मूल कारण अपूर्ण उत्पादन तथा अपूर्ण रोजगार ही थे। दरिद्रता तथा ह्रास के और अधिक विकास को रोकने की सही औषधि राष्ट्रीय संपदा को बढ़ाना तथा लाखों-करोड़ों लोगों को संपन्न बनने के लिए प्रोत्साहित करना था। यह सब आधुनिक उद्योगों और उत्पादनों के विकास द्वारा ही संभव था।[62] इसके अतिरिक्त भारत में अधिकांश जोतने योग्य भूमि को पहले ही जोता जा चुका था और इस प्रकार कृषि विस्तार अपनी सीमा पर पहुंच गया था।[63] इस स्थिति मे आधुनिक उद्योग एक ऐसा अभिकरण था जिससे भूमि पर आबादी के बढते हुए दबाव को कम किया जा सकता था तथा देश की निरंतर बढती हुई आबादी की देहाती अपूर्ण रोजगारी और बेरोजगारी कम की जा सकती थी और साथ ही आजीविका के वैकल्पिक साधन जुटाए जा सकते थे।[64] इस प्रकार किसी भी रूप मे आजीविका के अनिश्चित और संदिग्ध साधन, कृषि पर एकात निर्भरता को समाप्त करने के लिए तथा देश को और अधिक असभ्य बनने से रोकने के लिए देश का उद्योगीकरण आवश्यक था।[65] उद्योगो के विकास से ही कच्चे माल के निर्यात तथा उत्पादनों के आयात से होने वाली देश की संपदा की निकासी, और श्रम तथा पूजी की हानि आदि को घटाया जा सकता था।[66]

कुछ एक भारतीय नेता एक अन्य दृष्टि, देश की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति की दृष्टि, से भी बडे पैमाने के उद्योगों की आवश्यकता मानते थे। उनके अनुसार आधुनिक उद्योगों मे अधिक संपदा का ही उत्पादन नही होगा प्रत्युत उसमे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य उत्पादक शक्तियो का पूर्ण और बहुमुखी विकास भी होगा।[67] कृषि और उद्योग द्वारा कुल उत्पादित पूजी की राशि समान होने पर भी कृषि का संकीर्ण और सकुचित क्षेत्र आर्थिक विकास के निम्न स्तर को और इसके विपरीत उद्योग और वाणिज्य का क्षेत्र उन्मुक्त तथा उन्नत विकास को सूचित करता है।[68] इसके अतिरिक्त यह भी माना जाता था कि औद्योगिकता सभ्यता के उच्च स्तर तथा विशिष्ट आदर्श का प्रतिनिधित्व करती है।[69] साथ ही यह देश की संस्कृति, चरित्र और प्रतिभा के विकास और विस्तार मे सहायक होती है।[70] 1890 मे रानाडे ने लिखा : स्कूलों और कालेजों की अपेक्षा कारखाने और मिलें अधिक प्रभावशाली ढंग से राष्ट्र की गतिविधियो को जन्म दे सकती है।[71] इसके अतिरिक्त संक्षेप मे आधुनिक उद्योग ही एक ऐसी शक्ति है जो भारत के विभिन्न लोगो को सामान्य लाभ के आधार पर एक राष्ट्रीय सत्ता के रूप मे संगठित करने मे सहायक हो सकती है।

राजनीतिक अधिकारों के लिए आदोलन भारत के विभिन्न राष्ट्रवादियो को कुछ समय के लिए एकता के सूत्र में अवश्य बांध सकता है परंतु इन अधिकारों की उपलब्धि पर हितों की समानता समाप्त हो सकती है। इसके विपरीत विभिन्न भारतीय राष्ट्रवादियों का एक बार वाणिज्य संगठन स्थापित हो जाने पर वह कभी अस्तित्वशून्य नही हो सकता। अतएव वाणिज्य और उद्योग संबंधी गतिविधि बड़ा सुदृढ़ संगठन है तथा भारत के महान राष्ट्र के निर्माण का एक सशक्त तत्व है।[72]

इस प्रकार 19वीं शताब्दी के अंत तक देश के आधुनिक ढंग से उद्योगीकरण की माग

को राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हो गई थी। समीक्षाधीन काल की अवधि में एक भी ऐसा राष्ट्रवादी समाचारपत्र अथवा लोकनायक नहीं था जिसने भारत में पश्चिमी तकनीक और उद्योग के प्रवर्तन और उन्नयन की वांछनीयता और उपयोगिता पर कभी संदेह किया हो अथवा उन्हें नकारा हो। बड़े पैमाने के पूंजीमूलक उद्योग के विरुद्ध अकेला स्वर कलकत्ता से प्रकाशित 'दि डान' पत्रिका के संपादक सतीशचंद्र मुखर्जी का था। 1905 से पूर्व के वर्षों में तो उनका महत्व अपेक्षाकृत कम था परंतु उसके उपरांत उन्होंने प्रमुखतया अपने बहुत सारे प्रसिद्ध शिष्यों के प्रभाव के कारण बंगाल के राजनीतिक जीवन मे अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया था। संक्षिप्त रूप से इस संबंध में प्रस्तुत उनके विचार दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण थे। एक ओर वे कुछ रूपों में महात्मा गांधी द्वारा अपनाई गई नीति से मिलते जुलते थे और दूसरी ओर वे निगम पद्धति से मेल खाते थे।[73] उनके अनुसार आधुनिक उद्योग पद्धति मे दो प्रमुख दोष थे। एक ओर यह पूंजीपतियों के एक छोटे से परंतु सुसंगठित अल्पसंख्यक वर्ग को जन्म देता है और दूसरी ओर यह भयंकर श्रम संगठनों के रूप मे श्रमिकों को इकट्ठा होने की प्रेरणा देता है जो विशेषतया भारत जैसे विशाल देश के लिए निश्चित रूप से एक स्थाई सामाजिक तथा राजनीतिक खतरा बन सकता है। इसके उपचार के लिए उन्होंने दो उपायों का सुझाव दिया। प्रथम, अधिकांश उद्योगों को पारिवारिक हस्तकलाओं के आधार पर संगठित किया जाए तथा बड़े पैमाने के पूंजीमूलक उद्योगों में केवल उन कुछ एक उद्यमों (इंजीनियरी, खान, रेलवे, आदि) को ही विकसित किया जाए जिनकी आवश्यकता समाज के बहुत बडे वर्ग को व्यक्तिगत रूप में तथा पारिवारिक शिल्पों के लिए रहती है। द्वितीय, सामूहिक नैतिक जीवन का इस प्रकार से संयोजन करना चाहिए कि इसके अंतर्गत सामाजिक जीवनतंत्र मे प्रत्येक वर्ग का एक निश्चित, सम्मानित तथा स्वतंत्र स्थान हो। प्रत्येक व्यक्ति पारस्परिक सहयोग और समन्वय की भावना से इस प्रकार कार्य करे कि उससे सभी को समान रूप से लाभ मिले, सारे भारतीय समाज का संयुक्त रूप मे भौतिक उत्कर्ष और आध्यात्मिक विकास हो।[74]

कुछ एक अन्य भारतीय लेखको ने भी पश्चिम की प्रतियोगिता और लोलुप प्रवृत्ति वाली औद्योगिक संस्थाओं की आलोचना की। उनके विचार मे इन संस्थाओ ने सामाजिक संबंधों को भ्रष्ट करके रख दिया है और मनुष्य को 'अपने द्वारा अपने लिए जीने' पर बाध्य कर दिया है।[75] 'पूना सार्वजनिक सभा' के अप्रैल 1893 के अंक में प्रकाशित 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया' लेख के अज्ञात लेखक द्वारा समकालीन पश्चिमी यूरोपीय पूंजीवाद पर निंदित स्वर में घोषित अभियोग से बड़ा अभियोग किसी भी तत्कालीन अन्य लेखक द्वारा नहीं लगाया गया :

> अतीत की सभी क्रूरताएं मिलकर भी अपनी तीव्रता में जीवन की आवश्यकताओं के असमान वितरण, धन संपत्ति के केंद्रीकरण, श्रम पर पूंजी की वैध दासता, अपर्याप्त आजीविका के कारण दुखों और वेदनाओं, भुखमरी से होने वाली असंख्य मृत्युओं तथा कुंठा और निराशा के कारण हुई अनभिलिखित आत्महत्याओं के रूप में प्रस्तुत दीर्घकाय दुर्भाग्य का मुकाबला नहीं कर सकती।[76]

इन लेखकों ने पश्चिमी औद्योगिकता के दोषों को जानते हुए भी उसे उसके मूल रूप में भी नकारा नही क्योंकि मूलतः वे लेखक पूर्वी जीवनपद्धति की अपेक्षा पश्चिमी जीवन-पद्धति मे ही विश्वास करते थे। इसके अतिरिक्त वस्तुत· अब भारत के चाहने या न चाहने की कोई बात ही नही रह गई थी क्योकि अब तक तो वह सांसारिक पूजीवादी प्रणाली का एक अंग बन चुका था और अब उसके लिए अलग अलग रहना संभव ही नही था। अतएव उस समय अपरिहार्य मार्ग को स्वीकार करना, समय की माग के अनुसार अपने आपको ढालना तथा सभ्यता के बढते कदम के साथ कदम मिलाना ही अधिक उपयुक्त था।[77]

कालक्रम की दृष्टि मे भारत मे सर्वप्रथम नील चाय तथा काफी बागान के उद्योग ही शुरू हुए। उनका स्वामित्व एकाततः यूरोपीयो का था और वे पूर्णतः आधुनिक मशीनी आविष्कारो पर निर्भर नही थे। अतएव भारतीयो का इस ओर विशेष ध्यान ही नही गया। भारतीय नेता तो फैक्टरी उद्योग के प्रति दत्तचित रहे और इनकी उन्नति के साथ ही अपना प्रमुख नाता जोडे रहे। रेलवे का आगमन भारत मे आधुनिक मशीनरी के प्रवेश की घोषणा थी और 1850 की अवधि मे भारत मे सूती कपडा, पटसन तथा कोयला खान उद्योग स्थापित हो चुके थे। अतिम दो औद्योगिक क्षेत्र प्रमुख रूप से यूरोपीय पूजी के अतर्गत थे अत भारतीयो के उद्यम और आशा का केंद्र एकमात्र सूती कपडा उद्योग ही था। यही कारण है कि इसे अपने जन्मकाल से ही देश के कारखाना उद्योगो मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। 1879 मे देश मे 56 सूती मिलें थी और इनमे लगभग 43,000 व्यक्ति काम करते थे। इनमे 75 प्रतिशत कारखान बबई प्रात मे स्थित थे। 1882 मे केवल 22 पटसन मिलें थी और उनमे मे अधिकाश मिले बगाल मे थी। इनमे लगभग 20,000 व्यक्ति कार्यरत थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि 1880 तक भारत मे आधुनिक उद्योग का विस्तार अत्यत स्वल्प था, पुनरपि वह स्वल्प विस्तार भारतीय नेताओ और उद्यमियो के दूरदर्शी वर्ग मे आधुनिक उद्योग के प्रति रुचि उत्पन्न करने मे तथा उनके प्रलोभन को बढाने मे पर्याप्त समर्थ था। 1880 के उपरात देश मे औद्योगिक विस्तार ने मंद होने पर भी निरतरता ग्रहण की और इसके फलस्वरूप 1901-02 मे भारत मे 1,14, 795 व्यक्तियो को सेवारत करनेवाली 36 पटसन मिलें, 1904-05 मे 1,96,369 व्यक्तियों को आजीविका देने वाली 206 सूती कपडा मिलें और 1906 मे लगभग 99,000 लोगों को काम देने वाले कोयला खान आदि उद्योग अस्तित्व मे आए। इस अवधि में अपेक्षाकृत कम विस्तार से पनपने वाले अन्य उद्योग थे : रुई बेलन यंत्र, चावल, आटा और इमारती लकडी की मिलें, चमड़ा कमाने के कारखाने, ऊनी कपडे की मिलें, कागज और चीनी मिलें तथा नमक, अभ्रक, शोरा, पैट्रोल तथा लोहा जैसी धातुओ के उद्योग, थोडी सी इंजीनियरी और रेलवे कर्मशालाएं तथा लोहे और पीतल की ढलाई करने के कारखाने भी अस्तित्व मे आए।[78] स्पष्ट है कि हमारे अध्ययन के काल की अवधि में भारत में औद्योगिक प्रगति कुल मिलाकर बहुत ही धीमी थी तथा रुई और पटसन उद्योगो तक ही सीमित थी।[79] अतः यह स्वदेशी हस्तशिल्पों के विस्थापन की क्षतिपूर्ति मे भी समर्थ नहीं थी।[80]

यह स्वाभाविक था कि भारतीय नेताओं का ध्यान देश की औद्योगिक प्रगति को

विलंबित करने वाले कारणों की जांच की ओर तथा साथ ही प्रयोग में लाए जाने वाले उपचारों की खोज की ओर जाता। सर्वप्रथम भारतीय नेताओं ने इंग्लैंड में तथा भारत में सरकारी क्षेत्र में व्यापक रूप से अत्यंत लोकप्रिय इस धारणा का खंडन तथा विरोध किया कि भारत के भाग्य में एक महान औद्योगिक देश बनना नहीं बदा था और एक उष्ण कटिबंधीय देश होने के नाते उसकी प्राकृतिक भूमिका यूरोपीय देशों के प्राकृतिक तकनीकी और वैज्ञानिक अभिरुचि रखने वाले उत्पादकों के प्रयोग में आनेवाले कच्चे माल के उत्पादन की थी।[81] भारत के अति प्राचीन काल से ही एक अत्यंत उपयुक्त महान उत्पादक देश होने के साक्ष्य में भारतीय नेताओं ने अनेक उत्पादन कलाओं में देश की अतीत की उपलब्धियों का उल्लेख किया।[82] इसके अतिरिक्त उन्होंने इस तथ्य को स्वतःसिद्ध प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया कि भारत आधुनिक उद्योग के लिए अपेक्षित कच्चे माल आदि का उत्पादक है और इस प्रकार यह स्वाभाविक रूप से सर्वाधिक सस्ता उत्पादक देश होने के योग्य है।[83] यहा यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीयों में किसी भी देश को व्यावसायिक तथा औद्योगिक दृष्टि से महान बनाने में सहायक बहुत सी विशेषताएं, दूरदर्शिता, प्रतिभा, कौशल, आत्मविश्वास तथा कठोर श्रम की क्षमता विद्यमान है।[84] फलतः भारतीय नेता कुछ एक अन्य मानवनिर्मित न कि ईश्वरनिर्मित वित्तीय बाधाओं को समुचित सामाजिक प्रयत्नों द्वारा मार्ग से हटा दिए जाने पर भारत के औद्योगिक भविष्य की उज्ज्वलता के संबंध में आशावादी ही नही थे, प्रत्युत पूर्ण रूप मे विश्वस्त थे।[85]

पूंजी की कमी

राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारत के पास भूमि और श्रम की तो प्रचुरता थी, परंतु बड़े पैमानें पर उद्योगो की स्थापना के मार्ग मे, औद्योगिक चेष्टाओं के लिए अपेक्षित पूजी की कमी एक बडी भारी अड़चन थी।[86] रानाडे ने लिखा कि जिस प्रकार भारत की भूमि प्यास मे तडप रही है, उसी प्रकार देश का उद्योग पूजी के अभाव में झुलस रहा है।[87] पूजी के अभाव की समस्या के दो पहलू थे: (क) जमा पूजी तथा चालू बचत की विरलता।[88] इसके कारण थे, निकट भूतकाल मे शांति और सुरक्षा का अभाव।[89] भारत की अत्यधिक निर्धनता, जिसके कारण सामान्य बचत असंभव न सही परंतु अति कठिन अवश्य थी।[90] हिंदुओं की सामाजिक प्रथाएं तथा धार्मिक मान्यताएं जिसके अनुसार वे संपदा के संग्रह की अपेक्षा उसके उपविभाजन में ही विश्वास रखते थे।[91] लोगों की जेबें काटने वाले ऊंचे सरकारी कराधान[92] तथा संपदा की आर्थिक निकासी, जिसके अंतर्गत समाज की सशक्त बचतों का बहुत बड़ा भाग विदेशों को चला जा रहा था।[93] (ख) आधुनिक उद्योग की देश मे उपलब्ध परंतु बिखरे हुए आर्थिक साधनों को संजोने तथा उन्हें गति देने में असफलता।[94] यह असफलता एक तो बड़े उद्यमों के प्रवर्तन तथा उनमें सफलता प्राप्ति के लिए अनिवार्य रूप से अपेक्षित पूजीपतिवर्ग में पारस्परिक विश्वास के साथ मिलजुल कर काम करने की प्रवृत्ति के पारस्परिक सहयोग की भावना के तथा नियमित और संगठित रूप से कार्य संचालन की प्रवृत्ति में अभाव का[95] और दूसरे आधुनिक बैंकों जैसे अपेक्षित पर्याप्त साख संगठनों के अभाव का परिणाम थी, और केवल इन्हीं साधनों के

जरिए असंख्य निवेशकों की छोटी बचतो को पूजी के अभाव से ग्रस्त आधुनिक उद्योगो की ओर प्रवाहित किया जा सकता था।[96] बडे पैमाने के उद्योगो का पूजी को अपनी ओर न खीच पाने का आशिक कारण यह भी था कि भारतीय धनाढ्य अनुद्यमी थे और वे किसी प्रकार का खतरा मोल लेने को उद्यत नही थे।[97]

भारतीय नेता इस तथ्य से सहमत थे कि संचित पूजी की राशि रातोरात नही बढाई जा सकती परतु उनका कथन यह था कि ग्रेट ब्रिटेन के लिए भारत से होने वाली निकासी को रोककर[98] तथा भारतीयो मे दृढतापूर्वक मितव्ययिता से रहने तथा बचत करने की प्रवृत्ति को पनपाकर चालू बचतें बढाई जा सकती हैं।[99] इसके अतिरिक्त उन्होंने देश के उपलब्ध पूजी स्रोतो के उपयुक्त उपयोग के लिए भी सुझाव दिए। उन्होने जमीदारो और राजाओ का, देश के एकमात्र सपन्न व्यक्ति होने के नाते, देश के विकासशील बड़े पैमाने के उद्योगो को वित्तीय सहायता देने के लिए आगे आने का परामर्श दिया।[100] उन्होंने लोगों से अपने गुप्त सचयो को बाहर निकालने का अनुरोध किया।[101] उन्होंने आधुनिक बैंको, बीमा कपनियो आदि के माध्यम मे उत्तम साख सगठन की स्थापना की वकालत की जिससे धन के छोटे छोटे, बिखरे हुए निर्जीव कणो को निस्सीम विस्तार के योग्य सुनियोजित तथा सजीव पूजी मे परिवर्तित किया जाए।[102] उन्होने सर्वाधिक बल [illegible] देशो मे अत्यंत सफल सिद्ध होने वाली 'मिश्रित पूजी समुदाय' नामक पूजीवादी सस्था अपनाने के रूप मे पारस्परिक विश्वास की प्रवृत्ति के प्रसार पर तथा वैयक्तिक प्रयासो के सयोजन पर दिया।[103] उन्होंने इस सबध मे दूसरे अभीष्ट उपायों (अगले अध्याय मे विवेचित) के रूप मे राज्य द्वारा सहायता और प्रोत्साहन पर विशेष बल दिया।

तकनीकी शिक्षा

औद्योगिक विकास की दिशा मे उल्लेखनीय बाधक तत्वो मे प्रमुख था, भारत मे पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित तकनीशियनो की कमी। फलत समीक्षाधीन अवधि मे राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा बार बार दुहराई गई महत्वपूर्ण मागो मे एक विशेष माग थी, देश भर मे तकनीकी शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के लिए तकनीकी स्कूलो कालेजो और सस्थाओ की स्थापना।[104] प्रशिक्षित तकनीकी कर्मचारियो की चालू माग अधिकाशतः उच्च वेतनभोगी विदेशी तकनीशियनो के आयात द्वारा ही पूरी की जाती है। इस प्रकार यह निश्चित दृष्टिकोण बना कि जबतक भारतीयो के अपने ही जनसमुदाय को उत्पादन और व्यापार के प्रत्येक विभाग को सुनियोजित करने, व्यवस्थित करने तथा निपुणता और सस्ती घरेलू कुशलता के साथ संचालित करने की दिशा मे प्रशिक्षित नही किया जाता तब तक बड पैमाने के उद्योग देश में कभी जड नही जमा सकते।[105] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1887 मे अपने तृतीय अधिवेशन मे तकनीकी शिक्षा के मामले को उठाया और माग की कि सरकार को जनता की दरिद्रता को नजर मे रखते हुए तकनीकी शिक्षा पद्धति के समुचित विकास की ओर ध्यान देना चाहिए।[106] अपने अगले अधिवेशन मे 1888 मे कांग्रेस ने अन्यान्य वस्तुओं मे सामान्य तकनीकी शिक्षा पद्धति लागू करने के प्रारंभिक कदम के रूप मे देश की औद्यो-

गिक स्थिति की जांच के लिए एक मिलेजुले आयोग की नियुक्ति का आग्रह किया।[107] 1891, 1892 और 1893 में उसने अपना अनुरोध दोहराया।[108] 1894 में उसने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से तकनीकी स्कूलों और कालेजों की स्थापना के औचित्य का प्रतिपादन किया।[109] कांग्रेस ने तदुपरांत प्रायः हर वर्ष अपनी इस मांग को दोहराया। 1904 मे उसने देश में कम से कम एक पूर्णतः उपस्कृत केंद्रीय पालीटैक्निक संस्था की और विभिन्न प्रांतों में छोटे बड़े स्कूलों और कालेजों की स्थापना की वकालत की।[110] इस संबंध में यहां यह उल्लेखनीय है कि हाल ही में आविष्कृत तकनीकी शिक्षा पद्धति को आंशिक रूप मे यूरोप महाद्वीप मे और विशेष रूप में जर्मनी, अमरीका और जापान में बड़े पैमाने के उद्योगों की उन्नति में उपलब्ध उल्लेखनीय तथा स्पष्ट सफलता से भी भारत में तकनीकी शिक्षा पद्धति की मांग को प्रोत्साहन मिला।[111]

भारतीय नेता विश्वस्त थे कि तकनीकी सवर्ग के बारे में आधुनिक उद्योग की मांग की पूर्ति की दिशा में तब तक अग्रगति नहीं हो सकती जब तक कि सरकार स्वयं इस दिशा में उपक्रम न करे और देश में तकनीकी शिक्षा के प्रसार का बोझा अपने कंधे पर न ले।[112] कुछ एक नेताओं ने स्थानीय मंडलों तथा नगरपालिकाओं से अपने अपने क्षेत्रों में तकनीकी स्कूलों और कालेजों की स्थापना के लिए अपनी धनराशि के कुछ भाग को समर्पित करने का प्रस्ताव किया।[113] इस प्रकार उनका विचार था कि धन के अभाव के कारण तकनीकी शिक्षा को कमजोर नही होने देना चाहिए। यद्यपि वे सामान्यत. मित-व्ययी प्रवृत्ति के थे परंतु इस विषय में उन्होंने सरकार को इस क्षेत्र मे आवश्यक धनराशि, वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो, व्यय करने का परमर्श दिया।[114] उनके अनुसार भारतीय युवकों द्वारा तकनीकी शिक्षा के प्रति रुचि और उत्साह के अभाव का प्रमुख कारण देश के औद्योगिक क्षेत्र में पिछड़े होने के कारण इस क्षेत्र मे रोजगार के अवसरों का अभाव था।[115] अतएव सरकार से अनुरोध किया गया कि वह तकनीकी शिक्षा पानेवालों के लिए कार्य जुटाए और विशेषतः भारतीयों को सार्वजनिक निर्माण जंगल, तार विभागों और रेलवे में ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित करे।[116] सरकार से बहुत अपेक्षा की गई थी और आशा के विपरीत सरकार का वास्तविक योगदान देश की आवश्यकताओं के अनुरूप तकनीकी शिक्षा के विकास में वर्षों तक निराशाजनक रहा, अतः भारतीयों ने आगामी वर्षों में सर-कार की तीव्र भर्त्सना की।[117]

भारतीय नेताओं ने जहां एक ओर देश में तकनीकी शिक्षा के प्रसार को सरकार का दायित्व बतलाया, वहां दूसरी ओर भारतीय जनता के खुद अपने पैरों पर खड़े होने की आवश्यकता पर भी बल दिया। उन्होंने सामान्य रूप से सारी जनता से और विशेष रूप से शिक्षित वर्ग, लखपतियों, जमींदारों और रियासतों के शासकों से तकनीकी स्कूलों और कालेजों के खोलने के लिए तथा भारतीय विद्यार्थियों को विदेशों में पढ़ने के लिए सहाय-तार्थ छात्रवृत्तियों के निमित्त उदारतापूर्वक धन प्रदान करने का अनुरोध किया।[118] 1876 में कलकत्ता की इंडिया लीग ने एक तकनीकी संस्था की स्थापना के रूप में अपने ही संसा-धनों से तकनीकी शिक्षा प्रसार के आंदोलन को गति देने का प्रयत्न किया।[119] 1899 में जब जे० एन० टाटा ने देश में उच्च वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान की उन्नति के लिए 30

लाख रुपयों का दान दिया तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आगे बढ़कर उनके इस देश-भक्तिपूर्ण तथा उदार उपहार के प्रति कृतज्ञतापूर्ण प्रशंसा की अभिव्यक्ति के लिए धन्यवाद प्रस्ताव पारित किया।[120] 1904 में कलकत्ता में के० सी० बैनर्जी, सुरेंद्रनाथ बैनर्जी, ए० एम० बोस तथा अन्य गण्यमान्य नेताओं के नेतृत्व में वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा की प्रगति के लिए एक संस्था का संगठन आत्मसहायता की दिशा में कदाचित एक सर्वाधिक सफल उदाहरण था। संस्था ने छात्रों को विदेशों मे शिक्षा प्राप्ति के लिए भेजने, भारतीय विशेषज्ञों को विदेशो से भारत लौटने में सहायता देने, नए उद्योगों को प्रारंभ करने तथा कलकत्ता की सेंट्रल लाइब्रेरी को संपन्न बनाने और व्यवस्थित ढंग से चलाने के लिए एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उगाहने का निश्चय किया। संस्था का वार्षिक न्यूनतम सदस्यता शुल्क चार आना निर्धारित किया गया।[121]

भारतीय नेताओं का ध्यान नई खुली तकनीकी संस्थाओं में दी जाने वाली तकनीकी शिक्षा की प्रकृति की ओर भी गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक भारत में केवल चार इंजीनियरी कालेज थे जिनसे निकलनेवाले स्नातक विभिन्न सरकारी विभागों में खप जाते थे। कलकत्ता, मद्रास, बंबई और लाहौर के कला विद्यालयों में भी औद्योगिक अनुभाग थे। परंतु ये अनुभाग रुई बुनने, मिट्टी के बरतन बनाने, नक्काशी करने, मीनाकारी करने, लकड़ी पर खुदाई करने, सोने-चादी तथा अन्य धातुओं के गहने बनाने के काम जैसे शिल्पों में ही प्रशिक्षण देने तक सीमित थे। 1902 मे देश मे औद्योगिक संस्थानों की संख्या बढ़कर 123 हो गई, परंतु इन मब संस्थानो मे सामान्यतया प्रशिक्षण के विषय थे तक्षण कला, धातु कला, चर्म कला तथा सिलाई कला।[122] राष्ट्रवादी नेताओं ने इसे बहुत बुरा माना और सरकार की तकनीकी शिक्षा को अधिकाशत· तक्षक, लोहार और सुनार जैसे हस्त-कलाकारों की कार्य शैली मे सुधार तक सीमित रखने की नीति की घोर भर्त्सना की।[123] उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया कि भारत के पास प्रशिक्षित हस्तशिल्पियों का पहले से ही बडा भंडार है। देश को तो इस समय आधुनिक इंजीनियरों की आवश्यकता है। तकनीकी शिक्षा का लक्ष्य नष्टप्राय अथवा विनाशोन्मुख उद्योगो को पुनर्जीवित करना नहीं, प्रत्युत बाहर से मंगाई जानेवाली सामग्री का उत्पादन करने वाले बडे पैमाने के उद्योगों की स्थापना करना है।[124] अत: इस शिक्षा में भारतीयों को आधुनिक मशीनों और मशीनी औजारों की चरम विकसित तकनीकी की सैद्धांतिक और व्यावहारिक जानकारी से पूर्ण परिचित कराने और उन्हें नए उद्योगों के संचालन मे सहायता देने की सामर्थ्य होनी चाहिए।[125] यही कारण था कि भारतीयों ने जहां तकनीकी संवर्ग मे विदेशी शिक्षण और प्रशिक्षण पर अत्यधिक बल दिया,[126] वहां देश में अत्युन्नत तकनीकी शिक्षा देनेवाले ऊंचे स्तर के संस्थान खोलने का भी दृढ़ता से समर्थन किया।[127]

उद्यम की भावना

कुछ-एक भारतीय नेताओं के अनुसार देश के औद्योगिक पिछड़ेपन का कारण देश-वासियों में उपक्रम और उद्यम संबंधी अपेक्षित भावना का अभाव था।[128] 1825 में जी०बी० जोशी ने अत्यंत दुख से कहा कि भारतीयों में व्यक्तिगत, स्वतंत्र तथा आत्म-

विश्वासपूर्ण उपक्रम के लिए आवश्यक कर्मशक्ति का अभाव शोचनीय है।[129] कुछ एक अन्य राष्ट्रवादी नेताओं के अनुसार भारतीयो मे निम्नलिखित अन्य गुणो की कमी थी : पारस्परिक सहयोग तथा विश्वास की भावना, जांच-पड़ताल की प्रवृत्ति, विचारों और कार्य व्यापार मे स्वतंत्रता, साहस तथा आत्मविश्वास, संकल्प, साहस तथा दृढ निश्चय,[130] अतिरिक्त विरोध का मुकाबला करने और उस पर विजय पाने की तत्परता।[131] नेताओ की दृष्टि मे इन गुणों के अभाव का कारण राष्ट्रीय चरित्र की परंपरागत दुर्बलता नही थी अपितु देश में प्रचलित सामाजिक प्रथाएं, रीति-रिवाज तथा परपराएं ही प्रमुख रूप से सामान्यत भारत के औद्योगिक पिछड़ेपन के लिए और विशेषत. भारतीयो मे उद्यमी भावना के अभाव के लिए उत्तरदायी थी। भारत की जाति प्रथा एक ओर श्रम और पूजी की गतिशीलता मे बाधक थी और दूसरी ओर उच्चकुलीन प्रतिभाशाली नवयुवकों के तकनीक और उद्योग क्षेत्र मे आने के मार्ग मे एक बाधा थी, इसके फलस्वरूप उच्च प्रतिभा उच्च कौशल से विच्छिन्न हो गई थी।[132] विदेश यात्रा पर प्रतिबधो ने भारतीय व्यापार के विदेशो मे प्रसार को सकुचित कर दिया था।[133] भारतीय धार्मिक आदर्श एक ओर सतोष का प्रचार करते थे और दूसरी ओर धन के प्रति उत्कट प्रवृत्ति की निंदा करते थे। इसके फलस्वरूप भारतीयो की भौतिक सफलता की महत्वाकांक्षा दब गई थी तथा सामाजिक सपत्ति मे वृद्धि का महत्वपूर्ण प्रोत्साहन ठडा पड गया था।[134] भारत मे पूरी तरह निराशावाद व्याप्त था। यहा यह धारणा प्रचलित थी कि मानव जीवन का दुर्भाग्य पूर्वनिर्दिष्ट है तथा मानव की दशा को बेहतर बनाने के सभी प्रयत्नो की असफलता निश्चित है।[135] भारतीय रीति-रिवाजो तथा आचार-व्यवहारो के अनुसार भारतीयो का निवृत्ति, अकर्मण्यता, विश्राति, उदासीनता तथा निरुद्योगिता का जीवन ही ब्रह्मानद की प्राप्ति के लिए आदर्श जीवन था।[136] भारतीय न प्राप्त होने वाली वस्तु की निरतर खोज मे विचारो व स्वप्नो की दुनिया मे खोए रहते थे।[137] परंतु आधुनिक औद्योगिक सभ्यता पूर्णत व्यावहारिक थी।[138] अतिम, भारतीयो की व्यक्तिगत आध्यात्मिक मोक्ष की धारणा व जातपात की भावना उस समय भारत मे सामाजिक चेतना के अभाव का कारण बनी।[139]

जस्टिस रानाडे के नेतृत्व मे भारतीय समाजसुधारको ने भारत मे आधुनिक उद्योग तथा व्यापार के स्वस्थ विकास के लिए भारतीय सामाजिक रूढियो मे मूलभूत परिवर्तन का प्रचार किया।[140] रानाडे का कथन था : सामाजिक व्यवस्था के दूषित होने पर उत्तम आर्थिक पद्धति के प्रवर्तन की आशा नही की जा सकती।[141] अत सुधारको ने लोगो से रीति-रिवाजो तथा परंपराओ के अत्यत शक्तिशाली प्रभाव से मुक्ति पाने तथा पश्चिम की नई प्रवृत्ति को अपनाने और नए दृष्टिकोण, पूजीवादी प्रवृत्ति को मन में स्थान देने का अनुरोध किया।[142] उन्होने निम्नलिखित आधुनिक धारणाओं को प्रशंसनीय और स्पृहणीय घोषित किया : प्रगति तथा विज्ञान, विचार और कर्म की स्वतत्रता, परिवर्तन तथा साहसिक कार्यों में रुचि, मन की आशावादिता तथा व्यावहारिकता, जीवन स्तर में सुधार की इच्छा, आदि आदि।[143] भारतीय नेताओं मे अपेक्षाकृत पुरातनपंथी नेता कुछ एक सामाजिक सुधारों की आवश्यकता को तो अनुभव करते थे परतु हिंदुओं के आचार-

विचारों तथा नैतिक व्यवहारों में किसी प्रकार की क्रांति की आवश्यकता स्वीकार नहीं करते थे। उनके अनुसार भारत की सामाजिक संस्थाएं और परंपराएं अपने मूल रूप में उद्योगीकरण के सर्वथा अनुरूप थी। उनके अनुसार निस्संदेह आधुनिक व्यापार और उद्योग को बढ़ाने वाली इच्छा और व्यापार की कुछ एक प्रवृत्तियों को विकसित करने की आवश्यकता थी परंतु इस संबंध में उनका विश्वास था कि ये गुण हिंदुओं में अतीत काल में विद्यमान थे और सामाजिक और धार्मिक पतन के कारण अंतरिम अवधि में वे नष्ट हो गए थे। इसका उपचार अपने प्राचीन अतीत की ओर लौटना था, न कि पश्चिम के आगे झोली फैलाना।[145] जाति प्रथा की समस्या के प्रति उनका रवैया इस दृष्टिकोण का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उन्होंने एक ओर वेदों में प्रतिपादित चातुर्वर्ण्यव्यवस्था और व्यवहार की प्रशंसा की तथा दूसरी ओर आधुनिक काल में प्रचलित हजारों उपजातियों तथा छुआछूत की प्रवृत्ति की निंदा की।[146]

यह उल्लेखनीय है कि समीक्षाधीन काल की अवधि में राष्ट्रीय, आर्थिक और राजनीतिक आंदोलन में उदीयमान आधुनिक उद्योग के साथ सामंजस्य लाने के लिए भारतीय सामाजिक ढांचे में परिवर्तन के प्रश्न को प्रमुखता नहीं मिल पाई। उस समय विदेशी शासकों के विरुद्ध राजनीतिक और आर्थिक संघर्ष में संयुक्त मोर्चा बनाने की आवश्यकता को ही अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया गया। 19वीं शताब्दी के अंतिम पचीस वर्षों में धर्म और संस्कृति के क्षेत्रों में राष्ट्रवाद के पुन: उद्गम की बाढ़ सी आ गई। जब इसे शासकों के वर्गीय रवैये का सामना करना पड़ा तो भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं का एक बहुत बड़ा वर्ग भारतीय धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए आगे बढ़ा और उसने पश्चिमी पूंजीवादी सभ्यता के मानव की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की संतुष्टि में प्रत्यक्ष असफलता की ओर संकेत किया। ये कुछ महत्वपूर्ण कारण थे जिनकी वजह से राष्ट्रीय आंदोलन में समाजसुधार का काम पीछे पड़ गया। इसके अतिरिक्त भारतीय अनुभव ने यह भी सिद्ध कर दिया था कि पूंजीवादी उद्यम की भावना तथा उन्नत सामाजिक दृष्टिकोण के बीच किसी प्रकार का सहज अथवा स्वाभाविक संबंध नहीं। इसका प्रमाण यह था कि उदीयमान पूंजीवादी उद्यमी सामाजिक दृष्टि से दकियानूसी वर्गों, मारवाड़ी, जैन, भाटिया, चेटियार, खोजा, मेमन और बोहरा वर्ग के लोग थे, न कि बंगाल के प्रगतिशील ब्रह्मसमाजी अथवा पूना, बंबई या मद्रास के सामाजिक दृष्टि से उदार लोग। समय बीतने के साथ साथ संभवत: यह तथ्य भी स्पष्ट होता गया कि पूंजीवादी उद्यम की भावना के अभाव का कारण वस्तुत: औद्योगिक पूंजीवाद की अनुपस्थिति था, न कि कोई अन्य कारण।

बहुत से प्रारंभिक भारतीय नेताओं ने देश में उद्यम संबंधी प्रवृत्ति के क्षेत्र की रिक्तता को व्यक्तिगत चेष्टा और उदाहरण से भरने का प्रयास किया। वे लोग आधुनिक उद्योगों, बैंकों, बीमा कम्पनियों, व्यापार सदनों आदि की स्थापना के आंदोलन के प्रारंभिक पुरोगामियों में थे।[146A] उदाहरणार्थ, 1855 में दादाभाई नौरोजी 'कामास' नामक व्यापार संस्था के भागीदार बन गए। यह लंदन में स्थापित होने वाला प्रथम भारतीय व्यापार-सदन था और 1869 में उन्होंने 'दादाभाई नौराजी एंड कंपनी' के नाम से अपना व्यवसाय

चालू कर दिया।[147] रानाडे ने पूना मे स्थापित 'काटन ऐंड सिल्क स्पिनिंग ऐंड वीविंग फैक्टरी', 'मैटल मैनुफैक्चरिंग फैक्टरी', 'दि पूना मर्केंटाइल बैंक', 'दि पूना डाइंग कम्पनी', 'दी रिएं पेपर मिल' आदि के प्रवर्तन और विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[148] गोखले के अनुसार: 'पिछले 20 वर्षों मे पूना मे उदित औद्योगिक और व्यापारिक संस्थानों मे अधिकांश उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, परामर्श तथा सहायता के लिए उनके आभारी है।[149] भारत की कलाओ और उद्योगो की उन्नति के लिए नवोत्पन्न उत्साह से संपन्न यत्नशील व्यक्तियो मे के०टी० तैलंग और फीरोजशाह मेहता ने तो 1870 मे बंबई में एक साबुन का कारखाना ही खोल दिया।[150] वास्तव मे फीरोजशाह मेहता का भारत के मिल उद्योग से घनिष्ठ सबध था।[151] तिलक ने भी थोडे समय के लिए ही सही, 1891 मे अपने दो मित्रों की साझेदारी मे निजाम के अधीनस्थ प्रदेश लातूर मे रुई से बिनौला निकालने वाला कारखाना चालू करने के रूप मे औद्योगिक क्षेत्र मे अपने उत्साह का परिचय दिया।[152] डी०ई० वाचा बडे पैमाने की फूलती-फलती मोरारजी गोकुलदास और शोलापुर मिलो के प्रबंधक अभिकर्ता थे। वे बहुत वर्षों तक बबई के मिलमालिक संघ की प्रबध समिति के सदस्य रहे।[153] 19वी शताब्दी के प्रमुख काग्रेसी नेता आर०एन० मधोलकर बरार मे आधुनिक उद्योग और व्यापार को बढावा देने वालो मे एक थे। 1881-82 मे उन्होंने अपने कुछ मित्रो के सहयोग से बरार के प्रथम मिश्रित पूंजी समुदाय बरार ट्रेडिंग कंपनी की स्थापना की तथा उसके सचिव के रूप मे कार्य किया। बाद मे 1885 मे उन्होने अपने मित्रो के सहयोग से बरार मे प्रथम कपडा बुनने की मिल की स्थापना की। इसके अतिरिक्त एक तेल निकालने की मिल और रुई बिनने तथा सपीडन के अनेक कारखानो की स्थापना का पर्याप्त श्रेय भी इन्ही को प्राप्त है।[154] काग्रेस के एक अन्य बडे नेता मदनमोहन मालवीय ने 1881 मे इलाहबाद मे 'देसी तिजारत कपनी' की स्थापना मे सहायता दी और कालातर मे प्रयाग मे चीनी मिल की स्थापना मे महत्व-पूर्ण भूमिका निभाई।[155] विस्तृत व्यापारो से संबंधित लाला लाजपतराय एक अन्य प्रमुख राष्ट्रवादी नेता थे। उन्होने एक प्रारंभिक भारतीय बैंक पंजाब नेशनल बैंक के निदेशक की हैसियत से अनेक रुई मिलो और रुई प्रेसो की स्थापना मे सहायता की। वे कई निदेशक मंडलों के सदस्य थे।[156] बगाल के राष्ट्रवादी नेता औद्योगिक क्षेत्र मे इतने सक्रिय नही थे जितने पश्चिमी और उत्तरी भारत के नेता थे। किंतु वहा भी ए० एम० बोस, दुर्गामोहनदास और भुवनमोहन दास जैसे अन्य दो महानुभाव व्यक्तियो के साथ मिल-कर 1880 मे 'बंगाल बैंकिंग निगम' व्यावसायिक सघ की स्थापना की।[157] इसके अतिरिक्त सुरेंद्रनाथ बैनर्जी, ए०एम० बोस तथा नरेंद्रनाथ सेन ने बंगाल मे अपने वाणि-ज्यपरक प्रयासों से बंगाल राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल के अवैतनिक सदस्य बनते हुए नाममात्र रूप से ही सही, अपने को उससे संबधित रखा।[158]

पूंजी के आंतरिक साधनों और साहसवृत्ति का उपयोग करते हुए देश के उद्योगीकरण की अदम्य राष्ट्रीय आकांक्षा का एक रोचक उदाहरण है 'पैसा निधि'। रानीगंज (बगाल) के तारापद मुकर्जी ने 1865 मे इंडियन मिरर मे इस पैसा निधि के उद्देश्य, निर्धन और मध्यवित्तीय लोगों की बचत का उपयोग तथा नए औद्योगिक प्रतिष्ठानों को वित्तीय

अनुदान को स्पष्ट किया है। इस योजना को कुछ तत्कालीन नेताओं का समर्थन भी मिला। 1873 में बंबई के जी० वी० जोशी ने 'जनता पाई निधि' चालू करने का प्रयत्न किया परंतु वह केवल 150 रुपये उगाहने में ही सफल हो सके। 1899 में इस विचार से एक युवक अध्यापक ए० डी० काले इतना अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया तथा 'पैसा निधि' के लिए धन संग्रह का काम प्रारंभ कर दिया। इस निधि में प्रत्येक व्यक्ति से प्रति वर्ष केवल एक पैसा देने की अपेक्षा की जाती थी और यह संचित निधि आधुनिक उद्योग को प्रतिष्ठित करने और उसे लोकप्रिय बनाने में प्रयुक्त होती थी। साहसिक कार्य मे काले को तिलक तथा अन्य महाराष्ट्रीय नेताओं से प्रोत्साहन तथा समर्थन मिला। काले के अनुराग और श्रम को शीघ्र ही सफलता मिली और 1908 मे इस 'पैसा निधि' की सहायता से महाराष्ट्र के तिलंगाना प्रदेश में शीशे का कारखाना (प्रशिक्षण केंद्र सहित) स्थापित किया गया।[159]

भारतीय नेताओं ने औद्योगिक संघ बनाए, औद्योगिक सम्मेलनों का आयोजन किया तथा औद्योगिक प्रदर्शनिया लगाई। इन सबका उद्देश्य था औद्योगिकता के सिद्धान्त को आगे बढ़ाना, औद्योगिक और वाणिज्य संबंधी रुचि जागृत करना, उद्यम की भावना को उभारना, विश्वासपूर्ण तथा आशाजनक औद्योगिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना, विकसित औद्योगिक तकनीक का जनता मे प्रसार करना, विभिन्न उद्योगों के अवसर और अवकाश के संबंध मे उपयुक्त जानकारी देना, आदि।[160] इस दिशा मे पथप्रदर्शक कार्य रानाडे महोदय का है जो 1890 मे बने पश्चिमी भारत के औद्योगिक संघ के तथा उसी वर्ष पूना मे प्रथम बार आयोजित होने वाले औद्योगिक सम्मेलन के प्रधान संयोजक थे। इससे पूर्व वे उस नगर मे एक औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन भी कर चुके थे।[161] उनकी इन सभी गतिविधियो मे जी० वी० जोशी तथा महाराष्ट्र के एम० बी० नामजोशी आदि अन्य नेताओं ने भी सहायता की। 1890 से आगे के कई वर्षों तक प्रतिवर्ष औद्योगिक सम्मेलन आयोजित होते रहे तथा इन्होंने भारतीय औद्योगिक और आर्थिक समस्याओं पर विधि-पूर्वक तथा क्रमानुसार विचारों की अभिव्यक्ति के रूप मे इस दिशा मे बहुत बड़ी सेवा की। वस्तुतः रानाडे तथा जोशी के भारतीय आर्थिक समस्याओं पर लिखे बहुत सारे सुप्रसिद्ध निबंध इन सम्मेलनों में पढने के लिए लिखे गए परचे ही थे। पूना के अनुसरण में अक्तूबर 1891 मे कलकत्ता मे भी एक सम्मेलन हुआ।[162] परंतु दुर्भाग्यवश यह सम्मेलन अपना विशेष प्रभाव नही छोड पाया। निश्चय ही कलकत्ता को औद्योगिक प्रदर्शनियों के आयोजन में अधिक सफलता मिली। इस दिशा में प्रथम साधारण प्रयास जे० चौधरी तथा अन्य लोगों द्वारा कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में 1890 में एक औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन था।[163] परंतु यह प्रयास अकेला ही सिद्ध हुआ, परवर्ती अधिवेशनों में यह परंपरा का रूप धारण न कर सका। 1900 मे कांग्रेस ने अपने लाहौर के 16वें अधिवेशन में विधिवत इस मामले को उठाया और उसने औद्योगिक समस्याओं पर विचार करने के लिए कम से कम आधा दिन लगाने का निर्णय किया। उसने देश की औद्योगिक गति-विधि की प्रगति में कांग्रेस के संभावित सहयोग के रूप और दिशाओं पर विचार करने के लिए एक औद्योगिक समिति का गठन भी किया।[164] इस समिति के विचार-विवेचन के

फलस्वरूप ही 1901 मे कलकत्ता मे काग्रेस के अग के रूप मे औद्योगिक प्रदर्शनी लगाई गई[165] और उसके उपरात यह काग्रेस अधिवेशन की एक अविभाज्य परपरा बन गई।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ का यह भी मत था कि द्रुत उद्योगीकरण के भारतीय प्रत्यनो के मार्ग मे एक महत्वपूर्ण बाधा सरकार की उन्मुक्त व्यापार की नीति थी। यह नीति देश के प्रारभिक तथा अविकसित उद्योगो को, पश्चिम के ऊचे स्तर पर सुनियोजित तथा सुविकसित उद्योगो के साथ, अपरिपक्व और असमान होने के कारण अनुचित प्रतियोगिता के लिए बाध्य करती थी। भारतीयो के इस दृष्टिकोण का तथा भारत सरकार की उन्मुक्त व्यापार नीति को लागू करने के विभिन्न उपायो के विरुद्ध उनके सघर्ष का इस पुस्तक के अगले अध्यायो मे विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ

1 भारतीय हस्तकलाओ के विनाश का विवरण भारतीय अर्थशास्त्र की अनक पुस्तको में उपलब्ध है सरल निर्देश के लिए देखिए, डी० आर० गाडगिल दि इडस्ट्रियल इवोल्यूशन आफ इडिया इन रीसेंट टाइम्स' (कलकत्ता, 1942 मे चतुर्थ सस्करण का पुन मुद्रण) अध्याय III और XII आर० चौधरी 'दि इवोल्यूशन आफ इडियन इडस्ट्रीज' (कलकत्ता 1939) अध्याय I तथा बी० डी० बसु 'दि रुइन आफ इडियन ट्रेड्स इडस्ट्रीज' (कलकत्ता, 1935)

2. वेरा अनस्टे 'दि इकानामिक डेवलपमेंट आफ इडिया' (लदन, तृतीय सस्करण), पृ० 5

3 गाडगिल पूर्वोद्धृत, अध्याय III और XII, पृ० XXII, अनस्टे पूर्वोद्धृत, पृ० 5, 207

4 1901 के कलकत्ता अधिवेशन मे इडियन नशनल काग्रस न घोषित किया कि भारत की घोर दरिद्रता क प्रमुख कारणो मे एक था स्वदेशी शिल्प और उद्योग का ह्रास (प्रस्ताव III) जोशी का 1885 मे कथन था तजी से बढ़ता हुआ विनाश, जिसे हम अपने विभिन्न हस्तशिल्प उद्योगो का सहसा पूर्णक्षय कह सकते हैं, वस्तुओ की शोचनीय स्थिति का मूल कारण है (पूर्वोद्धृत, पृ० 738) 1896 की काग्रेस को सबोधित करते हुए आर० एन० मधोलकर ने सकेत किया, हमारी घनघोर और व्यापक दरिद्रता हमारे प्राचीन कला-शिल्पो तथा उद्योगो के ह्रास, लगभग पूर्ण विनाश का ही परिणाम है (रिप०आई०एन० सी० 1896, पृ० 157) भोलानाथ चद्र ने 1876 मे लिखा था नवीन प्रचलित शिल्पो और उद्योगो मे किए गए सुधारो की अपेक्षा पुराने शिल्पो-उद्योगो पर किए गए प्रहार अधिक विचारणीय हैं वस्तुत यह तो हमारे राष्ट्र के लिए करोड़ो गवाकर हजारो पाने के समान एक क्षुद्र सात्वना है (एम० एम० खड V, पृ० 5) उस युग के राष्ट्रीय भाषणो और लेखो में इस प्रकार के असख्य निर्देश उपलब्ध हैं उदाहरणार्थ देखिए, ऐजुकेशन गजट, 2 मई (आर० एन० पी० बग, 10 मई 1883) जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 632, 753, 778-79, 802-4 वारु दत्त 9 फरवरी (आर० एन० पी० बग 14 फरवरी 1885) वाचा रिप० आई०एन०सी० 1886 पृ० 64, बर्दवान सजीवनी, 29 नवबर, (वही, 10 दिस० 1887) शेख कादिर बख्श रिप० आई० एन० सी० 1887, पृ० 142 पजाबी अखबार, 21 अगस्त (आर० एन० पी०, 31 अगस्त 1889) खैर अदेश, 13 अक्तूबर (वही, 19 अक्तूबर 1889) राय ' पावर्टी, पृ० 85 निजामुलमुल्क, 16 जनवरी (आर० एन० पी० एन० 20 जनवरी 1897) भारत जीवन 20 नवबर (वही, 1 दिसबर 1897) नदी : पूर्वोक्त स्थल, पृ० 122 दत्त : सी०

पी० ए, पृ० 489. वृतांत चिंतामणि, 15 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 15 मार्च 1900), हिंदुस्तान, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० एन, 17 अप्रैल 1900) स्वदेशमित्र, 28 अप्रैल (आर० एन० पी० एम० 20 अप्रैल 1900) केसरी, 8 मई (आर० एन० पी० बब 12 मई 1900) मराठा, 11 नवंबर 1900, मद्रास स्टैंडर्ड, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 25 जनवरी 1902), आई० एन० सी० 1902 और 1904 के प्रस्ताव III और III. एन० के० रामास्वामी अय्यर : रिप० आई० एन० सी०1901, पृ० 137. एम० के० पटेल रिप० आई० एन० सी—1902, पृ० 77. जी० सी० अय्यर : ई ए, पृ० 218, 249. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52. दत्त : ई० एच० II, पृ० 345 और, सी० पी० ए०, पृ० 469. बगाली, 12 मार्च, 1902.

5. उदाहरण के रूप मे देखिए, ए० बी० पी०, 5 अगस्त 1872 भोलानाथ चद्र : एम० एम० खड V (1876) पृ० 5. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 227, 780 गोखले : स्पीचेज, पृ० 52 आर० सी० दत्त ने अपनी दो खडो वाली 'इकानामिक हिस्टरी आफ इडिया' पुस्तक मे तथा अनेक समकालीन पत्रों में प्रकाशित अपने लेखों में इस प्रक्रिया का बड़ा गहरा और सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है. पी० सी० राय ने भी अपनी पुस्तक 'दि पावर्टी प्राब्लम्स आफ इडिया' मे इस प्रक्रिया का विस्तृत विवेचन किया है.
6. दत्त : स्पीचेज, II पृ० 106. नदी . पूर्वोक्त स्थल, 122. एस० एन० बनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 691-2 जी० सी० अय्यर : ई ए, अध्याय XVI और XVII.
7. दत्त : ई० एच० I, पृ० 256.
8. भारत से इग्लैंड को कपास के गट्ठो के निर्यात-आकड़ो के लिए देखिए, दत्त : ई० एच० I, पृ० 295, ई० एच० II, पृ० 109. भारत मे कपड़ों के आयात आंकड़ों के लिए देखिए, दत्त : ई० एच० I, पृ० 257, ई० एच० II, पृ० 108. तथा देखिए, एस० एन० बनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 692-3.
9. रानाडे : एसेज, पृ० 185.
10. दत्त : 'इग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 128.
11. दत्त : ई० एच० I, पृ० VII, VIII और देखिए के० सी० ए० चौधरी : रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 64. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 785. रानाडे : एसेज, पृ० 185 राय : पावर्टी, पृ० 93. मधोलकर : रिप० आई० एन० सी०—1898, पृ० 121. दत्त : ई० एच० I, पृ० VIII. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52
12. रानाडे : एसेज, पृ० 27. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 784-5. दत्त : ई० एच० II, पृ० 103, 345. स्पीचेज II, पृ० 81. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52.
13. आर० एन० मधोलकर : रिप० आई० एन० सी०—1890, पृ० 47. जोशी : पूर्वोद्धृत पृ० 785, 835. दत्त : 'इंग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 129. ई० एच० II, पृ० 345, बंगाली 12 मार्च 1902.
14. रानाडे : एसेज, पृ० 191, वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 624. दत्त : ई एच I, पृ० VIII ई० एच० II, पृ० VIII एम० के० पटेल : रिप० आई० एन० सी०, 1902, पृ० 77. दत्त आदि के समान रानाडे ने भी यह अभिस्वीकार नही किया कि भारत प्राचीनतम काल से पूर्ण रूप से तथा एकांतत: कृषि-प्रधान देश रहा है उन्होने यह अवश्य कहा कि ब्रिटिश राज्य ने स्थिति की गंभीरता को और अधिक भयंकर बनाया है.—(एसेज, पृ० 183) साथ ही देखिए ट्रिब्यून (लाहौर) 8 जुलाई (आई० एस० बी० ओ० आई०, 2 अगस्त, 1891)
15. दत्त ने संगणना की कि 80 प्रतिशत भारतीय जनता कृषि पर निर्भर है (ई० एच० I, पृ० IX)

जोशी का अनुमान था कि लगभग 86 प्रतिशत औद्योगिक जनता भूमि से संबंधित थी (पूर्वोद्धृत, पृ० 784) और देखिए, वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 624 एम० के० पटेल : रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 77.

16 रानाडे : एसेज, पृ० 26, 183 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 360 मधोलकर · 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 44, केसरी, 11 नवबर (आर० एन० पी० बब, 15 नवबर 1902)

17 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 849-50, 868, मधोलकर : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 45.

18 दत्त : स्पीचेज I, पृ०24 तथा देखिए, मराठा, 19 जून, 1881, 12 फरवरी 1882 सोमप्रकाश, 6 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 11 फरवरी 1882) ए०बी०पी०, 22 मई, 1884, भारत मिहिर 17 जून (आर० एन०पी० बग 28 जून 1884) स्वदेश मित्रन, 5 मार्च (आर० एन० पी० एन०, मार्च 1885) रानाडे . एसेज, पृ० 27 राय . पावर्टी, पृ० 97 केसरी, 11 नवबर (आर० एन० पी० बब 17 नवबर 1902) एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 69

19 1880 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन, भाग II, कडिका I इस अवतरण को अन्यो के अतिरिक्त रानाडे ने उद्धृत किया था, एसेज, पृ० 121 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 642 मधोलकर 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 44 रिप० आई० एन० सी०—1899, पृ० 88-9

20 बी० सी० पाल : रिप० आई० एन० सी०—1888, पृ० 159 मधोलकर : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 47

21 रानाडे एसेज, पृ० 66, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 871, 874 ए० बी० पी०, 2 अगस्त 1901 मधोलकर · 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 45 जी० सी० अय्यर, ई ए, पृ० 218

22 मराठा, 23 जनवरी 1881, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 700-2, 804, 840-52

23 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 702 इस विषय मे उमके प्रश्न को 1880 के अकाल आयोग के प्रतिवेदन मे पृ० 853 परदेखिए

24. वही, पृ० 350, 658

25 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 658 तथा जी० सी० अय्यर ई ए, अध्याय XII

26 रानाडे एसेज, पृ० 27

27 रानाडे एसेज, पृ० 90 तथा वही, पृ० 183, 185 हिंदू—16 जनवरी 1883 जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 675-76 गोखले स्पीचेज, पृ० 52 'इंडियन पीपल', 27 फरवरी 1903. दत्त स्पीचेज II, पृ० 42-3 ई० एच० पृ० VIII, 276 ई० एच० II, पृ० 114, 129, 518 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 116-7, 123-5 1873 मे भोलानाथ चन्द्र ने राजनीतिक दासता के अतिरिक्त औद्योगिक क्षेत्र मे भी दासता के गड्ढे में धकेलने वाली नीति की निंदा की (एम० एम० खड II, पृ० 110)

28 एस० एम० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 694

29 दत्त, ई० एच० I, पृ० VIII

30 भोलानाथ चन्द्र, एम० एम०, खड V, पृ० 13 एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई०एन० सी०—1896, पृ० 136 तथा सी०पी० ए०, पृ० 691, 694 पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 750 दत्त· ई० एच० I, पृ० VIII और ई० एच० II, पृ० VIII. सी० वाई० चिंतामणि 'इकानामिक आस्पेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया', एच० आर०, जनवरी 1902, पृ० 32 जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 125, 240

31 दत्त ई०एच० I, पृ० VIII, 261 ई०एच० II, पृ० VIII, IX. पिछली एक डेढ़ शताब्दी मे ब्रिटिश शासको की वाणिज्य नीति का आधार भारतीय उत्पादकों के हितों की अपेक्षा ब्रिटिश

उत्पादको के हित की रक्षा ही रहा है'. तथा वही, पृ० 120.

32 भोलानाथ चद्र, एम०एम०, खड V, पृ० 14, 15 हिंदू 16 जून, 1883. समय, 2 दिसबर (आर० एन० पी० बग, 10 दिसंबर 1887) दत्त, ई० एच० II, पृ० 518 स्पीचेज, II, पृ० 108, 113. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 125 ऊपर 27वी पादटिप्पणी मे उद्धृत नेतागण

33 भारत मे अपने शासनकाल के प्रारंभिक दिन से ही इग्लैंड के उत्पादको और शिल्पकर्मियो के लाभ के लिए इस देश को कच्चे माल के उत्पादन की बस्ती के रूप में बदलना ब्रिटिश शासको की एक निश्चित नीति रही है (एम० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 691) तथा देखिए, भोलानाथ चद्र, एम० एम० खड III, पृ० 99-100 ऊपर 27वी पादटिप्पणी मे उद्धृत नेतागण जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी—1902, पृ० 72 दत्त, ई०एच० I, पृ०VIII तथा ई०एच० II, पृ० 129, केसरी, 11 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 15 अप्रैल 1905). फलत किसी समय ब्रिटिश सरकार की भारतीय कृषि के विकास पर अत्यधिक बल देने की प्रवृति की ऊपर लिखे नेताओ उदाहरणार्थ केसरी, भोलानाथ चद्र तथा जी० एस० अय्यर द्वारा आलोचना की गई थी

34 दत्त, ई० एच० II पृ० 518 स्पीचेज, II पृ० 42

35 वाचा, सी० पी०ए०, पृ० 622 एम० एन० बैनर्जी, सी०पी०ए०, पृ० 694 डान, फरवरी 30 1903 पृ० 207, स्वदेश मित्रन, 13 अगस्त (आर० एन० पी० एम० 15 अगस्त 1903), हितकारी, अक्तूबर (आर०एन०पी० बग, नवबर 1903, मधोलकर, रिप०आई०एन०सी० 1904, पृ० 102.

36 मिल 'हिस्टरी आफ ब्रिटिश इडिया' विल्सन, काटीन्यूएशन पुस्तक I अध्याय VII. मधोलकर की 'इडियन पालिटिक्स' मे उद्धृत, पृ० 43 पी० मेहता . स्पीचेज, पृ० 750 दत्त, ई० एच० I पृ० 260-3 एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 692

37 दत्त, ई० एच० I, प० 45 जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 250 चितामणि, एच० आर०, जनवरी 1902, पृ० 32

38 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 623 दत्त ई० एच० I, पृ० 257 ई० एच० II, पृ० VIII स्पीचेज, II, पृ० 42 चितामणि, एच० आर०, जनवरी 1902, पृ० 32

39 भोलानाथ चद्र, एम० एम०, खड V, पृ० 42 वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 32 मधोलकर 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 44, वाचा सी० पी० ए०, पृ० 625 एम० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 692-3, 696 जी० सी० अय्यर, ई ए, पृ० 242, चितामणि एच० आर० जनवरी 1902, पृ० 32 एल०एम० घोष०, सी०पी०ए०, पृ० 754 दत्त, ई०एच० I, पृ० 7 इनसे बढकर आर०सी० दत्त ने अपनी पुस्तको, ई० एच० I, अध्याय III, XIV, XV मे तथा ई० एच० II अध्याय, VII, VIII, IX मे भेदमूलक चुगी दरो के तरीके की और उसके विनाशकारी प्रभाव की खोज की 1812-32 तक भा त के निर्यातको के भारत से इग्लैंड को निर्यात पर लगाए गए करो के सारणीबद्ध अध्ययन के लिए देखिए, दत्त स्पीचेज II, पृ० 117 1831 मे तालिका रूप मे 117 प्रतिष्ठित भारतीयो द्वारा हस्ताक्षरित एक याचिका परम श्रेष्ठ महाराजाधिराज की प्रिवी कौसिल को एक अपील भेजी गई थी जिसमें यह याचना की गई थी कि बगाल के सूती और रेशमी कपडे के इग्लैंड को नि शुल्क अथवा बगाल मे खपने वाले ब्रिटिश वस्त्रों पर वसूल किए जाने वाले कपड़े की दर पर निर्यात की अनुमति प्रदान की जाए (बी० डी० बसु की पूर्वोद्धृत पुस्तक, पृ० 32-3 में उद्धृत)

40. दत्त स्पीचेज, II, पृ० 80. तथा ई० एच० II पृ० 123. चितामणि, एच० आर०, जनवरी 1902, पृ० 32.

41. दत्त : ई० एच० I, पृ० 303-04.
42. दत्त : ई० एच० I, पृ० VIII, 264-7. हितवादी, 30 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंग, 7 नवंबर 1903).
43. कादिर बख्श, 'रिप० आई० एन० सी०—1887, पृ० 142. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 683, 785-6. राय . पावर्टी, पृ० 34. मधोलकर : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 44. दत्त : ई० एच० I, पृ० VIII एस० एन० बैनर्जी . सी० पी० ए०, पृ० 694. एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 77 मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 103. यहा तक कि दत्त सहमत थे . 'भारत के हस्तकला उद्योग इग्लैंड के भाप और मशीन उद्योग का मुकाबला नही कर सकते.' (दत्त 'इग्लैंड ऐंड इंडिया', पृ० 81)
44 रानाडे . एसेज, पृ 183 तथा पृ० 100
45 डान, फरवरी 1903, पृ० 207 तथा देखिए, वाचा . सी० पी० ए०, पृ० 623. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 680, 683-4 एम० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 694
46. देखिए, नीचे अध्याय 6 तथा 14 और ऊपर 39 की पादटिप्पणी
47. देखिए, नीचे अध्याय 5
48. हितवादी, 30 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंग, 7 नवबर 1903) जी० एस० अय्यर के अनुसार, ब्रिटिश साहसिको ने भारत की निधि को खूब लूटा और इस प्रकार अपार भारतीय धन के अत्यधिक संग्रह के फलस्वरूप एक पूजीपति वर्ग अस्तित्व मे आ गया. इस धन के कारण इस वर्ग की साख बढ़ गई तथा शक्ति, उद्योग और साहस मे गतिशीलता आ गई ·· 19वी शताब्दी के प्रारभ तक भारत और आयरलैंड की लूट पर ब्रिटिश समृद्धि की आधारशिला भली प्रकार से रखी जा चुकी थी (ई० ए० पृ० 243) तथा देखिए, ए० बी० पी० 27 अक्तूबर 1886. एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 695 बैनर्जी ने अपने कांग्रेस के भाषण मे ब्रुक आदम्स की पुस्तक, 'ला आफ सिविलाइजेशन ऐंड डिके' से एक अवतरण उद्धृत किया जिसे 19वीं शताब्दी में परवर्ती भारत पर बोलने और लिखने वालो का नियमित सहारा बनना था.
49. 'दि डान' फरवरी 1903, पृ० 207.
49-ए. इसमें अपवाद रूप थे, पी० ए० चारलू, आई० सी० पी० 1899, खंड XXXVII, पृ० 177-8.
50. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खड 5, पृ० 2. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 738, 753 मराठा, 24 जनवरी 1886. इदु प्रकाश, 25 जनवरी 1886. हिंदी बगवासी, 30 मार्च (आर० एन० पी०, बंग, 11 अप्रैल 1891) राय : पावर्टी, पृ० 98, 145. मधोलकर : रिप० आई० एन० सी०—1898, पृ० 121. ए० एन० बोस · सी० पी० ए०, पृ० 427. एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 691, 707. जी० सी० अय्यर : 9 ई ए, पृ० 171. दत्त : स्पीचेज, पृ० 24, 163. ई० एच० II, पृ० 519, 528, 612.
51. आई० एन० सी, 1896 का प्रस्ताव 12 और देखिए, 1888 का प्रस्ताव 10, 1897 का प्रस्ताव 9, 1899 का प्रस्ताव 13, 1902 का प्रस्ताव III.
52. रानाडे : एसेज, पृ० 193. 1898 मे इकट्ठे कांग्रेस प्रतिनिधियो को आर० एन० मधोलकर ने सकेत किया : वाष्प शक्ति द्वारा संचालित करघों के साथ हथकरघे का मुकाबला इस प्रकार का है जिस प्रकार एक भाप-इंजन के साथ दौड़ में बैलगाड़ी का मुकाबला. (रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 121) और देखिए, जोशी : पूर्वोद्धृत पृ० 785, 974. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 622. जी० एस० अय्यर : 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 193.

53 यह कहा जा सकता है कि यह बुराई अपरिहार्य है···(परन्तु) क्या विनाशकारी प्रक्रिया को और अधिक मंद और क्रमिक नहीं बनाया जा सकता ताकि लोगों को इस कष्ट से अपने को उबारने का समय मिल जाए ?—जी० एम० अय्यर 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 193, और देखिए, दत्त ई० एच० I, पृ० 163 दत्त ने भी रोचक टिप्पणी की, 'धन द्वारा उपलब्ध ऊँचे परिणामों के बावजूद यह कदापि सत्य नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने खेत अथवा करघे पर काम करते समय सम्मान में, योग्यता में, दूरदर्शिता में तथा आत्मनिर्भरता में अपने आप में सर्वोत्तम है और प्रत्येक सच्चा भारतीय आशा करता है गृह उद्योगों को पूंजीवाद के किसी न किसी प्रहार को सहना पड़ेगा (वहां, पृ० 518-9)

54 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 680, 785, दत्त ई० एच० II, पृ० 163

55 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 785

56 रानाडे एसेज, पृ० 193 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 974 राय पावर्टी, पृ० 106-7 आई० एन० सी० 1896, 97 तथा 1902 के क्रमश प्रस्ताव XII, XI और III मधोलकर . 'इंडियन पालिटिक्स', पृ० 48 ए० एम० बास सी० पी० ए०, प० 427 जी० सी० अय्यर रिप० आई० एन० सी० –1901, पृ० 126 एम० एन० बनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 691 राष्ट्रवादी पत्रों ने देश के शीघ्रता से उद्योगीकरण की माग को प्राय ही अभिव्यक्त किया

57 रानाडे एसेज पृ० 119-20 (बल दिया गया) 1893 मे भोलानाथचन्द्र ने देशवासियों से अपील की कि अन्य सभी बातों से ध्यान हटाकर उन्हे अपना सारा ध्यान एकमात्र उद्योगीकरण की ओर देना चाहिए उद्योगीकरण एक समुद्र के समान है तथा अन्य बातें छोटे मोटे नदी-नद के समान हैं —एम० एम० खड II पृ० 111 तथा मराठा 13 फरवरी 1881 24 जनवरी 1886 बगाली 26 अप्रैल 1884 ए० एस० मधोलकर . रिप० आई० एन० सी०—1886, पृ० 65 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 753, 816 राय पावर्टी, पृ० 98, 109, 129 जी० एम० अय्यर आई० एन० सी० 1901 पृ० 122, ई ए, पृ० 64-6, 85 एस० एन० बनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 301, 697 दत्त ई० एच० II, पृ० 528 ढाका गजट, 11 जुलाई (आर०एन० पी० बग, 16 जुलाई 1904)

58 भोलानाथ चद्र पूर्वोद्धृत, खड V, पृ० 83 ए० बी० पी०, 16 जुलाई 1878, मांडलिक पूर्वोद्धृत, पृ० 690, 'ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन', 28 जून 1880 एजुकेशन गजट, 2 मई (आर० एन पी० बग, 10 मई 1883) प्रभात, 20 मई (वही, 28 मई 1883) बगाली, 26 जुलाई 1888 बर्दवान सजीवनी, 29 नव० (आइ० एन० पी० बग, 10 दिस० 1887) रानाडे एसेज, पृ० 100, 118-9, तिलक इन केसरी, 18 फरवरी 1893 एम० एल० कारदीकर श्री लोकमान्य बालगगाधर तिलक (पूना 1957) मे उद्धृत, पृ० 111 राय पावर्टी पृ० 107, 109, 111, 129 मधोलकर 'इन इंडियन पालिटिक्स', पृ० 48 बगाली 13 जुलाई 1900. जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी०, 1901, पृ० 127 वाचा इन सी० पी० ए०, पृ० 626, दत्त स्पीचेज II, पृ० 128

59 मराठा, 13 अप्रैल 1881.

60 सभ्यता के स्तर पर किसी देश की स्थिति की माप उसके लोगों के व्यावहारिक व्यवसायों, उनकी आजीविका के साधनों की सख्या और विराटता, उनके उद्योगों, उनके उद्यमों, उनके कौशल, उनकी महत्वाकांक्षा, उनके कार्य-व्यापारों तथा उनके उत्पादन मे सहायक प्राकृतिक शक्तियों के प्रयोग की सीमा से ही की जाती है प्रगति की माप कला और विज्ञान की औद्योगिक क्षमता मे

एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर अपनी स्थापित श्रेष्ठता के आधार पर ही की जाती है. —'दि एक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', जे० पी० एस० एस०, अप्रैल, 1893 (खंड सं० 4) पृ० 6. तथा जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 816, राय : पावर्टी, पृ० 43, 111, जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० —1901, पृ० 124.

61 नेटिव ओपीनियन, 25 मई 1884. रानाडे : एसेज, पृ० 19. पी० ए० चारलू : आई० सी० पी० 1901, खंड-XI, पृ० 283 जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 131.

62. भोलानाथ चन्द्र : एम० एम, खंड 5, पृ० 2 नौरोजी : एसेज, पृ० 103 ए० बी० पी० 16 जुलाई 1704. अखबारे आम, 8 जनवरी, 1 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 11 जनवरी, 8 मार्च 1879). ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 24 जून 1880. बाबे समाचार, 19 अगस्त (आर० एन० पी० ब० 20 अगस्त 1881) मराठा, 23 जनवरी 1881, 1 जनवरी, 12 फरवरी 1882, 24 जनवरी 1886. स्वदेशमित्रन, 17 दिसबर (आर० एन० पी० एम०, 31 दिस० 1887) बर्दवान संजीवनी, 29 नवबर (आर० एन० पी० बंग 10 दिसबर 1887) ए० एस० मुदालियर: रिप० आई० एन० सी० 1886, पृ० 65. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 751., 804-05. रानाडे एसेज, पृ० 121 केरल पत्रिका, 4 नवबर (आर० एन० पी० एम० 30 नवबर 1893) 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 13 अखबारे आम, 30 जुलाई (आर० एन० पी०, पृ० 28, अगस्त 1897) भारत जीवन, 1 अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 10 अगस्त 1898. आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव XIII तथा 1902 का प्रस्ताव III. सियालकोट पेपर, 1 मार्च (आर०एन० पी० पी० 10 मार्च 1900). मधोलकर . रिप० आई० एन० सी०—1899, पृ० 89, केसरी, 23 जुलाई (आर० एन० पी० बब, 28 जुलाई 1900) एन० सी० चदावरकर : सी० पी० ए०, पृ० 524 पी० ए० चारलू : एन० सी० पी० 1901, खंड XI, पृ० 283 वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 624 जी० एस० अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 124-5 और ई ए, पृ० 65 'इंडियन नेशन' 23 दिस० 1901 (बी० ओ० आई०—8 फरवरी 1902) पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 746 एम०के० पटेल : रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 79 तथा रिप० आई० एन० सी०—1904, पृ० 115. दत्त : ई० एच० I. पृ० XIII. XIV.

63 रानाडे एसेज, पृ 207, जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 868

64 मराठा, 23 जनवरी, सितबर 1881 नेटिव ओपीनियन, 25 मई 1884. जोशी : पूर्वोद्धृत पृ० 368, 751, 804-05, 851-3 रानाडे : एसेज, पृ० 113, 207. बी० एन० सील, रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 95. राय . पावर्टी, पृ० 98 जी० एस० अय्यर : लार्ड कर्जन्स रिजल्यूशन आफ लैंड रेवेन्यू ऐंड फैमिन (लार्ड कर्जन का भूराजस्व तथा अकाल पर प्रस्ताव) एच० आर० फरवरी 1902, पृ० 148-9 एम० के पटेल : रिप० आई० एन० सी०—1904, पृ० 114-5 'ऐग्रीकल्चर ऐंड इंडस्ट्री', का नीचे अध्याय 10 का सबधित भाग.

65 मराठा, 19 जून 1881, 12 फरवरी 1882 स्वदेशमित्रन, 5 मार्च (आर० एन० पी० एम०, मार्च 1885) सहचर, 6 मई (आर० एन० पी० बंग, 16 मई 1885) रानाडे . एसेज, पृ० 25-6, 100, जोशी . पूर्वोद्धृत पृ० 642, 667 दत्त : स्पीचेज I, पृ० 24-5. केसरी, 11 नवं (आर० एन० पी० बंब, 15 नवबर 1902).

66 ऐजुकेशन गजट, 2 मई (आर० एन० पी० बंग, 10 मई 1883) बगाली, 26 अप्रैल 1884. मराठा, 24 जून 1886. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 645-8, 666-7. मधोलकर : रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 121. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 85. एच० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०,

पृ० 637. सियालकोट पेपर, 24 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 6 सितंबर 1902) और देखिए नीचे अध्याय 4 और 13.

67. रानाडे : एसेज, पृ० 19. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 131.
68. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 829. के० टी० तैलग : 'जरनल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन', खंड XI, पृ० 9, भाग I रानाडे . एसेज, पृ० 19.
69. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 616 और भोलानाथ चंद्र : एम० एम० खंड 5 पृ० 2, के० टी० तैलग . 'फ्री ट्रेड ऐंड प्रोटैक्शन फ्राम ऐन इंडियन प्वाइंट आफ व्यू', (बंबई, 1877) पृ० 51-3.
70 रानाडे : एसेज, पृ० 19. 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 22-3. जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 266.
71 रानाडे : एसेज, पृ० 96
72 बंगाली, 18 जनवरी 1902. और देखिए, ए० बी० पी० 16 जुलाई 1874. जमीयुल उलुम, 28 जून (आर० एन०पी०एन०, 7 जुलाई 1897) बंगाली तो और आगे बढ़ा और 1900 में उसने यह विचार प्रकट किया, देशभक्ति का गुण व्यापार की भावना से जुड़ा हुआ है'. (6जुलाई).
73 'दि इंडियन इकानामिक प्राब्लम', 'दि डान' मार्च-जून, 1900
74 वही, अप्रैल 1900, पृ० 265-6.
75. 'दि ऐक्[illegible] आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 8.
76 वही, पूर्वोद्धृत, पृ० 8-9 और देखिए, जी० एम० अय्यर . ई ए, पृ० 209
77. 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 11-2, जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 300, राय · पावर्टी, पृ० 110-1
78 भारत मे आधुनिक उद्योग के विकास का प्रस्तुत संक्षिप्त विवरण प्रो० डी० आर० गाडगिल के ग्रंथ, 'दि इंडस्ट्रियल इवोल्यूशन आफ इंडिया', के 4,6 तथा 8 अध्यायो पर आधृत है.
79 साथ ही देखिए, दत्त ई० एच० II, पृ० 520-1
80 इसी अध्याय पादटिप्पणी स० 4 देखिए और गाडगिल : पूर्वोद्धृत, पृ० 185.
81 इस दृष्टिकोण के प्रचलित होने के साक्ष्य के रूप मे देखिए, 1916-18 के इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन का प्रतिवेदन, पृ० 2 तथा अनस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 210 अपने को भारत मे औद्योगिक प्रवृत्तियो का प्रमुख संचालक मानने वाले लार्ड कर्जन तक ने 1903 में यह मत प्रकट किया : भारत की बहुसंख्यक जनता कृषि कर्म मे ही प्रशिक्षित है, व्यावहारिक (शारीरिक) दृष्टि से भी वह कृषि कर्म के ही योग्य है और वह कृषि कर्म को छोड़कर अन्य किसी उद्योग मे प्रवृत्त नही होगी (स्पीचेज, खंड III, पृ० 133) भारतीयो द्वारा इस दृष्टिकोण को नकारने के संबंध मे देखिए, भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड II, पृ० 557. के० टी० तैलग : 'फ्री इंडियन ऐंड प्रोटेक्शन, पृ० 34-5 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 642. रानाडे : एसेज, पृ० 24-5. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 258-274
82. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड II, पृ० 560-617 रानाडे : एसेज पृ० 24, 159-60 राय : पावर्टी, पृ० 82-4 जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 258, 275, अध्याय 16, 17, 18, दत्त : स्पीचेज II, पृ० 79, 106. एस० एन० बैनर्जी ने 1903 में अध्यक्ष पद से कांग्रेस को संबोधित करते हुए एक बहुत ही उपयुक्त तत्व का उल्लेख किया : यूरोपीय सर्वप्रथम हमारे कच्चे माल से नही प्रत्युत उत्पादित सामग्री की उत्कृष्टता से ही प्रभावित और आकृष्ट हुए थे. (सी० पी० ए०, पृ० 691).

83. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खड II, पृ० ` रानाडे . एसेज, पृ० 24 राय : पावर्टी, पृ० 109. जी० एम० अय्यर : ई ए, पृ० 145

84 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 668, रानाडे एसेज, पृ० 24 राय पावर्टी, पृ० 109, जी० एम० अय्यर . ई ए, पृ० 147, 149.

85. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 668, 742, रानाडे एसेज, पृ० 120, जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 146-7

86 नौरोजी : एसेज, पृ० 105. ए० बी० पी०, 2 अप्रैल 1881 मराठा, 9 अगस्त 1885 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ०666, 741, 743 रानाडे . एसेज, पृ० 22, 91 2 गोखले . वेलबी कमीशन, खंड III, प्रश्न 18140 वाचा मी० पी० ए०, पृ० 625 जी० सी० अय्यर . वेलबी कमीशन खंड III, प्रश्न 18675, 18680 ई ए, पृ० 145 लाजपत राय 'दि मैन इन हिज वर्क्स' (ला० लाजपत राय के भाषणो और लेखो का सग्रह) (मद्रास, 1907) पृ० 39-41 अपने साधनों से ही बड़े पैमाने के उद्योग खड़ा कर सकने मे समर्थ धनी वित्त-विनियोजकों की अनुपस्थिति पर बल दिया गया —बगाली, 28 जनवरी 1882 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 742

87. रानाडे : एसेज, पृ० 92

88 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 666, 741-2, 745, 803, रानाडे एसेज, पृ० 22, 91

89 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 793 रानाडे एसेज, पृ० 22.

90 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 761, 794-6, 803

91. रानाडे : एसेज, पृ० 23 और नीचे देखिए.

92. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 795 रानाडे एसेज, पृ० 91 तथा वित्त पर अध्याय 11

93. देखिए 'दि ड्रेन', अध्याय 13

94 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 747, 796 रानाडे : एसेज, पृ० 22, 41, जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 146

95. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 740 और देखिए रानाडे एसेज, पृ० 22 जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 150. लाजपतराय पूर्वोद्धृत, पृ० 142.

96 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 797-8. रानाडे एसेज, पृ० 40, 42

97 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 746 रानाडे . एसेज, 22, 91.

98 देखिए नीचे अध्याय 13 'ड्रेन' पर.

99. मराठा, 13 फरवरी 1881 तथा जी० एम० अय्यर . रिप० आई० एन० सी०—1901, पृ० 127.

100. ए० बी० पी०, 2 अप्रैल 1881 सवाद प्रभाकर, 9 मई (आर० एन० पी० बग 17 मई 1883) मराठा, 9 अगस्त 1883 राय : पावर्टी, पृ० 127-7 जमीयुल उलुम, 28 जून (आर० एन० पी० एन० 7 जुलाई 1807) 26 मई 1903 मे चारुमिहिर ने लिखा राजा और जमीदार लोग कमर कस ले और युद्ध में लड़ने को उद्यत हो जाए. इन दिनो धन की सहायता से देश के ससाधनो का परिरक्षण तथा देश की प्रगति का सरक्षण ही क्षत्रियो का कर्तव्य कर्म है …इन दिनो उन्नत विचारोवाला टाटा राजा तथा सैनिक का एक उत्कृष्ट उदाहरण है. (आर० एन० पी० बग, 6 जून 1901).

101· रानाडे : एसेज, पृ० 188.

102. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 15…तथा देखिए, वही, पृ० 150-4 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 797-8.

रानाडे : एसेज, पृ० 43, 49, 118. जी० एम०, अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 127.

103 ब्राह्म पब्लिक ओपीनियन, 24 जून, 1880 बगाली, 28 जनवरी 1882. बर्दवान सजीवनी, 27 मई (आर० एन० पी० बंग, 7 जून 1881) मराठा, 9 अगस्त 1885, हिंदू, 29 दिसबर 1883. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 800, 806. रानाडे : एसेज, पृ० 193 ऐजूकेशन गजट, 13 नवबर (आर० एन० पी० बंग 21 नवबर 1891) भारत जीवन, 10 जुलाई (आर० एन० पी० 19 जुलाई 1891. मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 174. लाजपत राय : पूर्वोद्धृत, पृ० 39, 41.

104. कलकता में 1883 में नेशनल कांफ्रेस का प्रथम प्रस्ताव. बगाली, 5 जनवरी 1884, मराठा, 20 जनवरी 1884, 9 अगस्त 1885, 19 सितबर 1886. पी० मेहता : स्पीचेज, पृ० 747-8. भारत-मित्र, 5 जून, नवविभाकर, 28 जुलाई, अकुलांत वक्ता, 5 सितबर, सुरभि तथा सहचर, 30 सित० (आर० एन० पी० बग, 14 जून, 2 अगस्त, 12 सित० 3 अक्तूबर 1884 क्रमश:). हिंदू, 21 जनवरी 1884, 3 जुलाई 1885, 10 अगस्त 1886, 21 अप्रैल 1902 इदु प्रकाश, 23 जन० (वी० ओ० आई०, फरवरी 1886). बगाली 17 अप्रैल और 31 जुलाई 1886. इडियन नेशन, 2 अगस्त, ट्रिब्यून, 14 अगस्त, बिहार हेराल्ड. 17 अगस्त (वी० ओ० आई० अगस्त 1886), 'ढाका प्रकाश', 7 मार्च (आर० एन० पी० बग, 11 सित० 1886); भारत मिहिर, 8 अप्रैल (आर० एन०पी० बग 17 अप्रैल 1886; सजीवनी, 4 सित०, भारतवासी, 4 सित०; नवविभाकर, साधारणी, 6 सित० (आर० एन० पी० बग 11 सित० 1886); स्वदेशमित्रन, 8 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, फरवरी 1886); एम० आर० एन० मधोलकर : रिप० आई० एन० सी० 1887, पृ० 137-8, एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज ऐड राइटिंग्ज (मद्रास, तिथिरहित) (निर्देश के लिए इसे आगे 'एस०ऐंड०डब्ल्यू' से सकेतित किया जाएगा), पृ० 260. सी० पी० ए० पृ० 696-7 टी० एन० सिह . रिप०, आई० एन० सी० 1888, पृ० 150; जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 632, 666, 743 तथा और आगे; पावर्टी, पृ० 138-9 भारत जीवन 3 अक्तूबर (आर० एन० पी० ए०, 12 अक्तू० 1898); ए० एन० बोस . सी० पी० ए०, पृ० 427; ए० बी० पी० 2 मार्च, 3 मई 1901; मालवीय . स्पीचेज, पृ० 269; लाजपतराय · पूर्वोद्धृत, पृ० 39; एम० के० पटेल, रिप० आई० एन०सी० 1902 पृ० 79 जी० एम० अय्यर . ई ए, पृ० 90, 97 'पैसा अखबार', 22 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 8 मार्च 1922) श्रीराम : एल० सी० पी० 1903 खड XVII, पृ० 103-04. मद्रास स्टैंडर्ड, 16 जन०, ट्रिब्यून, 15 जन० (वी० ओ० आई, 6 फरवरी 1904). इडियन पीपुल, 1 जन०, ऐडवोकेट, 24 जून (वही, 13 फर० 1904) तथा देखिए, कर्जन : स्पीचेज, खड II पृ० 330.

105. जी० पी० एस० एस० जनवरी 1882. पृ० 31. पूना सार्वजनिक सभा की शिक्षा समिति द्वारा एक अपील.

106. प्रस्ताव VII.

107. प्रस्ताव X.

108 क्रमश: प्रस्ताव XIII, VIII, और XII.

109. प्रस्ताव XV.

110. प्रस्ताव II. जी० एस० अय्यर ने थोडा और आगे बढ़ते हुए तथा वर्तमान भारत सरकार की योजनाओं को प्रत्याशित करते हुए भारत की पाच बड़ी राजधानियों में मि० टाटा के 'विज्ञान

संस्थान' के समान पांच संस्थानो की स्थापना का अनुरोध किया, ई ए, पृ० 97.

111. टी० एन० सिंह, रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 156. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 745, 1059. एन० जी० चंदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 525. मालवीय : स्पीचेज, पृ० 269. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 628 जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 92 तथा कर्जन : स्पीचेज, खंड II, पृ० 330.

112. इस मुद्दे पर आई० एन० सी० के प्रस्ताव के लिए ऊपर देखिए, पाद टिप्पणिया 106-110 और भारतमित्र, 3 जून (आर०एन०पी० बंग, 14 जून 1884) बंगाली, 31 जुलाई 1886, 27 अगस्त 1887, 4 सितंबर 1897, इंडियन नेशन; 2 अगस्त; ट्रिब्यून, 14 अगस्त; बिहार हेराल्ड, 17 अगस्त (वी० ओ० आई० अगस्त 1886); हिंदू 27 अक्तूबर 1884, 10 अगस्त 1886; मराठा 15 अगस्त 1886; जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 667, 811. मालवीय : स्पीचेज, पृ० 269 जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 97-9 पैसा अखबार, 5 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 15 अप्रैल 1899).

113. मराठा, 20 जनवरी 1884, जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 98

114. मराठा, 24 जून 1880; बंगाली, 31 जुलाई 1886; हिंदू, 10 अगस्त 1886; ट्रिब्यून, 14 अगस्त; (वी० ओ० आई०, अगस्त 1886). जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 745 आई० एन० सी० 1898, 1899. 1900, 1901 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश XVIII, XV, VIII, XIV, और II. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 99-100

115. राय : पावर्टी पृ० 140 हिन्दुस्तानी, 5 दिस० (आर० एन० पी० एन०, 11 दिस० 1900) वाचा . सी० पी० ए०, पृ० 626

116. बंगाली, 31 जुलाई 1886, हिंदू, 10 अगस्त 1886, मराठा, 15 अगस्त 1886; इंडियन नेशन 2 अगस्त; ट्रिब्यून, 14 अगस्त, बिहार हेराल्ड, 17 अगस्त (वी० ओ आई०, अगस्त 1888); बंगाली, 4 सितंबर 1897; हिंदुस्तानी, 5 दिसबर (आर० एन० पी० एन, 11 दिसबर 1900).

117 नव विभाकर, 28 जुलाई (आर० एन० पी० बंग, 2 अगस्त 1884). भारतमित्र, 15 अप्रैल, सहचर, 14 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग, 24 अप्रैल 1886); साधारणी, 25 अप्रैल, ढाका प्रकाश, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग, 1 मई 1886); सुरभि और पताका, 12 मई (आर० एन० पी० बंग, 22 मई 1886), मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 90 भारत जीवन, 3 अक्तूबर, (आर० एन० पी० एन०, 12 अक्तूबर 1892) ए० एम० बोस सी० पी० ए०, पृ० 427-8. मराठा, 18 नव० 1900, श्रीराम . एल० सी० पी०—1903, खंड XLII. पृ० 103-4; मालवीय स्पीचेज, पृ० 269 लाजपतराय : पूर्वोद्धृत, पृ० 39 जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 92. कांग्रेस ने 1898 के अपने चौदहवें अधिवेशन मे अपनी दृढ़ धारणा को इन शब्दो मे व्यक्त किया : इस समय प्रचलित तकनीकी शिक्षा पद्धति पूर्णतः अपर्याप्त और असंतोषप्रद है (प्रस्ताव XVIII.) 1899, 1900 तथा 1901 के क्रमश: XVI, VIII तथा XIX प्रस्तावों में इस राय को दोहराया गया.

118 शिवाजी, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब; 9 अक्तू० 1880) पूना सार्वजनिक सभा की कार्यकारिणी समिति द्वारा एक अपील, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1880, पृ० 30-31. 'पंजाबी अखबार', 10 नवंबर (आर० एन० पी० पी०, 14 नव० 1883), कलकत्ता में नेशनल कांफ्रेंस का प्रथम प्रस्ताव. बंगाली, 5 जनवरी 1884; मराठा, 20 अप्रैल 1884; नव विभाकर, 28 जुलाई (आर० एन० पी० बंग, 2 अगस्त 1884); जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 812. अमीउल अखबार, 28 जून (आर० एन० पी० एन०, 7 जुलाई 1897); भारत जीवन, 3 अक्तूबर (आर० एन० पी० एन०,

18 अक्तूबर 1898) अल्मोड़ा अखबार 8 अक्तू० (आर० एन० पी० एन०, 19 अक्तू० 1898). लाजपतराय : पूर्वोद्धृत, पृ० 40-1. नेटिव ओपीनियन, 30 जुलाई; इंदु प्रकाश, 31 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 2 अगस्त 1902).

119. जे० सी० बागल . 'हिस्टरी आफ दि इंडियन एसोसिएशन,' 1876-1951 (कलकत्ता 1953) पृ० 10.

120. प्रस्ताव XVI. 1900 में इसी भावना की पुन. अभिव्यक्ति की गई. 1898 में कांग्रेस अध्यक्ष ए० एम० बोस ने पहले ही टाटा की देश के सच्चे लोकोपकारक के रूप में प्रशंसा की थी—(सी० पी० ए०, पृ० 456).

121. ए० बी० पी०, 11 मार्च, 23 जून 1904 कलकत्ता प्रेस ने संस्था का बढ़े-चढ़े उत्साह के साथ स्वागत किया देखिए, बंगाली, 16 मार्च, 8 सितंबर 1904, ए० बी० पी० 23 जून 1904; इंडियन मिरर, 4 मई (आर० एन० पी० बंग, 14 मई 1904); तथा दुनिया प्रकाश, 7 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 9 अप्रैल 1904)

122. 'इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया', 1909, खंड IV पृ० 436-9

123. मराठा 1, 15 अगस्त 1886, 18 नव० 1900, भारत मिहिर, 8 अप्रैल, नव विभाकर, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग, 17 अप्रैल 1886); सुबोध पत्रिका, 6 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 12 फर० 1887), बंबई समाचार 12 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 16 अप्रैल 1887), हिंदुस्तानी, 5 दिसंबर (आर० एन० पी० एन०, 11 दिस० 1900) स्वदेशमित्रन, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 2 मार्च 1901), वाचा सी० पी० ए०, पृ० 628, जी० एस० अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 126. इंडियन पीपुल, 1 जन०; ऐडवोकेट, 24 जन० (वी० ओ० आई०, 13 फर० 1904) तुलनीय ई० बी० हावेल 'टैक्नीकल एजुकेशन इन इंडिया', 'कलकत्ता रिव्यू' अप्रैल 1897 हावेल ने प्राथमिक तकनीकी शिक्षा पर बल दिया तथा उच्च तकनीकी शिक्षा की माग का तिरस्कार किया

124. सुबोध पत्रिका, 6 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 12 फरवरी 1887); बंबई समाचार, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 16 अप्रैल 1887), स्वदेशमित्रन, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम० 2 मार्च 1901); इंडियन स्पेक्टेटर, 9 जून 1901, हिंदू, 23 फरवरी 1901; इंडियन पीपुल 1 जन०; ऐडवोकेट, 24 जन० (वी० ओ० आई० 13 फरवरी 1904).

125. हमे हस्तशिल्पियो को प्रशिक्षित करने की इतनी आवश्यकता नही है जितनी कि उच्च स्तर के नवयुवको के हृदय को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है क्योंकि यही लोग भारत की औद्योगिकता को नीचे से ऊपर उठाने में पुरोगामी बनेंगे (जी०एस० अय्यर : रिप०आई० एन० सी० 1901, पृ० 126)तथा पाद टिप्पणी 124 ऊपर और मराठा, 15 अगस्त 1886. भारतवासी, 4 सित० (आर० एन० पी० बंग, 11 सित० 1886). वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 627-8. इसके विरुद्ध भारतीय दृष्टिकोण को देखने के लिए देखिए, 'दि इंडियन इकानामिक प्राब्लम', 'दि डान' जून 1900, पृ० 31-2.

126. सपड़ा, पादटिप्पणियां 118 और 121 तथा जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 98

127. देखिए ऊपर पादटिप्पणी 110 तथा 'भारतवासी', 4 सितंबर (आर० एन० पी० बंग, 11 सित० 1886) वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 628. आई० एन० सी—1902 का प्रस्ताव IX. इंडियन पीपुल, 1 जनवरी, ऐडवोकेट, 24 जनवरी (वी० ओ० आई०, 13 फरवरी 1904).

128. जे० एन० सिंह : रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 156-7. आर० बोस : वही, पृ० 162.

रानाडे . एसेज, पृ० 122, 187 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 4. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 149. बी०सी० पाल दि नेशनल प्राब्लम', 26 जनवरी 1903 को कलकत्ता मे दिया गया एक भाषण, न्यू स्पिरिट (कलकत्ता, 1907) पृ० 175.

129. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 740 तथा पृ० 826
130. आर० बोस रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 162
131. रानाडे एसेज, पृ० 122 तथा जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 740, 801-02, 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 4, 23 जी० एस० अय्यर · ई ए, पृ० 149-50 लाजपतराय : पूर्वोद्धृत, पृ० 42
132. 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 23 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 625. मराठा, 1 फरवरी 1884 ; बगाली, 17 दिसबर 1901. गोखले : स्पीचेज, पृ० 1057 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 216.
133 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 625 बगाली 17 मई 1902
134 रानाडे · एसेज, पृ० 23, 122 बी० सी० पाल 'दि नेशनल प्राब्लम', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 179-80; तथा देखिए जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 132-4 भारतीय दृष्टिकोण के विरुद्ध 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', के अज्ञातनाम लेखक ने सकेतित किया : आधुनिक सभ्यता अस्तित्व की स्थिति है जिसमे प्रत्येक व्यक्ति जीवन मे अपनी दशा को सुधारने, अपनी शक्तियो के विकास तथा जीवन की सुख-सुविधाओ मे वृद्धि का अथक प्रयास कर रहा है (पूर्वोक्त स्थल पृ० 5)
135 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 5
136 वही, पृ० 3 जे० एन० सिंह, रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 157, जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 151
137 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 5 जे० एन० सिंह रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 157
138 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 5-6, 23 बी० सी० पाल, 'दि नेशनल प्राब्लम', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 186
139 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 150 बी०सी० पाल 'दि नेशनल प्राब्लम,' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 179
140 अज्ञात अनुसधानो में सफलता के लिए हमे अपने निजी जीवन मे क्रातिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है हमे उन पारपरिक प्रतिबधो से अपने आपको मुक्त करना है जो सुधार मे बाधक हैं तथा विचारो को अस्पष्ट बनाने वाले और निर्णय को विपर्यस्त करने वाले पूर्वग्रहो एव भावनाओ के त्याग से समझौते पर विवश करते हैं 'दि ऐक्सीजेंसीज आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 1-2
141. रानाडे 'मिसलेनियस राइटिंग्ज'(बबई 1915)पृ० 131 तुलनीय बी० सी० कर्वे, रानाडे . 'दि प्रोफेट आफ लिबरेटिड इंडिया', (पूना, 1944) रानाडे की इच्छा थी कि जनता का सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक सारा जीवन पुनर्गठित करना चाहिए ताकि भारत के लोग आधुनिक व्यवसाय तथा उद्योग की आवश्यकताओ के आधार पर व्यवसायपरक दृष्टिकोणवाले बनें (पृ० 106).
142 वही, पृ० 116. जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 300 तथा भोलानाथ चद्र—एम० एम० खड 5, पृ० 7-9
143 'दि ऐक्सीजेंसी आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 1-23 तथा ऊपर 130, 131 की पादटिप्पणियां.

144. भारत जीवन, 6 नवबर (आर० एन० पी० एन०, 14 नवंबर 1899) प्रधान ऐंड भागवत मे तिलक ने कहा—पूर्वोद्धृत, पृ० 50, 63, 96. एन० जी० चदावरकर 'स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज', एल० वी० कैंकिनी द्वारा सपादित (बबई, 1912), पृ० 75 (अन्यथा वह सुधारक वर्ग मे सबधित था) लाजपतराय पूर्वोद्धृत, पृ० 114-28
145. 1904 मे लाजपतराय ने अपना मत प्रकट किया : हमारे धर्मग्रथो से इतनी पर्याप्त सामग्री है कि हम सामाजिक शक्ति और सुधार के लिए उस पर निर्भर कर सकते है (पूर्वोद्धृत, पृ० 90) तथा वही, पृ० 73, 116, 122, 124 प्रधान ऐंड भागवत में तिलक ने कहा—पूर्वोद्धृत, पृ० 76-7, 119
146. प्रधान ऐंड भागवत, मे तिलक ने कहा—पूर्वोद्धृत, प० 63-4 लाजपतराय · पूर्वोद्धृत, पृ० 76-7, 119
146-ए ए० सी० मजूमदार : 'इडियन नेशनल इवोल्यूशन (मद्रास, 1917) पृ० 187
147. मसानी . पूर्वोद्धृत, पृ० 71, 78
148. जी० ए० मनकर . पूर्वोद्धृत, खड I, पृ० 82-3.
149. गोखले स्पीचेज, पृ० 927
150 पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 747
151 दि इडियन नेशन बिल्डर्स (मद्रास, निथिरहित), भाग I, पृ० 182
152 राम गोपाल पूर्वोद्धृत, पृ० 42
153 'दि इडियन नेशन बिल्डर्स, भाग II, पृ० 93, 296
154. वही, पृ० 361, 372
155 वही, भाग I, पृ० 155 6
156 लाजपतराय : पूर्वोद्धृत, इट्रोडक्शन, पृ० XXIII
157. 'ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन', 22 जनवरी, 8 अप्रैल 1880.
158. बगाल नेशन चेबर आफ कामर्स—1887 का प्रतिवेदन, पृ० 71-2.
159. ये तथ्य पैसा निधि की रजत जयती प्रक (पूना, 1933) से लिए गए है
160. मराठा, 9 अगस्त 1885, 22 सितबर 1895; रानाडे एसेज, पृ० 120, 180, जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 971-8 तथा डी० पी कर्वे : पूर्वोद्धृत, पृ० 106.
161. केलाक महादेव गोविंद रानाडे (कलकत्ता 1926) पृ० 321-2. गोखले · स्पीचेज, पृ० 927.
162. बगाली, 12 सितबर, 7 नवबर 1891
163. एस० एन० बैनर्जी : 'ए नेशन इन मेकिंग' (आक्सफोर्ड प्रेस, 1925), पृ० 146.
164. आई० एन० सी०—1900 के प्रस्ताव VII और XXV.
165. बी० पट्टाभि सीतारमैया : 'दि हिस्टरी आफ इडियन नेशनल कांग्रेस', 1883-1935. (मद्रास 1935) पृ० 68. प्रदर्शनियो को लोकप्रिय भारतीय समाचारपत्रो से प्रोत्साहन और समर्थन मिला. देखिए, बगाली 18 जनवरी 1902; इंडियन नेशन 23 दिसबर 1901, ऐडवोकेट—9 जनवरी 1902; इडियन मिरर 19 जनवरी 1902; वी० ओ० आई०, 8 फरवरी 1902.

अध्याय 3

औद्योगिक विकास : दो

ब्रिटिश पूजी......... (भारत की) राष्ट्रीय प्रगति के लिए एक अपरिहार्य आवश्यकता है।
लार्ड कर्जन

विदेशी, अधिकाशतया ब्रिटिश, पूजी का देश के संसाधनों के विकास मे विनियोजन देशवासियों की आर्थिक दशा के सुधार में सहायक होने की अपेक्षा इस दिशा मे एक बहुत बड़ी बाधा ही सिद्ध हुआ है।
विपिनचंद्र पाल

विदेशी पूंजी की भूमिका

भारत मे एक ओर स्वदेशी पूजी की कमी थी और यहां के लोग संकोचवश अथवा खतरो मे घबराकर नए क्षेत्रो मे पूजी के निवेश से कतराते थे जिसके फलस्वरूप भारत के औद्योगिक विकास का क्षेत्र संकुचित और सीमित हो गया था तो दूसरी ओर ब्रिटिश पूजी अपने देश मे पूरी तरह न खप पाने के कारण निवेश के लिए नए क्षेत्रों की खोज मे थी। ब्रिटेन का विचार यह था कि इस ब्रिटिश पूजी को भारत के आर्थिक विकास की शून्यता को भरने के काम में लगाया जाए तथा इसका प्रयोग उद्योगीकरण के विकास मे किया जाए। ग्रेट ब्रिटेन के तथा भारत के अधिकारियों का विचार था कि ब्रिटिश पूंजी को भारत में आकृष्ट करने तथा सभी बाधाओं को हटाकर उसका प्रयोग करने से न केवल भारत के सभी आर्थिक रोगों का उपचार हो जाएगा प्रत्युत ब्रिटेन की अतिरिक्त पूंजी को भी सुरिक्षत और लाभदायक विकास मिल जाएगा।[1]

ब्रिटिश सत्ता ने भारत मे ब्रिटिश पूंजी के प्रवाह को सुरक्षा और आकर्षण प्रदान किया। स्वदेशी पूजी तथा साहस के अभाव तथा ब्रिटिश राजनीतिक सर्वोच्चता के परिणामस्वरूप प्रारंभिक अवस्था में ब्रिटिश पूंजीपति ही भारत में आधुनिक उद्योगों के अग्रदूत तथा प्रधान प्रोत्साहक बने। इस पर भी आश्चर्यजनक बात यह है कि ब्रिटिश पूजी का मूल निवेश अत्यल्प था। भारतीय साम्राज्य की विजय का आधार भारतीय वित्त तथा यहीं से जुटाए गए कर्ज थे। 19वीं शती के पूर्वार्ध में जन्म लेने वाले व्यवसाय नाए बैंक तथा

बागान उद्योग अधिकांशतया भारत स्थित ब्रिटिश अधिकारियों की बचत की वित्तीय सहायता के ही परिणाम थे। फलस्वरूप ये हित भारत की लूट खसोट और भारत से उगाहे राजस्व के भारत में पुर्निवेश के परिमाण के ही संकेतक थे। इनमें ब्रिटेन से निर्यातित पूंजी नही लगी थी।[2] 1837 के उपरात ही भारत में उल्लेखनीय परिमाण में ब्रिटिश पूंजी निरतर प्रवाहित होने लगी। 1854-1859 की अवधि में यह प्रवाह अपनी चरम सीमा पर था। इस अवधि में लगभग 1500 लाख पौंड निवेशित किए जा चुके थे।[3] दुर्भाग्यवश 19वीं शताब्दी में निवेशित विदेशी पूजी की राशि का विश्वसनीय प्राक्कलन उपलब्ध नहीं है। विदेशी पूजी का एक बड़ा भाग उन मिश्रित पूंजी समुदायों द्वारा निवेशित किया गया था जिनका पंजीयन तो कही और हुआ था परंतु आंशिक अथवा पूर्ण रूप से उनका व्यापार भारत में होता था। संक्षेप में इस पूजी की राशि की संगणना असंभव न होने पर भी कठिन अवश्य थी। फिर भी निवेशित विदेशी पूजी के परिमाण की सामान्य रूप-रेखा 1909-11 के मध्य प्रकाशित तीन प्राक्कलनों में देखी जा सकती है। 1909 में एक अर्थशास्त्री लेखक ने संगणना की कि ब्रिटिश पूजी का लगभग 4700 लाख पौंड भारत में निवेशित हो चुका था।[4] 1910 में जार्ज पाइश द्वारा लगाए गए एक अन्य अनुमान के अनुसार भारत और श्रीलंका 1909 तक ब्रिटिश पूजी की 3650 लाख पौंड राशि खपा चुके थे।[5] 1911 में एम० एफ० हावर्ड ने इस राशि को 4500 लाख पौंड कूता।[6] इन अनुमानों की विशुद्धता को छोड़ देने पर भी इतना तो निश्चित है कि इस अवधि में भारत में निवेशित ब्रिटिश पूजी पर्याप्त मात्रा में बढ़ गई थी।

विस्तृत परीक्षण से भारत में विदेशी पूजी की तीन विशिष्ट विशेषताएं स्पष्ट होती हैं। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के ब्रिटिश पूजी के प्रति दृष्टिकोण की समीक्षा के समय इन्हें ध्यान में रखना उचित ही होगा। अव्वल तो 1870 के पश्चात चालू विदेशी पूजी के वार्षिक ब्याज के रूप मे विदेशों को भेजी गई धनराशि वार्षिक पूजी के नए अंत.प्रवाह की राशि से बढकर थी जिसका स्पष्ट अर्थ यह था कि 19वी शती के पूरे अंतिम चरण में ब्रिटेन वास्तव मे भारत मे पूजी का शुद्ध आयातक था, अथवा दूसरे शब्दों मे, भारत में पूर्व निवेशित विदेशी पूजी के एकांत लाभों से अर्जित विदेशी पूजी का केवल भारत मे ही नवीन निवेश नही होता था प्रत्युत ब्रिटिश धनकुबेर इन लाभों के कुछ अंश का विश्व के दूसरे भागों के विकास मे भी उपयोग करते थे[7], दूसरे, ब्रिटिश निवेशक जहां भारत में अपनी फालतू पूजी से निकास से स्रोतों की खोज के प्रति उत्सुक थे, वहां ब्रिटिश उत्पादक भी उसी उत्सुकता से भारत को अपने एकाधिकार की मंडी बनाए रखना चाहते थे। ब्रिटिश उत्पादक अपने देश में शक्तिशाली थे अत भारत सरकार को विवश होकर भारत में आधुनिक उद्योग को उत्साहित और कभी कभी निरुत्साहित करने की नीति भी अपनानी पड़ी। फलतः विदेशी पूजी को प्रधानतया सरकारी ऋणों, रेलवे, विदेशी व्यापार, बेंक, खान तथा बागान उद्योगों के क्षेत्र में ही नियोजन उपलब्ध हो सका। इनके उत्पादनों ने ब्रिटिश उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता तो की ही नहीं, उलटे भारतीय बाजारों में उनके प्रवेश की सुविधाएं जुटाईं। सर जार्ज पाइश के अनुसार, 1909 में ब्रिटेन की भारत में कुल निवेशित 3650 लाख पौंड राशि में से केवल 250 लाख पौंड

व्यावसायिक और औद्योगिक संस्थाओं मे निवेशित थी। स्पष्ट है कि इस प्रकार औद्योगिक निवेश का भाग अपेक्षाकृत और भी कम था।[8] तृतीयत., यद्यपि आधुनिक उद्योगो मे निवेशित विदेशी पूजी की राशि किसी भी मानदड से तुच्छ थी तथापि उसने भारत के औद्योगिक मंच पर एकधिकार जमाए रखा तथा इस क्षेत्र मे भारतीय पूजी को दबा कर रखा। बहुत सारी पटसन मिलो, ऊन और सिल्क की मिलो, कागज मिलों, चीनी के कारखानो, चमडे के कारखानो, लोहा तथा पीतल के ढलाई कारखानो के मालिक विदेशी निवेशक ही थे।[9] भारतीयो का प्रारंभ से ही प्रमुख भाग केवल सूती कपडा उद्योग म ही था किंतु यहा भी आंशिक पूजी विदेशी थी प्रबंध अधिकाशतः विदेशी था तथा तकनीकी सवर्ग मे अधिकाश का जबरदस्ती ही आयात करना पडता था।[10]

भारतीय राष्ट्रवादी नेता विदेशी पूजी के उपयोग के सबध मे पर्याप्त समय तक संभ्रम, मतभेद तथा सकोच का शिकार बने रहे। प्रारंभ मे विदेशी संरक्षण मे जब रेलवे और नहरो, खानों, बागान और आधुनिक उद्योगो का आगमन हुआ, उस समय विदेशी पूंजी के भारत मे अत प्रवेश का कोई विरोध नही हुआ, परतु ज्योंही भारतीयो के स्वामित्व के उद्योग धीरे धीरे विकसित होने लगे और भारतीयो को विदेशी पूजी के एकाधिकार के दुष्प्रभाव का पता चलता गया, त्योंही विदेशी पूजी के विरुद्ध आलोचना की प्रवृत्ति जोर पकडने लगी। 19वी शताब्दी के अत तक भारतीयो का एक वर्ग तो अब भी विदेशी पूजी के उपयोग के पक्ष मे था, परतु बहुमत उसका तीव्र विरोधी था।[11] राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे परिवर्तन का सर्वोत्तम उदाहरण दादाभाई नौरोजी है, जो पहले विदेशी पूजी के प्रबल समर्थक थे परतु कालातर मे उसके तीव्र आलोचक तथा प्रखर विरोधी बन गए।[12] यहा यह उल्लेखनीय है कि जहा विदेशी पूजी के निवेश के समर्थक अनेक भारतीय नेताओ ने उसके कुछ विशेष पहलुओ की निंदा की, वहा उसके विरोधी उससे होने वाले कुछ लाभो मे सहमत थे। बहुसख्यक राष्ट्रवादी नेताओ का यह जटिल व डावाडोल दृष्टिकोण उनके मत को वास्तविकता मे प्राय असबद्ध और कभी कभी तर्कहीन बना देता था। यह बात अवश्य है कि 1905 तक उन्होने विदेशी-पूजी की तत्कालीन और आने वाले वर्षो मे निभाई जानेवाली भावी भूमिका के सबध मे सशक्त और विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली थी।

विदेशी पूजी के उपयोग के समर्थक भारतीय नेताओं के एक वर्ग के समर्थन का आधार यह था कि भारत जैसा निर्धन देश अपनी देशी पूजी से अपने नए उद्योगो का उपक्रम करने मे असमर्थ है अत उसे अपने उद्योगो और यातायात के साधनो के विकास तथा इसके फलस्वरूप अपने लोगो की भौतिक दशा को उन्नत बनाने के लिए निश्चित रूप मे ही विदेशी पूजी की जरूरत है।[13] अमृतबाजार पत्रिका ने अपने 23 फरवरी 1903 के अक मे तो यह मत प्रकट किया वर्तमान परिस्थितियों मे विदेशी पूजी के अत-प्रवाह का विरोध मूर्खतापूर्ण तथा आत्महत्या जैसा काम है। यह आशा की जाती थी कि विदेशी उद्यम एक उदाहरण और एक आदर्श का काम करते हुए स्वदेशी उद्योग और व्यापार को प्रेरणा प्रदान करेगा।[14] इसमे वस्तुतः ही भारतीय उद्यमियो के लिए शिक्षक का कार्य करने की अपेक्षा की गई थी।[15] राष्ट्रीय नेताओ के इस वर्ग का विश्वास था कि

ब्रिटिश निवेशकों को भारत मे अपनी निधि के निवेश के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए[16] तथा भारतीयों को उन्हे ब्याज अथवा लाभों के भुगतान का बुरा नही मानना चाहिए क्योकि मूलत: यह भुगतान उन ससाधनों की आय से ही किए जाते है जो विदेशी पूजी के अभाव मे अविकसित ही रह जाते।[17]

बहुसंख्यक भारतीय नेता विदेशी पूजी के उपयोग के विरुद्ध थे। वे यह भी नही मानते थे कि उसके लाभदायक प्रभाव विषैले परिणामों से बढ़-चढ़कर थे। उनके विश्वास का प्रारंम्भिक तर्क यह था कि रेले, नहर, खान, बागान और फैक्टरिया खोलने के रूप मे उद्योगीकरण के अथवा भौतिक ससाधनो के विकास से देश की राष्ट्रीय संपत्ति और समृद्धि पर पडने वाले प्रभाव को, उद्योगीकरण की परिस्थितियो मे और उनसे लाभान्वित होने वाले वर्ग के प्रश्न से पृथक करके नही देखा जा सकता।[18] उन्होने तर्क प्रस्तुत किया कि भारतीय ससाधनो के विकास मे अधिकाशतया योगदान विदेशी उद्यम का होने के कारण इस विकास के फलस्वरूप होने वाले लाभो मे विदेशी पूजीपति ही कृतार्थ होते थे तथा वे ही सारे उत्पादित अतिरिक्त धन को हडप कर लेते थे।[19] अत कुछ एक थोडे से आकस्मिक लाभ को छोडकर विदेशी पूजी का देश की समृद्धि म तथा देशवासियो की आर्थिक स्थिति के सुधार मे न कोई योगदान था और न हो सकता था।[20] उनकी मान्यता थी कि वास्तव म ... विदेशी उद्यम ने भारतीय जनता के एक बहुत बडे वर्ग को विदेशी पूजीपतियों का निस्सहाय मजदूर बनाकर रख दिया था।[21] इस प्रकार यह भारतीयो को अपने गोरे मालिको के कुलियो की अवस्था म ला रहा था।[22] विदेशी पूजी से भारतीय ससाधनो के विकास का वास्तविक अर्थ केवल उनका अविकास ही नही था, प्रत्युत उन ससाधनो की लूट और शोषण भी था।[23] विदेशी पूजी का भारत की समृद्धि का साधन बनना तो दूर रहा, वह उलटे असदिग्ध रूप से देश की बढती हुई दरिद्रता के महत्वपूर्ण कारणो मे से एक थी।[24] अतएव विदेशी निवेश का और अधिक विस्तार वस्तुत. देश के विनाश को ही गति देगा और भारत को स्थाई रूप से विदेशी पूजी पर निर्भर रहने वाला बना देगा।[25] उनके अनुसार विदेशी पूजी का नियोजन न केवल वर्तमान पीढ़ी के लिए, प्रत्युत भावी सतति के लिए भी एक विकट आर्थिक और राजनीतिक खतरा उपस्थित करेगा, अतः इससे देश को और भी अधिक सावधानी तथा सतर्कतापूर्वक बचाना चाहिए।[26] विपिनचद्र पाल ने विदेशी पूजी के विरोध को निम्नलिखित शब्दों मे सक्षिप्त रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

> विदेशी, अधिकाशत: ब्रिटिश, पूजी का देश के प्राकृतिक ससाधनो के विकास मे विनियोजन वस्तुत देशवासियो की आर्थिक दशा के वास्तविक सुधार मे सहायक न होकर उलटे इस दिशा मे एक बडी भारी और भयकर बाधा ही सिद्ध हुआ है। विदेशी पूजी द्वारा देश का यह शोषण यहां की सरकार और जनता के लिए समान रूप से ही विनाश का खतरा उपस्थित करता है। ...यह जितना बडा राजनीतिक खतरा है उतना ही भयकर आर्थिक खतरा है। नव भारत के भविष्य की सुरक्षा इस दोहरे खतरे का शीघ्र और मूलभूत उपचार करने मे ही है।[27]

वास्तव मे विदेशी पूजी के विरोधियों की यह मान्यता थी कि केवल अपने आप

भारतीय पूजीपतियो द्वारा औद्योगिकता की प्रक्रिया के उपक्रम और विकास किए जाने पर ही देश का वास्तविक आर्थिक विकास और सुधार सभव था; विदेशी पूजीपति इस कार्य के सपादन मे असमर्थ थे।'[8] जी० एस० अय्यर ने 1901 मे कहा आधुनिक काल के अथवा प्राचीन काल के ऐसे किसी देश का कोई एक भी उदाहरण उपलब्ध नही जहा शासक जाति के होने के नाते सभी सभव राजनीतिक और सामाजिक सुविधा प्राप्त विदेशी पूजीपतियो ने शासित प्रदेश के लोगो की औद्योगिक समृद्धि मे सहायता की हो।[29] उन्होने तो साथ मे यह भी कहा, 'मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही कि अपने देशवासियो को ही कच्चे माल का उत्पादन अपने हाथ मे लेने के योग्य बनाने के लिए शिक्षित तथा प्रशिक्षित करने से देश मे कृषि से इतर सपत्ति का उपार्जन किया जा सकता है।'[30]

आलोचको की दृष्टि मे विदेशी पूजी अपने मूल मे राष्ट्रविरोधी थी, की क्योकि यह भारतीय पूजी की सहायता करने तथा उसे प्रोत्साहित करने के बदले उलटे खदेड कर उसे कुचल रही थी।[31] विदेशी तकनीक अथवा मशीनरी की अपेक्षा न रखने वाले तथा भारतीयो के कार्य व्यापार के स्वत सिद्ध अधिकारक्षेत्र बैंक जैसे व्यवसायो से भी विदेशी उद्यम भारतीय उद्यम को जबरदस्ती बाहर धकेल रहा था।[32] भारतीय उद्यमी विदेशी पूजीपतियो द्वारा अपना मार्ग अवरुद्ध ही पाते रहे है।[33] जिस प्रकार अप्रतिबधित विदेशी आयातो ने पहले भारत के शहरी उद्योगो को नष्ट किया है, उसी प्रकार अब विदेशियो के स्वामित्व के उद्यम ग्रामीण हस्तशिल्पो को नष्ट-भ्रष्ट करने मे लगे है।[34] विदेशी उत्पादनो की देश के उत्पादनो के साथ प्रतियोगिता और भी अधिक भयकर है क्योकि वह देश के सस्ते श्रम पर निर्भर है। समालोचको का उन लोगो को जो यह मानते थे कि विदेशी पूजी के अभाव मे अविकसित रह जानेवाले साधनो के विदेशियो द्वारा विकसित किए जाने मे कोई हानि नही, उत्तर था कि यह हानि आनेवाली पीढियो को ही दिखाई पडेगी। कालातर मे काफी वर्षो के बाद जब भारतीय पूजी की विपुल राशि के निवेश तथा सचालन की स्थिति मे हो जाएगे तब उस समय उन्हे पता लगेगा कि औद्योगिक उद्यमो के बहुत सारे क्षेत्र विदेशियो ने पहले ही बुरी तरह से अपने अधिकार मे कर रखे है और इस दिशा मे नए उद्यमो के लिए कोई अवकाश ही नही है। इस प्रकार आज के क्षुद्र लाभो के लिए सारा भविष्य अधकारमय हो जाएगा। अत उनका कथन था कि इसकी अनुमति कदापि नही देनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति, यहा तक कि वर्तमान पीढी को भी यह अधिकार कदापि नही है कि वह स्थाई रूप मे भारत के औद्योगिक क्षेत्र को पराधीन करने के रूप मे देश के भविष्य और स्थाई लाभो का बलिदान कर दे।[35] उन्होने लार्ड कर्जन की इस टिप्पणी का भी तर्कपूर्वक विरोध किया 'सारा औद्योगिक और व्यापारिक विश्व एक प्रकार का क्षेत्र है, जिस पर कृषक का कृषि करनी है, और यदि स्थानीय व्यक्ति अपनी कुदाली से उस खेत की जुताई नही करता तो उसे अपने हल के साथ उसके खेत को जोतने के लिए आने वाले बाहरी व्यक्तियो को दोष देने का कोई अधिकार नही।'[36] उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि भारत का औद्योगिक क्षेत्र, अधिकृत अथवा अनधिकृत, भारतीयो का ही है, किसी अन्य का नही,।[37] और पूछा .

यदि वाइसराय के तर्क सही हैं तो हम जानना चाहेगे कि फिर आस्ट्रेलिया और

दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के विरुद्ध, अमरीका में चीनियों के विरुद्ध, इंग्लैंड में अमरीकी पूजीपतियों के आगमन के विरुद्ध तथा ब्रिटेन द्वारा अपने पूर्ण एकाधिकार के रूप में स्वीकृत बाजारों मे सस्ते माल के प्रवाह के विरुद्ध विस्फोट के क्या कारण है ? यहां तक कि स्वयं लार्ड कर्जन ने अमरीकी तेल कंपनी को बर्मा की तेल खानो में काम करने की अनुमति क्यों नही दी ? क्या इन सबके कारण वही नही हैं जिनके लिए हमारे देशवासी विदेशी शोषण के विरुद्ध आपत्ति करते आ रहे है ?[38]

वस्तुतः विदेशी पूजी के इन विरोधियो ने यह कभी स्वीकार नही किया कि भारत मे विदेशी पूजी के निवेश के बिना औद्योगिक विकास संभव नही होगा।[39] वे इस विडंबना मे सहमत नही थे कि या तो विदेशी पूजी का उपयोग कीजिए, अन्यथा पूजी से सर्वथा वंचित रहिए। उनके अनुसार वास्तविक विकल्प विदेशी और स्वदेशी पूजी के मध्य है। उनके अनुसार स्वदेशी पूजी का उदय और उसकी प्रौढ़ता प्राप्ति समय सापेक्ष भले ही हो परतु विदेशी पूजी का आगमन और प्रयोग सचमुच ही उसे अपनी पूजी से या तो वंचित कर देगा या उसके उदय को विलबित करेगा।[40]

विदेशी पूजी के आलोचको द्वारा विदेशी पूजी के प्रयोग के विरुद्ध प्रस्तुत तर्क यह था कि वह देश की पूजी की देश के बाहर निकासी करती है क्योकि विदेशी उद्यमी केवल अपनी पूजी के ब्याज की राशि ही नही प्रत्युत सारे ही लाभ भारत से बाहर भेज देते थे।[41] उन्होने इस तथ्य को स्वीकार किया कि विदेशी पूजी के निवेश ने सयुक्त राज्य अमरीका अथवा इग्लैंड अथवा अन्य स्वतंत्र देशो मे संबधित राष्ट्रो और देशवासियों को प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ पहुचाए है। उन राष्ट्रों को इन लाभो के मूल्य के रूप मे केवल पूजी का ब्याज ही देना पडा है।[42] परतु उन्होंने संकेत किया कि भारतीय लोगो को अपनी विशिष्ट आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियो के कारण इस विदेशी पूजी से कोई लाभ नही हो पाता। वस्तुतः इसके विपरीत उन्हे इससे हानि ही उठानी पड़ती है। वे विशिष्ट परिस्थितिया कौन सी थी, उनका विवरण इस प्रकार है

प्रथम, विदेशी पूजी का आयात स्वेच्छाप्रेरित नही था, वह विदेशी शासन के कारण बलपूर्वक लादा हुआ था। ब्रिटिश राज्य के प्रत्यक्ष प्रमाण, ऊंचे कराधान तथा विपुल सामग्री की निकासी देश की पूजी का बहुत बड़ा भाग स्वायत्त कर लेते थे, अतः देशवासियो के पास नाममात्र की पूजी अवशिष्ट रह पाती थी। इस स्थिति मे पूजी की क्रमिक वृद्धि की संभावना लगभग असंभव थी। भारतीय पूजी की विरलता के कारण नए औद्योगिक क्षेत्रो के उपक्रम नही किए जा सकते थे अत. विदेशियो ने आकर इनपर अपना अधिकार कर लिया। प्रथम तो इस तरीके से भारतीय उद्यमियों के मार्ग मे बाधा डाली गई और उसके उपरात आर्थिक आवश्यकता का बहाना करके देश पर विदेशी पूजी बलपूर्वक थोप दी गई।[43] इस प्रकार भारतीय नेताओं का मंतव्य था कि विदेशी पूजी भारत मे इस देश की पूजी की वृद्धि के लिए नही, प्रत्युत उसके ह्रास के लिए, उसकी सेवा के लिए नही, प्रत्युत उसे अपने अधीन बनाने के लिए; इसके विकास के लिए नही, प्रत्युत इसके साधनों के अपहरण के लिए ही आई है।

द्वितीय, आलोचकों ने निर्दिष्ट किया कि विदेशी पूजी भारतीय पूजी को विस्थित

कर देती है। इसका कारण यह नही कि विदेशी पूजीपति आर्थिक दृष्टि से अधिक योग्य हैं अथवा भारतीय पूजीपति सकोची वृत्ति के है, अथवा विदेशी पूजीपति अधिक उत्साही-साहसी है। इसका वास्तविक कारण यह है कि भारत मे ब्रिटिश शासन द्वारा विदेशी पूजी को आने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है, सभी प्रकार की रियायतो से उसकी सहायता की जाती है, उसे सभी प्रकार के प्रलोभन और विशिष्ट सुविधाए दी जाती है। उदाहरणार्थ लाभो की गारटी, मुफ्त अथवा सस्ते दाम पर भूमि, उसके हितो की रक्षा के लिए प्रशासनिक तथा सावैधानिक उपाय आदि। इसके विपरीत स्वदेशी पूजीपतियो को निरुत्साहित किया जाता है, उन्हे सभी साधनो से वचित किया जाता है तथा उन्हे अपनी हालत पर छोड दिया जाता है। इस प्रकार स्वदेशी और विदेशी पूजी मे न्यायोचित तथा समता के आधार पर प्रतियोगिता नही है। विदेशी पूजीपति भारतीय पूजीपतियो के मुकाबले अनुचित सुविधाओ का उपभोग कर रहे है।[44]

तृतीय, आलोचको का तर्क था कि जहा अन्य देशो म विदेशी पूजी के, विदेशी निधि के आयात द्वारा उस देश की पूजी के आतरिक सकीर्ण साधनो के विकास मे सहायक होने से दोष किसी सीमा तक सतुलित हो जाते थे, वहा भारत म विदेशी पूजी का निवेश इस देश मे विदेशी निधि का आयात नही करता था, क्योकि इस देश मे विदेशी पूजी का प्रवाह स्वाभाविक न होकर अप्राकृतिक ही था। वस्तुत इस देश मे विदेशी निवेशको ने अपने देश के साधनो से पूजी सचित नही की, प्रत्युत भारत की पूजी की ही प्रथम विदेशियो द्वारा नियत्रित व्यापारो, बैंको, उद्योगो तथा प्रशासनिक व्यय के माध्यम से विदेशो मे निकासी हुई और पुन. उसका कुछ अश निवेश पूजी के रूप म लौटकर भारत आ गया। राष्ट्रीय खातो की दृष्टि से समीक्षा करने पर सारा कार्य व्यापार कागज पर अका था कोरा खेल तमाशा था।[45] देश के व्यापार खाते के अध्ययन मे यह भी स्पष्ट हो जाता था कि भारत वास्तविक विदेशी निधि का आयात नही करता था। दादाभाई नौरोजी ने 1887 मे सकेत किया था कि यह स्मरणीय है कि भारत के शुद्ध आयात म सभी विदेशी ऋणो और निवेशो को जोड देने के बाद भी उसके शुद्ध निर्यात बढ़चढकर है।[46] इस प्रकार भारत अपनी ही पूजी स अपने ही शोषण की अपरिहार्य स्थिति मे पहुच गया है। 'बीते समय मे भारतीयो ने अपने ही राजनीतिक दमन के लिए अगरेजो की जिस प्रकार सहायता की है, उसी प्रकार आज वे अपनी ही आर्थिक उदासीनता का कार्य सपन्न करने के लिए अगरेजो की सहायता कर रहे है।[47] यह एक रोचक तथ्य है कि देश की पूर्वनिष्कासित सपत्ति की विदेशी पूजी के रूप म वापसी तथा भारत के विदेशी उद्यमियो द्वारा प्राप्त लाभो के पुनर्निवेश ने बहुत सारे भारतीय नेताओ को भ्रमजाल मे उलझाए रखा तथा विदेशी पूजी के प्रति आतरिक रूप से असगत प्रतीत होने वाली स्थिति को भी स्वीकार करने के लिए विवश किया। एक ओर उन्होने विदेशी पूजी के लाभो के निर्यात का विरोध किया तथा दूसरी ओर इन लाभो के पुनर्नियोजन का समर्थन नही किया, क्योकि इससे स्वत: ही लाभो की राशि मे वृद्धि हो जाती थी और उसका परिणाम भविष्य मे सपत्ति का निष्कासन था।[48] भारतीय नेताओ की यह असगति उनकी गलत चितन प्रक्रिया का परिणाम न होकर एक प्रकार मे स्वाभाविक ही थी। उन्होने इस जटिल प्रक्रिया को जो

कि आंतरिक विसंगतियों से परिपूर्ण थी, सही तौर पर व द्वंद्वात्मक रूप से समझा।[49] उनका कथन था कि विदेशी पूंजी में अर्जित लाभों के पुर्निवेश ने धन की स्वतः विस्तृत होने वाली तथा कभी समाप्त न होने वाली निकासी की प्रक्रिया को जन्म दिया था। 1887 में दादाभाई नौरोजी ने लिखा, 'सर्वप्रथम ब्रिटिश भारत की संपत्ति बाहर ले जाई जाती है और फिर उसी संपत्ति को ऋणों के रूप में यहां वापस लाया जाता है और फिर उन्हीं ऋणों पर ऊंचा ब्याज वसूल किया जाता है। इस प्रकार यह सारा दुश्चक्र अत्यंत घृणित तथा उत्तेजक रूप में चल रहा है।[50] इसके फलस्वरूप इस समस्या के प्रति उनका दृष्टिकोण भी द्वंद्वात्मक था। उनके अनुसार चुनाव का प्रश्न विदेशी पूंजी की स्वीकृति अथवा उसे सहन करने में, तथा लाभों के निर्यात अथवा उनके पुर्निवेश से ही संबंधित नहीं था, बल्कि दुश्चक्र के साथ गतिशील बन रहने और संपत्ति की निकासी को रोकने और औद्योगिक विकास के लिए स्वदेशी संपत्ति पर निर्भर रह कर इस दुश्चक्र को गतिशून्य करने का था। इस प्रकार दोनों रोगों से बचाव किया जा सकता है।

भारतीय नेताओं ने इस ओर भी संकेत किया कि विदेशी पूंजी की सहायता से भारत के विकसित होने वाले नए साधनों के लाभ अत्यंत सीमित थे क्योंकि यह अपनी विशिष्ट राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण देश की विशाल जनसंख्या के एक छोटे से भाग के लिए ही अतिरिक्त आजीविका जुटाती है और इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय मजदूरी निधि में साधारण सी वृद्धि होती है।[51] आजीविका की इस तुच्छ वृद्धि का प्रमुख भाग विदेशी उद्यमों के निर्माण तथा संचालन में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित तथा उच्च वेतन-भोगी अधीक्षक पदों पर एकाधिकार किए विदेशियों के पास चला जाता है।[52] दुर्भाग्यवश राज्य व्यवसायों की भी बराबर यही स्थिति थी।[53] यह तथ्य भारतीयों को न केवल उनके न्यायसंगत अतिरिक्त आजीविका के अवसरों से वंचित करना था तथा उपभोग में वृद्धि करता था,[54] प्रत्युत अन्य अनेक महत्वपूर्ण तथा दूरगामी बुराइयां भी पनपाता था। बहुत सारे विदेशी भारत को पूंजी के संचय और निवेश के लाभप्रद साधनों से वंचित करते हुए, अपने वेतन का बड़ा भाग विदेश में भेज देते थे।[55] इसके अतिरिक्त विदेशी पूंजी के विनियोग भारतीयों को औद्योगिक तकनीक और व्यापार संचालन में उन्नत प्रशिक्षण से वंचित करते थे। इस प्रकार विदेशी पूंजी का एक सगर्व घोषित लाभ व्यवहारतः उपलब्ध ही नहीं था तथा एक समृद्ध औद्योगिक व्यवसाय से लोगों को प्राप्त होने वाली शिक्षा और जानकारी सर्वथा अनुपलब्ध थी।[56] इसके साथ साथ नवीन आर्थिक नियोजन भी भारत में नहीं किए जाते थे प्रत्युत विदेशी उद्यम की घरेलू व्यवस्था द्वारा स्वयं निवेशकों के अपने ही देश में किए जाते थे।[57] विदेशी पूंजी के आलोचकों की एक अन्य शिकायत यह थी कि यदि थोड़े बहुत भारतीयों को कुलियों और अकुशल मजदूरों के रूप में विदेशियों के अधीनस्थ बागों, खानों, फैक्टरियों तथा रेलवे में नौकरी मिलती भी है तो वहां उन्हें बहुत ही कम वेतन दिया जाता है। बहुतों को तो शोचनीय रूप में एक या दो आने प्रतिदिन के हिसाब से काम करना पड़ता है, जिससे वे अपना दुर्भाग्यग्रस्त जीवन भी नहीं जी पाते।[58] यह स्थिति भारतीयों को सचमुच ही जीवन्मृत श्रमिकों के स्तर पर ला रही है[59] तथा इस देश को 'पानी खींचने वालों का', 'लकड़ी काटने वालों[60] का और इससे भी

बढ़कर 'दासों का' देश बना रही है।[61] भारतीयों को अपने ही देश में क्रीतदास की स्थिति से संतुष्ट होना पड़ता है।[62] दादाभाई नौरोजी का कथन था कि 'वास्तव में वे तुच्छ दासों के रूप में ही कार्य करते थे। ब्रिटिश पूंजीपतियों को अपने उत्पादन सौंपने के लिए उन बेचारों ने अपनी ही धरती और अपने ही साधनों को पराधीन कर रखा था।[63] फिर भी कुछ एक आलोचक आजीविका के नए साधनों को जन्म देने के लिए विदेशी पूंजी के स्वागत को तैयार थे परंतु वे इस दिशा मे स्पष्ट सूचित करते थे कि इससे देश का वास्तविक आर्थिक विकास कदापि संभव नही।[64] उन्होने यह भी स्पष्ट सूचित किया कि विदेशियों से मजदूरी के रूप मे मिलने वाले इस तुच्छ वेतन से भारतीय सदा के लिए संतुष्ट नही रहेगे। एक दिन वे निश्चित रूप से सदा के लिए कुली और मजदूर बनाए रखने की प्रवृत्ति के प्रति विरोध प्रकट करेंगे।[65]

विदशी पूजी के विरोधियों ने यह मत भी स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया कि भारतीयो को मजदूरी के रूप मे मिलने वाला पारिश्रमिक उनके संसाधनो के शोषण[66] तथा स्वदेशी उद्योग धंधों के विनाश[67] के परिप्रेक्ष्य में किसी भी कसौटी पर कसने पर सर्वथा तुच्छ तथा अपर्याप्त था। प्राकृतिक उपज संबंधी उद्योगो के संबध मे तो यह स्वत सिद्ध सत्य था। बागान उद्योगो के विषय मे भी यह पर्याप्त अंशो मे सत्य ही था। समालोचको ने स्थिति को इस संदर्भ मे प्रस्तुत करते हुए अपना मत प्रकट किया कि खान उद्योगों का विदेशियो द्वारा शोषण एक अत्यधिक गभीर प्रश्न है क्योकि खानो से निकलने वाली सामग्री के चुक जाने पर उनको फिर से चालू करना सभव ही नही है।[68] विदेशियो द्वारा लूटे जाने की अपेक्षा अच्छा यही है कि खानो की संपदा खानों मे ही दबी तथा अविकसित बनी पड़ी रहे ताकि कालातर मे भारतीय स्वयं उसका सदुपयोग कर सके।[69] आलोचको का कथन था कि एक वास्तविक भारतीय सरकार से कम से कम इतने आवश्वासन की अपेक्षा तो की जा सकती थी।[70] इसी प्रकार, बागान उद्योग भी धरती की उर्वरता को समाप्त करते जा रहे थे।[71] इन उद्योगो के संबंध में तो जी० वी० जोशी की टिप्पणी यह थी कि इनके द्वारा भारतीयो के प्रति अतिरिक्त अन्याय हुआ है क्योकि प्रथम, राज्य ने सरकारी व्यय से अधिकाश बागान का विकास किया है और पुनः क्षतिपूर्ति किए बिना ही ये उद्योग विदेशियों को सौंप दिए गए है। उन्हें यहा पर भूमि भी नाममात्र की दरो पर दी गई है। वस्तुतः इन उद्योगो पर बहुत थोड़ी सी ही विदेशी पूजी का निवेश हुआ है। ये उद्योग सामान्य रूप मे भारतीय उद्यमियों को ही सुविधापूर्वक सौपे जा सकते है।[72]

भारतीय नेताओं की दृष्टि में विदेशी पूजी के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले आर्थिक खतरे के साथ साथ राजनीतिक खतरा भी था।[73] इस आलोचनापरक दृष्टिकोण का आधार यह विश्वास था कि विदेशी पूजी द्वारा किसी देश में घुसने का अर्थ उस देश का राजनीतिक दमन है अथवा जिस प्रकार रानाडे ने कहा : व्यावसायिक तथा उत्पादन विशिष्टता स्वभावतः ही राजनीतिक प्रभुत्व मे परिवर्तित हो जाती है।[74] यह सकारण संबंध इस तथ्य से भी सिद्ध था कि विदेशी पूजी समय के साथ साथ निहित स्वार्थों, एक प्रबल विदेशी अभिजात तंत्र, को जन्म देती है[75] जो देश की प्रशासनिक नीतियों पर निरंतर बढ़ने वाले प्रबल प्रभाव को दृढ़ बनाने का कार्य करता है।[76] 'हिंदू' ने अपने 23 सितंबर

1889 के अंक मे लिखा कि जिस देश मे विदेशी पूजी लगने लगती है, उस देश का प्रशासन तत्काल समृद्ध तत्वो के हाथ मे चला जाता है।

भारतीय नेताओ की चिंता यह थी कि भारत जैसे पहले से ही विदेशी प्रशासन मे अधिकृत देश मे यह राजनीतिक खतरा और कई गुना बढ जाता है। इस प्रकार की स्थिति मे विदेशी निहित स्वार्थों मे प्रेरित होकर देशवासियो की न्यायोचित राजनीतिक आकाक्षाओ के प्रति शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाते है तथा उनकी राजनीतिक उन्नति के मार्ग का रोडा बनते है।[77] 23 सितबर 1889 के अक मे हिंदू ने विलक्षण राजनीतिक दूरदर्शिता से यह भविष्यवाणी की कि यदि राजनीतिक सुधारो की अवधि मे देश मे विदेशी पूजीपतियो के प्रभाव को बढने दिया गया तो भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की सफलता के अवसरो को नमस्कार करना पडेगा क्योकि उसका स्वर विदेशी पूजीपतियो के, 'साम्राज्य खतरे मे है', के भयकर गर्जन मे दबकर रह जाएगा।[78] कालातर मे जब कर्जन के शासनकाल मे राजनीतिक प्रतिक्रिया इतनी अधिक उग्र हो गई कि उसे लगभग प्रत्येक भारतीय जन नेता अनुभव करने लगा, तब सुरेंद्रनाथ बैनर्जी के 'बगाली' ने अवसरोचित टिप्पणी की इस प्रतिक्रिया का मूल भारत मे विदेशी पूजी द्वारा प्रयुक्त प्रभाव ही है।[78] तथ्यात्मक दृष्टि से देखें तो 20वीं शताब्दी के प्रारभ मे ही भारतीय नेताओ ने यह भली प्रकार समझ लिया था तथा स्पष्ट कि दश किया था कि भारत सरकार और भारत के ब्रिटिश पूजीपतियो मे साठ-गाठ है तथा भारत सरकार ब्रिटिश पूजीपतियो के हितो के अधीन है। इस दृष्टिकोण को 1903 मे उस समय शचीद्रनाथ सिन्हा द्वारा सपादित, इलाहाबाद के 'इडियन पीपुल' ने बडी स्पष्टता तथा प्रबलता के साथ प्रस्तुत किया ·

> लार्ड कर्जन के साक्ष्य पर अगरेजो का प्रशासनिक काम केवल शोषको के शोषण कार्य मे उनकी चाकरी करना है। बिना कुशल प्रशासन के व्यापार फल-फूल नही सकता और व्यापार के लाभरहित होने पर प्रशासन, प्रशासन नही कहला सकता। भारत सरकार सदैव वाणिज्य सदन की स्वीकृति तथा अधिकाशत उसके आदेश के अनुसार ही कार्य करती है और यह गोरो के 'दायित्व' का रहस्य है।[79]

और यहा तक कि रानाडे ने भी टिप्पणी की कि विदेशी आर्थिक प्रभुत्व ने विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व को और अधिक द्वेषजनक बना दिया है।[80]

बहुत सारे भारतीय नेता समस्या के दूसरे पक्ष से भी अभिज्ञ थे कि यह मूलत विदेशी शासन ही था जिसके कारण इस देश मे विदेशी पूजी ने एक बडे भारी रोग का रूप ले लिया। यदि भारत एक स्वतत्र देश होता, तो वह अमरीका जैसे अन्य स्वतत्र देशो के समान सपत्ति की निकासी से मुक्त होता, अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप अपने ससाधनो के विकास के लिए स्वतत्र होता, समान शर्तो पर विदेशी पूजी से प्रतियोगिता के लिए स्वतत्र होता, विदेशी पूजी से अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर उसे अपदस्थ करने मे स्वतंत्र होता तथा उसका एक ऐसा स्वतत्र प्रशासन होता जो स्वदेशी उद्यम को सहायता तथा प्रोत्साहन देता और यह देखता कि विदेशी पूजी का प्रयोग स्वदेशी उद्यम के विकास में पूरक और सहायक सिद्ध हो।[81]

अधिकाश भारतीय नेता विदेशी पूजी के नियोजन के राजनीतिक तथा आर्थिक

प्रतिघातों के अध्ययन के परिणामस्वरूप इस तथ्य पर सहमत थे कि भले ही भारत को विदेशी पूजी की आवश्यकता हो परंतु उसे विदेशी पूजीपतियों की तो कोई आवश्यकता नही। उन्होंने ऋण पूजी तथा औद्यगिक पूजी के अतर को समझा था तथा उसे रेखाकित किया था।[82] जहा औद्योगिक पूजी उद्यम के सारे लाभो को हडप लेती है तथा सारे क्षेत्र पर एकाधिकार जमा लेती है।[83] वहा ऋण-पूजी ब्याज के रूप में केवल एक निश्चित तथा निर्धारित राशि की ही अधिकारी होती है। इस प्रकार वह अवशिष्ट लाभों, और मूल धन की अदायगी के पश्चात, सारे लाभो को उस देश मे ही रहने देती है। इस प्रकार आवश्यकता होने पर स्वदेशी उद्यम के विकास के लिए विदेशी पूजी उधार लेना तथा विदेशी तकनीकी लोगो से काम लेना तो बुरा नही, परंतु सीधे विदेशी निवेश की तथा सीधे विदेशी पूजीपतियो द्वारा अपने स्वामित्व के उद्योग के सचालन की अनुमति कदापि नहीं देनी चाहिए।[84] दादाभाई नौरोजी का कहना था कि भारत को विदेशी पूजी की उत्कट आवश्यकता है न कि उसकी पूजी और उत्पादकों को हडपने वाले अगरेजी धावे की।[85]

इस दृष्टिकोण मे दो दोष थे। भारतीय पूजीपतियो के पास अधिकाश बड़े पैमाने के नए उद्योगो, खानो तथा परिवहन सस्थानो के सचालन के लिए न तो पर्याप्त पूजी थी और न ही विदेशी पूजी-बाजार म वाछित निधि के ऋण लेने की अपेक्षित साख। इस स्थिति मे विदेशी पूजीपतियो को व्यक्तिगत रूप से इस देश मे आने तथा अधिकाश औद्योगिक क्षेत्र का स्वामित्व सभालने से किस प्रकार रोका जा सकता था? इस समस्या का राष्ट्रीयकरण के रूप मे एक सर्वथा नवीन उत्तर देने के लिए 19वी शताब्दी के प्रमुखतम नेता, दादाभाई नौरोजी तथा जी० वी० जोशी आगे आए। उन्होने 60 वर्ष पीछे स्वतत्र भारत की सरकार द्वारा अपनाए जाने वाले मार्ग का अपनी उल्लेखनीय सूक्ष्म दृष्टि से उस समय ही देख लिया था। उनका सुझाव था कि विदेशी पूजी के हानिप्रद आर्थिक तथा राजनीतिक दुष्परिणामो से बचकर उससे लाभान्वित होने का एकमात्र उपाय उन उद्योगो का राष्ट्रीय-करण था, जिनके लिए अपरिमित विदेशी धनराशि अपेक्षित थी। इस प्रकार की स्थिति मे सरकार अपने राजस्वो की गारटी पर ब्याज की थोडी दर पर विदेशो से पूजी ऋण मे ले सकती है तथा उसका देश के प्राकृतिक ससाधनो के विकास के लिए उपयोग कर सकती है।[86] यहा यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि उस समय राष्ट्रीयकरण की कल्पना केवल विदेशी पूजीपतियो के प्रवेश को रोकने के उपाय के रूप मे की गई थी। इसके सिवाय उसका समाजवाद के प्रवर्तन जैसा कोई अन्य उद्देश्य नही था। वस्तुत सरकारी पूजीवाद तब तक के लिए एक अंतरिम तथा अस्थाई उपाय था जब तक कि भारतीय उद्यमी इस पर्याप्त सीमा तक जागरूक तथा विकसित नही हो जाते कि इन उद्योगो को स्वदेशी पूजीपतियो के हाथो मे ही सौपा जा सके।[87]

निष्कर्षत. उपर्युक्त विवेचन से हम इन परिणामों पर पहुचते हैं: प्रथम, विदेशी पूंजी के उपयोग के समर्थक अथवा विरोधी भारतीय राष्ट्रवादी नेता भारत मे विदेशी निवेश के आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों तथा परिणामों के प्रति अत्यंत जागरूक थे। द्वितीय, सभी राष्ट्रवादी नेताओ का दृढ विश्वास था कि देश का वास्तविक औद्योगिक विकास देश के अपने प्रयत्नों तथा अपनी पूंजी पर निर्भर था। विदेशी पूजी के प्रयोग के समर्थकों का

भी स्पष्ट मत यह था कि देश के सर्वथा अनुद्योगीकरण जैसी अपेक्षाकृत बडी बुराई की तुलना मे उद्योगीकरण के लिए विदेशी पूजी के निवेश की छोटी बुराई अपनाना ही अच्छा है। अधिकांश नेता तो विदेशी पूजी के साधन द्वारा देश के औद्योगिक विकास के निष्पादन की अपेक्षा उसके स्थगन के ही पक्षधर थे। इस प्रकार समीक्षाधीन काल के राष्ट्रीय आदोलन की अवधि मे दलाल पूजीवादी के दृष्टिकोण का न्यूनाधिक रूप मे अभाव ही था। यहा यह भी भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि सभी राष्ट्रवादियों ने समवेत स्वर मे औद्योगिक पूजी के विकास का समर्थन किया था, न कि व्यापारिक पूजी के विकास का। तृतीय, विदेशी उद्योगो के द्रुत विस्तार के कारण रेलवे आदि ने परोक्ष रूप मे भारतीय उद्योग के विकास को प्रोत्साहन दिया था। दोनो मे शत्रुता अभी महत्वपूर्ण अथवा निर्णायक नही बन पाई थी। उदाहरणार्थ, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस इस प्रश्न पर पूर्णत. मौन ही रही। 1885-95 की अवधि के अधिवेशनों मे उसने इस प्रश्न पर न तो विचार विमर्श किया और न ही इस पर कोई प्रस्ताव पारित किया तथा न ही सभापति पद मे दिए गए किसी भाषण मे इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ। इस विषय पर काग्रेस की ओर से प्रथम भाषण 1898 के अधिवेशन में जी० एस० अय्यर का था। हां, 20वी शताब्दी के उदय के साथ ही भारतीय औद्योगिक प्रयास बाल्यकाल से आगे बढने लगे तथा विदेशी पूजीपतियों से, जिन्हें अपने उद्यम का लार्ड कर्जन जैसा प्रबल उन्नायक तथा शक्तिशाली वकील मिल चुका था, संघर्ष करने लगे। इसके फलस्वरूप 1900 के पश्चात् राष्ट्रवादी समाचारपत्र तथा काग्रेस मच से वक्ता विदेशी पूजी पर निरतर तीव्र प्रहार करने लगे।

राज्य की भूमिका

भारतीय उद्यमी वर्ग के ज्ञान, शक्ति तथा पूजी के अभाव की तथा उद्योगीकरण के मार्ग की प्रारंभिक कठिनाइयो पर काबू पाने मे सुरक्षा तथा सहायता के अभाव की पूर्ति राज्य की सहायता और सहयोग से ही कदाचित सभव थी। अत: भारतीय नेता उद्योगीकरण की प्रक्रिया मे राजकीय सहायता के प्रखर समर्थन मे न्यूनाधिक रूप से एकमत ही थे।[88] उनका यह दृढ़ विश्वास था कि औद्योगिक प्रयास के प्रत्येक क्षेत्र तक प्रसृत सरकारी सहायता की व्यापक नीति के बिना तथा स्वदेशी तथा आधुनिक दोनों औद्योगिक उद्यमो की प्रत्येक रूप और दिशा में प्रगति संबधी सरकार की प्रत्यक्ष, सूझबूझवाली तथा सहानुभूतिपूर्ण नीति के बिना देश की आर्थिक स्थिति नही सुधर सकती। यद्यपि भारतीय अर्थशास्त्री नेताओ ने इस दृष्टिकोण का विस्तृत विवरण सरकार के सामने काफी देर के बाद प्रस्तुत किया तथापि देश के उत्पादको और वाणिज्य को प्रोत्साहन देने की माग को सर्वप्रथम 1853 मे कलकत्ता की ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन ने ईस्ट इंडिया कंपनी की घोषणा के नवीकरण के समय हाउस आफ कामंस को निवेदित प्रज्ञप्ति मे प्रस्तुत किया।[89] 1891 मे पूना मे आयोजित द्वितीय औद्योगिक सम्मेलन में निजी उद्योग को सरकार द्वारा सीधे वित्तीय तथा अन्य सहायता देने की मांग प्रस्तुत की गई।[90] कांग्रेस ने 1902 में स्वदेशी कला और उत्पादन के उद्धार तथा विकास के लिए तथा नए उद्योग लगाने के लिए सरकारी प्रोत्साहन की माग की।[91] अन्य भारतीय नेताओं में कदाचित जी० वी० जोशी और रानाडे इस नीति के

सबसे पक्के तथा मुखर समर्थक थे।[92] इस संबंध में जी० सुब्रह्मण्यम के शब्दो में मीजी की वापसी के बाद आधुनिक उद्योग के प्रोत्साहन मे जापानी सरकार की भूमिका भारतीय अर्थशास्त्री नेताओं के लिए अत्यधिक रोचक तथा आकर्षक सिद्ध हुई[93] और उन्होंने भारत सरकार से इसकी प्रतिस्पर्धा करने का अनुरोध किया।[94]

भारतीय राष्ट्रवादियो ने औद्योगिक प्रयासो मे सरकारी हस्तक्षेप की माग की तथा उनकी भारतीयों के स्वामित्व के उद्योगों के प्रति भारत सरकार के सैद्धातिक और व्यावहारिक बरताव के बारे मे सरकार के साथ सीधी टक्कर हुई। ब्रिटिश शासकों ने अपने को तटस्थता सिद्धान का अनुयायी बताते हुए उस समय यह मत अभिव्यक्त किया कि औद्योगिक विकाम को आगे बढ़ाने म सरकार अयोग्य है, अत सभी ऐसे मामले निजी उद्यमियों पर ही छोड देने चाहिए।[95] इस प्रकार समीक्षाधीन अवधि के दौरान उद्योगो को प्राप्त सरकारी सहायता नगण्य सी ही थी। इस सहायता के दो रूप थे : तकनीकी शिक्षा की सर्वथा अपर्याप्त व्यवस्था तथा टूटे मन से औद्योगिक जानकारी के सचय तथा प्रसार की चेष्टा।[96] इस क्षेत्र मे सरकार के और अधिक प्रत्यक्ष तथा ऊर्जस्वी योगदान की माग करने वाले भारतीयो को अपने आपको औद्योगिक प्रयासों के प्रबल समर्थक मानने वाले लार्ड कर्जन ने बुरी तरह से इन शब्दो मे लताडा : वर्तमान सरकार अथवा अन्य कोई भारतीय सरकार जादू की छडी घुमाकर ही इस विस्तृत देश की आर्थिक, सामाजिक तथा औद्योगिक स्थितियो मे क्रांति ला सकती है।[97]

भारतीय अर्थशास्त्रियों ने इस बारे मे भारत की नीति की दिशा बदलने की चेष्टा की। उनका विश्वास था कि इस नीति का दृढता मे पालन करने का एकमात्र कारण शासकों का क्लासिकी राजनीतिक अर्थव्यवस्था मे विश्वास व इसका अनुसरण ही था। अतः उन्होंने तटस्थता सिद्धान की सरकारी कार्यक्षेत्र मे व्यावहारिकता पर, विशेषतः भारत जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश के सदर्भ मे, कटु सैद्धातिक प्रहार करना आरंभ कर दिए। तटस्थता सिद्धात के विरुद्ध किए गए सैद्धातिक प्रहारो का विस्तृत विवरण इस पुस्तक के एक अगले अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के अग्रणी महान प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री नेता रानाडे ने भारतीय शासकों के वर्तमान तथा भूतकालीन आचरणो को उनकी सैद्धातिक मान्यताओं के विरुद्ध बताया। उन्होने यह निर्देश किया कि विगत वर्षों मे सरकार ने औद्योगिक तथा व्यावसायिक उद्यम के प्रवर्तन तथा उन्नयन मे और भारत में ब्रिटिश पूंजीपतियो को अतिरिक्त विशेषाधिकार प्रदान करने मे प्रत्यक्ष तथा सक्रिय भाग लिया है।[98] सरकार ने सर्वप्रथम रेल कंपनियो को सरकारी तौर पर गारटी प्रदान की और बाद मे सरकारी रेलो के निर्माणकार्य को अपने हाथ मे लिया।[99] सरकार ने ही भारत मे सरकारी खर्चे पर और बड़े महगे दामो पर कुनीन, चाय तथा काफी के पौधे उगाने के लिए बागान उद्योगों का प्रारंभिक प्रवर्तन किया है।[100] सरकार ने लोहा उद्योग की उन्नति के लिए उसे अनुकूल रियायतें देने के अतिरिक्त भूगर्भीय सर्वेक्षणों, प्रयोगात्मक परीक्षणों तथा उपादानों के रूप मे राज्य की भारी धनराशि खर्च की है।[101] उसने अपनी इच्छा से कितनी ही कोयला खानों पर लंबे समय तक काम किया है।[102] इस प्रकार

सरकारी सहायता का सिद्धांत तो व्यावहारिक रूप से मान्यता प्राप्त है। समझ नहीं आता कि उसी प्रकार की सहायता अब अन्यान्य औद्योगिक उद्यमों को प्रदान क्यों नहीं की जाती? इस समय किसी नए सिद्धांत के प्रस्थापन की आवश्यकता नही, प्रत्युत इस तथ्य के निर्धारण की आवश्यकता है कि किस प्रकार के उद्योगों को राजकीय सहायता प्रदान की जाए। गत वर्षों के समान बागान और परिवहन साधनों को बढ़ावा देने के स्थान पर अब देश मे आधुनिक उत्पादक उद्योगों के प्रोत्साहन में सरकारी सहायता का और अधिक लाभदायक ढंग से प्रयोग किया जा सकता है।[103]

उद्योग को सरकारी सहायता और प्रोत्साहन के कई भिन्न भिन्न प्रकार के रूप हो सकते हैं। उनमें से अधिक महत्वपूर्ण की, जिनके आवश्यकतानुसार एकल अथवा संयुक्त रूप मे ग्रहण के लिए बहुत सारे भारतीय नेताओं ने वकालत की, संक्षिप्त समीक्षा निम्नलिखित है

भारतीयों की दृष्टि में भारत के औद्योगिक विकास की प्रबलतम बाधाओं में से एक भारतीय औद्योगिक उद्यमियों के पास अपेक्षित पूंजी का अभाव था अतः उन्होने उपलब्ध व्यापारिक तथा साहूकारी पूजी को औद्योगिक पूंजी में बदलने के लिए सरकारी सहायता की प्रबल आवश्यकता की माग की। इस महान कार्य के संपादन के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाना अनिवार्य था। प्रथम, ऋण प्रणाली को आधुनिक रूप मे पुनर्गठित करना होगा ताकि देश के आतरिक परंतु बिखरे हुए उपलब्ध साधनो को गतिशील बनाया जा सके।[104] यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया कि ऋण प्रणाली का निजी विकास ऋणदाता तथा ऋणकर्ता के आपसी विश्वास पर निर्भर है अत उसकी प्रक्रिया का अत्यंत मद होना निश्चित ही है। देश की विशाल धनराशि की तथा सार्वदेशिक साख और विश्वास की एकमेव पात्र होने के कारण सरकार जमा और निकासी करने वाले बैंकों को सरकारी संरक्षण अथवा गारटी देकर बचत करने वालों और उधार लेने वालो के बीच व्यापारिक संबंध स्थापित करने मे अपनी साख तथा अभिकरण का उपयोग कर सकती है।[105] राज्य के निर्देशन तथा नियंत्रण म कार्य करने वाले संयुक्त पूंजी-बैंको का बहुत बड़ा जाल बिछाने की आवश्यकता थी।[106] इस कार्य मे सरकार को एक पैसा भी खर्च करने की आवश्यकता नही। उसे केवल बैंको को ऋण उगाहने की सुविधाएं जुटाना, मंडलीय शेष राशि को उपलब्ध कराना तथा नियंत्रक लेखा परीक्षा की व्यवस्था करना है।[107] इससे भी अधिक अच्छा यह है कि सरकार स्वयं प्राइवेट पूजीपतियों को अपनी उचित देखरेख मे ब्याज की थोड़ी दर पर अग्रिम ऋण देने की व्यवस्था करे।[108] इसके लिए सरकार धन उधार ले सकती है अथवा बचत खातों पर निर्भर कर सकती है।[109]। इस संबंध मे रानाडे ने एक रोचक सुझाव यह दिया कि सरकार अथवा स्थानीय समितिया विशिष्ट वित्त निगमों की स्थापना करें। ये निगम सरकार से सस्ती दर पर रुपया उधार लें तथा भावी उद्योगपतियों को अग्रिम ऋण प्रदान करें।[110] इसके अतिरिक्त सरकार रेल कंपनियों के प्रति अपनाई सहायता की नीति के समान आधुनिक उद्योगों के प्रति अपनी नीति निर्धारित कर सकती है तथा पूजी जुटाने वाले भारतीयो को न्यूनतम निश्चित ब्याज चुकाने की गारंटी देकर उन्हें नए उद्योगों मे पूजी लगाने को प्रेरित कर सकती है।[111] सरकार रेलों

के समान भारतीय पूंजीपतियो को विदेशी बाजार से ऋण लेने में गारंटी दे सकती है[112] तथा सस्ते ऋणों की प्राप्त के प्रतिफल के रूप मे सरकार औद्योगिक व्यवस्था के देखभाल और नियंत्रण की शक्ति प्राप्त कर सकती है, कालातर मे तो लाभों की भागीदार तक बन सकती है।[113] सरकार से तो इससे भी और आगे बढने के लिए इस प्रकार कहा गया कि सरकार जन्म और शैशवकालीन प्रारंभिक कठिनाइयों से जूझते हुए पनपने वाले उद्योगों की अनुग्रहों अनुदानों के रूप में सीधे ही सरकारी कोष से सहायता करे[114] ताकि वे उद्योग अपनी कठिनाइयों पर काबू पा सकें तथा अपने पैरों पर खड हो सकें।[115]

भारतीय नेताओं का सरकार से दूसरा अनुरोध सरकारी तथा रेल भंडारो की क्रय संबंधी नीति के पुनर्निर्धारण का था। भारत मे आयातित कुल उत्पादन सामग्री का उल्लेखनीय भाग इन भंडारों मे था। आयायित सामग्री मे ये वस्तुएं सम्मिलित थी भारतीय सेना तथा पुलिस के उपयोग के उपकरण; नगर सुधार की सामग्री, जल, गैस, मलमूत्र व्यवस्था; मैडिकल स्टोरो तथा हस्पतालो के उपयोग की सामग्री, गोदी, पुलों, बिल्डिगो तथा सड़को के बनाने के लिए लोहा तथा सीमेंट; तार तथा टेलीफोन के लिए अपेक्षित सामान; प्रशासन के उपयोग मे आने वाली स्टेशनरी तथा अन्य वस्तुएं। इन सबसे बढकर और अधिक सामान था . रेलो की पटरिया, पुल, गाडी के डिब्बे तथा रेलो के लिए भवन निर्माण की सामग्री। इन भंडारो के लिए थोडे बहुत नगण्य सामान को छोडकर प्राय: सारा ही सामान इग्लैंड मे खरीदा जाता था। फलत. भारतीय नेताओं की शिकायत थी कि सरकार की भंडारो की क्रयनीति भारतीय उत्पादको के प्रति विद्वेषपूर्ण थी तथा ब्रिटिश उत्पादकों को सहायता पहुचाती थी। उनका तर्क था कि सरकार इन भंडारो के लिए भारतीय उत्पादको से माल खरीद कर भारतीय उत्पादकों के लिए लाभदायक दरो पर न्यूनतम सुरक्षित बाजार की गारंटी देकर भारतीय औद्योगिक प्रयत्नों को जबरदस्त प्रोत्हसान दे सकती है।[116] पर्याप्त रोचक तथ्य यह है कि इस मांग का समर्थन भारत मे कार्यरत कुछ एक ब्रिटिश पूंजीपतियों ने भी किया और इसे 1880 के अकाल आयोग का, लार्ड रिपन की सरकार का. तथा 1916-18 की अवधि के भारतीय उद्योग आयोग का भी अनुमोदन प्राप्त हुआ।[117] अंतत इसका परिणाम यह निकला कि भारत स्थित फर्मों से भी माल खरीदा जाने लगा। इसके फलस्वरूप 1898 मे लखनऊ के हिंदुस्तान' ने सरकार की भारत स्थित भारतीयो की फर्मों की उपेक्षा तथा यूरोपीयो के स्वामित्व की फर्मों से माल खरीदने की प्रवृत्ति का विरोध किया।[118]

भंडारों की सभी वस्तुएं भारत में उपलब्ध नही अथवा उत्पादित नहीं होतीं इस आपत्ति का उत्तर कुछ एक भारतीय नेताओं ने और भी अधिक मौलिक सुझाव के रूप मे इस प्रकार दिया कि सरकार स्वयं इन वस्तुओं का उत्पादन करे।[119] अनेक भारतीय लेखकों ने यह सुझाव तथा सरकार द्वारा प्रत्यक्ष उद्यम को अपनाने का और इस प्रकार तटस्थता की नीति के परित्याग का सुझाव एक अन्य आधार पर भी दिया। उनका सुझाव था कि नए उद्योग के प्रारंभ करने मे असंख्य विषम प्रकृतिगत कठिनाइयों के कारण सरकार को आगे आना चाहिए तथा उनकी व्यावहारिक उपयोगिता तथा लाभकारी चरित्र की परीक्षा करते हुए प्रारंभिक कठिनाइयों पर[120] काबू पाकर उद्यम का मार्ग प्रशस्त करना

चाहिए तथा निजी उद्यमियों को इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए।[121]

भारतीय नेताओं द्वारा भारतीय उद्योगों की उन्नति के लिए सरकार को सुझाए गए अन्य महत्वपूर्ण उपाय थे : वाणिज्य और उत्पादन के एक पृथक संविभाग की स्थापना[122] जिसे उपलब्ध साधनों[123] को जुटाने की, सरकार और निजी कंपनियों की विशेषज्ञों के ज्ञान तथा कौशल से सहायता करने व परामर्श देने की, सर्वेक्षण आदि के द्वारा जानकारी के संग्रह तथा उसके व्यापक प्रसार की, शुल्क-पद्धति में संरक्षण प्रदान करने की, मशीनरी पर निर्यात शुल्क हटाने की तथा तकनीकी शिक्षा को प्रोत्साहन देने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हो।[124] उद्योगीकरण की प्रक्रिया में राजकीय प्रोत्साहन की भारतीयों की मांग उस समय अपने चरम पर पहुंच गई जब 1904 में गोपालकृष्ण गोखले ने कुछ एक राजकीय आर्थिक योजनाओं की वकालत की। उस वर्ष के अपने बजट भाषण में उन्होंने कहा, 'वास्तव में परिस्थितियों की माग यह है कि पूर्ण विवेक तथा दूरदृष्टि का उपयोग करते हुए जनता की नैतिक तथा भौतिक उन्नति के लिए व्यापक तथा विस्तृत योजना बनाई जाए और फिर उसपर दृढता तथा निरंतरता के साथ अमल किया जाए तथा लगभग वर्ष प्रतिवर्ष उसकी प्रगति की पूरी समीक्षा की जाए।'[125]

औद्योगिक प्रयासों में सरकारी सहायता की मांग में उल्लेखनीय स्पष्टता को देखते हुए इस तथ्य को नही भूल जाना चाहिए कि निष्कर्ष रूप में इस माग को प्रधान रूप से तो भारतीय नेतावर्ग में अर्थशास्त्रियों ने ही अभिव्यक्त किया। उस समय राष्ट्रीय समाचारपत्रो तथा कांग्रेस के अधिवेशन में सामान्य रूप से इस बात की जोरदार माग नही की गई। स्पष्टत: इस लाभकारी माग के लिए उत्साहपूर्ण चेष्टा के अभाव का कारण यह व्यापक संदेह था कि क्या एक विदेशी सरकार, चाहे वह कितनी भी उदार क्यों न हो, अपने देश के उत्पादकों के हितों के विरुद्ध जाने वाली कोई नीति अपनाएगी ? उदाहरणार्थ : जी० वी० जोशी द्वारा जनवरी 1890 के 'पूना सार्वजनिक सभा' जनरल मे प्रकाशित एक लेख 'इकानामिक सिचुएशन इन 'इंडिया' में विश्लेषित राज्य की आर्थिक भूमिका का समर्थन करते हुए हिंदू ने अपने 3 फरवरी 1890 के अंक में पैनी अंतर्दृष्टि से लिखा :

> स्वदेशी उद्योगों के प्रत्यक्ष विकास के लिए उन्हें यथासंभव किसी भी मूल्य पर कोई प्रोत्साहन न देकर उन्हें अवनत बनाए रखना ब्रिटिश राष्ट्र के हित में ही है। ब्रिटिश शासक भारत की अधीनता के फलस्वरूप एक सबसे बड़े लाभ की आशा करते और उसे यथार्थ में प्राप्त करते है कि भारत उन्हें अपने औद्योगिक उत्पादनों की खपत के लिए एक असीमित बाजार जुटाता है। इस प्रकार की परिस्थिति में पूना के लेखक के सुझाव के अनुरूप सरकार से कुछ भी करने की आशा की संभावना नहीं है।

31 मई 1890 के अंक मे बंगबासी ने इस तथ्य को और भी स्पष्ट रूप दिया :

> निस्संदेह स्वदेशी उद्योगों के उद्धार और विकास के लिए सरकारी सहायता अति आवश्यक है परंतु क्या उस सरकार से भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देने की आशा

> की जा सकती है जो न केवल विदेशियों की है, विरोधी धर्म वालों की है, प्रत्युत उन लोगों की है जो स्वयं उत्पादक और व्यवसायी हैं? तथ्य यह है कि अंगरेज उत्पादक भारतीयों द्वारा स्वदेशी उत्पादन की अत्यंत साधारण वस्तुओं के प्रयोग को भी फूटी आंख नहीं देख सकते और वस्तुतः वे तब तक चैन नहीं लेंगे जब तक भारत में उत्पादित पदार्थों को भारतीय बाजार से बाहर न फिकवा दें।...और यह अंगरेज उत्पादक ही अंगरेजी राष्ट्र हैं, जिनका हित अन्य सबके हितों से ऊपर है। इस हित की देखभाल और सुरक्षा ही अंगरेजी कूटनीति का उद्देश्य है।[126]

भारतीय लोकमत के अन्य अनेक प्रवक्ताओं ने भी इसी प्रकार के संदेह प्रकट किए।[127] इन संदेहों का आधार उस समय ब्रिटिश विचारधारा पर आधिपत्य जमाए हुई औपनिवेशिक अर्थनीति के चरित्र का तथा ब्रिटिश की भारत में वास्तविक राजनीतियों का अध्ययन था। उनके अनुसार अपनी कथनी के प्रतिकूल व्यवहार करते हुए ब्रिटिश भारतीय सरकार व्यवहार में न केवल भारतीय उद्योग की सहायता में असफल रही है प्रत्युत उसने विदेशी प्रतियोगियों—जिन्होंने यहां के उद्योगों को आमूल-चूल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है—को सहायता देकर उसे हानि भी पहुंचाई है।[128] यह तथ्य उनके भय की सर्वोत्तम संपुष्टि करने वाला था।

स्वदेशी

भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा देश की बढती दरिद्रता को रोकने तथा परंपरागत और आधुनिक उद्योगों को प्रोत्साहन देने के उपायों में वर्षों तक स्वीकृत तथा समर्थित एक उपाय था स्वदेशी की भावना का प्रचार-प्रसार। स्वदेशी आंदोलन का अर्थ था भारत निर्मित सामग्री के प्रयोग को प्रोत्साहन देना तथा विदेशी माल न खरीदना, उसका परित्याग और यहां तक कि उसका बहिष्कार। यद्यपि आधुनिक भारत के इतिहास में स्वदेशी आंदोलन को 1905 में बंगाल के विभाजन के विरुद्ध अखिल भारतीय आंदोलन के समय उल्लेखनीय सफलता मिली तथापि स्वदेशी भावना की तत्काल तथा विस्तृत स्वीकृति के लिए तथा आंदोलन की उस विशिष्ट घटना में मिली प्रभावशाली सफलता के लिए गत दशाब्दियों मे ही उपयुक्त क्षेत्र प्रस्तुत किया जा रहा था। वस्तुतः स्वदेशी भावना और स्वदेशी आंदोलन दोनो उतने पुराने हैं जितनी कि स्वयं उदीयमान राष्ट्रीय चेतना। सहज भाव से और अत्यधिक अव्यवस्थित तथा विच्छिन्न रूप मे पनपे स्वदेशी आंदोलन को अपने प्रारंभिक वर्षों मे ही न केवल अपने समय की मान्यता प्राप्त सामाजिक संस्थाओं का, प्रत्युत भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों तथा असंख्य अप्रतिबद्ध लोगों के स्थानीय प्रयासों का भी व्यापक समर्थन प्राप्त हो गया। इस विषय पर प्रकाशित सामग्री की अत्यंत स्वल्पता के कारण इस आंदोलन के प्रारंभिक इतिहास का यहां संक्षिप्त विवेचन कदाचित अनुचित न होगा।

1849 में ही 'प्रभाकर' पत्र के लेखों में आयातित सामान के स्थान पर भारतीय उत्पादनों के प्रयोग का समर्थन करने वाले पूना के गोपाल राव देशमुख भारतीय जनता के प्रथम महानुभावों में एक थे।[129] बंगाल में स्वदेशी आंदोलन के इतिहास का सूत्रपात

नवगोपाल मित्र के प्रयासों से होता है जिन्होंने 1867 में एक हिंदू अथवा राष्ट्रीय मेले का आयोजन किया, जो नियमित रूप मे चौदह वर्षों तक प्रतिवर्ष लगता रहा। अन्य राष्ट्र निर्माण संबंधी गतिविधियों के अलावा इस मेले के प्रमुख उद्देश्यों मे से एक भारतीय शिल्पकला के उत्पादनो की प्रदर्शनी लगाकर स्वदेशी उत्पादनो के प्रयोग को बढ़ावा देना था।[130] नवगोपाल मित्र को इस क्षेत्र मे प्रवृत्त तथा यत्नशील होने की प्रेरणा राजनारायण बसु से मिली। राजनारायण प्रारंभिक बंगाली राष्ट्रवादी नेताओ मे आदरणीय ऋषि तुल्य थे। वह विदेशी उत्पादनो के परित्याग तथा स्वदेशी वस्त्रो व अन्य वस्तुओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देने वालो मे अग्रणी थे।[131]

उन्नीसवी शताब्दी के आठवे दशक मे स्वदेशी भावना को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हो गई। 1870 मे विश्वनाथ नारायण मित्र द्वारा संचालित नेटिव ओपीनियन ने देशप्रेम की भावना वाले लोगो से अनुरोध किया तथा उन्हें अपने देशवासियो से महंगे दाम पर भी स्वदेशी वस्तुओ के खरीदने का परामर्श दिया।[132] 1872 मे रानाडे ने पूना मे आर्थिक विषयो पर एक सार्वजनिक भाषणमाला का आयोजन किया जिसमे उन्होने स्वदेशी भावना को इस रूप मे लोकप्रिय बनाया कि अपने देश के बने सामान भले ही विदेशी उत्पादनो से महंगे हो और उनकी अपेक्षा भले ही कम संतोषजनक हो, हमारे लिए उनको ही प्राथमिकता देना उचित है।[133] इन गौरवमंडित भाषणो ने श्रोताओ को इतना अधिक उत्तेजित किया कि उनमे से बहुतों ने जिनमे प्रमुख रूप से थे, गनेश वासुदेव जोशी,[134] जो अपनी लोकप्रियता मे सार्वजनिक रूप मे 'काका' के नाम से प्रसिद्ध थे तथा पूना सार्वजनिक सभा के संस्थापको मे तथा प्रधान सक्रिय कार्यकर्ताओं मे अग्रणी थे और वासुदेव फड़के ने जिन्होने बाद मे सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया था उत्साहित होकर केवल स्वदेशी वस्त्र धारण करने तथा एकमात्र स्वदेशी वस्तुओ के ही प्रयोग की कसम खाई।[135] जी० वी० जोशी अपनी धोती, कुरते और साफे के लिए प्रतिदिन स्वय सूत कातते थे, उन्होने स्वदेशी सामान को लोकप्रिय बनाने तथा उसका प्रचार करने के लिए अनेक स्थानो पर दुकानें खोली तथा 1873 के तडक-भडक और धूमधाम वाले दिल्ली दरबार मे अपने हाथो की बनी खादी की वेशभूषा मे ही सार्वजनिक सभा का प्रतिनिधित्व किया।[136] फड़के महोदय भी समान रूप मे स्वदेशी के प्रचार के दीवाने थे। उन्होने सैकडो युवको को स्वदेशी प्रयोग की कसम खाने को तैयार किया।[137] 1873 मे 'रास्त गोफ्तार' ने अपने 13 जुलाई के अंक मे मराठी के 'निश्चय पत्रिका' अथवा 'जन प्रस्ताव पत्र' का गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया जिसके संबध मे कहा जाता है कि वह अनेकानेक लोगो द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित होकर परिचलित किया जा रहा था। प्रस्ताव मे लोगों का आह्वान किया गया था कि जो लोग अपने देश से प्यार करते हैं, उन्हे देश के अपने उद्योगों के द्रुत विनाश को रोकने के लिए विदेशी सामग्री खरीदना बद कर देना चाहिए तथा थोड़े-बहुत महंगे तथा स्तर मे थोड़े-बहुत घटिया होने पर भी अपने देश के उत्पादन ही खरीदने चाहिए।[138] 'इंदु प्रकाश' के 23 अगस्त 1875 के अंक मे भी इसी प्रकार के भाव अभिव्यक्त किए गए थे।[139] विपिनकृष्ण बोस के अनुसार 1874 मे नागपुर मे गृहनिर्मित वस्तुओं के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए एक संगठन अस्तित्व मे आ गया था।[140] उसी वर्ष केवल भारत

में ही उत्पादित सूती सामान के व्यापार के लिए बंगलौर में एक कंपनी का गठन किया गया। कंपनी ने मांचेस्टर के सामान का व्यापार करने का संकल्प किया।[141] अमृत बाजार पत्रिका के 6 जनवरी 1876 के अंक में राजकोट के एक पाठक ने लिखा : 'हमने विदेशी सामान का इस्तेमाल न करने का संकल्प कर लिया है। हम एक ओर अंगरेजी सामग्री को अपदस्थ करने के साधनों की खोज का और दूसरी ओर जनता की स्वदेशी वस्तुओं के प्रति रुचि बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।'[142]

'ए वाइस फार दि कामर्स ऐंड मैनुफैक्चर्स आफ इंडिया' शीर्षक से बंगाल मे 1873-76 की अवधि में मुकर्जी की पत्रिका में प्रकाशित विस्तृत लेख मे भोलानाथ चंद्र ने स्वदेशी के पक्ष में अपनी बुलंद आवाज उठाई। उन्होंने देशवासियों से अनुरोध किया कि वे विदेशी सामान की खरीद छोड़कर थोड़ी सी देशभक्ति का परिचय नो दें।[143] उन्होने अपने देशवासियों के यूरोप में बने सामान के प्रति सामान्य उन्माद को अराष्ट्रीय प्रवृत्ति बताते हुए उसकी भर्त्सना की। इस संबंध में उन्होंने निर्देश किया :

> अब अपने राष्ट्र के प्रति अत्यंत झूठे और राष्ट्रीय उत्पादनों की गिरावट के लिए प्रेरक लोग है : राजा, जमींदार, बाबू तथा हमारे बड़े बडे कस्बों और शहरों के लोग। उत्कृष्टता तथा सस्तेपन की इच्छा वास्तविक इच्छा न होकर चापलूसी और बुद्धिव्यामोह ही अधिक है। इस व्यवहार का वास्तविक कारण यही है। उनके इस विश्वासघात को रुचि-परिष्कार कहकर क्षमा नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके इस आचरण मे देश के सर्वोत्तम हितो को आघात पहुंचता है।

उन्होंने अपनी जाति की अप्रतिम दासवृत्ति तथा भ्रष्टता पर विलाप किया परंतु आशा प्रकट की कि सदा के लिए सर्वस्व समाप्त नही हो गया है। उन्होंने राजनीति, दूरदर्शिता, तर्क तथा कौशल मे अपने देशवासियों से विनष्ट समृद्धि की पुन. प्राप्ति के लिए नैतिक विरोध के शस्त्र का प्रयोग करने के रूप मे विदेशी सामान का बहिष्कार करने का अनुरोध किया।[144] उनके इस दृष्टिकोण के प्रतिपादक पूरे अवतरण को यहां प्रस्तुत करके ही उसे समझा जा सकता है :

> कल की गलतियों से जो हानि हुई है उसकी पूर्ति आज की बुद्धिमत्ता से की जा सकती है। किसी प्रकार के शारीरिक बल प्रयोग के बिना, किसी प्रकार के राजद्रोह के बिना तथा किसी प्रकार की सांविधानिक संकटकालीन सहायता के लिए प्रार्थना के बिना ही, अपनी पूर्वस्थिति को पुन: प्राप्त करना सर्वथा हमारे अपने ही हाथ में है। और कुछ नही केवल हमारी सक्रिय सहानुभूति ने मांचेस्टर के लक्ष्य को सिद्ध किया है। हमारी सहानुभूति यदि उसके विरुद्ध हो तो उसका परिणाम भी निश्चित ही विपरीत होगा। हमारे लिए एकमात्र परंतु अत्यंत प्रभावशाली नैतिक विरोध के आखिरी शस्त्र का प्रयोग अपराध नही। हमें अंगरेजी सामग्री के प्रयोग न करने के संकल्प रूप सशक्त शस्त्र का प्रयोग करना चाहिए और फिर देखिए कि इस प्रकार के संकल्प की प्रवृत्ति के फलस्वरूप गलत विषयों को किस तरह ठीक किया जा सकता है।[145]

1875 में ढाका के लोग पहले से ही नैतिक विरोध के इस शस्त्र के प्रयोग का निश्चय

तथा मांचेस्टर के वस्त्रो के बहिष्कार का संकल्प कर चुके थे।[146] बंगाल के अनेक समाचारपत्रो ने अपने पाठकों से अंगरेजी वस्त्रो के प्रयोग को बद करने तथा भारतीय मिलो को सरक्षण देने का अनुरोध किया।[147]

1880-1895 की अवधि के पंद्रह वर्षो मे स्वदेशी की लहर देश मे उत्तरोत्तर बढती ही गई। जब भारत सरकार ने लकाशायर के उत्पादको को सतुष्ट करने के लिए सूती कपडो पर आयात शुल्क हटा दिए तो सरकार की इस करनीति से स्वदेशी की लहर को बडा प्रोत्साहन मिला।[148] पश्चिमी भारत के लोगो मे स्वदेशी उद्योगो के विनाश के विरुद्ध तथा अगरेजी मशीनो मे बने सामान के प्रयोग के विरुद्ध रचित लोकप्रिय गीत बहुत प्रचलित हो गए।[149] उस समय देश मे एक शक्ति समझी जाने वाली अमृत बाजार पत्रिका ने 1881 मे एक लोकप्रिय सगठन बनाने का प्रबल आह्वान किया ताकि भारत के बाहर उत्पादित सूती वस्त्रो के बहिष्कार का प्रचार करते हुए माचेस्टर की चुनौती का सामना किया जा सके। भारत के सभी प्रमुख नगरो मे अपने शिष्टमडल भेजिए···भारत की सभी भाषाओं मे इश्तहार छापिए। उसने स्वदेशी आदोलन के भावी विकास का बडी बुद्धिमत्ता से पहले से ही देखते हुए यह माग प्रस्तुत की कि विदेशी उत्पादनो के व्यापारियो के जाति बहिष्कार का प्रयत्न करना चाहिए।[150]

1881 मे देशी उत्पादनो के प्रयोग को बढाने के लिए इलाहाबाद मे एक देशी तिजारत कपनी शुरू की गई। मदनमोहन मालवीय इसके प्रमुख जन्मदाताओं मे एक थे।[151] 18 अप्रैल 1883 के कोहनूर के प्रतिवेदन के अनुसार लाहौर मे कतिपय शिक्षित भारतीयो ने 'इडियन नेशनल ऐसोसिएशन' नामक एक सस्था की स्थापना की थी। इसके सदस्यो को एक लिखित शपथ ग्रहण करनी पडती थी जिसके अतर्गत यथासभव स्वदेशी वस्तुओ का उपयोग उनके लिए अनिवार्य था।[152] अजमेर मे भी इसी प्रकार की सस्था के सगठन की सूचना मिलती है।[153] 1890 मे ढाका कालेज के छात्रो ने एक स्वदेशी भडार खोला।[154] बबई के विभिन्न भागो मे अगरेजी वस्त्रो के स्थान पर भारतनिर्मित वस्त्रो के प्रयोग के प्रचार के लिए असख्य जनसभाए हुई और इन बहुत सी सभाओ मे नियुक्त प्रतिनिधियो ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बबई मिलमालिक सघ से सलाह और सहायता की याचना की।[155] देश के सभी भागो के भारतीय समाचारपत्रो ने भारतीयो मे विदेशी माल का बहिष्कार करने का, एकमात्र भारतीय सामान के प्रयोग का, स्वदेशी उत्पादनो की बिक्री के लिए भडार खोलने का तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोकप्रिय संघो के सगठित करने का प्रबल अनुरोध किया। उत्तर-पश्चिमी प्रातो तथा अवध के अलमोडा अखबार ने 1 मई 1882 के अक मे, 'नसीमे आगरा' ने 7 जून 1889 के अक मे 'रहबर' ने 16 जुलाई 1889 के अक मे, 'हिंदुस्तानी' ने 11 अप्रैल 1894 के अक मे, पजाब के 'इपीरियल अखबार' ने 9 फरवरी 1889 के अक मे, पंजाब पंच ने 30 जुलाई 1891 के अंक मे, 'पैसा अखबार' ने 10 अगस्त 1891 के अक मे, 'अखबारे आम' ने 18 जुलाई 1895 के अंक मे, मद्रास से, 'आर्य जन पारुपालिनी, ने 1 सितंबर 1889 के अक मे, बरार से 'बृहद समाचार' ने 22 जून 1891 के अक मे, बंबई से 'मराठा' ने 13 मार्च 1881 के तथा 8 जुलाई 1894 के अंको में, 'नेटिव ओपीनियन' ने 26 मार्च 1891 के अंक मे,

'पूना वैभव' ने 10 मई 1891 के अंक में, 'हिंदू पंच' ने 22 मार्च 1894 के अंक में, 'आर्योदय' ने 18 मार्च 1894 के अंक में, 'मोदवृत्त' ने 2 अगस्त 1894 के अंक में, बंगाल से 'सोम प्रकाश' ने 23 जनवरी 1882 के अंक में, 'आनंद बाजार पत्रिका' ने 27 मार्च 1882 के अंक मे, 'भारत मिहिर' ने 16 मई 1882 के अंक मे, 'संजीवनी' ने 14 जून 1884 के अंक में, 'समय' ने 22 जून 1882 के अंक मे, 'बंगबासी' ने 16 तथा 23 नवंबर 1889 के और 2 मई 1891 के अंक में, 'समय और साहित्य' ने 5 अप्रैल 1891 के अंक में तथा 'एजुकेशन गजट' ने 5 जून 1891 के अंक में इस कार्यक्रम का बडा जोरदार समर्थन किया।[156] जनता तथा प्रशासकों में अधिक सुसंस्कृत तथा सम्मानित दिखाई देने के लिए पश्चिमी वस्त्रो तथा अन्य उत्पादनों का प्रयोग करने वालो की तीव्र भर्त्सना की गई। अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 19 जुलाई 1891 के अंक में लिखा :

> विभिन्न प्रकार के यूरोपीय वस्त्रो की आवश्यकता केवल उन लोगो का है, जो अपने को छैलछबीला दिखाने के शौकीन है हम हिंदुओ की तो हजारो वर्ष पुरानी आदर्श संस्कृति है, हम इन रातोरात धनी बन जाने वालो तथा सब प्रकार की सौम्यता को विकृत करने वालों की कलुषित रुचि म निश्चित रूप से वरेण्य सिद्ध हो सकते है। वस्तुत इन लोगो के आचार-व्यवहार मे तो अपने को सम्मानित एव कुलीन दिखाने को कुछ होता नही अत: वे लोग धन से उपलब्ध होने वाले साधनो से ही अपने को ऊंचा दिखाने की चेष्टा करते हैं।

इस अवधि में स्वदेशी भावना को देश की मान्य जन-संस्थाएं भी अपनाने लगी। पश्चिमी भारत औद्योगिक संघ के तत्वावधान मे हुए द्वितीय औद्योगिक सम्मेलन मे प्रमुख विधिवेत्ता, शिक्षाशास्त्री, उद्योगपति तथा लोकनायक, पूना के एम० बी० नामजोशी ने संस्था के सदस्यों से आग्रह किया कि वे आयातित वस्तुओ के स्थान पर भारतीय उत्पादनो के प्रयोग का प्रयत्न करें तथा अगले वार्षिक सम्मेलन मे अपने प्रयत्नों के परिणामो की सूचना दें।[157] बंगाल मे आयोजित पहले के कुछ एक प्रातीय सम्मेलनों मे स्वदेशी की आवश्यकता पर उत्साहपूर्वक बल दिया गया। इन सम्मेलनो मे 1894 मे बर्दवान मे आयोजित सम्मेलन विशेष उल्लेखनीय है।[158] कांग्रेस मंच से यह नारा 1891 के अधिवेशन मे उस समय सुनाई दिया जब पजाब के प्रचंड कांग्रेसी नेता लाला मुरलीधर ने प्रतिनिधियों को आडे हाथो लेते हुए कहा कि आयातित सामान खरीदने का अर्थ अपने भाइयो के हृदय के रक्त मे हाथ रंगना है।[159] 1894 में उन्होंने इस विषय को फिर उठाया और प्रतिनिधियों से विदेशी वस्त्रो तथा विलास सामग्री को छोडने तथा व्यवहार मे भी निर्धनो से सच्ची सहानुभूति रखने वाला बनकर दिखाने का अनुरोध किया। अधिवेशन के संवाददाता के अनुसार श्रोताओ ने लालाजी के इस अनुरोध पर देर तक प्रचंड जयजयकार की।[160]

1896 मे स्वदेशी आंदोलन उस समय प्रबल हो उठा जब राजनीतिक दृष्टि से सचेत सारा भारत भारतीय वस्त्रो पर बदले की भावना से लगाए गए सीमा शुल्क के विरुद्ध गुस्से से आगबबूला हो गया।[161] बहुतों ने अनुभव किया कि धर्म तथा अन्य भेदभावों को भुलाकर सभी भारतीयों के लिए संगठित होने तथा लंकाशायर के वस्त्रों के बहिष्कार की शपथ खाते हुए 'राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए जागृत होने' का उपयुक्त समय यही था।[162] यह

भी अनुभव किया गया कि इस आंदोलन को कोरी प्रार्थनाओं, मौखिक विरोधों तथा प्रस्तावों से बहुत ऊपर ले जाने और आगे बढ़ाने की आवश्यकता थी। समय की मांग मांचेस्टर के साथ सभी प्रकार के व्यापार को बंद करने के संगठित प्रयास करने की थी।[163] भारत में आधुनिक वस्त्र उद्योग के केंद्र की गरिमा के अनुरूप बंबई प्रात ने आंदोलन को नया आयाम देने का नेतृत्व किया। इस प्रात के विभिन्न भागों में लंकाशायर के उत्पादनों का बहिष्कार करने के लिए संस्थाओ और समितियो को संगठित किया गया।[164] बंबई प्रांत के सारे समाचारपत्र बहिष्कार के आंदोलन के समर्थन के लिए सक्रिय हो उठे।[165] स्वदेशी वस्त्र के अतिरिक्त न कुछ पहनने और न कुछ बेचने की सार्वजनिक प्रतिज्ञाएं प्राप्त करने के लिए तथा विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार को सुगठित करने के लिए पूना, अहमदनगर, सतारा, बारमी, जलगाव, मनमाड तथा राजापुर मे विशाल जनसभाएं हुई। बंबई की गतिविधि की लोकप्रियता का परिचय अहमदनगर की स्वदेशी गतिविधि पर 17 मार्च 1896 के 'टाइम्स आफ इंडिया' मे प्रकाशित एक रिपोर्ट[166] मे प्राप्त किया जा सकता है। रिपोर्ट मे कहा गया था कि लंकाशायर के उत्पादनों के बहिष्कार के लिए स्थानीय समिति नगर के विभिन्न भागो मे जनसभाओं का आयोजन तथा जिले के जन-साधारण मे परिचालन के लिए परिपत्र तथा पुस्तिकाएं तैयार कर रही है। अंगरेजी वस्त्रो के बहिष्कार के लोकप्रिय दृढ निश्चय का प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट प्रमाण देने के लिए इसने एक जन-प्रदर्शन का आयोजन किया जिसमे जनता ने अपने अंगरेजी कपडो की होली जलाई।[167] टाइम्स के संवाददाता का कथन था कि किसी सम्मानित व्यक्ति के लिए बिना सैकड़ों जटिल प्रश्नों का सामना किए नए अंगरेजी वस्त्र का एक टुकडा तक ले जाना संभव नही था। पूना के न्यू इंगलिश स्कूल के छात्रो ने भी अगरेजी कपडो की सार्वजनिक होली जलाने के लिए इसी प्रकार की जनसभा का आयोजन किया।[168] बहिष्कार आदोलन की इस अपरिपक्व अवस्था मे बाल गगाधर तिलक की भूमिका अत्यत महत्वपूर्ण थी।[169] बहिष्कार आदोलन की नई लहर यद्यपि प्रमुख रूप मे बंबई तक ही सीमित रही तथापि इसे देश के अन्य भागों के समाचारपत्रो से भी पूरा पूरा समर्थन मिला।[170]

सूती कपडे पर कराधान के विरुद्ध जन-आक्रोश के कम होते ही स्वदेशी का आदोलन भी शिथल पड गया परंतु पूर्ण रूप मे यह समाप्त कभी नही हुआ। समाचारपत्र स्वदेशी की आवश्यकता को लोगों के सम्मुख उजागर करते रहे।[171] 1899 मे बनारस के 'भारत जीवन' ने देशभक्ति की भावना से आप्लावित भाषण देने वाले तथा लेख लिखने वाले भारतीय शिक्षितों से इस दिशा मे देशवासियो के सामने उदाहरण प्रस्तुत करने की अपील की।[172] संजीवनी कुछ वर्षों के उपरात 1905 में विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी प्रयोग के आह्वान का नेतृत्व करने वाला पत्र बन गया और उसने स्वदेशी कार्यक्रम की आवश्यकता तथा उसे लागू करने के उपायो और साधनों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उसने अपेक्षित स्तर की स्वदेशी वस्तुओं की विद्यमानता से जनता के अपरिचय को तथा इन वस्तुओं की सुलभ प्राप्ति के लिए दुकानों तथा अभिकरणों के अभाव को स्वदेशी संघर्ष के मार्ग की बहुत बड़ी बाधाएं बताया। उसने इस बात की ओर भी संकेत किया कि बड़े बड़े थोक व्यापारी और छोटे दुकानदार यदि चाहें तो जनता को स्वदेशी

माल खरीदने के लिए विवश कर सकते हैं।[173] पैसा अखबार ने 15 मार्च 1902 के अपने अंक में वचन दिया कि वह विदेशी वस्त्रों के प्रयोग न करने की प्रतिज्ञा करने वाले देश-भक्तों के नाम प्रकाशित करेगा।[174]

बख्शी जैशीराम ने कांग्रेस के मंच से चौदहवें अधिवेशन के प्रतिनिधियों से भारत में बनी सामग्री के प्रयोग का तथा उसके प्रचार के लिए संस्थाओं की स्थापना का अनुरोध किया।[175] 1901 में कलकत्ता कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी ने सार्वजनिक रूप से कलकत्ता में कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के प्रतिनिधियों तथा दर्शकों से प्रार्थना की कि वे यथा-संभव स्वदेशी उत्पादनों से निर्मित वस्त्र पहनकर ही अधिवेशन के सम्मेलनों में सम्मिलित हों।[176] आगामी वर्ष सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने कांग्रेस सभापति पद से स्वदेशी की अपील की।[177] 1902 में प्रथम बार कांग्रेस ने स्वदेशी आदोलन की योजना को औपचारिक मान्यता देने के लिए उसे अहमदाबाद कांग्रेस की विषय समिति को सौंपा परंतु उल्लेखनीय यह है कि प्रस्ताव को व्यापक समर्थन न मिलने के कारण समिति ने इसे अस्वीकार कर दिया।[178] फिर भी बहुत सारे लोगों ने स्वदेशी विचारधारा को व्यावहारिक रूप देने के लिए उपयोगी उपाय जारी रखा। 1898 में पंजाब में 'स्वदेशी वस्तु प्रचारिणी सभा' नाम की एक संस्था विद्यमान थी जिसका घोषित उद्देश्य भारतीय वस्तुओं का स्तर सुधार और उनका उपयोग बढ़ाना था।[179] 1902 में पूना में एक लाख रुपए की साधारण धन-राशि से एक स्वदेशी दुकान खोली गई जिसे शीघ्र ही सफलता मिली।[180] उसी वर्ष स्वदेशी आदोलन के बंगाली अग्रदूत जे० चौधरी के सक्रिय नेतृत्व में कलकत्ता में 'इंडियन स्टोर्स लिमिटेड' खोला गया।[181] आगामी वर्ष अहमदाबाद में 'स्वदेशी वस्तु संरक्षण संस्था' बनाई गई और इसका उद्घाटन दीवान बहादुर अंबालाल साकेरलाल ने किया।[182]

इस प्रकार भारत में स्वदेशी भावना का उद्भव और विकास हमारे अध्ययन काल की अवधि में एक खास रूप में हुआ जिसमें इस बात को स्वीकार किया गया कि स्वदेशी वस्तुओं का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए चाहे वे विदेशी वस्तुओं की तुलना में महंगी तथा स्तर में घटिया ही क्यों न हों।[183] विभिन्न कालों तथा विभिन्न लोगों के व्यवहार में भले ही स्वदेशी भावना के पृथक अथवा संयुक्त रूप में अनेक उद्देश्य रहे हों परन्तु समीक्षाधीन काल में इसका प्रमुख उद्देश्य आर्थिक ही था, राजनीतिक नहीं। वस्तुतः इस भावना का जन्म ही भारत की अशक्त तथा शोचनीय औद्योगिक स्थिति की अनुभूति से हुआ था। इस आंदोलन के अस्तित्व का लक्ष्य इसी आशा में निहित था कि यह भारतीय उद्योगों को संरक्षण और प्रोत्साहन देकर देश की औद्योगिक और आर्थिक स्थिति का उद्धार और सुधार करने में सहायक होगा। स्वदेशी के अनेक प्रस्तावकों ने इस दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रतिपादन किया।[184] उदाहरणार्थ लोकमान्य तिलक के अंगरेजी भाषा के मुखपत्र 'मराठा' ने 2 अप्रैल 1896 के अंक में लिखा :

> आदोलन का उद्देश्य देशप्रेम की भावना का संचार है जिससे भारत में सूती उद्योग को प्रबल प्रोत्साहन मिल सके।...स्वदेशी वस्त्रों की व्यापक मांग क्षण-प्रतिक्षण अधिकाधिक व्यापक रूप ग्रहण करती जा रही है। अतः विश्वास है कि शीघ्र ही इससे मशीनी सुधार को द्रुतगति तथा देश में पूंजी के निवेश को प्रोत्साहन मिलेगा।[185]

एक महीने के बाद उसने (मराठा पत्र) आशाओं की आंशिक पूर्ति की सूचना दी और उल्लास प्रकट किया कि स्वदेशी आंदोलन के फलस्वरूप बंबई प्रांत में कुल 13, बंबई मे 7 और अहमदाबाद में 6 नई मिलें अस्तित्व मे आ गई हैं और मिलों के लिए अधिक बढ़िया कपास उगाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं।[186] बंगाल में इस आंदोलन को निरंतर गतिशील बनाने वाले तथा अत्यधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति के० के० मित्र की 'संजीवनी' ने भी औद्योगिक लाभ को इस आंदोलन का उद्देश्य बनाया।[187] सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने भी 1902 की कांग्रेस के सभापति पद से दिए गए भाषण मे इसी पक्ष को उजागर किया।[188]

अनेक लोगों ने विदेशी प्रतियोगियों के हाथों घरेलू कारीगरों तथा हस्तशिल्पियो को निश्चित विनाश से बचाने के लिए स्वदेशी का प्रयोग तथा प्रचार किया।[189] यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि स्वदेशी आंदोलन में स्वदेशी हस्तशिल्पकारो को स्वदेशी मशीन उत्पादकों की प्रतियोगिता से बचाने की ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा स्वदेशी की रक्षा और उसे लोकप्रिय बनाने के लिए प्रस्तुत तर्कों मे एक सर्वाधिक आकर्षक तर्क यह था कि सरकार ने ब्रिटिश उत्पादको की हित रक्षा के हेतु अथवा उन्मुक्त व्यापार सिद्धांत पर आस्था रखने के कारण भारत के नवजात उद्योगों को नितान्त आवश्यक संरक्षण देना अस्वीकार कर दिया है अत: अब लोगो को स्वयं ही प्रबल स्वदेशी आंदोलन चलाकर उसे संरक्षण देने का दायित्व लेना चाहिए।[190] इसके अतिरिक्त यह अभियान न्यूनाधिक रूप से व्यावहारिक और संभव की परिधि मे आता था। इसकी सफलता विदेशी सरकार की कृपा और इच्छा अथवा कानून मे परि-वर्तन पर नहीं प्रत्युत जनता के अपने प्रयासो तथा आत्मविश्वास पर निर्भर थी। वस्तुत: अधीन प्रजा के लिए यही तो एक साधन अवशिष्ट था।[191] 1902 में सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने कांग्रेस के सभापति पद से दिए गए भाषण मे इस दृष्टिकोण को अत्यंत मुखरित रूप से प्रस्तुत किया. 'कानूनी व्यवस्था से स्वदेशी को संरक्षण देना भले ही असंभव हो परन्तु हम राष्ट्रीय संकल्प से तो यथाशक्ति उसे संरक्षण प्रदान कर सकते है।[192]

राष्ट्रवादियो के अनुसार सामान्य रूप से स्वदेशी आंदोलन और विशेष रूप मे विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार लंकाशायर के उन स्वार्थी उत्पादकों के विरुद्ध प्रभावी विरोध तथा प्रतिकार के उपयुक्त शस्त्र थे जो भारत के पनपते सूती वस्त्र उद्योग को लूला-लंगडा बनाने के लिए भारत सरकार पर अपना राजनीतिक प्रभाव डाल रहे थे। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि इन शस्त्रो से विदेशी उत्पादको को इस प्रकार की हरकतों को छोडने के लिए बाध्य किया जा सकता है अथवा कम से कम उनके परिणामों का आनंद लेने से तो उन्हें वंचित किया ही जा सकता है। यह सब तभी संभव है जब सशक्त बहिष्कार आंदोलन द्वारा उनके मुनाफे कम किए जाएं।[193] मराठा ने 9 फरवरी 1896 के अंक मे लिखा : 'यदि लंकाशायर की अतृप्त लोभवृत्ति को ही भारत पर शासन करना है तो भारतीयों को लंकाशायर को नष्ट करने के लिए दृढ़ निश्चय करना है। भारत कुछ वर्षों के लिए लंका-शायर के वस्त्र का ही बहिष्कार कर ले तो मांचेस्टर के अतिलोलुप व्यापारियों के होश ठिकाने आ जाएंगे।' विदेशी उत्पादनों के स्थान पर स्वदेशी उत्पादनों के प्रयोग के

आंदोलन का एक उद्देश्य यह भी था कि विदेशी उत्पादनों के फलस्वरूप भारतीय धन की निकासी को कम किया जा सके।[194]

इस युग के राष्ट्रीय दृष्टिकोण के सूक्ष्म अध्ययन से विदित होता है कि इस युग के राष्ट्रीय नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन को राजनीतिक युद्ध लड़ने के लिए प्रभावशाली शस्त्र के रूप में ग्रहण नही किया। यह बात नहीं कि स्वदेशी को राजनीतिक शस्त्र के रूप में प्रयोग करने का विचार उनमें से कुछ के दिमाग में भी नही आया अथवा इसे सार्वजनिक अभिव्यक्ति नहीं मिली। 1891 मे पूना वैभव ने जनता से अपील की कि वह 'कांसेंट ऐक्ट' को रद्द करवाने के लिए सरकार पर दबाव के रूप में अंगरेजी वस्त्रों का प्रयोग बंद कर दें।[195] 1894 में मराठी के 'मोदवृत्त' ने जिसके संपादक के० बी० काले को 1897 में राजद्रोह के अभियोग में नौ महीने का कारावास मिला था, वकालत की कि विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार सरकार के विरुद्ध जनता की आम शिकायतें दूर कराने के शांतिपूर्ण संघर्ष के बहुत बड़े कार्यक्रम का एक अंग था।[196] काफी समय बाद 1901 मे लखनऊ के विख्यात राष्ट्रीय साप्ताहिक 'एडवोकेट' ने तो स्वदेशी के प्रयोग को आत्म-रक्षा के लिए अपने पास बचा एकमात्र शस्त्र बताया। उसके अनुसार इसी शस्त्र से हम आस्ट्रेलिया सरकार को आस्ट्रेलिया में रहने वाले भारतीयों पर थोपे प्रतिबध हटाने के लिए तथा हमारे प्रति तनिक शिष्ट जनों जैसा सभ्य आचरण करने के लिए विवश कर सकते है।[197] भारतीय नेताओ के समक्ष चीनियों द्वारा अमरीकी सामान के सफल बहिष्कार का उदाहरण भी था।[198] ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अनुमान था कि स्वदेशी को राजनीतिक शस्त्र के रूप मे प्रयोग करने का अभी उपयुक्त समय नही था। किंतु 1880 में ही दादाभाई नौरोजी ने बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण तथा न्यायसंगत भविष्यवाणी की थी कि वह समय अवश्य आएगा। लोकप्रिय गीतों द्वारा विदेशी उत्पादनो के आयात का रोकने की लोकप्रिय चेष्टा का निर्देश करते हुए उन्होंने लिखा था :

> हाथ के बने महंगे सामान के मुकाबले अंगरेजी मशीनो से बने सस्ते सामान के बहिष्कार को एक निस्सार चेष्टा मानकर आज हम उसका उपहास भले ही कर लें परन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि इस आंदोलन का पनपना और समय आने पर नया रूप ग्रहण करना निश्चित है। यदि अंगरेज अपने अविवेक का परिचय देते है तो इस समय के अंगरेजी वस्त्रो के विरुद्ध लिखे गीत समय आने पर अन्य अंगरेजी वस्तुओं के विरुद्ध भी स्वाभाविक रूप से प्रभावी प्रचार का कार्य करेंगे।...परंतु यदि भारत की वर्तमान पतन-प्रक्रिया जारी रहती है, यदि जनता का बहुत बड़ा वर्ग अंततः किसी भी प्रकार की उन्नति के लिए निराशा अनुभव करने लगता है, यदि विवेक तथा सांसारिक अनुभव से रहित शिक्षित युवक ही जनता के नेता बनने लगते हैं तो यह इष्ट से अनिष्ट की दिशा मे, अंगरेजी वस्त्रों से अंगरेजी शासन की ओर एक अत्यंत छोटा सा कदम होगा। गीत तो वही रहेंगे परंतु हां, शासन के बारे में एक अपशब्द चिंगारी का काम करेगा।[199]

एक आर्थिक आंदोलन के रूप में भी समीक्षाधीन अवधि में स्वदेशी भावना एक सशक्त, अखिल भारतीय तथा सर्वव्यापक आंदोलन का रूप ग्रहण न कर सकी क्योंकि

राष्ट्रवादी नेताओं के एक वर्ग ने तथा पनपते भारतीय उद्योगपति वर्ग ने इसका विरोध किया। कही कही तो इस विरोध का मुखर रूप देखने को मिला परंतु अधिकांशत: आंदोलन के प्रति समर्थन के निषेध के रूप में ही इसने अपने को अभिव्यक्त किया। इन्होंने स्वदेशी आंदोलन को देशप्रेम का प्रत्यक्ष रूप तो माना परंतु इसे व्यावसायिक दृष्टि से अव्यावहारिक, यहां तक कि लोकशक्ति का हानिप्रद मोड बताया।[200] उनकी प्रमुख आपत्ति यह थी कि इस आंदोलन का प्रमुख आधार आर्थिक भ्रांतियां है।[201] लोगों के लिए आयातित उत्तम और मध्यम दरजे के वस्त्रो के प्रयोग को तिलाजलि देना संभव नही था। वे सदैव सस्ता और बढ़िया माल खरीदेगे। यह सोचना भ्रांति थी कि देशप्रेम की अपीलें इस प्रवृत्ति को पलट देंगी। अत: इस प्रकार के सभी प्रयत्न अवश्य असफल होगे।[202] देशभक्ति की उत्कटता देश की विशाल जनता को विशुद्ध व्यापार के मार्ग से एक इंच भी इधर-उधर न हटा सकेगी।[203] जनसाधारण का तो कहना ही क्या, यहा तक कि सुशिक्षित और विचारशील व्यक्तियों से भी इसकी अपेक्षा नही की जा सकती। वाचा का प्रश्न था : 'क्या वे ऐसा कर सकते थे ? उदाहरणार्थ आप उनकी महिलाओं और बच्चो से जरा साडियां और चोलिया, छीटें और छापे वाले कपडे पहनना छोडने को कहिए तो सही' ?[204] अरुचिकर वास्तविकता यह थी कि एक साधारण उपभोक्ता चाहे वह किसी भी बौद्धिक स्तर का क्यों न हो, केवल देशप्रेम की भावुकता के वशीभूत होकर आर्थिक श्रेष्ठता और सस्तेपन के कठोर सत्य की उपेक्षा करता हुआ अपनी स्वतंत्र इच्छा से आख नही मूद सकता है।[205] इसके अतिरिक्त भारतीय मिलें उस समय भारत द्वारा इंग्लेंड मे आयातित वस्त्रो के परिमाण मे उत्पादन की स्थिति मे नही थी। भारतीय उद्यमियो के पास या तो मशीनें नही थी अथवा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मशीनें खरीदने को पूजी नही थी। बहिष्कार आदोलन के पास कोई ऐसा अलादीन का चिराग नही कि वह एकदम ऐसे कारखाने लगा सके जो एक दिन मे अथवा एक वर्ष मे अथवा पाच वर्षों मे सारे भारत के लिए उतने परिमाण मे वस्त्र जुटा सकें जितने परिमाण मे इस समय भारत इंग्लेंड से आयातित करता है।[206] इस संदर्भ मे वाचा ने टिप्पणी ही नही प्रत्युत भविष्यवाणी की कि भारतीय वस्त्र उद्योग को कदाचित अपनी अपेक्षित पूर्ण क्षमता प्राप्ति के लिए बीस वर्ष लगेंगे[207] और इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि स्वदेशी आंदोलन चलाने का कदाचित वही उपयुक्त समय होगा। इस सारी बहस के पीछे यह तर्क काम कर रहा था कि मिलो का उत्पादन स्वदेशी आदोलन के बाद नही प्रत्युत पहले बढ़ना चाहिए।[208] यहां यह उल्लेखनीय है कि हथकरघों से बना वस्त्र देश मे वस्त्र की आवश्यकता तथा मिल के उत्पादन के बीच के अंतर की पूर्ति कर सकता था। सत्य तो यह है कि स्वदेशी के विभिन्न समर्थकों ने उस समय यह सुझाव दिया भी था[209] परंतु उस समय वाचा तथा उसकी विचारधारा के महानुभाव उसी प्रकार के भारतीय वस्त्रों में नही प्रत्युत भारतीय मिलों से निर्मित वस्त्रों के ही पक्ष में थे। स्वदेशी का अर्थ उन लोगों के लिए लंकाशायर के वस्त्र के स्थान पर भारतीय मिलों मे बने वस्त्रों के प्रचार का साधन मात्र था। लंकाशायर के वस्त्रों के हटाने में हथकरघों की भूमिका को उन्होंने कोई महत्व ही नही दिया। उनका लक्ष्य भारतीय उद्योगों, उनकी प्रगति और सुधार को पुन: गतिशील बनाना था न कि सड़ी-

गली वस्तुओं को आश्रय देना।[210] हथकरघों के वस्त्र को तो उन्होंने वस्त्र उद्योग के विकास से एक खतरनाक प्रतिद्वंद्वी के रूप मे देखा। उदाहरणार्थ 1901 मे वाचा ने हथ-करघा जुलाहों को मिलमालिकों के विरुद्ध संरक्षण देने के लिए कपास सीमा शुल्क लगाने की निम्नोक्त शब्दो मे निंदा की :

> कररहित भारतीय सूत का प्रयोग करने वाले हथकरघा जुलाहो के उत्पादन मिलो द्वारा उत्पादित वस्त्रो की प्रतियोगिता मे है। अत्यंत दुर्दशाग्रस्त हथकरघा जुलाहो के दृष्टिकोण से निस्सदेह यह अच्छी बात है कि वे अपने उद्योग को उन्नत करे परतु जहा तक मिलमालिको का सबध है, यह सर्वथा असहनीय है। यह तो सरक्षण के भीतर ही सरक्षण है।[211]

अतएव सुविधापूर्वक यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बबई की मिलो के मालिक तथा उनके राष्ट्रवादी प्रतिनिधि उस समय तक विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार के पक्ष म नही थे जब तक भारतीय मिले अप्रानशोधित माग को पूरा करके विदेशी वस्त्रो के आयात को बद करने की स्थिति मे नही आ जाती। इसका अर्थ उनके अपने अनुमान के अनुसार तीस वर्ष थे।[212] उस समय वे खादी आदोलन को समर्थन देने के लिए भी सहमत हो जाते क्योकि वे अच्छी तरह जानते थे कि खादी के उस समय उनका प्रतिद्वद्वी बन पाने की सभावना ही नही थी।[213]

स्वदेशी आदोलन के औचित्य पर सदेह करने वालो के मन मे छुपा हुआ एक और भय यह था कि ब्रिटिश उत्पादक भारत की नई मिलो को मशीनरी देने म इकार करके अथवा अन्य इसी प्रकार के साधनो का प्रयोग करके भारत के विरुद्ध बदले की भावना म काम कर सकते है। उनके विचार मे शासक पक्ष सुदृढ और शक्तिशाली था और उसके विरुद्ध शासित भारतीय पक्ष शोचनीय रूप मे दुर्बल था। अतः उनके तथा मिलमालिको के समर्थन के अभाव तथा उनके विरोध का विश्लेषण निम्नलिखित दो बातो म किया जा सकता है : 1. उनका विश्वास था कि भारतीय मिलो की वर्तमान उत्पादन क्षमता के लिए आतरिक बाजार मे पर्याप्त अवकाश है। इस बाजार का कृत्रिम रूप मे अथवा जबरदस्ती किया गया प्रसार उनके लिए अपेक्षित रूप मे उपयोगी नही होगा क्योकि देश मे मोटे वस्त्र उद्योग पर पहले ही उनका एकाधिकार है और इससे उनके वास्तविक प्रतिद्वद्वी हथकरघा उद्योग की सहायता मिलेगी और 2. अपनी आर्थिक शक्ति पर तथा जनता के बलिदान की भावना की क्षमता[214] और सुदृढता पर अविश्वास और विदेशी शासको की शक्ति को बढा-चढाकर आका जाना।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के प्रभावशाली वर्ग तथा मिलमालिको के विरोध का परिणाम यह हुआ कि देश के राष्ट्रवादी शिक्षित मध्यवर्ग का व्यापक समर्थन उपलब्ध होने पर भी स्वदेशी आदोलन देश का शक्तिशाली आदोलन न बन पाया। यहा तक कि उसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का औपचारिक समर्थन तक प्राप्त नही हो सका।

संदर्भ

1. भारत से बाहर निवेश के अन्य स्रोत धीरे धीरे न केवल ब्रिटिश पूंजी से प्रत्युत विश्व के सभी पूंजी उत्पादक देशों की पूंजी से भरते जा रहे हैं और यदि यही स्थिति रही तो वह समय शीघ्र आ जाएगा कि बैंकों में दीर्घकाल से खाली पड़ी हुई ब्रिटिश चालू पूंजी को वहां से निकालकर नए स्रोतों में लगाना होगा और इस रूप में 'आर्थिक गुरुत्वाकर्षण' के नियम के अनुसार उसकी गति भारत की ओर ही होगी ब्रिटिश कानूनों और ब्रिटिश सस्थाओ द्वारा ब्रिटिश पूंजी को सुरक्षा प्राप्त होने से इसे भारत के लिए अतिरिक्त आकर्षक बनना चाहिए (कर्जन : स्पीचेज, खंड III, पृ० 134) इससे पूर्व वह घोषित कर चुका था कि ब्रिटिश पूंजी भारत की राष्ट्रीय प्रगति के लिए अपरिहार्य आवश्यकता है (स्पीचेज, खंड I, पृ० 34). और भी देखिए, एलगिन : स्पीचेज, पृ० 489.
2. लिलंड हैमिल्टन जेक्स · दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपिटल टु 1875 (न्यूयार्क, 1927) पृ० 208.
3. वही, पृ० 225 तथा देखिए भारतीय अकाल आयोग 1880 का प्रतिवेदन भाग II, अनुभाग VIII, कंडिका 3.
4. पी० पी० पिल्ले की 'इकानामिक कंडीशन इन इंडिया', (लदन 1925) पृ० 281 में उद्धृत.
5. जार्ज पाइश . ग्रेट ब्रिटेस कैपीटल इनवेस्टमेंट इन इंडीवीज्युअल कालोनीयल फारन कंट्रीज, जरनल आफ रायल स्टेटिस्टिकल सोसाइटी, खंड LXXIV, भाग II (जनवरी, 1911), पृ० 180.
6. 'पिल्ले' मे पूर्वोद्धृत, पृ० 28
7. जेंक्स . पूर्वोद्धृत, पृ० 230 1880 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन भाग II, वर्ग VIII, कंडिका 3.
8. जार्ज पाइश पूर्वोद्धृत
9. जोशी : पूर्वोद्धृत, चार्टफेमिंग पृ० 780 राय : पावर्टी, 113-4, 125-6
10. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 652, 757.
11. भारतीय अर्थशास्त्र के बहुत से विद्यार्थियो ने ही नहीं बल्कि अर्थशास्त्रीय समस्याओ के प्रति जागरूक हमारे बहुत सारे विद्वान लेखकों ने भी इस तथ्य की उपेक्षा की है (बबई, 1946). प्रोफेसर पी० ए० वाडिया तथा के० टी० मर्चेंट ने इस तथ्य को प्रामाणिकता दी है कि प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद तक भारतीय नेताओ के पास विदेशी पूंजी के संबंध मे कुछ कहने को ही नहीं था. उन्होंने लिखा है : 1922 तक भारतीय लोकमत ने भारत मे विदेशी पूंजी के निवेश के संबंध में अपने आपको निश्चित रूप मे अभिव्यक्त नही किया. फिसकल आयोग ने ही निर्देश किया था कि गवाहो ने अपना मत व्यक्त किया है कि कतिपय निश्चित प्रतिबंधों के बिना भारत में विदेशी पूजी के प्रवेश को अनुमति नही मिलनी चाहिए (पृ० 479-80).
12. 8 दिसंबर 1886 को लंदन में हुई ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बैठक में प्रस्तुत एक लेख में दादाभाई ने लिखा था : मैं सभी अंगरेज उद्यमिया से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि वे भारत आकर यथासंभव अधिकाधिक लाभ उपार्जित करें. वे हमें इससे बड़ा न कोई और लाभ पहुंचा सकते हैं और न ही अनुग्रह कर सकते हैं. वस्तुतः हमारे देश में अंगरेजों द्वारा निवेशित प्रत्येक कौड़ी हमारी स्थिति के सुधार में हमारे लिए महत्व रखती है (जरनल आफ ईस्ट इंडिया

एसोसिएशन, खंड III-1969, सं० 1, पृ० 13) तथा देखिए. नौरोजी : एसेज, पृ० 39-41, 102, 104 106, 124-7. 130-1, 135. विदेश पूंजी के उत्तरगामी विरोध के लिए देखिए : अधोलिखित विवेचन.

13. नौरोजी : एसेज पृ० 39-40, 106, 127 एम० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 190 हिंदुस्तान 21, 23, 24 अगस्त (आर० एन० पी० एन० 26 अगस्त 1888). केल्लाक : पूर्वोद्धृत में उद्धृत रानाडे का वक्तव्य पृ० 122 तथा 'एसेज', पृ० 105. हितवादी 13 जून (आर० एन० पी० बंग, 20 जून, 1891). ए० बी० पी०, 8 फरवरी 1895, 6 जनवरी, 15 अक्तूबर 1900, 10 अगस्त 1903. एम० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 270 आर० एम० सायानी, आई० सी० पी० 1897. खंड XXXVII, पृ० 524. हिंदुस्तान 8 अक्तूबर (आर० एन० पी० एन०, 11 अक्तूबर 1988).
   प्रारंभिक वर्षों में दादाभाई का विचार था कि भारतीय धन और पूजी के ब्रिटेन में अपरिहार्य निकासी के मार्ग में विदेशी पूजी का आयात आंशिक रूप में निरोध तथा क्षतिपूर्ति स्वरूप था.
14. दादाभाई नौरोजी ने इस मुद्दे के लिए जोन स्टुअर्ट मिल को उद्धृत किया (एसेज, पृ० 104) तथा देखिए, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 789-90. आर० एम० सायानी, एल० सी० पी०, खंड XXXVII, पृ० 524
15. रानाडे : एसेज, पृ० 186
16. सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य इग्लैंड से और अमरीका तक से पूंजीपतियों को भारत में उद्योग खोलने के लिए निमंत्रित और उत्साहित करना है (ए० बी० पी० 17 मार्च 1902). 'समाचार पत्रों ने तो विदेशी निवेशकों के प्रारूपों के प्रति उदासीनता और अनुदारता दिखाने के लिए भारत सरकार की निंदा की ' तथा देखिए, एम० एन० बैनर्जा स्पीचेज I, पृ० 190 हिंदुस्तान· 21, 23, 24 अगस्त (आर० एन० पी० एन, 15 नव० 1898) ए० बी० पी०, 15 जुलाई 1893 और नौरोजी : ऊपर उद्धृत पादटिप्पणी सं० 12
17 हिंदुस्तान 21, 23, 24 अगस्त (आर० एन० पी०एन०, 28 अगस्त 1888) एम० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 270.
18. जोशी : पूर्वोद्धृत, 756 हिंदू 23 फरवरी 1900, बगाली 25 मई 1902 जी एस० अय्यर दि विक्टरी आन दि इकानामिक कंडीशंस आफ इंडिया, एच० आर०, जून 1901, पृ० 445-7. नौरोजी : स्पीच ऐट पोर्ट्‌स माउथ इंडिया 20 मार्च 1901, पृ० 140
19. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 250-1 382, 398 परिशिष्ट, पृ० 3 जी० एस० अय्यर · रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 107 चैंपियन, 30 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 5 अगस्त 1899) हिंदू 23 फरवरी 1900; बंगाली 25 मई 1901. विदेशी पूंजी के प्रवाह की कल्पना करने वालों को प्रत्युत्तर देते हुए डी० ई० वाचा ने 1898 में टिप्पणी की : जब तक देश में विदेशी लुटेरे बड़ी संख्या में टिड्डी दल की तरह फैले रहेंगे और इसके सत्व और मांस को खाते रहेंगे, तब तक यहां के लोग किस प्रकार लाभान्वित हो सकते हैं ? विदेशी निवेशक एक तो अपने यहां के लाभों को दूसरे स्थानों पर खींच ले जाते रहेंगे और इसके अतिरिक्त समय आने पर पूजी को भी लौटा लेंगे (रिप० आई० एन० सी०, 1890, पृ० 50).
20. लोकमित्र 24 दिसं० (आर० एन० पी० बंब, 30 दिसंबर 1889). दत्त : 'इग्लैंड ऐंड इंडिया,' पृ० 132. चैंपियन 30 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 5 अगस्त 1899) हिंदू 23 फरवरी 1902; बंगाली 25 मई 1901.

21 नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 133. तथा देखिए, वही, पृ० 240, 382, 398 परिशिष्ट पृ० 7 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 700

22. जी० एस० अय्यर · ई ए, पृ० 122 तथा देखिए, हिंदू 23 फरवरी 1900. न्यू इंडिया, 26 अगस्त, 1901

23 नौरोजी पावर्टी, पृ० 34, 568-9 स्पीचेज, पृ० 196. परिशिष्ट, पृ० 7 इंडिया 10 मई 1901 में प्रकाशित एक पत्र, पृ० 233 और स्पीचेज ऐट पोर्टम माउथ, इंडिया, 20 मार्च 1903, पृ० 140 बंगाली 25 मई 1901, इंडियन पीपुल 23 फरवरी 1905, 'हिंदुस्तान रिव्यू' तथा 'कायस्थ समाचार' के संपादक ने विदेशी पूंजी के प्रयोग को 'एक अंतर्राष्ट्रीय लूट खसोट पद्धति' की संज्ञा दी (फरवरी 1903 पृ० 193) तथा गोखले, वेलबी आयोग, खंड III, पृ० 18140-1

24 नौरोजी स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 3 बंगाली 25 मई 1901. जी० एस० अय्यर · 'लार्ड कर्जन का बजट भाषण—एच० आर०, अप्रैल 1903, पृ० 318

25 बंगाली 1 जून 1901 तथा मराठा 30 जून 1881

26. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 673, 700, 739-40 तथा नौरोजी : पावर्टी, पृ० 227 मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901) 18 जुलाई 1883 के 'भारत मिहिर' मे एक लेखक ने संकेत किया . ब्रिटिश पूंजी अमरीकिया की स्थिति के सुधार के लिए और हिंदुस्तानियो को पृथ्वी से नामशेष करने तथा अफ्रीकी हब्शियो को अमरीकियो के दास बनाने मे तथा मिस्र को अपना उपनिवेश बनाने के लिए उत्तरदायी है (आर० एन० पी० बंग, 21 जुलाई 1883).

27. न्यू इंडिया 12 अगस्त 1901 (बल दिया गया). न्यू इंडिया के अगले अंक मे उसने लिखा : वर्तमान आर्थिक और वित्तीय परिस्थितियो मे हम इंग्लैंड के उद्यम द्वारा प्रवर्तित तथा ब्रिटिश पूंजी द्वारा संचालित प्रत्येक उद्योग को आर्थिक खतरे के एक नए स्रोत के रूप मे देखने को विवश हो गए हैं (19 अगस्त 1901). 1890 मे 'केसरी' मे प्रकाशित एक लेख मे तो यहा तक घोषित किया गया कि 'विदेशी पूंजी के गुणगान करने वाला महादेव रानाडे देशद्रोही है' (कैलाक मे उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 123).

28. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 757, केसरी 22 जून (आर० एन० पी० बंब 26 जून 1897), दत्त . स्पीचेज, II, पृ० 82, एल० एम० घोष सी० पी० ए०, पृ० 781.

29 जी० एस० अय्यर रि० आई० एन० सी० 1901, पृ० 121 तथा मद्रास स्टैंडर्ड, 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901).

30 जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 132 वाचा ने 1899 मे टिप्पणी की : 'स्वदेशी पूंजी ही एकातत लाभदायक हो सकती है, वह पूंजी ही भावी पूंजी का संवर्धन करेगी ' इसकी प्रक्रिया मंद होने पर भी निश्चित अवश्य होगी (रिप० आई० एन० सी०, 1899, पृ० 59).

31 'भारत मिहिर' 17 जुलाई (आर० एन० पी० बंग, 21 जुलाई 1883). जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 682, 700 नौरोजी . स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 556 हिंदू 23 फरवरी 1900 जी० एस० अय्यर : वेलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18664 ई ए—परिशिष्ट, पृ० 2.

32. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 682

33. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ 782. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 626, मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, जून 1901).

34. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 756, 779, 789. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 257

35. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 673, 700, 739-40, 746. गोखले : वेलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18140, 18145. मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901). जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी 1901, पृ० 74. ई ए, पृ० 123, 127.
36. कर्जन . स्पीचेज III, पृ० 141.
37. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 673. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 123.
38. एच० आर०, फरवरी 1903 का संपादकीय, पृ० 193-4 तथा जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 123.
39. उदाहरणार्थ देखिए, जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 124. स्वीकृत तथ्य के लिए देखिए, स्वयं, कर्जन : स्पीचेज, पृ० 140.
40. देखिए नीचे तथा अध्याय XIII 'दि ड्रेन'.
41. यद्यपि दादाभाई नौरोजी ने इस दृष्टिकोण का अत्यत सशक्तता तथा सुस्पष्टता से विश्लेषण किया था तथापि निकासी सिद्वात के इस भविष्यवक्ता का समकालीन नेताओ ने भी व्यापक रूप से अनुमोदन किया. देखिए, नौरोजी : पावर्टी, पृ० 38, 54, 567-8, स्पीचेज, पृ० 250-1, 395-6, 614 परिशिष्ट, पृ० 7-8, इन इडिया, 2 सितबर 1904. मराठा 30 जनवरी 1881, हिंदू 30 अक्तूबर 1885, 23 फरवरी 1900. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 756-7 राय : पावर्टी, पृ० 126. गोखले, वेलवी आयोग, खड III, प्रश्न 18140, 18142, 18170, 18176. जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 107. रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 121. ई ए, पृ० 128. हितवादी 10 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 5 अगस्त 1899) स्वदेशमित्रन 22 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 26 जनवरी 1901) बंगाली 25 मई 1901; न्यू इडिया 18 नवबर 1901; मराठा 7 दिसंबर 1902.
42. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 194. बगाली 25 मई 1901; 1903 मे भारतीय राष्ट्रवादियो पर बरसते हुए लार्ड कर्जन ने कहा :

    विदेशी पूजी के भारत मे अन्न प्रवाह के विरुद्ध प्रस्तुत तर्क कि यह भारतीयो को निर्धन बनाने का साधन है तथा यह देश की सपत्ति को विदेशो मे खीच ले जाता है, मुझे तो मूर्खतापूर्ण और खतरनाक मतिभ्रम दिखाई देता है. जब ब्रिटेन ने अमरीका और चीन में अपनी पूजी प्रवाहित की तो उन देशो के वासियो ने कभी यह शिकायकत नहीं की कि उनका सत्यानाश किया जा रहा है. विदेशी सरकार द्वारा मिस्र के साधनों और नील बाधनी व्यवस्था करने पर किसी को भी उस देश पर दया नही आई. आज अपने देश के लाभों का साधन बनने जा रहे रूस के उद्योगो का विकास विदेशी पूजी तथा विदेशी मस्तिष्क द्वारा ही हुआ. अब जब अमरीका अपनी सचित पूजी, अपनी आश्चर्यजनक आविष्कार शक्ति, अपनी व्यावसायिक प्रतिभा आदि साधनों की इग्लैंड में बाढ़ ला रहा है तो हममें से कोई भी विदेशी निकासी से अपने चूसे जाने के दुर्भाग्य पर बैठकर आंसू नही बहाता (स्पीचेज, खंड III, पृ० 140-1).

43 नौरोजी . स्पीचेज, पृ० 152-3, 319, 312, 395 परिशिष्ट, पृ० 5, 7-8. पावर्टी, पृ० 34, 38, 135 दादाभाई नौरोजी और गोखले, वेलबी आयोग, खड III, प्रश्न 18168-9, 18183-4. हिंदू, 23 फरवरी 1900 और अध्याय XIII 'दि ड्रेन' पर वेलबी आयोग को प्रस्तुत विवरण में 1900 दादाभाई ने लिखा : अन्यायपूर्ण तथा निरंकुश शासनपद्धति ब्रिटिश भारतीयो को अपने ही उत्पादनो अथवा साधनो का उपभोग नही करने देती, उन्हें पूंजीविहीन तथा असहाय बनाती है, तब विदेशी पूंजपति आते हैं और विनाश की बची-खुची कसर पूरी कर देते हैं (स्पीचेज,

पृ० 382) और हमारे लिए चाहने न चाहने को कुछ नही, सारी स्थिति अनिवार्यता की है. हमारे लिए यह कोई साधारण कारोबार की बात नहो (वही, पृ० 319)

44 मराठा 30 जनवरी 1881. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 699-700, 786-825. नौरोजी : स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 57; हितवादी 10 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 18 फरवरी 1889) बंगाली 10 जून 1901. ऐडवोकेट 27 नवबर (आर० एन० पी०, यू० पी०, 29 नवबर 1902). जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 119-22, 132, 560-3 रगालय 18 फरवरी, हितवादी 20 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 28 फरवरी 1901), इडियन पीपुल 27 फरवरी 1903.

45 नौरोजी पावर्टी, पृ० 227, 567-9 स्पीचेज, पृ० 250, 382-3, 397, 615. परिशिष्ट, पृ० 7 स्पीचेज ऐट पोर्ट्समाउथ, इडिया 20 मार्च 1903, पृ० 140 पर प्रतिवेदित; अतर्राष्ट्रीय समाजवादी काग्रेस मे भाषण, इडिया 2 सितबर 1904, पृ० 116 मे प्रतिवेदित मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901). जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 127-8, 166, 268 तथा लार्ड कर्जन का बजट भाषण, एच० आर० अप्रैल 1903, पृ० 318-9. युनाइटेड इडिया, 24 फरवरी (वी० ओ० आई०, 14 मार्च 1903) दादाभाई नौरोजी ने लिखा . ब्रिटिश शासक प्रथम दर्जे के लुटेरे हैं वे प्रथम तो भारत को दीन-हीन और असहाय बना देंगे, फिर लूट के माल के कुछ भाग को अपना बताकर यहा ले आएगे और उससे पुन. भारत की भूमि और श्रम साधनो का शाषण करेंगे (पावर्टी, पृ० 568). तुलनीय जेंक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 208. इस प्रकार 19वी शताब्दी के मध्य मे इग्लैंड के निवासी बागान बधको, व्यापारिक और बैंक सबधी प्रतिष्ठानो तथा रुपयो मे दी गई ऋणराशि के भागो के ही स्वामी थे. ये सारे अधिकार अपने बच्चो को शिक्षित करने अथवा शात जीवन व्यतीत करने के लिए भारत से इग्लैंड लौटे अगरेज भारतीय अधिकारियो द्वारा वहा भी लाए गए थे ये सारे लाभ आशिक रूप से भारतीय पूजी की लूट-खसोट और आशिक रूप से भारतीयो से उगाहे राजस्व के पुर्ननिवेश के ही फल थे. ये ब्रिटिश पूजी क निर्यात से उत्पादित नहीं थे इन लाभो की आय व्यावसायिक खाते मे जुड़ती रही और फिर इससे भारत से प्रतिवर्ष आर्थिक निकासी मे स्वभावत उल्लेखनीय वृद्धि होती गई

46 नौरोजी स्पीचेज, पृ० 382-3 तथा देखिए उनकी पावर्टी, पृ० 133

47 जी० एस० अय्यर 'लार्ड कर्जन पर स्पीच', एच० आर० अप्रैल 1903, पृ० 319 तथा देखिए, नौरोजी पावर्टी, पृ० 567 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 268

48 देखिए नीचे पादटिप्पणी 50

49 इस प्रकार हमारी स्थिति बहुत अव्यवस्थित है. उस बच्चे के समान है जिसे उसके स्नेही माता-पिता मिठाई देते है परतु वह उसकी अजीर्णता के कारण उसके लिए विष का काम करती है इसी प्रकार विदेशी तत्व हमारी दुर्बल पाचनशक्ति को कुढ़ाने वाला अधिकाश में बाहर फिकने वाला और थकावट से चूर करने वाला है इस समय भारत की स्थिति यह है कि प्रत्येक दूसरे राष्ट्र के लिए स्पृहणीय इसे अपने लिए विषैला प्रभाव डालने वाला प्रतीत हाता है (नौरोजी : पावर्टी, पृ० 54)

50 नौरोजी . स्पीचेज, पृ० 615-6 1901 मे इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए बी० सी० पाल ने लिखा · 'विदेशी पूजी हमारे साधनो का शोषण कर रही है. 10 से 15 प्रतिशत की दर से लाभो को स्वायत्त कर रही है, इस प्रकार 7-10 वर्ष के भीतर वह अपने को दुगना बनाने जा रही है, देश का शोषण. इस पूंजी का देश मे पुन: निवेश हमारे ऊपर नया भार लादना होगा. इससे देश से प्राकृतिक पूंजी के निकास को निरतरता मिलेगी तथा देश की भुखमरीग्रस्त

जनता और अधिक तथा स्थाई दरिद्रता का उपभोग करेगी' (न्यू इंडिया 18 नवबर 1901). तथा देखिए, नौरोजी : पावर्टी, पृ० 38, 567, स्पीचेज, पृ० 397. परिशिष्ट पृ० 6-7 तथा अंतर्राष्ट्रीय समाज कांग्रेस मे भाषण, इडिया 2 सितबर 1904, पृ० 116. 'मद्रास स्टैंडर्ड', 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901); बंगाली 1 जून 1901; जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 128.

51. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 228. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 699, 779, राय : पावर्टी, पृ० 322, 324, गोखले, वेलबी आयोग खड III, प्रश्न 18146, 18156, 18171, 18176 जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०, 1898, पृ० 107 और एच० आर० जून 1910, पृ० 445, 447. वाचा : रिप० आई० एन० पी० 59; स्वदेशमित्रन 22 जून (आर० एन० पी० एम०, 26 जनवरी 1901), हिंदू 13 जून 1904
52. नौरोजी : पावर्टी पृ० 54, 194, 228'. एस० एन० बैनर्जी · सी० पी० ए०, पृ० 270.
53. नौरोजी . पावर्टी, पृ० 228
54 वही, पृ० 194, 228.
55 वही, पृ० 54, 194, 228.
56 हिंदू, 6 अक्तूबर 1885 तथा जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 756, 779. नौरोजी . स्पीचेज, पृ० 398
57. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 194
58 नौरोजी स्पीचेज, पृ० 634. राय पावर्टी, पृ० 322. वाचा रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 59 स्वदेशमित्रन 22 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 26 जनवरी 1901). जी० एस० अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 121.
59. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 70
60. वही, पृ० 757 नौरोजी ऐंड गोखले वेलबी आयोग, खड III, प्रश्न 18170 नौरोजी स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 7 और पादटिप्पणी 21 तथा 22 उपर्युक्त
61. जी० एस० अय्यर : इंडियन रिव्यू फरवरी 1912, पृ० 83 तथा देखिए राय . पावर्टी, पृ० 324
62. न्यू इंडिया, 26 अगस्त, 2 सितबर 1901.
63. 'स्पीच एंड पोट्‌स माउथ इन इंडिया', 20 मार्च 1903, पृ० 140
64 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 699-700 जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 107. एच० आर० अप्रैल 1903, पृ० 320 मे प्रकाशित दत्त स्पीचेज II, पृ० 82.
65. यूनाइटेड इडिया 9 जून (इडियन स्पेक्टेटर 9 जुलाई 1904). जी० एस० अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 121
66. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 699; बगाली 25 मई 1901 न्यू इंडिया 26 अगस्त 1901.
67. जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 249.
68. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 788 बगाली 1 जून 1901, 17 फरवरी 1903 जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० पी० 1902 पृ० 73-4. ई ए पृ० 127. हिंदू 13 जून 1904. केसरी 9 मई (आर० एन० पी० बब, 13 मई 1905).
69. बगाली 9 जून 1901. दादाभाई नौरोजी का जे० एन० टाटा को पत्र, तिथि 16 सितबर 1902. मसानी की रचना मे उद्धृत पूर्वोद्धृत, पृ० 448.
70. बगाली, 17 फरवरी 1903. जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 127.
71. बंगाली, 1 जून 1901

72 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 688-9

73 उदाहरण के रूप में देखिए, जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 700, हिंदू 10 अक्तूबर 1885

74 रानाडे एसेज, पृ० 186

75 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 673

76 1885 मे जोशी ने लिखा राजनीतिक दृष्टि से यदि हम इतिहास का गलत अध्ययन नही करते तो यह निश्चित है कि धन सपत्ति की ओर शक्ति का आकर्षण रहेगा तथा देश मे सुदृढ़ विदेशी व्यापारिक हित राज्य मे निश्चित रूप से अत्यत कष्टदायक सक्रिय तत्व बनेगे यह सदैव अपने निजी स्वार्थों तथा उद्देश्यो के लिए अपने वश भर शक्ति और प्रभाव का प्रयोग करेंगे तथा सरकारी निर्णयो को अपने पक्ष मे करने के लिए दबाव डालेगे (पूर्वोद्धृत, पृ० 640) तथा देखिए वही, पृ० 700, बगाली 10 जून 1901

77 मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम० 1 जून 1901) बगाली 10 जून 1901

77-ए देखिए लार्ड डफरिन का भाषण तिथि 6 नवबर 1888
'इन दायित्वो के साथ मातृभूमि के अपरिमित व्यावसायिक हितो का दायित्व भी जुड़ा है, जिनका प्रतिनिधित्व भारतीयो के महान लाभ के लिए सरकार को उधार दी गई अथवा रलवे जैसे कतिपय उद्यमो म लगाई गई 2200 लाख पौंड स्टर्लिंग की पूजी करती है हम इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि इस देश म सर्वप्रथम इस देश के हितो का सरक्षण सर्वथा उचित ही है पर ... द्वारा उन लोगो के प्रति जिन्होने सरकारी गारटी के विश्वास पर भारत के साधनो के विकास म बहुत बडी रकम लगाई है अथवा जिन्होने शाही भारतीय सरकार के निमत्रण पर अपनी पूजी का निवेश किया है, अपने दायित्व की उपेक्षा एक कानूनी अपराध होगा यही स्थिति चायबागानो और नील के उद्योगो, पटसन तथा अन्य इस प्रकार के उद्योगो मे निजी ब्रिटिश व्यापारियों द्वारा उत्पादन म निवेशित विपुल पूजी का है क्योंकि उन्होने भी इसी विश्वास पर पूजी का निवेश किया है कि भारत मे अगरेजी शासन तथा अगरेजी न्याय सुदृढ़ रहेगा' (गवर्नर जनरल का भारत सचिव को प्रेषण, स० 67 तिथि 6 नवबर 1888)

78 बगाली ने 10 जून के अक मे लिखा ब्रिटिश पूजी का देश म बढ़ता हुआ निवेश तथा उसपर अर्जित चक्रवृद्धि ब्याज ही भारत सरकार की ब्रिटिश प्रवृत्ति तथा परपराओ के पूर्ण तथा स्वतत्र विकास मे सचमुच ही बाधक है गत वर्षों से भारत सरकार की चरित्रगत यह नीति ही प्रतिक्रिया के लिए उत्तरदायी है सही कारण यह डर है कि क्यो हमारे प्रतिनिधियो का बजट निर्माण मे भाग नही लेने दिया जाता और यदि भारतीयो को यह अधिकार नही दिया जाता तो इसका परिणाम यह होगा कि भारतीय सचमुच ही विदेशी शोषको के हितो के विरुद्ध साधनो की खोज करेंगे

79 27 फरवरी 1903 इसी प्रकार बी० पी० पाल ने 'न्यू इडिया' के 2 नवबर 1902 के अक मे लिखा भारत सरकार यह दोहराते हुए स्वीकार कर चुकी है कि वह देश के प्राकृतिक साधनो के तथाकथित विकास के लिए भारत मे यथासभव अधिकाधिक ब्रिटिश पूजी लाना चाहती है इस निमत्रण के पश्चात सरकार ब्रिटिश पूजी तथा उसके अभिकर्ताओ को उनके द्वारा मागी जाने वाली सुरक्षा देने को विवश है भारतीयो को बजट के सबध मे बोलने देने के अधिकार से वचित करने का वास्तविक कारण भी यही है 'न्यू इडिया' के 11 दिसबर 1902 के अक मे उन्होने लिखा 'कहने की आवश्यकता नही कि केवल दरिद्र बगाल पर ही नहीं प्रत्युत सारे असहाय भारत पर अधिकाशत ब्रिटिश पूजी ही शासन करती है" 14 फरवरी 1903 के अक

में बंगाली ने टिप्पणी की : 'जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी को मनचाहा रूप देता है, उसी प्रकार सरकार वाणिज्य सदन के हाथ मे है और उसकी इच्छा से कार्य करती है' तथा देखिए, हिंदू 6 मार्च 1894 मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम० 1 जून 1901). बगाली, 10 जून 1901. रगालय 18 फरवरी; हितवादी 20 फरवरी; वसुमती 21 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 28 फरवरी 1903) सजीवनी 5 मार्च (आर० एन० पी० बग, 14 मार्च, 1901), जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 120-2

80. रानाडे : एसेज, पृ० 66

81. नौरोजी . पावर्टी, पृ० 34, 135, 567-8 स्पीचेज, पृ० 322, परिशिष्ट, पृ० 55-6 गोखले, वेलबी आयोग, खड III, प्र० 18170, जी० एस० अय्यर . वही, प्र० 19636, 19680-1, 19644 रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 121-2 मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901)

82. विदेशी पूजी की सहायता से किसी देश के विकास मे और विदेशी पूजीपतियो द्वारा किसी देश के साधनो के शोषण मे आकाश-पाताल का अतर है (बगाली, 25 मई 1901)

83. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 739

84 इस तर्क की सारी रूपरेखा का विकास उपलब्ध है . नौरोजी . पावर्टी, पृ० 228-9, जोशी · पूर्वोद्धृत, 673, 739; मराठा 30 अगस्त 1891, मद्रास स्टैंडर्ड 28 मई (आर० एन० पी० एम०, 1 जून 1901) जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 121-2 डी० जी० कर्वे के अनुसार, जस्टिस रानाडे भी इसी दृष्टिकोण के थे देखिए उनकी पुस्तक, रानाडे : दि प्रोफेट आफ लिबरेटेड इडिया, पृ० XXIX.

85 नौरोजी पावर्टी, पृ० 229

86 1881 मे दादाभाई ने लिखा भारत की वर्तमान उदासीनता की विशिष्ट परिस्थितियों मे अगरेजी पूजी से भारत के लाभ उठाने का असदिग्ध रूप से सर्वोत्तम साधन सरकार द्वारा कार्यों का सचालन होगा. '' भारत के निश्चित रूप से लाभान्वित होने की योजना यह होगी कि सरकार सभी प्रकार के पूजीसापेक्ष सार्वजनिक कार्यों अथवा खानो अथवा सारे ही कारोबार को अपने हाथ मे ले ले उनमे अगरेजी पूजी भले ही हो परतु अभिकरण स्वदेशी हो तथा केवल सर्वथा अपरिहार्य स्थिति मे ही योग्य यूरोपीयो को उनका प्रधान बनाया जाए (पावर्टी, पृ० 228 तथा देखिए, वही, पृ० 229. जोशी के दृष्टिकोण को देखने के लिए देखिए उनकी राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज, पृ० 672-3 तथा 746 और देखिए 'न्यू इडिया' 16 दिसबर 1901 इससे पूर्ववर्ती 'बाबे समाचार' के 18 मई 1880 के अक का दृष्टिकोण तो और भी रोचक है : 'भारत मे अभी अभी आविष्कृत सोने की खानो के विदेशी स्वामित्व पर आपत्ति करते हुए उसने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया क्योंकि देशवासी अपना समवाय बनाने मे असमर्थ हैं अत: लोकहित मे सरकार को खानों की खुदाई का कार्य अपने हाथ मे ही लेना चाहिए इसके अतिरिक्त इन खानों के लाभो का उपयोग देशवासियो पर लादे करो के बोझ को कम करने मे ही करना चाहिए (आर० एन० पी० बब, 8 मई 1880).

87. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 672-3, 698 नौरोजी : पावर्टी, पृ० 229. इसके साथ ही जोशी महोदय सरकार की प्रवृत्ति को परखने और उसके विरुद्ध विरोध प्रकट करने में अत्यत पटु थे. उन्होंने बागान जैसे उद्योगों को भारतीय निधि से और भारतीयो के व्यय तथा मूल्य पर विकसित करके विदेशी पूजीपतियों को साधारण मूल्य दर पर सौंपने की तीव्र निंदा की(देखिए पृ० 699).

और यह कि व्यवहार में सरकार भारतीयों की नही प्रत्युत विदेशी उद्यमियों की सहायता कर रही थी तथा उन्हें उपदान प्रदान कर रही थी (पृ० 825).

88. इस संबंध में एकमात्र उपलब्ध अपवाद बंगाली के .28 जुलाई 1883 के अंक का निम्नलिखित अवतरण है : न ही हमे स्पष्ट दिखाई देता है कि किस प्रकार एक सरकार दूर की कौड़ी लाने की बात छोड़कर व्यापार और वाणिज्य के विध्वंसक कानूनो को लौटाए बिना उन्हें उत्साहित कर सकती है.
89. उद्धृत : भोलानाथ चंद्र, राजा दिगंबर मित्र (दो खड) (कलकत्ता 1896) खंड I, पृ० 75.
90. मराठा 11 सितंबर 1891.
91. 1896 का प्रस्ताव III तथा देखिए प्रस्ताव XIII, 1899 का XIII 1901 का VIII.
92. जी० वी० जोशी के विचारों के लिए देखिए उनकी 'राटिग्स ऐंड स्पीचेज', पृ० 743, 750, 785-6, 807. 1885 में उन्होंने लिखा : सर्वप्रथम हमारी आवश्यकता यह है कि सरकार पूरे तौर से, दिल और दिमाग से, हमारे साथ हो. उसकी सहायता के बिना हम अपनी वर्तमान दुर्बलता तथा ना-तैयारी की स्थिति मे राष्ट्रीय प्रगति की दिशा में कुछ भी नही कर पाएंगे. इस भयंकर प्रतियोगिता के सामने, जिसके शिकार हम हैं. सरकार को राष्ट्र की सच्ची आवश्यकताओ को अवश्यमेव अभिस्वीकार करना चाहिए और मित्रतापूर्वक राष्ट्रीय उद्योगों के हित के साथ अपने को जोड़ना चाहिए (वही, पृ० 743). तथा देखिए, वही, पृ० 746; जस्टिस रानाडे के विचारों के लिए देखिए उनके निबंध, 'नीदरलैंड्स इंडिया ऐंड दि कल्चर सिस्टम', 'आइरन इंडस्ट्री पायनीयर अटैम्प्ट्स' और 'इंडिस्ट्रियल कांफरेंस' तथा देखिए, के० टी० तैलंग : 'ट्रेड ऐंड प्रोटेक्शन' (बंबई 1877) पृ० 49; 'बंबई समाचार' 8 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 9 जुलाई 1881); मराठा 14 फरवरी 1886, 22 सितंबर 1895, 18 नवंबर 1900, 30 मार्च 1902; बंगवासी 31 मई (आर० एन० पी० बंग, 7 जून 1890). मालवीय स्पीचेज, पृ० 250. जी० एस० अय्यर : वेलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18661, और 'ई ए', पृ० 264, एन० के० एन० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 138. हिंदू 21 अप्रैल 1902. वृत्तांत चिंतामणि, 15 मार्च (आर० एन० पी० एम, 15 मार्च 1900), पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 750. दत्त, ई० एच० II, पृ० XVII, स्पीचेज I, पृ० 24 सी० पी० ए०, पृ० 490-1. आर० सी० दत्त ने 1904 मे बड़ौदा के राजस्व मंत्री बनने पर सर्वप्रथम कार्य यह किया कि उन्होने निजी उद्यमियो को नए उद्योग खोलने मे सहायता का वचन दिया.' —जे० एन० गुप्ता लाइफ ऐंड वर्क आफ रमेशचंद्र दत्त (लंदन 1921) पृ० 402.
93. रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 123
94. वही, मराठा 12 सितंबर 1895, 18 जनवरी 1900, दत्त : ई० एच० I, पृ० 289. गोखले : स्पीचेज, पृ० 28.
95. भारतीय उद्योग आयोग 1916-18 का प्रतिवेदन, पृ० 2. 1880 के अकाल आयोग ने इस नीति का प्रतिपादन स्पष्ट शब्दों में किया. उसने यद्यपि देश के उद्योगीकरण की आवश्यकता पर बल दिया तथापि उसने स्वत सिद्ध सत्य के रूप में यह अनुभव किया कि राज्य के किसी भी प्रत्यक्ष हस्तक्षेप से जनता की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता. उलटे इस प्रकार के हस्तक्षेप से बहुत बड़ा खतरा यह है कि एक तो इससे व्यापार के सशक्त सिद्धांतों के प्रसार को ठेस पहुंचेगी तथा दूसरे निजी उद्यम के प्रवर्तन में भी बाधा उपस्थित होगी. ... हमारा विश्वास है कि परोक्ष उपायो, रेलवे के विस्तार तथा स्थानीय व्यापार और विदेशी वाणिज्य के विकास

आदि से ही लक्ष्य प्राप्ति होगी उद्योग की किसी शाखा विशेष को अनिश्चित सहायता देने से कोई भी लाभ नही होगा. (रिपोर्ट आफ इंडियन फैमिन कमीशन-1880, भाग II अनुभाग कंडिका, 2 तथा 3).

96. भारतीय उद्योग आयोग 1916-18 का प्रतिवेदन, अध्याय VIII तथा अनस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 210.
97. कर्जन : स्पीचेज II पृ० 164.
98. रानाडे : एसेज, पृ० 88, 165, 166
99. वही, पृ० 33, 86-7.
100. वही, पृ० 32, 89 तथा देखिए जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 743, 809.
101. रानाडे : एसेज, पृ० 165
102. वही, पृ० 94.
103. वही, पृ० 87-9, 91, 95 उदाहरणार्थ रानाडे द्वारा प्रस्तुत स्थिति का निम्नलिखित तीखा उपस्थापन देखिए : रेलवे नीति के समर्थको के लिए आपत्ति प्रस्तुत करना उचित प्रतीत नही होता क्योंकि इस सिद्धांत को स्वीकार करने का अर्थ होगा कि सरकार को रेलवे अथवा नहरों के लिए अथवा चाय, काफी उद्योगो के प्रवर्तन के लिए धन जुटाने का कोई अधिकार ही नही —(वही, पृ० 91) और देखिए, जोशी . पूर्वोद्धृत पृ० 740, 809, मराठा 18 नवबर, 1900
104. जोशी : पूर्वोधृत, पृ० 797, 812 रानाडे : एस्सेज, पृ० 91
105. जोशी : पूर्वोधृत, पृ० 797 तथा वही, पृ० 812, 826 रानाडे एसेज, पृ० 91 2, 190, 193 जी० एम० अय्यर . ई ए, पृ० 155
106. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 812.
107. वही तथा रानाडे : एसेज, पृ० 190, 193 जी० एम० अय्यर, ई ए पृ० 163 5
108. रानाडे · एसेज, पृ० 89, 92-3, 178, 193. जोशी : पूर्वोधृत, पृ० 797.
109. रानाडे : एसेज, पृ० 95. जोशी · पूर्वोद्धृत पृ० 797 दि इंडियन स्पेक्टेटर ने अपने 26 अक्तूबर 1884 के अंक में यह इच्छा प्रकट की कि सरकार इग्लैंड मे ऋण ले और भारतीयो को ऋण दे
110 रानाडे : एसेज, पृ० 95-6
111. वही, पृ० 177 तथा वही, पृ० 89, 169, 189. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 809-10 एम० बी० नामजोशी, मराठा 30 अगस्त 1891 में; द्वितीय औद्योगिक सम्मेलन पूना का प्रस्ताव, मराठा, 11 सितंबर 1891. हितवादी 10 फरवरी (आर० एन० पी० बंग, 18 फरवरी 1892) स्वदेशमित्रन, 13 अक्टूबर (आर० एन० पी० एम० 17 अक्तूबर 1903) जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 264 या गारंटी लोहा और इस्पात जैसे उद्योग के लिए विशेष रूप से आवश्यक थी क्योंकि इस उद्योग मे प्रारंभिक कतिपय प्रयोगात्मक वर्षों में लाभ की आशा नही कं जा सकती। अत: इनमे कोई पूंजीपति तब तक पूंजीनिवेश का साहस नही करेगा जब तक उसे पर्याप्त उदार रियायतों का विश्वस्त आश्वासन, प्रतिभूत रेलवे कंपनियो को पूजी पाने मे सहायक आश्वासन जैसा न मिले. (रानाडे : एसेज, पृ० 168-9)
112. मराठा 9 अगस्त 1885, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 746.
113. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 747. रानाडे : एसेज, पृ० 137.
114. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 747.
115. वही, पृ० 648, 680, 689, 747-8, 810, 826. रानाडे : एसेज, पृ० 89, 189, 193, हिंदू,

23 मार्च 1885 द्वितीय औद्योगिक सम्मेलन पूना का प्रस्ताव, मराठा 11 सितंबर 1891, मराठा 30 मार्च 1902 राय . 'पावर्टी', पृ० 143 जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 155

116 1887 की राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि वह पहले से ही अस्तित्व मे आए आदेशो पर और अधिक कठोर आचरण करके भारतीय उत्पादनो को सरकारी कार्यों के उपयोग मे लाकर उन्हे प्रोत्साहित करे... प्रस्ताव VII और देखिए, इंदु प्रकाश, 19 मई (आर० एन० पी० बंब, 15 जून 1881) बंबई समाचार 6 जुलाई (वही, 9 जुलाई 1881), बंबई क्रानिकल 19 नवंबर· हितेच्छु 23 नवंबर; गुजराती 19 नवंबर, बंबई समाचार 20 नवंबर, अखबार सौदागर 20 नवंबर (वही, 25 नवंबर 1882) लोकमित्र, 26 नवंबर (वही, 2 दिसंबर 1882), रास्त गुफ्तार 10 जुलाई (वही, 16 जुलाई 1887), ए० बी० पी०, 14 अप्रैल 1881, 23 मार्च 1882, नव विभाकर 20 जून, 25 जुलाई (आर० एन० पी० बंग 2 जुलाई, 6 अगस्त 1881); चारुवृत्त 8 जुलाई (वही, 16 जुलाई 1881), बंग 11 मार्च, 9 सितंबर 1882 काशी सार्वजनिक सभा का स्मरण प्रपत्र, 1886 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन, पृ० 451, मराठा 14 फरवरी 1886, हिंदुस्तानी 6 अक्तूबर आर० एन० पी० एन०, 8 अक्तूबर 1891) अखबारे आम 25 अक्तूबर (आर० एन० पी० एन०, 1 नवंबर 1887), केसरी 23 सितंबर (आर० एन० पी० बांबे 27 सितंबर 1890), रानाडे एसेज, पृ० 178, 189, 190, 193 के० जी० नाटू, इन मराठा 30 अगस्त 1891 मे उद्धृत द्वितीय उद्योग सम्मेलन पूना का प्रस्ताव, मराठा 11 सितंबर 1891 एस० के० नय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 74 राय पावर्टी, पृ० 39-40

117 कलकत्ता के व्यापारसंघ का 31 जनवरी 1890 का अभिभाषण, कर्जन स्पीचेज पृ० 33 पर उद्धृत, 1880 के अकाल आयोग का प्रतिवेदन उद्योग आयोग इस निष्कर्ष पर पहुचा कि भारत की औद्योगिक प्रगति को तीव्र बनाने के लिए भारत म सरकार के तथा रेलो के भडार खरीदने के उपायो म आमूल परिवर्तन किया जाना चाहिए

118 30 जून (आर० एन० पी० एन०, 6 जुलाई 1898)

119 युनाइटेड इंडिया 11 अगस्त (वी० ओ० आई० 31 अगस्त 1894), मराठा 14 फरवरी 1886. रानाडे एसेज, पृ० 189, 193 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 810

120 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 743

121. वही, पृ० 743, 813, 819-20 रानाडे एसेज, पृ० 32-3, 193 नेटिव ओपिनीयन 20 दिसंबर 1885, हिंदू 21 अप्रैल 1902, 1870 के वर्षों मे बंबई के स्वदेशी पत्रो का यह एक अत्यंत लोकप्रिय सुझाव था उदाहरणार्थ देखिए गुजरात मित्र, 22 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 27 जनवरी 1871) जामे जमशेद 21 मार्च (वही, 22 मार्च 1873) शमशेर बहादुर, 12 अप्रैल (वही, 12 अप्रैल 1873), बंबई समाचार 16 दिसंबर (वही, 22 दिसंबर 1873) 6 जून 1886 के मराठा ने सरकार से देश के खनिज साधनो के विकास को अपने हाथ मे लेने का अनुरोध किया ताकि इससे अन्य उद्योगो के खोलने मे सहायता मिले.

122 द्वितीय औद्योगिक सम्मेलन पूना का प्रस्ताव, मराठा 11 सितंबर 1892 और रानाडे एसेज पृ० 178.

123 रानाडे : एसेज, पृ० 177 जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 743. मराठा, 22 सितंबर 1895

124. अंतिम तीन उपायों की चर्चा इस पुस्तक के अन्य भागो मे की गई है.

125. गोखले : 'स्पीचेज', पृ० 70

126. आर० एन० पी० बंग, 7 जून 1890.

127. 1900 में आर० सी० दत्त ने लिखा : यह सोचना सभव है कि औद्योगिक विकास को दृष्टि मे रखकर काम करने वाली सरकार हमारी पीढी की अवधि मे ही जापान के लोगों मे प्रचलित उत्तम ढंगो से भारत के परिश्रमी और कुशल व्यक्तियो को भी परिचित कराती. परंतु अपने ही लाभों के लिए काम करने वाले विदेशी व्यापारियो तथा प्रतियोगी उत्पादको से इस उद्देश्य की पूर्ति होना कदापि सभव नही यही कारण है कि इस दिशा मे कभी कोई प्रयत्न नही हुआ. (ई० एच० I, पृ० 289) और देखिए गुजरात मित्र, 22 जन० (आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1871) राजनारायण बोस : 'स्टडीज इन बगाल रेनेसा', ए गुप्ता द्वारा सपादित (कलकत्ता 1958), पृ० 210 पर उद्धृत; भोलानाथ चद्र . एम० एम० खड 1876, पृ० 12 राय : पावर्टी, पृ० 124-5. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 125-6 जमीयुल उलुम, 28 जून (आर० एन० पी० एन०, 7 जुलाई 1897) ढाका गजट, 11 जुलाई (आर० एन० पी० बग, 16 जुलाई 1904). बहुत बड़े आशावादी रानाडे भी इस सबध मे प्रासगिक सदेह और निराशा प्रकट करने को विवश हो गए. उदाहरणार्थ, हम इस देश मे सरकार से उस प्रकार का कुछ करने की आशा नही कर सकते, जिस प्रकार फ्रास और जर्मनी की सरकारो ने अपन पोत व्यापार और चीनी उद्योगो के लिए किया है, तथा सरकार को दिए जाने वाले सामान्य करो मे से उपदान, अधिदान इन निरर्थक विवेचन मे शक्ति का प्रयोग उसका अपव्यय ही है (एसेज, पृ० 189).

128. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 780, 786, 801 दत्त ई० एच० I, पृ० 251 तथा देखिए अध्याय II

129. रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 15-16.

130. शिवनाथ शास्त्री : 'मेन आई हैव सीन' (कलकत्ता 1919), पृ० 190.

131 बिपिनचद्र पाल · 'मिमोरीज आफ माई लाइफ ऐंड टाइम्स (कलकत्ता 1932) पृ० 264 और शिवनाथ शास्त्री : पूर्वोद्धृत, पृ० 200.

132. 3 जुलाई (आर० एन० पी० बब, 9 जुलाई 1870)

133 कर्वे : पूर्वोद्धृत

134 ये अर्थशास्त्री तथा सांख्यिक राय बहादुर जी० वी० जोशी जी के नाम से जाने जाते थे

135 कर्वे . पूर्वोद्धृत, पृ० XX प्रधान ऐंड भागवत पूर्वोद्धृत, पृ० 8 रामगोपाल पूर्वोद्धृत, पृ० 13.

136 प्रधान ऐंड भागवत : पूर्वोद्धृत, पृ० 8, 10 रामगोपाल . पूर्वोद्धृत, पृ० 18

137 रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 13

138. आर० एन० पी० बब; 19 जुलाई 1873. तथा 'आर्यमित्र', 13 जुलाई (वही).

139. वही, 28 अगस्त 1875 और बोध सुधाकर 5 फरवरी (वही, 15 फरवरी 1879; सुबोध पत्रिका 20 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1879).

140 बी० के० बोस : स्ट्रे थाट्स (कलकत्ता 1919) पृ० 47. बोस ने आगे लिखा कि नागपुर के लोहारों से बातचीत कर ली गई है और वे छुरे कैंचिया बनाने को तैयार हो गए हैं. ये छुरे तथा कैंचियां इस उद्देश्य से ही उगाही गई विशेष धनराशि मे खरीदे गए और देश के विभिन्न भागों में भेजे गए. जुलाहों के करघा उत्पादन को सस्ता बनाने के लिए उनके प्रयोग में आने वाले अविकसित उपकरणों को भी सुधारने के प्रयास किए गए हैं (पृ० 47).

141. 15 दिसंबर 1874 के इंग्लिशमैन द्वारा उद्धृत बगलौर हैराल्ड, जैसा कि भोलानाथ चंद्र द्वारा प्रस्तुत एम० एस०, खंड V, 1876, पृ० 12.

142. उसी में प्रस्तुत.
143. वही, खंड II, 1873, पृ० 621.
144. वही, खंड V, 1876, पृ० 10-2.
145. वही, खंड 1876, पृ० 12.
146. बी० बी० मजूमदार : हिस्टरी आफ पालिटिकल थाट : फ्राम राममोहन टु दयानंद (1821-84) खंड I, : बंगाल (कलकत्ता 1934) पृ० 379.
147. उदाहरणार्थ : भारत मिहिर, 15 मार्च ए० बी० पी०, 16 मार्च (आर० एम० पी० बंग 25 मार्च 1876).
148. शुल्कनीति की समीक्षा के लिए देखिए अध्याय 6.
149. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 207.
150. 8 दिसंबर 1881 और 10 फरवरी 1881
151. मालवीय : स्पीचेज, पृ० 22.
152. आर० एन० पी० पी० एन०, 26 अप्रैल 1883.
153. संजीवनी, 9 फरवरी (आर० एन० पी० बंग, 16 फरवरी 1884) पत्र के संवाददाता ने आगे यह सूचना दी कि उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के निवासी, बंगाली, पंजाबी, राजपूत और मराठे, सभी सदस्य बन रहे हैं.
154. केलाक . पूर्वोद्धृत, पृ० 122.
155. बंबई मिलमालिक संघ का 1895 का प्रतिवेदन, पृ० 2.
156. संदर्भ के लिए विभिन्न संबद्ध प्रांतों के नेटिव प्रेस के संबधित सप्ताहों के प्रतिवेदनो को देखिए. 5 जून 1891 के अंक में एजुकेशन गजट ने वकालत करते हुए लिखा : भारतीय उत्पादनों की अच्छाई-बुराई की चिंता किए बिना उनके प्रति ठीक उसी प्रकार महानुभूतिशील होना चाहिए, जिस प्रकार व्यक्ति अपने माता-पिता के गुण-दोषो की चिंता किए बिना उनका आदर करते हैं.
157. मराठा, 30 अगस्त 1891.
158. ए० सी० मजूमदार : इंडियन नेशनल इवोल्यूशन (मद्रास, 1917) पृ० 188.
159. और जब श्रोताओं ने 'नही' 'नही' कहा तो लालाजी भड़क उठे और बोले : हां ! मैं कहता हूं, हां ! अपने चारों ओर देखिए, ये झाड़फानूस, ये लैंप और ये यूरोप मे बनी कुर्सियां और मेजे, चुस्त कपड़े, टोपियां, अंगरेजी कोट, स्त्रियो की टोपियां, फ्राक, चांदी से मढ़ी हुई बेंतें और आपके घरों की विलासितापूर्ण सजावट आदि, ये सब और कुछ न होकर भारत के दुर्भाग्य के उपहार हैं, भारत की भुखमरी के विजयस्तंभ हैं. आपने जो भी रुपया यूरोप के बने सामान पर खर्च किया है, वह प्रत्येक रुपया आपने अपने गरीब भाइयो से लूटा है, अपने ईमानदार कारीगरों से लूटा है जिसके फलस्वरूप अब वे बेचारे रोटी कमाने के योग्य तक नही रहे (रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 21).
160. रिप० आई० एन० सी 1894, पृ० 38.
161. इस पुस्तक का अध्याय 6 देखिए. 15 मार्च 1896 के अंक में मराठा ने लिखा : यह इस अन्याय का ज्वलंत प्रमाण है कि शिक्षित भारतीय मांचेस्टर के वस्त्रों के विरुद्ध धर्मयुद्ध का प्रचार कर रहा है.
162. मराठा 15 मार्च 1896 तथा वही, फरवरी 1896; बंग निवासी 9 फरवरी (आर० एन० पी० बंग, 15 फरवरी 1896) तथा देखिए धारावार वृत्त (6 फरवरी आर० एन० पी० बंब, 8

फरवरी 1896) अरुणोदय 16 फरवरी, ज्ञान सागर 17 फरवरी (वही, 22 फरवरी)

163. अमृत बाजार पत्रिका ने 3 फरवरी 1896 के अंक मे लिखा भारत के सभी प्रधान नगरो मे वैतनिक अभिकर्ता नियुक्त कीजिए और उन्हे सहायता के लिए सहायक दीजिए पत्रिका के अनुसार इस उद्देश्य के लिए धन सीधे मिलमालिको की जेबो से आना चाहिए और 'देशी मित्र' 20 फरवरी, नागा समाचार 15 फरवरी, अरुणोदय 16 फरवरी, ज्ञान सागर 17 फरवरी, जगदादर्श 16 फरवरी, प्रभाकर 19 फरवरी (आर० एन० पी० बग, 22 फरवरी 1896)

164 मराठा 15 मार्च 1896

165 जामे जमशेद 24 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 25 जन० 1896), मोदवृत्त 30 जनवरी और जगदादर्श 26 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1896), सुबोध पत्रिका 5 फरवरी, धारवार वृत्त 6 फरवरी, अरुणोदय 2 फरवरी (वही, 8 फरवरी 1896), मराठा 9 फरवरी 15 मार्च 1896 और महाराष्ट्र से नटिव ओपीनियन 2 फरवरी, 26 मार्च 1896, तथा दक्षिण पादटिप्पणी 161

166 आर० एन० पी० बब, 22, 29 फरवरी 1896 तथा नीचे 169 की पादटिप्पणी मे प्रस्तुत सदर्भ

167 2 मार्च 1896 के न्याय सिधु के अनुसार उस वर्ष अगरेजी कपडो के बडे मोटे मोटे गट्ठर होली की आग मे फेके गए, आर० एन० पी० बब, 7 मार्च 1896

168 जगद्हितेच्छा 7 मार्च (आर० एन० पी० बब 14 मार्च 1896)

169 बबई के गृह (पुलिस) सामान्य विभाग के विशेष शाखागृह द्वारा लिखित हिस्ट्री आफ मि० बी० जी० तिलक अक्तूबर 1890, प्राग 29 (डिपाजिट) पृ० 11

170. देखिए, ए० बी० पी० 5 फरवरी 1896 सजीवनी 1 फरवरी (आर० एन० पी० बग 8 फरवरी 1896) नारसिंहिर 3 फरवरी (वही 15 फरवरी 1896) बग निवासी 9 फरवरी (वही), महचर 11 मार्च (वही 21 मार्च 1896) सजीवनी 14 मार्च (वही) ढाका गजट 23 मार्च (वही 28 मार्च 1896) बगाल बिहार ग हेराल्ड 11 अप्रैल (आई० एस० वी० ओ० आई०, 17 मई 1896) बिहार म उ [illegible] दीपिका 22 फर० (आर० एन० पी० बग 18 अप्रैल 1896) उडिया और नामसवार 7 अप्रैल (वही 23 मई 1896) सवाद्वर्तिका 1 मित० (वही, 14 नवबर 1595) उडेसा और मद्रास मे स्टैडर्ड 23 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई०, 10 मई 1896) मद्रास मे हिन्दुस्तानी 12 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 19 फर० 1896), नागरी नीरद 13 फरवरी (वही, 26 फर० 1896), रहबर 24 फर० (वही 4 मार्च 1896, नजमल हिंद, 29 फरवरी अजमने हिंद 7 मार्च और जमाना, 5 मार्च (वही, 11 मार्च 1896), अलमोडा अखबार 9 मई और उत्तर-पश्चिम प्रातो तथा अवध से नसीमे आगरा 7 मई (वही, 12 मई 1896)

171 दक्षिण ए० बी० पी०, 14 नवबर 1898 अखबारे आम, 30 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 28 अगस्त 1897), नसीम आगरा, 15 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 21 जुलाई 1897) रियाजुल अखबार 28 नवबर (वही 6 दिसबर 1898), सुरमाए-रोजगार, 24 अप्रैल (वही, 10 मई 1899), भारत जीवन 26 जून (वही, 5 जुलाई 1899) और 17 जुलाई (वही, 22 जून 1901), सजीवनी 14 नवबर (आर० एन० पी० बब 26 जुलाई 1902), प्रजाबधु 7 सितबर (वही, 13 सितबर 1902), पैसा अखबार 15 मार्च (आर० एन० पी० पी०, 29 मार्च 1902), बगाली 12 मार्च, 27 सितबर 1902, मराठा 17 अगस्त 1902 सूर्योदय प्रकाशित, 18 मई (आर० एन० पी० एम०, 21 मई 1904)

172. 26 जून (आर० एन० पी० एन० 5 जुलाई 1899)

173 14 नवबर (आर० एन० पी० पी० बग, 23 नवबर 1901)
174 आर० एन० पी० पी०, 29 मार्च 1902
175 रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 125
176 इडियन डेली मिरर, 22 दिसबर (आर० एन० पी० एन० 28 दिसबर 1901) भारत जीवन ने 14 नवबर के अक मे इस सुझाव का बड़ा जोरदार समर्थन किया (आर० एन० पी० एन० 15 नवबर 1898) सजीवनी ने 12 दिसबर 1901 के अक मे लिखा हिंदुओ मे पवित्र अवसरो पर रेशम पहनने की प्रथा है मातृभूमि की पूजा से बढ़कर कोई पवित्र अवसर नही और मातृ-भूमि की पूजा के स्थल पडाल मे विदेशी सामान से बनी वेषभूषा वाले व्यक्ति को कभी प्रविष्ट नही होना चाहिए (आर० एन० पी० बग, 21 दिसबर 1901)
177 सी० पी० ए० मे 636
178 मजूमदार पूर्वोद्धृत, पृ० 188
179 बख्शी नैमीराम, रिप० आई० एन० सी० 1898 पृ० 125
180 मराठा 17 अगस्त 1902
181 बगाली 26 सितबर 1902. वस्तुत वह एक तरह का स्वदेशी भडार 1896 मे ही खोल चुके थ (रागन पूर्वोद्धृत, पृ० 121)
182 प्रजाबधु, 18 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 24 जून 1903) और 15 फरवरी (वही, 21 फरवरी 1903).
183 यह काफी मजेदार बात है कि स्वदेशी को लोकप्रिय बनाने के लिए स्वदेशी उत्पादको द्वारा कीमतें घटाने का सुझाव किसी ने भी नही दिया जबकि स्वदेशी उत्पादक वस्त्र उद्योग मे काफी ऊचे लाभ कमा रहे थ
184 सक्षेप तथा पुनरावृत्ति न होने देने के लिए हम यहा इस विषय पर उपलब्ध असख्य सदर्भों को प्रस्तुत नही कर रहे हैं अधिकाश तो ऊपर प्रस्तुत किए ही जा चुके हैं.
185 और मद्रास स्टैंडर्ड', 23 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई० 10 मई 1896)
186 17 मई 1896
187 उदाहरणार्थ, 14 मार्च 1896 का अक (आर० एन० पी० बग, 21 मार्च 1896)
188 सी० पी० ए०, पृ० 636-7
189 उदाहरणार्थ देखिए, बी० के० बोस पूर्वोद्धृत प० 47 भोलानाथ चद्र . एम० एम०, खड V 1876, पृ० 10-2 सजीवनी, 22 जून (आर० एन० पी० बग, 28 जून 1884) नसीमे आगरा, 7 जून (आर० एन० पी० एन० 12 जून 1889) ए० बी० पी०, 12 जुलाई 1891 पूना वैभव, 10 मई (आर० एन० पी० बब, 16 मई 1891) भारत जीवन, 26 जून (आर० एन० पी० एन० 5 जुलाई 1899)
190 मराठा 13 मार्च 1881, बृहद समाचार 22 जून (आर० एन० पी० बगाल, 27 जून 1891), मराठा 15 मार्च 1896 प्रजाबधु 7 सितबर (आर० एन० पी० बब 13 सितबर 1902) बगाली 26 सितबर 1902
191 और भी देखिए, भोलानाथ चद्र एम० एम०, खड V 1896, पृ० 32 बगाल रिनेसा मे राजनारायण बोस का उद्धरण इन पृ० 210, मराठा 9 फरवरी 1896. एडवोकेट, 1 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, दो फरवरी 1901)
192. सी० पी० ए०, पृ० 636.

193. देखिए, सुबोध पत्रिका 20 अप्रैल (आर० एन० पी० बब०, 26 अप्रैल 1879), मराठा 13 मार्च 1881, ए० बी० पी० 10 फरवरी 1881. सोम प्रकाश, 23 जन० (आर० एन० पी बंग०, 28 जनवरी 1882) आनन्द बाजार पत्रिका, 27 मार्च (वही, 8 अप्रैल 1882) भारत मिहिर, 6 मई (वही, 27 मई 1882) पूना वैभव, 10 मई (आर० एन० पी० बब, 16 मई 1891) हिंदुस्तानी, 11 अप्रैल (आर० एन० पा० एन० 18 अप्रैल 1789), मराठा 8 जुलाई 1894 1896 मे परवर्ती तथा अधिक प्रचड अभिव्यक्ति के लिए देखिए पृ० 130 ऊपर सी० वाई० चिंतामणि की इडियन पालिटिक्स सिस दि म्यूटिनी (इलाहाबाद, 1937) मे एक रोचक विवरण इस प्रकार है : वी० के० मधोक वायसराय की कौंसिल मे वस्त्र उद्योग पर आयात शुल्क हटाने के विरुद्ध अपना विरोध प्रकट करने वाले दिन घर के बुने वस्त्र पहनकर वहा पहुचे.

194. एम० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 617 और देखिए, सजीवनी 21 जून (आर० एन० पी वग, 28 जून 1884) समय, 22 जून (वही, 27 जून 1885) सहचर, 11 मार्च (वही, 21 मार्च 1896) सुरमा ए रोजगार, 24 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 10 मई 1899) गौहरे हिंद, 26 जुलाई (आर० एन० पी० यू० पी० 2 अगस्त 1902) पैसा अखबार, 15 माच (आर० एन० पी० पी०, 20 मार्च 1902).

195. 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 11 अप्रैल 1891)

196 2 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 8 अगस्त 1894. वास्तविक तथ्य यह है कि 'मोदवृत' ने लोगो मे स्वदेशी वस्त्रो के प्रयोग का, सरकारी कचहरियो मे दीवानी या फौजदारी मुकदमे न ले जाने का तथा अपने आपको सरकारी नौकरी से स्वतत्र रखने का अनुरोध करके एक प्रकार से असहयोग आदोलन की ही पूर्वघोषणा कर दी थी

197. 1 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 2 फरवरी 1901)

198 तिलक रामगोपाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 231

199. नौरोजी · पावर्टी, पृ० 207

200 यह दृष्टिकोण मिलमालिक तथा उस समय काग्रेस के सयुक्त सचिव और 1901 मे राष्ट्रपति डी० ई० वाचा के 11 तथा 18 मार्च 1896 के टाइम्स आफ इडिया के अको मे प्रकाशित दो पत्रो मे भली प्रकार व्यक्त किया गया है इसके अतिरिक्त उनके लेख, दि इकानामिक हेरेसीज आफ दि स्वदेशी मूवमेट, इकोनामिक्स इडियन रिव्यू, सितबर 1903 और यू० पी० कुकिल्लय का 'दि स्वदेशी मूवमेंट, इडियन रिव्यू, दिसबर 1903, 'दि डिस्कशन आफ दि प्वाइट आफ व्यू आफ दि क्रिटिक्स आफ दि स्वदेशी मूवमेट दैट फालोज' ऊपर की स्रोत सामग्री पर आधारित है. और देखिए · कैसरे हिंद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1896) और फोनेक्स, 1 अप्रैल (आई० एस० बी० ओ० आई० 17 मई 1890) वाचा ने लिखा . सकल्प देशप्रेम का सूचक है परतु जब इस सकल्प को कार्यरूप मे परिणत किया जाएगा तो यह खोखला तथा निरर्थक दकियानूसी विचार मात्र बनकर रह जाएगा

201. कुकिल्लय : पूर्वोक्त स्थल, पृ० 763.

202. वाचा · टाइम्स आफ इडिया, 12 मार्च 1896

203. कुकिल्लय : पूर्वोक्त स्थल, पृ० 763.

204. वाचा · पूर्वोक्त स्थल, पृ० 11 मार्च 1896.

205. इकानामिक्स, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 541.

206. वाचा : पूर्वोक्त स्थल, 11 मार्च 1896.

207. वही.

208. इसका स्वदेशी पक्षीय उत्तर यह था : माग आने दीजिए, आपूर्ति हो जाएगी. (ए० बी० पी०, 12 जुलाई 1891) और देखिए, मराठा, 12 अप्रैल 1896, मद्रास स्टैंडर्ड, 23 मार्च (आई० एस० बी० ओ० आई०, 10 मई 1896).

209. उदाहरणार्थ, बगवासी 2 मई (आर० एन० पी० बग 9 मई 1891), तथा राजीवनी 14 नवंबर (वही 23 नव० 1901)

210 कुकिल्लय पूर्वोक्त स्थल, पृ० 763.

211. 3 मई 1901 का भाषण 'बबई मिलमालिक सघ का 1901 का प्रतिवेदन', पृ० 53 बबई मिलमालिक सघ का अध्यक्ष राष्ट्रवादी नेता नही था अत 22 मार्च 1899 का सघ की साधारण वार्षिक बैठक मे उसने अपने भाषण मे और अधिक स्पष्ट शब्दो मे कहा हम मिलमालिक समता लाने वाले सीमाशुल्क को भारत और इग्लैड मे प्रतियोगिता की दृष्टि से भारत के लिए घातक मानकर उसके विरुद्ध कोई शिकायत नही रखते है जैसाकि सघ पहले ही स्पष्ट कर चुका है, लकाशायर के बढिया कपडे मे और भारत के मोटे कपडे मे किसी प्रकार की प्रतियोगिता का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है, इसमे कोई सदेह नही कि सीमाशुल्क ने हथकरघा जुलाहो को सरक्षण प्रदान किया है और इसके फलस्वरूप हम देखते है कि जहा हथकरघे वर्ष प्रतिवर्ष सूत की खपत का उत्तरोत्तर बढाते जा रहे है, वहा 1896 के पश्चात बबई मे मशीनी करघो द्वारा खपत मे कोई बढोतरी नही हुई (बबई मिलमालिक सघ 1898 वर्ष का प्रतिवेदन, पृ० 85)

212 वाचा पूर्वोक्त स्थल, 18 मार्च 1896 1903 मे नौरोजी द्वारा वाचा को लिखा पत्र मसानी मे उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 450

213 इस बात पर कदाचित अधिक विस्तृत विश्लेषण की आवश्यकता है 19वीं शती के अंतिम पचीस वर्षों मे भारतीय वस्त्र उद्योग ने लकाशायर के कपडे के व्यापार को धीरे धीरे देश के मोटे वस्त्र के क्षेत्र से निकाल फेंका परतु यह अभी तक उत्तम तथा मध्यम कोटि के वस्त्रो का स्तरीय उत्पादन काफी मात्रा मे नही कर पाया था बीसवीं शताब्दी के प्रारभ मे स्वदेशी हथकरघा उद्योग मोटे कपडे के उत्पादन मे तथा लकाशायर के उद्योग मध्यम तथा उत्तम वस्त्र के उत्पादन मे भारतीय मिलो से प्रतियोगिता की स्थिति मे थे अत एक खास समय मे तो स्वदेशी आदोलन ने हथकरघा उद्योग के ही फूलने-फलने मे योग दिया प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात स्थिति अवश्य मौलिक रूप से बदल गई थी उस समय भारतीय मिले मध्यम ही नहीं, उत्तम कोटि के वस्त्र का भी पर्याप्त मात्रा मे उत्पादन करने लगी थी —तुलनीय, परिमल राय . इंडियाज फारेन ट्रेड सिस 1870, लदन 1914, पृ० 184).

214 201 से 205 सख्या तक की पादटिप्पणियो मे उद्धृत सदर्भ

अध्याय 4

विदेश व्यापार

पिछली अर्धशताब्दी की अवधि मे भारत के विदेश व्यापार का उल्लेखनीय विकास हुआ है और यह देश की समृद्धि मे वृद्धि का एक महत्वपूर्ण निदर्शन है। —जान स्ट्रैचे

भारत के व्यापार को प्राकृतिक आधार पर प्रतिष्ठित करना होगा और वह प्राकृतिक आधार यह होगा कि देश की बढ़ती जनसंख्या के सभरण की विशाल और अपरिमित मंडी मुख्य रूप से उसके स्वदेशी उत्पादनो के लिए ही सुरक्षित रखनी होगी तथा अवशिष्ट अतिरिक्त सामग्री का यहा अनुत्पन्न तथा अनुत्पादित सामग्री के विनिमय के रूप मे निर्यात करना होगा। ऐसा करने से ही निकट भविष्य मे भारत को पूर्ण आर्थिक विनाश की चेतावनी देने वाले सकट को टाला जा सकता है।

—जी० सुब्रह्मण्य अय्यर

19वी शताब्दी मे, विशेषत: 1850 के उपरात भारत ने विदेश व्यापार मे बहुत उन्नति की जिससे देश मे वास्तव मे ही व्यापारिक क्रांति का श्रीगणेश हो गया। आयात और निर्यात के परिणाम तथा मूल्य उल्लेखनीय गति से बढ़ गए।[1] उनके विस्तारक्षेत्र व स्वरूप मे मौलिक परिवर्तन आया। 19वी शताब्दी की अवधि मे भारत के विदेश व्यापार के विकास का विवरण पृष्ठ 127 की तालिका मे प्रस्तुत है :[2]

19वी शताब्दी के दौरान भारत के आयात-निर्यात के ढाचे में भी आमूल परिवर्तन हुए। 1813 से तथा पूर्व अतीत काल मे ही जहां भारत सदैव निर्मित वस्तुओ का निर्यातक तथा मूल्यवान धातुओं और विलास उत्पादनो का आयातक था वहां वह क्रमश: विशेषत: 1858 के पश्चात प्रमुख रूप मे कृषि संबंधी कच्चे सामान तथा खाद्य पदार्थों का निर्यातक तथा निर्मित सामान का आयातक बन गया। परंपरागत निर्यात की वस्तुओं, सूती और रेशमी वस्त्र तथा धागे, का स्थान धीरे धीरे कृषि के विविध उत्पादनों, प्रमुख रूप से कच्ची कपास और पटसन, चाय और काफी, अफीम, तिलहन तथा गेहूं और चावल ने ले लिया। 1881-82 में तथा 1904-5 में कुल निर्यात का क्रमश: 17 प्रतिशत तथा

26 प्रतिशत भाग गेहूं और चावल का था। आयातित सामग्री मे सूती धागों और सूती कपडों, धातुओ, मशीनों, चीनी तथा तेलो का अनुपात बढ़ने लगा। 1881-2 मे तथा 1904-5 मे आयातित सूती उत्पाद ही कुल आयात का क्रमशः 24 तथा 39 प्रतिशत थे।

मूल्य लाख रुपयों में

वार्षिक औसत	आयात			निर्यात
"	1834-5 से	1838-9	7,32	11,32
"	1849-50 "	1853-4	15,85	20,02
"	1859-60 "	1863-4	41,06	43,17
"	1869-70 "	1873-4	41,30	57,84
"	1879-80 "	1883-4	61,81	80,41
"	1889-90 "	1893-4	88,70	108,67
"	1899-1900 "	1903-4	110,69	136,59
वर्ष	1904-5 "		143.92	174,14

टिप्पणी इन [illegible] में सरकारी [illegible] के कोश के आयात-निर्यात सम्मिलित हैं

पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत के विदेश व्यापार मे यह एक नई तथा सुखद प्रवृत्ति देखने को मिली कि एक ओर भारत मे लोहा, इस्पात, मशीने तथा कारखानों के धंधे निरंतर बढने लगे तथा दूसरी ओर आधुनिक मशीनो के उत्पादन के रूप मे सूती वस्त्रो और पटसन के मालों का निर्यात एक बार पुन निर्यात व्यापार मे स्थान पाने लगा तथा निरंतर उत्तरोत्तर महत्व प्राप्त करने लगा।

1856 के बाद सात वर्षों की संक्षिप्त अवधि को छोडकर सारी 19वी शताब्दी मे भारतीय विदेश व्यापार का एक उल्लेखनीय परंतु सामान्य तत्व था, आयात के मुकाबले निर्यात का निरंतर बढता हुआ आधिक्य। इस तत्व ने भारतीय आर्थिक चिंतन मे महत्व-पूर्ण भूमिका निभाई।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण

विदेश व्यापार के विषय ने भारतीय नेताओ के चित्त को सक्रिय रूप से आकृष्ट अथवा प्रबलता से उत्तेजित नही किया क्योंकि इसका एक आंशिक कारण यह था कि यह आंदोलन का विषय नही बन सका, हां उन्होने इस प्रश्न पर चिंतन किया तथा उसके विविध पक्षों पर अपने विचारों की अभिव्यक्ति भी की परंतु इसे अपने आप मे महत्वपूर्ण नहीं समझा। उन्होने अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य मे कोरी वृद्धि को अपने आप मे एक लाभ तथा विचारणीय विषय नही माना। उनके अनुसार विदेशी व्यापार केवल इस रूप मे महत्वपूर्ण था कि यह भारत की अधोलिखित केंद्रीय आर्थिक समस्याओ को प्रभावित करता था: दरिद्रता, उद्योगीकरण तथा विदेशी आर्थिक शोषण। फलतः उन्होंने विदेश व्यापार के

विस्तार की विशुद्ध रूप में, अन्याय पक्षों से विच्छिन्न रूप में अथवा उसके लाभदायक अथवा घातक प्रभावों के सैद्धांतिक आधारों पर प्रशंसा अथवा निंदा करने से इंकार कर दिया।

ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों तथा प्रवक्ताओं के अनुसार विदेश व्यापार का द्रुति विकास देश के हित मे था। उन्होंने प्राय: इसे जनता की बढती हुई सपन्नता के प्रत्यक्ष प्रमाण बताया।[3] भारतीय राष्ट्रवादियों ने कुल मिलाकर इस धारणा को स्वीकार नही किया। कुछ एक ने तो इस विश्वास पर ही शंका व्यक्त की कि भारत का बिदेश व्यापार, विशेषत· देश के आकार और जनसंख्या के अनुपात में संपन्न स्थिति में है अथवा तीव्रगति से विकास कर रहा है। 1887 मे ही दादाभाई नौरोजी ने निर्देश किया कि यूरोप के देशों के व्यापार के साथ और यहां तक कि ब्रिटिश राज्य के अन्य भागों के व्यापार के साथ भारत के विदेश व्यापार की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रिटिश भारतीय व्यापार कितना निकृष्ट है। आर० सी० दत्त, डी० ई० वाचा तथा जी० एम० अय्यर ने इस तथ्य पर उचित ध्यान दिया।[4] किसी भी रूप मे उन्होंने विदेश व्यापार के विस्तार को अपने आप मे समृद्धि का लक्षण अथवा हर्षोल्लास का कारण नही माना। सामग्री के अंतर्राष्ट्रीय विनिमय के सामान्य लाभों को न नकारते हुए भी उन्होंने व्यापार की कुल मात्रा तथा मूल्य मे वृद्धि को वास्तविक आर्थिक प्रगति के विश्वस्त सकेतक अथवा विशुद्ध हित मानना स्वीकार नही किया। उनके अनुसार यूरोप के व्यापारिक देशो के सबध मे यह मापदंड सही हो सकता है क्योकि वहां व्यापार की मात्रा राष्ट्रीय आय की स्थिति का पर्याप्त अंश मे संकेतक होती है परतु भारत अभी तक व्यावसायिक दृष्टि से स्वतत्र नही था अत· उसके सबंध मे यह कसौटी लागू नही होती थी। वस्तुत इस देश के सबध मे इस प्रकार के तर्कों का निस्सार, मिथ्या तथा भ्रामक होना ही अधिक सभव था।[5] अर्ध सत्य होने के कारण यह और भी अधिक भयकर था। 'बगाली' ने 7 दिसंबर 1872 के अक मे लिखा: 'केवल ऊची सख्याओ अथवा साधारण सक्रियता से व्यापार की सुदृढ़ता का अनुमान उसी प्रकार मिथ्या सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार किसी व्यक्ति की आयु, लिंग तथा अन्य परिस्थितियो पर ध्यान दिए बिना केवल उसके शरीर मे रक्त-सचार को सक्रियता मे ही उसके उत्तम स्वास्थ्य की कल्पना।[6] राष्ट्रीय भौतिक उत्पादनो के विकास की दृष्टि मे इसपर विचार करते हुए जी० वी० जोशी ने 1884 मे बल देकर कहा: बढा हुआ विदेश व्यापार अपने आप मे घरेलू उत्पादनो में वृद्धि का सूचक नही। व्यापार तो उत्पादनो का केवल वितरण करता है और प्रत्येक स्थिति मे आवश्यक रूप से संभरण की सृष्टि नही करता।[7] इस विषय को आर० सी० दत्त ने सही ढंग से पकडा और आसन्न भूत का हवाला देते हुए कहा:

> 1881-82 मे लार्ड रिपन के शात और अपेक्षाकृत समृद्ध शासनकाल में भारत के कुल आयात और निर्यात 830 लाख स्टर्लिंग पौंड था। 1900-1 के संकट और दुर्भिक्ष के वर्षों मे कुल निर्यात और आयात 1220 लाख पौंड थे। जो भारत को जानता है अथवा जिसने भारत के विषय में कभी कुछ सुना है, निश्चित रूप से कहेगा कि भारत 1900-01 की अपेक्षा 1881-82 मे अपेक्षाकृत अच्छी स्थिति मे था और अधिक संपन्न था।[8]

भारत के विषय में विदेश व्यापार और राष्ट्रीय समृद्धि के बीच के सरल, सहेतुक संबंध को असंगत बनाने वाले तत्व कौन से थे ? इस विषय में भारतीय नेताओं के मत मे एक कारण यह था कि भारतीय विदेश व्यापार का विस्तार स्वाभाविक, स्वतंत्र तथा आर्थिक गतिविधि के सामान्य पथ के रूप में नही हुआ था। अधिकारियों द्वारा इसे अस्वाभाविक रूप से बढावा दिया गया था। अत. इस रूप मे वह लादा हुआ, कृत्रिम, अस्वस्थ तथा आर्थिक दृष्टि से अशक्त था।[9] हम आगे चलकर इसी अध्याय मे भारतीय नेताओ के विचारो के अनुसार भारतीय विदेश व्यापार के विशद रूप तथा ढग का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करेगे परतु यहा सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि उनके दृष्टिकोण का आधार यह विश्वास तथा आस्था थी कि भारत के भाग्य मे केवल कृषि सबंधी कच्चे सामान का उत्पादन नही बदा है। भारत को ऐसा देश बनाना अप्राकृतिक है क्योकि इस देश की धरती थोडी और पूर्ति सीमित है जबकि श्रम बडी मात्रा मे उपलब्ध है।[10]

द्वितीय, उनकी धारणा थी, इस सबध मे यह उनके मत को सर्वाधिक सुनिश्चित रूप देने वाला तत्व था, कि किसी देश के विदेश व्यापार की महत्ता का निर्णय उसके स्वरूप के विश्लेषण के द्वारा ही सही रूप मे किया जा सकता है। उसकी उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता का निर्णायक तत्व उसकी कुल मात्रा न होकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमयित सामान का स्वरूप तथा राष्ट्रीय कृषि और उद्योग पर उस विनिमय का प्रतिफल ही अपेक्षाकृत अधिक प्रबल निर्णायक तत्व है। वस्तुतः मौलिक प्रश्न यही था।[11] उन्होंने व्यापार के आकडो की पूरी जाच की और निर्यात की कच्चे सामान के प्रति तथा आयात के उत्पादित सामान के प्रति विध्वसक तथा सपीडक प्रवृत्ति और उसके फलस्वरूप देश के क्षरित होकर केवल ब्रिटेन के कृषिक उपकरण के रूप मे रह जाने की ओर सकेत किया।[12] उनमे से बहुतो को इस बात मे कोई सदेह नही था कि भारत की विपन्नता प्राकृतिक शक्तियो का दुष्परिणाम न होकर इग्लैड की भारत के प्रति निर्धारित नीति का ही कुफल था।[13] यहा यह उल्लेखनीय है कि प्रमुख राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो ने 19वी शताब्दी के अतिम दशक की अवधि मे स्वतः अनुभव किए जाने वाली व्यापार की विरोधी प्रवृत्ति, आधुनिक उद्योगो के उत्पादनो के निर्यात तथा मशीनरी, मिलो की सामग्री और कच्चे सामान के आयात, की ओर उचित ध्यान दिया।[14] उन्होने प्रवाह के इस परिवर्तन का स्वागत किया परंतु इस प्रवृत्ति की क्षुद्रता, सीमा तथा मंदता की ओर भी सकेत किया।[15] आगे चलकर इसी अध्याय मे तथा 'टैरिफ', 'करसी', 'एक्सचेंज' आदि अध्यायो में दिखाया गया है। वास्तव मे विदेश व्यापार मे यही एक प्रवृत्ति थी जिसे राजनीतिक दबाव के द्वारा प्रोत्साहित करने का उन्होने प्रयत्न किया।

तृतीय, उनके विश्वास के अनुसार व्यापार के फूलने-फलने की परिस्थितियां और वातावरण भी विषय के अनुरूप अर्थात विचारणीय तत्व थे। क्या देश को व्यापारिक स्वायत्तता प्राप्त हुई है ? किसने इस व्यापार का संचालन किया है ? किसने इस व्यापार पर नियंत्रण रखा है ? और किसने इन लाभों का उपभोग किया है ? क्या व्यापार राष्ट्र की अवशिष्ट और विलास सामग्री का हुआ है अथवा राष्ट्र के उपयोग के आवश्यक सामान का ? व्यापारातर क्या था और उसके क्या कारण थे ? किसी निश्चित निर्णय पर पहुंचने

से पूर्व उन्होंने इन कुछ एक जिज्ञासाओं को उठाया और उन पर विचार विमर्श किया।[16]

उनका निष्कर्ष यह था कि विदेश व्यापार के विस्तार को अपने आप मे आर्थिक नीति का लक्ष्य नही बनाया जा सकता। सर्वप्रथम इससे देश को होने वाली लाभ-हानियो पर विचार करना आवश्यक है। इसके लिए सतर्क विचारको को व्यापार के कुल आकडो से भी आगे जाना पडा तथा उनके उद्गम की, उनके स्वरूप की तथा राष्ट्र-हित पर उनके प्रभाव की जाच करनी पडी।

विदेश व्यापार के लाभ

भारतीय नेताओ ने कुल मिलाकर विदेश व्यापार के व्यापक रूप से प्रचारित उपयोगी स्वरूप को भारतीय जनसाधारण के सदर्भ मे मानने से इकार कर दिया। उन्होंने तो इसके विपरीत यह मत अभिव्यक्त किया कि समष्टि रूप मे भारतीय जनता पर विदेश व्यापार का हानिप्रद प्रभाव ही पड़ा है।[17] उन्होन सर्वप्रथम बढते नियातो के स्वरूप और उनके समघातको की जाच की और उसके आधार पर उन्हे अपने आप मे पनपती राष्ट्रीय समृद्धि का सकेत अथवा देश की सपदा जुटाने का साधन मानने से इकार कर दिया। उन्होंने इस तथ्य की ओर सकेत किया कि आशिक रूप से उत्पादित सामग्री के अतिरिक्त आयातो के भुगतानो के लिए कृषि सबधी कच्चे माल का निर्यात बढता जा रहा था और इनमे जनसाधारण के हितो को भयकर क्षति उठानी पड रही थी[18] तथा आशिक रूप मे गोरे शासको को विध्वसक रूप से महगी नौकरिया देने के रूप मे विदेशी शासन के बढते खर्चे का चुकानपिड रहा था।[19] उन्होन इस दूसरे तत्व (महगी नौकरियो) की सारी 19वी शताब्दी मे और उसके उपरात आयात पर निर्यात की बढती अधिकता के सदर्भ मे जाच की। 1834-5 से 1838-9 तक के पाच वर्षों की अवधि मे निर्यात और आयात मे वार्षिक अतर औसत चार करोड रुपए था। 1869-70 से 1873-4 की अवधि मे 16 5 करोड 1899-1900 से 1903-4 की अवधि मे 25.9 करोड तथा 1904-5 मे 30 2 करोड रुपए था।[20] भारतीय नेताओ ने भारतीय निर्यात और आयात के मध्य की लगभग अप्रतिबाधित तथा सतत वृद्धिशील 'गहरी खाई' का[21] देखते हुए व्यापार के इस प्रकार के अनुकूल व्यापारातर पर हर्षोत्फुल्ल होने के बदले इस दुदमनीय रूप से चिताग्रस्त करने वाला तत्व बनाया।

राष्ट्रवादियो द्वारा इस समस्या का विश्लेषण उनकी उल्लेखनीय अर्थशास्त्रीय बुद्धिमत्ता का एक अत्यत रोचक प्रमाण प्रस्तुत करता है। उनका कथन था कि आयात की अपेक्षा निर्यात की अधिकता वास्तव मे अतिरिक्त निर्यात नहीं थे अर्थात यह अनुकूल व्यापारातर नही था। यदि ऐसा होता तो इसमे सोना-चादी अथवा सामग्री अथवा उपयोगी पदार्थों के आयातो मे वृद्धि होती। वस्तुत उनके अनुसार यह एक विचित्र प्रक्रिया थी, विचित्र अनुकूल व्यापारान्तर था, जिसका आयात की अपेक्षा देश का बदले मे किसी रूप मे कोई लाभ न पहुचाने वाले निर्यात की अधिकता पर और बकाया राशियो के भुगतान पर कोई समाधान ही नहीं था। दादाभाई नौरोजी ने आयात की अपेक्षा निर्यात की अधिकता की ओर सकेत किया जिसके अतगत न तो चादी के रूप मे और न ही किसी

सामग्री के रूप में 1871 में अथवा उससे पूर्व किसी प्रकार का आयात हुआ है।[22] अपने 'दि पावर्टी आफ इंडिया' लेख में उन्होंने अपने भाव और भी अधिक सफलता के साथ अभिव्यक्त किए। भारत के पक्ष में व्यापारातर और भारत को इससे कभी न कभी लाभ प्राप्ति के सिद्धात पर विश्वास करने वाले लेखकों की प्रताडना करते हुए उन्होंने कहा : वे महानुभाव इस तथ्य की ओर ध्यान न देते हुए ही प्रतीत होते है कि निर्यात से प्राप्ति के रूप में भारत को एक भी पाई का अथवा सामान का लाभ नही होना और इस प्रकार देश को आयात में घाटा ही उठाना पडता है।[23] 1898 की भारतीय करेंसी कमेटी को अपना विवरण प्रस्तुत करते हुए दादाभाई और भी अधिक क्रुद्ध थे। उन्होंने वर्तमान स्थिति में भारतीय विदेश व्यापार को 'भारत पक्षीय व्यापारातर' कहना विशुद्धतम रूप में भाषा का दुरुपयोग करना घोषित किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कहा 'यह न तो कोई व्यापार है ···और न ही व्यापारातर।' भारत की प्रतिवर्ष 400,000 000 रुपयों की विपुल राशि के बदले उसे कभी एक कौडी तक निजी धन के रूप मे वापस नही मिलेगी।[24] रानाडे को छोडकर भारतीय नेताओं मे अर्थशास्त्रियों ने बल देकर तत्काल यह निर्देश किया कि निर्यात की अधिकता से भारत को किसी प्रकार का व्यापारिक लाभ नही होगा।[25]

निर्यात की अधिकता को फिर किस रूप मे ग्रहण करना चाहिए? इस दुखद असगति का वास्तविक अभिप्राय क्या है? वस्तुत भारतीय नेताओं के अनुसार निर्यात की अधिकता निम्नलिखित कारणो से आवश्यक और निश्चित सी ही थी

(क) भारत पर विदेशो के बढते ऋणो के व्याज के भुगतान के लिए,[26]

(ख) इंगलैंड मे बढते हुए गृह प्रभारों को अथवा ब्रिटेन म भारत सरकार के खर्च जुटाने के लिए,[27] तथा

(ग) ब्रिटिश प्रशासको, व्यापारियो, सैन्य मालिको, और पूजीपतियो का इस देश के बढते आर्थिक शोषण के फल के रूप मे उगाहे अपने लाभ और बचत को अपनी जन्मभूमि में भेजने की व्यवस्था के लिए।[28]

सक्षेप मे निर्यात और आयात का अतर विदेशी शासको द्वारा भारत पर बढाए जाने वाले कर शुल्क का ही निदर्शन था।[29] निर्यात की अधिकता मे राष्ट्रीय सपत्ति की वृद्धि मे ही बाधा नही उपस्थित होती थी प्रत्युत य भारत मे इंग्लैड को 'सपत्ति की निकासी' अथवा स्थानातरण के रूपविशेष भी थे। सोना-चादी उपलब्ध न होने से निधि के इस एक पक्षीय स्थानातरण का सामग्री का रूप ग्रहण करना ही था। अत भारत द्वारा अनुकूल व्यापारातर को बनाए रखना अनिवार्य था अथवा दूसरे शब्दो मे निर्यात की अधिकता को भारतीय विदेश व्यापार के एक महत्वपूर्ण तत्व, न्यूनाधिक रूप से कानून का रूप लेना ही था। विदेश व्यापार, निर्यात की अधिकता तथा भारत से संपत्ति की निकासी के निकट संबंध पर सर्वप्रथम 1871 मे दादाभाई नौरोजी ने ही टिप्पणी की।[30] कालातर मे 1895 मे उन्होंने इसे इस प्रकार स्पष्टत. प्रस्तुत किया : अधिकांशत यही एक अकेला तरीका है जिससे ब्रिटिश भारत के निर्धन लोगों द्वारा विदेशियो के निरतर बढते हुए कमर-तोड़ करों की व्यापार-लाभो की तथा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की व्यवस्था की

जाती है।[31] अन्य भारतीय अर्थशास्त्रियों ने भी इस तथ्य का अनुमोदन किया।[32] अपनी सामान्य सूक्ष्म दृष्टि से जोशी महोदय ने संकेत किया कि निर्यातों की अधिकता कुल संपत्ति की निकासी को अंशत: ही प्रदर्शित करती है[33] तथा अधिक निर्यातों के रूप में इंग्लैंड को वार्षिक विशाल भुगतानों की विवशता हमारे निर्यातों के बहुत बड़े भाग को अनिवार्य स्वरूप प्रदान करती है।[34] आर० सी० दत्त ने इस दूसरे पक्ष पर बल देते हुए लिखा : गृह अधिकारों के लिए भारत से आर्थिक निकासी देश को सभव आयातों की अपेक्षा अधिक निर्यातों के लिए बाध्य करती है।[35] इस प्रक्रिया की अनिवार्यता पर भी उन्होंने प्रकाश डाला। उन्होने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया कि भारत को 1896-1900 के दुर्भिक्ष के वर्षों मे भी इस अधिकता को बनाए रखना पड़ा था।[36] उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट किया कि इस समय निर्यातो की अधिकता तथा कर शुल्कों के बीच संबंध अप्रत्यक्ष होने के कारण लोकदृष्टि से छुपे हुए है परतु अतीत मे सदैव ऐसा नही था। ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकार के दिनो मे कंपनी के निवेश साम्राज्य के राजस्व से खरीदे जाते थे अत: उन दोनों के बीच के सबंध न केवल प्रत्यक्षगोचर थे प्रत्युत उच्च अधिकारियों द्वारा सार्वजनिक रूप से अभिस्वीकार भी किए जाते थे।[37]

अमृत बाजार पत्रिका ने, जिसके संपादक मोतीलाल घोष महत्वपूर्ण राजनीतिक आर्थिक विषयों को सहज बुद्धिमत्ता के स्तर पर लाने मे सिद्धस्त थे, अपने 11 जनवरी 1896 के अंक मे संपत्ति की निकासी और निर्यातों की अधिकता मे घनिष्ट तथा अपरिहार्य संबध का विश्लेषण एक अन्य विधि से करते हुए स्पष्ट रूप मे घोषित किया : वर्तमान विदेश व्यापार के अभाव में विदेशी शासक भारत के शोषण को जारी नही रख सकते थे। अतर्राष्ट्रीय विनिमय के अभाव मे भारत सचिव और सिविल तथा सेना अधिकारी भारत का रुपया ही ले पाते। भारत निरंतर अपने रुपए से रिक्त अवश्य होता जाता परंतु उसकी उपज दूसरे शब्दो मे उसकी वास्तविक संपत्ति उसके अपने बच्चो के पोषण के लिए उसके अपने पास ही रहती।[38]

निर्यातो की अधिकता के इस विशिष्ट पक्ष से संपत्ति की निकासी स्वत. सिद्ध थी, अत अधिकाश भारतीय नेता इस स्वस्थ दिखाई देने वाले अर्थ-व्यवस्थापरक सिद्धात पर प्रसन्न न हो सके। उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार प्रकट की कि कृषि संबधी कच्चे माल के बढ़ते हुए निर्यात कृषिपरक सपन्नता के सूचक न होकर यह सकेत करते है कि कृषि जगत की बहुसंख्यक जनता और अधिक अधीन बनती जा रही है। जनता पर अतिरिक्त बोझ पड़ता जा रहा है तथा देश की सामग्रीगत शून्यता और फलस्वरूप दरिद्रता बढ़ती जा रही है।[39] परतु क्या यह उस उदार विदेशी शासन का मूल्य नहीं है जिसने देश और देशवासियों के लिए इतना कुछ किया है जैसाकि हम 'ड्रेन' अध्याय मे दिखाएंगे। राष्ट्रवादियों ने मूलत: इसको स्वीकार करने से इकार कर दिया। इसके अतिरिक्त उनका मत था कि यह सर्वथा एक भिन्न विषय है। जी० वी० जोशी ने लिखा : और दृष्टियों से यह कुछ भी क्यों न हो, व्यापारिक दृष्टि से कहना चाहे तो इसे हानि ही माना जाएगा और देश के सामान्य व्यापार-खाते मे देश के लाभ-हानि के इस सतुलन पर ध्यान देना ही होगा।[40]

राष्ट्रीय नेतृत्व ने इसके उपरात आयात, जो प्राय अपने समग्र रूप मे ही उत्पादित सामग्री का था, के समधान की जाच-पडताल की। जहा ब्रिटिश अधिकारियो के अनुसार बढ़ते आयात देश की बढती क्रयशक्ति के सूचक थे, वहा भारतीय नेताओं की दृष्टि मे ये भारत के उत्पादनो को क्षतिग्रस्त करने का सबसे बड़े कारण थे, राष्ट्रीय हानि के स्रोत थे तथा राष्ट्र की आर्थिक और औद्योगिक मृत्यु के प्रबल सूचक थे। विषय का पूर्ण अध्ययन करने पर उन्होने टिप्पणी की कि आयातित सामग्री न तो देशी उत्पादनों को बढाती है, न उनकी शेष पूर्ति करती है, न ही नई आवश्यकताओ तथा नए उद्योगों को जन्म देती है अथवा तकनीकी ढग मे कहना चाहे तो यह किसी नई तथा प्रभावी माग की सृष्टि नही करती है।[11] इसके विपरीत उन्मुक्त व्यापार की अनुकूल स्थिति मे अपने सस्तेपन तथा स्पर्धा की योग्यता के कारण वह भारत के अपने बाजार मे ही भारत की हस्तनिर्मित सामग्री को अपदस्थ कर रही है।[12] भारतीयो ने आयात व्यापार के इस पक्ष पर 1831 मे उस समय ध्यान दिया जब लगभग सौ प्रतिष्ठित भारतीयो ने ब्रिटिश सरकार से एक प्रार्थना के रूप मे शिकायत की कि आपके प्रार्थियो ने यह पाया है कि बंगाल मे ग्रेट ब्रिटेन के वस्त्रो के प्रवेश ने हमारे व्यापार को लगभग नष्ट करके रख दिया है। इसके आयात मे प्रतिवर्ष वृद्धि स्वदेशी उत्पादनो के लिए हानिकारक है।[13] इसके उपरात 1873 मे भोलानाथ चद्र ने देशवासियो को आयात के सबध मे इस प्रकार सावधान किया कि भारतीय उद्योग और गृहनिर्मित उत्पादनो के विनाश को शिखर पर पहुचाने वाले इन आयातो को वरदान न समझकर अभिशाप ही मानना चाहिए।[14] 1897 मे आर० सी० दत्त ने टिप्पणी की कि भारत मे आयात के मूल्य मे वृद्धि का वास्तविक परिणाम यह निकला है कि भारत के शिल्पकला उद्योग की इग्लैंड के भाप और मशीनी उद्योग से असम प्रतियोगिता मे मृत्यु ही हो गई है। 1903 मे गोखले ने घोषणा की कि विदेशी सामग्री का प्राय प्रत्येक आयात देश की क्रयशक्ति मे किसी प्रकार की वृद्धि करने का सूचक होना तो दूर रहा, वह तो उल्टे स्वदेशी उत्पादनो का ही केवल तदनुरूप अपदस्थ करने का सकेतक है। जी० सी० अय्यर ने इस समस्या का विश्लेषण और अधिक आर्थिक दृष्टिकोण से किया भारत मे अतर्राष्ट्रीय विनिमय शेष पूर्ति तथा गृहविनिमय को सुदृढ नही करता। यह गृहविनिमय का स्थान लेता है अतः इस प्रकार यह उसका सर्वनाश करता है।[15]

जी० वी० जोशी आयात व्यापार के एक अन्य परोक्ष दुष्प्रभाव नगर शिल्प कलाओं के विध्वस को प्रकट करने मे समर्थ हुए। उनके अनुसार यह एक ओर उपभोग सामग्री के सचार की सीमा का तथा भीतरी मंडी के क्षेत्र का विस्तार करता था और दूसरी ओर जनता के एक पूरे वर्ग को बेकार करके अपरिमित सस्ते श्रम का आयोजन करता था। इससे ही विदेशी पूजी देश मे घुसने तथा उत्पादक उद्योगो की स्थापना मे समर्थ हुई है और अब इन उत्पादक उद्योगो से देश के दूरतम भाग मे भी हमारे अपने उत्पादक उद्योगों का विध्वंस लगभग पूरा होने जा रहा है।[16]

भारतीय उत्पादनों के अपदस्थ करने की प्रक्रिया की सुस्पष्ट ढंग से रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए भारतीय नेताओ ने कच्ची कपास के निर्यात तथा सूती वस्त्रों के आयात

को प्रायः ही उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया।[47] उन्होने यह भी सिद्ध किया कि विविध आयातित सामग्री एक व्यापक क्षेत्र लिए हुए थी जिसमे चटाइयो, माचिसो से लेकर मिलो के सामान और मशीने तक सम्मिलित थी, छातो से लेकर बत्तिया, पुस्तके, जूते और खिलौने सम्मिलित थे। यह सब स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि यह पतन कितना विस्तृत तथा गहरा है।[49]

इस प्रकार वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि उत्पादित वस्तुओ के बढते आयातो का लोकहित पर घातक प्रभाव था। उसने विविध और सम्यक रूप से सतुलित राष्ट्र की अर्थव्यवस्था के विध्वस की स्थिति उत्पन्न कर दी थी।[10] उसने लाखो हस्तशिल्पियो तथा कलाकारो को अपने परपरागत कला-कौशल को छोडने के लिए बाध्य करके उन्हे तथा उनकी सततियो को न केवल अपनी आजीविका के साधनो से वचित किया था प्रत्युत आजिविका के लिए एकमात्र अवशिष्ट और अनिश्चित स्रोत कृषि पर निर्भर रहने को भी विवश कर दिया था। बढते आयातो का प्रत्यक्ष परिणाम यह था कि अधिक से अधिक लोग कृषि की ओर धकेले जा रहे थे और इस प्रकार देश का ग्रामीकरण किया जा रहा था। देश की कृषि पर उत्तरोत्तर भार बढता जा रहा था। और देश की राष्ट्रीय आय के स्रोत सकुचित होते जा रहे थे तथा देशवासी दरिद्र से दरिद्रतर होते जा रहे थे।[50]

राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो ने विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से भी आयातो के परिणाम पर विचार किया। उन्होने उत्पादित वस्तुओ के आयात और कच्चे माल के निर्यात पर समुच्चय रूप मे विचार किया और इस निर्णय पर पहुचे कि दोनो को एक साथ देखने पर दुगनी क्षति स्पष्ट हो जाती है। सामग्री के निमाण से कृषि सबधी कच्चे माल के उत्पादन की ओर परिवर्तन की प्रवृत्ति का अर्थ यह हुआ है कि भारत अपेक्षाकृत उच्च से निम्न आर्थिक गतिविधि की ओर मुड गया है, समृद्ध उद्योग की अपेक्षा कम लाभकारी कृषि को अपनाने लगा है, कुशल कारीगरी मे अप्रशिक्षित मजदूरी की ओर अनिवार्य परिवर्तन से उसका श्रम न्यून उत्पादक हो गया है और इस सबके फलस्वरूप देश को पारिश्रमिको और लाभो मे अपरिमित आर्थिक हानि उठानी पडी है।[51] यह सत्य है कि उपभोक्ता के रूप मे अपेक्षाकृत उत्तम और सस्ता माल उपलब्ध होने से भारतीय लाभ मे अवश्य रहे है परतु उत्पादक और श्रमिक के रूप मे इसका जो मूल्य उन्हे चुकाना पडा है, वह सचमुच ही बहुत अनुचित रूप मे महगा है।[52] इसके विपरीत यदि इस समय बाहर भेजे जाने वाले कच्चे माल को देश मे ही रखा जा सके तो उससे हमारी अपनी पूजी और अपने श्रम को नए विकास के अवसर उपलब्ध होगे।[53] सघोलकर महोदय के निम्नलिखित वक्तव्य मे इस विषय पर राष्ट्रवादी स्थिति सक्षेप मे इस प्रकार से विश्लेषित है

> यदि कच्चा माल दूसरे देशो को भेजने और तैयार माल वहा से मगाने के बदले यह देश कच्चे माल का स्वय ही उत्पादन करता तो कच्चे माल और तैयार वस्तुओ के बीच के अतर का मूल्य समग्रत. इस देश मे ही रहता और इस प्रकार वह रुपया देश के पारिश्रमिक मे, कोष मे और पूजीपतियो के लाभो मे पर्याप्त वृद्धि करता।[54]

इससे पूर्व जी० वी० जोशी महोदय ने 1888 मे अपने एक लेख, 'दि सी बोर्न ट्रेड आफ ब्रिटिश इंडिया' मे इस हानि की स्थूल सांख्यिकी संगणना की चेष्टा की और इस परिणाम पर पहुचे कि एक स्थूल तखमीने के अनुसार हमारी व्यापारिक स्थिति के कारण हमे पारिश्रमिको और लाभो मे प्रतिवर्ष 58 करोड रुपए की हानि उठानी पडती है। उन्होने बताया कि तीन प्रतिशत की ब्याज दर से पूजीकृत यह राशि 1600 करोड रुपए हो जाती थी।[55] उन्होने यह भी निर्देश किया कि यह प्रक्रिया स्वदेशी संघटक प्रतिभा को अपदस्थ करने और सुचारु रूप मे प्रगतिशील प्रत्येक समुदाय की रीढ मध्यवर्ग को दुर्बल बनाने के रूप मे शोचनीय प्रभाव डालती है।[56]

यह बड़ आश्चर्य की बात है कि इस समय के भारतीय लेखको ने ग्रामीण और नागरिक हस्तशिल्पो हस्तकलाओ के विनाश की निंदा तो की परन्तु उनमे मे किसी ने भी देश के ग्रामीकरण तथा देश की कृषि के व्यवसायीकरण के फलस्वरूप देश की कृषि और उद्योग के घनिष्ट संबंधो के टूटने पर दुख प्रकट नही किया। इसी पुस्तक के द्वितीय अध्याय मे हम इसके कारणो का विश्लेषण वस्तुत. पहले ही कर चुके है कि भारतीय नेता बढती उपयोगी वस्तुओं के प्रसार के अथवा इस रूप मे भीतरी मडी के विस्तार के विरुद्ध नही थे। आधुनिक उद्योगो, जिनका ग्रामीण आत्मनिर्भरता पर विनाशक प्रभाव पडना अवश्यंभावी था, के प्रबल समर्थक होने के कारण वे आतरिक व्यापार के अथवा व्यापार के तद्रूप विकास के विरुद्ध नही थे। वे तो केवल व्यापार के वर्तमान ढाचे के ही विरुद्ध थे। उनकी आपत्ति विदेशी उत्पादनो के ग्रामीण मडी पर एकांगी अधिकार के विरुद्ध थी जिसने स्वदेशी उद्योग को अपनी ही मडी मे तथा स्वदेशी उद्योगपतियो को अपने लाभो मे और उजडे हुए कारीगरो को नए उद्योगो मे आजीविका कमाने के अवसरो मे वंचित कर दिया था। फलत उन्होने आधुनिक उद्योगीकरण के प्रवर्तन की प्रक्रिया की ओर अधिक ध्यान देते हुए अर्थव्यवस्था की आत्मनिर्भरता को विनाश से बचाने की ओर कोई विशेष ध्यान नही दिया।

अधिकाश राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री तो इस दावे को भी स्वीकार नही करते थे कि कृषि उत्पादनो के बढते हुए निर्यातो और उनके फलस्वरूप उनके मूल्यो मे वृद्धि से कृषिकार्य मे सलग्न पुरुषो का ही नही, किसी प्रकार का लाभ पहुचा है। उदाहरणार्थ, 1873 मे भोलानाथ चद्र ने लिखा : भले ही उसके (भारतीय खेतिहर) के चारो ओर व्यापार का बहुत विस्तार हुआ है परतु अभी तक वह उसी प्रकार दीनहीन, अपमानित तथा अवहेलित है, जैसा वह पहले कभी था। वह अभी तक न तो साहूकार के पजो से मुक्त है और न ही गंदगी असहायता तथा दुर्भाग्य से छुटकारा पा सका है।[57] सर्वप्रथम, कई वर्षो तक कुछ अर्थशास्त्रियो की तो यह धारणा रही कि कृषिसामग्री के मूल्य घट रहे है, बढ नही रहे अथवा अधिक से अधिक स्थिर है।[58] हा अधिकाशत मान्य धारणा यह रहा कि कृषि-उत्पादनो की ऊची मागो और मूल्यो के लाभो का एक बहुत बडा भाग वास्तविक कृषक को नही मिल पाता क्योकि उस बेचारे को ऊचे और आवधिक राजस्वो अथवा मालिए के भुगतान के लिए, साहूकार के मूलधन अथवा उसपर ब्याज की माग की पूर्ति के लिए तथा जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ के संभरण के लिए फसल काटने के समय ही

प्रतिकूल शर्तों पर अपनी उपज को बेचना पडता है। वास्तविक लाभ तो राली ब्रदर्स जैसे विदेशी निर्यात व्यापारी तथा उनके भारतीय बिचौले उठाते है, जो किसानो की उपज को अत्यत सस्ते दामो पर खरीदते है।[59] लाभो का दूसरा बडा भाग उन ऋणदाता साहूकार व्यापारियो को मिलता है जो किसान की फसल कटने से पहले ही उसे अपने पास गिरवी कर लेते है।[60] केवल थोडे-बहुत समर्थ किसान ही स्वेच्छा से और लाभ पर अपनी उपज को बेच पाते है और उनमे भी बहुत सारे वास्तव मे छिपे साहूकार ही है।[61] इसके अतिरिक्त सरकार और जमीदार भूराजस्व और मालिगु मे वृद्धि द्वारा लाभ के एक अन्य भाग को हडप लेते है।[62] इस प्रकार ग्रामीण जनसख्या का एक बहुत बडा भाग, कृषि श्रमिक और छोटे किसान, तो अपने उत्पादन से अधिक अन्न का उपभोग करता है। अत वह तो प्रत्येक स्थिति मे मूल्यवृद्धि से विशुद्ध रूप मे हानि उठाने वाला है।[63] इससे भी बढकर जी० वी० जोशी ने हिसाब लगाया है कि यदि यह स्वीकार कर भी लिया जाए कि विदेश व्यापार के फल का एकमात्र भोक्ता किसान है तो भी यह लाभ कृषि जनता को प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति तुच्छ रूप से चार आने बैठता है और वह साधारण लाभ आजीविका, उद्योग की हानि जैसे अपरिमित अहितो के मूल्य पर ही मिलता है जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है।[64]

राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया कि विदेश व्यापार के बहुत से चाय, नील, काफी तथा पटसन पदार्थ जैसे सौदे विदेशी पूजी और प्रयत्न के विनियोजन के ही परिणाम थे। अत विदेशी पूजीपति ही इनसे लाभ उठाते थे तथा वे लोग इनके आयातो तथा उत्पादनो से होने वाले सभी लाभो मे से भारतीयो की श्रमवृत्ति के रूप मे उनका भाग छोडकर अवशिष्ट सारे लाभ इस देश से अपने देश को ले जाते थे।[65] यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि रानाडे ने समकालीन लगभग सभी राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो द्वारा स्वीकृत तर्क को मानने से इकार कर दिया तथा इसके फलस्वरूप उन्हे भारत को कृषि सबधी कच्चे माल के उत्पादक देश मे बदलने की नीति के विकल्प के रूप मे डच ईस्ट इडीज की सास्कृतिक प्रणाली को आदर्श मानने की एक विचित्र भूल करनी पडी।[66] वे यह देखना भूल गए कि ईस्ट इडीज के बागानो पर पूर्ण विदेशी नियत्रण और स्वामित्व ने इडोनेशिया के लोगो के उद्योगो का न केवल अवमूल्यन कर दिया था प्रत्युत स्वदेशी पूजीपतिवर्ग के विकास को अवरुद्ध करके वहा की जनता की स्थिति भारतीयो की स्थिति से बदतर कर दी थी।

प्रासगिक रूप मे कुछ भारतीय लेखको ने स्थिति के इस पक्ष पर भी ध्यान दिया और वे इस परिणाम पर पहुचे कि भारतीय आयातो का बहुत बडा भाग या तो भारत मे रहने वाले विदेशियों की अथवा थोडे बहुत अगरेजनुमा स्वदेशी लोगो की दिन प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति के काम आता है अथवा विदेशी उद्यमो और रेलवे के काम आता है अथवा सरकार की आवश्यकताओ की पूर्ति के काम आता है।[67] सवसाधारण द्वारा उपभोग मे लाया जाने वाला आयात मात्रा मे स्वल्प था और उसका मूल्य प्रति व्यक्ति कुछ पैसे ही बैठता था।[68]

उनमे से कुछ ने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत अपने फालतू माल का जिसकी

लाभप्रद रूप मे देश मे खपत नहीं हो सकती, निर्यात नही करता, प्रत्युत निकासी के दबाव के अंतर्गत उमे गेहूं, चावल, कपास, जूट तथा तिलहन का निर्यात करना पडता था, और यह स्थिति देश को भयंकर रूप से खाद्यान्न मे वचित कर रही थी। बदले मे उसे सुविधा और विलास की बहुत सारी वस्तुएं लेनी पडती है, जिनके बिना आसानी से निर्वाह किया जा सकता है।[69] बगवासी ने इस दृष्टिकोण को 6 जुलाई 1889 के अक मे अत्यंत सशक्त ढंग मे इस प्रकार प्रकट किया

> हमे अपने चेहरे की दमक को बढाने के लिए पाउडर और घुघराले बालो की चमक बढाने के लिए सुगधित क्रीम की आवश्यकता नही है। हमे अपने लोगो को आकर्षक सुगध, घडियो और छडियो से मोहित करने की कोई इच्छा नही है।...हम रेशमी और ऊनी वस्त्रो मे चमकना नहीं चाहते।...हम आपकी शेरी और शेपेन मे अपनी पापी प्यास नही बुझाना चाहते।...हम आपके वस्त्रो द्वारा अपनी लज्जा ढकना नही चाहते। यदि भारतीय जुलाहो की जाति का समूल नाश हो जाए तो हम उस स्थिति मे वृक्षो की छाले भी ओढ लेगे और यदि वृक्ष की छाले भी उपलब्ध न हुईं तो हम नगे ही रह लेगे परन्तु आपके वस्त्रो का प्रयोग नही करेगे। हम आपसे केवल यही प्रार्थना करते है कि हमे अपने ही हाल पर छोड दीजिए और जीवित तो रहने दीजिए।

राष्ट्रवादियो ने विदेशियो द्वारा तथा स्वय देशवासियो द्वारा सचालित व्यापार के बीच आधारभूत अतर को भी स्पष्ट किया। उन्होने इस स्थिति पर शोक प्रकट किया कि भारत का व्यापार अधिकाशत विदेशी तथा बरतानवी व्यापारियो के हाथ मे था जो जी० वी० जोशी के अनुसार उसके लाभो का बहुत बडा, 90 प्रतिशत भाग हडप जाते थे तथा इस देश से बाहर ले जाते थे।[71] सारे व्यापार तत्र के अतिरिक्त हमारे सारे वाणिज्य का सपूर्ण सचालन विदेशी नियत्रण और निदेशन के अधीन था। रेल्वे, जहाजरानी, बैंक बीमा कपनिया यहा तक कि एक सीमा मे सामान की गाव मे समुद्र तट पर पहुचने की आतरिक गतिविधि सभी कुछ विदेशी प्रयत्नो के ही अधीन था।[72] जी० वी० जोशी महोदय के अनुसार भारतीय व्यापार पर विदेशी नियत्रण के फलस्वरूप भारत को प्रतिवर्ष लगभग 26 करोड रुपयो की हानि उठानी पड रही थी। यह राशि गृहप्रभारो की उस कुल राशि से अधिक थी जिसकी हम प्राय शिकायत किया करते है।[73] कुछ नेताओ ने इस तथ्य की ओर भी सकेत किया कि सारी हानि को पूर्ण रूप से न सही आशिक रूप से रोकना तो भारतीयो के अपने हाथ मे है ही। विदेशी व्यापार के प्रति उपेक्षा बरतने के लिए स्वदेशी व्यापारियो की प्रताडना करते हुए तथा उन्हे प्रबोधित करते हुए नेताओ ने कहा कि उन्हे विदेश व्यापार के लाभ के साथ साथ उसके समुचित भार को भी वहन करना चाहिए।[74] जोशी की टिप्पणी थी कि निस्सदेह हमे इस कार्य मे न तो तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता है और न ही पूजी की विशाल राशि की पुनरपि यह अततः हमारा अपना ही तो कार्य है।[75] इसके अतिरिक्त बबई के खोजा और पारसी इस क्षेत्र मे अग्रदूत बनकर चीन और पूर्वी अफ्रीका के बाजारों मे पहले से ही कार्य प्रारंभ कर चुके है। उनका उदाहरण निश्चित रूप से अनुकरणीय है तथा निर्यात-आयात अभिकरणों की स्वदेश में और

विदेशों में स्थापना करनी चाहिए। इसी प्रकार बंबई, मद्रास और कलकत्ता में स्वदेशी स्वामित्व वाली कम से कम तीन पोत कंपनियों की स्थापना करनी चाहिए।[76] उत्तर-पश्चिमी प्रांतों तथा अवध के प्रमुख भारतीय राष्ट्रवादी समाचारपत्र 'एडवोकेट' ने राष्ट्रवादी स्थिति को संक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया :

> यदि हमें अपनी सभ्यता से ही अपना मूल्याकन करना है तो हमे स्वदेशी पजी मे भारतीय प्रतिभा द्वारा प्रबधित भारतीय वाणिज्य का सचालन करना होगा। यदि संभव हो तो हमे भारतीयो के स्वामित्व वाले पोतों पर ब्रिटिश झडा लहराते हुए व्यापार करना होगा। यह एक स्वप्न, यहा तक कि दिवास्वप्न हो सकता है परतु भारतीयों की एक राष्ट्र के रूप मे प्रगति के लिए इससे कम कुछ भी अपेक्षित नही।[77]

अंत मे, हमे इस तथ्य को ध्यान मे रखना है कि थोडे से राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री अप्रतिकृत फालतू निर्यात के उत्पादन की विवशता के फलस्वरूप भारत के विरुद्ध जाने वाली व्यापार शर्तों के सिद्धात को समझने मे भी सफल हो गए। इस सबध म उनका पथ प्रदर्शन दादाभाई नौरोजी द्वारा 1870 मे उद्धृत जान स्टुअर्ट मिल की इस उक्ति ने किया : विदेशो को नियमित भुगतान करने वाला देश न केवल भुगतान की गई धनराशि को खोता है प्रत्युत कम लाभदायक शर्तों पर विदेशी सामग्री के बदले अपने उत्पादनो के विनिमय की बाध्यता के रूप मे और भी बहुत कुछ गवाता है।[78] बहुत सारे भारतीयो ने मिल के इन वचनो को प्रतिध्वनित अथवा पुन उच्चरित किया। उदाहरणार्थ, 1888 मे जोशीजी ने अत्यत तीव्र स्वर मे टिप्पणी की अधिक निर्यातो के रूप मे इग्लैड को इतने बडे वार्षिक भुगतानो की आवश्यकता हमारे निर्यातो के बहुत बडे भाग का एक अनिवार्य चरित्र प्रदान करती है जिससे मूल्यो मे अव्यवस्था की प्रवृत्ति जन्म लेती है।[79] इसी प्रकार डी० ई० वाचा ने निर्णयात्मक स्वर मे कहा कर्जदार देश कम कीमत पर अपना उत्पादन बेचने का बाध्य होता है और इस प्रकार की परिस्थितियो मे विस्तृत निर्यातों का अर्थ राष्ट्रीय सपत्ति के विस्तृत बलिदान से कम कुछ नही।[80] अर्थशास्त्रियो के अतिरिक्त अन्यो म 'अमृत बाजार पत्रिका' न अपने 17 जुलाई 1892 के अक मे इस विषय को कडी विशदता से उजागर किया।

अनाजों का निर्यात

विदेश व्यापार के एक पक्ष, अनाजो के निर्यात, पर भारतीय नेताओ ने अपेक्षाकृत अधिक विस्तार के साथ छोटे समाचारपत्रो जैसे लोकप्रिय माध्यम से विचार प्रचार किया। राजनीतिक दृष्टि से भारत के अत्यधिक जागरूक भाग बंगाल मे ही नही, द्रुतगति से बढते अनाजो के निर्यात के प्रमुख स्रोत, उत्तर-पश्चिमी प्रांतो, अवध और पजाब मे भी इस प्रश्न को अत्यधिक मुखर स्वर प्राप्त हुआ।

माग और पूर्ति के बदलते रहने के कारण वर्ष प्रतिवर्ष अनाजो के विदेश व्यापार की मात्रा और मूल्यो मे तो विविधता है, फिर भी निम्नलिखित अको मे उसकी सामान्य प्रवृत्ति का निदर्शन प्रस्तुत है[81] :

औसत	हडरडवेट	रुपये (लाखो मे)
1882-3—1891-2	48,267,117	17,82
1892-3—1901-2	42,268,345	17 89
1904-5	102,021,341	41,11

चावल प्रमुख रूप से बर्मा से, गेहू और दालें भारत से निर्यानित की जाती थी। भारत ने 1869 मे 275,481 हडरडवेट 1873-4 मे 1,755,954 हडरवेट, 1882-83 मे 14,193,763 हडरडवेट और 1891-2 मे 32 740,000 हडरवेट गेहू का निर्यात किया।[92]

अनाजो के निर्यात के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण अनेक कारणो से अत्यत आलोचनात्मक था किंतु प्रमुख कारण यही था कि यह निर्यात ही देश मे अनाजो की दुर्लभता अकाल की स्थितियो और यहा तक कि दरिद्रता के प्रमुख कारणो मे अन्यतम थे।[93] उदाहरणार्थ, 1891 मे जिस वर्ष अकाल नही पडा था, लखनऊ के व्यग्यकुशल राष्ट्रवादी उर्दू साप्ताहिक अवधपंच ने मर्मवधी टिप्पणी की :

> इस समय देश से निर्यात किया जाने वाला अनाज वास्तव मे अनाज न होकर अकालग्रस्त देशवासियो का जीवन-रक्त है। अनाज की बोरिया अनाज से भरी बोरिया न होकर वस्तुत देश के लोगो से भरी बोरिया है, जिन्हे इग्लैड के सुसभ्य नरपिशाच उन्मुक्त व्यापार की तलवार से मारकर अपना भोजन बनायेगे।[94]

उत्तर भारत मे हिंदी के प्रमुख पत्र 'भारत जीवन' ने अपने 19 जनवरी 1900 के अक मे चेतावनी दी : 'यदि ये निर्यात न रोके गए तो समय आने पर भारत बजर भूमि बन जाएगा।[95]

राष्ट्रवादियो का विश्वास था कि अनाज का निर्यात भारत की निर्धनता और दुर्भिक्षा का कारण था क्योंकि भारत केवल अपने फालतू अनाज का ही निर्यात नही करता था प्रत्युत अपनी दिन प्रतिदिन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए निर्धारित भडार मे से ही यह निर्यात करता था। अनाजो के इस व्यापार को सभव बनाने के लिए भारतीयो को आधा भूखा रहना पडता था।[96] हितवादी ने अपने 25 जनवरी 1891 के अक मे लिखा था कि विदेशी भारतीयो के मुह का ग्रास छीन रहे है और भारतीय कृषक जनता को विदेशियो का पेट भरने के लिए अपने परिवार को भूखा मारना पड रहा है।[97] इसी प्रकार आर० सी० दत्त ने बल देकर कहा कि अनाज व्यापार के मुसकराते चेहरे के भीतर निहित तथ्य यह है कि कृषि उत्पादक देश अपने घर-परिवार और गाव को भूखा-नगा रखकर उन्हे मृत्यु के कगार पर ला रहा है।[98] यह बात इस तथ्य से भी सिद्ध होती थी कि बडे बडे अकालो मे भी अनाज का निर्यात यथावत तीव्र गति से हो रहा था।[99] अकाल के वर्षो मे निर्यात कम कर दिया गया था, ऐसा भारतीयो के अनुभव मे था परन्तु इस सबध मे भारतीयो का कथन यह था कि सामान्य वर्षो के निर्यात से पहले ही वास्तविक हानि तो पहुचाई जा चुकी थी क्योकि अनाज का फालतू अश ' सुरक्षित भडार जो अकाल के वर्षो मे कृच्छ्रता की स्थिति को बदलने मे सहायक सिद्ध होता, निर्यात द्वारा पहले ही खपाया जा चुका था।[100] भारत जैसे देशो मे जो ऋतु की विषमताओ के प्राय ही शिकार रहते है, फालतू अनाज का अनुमान तो खाद्यान्नो के घाटे के वर्षों की न्यूनता की पूर्ति की व्यवस्था

के उपरात ही लगाना चाहिए,[90] यह भारतीयों का तर्क था।

यदि भारतीय जनता के पास वास्तव मे फालतू अनाज नही है तो वे उत्पादन का विक्रय और निर्यात क्यों करते है ? वे अपने उत्पादन को दुर्दिन के लिए सुरक्षित क्यो नही रखते ? इस सबका पूर्वनिर्दिष्ट उत्तर एक ही था कि भारत का समग्र व्यापार विवशता की स्थिति मे तथा अस्वाभाविक था। सरकार को तथा साहूकार को नियत अवधि मे और नकद रूप मे बढे हुए भूराजस्व अथवा मालिए को चुकाने की आवश्यकता किसान को अपना अनाज बेचने को विवश कर देती थी। इसके साथ फालतू निर्यात बनाए रखने के साथ जुडी हुई मडी की समस्या देश को विदेशी बाजारो मे ही अपना अनाज बेचने को बाध्य करती थी।[91]

अनाज का निर्यात एक अन्य दृष्टि से भी हानिप्रद था। इसमे लोगो की सर्वथा मूल आवश्यकता की वस्तुओ के मूल्य ऊचे चढ जाते थे और इसके अपरिहार्य परिणाम थे भुख-मरी और मृत्यु।[92] काग्रेस के 1891 के नागपुर अधिवेशन मे लाला मुरलीधर ने कहा : बीस वर्ष पूर्व गेहू एक रुपए का डेढ मन और दूसरा अनाज एक रुपए का दो मन बिकता था। इसका कारण यह था कि उस समय हमारे अनाज का विदेशो मे निर्यात नहीं होता था। अब यह छ: गुना महंगा हो गया है और उसी अनुपात मे निर्धनो के लिए अपना पेट भरना छ: गुना कठिन हो गया है।[93]

इस चिंतन के फलस्वरूप राष्ट्रीय नेतृत्व के एक बहुत बडे वर्ग ने अनाजो के स्वतंत्र तथा असीमित निर्यात पर सरकार से कुछ प्रतिबध लगाने की सिफारिश की।[94] अन्य कुछ ने तो अनाजो के निर्यात पर ऊचे निर्यात शुल्क के आधान की वकालत की।[95] कुछ और लोगो ने तो यहा तक माग की कि अनाजो के निर्यात पर ही पूर्ण प्रतिबध लगा देना चाहिए।[96] 1896-98 के अकाल के वर्षों मे तो इस माग के समर्थन मे स्वर विशेष रूप से ही मुखरित हो उठा।[97] साथ ही कुछ नेताओ ने इस तथ्य को अनुभव किया कि सरकार अकाल के दिनों मे भी अनाज के निर्यातो को रोकने अथवा प्रतिबधित करने की दिशा मे कोई पग नही उठाती। अतएव उन्होंने यह तर्क देना प्रारभ किया कि सरकार की नीति ही इग्लैंड के लोगों के लिए सस्ती खाद्यसामग्री जुटाने की दृष्टि से अनाजो के निर्यात को किसी भी मूल्य पर बढाने की ही है।[98] इस प्रबल निर्यात विरोधी वातावरण के युग मे अकाल के अतिरिक्त वर्षों मे भी अनाज के निर्यात के समर्थक समाचारपत्र मुट्ठीभर ही थे।[99]

आशा के विपरीत न होते हुए भी यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि अनाजों के व्यापार मे सलग्न भारतीय व्यापारियो का दृष्टिकोण राष्ट्रीय नेतृत्व के दृष्टिकोण से विपरीत था। उन्होंने तो इस व्यापार के विस्तार का समर्थन किया तथा चावल पर लगे निर्यात शुल्क का तीव्र विरोध किया। उदाहरणार्थ इपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल के सदस्य, कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी दुर्गाचरण लाहा ने चावल पर शुल्क के आधान को आपत्तिजनक बताया और दावा किया कि इसके हटा देने से जनता का अच्छा बाजार मिलने तथा अपने उत्पादनों का अच्छा मूल्य मिलने के रूप मे भारी लाभ होगा।[100] इसी प्रकार बंगाल वाणिज्य सदन के सचिव ने 8 अप्रैल 1889 में सदन के वार्षिक सम्मेलन को

संबोधित करते हुए इस देश मे चावल के निर्यात पर लगाए गए ऊंचे शुल्को के विरुद्ध जोरदार विरोध प्रकट किया।[101]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप मे यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रवादी नेता भारतीय अर्थव्यवस्था मे विदेश व्यापार की भूमिका के मूल्याकन मे अपने समय मे काफी आगे बढे हुए थे। उन्होने मात्र अतर्राष्ट्रीय श्रमविभाजन के लाभो के प्रचलित सिद्धात को नकारते हुए इसे अपने आप मे लक्ष्य अथवा अपने आप मे ही अच्छाई मानने से इकार कर दिया। भले ही इस विषय पर उनकी टिप्पणिया भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्य पक्षो पर प्रस्तुत टिप्पणियो के समान विस्तृत नही थी[102] फिर भी उन्होंने भारत के विदेश व्यापार के केंद्रीय स्वरूप को उजागर किया तथा उसे लोकहित पर उसके सामान्य प्रभाव के सदर्भ मे ही देखा। जैसाकि हम पहले ही देख चुके है, भारतीय प्रवक्ताओ ने विदेश व्यापार के गुण-दोषो का निर्णय एकातत राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उद्योग तथा आजीविका के साथ उसके सबध तथा उनपर उसके प्रभाव के परिप्रेक्ष्य मे ही किया। इसी कारण से उन्होंने मूल रूप अथवा सिद्धात रूप से विदेश व्यापार की उपेक्षा नही की और न ही सब प्रकार के विदेश व्यापार को हानिप्रद माना। वे स्वाभाविक अर्थात देश के उद्योग, देश के हित तथा देश की आवश्यकताओ पर आधारित विदेश व्यापार के विरुद्ध नही थे। उन्होने तो केवल अवाछनीय, औपनिवेशिक स्वरूप तथा बाध्य प्रकृति के भारतीय विदेश व्यापार के विरुद्ध ही आपत्ति की। वे चाहते थे कि औद्योगिक आवश्यकता को ही विदेश व्यापार की सीमा के स्वरूप तथा दिशा के निर्धारण का आधार बनाना चाहिए न कि विदेश व्यापार की आवश्यकता को यह महत्व देना चाहिए। जी० एस० अय्यर ने 1901 के काग्रेस के अधिवेशन मे इस दृष्टिकोण को अत्यत स्पष्टता से इस प्रकार प्रस्तुत किया

> भारत के व्यापार को स्वाभाविक आधार देना ही निकट भविष्य मे भारत के पूर्ण आर्थिक विध्वस की चेतावनी देने वाली विपत्ति से उसके बचाव का एकमात्र उपाय है।[103] स्वाभाविक आधार प्रधानत यह है कि प्रथम, स्वदेशी उद्योगो के उत्पादन का विस्तृत और असीम बाजारू सभरण देश की विशाल जनसख्या के लिए सुरक्षित कर लिया जाए और फिर फालतू बचे हुए सामान का विदेशो मे निर्यात किया जाए और विनिमय मे वे पदार्थ मगाए जाए जो भारत मे पैदा अथवा निर्मित नही किए जा सकते।

इसी दृष्टिकोण की वकालत इससे पूर्व रानाडे महोदय इन शब्दो मे कर चुके थे :

> हमे प्रत्येक स्थिति मे सुसगठित सहयोग द्वारा विदेशियो से प्रतियोगिता करना सीखना है। अपनी आवश्यकतानुसार कच्चा माल विदेश से मंगाना है, यहा उसे पक्के माल का रूप देना है और अपने कच्चे माल के निर्यात की जगह हमे उसी मात्रा मे भार मे कम, कितु अधिक कीमती ऐसे माल का निर्यात करना है जो कलात्मक ढग से ढले हुए है, और हमारे औद्योगिक वर्ग को व्यवसाय प्रदान करते है।[104]

इस प्रकार भारतीय नेताओ की दृष्टि मे, उद्योग प्रधान रूप मे तथा व्यापार गौण रूप

मे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्रेरक-शक्ति था। तदनुसार उन्होंने भारत के प्राचीन विदेश व्यापार की प्रशंसा की तथा उसे उदाहरण बनाकर उसके अनुकरण का सगर्व उद्घोष किया।[105] उन्होने मशीनो और कच्चे माल के आयात और पक्के माल के निर्यात का समर्थन किया। उन्होने यहा तक स्वीकार किया कि तैयार मालों का आयात भी किया जा सकता है, यदि उस आयात की वृद्धि से भारत संपन्न हो न कि ह्रासोन्मुख और उससे देश के आर्थिक विकास मे प्रगति हो न कि अधोगति। उन्होने वस्तुत: भारत मे आर्थिक और राजनीतिक सुधारो को लागू कराने के लिए इस प्रकार की वृद्धि का प्रयोग ब्रिटिश राजनीतिज्ञो, ब्रिटिश पूजीपतियो और ब्रिटिश कर्मचारियो के आगे लुकमे के रूप मे किया। समकालीन समीक्षापत्र 'ब्रटिश जनरल' मे 1887 मे लिखे एक लेख मे दादाभाई नौरोजी ने प्रथम तो भारत के ब्रिटिश सामग्री अथवा उत्पादनो के दुर्भाग्यग्रस्त क्रेता रूप पर विलाप करते हुए भावपूर्ण शब्दो मे एक सभावना की ओर निर्देश किया

> यदि ब्रिटिश भारत ने प्रति व्यक्ति केवल एक पौड स्टर्लिंग लिया, तो इग्लैड अकेले भारत को इतना अधिक निर्यात करेगा, जितना वह इस समय सारे विश्व को निर्यात करता है (213,000,000 पौड)। यह रकम ब्रिटिश उद्योगो और उत्पादनो के लिए कितना कार्य जुटाएगी।...यदि भारत अधिकता मे ब्रिटिश उत्पादनो को खपाने म सफल होता है तो इग्लैड का और अखिल विश्व को भी कितना लाभ होगा।

और उन्होंने निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा : 'यह सब तभी होगा जब ब्रिटिश भारत को स्वतत्रता मे स्वाभाविक आर्थिक स्थितियो मे विकसित होने की अनुमति दी जाएगी।'[106] लगभग चौदह वर्षो के उपरात फिलासफीकल सस्थान ग्लासगो म भाषण करते हुए आर० सी० दत्त ने अपने श्रोताओं को इसी प्रकार का परामर्श दिया :

> हमारे और आपके हित घनिष्ठतापूर्वक परस्पर जुडे है, विरोधी नही। यदि हमारे उत्पादनो का उद्धार होता है और हमारा भारत अपनी अतीत की औद्योगिक समृद्धि को एक बार पुन प्राप्त करता है तो भारत की तीस करोड जनता आपके उत्पादनो की बहुत बडी खरीदार होगी। भारत का समृद्ध बनाने से ही आपका भारत के साथ व्यापार बढ सकता है।[107]

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय नेताओ ने समानता तथा पारस्परिक हितो पर आधारित विदेश व्यापार का ही पक्ष लिया। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि व्यापार के विकास का आधार राष्ट्रीय सपदा मे वृद्धि है न कि राष्ट्रीय सपदा मे वृद्धि का आधार व्यापार का विकास।

अत मे देश के विदेश व्यापार के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण की समीक्षा से प्राप्त एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष की ओर ध्यान दिलाना अनुपयुक्त न होगा। यह स्पष्ट है कि व्यापार के क्षेत्र मे भी भारतीय नेता व्यापार के हितो की पुष्टि न करते हुए औद्योगिक हितो के पूर्ण पक्षधर थे। विकासशील विदेश व्यापार अतत: भारतीय मडी के उद्घाटन और प्रसार मे उत्प्रेरक ही था और इस रूप मे घरेलू वाणिज्य का प्रोत्साहक था। ऐसा ही प्रभाव हस्तकलाओ और कृषि के बीच के सबंधविच्छेद के रूप मे भी स्पष्ट था। फलत: विदेश व्यापार का सहारा पाकर स्वदेशी उद्योगों के विनाश पर बहुत सारे स्वदेशी

व्यापारिक बुर्जुआ प्रतिष्ठान अस्तित्व में आ गए, फूलने-फलने तथा बहुमुखी विकास करने लगे।[108] परंतु प्रारंभिक भारतीय नेताओं ने विदेश व्यापार के बिचौलियों के पनपते वर्ग के प्रति भी कोई सहानुभूति नहीं दिखाई। उन्होंने भारतीय बाजार के खुलने, उपभोग सामग्री के विदेशी माल तथा कृषि संबंधी कच्चे माल में परिचार के बढने के फलस्वरूप बुर्जुआ व्यापारियों के लाभ उठाने के प्रश्न पर भी उनका पक्ष नही लिया। इसके विपरीत वह उन लोगों का सही सही प्रतिनिधित्व करते थे जिनकी भारत के औद्योगिक भविष्य में गहरी रुचि थी। स्पष्टतः वे वैचारिक दृष्टि से अथवा किसी अन्य रूप में पनपते बुर्जुआ व्यापारियों से संबधित नही थे, अन्य बातों के अतिरिक्त अनाजों के व्यापार के प्रति उनके दृष्टिकोण से यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है। अनाज निर्यात करने वाले प्रमुख प्रदेशों, पंजाब, उत्तर पश्चिमी प्रांत और अवध में जहां न्यूनाधिक रूप में आधुनिक उद्योगों का अभाव था और जहां विकासशील पूंजीपति अधिकांशतः व्यापारी थे और पर्याप्त सीमा तक अनाजों के निर्यातों पर निर्भर थे, इन निर्यातों के प्रति विरोध काफी गहरा था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि देश के औद्योगिक रूप में पिछड़े भागों में भी बुर्जुआ व्यापारियों का उभरते राष्ट्रीय नेतृत्व पर कोई नियंत्रण नही था।

संदर्भ

1. 19वीं शताब्दी की अवधि में भारत के विदेश व्यापार के विकास के विस्तृत विवरण के लिए देखिए I, दुर्गाप्रशाद, सम ग्रास्पेक्ट्स ग्राफ इंडियन फारेन ट्रेड–1757-1893 (लंदन 1932). परिमल राय . इंडियाज फारेन ट्रेड सिंस 1870 (लंदन 1934) और इंपीरियल गजेटियर ग्राफ इंडिया खंड III (1908).
2. इंपीरियल गजेटियर, खंड III (1908) पृ० 268 1813 में व्यापार का मूल्य केवल 25 लाख पौंड ग्रांका गया था (वही. पृ० 260) ये सारे ग्रंक भारत के समुद्र द्वारा हुए व्यापार से ही संबंधित हैं परन्तु सीमा पार के व्यापार पर इस व्यापार के गौरव और प्राबल्य को देखते हुए इन ग्रंको को न्यूनाधिक रूप से भारत के विदेश व्यापार के सूचक ग्रंको के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है.
3. देखिए अध्याय 1. उदाहरणार्थ : जान स्ट्रेंचे : इंडिया (1903), पृ० 186.
4. नौरोजी · स्पीचेज, पृ० 599-603. सी० पी० ए०, पृ० 164 पर दत्त . स्पीचेज II, पृ० 82-3. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 603 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 352, 354.
5. नौरोजी : एसैज, पृ० 114; भोलानाथ चंद्र, एम एम खंड II (1873) पृ० 85, खंड III (1874), पृ० 310-1. इंडियन स्पेक्टर, 18 मई (आर० एन० पी० बंग, 24 मई 1884) मराठा 25 मई 1884. हिंदू 16 जनवरी 1885. बंगवासी, 2 फरवरी (आर० एन० पी० बंग, 9 फरवरी 1889) रानाडे : एसेज, पृ० 184. तिलक, रामगोपाल . पूर्वोद्धृत, पृ० 145 पर उद्धृत. ए० बी० पी०, 11 जनवरी 1896. दत्त : इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 127 ई० एच० II, पृ० 348, 535-6. मधोलकर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 43 नदी : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 112. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 602. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52 और जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 352, 357.

6. भोलानाथ चंद्र द्वारा उद्धृत, एम एम, खंड II (1873), पृ० 85.
7. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 696. इससे पूर्व उन्होंने चेतावनी दी थी कि अंकों के विस्तृत जोड़ इसके प्रवर्तन के वास्तविक चरित्र के संबंध मे मनुष्य को हतप्रभ ही कर देते है. (पृ० 680) और देखिए . जी० एम० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स पृ० 188.
8. दत्त . ई० एच० II, पृ० 536
9. हिंदू, 21 अप्रैल 1884, 16 जनवरी 1885. मराठा 25 मई 1884, बंगवासी, 2 फरवरी (आर० एन० पी० बंग, 9 फरवरी 1889) नौरोजी स्पीचेज, पृ० 323, सी० पी० ए० पृ० 164 पर मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 43, दत्त ई० एच० II, पृ० 127, 348, 534, 536, जी० वी० जोशी ने कहा : क्या यह असामान्य स्थितियो का ऋण उत्पादन नही है (पूर्वोद्धृत, पृ० 617)
10. देखिए अध्याय II
11. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 641 और देखिए जी० एम० अय्यर : ई० ए० पृ० 131
12. आर० सी० दत्त ने अपनी पुस्तक इकानामिक हिस्टरी आफ इंडिया, खंड II मे विशेष रूप से इस प्रक्रिया का सुनिश्चित लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है जिसके कारण यह स्थिति और उसके साथ जुड़े परिणाम अस्तित्व मे आए. विशेषत देखिए पृ० 101, 105 108, 161-4, 345-8 529-32 दूसरो के लिए देखिए, हिंदू, 21 अप्रैल 1884, रानाडे एसेज पृ० 99-101, 183-4, जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 620-3 641 एव आगे रामगोपाल पूर्वोद्धृत, पृ० 145 पर उद्धृत तिलक, मधोलकर पूर्वोद्धृत, पृ० 41 जी० एम० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 126. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52 और देखिए ऊपर अध्याय II
13. देखिए : अध्याय I.
14. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 651 (तथा पृ० 622-3, 652, 680), और रानाडे एसेज, पृ० 103 (और पृ 103 एव आगे और 119) तथा देखिए, दत्त ई एच II, पृ 348 सुधारक, 1 अगस्त, केसरी, 2 अगस्त (आर० एन० पी० बंब 6 अगस्त 1898 ने जापान मे भारतीय व्यापार की हानि के विरुद्ध विरोध प्रकट किया अध्याय 7 भी देख
15. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 652 रानाडे एसेज, पृ० 13 एव आगे दत्त ई एच II, पृ० 531-2. दत्त ने विशेष रूप से मशीनो और मिल-सामग्री के आयात के घटने पर शोक प्रकट किया
16. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 611 दत्त ई० एच० II, प० 348, 535-6 जी० एस० अय्यर ई ए 352 और अन्य जिनका यथोचित स्थान पर बाद मे निर्देश किया जाएगा
17. कतिपय महानुभावो ने आंशिक रूप से यह स्वीकार किया था कि विदेश व्यापार के कुछ लाभ भी हो सकते हैं रानाडे का यह दृष्टिकोण था कि (विदेश व्यापार मे) वृद्धि को अच्छाई तो माना जा सकता है परन्तु यह खालिस अच्छाई नही. (एसेज, पृ० 184) तथा देखिए, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 622 और 624 तथा मयानी, सी० पी० ए०, पृ० 346
18. मराठा, 25 मई 1884 दत्त इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 127. ई० एच० I, पृ० 226, ई० एच० II, पृ० 132, 163 तथा आगे
19. मराठा, 25 मई 1884
20. इंपीरियल गजेटियर (1908) खंड III, पृ० 298 से गृहीत आयातो मे सरकारी भंडारो और कोष की भी परिगणना है
21. वस्तुत यथार्थ रूप से अनर्थग्रस्त राशियो के संबंध मे भारतीय नेताओ मे मतभेद था. देखिए भोलानाथ चंद्र : एम एम, खंड II (1873), पृ० 89 इंडियन स्पेक्टेटर 18 मई (आर०

एन० पी० बंब, 24 मई 1884). मराठा 25 मई 1884. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 321 और पावर्टी पृ० 569-70. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 636-8, 683; मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 40. नंदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 112; दत्त : ई० एच० II, पृ० 528-9. भारतीय नेताओं ने यह भी देखा कि यदि पूंजी के आयात और सरकारी ऋण न होते, जिनके कारण एक बड़ी सीमा तक आयातों के मूल्य में वृद्धि हो गई है और निर्यातों की अधिकता क्षीण हो गई है तो आयात निर्यात के मध्य की खाई और भी अधिक गहरी होती. यह तथ्य 1857 से पूर्व के कतिपय वर्षों की अवधि में भारतीय व्यापार मे आयातों की अपेक्षा निर्यातो की अधिकता की सामान्य प्रवृति के अपवाद का ही सूचक है, इन वर्षों मे निर्यातो की अपेक्षा आयात अधिक थे इसके कारण थे : सरकार द्वारा भारी ऋण लेना और रेलो के निर्माण के लिए बड़े पैमाने पर विदेशी पूजी का आयात. देखिए : जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 638. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 599. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 336, 553

22. नौरोजी : एसेज, पृ० 113 और पृ० 112-5.
23 नौरोजी : पावर्टी, पृ० 141.
24. वही, पृ० 569 और देखिए पृ० 568-74
25. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 618, 637 683. राय . पावर्टी, पृ० 6; लालमोहन घोष, सी० पी० ए० पृ० 753 मधोलकर · पूर्वोद्धृत, पृ० 41, नदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 112-3. वाचा . सी० पी० ए०, पृ [illegible] दत्त इग्लैंड एड इंडिया, पृ० 143 ई० एच० II, पृ० 348, 528. जी० एस० अय्यर · ई० ए०, पृ० 336
26. इडियन स्पेक्टेटर, 18 मई (आर० एन० पी० बंब; 24 मई 1884) मराठा, 25 मई 1884. हिंदू, 16 जनवरी 1883 दत्त . इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 145. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 683. वाचा : रिप० आई० एन० सी०-1898, पृ० 101-2, नदी पूर्वोद्धृत, पृ० 113 जी० एस० अय्यर : इडियन पालिटिक्स, पृ० 188 और ई० ए०, पृ० 353. यदि अमरीका के विदेशी ऋणो के सम्मान-पूर्वक भुगतान का प्रयोजन होता तो इसमे मराठा आपत्ति न करता.
27. समय, 30 जून (आर० एन० पी० बग० 5 जुलाई 1884) एल० एम० घोष : सी० पी० ए०, पृ० 753 रॉय · पावर्टी, पृ० 6. गोखले : वेलवी कमीशन, खड III, प्रश्न 18240. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 618, 637-8, 683 नदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 113 दत्त . इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 143. ई० एच० II, पृ० 127 और जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 353. 1862 से 1888 तक की अवधि के गृह-प्रभारो की रकमो की अधिक निर्यात की रकमो से तुलना करते हुए जोशी महोदय इस निष्कर्ष पर पहुचे कि 'वे लगभग एक दूसरे के सतुलन मे ही थी' (पूर्वोद्धृत, पृ० 637-8) और एल० एम० घोष : पूर्वोद्धृत स्थल
28. समय, 30 जून (आर० एन० पी० बंग०, 5 जुलाई 1884) जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 638, 683, 695. राय : पावर्टी, पृ० 6. नौरोजी · स्पीचेज, पृ० 323. नदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 113. दत्त : ई० एच० II, पृ० 536. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 270-1.
29. भोलानाथ चंद्र, एम० एम०, खड III (1874), पृ० 346. नौरोजी : एसेज, पृ० 115-6. स्पीचेज, पृ० 323. समय, 30 जून (आर० एन० पी० बंग०, 5 जुलाई 1884). न्यू इंडिया, 19 अगस्त 1901. दत्त : ई० एच० II, पृ० 163, 343-4, 348, 528-9, 536.
30. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 113.
31. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 323 तथा पावर्टी, पृ० 182, 569.

32. भोलानाथ चंद्र : एम० एम० खंड II, पृ० 89-90 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 639. राय : पावर्टी, पृ० 6-7. मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 41, 46. दत्त : ई० एच० II, पृ० 127, 159, 528, 536. न्यू इंडिया, 16 सितंबर 1901. इंडियन पीपुल, 28 जुलाई 1903 और एल० एम० घोष : सी० पी० ए०, पृ० 750, 753 और देखिए, ए० बी० पी० 6 फरवरी 1880, 17 जुलाई 1892.
33. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 639. वस्तुतः निकासी की कुल राशि निर्यातों की दृष्टिगोचर अधिकता से बढ़चढ़कर थी क्योंकि जैसा हम ऊपर निर्देश कर चुके हैं निर्यातों की वास्तविक अधिकता दृष्टिगोचर से कहीं भिन्न थी. और देखिए, नौरोजी : पावर्टी, पृ० 569 और जी० एस० अय्यर . ई० ए०, पृ० 336 .
34. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 641 तथा पृ० 683.
35. दत्त : ई० एच० II, पृ० 127 और देखिए उनकी स्पीचेज II, पृ० 40.
36. दत्त : ई० एच० II, पृ० 348-9, 528.
37. ई० एच० I, पृ० 48-9, 69. ई० एच० II, पृ० 125-7.
38. कोंजवादी यह विचार, कि यदि ब्रिटेन जर्मनी से क्षतिपूर्तियां उगाहना चाहता है तो या तो वह अनिवार्य रूप से जर्मनी का सामान खरीदे अथवा अपने देशवासियों को जर्मनी जाकर वहां की मदिरा पीने की अनुमति दे, अंततः मौलिक नहीं था.
39. भोलानाथ चंद्र, एम० एम०, खंड II (1873), पृ० 90. नौरोजी : एसेज, पृ० 114 स्पीचेज, पृ० 315. इंडियन स्पेक्टेटर, 18 मई (आर० एन० पी० बंब; 24 मई 1884), मराठा, 25 मई 1884. हिंदू, 16 जनवरी 1885. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 683 राय : पावर्टी, पृ० 6-7. मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 46-7. ए० बी० पी० 11, जनवरी 1896. दत्त : ई० एच० II, पृ० 127. एल० एम० घोष : सी० पी० ए०, पृ० 752. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 357-8 तथा देखिए आगे अध्याय XIII 'दि ड्रेन'.
40. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ 640-1.
41. वही, पृ० 681.
42. मराठा, 25 मई 1884. हिंदू, 16 जनवरी 1885. समय, 30 जून (आर० एन० पी० बंग०, 5 जुलाई 1884). हिंदू रंजिका, 28 जनवरी (वही, 7 फरवरी 1885). जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 680-1, 696. रानाडे एसेज, पृ० 183, 185. राय : पावर्टी, पृ० 93-4. दत्त : ई० एच० II, पृ० 101, 344-5. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 355, 357. जे० ए० वाड़िया : रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 176
43. बी० डी० बसु में उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 52.
44. एम० एम०, खंड II (1873), पृ० 90.
45. दत्त : इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 127. गोखले : स्पीचेज, पृ० 51. (तथा देखिए गोखले : रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 166) जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 357.
46. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 788-9
47. रानाडे : एसेज, पृ० 184-5. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 643, 650 दत्त : ई० एच० I, पृ० 293 6. ई० एच० II, पृ० 105. स्पीचेज II, पृ० 120-1. गोखले : स्पीचेज, पृ० 51-2. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 355.
48. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 644-5. रानाडे . एसेज, पृ० 185.
49. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 680.

50. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड II (1873), पृ० 115. मराठा, 25 मई 1884 हिंदू, 16 जनवरी 1885. समय, 22 जून (आर० एन० पी० बंग०, 27 जून 1885) जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 611, 643, 650-1, 683, 696. रानाडे : एसेज, पृ० 183, 185 राय : पावर्टी, पृ० 93-6. दत्त : ई० एच० I, पृ० VIII 276 ई० एच० II, पृ० 103, 345, 531. गोखले : स्पीचेज, पृ० 52. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 355. हितवादी, 16 दिसंबर (आर० एन० पी० बग०, 31 दिसंबर 1904) और अध्याय II पीछे हा, राष्ट्रवादियो ने यह अभिस्वीकार किया कि इस शोचनीय स्थिति के लिए आयात एकमात्र उत्तरदायी तत्व नही था और वस्तुत: यह देश पर विदेशी सत्ता के विभिन्न प्रभावों से ही उत्पन्न दुष्परिणाम थे.
51. जोशी : पूर्वोद्धृत, क्रमश: पृ० 682, 611, 651 तथा 645. और रानाडे : एसेज, पृ० 184, दत्त : ई० एच० II, पृ० 350. जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 125. अखबारे आम, 18 फरवरी (आर० एन० पी०, पी० 21 फरवरी 1891) दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका, 18 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंग, 22 अक्तूबर 1892)
52. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 653 और राय : पावर्टी, पृ० 95-6. दत्त . ई० एच० II, पृ० 345, 350.
53. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 85.
54. मधोलकर · पूर्वोद्धृत, पृ० 43 और देखिए एन० के० आर० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०-1901, पृ० 138.
55. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 645-7. मधोलकर ने 50 से 60 करोड़ रुपयों की रकम का उल्लेख करते हुए स्पष्टत· जोशी की संगणना पर ही विश्वास किया.
56. वही, पृ० 682 और 651 क्रमश:
57. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खड II (1873), पृ० 86
58. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 654 वाचा : रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101-2. जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स. पृ० 191.
59 इडियन स्पेक्टेटर ने 18 मई 1884 के अंक मे लिखा : 'भारतीय खेतिहर तो केवल विदेशी निर्यातक का पावचक्की उद्योगवाला दास था' (आर० एन० पी० बंब०, 24 मई 1884) और देखिए, हिंदुस्तानी, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 21 अप्रैल 1892). वाचा : वेलवी आयोग, खड III, प्रश्न 17509-10, 17516, 17524, सी० पी० ए०, पृ० 601, राय : इंडियन फैमिंस, पृ० 63. जी० एस० अय्यर : इडियन पालिटिक्स, पृ० 192. दि वायसराय आन दि इकानामिक कडीशन आफ इडिया, एच० आर०, मई 1901, पृ० 352 और जून 1901, पृ० 445, रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 101. ई० ए०, पृ० 225. दत्त : ई० एच० II, पृ० 348-9.
60. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 601 और वाचा : वेलवी आयोग, खंड III, प्रश्न 17525-7, 17529. राय : इडियन फैमिंस, पृ० 62-3 जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 225.
61. मराठा, 16 नवंबर 1902.
62. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 658 दत्त : ई० एच० II, पृ० 350.
63. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 658. राय : इंडियन फैमिंस, पृ० 62-3. जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 192, ई० ए०, पृ० 223-6.
64. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 657.
65. वही, भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड II (1873), पृ० 86. नौरोजी : स्पीचेज, पृ० 596. मधोलकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 42. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 603. न्यू इंडिया, 19 अगस्त 1901. जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 353.

66 रानाडे : एसेज, पृ० 65-97 उन्होंने लिखा सांस्कृतिक पद्धति ने नीदरलैंड्स, ईस्ट इंडिया को उच्चतम स्तर की भौतिक समृद्धि पाने मे सहायता की है (पृ० 79) तथा यह स्थिति उपयुक्त नही थी क्योकि उत्पादित सामग्री के ब्रिटिश भारत से निर्यातित कच्चे माल का तैयार माल से अनुपात चार के मुकाबले एक था वहा नीदरलैंड्स इंडिया मे यह एक के मुकाबले चार था (पृ० 85) यहा यह उल्लेखनीय है कि रानाडे तक ने एक दृष्टि, विदेशी पूजी की अपेक्षा भारतीय पूजी प्रयोग, से सास्कृतिक प्रणाली का उल्लघन किया था (पृ० 92-3)

67 मराठा, 25 मई 1884 राय पावर्टी, पृ० 15-16 वाचा, सी० पी० ए०, 603 जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 353-55 तुलनीय, इपीरियल गजेटियर, खड III, पृ० 278 विदेश व्यापार के लिए भारत मे बाजार अत्यत सीमित है और उपर्युक्त आयातो का एक सारवान भाग भारत मे बढते यूरोपीय लोगो की आवश्यकताओ और आकाक्षाओ की पूर्ति के ही काम आता था

68 जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 355 (तथा पृ० 12) और वाचा सी० पी० ए०, पृ० 603, गोखले स्पीचेज, पृ० 16

69 हिंदू 21 अप्रैल 1884, बगवासी, 2 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 9 फरवरी 1889), ताजुल अखबार, 4 जनवरी (आर० एन० पी० पी० 10 जनवरी 1801), राय पावर्टी, पृ० 13-4, 35 दत्त ई० एच० II, पृ० 348-9, 534, 536 जी० एम० अय्यर ई ए, पृ० 85

70 आर० एन० पी० बग०, 13 जुलाई 1889

71 भोलानाथ चद्र एम एम, खड II (1873), पृ० 82, 85-9 खड III (1874), पृ० 310-11 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 611, 622, 624-5, 666 784 788 रानाडे एसेज पृ० 66, 185 6 हिंदुस्तानी 16 सितबर (आर० एन० पी० एन०, 24 सितबर 1801) पैसा अखबार, 27 अक्तूर (आर० एन० पी० पी०, 10 नवबर 1894) नौरोजी स्पीचेज, पृ० 341 राय पावर्टी पृ० 321-3, 326 भारत जीवन, 4 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 13 जुलाई 1898) मधोलकर पूर्वोद्धृत, पृ० 46 नसीमे आगरा, 15 मई (आर० एन० पी० एन०, 18 मई 1901) न्यू इडिया, 19 अगस्त 1901 एडवोकेट, 10 जुलाई (आर० एन०, पी० एन०, 19 जुलाई 1902). दत्त ई० एच० II, पृ० 536

72 भोलानाथ चद्र एम एम, खड II (1873), पृ० 88-9 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 631-3, 666, 783, 787 रानाडे . एसेज, पृ० 185-6 मधोलकर पूर्वोद्धृत पृ० 41 नौरोजी स्पीचेज, पृ० 341

73 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 66

74 वही, पृ० 625 और पृ० 633, 666 हिंदुस्तानी, 16 सितबर (आर० एन० पी० एन०, 24 सितबर 1891) भारत जीवन, 4 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 23 जुलाई 1898)

75 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 634

76 वही, पृ० 806-7

77 एडवोकेट, 19 जून (आर० एन० पी० एन०, 21 जून 1902)

78 नौरोजी एसेज, पृ० 101 पर उद्धृत

79 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 641

80 वाचा रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 105 और देखिए, राय पावर्टी, पृ० 36 मदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 125 जी० एस० अय्यर · ई ए, पृ० 357-8

81 इपीरियल गजेटियर (1908) खड III, पृ० 284

82 दुर्गाप्रसाद : पूर्वोद्धृत, 224.

83 आफताब-ए-पंजाब, 9 मई (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 मई 1883). समय, 27 अक्तूबर, सोम प्रकाश, 27 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंग० 1 नवंबर 1884), ढाका प्रकाश, 2 नवंबर (वही, 8 नवंबर 1884) किस्सा-ए अखबार, 3 जून (आर० एन० पी० पी०, 9 जून 1888) रोज़नामा ए पंजाब, 21 जून (वही, 2 फरवरी 1889), बंगवासी, 2 फरवरी. 6 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 9 फरवरी, 13 जुलाई 1889) नवविभाकर साधारणी, 27 मई (वही, 27 मई 1889); हिंदुस्तानी, 22 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 30 अप्रैल 1891) हिंदी प्रदीप, मार्च; न्याय सुधा 13 मई, कानपुर गजट, 15 मई, नैरंग, 11 मई (वही, 21 मई 1891), भारत जीवन, 15 फरवरी (वही, 18 फरवरी 1892), आर० एन० पी० पी० 10, 24 जनवरी, 21 फरवरी, 21 28 मार्च, 4, 11, 18, 25 अप्रैल, 2, 23 मई, 19 दिसंबर 1891, 28 जनवरी, 21 फरवरी, 11 मार्च, 22, 29 अप्रैल 1893, 20 जुलाई 1895, 26 मार्च, 28 मई, 4 जून 30 जुलाई 1898, 28 अक्तूबर 1899, 30 जून 1900, मे उद्धृत पंजाब के लगभग सभी पत्र सम्मिलित हैं · दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका, 22 जून (आर० एन० पी० बंग०, 30 जून 1891). हितवादी, 25 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 1 अगस्त 1891) बर्दवान संजीवनी, 28 जुलाई (वही, 8 अगस्त 1891) बंगाली, 23 जनवरी 1892 बंगनिवासी, 22 नवंबर (आर० एन० पी० बंग, 23 नवंबर 1895) भारत जीवन, 18 मई, अंजुमने हिंद, 23 मई (आर० एन० पी० एन०, 26 मई 18९६). हिंदुस्तान, 13 अक्तूबर (वही, 14 अक्तूबर 1896); रहबर, 16 फरवरी (वही 24 फरवरी 1897), नज्मउल हिंद, 18 अप्रैल; दबदबा-ए-केसरी, 16 अप्रैल (वही, 20 अप्रैल और 27 अप्रैल 1898 क्रमश) हिंदुस्तान, 20 मई हिंदुस्तानी, 18 मई (वही, 25 मई 1898). काशी वैभव, 26 मई; अवध अखबार, 25 मई, (वही, 1 जून 1898); भारत जीवन, 27 जून, सुदेश प्रवर्तक, जून (वही, 6 जुलाई 1898). भारत जीवन, 7 अगस्त, 2 अक्तूबर (वही, 16 अगस्त, 11 अक्तूबर 1899) नंदी : पूर्वोद्धृत पृ० 113 जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 189. ई ए, पृ० 278-9 285 नसीमे आगरा, 15 मई, रोजनामचा ए केसरी 15 मई (आर० एन० पी० एन०, 18 मई 1901), इंडियन पीपल (24 जुलाई 1903) दत्त : ई० एच० II, पृ० 127 (पादटिप्पणी)

84. अवध पंच, 21 मई (आर० एन० पी० एन०, 28 मई 1891).

85. आर० एन० पी० एन०, 30 जनवरी 1900.

86. बंगवासी, 2 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 9 फरवरी 1889) दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका, 22 जून (वही, 30 जून 1891) नंदी : पूर्वोद्धृत, पृ० 113 जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 85, 110

87. आर० एन० पी० बंग०, 1 अगस्त 1891.

88. दत्त : ई० एच० II, पृ० 349 और पृ० 536.

89. दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका, 22 जून 1891, 4 सितंबर 1895 (आर० एन० पी० बंग०, 30 जून 1891 और 7 सितंबर 1895). हितवादी, 25 जुलाई (वही, 1 अगस्त 1891). बर्दवान संजीवनी, 28 जुलाई (वही, 8 अगस्त 1891), भारत जीवन, 18 मई; अंजुमन ए हिंद, 23 मई (आर० एन० पी० एन०, 26 मई 1896). भारत जीवन, 2 अक्तूबर (वही, 11 अक्तूबर 1899). वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 585-6. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 110-11.

90. हितवादी, 25 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 1 अगस्त 1891).

91. दत्त : ई० एच० II, पृ० 348-9, 534-6. और देखिए अध्याय 13.

92. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 587 तथा देखिए : जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 611, 613. किस्सा ए अखबार, 3 जून (आर० एन० पी० पी०, 9 जून 1888); अखबार ए आम, 29 जनवरी (वही, 2 फरवरी 1889); आफताब ए पंजाब, 5 जून (वही, 15 जून 1889); हिंदुस्तानी, 22 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 30 अप्रैल 1891); न्याय सुधा, 13 मई; कानपुर गजट, 15 मई; नैरंग, 11 मई (वही, 21 मई 1891); भारत जीवन, 15 फरवरी (वही, 18 फर० 1892); सिराज उल अखबार, 16 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 21 फरवरी 1891); केसर उल अखबार, 18 मार्च (वही, 21 मार्च 1891); आफताब ए पंजाब, 20 मार्च (वही, 28 मार्च 1891); इंपीरियल पेपर, 11 अप्रैल (वही, 18 अप्रैल 1891); दिल्ली पंच, 22 अप्रैल (वही, 2 मई 1891); खैरख्वाह ए आलम, 8 मई (वही, 23 1891); अफताब ए हिंद, 16 मई (वही, 6 जून 1891); रहबर ए हिंद, 20 जुलाई (वही, 1 अगस्त 1891); पैसा अखबार, 14 दिसबर कोहिनूर, 12 दिसंबर (वही, 19 दिसंबर 1891). पैसा अखबार, 13 मई (वही, 28 मई 1898). अम्बाला गजट, 24 मई (वही, 8 जून 1898). हितवादी, 25 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 1 अगस्त 1891) बंगाली, 23 जनवरी 1892. राय : पावर्टी, पृ० 174-5. रहबर : 16 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 24 फरवरी 1897). नजमुल हिंद, 8 अप्रैल (वही 20 अप्रैल 1898) दबदबा ए केसरी, 16 अप्रैल (वही, 27 अप्रैल 1898); हिंदुस्तानी, 18 मई, हिंदुस्तान, 20 मई (वही, 25 मई 1898); काशी वैभव, 26 मई, अवध अखबार, 25 मई (वही, 1 जून 1898). राष्ट्रवादियो के इस दृष्टिकोण कि सामान्य मूल्यवृद्धि जनहित में न होकर उनके लिए हानिप्रद है, की समीक्षा ऊपर की गई है.

93. लाला मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 21.

94. आफताब ए पजाब, 9 मई (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 मई 1883); अखबार ए आम, 29 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 2 फरवरी 1889). आफताब ए पजाब, 5 जून (वही, 15 जून 1889); पैसा अखबार, 14 दिसबर (वही, 19 दिसबर 1891); भारत जीवन, 15 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 18 फरवरी 1892), सिह सहाय, 11 जनवरी (वही, 21 जनवरी 1893), ताज उल अखबार, 8 अप्रैल (वही, 22 अप्रैल 1893); भारत जीवन, 19 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 30 जनवरी 1900). राय : इडियन फैमिस, पृ० 64. बगाली, 28 अप्रैल 1901.

95. नवविभाकर साधारणी, 27 मई (आर० एन० पी० बग०, 1 जून 1889); हिंदुस्तानी, 22 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०. 20 अप्रैल 1891); न्याय सुधा, 13 मई. कानपुर गजट, 15 मई. नैरंग, 11 मई (वही, 21 मई 1891). रहबर ए हिंद, 20 जुलाई (आर० एन० पी० पी, 1 अगस्त 1891). पैसा अखबार, 13 मई, 20 जुलाई (वही, 28 मई, 30 जुलाई 1898). सदा ए हिंद, 16 अक्तूबर (वही, 28 अक्तूबर 1899). हिंदी हिंदुस्तान, 24 मई (आर० एन० पी० एन०, 1 जून 1901). ए० बी० पी०, 9 जुलाई 1901. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 111-2, 290.

96. केसे. ए. अखबार, 3 जून (आर० एन० पी० पी०, 9 जून 1888). रोजाना ए पजाब, 28 जनवरी (वही, 2 फरवरी 1889). दोस्त ए हिंद, 3 अप्रैल (वही, 11 अप्रैल 1891) आफताब ए पजाब, 20 मार्च (वही, 28 मार्च 1891). दिल्ली पंच, 22 अप्रैल (वही, 2 मई 1891). कोहेनूर, 4 फरवरी, 8, 22 अप्रैल (वही, 21 फरवरी, 22, 29 अप्रैल 1893). पैसा अखबार, 27 फरवरी (वही, 11 मार्च 1893) दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका, 12 मई (आर० एन० पी० बग०, 14 मई 1892). और 4 सितंबर (वही, 7 सितंबर 1895).

97. ताज उल अखबार, 6 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 20 जुलाई 1895); पैसा अखबार, 20 मार्च, 20 जुलाई (वही, 10 अप्रैल, 30 जुलाई 1897) अबाला गजट 24 मई (वही, 4 जून 1898) सिविल ऐंड मिलट्री न्यूज, 18 अक्तूबर, ताज उल अखबार, 14 अक्तूबर (वही, 28 अक्तूबर 1899) ए कारेसपेडेंट इन सियालकोट पेपर, 1 अप्रैल (वही, 7 अप्रैल 1900) हमदर्द ए हिंद, 16 जून, (वही, 30 जून 1900) अजुमन ए हिंद, 23 मई (आर० एन० पी० एन०, 26 मई 1896), जमाना, 17 सितबर अनीसे हिंद, 16 सित० (वही, 23 सित० 1896) हिंदुस्तान, 13 अक्तू० (वही, 14 अक्तू० 1896) हितवादी, 13 नवबर (आर० एन० पी० बग०, 21 नवबर 1896), सजीवनी, 26 दिसबर (वही, 2 जनवरी 1897) 13 जनवरी के सप्ताह के सभी उडिया पत्र (आर० एन० पी० बग०, 6 फरवरी 1897). ए० बी० पी०, 22 जनवरी 1897 ज्ञान प्रकाश, 26 मई, बबई समाचार, 28 मई (आर० एन० पी० बब०, 28 मई 1898), भारत जीवन, 3 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 5 जनवरी 1898), जमायुल उल्लाम, 18 सितबर (वही, 9 अक्तूबर 1900)

98 नेटिव ओपीनियन, 25 मई 1884 नवविभाकर साधारणी, 27 मई (आर० एन० पी० बग०, 1 जून 1889) पैसा अखबार, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 15 अप्रैल 1893). भारत जीवन, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 17 अप्रैल 1900) जी० एस० अय्यर : ई ए पृ० 115-7.

99 मराठा 24 फरवरी 1884 विक्टोरिया पेपर, 16 दिसबर (आर० एन० पी० पी०, 23 दिस० 1893), 8 नवबर (वही, 17 नवबर 1900)

100 एल० सी० पी०, 1882, खड XXI कलकत्ता के अग्रेज व्यापारियो ने स्वभावत: ही इस दृष्टिकोण का समर्थन किया (ए० बी० इगिल्स का भाषण, वही, पृ० 300). डी० सी० लाहा ने 1889 में इस माग को दुहराया (एल० सी० पी०, 1880, खड XXVIII पृ० 141)

101 बगाल राष्ट्रीय वाणिज्य सदन का 1888 का प्रतिवेदन, पृ० 5

102 आशिक रूप से यह इस तथ्य के कारण था कि अर्थशास्त्रियो को छोडकर भारतीय नेताओ ने जिन विशिष्ट आर्थिक विषयो पर तथा विदेश व्यापार पर सामान्य चर्चा की, वे वस्तुत अत्यत व्यापक विषय थे और उन्हें आसानी से सघर्ष का विषय नही बनाया जा सकता था उदाहरणार्थ वर्षों तक काग्रेस के असख्य प्रस्तावो मे विदेश व्यापार का उल्लेख नही हुआ इसके अतिरिक्त विदेश व्यापार के सबध राष्ट्रवादी मत की स्वल्पता इस प्रश्न पर अपने आप मे उनकी रुचि के अभाव की ही सूचक है.

103. जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 126.

104 रानाडे . एसेज, पृ० 118 तथा देखिए, नौरोजी : सी० पी० ए०, पृ० 164. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 666-7. वाचा . रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 105 दत्त : स्पीचेज II, पृ० 127.

105. उदाहरणार्थ देखिए, भोलानाथ चद्र का निबध, आर० सी० दत्त : राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज; जी० एस० अय्यर : सम इकानामिक आस्पेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इडिया.

106 नौरोजी . स्पीचेज, क्रमश पृ० 601, 603 और 604 तथा देखिए, नौरोजी : वही, पृ० 115-6, 190, 503 सी० पी० ए०, पृ० 164

107. दत्त : स्पीचेज II, पृ० 82-3 और देखिए ई० एच० II, पृ० 344, 617.

108. के० एस० शेलवकर : दि प्राब्लम आफ इडिया (लदन, 1940) पृ० 151-3, 166-7.

अध्याय 5

रेलों की भूमिका

रेलों के निर्माण द्वारा देश का विकास ही वह उपाय है जिसके द्वारा कृषि पर निर्भर विशाल जनसंख्या की हालत मे अत्यंत सुनिश्चित रूप में निरंतर सुदृढ सुधार लाया जा सकता है।

—लार्ड एलगिन

भारतीय जनता अनुभव करती है कि यह निर्माण कार्य मुख्य रूप से ब्रिटिश व्यापारी तथा धनी वर्गों के हितों की दृष्टि से ही किया जाता है और यह उन्हें हमारे साधनों के और अधिक शोषण में सहायता देता है।

—गोपालकृष्ण गोखले

रेलों के निर्माण का भारतीय जनता के जीवन, संस्कृति और अर्थव्यवस्था पर एक क्रांतिकारी प्रभाव पडा। रेलों की स्थापना से पूर्व अंगरेज यथार्थ में न भारतीय जीवन मे प्रवेश पा सके थे, न भारत को विकासशील विश्वमंडी के साथ जोड़ सके थे और न ही भारत का पूंजीवादी विकास पथ की दिशा पर डाल सके थे। वस्तुत: देश के विदेशी शासकों ने समय बीतते बीतते रेलों के निर्माण को देश के सभी आर्थिक रोगों की रामबाण औषधि के रूप में f या और अन्य सभी योजनाओं से उसे प्राथमिकता देते हुए उसके विकास पर शक्ति तथा तीव्रता से बल दिया।

निस्संदेह भारतीय रेलों के निर्माण का इतिहास एक सर्वविदित तथ्य है, फिर भी देश में रेलों के निर्माण से उत्पन्न होने वाले विविध प्रश्नों पर प्रारंभिक भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के दृष्टिकोण को सम्यक रूप से समझने के लिए इस विषय का संक्षिप्त विवेचन अनुचित न होगा।

संक्षिप्त ऐतिहासिक रूपरेखा

ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम 1831-2 में मद्रास में ही रेल के निर्माण की योजना बनाई गई। परंतु यह रेलगाड़ी अपनी गति के लिए पशुओं पर निर्भर थी। भारत के लिए सर्वप्रथम भाप रेल गाड़ियों की योजना 1843 में इंग्लेड में ही तैयार की गई। ईस्ट

इंडिया कंपनी के निदेशक-मंडल ने इस योजना के संचालन के बारे मे उत्सुकता नहीं दिखाई क्योंकि उसकी दृष्टि में भारत मे इम योजना की असफलता पूर्वसिद्ध थी परंतु वह भारत के साथ व्यापाररत इंग्लैंड के वाणिज्य सदनों, धनकुबेरों तथा रेलपथ के उन्नायकों तथा लंकाशायर के वस्त्र उत्पादको के अपने देश में ही पडने वाले प्रबल आर्थिक और राजनीतिक दबाव को दीर्घ काल तक सहन न कर सका।[2] भारत में कंपनी के अपने ही गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने शातिपूर्वक यह प्रतिवेदित किया कि भारत के सीधे स्थल-मार्ग रेलपथों के निर्माण के लिए उल्लेखनीय सुविधाए जुटाते है और रेलपथों का निर्माण वाणिज्य के लिए, सरकार के लिए और देश पर सैनिक नियंत्रण के लिए बहुत ही उपयोगी होगा।[3] ज्यो ही भारत मे रेलों के निर्माण की योजना को स्वीकृति मिली त्यों ही कंपनी के निदेशक मंडल और रेलवे के उन्नायको मे भारतीय रेल के निर्माण मे लगने वाली निजी धनराशि के न्यूनतम लाभाश अथवा प्रतिलाभ की शासकीय गारटी के प्रश्न पर छोटा सा विवाद उत्पन्न हो गया। इस विवाद का निर्णय भी उन्नायकों के पक्ष मे गया और 1849 मे भारत राज्य सचिव ने ईस्ट इडिया रेलवे कपनी तथा ग्रेट इंडिया पेनिंसुला रेलवे कपनी के साथ प्रथम रेलवे इकरारनामा पर हस्ताक्षर किए। इन अनुबंधों की स्वीकृति की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थी·

1. निजी कपनिया भारत में रेलों का निर्माण और सचालन करेंगी।
2 निजी कपनियो द्वारा जुटाई पूजी पर 99 वर्ष की अवधि के लिए ईस्ट इंडिया कपनी पाच प्रतिशत प्रतिभूत वार्षिक सूद का भुगतान करेगी।
3 ईस्ट इंडिया कपनी का निजी कपनियो को आवश्यकतानुसार 99 वर्ष के पट्टे पर बिना मूल्य के भूमि देने का दायित्व होगा।
4 इन सुविधाओ के प्रतिपादन मे कपनी ने रेलवे के खर्चों और संचालन का नियंत्रण अपने हाथ मे रखा।
5. रेलो को डाक बिना प्रभारो के और सैनिको तथा सैनिक भडारो को घटी दरों पर ले जाना होगा।
6. जब तक प्रतिभूति के रूप मे उगाही अग्रिम राशियो का भुगतान नहीं हो जाता तब तक प्रतिभूति पाच प्रतिशत वार्षिक ब्याज की राशि से अधिक होने वाले अतिरिक्त लाभ को ईस्ट इडिया कंपनी और रेलवे कपनिया आपस मे बाट लेंगी। अग्रिम राशियो के चुक जाने के उपरात सारा लाभ रेलवे कपनियो को मिलेगा।
7. 99 वर्षों के उपरात रेल कंपनिया बिना किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति के रेलें सरकार को सौप देंगी। सरकार केवल मशीनो, संयत्रो तथा रेलगाडी के डिब्बो का मूल्य चुकाएगी।
8. ईस्ट इडिया कंपनी 99 वर्षों से पूर्व, प्रथम पच्चीस अथवा प्रथम पचास वर्षों के उपरांत पूजीगत सामान्य हिस्सो और सहभागों का पूरा मूल्य चुकाने पर रेलवे को खरीद सकेगी।
9. उपर्युक्त अनुबंध के अनुरूप रेलवे कंपनियां किसी भी समय छः मास की चेतावनी देने पर रेलवे व्यवसाय को ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप सकेंगी। और उसके उपरांत

निवेशित मूल पूजी की वसूली की माग कर सकेंगी।
ये प्रारभिक अनुबध अगली दो शताब्दियो मे हस्ताक्षरित सभी परवर्ती समझौतो के लिए आदर्श रूप बन गए। परन्तु इस समय तक रेल के निर्माण मे सबधित सर्वोत्तम नीति, गति तथा सर्वोत्तम उपायो के विषय मे विवाद किसी भी रूप मे समाप्त नहीं हो पाया था। कुछ वर्ष तक और इस विवाद मे उग्रता तथा क्षुब्धता बनी रही। फिर इग्लैड मे समाविष्ट प्रतिभूत कंपनियो के माध्यम से ब्रिटिश पूजी के साथ द्रुत निर्माण मे इसका अस्थाई रूप से हल हो गया। लार्ड डलहौजी ने 1853 मे लिखे अपने प्रसिद्ध तथा सर्वांगपूर्ण लेख मे इस नीति का स्पष्ट प्रकाशन किया। इस लेख मे उन्होने निर्देश किया कि यदि ब्रिटिश पूजी के निवेश क्षेत्र की सभाव्यता के सदर्भ मे तथा सेनाओ की गतिविधि और युद्धकाल मे द्रुतगति के लिए रेलो मे अधिक लाभ उठाने की दृष्टि से भारत के यातायात के साधनो का एक बार वैज्ञानिक विकास किया जाए तो भारत ब्रिटिश उत्पादकों के माल को खपाने की मडी के रूप मे और कृषि सबधी कच्चे माल के सभरणकर्ता के रूप मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।[4] उन्होंने प्रथम पग के रूप मे चार मुख्य चौमुखे रेल-मार्गों की पद्धति का सुझाव दिया। इन रेलमार्गों के अतर्गत अनेक प्रेजिडेसियो को एक दूसरे से जोडा जाए और प्रत्येक प्रेजिडेसी का अतरग प्राकृतिक पतन से जुडा हो। चौमुखे रेलमार्ग को देश के कृषिउत्पादनो के निर्यात को सुविधाजनक बनाने के लिए ठोस आधार के रूप मे ही लिया गया।

1969 की समाप्ति तक जब इस नीति मे परिवर्तन किया गया, प्रतिभूत कपनियो द्वारा 4255 मील लबे रेलपथो का निर्माण किया जा चुका था और इस अवधि मे प्रति-भूत ब्याज की दर साढे चार से पाच प्रतिशत रही।

1869 से पूर्व रेलो के निर्माण के मूल्य बहुत अधिक और असाधारण रहे। प्रारभ मे ही प्रतिभूति के फलस्वरूप सरकार द्वारा कपनियो को ऊचे भुगतान करने पडे। लार्ड डलहौज़ी ने जहा प्रतिमील रेलपथ के निर्माण का औसत व्यय 8000 पौंड कूता था, वहा बेमोल दी गई भूमि के मूल्य के अतिरिक्त ही वास्तविक व्यय लगभग 18000 पौंड प्रति मील आया,[5] इस अधिक व्यय के अनेक बहुमुखी कारण थे कार्य का प्रारभिक स्वरूप, कुशल श्रमिको का अभाव स्थानीय परिस्थितियो की जानकारी का अभाव अनुभवहीनता, चौडे रेलपथो का चुनाव निर्माण का अनावश्यक रूप से ऊचा स्तर अनावश्यक दोहरी पटरिया आदि परतु ऊचे व्ययो के लिए प्रमुख रूप मे उत्तरदायी तत्व था, अत्य-धिक प्रतिभूति पद्धति जिसने कपनियो के लिए रेलपथो के निर्माण और सचालन मे मित-व्यय की प्रेरणा अथवा प्रोत्साहन का कोई अवकाश ही नही छोडा था, इसके उलटे कंपनियो को लगभग अनावश्यक व्ययो के लिए ही प्रोत्साहित किया क्योंकि जितना ऊचा पूजीगत व्यय होगा उतनी ही अधिक सुरक्षित और प्रतिभूत ब्याज की वसूली होगी।

भारत के एक भूतपूर्व वित्त सदस्य डब्ल्यू० एन० मैसी ने 1872 मे अपने साक्ष्य में कहा 'रेलपथो पर व्यय की जाने वाली सारी धनराशि अगरेज पूजीपतियो से आती थी और जब तक उसे भारत के राजस्व मे से पाच प्रतिशत ब्याज की प्रतिभूति प्राप्त थी, तब तक उसकी बला से, चाहे उधार दी गई धनराशि हुगली में फेंकी जाए अथवा ईंट-गारा

बनाने के काम मे ली जाए।[6] इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप जहा उचित व्यय पर सूद की रकम के भुगतान के लिए पर्याप्त आय होने की संभावना थी, वहा वास्तविक व्यय पर प्रतिभूत सूद के भुगतान के लिए ही आय अपर्याप्त रही और सरकार को स्वयं ही घाटा पूरा करना पड़ा।[7] इस नियमित और बढते हुए घाटे ने राज्य के राजस्व को बुरी तरह से प्रभावित किया[8] और इसका अपरिहार्य परिणाम यह निकला कि रेलपथो के निर्माण की गति को मद कर देना पडा। गवर्नर जनरल जान लारेंस ने जनवरी 1869 मे लिखे अपने विस्तृत और सुबद्ध लेख मे यह सुझाव दिया कि वर्तमान व्यवस्था को जिसके अंतर्गत सारा लाभ कपनियो को मिलता है और सारा घाटा सरकार को उठाना पडता है,[9] समाप्त कर देना चाहिए। प्रतिभूति के लौटा लेने के फलस्वरूप यदि निजी उद्यम भविष्य मे रुपया लगाने को अग्रसर नही होते तो सरकार प्रतिभूति दर की अपेक्षा अथवा सीधे राजस्वो से रुपया लेने की अपेक्षा स्वय ही सूद की सस्ती दर पर ऋण लेकर रेलो का निर्माण तथा सचालन करे। भारत-सचिव ने इस योजना को स्वीकार कर लिया और 1870-80 की अवधि मे स्वय सरकार ने अ ।न व्यय म ही रेलो का निर्माण किया। कुल 8,494 मील लबे रेलपथो मे से 1880 तक लगभग 2493 मील रेलपथ का निर्माण सरकारी अभिकरणो ने ही किया।

यद्यपि राज्य द्वारा सचालित रेल व्यवस्था प्रतिभूत रेल व्यवस्था की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से अपेक्षाकृत सस्ती और अधिक सफल थी तथापि प्रधान रूप मे निर्माण की गति को तीव्रता देने मे उसकी असफलता के कारण उसपर शीघ्र ही प्रहार किए जाने लगे।[10] लक्ष्यसिद्धि मे राज्य के राजस्व अपर्याप्त सिद्ध हुए। 1880 के अकाल आयोग के सुझाव के अनुसार अकालो मे सुरक्षित रहने के लिए देश को 20,000 मील लबे रेलपथ की आवश्यकता थी।[11] अकाल आयोग द्वारा अनुशसित रेलपथो के निर्माण मे द्रुतगति की प्राप्ति के लिए वर्तमान नीति मे प्रत्यावर्तन की सर्वप्रथम लार्ड रिपन के नेतृत्व मे स्वयं भारत सरकार द्वारा ही जबर्दस्त वकालत की गई। इस प्रश्न पर गभीरतापूर्वक विचार करने के लिए 1884 मे एक ससदीय प्रवर सीमित नियुक्त की गई। उसने रेलो के निर्माण के द्रुतविकास और उसके लिए दोनो, राज्य तथा निजी, अभिकरणो से लाभ उठाने की सिफारिश की। इस उद्देश्य की प्राप्ति मे निजी उद्यम स्वत साहसपूर्वक आगे नही आ रहे थे अत. सरकार को एक बार पुन प्रतिभूति व्यवस्था का सहारा लेना पड़ा। हां, यह बात अवश्य है कि इस बार शर्तें उतनी दु सह नही थी। राज्य अभिकरण का भी साथ साथ उपयोग चलता रहा। इसके उपरात तो रेलपथो का विस्तार ऐसी तीव्र गति पकड गया जिसे कुछ लोगों के अनुसार चरम गति कहा जा सकता है। 30 जून 1905 तक 359 करोड रुपये (अथवा 240,000,000 पौड) मे निर्मित लगभग 28054 मील रेलपथो का यातायात के लिए उद्घाटन हो गया था।

अंत मे 1905 तक भारतीय रेलपथ विकास के संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण से प्राप्त उसके प्रमुख चार पक्षो को रेखांकित करना अनुचित न होगा :

(क) सभी प्रकार की व्यावहारिकता की दृष्टि से भारतीय रेलपथो के निर्माण मे भारतीय पूंजी की भूमिका नगण्य ही थी। इस कार्य की सिद्धि मे ब्रिटिश पूजी का ही

योगदान महत्वपूर्ण है। रेलपंथों के निर्माण कार्य के लिए ब्रिटेन से भारत आने वाली पूंजी इतनी अधिक थी कि उसे 19वीं शताब्दी के विदेशी निवेश की सबसे बड़ी एकाकी इकाई कहा जा सकता है।[12]

(ख) भारतीय रेलपथों के संबंध में घाटे के खतरे को उठाने को तैयार वास्तविक निजी उद्यम का लगभग अभाव ही था क्योंकि इनके उन्नायक और रुपया लगाने वाले इस उद्यम की सामान्य आशंकाओं को ही झेलने के लिए तैयार नही थे। वे या तो सरकारी प्रतिभूति मिलने पर ही कार्य संचालन को प्राथमिकता देते थे अथवा रेलपथो के निर्माण के लिए सरकार द्वारा जारी किए गए ऋणपत्रों मे धन के निवेश के पक्ष में थे।

(ग) शताब्दी के अंत तक तो भारतीय रेलें अपने पर निवेशित पूंजी पर देय ब्याज को ही चुकाने के योग्य नही थी। 1900 तक, जब उन्होंने प्रथम बार शुद्ध लाभ कमाया, उस समय तक सरकार को प्रतिभूत ब्याज राशि के भुगतान के लिए 76 करोड रुपयों का भारी बोझा उठाना पडा।

(घ) समीक्षाधीन अवधि के अंतिम वर्षों के दौरान कुल मिलाकर सरकार के लिए आर्थिक कठिनाइयों और जनता के लिए अकाल और प्लेग जैसे रोगो के बावजूद रेलपथों का निर्माण पर्याप्त तीव्र गति से हुआ। जहां 1850-1891 की अवधि में 17308 मील लंबे रेलपथों का निर्माण हुआ, वहां 1892-1905 की अपेक्षाकृत स्वल्प अवधि मे 10746 मील लंबे रेलपथों का निर्माण हुआ। जेंक के निर्देशानुसार ग्रेट ब्रिटेन तक में रेलपथो का विकास इस तीव्र गति मे नही हुआ था और फ्रांस ने जिन रेलपथों को अपने यहां खपाया उनके निर्माण की गति भारत की अपेक्षा मंद थी।[13]

रेल विस्तार की गति: राष्ट्रवादी दृष्टिकोण

ज्यों ही कुछ वर्षो मे रेल के निर्माण कार्य ने वेग पकडा त्योंही भारतीय मत के प्रवक्ताओ ने रेलपथो के विस्तार, संगठनात्मक तथा वित्तीय व्यवस्था पर अपने विचार और दृष्टि-कोण के निर्धारण और प्रकाशन की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने रेल के निर्माण की गति विषयक अपने में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार किया और उसकी आवश्यकता के बारे मे कोई संदेह नही किया।

भारतीय नेताओं ने न तो विशुद्ध सैद्धांतिक आधार पर इस प्रश्न का उत्तर दिया और न ही रेलों के गुण-दोषों पर उनके शुद्ध रूप में विचारविमर्श किया। उनका दृष्टि-कोण प्रमुखतया वर्तमान रेलों के, भारतीयों के हितों पर और देश के आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले, प्रभाव की जानकारी के संदर्भ में ही निर्धारित था। जी0 वी0 जोशी महोदय ने अपने लेख, 'दि इकानामिक रिजल्ट्स आफ फ्री ट्रेड ऐंड रेलवे ऐक्सटेंशन' में इस तथ्य का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। उनका यह लेख पूना सार्वजनिक सभा के अक्तूबर 1884 के जनरल में प्रकाशित हुआ। इस लेख में उन्होंने भारत के रेलपथों के असीमित प्रसार की मांग के संबंध में लोकमत को अभिव्यक्ति देने का दावा करते हुए लिखा :

जो सज्जन इमकी पूर्व प्रदर्शित बुराइयो को तथा भविष्य मे और अधिक संपीड़क बुराइयो की चेतावनी को भली प्रकार और पूर्ण रूप से सिद्ध मानते है, उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उन सिद्धांतों पर शांत चित्त मे विचारविमर्श करें जिनके आधार पर एक पक्षीय विकास की वकालत की जा रही है। वे सज्जन इस संबंध मे देश की अर्थव्यवस्था पर भविष्य मे सम्भावित दुष्परिणामों के संदर्भ मे स्थिति की समीक्षा करें।···इस संबंध मे राज्य के विगत कार्य के देश की आर्थिकता और आय-व्यय स्थिति पर पड़े प्रभावो पर गभीर विचार किए बिना इस प्रश्न का उत्तर देना संगत नही होगा।[14]

रेलों का आर्थिक प्रभाव

ब्रिटिश दृष्टिकोण के अनुसार देश पर वर्तमान रेलों का प्रभाव पूर्णत सुखद ही पड़ा है।[15] प्रारंभ मे ही रेलो के द्रुत विकास की वकालत करते हुए ब्रिटिश अधिकारियों ने लोकोपकार की अपील की और घोषणा की कि रेलो मे देश की दरिद्रता और दुर्भिक्ष के उन्मूलन मे सहायता मिलेगी। 1844 मे भारत मे रेलो के अग्रदूतो मे प्रमुख जान चैपमैन ने निम्नलिखित टिप्पणी मे भारतीय रेलो के उद्देश्य का समर्थन प्रस्तुत किया : 'राजमार्गो का अभाव दरिद्रता का अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट कारण है और रेलें भारतीयों को दरिद्रता से समृद्धि की ओर लाने का साधन है।'[16] 1884 की ससदीय प्रवर समिति ने इस तर्क पर रेलो के द्रुत विस्तार का समर्थन किया कि इससे देश को दुर्भिक्षों से सरक्षण मिलेगा, बाहरी और भीतरी व्यापार को गति मिलेगी, उपजाऊ प्रदेश और कोयले की खाने खुलेंगी और कुल मिलाकर जनता की आर्थिक स्थिति मे सुधार होगा।[17] 1896 मे गवर्नर जनरल लार्ड एलगिन ने बड़े ही आत्मविश्वास के साथ घोषणा की कि रेलो का निर्माण कृषि पर निर्भर भारत की बहुसंख्यक जनता की भौतिक स्थिति मे एक निश्चित और निरंतर सुधार का साधन है।' उसने आशा प्रकट की कि भारत की महान रेल व्यवस्था को देश की जनता की भौतिक सपन्नता, सामाजिक प्रगति और राजनीतिक शाति का एक अत्यंत सशक्त अभिकरण बनाया जा सकता है।[18]

दूसरी ओर भारतीय नेताओ का निष्कर्ष सर्वथा विपरीत था। हां, उन्होंने रेलवे के वास्तविक और संभव निम्नलिखित प्रधान लाभो को दृष्टिगोचर अवश्य किया : सस्ती और द्रुत परिवहन की व्यवस्था, राष्ट्रीय सद्भाव और संगठन मे प्रगति, नई मंडी का उद्घाटन, आजीविका के नवीन साधनों की सृष्टि, स्वदेश तथा विदेश व्यापार को प्रोत्साहन, दुर्भिक्षों का निरोध, कृषि फसलों के उत्पादन में गतिशीलता, उद्योगीकरण की प्रक्रिया पर प्रत्यक्ष प्रभाव, इंजिनियरिंग उद्योगों और कर्मशालाओ को प्रत्यक्ष प्रोत्साहन और सामान्य रूप से देश के उद्यम का क्षेत्रविस्तार।[19] परंतु उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों के समान संभव और यथार्थ के अंतर को विकृत नहीं होने दिया। यह सत्य है कि रेल के प्रारंभिक वर्षों में और विरल रूप से कालांतर में भी कुछ भारतीय नेता रेलों द्वारा संपन्न किए जाने वाले कार्यों से चुंधिया गए थे तथा रेलों के द्रुत विकास की मांग में ब्रिटिश नेताओं का हृदय से साथ देने लगे थे।[20] किंतु, जब उन्होंने वास्तविक लाभों की यथार्थ

परीक्षा की तो उन्हें निराशा ही हाथ लगी क्योंकि उन्हें लगा कि कुछ लाभों का तो कोई अस्तित्व ही नही था और कुछ रेलों के निर्माण से होने वाली हानियों के परिणामों से ही नामशेष हो गए थे।

1883 में दादाभाई नौरोजी ने शिकायत की कि भारत का दुर्भाग्य यह है कि अन्य प्रत्येक देश को रेलों से मिलने वाले लाभ इसे उपलब्ध नही। 1888 में जोशी महोदय ने टिप्पणी की कि राष्ट्र की औद्योगिक गतिविधि के विविध विकास के लिए रेलवे का अर्थ-व्यवस्था पर पड़ने वाला प्रभाव अत्यंत हानिकारक सिद्ध हुआ है। उन्होंने भारत जैसे देश में सामान्य गति से स्वस्थ भौतिक विकास की दिशा में बाधक बनने की रेलवे की प्रवृत्ति की निंदा की। 1897 मे डी० ई० वाचा ने वेलबी आयोग के समक्ष कहा : 'रेलवे से अर्थव्यवस्था तथा प्रबंध व्यवस्था की दृष्टि से जनता को कुछ हानियां ही पहुंची है।' 1898 में जी० एस० अय्यर ने बलपूर्वक कहा कि वर्तमान रैलवे नीति देश के लिए 'बहुमुखी रोग' सिद्ध हुई है। आर० सी० दत्त का विश्वास था कि कुल मिलाकर रेलवे के आर्थिक प्रभाव लाभप्रद नहीं थे। तिलक महोदय ने तो इनके विकास के समय ही अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा था : रेल, तार और सड़क जैसे साधनों की भारत के लिए कोई उपयोगिता नही। वे तो एक प्रकार से 'दूसरे की पत्नी को अलंकृत करने' के समान है। यहां तक कि जस्टिस रानडे का भी यही मत था कि रेलों ने भले ही और कितने लाभ पहुंचाएं हों परंतु उन्होंने राष्ट्र की प्रगति को पंगु बनाने वाली निर्धनता रूपी विशेष दुर्बलता का कोई प्रतिकार नहीं किया।[21] बहुत सारे भारतीय समाचारपत्रों ने इसी प्रकार के परंतु अत्यधिक उग्र समीक्षापरक विचार प्रकट किए। उदाहरणार्थ, 30 अप्रैल 1884 के अंक मे सहचर ने तीव्रता से लिखा : 'लौहपथों के विस्तार का अर्थ लौहबधन' है। 31 मई, 1891 के अंक मे दैनिक-ओ-समाचार चंद्रिका ने घोषणा की कि 'रेलें देश को दरिद्रता के गर्त मे धकेल रही है।' 29 जून 1903 के अंक मे 'मदोवृत्त' ने अपनी धारणा प्रस्तुत करते हुए लिखा : 'रेलें देश के लिए 'वरदान के स्थान पर अभिशाप' ही सिद्ध हुई हैं। इन्दु प्रकाश ने अभियोग लगाते हुए लिखा : रेलो ने भारतीय समृद्धि को क्षति पहुंचाई है।[22]

राष्ट्रवादियों ने रेलों का घातक प्रभाव सर्वप्रथम औद्योगिक गतिविधि को पहुंची क्षति के रूप में ही देखा : भारतीय बड़े उद्योग के रूप मे समकालीन औद्योगिक क्रांति के अभाव में परिवहन क्राति ने भारत के वर्तमान भारवाहन उद्योग को विनष्ट कर दिया था। इंग्लैंड के सस्ते मशीनी उत्पादनों ने भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों के उत्पादनों की बिक्री को प्रभावित करके इन उद्योगों का गला ही घोंट दिया। भारत की अर्थव्यवस्था को सहारा देने के बदले रेलों ने तो उसे गढ़े में ही धकेल दिया। भारत का धीरे धीरे ग्रामीकरण होता गया और वह धीरे धीरे ब्रिटेन की अन्न उगाने वाली बस्ती में बदल गया। 1884 में जी० वी० जोशी ने लार्ड डलहौजी और उसके उत्तराधिकारियों की उस रैलनीति पर शोक प्रकट किया जिसने आश्चर्यजनक रूप से थोड़े ही समय में देशी उद्योगों का सफाया कर दिया था और देश को दिवालियेपन और विनाश के कगार पर खड़े करके उसे चरम पतन की ओर उन्मुख कर दिया था।[23] जस्टिस रानाडे भी वर्तमान रेलनीति

की निंदा मे पीछे नही थे। उन्होने कहा : 'रेलों ने अनेक क्षेत्रो मे भारत की यूरोप के साथ निराशाजनक प्रतियोगिता उत्पन्न कर दी है और यूरोप के सामान को परिवहन की सुविधाएं इस हद तक जुटाई है जो किसी भी अन्य साधन से संभव नही थी। कुछ प्रमुख नगरो को छोडकर रेलो ने स्थानीय देशी उद्योगो को नष्टभ्रष्ट ही कर दिया है और एकमात्र अवशिष्ट साधन—कृषि पर लोगो की निर्भरता बढाकर उन्हे पहले से भी अधिक असहाय बना दिया है।'[4] जी० एस० अय्यर ने पूर्णतेजस्विता के साथ उद्घोष किया इस देश मे रेलपथ के प्रत्येक अतिरिक्त मील का निर्माण देश के किसी न किसी उद्योग के कफन मे एक नया कील है।[5] और इसी तेजस्विता के साथ उन्होंने लिखा : रेलो को भारतीय जनता को उन्हे दुर्भाग्यग्रस्त बनाने वाली निर्धनता के फैलाने के लिए उत्तर देना ही पडेगा।[6] इसी प्रकार के विचार अन्य लोकनेताओ तथा भारतीय समाचारपत्रो ने भी प्रकट किए।[27]

जी० वी० जोशी ने और गहराई से अनुभव किया कि वस्तुत रेलो पर प्रतिभूत ब्याज के सरकारी व्यय विदेश व्यापारी के लिए एक प्रकार के सहायक का ही कार्य करते थे। उन्होने विरोध प्रकट करते हुए कहा इस प्रकार का भारत का विदेशी व्यापारी अथवा उसके देशवासियो को अनुग्रह राशि देने के रूप मे उस स्वदेशी उत्पादको के साथ प्रतियोगिता की सुविधाए जुटाने के लिए विवश किया जा रहा है।[8] विदेशियो के साथ पहले से ही प्रतियोगिता मे असमान भारतीय व्यापारी को इस विधि से तो और भी अधिक पगु बनाया जा रहा है।

कुछ भारतीय नेताओ का कथन था कि रेलपथो का निर्माण स्वदेशी उद्योगो के विनाश का एक अपरिहार्य प्रतिफल नही है। इस औद्योगिक और परिवहन क्रांति का यह परिणाम अन्य देशों मे नही हुआ है। रेलो ने सभी देशो मे नए प्रकार की औद्योगिक गतिविधि की प्रतिष्ठा चाहे की हो परन्तु भारत के विषय मे इस दुखद स्थिति का कारण यह है कि यहा रेलो ने उत्पादक गतिविधियो की रक्तवाहक धमनियो मे रक्त सचार का काम ही नही किया क्योंकि उनका प्रधान उद्देश्य इग्लैंड मे कोयलाखानो मे काम करने वालो, इस्पात और मशीनरी निर्माण कार्य मे सलग्न लोगो को काम जुटाना था न कि भारत मे। स्वभावत आनुषंगिक मंडी के विस्तार के सारे लाभ ब्रिटिश उत्पादको को ही उपलब्ध हुए, भारतीय उत्पादको को नही।[9] इसमे रेलो का विकास भारतीय अर्थव्यवस्था के अतर्गत और क्रमिक रूप से समजन करते हुए नही हुआ परन्तु घातक दुष्प्रभावो की उपेक्षा करते हुए इस भारत पर थोप दिया गया। इसपर क्षुब्ध होकर जी० एस० अय्यर ने पूछा : 'क्या विनाश की प्रक्रिया को मद और क्रमिक नही बनाया जा सकता जिससे लोगो को सास लेने का समय तो प्राप्त हो सके।'[30]

हा, नई पद्धति के कुछ एक उद्योगो, विशेषत बागान उद्योगो, को रेलवे से सपन्नता अवश्य मिली परतु उसके अधिकाश लाभ भी विदेशी उद्यमियो ने डकार लिए। इस प्रकार का आर्थिक विकास निश्चित रूप से विदेशी पूजी द्वारा देश का शोषण ही था।[31]

रेलो का दूसरा हानिप्रद परिणाम था देश से धन की निकासी मे बढोतरी। भारतीय नेताओं का कथन था कि भारत की विचित्र राजनीतिक स्थिति के कारण रेलपथो का

निर्माण विदेशी पूंजी से किया गया है और उनका प्रशासन भी बहुत से विदेशी कर्मचारियों के हाथ में है। इसके फलस्वरूप भारत द्वारा ब्याजों और लाभों के, आयातित सामान के, यूरोपीय कर्मचारियों की सेवाओं के और इंग्लैंड में प्रबंध व्यवस्था पर होने वाले व्ययों के भुगतान के रूप में धन की विपुल राशि इंग्लैंड को भेजनी पड़ती है। ब्याजों के भुगतान की राशि भले रेल व्यय का एक स्वल्प भाग थी परंतु विदेशी धन से रेलों का निर्माण करने वाले सभी देशों को यह राशि सामान रूप से ही चुकानी पड़ रही थी। राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्र अन्यान्य देशों की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव के मुकाबले भारत की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाला प्रभाव नितांत और स्पष्ट रूप से भिन्न था।[3] धन की बढ़ती हुई निकासी ने रेलों के अन्यान्य लाभों को सर्वथा नष्ट भले ही न किया हो परंतु उन्हें धुंधला अवश्य कर दिया था। यही कारण था कि दादाभाई नौरोजी ने 1876 मे विस्मित होते हुए कहा था : यहा रेलों नथा दूसरे लोक कार्यों की व्यवस्था तो होनी चाहिए परंतु उनका स्वाभाविक लाभ हमें पहुंचना चाहिए अन्यथा एक भूखे व्यक्ति के सामने बढ़िया खाने के आनंद की चर्चा करना व्यर्थ है।[34] जी० एम० अय्यर ने टिप्पणी करते हुए कहा : स्वतंत्र भारत रेल द्वारा प्रदत्त अन्य लाभों के बदले इस धन की निकासी को भी सहन कर लेता परतु भारत को तो पहले से ही अन्यान्य मदो मे लगभग तीन करोड़ पौंड विदेशों को देना पड़ता है। अतएव भारत रेलों द्वारा की जा रही धन की अतिरिक्त निकासी को किसी भी प्रकार सहन करने की स्थिति मे नही है।[35]

राष्ट्रवादियों द्वारा रेलों की एक अन्य कटु समीक्षा का कारण यह था कि रेलें अनाज के निर्यात को सुविधाजनक बनाकर देश मे सामान्य काल मे भी अनाज की अपर्याप्तता की स्थिति उत्पन्न कर रही थी तथा देश को अपने सामान्य अतिरिक्त अनाज मे शून्य करके उसे प्राय: आने वाले दुर्भिक्षों का आसान शिकार बना रही थी।[36] इस धारणा ने इतना अधिक व्यापक रूप ले लिया कि अंतत. लार्ड कर्जन को 1901-02 के वित्त प्रतिवेदन के समापन भाषण मे इसका उत्तर देने को विवश होना पडा। उसने इन तर्कों को प्रथम स्तर का और सर्वथा निराधार एक भ्रम बताते हुए इस तथ्य को सर्वथा नकार दिया कि रेलों से अनाज के निर्यात में किसी प्रकार की वृद्धि हुई है अथवा इस प्रकार की वृद्धि में रेलें किसी प्रकार से कारणभूत हैं। उनके विचारानुसार तो यह भी सत्य नही था कि भारत के कुल उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग का निर्यात किया जाता था। उसका कथन था कि सत्य इसके विपरीत है। रेलों ने फालतू अन्न क्षेत्र से अभावग्रस्त क्षेत्र में अन्न पहुंचाने की, विदेशी बाजारों से अन्न के आयात को संभव बनाने की तथा इस प्रकार से दुर्भिक्षों की प्रचंडता को मंद करने की सामर्थ्य जुटाई है।[37] इस कथन के विरुद्ध भारतीयों ने तत्काल अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की, रेलों के प्रधान समर्थकों ने ही यह दावा करना छोड़ दिया है कि रेलें दुर्भिक्षों को रोकने में समर्थ हैं। उनका कथन था कि आयातों तथा आंतरिक पुनर्वितरण रेलों के द्वारा दुर्भिक्षों की तीव्रता को मंद करने के दावे को भी 19वीं शती में पड़े दो दुर्भिक्षों के अनुभव ने झुठलाकर रख दिया है।[38] जी० एस० अय्यर ने तर्क दिया कि इन दुर्भिक्षों के समय बर्मा के सिवाय किसी भी अन्य देश से अनाज का आयात नही किया गया। इतना ही नही प्रत्युत उस अकाल की अवधि में भी अनाज के द्रुत निर्यातों द्वारा

क्षुद्र आंतरिक संभरण को और भी मंद कर दिया गया।[39] समस्या को एक अन्य दृष्टिकोण से परखते हुए 'बंगाली' ने 28 अप्रैल 1901 के अंक मे तर्क प्रस्तुत किया : 'रेलों ने वाणिज्य फसलो के निर्यात को उत्तेजित करके अप्रत्यक्ष रूप से देश के खाद्य संभरण को क्षतिग्रस्त किया है क्योंकि इसका परिणाम यह हुआ है कि कृषक खाद्य फसलों के स्थान पर नकदी फसलें उपजाने लगे है।'

राष्ट्रवादी नेताओं ने इस ओर भी निर्देश किया कि भारतीय रेलें व्यापारिक दृष्टि से भी सफल नही थी क्योंकि वे पिछली एक लंबी अवधि से विशेषत: 19वी शताब्दी के अंत तक आत्मनिर्भर ही नही थी और घाटे की पूर्ति विदेशी निवेशको के बदले भारतीय सरकार के रूप मे भारतीय जनता द्वारा ही की जाती थी। उन्होने बार बार और जोर देकर कहा कि भारतीय जनता की घोर दरिद्रता के संदर्भ में इन घाटों का बोझ असह्य रूप में भारी था और किसी भी रूप मे रेलों से प्राप्त लाभों के समकक्ष नहीं था।[40] डी० ई० वाचा महोदय ने 1901 मे कांग्रेस के सभापतीय अभिभाषण मे रेलों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए स्पष्ट शब्दो मे प्रश्न उठाया कि 'क्या भारत जैसे किसी भी दरिद्रतम देश के लिए इन वार्षिक घाटो की विलासिता का जुटा पाना संभव है ?'[41]

कुछेक भारतीय नेताओं ने यह भी देखा कि प्रचलित रेल नीति ने जहा सामान के आयात-निर्यात को निरंतर प्रोत्साहन दिया है, वहा देश के आंतरिक व्यापार और उद्योग के विकास के प्रति उपेक्षा ही नही दिखाई प्रत्युत उसपर प्रहार भी किया है।[42] जी० एस० अय्यर महोदय 1898 मे 'रेलें व्यापार का जीवन है, नारे की सांख्यकी जाच करते हुए इस परिणाम पर पहुचे कि 1891-2 से 1896-7 की अवधि मे रेलों तथा नौकाओं द्वारा एक प्रात से दूसरे प्रात मे ढोए गए माल की कुल मात्रा, पत्तनों के लिए ढोए गए सामान को छोडकर, प्रतिवर्ष 130 451,000, से 167, 65, 640 मन के बीच थी; जबकि इसी अवधि मे पत्तनो के लिए ढोए गए व्यापारिक माल की मात्रा 165,105,0C0 से 185, 199,000 मन के बीच थी।[43] उन्होने एक अन्य स्थान पर कहा कि यदि प्रशासन का उद्देश्य आतरिक उद्योग का विकास करना होता तो ग्रामीण क्षेत्रों मे ही परिवहन साधनों की ओर अधिक ध्यान दिया जाता।[44] 1888 मे आयात-निर्यात को प्रोत्साहन देने वाली दर नीति की प्रवृत्ति पर जी० वी० जोशी ने अत्यंत विलक्षण सूक्ष्म बुद्धि से गहरे विचार प्रकट किए। उन्होंने इस तथ्य की ओर देखा और इसकी तीखी आलोचना की कि भारतीय रेलपथो पर सामान ढुलाई की दर बहुत ही नीची है, यहा तक कि इंग्लैंड के दरो से और कितने ही अन्य यूरोपीय देशों के रेलो की दरो से नीची है। यही कारण है कि उससे सेवा प्रभार तथा ब्याजो का भुगतान ही नही जुट पाता और प्रतिभूत प्रणाली के अंतर्गत सारा घाटा राजस्व से पूरा करना पड़ता है। उन्होंने निष्कर्ष रूप में कहा, 'नीची दरों के कारण किए जाने वाले भुगतान विदेशी व्यापार के संवर्धन के लिए ही चालू रखे जा रहे हैं और यह वस्तुत: राज्य द्वारा विदेश को उसके व्यापार पर दिए जाने वाला उपहार ही है।'[45] इन कुछेक कुशल निरीक्षकों को छोडकर अन्य भारतीय नेताओं ने रेल समस्या के इस पक्ष की कुल मिलाकर उपेक्षा ही की।[46] इसका एक प्रधान कारण यह था कि भारतीय उद्योग अभी रेलों की दर नीति को चुनौती देने मे पर्याप्त सशक्त नहीं था। इसके अतिरिक्त

उनका विकास अधिकांश पत्तन नगरों में हो रहा था, जहां वे पत्तनों के हक में रेल दरों से सामान रूप से लाभान्वित हो सकते थे। इस प्रकार न तो राष्ट्रीय नेतृत्व के किसी भी वर्ग ने किसी भी स्थिति में सामान ढुलाई की दरों को सामान्य रूप से और विदेशों के निर्धारित किए जाने वाले कच्चे माल की ढुलाई की दरों को विशेष रूप से घटाने का आग्रह किया और न ही देश के विकासशील व्यवसायी उद्यमी वर्ग ने इस प्रकार की कोई मांग प्रस्तुत की।[47]

भारतीय नेताओं के अनुसार यदि सरकार ने उद्यम के क्षेत्र में एक सर्वथा नए उद्योग के रूप में आविर्भूत रेल उद्योग को समुचित समय पर भारतीयों द्वारा अपने हाथ में संभालने के लिए तथा प्रशासन में उन्हें अधिकाधिक भागीदार बनाने के लिए समुचित प्रबंध किए होते तो भारतीय अर्थव्यवस्था को विकृत करने वाले तथा पूजी के भार मे दबाने वाले रेल उद्योग के धूमिल चित्र में भी आशा की एक रजत किरण दिखाई देती, परंतु उनका यह स्पष्ट अनुभव था कि रेलों के निर्माण को प्रोत्साहण देते समय यह विचार विदेशी शासकों के मस्तिष्क मे ही नहीं था। इसके विपरीत राज्य और रेल-कंपनियों दोनों ने भारतीयों को ऊंचे पदो और तकनीकी स्थानों से कोसो दूर रखा। इसी का परिणाम था कि आज सरकार के निरंतर पच्चीस वर्षों के दिशा निर्देशन के उपरांत भी देशवासी रेलपथ के निर्माण कार्य को अथवा रेल प्रबंध को संभालने मे उतने ही अयोग्य थे, जितने उस समय थे जब लार्ड डलहौजी ने पहली बार भारत को रेलपथो के जाल मे ढकने की योजना को स्वीकृति दी थी।[49]

जी० वी० जोशी और जी० एस० अय्यर महानुभावो के अनुसार रेलो का एक राजनीतिक प्रभाव भी था जो अत्यंत घातक सिद्ध हो सकता था। जोशीजी के अनुसार राष्ट्र के हितों के लिए सर्वथा हानिकारक जमाखोरो का एक प्रबल विदेशी कुलीन तंत्र अस्तित्व मे आ रहा था। अय्यर महोदय के अनुसार : विदेशी रेल कंपनिया तो भारतीयो के हितो को आघात पहुचाने वाले तथा पहले से ही अत्यधिक शक्तिशाली विदेशियो के निहित स्वार्थों मे और अधिक वृद्धि ही करेंगी।[50]

उस युग के किसी भी महत्वपूर्ण भारतीय विचारक की दृष्टि मे न आए हुए रेलो के प्रभाव के कुछ पक्षों का यहां अध्ययन रोचक होगा। प्रथम, कृषि में व्यावसायिक क्रांति अर्थात नकद उपजों की जोतसीमा मे विस्तार तथा स्थानीय उपजो मे विशिष्टीकरण पर जो कदाचित पूर्णतया न सही, आंशिक रूप से अवश्य ही रेलो की ही देन थी, किसी विचारक ने टिप्पणी नही की। दूसरे, यद्यपि कभी-कभी मूल्यों की समानता के तथ्य को अभिलिखित किया गया[51] तथापि रेलों द्वारा सारे देश में मूल्यो की समानता की कल्पना के अर्थशास्त्रीय महत्व को भी भुला ही दिया गया। अंतिम, रेलो द्वारा भारतीय व्यापार और पूजी के भारत के ग्रामों मे पहुंचने के लिए जुटाए गए अवसरो की ओर भी किसी का ध्यान नहीं गया और इसलिए इसे किसी ने अनुकूल विकास के रूप मे स्वीकार नही किया।

यहां यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि जैसाकि अभियोग लगाया गया है सामाजिक रूढ़िवादिता के साथ साथ स्थिर, अप्रगतिशील अर्थव्यवस्था के आदर्श की दृष्टि से रेलो

और रेलों के भारत पर प्रभाव की भारतीय नेताओं द्वारा आलोचना नहीं की गई।[52] रेलों के सभी भारतीय आलोचक न केवल ग्राधुनिक उद्योगों के प्रबल पक्षधर थे प्रत्युत उनमे से अधिकांश प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। यह हम पूर्ववर्ती अध्याय में पहले ही दिखा चुके है कि लोकप्रिय समाचारपत्रो तक मे जहा थोडी-बहुत रूढिवादिता छाई हुई थी वर्तमान समाजव्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली के रूप में, रेलों की मामूली सी ही आलोचना की गई।[53]

वस्तुत: भारतीय नेता रेलों के विरुद्ध कदापि न थे। वे तो उस विशेष समय मे उसकी संचालन पद्यति के ही विरोधी थे।[54] भारतीय अर्थव्यवस्था पर रेलों के वास्तविक प्रभाव की जाच करने पर उन्हें यह विदित हुआ कि अधिकारियो द्वारा पहले से दिलाई गई आशाओं और अपेक्षाओ के विरुद्ध रेलें, पूर्ण वरदान नही थीं और भारतीय अर्थव्यवस्था के संतुलन पर उनका प्रभाव निषेधात्मक था। वे भारतीय अर्थव्यवस्था के वर्तमान पिछडेपन को जारी रखने वाली और उसे बढाने वाली ही थी। रेलो से जो कुछ भी लाभ उपलब्ध हुए थे, वे सारे के सारे विदेशी व्यापारियो ने ही हडप लिए थे। अतएव उनका यह निष्कर्ष था कि रेले, जो सशक्त समृद्धिप्रद हो सकती थी, इस समय एक संकट बनी हुई थी। भारत के [illegible] पर पडने वाले आर्थिक भार के अनुरूप वे कदापि वाछनीय नही थी और जैसाकि हम आगे चलकर दिखाएंगे, भारतीय नेताओं की उस समय निश्चित धारणा थी कि यदि भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन देना ही उद्देश्य है तो इन आर्थिक साधनो का रेलो के बदले और कही अच्छी प्रकार से उपयोग किया जा सकता है।

ब्रिटिश उद्देश्य

भारतीय राष्ट्रीय नेताओ के इस निष्कर्ष से यह प्रासगिक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि ब्रिटिश अधिकारी और लेखक रेलो के द्रुत निर्माण के लिए इतना अधिक दवाब क्यों डाल रहे है? भारत के शासक विशेषत 1884 के उपरात और लार्ड एलगिन और लार्ड कर्जन की वायसरायी की अवधि मे इस कार्य के लिए असाधारण रुचि और उत्साह क्यों दिखा रहे है? अथवा प्रश्न को इस रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है कि रेलो का उद्देश्य किसके हितो की सेवा करना है? ब्रिटेन द्वारा प्रस्तुत यह विश्लेषण सहजता से भारतीयों के गले के नीचे नही उतर पा रहा था कि रेलपथों का निर्माण लोकसेवा के उद्देश्य से प्रेरित है। उन्हे यह विश्वास ही नही होता था कि उनके शासक भारतीयों के हितसाधन की भावना से ही इस कार्य मे प्रवृत्त हुए है अथवा रेल निर्माण के पीछे भारत के आर्थिक विकास की सच्ची प्रेरणा ही काम कर रही है। वे इस तथ्य को स्वीकार करते थे कि किन्ही मामलों मे रेलों के प्रति उत्साह अज्ञान और यूरोप की स्थितियों के साथ भारत की स्थितियों की गलत तुलना का परिणाम हो सकता है।[55] उनका निश्चित मत था कि ब्रिटेन के उद्देश्य वास्तव मे ही कुल मिलाकर अत्यंत निम्नस्तर के कलुषित और स्वार्थपूर्ण थे। ये प्रयोजन अपने तात्विक रूप मे उन ब्रिटिश व्यापारियो, उत्पादको और निवेशकों के हितों की पूर्ति करते हैं जिनके निरतर दबाव के अन्तर्गत भारतीय राजस्व के व्यय और खतरे के मूल्य पर

रेलों का निर्माण किया गया है और किया जा रहा है। रेलपथों का जाल बिछाने का वास्तविक उद्देश्य ब्रिटिश उद्यम तो भारत के प्राकृतिक साधनो के शोषण मे सहायता देना ही है।[56]

भारतीयों के अनुसार भारत में रेल निर्माण को गतिशील बनाने वाला एक महत्वपूर्ण कारण भारत के शासकों की यह इच्छा थी कि भारत के आंचलिक प्रांतों में एक विस्तृत और वास्तव में अब तक न दोही गई एक ऐसी मंडी खोली जाए जो एक ओर ब्रिटिश उद्योगो के उत्पादनों को खपाए और दूसरी ओर ब्रिटेन की भूखी मशीनो और प्राणियों के लिए क्रमशः कच्चे माल और खाद्यान्नों के निर्यातों की सुविधाएं जुटाए। इस प्रकार भारत को ब्रिटेन के लिए कच्चे माल का संभरण करने वाले कृषि उपनिवेशक के रूप मे परिवर्तित करना ही भारत के शासकों की इच्छा थी।[57]

सरकारी रेल नीति के प्रवर्तन मे विदेशी व्यापार की आधारभूत भूमिका पर प्रकाश डालते हुए बहुत से भारतीय विचारकों ने इस नीति की संरचना मे उनकी अपनी दृष्टि मे उत्तरदायी अन्य अनेक दबावों और प्रयोजनो की भी चर्चा की। उनमे से एक इंग्लैंड के इस्पात उद्योग के सामान की, रेलवे भंडारो, लोहे की पटरियो, इंजन, डिब्बे और दूसरी मशीनें तथा सयंत्र के निर्यातों के द्वारा निकासी की व्यवस्था की आवश्यकता थी।[58] रेलें असंख्य अंगरेजों को, निदेशक से लेकर टिकट वसूलने वाले तक के रूप मे लाभप्रद नौकरियो की सुविधाएं भी जुटाती थी।[59] कुछ भारतीय नेता सही तौर पर यह समझने में भी सफल हो गए, यह समझ उनकी समकालीन आर्थिक प्रक्रियाओं की गहरी समझ की परिचायक है, कि राज्य के स्वामित्व वाली तथा कंपनी के स्वामित्व वाली दोनो रेलें फलतः ब्रिटिश पूंजी के सुरक्षित और लाभप्रद निवेश के स्रोत का कार्य करने का उद्देश्य लिए हुए है और इस दिशा मे प्रवृत्त भी है। इस संबंध मे कुछ विचारकों की इस समझ की भी झलक मिलती है कि रेलें भारत पर विदेशी शासकों के राजनीतिक प्रभुत्व को सुदृढ बनाने का ही आधार थी।

सरकारी नीति के उद्देश्यों के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण को जी० एस० अय्यर महोदय ने 1898 मे बड़ी सफलतापूर्वक संक्षेप्तः निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत किया :

> इंग्लैंड के निवेशक, कंपनी के उन्नायक, धनकुबेर, लोहाधिपति, कोयला स्वामी, रेलवे इंजीनियर और निदेशक तथा इन सबसे बढ़चढ़कर अपनी पेंशन मे महत्वपूर्ण वृद्धि की इच्छा रखने वाले सेवानिवृत्त ऐंग्लो भारतीय कर्मचारी, सबके सब भारत मे रेलो के निर्माण को द्रुतगति देने में रुचि रखते है। वे यूरोपीय व्यापारी भी जिनके हाथ मे भारत का सारा विदेश व्यापार है और जिनका व्यापार अब [illegible] के तटवर्ती नगरों तक सीमित न रहकर भारत के ग्राम प्रातों मे फैलने जा रहा है, समान रूप मे भारतभूमि में रेलों के जाल के प्रसार के लिए उत्सुक है।[62]

बहुत सारे भारतीयों ने अनुभव किया कि यह सारी दुःखद स्थिति अत्यंत क्षोभप्रद हो जाती थी जब भारतीयों के हितों की बलि चढ़ाकर रेलों के सारे लाभ इंग्लैंड उठाता था और उनके भार को भारत उठाता था।[63] इससे यह विचित्र प्रक्रिया देखने मे आई कि 'पैतृक दायित्व' के नाम पर ब्रिटिश शासक उस देश की सहायता कर रहे थे जिसे कम से

कम भारत की महान दुर्भाग्यग्रस्त निर्भरता को भी शक्तिहीन करने के मूल्य पर, उसकी आवश्यकता कदापि नही थी ।[64]

भारतीय कसौटी

भारत सरकार की रेल नीति को ब्रिटेन की आवश्यकताओ से प्रेरित सिद्ध करने के उपरात कुछ भारतीय नेताओ ने रेल विकास की गति और इस महत कार्य की प्राथमिकता के निर्धारण के लिए अपनी एक कसौटी निश्चित की आवश्यकता अनुभव की। इस समस्या पर उनका विचारविमर्श न केवल उनकी परिवहन नीति पर और उनके विचारानुरूप देश की अर्थव्यवस्था के विकास मे उसकी भूमिका पर प्रकाश डालता है, प्रत्युत स्वय उनके दृष्टिकोण के आर्थिक विकास की रूपरेखा को भी उजागर करता है।

सर्वप्रथम, उनका सर्वथा उपयुक्त और सुदृढ तर्क था कि रेलो को भारत की वर्तमान विशिष्ट आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियो मे देश के आर्थिक विकास मे उनके योगदान के सदर्भ मे ही देखना चाहिए ।[65]

द्वितीय, उनका मतव्य था कि परिवहन और उद्योग मे उद्योग का महत्व प्राथमिक और परिवहन का महत्व गौण है क्योकि किसी भी उपयुक्त रूप से देखें तो आर्थिक विकास का आधार उद्योगीकरण ही है। जी० वी० जोशी ने 1884 मे लिखा औद्योगिक प्रगति अतत आवश्यक रूप मे उत्पादन वृद्धि पर निर्भर है न कि अतर्राष्ट्रीय विनिमय की सुविधाओ की वृद्धि पर। वस्तुत उद्योगो का एक सामान्य समन्वय···राष्ट्र की समृद्धि का जीवन रक्त है।'' इसी तथ्य की सबल पुष्टि मे बंबई के नेटिव ओपीनियन ने 25 मई 1884 के अक म रेल प्रवर समिति की कार्यवाही पर टिप्पणी करते हुए लिखा

> हमारी विनम्र सम्मति मे भारत मे रेल प्रसार के विषय से सबधित वर्तमान समिति की अपेक्षा विभिन्न उद्योगो के प्रारभ की योजना की परिकल्पना के लिए एक आयोग की स्थापना अपेक्षाकृत अधिक लाभदायक होगी।···इस दिशा मे विकास का अर्थ हमारे साधनो का समुचित रूप मे विकास नही है।

जी० एस० अय्यर न भी इस विषय पर बल देकर कहा

> सरकारी राजस्व धन-सपत्ति के उत्पादन के सवर्धन पर खर्च न होकर केवल सामान को एक स्थान मे दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए खर्च किए जा रहे है। यह एक स्पष्ट बात है कि जो थोडी सी सम्पत्ति पहले से ही विद्यमान है उसको इधर-उधर करने की अपेक्षा नई सपत्ति के उत्पादन का लक्ष्य अधिक महत्वपूर्ण है।[67]

इसके अतिरिक्त रेलो की अपने आप मे उपयोगिता देश की उत्पादन शक्ति पर निर्भर है,[68] अर्थात राष्ट्रीय आर्थिकता और उद्योग द्वारा उनके उपयोग की क्षमता पर आश्रित है। जब तक रेलें राष्ट्रीय उद्योगो के अपेक्षाकृत अच्छे संगठन के लिए लाभप्रद अन्य अधिक महत्वपूर्ण साधनो को साथ नही ले पाती तब तक वे अकेले उस देश की प्रबल शक्ति मे योग नही दे सकती, जो अकेले ही उनकी व्यापक महत्ता की सुदृढ आधारशिला की व्यवस्था करता है।[69] जब और ज्यो ही देश का उद्योगीकरण हो जाएगा तब अधिकाधिक रेलें भी बनाई जा सकेंगी। परतु इस समय जबकि देश कृषिप्रधान है, तेज गति से

रेलपथो का निर्माण सर्वथा निरर्थक ही है।[70] इसके विपरीत यदि रेलो के साथ साथ भारत के उद्योग और व्यापार का विकास होता तो रेलो का विकास स्वस्थ और लाभप्रद भी होता और जन समर्थन का अधिकारी बनता।[71] उदाहरणार्थ 30 अप्रैल 1884 के अंक मे सहचर ने लिखा

> पहले से बने रेलो के लिए पर्याप्त मात्रा मे यातायात को पाना आवश्यक है परतु यह तब तक सभव नही होगा जब तक कि देश के निजी उद्योगो का विकास नहीं होता।··· पहले इस देश मे कपडे की मिले, लोहे को ढलाई के कारखाने और इस प्रकार अन्य औद्योगिक प्रयत्नो की स्थापना होने दीजिए, तब देखिए रेले कच्चे माल और पक्के उत्पादनो के वाहन व्यवसाय को किस प्रकार लाभप्रद बनाती है।[72]

परन्तु पर्याप्त विश्वास के साथ आशा किए जाने पर भी वास्तव म एसा कुछ न हुआ।[73] भारतीयो ने सोचा कि रेले अपने आप न तो उद्योगो को जन्म द सकती है और न ही देश की आर्थिकता के विकास का जन्म दे सकती है।[74] इसके लिए तो कुछ और परिस्थितिया भी अपेक्षित थी। भारतीय अर्थशास्त्रियो ने यह देखा कि उनका अनुभव अमरीका के अनुभव से सर्वथा भिन्न रहा है। वहा तो औद्योगिक क्रांति को आगे ले जाने म रेले सहायक रही है।[75] इसके विपरीत भारत मे रेलो न औद्योगिक आदोलन का उदासीन बनाने मे भारत के प्राकृतिक ससाधनो के शोषण म तथा विदेशी व्यापार और उद्यम को प्रोत्साहन देने मे सहायता दी है। वाणिज्य की शक्ति ने औद्योगिक नही, केवल व्यावसायिक क्राति का ही प्रवंतन किया है।[76] रेलो ने यहा तो सामान्य पथो पर स्वस्थ भौतिक प्रगति का अवरुद्ध करके तथा राष्ट्रीय गतिविधि को उसके अपने ही केंद्र में अस्तव्यस्त करके आधुनिक उद्योग के विकास मे बाधा पहुचाई है।[77]

इस सबका स्पष्ट अभिप्राय यह था कि द्रुत औद्योगिक विकास के बिना रेलो के विकास की चर्चा एक प्रकार से पागलपन के अतिरिक्त और कुछ भी नही थी अथवा जी० वी० जोशी के शब्दो मे · इस देश में देश के आर्थिक साधनो के बाहर अमरीका की गति पर रेलो को आगे बढाने की सुस्पष्ट नीति यदि अपने साथ अपेक्षाकृत अधिक महत्व के अन्य आर्थिक उपायो को नही अपनाती तो राष्ट्र की दरिद्रता के रूप मे ही उसका अत होगा।[78]

अंतिम, भारतीय नेताओ ने बताया कि भारत के साधन अत्यत सीमित है और उनस अत्यत विस्तृत क्षेत्र मे कार्य नही किया जा सकता, और क्षुद्र साधनो के कारण अनेक क्षेत्रो मे स हमे चनाव करना है। भारतीय लोकनायको के मन मे सदेह का लेश भी नही था कि औद्योगिक पिछडापन भारतीय अर्थव्यवस्था का विषम पाप है और उद्योग को परिवहन पर प्रमुखता अवश्य ही मिलनी चाहिए।[79] उन्होने इसलिए सरकार से फिलहाल रेलो को दी जाने वाली राजकीय सहायता को अधिक उत्पादक प्रयासो, उद्योग और सिचाई की ओर दिशा परिवर्तन की माग की।[80]

उन्होने औद्योगिक आवश्यकताओ के साथ रेलो के सुसगत समन्वयन के अतिरिक्त कुछ अन्य अभिसंधानो को भी प्रस्तुत किया। वे चाहते थे कि रेलो के निर्माण की गति तथा कार्यक्षेत्र के निर्णय मे उन अभिसंधानो को समुचित महत्व दिया जाए। इस प्रकार

का निर्धारक और सीमक तत्व था भारतीय वित्त की बिपन्न अवस्था और करदाता पर पहले से ही भारी बोझ। व्यापक दृष्टि से उनका मंतव्य था कि रेलों के निर्माण में अपनाई जा रही द्रुतगति की दर के औचित्य को सिद्ध करने के लिए न तो भारत पर्याप्त धन-सपन्न था, न उसके साधन पर्याप्त विस्तृत थे और न ही उसके वित्त पर्याप्त समृद्ध थे।[81] उनके विश्वासानुसार दूसरी विचारणीय बात यह है कि रेल निर्माण को प्रधानतया उपलब्ध स्वदेशी पूजी पर ही निर्भर रखना चाहिए।[82] रेलों के विस्तार कार्य के लिए स्टर्लिंग ऋण मे और अधिक वृद्धि किसी भी रूप मे नही होनी चाहिए क्योंकि इससे केवल भारत मे धन की निकासी मे ही वृद्धि होगी।[83]

भारतीय नेताओं के अनुसार वर्तमान स्थिति मे शोचनीय तथा सतर्कता की अपेक्षा करने वाला एक अन्य तत्व यह था कि अधिकतर प्रारंभिक रेलों की पटरियों के लिए भारत को अनुबंधित और निश्चित एक शिलिंग दस पेंस के लिए एक रुपया विनिमय दर पर प्रतिभूत ब्याजो के भुगतान के लिए इंग्लैंड को रुपया भेजने मे विनिमय पर होने वाला भारी घाटा था तथा रेलो पर लिए गए ऋणों पर ब्याज के पौंडो मे भुगतान के लिए राज्य रेलवे ने लंदन के वित्त बजार मे उस समय अनुबंध किया था जब पौंड के मुकाबले भारतीय रुपये की कीमत निरंतर घट रही थी।[84]

बहुत सारे भारतीयो का यह भी मत था कि नई रेल लाइनों की स्वीकृति से पूर्व यह सम्यक रूप से देखभाल कर निश्चित कर लेना चाहिए कि वे आर्थिक रूप से कहा तक लाभप्रद हो सकती है।[85] उनकी यह युक्तियुक्त धारणा थी कि बहुत सारे रेलपथ आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नही है। यदि यह सत्य नही है तो फिर ब्रिटिश पूजीपति प्रतिभूति बिना पाए ही क्यों नही इन रेलपथो के निर्माण को हाथ मे लेते?[86]

नुछेक का तो यहा तक मत था कि रेलों की कितनी ही विशेषताएं क्यो न हो आर्थिक राजनीतिक, सैनिक तथा अकाल सुरक्षा आदि उद्देश्यों के लिए आवश्यक जितने रेलपथ बनने थे, पहले ही बन चुके है। अब तो सरकार को अपना सारा ध्यान राष्ट्र के पुर्ननिर्माण के अन्यान्य क्षेत्रो की ओर देना चाहिए। नए रेलपथों के निर्माण मे तो तभी हाथ लगाना चाहिए जब उपर्युक्त सभी दूसरे पक्ष अनुकूल हो।[87]

भारतीय राष्ट्रवादी भारतीय वित्त की स्थिति, स्वदेशी पूजी की अप्राप्यता, वर्तमान और निर्माणाधीन रेलो का लाभप्रद न होना, भारतीय उद्योग के साथ रेलों के समन्वय की आवश्यकता और साथ ही विविध आर्थिक पक्षो और शक्तियो के बदलते सह संबधो के कारण रेलपथो के कुछ विस्तार की अपरिहार्यता की समझ इन सभी पक्षों पर सामूहिक रूप से विचार करने के उपरात 1884 के[88] पश्चात यह अनुभव करने लगे कि यद्यपि रेलो के द्रुत विकास की अथवा उनके अधाधुध विकास की आवश्यकता तो नही है फिर भी आवश्यकता के अनुरूप उचित समय पर रेलें बनाई जा सकती है परंतु इस दिशा मे सरकारी तौर पर जिस गति की वकालत की जाती है उसकी अपेक्षा अत्यधिक मंद गति ही अपनाने की आवश्यकता है।[89] कइयो ने तो इसमे यह बात भी जोड़ी कि सरकार रेलपथों के और अधिक विस्तार का दायित्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूप से लोक वित्तो पर न डाले।[90] सभी, भावी पथो का निर्माण विशुद्ध व्यावसायिक दृष्टि से हो

अर्थात् राज्य को स्वयं न तो किसी प्रकार से भागीदार बनना चाहिए और न ही राज्य के द्वारा किसी प्रकार की प्रतिभूति दी जानी चाहिए। निजी कंपनियों को स्वयं ही खतरा उठाकर यह कार्य करना चाहिए।[91]

इस संदर्भ में 1898 में फोलर आयोग के समक्ष अपना साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए आर० सी दत्त महोदय ने एक अद्भुत सुझाव दिया कि 'नई रेलों की स्वीकृति से पूर्व लोक प्रतिनिधियों से परामर्श कर लेना चाहिए।' एक अन्य स्थल पर उन्होंने जोर देकर कहा 'रेल नीति के संबंध में सरकार लोकहितों की बलि चढ़ा रही है, इसका कारण यह है कि प्रभावशाली वर्गों के मुकाबले बेचारी जनता को अपना मत अभिव्यक्त करने तथा उसे मनवाने का सांविधानिक अधिकार ही प्राप्त नहीं है।[92]

संगठन का स्वरूप

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने रेलों के निर्माण की गति के संबंध में विस्तृत विवेचन के अतिरिक्त रेलों के संगठन के स्वरूप पर भी ध्यान दिया, परंतु उन्होंने इस संबंध में समस्या के केवल एक पक्ष अर्थात रेलों के निर्माण और प्रबंध के लिए उपयुक्त अभिकरण की ओर ही ध्यान दिया। इस संबंध मे यह तथ्य ध्यान मे रखना चाहिए कि भारतीय नेता विशेषत: 1884 के उपरांत, रेलों के द्रुत विस्तार के विरुद्ध थे, अत: उनका सारा क्रोध इसी एक पक्ष पर केंद्रित रहा। फलत: रेल निर्माण के अन्यान्य पक्षो पर राष्ट्रवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति विरल तथा विकीर्ण ही रही। सभी प्रश्नों का उत्तर वे यह कहकर देते थे कि हमे रेलों की कोई आवश्यकता नही।

लार्ड रिपन के वायसराय काल मे उस समय भारतीय जनता की दृष्टि से रेल के निर्माण के लिए प्रत्यक्ष राज्य अभिकरण के और निजी कपनियों के सापेक्ष लाभों का प्रश्न सामयिक विवेचन का विषय बन गया, जब वायसराय के वित्त सदस्य इवेलिन बैरिंग ने 1881 में निजी निर्माण के पक्ष में सरकारी एकाधिकार के आंशिक परित्याग, अर्थात सरकारी सहायता के बिना अथवा किसी भी स्थिति में इस प्रकार की न्यूनतम सहायता की वकालत की। बाद में 1883 मे भारत सरकार ने योजना बनाई कि उत्पादक रेल पथ निजी कपनियों को पट्टे पर दे दिए जाएं और सामान्य सिद्धात के रूप में सरकार व्यावसायिक दृष्टि से अलाभप्रद होने के कारण से अथवा किन्ही अन्य कारणो से निजी कंपनियों द्वारा न किए जा सकने वाले रेलपथों का निर्माणकार्य ही करे।[93] परवर्ती वर्षों में इस नीति पर व्यापक रूप से अमल किया गया और उत्तराधिकारी राज्यसचिवो, गवर्नर जनरलों तथा राबर्टसन जैसे रेल अधिकारियों द्वारा इसका अनुमोदन और प्रशंसन किया गया।

दूसरी ओर रेलो के विकास से संबंधित तथा सभी भारतीयों को समान रूप से मान्य प्रश्न था प्रतिभूति प्रथा से भारत को पहुंचने वाली हानि। उनकी दृष्टि में इससे राष्ट्रीय वित्तों पर असह्य भार पड़ता था, अतः भविष्य मे इसे जारी न रखने की प्रबल और अपरिहार्य आवश्यकता थी।[94] भारतीयों के मत में इस प्रतिभूति का अत्यंत आपत्तिजनक पक्ष यह था कि इससे कंपनी को अविवेकपूर्ण और परिणामहीन फिजूल खर्च के लिए

प्रोत्साहन मिलता था। कंपनी के पास मितव्ययी होने के लिए कोई प्रेरणा ही नहीं थी क्योंकि वह जितना भी व्यय कर ले, सरकार उसपर प्रतिभूत ब्याज राशि देने को प्रस्तुत थी। उल्लेखनीय यह है कि यह उस समय था जबकि ब्याज राशि से अधिक उपार्जन की कोई संभावना ही नहीं थी।[95] जुलाई 1881 में पूना की 'सार्वजनिक सभा' पत्रिका में अज्ञातनाम लेखक के प्रकाशित एक लेख, 'पार्लियामेंटरी कमेटी आन इंडियन पब्लिक वर्क्स' मे जस्टिस रानाडे ने रेल प्रतिभूति के विरुद्ध भारतीय चिंतन को बड़े ही रोचक और संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया

> ब्याज की प्रतिभूति निर्धारित दर बहुत ऊंची होने के कारण (इंग्लैंड में पूंजी पर मिलने वाले लाभों से बहुत ही ऊंची) यह पाया गया है कि कंपनियां रेलों के निर्माण मे अथवा निर्माण के उपरांत उनके प्रबंध मे पर्याप्त रूप से मितव्ययी नहीं है। उनका हित वस्तुत: इसी मे था कि वे यथासंभव व्यय की राशि का अंक ऊंचा रखें क्योंकि जितना अधिक धन वे लगा पाएंगी, उतनी अधिक ही प्रतिभूति व्याजराशि को पाने की वे अधिकारी होंगी।[96]

जब एक बार रेलों की प्रतिभूति प्रथा को समाप्त कर दिया गया और यह तथ्य भी स्वीकार कर लिया गया कि कुछ नवीन रेलपथों का निर्माण अपरिहार्य था, तो प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि निर्माण कार्य के लिए क्या विकल्प व्यवस्था अपनाई जाए। राष्ट्रवादी इस विषय मे एकमत नही थे। एक वर्ग की मान्यता थी कि करदाताओं पर और अधिक भार न डालने की दृष्टि से सरकार को रेलपथो पर जन कोशों का व्यय नही करना चाहिए तथा नए निर्माण का सारा क्षेत्र वास्तविक अप्रतिभूत निजी उद्यम पर छोड़ देना चाहिए।[97] दूसरा, और कदाचित अधिक मुखर तथा दूसरे पक्ष मे भी संबंधित वर्ग जिसके अंतर्गत जी० वी० जोशी तथा अन्य महानुभाव सम्मिलित थे। निजी स्वामित्व का विरोधी तथा सरकारी उद्यम का समर्थक था। दूसरे वर्ग के पक्षधरों द्वारा अपने समर्थन में प्रस्तुत कारणों की समीक्षा से पूर्व हम यहां यह बताना चाहेंगे कि प्रथम मत के पक्षधरों ने भी उन्ही कारणों के आधार पर यह मांग की थी कि सरकार को उपयुक्त समय पर कंपनियों के साथ किए गए समझौतों और निर्धारित शर्तों के अनुरूप प्रतिभूत रेलो को खरीदने के अधिकार अपने हाथ में रखने चाहिए।[98] इसके अतिरिक्त वे सरकार द्वारा निर्मित अथवा अधिकृत रेलों के संचालन के लिए कंपनियों को पट्टे पर दिए जाने के विरुद्ध थे।[99]

राज्य रेलपद्धति के पक्षधर नेताओं का विश्वास था कि इस समय वास्तविक चुनाव यथार्थ निजी उद्यम तथा सरकारी उद्यम का न होकर सरकारी उद्यम और प्रतिभूत कंपनियों की पुरानी प्रथा का है और इन दोनों मे सरकारी उद्यम निश्चित रूप से अधिक अच्छा और अधिक मितव्ययी था।[100] उनका तर्क था कि विदेशियों की निजी कंपनियों से देश के सामान्य हितों के संरक्षण के लिए पूर्ण दायित्व तथा उद्देश्य की समग्र एकता से कार्य करने की अपेक्षा ही नहीं की जा सकती क्योंकि कभी कभी तो लोकहितों के लिए निजी हितों की बलि ही चढ़ानी पड़ती है।[101] उनकी मान्यता थी कि वित्तीय दृष्टि से प्रतिभूत रेलप्रथा की अपेक्षा राज्य रेलों से अधिक लाभ थे क्योंकि सरकार को अच्छी साख के कारण अधिक ऋण मिल सकते थे। सरकार सदैव ब्याज की कम दर पर ऋण लेने में समर्थ थी और

अतीत में कहीं भी सूद की दर इतनी ऊंची नहीं रही जितनी कि 5 प्रतिशत प्रतिभूत।[102] इसके अतिरिक्त ऋण ली गई पूंजी पर ब्याज चुकाने के उपरांत राज्य रेल के अवशिष्ट लाभ भी देश में ही रहेंगे न कि निजी उद्यमियों के हाथ में पड़कर विदेशों को भेजे जाएंगे।[103] 3 फरवरी 1884 के अंक मे मराठा ने तो सुझाव दिया कि राज्य ऋणों पर ब्याज और 5 प्रतिशत प्रतिभूत ब्याज के अंतर का उपयोग मूल ऋण को चुकाने में करने पर लाभराशि और ब्याज राशि दोनों को देश मे ही रखा जा सकता था।[104]

जी० वी० जोशी महोदय के अनुसार राज्य रेल व्यवस्था केवल निषेधात्मक रूप मे ही सही, राजनीतिक दृष्टि से लाभप्रद थी।···यह भारतीयों हितों के विरोधी सशक्त विदेशी निहित स्वार्थों के विकास को अवरुद्ध करेगी [105] बंगला साप्ताहिक 'सहचर' ने अपने 30 अप्रैल 1884 के अक में भारतीय रेलवे पर एक विस्तृत समीक्षात्मक लेख के अंत में इस दृष्टिकोण को अत्यंत जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया :

> क्या इन तथ्यों की दृष्टि मे यह उचित है कि असंख्य रेलपथों का निर्माण किया जाए और जनता को रेल कंपनियों के हाथ मे दास बनने के लिए विवश किया जाए ? क्या सरकार भारत को दूसरा मिस्र बनाना चाहती है ? इसके बाद केवल सरकार को रेलों का निर्माण करना चाहिए।[106]

इस वर्ग के भारतीय नेताओं की निजी उद्यम के विरुद्ध गंभीरतम आपत्ति यह थी कि उसका चरित्र विदेशी था और वह इसके फलस्वरूप लाभों का निर्यात करता था। उनमे मे बहुतो ने बार बार बल देकर कहा कि यदि विशुद्ध भारतीय कपनिया बनाई जाएं तो निजी उद्यम का बांछनीय रूप से स्वागत होगा।[107] सचमुच ही इस पक्ष के नेताओ ने तथा प्रथम विचारधारा के समर्थक अनेकानेक नेताओ ने रेल-निर्माण के सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों मे भारतीय पूजी और उद्यम के विनियोजन के पक्ष मे अपना स्वर मुखरित किया।[108] उदाहरणार्थ 'मराठा' ने 14 जनवरी 1883 के अक मे एक लेख प्रकाशित किया जिसमे माग की गई थी कि अब सरकार की नीति भारत मे स्वदेशी प्रबध, स्वदेशी पूजी, भडार और श्रम साधनों से रेलों के निर्माण की होनी चाहिए। 7 दिसबर 1902 के अक मे पत्र ने माग की कि यदि रेलो का निर्माण अवश्य करना ही है तो वह यथासभव भारतीय पूजी से ही करना चाहिए। रेलो मे स्वदेशी पूजी के लगभग शून्य निवेश पर दुःख प्रकट करते हुए समाचारपत्रों ने भारतीय जनता, विशेष रूप से पूजीपतियों को रेलो के निर्माण के लिए निजी कपनिया चालू करने के हेतु धन जुटाने को प्रबोधित किया।[109] उन्होंने सरकार पर भारतीय पूजी को आकृष्ट न करने का अभियोग लगाते हुए उससे भारतीय कंपनियों के प्रति भारतीय पूजी लगाने के लिए विशेष व्यवहार करने का अनुरोध किया।[110] यह अत्यत रोचक तथ्य है कि 'हिंदू' ने जहा अपने 10 अगस्त 1887 के अक मे प्रतिभूति प्रथा को व्यर्थ बताते हुए उसकी निंदा की, वहा 3 अगस्त 1887 के अंक मे भारतीय उद्यमियो के के लिए प्रतिभूति की मांग करने मे सकोच नही किया। कुछ नेताओ ने यह भी अनुमोदन किया कि विशुद्ध भारतीय पूजी के सामर्थ्य के अनुरूप ही रेलपथो के निर्माण की गति को मंद बनाना चाहिए।[111]

बहुत सारे भारतीय नेताओं ने यह अनुभव किया कि सर्वोत्कृष्ट इच्छाओ के बावजद

भारत मे रेल निर्माण के लिए पर्याप्त पूजीगत विशाल साधनो वाली निजी कपनियों की स्थापना संभव नही थी, अत. उन्होने राज्य एकाधिकार व्यवस्था का ही समर्थन किया।[112] अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 5 मार्च 1885 के अक मे लिखा 'भारत जैसे देश मे, जहा के लोग इतने अधिक निर्धन हैं, इतने अधिक अनुत्साही हैं कि वे अपनी पूजी से रेलो का प्रबध नही सभाल सकते, विदेशियो द्वारा देश को निर्धन बनाने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा है कि सरकार स्वय व्यापारी की भूमिका निभाए तथा लाभो का अर्जन करे।' सरकार द्वारा रेलो के निर्माण और सचालन मे एक महत्वपूर्ण सभव आपत्ति यह थी कि उससे अत्यधिक केद्रीकरण तथा अनियत्रित अफसरशाही आ जाती है। इस बुराई का जी० वी० जोशी द्वारा सुझाया हुआ उपचार था रेल प्रबधो का विकेद्रीकरण तथा विभिन्न प्रातीय और स्थानीय अधिकारियो के हाथ मे रेलो के प्रारभ तथा प्रबध के अधिकार सौंपना।[113] 'मराठा' ने 3 फरवरी 1884 के अक मे रेलो के सचालन के लिए लोक-समितियो और न्यासो के सगठन का परामर्श दिया। 'हिंदुस्तान रिव्यू' और 'कायस्थ समाचार' पत्रो ने अपने अपने मई 1903 के अको मे सुझाव दिया कि सरकारी और गैर-सरकारी विशेषज्ञो की एक सयुक्त समिति के रूप मे रेल प्रबध के लिए एक रेल न्यास (रेलवे ट्रस्ट) बनाया जाना चाहिए।

रेलें बनाम सिचाई

इस समय भारतीय नेताओ के सिचाई के प्रति दृष्टिकोण पर विचार कर लेना चाहिए। यद्यपि इस समय रेलो और सिचाई का पारस्परिक सबध स्पष्ट नही है परन्तु विवेच्यकाल की अवधि मे दोनो मे अत्यत घनिष्ठ सबध था।[115] भारतीय नेताओ और सरकारी अधिकारियो दोनो ने रेलो और सिचाई को परस्पर विरोधी तत्व के रूप मे ग्रहण किया। दोनो ने भारत म पडने वाल अकालो की अत्यत उपयोगी औषधि के रूप मे अपने अपने पक्ष (रेल तथा सिचाई) को प्रस्तत किया तथा राज्य के सीमित वित्तीय साधनो के अपने पक्ष मे विनिधान के लिए मुकाबला किया।

1902-03 के अन्त तक छोटे-बडे सिचाई कार्यों पर सरकारी राजस्व का कुल व्यय लगभग 43 करोड रुपए था जबकि इसके विरुद्ध राज्य का और कपनियो का रेलो पर प्रतिभूत कुल व्यय 30 जून 1905 तक 359 करोड रुपए था।[116] इस तथ्य पर भारतीय नेताओ ने उचित ध्यान दिया और इसकी आलोचना की, फिर चाहे इस सबध म राष्ट्रीय आदोलन देर मे शुरू हुआ था। परतु उसने प्रचड रूप 1897 के भयकर अकाल की अवधि मे और उसके पश्चात् ही धारण किया। आमतौर पर भारतीय नेताओ ने सिचाई के मूल्य पर रेलो के प्रति अनुचित पक्षपात के लिए सरकार की भर्त्सना की। उनकी यह स्पष्ट घोषणा थी कि इसे चहेती के रूप मे लेते हुए सिचाई के साथ सौतेली मा वाला बर्ताव किया जा रहा था। 1898 मे आर० एम० स्यानी ने वायसराय की विधान परिषद मे यह प्रश्न उठाया और शिकायत की कि जबकि रेलो पर सरकारी अनुग्रह के रूप मे बहुत खर्च होता है, वहा अकालो से अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षा देने वाली सिचाई नहरो पर केवल 75 लाख रुपए की अनुमति दी जाती है। दूसरे शब्दो मे रेलो पर व्यय किए जाने

वाली राशि का लगभग तेरहवा भाग प्रतिवर्ष सिंचाई पर खर्च किया जाता है।[117] इस विषय पर आर० सी० दत्त सरकार के तीव्रतम आलोचक थे। 1903 मे उन्होने लिखा कि जब हम रेलो से सिचाई कार्य के विषय की ओर आते है तो एक ओर हमे मर्खतापूर्ण फिजूलखर्ची मिलती है और दूसरी ओर उतनी ही मूर्खतापूर्ण कजूसी।[118] इसी प्रकार की समालोचना अन्य अनेक समकालीन जन नेताओं और पत्रकारो ने भी की।[119]

सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली नीति के विरुद्ध भारतीय नेताओ का तर्क था कि वास्तविक जनहित की दृष्टि मे: अधिक रेलो की अपेक्षा सिचाई कार्यों की ही अधिक उपयोगिता है। 'मराठा' ने अपने 17 फरवरी 1884 के अक मे बल देते हुए कहा कि जहा वाणिज्य सदन का हित इसी मे है कि वह रेलो के झडे के नीचे ही अर्थात रेलो के लिए संघर्ष करे, वहा हमारा हित इसी मे है कि हम नहरो के लिए सघर्ष करे। केसर ए हिंद ने 23 अगस्त 1903 के अक मे चालू एक सवा एक करोड रुपयो की तुच्छ राशि के स्थान पर चार पाच करोड रुपयो की राशि सिचाई कार्यों पर खर्च करने की वकालत करते हुए भारतीय दृष्टिकोण को इन शब्दो मे प्रखर अभिव्यक्ति दी

> निस्सदेह यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि नए रेल निर्माण पर भारत सरकार को प्रतिवर्ष पाच-छ करोड की न्यूनतम राशि खर्च करनी पडती है और इस स्थिति मे वह सिचाई कार्यों के लिए बहुत बडी राशि नही जुटा सकती। इस तर्क को स्वीकार करते हुए हमारा कथन यह है कि अब समय की माग यह है कि रेलो के निर्माण की गति मद स्तर पर लानी चाहिए ··अतत हमने वर्तमान भयकर अकालो की अवधि मे जो महगा अनुभव प्राप्त किया है, और अनत लाखो मनुष्यो और कृषि पशुओ का जो भयकर विनाश हुआ है, क्या सरकार इन सबको देखते हुए भी स्वार्थी वाणिज्य सदन को प्रसन्न करने के लिए उन लाखो स्वदेशी लोगो के हितो की जो आज भी पूरे-पूरे माल अपर्याप्त भोजन पर जीवन निर्वाह का विवश है अपेक्षा करते हुए रेल निर्माण के द्रुतविकास की नीति को अपनाएगी और सिचाई की योजना की परिधि को सकुचित करेगी। जबकि यह निश्चित है कि उसमे ही देश के सारे असुरक्षित क्षेत्र मे क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सकता है।[121]

कुछेक भारतीय नेताओ ने अनुभव किया कि भारतीय कृषि की आवश्यकताओ और स्थिति की सभावनाओ के परिप्रेक्ष्य मे सिचाई की उपलब्ध सुविधाए अपर्याप्त थी।[122] उन्होने सिचाई की बहुमुखी सुविधाए जुटाने के लिए ब्रिटिश पूर्व शासको और राजाओ की भरपूर प्रशसा की।[123] उन्होने सिचाई के द्रुत और व्यापक विकास की माग की क्योकि उनकी दृष्टि म इन सुविधाओ मे ही भारत की व्यावहारिक मुक्ति निहित थी।[124]

भारतीय नेताओ ने रेलो की अपेक्षा सिचाई को महत्व क्यो दिया? इसका कारण यह है कि अधिकाश भारतीयो की दृष्टि मे रेलो की अपेक्षा सिचाई अकालो को रोकने के लिए अधिक प्रभावशाली तथा विश्वसनीय उपचार था।[125] रेलें केवल उपशमक थी और इस प्रकार वे जहा अकाल के अत्यन्त घृणित प्रभाव को मद कर सकती थी वहां सिचाई कष्ट की जड तक जाती थी और इस प्रकार अकालो को रोक सकती थी। रेले देश के विभिन्न भागो मे खाद्यान्न की उपलब्ध मात्रा के समान वितरण मे अधिक कुछ नही कर

सकती थीं; दूसरी ओर सिंचाई अपने आप में खाद्यान्न के उत्पादन में वृद्धि कर सकती थी।[126] जैसा हम पहले ही दिखा चुके हैं, भारतीय नेताओं का वास्तव मे यह विश्वास था कि सामान्य वर्षों में रेलों ने खाद्यान्नों के निर्यात की सुविधा जुटाकर इनकी कमी को अकाल में बदला है।

भारतीयो द्वारा सिंचाई के पक्ष में प्रस्तुत एक अन्य तर्क था उसकी लाभप्रदता। उन्होंने यह निर्देश किया कि सिंचाई कार्य आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है, वे 6 से 9 प्रतिशत लाभ उगाहते है, जबकि रेलें लगातार घाटा ही दिखाती आ रही है[127] कुछ भारतीय नेताओं ने सिंचाई नहरों का सस्ते परिवहन साधन के रूप मे उपयोग किए जाने की संभावना का भी निर्देश किया।[128]

यह भी एक रोचक तथ्य है कि कुछ भारतीय नेता यह देखने-समझने मे भी सफल हुए कि सिंचाई पर खर्च होने वाली पूजी भारतीयो के लिए रोजगार के अवसर भी जुटाती है क्योंकि बहुत-सा पैसा कुओं और नहरों आदि की खुदाई पर खर्च होता है, जबकि रेलों पर खर्च होने वाली अधिकांश पूजी से संबधित सामग्री का संभरण करने वाले विदेशी देशों को ही लाभ पहुंचता है।[129] एक महानुभाव तो और गहराई से उस समय विशेष मे भारत के आर्थिक विकास की अवस्था मे सिंचाई और रेलों के तुलनात्मक गुणों को अत्यंत कुशलता से सहसबंधित करने मे सफल हो गए। नेटिव ओपीनियन ने 9 सितंबर 1883 के अंक मे लिखा 'हमारा विश्वास है कि नहरें हमारी राजस्व व्ययन पद्धति मे तथा हमारे साधनो के शैशव विकास मे भारी गहनों के रूप वाली रलो की अपेक्षा अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। नहरें धरती की उत्पादक शक्ति को बढ़ाकर हमारे राजस्व मे वृद्धि करेंगी और हमे हमारी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पूजी जुटाएगी।

यदि सिंचाई का पक्ष इतना ही सजीव और सशक्त था तो फिर भारत सरकार ने नहरों के विकास की उपेक्षा क्यों की ? इस प्रश्न के उत्तर की खोज मे कुछ भारतीय नेताओ को इस विषय मे एक बार पुन: देश के शासकों के उद्देश्य का वेदनाजनक पुनर्मूल्यांकन करने को बाध्य होना पडा। 20वीं शती के प्रारंभ मे उन्होने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि सिंचाई की उपेक्षा ब्रिटिश व्यापारियों, उत्पादकों और निवेशकों के हितों की सुरक्षा तथा सेवा के लिए भारतीयों के हितो की बलि चढ़ाने की विदेशी शासकों की स्वार्थपूर्ण और गहरी ब्रिटिश प्रवृत्ति का ही परिणाम थी। इस मत को कई बार तो अत्यंत सुस्पष्ट अभिव्यक्ति दी गई। आर० सी० दत्त ने 1901 मे लिखा : 'जैसीकि आशा थी भारत के साथ ब्रिटेन के व्यापार की सुविधापूर्ण बनाने वाली रेलों को ही प्राथमिकता दी गई है न कि भारतीय कृषि को लाभ पहुंचाने वाली सिंचाई को'[130] 23 अगस्त 1903 के अंक में कैसर ए हिन्द ने अत्यंत सूक्ष्म दृष्टि तथा स्पष्टता से लिखा :

> भारत सरकार का विनाशमूलक पग तो यही देखने को मिलता है। हम यह कहने का साहस कर सकते हैं कि सरकार स्वदेशी और ऋणग्रस्त कृषकों के उद्धार की चिंता की अपेक्षा वाणिज्य सदन तथा विदेशी व्यापारियों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक और अपरिमित अनुराग रखती है। सरकार कितना ही कपट क्यों न करे, मुट्ठीभर विदेशी स्वार्थियो के हितों पर बहुसंख्यक जनता के हितों की बलि चढ़ाने की

अनुमति देना सरकार के प्रशासन का एक एक शोचमुच ही सचनीय पक्ष है [131]
सामान्यत· नरमपथी 'इन्दु प्रकाश' ने अपने 30 नवबर 1904 के अक मे लिखा .

> भारत जैसे विशुद्ध कृषिप्रधान देश मे नहरों के महत्व को अतिरजित करने की सभावना ही दिखाई नही देती परतु दु ख तो यह है कि देश का प्रशासन लोकहितो को गौरव ही नही देता । अगरेजी व्यापारियो को इस देश मे मडी के विस्तार के लिए रेलें चाहिए और यह सरकार उनके लाभार्थ रेले जुटा रही है ।[132]

प्रारंभ मे भारतीय आदोलन का प्रशासन पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा, उसने इसे अनदेखा कर दिया ।[133] उदाहरणार्थ 1901-2 के बजट भाषण मे लार्ड कर्जन ने इस समस्या का विस्तृत विवेचन करने के उपरान यह निष्कर्ष निकाला कि सिचाई से अकालोन्मुख सूखाग्रस्त जिलो की सुरक्षा अथवा वहा के विपिन्न लोगो की सहायता की अपेक्षा नही की जा सकती । वायसराय का तो इसके विपरीत यहा तक कहना था कि इससे तो समस्या के और अधिक विषम हो जाने की सभावना है क्योकि उनकी मान्यता थी कि वस्तुत मरुस्थल के ऊपजाऊ बनने के साथ ही जन्मदर भी बढ जाती है और इस रूप मे उपज बढने के साथ साथ खाने वाले मुख भी बढते है । कुल मिलाकर उनका मत था कि सिचाई का क्षेत्र सीमित है क्योकि 4 000,000 एकड भूमि मे अधिक भूमि की भविष्य मे सिचाई नही की जा सकती । उसने दृढतापूर्वक कहा कि सत्य यह है कि अकाल के विरुद्ध सरक्षण के रूप मे जितना सभव था और जितना शीघ्रता से अपेक्षित था उसमे से बहुत सारा सिचाई कार्य पहले ही सपन्न किया जा चुका है । जनता द्वारा कभी कभी समर्थित सिचाई कार्यो के सर्वथा अनिश्चित विस्तार की अब कोई सभावना ही नहीं है ।[134] परतु ऊपर से अतिम निर्णय के रूप मे दिखाई देने वाली यह घोषणा स्थिर रूप न रह सकी, सरकार अतत लोकमत का दबाव का अनुभव करने लगी । इसका स्पष्ट प्रमाण लार्ड कर्जन का अगले वर्ष का बजट भाषण है जिसमे उन्होने वकालत की 'अच्छी तरह चलते हुए घोडे को चाबुक मारना ठीक नही है । इस सरकार की अपेक्षा कोई भी पहले की भारत सरकार सिचाई को प्रोत्साहन देने के महत्व को सर्वाधिक प्रधानता का रूप नही दे सकी ।' उन्होने आलोचको से अपनी इच्छाओ की पूर्ण सच्चाई पर विश्वास करने का अनुरोध किया [135] अपनी इच्छाओ की सच्चाई के प्रमाण मे उसने सिचाई के प्रश्न की सामूहिक समीक्षा और अतर्हित सभावनाओ की परीक्षा के लिए एक आयोग की नियुक्ति कर दी । डी० ई० वाचा ने सत्य की स्वीकृति मे विलंब के लिए सरकार की भर्त्सना का अवसर हाथ से नही जाने दिया । 1901 मे काग्रेस के सभापतीय अभिभाषण मे उन्होने अपना मत प्रकट करते हुए कहा 'यह तो स्पष्ट दृष्टिगोचर है कि सरकार प्रबुद्ध लोकमत के मुकाबले पिछडी रही है ।[136]

सिचाई आयोग ने अप्रैल 1903 मे अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमे उसने 20 वर्षों के भीतर 65 लाख एकड धरती पर सिचाई करने के लिए 44 करोड रुपयो की अतिरिक्त राशि खर्च करने की सिफारिश की ।[137] लार्ड कर्जन ने आयोग द्वारा प्रकल्पित कार्यक्रम को स्वीकार करते हुए यह टिप्पणी की . 'यह मानवीय साधनो और शक्तियों की चरम सीमा का कार्यक्रम है और यह निजी उत्साह या सरकार की सगठित शक्ति का

प्रतीक है।[138] भारतीयों की आयोग के अनुमोदन के प्रति प्रतिक्रिया अनुकूल ही थी।[139] आलोचना का एकमात्र पक्ष यह था कि यह सब कुछ तुच्छ है। वस्तुत. आयोग को अत्य-धिक ऊंची राशि और थोडे समय मे ही कार्य निपटाने के कार्यक्रम का अनुमोदन करना चाहिए।[140]

निष्कर्ष

रेलो के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण के गहरे विश्लेषण मे यह तथ्य एक बार पुन स्पष्ट हो जाता है कि समीक्षाधीन अवधि के भारतीय राष्ट्रीस नेताओं का आर्थिक चितन गहरा था। उन्होने रेलो की भूमिका को अमूर्त रूप मे न देखकर समग्रत आर्थिक विकास के व्यापक सदर्भ मे ही देखा।

रेलो की वर्तमान नीति के अध्ययन से वे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस नीति का निर्धारण भारतीय जनता के हितो के सदर्भ मे नही हुआ था। यह तो उलटे भारतीय जनता की आवश्यकताओं की बहुत दूर तक उपेक्षा ही करती थी। वस्तुत प्रमुख रूप से ब्रिटेन के आर्थिक और राजनीतिक हितो के परिप्रेक्ष्य मे ही यह नीति निर्धारित की गई थी। उन्होंने यह भी देखा कि रेलें भारतीय अर्थव्यवस्था को औपनिवेशिक स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। वे पिछडे देश मे रेल विकास के और विकसित महा-नगरीय देश म उदीयमान वित्त शक्ति के सह सबध और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली राजनीतिक जटिलताओ को भी उजागर करने मे समर्थ सिद्ध हुए।

वे रेलों से औद्योगिक और कृषि सबधी वृद्धि के रूप म परिलक्षित आर्थिक विकास गतिशील बनाने हुए राष्ट्रीय आर्थिक हितो की सेवा की अपेक्षा रखते थे। उनके मत मे उपयुक्त रेल नीति वह है जो भारतीय उद्योग को उन्नत बनाए और उपयुक्त लोक कार्य नीति वह है जो सिचाई और कृषि को प्राथमिकता दे।[141] उनकी इच्छा थी कि रेल नीति भारतीय वित्त साधनो तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को उचित महत्व दे।

अत मे यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतीयो ने रेल नीति के स्वरूप को इस प्रकार लक्षित किया कि वह व्यापार की आवश्यकताओ को उद्योग की आवश्यकताओ के अधीन बनाए। इसका उद्देश्य भारतीय उद्योग को प्रोत्साहित करना हो न कि व्यापक आयात को उन्नत करना, अधिक खाद्यान्नो के उत्पादन को प्रोत्साहित करना हो न कि उनके व्यापक निर्यात को। इस प्रकार उनके मन की रेल नीति एक बार पुन विकासशील उस व्यापारी पूंजी के हित की समर्थक नही थी, जिसमे रेलें देश के अचलों मे पैर फैलाने ओर अधिकार जमाने मे सहायता प्राप्त कर रही थी और इस कारण जो निश्चित रूप मे ही रेलो के द्रुतविकास की समर्थक बन रही थी। उदाहरणार्थ 1888 मे बगाल राष्ट्रीय वाणिज्य सदन ने वायसराय लार्ड लैंस डोन को भेजी शिकायत मे देश और विदेश के व्यापार के हितो मे रेलो और सहायक सडको के द्रुतविकास की वकालत की। इससे पूर्व सदन ने रेल सम्मेलन को एक आवेदनपत्र भेजा था जिसमे उस समय प्रचलित रेल दरो के विशेषत निर्यात के लिए निर्धारित वस्तुओ, खाद्यान्न बीज और पटसन आदि, पर ऊंची रेल दरो को घटाने की वाच्छनीयता पर बल दिया था।[142] इस प्रकार 1899 मे लार्ड कर्जन

को प्रस्तुत मानपत्र में सदन ने इस तथ्य की निंदा की कि भारत में केवल 21,000 मील लंबे रेलपथ हैं और इसके फलस्वरूप दूर अंचल-प्रांतों में कितने ही विस्तृत प्रदेश हैं जिनका किसी भी वाणिज्य केंद्र से सीधा संपर्क नहीं है। मांगपत्र के अंत मे यह लिखा गया था : हम लोग, जो देश के व्यापार मे गहरी रुचि रखते है, श्रीमान महोदय के रेल विकास के आश्वासन का अत्यधिक स्वागत करेंगे।[113] भारतीय नेताओं के रेलों के द्रुत विकास के विरोध मे प्रस्तुत कारण और उद्देश्य तथा रेल विकास की उनके मनोनुकूल दिशा आदि के विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि व्यापारिक हितों की अपेक्षा औद्योगिक हित ही उनकी दृष्टि मे अधिक महत्वपूर्ण थे।

संदर्भ

1. यह भाग मुख्य रूप से, डैनियल थार्नर इनवेस्टमेंट इन एपायर (फिलाडिलफिया, 1950) होरेस बैल : रेलवे पालिसी इन इंडिया (लदन, 1897), जैक्स, पूर्वोद्धृत, 'दि इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, खंड III, पूर्वोद्धृत; एन सान्याल : डिवैल्पमैंट आफ इंडियन रेलवेज (कलकत्ता, 1930) और आर० डी० तिवारी . रेलवेज इन माडर्न इंडिया (बबई 1941) पर आधारित है.
2. इस दबाव के कारण, प्रकृति और सीमा तथा प्रयोग की विधिया विस्तार के साथ थार्नर द्वारा उनके पूर्वोद्धृत ग्रंथ मे निरूपित की गई है.
3. वही, पृ० 63.
4. डब्ल्यू० डब्ल्यू० हंटर · दि मारक्विस आफ डलहौजी (आक्सफोर्ड, 1895), पृ० 192-4 जिक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 212.
5. अमरीका मे कुछ रेलपथो के निर्माण का व्यय भूमि के मूल्य को मिलाकर केवल 2000 स्टर्लिंग पौंड प्रति मील था. बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 183
6. जिक्स में उद्धृत : पूर्वोद्धृत, पृ० 221-2 एक अन्य वित्त सदस्य रिटायर्ड आनरेरी एस० लेइग ने 1861 में सरकारी तौर पर एक लेख में यही सवाल उठाया (उद्धृत, एच० एम० जगतिआनी दि रोल आफ दि स्टेट इन प्रोविजन आफ रेलवेज (लंदन 1924), पृ० 981 राज्य सचिव को मार्च 1869 में प्रेषित अपनी डाक में भारत सरकार ने भी विशेष रूप से रेलपंथों के निर्माण के इस पक्ष की उग्र समालोचना की. उद्धृत, बैल : पूर्वोद्धृत, पृ० 98.
7. इंपीरियल गजेटियर, खंड III, पृ० 468.
8. 28 मार्च 1869 के संप्रेषण मे भारत सरकार ने निर्देश किया कि इस समय भारतीय रेलो की औसत आय केवल तीन प्रतिशत है. इसका परिणाम यह हो रहा है. कि अवशिष्ट प्रतिभूत ब्याज का भुगतान भारत सरकार को ही करना पड़ा रहा है. (उद्धृत, बैल : पूर्वोद्धृत, पृ० 97). 1858-9 से 1869-70 की अवधि में प्रतिभूत सूद की राशि का कुल भार (आय से अतिरिक्त, सरकार द्वारा देय) लगभग 140 लाख पौंड था जबकि यह राशि 1868-9 में 650 लाख पौंड थी. (तिवारी : पूर्वोद्धृत, पृ० 56).
9. बैल में उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 94.
10. इस संबंध में सामान्य निर्धारित व्यवस्था यह थी कि राज्य कोश पर रेलवे का सारा भार

राजस्व से प्रत्यक्ष व्ययों के रूप में अथवा रेलवे के ऋणों की सेवाओं के रूप में एक निश्चित सीमा से अधिक नही बढ़ना चाहिए. यह सीमा सदैव बढ़ाई अवश्य जाती थी परंतु निर्धारित सीमा का पालन भी अनिवार्यत. किया जाता था.

11. ब्रिटिश व्यापारी और उद्योगपति भारतीय विदेश व्यापार के वर्तमान आयामों से असंतुष्ट थे और वे भारतीय मंडी को आतरिक रूप से और पूरे तौर पर हथियाने के लिए तथा विशेष रूप से ब्रिटेन के लिए भारत से दूरतम प्रातों से कच्चा माल लाने के लिए अपेक्षाकृत अच्छी परिवहन सुविधा के लिए चिल्ला रहे थे. वस्तुत भारत का समुचित आर्थिक शोषण पर्याप्त आधुनिक सहायक सुविधाओ की माग करता था. प्रतिभूत रेलवे में निवेश को सुरक्षित मानने वाले निवेशको की ओर से भी नए सिरे से दबाव पड़ रहा था.
12. थार्नर · पूर्वोद्धृत, पृ० VIII
13 जेक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 227. इपीरियल गजेटियर (पृ० 414) के अनुसार भारत रूस से वर्गमील मे प्रतिमील रेलवे लाइन के मुताबिक आगे था और जनसख्या के हिसाब से प्रतिमील जापान से।
14 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 685. इंडियन स्पैक्टेटर ने 17 फरवरी 1884 के अक मे और जी० एस० अय्यर, ने 1898 मे 'इडियन पालिटिक्स', पृ० 182 में तथा 1903 में 'ई ए' पृ० 267 में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए
15 देखिए, जे॰ पूर्वोद्धृत पृ० 244-5 और इपीरियल गजेटियर, खड III, पृ० 365.
16 थार्नर मे उद्धृत, पूर्वोद्धृत, पृ० 9
17 सान्याल पूर्वोद्धृत, पृ० 146 मे उद्धृत चेसनी ने 1894 मे अपनी 'इडियन पालिटी' पुस्तक में दावा किया कि रेलपथो के वर्तमान विकास ने दुभिक्षो से भारत की रक्षा की है.
18 आई० सी० पी० 1896 खड XXXV, पृ० 345 और देखिए, कर्जन : स्पीचेज II, पृ० 280.
19 नौरोजी . पावर्टी, पृ० 193 एसेज, पृ० 122-3, 132 एस०एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 179; सी० पी० ए०, पृ० 270: इंडियन स्पैक्टेटर, 4 सित० (आर० एन० पी० बंब; 10 सित० 1881) 17 फरवरी 1884; मराठा, 24 फरवरी, 2 मार्च 1884, इदु प्रकाश, 21 अप्रैल 1884. सोम प्रकाश, 16 जून (आर० एन० पी० बग०, 21 जून 1884) हिंदू, 9 जनवरी 1885, 12 मई 1902 डब्ल्यू० सी० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 4, जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 671, रानाडे : एसेज, पृ० 87, बगवासी, 5 मई (आर० एन० पी० बग० 12 मई 1894) वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 22 जी० एस० अय्यर विलबी आयोग, खड III प्रश्न 18963, 18984 इडियन पालिटिक्स, पृ० 182, 191 पर. दत्त : इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 130. स्पीचेज I, पृ० 98, 100-101. स्पीचेज II, पृ० 76. बगाली, 27 अप्रैल 1901; एम० के पटेल, रिप० आई० एन० सी०, 1902, पृ० 141.
20 1853 में हाऊस आफ कामस को ब्रिटिश इडिया एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत स्मारक में लोक कर्म को उपयोगी बनाने की व्यवस्था न करने वाले तथा देश के साधनों के विकास की तथा वाणिज्य और उत्पादनो में वृद्धि की और उपज में उन्नति की संगणना न करने वाले 1833 के चार्टर ऐक्ट की आलोचना की गई थी. (भोलानाथ चद्र : राजा दिगम्बर मित्र, खड I, पृ० 74 पर उद्धृत) रामगोपाल घोष, द्वारकानाथ टैगोर तथा बंबई के व्यापारियों के प्रारंभिक रेलवे उद्यम को दिए गए प्रोत्साहन के लिए देखिए, थार्नर : पूर्वोद्धृत, पृ० 51, 77, 97; दादाभाई नौरोजी ने इन्हे भारत जेसे देश की ज्वलंत आवश्यकताओं में सचार का एक सस्ता साधन बताया और कहा कि ये एक प्रकार सर्वरोगनाशक औषधि हैं और इन्हीं पर भारत की आर्थिक मुक्ति निर्भर

है. उनका विश्वास था कि पिछले पचास वर्षों के प्रशासन मे रेलपथों और नहरों का निर्माण ही एकमात्र अथवा प्रधान शुभ कार्य था. इसके लिए सरकार का दावा सही है और उसे इसका भारी श्रेय मिलना ही चाहिए. भारतीय जनता सचमुच अंगरेज जनता के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है (एसेज, पृ० 123, 126 और पृ० 103. 106, 108, 128) तथा देखिए, इंडियन स्पैक्टेटर, 4 सितबर (आर० एन० पी० बंब; 10 सितबर 1881) जामे जमशेद, 10 जनवरी (वही, 15 जनवरी 1881); बाबे क्रोनिकल, 9 जनवरी (वही) और 20 मार्च (वही, 27 मार्च 1881) और 16 दिस० (वही, 22 दिसबर 1883); हिंदुस्तानी, 2 मार्च (आर० एन० पी० पी० एन०, 5 मार्च 1884) हिंदू, 9 जनवरी 1885. मराठा ने 24 फरवरी 1884 के अंक में लिखा : 'रेलवे के और अधिक प्रसार के बिना भारत के सदा विकासशील राष्ट्रो की पक्ति मे खड़े होने की आशा नही की जा सकती.' 1884 के वर्ष मे यह समर्थन बिखरता दिखाई देता है, इसका कारण कदाचित 1884 की प्रवर समिति के प्रतिवेदन और कार्यवाही पर विचार विमर्श का फल था अथवा भारतीय उद्योग रुचि के उदय का परिणाम था जो इस समग्र व्यापार रुचि पर प्रभुत्व पाने लगी थी.

21. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 193 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 701 और 671; वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट : पृ० 22. जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 188 पर; दत्त : स्पीचेज II पृ० 44. रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 145 पर उद्धृत, रानाडे : एसेज, पृ० 97 क्रमश .
22. क्रमश: आर० एन० पी० बंग०, 10 मई 1884, वही, 31 मई 1891. आर० एन० पी० बब; 4 जुलाई 1903 और वही, 3 दिसबर 1904.
23 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 676-7 और पृ० 687.
24 रानाडे : एसेज, पृ० 86, 90 क्रमश:.
25. 22 मई 1901 को मदुरा में मद्रास प्रातीय परिषद में अभिभाषण, स्टेट्समैन, 31 मई 1901 मे उद्धृत.
26 जी० एम० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 193 तथा देखिए, उनकी ई ए, पृ० 262, 271.
27. इंडियन स्पैक्टेटर, 19 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब, 25 अक्तू० 1884) हिंदू, 23 जनवरी 1885; बगवासी, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 30 अप्रैल 1887) आयंजनप्रियान, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1895); दत्त : इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 81 स्वेदशमित्रन्, 9 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 15 अगस्त 1899); बगाली, 27 अप्रैल 1901. गोखले : स्पीचेज, पृ० 21. रिप० आई० एन० सी०—1904, पृ० 165. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 624 एम० के० पटेल : रिप० आई० एन० सी०—1902, पृ० 141.
28. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 687-8 और पृ० 675, 684, 693 और देखिए, जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 193.
29. नेटिव ओपीनियन, 9 सितंबर (आर० एन० पी० बंब, 15 सित० 1883) शशिलेखा, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1897).
30 जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, 193.
31. गोखले : विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18140-1. 18155-60. वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 22.
32. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 193-5; इंदु प्रकाश, 13 दिसंबर (आर० एन० पी० बंब, 18 दिसबर 1875); ए०, बी० पी०, 18 अगस्त 1881; मराठा, 3 फरवरी 1884, 7 दिसंबर 1902;

इंडियन स्पैक्टेटर, 17 फरवरी 1884; यूनाइटेड इंडिया, 11 अगस्त (बी० ओ० आई, 31 अगस्त 1884) जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 695, हिंदू, 23 जनवरी 1885, 29 अक्तूबर 1897; एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 270; बंगबासी, 25 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 2 मई 1896), वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 23. तिलक, रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 145 पर उद्धृत. दत्त : इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 143. ई एच II, पृ० 605; स्वदेशमित्रन्, 30 अक्तू० (आर० एन० पी० एम० 30 नवंबर 1897); केसरी, 19 नवंबर (आर० एन० पी० बंब, 23 नवंबर 1901); मोदवृत्त, 29 जून (वही, 4 जुलाई 1903); जी० एस० अय्यर : विलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 19564, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 190-2 पर; और ई ए, पृ० 267-70.

33. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 193-5. जी० एम० अय्यर : ई ए, पृ० 268, 270. इंडियन पालिटिक्स, पृ० 190 पर.
34. नौरोजी . पावर्टी, पृ० 195 और देखिए, जी० एम० अय्यर : ई ए, पृ० 268.
35 जी० एम० अय्यर : विलबी आयोग, खंड III प्रश्न 19636, 19640-1, 19644. इंडियन पालिटिक्स, पृ० 190. इसी तथ्य की पुष्टि मे उन्होंने 1903 में थार्नर को उद्धृत किया : रेलवे उत्तम है, सिंचाई अच्छी है, परंतु धन की निकासी क्षेत्र खोलने और उसे लगातार विस्तृत बनाने की क्षतिपूर्ति के रूप मे न पहली अच्छी है और न ही दूसरी इस निकासी ने भारत के हृदयरक्त को चूस लिया है और उसके जीवन रक्त की प्रमुख, आधारभूत औद्योगिक शक्ति को क्षीण कर दिया है. (डब्ल्यू० टी० थार्नर · वेस्ट मिंस्टर रिव्यू 1880 ई ए. पृ० 287 पर उद्धृत).
36 बंगबासी, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 30 अप्रैल 1887) और 5 मई (वही, 12 मई 1894), हितवादी, 25 जुलाई (वही, 1 अगस्त 1891), ए० बी० पी०, 20 सितंबर 1891; आर्यजनप्रियान, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1895), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 6 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 9 जनवरी 1897); बंगाली, 27 अप्रैल 1901; नेटिव ओपीनियन, 8 मई (आर० एन० पी० बंब०; 11 मई 1901); एन० के० एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०, 1901. पृ० 138, मोद वृत्त, 29 जून (वही, 4 जुलाई 1903); सूर्योदय प्रकाशिका, 18 मई (आर० एन० पी० एम०, 21 मई 1904); जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 110-11, 276 बंगबासी ने 6 जुलाई 1889 के अंक मे रेलवे के विस्तार के समर्थकों को लालची श्वेत गिद्ध कहकर उनकी भर्त्सना की (आर० एन० पी० बंग०, 13 जुलाई 1889) इस तथ्य की पुष्टि मे वाचा ने 1889 के अकाल आयोग के प्रतिवेदन से कंडिका स० 536 को उद्धृत किया जो इस प्रकार थी : यह सही है कि रेलें सूखे के वर्षों मे अकालग्रस्त होने की आशंकावाले प्रदेशों में अनाज लाती हैं परंतु साथ ही अधिक उपज के वर्षों मे उन प्रदेशों को अनाज के भंडार से वंचित भी करती हैं. (सी० पी० ए०, पृ० 577).
37 कर्जन : स्पीचेज II, पृ० 277-9.
38. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 276-86, बंगबासी, 5 मई (आर० एन० पी० बंग०, 12 मई 1894); दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 6 जनवरी (वही, 9 जनवरी 1897) बंगाली, 27 अप्रैल 1901, एन० के एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०—1901 पृ० 138.
39. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 278
40. एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 179 इसी में पृ० 178 पर उद्धृत कलकत्ता में 2 मार्च 1878 को जनसम्मेलन में प्रस्तुत प्रस्ताव, 'पार्लियामेंटरी कमेटी आन इंडियन पब्लिक वर्क्स' :

जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (सं० 1 खंड IV), पृ० 8; रास्त गुफ्तार, 5 जून (आर० एन० पी० बब, 11 जून 1881) जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 218, 687. ट्रिब्यून, 25 अप्रैल (वी० ओ० आई०, 15 मई 1884); नव विभाकर, 24 मई (आर० एन० पी० बग०, 29 मार्च 1884), ढाका प्रकाश, 30 मार्च, बगबासी, 29 मार्च (वही, 5 अप्रैल 1884); बर्दवान सजीवनी, 22 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1884), सोम प्रकाश, 26 अप्रैल (वही, 3 मई 1884); भारत मिहिर, 13 मई (वही, 24 मई 1884), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 31 मई (वही, 6 जून 1891); लोकोपकारी, 29 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 15 सितबर 1897), केसरी, 19 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 23 नवबर, 1901), गोखले . स्पीचेज, पृ० 1194. विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18399, 18406, वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 20, 22-3, जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 578-9; दत्त : ई एच I, पृ० 212 और स्पीचेज II, पृ० 44, 76-7, ई एच II, पृ० 605 एन० के० एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 138.

41. वाचा · सी० पी० ए०, पृ० 580.
42. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 270-1.
43. जी० एस० अय्यर · इडियन पालिटिक्स, पृ० 188.
44 जी० एस० अय्यर : ई० ए०, पृ० 260.
45. जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 630-1. 2 फरवरी 1889 के अक मे बगबासी ने भी निर्देश किया कि ब्रिटेन ने भी भारी निर्याती के लिए रेल दरे घटा दी हैं
46 1916-18 के भारतीय उद्योग आयोग द्वारा यथा निर्दिष्ट दर नीति परवर्ती वर्षों मे भारतीय राजनीति की ज्वलत समस्या बन गई थी (देखिए, प्रतिवेदन, अध्याय XIX) और अन्य असख्य अधिकृत विद्वानो तथा लेखको की पुस्तकें परवर्ती वर्षों मे जी० एस० अय्यर तथा जी० वी० जोशी द्वारा निर्दिष्ट पथ पर रेलो की दर नीति की समालोचना रेलवे पर लिखने वाले भारतीयो की सामान्य शैली बन गई.
47 देखिए, रेलवे सम्मेलन मे 3 सितबर 1888 को बगाल राष्ट्रीय वाणिज्य सदन द्वारा अपने 1888 के प्रतिवेदन मे प्रस्तुत स्मरण-पत्र
48. जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 688
49. वही, पृ० 689 और वही, पृ० 801-02. जी० एम० अय्यर . इडियन पालिटिक्स, पृ० 191 ई ए, पृ० 266
50. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 689 और जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 265 और महत्तर, 30 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884) साथ ही जोशी और अय्यर ने निर्देश किया . यह विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व था जिसने ऋण ली हुई धनराशि से रेल-पथो का निर्माण किया, ये ही अपने आप मे रोग थे जबकि स्वतत्र देशो मे रेलें असख्य लाभो की जनक सिद्ध हो रही हैं. जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 670-1, 684, 689; जी० एस अय्यर इडियन पालिटिक्स, पृ० 189-90 और ई० ए०, पृ० 261, 268, 270.
51. जी० एस० अय्यर : इडियन पालिटिक्स, पृ० 191-2 और ई ए, पृ० 262, 271. दत्त : इग्लैड ऐंड इडिया, पृ० 130. एन० के० एन० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०-1901, पृ० 138.
52 इसका सुझाव वेरा आंस्टे द्वारा उनकी पुस्तक . 'दि इकोनामिक डिवलपमेट आफ इडिया' पृ० 145 मे दिया गया है.
53. इस प्रकार की आलोचना का अकेला उदाहरण मुझे 'बगबासी' के 5 मई 1894 के निम्न अवतरण

में मिला है, रेलों ने वर्ण व्यवस्था को गहरा धक्का पहुंचाया है क्योंकि रेलों के डिब्बों में सभी वर्णों के लोगों को बैचों पर समान रूप से और समान स्तर पर बैठना पड़ता है. (आर० एन० पी० बग०, 12 मई 1894).

54. उदाहरणार्थ, 1883 में दादाभाई नौरोजी ने लिखा : अतएव लोक कर्मों के संबंध में वास्तविक महत्वपूर्ण प्रश्न उन्हे रोकने की विधि सोचने का नही प्रत्युत उनसे जनता के लाभान्वित होने की विधि सोचने का है. इग्लैंड का एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण और महान कार्य भारत में इन लोक कर्मों का विकास है परन्तु साथ ही देखना यह भी है कि वे यहां के लोगों के लिए लाभदायक हों, हानिप्रद न हों; ऐसा न हो कि उनसे भारतीय दास बन जाएं और दूसरे लोग उनको हड़प जाएं. (पावर्टी, पृ० 196).

55. जी० एस० अय्यर : ई० ए० पृ० 272 और दत्त : ई एच II, पृ० 174 और 545.

56. राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो के मत के लिए देखिए, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 674-6, 684, 687-8, 693; जी० एस० अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 186 और ई० ए०, पृ० 272-3. गोखले : स्पीचेज, पृ० 21, 1157, 1194 और विलवी कमीशन, खड III प्रश्न 18150, 18407, 18410-14; पी० ए० चारलु : आई० सी० पी०-1900 खड XXXIX पृ० 144; श्रीराम : आई० सी० पी०-1904 खंड XLIII पृ० 510; दत्त : इडियन पालिटिक्स, पृ० 53. ई एच I, पृ० 312. ई एच II, पृ० 174, 357, 546. स्पीचेज II, पृ० 37, 44, 60, 77. फैमिंस ऐंड लेंड ऐसेसमेंट इन इंडिया (ल० 1900) (इसे आगे निर्देश के लिए 'फैमिंस इन इडिया' से सकेतिक किया जाएगा) पृ० 305. समाचारपत्रो के लिए देखिए, नवविभाकर, 25 जून (आर० एन० पी० बग०, 30 जून 1883); बगाली, 3 मई 1884. रास्त गुफ्तार, 2 मार्च (आर० एन० पी० बग, 8 मार्च 1884) हिंदू, 18 अप्रैल 1884 न्याय सुधा, 7 मई (आर० एन० पी० पी० एन०, 12 मई 1884); नवविभाकर, 21 अप्रैल, बर्दवान सजीवनी, 22 अप्रैल; साधारणी, 20 अप्रैल (आर०एन०पी० बग०, 26 अप्रैल 1884); समाचार चद्रिका, सोम प्रकाश, 26 अप्रैल (वही, 3 मई 1884); सहचर, 30 अप्रैल (वही, 10 मई 1884); भारत मिहिर, 24 मई (वही, 31 मई 1884); 25 जनवरी बगबासी, 9 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1887); रहबर, 25 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 30 जनवरी 1895) लोकोपकारी, 29 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 15 सितंबर 1897); शशिलेखा, 26 अप्रैल (वही, 30 अप्रैल 1898); जनानुकूलन, 13 मई (वही, 13 जून 1903) केसर ए हिंद, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बब०, 29 अगस्त 1903); इदर प्रकाश, 30 नवंबर (वही, 3 दिसबर 1904); डेली हितवादी, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 15 अप्रैल 1905) भले ही स्थान का अभाव अधिक उदाहरणों को उद्धृत करने की अनुमति न दे फिर भी यह दिखाने के लिए कि किस प्रबलता से इस दृष्टिकोण का समर्थन किया गया था हम दो तीन उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लोभ का तो सवरण नही कर पाते :

जी० वी० जोशी

भारत में न केवल अगरेजी राज्य को प्रत्युत अंगरेजी वाणिज्य व्यवसाय को भी सुदृढ़ करना लार्ड डलहौजी का एक स्वप्न था और इस गहरी महत्वाकाक्षा के लिए भारत के स्थाई हितों को गौण रूप दे दिया गया था. इंग्लैंड में उन्मुक्त व्यापार सिद्धांत के समकालीन उदय ने और इस सिद्धांत के अनुयायियो द्वारा लब्ध प्रसिद्धि ने चगुल में फंसाने वाली और नितांत स्वार्थपूर्ण इस नीति के लिए आध्यात्मिक आधार का कार्य किया. ब्रिटेन राष्ट्र द्वारा भारत की कीमत लंकाशायर के

उत्पादनों को पोषित करने और बढ़ाने के लिए उत्पन्न करने वाले कृषि संबंधी कच्चे माल के परिमाण के निर्यात की क्षमता के संदर्भ में ही आंकी गई भारत को अपनी सारी शक्तियां कच्चे माल का निर्यात बढ़ाने में ही लगानी पड़ी नहरों, रेलों, सड़कों और सुधरे संचार साधनों को हर कीमत पर अधिकाधिक विकसित किया गया ताकि भारत से इंग्लैंड को कच्चे माल के निर्यातों और इंग्लैंड से वहां के पक्के उत्पादनों के भारत में आयात को सुविधाजनक बनाया जा सके तुलनात्मक रूप से इस सारी प्रक्रिया में भारत की अपनी जरूरतों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया भारतीय साधनों का संयोजन तो सभी प्रकार के संदेहों में और किसी भी त्याग के मूल्य पर पूरा करना ही था (पूर्वोद्धृत पृ० 674-5)

जी० एस० अय्यर

ब्रिटिश पूंजीपति और राजनीतिज्ञ के मुह में बेईमानी का स्वर ही निकलता है, ' यह स्मरणीय है कि रेलपथों के निर्माण का प्रत्येक मील अनेक अंगरेजों का इतना अधिक लाभ संवर्धित करता है कि प्रभावशाली व्यक्ति भारतीय अधिकारियों पर प्रतिवर्ष नए कार्य को हाथ में लेने का निरंतर दबाव डालने से कभी नहीं रुकते (ई० ए०, पृ० 2/23)

गोपालकृष्ण गोखले

भारतीय लोग यह अनुभव करते हैं कि यह निर्माण कार्य प्रधान रूप से ब्रिटिश व्यापारीवर्ग तथा धनिक समुदाय के हितों के लिए ही किया जा रहा है और यह हमारे संसाधनों के और अधिक शोषण में ही सहायक है. (स्पीचेज, पृ० 1194)

पी० ए० चारलू

रेलों का प्रयोजन वास्तविक रूप से उद्यम का, वाणिज्य का, उत्पादन का, रेल संचयों का और महत्वाकांक्षी इंजीनियरों का प्रयोजन है इन सबके प्रतिनिधि निश्चित रूप से इस संबंध में अपना प्रबुद्ध स्वर ऊंचा करने में तथा अपनी सुसंस्कृत, सशक्त प्रतिभा का उपयोग करने में संगठित है (एल० सी० पी० 1900, खंड XXXIX, पृ० 144)

नवविभाकर, 21 अप्रैल 1884

रेलों की आवश्यकता ब्रिटिश व्यापारियों के लिए है·· अंगरेज व्यापारी ही इंग्लैंड के शासक हैं, संसद उनके नियंत्रण में है, मंत्री उनके सेवक हैं ब्रिटिश व्यापारियों के लिए अनुकूल और प्रसन्नतादायक नीति ही उस राष्ट्र की सर्वोत्तम नीति है (आर० एन० पी० बंग०, 26 अप्रैल 1884)

57 नवविभाकर, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंग०, 6 अक्तू० 1883); साधारणी, 20 अप्रैल, नवविभाकर, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 26 अप्रैल 1884) समय, 12 मई (वही, 17 मई 1884) भारत मिहिर, 13 मई (वही, 24 मई 1884), बंगाली, 3 मई 1884; हिंदू, 23 जनवरी 1884, बंगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग० 16 अप्रैल 1887), जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 670, 675-6, 689, जी० एस० अय्यर इंडियन पालिटिक्स, पृ० 181, दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 24 अप्रैल 1897), दत्त ई० एच० II, पृ० 174, 546 और स्पीचेज I, पृ० 98, इंदु प्रकाश, 30 नवंबर, (आर० एन० पी० बंब,

3 दिसबर 1904), डेली हितवादी, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 15 अप्रैल 1905)

58 सहचर, 30 अप्रैल(आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884), समय, 12 मई (वही, 17 मई 1884); बगाली, 3 मई 1884, याजदा परस्त, 15 जून (आर० एन० पी० बब, 21 जून 1884), केसरी, 9 सितबर (वही, 13 सितबर 1890) जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 685, दैनिक औ समाचार चन्द्रिका, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 24 अप्रैल 1897), जी० एस० अय्यर · इडियन पालिटिक्स, पृ० 181, दत्त स्पीचेज I, पृ० 98

59 नवविभाकर, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 26 अप्रैल 1884); बगबासी, 5 मई (वही, 12 मई 1894), दैनिक औ समाचार चन्द्रिका, 21 अप्रैल (वही, 24 अप्रैल 1897), स्वदेशमित्रन, 30 अक्तू० (आर० एन० पी० एम०, 30 नव० 1897) दत्त स्पीचेज I, पृ० 98, जी० एम० अय्यर ई० ए०, पृ० 263

60 समय, 12 मई (आर० एन० पी० बग०, 17 मई 1884), बगबासी, 9 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1887), केसरी, 9 सितबर (आर० एन० पी० बब०, 9 सितबर 1890); दैनिक औ समाचार चन्द्रिका, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 24 अप्रैल 1897) जी० एस० अय्यर · इडियन पालिटिक्स पृ० 181.

61 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 674 और नवविभाकर, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 6 अक्तूबर 1883)

62 जी० एम० अय्यर इडियन पालिटिक्स, पृ० 181

63 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 675 688, 693, नवविभाकर, 24 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 29 मार्च 1884), बगबासी, 29 मार्च, ढाका पकाश, 30 मार्च (वही, 5 अप्रैल 1884); साधारणी, नवविभाकर 21 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1884), सोम प्रकाश, 26 अप्रैल (वही, 3 मई 1884), मुर्शिदाबाद पत्रिका, 30 अप्रैल (वही, 10 मई 1884), रास्त गुफ्तार, 25 मई (आर० एन० पी० बब, 31 मई 1884), रहबर, 8 सितबर (आर० एन० पी० एन०, 14 सितबर 1892), लोकोपकारी, 29 अगस्त (आर० एन० पी० एम० 15 सितबर 1897), जी० एस० अय्यर ई० ए०, पृ० 272, दत्त स्पीचेज I. पृ० 102, ई एच II, पृ० 174, गोखले स्पीचेज, पृ० 1194 यह अत्यत उत्सुकतावर्धक तथ्य है कि रेल आर्थिकता के कदाचित अपने युग के सर्वाधिक मर्मज्ञ विचारक हाइड क्लार्क ने अत्यत स्पष्ट शब्दो मे यह लिखा रेलो के प्रवर्तन का वास्तविक लक्ष्य यह है कि हिंदुस्तानी इनका निर्माण करे ताकि इग्लैड के लोग इनके लाभ का बडा अश पाने मे इनसे समर्थ हो सके उद्धृत, जिक्स मे पूर्वोद्धृत, पृ० 226 और देखिए, बेल पूर्वोद्धृत, पृ० 254-5

64 जोशी पूर्वोद्धृत, 675

65 जी० एम० अय्यर ने 1903 मे लिखा श्री राबर्टसन ने अपने सारे विस्तृत प्रतिवेदन मे कही भी भारत की विशिष्ट स्थिति को ध्यान मे नही रखा. वस्तुत विदेशी ब्रिटिश शासन के अतर्गत भारत की एक विशिष्ट अवस्था हो गई है और वह यह माग करती है कि भारत की समृद्धि की समस्या के समाधान के लिए अन्य देशो के ज्ञान और अनुभव को उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नही प्रत्युत अधिक सशक्त विरोधी हितो से निरतर घिरी हुई उसकी अपनी आवश्यकताओ को ही समझने की आवश्यकता है (ई० ए०, पृ० 266-67 और पृ० 261, 263) तथा देखिए, जी० एस० अय्यर : इडियन पालिटिक्स, पृ० 182, 192 3 और पाद टिप्पणी, 194 और आगे दादाभाई नौरोजी ने एक भिन्न रूप मे ही सही, यही दृष्टिकोण व्यक्त किया लोक कर्मो के सबध मे

वास्तविक समस्या उन्हें समाप्त करने की नही प्रत्युत यह देखने की है कि उनसे देश के जन साधारण को पूरे लाभ किस प्रकार प्राप्त कराए जाए (पावर्टी, पृ० 196).

66. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 696 और 676 क्रमश और भी सरकार विदेशी व्यापारियो को व्याज के बकाया भुगतानों के रूप में उपहार अर्पित करने के स्थान पर इस चार करोड की राशि को देश में ही औद्योगिक सगठन की स्थापना मे अथवा स्वदेशी उद्योग को अस्थाई सहारा देकर उसी दिशा मे उसे प्रोत्साहन देने मे अथवा यहां की जनता की ही जेबो मे सौ गुना बढकर रहने के लिए देश के अन्याय उपयोगी कार्यों मे व्यय करती तो सचमुच यह बहुत ही अच्छा होता (पृ० 688) और देखिए, पृ० 671, 689

67. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 271 और इडियन पालिटिक्स, पृ० 182, 188. डी० ई० वाचा ने भी राष्ट्रीय काग्रेस के 1901 मे हुए सत्रहवें अधिवेशन मे सभापतीय अभिभाषण मे यह दावा किया : 'यह अब स्वीकार कर लिया गया है कि रेलें केवल एक स्थान से दूसरे स्थान पर खाद्यान्नो के शीघ्र वितरण का साधन मात्र हैं परतु वे देश की सपदा मे एक रुपये की भी वृद्धि नही करती ' उन्होने इस बात की शिकायत की कि केद्रीय अधिकारियो के इस भ्रम को तोडने मे अनेक वर्ष लग गए (सी पी ए, पृ० 577) और देखिए, रानाडे एसेज, पृ० 88 और हिंदू, 23 जून 1885

68 'ए वार्निग वायस ऐज रिगार्ड्स रेलवेज इन इडिया' (भारतीय रेला के प्रति चेतावनी का स्वर) इदु प्रकाश 21 अप्रैल 1884

69 जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 671

70 सहचर, 30 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884) जी० एस० अय्यर . ई० ए०, पृ० 261

71 जी० वी० जोशी ने 1884 मे लिखा यदि परिवहन की इन सुविधाओ के साथ साथ राज्य देश मे विविध प्रकार के औद्योगिक जीवन के लिए समुचित आर्थिक स्थिति जुटाने की भी व्यवस्था करता केवल तभी परिवहन के लाभो को राष्ट्र के काम लाया जा सकता था (पूर्वोद्धृत, पृ० 696) और अरुणोदय, 24 फरवरी (आर० एन० पी० बव, 8 मार्च 1884), आर्यजन-प्रियान्, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1895) विस्तनपत्रिका, 15 मई (वही, 21 मई 1904)

72 आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884

73 यहा तक कि 1873 मे मार्क्स ने भी भविष्यवाणी की थी जब एक बार लोहा और कोयलावाले किसी देश के सचलन मे मशीने प्रचलित हो गई तो उन्हे उनके निर्माण कार्य से हटाना सरल नही होता एक विशाल देश मे भी रेल जाल कायम नही रखा जा सकता जब तक कि रेल सचलन के लिए तात्कालिक और सामयिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपेक्षित औद्योगिक प्रक्रियाए लागू नही की जाती और उनमे से रेलो से तात्कालिक रूप से न जुडा हुई औद्योगिक शाखाओ की मशीनो के प्रयोग का विकास भी आवश्यक रूप से वाछनीय है अत रेल प्रणाली भारत में वास्तव मे ही आधुनिक उद्योग को अग्रगति देने वाली होगी (आन कलोनियलिज्म, पृ० 79) परतु कार्य इस रूप म नही हुआ 19वी शताब्दी की अवधि मे रेलो का सारा निर्माण इग्लैड मे बने सामान से ही किया गया रेलें अपने निर्माण कार्य के लिए अपेक्षित सामान को तैयार करने के लिए भारत मे किसी सशक्त उद्योग को जन्म देने मे असमर्थ रही (जिंक्स : पूर्वोद्धृत पृ० 227) अततः एक सतर्क भारतीय विचारक ने यह भी अनुभव किया और रेलो के

विस्तार के सदर्भ में भारत में लोहा उद्योग को प्रोत्साहन न देने के लिए सरकार की आलोचना की नेटिव ओपीनियन ने अपने 20 दिसबर 1885 के अक मे लिखा यह आश्चर्य का विषय है कि कोयला क्षेत्रो मे लोहे की बडी बडी परतें मिली हैं हमारी सरकार इनका उपयोग पटरियां बनाने और पुलो के शहतीर बनाने के बदले विदेशी बाजारो से उनकी खरीद कर रही है. विदेशी लोहे पर खर्च की गई धनराशि का यदि भारत मे उपयोग किया जाता तो हम न केवल अपेक्षाकृत सस्ता और बढिया लोहे का उत्पादन कर सकते बल्कि नए उद्योग का प्रारभ भी कर सकते थे क्या सरकार समस्या के इस पक्ष पर ध्यान देगी और दूसरो को इस दिशा में पूजी लगाने को प्रेरित करने के लिए स्वय पहल करेगी ?'' समीक्षाधीन काल मे राष्ट्रीय नेताओ की रेल भडारो के लिए सरकार द्वारा भारतीय फर्मों से खरीद और उनसे अप्राप्यता की स्थिति मे उनके उत्पादको से खरीद की एक अत्यधिक महत्वपूर्ण आर्थिक माग थी (अध्याय 3 ऊपर) भारतीय इस्पात उद्योग की स्थापना 20वी शताब्दी मे की जा सकी जबकि रेलो के निर्माण का बहुत काफी कार्य पहले ही किया जा चुका था वस्तुत: भारतीय इस्पात उद्योग का उदय रेलो की तात्कालिक और सामयिक मागो की पूर्ति के सदर्भ मे ही नही हुआ था. कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उद्योगीकरण की प्रक्रिया अत्यत मद थी और विदेशी पूजी के कठोर नियत्रण मे थी

74 दादाभाई नौरोजी ने उन लोगो को आडे हाथो लिया जो यह कहते हैं कि क्योकि रेलो ने नई मडी खोल दी [illegible] देश के उत्पादन अवश्य बढने चाहिए उन्होने यह दोहराया पदार्थों की माग श्रम की माग नही है और 'निवेश के लिए पूजी के अभाव मे बडी मात्रा मे उद्योगो का विस्तार नही किया जा सकता (पावर्टी, पृ० 56)

75 जोशी ने निर्देश किया अमरीका मे उन्मुक्त व्यापार नही है और सरक्षण नियम सर्वोच्च हैं वहा रेल सरकारी प्रतिष्ठान नही, वे निजी उद्यमो द्वारा अपने ही दायित्व पर बनाई गई हैं. अमरीका मे रेल भौतिक समृद्धि का एक भाग है वहा सारे देश मे कृषि उत्पादन, वाणिज्य-समृद्धि आदि अन्य पक्षो का भी साथ साथ और समुचित रूप से विकास किया जा रहा है' दूसरी ओर, 'हमारी स्थिति विचित्र रूप से अमरीका जैसी नही है··· (यहा) रेलो के विकास का राष्ट्र की समृद्धि के तत्वो की सामान्य वृद्धि के साथ कोई सबध ही नही' (पूर्वोद्धृत, पृ० 670-1)

76 ऊपर देखिए

77 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 671 और 696

78 ए वार्निंग वायस ऐज रिगार्ड्स रेलवेज इन इडिया (भारत मे रेलो के सबध मे चेतावनी का स्वर), इन्दु प्रकाश, 20 अप्रैल 1884 और जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 671 क्रमश: आर० सी० दत्त ने भी टिप्पणी की . 'रेलो की व्यवस्था देश की तात्कालिक आवश्यकताओ से कही आगे है' (ई एच II, पृ० 450)

79. हिंदू, 23 जनवरी 1885 रानाडे एसेज, पृ० 88, 91-2, 97 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 671.

80 उद्योग के लिए देखिए जोशी पूर्वोद्धृत, पृ०688 याजदा परस्त, 15 जून (आर० एन० पी० बब, 21 जून 1884); नेटिव ओपीनियन, 20 दिसबर 1885; रानाडे : एसेज, पृ० 87-9, जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 264, 272. रेलो के सिंचाई से सबध की चर्चा आगे पृथक रूप से की गई है. इसी प्रकार गोखले ने 1897 मे विलबी आयोग के सामने घोषणा की 'हमे उनके और रेल-पथो की आवश्यकता नही हम तो इस समय पहले शिक्षा पर व्यय करना चाहते हैं और तदुपरांत

रेलों पर आप एक ही दिशा मे बढ़ रहे है और इससे अन्य दिशाए उपेक्षित हो रही है. यह ठीक है कि ये सभी रेले अनुपयोगी नही हैं ··परतु प्रश्न यह है कि हमारे लिए कौन सी उपयोगिता अपेक्षाकृत अधिक महत्व की है'. (विलबी आयोग, खड III प्रश्न 18409 और देखिए प्रश्न 18400).

81. एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 170-81 जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 55, 671 इडियन स्पैक्टेटर, 24 फरवरी 1884; नेटिव ओपीनियन, 24 फरवरी 1884; इन्दु प्रकाश, 21 अप्रैल 1884, बगाली. 3 मई और 9 अगस्त 1884; ट्रिब्यून, 1 मार्च (वी० ओ० आई०, 15 मार्च 1884); बिहार हेराल्ड, 22 और 29 अप्रैल (वही, 15 मई 1884), अरुणोदय 24 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 8 मार्च 1884); रास्त गुफ्तार, 2 मार्च (वही); बगवासी, 29 मार्च और ढाका प्रकाश, 30 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 5 अप्रैल 1884), सहचर, 23 अप्रैल (वही, 3 मई 1884); भारत मिहिर, 13 मई (वही, 24 मई 1884); हिंदू, 6 अप्रैल 1889 जी० एम० अय्यर : विलबी आयोग खड III, प्रश्न 19609, और इडियन पालिटिक्स, पृ० 182, 194, गोखले : स्पीचेज, पृ० 1194, और विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 18399, 18406, दत्त . इंडियन पालिटिक्स, 52-3; फैमिस इन इडिया, पृ० 82, 305 और ई एच II, पृ० 174. 359-60, 546, 548. आर० सी० दत्त ने लिखा जब इग्लैंड को जनता की प्रति व्यक्ति आय 42 पौंड के मुकाबले भारतीय जनता की प्रतिव्यक्ति आय 2 पौंड है तो हम यूरोप भ्रमण की विलासिता के मजे लेने की बात सोच ही कैसे सकते हैं (ई एच II, पृ० 548)

82. आगे देखिए.

83 इडियन स्पैक्टेटर, 2 मार्च 1884, इन्दु प्रकाश, 21 अप्रैल 1884. ट्रिब्यून, 25 अप्रैल (वी० ओ० आई०, 15 मई 1884), यूनाइटेड इडिया, 11 अगस्त (वही, 31 अगस्त 1884), हिंदू, 29 अक्तूबर 1897, मराठा, 7 दिसबर 1902, दत्त . फैमिस इन इडिया, पृ० 305

84 इन्दु प्रकाश, 21 अप्रैल 1884 हिंदू 18 अप्रैल 1884; बगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 16 अप्रैल 1887); वाचा · स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 20, जी० एम० अय्यर इडियन पालिटिक्स पृ० 188, 193, एम० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 270 मानचेस्टर गार्जियन के 5 नवबर 1898 के अक मे (इडिया के 11 नवबर 1898 के अक मे) दत्त का पत्र; रेलो का रुपया भेजने मे निम्न विनिमय दर के प्रभाव से भारत को होने वाले वास्तविक घाटे की समीक्षा के लिए देखिए, बेल · पूर्वोद्धृत, पृ० 243-4 चिमन . पूर्वोद्धृत, पृ० 312 और सान्याल पूर्वोद्धृत, पृ० 44, 120-1

85 एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 180, 189-90; इडियन स्पैक्टेटर, 24 फरवरी 1884, इन्दु प्रकाश, 21 अप्रैल 1884. इडियन नेशन, 21 अप्रैल (वी० ओ० आई०, 15 मई 1884), बिहार हेराल्ड, 22 अप्रैल और 29 अप्रैल (वही); जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 687 गोखले : स्पीचेज, पृ० 1194, दत्त : स्पीचेज I, पृ० 102. सायानी : एल० सी० पी०-1898, खड XXXVII, पृ० 534

86. एस० एन० बैनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 190. ट्रिब्यून, 22 मार्च (वी० ओ० आई०, 15 अप्रैल 1884), इंडियन इको, 25 अप्रैल (वही, 15 मई 1884), बगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 16 अप्रैल 1887); गोखले : स्पीचेज, पृ० 1193-4 और विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 18390.

87. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 684; रानाडे : एसेज, पृ० 88. गोखले : स्पीचेज, पृ० 1194. जी० एस०

अय्यर : इंडियन पालिटिक्स, पृ० 182. उनका 1898 मे मुद्रा आयोग के समक्ष साक्ष्य, स्पीचेज I, पृ० 98, 100 ई एच II, पृ० 358-9, 370, 546-8

88. जैसा हम पहले दिखा चुके है, इस वर्ष तक इस सबध मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण विभक्त था 1884 मे अथवा उसके उपरात ही सभी प्रमुख राष्ट्रवादी समाचारपत्रो, हिंदू, मराठा, इडियन स्पैक्टेटर ने अपना सारा ध्यान रेलो के प्रश्न पर ही केंद्रित किया

89 1884 के उपरात रेलो के प्रति यह विशिष्ट दृष्टिकोण लगभग सभी राष्ट्रीय विचारो मे अंत-प्रविष्ट हो गया था, अधिकाशत यह अस्पष्ट था पर कभी कभी स्पष्ट रूप भी ग्रहण कर लेता था, यह तथ्य पूर्वनिर्दिष्ट विवरण को देखने से स्वत सिद्ध हो जाएगा इस दृष्टिकोण की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए देखिए इंडियन स्पैक्टेटर, 17 फरवरी 1884, ट्रिब्यून, 1 मार्च (वी० ओ० आई०, 15 मार्च 1884), बिहार हेराल्ड, 22 और 29 अप्रैल (वही, 15 मई 1884), बगवासी, 29 मार्च और सोमप्रकाश, 30 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 5 अप्रैल 1884); नवविभाकर, 21 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1884), सहचर, 30 अप्रैल (वही 10 मई 1884), बगवासी 9 और 23 अप्रैल (वही, 16 और 30 अप्रैल 1884 क्रमश), पैसा अखबार, 29 दिसबर 1894 (आर० एन० पी० पी०, 5 जनवरी 1895), जोशी : पूर्वोद्धत, प० 684-5, वाचा · विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 17503-04, 17546, 17613, 17616-8, गोखले (वही, प्रश्न 18147, 18392, जी० एस० अय्यर . वही, प्रश्न 18605, 18628-0 18630. 18963, 19011, 19560-1, 19564 और इडियन पालिटिक्स, प० 181-2, पैसा अखबार, 5 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 28 अगस्त 1897), हिंदू, 29 अक्तूबर 1897, मायानी एल० सी० पी० 1898 खड XXXVII पृ० 534 दत्त स्पीचेज I, पृ० 101-2 स्पीचेज II, पृ० 31 केसर ए हिन्द, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 29 अगस्त 1903)

90. दत्त इडियन पालिटिक्स प० 52 पीछे 81 पाद टिप्पणी मे उद्धृत अनेक मतो में यह दृष्टिकोण भी अस्पष्ट है

91. दत्त . इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 143 स्पीचेज II, पृ० 31. फैमिन इन इडिया, पृ० 82, 305 और ई एच II, पृ० XVII. 1778, 375, 547-8, जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 264 जोशी : पूर्वोद्धत. पृ० 687-8. श्रीराम एल० सी० पी०-1904, खड XLIII पृ० 510.

92. दत्त . स्पीचेज I, पृ० 102 और इडियन पालिटिक्स पृ० 53 और देखिए, दत्त इडियन पालिटिक्स, पृ० 52 और ई एच II, पृ० 174, 177, 358 1884 मे जी० वी० जोशी ने शिकायत की कि प्रवर समिति ने विषय पर स्पष्ट दृष्टिकोण के लिए स्वदेशी अभिव्यक्ति को गौरव नही दिया (पूर्वोद्धत, पृ० 669) तथा जी० के० गोखले ने विलबी आयोग के समक्ष अपने साक्ष्य मे इस बात पर बल दिया कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अभी तक एक बार भी रेलो के विस्तार की वकालत नही की है (विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 18415-6)

93. बेल : पूर्वोद्धृत, पृ० 31 और 37.

94 एस० एन० बैनर्जी . स्पीचेज I, पृ० 189, मराठा, 3 फरवरी 1884; बगाल पब्लिक ओपीनियन, 24 अप्रैल (वी० ओ० आई०, 15 मई 1884), भारत मिहिर, 13 मई (आर० एन० पी० बग०, 24 मई 1884), सहचर, 9 अप्रैल (वही, 19 अप्रैल 1890), गुजरात दर्पण, 23 मई (आर० एन० पी० बब, 25 मई 1889), गोखले : स्पीचेज, पृ० 1193-4; जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 264-5 दत्त ने 'इस प्रथा को कलुषित' बताया, ई एच II, पृ० 546.

95. नौरोजी : एसेज, पृ० 108-09. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 691; मराठा, 3 फरवरी 1884, बर्दवान

संजीवनी, 22 अप्रैल, सहचर, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 3 मई 1884), हिंदू, 10 अगस्त 1887. दत्त ने थार्नटन, मंसे और लार्ड लारेंस जैसे ब्रिटिश अधिकारियो के वक्तव्यों को इसे प्रमाणित करने के लिए पुनरुद्धृत किया और कहा . रेलपथो के निर्माण मे अपव्यय हुआ है, यात्रियो के सुख की उपेक्षा की गई है. यह कदाचित किसी भी देश के रेल उद्यम के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है (ई एच II, पृ० 353) और देखिए गोखले · विलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18392

96 1868 मे ही दादाभाई नौरोजी ने इस प्रथा के संबंध मे अपने विचार प्रकट किए थे : 'मुझे समझ नही आता कि प्रतिभूति प्राप्त निजी उद्यम का क्या अर्थ है, यह कैसा उद्यम है जिसके खतरे और भार तो सरकार के दायित्व हो और कपनी केवल लाभ की ही भागीदार बने (जरनल आफ ईस्ट इडिया एसोसिएशन, खड III 1869. स० 1, पृ० 13). उत्तर-पश्चिमी प्रातों से निकलने वाली उर्दू पत्रिका 'रहबर' ने प्रतिभूति रेलो को : 'भारतीय करदाताओ की बलि चढाकर अगरेज पूजीपतियो को धनी बनाने का एक ढग बताया' 8 सितबर (आर० एन० पी० एन०, 14 सितबर 1892) और देखिए, बगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 16 अप्रैल 1887)

97. पाद टिप्पणी 91, पीछे और 'इडियन स्पैक्टेटर', 13 फरवरी (आर० एन० पी० बब०, 19 फरवरी 1881), बबई समाचार, 2 अप्रैल (वही, 2 अप्रैल 1881), नवविभाकर, 21 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 26 जुलाई 1884), बगाली, 9 अगस्त 1884 हमारा विचार है कि इस स्थिति का वास्तविक कारण यह था कि उन्हे आशा थी कि प्रतिभूति के अभाव मे निजी उद्यमो की सर्वजन विदित इनकारी से व्यवहार मे नए रेलपथो का निर्माण हो ही नही पाएगा.

98 गोखले : स्पीचेज, पृ० 1194. दत्त . ई एच II, पृ० 549. 1886 मे जोशी ने इस माग का एक दूसरा विश्लेषण प्रस्तुत किया पूर्वोद्धृत, पृ० 107-11 और देखिए, वाचा . रिप० आई० एन० सी०-1898, पृ० 103

99 जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 265 और एच० आर० मई 1903, पृ० 469.

100. नौरोजी : एसेज, पृ० 109 नौरोजी मसानी द्वारा पूर्वोद्धृत, पृ० 115-6 पर उद्धृत जोशी · पूर्वोद्धृत, पृ० 108, 688, 693, इडियन स्पैक्टेटर, 23 जन० (आर० एन० पी० बब, 29 जनवरी 1881), रास्त गुफ्तार, 26 मार्च और बाबे क्रानिकल, 26 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1882), नवविभाकर, 25 जून (आर० एन० पी० बग०, 30 जून 1883), मराठा, 3 फरवरी, 2 मार्च और 20 जुलाई 1884, नेटिव ओपीनियन, 24 फरवरी 1884, सहचर, 30 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884) और 18 सितबर (वही, 28 सितबर 1889), केसरी, 2 सितबर (आर० एन० पी० बब, 6 सितबर 1884), ए० बी० पी०, 5 मार्च 1885, एच आर, मई 1903, पृ० 469.

101. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 693 और मराठा, 20 जुलाई 1884 क्रमश. और जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 263, 265.

102. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 693, केसरी, 2 सितबर (आर० एन० पी० बब०, 6 सित० 1884).

103. जोशी . पूर्वोद्धृत पृ० 693 केसरी, पूर्वोक्त स्थल रास्त गुफ्तार, 26 मार्च (आर० एन० पी० बब, 1 अप्रैल 1882); ए० बी० पी०, 5 मार्च 1885; वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 23, सहचर ने तो 18 सितबर 1889 के अक मे यहा तक सुझाव दिया कि रेलो के राजस्व से कुछ एक लागू करो को हटाना अथवा कम करना सभव होगा. (आर० एन० पी० बग०, 28 सितबर 1889); जी० एस० अय्यर ने राज्य द्वारा निजी कपनियो को पट्टे पर देने की नीति के विरोध मे यही तर्क प्रस्तुत किया. (ई ए, पृ० 265).

104. जी० वी० जोशी ने 1886 में इस योजना का समर्थन किया जिसके अंतर्गत वर्तमान प्रतिभूत राशियों को सरकारी खाते में सामान्य रेल ऋणों के रूप में बदलने और पुष्ट करने का सुझाव था. उन्होंने साथ ही यह टिप्पणी की कि लाभों के बड़े बड़े भागों के अतिरिक्त प्रतिभूत कंपनियों की अपेक्षा एकमात्र सरकारी ऋण पत्रों को प्राथमिकता देने से ही हमें प्रतिवर्ष 816,000 पौंड का विशुद्ध लाभ हो सकता है. (पूर्वोद्धृत, पृ० 107-11)

105. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 693.

106. आर० एन० पी० बग०, 10 मई 1884. उसी आधार पर जी० एस० अय्यर ने राज्य पथो पर निजी कपनियों पर आपत्ति की. 1903 में उन्होंने लिखा कि वे तो पहले ही पर्याप्त सशक्त हैं और प्राय: स्वदेशी जनता के विरुद्ध पड़ने वाले विदेशी निहित स्वार्थों मे और भी वृद्धि करेंगे. (ई ए, पृ० 265).

107. रास्त गुफ्तार, 26 मार्च (आर० एन० पी० बब, 1 अप्रैल 1882); नवविभाकर, 25 जून (आर० एन० पी० बग०, 30 जून 1883); केसरी, 2 सितबर (आर० एन० पी० बब०, 6 सितबर 1884); मराठा, 20 जुलाई 1884. ए० बी० पी०, 5 मार्च 1885

108. इडियन स्पैक्टेटर, 4 सितबर 1881 : प्रत्येक स्थिति में यहूदी धनपतियो (सकेत राथ चाइल्ड की ओर है) को लाने की अपेक्षा स्वय भारतीयो को ही उपयोगी लोक कार्यों में प्रत्यक्ष रुचि लेनी चाहिए. यहूदियो का तो एकमात्र उद्देश्य सट्टा बाजार के लेन-देन के लाभो पर एकाधिकार करना है (आर० एन० पी० बब, 10 सितबर 1881) और रानाडे . रिव्यू आफ फोसेट्स थ्री एसेज आन इडियन फाइनास, (जे० पी० एस० एस०, खड III, सख्या 1 जुलाई 1880) पृ० 80 और पार्लियामेंटरी कमेटी आन इडियन पब्लिक वर्क्स : जे० पी० एस० एस०, खड IV स० I (जुलाई 1881) पृ० 15; रास्त गुफ्तार और गुजराती, 11 सितबर (वही, 17 सितबर 1881): ए० बी० पी०, 18 अगस्त 1881; आर्यजन प्रिया, 1 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1895); जी० एस० अय्यर : इडियन पालिटिक्स, पृ० 193 4 और ई ए, पृ० 268; वाचा : विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 17536-7, 17546 गोखले · वही, प्रश्न 18147. पैसा अखबार, 5 अगस्त (आर० एन० पी० पी० 28 अगस्त 1897).

109. इडियन स्पैक्टेटर, 5 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 11 अगस्त 1883); मराठा, 14 जनवरी 1883; हिंदू, 10 सितंबर 1889 सहचर, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 13 अप्रैल 1895); भारत जीवन, 30 मई (आर० एन० पी० एन०, 8 जून 1898).

110. मराठा, 14 जनवरी 1883; नवविभाकर, 25 जून (आर० एन० पी० बग०, 30 जून 1883); हिंदू, 3 अगस्त 1887 और 20 सितंबर 1889; मराठा, 7 दिसबर 1902.

111 सहचर, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 3 मई 1884); वाचा : विलबी आयोग, खड III, प्रश्न 17546 जी० एस० अय्यर : वही, प्रश्न 19564-7. इडियन पालिटिक्स, पृ० 194

112. रास्त गुफ्तार, 26 मार्च और बाबे क्रानिकल, 26 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 1 अप्रैल 1882); केसरी, 2 सितंबर (वही, 6 सितबर 1884) मराठा, 20 जुलाई, 10 अगस्त 1884.

113. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 694. उन्होंने लोकहित के बड़े कार्यों के प्रबंध में लोगों को सबधित करने की नीति की भी वकालत की. (वही, पृ० 826).

114. पृ० 270.

115. तुलनीय : 1901-02 के बजट भाषण में लार्ड कर्जन ने कहा कि भारत में रेलों के साथ साथ हम सदैव सिंचाई के विषय पर भी विचार करते हैं. (स्पीचेज II, पृ० 281).

116. दि इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खंड III, पृ० 332 और 375-6.

117. एल० सी० पी०-1898 खंड XXXVII, पृ० 534.

118. दत्त : ई एच II, पृ० 550 तथा देखिए उनकी ई एच I, पृ० 312. ई एच II, पृ० 360, 362. स्पीचेज II, पृ० 45, 77-8

119. केसरी, 9 सितंबर (आर० एन० पी० बंब, 13 सितंबर 1890) और 19 नव० (वही, 23 नवंबर 1901); हिंदुस्तान, 5 अक्तूबर (आर० एन० पी० एन०, 13 अक्तू० 1897) पी० ए० चारलू, एल० सी० पी०-1900 खंड XXXIX, पृ० 144 और एल० सी० पी० 1901 खंड XL पृ० 280. श्रीराम, एल० सी० पी० 1904 खंड XLIII, पृ० 510 वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 576, 580; एस० एम० पटेल : रिप० आई० एन० सी०-1902, पृ० 229. जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 26. कैसर ए हिन्द और गुजराती, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 29 अगस्त 1903); डेली हितवादी, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 15 अप्रैल 1905)

120. वाचा : स्पीचेज, पृ० 25 लगभग तथा वाचा विलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 17612-9.

121. आर० एन० पी० बंब०, 29 अगस्त 1903. भारतीय मत को और विस्तार से जानने के लिए देखिए : जामे जमशेद, 19 अगस्त (आर० एन० पी० बंब; 26 अगस्त 1876); जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 678; नेटिव ओपीनियन, 9 सितंबर (आर० एन० पी० बंब. 15 सितंबर 1883); इंडियन स्पैक्टेटर, 27 दिसंबर 1891. नेटिव ओपीनियन, 10 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 16 जन० 1892); लोकोपकारी, 29 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 15 सितंबर 1897); हिंदू, 29 अक्तूबर 1897 और 12 मई 1902; मायानी : एल० सी० पी० 1898 खंड XXXVII, पृ० 534; पैसा अखबार, 5 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 28 अगस्त 1897); एन० के० आर० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०, 1901 पृ० 138-9; शशिलेखा, 27 सितंबर और स्वदेशमित्रन, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम० 5 अक्तूबर, 1901 ; जनानुकूलन, 13 मई (वही, 13 जून 1903); किस्तना पत्रिका, 15 मई (वही, 21 मई 1904); गुजराती, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 29 अगस्त 1903); दत्त ई एच II, पृ० 178, 270, 545 और स्पीचेज II, पृ० 31, 49, 60.

122. नेटिव ओपीनियन, 9 सित० (आर० एन० पी० बंब, 15 सित०, 1883); जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 336, 856, 857, 866-7. दत्त . ई एच II, पृ० 171 और स्पीचेज I, पृ० 7.

123. रानाडे : पार्लियामेंटरी कमेटी आफ इंडियन पब्लिक वर्क्स : जे० पी० पी० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV स० 1) पृ० 11. नेटिव ओपीनियन, 9 सितंबर (आर० एन० पी० बंब, 15 सित० 1883); इन्दु प्रकाश, 30 नवंबर (वही, 30 दिसंबर 1904); दत्त : स्पीचेज II, पृ० 60-78.

124. ए० बी० पी० 14 नवंबर 1901; और भी, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 336; वाचा : स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 25 और सी० पी० ए०, पृ० 575, मायानी : एल० सी० पी०, 1897 खंड XXXVI पृ० 190; पी० ए० चारलू : एल० सी० पी० 1900 खंड XXXIX पृ० 144 और एल० सी० पी०1903 खंड XLII पृ० 144-5; दत्त : फैमिंस इन इंडिया, पृ० 82, स्पीचेज II, पृ० 60-1; श्रीराम : एल० सी० पी०-1904. खंड XLIII पृ० 510; बांबे क्रानिकल, 27 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 2 अप्रैल 1881); बांबे समाचार, 9 सित० और सांझ वर्तमान 9 सित० (वही, 10 सितंबर 1904); हिंदू, 12 मई 1902.

125. बांबे समाचार, 28 जन० (आर० एन० पी० बंब०, 28 जन० 1882); जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 697, शशिलेखा, 1 अक्तू० (आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1897); स्वदेशमित्रन,

30 अक्तूबर (वही, 30 नवंबर 1897); पी० ए० चारलू : एल० सी० पी० 1901, खंड XL, पृ० 280; एन० के० आर० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 138-9; वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 576-7, दत्त : ई एच II, पृ० 178, 366-7 और स्पीचेज II, पृ० 40, 60, 78. सायानी . एल० सी० पी०-1998, खंड XXXVII पृ० 534

126. 1898 में जी० एस० अय्यर ने लिखा वे (रेलें) सपदा का उत्पादन नही कर सकती, वे तो केवल उसके वितरण में सहायक हो सकती हैं. इसके विपरीत सिंचाई कार्य इस समय केवल एक फसल उगाने वाले किसान को दो फसलें उगाने के योग्य बना सकते हैं. (इडियन पालिटिक्स, पृ० 182). 1901 में आर० सी० दत्त ने अगरेजो की एक सभा में कहा : रेलें भारत के अन्न-सभरण में एक दाने तक की वृद्धि नही करती जबकि सिंचाई कार्य अन्न के उत्पादन को दुगना कर देते हैं, फसलो को बचाते है और अकाल रोकते हैं. (स्पीचेज II, पृ० 77) और भी इडियन स्पैक्टेटर, 27 दिसबर 1891, वाचा . स्पीचेज परिशिष्ट पृ० 25 तथा सी० पी० ए०, पृ० 577; सायानी · एल० सी० पी० 1897 खड XXXVI पृ० 189, हिंदू 12 मई 1902; दत्त : ई एच II, पृ० 174, 360, इन्दु प्रकाश, 30 नवबर (आर० एन० पी० बब, 3 दिसबर 1904)

127 नेटिव ओपीनियन, 9 सितबर (आर० एन० पी० बब०, 15 सितबर 1883), जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 697, सायानी एल० सी० पी० 1898, खड XXXVII पृ० 534, कर्णाटक पत्रिका, 17 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 31 अक्तू० 1898), वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 578, 580, गुजराती, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 29 अगस्त 1903), जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 267; दत्त : ई एच II, पृ० 173-4. हा यह अवश्य है कि यह एकमात्र कसौटी नही थी सिंचाई कार्यों के अकालनिरोधक होने के कारण अलाभप्रद होने पर भी उनका निर्माण करना ही चाहिए. देखिए रानाडे पार्लियामेंटरी कमेटी आन इडियन पब्लिक वर्क्स जे० पी० एम० एस०, जुलाई 1881 (खड IV स० 1) पृ० 26 और दत्त : ई एच II, पृ० 369, 573 और स्पीचेज II, पृ० 78. इस सबध में यह भी उल्लेखनीय है कि कतिपय भारतीय लेखको ने बड़े परिमाण के लाभदायक सिंचाई कार्यों की आलोचना की और उन्होंने उनके स्थान पर छोटे पैमाने के कम खर्चवाले कुओ और तालाबो जैसे सिंचाई कार्यों का समर्थन किया. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 867-8, वाचा स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 25. बगवासी 5 मई (आर० एन० पी० बग०, 12 मई 1894).

128. रानाडे : पार्लियामेंटरी कमेटी आन इडियन पब्लिक वर्क्स-जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881, पृ० 16, 25, 27, नेटिव ओपीनियन, 9 सित० (आर० एन० पी० बब, 15 सितबर 1883); शशिलेखा, 1 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1897); दत्त : ई एच II, पृ० 178, 366-7.

129. नेटिव ओपीनियन, 9 सितबर (आर० एन० पी० बब०, 15 सितंबर 1883); सायानी : एल० सी० पी० 1897, खड XXXVI; शशिलेखा, 1 अक्तूबर(आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1897).

130. दत्त : ई एच I, पृ० 312 और ई एच II, पृ० 545-6 और स्पीचेज II, पृ० 31, 60, 77.

131. आर० एन० पी० बंब, 29 अगस्त, 1903.

132. वही, 3 दिसंबर 1904 और देखिए, पी० ए० चारलू : एल० सी० पी० 1900, खड XXXIX पृ० 144; श्रीराम : एल० सी० पी० 1904 खंड XLIII पृ० 510; केसरी .9 सितंबर (आर०

एन० पी० बब, 13 सितबर 1890), दैनिक हितवादी, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 15 अप्रैल 1905)

133 1877 में लार्ड सैल्सबरी ने घोषित किया हमे सिंचाई को अकालो के व्यापक उपचार के रूप मे नही देखना चाहिए (जान मरडोच फैमिन फैक्टस ऐंड फैलेसीस पर उद्धृत, पृ० 9) 1878 मे पार्लियामेट की सिलेक्ट कमेटी ने बडे पैमाने पर सिंचाई योजना को रद्द कर दिया—दत्त ई एच I, पृ० 369 कुछ विशिष्ट सरकारी हलको मे आत्मसतुष्टि थी कि रेलो के द्रुत प्रसार से अकाल की समस्या का समाधान हो गया था उदाहरण के लिए देखिए—चेसनी पूर्वोद्धृत, पृ० 343-4, 1896 व 1901 के बीच पडे अकालो ने अवश्य ही इस आत्मसतुष्टि को भग किया

134 कर्जन स्पीचेज I, पृ० 319 20

135 कर्जन स्पीचेज II पृ० 282

136 वाचा सी० पी० ए०, पृ० 577 8 आर सी दत्त ने सिंचाई के मामले मे भारतीय आलोचना को सर्वथा सही बताते हुए कहा यदि इस आलोचना का भारत सरकार पर प्रभाव पडता तो भारत आने वाले अकालो से समय पर ही सुरक्षित हो जाता (स्पीचेज II, पृ० 60) और भी पृ० 31, 61, 78 और ई एच II, पृ० 370

137 इपीरियल गजेटियर (1908) खड III, प० 353

138 कर्जन स्पीचेज IV, पृ० 101

139 मराठा, 23 अगस्त 1903 हिंदू, 20 अगस्त 1903, वायस आफ इडिया, 22 अगस्त 1903, साझ वर्तमान, 20 अगस्त (आर० एन० पी० बब 22 अगस्त 1903), कैसर ए हिंद, और गुजराती 23 अगस्त (वही, 23 अगस्त 1903), मद्रास स्टैंडर्ड 20 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 3 अक्तूबर 1903), दत्त ई एच II, पृ० 551-3

140 मराठा, 23 अगस्त 1903, कैसर ए हिंद, 23 अगस्त और गुजराती, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 23 अगस्त 1903)

141 यही कारण है कि रेलो के पुनर्जन्म की भूमिका उनकी कल्पना को पकड न सकी जैसाकि बाद मे बुकनान ने भी कहा उन्होने इसपर विचार किया है कि रेलें उत्पादन के लिए लबी अवधि के लिए लाभप्रद होने की अपेक्षा हानिप्रद ही हैं—(पूर्वोद्धृत, पृ० 191-2) सचार साधनो के प्रति आवश्यकता से अधिक ध्यान देने के फलस्वरूप कृषि की भी क्षति हो रही है

142 बगाल राष्ट्रीय वाणिज्य सदन का 1888 का प्रतिवेदन, पृ० 62 और 58-9

143 वही, 1899, पृ० 4-5

अध्याय 6

शुल्क पद्धति

भारतीय हित यह अनिवार्य अपेक्षा करते है कि सैद्धांतिक रूप में एकदम गलत, व्यावहारिक परिणाम के रूप मे अत्यंत क्षतिकारक तथा लागू होने पर आत्मविनाशक करों को तत्काल ही [illegible] लेना चाहिए।

—लार्ड सैलिसबरी

जहां अंगरेज उत्पादकों के साथ प्रतियोगिता के संदेह का लेश भी है वहां ऐसे सिद्धांत और ऐसी नीतियां निर्धारित की गई है जिससे भारत के शिशु उद्योगों का जन्म से ही गला घुट जाए।

—फिरोजशाह मेहता

1880-1905 की अवधि से भारतीय नेताओं द्वारा चर्चित एक अन्य महत्वपूर्ण आर्थिक विषय था, शुल्क पद्धति। इस विषय को भारतीयो ने जो महत्व प्रदान किया, उसका कारण औद्योगिक विकास तथा निर्धनता की समस्या के साथ इसका घनिष्ठ संबंध था। उनके विचार मे निर्धनता की समस्या का उन्मूलन उद्योगीकरण की द्रुतगति पर निर्भर था। यह प्रक्रिया कपास और चीनी पर शुल्क सबंधी सरकारी नीति की प्रतिक्रिया और सैद्धांतिक स्तर पर उन्मुक्त व्यापार के सिद्धांत के प्रत्युत्तर पर आधारित थी। द्वितीय पक्ष का विवेचन तो भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्थापरक एक परवर्ती अध्याय में किया गया है। इस अध्याय मे हम केवल प्रथम पक्ष पर ही विचार विमर्श प्रस्तुत करेंगे।

कपास आयात शुल्क की समाप्ति, 1878-82

भारत के प्रशासन के ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथों से ब्रिटिश ताज के हस्तांतरण के समय सूत और सूती लच्छियों पर 3½ प्रतिशत तथा सूती टुकडों सहित अन्य ब्रिटिश सामान पर तीन प्रतिशत शुल्क था। अन्य बाहरी देशो से आने वाले सामान पर इसका दुगना शुल्क था। 1857 के विद्रोह से उद्भूत वित्तीय कठिनाइयों ने भारत सरकार को 1859 म सूत और सूती लच्छियों पर 5 प्रतिशत तथा अन्य वस्तुओं पर 10 प्रतिशत तक शुल्क बढ़ाने को विवश कर दिया। आगामी वर्षों में सूत और लच्छियों पर शुल्क दस प्रति-

शत कर दिया गया। परन्तु ब्रिटिश व्यापारियों और कपास उत्पादकों के दबाव से शुल्क सुधार और कटौती की प्रक्रिया, विशेषत: सूती उत्पादनों पर, शीघ्र ही अस्तित्व मे आ गई (1861 में सूती गुच्छियो और धागों पर शुल्क घटाकर 5 प्रतिशत और 1862 मे घटाकर 3½ प्रतिशत कर दिया गया। 1862 मे सूती टुकडों के सामान पर शुल्क घटाकर 5 प्रतिशत कर दिया गया। 1864 में सामान्य आयात शुल्क घटाकर 6½ प्रतिशत और 1875 में 5 प्रतिशत कर दिया गया। इन सारे वर्षों मे आयात शुल्क विशुद्ध रूप से राजस्व के उद्देश्यों से ही थोपे गए। इनके पीछे सुरक्षा की इच्छा का लेश मात्र भी नही था।

इतने पर भी 1874 के आसपास कपास शुल्क, जो निर्यात शुल्को से प्राप्त होने वाली आय में मुकाबले कुल राजस्व का आधा भाग बनता था, लंकाशायर के कपास उत्पादकों की कटु आलोचना का विषय बन गया।[2] 1874 मे माचेस्टर के वाणिज्य सदन ने राज्य सचिव को एक विज्ञापन दिया, जिसमे शिकायत की गई थी कि कपास उत्पादन का सरक्षित व्यापार भारत मे भारत और ग्रेट ब्रिटेन दोनों के लिए अलाभप्रद बनता जा रहा था। उन्होने साथही सूती उत्पादनों पर आयात शुल्कों के हटाने की माग की परंतु नवंबर 1874 मे भारत सरकार द्वारा नियुक्त समिति ने इस तर्क को अस्वीकार कर दिया कि शुल्क संरक्षक थे। हा, उन्मुक्त व्यापार के लक्ष्य को नए रूढिवादी भारत सचिव लार्ड सेलिसबरी ने बडी प्रबलता के साथ समर्थन दिया और भारत सरकार से सूती सामान पर आयात शुल्कों के हटाने की आवश्यकता पर बराबर और बार बार बल दिया।[3] उसने जोर देकर कहा कि आर्थिक और राजनीतिक दोनों आधारो पर शुल्क का हटाना अत्यावश्यक था। उसने सर्वप्रथम यह तर्क प्रस्तुत किया कि सरक्षण कर ग्रेट ब्रिटेन द्वारा स्वीकृत उन्मुक्त व्यापार की सामान्य नीति के विरुद्ध थे। दूसरे, वे भारत मे निर्यात को प्रतिबाधित करके ब्रिटिश उत्पादकों को हानि पहुंचाते थे। तीसरे, करों की वृद्धि मे भारतीयों के जीवनोपयोगी वस्तुओ के मूल्य बढ जाने से वे उनके हितो के विरुद्ध थे। अंतिम, वे पनपते भारतीय उद्योग के सच्चे हितो के विरुद्ध थे। उन्ही के कारण वह कृत्रिम उत्तेजना के अतर्गत कच्ची नींव पर विकसित हो रहा था। इन सबसे बढ़ चढकर उसने टिप्पणी की कि राजनीतिक कारण भी कपास करों के शीघ्र हटाने मे समान रूप से आज्ञापरक थे। वास्तव मे इस संबध मे उसके द्वारा प्रदर्शित सूक्ष्म चिंतन के कारण हम उसके मंतव्य को मूल रूप में विस्तार से पुनरुद्धृत करने के मोह का संवरण नही कर पाते :

> अंगरेजों के हाथ से निकल कर क्रमश: भारतीयों के हाथ मे आने की संभावना वाला भारतीय व्यापार जहां अंगरेजों के लिए कटु भावनाओं को जन्म देगा, वही भारतीयों के लिए अप्रत्याशित सुरक्षा की सफलता मिलने से उनमें तीव्र उत्सुकता उत्पन्न करेगा। अंगरेज उत्पादक बढ़ती हुई उत्कठा के साथ अपने लिए हानिकारक करों के हटाने के लिए दबाव डालेंगे और इसके लिए जितनी ही वे जल्दबाजी करेंगे, उतना ही अधिक भारतीयों को उसके महत्व का पता चलेगा···इस स्थिति मे भी कुछ क्षोभ अभिव्यक्त होगा और भारतीयों के दावो की उपेक्षा करके अंगरेजी हितों को प्राथमिकता देने की नीति को इसका कारण माननेवाले

व्यक्तियों द्वारा और भी अधिक क्षोभ अभिव्यक्त किया जाएगा। यदि इस संबंध मे कार्यवाही में विलंब हुआ तो क्रोध की मात्रा व्यापक रूप मे उभर कर ऊपर आ जाएगी और यदि बहुत अधिक विलंब हुआ तो यह निश्चित रूप से एक गंभीर सार्वजनिक खतरा बन जाएगा।[4]

जहा तक लार्ड सैलिसबरी का संबंध था, उसने 31 मई 1876 के संप्रेषण मे इस सारे मतभेद को निष्कर्ष रूप मे इस प्रकार सुलझाया। उसने समग्र प्रश्न की पुन: परीक्षा करने के उपरांत घोषित किया कि भारतीय हितो की अनिवार्य अपेक्षा इन करों को हटाने की है। भारतीयों के अनुसार ये कर सैद्धांतिक रूप मे एकदम गलत, व्यावहारिक प्रभाव के रूप में घातक तथा प्रवर्तन मे आत्मघाती हैं। कपास पर कर हटाने के विरुद्ध एकमात्र तर्क राजकोष पर पड़ने वाला हानिप्रद प्रभाव था। इस संबंध में उसका कथन था कि जहां भारत सरकार इस निर्देश को क्रियान्वित करने मे विवेक का परिचय दे, उसे भारतीय करदाता को प्रत्येक प्रकार के करो मे राहत देते समय इन करो के हटाने को ही प्राथमिकता देनी चाहिए।

भारत सरकार और वायसराय लार्ड नार्थब्रुक ने राज्य सचिव के सुझाव को महत्व नहीं दिया और कपास करों को इस आधार पर हटाना अस्वीकार कर दिया कि वे व्यावहारिक रूप में संरक्षक नहीं थे। परतु विरोधियों का मुह बंद करने के लिए सरकार ने लंबे रेशेवाली रुई के आयात पर पाच प्रतिशत कर लगाने का निश्चय किया।

हां, कपास आयात करों का भाग्य उस समय पूरी तरह निश्चित हो गया जब 1875 में लार्ड नार्थब्रुक का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया गया और लार्ड लिटन को उसके स्थान पर वायसराय तथा जान स्ट्रैची को वित्त सदस्य नियुक्त किया गया। ये दोनो राज्य सचिव की इच्छाओं का पालन करने को अत्यंत उत्सुक थे।[5] उस समय (11 जुलाई 1877 मे) हाउस आफ कामंस ने इस विषय का एक प्रस्ताव पारित किया कि भारत मे आयातित सूती उत्पादनों पर इस समय लागू कर अपने स्वरूप मे सरक्षक होने के कारण सुदृढ वाणिज्य नीति के विरुद्ध है और ज्यो ही वित्तीय स्थिति अनुकूल हो त्यों ही यथाशीघ्र इन्हें हटा देना चाहिए।[6] हा, अफगान युद्ध, अकालों की प्रवृत्ति तथा चादी के अवमूल्यन से उत्पन्न वित्तीय कठिनाई ने लार्ड लिटन और उसके वित्त मत्री के उत्साह को किसी सीमा तक दबा दिया। फिर भी 1878 मे कुछ अपेक्षाकृत मोटे प्रकार के सूती सामान पर करों में और 1879 मे सिवाय 30 रेशोवाले सूत के, अन्य सभी प्रकार के सूती सामान पर कर हटा दिए गए। इसके उपरात अवसर आया जब 1882 मे बजट मे 30 लाख पौंड का लाभ दिखाया गया और अधिकांश अन्य वस्तुओ पर करो के साथ कपास पर कर पूर्ण रूप से हटा दिए गए। केवल नमक, शराब, तरल पदार्थों, शस्त्रों तथा गोला-बारूद आदि पर विशेष कर रहने दिए गए।

अगले बारह वर्षों तक भारत में वास्तव में किसी प्रकार के सीमा शुल्क नही थे और वह किसी भी अन्य देश की अपेक्षा उन्मुक्त व्यापार के सिद्धांत को अधिक निकटता से अपना रहा था। यहां तक कि ब्रिटेन के पत्तन भी भारत के पत्तनों के समान स्वतंत्र नहीं थे। इसके स्वाभाविक परिणाम स्वरूप उत्पादित आयात मे वृद्धि हो रही थी।

इन आयातों का मूल्य 1878-9 से 1881-2 में 18 प्रतिशत, 1878-9 से 1884-5 में 45 प्रतिशत बढ़ गया। इन वर्षों मे मूल्यो में निरंतर ह्रास हो रहा था अतः इस प्रकार भारत के आयात की परिमाणगत वृद्धि बहुत अधिक थी। निस्संदेह यह सब कुछ अन्य अनेक तत्वों और शक्तियों का भी परिणाम था परंतु निर्विवाद रूप में आंशिक रूप से यह आयात करों के हटाने का फल ही था।[7]

कपास आयात शुल्क की समाप्ति का राष्ट्रवादियों द्वारा विरोध

कपास आयात करों के निवर्तन के आंदोलन के प्रारंभ मे ही भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने एक मन स इतने अधिक रोष और उत्तेजना के साथ उनका विरोध किया कि आक्रमण के प्रमुख निशाने सर जान स्ट्रेची को बाद में वर्षों तक यह शिकायत बनी रही कि भारतीय लोकप्रिय धारणा राजकोषीय सुधारों के प्रश्न के संबंध मे बाधक और नासमझ थी।[8]

1874 मे जब मानचेस्टर वाणिज्य सदन न भारत मे कपास करों के हटाने की माग की और राज्य सचिव ने इस माग को भारत सरकार के पास भेजा तो बगाल का 'सहचर' इसके विरुद्ध अत्यत प्रचडता से बरस पडा।[9] जनवरी 1875 मे इसी प्रकार का विरोध ईस्ट इंडिया एसोसिएशन की बंबई शाखा ने किया।[10] समाचारपत्रो ने भी 1875 में लबे रेशेवाली कपास पर 5 प्रतिशत कर लगाकर और सूती वस्त्रों पर आयात कर घटाकर कपास शुल्क के आलोचकों को चुप कराने की सरकारी नीति की तीखी आलोचना की।[11] अगले वर्ष लार्ड सैलिसबरी द्वारा मानचेस्टर वाणिज्य सदन को क्रमश कपास कर घटाने के आश्वासन की समाचारपत्रों ने निंदा की।[12]

मार्च 1875 मे कुछ मोटे सूती वस्त्रो पर कर हटाने की बहुत सारे समाचारपत्रो ने उग्र भर्त्सना की।[13] और 1879 में भूरी कपास के सभी प्रकार के सामान पर करो की छूट का परिणाम समाचारपत्रों तथा लोक नेताओं द्वारा राष्ट्रव्यापी निंदा के रूप मे ही दृष्टिगोचर हुआ।[14] क्रोध मे जलते हुए सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने प्रश्न किया : 'क्या अभी बलिदान की और आवश्यकता थी, क्या अभी देशवासियो के हितों का और अधिक प्रबल विनाश अपेक्षित था?'[15] इसी प्रकार सहचर ने 23 मार्च 1879 के अंक मे कठोर भाषा में इस कृत्य के लिए लार्ड लिटन की निंदा की। उसने लिखा : 'वास्तव मे हम लार्ड लिटन के चरित्र का जितना अधिक अध्ययन करते है, उतनी अधिक हमें उसके प्रति घृणा उत्पन्न होती है।' पत्र ने लार्ड लिटन की कर हटाने की कहानी को 'मानसिक दुर्बलता' बताया और आश्चर्य प्रकट किया : 'हमारी शोचनीय दशा के समय अपनी जाति के प्रति उसके द्वारा दिखाए गए पक्षपात के उदाहरण को हम कभी नही भूल सकेंगे।'[16]

1880-1 में कपास पर अवशिष्ट कुल करों के निवर्तन की बातचीत के समय भारतीय समाचारपत्र और जन संस्थाए एक बार पुन. भड़क उठे। लार्ड हार्टिंगटन द्वारा भारतीय बजट पर भाषण करते हुए की गई इस टिप्पणी ने आग मे घी का काम किया कि कपास कर को हटाने के लिए भारत सरकार पर दबाव डालने का कोई भी अवसर खोया नही जाएगा और इससे राष्ट्रवादियों का विरोध और तीखा हो उठा।[18] अंत मे जब 1882 में

मेजर बेर्यरिंग ने कपास कर के पूर्णनिवर्तन की घोषणा की तो भारतीय लोकमत ने एकमत से इस कार्यवाही से असहमति प्रकट की ।[19] कुछ आलोचको ने तो अपेक्षाकृत कठोर भाषा में अपने को अभिव्यक्त किया । अमृत बाजार पत्रिका ने 6 अप्रैल 1882 के अंक मे लिखा : आयात कर का निवर्तन एक पाप है और हम फिर बार-बार कहते हैं कि इसे न्यायोचित सिद्ध करने की कोई भी चेष्टा अपने आपको घोर पातक के शिखर पर पहुचाने की चेष्टा के अतिरिक्त और कुछ नही होगी । फिर भी कुल मिलाकर बेर्यरिंग की कार्यवाही के विरुद्ध राष्ट्रीय समीक्षा अपेक्षाकृत हलकी ही थी । इसका आंशिक कारण यह था कि इसकी पूर्व सूचना दी जा चुकी थी । उसका त्वचा विदारण किया जा चुका था और तार-तार करके उसकी आलोचना भी की जा चुकी थी और इसके अतिरिक्त यह किसी भी रूप मे वस्तुतः भारतीय कपडा उद्योग को प्रभावित ही नही करता था क्योंकि इसका संबंध बढिया स्तर के सूती सामान से था और उस समय भारतीय मिलें उल्लेखनीय परिमाण मे बढिया सूती सामान का उत्पादन ही नही कर रही थी । भारतीय मयन आक्रमण का एक अन्य प्रमुख कारण कदाचित लार्ड रिपन और मेजर बेर्यरिंग की भारतीय जनता मे व्यापक लोकप्रियता और भारतीयों की उन महानुभावों को राजनीतिक दृष्टि से परेशान न करने की उत्सुकता थी ।[20]

कपास कर के निवर्तन का विरोध करते हुए भारतीय नेताओ ने अपने विरोधियो द्वारा प्रस्तुत इस प्रमुख आधार का कि ये कर भारतीय कपडा उद्योग को सरक्षण प्रदान करते है खंडन किया । एक ओर उनका कथन था कि कपास कर अपने स्वरूप मे ही उद्योग के सर्वथा सरक्षक नही थे क्योंकि भारत अधिकाशतः आयात किये जाने वाले उत्कृष्ट कोटि के सूती वस्त्रो का उत्पादन ही नही करता था । भारतीय मिलें तो मोटे कपडे के उत्पादन मे विशेष निपुण हैं और उस मोटे कपडे का आयात नही होता था । भारतीय मिलो को मोटे कपडे के आयात की कुछ प्राकृतिक सुविधाएं प्राप्त है, जिन्हे कपास करो के निवर्तन से दुर्बल नही किया जा सकता ।[21] दूसरी ओर उनका सुदृढ मत था कि विशुद्ध राजस्व के उद्देश्यो की दृष्टि से करो की बडी आवश्यकता थी, वस्तुतः भारतीय वित्तो के स्वरूप की दृष्टि मे तो ये कर आवश्यक ही थे ।[22] उसका तर्क था कि कपास करो के समान अदुखप्रद तथा हानिकारक अन्य कोई राजस्व का स्रोत ही नही था । भारत के वित्तो की स्थिति के निराशाजनक और अव्यवस्थित होने के कारण उनका भय था कि कपास करो के निवर्तन से हुए घाटे की पूर्ति जनता से और अधिक ऋण लेने और घिनौने किस्म के कराधान उपाय से ही की जाएगी और वस्तुतः की जा रही थी ।[23] कुछ भारतीयो ने टिप्पणी की कि नमक कर तथा अनुज्ञप्ति करके अधिनियम ग्रंथ में रहने पर कपास करों को हटाना सर्वथा अन्यायपूर्ण था ।[24] यह भी पर्याप्त आश्चर्यजनक है कि बहुत सारे भारतीय नेताओ ने जिस सास मे कपास करो के स्वरूप को असंरक्षक माना था, उसी सास मे उन करो के निवर्तन को भारतीय वस्त्र उद्योग पर हानिप्रद प्रभाव डालने वाला भी कह दिया ।[25] इस प्रकार से उन्होने निहितार्थ द्वारा इन करो के संरक्षक स्वरूप को अभि-स्वीकार किया अन्यथा और किसी भी रूप मे उनके निवर्तन से भारतीय उद्योग को वास्तव मे होने वाली क्षति सिद्ध नही की जा सकती थी । कुछ ने तो खुले तौर पर मान

लिया कि आयात कर सरक्षक थे और उस रूप में सुरक्षा प्रदान करते थे। जैसा हम आगे के अध्याय मे दिखाएगे, लगभग सभी भारतीय नेताओं ने अध्ययन काल में उद्योगीकरण के उन्नयन के लिए सरक्षण के महत्व और उपयोग की वकालत की।

राजनीतिक अर्थ

प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा सघर्ष के हेतु लिए गए थोडे से सार्वजनिक विषयो म से एक था, कपास आयात करो के निवर्तन का विरोध। वर्षो तक सगठित रूप से बुद्धिमत्ता-पूर्वक तथा सतर्क होकर इसका अनुसरण किया गया परन्तु सघर्ष का अतिम परिणाम उन्हे कुठित करने वाला ही निकला। पग-पग पर उनके दृष्टिकोण की उपेक्षा की गई, उसे ठुकराया गया और अत मे कपास आयात कर पूर्ण रूप से हटा लिए गए। इसका परिणाम शासको के प्रति कटु प्रवृति तथा शत्रुता की भावना के विकास और प्रसार के रूप मे ही सामने आया। बहुत सारे उदीयमान भारतीय नेता शनै शनै शासको की सद्भावना मे सदेह करने लगे और समुचित राजनीतिक निष्कर्ष निकालने लगे।

स्पष्ट रूप से देश के हितो के विरुद्ध दिखाई देने वाली नीति के प्रवर्तन ने राष्ट्रवादियो को यह पूछने और इस मन इस प्रश्न का उत्तर ढूढने पर विवश कर दिया कि यह नीति क्यो लागू की जा रही है? उनके अनुसार सरकार की कर नीति का मुख्य आधार न तो भारतीय जनता का हितचिंतन था और न ही उन्मुक्त व्यापार के सिद्धात का वास्तविक परिपालन। वस्तुत. इस सबके विपरीत भारतीय वस्त्र उद्योग मे द्रुतविकास से लकाशायर के उत्पादको के हृदय मे भडकती हुई ईर्ष्या ही इसका कारण थी। वे यह भी विश्वास करने लगे कि इग्लैंड के दोनो राजनीतिक दल लकाशायर मे राजनीतिक समर्थन पाने के इच्छुक थे अत इग्लैंड मे दलगत राजनीति की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उन्हे कपास करो के आशिक अथवा पूर्ण रूप से हटाने के रूप मे शक्तिशाली लकाशायर के हितो के आगे भारतीयो के हितो की बलि चढानी पढ रही थी।[26] उदाहरणार्थ, 15 दिसबर 1875 को बोध सुधारक ने अपने, 'मानचेस्टर के स्वार्थी व्यापारी और उनके कर्तव्यबद्ध सेवक भारत राज्य सचिव' शीर्षक सपादकीय मे यही दृष्टिकोण प्रकट किया।[27]

यहा तक कि जुलाई 1881 को जस्टिस रानाडे को यह कहना पडा कि अनुदार राजनीतिज्ञो ने अपने कार्यालय मे उन्मुक्त व्यापार के नाम पर भारत के हितो की बलि चढाई है और मानचेस्टर को प्रसन्न करने के लिए 250,000 पौंड भारतीय राजस्व की राशि उसकी सेवा मे भेट की है।[28] इसी प्रकार 1880 मे पटना की एक जन सभा मे पूना सार्वजनिक सभा के रुढिवादी अध्यक्ष राव बहादुर के० एल० नुलकर ने क्रुद्ध होकर टिप्पणी की

> इस बात को समझने के लिए कि इंग्लैंड मे बैठकर भारत के भाग्य पर नियत्रण रखने वाले अपनी नियुक्ति की अवधि को लबा करने के लिए तथा अपने कोष की सुरक्षा के लिए किस प्रकार अपनी शक्तियो का दुरुपयोग कर रहे हैं, हमें केवल इस बात पर विचार करना है कि मानचेस्टर का अनुग्रह पाने के लिए ही अभी हाल ही

मे कपास आयात करों से प्राप्त होने वाले हमारे राजस्व की बलि चढाई गई है।[29] बगाली ने 11 मार्च 1882 के अक मे न केवल ग्लैडसन की उदारवादी सरकार की अवशिष्ट कपास आयात करो के हटाने की कार्यवाही की ही निंदा की, प्रत्युत उसके इस कार्य को करने के दभी ढग की भी भर्त्सना की। उसने लिखा करो को हटाने का निर्णय सर्वथा निराधार है, इसमे कपट और बनावट की गध आती है। यह हमे रोष दिलाने वाली गलती को व्यापार उत्कर्ष बताने की बहानेबाजी है।

जहा ब्रिटिश प्रशासको ने भारतीयो के तर्कों की और उनके प्रचड विरोध की उपेक्षा करना ही ठीक समझा[30], वहा भारतीय नेता कपास करों के निवर्तन पर लबी खिच गई मुठभेड के राजनीतिक निहितार्थ की गहराई मे उतरने लगे। इससे पूर्व उनके चिंतन का जो ढग था और बहुत सारे मामलो मे आगामी वर्षो मे भी जो चिंतन पद्धति उन्हे अपनानी थी वह यह थी कि अब तक वे अपने सभी प्रकार के कुप्रशासनो का दायित्व भारत मे स्थित अग्रेज अधिकारियो के कधो पर डालते थे क्योकि भारतीय नेता इन अधिकारियो को शैतान समझकर उनसे घृणा करते थे और यह मानते थे कि ये लोग अपने स्वार्थ के कारण दयालु रानी, लोकतत्रीय ससद और स्वतत्रता प्रेमी अगरेजो के उदार आदेशो को लागू करने मे असफल रहे है परतु अब शीघ्र ही जनता को कपास करो पर मतभेद मे स्पष्ट हो गया कि इस विषय मे नौकरशाही ने जहा न्यूनाधिक रूप से भारतीयो का पक्ष लिया था, वहा ब्रिटिश सरकार और संसद ने शैतान की भूमिका निभाई थी।[31] इसने बहुत सारे भारतीयो को इस विषय की परीक्षा करने और कदाचित प्रथम बार इस व्यापक स्तर पर अपने शासको की सद्भावना और भारत मे ब्रिटिश शासन के वास्तविक लक्ष्य और प्रयोजन पर विचार करने को विवश कर दिया। इस चिंतन के फलस्वरूप वे इस दु खद निष्कर्ष पर पहुचे कि भारत पर अगरेजो के शासन का प्रधान उद्देश्य भारतीयो के हितो की अपेक्षा ब्रिटिश व्यापारियो और उत्पादको का हित-साधन ही था।

1875 मे 'बेलगाव समाचार' ने अपना मत अभिव्यक्त किया कि राज्य सचिव द्वारा माचेस्टर वाणिज्य सदन को दिए गए आश्वासन कि अगरेजी वस्त्रो पर आयात कर हटा दिए जाएगे, ब्रिटिश सरकार की मनोवृत्ति का ही एक प्रमाण है। सरकार जो भी काम करती है, ढोग तो भारत के हित का करती है पर वास्तव मे वे सब होते शासक जाति के हित मे ही है।[32] भोलानाथ चद्र समस्या का निर्भीक और विस्तृत विश्लेषण करनेवाले कदाचित प्रथम भारतीय महानुभाव थे। उन्होने 1876 मे लिखते हुए प्रारभ मे ही यह स्वीकार किया कि इस सारे मतभेद मे विचारणीय विषय, आयात कर, अपने आप मे इतने अधिक महत्वपूर्ण नही थे; क्योकि सत्य यह है कि आयात कर भले ही हटा दिए जाए भारत का वस्त्र उद्योग तो फिर भी अपनी प्राकृतिक अनुकूल स्थितियों के कारण फले फूलेगा। राष्ट्र द्वारा विचारणीय विषय तो यह है कि देश मे उसके अपने हितो के अनुकूल शासन चलना है अथवा इग्लैड के हितो के अनुकूल। उन्हे यह अत्यत स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि भारतीयो ने जो महत्वाकाक्षाए सजो रखी थी कि अब उनके लिए सौभाग्य के सूर्य का उदय होने वाला है, उसका उत्तर सर्वथा और पूर्णत· नकारात्मक ही था।

1858 का वचन मृगतृष्णा ही सिद्ध हुआ था और यह विश्वास कि एक व्यापारी कंपनी के हाथ से ताज के हाथ में प्रशासन के हस्तातरण से प्रशासन की प्रकृति और उसके उद्देश्यों में परिवर्तन आ जाएगा, बालू की भीत पर टिका सिद्ध हुआ है। उन्होंने लिखा :

> सुधार, और एक सुव्यवस्थित शासन और नई भूमिका के स्थान पर निश्चयात्मक रूप से पिछड़ापन ही मिला है। वही जाति की अपनी जाति के प्रति सहानुभूति दिखाई देती हैं। वही भारतीयों के हितों की अनुल्पता मे इग्लैंड के हितों की निरंतर स्पष्ट स्वीकृति है, वही लूट-खसोट और छीना झपटी की भावना है और भारत को 1776 मे विद्यार्थी की अवस्था मे रखने का जो संकल्प था, वही 1876 मे भी विद्यमान है।[33]

भोलानाथ चंद्र ने व्याख्यान दिया कि सचमुच लोगों को मानचेस्टर की विजय से अमूल्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि इससे नग्न रूप से पता चलता है कि सारा भारत मिलाकर भी कपास की कताई-बुनाई मे मानचेस्टर के समकक्ष नही है।[34] तीन वर्षो के उपरांत एस० एन० बैनर्जी ने आलकारिक रूप से देशवासियो के आगे प्रश्न उपस्थित करते हुए उनसे पूछा : यदि हमारी अपनी सरकार होती तो क्या वह सरकार लोकमत का इस प्रकार सर्वथा निरादर करती हुई और देशवासियो के हितों की पूर्ण उपेक्षा करती हुई ऐसा काम करने का साहस करती ?[35] इसी कठोर सत्य की अभिव्यक्ति मराठा ने 18 सितंबर 1881 के अंक मे निम्न टिप्पणी करते समय की कि भारत का स्थान साम्राज्य मे समानता का न होकर एक विजित राष्ट्र का था। उसने इस बात पर विशेष बल दिया कि मानचेस्टर के हितों के लिए भारत के हितो का बलिदान तो प्रत्येक विजित राष्ट्र द्वारा विजेता राष्ट्र को बिना शिकायत किए चुकाए जाने वाले दड का ही रूप था। मराठा ने यह संकेत किया कि वस्तुतः दुख का मूल कारण विदेशी शासकों का अमुक अथवा अमुक कृत्य न होकर देश की यथार्थ मौलिक राजनीतिक स्थिति ही थी।

लार्ड रिपन ने 1882 मे कपास करों का निवर्तन भारतीयो के सामान्य हित मे होने के निश्चित मंतव्य का पुनः समर्थन किया। उसने साथ ही इस बात का भी दावा किया कि वह भारतीयों के लाभ के लिए भारत के हित मे ही भारत पर शासन का इच्छुक है।[36] 'बंगाली' ने 11 मार्च 1882 मे अक मे तुरंत उत्तर दिया : 'भारत के लिए ही भारत पर शासन की चर्चा अपने आप मे सुंदर हो सकती है परंतु हमारे शासक यह नही भूल सकते···कि वे अगरेज हैं और उन्हें अवश्यमेव एक निश्चित परिमाण में प्रत्येक मूल्य पर अंगरेजो को लाभान्वित करने वाले सिद्धांतों के अनुसार ही सरकार चलानी चाहिए।' अमृत बाजार पत्रिका ने एक बार फिर अपने 6 अप्रैल 1882 के अक मे भारत की राजनीतिक दासता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उसका उपचार इस प्रकार से सुझाया : 'ब्रिटेन यूरोप के अपने संबधी देशों को उन्मुक्त व्यापार का वरदान प्रदान नही कर सकता और अपने उपनिवेशों में भी यह उदारता नही दिखा सकता, क्योकि वे अपने शासक आप हैं।···परंतु भारत एक असहाय देश है, उसके सपूत दुर्बल और शक्तिहीन है।'[37] बहुत वर्षों के बाद कपास करों के निवर्तन की चर्चा करते हुए आर० सी० दत्त ने लिखा : भारत में ब्रिटिश प्रशासकों ने बंबई के शिशु कपास उद्योग को ईर्ष्या से न देखकर उसके प्रति

संतोष ही प्रकट किया परंतु भारतीय प्रशासन के संबंध में तो वे बेचारे ब्रिटिश व्यापारी और ब्रिटिश मतदाता के ही दास थे।[38]

इस समालोचना का एक समाहित तत्व यह था कि भारत सरकार को ब्रिटिश व्यापारियों के नियंत्रण से मुक्त कराया जाए ताकि भारत के अनुकूल कर नीति अपनाई जा सके। सहचर के 22 मार्च 1882 के अंक मे निर्दिष्ट सरकारी कोष को नियंत्रित करने की शक्ति भारतीयो को हस्तांतरित करने की माग भी बडे ही स्पष्ट शब्दों मे प्रस्तुत की गई।[39] चार वर्षो के उपरात इसी पत्र ने आग्रह किया कि यदि भारतीय आयात करों को पुन: लागू करना चाहते है तो उन्हे अगरेजी उपनिवेशो, कनाडा और आस्ट्रेलिया द्वारा किए गए संघर्ष के समान स्वशासन के लिए सघर्ष का पथ ही अपनाना चाहिए। इसी प्रकार 17 जनवरी 1886 के अक मे मराठा ने घोर निराशा के साथ लिखा कि एक व्यापारी देश के विदेशी शासन मे आयात करों के दोबारा बहाल होने की आशा हम कभी नहीं कर सकते।[40]

भारतीय नेताओं को इस समय अपने आप सूझा कि भारतीय उद्योग पर कपास करों के निवर्तन से होने वाले हानिप्रद प्रभाव को निष्प्रभावी बनाने का एक अन्य उपाय था, विदेशी वस्त्रों को न खरीद कर स्वदेशी को अपनाने के रूप मे स्वेच्छा से अपने उद्योग को संरक्षण प्रदान करना। स्वदेशी का एक बहुत बडा गुण यह था कि राजनीतिक दमन की स्थिति मे भी इसे अपनाना सभव था। हमे यहा स्वदेशी के प्रचार के राष्ट्रवादी प्रयत्नों की समीक्षा के लिए रुकने की आवश्यकता नही क्योकि हम पहले ही इसी पुस्तक के तृतीय अध्याय मे इसका विवेचन कर चुके है।

आयात करों का पुनः आरोपण

1882 मे आयात करो के पूर्ण निवर्तन के समय लार्ड रिपन ने यह पवित्र आशा प्रकट की कि अब इस कार्यवाही मे भारत और इग्लैंड की जनता मे वर्षो से विद्यमान इस प्रश्न से सबधित अप्रिय मतभेद समाप्त हो जाएगे।[41] परंतु भारत के पक्ष मे बोलने का दावा करने वाले कोमल न हो पाए और बाद मे उन्होने वर्षो तक, वस्तुत: तब तक, जब तक कि राष्ट्रीय आदोलन चलता रहा, कपास करों के निवर्तन को राष्ट्रीय कटु समालोचना के प्रहार का प्रिय लक्ष्य बनाए ही रखा। ऊपर परीक्षित सभी पक्षों पर आग्रहपूर्वक कह चुकने के उपरात राष्ट्रीय नेता दोहराते थे . कपास करो का परित्याग 'राष्ट्रीय अन्याय का एक उदाहरण है', एक घटिया किस्म का विश्वासघात है, और भारतीय हितों को ब्रिटेन के हितो के अधीन करने का एक प्रमाण और उदाहरण है।[42] इसके अतिरिक्त स्वल्पतम उत्तेजना के अवसर पर और प्राय. वित्तीय संकट की प्रत्येक घड़ी में नमक कर तथा आय कर जैसे अन्य करो को लगाने के समय अथवा अकाल अनुदान को समाप्त करने और राज्य सरकारों की निर्दिष्ट राशि मे कटौती करने जैसे लोकहित के खर्चों में छंटनी के समय वे प्राय: इस सबके बदले कपास पर आयात कर पुन: लगाने की मांग प्रस्तुत करते थे।[43]

एक लंबे और कटु सघर्ष के बाद भारतीयों को प्राप्त कर नीति संबंधी विजय मिली

तो किंतु वह अधिक समय तक टिकने वाली नहीं थी। विनिमय की घटती दर, रेलों के द्रुत गति से निर्माण तथा भारी पड़ते हुए सैन्य व्यय ने भारत सरकार के वित्तीय साधनों पर निरंतर इतना अधिक दबाव डाला कि सरकार नए करों का सहारा लिए बिना वांछित वित्तीय संतुलन लाने में सफल ही नहीं हो सकती थी। अंततः 1894 मे 3½ करोड घाटे का सामना करते समय नए कराधान का मामला बहुत गंभीर हो गया। निराशा की स्थिति में राजस्व के नए स्रोत को खोजते हुए सरकार ने 1892 की भारतीय मुद्रा समिति द्वारा दी गई सलाह पर अमल करने का निश्चय किया। समिति की राय थी कि आयात करों के भारत में विरोध की कम से कम संभावना थी। फलतः मार्च 1894 में सभी आयातों पर सामान्य रूप से पांच प्रतिशत कर की व्यवस्था वाला नया कर अधिनियम लागू किया गया। राज्यसचिव के आदेश से लंकाशायर के हितों को ध्यान मे रखते हुए सूती वस्त्रों, सूत और धागे को इस नए अधिनियम की क्षेत्र सीमा मे मुक्त रखा गया।[14]

इस नए अधिनियम के प्रति राष्ट्रीय प्रतिक्रिया की समीक्षा हमने आगे एक पृथक भाग में प्रस्तुत की है। यहां हम केवल नए कर अधिनियम की क्षेत्र सीमा मे सूती सामान को पृथक रखने के प्रति राष्ट्रीय प्रतिक्रिया के विवेचन तक ही अपने को सीमित रखेंगे। इस पृथक्करण ने देश मे विरोध का एक तूफान सा खडा कर दिया। विधान परिषद में भारतीय सदस्यों ने कर अधिनियम की क्षेत्र सीमा से सूती सामान को बाहर रखने के रूप में बडे गलत काम के लिए उस बिल का प्रचंड विरोध किया।[15] अनेक सार्वजनिक संस्थाओं ने स्मारपत्रों और विज्ञापनों के माध्यम से अपना रोष प्रकट किया। देश के विभिन्न भागों मे इसके विरुद्ध विरोध प्रकट करने के लिए जन सभाओं का आयोजन किया गया।[46] समाचारपत्रों ने तो कपास करों की रक्षा के लिए कमर कस ली।[17]

राष्ट्रवादियो का कथन था कि सूती सामान विशेषतः उत्कृष्ट कोटि के सूती सामान पर आयात शुल्क को विशुद्ध रूप से वित्तीय स्वरूप का होना उचित था न कि संरक्षक स्वरूप का; क्योंकि व्यावहारिक रूप से भारतीय मंडी में अधिकांश आयातित अंगरेजी सामान मे और भारतीय मिलों द्वारा उत्पादित सामान मे किसी प्रकार की प्रतियोगिता ही नहीं थी।[48] अधिकाश का तो विश्वास था कि किसी भी रूप मे भारत जैसे पिछडे देश मे उसके उद्योगों को सुरक्षित संचालन और उन्नयन के लिए संरक्षक शुल्कों के आधान में कोई गलती नहीं।[49]

आयात शुल्क से सूती सामान की छूट को भारतीय नेताओं ने निस्संकोच रूप से इंग्लेंड के शासक दल और मांचेस्टर के हितों के लिए भारतीय हितों के बलिदान का एक अन्य दृष्टात बताया। अत्यंत संयमी 'पूना सार्वजनिक सभा' तक को यह टिप्पणी करनी पड़ी कि भारतीयों को इस निष्कर्ष पर पहुंचने से रोकना कठिन है कि यह छूट स्वार्थी और निरर्थक चीख पुकार करने वाली अंगरेजी व्यापारियों की एक संस्था के लिए रियायत है।[50] वस्तुतः बहुत सारे भारतीय नेताओं ने तो इस दुर्घटना से विदेशी शासकों की उपर्युक्त राजनीतियों के संबंध में मूल्यवान पाठ ही सीखा। एडवोकेट ने अपने 30 मार्च 1894 के अंक में टिप्पणी की : लंबे और क्रोधपूर्ण विवादों के फलस्वरूप लागू किए कर अधिनियम के प्रवर्तन ने भारत में विदेशी शासकों के गुप्त इरादों पर भयावह प्रकाश डाला

है ।[51] प्राप्त निष्कर्ष की मृदु अभिव्यक्ति यह थी कि भारत की अंगरेजी सरकार भारत के लोगों के हितों की अपेक्षा अपने देश के हितो की अधिक फिक्र करती है ।[52] 18 मार्च 1894 को पूना मे हुई एक जनसभा मे स्वीकृत प्रार्थनापत्र मे इसका विस्तृत विश्लेषण किया गया । प्रार्थियो ने इस टिप्पणी के उपरात कि सारी दुर्बोध नीति करो मे कपास शुल्क को मुक्त करके सुस्पष्ट कर दी गई है, अपने विचार प्रकट करते हुए कहा 'अब यह पता चल गया है कि क्यो सरकार भारत के खनिज और उत्पादन स्रोतों के विकास मे उसकी सहायता के लिए उंगली नही हिलायेगी । यह लकाशायर गुट से निकलने वाले आदेश की आज्ञाकारिता है। भारत के अनुकूल औद्योगिक विकास की राष्टीय नीति के बजाय, जिससे सरकार प्रयत्न-पूर्वक कतराती है, यहा तो केवल विदेशी उत्पादको के लिए ही अनुकूल औद्योगिक विकास नीति अपनाई जा रही है ।[53] 'दैनिक औ समाचार चद्रिका' न उस समय इस भावना को बडी तीखी भाषा मे प्रकट किया, जब उसने महिमामयी महारानी की सरकार को व्यग्य-पूर्वक यह सलाह दी कि वह स्पष्ट भाषा मे यह घोषणा क्यो नहीं कर देती कि भारत न्यूनाधिक रूप मे केवल इग्लेंड द्वारा लूटने के लिए निर्धारित प्रदेश है इसके अतिरिक्त और कुछ नही ।[54] वगबासी ने अपने 17 मार्च 1894 के अक मे प्रकाशित, 'दि मास्क हैज फालन आफ' शीर्षक लेख मे अपनी सामान्य जागरूकता के साथ राष्ट्रीय भावना का सक्षेप मे इस प्रकार उद्‌घाटन किया

> कपास शुल्क के प्रश्न के सदर्भ मे भारत मे विदेशी अगरेजी प्रशासन के चेहरे से नकाब हट गई है । देश के उच्च अधिकारी, नही नही, सारा सरकारी तत्र जो आज तक यह शेखी बघारता रहा है, इग्लेंड के प्रमुख समाचारपत्र जो डीगें हाकते रहे है कि हम भारतीयो के कल्याण के लिए और भारतीयो के हित मे भारत पर शासन करते है, वह सब खोखला सिद्ध हो चुका है। उन्हे अब यह लज्जाजनक आत्मस्वीकृति करनी ही पडेगी कि भारत का प्रशासन इग्लेंड के व्यापारियो के हित के लिए ही है ।[55]

यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि सरकारी नीति के उत्तर मे 22 मार्च 1894 के 'हिंदू पच' ने और 18 मार्च 1894 के 'अरुणोदय' ने भारतीयो से अनुरोध किया कि वे नए कर अधि-नियम से सूती सामान को मुक्त रखने के अपने शासको के उद्देश्य को विदेशी सूती उत्पा-दनो को न खरीदने के अपने दृढ सकल्प द्वारा धूल मे मिला दे ।[56]

1894 और 1896 के कर और कपास शुल्क अधिनियम

आयात करों से सूती सामान को दी गई छूट के प्रति विरोध इतना उग्र था कि लार्ड एलगिन को भारतीय आलोचको को संतुष्ट करने की आवश्यकता अनुभव हुई और उसने घोषणा की कि यह आवश्यक रूप से अतिम प्रबंध नही है ।[57] यह प्रबंध वास्तव मे अल्प-कालिक सिद्ध हुआ । एक बार फिर वित्तीय आवश्यकताओ ने भारत सरकार को दिसंबर 1894 मे नए कराधान के लिए विवश कर दिया । इस समय सूती कपडो और सूती धागों पर 5 प्रतिशत आयात कर लगा दिया गया परंतु इसके साथ ही भारतीय बिजली करघों से उत्पादित 20 नंबर अथवा उससे ऊंचे नबरवाले सूत पर प्रतिशोधपरक 5 प्रतिशत

उत्पादन शुल्क लगा दिया गया। यह उत्पादन शुल्क, किसी भी देश के आर्थिक इतिहास मे अविद्यमान चूंकि, राजस्व के प्रयोजन मे नही थोपा गया था प्रत्युत नए आयात करों से भारतीय उद्योग को किसी प्रकार से लकाशायर के हितो के विरुद्ध सरक्षण मिलने की सभावना के तत्व को निर्मूल करने के लिए ही थोपा गया था। वास्तविकता यह है कि यह शुल्क लगाने से पूर्व स्वय भारत सरकार इस कदम के औचित्य से सहमत नही थी। 1878 मे मे सर जान स्ट्रेची ने सीमा शुल्क को 'महगा, दु खदायी, और असुविधाजनक' और 'अधिकाश स्थितियों मे भारत मे अव्यावहारिक' होने के कारण अस्वीकार कर दिया था। यहा तक कि 1894 मे वित्त सदस्य जेम्स वेस्टलेंड ने भारत सचिव को भेजे सप्रेषण मे इस तथ्य की ओर निर्देश किया, 94 प्रतिशत भारतीय उत्पादन तो मानचेस्टर के उत्पादको के साथ प्रतियोगिता की सीमा क्षेत्र के ही बिलकुल बाहर है क्योंकि वे तो मोटे स्तर के वस्त्र (24 नबर और इससे अधिक ऊंचे) का उत्पादन करते है और मानचेस्टर भारत के समान इस स्तर के वस्त्रो को सस्ते म बेचने का दभ नही कर सकता। उसने सलाह दी कि यदि यह दु.खदायक शुल्क लगाना ही है तो इसे 24 न० के ऊपर के स्तर के सूती धागो पर लगाना चाहिए। परतु राज्य सचिव का आदेश था जिससे विवश होकर सरकार को 20 नबर मे ऊचे स्तर के सूत पर उत्पादन शुल्क लगाना पडा। इस प्रकार भारतीय मिलों के कुछ उत्पादन का 20 प्रतिशत इस शुल्क के क्षेत्राधिकार मे आ गया। कपास शुल्क बिल पर भाषण करते हुए जेम्स वेस्टलेंड ने क्षमा प्रार्थना करते हुए स्वीकार किया कि सरकार ने अपनी ओर से इसकी विशेषताओ के आधार पर उसका अनुमोदन नही किया प्रत्युत राज्यसचिव से प्राप्त निर्देशो के कारण ही इसे लागू करना पड़ा है।[6]'

जैसी आशा की जाती थी, भारतीय राष्ट्रवादियों ने कपास के उत्पादनो पर आयात शुल्को की बहाली का स्वागत ही किया और इसे लोकप्रिय इच्छा की स्वीकृति का संकेत बनाया।[63] इस सबध मे हम दृष्टात रूप मे डी० ई० वाचा महोदय को उद्धृत करते है जिन्होंने अभिस्वीकार करते हुए कहा 'सरकार ने सचमुच जनता की आवश्यकताओं को स्वर दिया है और उदारतापूर्वक उसके सच्चे हितो की वकालत की है'।[64] इस प्रकार की प्रशसा सामान्य नही थी और आयात शुल्क की अल्पता की आलोचना भी साथ साथ होने लगी थी। उदाहरणार्थ मराठा ने 16 दिसबर 1894 के अक मे सरकार की इस कार्यवाही के लिए उसका समर्थन करते हुए यह टिप्पणी जोड दी: 'सरकार ने यह तभी किया है, जब इस विषय मे उसके लिए और कोई विकल्प नही रह गया और दिवालियापन निश्चित ही था। इसके अतिरिक्त पत्र ने यह भी अनुभव किया कि शुल्क और अधिक ऊंचा अर्थात 10 अथवा 15 प्रतिशत होता। इससे पृथक भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने निर्भ्रांत रूप से कपास उत्पादन शुल्क की निंदा की। उनके अनुसार यह शुल्क अनुचित, अशिष्ट तथा भारतीय जनता के हितो के विपरीत थे।[65]

ब्रिटिश उत्पादक निश्चय ही 1894 के राजकर सबधी प्रबध से संतुष्ट नही थे। उनकी धारणा थी कि 20 नबर से नीचे नबरवाले सूत को सीमाशुल्क से मिली छूट भारतीय वस्त्र उद्योग को सरक्षण जुटा रही थी। लकाशायर मोटे कपडे के उत्पादन मे भारत के साथ प्रतियोगिता कर सकता था और करता था परंतु उसके मार्ग की कठिनाई

यह थी कि उत्पादित वस्तुओं पर लगे कर के मुकाबले सूत पर उत्पादन शुल्क व्यवहार में अधिक हलका था और बर्मा मे भारत के निर्यातों को अनुचित रूप से समर्थन मिल रहा था।[66] अंततः, फरवरी 1896 मे भारत सरकार को राज्य सचिव के माध्यम से डाले गए दबाव के आगे झुकना पड़ा और दो नए कानून बनाने पड़े जिनके अंतर्गत कपास के सूत पर आयात शुल्कों तथा उत्पादन शुल्कों को हटा दिया गया और साथ ही उसी समय बुने सामान पर आयात कर 5 प्रतिशत से घटाकर 3½ प्रतिशत कर दिए गए और उसी समय भारतीय मिलों द्वारा उत्पादित सभी प्रकार के बुने सामान पर 3½ प्रतिशत अनुरूप उत्पादन शुल्क थोप दिया गया। इस नए विधान का परिणाम यह निकला कि एक ओर आयातित सामान से मिलने वाली 51½ लाख रुपयों की राशि अथवा 37 प्रतिशत राशि हाथ से निकल गई और दूसरी ओर भारतीय सामान पर करों में 300 प्रतिशत अथवा 11 लाख रुपयों की वृद्धि हो गई है।[67]

नाममात्र संरक्षण को हटाने के लिए मोटे कपड़े तक पर कराधान की क्रिया ने भारतीय लोकमत पर विस्फोटक प्रभाव डाला। भारतीय लोकमत ने भारतीय उद्योग और भारतीय जनता के हितों के बलिदान के विरुद्ध क्रोध में उफनते हुए तीखे प्रहार किए।[68] उदाहरणार्थ, 9 फरवरी 1896 के अंक में गरजते हुए मराठा ने लिखा: 'इस देश के प्रशासन के ईस्ट इंडिया कंपनी से महारानी महोदया के पास हस्तांतरित होने से पहले लंकाशायर के पक्ष मे दोबारा लगाए जाने वाले कपास शुल्क जैसे अति नीच और अन्यायपूर्ण पापकर्म करने का साहस किसी ने भी नहीं किया'। इसी प्रकार 'समय' ने 31 दिसंबर 1896 के अंक मे तीखे प्रहार करते हुए लिखा: 'इससे स्पष्ट दिखाई देता है कि अंगरेज किस प्रकार अपने स्वार्थों में अंधे हो गए हैं। अपने देशवासियों के हितों की उन्हे इतनी चिंता है कि इसके लिए दूसरों के हितों को क्षति पहुंचाने में भी संकोच नही करते —वे तो छुरा निकाल कर दूसरों का गला काटने को तैयार है।[69]

कपास पर लगे उत्पादन शुल्क ने आगामी अनेक वर्षों तक राष्ट्रवादियों को उत्तेजित किए रखा। 1902 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने तीखी भाषा में निबद्ध एक प्रस्ताव मे उत्पादन शुल्क की निंदा की और इसके निरसन की मांग की। यह प्रार्थना 1904 मे दोहराई गई।[70] डी० ई० वाचा ने 1902 मे प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए घोषणा की कि जब तक सरकार इस अनुचित शुल्क को हटा नही लेती, कांग्रेस इसके विरुद्ध आंदोलन पर आंदोलन करती ही रहेगी।[71] आर० सी० दत्त ने अपने लेखों, पुस्तकों और असंख्य भाषणों में इस पर विस्तृत विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि: 'यह राज कर संबंधी अन्याय के एक प्रमाण के तौर पर 1896 का अधिनियम आधुनिक काल मे अपना उदाहरण आप ही था। उन्होंने आगे कहा: अत्यंत सुसभ्य सरकारें विदेशी सामान पर निषेधक शुल्क लगाकर गृहउद्योगों की रक्षा करती है, उन्मुक्त व्यापार की समग्रत. और पूर्णतः समर्थक सरकारें भी आयातित सामान पर राजस्व के प्रयोजन से साधारण सा सीमाशुल्क लगाती हुई अपने घरेलू उत्पादनों पर शुल्क नहीं लगाती है।[72] जी० के० खोसले ने लेजिस्लेटिव कौंसिल मे अपने भाषणो मे उत्पादन शुल्क के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा अनुभूत विक्षोभ को बार बार मुखरित किया।[73] एन० जी० चंद्रावरकर तथा

सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने कांग्रेस के सभापति पद मे उत्पादन शुल्क के निवर्तन की माग को उठाया[74] और समाचारपत्रो ने भी अपने कालमो मे इस विषय को सजीव बनाए रखा।[75]

1894-6 के वित्तीय परिवर्तनो पर राष्ट्रवादियो का आक्रमण निम्नलिखित तर्कों पर आधारित था .

भारतीय नेता निश्चित थे कि कपास पर लगे उत्पादन शुल्क भारत के आद्योगिक विकास को विलबित और प्रतिबधित करने वाले थे।[76] वे इस बात से विशेष रूप से भयभीत थे कि उत्पादन शुल्क भारतीय वस्त्र उद्योग के महीन किस्म के सूत की कताई के मार्ग मे बाधक बनेगा और इसी विशेष दिशा मे इस उद्योग के अधिक विस्तार की सभावनाएं थी।[77] कुछ नेताओ ने यह आशका भी प्रकट की कि उत्पादन शुल्क भारत के वस्त्र निर्यातो को बुरी तरह से झटका देगा और उसके फलस्वरूप जापान जैसे उसके प्रतिद्वंद्वी एशियाई देशो को अपने उत्पादनो से भारत के उत्पादनो को प्रतियोगिता मे पछाडने मे समर्थ बनाएगा।[78] वस्तुत यह भय निराधार था क्योंकि 1894 और 1896 दोनो अधिनियमो मे निर्यात के लिए निर्धारित उत्पादनो पर शुल्क की पूरी छूट की व्यवस्था थी। इन नेताओ ने सभवत या तो अधिनियम की धाराओ को गलत समझा अथवा कदाचित उनका यह विश्वास था कि औद्योगिक उत्पादनक्षमता की सामान्य दुर्बलता तथा लाभ का ढाचा परोक्ष रूप मे विदेशी प्रतिद्वद्वियो से प्रतियोगिता मे भारत की सामर्थ्य का प्रतिकूल रूप मे ही प्रभावित करेगा।

भारतीय नेताओ ने 1896 के कपास उत्पादन शुल्क अधिनियम पर इस तर्क से और अधिक प्रहार किया कि इससे जनता के अपेक्षाकृत निर्धन वर्ग को कठिनता का अनुभव होगा क्योंकि यह वर्ग मोटा कपडा खरीदता है और उसपर अब कर लगा दिया गया है।[79] कुछ महानुभावो ने इस तथ्य को भी सामने रखा कि विदेशी वस्त्रो के आयात कर मे जो 1½ प्रतिशत की छूट इस राज्य कर के साथ जोड दी गई है, उसका लाभ भारतीय जनता के अपेक्षाकृत धनी वर्ग को ही होगा क्योकि वे ही प्रधान रूप से विदेशी वस्त्रो का उपयोग करते हैं। इस प्रकार इसका अर्थ यह हुआ कि धनिको को भारमुक्त करने के लिए बेचारे गरीबों पर कराधान कर दिया गया है।[80] बगाली ने अपने 8 फरवरी 1896 के अक मे पूछा: 'सरकार की निर्धन जनता के प्रति वह सहानुभूति कहा चली गई है जिसकी वह शेखी बघारती रही है?'

उनका दूसरा तर्क यह था कि भारतीय उद्योग और जनता की समृद्धि पर इसके हानिप्रद प्रभाव के अतिरिक्त तथाकथित प्रयोजनो की दृष्टि से भी यह उत्पादन शुल्क अनावश्यक, अत अनुचित था। इस तर्क के समर्थन मे उनकी सर्वप्रथम युक्ति यह थी कि स्पष्टतया वित्तीय उत्पादकता का इसको लागू करने के कारणो मे कोई स्थान नही, क्योकि इसकी वसूली से होने वाली आय वसूली पर होने वाले व्यय के बराबर भी नही हो पाएगी। अत. किसी भी रूप मे यह आय पर्याप्त नही कहला सकती। डी० ई० वाचा ने इस संबध मे एक रोचक तथ्य प्रस्तुत किया। उस समय सरकार को उत्पादन शुल्क के संग्रह से 17 लाख रुपयों की वसूली हुई थी जो राजस्व का एक तुच्छ अंश था जबकि उसने मिल मालिको के लाभों को दुर्भाग्यग्रस्त कर दिया था, यहां तक कि उनके 50 प्रतिशत

लाभ इस शुल्क से दुष्प्रभावित हो गए थे। अपने उपर्युक्त कथन के उपपरिणाम में वाचा महोदय ने कहा कि यह कहना बिलकुल गलत है कि मिलमालिक शुल्क से होने वाली हानि की उपभोक्ताओं से पूर्ति कर सकते थे अथवा कर रहे थे।[82] यह भी एक पर्याप्त रोचक सत्य है कि इस विवाद मे वाचा महोदय ने इस कल्पना को जिसे राष्ट्रवादियों ने इसमे पूर्व स्पष्ट तर्क के रूप में प्रस्तुत किया था कि इस उत्पादन शुल्क के थोपने से उपभोक्ता पर ही सारा भार पडेगा—मानने से इनकार कर दिया।[83] द्वितीय, भारतीय नेताओ ने इस तर्क को भी ठुकरा दिया कि आयात करों के संरक्षी स्वरूप को अपक्षपाती बनाने के लिए तथा इस प्रकार भारत और ब्रिटेन में स्वतंत्र व्यापार को बनाए रखने के लिए उत्पादन शुल्क की अपेक्षा थी। उन्होंने पूर्ववत दृढ़तापूर्वक कहा था कि आयात शुल्क स्थानीय उद्योग के लिए सभी व्यावहारिक दृष्टियों मे किसी प्रकार का कोई संरक्षण नहीं जुटाते क्योंकि भारतीय मंडी में भारत और ब्रिटेन के सूती उत्पादनों में प्रतियोगिता का क्षेत्र अत्यधिक ही संकीर्ण था। ब्रिटेन भारत को थोड़े से ही मोटे कपड़े का निर्यात करता था और इधर भारत उल्लेखनीय मात्रा मे बढ़िया भूरे सामान का उत्पादन नही करता था जो भारत मे ब्रिटेन के निर्यात का एक बहुत बडा भाग था।[84] इस तर्क के पथ पर बहुत सारे भारतीयों ने मांग की कि यदि उत्पादन शुल्क अवश्य ही लगाना है तो उसे 20 नंबर और उससे ऊचे सूत पर न लगाकर 24 नंबर और उससे ऊंचे सूत पर ही लगाना चाहिए।[85] इस संबंध मे फजल भाई विश्राम ने लेजिस्लेटिव कौंसिल मे एक संशोधन प्रस्तुत किया जिसे उपस्थित सातों भारतीय सदस्यों का समर्थन मिला।[86] बाद मे जब ब्रिटिश उत्पादकों ने शिकायत करते हुए और रियायतों की इस आधार पर चिल्लाहट की कि 20 नंबर के नीचे के भारतीय सूत को दी गई छूट ने उन्मुक्त व्यापार के विरुद्ध युद्ध छेड़ रखा है तो भारतीय नेताओं ने उनकी मान्यता का बडी तीव्रता से निषेध किया।[87] कुछ ने तो यहा तक कि सुझाव दिया कि यदि भारत सरकार ब्रिटिश उत्पादको को प्रसन्न ही करना चाहती है तो उत्पादन शुल्क को बढाने के बदले 20 नंबर तक के अंगरेजी सूत को आयात कर से मुक्त कर दे।[88]

उत्पादन शुल्क के विरुद्ध राष्ट्रवादियों का प्रचंड विरोध और उसकी सार्वजनिक भर्त्सना प्रधान रूप से उसके दुष्परिणामों के विश्लेषण अथवा उसकी निरर्थकता के परिज्ञान से उत्पन्न नही थे, प्रत्युत उत्पादन शुल्क थोपने के मूल कारणों का उनका सही ज्ञान तथा यह विश्वास ही इसका कारण था कि इस संदर्भ में यह कर न गलत था, न अयथास्थान था और न ही मिथ्या विचारित साधन था, क्योंकि इस सबके विपरीत इसके प्रस्तावकों का जागरूक प्रयोजन भारत के पनपते वस्त्र उद्योग को क्षति पहुंचाना था ताकि मांचेस्टर के फिलस्तीनियों को सांत्वना दी जा सके जो इस रूप में प्रतिद्वंद्वी के विकास को प्रतिबाधित करने की आशा रखते थे। 1894 के अधिवेशन मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस तथ्य को बड़ी ही प्रखरता के साथ प्रस्तुत किया। उसने उत्पादन शुल्क को लंकाशायर के हितों पर भारतीय हितों की बलि चढ़ाना मानने के अपने दृढ़ विश्वास को अभिलिखित किया।[90] बंगाली ने अपने 8 फरवरी 1896 के अक में तीखे व्यंग्यात्मक स्वर में टिप्पणी की : 'भारतीय जनता तो भारत सरकार को सत्ता में नहीं रख सकती···मांचेस्टर कर सकता

है और करता है···पहले सत्ता फिर कर्त्तव्य'।

और अधिक गहराई से विचार करने पर कुछ भारतीय नेता इस निष्कर्ष पर पहुचे कि इस उत्पादन शुल्क के पीछे तो भारतीय औद्योगिक विकास को ब्रिटिश उद्योग की आवश्यकताओ और आदेशों के अधीन करने के सिद्धात और नीति काम कर रहे है। इस भावना को सशक्त अभिव्यक्ति देते हुए फिरोजशाह मेहता ने कौसिल चेबर मे घोषणा की : 'वह सिद्धात और वह नीति यह है कि यदि कही अगरेजी उत्पादनो के साथ भारतीय उत्पादनों की प्रतियोगिता के सदेह का लेशमात्र भी दिखाई देता हो तो भारतीय उद्योग का उसके जनमते ही गला घोंट देना चाहिए।[91] अपने समय के कदाचित सर्वाधिक कोमल प्रकृति के लोक नेता एन० जी० चद्रावरकर भी 1900 के काग्रेस अधिवेशन मे अपने सभापतीय भाषण में यह टिप्पणी करने को विवश हो गए कि वर्तमान नीति मे किसी भारतीय उद्योग को यूरोप की प्रतियोगिता मे विकसित नही होने दिया जाएगा।[92] खासिम-उल-अखबार ने अपने 24 दिसबर 1894 के अक मे टिप्पणी की कि आज तक अगरेज भारतीय उद्योग को सहायता देने का फरेब करते आ रहे थे परंतु अब इस तथ्य ने उनके चेहरे का नकाब उतार दिया है और यह स्पष्ट हो गया है कि उनकी वास्तविक इच्छा इसके दमन की ही है।[93] मराठा ने 17 मार्च 1895 के अक मे भारत मे ब्रिटेन की मूल आर्थिक नीति के संबध मे तो और अधिक मर्मघाती टिप्पणी की। उसने लिखा : यह अकेली घटना यह प्रकट कर देती है कि इग्लैंड के मशीन उत्पादको की इच्छा है कि भारत कृषिप्रधान देश ही बना रहे अथवा हम भारतीय इग्लैंड के लिए सदा कच्चे माल के उत्पादक बने रहे और इग्लैंड सदैव हमारे लिए पक्के माल का निर्माता-उत्पादक बना रहे।

राजनीतिक प्रभाव

उत्पादक शुल्क और कर के प्रश्न के अध्ययन के आधार पर बहुत सारे विचारशील भारतीय नेताओ ने भारत मे ब्रिटिश राज्य के लाभप्रद चरित्र और वास्तव मे तो उसके लक्ष्यो और प्रयोजनो को चुनौती देते हुए अधिक व्यापक अनुमान लगाए। वास्तव मे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास मे कर सबधी दुर्घटना को प्राप्त महान ऐतिहासिक महत्व का प्रधान आधार समस्या का यही पक्ष है। साथ ही भारत मे राष्ट्रीय भावना को पनपाने मे कपास उत्पादन शुल्क तथा विभिन्न कर सशोधनो ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उससे राष्ट्रीय भावना विदेशी शासन के नैतिक आधार के प्रति सदेह पर ही केंद्रित हो गई अथवा दूसरे शब्दों में भारतीय जनता और उसके नेताओ के मन मे इस शासन के नैतिक आधारों के विषय मे ही शंका उत्पन्न हो गयी।[94]

बहुसंख्यक भारतीयों ने 1894 और 1896 की अवधि मे चुगीकर तथा उत्पादन शुल्कों की कहानी से यह प्रमुख परिणाम निकाला कि भारत का शासन भारतीयों के हित में न होकर सामान्यत: ब्रिटिश जनता के और विशेषत: ब्रिटिश व्यापारियो और उत्पादकों के हित मे ही है। भारत के हितो का ब्रिटेन के हितों के साथ टकराव की स्थिति में भारतीयो को ही हानि उठानी पडेगी।[95] इस भावना को केसरी के 28 फरवरी 1896 के अंक मे तिलक ने बडे ही कडवेपन से इस प्रकार प्रकट किया : भारत को निश्चित

रूप से केवल यूरोपीयो के भरण-पोषण के लिए सुरक्षित एक विस्तृत अन्न क्षेत्र के रूप में ही लिया जाता है।[96] इसी प्रकार अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 29 जनवरी 1896 के अंक मे निर्मम टिप्पणी करते हुए लिखा : 'यह स्पष्ट है कि भारत अगरेजों की संपत्ति है।' बहुत सारे अन्य भारतीयो ने समान स्पष्टता परतु अपेक्षाकृत कम क्रोध के साथ अपने विचार प्रकट किए। 1896 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के भूतपूर्व अध्यक्ष पी० आनन्द चारलू ने 1896 मे लैजिस्लेटिव कौसिल मे कपास शुल्क बिल पर दिए गए अपने भाषण मे इस प्रश्न से संबंधित समग्र राष्ट्रीय चिंतनधारा को संक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया : 'जहा भारत ब्रिटिश शक्ति के सुदृढ हाथो मे विदेशी आक्रमणो से सुरक्षित है, वहा अंगरेजों के हितों के साथ भारतीय हितो के टकराव के मामलो मे वह असुरक्षित है और जहां (जैसा एक तमिल उक्ति मे कहा गया है) यहा तो मेड ही फसल को खाने लगी है।[97]

इस प्रकार भारतीय नेतृत्व के एक विशाल वर्ग का भारत मे ब्रिटिश शासन के नैतिक आदर्शों पर से तथा विदेशी शासको के गला फाडकर प्रचारित परोपकारी उद्देश्यो पर से विश्वास ही उठ गया। यहा यह उल्लेखनीय है कि उस समय के राष्ट्रीय आदोलन की प्रकृति के समग्रत अनुकूल होते हुए भी इस अनुभव ने भी किसी राजनीतिक माग को विधायी तीव्र गति प्रदान नही की और अनेक भारतीय नेता इस अवसर का अपने पक्ष मे लाभ उठाने मे चूक गए। फिर भी कुछ नेताओ ने राजनीतिक सुधार की अपनी प्रिय मागो को आगे बढाने मे इस अवसर का उपयोग किया। यह दूसरी बात है कि उनकी मागें ही अत्यधिक हलकी थी, विशेषत नेताओ के राजनीतिक और आर्थिक ज्ञान के सदर्भ मे देखने पर तो वे बहुत ही हलकी दिखाई देती हैं। इस सबध मे श्रीगणेश करने का श्रेय मदनमोहन मालवीय को है जिन्होने 1894 के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के विधान परिषद के सुधार संबधी अधिवेशन में अपने भाषण मे इस दिशा मे नेतृत्व किया। मालवीय जी ने देखा कि सुधरी हुई विधान परिषद भारतीयों के हितो की सुरक्षा मे असफल रही है। इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल के सरकारी सदस्य 1894 के भारतीय कर अधिनियम पर अपनी रुचि के अनुसार मतदान नही कर सके हैं और कौंसिल का प्रयोग राज्य सचिव के आदेश पर केवल मोहर लगाने के रूप मे ही किया गया है। अतएव उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जहा तक भारतीयो के सच्चे और वास्तविक हितों का संबंध है, सुधरी लैजिस्लेटिव कौसिल धोखे के अतिरिक्त और कुछ नही।[98] इस तथ्य की, कि गैरसरकारी सदस्यो ने प्राय ही भारत के हित का ही समर्थन किया है, जानकारी के संदर्भ मे उन्होने माग की कि कौसिल मे गैरसरकारी सदस्यो की सख्या बढाई जाए और कौसिल को देशवासियो के हितो की सुरक्षा के लिए दृढ़ और अधिक शक्ति प्रदान की जाए।[99] 'मराठा' ने तो इससे भी और आगे बढकर अपने 16 दिसबर 1894 के अंक में यह माग की कि इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल के बहुसंख्यक सदस्यो का निर्वाचन होना चाहिए और शाही बजट मतदान द्वारा ही पारित किया जाना चाहिए। अन्य बहुत सारे लोगों ने यही निष्कर्ष निकाला कि भारत सरकार भारत के हितों की सुरक्षा मे समर्थ नही है।[100] कइयों ने तो सरकार से कहा कि वह खुले तौर पर भारत सचिव के पक्ष में अपनी शक्तियों का त्याग कर दे अथवा लैजिस्लेटिव कौंसिल को ही समाप्त कर

दे ताकि वह इस समय गुप्त रूप से प्रयुक्त की जाने वाली अधी शक्ति को खुलकर काम मे ला सकें।[101]

थोडे से, विरल उदाहरण ऐसे भी मिलते है जिनमे स्वशासन तक की माग की गई। इस सबंध मे यह क्रातिकारी विचार इस प्रकार प्रकट किया गया कि भारत तब तक राज करो के सबध मे न्याय प्राप्त नही कर सकता अथवा उद्योगीकरण की नीति को कार्य रूप नही दे सकता, जब तक कि वह ब्रिटेन के राजनीतिक नियत्रण से मुक्ति नही पा लेता तथा आत्मशासित देश नही बन जाता। यह मत खुले तौर पर बगनिवासी ने अपने 9 फरवरी 1896 के अंक मे इस प्रकार मे प्रकट किया इग्लैड प्रधान रूप से एक उत्पादक और व्यापारी देश है। जब तक इस देश पर अगरेज लोगो का शासन है, तब तक भारत के सपूतों को व्यापार और उत्पादन म उनकी क्रूरता को सहन करना ही पडेगा।[102] 1896 के उत्पादन शुल्क और कर छूट की चर्चा करते हुए 1898 मे आर० सी० दत्त ने उपर्युक्त दृष्टिकोण से मिलते-जुलते अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए

> जब तक भारत की जनता को सरकार की सहायता करने का, अपने राष्ट्रीय राजस्वो और राष्ट्रीय हितो की रक्षा करने का साविधानिक अधिकार मिल नही जाता तब तक भारतीय जनता का इग्लैड के ब्रिटिश मतदाताओ के आदेश स काम करने वाली भारत की बरनानवी सरकार द्वारा जानबूझकर और खुल्लमखुल्ला भारतीयो के हितो की बलि चढाने का अपमानित करने वाला दृश्य बार बार देखने को मिलगा।[103]

उत्पादन शुल्क ने गोखले तक को इतना क्षुब्ध कर दिया कि उन्हे यह टिप्पणी करनी पडी कि इस शुल्क से यह स्पष्ट हो गया है कि जान स्टुअर्ट मिल ने एक देश के लोगो पर अन्य देश के लोगो की सरकार के सबध मे जो कहा है वह सही है।[104]

परतु देश की राजनीतिक मुक्ति का सघर्ष अभी भविष्य के गर्भ मे ही निहित था। उस समय तो कार्यसूची मे था, राष्ट्रीय भावनाओ को जगाना, इस प्रवृत्ति को पुष्ट करना तथा राजनीतिक आदोलन और सघर्ष के लिए भारतीय जनता को प्रशिक्षित करना। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, इनमे से प्रबलता, बुद्धिमत्ता और सफलता के साथ पहला काम ही सपन्न किया गया। दूसरा कार्य करो के मामले मे सारे देश के चप्पे चप्पे मे जागृत राष्ट्रीय भावना के प्रचार के साथ ही निष्पन्न हो गया। उस पीढी के नेताओ मे अत्यत कुशल राजनीतिज्ञो मे सबसे चतुर लोकमान्य तिलक ने इस सबध मे कर के विषय पर आदोलन के महत्व को पूर्ण रूप मे अभिस्वीकार किया। राष्ट्रीय एकता का आह्वान करने मे उनके समाचारपत्र 'मराठा' ने अपने 9 फरवरी 1896 के अक मे लिखा

> युवा भारत के कट्टर अगरेज शत्रु सदैव गला फाड फाड कर चिल्लाते रहे हैं कि भारत कभी एक राष्ट्र नही बन सकता। आइए, हम इस भयकर सकट की घडी म एक हो जाए। आइए, हम सारे भारतीय, हिंदू, मुसलमान, पारसी और भारत मे रहने वाले अंगरेज, एक सामान्य उद्देश्य बना लें। यह समय सदेह और सकोच का नही। राष्ट्रीय हित मे सभी निजी मतभेद भुला देने चाहिए और मूल निवासियो तथा आग्ल भारतीयों को समान शत्रु का सामना करने के लिए एकजुट हो जाना चाहिए।[105]

उत्पादन शुल्क की राष्ट्रीय प्रतिक्रिया, ब्रिटिश नीति के अन्य पक्षो के प्रति राष्ट्रीय प्रति-

क्रिया से अपने को उच्चतर स्तर की गुणात्मकता मे पृथक करती है। सत्य यह है कि राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास मे प्रथम बार ही आर्थिक अथवा उससे भिन्न कारणों से तीसरा कार्य सपन्न किया। यद्यपि यह छोटे पैमाने पर और कदाचित देश के केवल एक ही भाग अर्थात बबई प्रेसीडेंसी मे किया गया था यह कोरे आदोलन के स्तर मे उठकर वास्तविक कार्यवाही के क्षेत्र मे पहुच गया। इसी समय पर और कपास उत्पादन शुल्क के प्रश्न को लेकर विदेशी सामान का बहिष्कार उल्लेखनीय परिमाण मे कार्य रूप मे परिणत होता दिखाई दिया।[106] विदेशी सामान के बहिष्कार की घोषणा राष्ट्रवादी नेताओं के एक वर्ग ने स्वदेशी उद्योग की सहायता के एकमात्र उपलब्ध साधन के रूप मे की थी क्योकि उनके अनुसार ब्रिटेन की न्यायप्रियता और दयालुता पर किसी प्रकार का विश्वास नही किया जा सकता था। देश के अनेक भागो मे जनसभाए की गई और उनमे स्वदेशी के प्रयोग की शपथ दिलाई गई। महाराष्ट्र मे एक छोटे स्तर के स्वदेशी अभियान का सचालन किया गया। राजनीतिक प्रभाव की दृष्टि से, छोटे स्तर पर विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार का यह अभियान उत्पादन शुल्क के विरुद्ध किए गए राजनीतिक आदोलन से कम महत्वपूर्ण नही था क्योकि इसमे लोगो के स्वत प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का एक नया ८ उजागर हो गया। यह अपने दुखो की निवृत्ति के लिए शासको के आगे गिडगिडाने और उनकी कृपा पर निर्भर रहने के बदले अपनी सहायता आप ही करने की भावना का प्रतिनिधित्व करता था।[107] सरकार की शुल्क नीति से उत्पन्न होने वाली प्रारभिक स्वदेशी भावना ने भारतीयो मे आत्मविश्वास की भावना को जन्म देने मे, शहरी लोगो की बहुसख्या को राष्ट्रीय राजनीति के झडे के नीचे सगठित होने मे बीज डालने की भूमिका निभाई।

1899 का चीनी आयात शुल्क

भारतीय नेताओं को राज कर नीति का व्याकुल करने वाला एक और पक्ष यूरोप से अनुग्रह के रूप मे आने वाली चीनी पर उसी मात्रा मे थोपा गया आयात शुल्क था। यह सचमुच एक जटिल विषय था और यह भारतीय नेताओ की आर्थिक पकड की गहराई, आर्थिक राष्ट्रवाद की और राजनीतिक कौशल की कसौटी बन गया। समीक्षाधीन अवधि मे यह आदोलन भारतीय नेताओ के बीच गहरे मतभेद के कुछ कारणो मे से एक था।

19वी शताब्दी के मध्य तक भारत चीनी का निर्यातक देश रहा था, किंतु इसके बाद जल्दी ही वह अधिकाश रूप मे ब्रिटिश उपनिवेश मारिशस से बढिया चीनी आयात करने लगा। 19वी शताब्दी के अतिम दशक की अवधि मे जर्मनी और आस्ट्रिया से वहा की सरकारो द्वारा अपनाई गई राज्य अनुग्रह निर्यात पद्धति के फलस्वरूप चुकंदर चीनी के आयात मे अपरिमित वृद्धि हो गई। सस्ती होने के कारण 1898 तक चुकदर चीनी के मारिशस के आयात पर और साथ साथ देश मे उत्पादित चीनी पर छा जाने का सकट उपस्थित हो गया। भारत सरकार ने इस प्रवाह को रोकने के लिए 20 मार्च 1899 को 1894 के भारतीय कर अधिनियम मे सशोधन किया। इसके अतर्गत सरकार ने राज्य अनुग्रहों की मात्रा मे अनुग्रह पोषित चीनी पर सम करने वाले आयात करों के आधान का

अधिकार प्राप्त कर लिया। उन्मुक्त व्यापार की स्पष्ट स्वीकृति नीति से दिखाई देने वाले साहसिक परिवर्तन का प्रधान कारण सरकार ने यह बताया कि सरकार भारत के महान उद्योग और उस पर निर्भर गन्ने की उपज के कृत्रिम रूप से उत्तेजित प्रतियोगिता के हाथो और अधिक क्षय तथा विनाश को रोकने को उत्सुक है। यह आरोप लगाया गया कि पहले ही बहुत अधिक क्षति हो चुकी है। भारत मे रिफाइनरी व्यापक और अबाधित रूप से बद होती जा रही है और गन्ने की उपज का क्षेत्र सिमटकर 13 प्रतिशत रह गया है। सरकार ने यह भी दावा किया कि अनुग्रह पोषित चीनी न केवल भारत मे देश के आधुनिक कारखानो मे उत्पादित और शोधित चीनी मे प्रतियोगिता करती है प्रत्युत देश की अशोधित अथवा अधूरेपन से शोधित चीनी से भी प्रतियोगिता करती है।[108] इसके साथ ही सरकार ने इस तथ्य को मानने से एकदम इकार कर दिया कि इसके पीछे मारिशस के किसानो और उत्पादको के हितो की सुरक्षा जैसे शाही चिता के किसी विषय ने सरकार के इस निर्णय पर पहुचने मे कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरकार ने तो यह मत प्रकट किया कि इसके विपरीत सत्य यह है कि भारतीय उद्योग के और भारतीय कृषि के हित ही समग्रत पथ प्रदर्शक शक्ति रही है।[109]

यद्यपि लार्ड कर्जन ने अपने इस कदम के देश मे प्रबलतम समर्थन का खुला दावा किया और सार्वजनिक रूप से घोषणा की कि केवल आयात व्यापारियो, बबई और कराची के यूरोपीय वाणिज्य सदनो द्वारा ही असहमति दिखाई गई है,[110] तथापि वास्तविकता कुछ और ही थी। भारतीय राष्ट्रीय नेता कभी भी, यहा तक कि प्रारभ मे भी, इस सम करने वाले आयात कर के समर्थन मे एकमत नही थे। समय की गति के साथ तो राष्ट्रीय विरोध और वेग पकडता गया। इसके अतिरिक्त जैसाकि हम आगे देखेंगे, किसी भी स्थिति मे भारतीय समर्थन बिना शर्त और सरकारी क्षेत्रो द्वारा यह पग उठाते हुए किए गए प्रचार की भावना के अनुरूप नही रहा।

भारत सरकार की कार्यवाही के समर्थक और आलोचक, कम से कम प्रारभ मे तो बराबर सतुलित नही थे। अधिनियम के सशोधन के समय और उससे पूर्व समर्थको ने आलोचको को पीछे छोड दिया था। समर्थको मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्वर जस्टिस एम० जी० रानाडे का था, जिनके शब्द तब भी बहुत सारे भारतीयो की दृष्टि मे आर्थिक मामलो मे कानून की सी प्रामाणिकता लिए हुए थे और जिनके विचार मई और जून 1899 के 'टाइम्स आफ इडिया' मे प्रकाशित तीन लेखो मे अभिव्यक्त हुए थे।[111] दूसरे सक्रिय समर्थक थे पी० आनन्द चारलू और आर० सी० दत्त। चारलू महोदय ने इपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल मे अपने पद से सरकार को प्रबल और मुखर समर्थन दिया।[112] लगभग सभी राष्ट्रवादी समाचारपत्र, उदाहरणार्थ दि अमृत बाजार पत्रिका, दि बगाली, दि हिन्दू, दि मराठा, दि इन्दु प्रकाश, दि एडवोकेट और दि ट्रिब्यून समर्थक पक्ष मे ही थे।[113] वस्तुत सार्वजनिक रूप से अनुग्रह पोषित चुकदर चीनी के विरुद्ध स्वर मुखरित करने वाला और सरकार से सरक्षक कार्यवाही की माग करने वाला दि अमृत बाजार पत्रिका देश का प्रथम समाचारपत्र था।[114]

राष्ट्रवादियो के एक छोटे परतु मुखरित वर्ग ने प्रबलता और कठोरता के साथ इस

शुल्क का विरोध किया। इस वर्ग के नेता के रूप मे पृथ्वीश चन्द्र राय का नाम लिया जाता है। राय महोदय इंडियन एसोसिएशन की कार्यकारिणी के सदस्य थे और कलकत्ता की स्टैंडिंग कांग्रेस कमेटी मे सहायक सचिव थे। उन्होने 1895 मे 'पावर्टी प्राब्लम आफ इंडिया' पुस्तक लिखकर अर्थशास्त्री के रूप मे प्रसिद्धि पाई थी और इस समय उन्होने चीनी कर पर एक लेख भी पुस्तिका रूप मे प्रकाशित किया था।'[15] इन दोनो वर्गो के बीच अकेले परतु सशक्त व्यक्तित्व वाले फिरोजशाह मेहता थे। उन्होने इस मामले मे जल्दीबाजी करना उचित न समझा। इपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल मे सरकारी बिल पर विवाद के समय उन्होने यह सुझाव दिया कि इस मामले मे किसी एक पक्ष मे निर्णय करने से पूर्व और अधिक तथ्यो की जानकारी की, और अधिक विस्तृत पूछताछ की तथा और अधिक वाद-विवाद की आवश्यकता है।[16]

इन दोनो वर्गों द्वारा अपनाई गई स्थिति और उनके द्वारा प्रस्तुत तर्कों के विस्तृत विवेचन से पूर्व हम इस प्रश्न से सबधित दो अन्य पक्षो की ओर पाठको का ध्यान दिलाना चाहेगे। प्रथम, भारतीय नेताओ के मन मे 1891 और 1896 मे हुए कर विरोधी सघर्षो की याद अभी ताजा ही थी। सभी नेताओ ने सम करने वाले चीनी शुल्क को भी पहले के उन सघर्षों से सीखे पाठ और सघर्षो की अवधि मे उठाए पगो के ही परिप्रेक्ष्य मे देखा। हा, इन शिक्षाओ के उपयोग के समय अवश्य अधिकारियो मे मतभेद उत्पन्न हो गए। द्वितीय, नेताओ मे न केवल शुल्क के औचित्य के सबध मे प्रत्युत इग्लैंड और भारत मे इस चीनी शुल्क के आधार पर उन्मुक्त व्यापार के सिद्धात के तथाकथित अतिक्रमण को लेकर उठे कटु मतभेदो के सदर्भ मे भी मतभेद प्रचलित रहे। हा, हम, इस परवर्ती मत-भेद से प्रत्यक्ष रूप मे सबधित नही है।

चीनी शुल्क के विरोधियो ने अपने पक्ष को निम्नलिखित तर्कों का आधार दिया। प्रथम, इसकी आवश्यकता का आधार ही मिथ्या उपपत्ति है। उनका तर्क था कि यूरोपीय चीनी की भारत की अशोधित अथवा अर्धशोधित चीनी से किसी प्रकार की कोई प्रति-योगिता ही नही है। भारत अधिकाशत इस प्रकार की ही (अशोधित तथा अर्धशोधित) चीनी का उत्पादन करता है। जब तक भारत की देसी चीनी की बिक्री पर कोई दुष्प्रभाव नही पडता, तब तक भारत के असली चीनी उद्योग को अथवा उस पर निर्भर गन्ने के उत्पादन को किसी प्रकार का कोई खतरा ही नही। उन्होने स्वीकार किया कि इन वर्षो मे गन्ने के उत्पादन क्षेत्र मे सकोच हुआ है, परतु उनके अनुसार इसका कारण प्रधान रूप से अकाल की स्थितियो का चलते रहना तथा मानसून का असफल होना था। इसके अतिरिक्त इस प्रकार की सिकुडन 1896 मे भी हो चुकी थी, दूसरे शब्दो मे बडी मात्रा मे अनुग्रह पोषित चीनी के आयात का जारी करने से पूर्व भी यह स्थिति रही है। फिर भी इन आलोचको ने यह स्वीकार किया कि देशी शोधित चीनी उद्योग को विदेशी प्रतियोगिता के हाथो क्षति पहुची है परतु इस सबध मे उनके सतोष का विषय यह था कि देश को समग्र रूप मे देखने पर यह कोई बहुत बडी क्षति नही मानी जा सकती थी। उनका कथन था कि कुल मिलाकर केवल 6 बडे कारखाने बगाल मे, 2 नार्थ वेस्ट प्रात और अवध मे, 1 पंजाब मे और 5 मद्रास मे थे। इनके द्वारा शोधित चीनी के उत्पादन की कुल मात्रा

लगभग 800,000 क्विटल अर्थात देश की कुल खपत का पांचवा भाग था। यदि ये सारे कारखाने बंद भी हो जाएं तो इनमें लगे अधिक से अधिक चार-पांच हजार श्रमिक ही तो बेकार होंगे। इसके साथ ही ध्यान देने की बात यह है कि भारत की शोधित चीनी की शत्रु एकमात्र चुकंदर चीनी ही नही थी प्रत्युत भारत के चीनी साफ करने के कारखानों के विनाश में मारिशस की चीनी का भी बराबर महत्वपूर्ण योगदान था क्योकि यूरोप की चीनी पर पूर्णत: प्रतिबंध लगा देने पर भी भारत मे उत्पादित चीनी मारिशस में उत्पादित चीनी का मुकाबला नही कर सकती थी। यदि यह सत्य न होता तो जर्मनी और आस्ट्रिया की चीनी के भारत मे प्रवेश मे पूर्व ही 1883-90 की अवधि मे अकेले बंगाल मे 89 चीनी कारखाने बंद न हो गए होते।[117] 'प्रतिवासी' ने तो यहा तक कह दिया कि किसी भी रूप मे इस समय भारत मे आधुनिक चीनी उद्योग के विकास की कोई संभावना ही नही है।[118] दूसरी ओर चीनी शुल्क के समर्थको ने तथ्य और आकडे प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया कि देश मे सर्वत्र चीनो शोधक कारखाने उत्तरोत्तर बद होते जा रहे है और अशोधित चीनी का उत्पादन बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। इन दोनो स्थितियो के फलस्वरूप गन्ने और ताड वृक्षों के उत्पादन के क्षेत्र का शोचनीय रूप से ह्रास हो गया है और भविष्य मे और अधिक भयंकर ह्रास की सभावना से इंकार नही किया जा सकता।[119] यह सब अकाल का दुष्परिणाम न होकर विदेशी प्रतियोगिता के कारण उद्योग के अलाभप्रद हो जाने का ही कुफल है।[120] अतएव उन्होंने मम करने वाले चीनी शुल्क को स्वदेशी उद्योग के आंशिक संरक्षक तथा कृपालु उद्धारक के रूप मे ही देखा। उनका दृढ मत था कि यह शुल्क शोधित चीनी के उत्पादन के ह्रास और मंदी को प्रतिबाधित करेगा, ग्रामीण चीनी उद्योग के जीवन को नया प्राण देगा, गन्ने के उत्पादन को विस्तार देगा तथा हजारों कर्मचारियों को आजीविका के नए अवसर जुटाएगा।[121] जस्टिस रानाडे चीनी शुल्क के आलोचको से इस पक्ष पर सहमत थे कि इस समय कदाचित भारत मे शोधक-उद्योग अधिक विकसित नही था और उसके फलस्वरूप होने वाला औद्योगिक घाटा भी अधिक नही था परतु उनका कथन था कि यह दृष्टिकोण सर्वथा अदूरदर्शितापूर्ण ही था। वास्तविक खतरा तो यह था कि इस सारे उद्योग का भविष्य ही विपत्तिग्रस्त बनाया जा रहा है।[122]

चीनी शुल्क के समर्थकों और विरोधियों के मध्य मतभेद का एक अन्य विषय उपभोक्ताओं पर इसका प्रभाव था। आलोचकों की मान्यता थी कि चीनी निर्यातक देशों द्वारा दिए गए अनुग्रह से चीनी सस्ती होती है और उससे उपभोक्ताओ को पर्याप्त मात्रा मे लाभ पहुंचता है। क्योंकि सम करने वाला शुल्क किमी भी रूप मे स्थानीय उद्योग को प्रोत्साहन नही जुटा पाएगा और क्योंकि स्थानीय उद्योग देश की शोधित चीनी की मांग की आंशिक पूर्ति ही कर पाएगा अत: चीनी का आयात फिर भी जारी रखना पड़ेगा। केवल अंतर यह होगा कि शुल्क के आधान से आस्ट्रिया और जर्मनी से सस्ती चीनी के आयात के बदले प्रधान रूप से ऊंचे दाम पर मारिशस से ही चीनी का आयात किया जाएगा। इस प्रकार यह शुल्क उपभोक्ताओं पर ही अतिरिक्त कर का रूप होगा।[123]

आलोचकों के आलोचकों अर्थात समर्थकों ने इस तथ्य को तो अस्वीकार नही किया

कि अनुग्रह, पोषित चीनी सस्ती थी परतु उनका कथन यह था कि वह सम करने वाले शुल्क के विरुद्ध उपयुक्त तर्क तभी माना जा सकता है यदि भारतीय उद्योग का भविष्य इससे प्रभावित न होता हो। इस प्रकार उन्होने यह दिखाकर कि यूरोपीय चीनी से भारतीय चीनी उद्योग को क्षति पहुच रही है समीक्षको के तर्क को कुशलता से खडित कर दिया उन्होने चेतावनी दी कि सहायता प्राप्त सस्ती चीनी कालातर मे उपभोक्ताओ को फंसाने के वास्तविक जाल का रूप ले सकती है। चुकदर चीनी को कृत्रिम साधनो से सस्ता बनाने के राज्य अनुग्रह का उद्देश्य प्रतिद्वद्वी उद्योग को नष्ट करना ही था। एक बार यदि देशी उद्योग इतना अधिकविनष्ट हो गया कि उसका पुनरुद्धार ही सभव न रहा तो यूरोपीय बाजार पर छा जाएगे और मनमानी कीमत वसूल करेगे।[124] इसके अतिरिक्त शुल्क के समर्थको ने अधिकतम सख्या का अधिकतम हित के उपयोगितावादी सिद्धात की अपील करके चतुरतापूर्वक सम्तपन का तर्क प्रस्तुत किया। उन्होने निर्देश किया कि आयातित तथा शोधित चीनी की कीमत मे भारत का निर्धन वर्ग तो प्रभावित नही होता क्योकि वह तो केवल अशोधित स्थानीय उत्पादन का ही प्रयोग करता है। इस चीनी का प्रयोग तो केवल मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग ही करता है और इन वर्गो को पर्याप्त मात्रा मे समझा देना चाहिए कि वे निर्धन वर्ग के लिए त्याग करे। उन्हे सम करने वाले कर से होने वाली मूल्यवृद्धि का अपने निर्धन भाइयो की सहायता के लिए परोक्ष कराधान का एक रूप ही समझना चाहिए।[125]

यहा एक बार फिर उल्लेखनीय है कि इन भारतीय नेताओ ने 'उद्योग सर्वप्रथम' इस निर्देशक वाक्य का अनुसरण किया। भले ही वे नेता पश्चिमी रग मे रगे मध्य वर्ग तथा भारत के उदीयमान मध्य वर्ग के बीच म थे और इसी वर्ग का नेतृत्व कर रहे थे तथापि वे सब के सब देश के उद्योगीकरण के लिए उपभोक्ता के रूप मे अपने हितो का बलिदान करने को उद्यत थे। यहा यह निर्देश करना भी अनुचित न होगा कि आलोचको को भी इस त्याग पर कदाचित कोई आपत्ति नही थी। उनकी आपत्ति तो इस बात पर थी कि जब इस आशिक त्याग का कोई लाभप्रद परिणाम नही निकलना तो सारा त्याग निरर्थक ही है।

आलोचको को तो चीनी शुल्क अधिनियम को प्रस्तुत करने मे सरकार की नीयत मे भी सदेह था। उन्होने अनुभव किया कि इस बिल के प्रस्तावित करते समय सरकार सचमुच भारतीय हितो की चिता मे परेशान नही थी। उनकी यह चीखो चिल्लाहट झूठी है कि भारतीय चीनी खतरे मे है। अगरेज प्रवक्ताओ द्वारा भारतीय किसानो और उत्पादको के प्रति दिखाई जा रही सहानुभूति मक्कारी उससे भी कुछ घटिया वस्तु है। उनके विचार मे सरकारी साधन का वास्तविक उद्देश्य भारतीयो से जिनके साथ प्रतियोगिता करना और जिन्हें पराजित करना अन्यथा सभव नही था बाजार छीनकर वेस्ट इडीज और मारिशस के किसानो और उत्पादको की सहायता करना था। शासको की सच्ची निष्कपटता का प्रदर्शन इस तथ्य मे होगा कि वह सभी प्रकार के चीनी आयातो पर इस सरक्षक कर को लगाने के लिए सहमत हो जाए। आलोचको ने घोषणा की कि इस पग का सभी स्वागत करेंगे। यदि सचमुच ही सरकार भारतीय उद्योग को बचाना चाहती है तो वर्तमान उपाय पूर्णत. अपर्याप्त है क्योकि इससे भारतीय चीनी को उसके अत्यंत भयंकर प्रतिद्वंद्वी,

मारिशस की चीनी, से रक्षा नहीं हो पाती।[126] राय ने लिखा : आखिर हमारे लिए इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता, यदि जर्मनी और आस्ट्रिया के स्थान पर मारिशस चीनी भेजता है। वस्तुत: मारिशस ही हमारी आवश्यकता की बढ़िया चीनी का बहुत बड़ा भाग हमारे पास भेजता है और वही हमारी चीनी उद्योग की हत्या कर रहा है।[127] यदि सरकार ईमानदारी से भारत के चीनी उद्योग के उद्धार और प्रोत्साहन की इच्छुक है तो उसे केवल मारिशस की चीनी पर ही प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए प्रत्युत उसके साथ ही साथ स्वदेशी उद्योग को सीधी सहायता और प्रोत्साहन देना चाहिए तथा गन्ने के उत्पादन में और चीनी उत्पादन के तरीकों मे सुधार के प्रयत्न करने चाहिए।[128]

चीनी शुल्क लगाने के पीछे सरकार के निहित आशय का मूल्यांकन करते समय अधिकांश समर्थकों की प्रतिक्रिया मई 1899 मे इस विषय पर ब्ल्यू बुक के प्रकाशन काल तक सरकार के पक्ष मे ही थी।[129] इस पुस्तक ने प्रकाशित होते ही लोगो के गले के नीचे एक कटु सत्य उतारा। चीनी शुल्क लगाने के समय बहुत सारे समाचारपत्रों और व्यक्तियों का विश्वास था कि यह शुल्क भारत के हित मे ही लगाया जा रहा है।[130] यहा तक कि एक प्रकार का हर्षोल्लास था कि भारत के उद्योग के पुनरुद्धार के लिए लार्ड कर्जन के रूप मे आर्थिक उद्धारक का अवतार हुआ है।[131] परंतु इस हर्षातिरेक की स्थिति दो महीने भी नही बनी रह सकी जब 'ब्लू बुक' ने आलोचकों के बुरे से बुरे संदेहों की पुष्टि कर दी।[132] इस पुस्तक ने समर्थकों तक को यह मानने के लिए सहमत कर लिया कि यह शुल्क एकांतिक रूप से अथवा सिद्धात रूप से भारत के किसानों और उत्पादको के हितों की रक्षा के लिए नही लगाया गया था, प्रत्युत मारिशस और वेस्ट इंडीज के ही किसानो और उत्पादकों के हितों की सुरक्षा के लिए था।[133] यहा तक कि जस्टिस रानाडे को यह टिप्पणी करनी पडी कि नीति मे यह परिवर्तन वेस्ट इंडीज के चीनी उद्योग के विनाश के फलस्वरूप हुआ है।[134] सरकार के इस पग के अत्यधिक उत्साही समर्थक पी० आनंद चारलू को 1901 मे यह स्वीकार करना पड़ा कि इस कानून को पारित करते समय जिस भय की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की गई थी, कि यह अधिनियम कुछ उपनिवेशो के लाभों के लिए है वह भय सर्वथा निराधार प्रतीत नही होता।[135] इसने चीनी शुल्क अधिनियम के बहुत से रक्षकों को यह मानने को विवश कर दिया कि इसके प्रति उनका उत्साह मंद पड़ गया है।[136] इतने पर भी वे इस अधिनियम की निंदा करने को तैयार न हुए। इस संबंध में वे आलोचकों से फिर अलग हो गए और उन्होंने यह कहना जारी रखा कि यह उपाय भारतीय चीनी उद्योग की कुछ समय के उपरांत अवश्य रक्षा करेगा अत: भारतीयों को इसके समर्थन से कतराना नही चाहिए[137] और मारिशस के किसानों के साथ सामान्य उद्देश्य लेकर चलना चाहिए।[138] उनका कथन था कि यदि इस शुल्क से भारतीय चीनी के दो प्रतिद्वंद्वियों में एक को हानि पहुंचती है तो यह भी एक विधेयक के लाभ ही हैं।[139] इसके अतिरिक्त इससे भारतीय चीनी उद्योग को सांस लेने का समय भी तो मिलेगा।[140]

भारतीय नेताओं का यह वर्ग दूसरे वर्ग की इस मान्यता से समान रूप से सहमत था कि केवल सम करने वाले कर के आधान से ही भारतीय चीनी उद्योग के संरक्षण और उन्नयन में सफलता नहीं मिलेगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शीघ्रता

से ही कुछ अन्य कदम भी उठाने पड़ेंगे। सुझाए गए कदमो मे एक था, भारतीय चीनी उद्योग के संरक्षण क्षेत्र का विस्तार, इस विस्तार सीमा के अंतर्गत मारिशस की चीनी भी समाविष्ट थी।[141] दूसरा कदम था स्वदेशी उद्योग के लिए विशिष्ट और सक्रिय सुविधाए जुटाना।[142] मजेदार बात यह है कि इन विशिष्ट सुविधाओं की माग करते हुए जस्टिस रानाडे इस सीमा तक बढ़ गए कि राष्ट्रीय आदोलन के एक प्रिय सिद्धात मद्यपान की प्रवृत्ति पर पाबदी अथवा उसे अनुत्साहित करने पर ही आक्रमण करने लगे। उनका कथन था कि चीनी उत्पादन के उपजात उत्पादन के रूप मे रम बाहरी बचतो मे एक थी। जब तक चीनी शोधको का स्पिरिट के अवशिष्ट से मुक्ति पाने की और कारखानो के निकट ही शराब भट्ठी पद्धति के अन्तर्गत बेचने की अनुमति नही दी जाती तब तक कोई भी चीनी का कारखाना ठीक ढग से काम नही कर सकता। उन्होने शिकायत की कि उत्पादन शुल्क पर सरकारी एकाधिकार होने के कारण यह सुविधा भारतीय उत्पादको को उपलब्ध नही थी। अतएव उन्होने माग की कि मदिरा शुल्क के हितो को चीनी उद्योग की आवश्यकता के अधीन कर देना चाहिए और चीनी शोधको को रम के उत्पादन की तथा बढ़िया किस्म की मदिरा पीने के इच्छुको को बेचने की स्वतत्रता दी जानी चाहिए।[143] रानाडे के इस तर्क को एक अन्य सदर्भ म स्वय उनके द्वारा तथा राष्ट्रीय नेताओ के द्वारा गला फाड-फाडकर जनता को शराब बेचन पर प्रतिबध लगाने की माग से तुलना करके ही देखना चाहिए।[144] स्पष्ट है कि यहा रानाडे का उद्योगप्रेमी स्वरूप, समाजसुधारक अथवा नैतिकतावादी स्वरूप स अधिक सशक्त सिद्ध हुआ और वह मदिरा पर से नियत्रण के हटाने की वकालत करन लगे।

सरकारी कार्यवाही के सबध म निदकों और समर्थको मे मतभेद चलते रहे। परवर्ती घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि विरोधियो का मत सभी दृष्टियो से लगभग सही था। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि चीनी शुल्क अधिनियम पर ब्ल्यू-बुक के प्रकाशन के उपरात अधिकाश भारतीय इस अधिनियम के लागू करने मे निहित उद्देश्यो पर सदेह करने लग गए थे। अधिक बुरी बात यह हुई कि कालातर मे यह अधिनियम अनुग्रह पोषित चीनी के आयातो को रोकने म असमर्थ रहा।[145] इससे भी अधिक बुरी बात यह हुई कि जब इन आयातो को रोका गया तो भारतीय बाजार में उसका स्थान देशी चीनी के बदले मारिशस और जावा से चीनी के बढ़ते आयात ने ले लिया।[146] वस्तुतः आलोचको द्वारा सरकारी उपाय के विरुद्ध प्रकट किए गए विवादो को कुछ वर्षों के उपरात स्वय सरकारी अधिकारियो ने खुले आम अभिस्वीकार किया। उदाहरणार्थ 1902 मे लार्ड कर्जन ने यह मान लिया कि इस समय भारत की कच्ची चीनी तथा शोधित आयातित चीनी मे किसी प्रकार की वास्तविक अथवा गभीर प्रतियोगिता नही है। अपनी पहले की स्थिति से हटते हुए उन्होने घोषणा की

> जहा तक मैं जान पाया हू, पिछले कई वर्षों से गन्ने की फसल का क्षेत्र लगभग स्थिर ही रहा है और यदि देश के किसी भाग मे इसकी सीमा मे संकोच आया भी है तो इसका कारण न तो विदेशी चीनी से प्रतियोगिता है और न ही भारतीय चीनी शोधकों की बाजार की पूर्ति मे असफलता है। इसका कारण वस्तुत. देश के विभिन्न

भागों मे उत्पन्न अकाल की स्थिति है और उसने तो प्रत्येक प्रकार के ही कृषि उत्पादन को समान रूप से ही प्रभावित किया है।[147]

चीनी शुल्क के भारतीय समर्थकों के पास अपने पक्ष की पुष्टि मे यदि केवल ऊपर विवेचित तर्क ही थे तो हमारा उससे यह निष्कर्ष निकालना अकारण न होगा कि इस विषय मे उनका आर्थिक विश्लेषण और विवेक सतही तथा जीवन के तथ्यो से विच्छिन्न था, परतु उनके आर्थिक चिंतन और दृष्टिकोण की गहराई और सूक्ष्मता के प्रति उपर्युक्त निष्कर्ष अन्यायपूर्ण तथा भ्रातिमूलक होगा। हमारे विचार मे इस विषय मे अब तक परीक्षित तत्वो की अपेक्षा कुछ अन्य तत्वो से ही वे सरकार के समर्थन के लिए प्रेरित थे। इस तत्व को कभी तो उन्होने स्पष्ट कहा और कभी कभी विवशतावश चालाकी से उन्हे इसे अभिव्यक्ति देने मे सावधानी बरतनी पडी। इसका कारण उनका यह विश्वास था कि चीनी शुल्क अधिनियम देश के राज कर सबधी नियमो मे एक नया मोड होने के कारण एक महत्वपूर्ण युग का सूचक था।[148] उन्हे यह एक स्वर्णिम अवसर प्रतीत हुआ और उन्होने उत्सुकतापूर्वक इस अवसर का लाभ उठाते हुए सरकार के उन्मुक्त व्यापार के सिद्धात पर प्रहार किया तथा सरकार से सरक्षण सिद्धात मनवाने की चेष्टा की। इन नेताओ का विचार था कि जब सरकार एक बार किसी भी कारण से, किसी भी हालत मे तथा किन्ही भी विवशताओ मे घिरकर अनुकूल न सिद्ध होने पर, उन्मुक्त व्यापार के सिद्धात से हट गई तो उस स्थिति मे सरकार के लिए सरक्षण नीति के विस्तार के लिए उनके तर्कों और दबाव की उपेक्षा करना सभव नही होगा। उनका विचार था कि चीनी शुल्क अधिनियम से जुडे हुए अन्य उन उद्योगो को भी राज्य सरक्षण देने की माग की जा सकेगी जिन्हे सरक्षण की आवश्यकता होगी भले ही उनमे ब्रिटिश प्रतियोगियो का सबध क्यों न हो।[149] यदि वी० जी० काले पर विश्वास किया जाए, विश्वास न करने का हमारे पास कोई कारण भी नही, उन्होने रानाडे के पत्रो के सग्रह की भूमिका म इस विषय मे यहा तक लिखा है कि इस अधिनियम के पक्ष मे स्फूर्ति से शस्त्र उठाते समय जस्टिस रानाडे के मन मे यह विचार बहुत स्पष्ट और प्रबल रूप मे था, काले का कथन है कि इस सम करने वाले शुल्क ने तो रानाडे को एक सुविधाजनक आधार जुटाया, जिस पर स्वतत्र व्यापार के सिद्धात के विरुद्ध उन्होने अपनी आलोचना का प्रासाद खडा किया। रानाडे ने यह अनुभव किया कि यह शुल्क तो शुरुआत है और उन्होने चाहा कि इसके द्वारा अहस्तक्षेप के सिद्धात पर की गई चोट को और गहरा किया जाए ताकि भारत के स्वदेशी उद्योग के यथाक्रम विकास को दृष्टि मे रखकर ही देश की अर्थनीति निर्धारित की जाए।[150]

चीनी शुल्क अधिनियम, 1902

जैसा कि हमने अभी अभी देखा है 1899 के चीनी शुल्क अधिनियम को चुकदर चीनी का आयात रोकने मे कोई सफलता न मिली। द्वितीय, चीनी उत्पादको ने शीघ्र ही उत्पादन संघ बनाकर अपने निर्यात को परोक्ष आर्थिक सहायता देनी आरभ कर दी। भारत सरकार ने इसका प्रत्युत्तर जून 1902 मे सम करने वाले अतिरिक्त शुल्क लगाने के रूप मे दिया।[151] चीनी शुल्क सशोधन अधिनियम को चीनी शुल्क अधिनियम के समान राष्ट्र-

वादियों का समर्थन न मिल सका। इसके विपरीत पहले के अधिनियम के विरोधियों के तर्कों को ही अब इस नए अधिनियम के संदर्भ मे व्यापक मान्यता मिली। यद्यपि अब भी लार्ड कर्जन ने यही घोषणा की कि इस बिल मे लोकहित के अतिरिक्त हमारा अन्य कोई उद्देश्य नही है[152] तथापि भारतीय नेताओं ने इसपर अब पुष्प वर्षा के बदले ओले ही बरसाए। बहुसंख्या में ही नेताओं ने यह स्पष्ट घोषणा की कि सरकार इंग्लैंड के खेतिहरों और चानी उत्पादकों के हित में ही सब कुछ कर रही है। वस्तुतः इस चीनी शुल्क से वे लोग भारतीय उत्पादकों मे चीनी के अधिक दाम वसूल कर सकेंगे और साथ ही भारतीय चीनी उद्योग को ध्वस्त कर सकेंगे।[153] इसके अतिरिक्त कइयो ने यह भी अनुभव किया कि सरकार की कार्यवाही के पीछे बढिया चीनी के यूरोपीय उत्पादको के कल्याण की चिता भी कदाचित कार्य कर रही है।[154] अपवाद रूप से चीनी शुल्क के अधिनियम का समर्थन करने वाला प्रमुख राष्ट्रवादी पत्र 'बंगबासी' ही था, जिसने इस अधिनियम का समर्थन इस आधार पर किया कि पहले अधिनियम के लागू होने के प्रथम वर्ष की अवधि में भारतीय उत्पादक वस्तुत लाभान्वित ही हुए है। यूरोपीयो के लिए भारत में चीनी कारखाने लगाने के प्रोत्साहन से रोजगार के नए अवसर पैदा होंगे तथा गन्ने और शीरे की माग बढ़ेगी और हो सकता है कि यूरोपीयो के प्रयास कालातर मे भारतीय उद्योग-पतियो के लिए अनुकरणीय बन जाएं।[155]

सरकारी नीति के विकल्प के रूप मे कुछ भारतीय नेताओं ने पुन. ब्रिटिश उपनिवेशों से आने वाली चीनी सहित सभी देशो की विदेशी चीनी पर सरक्षक शुल्क लगाने की योजना प्रस्तुत की।[156] कुछ ने तो यहा तक कह डाला कि यदि सरक्षक शुल्क लगाना संभव नही तो फिर उपहार-पोषित चीनी पर सम करने वाले शुल्क को हटा ही देना चाहिए।[157]

विभिन्न प्रकार के प्रश्न

यहा कर नीति के कुछ अन्य छोटे-मोटे पक्षो, जिनपर भारतीय राष्ट्रीय नेताओ ने अपने विचार प्रकट किए थे, और ब्रिटिश करनीति के एक पक्ष को भी देख लेना उपयुक्त होगा जिसमे लोगो को गहरी रुचि हो गई थी।

भारतीय नेताओं द्वारा सूती वस्त्रो और चीनी पर लगे आयात शुल्कों के संबंध मे अपनाई गई नीति के नितात विरुद्ध ही अब उनका दृष्टिकोण उन बहुत सारी वस्तुओ पर आयात करों के संबध मे उजागर हुआ जो विदेशी उत्पादन से प्रतियोगिता नही करती थी और उल्टे स्वदेशी उद्योगों और कृषि के विकास मे सहायक थी। उनके इस दृष्टिकोण का आधार उद्योगीकरण की प्रक्रिया पर और उपभोक्ता के हितों पर अंतत. पड़ने वाला उनका प्रभाव था। इस संबंध में मिट्टी के तेल पर सर्वप्रथम 1888 मे लगाए गए और फिर 1894 मे बढाए गए कर के संबंध मे आलोचना का स्वर पर्याप्त मुखर था। सरकार ने इस कर को सर्वथा निरापद माना था क्योंकि इससे कोई भी ब्रिटिश उद्योग प्रभावित नहीं था।[158] परंतु भारतीय नेताओ के आक्षेप का आधार यह था कि मिट्टी का तेल भारतीय उद्योगों को प्रभावित नही करता था परंतु अपने घर में रोशनी के लिए इसका

प्रयोग करने वाले निर्धन वर्ग पर इसका प्रभाव पडता था और इस पक्ष की अवहेलना नहीं की जा सकती थी।[159]

मार्च 1894 में जब कोयला, लौह धातुओं, रंगों, कच्चे औद्योगिक सामान तथा अन्य औद्योगिक भंडारों पर कराधान की योजना वाले 'इंडियन टेरिफ बिल' को पेश किया गया तो भारतीय नेताओं ने पूर्वापेक्षा अधिक तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की। उन्होने उद्योगों पर परोक्ष कराधान के माध्यम से औद्योगिक विकास को क्षति पहुचाने की सरकारी नीति की जोरदार निंदा की।[160]

19वी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश मे चांदी की चद्दरें एक छोटी सी मद थी जिसका भारत से इंग्लैंड को निर्यात किया जाता था। ब्रिटिश सरकार ने एक तो उसपर 30 से 35 प्रतिशत तक आयात शुल्क लगा दिया और दूसरे उसे बोझिल ठप्पा-पद्धति का शिकार बना दिया।[161] 1882 के पश्चात भारतीय नेता इस राज्य कर के विरुद्ध तीव्र विरोध प्रकट करते रहे।[162] 1889 मे यह विरोध उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुच गया जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने चांदी की चद्दरों पर शुल्क हटाने की तथा ऐच्छिक रूप मे ठप्पा अंकित करने की पद्धति की माग की।[163] इसका अभीष्ट प्रभाव पडा। कांग्रेस के इस अधिवेशन में भाग लेने वाले चार्ल्स ब्राडलाफ ने यह प्रश्न संसद मे उठाया और 1890 में शुल्क हटा दिया गया।

भारतीय नेताओं ने इन छोटी छोटी बातों को भी इतना महत्व केवल इसलिए दिया ताकि ब्रिटिश के स्वतंत्र उद्योग के सिद्धात का खोखलापन दिखाया जा सके। इंग्लैंड मे चांदी चद्दर शुल्क हटाने की मांग करते हुए उन्होंने बार बार यह प्रश्न पूछा, जब भारत में 1882 मे उन्मुक्त व्यापार के सिद्धात के पालन के बहाने से कपास शुल्क हटाया गया था तो चांदी चद्दरशुल्क अभी क्यों बनाया रखा जा रहा है और इंग्लैंड भारत द्वारा निर्दिष्ट अच्छे उदाहरण का प्रत्यावर्तन क्यो नही कर सकता? इंग्लैंड की शुल्क हटाने से इनकारी केवल भारत के शासकों की स्वार्थपरता और उनके दोहरे व्यवहार को ही प्रकट करती है, यह उन्होने घोषित किया।[164] 21 फरवरी 1884 के अंक मे ज्ञान प्रकाश ने लिखा : इससे बढ़कर भद्दा मजाक और क्या हो सकता है कि इंग्लैंड उन्मुक्त व्यापार के प्रचार के संबध मे इस कहावत को चरितार्थ कर रहा है कि कोई दूसरों को तो फलसफा सिखाए और खुद बेवकूफों जैसी हरकतें करे।[165] इसी प्रकार अमृत बाजार पत्रिका ने 27 मई 1884 के अंक में क्रुद्ध होकर कहा : 'इसे वे उन्मुक्त व्यापार कहते है···हम तो इसे धोखा ही कहेगे न कि उन्मुक्त व्यापार।' मराठा ने 3 जून 1888 के अंक मे टिप्पणी की कि 'इंग्लैंड की उन्मुक्त व्यापार की नीति मक्कारी और धोखा-धडी है—इंग्लैंड की सारी स्वार्थपरता की नीति नंगी हो गई है और व्यापार के संबंध मे इंग्लैंड की व्यापारिक स्वतंत्रता की शेखी बकवास साबित हुई है।'

भारतीय नेताओं ने चांदी चद्दर शुल्क हटाने के पक्ष में कुछ और तर्क भी प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि भारत में लगाए कपास करों के विपरीत चांदी की चद्दरों पर इंग्लैंड में लगाए शुल्क भी विशुद्ध रूप से संरक्षक-साधन के रूप में ही थे क्योंकि इनसे होने वाली वार्षिक आय कुछ हजार पौंडों की तुच्छ राशि ही है।[166] उनका तर्क था कि इन करों के

हटने से भारतीय कारीगरी और व्यापार को सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त चांदी की चद्दरों के निर्यात से भारतीय चांदी को निकासी की सुविधा उपलब्ध होगी और इससे भारत के रूपये पर दबाव को कम करने और उसके अवमूल्यन को रोकने मे सहायता मिलेगी।[168]

निष्कर्ष

भारत सरकार द्वारा अपनाए गए विभिन्न कर-साधनो के प्रति भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व के दृष्टिकोण के उपर्युक्त अध्ययन के बाद कर नीति के चार प्रमुख तत्व स्पष्ट होते है : प्रथम, अधाधुध न सही, यह विवेकपूर्ण ढंग से भारतीय उद्योग को संरक्षण प्रदान करने की सुस्पष्ट नीति है। द्वितीय, भारतीय नेताओं के आधुनिक उद्योग के प्रति प्रबल और पूर्ण लगाव का यह एक अन्य निदर्शन है। एक बार पुन. व्यापार के हितों की अपेक्षा उद्योग के हितो को प्राथमिकता दी गई। इसके साथ ही भारतीय नेताओ ने जानबूझकर विदेशी वस्त्रो और शोधित चीनी के उपभोक्ता मध्यवर्गीय समाज के रूप मे अपने हितों को देश के उद्योगीकरण के व्यापक हितों के अधीन ही कर दिया। दूसरे शब्दों मे उन्होने भारतीय उपभोक्ता के हितों की अपेक्षा भारतीय उत्पादक के हितो को अधिक महत्व दिया। यह रोचक तथ्य है कि जब कभी उनके विचार में भारतीय उद्योग पर कोई आच नही आती थी, जैसाकि पेट्रोलियम और किन्ही किन्ही के मत में चीनी के बारे मे, तब भारतीय नेता निस्संकोच और अबाध रूप से उपभोक्ताओं के हितो की सुरक्षा मे अग्रसर होते थे। तृतीय, वे इस धारणा पर पूर्ण विश्वास करने लगे थे और इसी पर उन्होंने दृढतापूर्वक आचरण भी किया और इसी का प्रचार-प्रसार भी किया कि भारत सरकार की कर नीति भारतीय उद्योग के विकास को क्षतिग्रस्त कर रही है। इसके पीछे विदेशी शासकों का उद्देश्य कदाचित ब्रिटिश उत्पादकों के हितों की सुरक्षा करना है। भारत सरकार ब्रिटिश उद्योगों के उत्पादित माल की खपत के लिए भारत में यथासंभव मडी बनाए रखने के लिए कृतसंकल्प है और इसी के संदर्भ में भारत के ग्रामों की आर्थिक स्वायत्तता और स्वदेशी कलाकौशल का द्रुतगति से विनाश किया जा रहा है। चतुर्थ, सरकार की कर नीति ने राष्ट्रीय भावना को न केवल जगाया प्रत्युत राजनीतिक वास्त-विकता को अधिक स्पष्टता से देखना भी सिखाया। इसने नेताओं को भारतीयों में राष्ट्रीय भावना को फूकने, उन्हे राजनीतिक शिक्षा देने तथा उनमे पनपती राष्ट्रीयता को सुदृढ़ करने, सारे देश के विभिन्न भागों के लोगों को इकट्ठा होने यहां तक कि उन्हे राजनीतिक संघर्ष और आदोलन की कला सिखाने का अवसर जुटाया। वस्तुत: समीक्षाधीन अवधि में करनीति उन विषयों मे से एक थी, जिन्हें भारतीयों में सरकार विरोधी भावनाएं तथा संघर्षशील राष्ट्रवाद को जगाने का श्रेय प्राप्त है।

संदर्भ

1. सपूर्ण समीक्षाधीन अवधि मे भारतीय कर नीति के इतिहास के लिए देखिए, सी० जे० हैमिल्टन : दि ट्रेड रिलेशस बिटवीन इग्लैंड ऐंड इडिया (1600-1806), (कलकत्ता 1919) प्रमथनाथ बैनर्जी . फिस्कल पालिसी इन इडिया (कलकत्ता 1922) सी० एन० वकील फाइनेशल डेवलपमेट इन माडर्न इडिया (बंबई 1924) अध्याय 15 और दत्त · ई एच II
2. दि इपीरियल गजेटियर (1908) खड IV, पृ० 262
3. राज्य सचिव के सप्रेषण देखिए (सेपरेट रेवेन्य) स० 6, 15 जुलाई 1875 और उसका सप्रेषण (लेजिस्लेटिव) 11 नवबर 1875, (स० 53) और 31 मई 1876 (स० 25)
4. राज्य सचिव की डाक, 15 जुलाई 1875 पूर्वोक्त स्थल 11 नवबर 1875 की अपनी डाक मे उसने दोबारा बल देते हुए लिखा सूती सामान पर कर दो उत्पादक वर्गों को, जिनपर ताज की सपन्नता और वैभव निर्भर है, एक दूसरे के प्रतियोगी ही नही बनाते प्रत्युत राजनीतिक विद्वेषी भी बनाते हैं यदि इस कार्य को स्थगित कर दिया जाए तो यह वर्तमान मे प्रतियोगिता रत वर्गों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली और कटु बने हितो मे मतभेद का विषय बन जाएगा पूर्वोक्त स्थल
5. लिटन के दृष्टिकोण के लिए देखिए, लेडी बैट्टी बेलफोर दि हिस्टरी आफ लार्ड लिटन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन 1876 टु 1880 (लदन 1899) पृ० 462, 477 स्ट्रैची के लिए देखिए, उसका 1877 का वित्तीय वक्तव्य

   स्ट्रैची ने अपने दृष्टिकोण को निम्नलिखित अधिक सुस्पष्ट शब्दो मे इस प्रकार अभिव्यक्ति दी मैं इस सबध मे भारतीय और अग्रेजी हितो मे किसी प्रकार के मतभेद मे विश्वास नही करता ·· यदि ऐसा किया जाता तो स्थिति भिन्न होती—मै इस प्रकार की कल्पना मे विश्वास नहीं रखता मै इस मौके पर एक बात अवश्य कहना चाहता हू 'हमे कहा जाता है कि भारत सरकार का कर्तव्य केवल भारत के हित की चिता करना है और यदि इसमे लकाशायर के हित को आघात पहुचता है तो हमे इसमे कुछ लेना देना नही परतु जहा तक मेरा सबध है, मैं इस सिद्धात को अस्वीकार करता हू भारत मे अपन जीवन का अधिक समय व्यतीत करने से और भारत सरकार के सदस्य बनने का अर्थ यह नही कि अग्रेज ही नही रहा माचेस्टर के हित, जिनपर मूर्ख लोग नाक सिकोडते हैं, न केवल कपास के उद्योग से प्रत्यक्ष रूप से सबद्ध बुद्धिमान और महान लोगो के हित हैं, प्रत्युत लाखो अग्रेजो के भी हित हैं मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही कि जहा मानवता के नाते, मैं आशा करता हू और अनुभव करता हू कि इस देश के प्रति मरे कुछ कर्तव्य हैं, वहा मैं यह भी अनुभव करता हू कि मेरी कल्पना म अपन देश के प्रति कर्तव्य से बढ़कर कुछ भी नहीं,' तथा देखिए उनका 1878 और 1879 के वित्तीय भाषण
6. लार्ड सैलिसबरी ने भारत सरकार के पास प्रस्ताव भेजते हुए यह निर्देश किया कि 5 और मिलें अपना कार्य आरभ करने जा रही हैं तथा 1878 के अत तक 1,231,284 पूनियो का भारत मे नियोजन हो सकेगा (1878 के वित्तीय भाषण का परिशिष्ट डी).
7. जे० स्ट्रैची इडिया (1903) पृ० 181-2 तथा बर्यरिंग फाइनेंशियल स्टेटमेंट्स 1883 कडिकाए 75-78, परिमल राय पूर्वोद्धत, पृ० 50 और जोशी पूर्वोद्धत, पृ० 628-9 हैमिल्टन ने विरोधी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया कर के निवर्तन मे न तो कपास के फुटकर सामान के आयात व्यापार को ही पलटने की अपेक्षा अधिक द्रुतगति मिली है और न ही भारत के द्रुतगति से बढ़ते

कपास उद्योग के विस्तार मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित हुई है (पूर्वोद्धृत, पृ० 247).

8 स्ट्रैची · इंडिया (1903) पृ० 178

9 17 दिसबर 1874 के अक मे नेटिव ओपीनियन द्वारा पुनरुद्धृत : ए० बी० पी० का एक विदेशी सस्करण, तथा देखिए आर० एन० पी० बग०, 2, 9 जनवरी, 6, 27 फरवरी 1875 मे उद्धृत समाचारपत्र

10 ईस्ट इडिया एसोसिएशन, बबई शाखा की प्रबध समिति का 15 जनवरी 1875 का ज्ञापन, जरनल आफ दि ईस्ट इडिया एसोसिएशन, खड IX 1875

11 देखिए, आर० एन० पी० बब, 14, 21, 28 अगस्त 4, 11 सित० 1875, आर० एन० पी० बग०, 14, 21, 28 अगस्त 1875, आर० एन० पी० एन०, 28 अगस्त 1875 आर० एन० पी० एम०, सितबर-अक्तूबर 1875

12 देखिए, आर० एन० पी० बब, 4, 11, 18, 25 मार्च, 1, 8 अप्रैल 1876, आर० एन० पी० बग०, 18, 25 मार्च, 15, 22, 29 अप्रैल 1876, परवर्ती विरोध के लिए देखिए भोलानाथ चद्र एम० एम० खड V जनवरी-जून 1876, पृ० 3, 58 63, याजदा परस्त, 1 अप्रैल, बबई समाचार, 31 मार्च (आर० एन० पी० बब, 7 अप्रैल 1877); इदु प्रकाश, 23 अप्रैल (वही, 28 अप्रैल, 1877); एजुकेशन गजट 20 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 28 जुलाई 1877); सहचर 23 जुलाई (वही 4 अगस्त 1877)

13 देखिए, आर० एन० पी० बब०, 23, 30 मार्च, 6, 13 अप्रैल 1878 और देखिए, आर० एन० पी० बब, 11, 18 जनवरी 8, 15, 22 फरवरी 1, 15 मार्च 1879, आर० एन० पी० बग० 22 फरवरी, 1 मार्च 1879 आर० एन० पी० एन०, 22 फरवरी 1 मार्च 1879 ब्रह्म पब्लिक ओपीनियन, 13 फरवरी 1879

14 देखिए आर० एन० पी० बब, 22, 29 मार्च, 5, 26 अप्रैल, 10 मई 1879, आर० पी० एन० बग०, 22, 29 मार्च, 5, 12 अप्रैल 1879, आर० एन० पी०पी० एन०, 5, 12 अप्रैल 1979 3 मई 1879 को पार्लियामेंट के सामने भारत सरकार की कार्यवाही के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए एक जन सभा हुई इदु प्रकाश, 5 मई (आर० एन० पी० बब, 10 मई 1879 इसी प्रकार की एक सभा का आयोजन कलकत्ता मे 27 मार्च 1879 को किया गया. इसमे लगभग 300 लोग सम्मिलित हुए (बागल, पूर्वोद्धृत, पृ० 41) और देखिए, एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 201 03 के० टी० तैलग . सिलेक्ट राइटिंग्ज ऐड स्पीचेज (बबई 1916) पृ० 185-6 लालमोहन घोष . स्पीचेज आफ लालमोहन घोष आशुतोष बैनर्जी द्वारा सपादित (कलकत्ता 1883 और 1884) भाग 1 पृ० 9

15. एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 202

16 आर० एन० पी० बग०, 5 अप्रैल 1879

17. भारत मिहिर, 19 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 28 फरवरी 1880); बगाली · 29 जनवरी 1881 : ए० बी० पी० 24 फरवरी 1881, आर० एन० पी० बग०, 1, 8, 15 जनवरी, 19 फरवरी 5 मार्च 1881 मे उल्लिखित समाचारपत्र, आर० एन० पी० बब, 29 जनवरी 5, 26 फरवरी 1881; 16 मई 1880 को पूना मे पूना सार्वजनिक सभा द्वारा आयोजित एक जनसभा, जे० पी० एस० एस०, खड III, सख्या 1 (जुलाई 1880) पृ० 9 (और देखिए, पृ० 3)

18. मराठा, 28 अगस्त, 18 सितबर 1881; नेटिव ओपीनियन, 28 अगस्त, 4 सितबर, 18 सितबर 1881 और आर० एन० पी० बब, 3, 10 24 सितबर 1881 और आर० एन० पी० बग०,

24, 31 दिसंबर 1881 मे उल्लिखित समाचारपत्र

19 ए० बी० पी०, 16, 23, 30 मार्च, 6 अप्रैल 1882, बगाली, 11 मार्च 1882; मराठा, 26 मार्च 1882; नेटिव ओपीनियन, 12 मार्च 1882, आर० एन० पी० बब, 11, 18 मार्च, 1 अप्रैल 1882, आर० एन० पी० बग०, 25 मार्च, 1 अप्रैल 1882, आर० एन० पी० पी० एन०, 22, 29 मार्च, 5, 12 अप्रैल 1882 मे उल्लिखित समाचारपत्र यहा तक कि परम प्रतापी महाराज जतीद्र मोहन टैगोर ने चैंबर कौसिल की अपनी सीट से कपास आयात के निर्वतन की निंदा की (एल० सी० पी० 1882 खड XXI पृ० 304)

20 यह शासन पहले ही देशी भाषा प्रेस कानून तथा स्वशासन के विस्तार को वापस ले चुका है अपराध प्रक्रिया सहिता सुधार बिल दूर की कोडी था भारतीय नेताओ को अब भी किसी अन्य वस्तु की अपेक्षा अगरेजो मे से उदारवादियो और उग्रवादियो पर दृढ विश्वास था

21. उदाहरणार्थ देखिए ईस्ट इडिया एसोसिएशन की बबई शाखा का स्मरणपत्र जरनल आफ ईस्ट इडिया एसोसिएशन खड IX (1875) पृ० 99 भोलानाथ चद्र एम० एम० खड V (जनवरी जून 1876)पृ० 51, 58 9 आर० एन० पी० बब, 22 29 मार्च, 5, 12, 26 अप्रैल, 3 मई 1879 मे उल्लिखित समाचारपत्र, तैलग राइटिंग्ज, पृ० 186 एल० एम० घोष स्पीचेज, खड I, पृ० 9 एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 202 वायसरायल्टी आफ लार्ड लिटन . जे० पी० एस० एस०, खड III, स० 1 (जुलाई 1880) पृ० 68-9, मराठा, 26 मार्च 1882 सर जान स्ट्रैची ने निम्नलिखित आश्चर्योत्पादक परतु उदघाटक शब्दो मे भारतीय दृष्टिकोण को उलटे रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया भारत मे करो की सूची मे शामिल अथवा शामिल किया जा सकने वाला प्रत्येक उत्पादन या तो भारत मे उत्पादित होता है या किया जा सकता है, अत यह सिद्ध है कि कपास आयात शुल्क वास्तव मे अथवा सामर्थ्य से सरक्षक हैं (वित्तीय प्रतिवेदन 1878, कडिका 55)

22 उदाहरण के लिए देखिए, ईस्ट इडिया एसोसिएशन की बबई शाखा का अनुस्मारक, पूर्वोक्त स्थल; भोलानाथ चद्र पूर्वोक्त स्थल तैलग राइटिंग्ज, पृ० 185 एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 200-02 वायसरायल्टी आफ लार्ड लिटन पूर्वोक्त स्थल तथा बहुत सारे समाचारपत्र, पीछे पाद टिप्पणी 13-14 मे उद्धृत

23. ईस्ट इडिया एसोसिएशन की बबई शाखा का अनुस्मारक, पूर्वोक्त स्थल, सहचर 23 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 4 अगस्त 1877) एल० एम० घोष स्पीचेज, भाग I, पृ० 193, 200-02 रानाडे जे० पी० एस० एस० खड IV सख्या 1 (जुलाई 1881) पृ० 50 बहुत वर्षों के उपरात आर० सी० दत्त ने व्यथित होकर कहा उस समय यह कर हटाए गए हैं, जबकि दक्षिणी भारत अभी 1877 के मद्रास अकाल से सभल नही पाया, जबकि उत्तरी भारत अभी 1877 के अकाल से सतप्त है, जबकि भूराजस्वो मे करों की अभी अभी बढोत्तरी की गई है, जबकि विशेष करो की उगाही से बनाया गया 'अकाल बीमा कोष' अदृश्य हो गया है और जबकि अफगानिस्तान के सकट और विशाल खर्चों ने वैज्ञानिक जिज्ञासा का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया है (ई एच II, पृ० 416)

24. बबई समाचार जामे जमशेद और अखबारे सौदागर, 21 मार्च (आर० एन० पी० बब, 23 मार्च 1878); इडियन स्पेक्टेटर, 28 अगस्त (वही, 3 सितबर 1881); बगाली, 11 मार्च 1882; इडियन स्पेक्टेटर, नेटिव ओपीनियन गुजरात मित्र, 12 मार्च (आर० एन० पी० बब, 18 मार्च 1882); वस्तुत: 1882 में जितने भी समाचारपत्रों ने आयात करों के निवर्तन पर टिप्पणी की, इस तथ्य को प्रस्तुत किया.

25. आर० एन० पी० बंब, 7, 21, 28 अप्रैल 1877 और 22, 29 मार्च, 5 अप्रैल 1879 में उल्लिखित समाचारपत्र; भारत मिहिर, 29 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 5 अप्रैल 1879); हिंदी प्रदीप, अप्रैल (आर० एन० पी० पी० एन०, 12 अप्रैल 1879), मिरात उल हिंद, 15 फरवरी (वही, 19 फरवरी 1880); बर्दवान संजीवनी, 3 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 14 जनवरी 1882); सहचर, 29 मार्च (वही, 8 अप्रैल 1882).

26. सहचर : 17 दिसंबर ए० बी० पी० के विदेशी संस्करण में, बेलगांव समाचार, 2 मार्च (आर० एन० पी० बब, 6 मार्च 1875); आंध्रभाषासंजीवनी तिथि रहित (आर० एन० पी० एम०, सितंबर-अक्तूबर 1875); सदादर्श, 23 अगस्त (आर० एन० पी० पी० एन०, 28 अगस्त 1875); आर० एन० पी० बग०, 2, 9 जनवरी 6, 27 फरवरी, 13 मार्च 14, 21, 28 अगस्त 1875 और आर० एन० पी० बंब, 14, 21, 28 अगस्त, 4, 11 सितंबर 1875; 4, 11, 25 मार्च 1, 8 अप्रैल 1876; आर० एन० पी० बग०, 18 मार्च, 15, 22 अप्रैल 1876, 21, 28 जुलाई, 4, 18 अगस्त 1877, आर० एन० पी० बब, 23 मार्च 1878 में उल्लिखित समाचारपत्र. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड V (जनवरी-जून 1876) पृ० 48, 58-63; एल० एम० घोष : जरनल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन खड XIII भाग 2 पृ० 65 और स्पीचेज, भाग 1 पृ० 9; एस० एन० बनर्जी : स्पीचेज I, पृ० 220, आर० एन० पी० बब, 22, 29 मार्च, 5, 19, 26 अप्रैल 1879; आर० एन० पी० बग०, 22 फरवरी, 22, 29 मार्च, 5, 12 अप्रैल 1879 आर० एन० पी० पी० एन०, 5, 12 अप्रैल 1879 में उल्लिखित समाचारपत्र 'दि ब्रोकन प्लेज ऐंड इट्स कांसिक्वेंसिज' जे० पी० एम० एस०, खड III, सख्या 1 (जुलाई 1879) पृ० 44; वायसरायल्टी आफ लार्ड लिटन : जे० पी० एस० एस०, खड III सख्या 1 (जुलाई 1880) पृ० 34, 63, 68; मिरात-उल-हिंद, 15 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 फरवरी 1880); सहचर : 20 दिसबर 1880 (आर० एन० पी० बग०, 1 जनवरी 1881); साधारणी, 2 जनवरी (वही, 8 जनवरी 1881); सुलभ समाचार, 8 जनवरी (वही, 15 जनवरी 1881); आनन्द बाजार पत्रिका, 21 फरवरी (वही, 5 मार्च 1881); केसरी : 20 सितबर (आर० एन० पी० बब, 24 सितबर 1881); मराठा, 18 सितबर 1881; 26 मार्च 1882; ए० बी० पी० 16 मार्च 1882; आर० एन० पी० बंब, 18, 25 मार्च, 1, 8 अप्रैल 1882, आर० एन० पी० बग०, 24, 31 दिसबर 1881, 7 जनवरी, 25 मार्च, 1 अप्रैल 1882; आर० एन० पी० पी० एन०, 22, 29 मार्च 1882 में उल्लिखित समाचारपत्र

27. आर० एन० पी० बब, 25 दिसबर 1875.

28. रानाडे : 'रिव्यू आफ फ्री ट्रेड ऐंड इगलिश कामर्स', अगस्तस मोग्रेडियन द्वारा, जे० पी० एस० एस०, खड IV सख्या 1, पृ० 50. यह समीक्षा अज्ञातनाम प्रकाशित हुई. हमारे पास जी० ए० मानकर द्वारा जस्टिस रानाडे को इसका लेखक मानने का प्रमाण उपलब्ध है (मानकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 214-5, खड I).

29. जे० पी० एस० एस०, खड III, सख्या 1 (जुलाई 1880), पृ० 11.

30 उनके दृष्टिकोण का सोदाहरण विश्लेषण जान स्ट्रैची की अगली टिप्पणी में किया गया है : 'भारतीयों द्वारा ब्रिटिश सरकार पर लकाशायर का पक्षपात करने का अभियोग मूर्खतापूर्ण आरोप है जिसका उत्तर देने की न अपेक्षा थी और न है. (इंडिया, 1903 पृ० 178) तथा देखिए : स्ट्रैची : फाइनेशनल स्टेटमेंट्स, कडिका 77. यहां यह उल्लेखनीय है कि उसी समय उच्च ब्रिटिश

अधिकारियों ने राष्ट्रीय आपत्तियों की सम्यक जानकारी तो प्राप्त की परंतु उन्हें स्थिति के परंपरागत रूप में लेते हुए टाल दिया.

31. तुलनीय, वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 408-24.
32 1 मार्च (आर० एन० पी० बब, 6 मार्च 1875). इसी प्रकार 23 अगस्त 1875 के अंक मे 'सदादर्श' को लंबे रेशेवाली कपास पर आयात कर लगाने पर विचार करते समय यह टिप्पणी करने को विवश होना पड़ा : यह देखने के पश्चात कौन इनकार करेगा कि हमारे शासकों को यह वास्तविक चिंता उत्तेजित कर रही है कि भारत का एक बहुत बड़े उत्पादक देश के रूप मे ही विकास हो ? (आर० एन० पी० पी० एन०, 28 अगस्त 1875) और देखिए माधारणी, 29 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 11 सितंबर 1875).
33. भोलानाथ चंद्र : एम० एम०, खंड V (जनवरी-जून 1876) पृ० 58-60 अतएव उन्होंने कहा कि स्वामिभक्ति के लिए युवराज के भारत पधारने का कोई महत्व नही, इंग्लैंड की शासिका महारानी का भारत की सम्राज्ञी की उपाधि ग्रहण करना व्यर्थ है वस्तुत देवता नहीं प्रत्युत पिशाच ही सच्चे अर्थों मे शासक शक्ति हैं. मांचेस्टर ही सच्चे अर्थों मे भारत के भाग्य का निर्णायक है (वही, पृ० 63).
34 वही, पृ० 62 तथा देखिए साधारणी, 23 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 29 मार्च 1879)
35 एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 202
36 एल० सी० पी०, 1882 खंड XXI पृ० 328-9.
37 और देखिए, सहचर · 29 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 8 अप्रैल 1882)
38 दत्त · ई० एच० II, पृ० 339
39 आर० एन० पी० बग०, 1 अप्रैल 1882 तथा समय, 15 मार्च (वही, 20 मार्च 1886)
40. सहचर 13 जन० (वही, 23 जन० 1886).
41. एल० सी० पी० 1882 खंड XXI, पृ० 328.
42. उदाहरण के लिए देखिए वी० ओ० आई०, 15 अप्रैल 1884; बगाली, 22 मार्च 1884, एम० ए० स्वामी नाथ अय्यर . रिप० आई० एन० सी० 1885, पृ० 69; केसरी, 24 जनवरी, बोध सुधाकर, 25 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888); दत्त . ई एच II, पृ० VIII, 120, 339-41, 401-02, 411, 416, 518, 537. स्पीचेज II पृ० 126.
43 उदाहरणार्थ देखिए, आई० एन० सी० 1885, 1887 और 1889 के क्रमश प्रस्ताव VI, VI और III. केसरी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 7 अप्रैल 1883), जे० य० याज्ञिक, रिप० आई० एन० सी०, 1885, पृ० 66, एस० ए० स्वामीनाथ अय्यर वही, पृ० 69, बंगाली, 9 जनवरी 1886; आर० एन० पी० बग०, 2, 9, 16, 23, 30 जनवरी, 6 फरवरी 18, 25 सितंबर, 2,9 अक्तूबर 1886; आर० एन० पी० बब; 18 सितंबर 1886 मे उल्लिखित समाचार-पत्र ट्रिब्यून, 18 सितंबर, इंडियन स्पैक्टेटर, 19 सितंबर, बिहार हेराल्ड और इंडियन मिरर, 21 सितंबर, पीपुल्स फ्रेंड, 25 सितंबर. ज्ञान प्रकाश, 30 सितंबर (वी०ओ०आई०, खंड IV सख्या 10, अक्तूबर 1886); हिंदूजनसंस्कारिणी, सख्या 3 (आर० एन० पी० एम० अक्तूबर 1886): जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 100-01, 142, 160, माडलिक, पूर्वोद्धृत, पृ० 651, 659-60, एस० एस० बैनर्जी : स्पीचेज III पृ० 8. गुरु प्रसाद सेन : रिप० आई० एन० सी० 1887 पृ० 132; मराठा, 29 जनवरी 1888, बगाली, 28 जनवरी 1888, ए० बी० पी० 26 जनवरी 1888, वी० ओ० आई०, फरवरी और मार्च 1888 मे उल्लिखित समाचारपत्र, आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी,

4 फरवरी 1888, आर० एन० पी० बम०, 28 जनवरी, 4 फरवरी 1888, आर० एन० पी० एम, 31 जनवरी, 29 फरवरी 1888; आर० एन० पी० पी० एन० 31 जनवरी, 7, 14 फरवरी 1888; नौरोजी · सी० पी० ए०, पृ० 177; ज्ञान प्रकाश और सुधारक 19 फरवरी, सुबोध पत्रिका, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बब, 24 फरवरी 1894).

44. भारत सरकार तो नए कर अधिनियम मे सूती सामान को सम्मिलित करने के लिए अत्यन्त उत्सुक दिखाई देती थी परंतु महारानी की सरकार के आदेश से उसे अपने निश्चय को रद्द करना पड़ा देखिए, भारतीय कर अधिनियम पर मार्च 1849 में वित्त सदस्य का भाषण, एल० सी० पी०, 1894, खड XXXIII, और देखिए, वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 426 पी० बैनर्जी : फिस्कल पालिसी इन इंडिया, पृ० 89-90

45. देखिए, एल० सी० पी०-1894 खड XXXIII पृ० 155

46. पूना सावजनिक सभा का स्मरणपत्र, दिनाक 6 मार्च 1894, जे० पी० एस० एस०, खड XVI स० 4 (अप्रैल 1894), इडियन एसोसिएशन का स्मरणपत्र, दिनाक 8 मार्च 1894 'रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन फाम 1892-3 टु 1895-6' बबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन द्वारा 2 मार्च 1894 को विरोध स्वरूप भेजा गया तार, पी० पी० (हाउस आफ कामस), 1895, खड 72 स० 202; बबई के 2 नवबर 1894 को हुए सातवे प्रातीय सम्मेलन मे अध्यक्षीय अभिभाषण, जे० पी० एस० एस०, ख० XVII सख्या 3 (जनवरी 1895) पृ० 5-6 18 मार्च 1894 का पूना मे हुए सम्मेलन में प्रस्तुत याचिका के लिए देखिए मराठा, 18 मार्च 1894. 20 मार्च 1894, को मद्रास मे हुए सम्मेलन मे पारित प्रस्ताव के लिए देखिए, मराठा, 25 मार्च 1894 कलकत्ता मे 8 मार्च, बबई मे 14 मार्च, अमृतसर मे 7 मार्च और लखनऊ मे 9 मार्च 1894 को हुए जन-सम्मेलनो मे पारित प्रस्तावो के लिए देखिए, पी० पी० (हाउस आफ कामस) 1895, खड 72 सख्या 202.

47. ए० बी० पी०, 3 मार्च 1894; मराठा, 4 मार्च 1894; बगाली, 10, 17 मार्च 1894, इदु प्रकाश, 12 मार्च 1894; इंडियन स्पेक्टेटर, 11 मार्च 1894, एडवोकेट, 9 मार्च (आई० एम० वी० ओ० आई०, 25 मार्च 1894); ट्रिब्यून, 14 मार्च (वही, 15 मार्च 1894), आर० एन० पी० बब, 10 मार्च, आर० एन० पी० बग०, 10, 17, 31 मार्च 1894, आर० एन० पी० एम०, 15, 31 मार्च 1894, आर० एन० पी० एन०, 14, 21, 28 मार्च 1894, आर० एन० पी० पी०, 7, 21 अगस्त 1894 मे उल्लिखित समाचारपत्र

48 पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र 1894, पूर्वोक्त स्थल; इडियन एसोसिएशन का स्मरणपत्र, पूर्वोक्त स्थल; बबई प्रसीडेंसी एसोसिएशन का विरोध, पूर्वोक्त स्थल; जी० आर० एम० त्रितनवीस, एल० सी० पी० 1894 खड XXXIII, पृ० 157. रास बिहारी घोष · स्पीचेज, पृ० 151-2.

49. रास बिहारी घोष : स्पीचेज, पृ० 150 आगे चौदहवें अध्याय मे राष्ट्रवादियो की कर नीति के इस पक्ष की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की गई है.

50. पूना सार्वजनिक सभा का 1894 का स्मरणपत्र, पूर्वोक्त स्थल तथा पीछे सदर्भ 45-6 मे उद्धृत लगभग सभी भारतीय नेता.

51. आई० एस० वी० ओ० आई०, 29 अप्रैल 1894

52. ज्ञान प्रकाश, 5 मार्च (आर० एन० पी० बब, 10 मार्च 1894)

53. बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओ ने धीमे स्वर में और अप्रत्यक्ष ढंग से राजनीतिक धमकी भी दी और इन प्रार्थियों ने तो अपने शासकों से राजनीतिक नैतिकता की अपेक्षा करते हुए उन्हें यहां

तक चेतावनी दे दी कि उनके इस पग से महारानी की आज्ञाकारी भारतीय जनता की वफादारी को एक ऐसा गहरा धक्का लगेगा जिसकी क्षतिपूर्ति कभी हो ही नहीं सकेगी. (देखिए, मराठा, 18 मार्च 1894).

54. 11 मार्च (आर० एन० पी० बम० 17 मार्च 1894).
55. आर० एन० पी० बंग, 31 मार्च 1894. इसी प्रकार बगाली ने 17 मार्च 1894 के अक में घोषणा की कि 'भारतीयो का इंग्लैंड के न्याय से विश्वास डिग गया है'.
56. आर० एन० पी० बंब, 24 मार्च 1894.
57. एल० सी० पी०, खंड XXXIII पृ० 46.
58. वेस्टलैंड, वही, पृ० 382, 384.
59. वित्तीय प्रतिवेदन, 1878 कडिका 55
60 वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 427-9 में उद्धृत और देखिए : वेस्टलैंड एल० सी० पी०—1894, खंड XXXIII पृ० 383-4.
61. वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 427, 429. हैमिल्टन—पूर्वोद्धृत, पृ० 248-51.
62 एल० सी० पी०—1894, खंड XXXIII, पृ० 381-2
63. मराठा, 16 दिसंबर 1894; इंडियन स्पेक्टेटर, 23 दिसबर 1894; इदुप्रकाश, 24 दिसंबर 1894: ए० बी० पी०, 22 दिस० 1894; बंगाली, 22 दिस० 1894; हिंदू, 27 दिस० 1894; कैसर-ए-हिद, 16 दिस०, सुबोध प्रकाश, 19 दिस०, सुबोध पत्रिका, 16 दिस०, देशी मित्र, 20 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 22 दिस० 1894); स्वदेशमित्रन, 21 दिस० 1894, खासिम-उल-अखबार, 24 दिस० 1894 तथा अन्य भारतीय समाचारपत्र. (आर० एन० पी० एम०, 15 जनवरी 1895) मद्रास स्टैंडर्ड, 24 दिस० 1894 (आई० एस० वी० ओ० आई०, 13 जनवरी 1895) हिंदुस्तानी, 26 दिस० 1894 (आर० एन० पी० एन०, 2 जनवरी 1895); एस० एन० बैनर्जी . सी० पी० ए, पृ० 259-61 जोशी . पूर्वोद्धृत, 191-2 केवल एक प्रधान समाचारपत्र 'एडवोकेट' ने कपास पर आयात शुल्क के विरुद्ध इस आधार पर आपत्ति की कि इससे इस प्रकार की वस्तुओं के दाम बढ़ जाएंगे और इसका परिणाम उत्पादन शुल्क लगाना हो सकता है। इसके स्थान पर पत्र का सुझाव था कि मांचेस्टर के उग्रवादी तत्वों से सबध जोड़ना चाहिए
64. वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 31.
65. आई० एन० सी० 1894 का प्रस्ताव I, वाचा . रिप० आई० एन० सी०—1894; पृ० 31-2; मराठा, 16 दिसबर 1894, ए० बी० पी०, 22, 29 दिसबर 1894, बगाली, 22 दिसंबर 1894; हिंदू, 27 दिस० 1894; इडियन स्पेक्टेटर, 23 दिसबर 1894 इदु प्रकाश, 24, 31 दिस० 1894; आर० एन० पी० बब, 22 दिस० 1894, 5 जनवरी 1895, आर० एन० पी० बग०, 22, 29 दिसबर 1894, 5, 12 जनवरी 1895, आर० एन० पी० एम०, 15 जनवरी, 1895, आर० एन० पी० एन०, 9, 16, 23 जन० 1895, आर० एन० पी०, 12 जनवरी, 9 फरवरी 1895 मे उल्लिखित समाचारपत्र यहा यह निर्देश करना उचित है कि बहुत सारे भारतीय नेताओं ने उस समय भी जब सीमा शुल्क के लगाने की समावनाओ पर विचार किया जा रहा था, इसका प्रबल विरोध किया था इस सबध मे देखिए, इडियन स्पेक्टेटर, 1 जुलाई 1894. हिंदू, 11 जुलाई 1894. गुजराती, 1 जुलाई, सुधारक, 2 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 7 जुलाई 1894); केसरी, 24 जुलाई (वही, 28 जुलाई 1894); ट्रिब्यून, 18 जुलाई, एडवोकेट, 20 जुलाई

(आई० एस० बी० ओ० आई०, 26 अगस्त 1894)

66 हैमिल्टन, पूर्वोद्धृत, पृ० 252-3 दत्त ई एच II पृ० 539-40. वकील पूर्वोद्धृत, पृ० 430-2

67 वकील पूर्वोद्धृत, पृ० 433

68 मराठा, 26 जनवरी, 9 फरवरी 1896, ए० बी० पी० 29 जन० 1896, बगाली 1, 8 फरवरी 1896; हिंदू, 27 जनवरी 1896, इडियन स्पेक्टेटर, 26 जनवरी 1896; मद्रास स्टैंडर्ड, 27 जनवरी, इडियन नेशन, 27 जनवरी (आई० एस० बी० ओ० आई०, 15 मार्च 1896); एडवोकेट, 28 जनवरी, ट्रिब्यून, 29 जन०, इडियन मिरर, 30 जनवरी (वही, 22 मार्च 1896), बिहार हेराल्ड, 8 फरवरी (वही, 5 अप्रैल 1896), आर० एन० पी० बब 25 जन०, 1 फरवरी 1896, आर० एन० पी० बग०, 1, 8, 15 फरवरी 1896, ए० एन० पी० एम० 15, 29 फरवरी 1896 आर० एन०पी० एन०, 5, 12, 19 फरवरी 1896, आर० एन० पी० पी०, 8, 15, 22 फरवरी 1896. मे उल्लिखित समाचारपत्र बबई प्रेसीडेसी एसोसिएशन की ओर से 27 जनवरी 1896 को भेजा गया तार इडियन टैरिफ एक्ट 1896 और काटन ड्यूटी ऐक्ट 1896 से सबधित 1896 के कागजात-सी 8078 (हाउस आफ कामस) पृ० 163 28 जनवरी 1896 मे बबई की एक जनसभा मे पारित प्रस्ताव, वही पृ० 166 29 जनवरी 1896 का अध्यक्ष, पूना सार्वजनिक सभा द्वारा प्रेषित तार, वही, पृ० 171 2 फरवरी 1896 मे मद्रास मे हुई जनसभा द्वारा अभिव्यक्त ... वही पृ० 192 7 फरवरी 1896 को बोरसाद, जिला केरा बबई मे हुई जनसभा द्वारा अभिव्यक्त विरोध, वही पृ० 193 विधान परिषद मे बी० आर० भुसकुटे, पी आनन्द चारलू और मोहिनी मोहन राय के सरकारी प्रस्ताव के विरुद्ध भाषण (एल० सी० पी०-1896 खड XXXV पृ० 66-7, 78-87, 92-95)

69 आर० एन० पी० बग०, 8 फरवरी 1896.

70 क्रमश प्रस्ताव XVI और प्रस्ताव VIII.

71 रिप० आई० एन० सी०—1902 पृ० 143

72 दत्त ई एच II पृ० 543 और वही, पृ० 597, 612 स्पीचेज II पृ० 45-6 80, 126-7

73 गोखले स्पीचेज, पृ० 10, 41-2 और 77 अपने 1903 के बजट भाषण मे उन्होने आर० सी० दत्त को प्रतिध्वनित किया उन्होने दृढतापूर्वक स्वीकार किया गृह उद्योग पर सरकारी कराधान की विदेश प्रतियोगियो के लाभ को सभव बनाने वाली ऐसी व्यवस्था किसी भी अन्य देश मे सभव नही थी भले ही वहा की सरकार विनाश के कगार पर खडी हुई गिरने की स्थिति मे ही क्यो न हो, (वही, पृ० 42) और देखिए, श्रीराम —एल० सी० पी०—1903, खड VIII पृ० 104-5

74 सी० पी० ए०, क्रमश पृ० 527 और 696

75 उदाहरणार्थ, मराठा, 10 मई 1896 नेटिव ओपीनियन, 1 अप्रैल, केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903) इडियन पीपुल, 19 जनवरी 1905

76 आई० एन० सी० 1894 का प्रस्ताव I, हिदू; 11 जुलाई 1894, ट्रिब्यून, 18 जुलाई (आई० एस० बी० ओ० आई०, 26 अगस्त 1894), वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 32, मराठा, 16 दिस० 1894, ए० बी० पी०, 29 दिस० 1894, इदु प्रकाश, 24 दिस० 1894; बगबासी, 22 दिसबर, सजीवनी, 22 दिस०, दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 24 दिस० (आर० एन० पी० बग०, 29 दिस० 1894), मद्रास स्टैंडर्ड, 24 दिस० 1894 ट्रिब्यून, 26 दिसबर 1894 (आई० एस० बी० ओ० आई०, 13 जनवरी 1895), ज्ञान प्रकाश 27 दिस० 1894 बिहार

हेराल्ड, 29 दिस० 1894 इंडियन मिरर, 30 दिस० 1894 (वही, 20 जनवरी 1895); हिंदुस्तान, 4 जनवरी (आर० एन० पी० एन० 9 जनवरी 1895); रहबर, 8 जनवरी (वही, 16 जन० 1895), पैसा अखबार, 26 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 9 फरवरी 1895); पी० ए० चारलू, एल० सी० पी०, 1896 खंड XXXV, पृ० 83-4 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 91 पादटिप्पणी; एडवोकेट, 28 जनवरी (आई० एस० वी० ओ० आई०, 22 मार्च, 1896), समय, 31 जनवरी, बंगवासी, 1 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 8 फरवरी 1896), कर्नाटक प्रकाशिका, 3 फरवरी, केरल पत्रिका, 8 फरवरी, कासिम उल अखबार, 3 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी 1896) कुछ वर्षों के उपरांत आर० सी० दत्त ने पुष्टि की कि सीमा शुल्क के परिणामस्वरूप भारतीय वस्त्र उद्योग का मार्ग शताब्दी के अंतिम वर्षों मे अवरुद्ध हो गया था (ई एच II, पृ० 541) तथा देखिए, वही, पृ० IX और उसकी स्पीचेज II, पृ० 46, 80, 127 1904 मे गोखले ने भी इसी प्रकार का मत अभिव्यक्त किया था देखिए, स्पीचेज, पृ० 77 और देखिए, श्रीराम एल० सी० पी०, खंड XLII पृ० 104 05 और इंडियन पीपुल, 19 जनवरी 1905

77 वाचा रिप० आई० एन० सी०—1894 पृ० 32, ए० बी० पी०, 29 दिसंबर 1894, बंगवासी, 22 दिसंबर (आर० एन० पी० बंग०, 29 दिस० 1894), ज्ञान प्रकाश, 27 दिसंबर 1894, बिहार हेराल्ड, 29 दिसंबर 1894 (आई० एस० वी० ओ आई०, 20 जनवरी 1895)

78 हिंदू, 11 जुलाई 1894, ट्रिब्यून, 18 जुलाई (आई० एस० वी० ओ० आई, 26 अगस्त 1894), वाचा रिप० आई० एन० सी०—1894 पृ० 32, स्पीचेज, पृ०432 ए० एस० मुदालियर वही, पृ० 33, पैसा अखबार 26 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 9 फरवरी 1895), वी० एन० आप्टे, रिप० आई० एन० सी०—1895, पृ० 160, चारु मिहिर 3 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 15 फरवरी 1896) दत्त स्पीचेज II पृ० 46, 80 एस० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 694

79 मराठा, 26 जनवरी 1896, हिंदू, 27 जन० 1896 इंडियन स्पेक्टेटर, 26 जन० 1896, बंगाली, 1 फरवरी 1896 इंडियन नेशन, 27 जनवरी एडवोकेट, 28 जनवरी इंडियन मिरर, 30 जनवरी (आई० एस० वी० ओ० आई०, 22 मार्च 1896), बिहार हेराल्ड, 8 फरवरी (वही, 5 अप्रैल 1896) 1 फरवरी को समाप्त होने वाले सप्ताह के बंबई के प्राय सभी समाचारपत्र, आर० एन० पी० बंब, 1 फरवरी 1896, समय, 31 जनवरी सजीवनी, 1 फरवरी, (आर० एन० पी० बंग०, 8 फरवरी 1896), कर्नाटक प्रकाशिका, 3 फरवरी और केरल पत्रिका, 1 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी 1896), हिंदुस्तानी, 29 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 5 फरवरी, 1896), पूना सार्वजनिक सभा के अध्यक्ष का तार, पी० पी० (एच० आफ० सी०), सी 8078 आफ 1896 पृ० 171, बोरसाद, जिला केरा, बंबई में हुई जन-सभा द्वारा अभिव्यक्त विरोध, वही, पृ० 193 पी० ए० चारलू, एल० सी० पी०—1896 खंड XXXV पृ० 86 आई० एन० सी० —1902 का प्रस्ताव XVI गोखले, स्पीचेज, पृ० 10 77.

80 बंगाली, 8 फरवरी 1896, समय, 31 जनवरी सजीवनी, 1 फरवरी, दर्शक, 2 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 8 फरवरी 1896), आर्यजनप्रियान, 1 फर० (आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी 1896), बंबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन के प्रधान का तार पी० पी० (हाउस आफ कामंस) 1896 सी 8078 पृ० 163 बंबई की जनसभा में पारित प्रस्ताव, वही, पृ० 166

81. वाचा · रिप० आई० एन० सी०—1894 पृ०31, मराठा, 16 दिस० 1894 दैनिक औ समाचार

चन्द्रिका, 19 दिसबर (आर० एन० पी० बग०, 22 दिसबर 1894), सजीवनी, 22 दिसबर (वही, 29 दिसबर 1894 (आई० एस० वी० ओ० आई०, 13 जनवरी 1895), ज्ञान प्रकाश, 27 दिस० 1804, बिहार हेराल्ड, 29 दिस० 1894 इडियन मिरर, 30 दिस० 1894 (वही, 20 जनवरी 1895). इस तथ्य पर विशेष बल नही दिया गया जैसाकि वित्त सदस्य ने स्वय लैजिस्लेटिव कौसिल मे कहा 'हमने इससे मिलने वाले राजस्व के वर्तमान साधन के रूप मे इसका प्रस्ताव नही किया है' (एल० सी० पी० 1894, खड XXXIII पृ० 384) इसके अतिरिक्त भारतीय नेताओ को यह तथ्य स्वत माक्षी के रूप मे प्रतीत हुआ 1904 मे वित्त सदस्य की इस टिप्पणी कि, 'आयात शुल्क से केवल 20½ लाख रुपयो के राजस्व की ही प्राप्ति होती है' पर गोखले ने तिरस्कारयुक्त बडा उत्तर दिया यदि मेरे माननीय मित्र सचमुच यह विश्वास करते है कि सीमा शुल्क इसलिए लगाए गए हैं कि इनसे राजस्व की आय होती है, जिन्हे सरकार नही छोड सकती तो कदाचित भारत मे अथवा इग्लैड मे ऐसा सोचने वाले वे अकेले व्यक्ति होगे (स्पीचेज, पृ० 78) तथा श्रीराम, एल० सी० पी०—1903 खड XLII पृ० 104-05.

82 वाचा, रिप० आई० एन० सी० -1902 पृ० 142-3

83 1904 मे इस कल्पना को गोखले ने उस समय स्पष्ट अभिव्यक्ति दी जब उन्होने दृढतापूर्वक स्वीकार किया कि, 'अब इसमे कोई सदेह नही कि यह शुल्क वास्तव मे ही उपभोक्ताओ द्वारा, उपभोक्ताओ से अभिप्राय अधिकाश निर्धन समुदायो, द्वारा ही चुकाया जाता है.(स्पीचेज, पृ० 77) इससे पूर्व 1902 मे उस समय वे और भी अधिक सतर्क थे जब उन्होने कहा था कि भार का एक भाग अनत गरीबो के ऊपर ही पडता है (वही, पृ० 10).

84 हिंदू, 11 जुलाई 1894, ट्रिब्यून, 18 जुलाई (आई० एम० वी० ओ० आई०, 26 अगस्त 1894), वाचा रिप० आई० एन० सी० 1894 पृ० 32, इदु प्रकाश, 31 दिसबर 1894, ट्रिब्यून, 26 दिस० 1894 (आई० एस० वी० ओ० आई०, 13 जन० 1895), ज्ञान प्रकाश, 27 दिस० 1894, बिहार हेराल्ड, 29 दिस० 1894, इडियन मिरर, 30 दिस० 1894 (वही, 20 जन० 1895) वाचा, स्पीचेज, पृ० 430 और रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 157 8 दत्त; ई एच II, पृ० 540 गोखले स्पीचेज, पृ० 41 2.

85 आई०एन० सी० 1894 का प्रस्ताव I, ए० एम० मघोलकर रिप० आई एन० सी० 1894, पृ० 33, मराठा, 16 दिस० 1894, इडियन स्पेक्टेटर, 30 दिस० 1894, हितवादी, 28 दिस० 1894 (आर० एन० पी० बग०, 5 जनवरी 1895) केसर-ए-हिंद, 30 दिसबर 1894 (आर० एन० पी० बब 5 जनवरी 1895) ताज उल अखबार, 5 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 12 जनवरी 1895), पैसा अखबार, 26 जनवरी (वही, 9 फरवरी 1895)

86 एल० सी० पी०, 1894 खड XXXIII पृ० 402-03 420, 450

87 आई० एन० सी० 1895 का प्रस्ताव XXI' एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 259-61. वाचा रिप० आई० एन० सी०—1895 पृ० 157-8, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी०—1896 खड XXXV पृ० 80, 82.

88\. वाचा रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 158 एस० एन० बैनर्जी . सी० पी० ए०, पृ० 295, पी० ए० चारलू पूर्वोक्त स्थल, पृ० 80

89\. उदाहरणार्थ, दैनिक औ समाचार चन्द्रिका, 5 फरवरी 1896 के अक मे लिखा . हमारे कुछ समकालीन इतने आशावादी हैं कि वे यह विश्वास सहज मे ही कर लेते है कि यह विरोध •• भविष्य मे फल लाएगा—अपनी सरकार को होश मे लाएगा वस्तुत. यह सोचना एक गलती

है कि अपनी सरकार होश में नही. उदार अथवा अनुदार ब्रिटिश सरकार के पास इतनी अधिक अकल (होश) है कि वह उसे दूसरों को दे सकती है. वह जानबूझकर लकाशायर को प्रसन्न करने के लिए भारत के प्रति बड़ा भारी अन्याय कर रही है परतु प्रश्न यह है कि सरकार कर ही क्या सकती है ? उदार हो अथवा अनुदार, लकाशायर के मतो की उपेक्षा तो कोई भी दल नही कर सकता (आर एन० पी० बग०, 9 फरवरी 1896)

90. प्रस्ताव I, तथा वाचा : रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 31-3 पी० ए० चारलू एल० सी० पी० 1896, खड XXXV, पृ० 81, मालवीय स्पीचेज, पृ० 37-8 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 192, गोखले . स्पीचेज, पृ० 5, 41 एस० एन० बनर्जी—सी० पी० ए० पृ० 694, दत्त, ई एच II, पृ० IX, 531, 534, स्पीचेज II, पृ० 126 पीछे 65 और 68 सदर्भों मे उल्लिखित प्राय. सभी समाचारपत्र

91 पी० मेहता . स्पीचेज, पृ० 390 इसी प्रकार बगवासी ने अपने 9 फरवरी 1896 के अक मे लिखा भारतीयो को अब समझ आ गई है कि सरकार भारतीयो को उस उद्योग को जिसमे अगरेजो की रुचि है अथवा जिसमे उनके हितो के भारतीयो के हितो के साथ टकराव की सभावना है, के सफलतापूर्वक सचालन की अनुमति कभी नही देगी (आर० एन०पी० बग०, 15 फरवरी 1896)

92 सी० पी० ए० मे, पृ० 527

93 आर० एन० पी० एम०, 15 जनवरी 1895 इसी प्रकार 30 दिसबर 1894 के अक मे 'अरुणोदय' ने यह विश्वास प्रकट किया कि कपास आयात शुल्क के अधिनियम को पारित करके सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह भारतीय मिलो का विकास और उनकी समृद्धि नही चाहती (आर० एन० पी० बब, 5 जनवरी 1895), वस्तुत नेटिव प्रेस के बबई सवाददाता ने लिखा इस सप्ताह के अन्य अनेक भारतीय समाचारपत्रो ने कपास शुल्क बिल के पास होने पर अपनी अस्वीकृति सरकार की भारत मे औद्योगिक प्रवृत्ति के हितो के प्रति उदासीनता स जन्मी अपने दिल की भड़ास और निराशा को प्रकट करने वाली भाषा प्रकट म की है (वही)

94 उदाहरणार्थ 2 फरवरी 1896 के अक मे दर्शक ने सरकार को चेतावनी दी इस पथभ्रष्ट नीति के निरतर अनुसरण से भारतीय जनता का ब्रिटिश शासन के न्याय और सच्चाई पर से विश्वास उठने लगा है इससे पूर्व 1894 मे रासबिहारी घोष शासको को सचेत कर चुके थे कि चुगी कर के द्वारा छल-कपट करने से इग्लैंड की न्यायपूर्ण व्यवहार के लिए प्रसिद्धि, जो किसी भी मूल्य पर रक्षणीय और स्पर्धा योग्य है, दाव पर है इग्लैंड ने इतने दीर्घकाल मे आज तक तीरो-तलवार से भी अधिक सशक्त जो प्रभाव अपनी प्रजा पर डाला है, जिसके कारण प्रजा इस विशाल साम्राज्य की वफादार है, उस प्रभाव के विनष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है (स्पीचेज, पृ० 152-3) केवल भारतीयो ने खतरे की चेतावनी नही दी थी, जनरल जी० चिसनी ने भी बराबर जोर देकर 1894 मे भविष्यवाणी की थी कि यदि समुचित पग उठाने मे देर की गई तो भारत सरकार की सद्भावनाओ और चरित्र को ऐसी क्षति पहुचेगी जिसके परिणाम भयकर हो सकते हैं और होगे (पूर्वोद्धृत, पृ० 347) तथा देखिए, पृ० 290 इसी प्रकार 1894 मे कपास के आयात पर शुल्क की छूट का विरोध करने वाले इडियन कौंसिल के छ सदस्यो मे से एक सर ए० ऐरबुथनार ने अपने असहमति भाषण मे चेतावनी दी 'ब्रिटिश राज्य के नाम से जाने जाने वाले जटिल यत्र के लिए यह निश्चित है कि भारत के हितो मे और ग्रेट ब्रिटेन के हितों में आवश्यक दृढ़ बंधन हो. ऐसा कोई पग नही उठाना चाहिए जिससे महिमामयी महारानी की भारतीय प्रजा में असतोष उत्पन्न होता हो अथवा जिससे ब्रिटिश शासन पर उनके विश्वास को

धक्का लगता हो ऐसा कोई भी पग राज्य के हित का विरोधी ही माना जाएगा (वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 427)

95 मूल पाठ मे उद्धृत लेखको के अतिरिक्त देखिए, 'स्वदेशमित्र, 21 दिसबर 1894 कर्णाटक प्रकाशिका, 14 जनवरी 1895 (आर० एन० पी० एम०, 15 जनवरी 1895) सजीवनी, 22 दिस० (आर० एन० पी० बग०, 29 दिस० 1894), बगाली, 22 दिस० 1894, आर० एन० पी० एन०, 23 जनवरी 1895, ताज उल अखबार, 5 जनवरी (आर० एन० पी०, 12 जनवरी 1895), इडियन स्पेक्टेटर, 26 जून 1896, समय, 31 जनवरी, दर्शक, 2 फरवरी, सजीवनी, 1 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 8 फरवरी 1896), बबई के लगभग सभी समाचारपत्र विशेषत नेटिव ओपीनियन, 26 जनवरी, इदु प्रकाश, 27 जनवरी और गुजराती, 26 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 1 फरवरी 1896), स्वदेशमित्र, 11 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 29 फरवरी 1896), बगाली 8 फरवरी 1896, वाचा, स्पीचेज, पृ० 431, दत्त, स्पीचेज II पृ० 127, बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिशएन का स्मरणपत्र, पी० पी० (हाउस आफ कामस) 1896 सी 8078 पृ० 163 तथा वही, पृ० 193

96 आर० एन० पी० बब, 1 फरवरी 1896 दो सप्ताह बाद 11 फरवरी 1896 के अक मे केसरी ने फिर लिखा गत सोमवार से पहले अनुचित कपास शुल्क स्वीकृत करके भारत सरकार ने सारे ससार के सामने य[illegible] कर दिया है कि वे इस देश के लोगो के हितो के लिए भारत पर शासन नही करते प्रत्युत इस शासन का उद्देश्य थोडे से अगरेज व्यापारियो के हितो की ही रक्षा करना है

97 एल० सी० पी०--1896 खड XXXV पृ० 85

98 मालवीय, स्पीचेज, पृ० 34 5 तथा केसरी, 11 फरवरी (आर० एन० पी० बब, 15 फरवरी 1896), दैनिक औ समाचार चन्द्रिका (आर० एन० पी० बग०, 8 फरवरी 1896), दत्त : ई एच II पृ० 542-3

99 मालवीय स्पीचेज, पृ० 37-8

100 वही पृ० 26 और वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1894, पृ० 33 दैनिक औ समाचार चन्द्रिका ने 5 फरवरी 1896 के अक मे घोषणा की कि ब्रिटिश मत्रिमडल लकाशायर का दास है और यहा की सरकार ब्रिटिश मत्रिमडल की दास है (आर० एन० पी० बग०, 8 फरवरी 1996) अरुणोदय ने पहले ही 30 दिसबर 1894 के अक मे घोषणा की थी · मानचेस्टर के उत्पादक ही हमारे असली शासक हैं और भारत राज्य सचिव का वचन ही असल मे हमारे लिए कानून है (आर० एन० पी० बब 5 जनवरी 1895) इस परवर्ती दृष्टिकोण को 'भारत जीवन' ने 10 फरवरी के अक मे (आर० एन० पी० एन, 12 फरवरी 1896), अखबार-ए-आम ने 14 फरवरी के अंक मे (आर० एन० पी० पी० 22 फरवरी 1896), और स्वदेशमित्र ने 11 फरवरी के अक मे (आर० एन० पी० एम, 29 फरवरी 1896) मे प्रतिध्वनित किया.

101. वाचा, रिप० आई० एन० सी०—1894 पृ० 33 इदु प्रकाश, 31 दिसबर 1894. और सुबोध पत्रिका 30 दिसबर 1894 (आर० एन० पी० बब, 5 जनवरी 1895)

102 आर० एन० पी० बग०, 15 फरवरी 1896

103 दत्त इडियन पालिटिक्स, पृ० 53 इसी प्रकार 3 फरवरी 1896 के अक मे कर्णाटक पत्रिका ने यह राय प्रकट की आवश्यकता यह है कि भारत मे भारतीयो की ही सरकार हो. लोगो को और अधिक विस्तृत कौंसिल को पाने की चेष्टा करनी चाहिए और साथ ही देखना चाहिए कि

देश की जनता की भावना के सच्चे प्रतिनिधि ही उसके सदस्य हो. (आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी 1896)

104. गोखले, स्पीचेज, पृ० 41 इसी प्रकार 1901 मे आर० सी० दत्त ने टीका की यह तो किसी भी जाति की सहज प्रवृत्ति मे नही है कि वह दूसरी जाति के हितो के लिए अपनी जाति के हितो की उपेक्षा करे (स्पीचेज II, पृ० 113)

105. इस दिशा मे राष्ट्रीय प्रयास की जाच कुछ वर्षों के बाद लावट फ्रेजर ने की और उसने इस सबध मे जो शब्द कहे, उनमे लोकमान्य की टिप्पणिया ही प्रतिध्वनित होती है 'यह एक ऐसा विषय है, जिसपर मुझे विश्वास है कि इस समय सारा भारत सगठित है सभी समुदाय, हिंदू, मुसलमान, वफादार, अराजकतावादी, काग्रेस, मुस्लिम लीग, चुप्पी साधे कर्मचारियो का बहुत बडा वर्ग और अधिकाश गैरसरकारी यूरोपीय सबके सब यही चाहते है कि भारतीय कर पद्धति का निपटारा भारत के हित मे ही होना चाहिए इस समय उनके विचार मे इग्लैंड के हितो को ही प्राथमिकता दी जा रही है (पूर्वोद्धृत, पृ० 339-40)

106 1896 के बहिष्कार आदोलन के विस्तृत विवरण के लिए देखिए, पीछे अध्याय 3

107. तिलक महोदय ने यह स्पष्ट देखा था देखिए, मराठा, 9 फरवरी 1896 इसमें लकाशायर के वस्त्रो के बहिष्कार के सबध मे लिखा गया है : ब्रिटेन के न्यायपरायण लोग भी परगना अब हमारी सहायता नही कर सकती मुट्ठी भर अल्पसख्यकों की सद्भावना मे हम सहायता की आशा नही कर सकते भारत के लिए एक ही उपाय बचा है, उसे अपनी सहायता आप ही करनी चाहिए

108 भारत सरकार का सप्रेषण, सख्या 27 (वित्त, दिनाक 26 जनवरी 1899, कर्जन स्पीचेज I, पृ० 62, 64, 65, और वेस्टलैंड, एल० सी० पी० 1899, खड XXXVIII पृ० 125, 129

109. कर्जन स्पीचेज I, पृ० 62 उसने आगे कहा 'हम अपनी ही ओर से अपनी स्वय की सावधानिक सामर्थ्य का अपनी स्वय की पहल का इस्तेमाल कर रहे है यह बात अलग है कि हमने भारत सचिव की सहमति और स्वीकृति प्राप्त कर ली है हमारा उद्देश्य भारत को बाहरी प्रतियोगिता से मुक्त करना है' उनके वित्त सदस्य जेम्स वेस्टलैंड ने और अधिक बल देकर कहा यदि हमारा विधान विशुद्ध रूप मे भारतीय हितो पर आधृत है और केवल इस देश की ही चर्चा करता है और बहुसख्यक देशातर वासियो की आजीविका के साधनो की रक्षा मे सहायता करता है तो मेरा विचार है कि मैं इस तथ्य को इस बिल के अतिरिक्त समर्थक कारण के रूप मे कौंसिल के सामने रख सकता हू (एल० सी० पी०—1899 खड XXXVIII पृ० 173-4)

110 कर्जन स्पीचेज I, पृ० 61-2

111 एम० जी० रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन-इडियन शुगर इडस्ट्री' शीर्षक से एम० जी० रानाडे ने तीन लेख टाइम्स आफ इडिया मई जून 1899 के लिए लिखे थे, इनकी भूमिका बी० जी० काले द्वारा लिखी गई थी (बबई, तिथि रहित)

112. पी० ए० चार्लू एल० सी० पी०—1899 खड XXXVIII पृ० 134, 175-9. और दत्त द्वारा 'माचेस्टर गार्जियन' तथा 'टाइम्स' को भेजे गए और 'इडिया' (31 मार्च 1899) मे पुन मुद्रित पत्र

113 ए० बी० पी, 8, 22, 24 मार्च 1899, बगाली, 18 मार्च 1899, हिंदू, 18, 21 मार्च 1899, मराठा, 26 मार्च 1899, इडियन स्पेक्टेटर, 26 मार्च 1899; एडवोकेट 14 मार्च, मद्रास स्टैंडर्ड, 17 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई०, 26 मार्च 1899), इडियन मिरर, 23 मार्च (वही,

2 अप्रैल 1899), सत्य विजय, 23 मार्च, कैसर-ए-हिंद, 19 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 25 मार्च 1899), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 22 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 25 मार्च 1899) समय, 24 मार्च, हितवादी, 24 मार्च, बंगवासी, 25 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1899); 'उड़िया और नवसंवाद, 29 मार्च, संवादरदुका, 10 मार्च, उत्कलदीपिका (तिथि रहित) (वही 17 जून 1899), सिविल एंड मिलिट्री न्यूज, 15 मार्च अखबार ए आम, 14 मार्च (आर० एन० पी० पी०, 18 मार्च 1899) तथा जी० आर० एम० चिंतनवीस, एल० सी० पी०—1899 खंड XXXVIII पृ० 174-5

114 22 अगस्त 1898 को ही उसने यह माग की और तीन महीने बाद 18 नवबर को उसने सरकार से तत्काल अनुग्रह पोषित चीनी पर सम करने वाले शुल्क लगाने को कहा कुछ दिन पूर्व 14 नवबर 1898 को यहीं स्थिति पर आने के लिए उसने लोगो को एकजुट होकर विदेशी चीनी की खपत बद कर देन का परामर्श दिया और सलाह दी कि यदि लोगो में यह प्रचारित किया जा सके कि विदेशी चीनी में गंदी घृणोत्पादक वस्तुओं का प्रयोग होता है तो लोगो को अपने पक्ष मे लाया जा सकता है 'हिंदुस्तान' ने भी 20 नवबर के अंक मे इस प्रकार का समर्थन दिया (आर० एन० पी० ए०, 22 नवबर 1898) और 'भारत जीवन' 28 नवबर वही, 6 दिसबर 1898)

115 पी० सी० राय दि इंडियन शुगर ड्यूटी (1 मई 1899 कलकत्ता), इस विषय मे लिखने वाले और पत्र थे प्रतिवासी, 17 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 22 अप्रैल 1899), गुजराती, 19, 26 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 25 मार्च, 1 अप्रैल 1899), हितेच्छु, 23 मार्च (वही 25 मार्च 1899) इसके पश्चात शीघ्र ही इस छोटे से वर्ग में अनेक समाचारपत्र सम्मिलित हो गए आगे देखिए

116 पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 573 महता महोदय की अनिश्चित स्थिति के कारण एक ओर तो लार्ड कर्जन को वाद विवाद म हस्तक्षेप करते हुए यह कहना पडा कि 'यद्यपि माननीय श्री मेहता ने विषय से सबधित पक्ष की विस्तृत आलोचना की है परन्तु मेरा विश्वास है कि उन्होंने इस बिल को अस्वीकार नहीं किया। वे प्रस्तुत साधन के सामान्य सिद्धात को स्वीकृति देने को प्रस्तुत हैं, ऐसी मेरी निश्चित धारणा है, (स्पीचेज, I पृ० 61) और दूसरी ओर डी० ई० वाचा ने 1906 मे उनकी प्रशसा करते हुए लिखा समादरणीय पी० एम० मेहता पर्याप्त दूरदर्शी होने के कारण महान और सफल विचारक है उन्होने शुल्क लगाने के पक्ष मे प्रस्तुत तर्क के विरुद्ध बड़ी ही समर्थ और तेज आवाज उठाई है (स्पीचेज, प० 173)

117. राय, इंडियन शुगर ड्यूटीज, पृ० 5-7, 12, 17-20, गुजराती, 26 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 1 अप्रैल 1899) राय महोदय के अनुसार ऐसा एक अन्य पक्ष था, बगाल की चीनी के इंग्लैंड, अमरीका और यूरोप के निर्यात मे कमी पी० मेहता ने भी इसी प्रकार के तथ्य को वाणी दी यह सत्य है कि देश मे कतिपय चीनी मिलो मे काम ठप्प हो गया है परतु जो तथ्य हमारे सामने रखे गए है, उससे मुझे यह पूरा विश्वास नही होता कि इसका एकमात्र अथवा प्रमुख कारण आवश्यक रूप से अनुग्रह पोषित चीनी का आयात ही है (स्पीचेज, पृ० 573)

118. 17 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 22 अप्रैल 1899)

119. रानाडे : प्ली फार प्रोटेक्सन, पृ० 5, 7-9, 13, भारत जीवन, 27 मार्च, (आर० एन० पी० एन०, 27 मार्च 1899); अखबार ए आम, 14 मार्च (आर० एन० पी० पी०, 18 मार्च 1899), पी० ए० चारलू : एल० सी० पी०, खंड XXXVIII पृ० 176; जी० आर० एम० चितनवीस :

वही, पृ० 175

120 रानाडे · प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 10 12, 13

121 दत्त, इंडिया 11 मार्च 1899, ए० बी० पी०, 22 मार्च 1899, हिंदू, 18 मार्च 1899, दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 22 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 25 मार्च 1899), हितवादी, 24 मार्च (वही 1 अप्रैल 1899); भारत जीवन, 27 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 28 मार्च 1899); हिंदुस्तान, 14 अप्रैल (वही 19 अप्रैल 1899)

122 रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 6

123. राय, इंडियन शुगर ड्यूटीज, पृ० 6, 7, गुजरात, 19, 26 मार्च (आर० एन० पी० बब, 25 मार्च, 1 अप्रैल 1899), प्रतिवासी 17 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 22 अप्रैल 1899).

124. रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 3, ए० बी० पी०, 18 नवबर 1898, 22 मार्च 1899, पी० ए० चारलू एल० सी० पी०-1899, खड XXXVIII पृ० 176, समय, 24 मार्च (आर० एन० पी० बग० 1 अप्रैल 1899)

125 पी० ए० चारलू एल० सी० पी० 1899, खड XXXVIII पृ० 127 तथा दत्त, इंडिया 31 मार्च 1899; हिंदू 21 मार्च 1899, हिंदुस्तान, 14 अप्रैल (आर० एन० पी० एन० 19 अप्रैल 1899), भारत जीवन, 1 मई (वही, 3 मई 1899)

126 राय इंडियन शुगर ड्यूटीज, पृ० 2-4, 6-7, 24 तथा गुजराती 19 मार्च (आर० एन० पी० बब, 25 मार्च 1899), 14 मई (वही, 20 मई 1899)

127 राय, इंडियन शुगर ड्यूटीज, पृ० 12

128 वही, पृ० 22-3

129 1899 की पी० पी० (हाउस आफ कामस) खड-66, सी-9287 ब्ल्यू बुक ने इस तथ्य का उद्घाटन किया कि भारत सरकार ने अपने सप्रेषण मे दृढतापूर्वक स्वीकार किया कि आयातित चीनी ने सापत्तिक दृष्टि से भारत के गन्ना उत्पादक को प्रभावित नही किया अत सरकार ने चीनी पर मम करने वाले शुल्क को लगाने से इनकार कर दिया इसपर राज्य सचिव ने दो बार, एक बार अपने 25 अगस्त 1898 के संप्रषण मे और दूसरी बार 26 जनवरी 1899 के सप्रेषण मे मारिशम के किसानो से प्राप्त आवेदनपत्र भेज जिनम अनुग्रह पोषित चीनी के विरुद्ध भारत मे सरक्षक साधन बरतने की माग की गई थी साथ ही सचिव ने भारत सरकार पर उडे शिष्ट ढग से दबाव डाला कि वह इस माग को स्वीकार कर ले

130 ए० बी० पी०, 24 मार्च 1899 यह बहुत लोगों का दृष्टिकोण प्रतीत होता है यह दूसरी बात है कि नेटिव प्रस के बहुत मारे सवाददाताओ ने दुर्भाग्यवश इंडियन प्रेस के साप्ताहिक सार-सक्षेपो म इस दृष्टिकोण के उल्लेख को आवश्यक नहीं समझा उनका मतव्य कदाचित यह था कि सरकार की कार्यवाही के समर्थन म ही उपर्युक्त दृष्टिकोण समाविष्ट है सरकारी कार्यवाही के अन्यथा विरोधी 'गुजराती' ने अपने 14 मई 1899 के अक मे भारतीय प्रेस मे सरकारी इरादो का जिस विश्वास के साथ वर्णन किया था, उसका पूरा ही उल्लेख किया (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899) वाचा ने भी 1906 मे इस धारणा पर अपने विचार प्रकट किए (स्पीचेज, पृ० 173)

131 वाचा स्पीचेज, पृ० 173 'समय' के 24 मार्च (आर० एन० पी० बग०, अप्रैल 1899) के निम्नलिखित अवतरण मे यह भावना चित्रित है लार्ड कर्जन ने इस बिल को पास करने के रूप में भारतीय जनता के प्रति जो उच्चाशयता और सहानुभूति तथा इससे भी बढ़कर कर्तव्य परायणता

का परिचय दिया है, उससे प्रत्येक भारतीय घर में उनके प्रति आदर की भावना दृढ़ होगी, और देखिए, भारत जीवन, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० एन० 4 अप्रैल 1899).

132. गुजराती ने अपने 14 मई 1899 के अंक मे लिखा कि भारत सरकार और भारत सचिव के बीच हुए सारे पत्र व्यवहार से स्पष्ट होता है कि कुशल चैंबरलेन (उपनिवेश राज्य सचिव) ने अपने नकली शस्त्रों से विजय प्राप्त की है और उसने सचमुच ही सारी भारतीय जनता के छोटे से बड़े तक सभी व्यक्तियों को मूर्ख बनाया है (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899)

133 ए० बी० पी०, 1 जून 1899 हिंदू, 12 मई 1899 (हालांकि यह द्विविधाग्रस्त था), ट्रिब्यून, 30 मई, इंडियन मिरर, 12 मई, मद्रास स्टैंडर्ड, 11 मई (आई० एस० वी० ओ० आई०, 21 मई 1899), सजीवनी, 11 मई (आर० एन० पी० बग०, 20 मई 1899), सत्य विजय, 17 मई, केसरी 16 मई हितेच्छु 18 मई (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899)

134 रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 2

135 एल० सी० पी०, 1901 खड XL पृ० 281 तथा दत्त ई एच II, पृ० 523

136 ए० बी० पी०, 20 मई 1899, इंडियन मिरर, 12 मई, मद्रास स्टैंडर्ड, 11 मई (आई० एस० वी० ओ० आई०, 21 मई 1899)

137 ए० बी० पी०, 20 मई और 1 जून 1899, हिंदू, 21 मई 1899, मद्रास स्टैंडर्ड, 11 मई (आई० एस० वी० ओ० आई० 21 मई 1899), एडवोकेट, 19 मई (वही, 28 मई 1899)

138 रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 6

139 ए० बी० पी०, 20 मई 1899

140 रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 6

141 ए० बी० पी०, 20 मई 1899, सजीवनी, 11 मई (आर० एन० पी० बग० 20 मई 1899)

142 रानाडे प्ली फार प्रोटेक्शन, पृ० 6

143 वही, पृ० 17-21

144 देखिए आगे अध्याय 11

145 ज० एफ० फिनले एल० सी० पी०-1902, खड XLI पृ० 216 कर्जन स्पीचेज III, पृ०20, दत्त ई एच II, पृ० 523

146 लोवाट फ्रेजर पूर्वोद्धृत, पृ० 342, परिमल राय पूर्वोद्धृत, पृ० 84

147 कर्जन स्पीचेज III, पृ० 5 तथा देखिए इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1906) खड III, पृ० 288-90

148 पी० ए० चारलू एल० सी० पी०-1899 खड XXXVIII पृ० 134

149 वही, पृ० 178-9, मराठा, 26 मार्च, 2 अप्रैल 1899, हिंदू 16, 21 मार्च, 12 मई 1899, बगाली, 18 मार्च 1899, इंडियन मिरर, 23 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई०, 2 अप्रैल 1899), सत्य विजय, 17 मई (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899), बगवासी, 25 मार्च, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 1, 8 अप्रैल 1899), उड़िया और नवसवाद 29 मार्च (वही, 17 जून 1899); 21 अप्रैल 1902 के न्यू इंडिया मे विपिनचंद्र पाल ने स्पष्टता से स्वीकार किया कि उन्होंने 1899 मे यह जानते हुए कि यह चीनी आयात शुल्क भारतीयों के हितों मे न होकर ब्रिटिश पूंजीपतियों और मारिशस के हितों के लिए ही सुरक्षापरक है, उसका समर्थन इसलिए किया था कि इसे मैंने एक नए सिद्धांत के रूप मे देखा था, यह सड़े-गले स्वतंत्र व्यापार के सिद्धांत से स्वस्थ निवर्तन था भारत सरकार के मन मे भी इसे लागू करते समय यही भावना

काम कर रही थी. जेम्स वेस्टलैंड ने घोषित किया था · 'मैं अपनी राज करनीति में एक सर्वथा नए अध्याय का उद्घाटन करने जा रहा हूं' (एल० सी० पी०-1899 खंड XXXVIII पृ० 124) इस बिल का समर्थन करते हुए लार्ड कर्जन औद्योगिक रूप से पिछड़े देश की औद्योगिक आवश्यकताओं के सदर्भ में सरक्षक सिद्धात का शानदार ढग से बचाव करते हुए प्रतीत होते हैं (स्पीचेज I, पृ० 63-4)

150 रानाडे की प्ली फार प्रोटेक्शन मे वी० जी० काले की भूमिका पृ० IV और V.

151 जे० एफ० फिनले एल० सी० पी० 1902 खड XLI पृ० 215-7 कर्जन, स्पीचेज III, पृ० 1-2

152. कर्जन : स्पीचेज III, पृ० 6

153 ए० बी० पी०, 25, 26 अप्रैल 1902, न्यू इंडिया, 21 अप्रैल, 12 जून 1902, मराठा, 15 जून 1902 कैसर ए हिंद, 1 जून, केसरी, 3 जून, इंदु प्रकाश, 2 जून (आर० एन० पी० बब 7 जून 1902), वायस आफ इंडिया, 21 जून 1902, प्रतिवासी, 26 मई (आर० एन० पी० बग०, 31 मई 1902), हितवादी, 30 मई (वही, 7 जून 1902) सजीवनी, 12 जून, इडियन मिरर, 8 जून (वही, 21 जून 1902), पावर ऐंड गार्जियन, 1 जून (वी० ओ० आई०, 28 जून 1902)

154. न्यू इडिया, 12 जून 1902, कैसर ए हिंद (आर० एन० पी० बब, 14 जून 1902), प्रतिवासी, 26 मई (आर एन० पी० बग०, 31 मई 1902), हितवादी, 30 मई (वही, 7 जून 1902)

155 14 जून (आर० एन० पी० बग०, 21 जून 1902) ट्रिब्यून ने भी 27 मई 1902 के अंक मे बिल का विरोध करने से इनकार कर दिया (वी० ओ० आई०, 28 जून 1902)

156. मराठा, 25 मई, 8 जून 1902, ए० बी० पी० 21 अप्रैल 1902, केसरी, 3 जून, इदु प्रकाश, 2 जून (आर० एन० पी० बब, 7 जून 1902), साथ ही केसरी ने अपने पाठकों को चेतावनी दी कि 'माचेस्टर के लिए भारतीय चीनी उद्योग को पगु बनाने वाली सरकार से भारतीय उद्योगों के प्रोत्साहन की आशा करना समुद्र के खारे पानी से चीनी निकालने की चेष्टा करना है'

157 न्यू इडिया 21 अप्रैल 1902 सजीवनी, 12 जून (आर० एन० पी० बग०, 21 जून 1902)

158 स्ट्रैची इडिया (1903) पृ० 182

159 बगाली, 4 फरवरी 1888, इंडियन मिरर, 3 फरवरी, गुजरात मित्र, 5 फरवरी इंदु प्रकाश, 5 फरवरी (वी० ओ० आई०, मार्च 1888), बाम्बे समाचार, 11 फरवरी, गुजरात गजट 9 फरवरी, रास्त गुफ्तार, 5 फरवरी तथा *अन्य अनेक* समाचारपत्र (आर० एन० पी० बब, 11 फरवरी 1888), समय, 3 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 11 फरवरी 1888), हिंदुस्तान, 12 फरवरी, वृत्तधारा, 9 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 14 फरवरी 1888), पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र, दिनाक 6 मार्च 1894, जे० पी० एस० एस०, खड XVI स० 4 (अप्रैल 1894) पृ० 137, इडियन एसोसिएशन का स्मरणपत्र, दिनाक 8 मार्च 1894, रिपोर्ट आफ दि इडियन एसोसिएशन फार 1892-3 टू 1895-6, पृ० 43, सुप्रीम लैजिस्लेटिव कौंसिल को बबई प्रेसीडेंसी का विरोध पी० पी० (हाउस आफ कामस) 1895 परचा 202, इदु प्रकाश, 12 मार्च 1894, इंडियन स्पेक्टेटर, 11 मार्च 1894, कैसर ए हिंद, 4 मार्च, ज्ञान प्रकाश, 5 मार्च, सुधारक, 5 मार्च, गुजराती, 4 मार्च (आर० एन० पी० बब, 10 मार्च, 1894), आजाद, 9 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 14 मार्च 1894), कर्णाटक प्रकाशिका, 12 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 15 मार्च 1894); स्वदेशमित्रन, 16 मार्च, मनोरमा, 19 मार्च, केरल पत्रिका, 17 मार्च, खामिम उल अखबार, 15 मार्च (वही, 31 मार्च 1894); जी० आर० एम० चितनवीस · एल०

सी० पी० 1894, खंड XXXIII पृ० 155 ए० बी० पी०, 22 दिस० 1894.

160. पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र, दिनांक 6 मार्च 1894—पूर्वोक्त स्थल, पृ० 138, जे० यू० याज्ञिक का सातवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण; जे० पी० एस० एस०, खंड XVII सं० 3 (जनवरी 1895); इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, 8 मार्च 1894, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 43; सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल को बंबई प्रेसीडेंसी का विरोध, पूर्वोक्त स्थल, मराठा, 4 मार्च 1894; बंगाली, 10 मार्च 1894, एडवोकेट, 9 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई०, 15 अप्रैल 1894), इंदु प्रकाश, 12 मार्च 1894 केसर ए हिंद, 4 मार्च, ज्ञान प्रकाश, 5 मार्च, सुधारक, 5 मार्च (गुजराती, 4 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 10 मार्च 1894); जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1894, खंड XXXIII पृ० 155 यह भी दिलचस्प बात है कि मराठा ने 28 अगस्त 1881 के अंक में भारतीय उद्योगों के हित में मशीनों पर आयात शुल्क [illegible]

161. पी० पी० (हाउस आफ कामंस), 1894 खंड 50 परचा 347 1884 खंड 62 परचा 112, 1887. [illegible] पृ० 404

162. बांबे समाचार, 31 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 1 अप्रैल 1882), इंदु प्रकाश, 10 दिस०, बांबे समाचार 14 दिस० (वही, 15 दिस० 1883), लोकमित्र, 16 दिस०, बांबे क्रानिकल, 16 दिस०, गुजराती, 16 दिस० (वही, 22 दिसंबर 1883), ज्ञान प्रकाश, 21 फरवरी, (वही, 23 फरवरी 1884) मराठा, 13 जनवरी 1884, हिंदुस्तान 8, 9 जून (आर० एन० पी० पी०, 12 जून 1884), तथा पाद० 164 संदर्भ में उद्धृत समाचारपत्र और संगठन

163. प्रस्ताव VIII प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए डी० ई० वाचा ने इन करों को 'अशिष्ट और मध्ययुगीन चिंतन के अवशेष' के रूप में निरूपित किया (रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 56). इससे पूर्व मराठा ने 3 जून 1888 के अंक में भारतीय वस्तुओं के प्रमाणीकरण की अशिष्ट पद्धति की तीव्र भर्त्सना की। 'इंडियन स्पेक्टेटर' ने भी 3 जून 1888 के अंक में इन शुल्कों को 'बर्बर राजकर' तथा 'राजकरीय जुल्म' बताया

164. बांबे समाचार, 31 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 1 अप्रैल 1882), रास्त गुफ्तार, 2 अप्रैल, हितेच्छु, 6 अप्रैल गुजराती, 2 अप्रैल (वही, 8 अप्रैल 1882); ज्ञान प्रकाश, 24 अप्रैल (वही, 29 अप्रैल 1882), ए० बी० पी०, 22 फरवरी 1883, सजीवनी, 29 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 5 अप्रैल 1884), सार सुधानिधि, 5 मई (वही, 10 मई 1884), समय, 12 मई (वही, 17 मई 1884), साधारणी, 15 जून (वही, 21 जून 1884); मराठा, 13 जनवरी 1884, 3 जून 1888, जे० यू० याज्ञिक, रिप० आई० एन० सी०, 1885, पृ० 66; वी० ओ० आई०, जुलाई 1888, इंदु प्रकाश, 4 जून 1888; बंगाली, 9 जून 1888, हिंदू, 11 जून 1888; इंडियन स्पेक्टेटर, 3 जून, सुबोध पत्रिका, 3 जून, नेटिव ओपीनियन, 3 जून, इंडियन नेशन, 4 जून, ट्रिब्यून, 6 जून, बिहार हेराल्ड, 9 जून, मदुरा मेल, 16 जून (वी० ओ० आई०, जुलाई 1888); नसीमे आगरा, 30 मई, भारतवर्ष, 1 जून (आर० एन० पी० एन०, 5 जून 1889), सुबोध सिंधु, 5 जून (वही, 12 जून 1889); रणछोड़ लाल छोटेलाल, रिप० आई० एन० सी०, 1889, पृ० 56 तथा देखिए वी० ओ० आई० जून 1889.

165. आर० एन० पी० बंब, 23 फरवरी 1884.

166. ए० बी० पी०, 22 फरवरी 1883, वी० ओ० आई०, जुलाई 1888, इंदु प्रकाश, 4 जून 1888; बंगाली, 9 जून 1888; मराठा, 3 जून 1888; इंडियन स्पेक्टेटर, 3 जून, सुबोध पत्रिका, 3 जून,

नेटिव ओपीनियन, 3 जून, इंडियन नेशन, 4 जून, ट्रिब्यून, 6 जून, मदुरा मेल, 11 जून (वी० ओ० आई०, जुलाई 1888), गुजरात दर्पण, 21 अप्रैल, बिहार हेराल्ड, 27 अप्रैल, गुजराती, 28 अप्रैल, इंदु प्रकाश, 29 अप्रैल, ट्रिब्यून, 15 मई (वी० ओ० आई०, जून 1889).

167 मराठा, 23 जनवरी 1884; वाचा : रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 56.

168 मराठा, 13 जनवरी 1884, रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 56. आई० एन० सी० 1889 का प्रस्ताव VIII.

अध्याय 7

मुद्रा और विनिमय

भारत में लोकमत निर्णायक उपायों को अपनाने के लिए सर्वथा परिपक्व है और चादी के सिक्कों की ढलाई पर रोक को सामान्यतया स्वीकृति ही मिलेगी।

—भारत सरकार का 1892 में सप्रेषण

इंग्लैंड के निर्धनो की बचनों को इस प्रकार प्रभावित करने वाले किसी सुझाव पर एक क्षण के लिए भी विचार नही किया जाएगा। यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि यदि ऐसी योजना यूरोप के इटली जैसे निर्धन देश में लागू की जाती तो वहां प्रायद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक जनता में विद्रोह भड़क उठता।

—आर. सी. दत्त.

समीक्षाधीन अवधि मे भारत सरकार की अर्थनीति से संबंधित एक अत्यंत महत्वपूर्ण मत-भेद वाला विषय था 'मुद्रा परिवर्तन'। 1893 में चादी के सिक्कों की टकसाल बंद होने तथा सिक्कों की खुली ढलाई करने पर यह विषय अस्तित्व मे आया था। आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास मे निर्दयतापूर्वक अनावश्यक रूप मे मुद्रा और विनिमय को परस्पर संबद्ध कर दिया गया। वस्तुत: मुद्रा सबधी परिवर्तन रुपये के मुद्रापरक कार्य संपन्न करने में किसी प्रकार की असफलता अपर्याप्तता अथवा व्यर्थता से प्रभावित नही था, प्रत्युत इसका कारण पौड-स्टर्लिंग के संदर्भ मे उसके विनिमय मूल्य मे आया हुआ ह्रास था। भारत सरकार ने केवल इसी एक रोग का उपचार करने की चेष्टा की, उसने देश की आंतरिक अर्थव्यवस्था पर मुद्रा परिवर्तनो के संभावित प्रभावों की पूर्ण रूप से उपेक्षा ही कर दी।

मुद्रा अपने आप मे सचमुच एक व्यापक विषय है, इतना अधिक व्यापक कि उसका समग्र विवेचन संभव ही नही। विनिमय भी एक विषम विषय है। सौभाग्य से हमारा संबंध यहा इन दोनों विषयों की समग्रता से नही है। हमारा संबंध तो देश के विदेश व्यापार, उद्योग, वित्त और समाज कल्याण पर भारतीय मुद्रा और विनिमय के परिवर्तन से उत्पन्न प्रभाव से है। यह प्रभाव ही भारत सरकार और राष्ट्रीय नेताओं के बीच मत-

भेद का विषय बन गया और इसने ही भारतीय समाज के नेतावर्ग मे प्रचंड राष्ट्र भावना तथा विद्रोही प्रवृत्ति को जन्म दिया। फलत इस अध्याय मे हमारी चर्चा का विषय दो परस्पर सबधित विषयो मुद्रा और विनिमय के इस विशेष प्रभाव तक ही सीमित है।

सरकारी मुद्रानीति

19वी शताब्दी के अतिम चरण की अवधि मे भारत सरकार की मुद्रा नीति का उपयुक्त और विस्तृत विवेचन 1893 की इडियन करेंसी कमेटी के प्रतिवेदन मे 1898 की इडियन करेंसी कमेटी के प्रतिवेदन मे तथा इस विषय पर लिखित अन्य अनेक श्रेष्ठ ग्रथो मे किया गया है।[1] अत यहा समीक्षाधीन अवधि मे भारतीय मुद्रा और विनिमय के क्षेत्र मे घटित घटनाओ और परिवर्तनो का अत्यन्त सक्षिप्त विवरण देना ही पर्याप्त होगा।

1835 के 17वे अधिनियम के अनुसार भारतीय मुद्रा को रजत मान पर लाया गया और 1870 के सिक्का ढलाई अधिनियम के अनुसार सरकार को यह आदेश दिया गया कि विनिमय के निजी खाते मे चादी की धातु के विनिमय मे ही रुपये बनाए। इसने भारतीय मुद्रा को 'स्वाभाविकता' प्रदान की। दूसरे शब्दो मे रुपये का मूल्य बाजार मे चादी के मूल्य के सदर्भ मे और उसका विनिमय मूल्य स्वर्ण मान वाले देशो मे चादी से उपलब्ध होने वाले स्वर्ण के सदर्भ मे ही निर्धारित किया जाता था। चादी का मूल्य 1873 तक न्यूनाधिक रूप मे स्थिर ही रहा अत इस अवधि मे रुपये का मूल्य भी 2 शिलिंग के आसपास ही स्थिर रहा। परतु 1873 मे जब सारे विश्व मे कुछ कारणो से जिनका सबध भारत से नही, अत उनकी यहा चर्चा करने की आवश्यकता नही चादी से प्राप्त होने वाले सोने के मूल्य मे ह्रास आने लगा तो स्थिति मे भारी परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक ही था। इसके फलस्वरूप जिस रुपये को चादी के विनिमय के लिए स्वतत्रता से गढा लिया जाता था, स्वर्ण पर आश्रित मुद्राओ के सदर्भ मे उस चादी के रुपये के मूल्य मे ह्रास आने लगा। दूसरे शब्दो मे स्वर्ण मानवाले देशो के साथ भारत का विनिमय (इग्लैड उस समय स्वर्ण मान वाला देश था) गिरने लगा। इस प्रकार जहा 1873 मे भारतीय रुपये का मूल्य लगभग 2 शिलिंग था, वहा उसका विनिमय मूल्य 1893-94 मे 14 54 पेस रह गया।

भारतीय विनिमय के ऐतिहासिक पतन को अनेक स्रोतो से मर्मभेदी प्रहार सहन करने पडे। सर्वप्रथम भारतीय विदेश व्यापार विशेषत आयात व्यापार को बुरी तरह से बाधित और पीडित करने के लिए इसकी भर्त्सना की गई। विदेश व्यापार मे सलग्न व्यापारियो ने अनुभव किया कि रुपये के स्टर्लिंग मूल्य को लग रहे भयकर झटके इग्लैंड और भारत के व्यापार सबधों पर विशेष हानिकारक प्रभाव डाल रहे थे। इसके अतिरिक्त उनकी शिकायत यह थी कि विनिमय की अनिश्चितता ने विदेश व्यापार को जुए और सट्टेबाजी का स्वरूप प्रदान कर दिया था।[2] पतनशील विनिमय के विरुद्ध दूसरा अभियोग भारत सरकार द्वारा नियुक्त अगरेज सिविल और मिलिट्री अफसरो ने लगाया और बाद मे उन्होने उस अभियोग को सुदृढता से उभारा। उनकी शिकायत यह थी कि उन्हें वेतन तो मिलता है रुपयो मे जबकि उन्हे अपने वेतन का एक बहुत बडा भाग अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए, बच्चों की शिक्षा के लिए स्टर्लिंग के रूप मे व्यय करना

होता है। इससे उन्हें अवांछित हानि होती है और क्लेशदायक आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है। इसका कारण यह था कि उन्हें उसी संख्या में विनिमय में पौंड लेने के लिए अपेक्षाकृत अधिक संख्या में रुपये अपने घरों को भेजने पड़ते थे।[3] रुपये के स्टर्लिंग मूल्य में गिरावट के साथ एक प्रधान पाप यह जुड़ गया कि इससे ब्रिटिश पूंजी का भारत में प्रवाह निरुत्साहित और मंदगति हो गया। पूंजी के ब्याज और लाभ के साथ साथ स्वयं पूंजी के स्वर्ण मूल्य के ह्रास अथवा कम से कम अनिश्चितता ने इस प्रवाह को विलंबित कर दिया। यह घोषित किया गया कि ब्रिटिश पूंजी के अंतःप्रवाह पर इस प्रतिबंध ने, विशेष रूप से देश में त्वरित आवश्यकता वाले प्रतिबंध ने रेलों के विस्तार में बाधा पहुंचाई।[4]

गिरते विनिमय से संबंधित सर्वाधिक महत्वपूर्ण आपत्ति भारत सरकार की थी, जिसके वित्त सचमुच ही इसके कारण विपन्न हो गए थे। इस संबंध में भारत सरकार की स्थिति सर्वथा विचित्र थी। जहां सरकार राजस्व की वसूली चांदी के रुपयों में करती थी, वहां उसे अपने गृह व्यय का इंग्लैंड में भुगतान सोने में करना पड़ता था। 1873-98 की अवधि में चांदी की स्वर्ण क्रय शक्ति अबाध रूप से घटती गई। भारत सरकार को अपने स्टर्लिंग दायित्व के भुगतान के लिए प्रतिवर्ष अधिक से अधिक संख्या में रुपये चुकाने पड़े। अधिक शोचनीय बात यह रही कि दायित्व और अधिक बढ़ते गए। इस प्रकार विनिमय में भयंकर घाटा हुआ। दूसरे शब्दों में भारत सरकार को किसी भी वर्ष विशेष में जितने रुपयों का भुगतान करना पड़ा और विनिमय की दर के सुविधाजनक रूप से 2 शिलिंग प्रति रुपया रहने पर जितने रुपयों का भुगतान करना पड़ता, उन दोनों के मध्य का अंतर भारत सरकार का विनिमय से होने वाला घाटा ही था। उदाहरणार्थ, 1894-5 में गृह प्रभारों के भुगतान के लिए 15.77 करोड़ स्टर्लिंग पौंड के बदले 28.9 करोड़ रुपये चुकाने पड़े। यदि विनिमय दर 1872-3 वाली ही बनी रहती, तो स्टर्लिंग पौंड की उसी राशि के विनिमय के लिए 16.6 करोड़ रुपये चुकाने पड़ते। इस प्रकार 12.3 करोड़ रुपये के अंतरवाली राशि का विनिमय से होने वाला घाटा ही कहा जाएगा। स्थिति की गंभीरता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि उस वर्ष घाटे की रकम भारत सरकार द्वारा उगाहे गए कुल भू राजस्व के आधे भाग से भी अधिक थी।[5]

विनिमय में गिरावट से 1875-98 की अवधि में होने वाला घाटा 154 करोड़ रुपये के लगभग था। 1894 में घाटे की राशि चरम शिखर पर पहुंच गई।[6] इस घाटे की पूर्ति के लिए सरकार को प्रतिवर्ष छटनी तक का सहारा लेना पड़ा। प्रथम साधन तो अव्यावहारिक सिद्ध हुआ। वस्तुतः इस अवधि में सरकारी खर्च उल्लेखनीय गति से बढ़ता गया। इस प्रकार से सरकार को व्यापक रूप से अलोकप्रिय साधनों अथवा करों, नमक कर, आय कर, भू राजस्व में वृद्धि, का सहारा लेने पर विवश होना पड़ा। परंतु भारत जैसे निर्धन कृषिप्रधान देश में करों में वृद्धि का क्षेत्र भी स्पष्ट रूप से सीमित था। किसानों पर किसी प्रकार के अनुचित करभार के साथ अत्यंत गंभीर स्थिति का राजनीतिक खतरा भी जुड़ा हुआ था। विशेषतः इसका भय यह था कि इसे देश पर अधिकार जमाने वाले विदेशी शासन का दुष्परिणाम समझा जाएगा और समझा जाएगा कि वह देश के बाहर बढ़े हुए खर्च की पूर्ति के लिए ही यह सब कुछ कर रहा है।[7]

इसके अतिरिक्त विनिमय मे अचानक उतार-चढाव का परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार को बहुत बडी सीमा मे वित्तीय अनिश्चितता और कठिनाई का सामना करना पडा। उसका वित्तीय हिसाब और व्यवस्थाए अस्त-व्यस्त हो गई और उसका बजट 'विनिमय की दृष्टि से एक जुआ सरीखा' सिद्ध हुआ।[8] इस प्रकार रुपये के स्वर्ण मूल्य मे गिरावट ने लगभग शताब्दी के एक चरण (चतुर्थांश) तक भारतीय धनकुबेरो की नीद हराम रखी। वे अत्यत व्याकुल होकर बजट के सतुलन के लिए उपाय और साधन ढूढने लगे। उनके विचार मे सरकार के सामने दो ही मार्ग थे . या तो वह विनिमय मे गिरावट को रोके अथवा अतिरिक्त करो का अलोकप्रिय मार्ग ग्रहण करे। उनकी निश्चित धारणा थी कि इन दो मार्गों को छोडकर कोई अन्य मार्ग नही था।[9]

निराश होकर भारत सरकार ने विनिमय मे गिरावट रोकने के लिए उपयोगी साधनो की खोज प्रारभ की। वर्षा तक वह अतर्राष्ट्रीय दो धातुओवाले इकरारनामे पर भारी आशा सजोए रही। भारत सरकार का विचार था कि यह सोने और चादी का सापेक्ष मूल्य निर्धारित करेगा परन्तु जब इस इकरारनामे का उपसहार होते होते सारी आशाए टूट गई, 1892 के ब्रुसेल्स सम्मेलन की असफलता नवीनतम असफलता थी—तब सरकार अपने मुद्रा मान को चादी के स्थान पर सोने पर आधारित करने की योजना पर विचार करने लगी। इस योजना को अपनाने के लिए व्यापारीवर्ग ने भी, जो वाणिज्य मडल और नवनिर्मित भारतीय मुद्रा समिति के रूप मे सगठित था, इस समय सरकार पर दबाव डाला।[10] सारे के सारे मुद्रा सबधी प्रश्न को तथा भारत सरकार की योजना को उस समय लार्ड चासलर लार्ड हरशल की अध्यक्षता मे बनी समिति को सौप दिया गया। इस समिति की सिफारिशो के फलस्वरूप भारत सरकार ने 26 जून 1893 को 1893 के अधिनियम स० 8 को लागू किया, इसके अनुसार निजी खाते मे चादी के अप्रतिबाधित सिक्को को ढालने वाली टकसाल को बद कर दिया। सरकार ने यह अधिसूचना जारी की जिसके अंतर्गत रुपये का मूल्य 1 शिलिंग 4 पेस निर्धारित किया गया और कहा गया कि इसी दर पर सरकारी करो के भुगतान के लिए जनता से सोने के सिक्के, चादी के सिक्के, पौड और आधे पौंड लिए जाएगे तथा विनिमय मे रुपयो अथवा नोटो की आपूर्ति की जाएगी। ये सारे उपाय देश म स्वर्ण मान को अपरिहार्य रूप मे लागू करने के पथ म प्रथम पग ही थे।

1893 की कार्यवाही का मुख्य उद्देश्य रुपये की प्रचलित मात्रा को घटाकर उसके स्वर्ण मूल्य को 1 शिलिंग 4 पेस तक बढाना था। उस प्रकार रुपया चादी से विच्छिन्न हो गया तथा उसमे निहित चादी के मूल्य मे उसका मूल्य बढ गया। यह रुपये का प्राकृतिक और यथार्थ स्थिति को छोड कर एक नकली और बडे मूल्यवाली स्थिति को ग्रहण करना था। इसका परिणाम यह निकला कि रुपये की क्रयशक्ति बढ गई अथवा दूसरे शब्दो मे आतरिक मुद्रा के सकुचन के फलस्वरूप आतरिक कीमते गिर गई।

सक्रमण काल की अवधि, जिसमे रुपये का मूल्य और अधिक गिरता गया और 1894 में यह 4 शिलिंग 3 पेंस तक पहुच गया, के पश्चात सरकार की मुद्रानीति को वाछित उद्देश्यो मे सफलता मिली और रुपये का मूल्य धीरे-धीरे बढने लगा। यहा तक कि जब 1898-9 की अवधि मे चादी का मूल्य घट रहा था, रुपये का मूल्य 1 शिलिंग 4 पेस के

लगभग था। इस समय भारत सरकार ने सोचा कि 1893 की नीति के तर्क पर आधारित निष्कर्ष निकालने का उपयुक्त समय आ गया है। अतः सारे प्रश्न पर विचार के लिए उसने सर हेनरी फाउलर की अध्यक्षता में एक अन्य समिति की नियुक्ति की। समिति ने स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्णमान की स्थापना की सिफारिश की तथा आवश्यक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अन्य अनेक उपाय सुझाए। फलतः 1899 में (अधिनियम सं० XXII द्वारा) रुपये का मुल्य 1 शिलिंग 4 पेंस निश्चित किया गया और इस समय इसी दर पर अशरफी और आधी अशरफी के सिक्कों को भी कानूनी सिक्के की मान्यता दे दी गई। अतः रुपया नाममात्र का सिक्का बन गया हालांकि वह असीमित सरकारी सिक्का बना रहा। भारतीय मुद्रा के क्षेत्र में इस परवर्ती विकास से हमारा कोई संबंध नहीं अतः हम इस विवरण को यहीं समाप्त करते हैं। इस संबंध में केवल दो रोचक बातों का उल्लेख आवश्यक समझते हैं। प्रथम, भारत में जो यथार्थ में छाया रहा, वह स्वर्ण मुद्रा के साथ स्वर्णमान नहीं था प्रत्युत उसे 'स्वर्ण विनिमय मान' ही कहा जाता है।[11] द्वितीय, भारत के वित्तीय इतिहास में विनिमय की स्थिरता के तथा लाभ बजट के नए युग का प्रारंभ होने लगा था परंतु यह न तो टकसाल बंद होने का परिणाम था और न रुपये की अत्यधिकता की सापेक्ष निवृति का। वस्तुतः रुपये का टंकन तो थोड़े ही समय के बाद उल्लेखनीय परिमाण में होने लगा था।[12] तभी तो जे० एम० केंस ने टिप्पणी की कि सरकार उद्वेगजनक वेग से सिक्के बनाने में जुटी है।[13] और भारतीय नेता शीघ्र ही रुपये की बहुलता की शिकायत करने लगे है।[14] सत्य यह था कि रुपये का स्वर्ण मूल्य स्थिर बना रहा और यह सब एकाततः प्रशासनिक उपायों का परिणाम था और इन उपायो को सरकार ने किसी विवशता अथवा अनिवार्यता के कारण नही अपनाया था।[15]

भारतीय नेतृत्व की प्रारंभिक प्रतिक्रिया

रुपये के निरंतर गिरते स्वर्णमूल्य से उत्पन्न समस्याओं के प्रति भारतीय राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया में निरंतरता न थी और उसकी अभिव्यक्ति और मंदगति से हुई। बहुत से राष्ट्रवादी नेताओं ने विनिमय में गिरावट की आलोचना की और इसे भारी दुर्भाग्य बताया, विशेषतः इसलिए क्योंकि विनिमय में होने वाले घाटे के फलस्वरूप नए कर लगाए गए थे।[16] यह बात अवश्य है कि बहुत सारे नेता तो बहुत समय तक इस प्रश्न की समग्र जटिलता को ही न समझ पाए और न ही उसका विस्तृत विश्लेषण कर पाए। हां, इस सामान्य तंद्रा के कुछ एक राष्ट्रवादी अपवाद भी थे।[47] परवर्ती आलोचकों के दृष्टिकोण के साथ इन अपवाद वाले नेताओं के दृष्टिकोण को संक्षिप्त रूप से ही प्रस्तुत किया गया है। कहने की आवश्यकता नही कि ये नेता अपने युग से आगे बढ़े हुए ही थे। परंतु प्रारंभिक वर्षों में, 1892 तक की इस विषय की गतिविधि को संक्षेप में कहना चाहें तो यही कहा जा सकता है कि अधिकांश भारतीय नेताओं की अत्यंत अस्पष्ट टिप्पणियां केवल निम्नलिखित सुझाव देने तक ही सीमित रहीं: (क) गृह-प्रभारों में कटौती,[18] (ख) स्वर्ण दायित्व का रजत दायित्व में रूपांतरण,[19] (ग) अंतर्राष्ट्रीय द्विधातु प्रणाली का अपनाना।[20] थोड़े से नेताओं ने तो यहां तक भी सुझाव दिया कि सोने की

मुद्रा जारी की जाए।[21] और निजी सट्टेबाजों के लिए स्वतंत्र टकन बंद कर देना चाहिए।[22] जस्टिस रानाडे ने व्यावहारिक नीति की वकालत की और घोषणा की कि मुद्रा मे हेरफेर का विरोध इसे विश्वासघात मानकर किया जाए क्योंकि इसमे चादी के मूल्य का ह्रास और विनिमय दर मे वृद्धि होती है।[23]

राष्ट्रवादियों द्वारा मुद्रा परिवर्तन का विरोध

1892 के आस पास जब ब्रिटिश व्यापारियों और अधिकारियो ने आदोलन जारी कर मुद्रा और विनिमय के प्रश्न को अपने समय का ज्वलन्त प्रश्न बना दिया तो उसके सबध मे भारतीय नेताओ की उदासीनता भी जाती रही। भारतीय नेताओं ने इसके पूरे महत्व को स्वीकार किया। इसकी पुष्टि 1892 की भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस से पूर्व भारतीय राष्ट्रीयतावाद के मुख्य प्रवक्ता डी० ई० वाचा की उस विषय पर जिसे 'उनका अपना विषय कहा जा सकता है,' निम्नोक्त सुदृढ स्वीकृति मे होती है : 'हमारे जैसे विशिष्ट स्थितिवाले देश का निकट भविष्य मे आर्थिक उद्धार पूर्णरूप से मुद्रा प्रश्न के सही समाधान मे ही निहित है।'[24]

इस स्थिति मे भारतीय नेताओ ने रुपये के नीचे तथा घटते हुए स्वर्ण मूल्य के बचाव और सघर्ष का दृष्टिकोण ही अपनाया। यहा तक कि वे 1893 और 1899 के मुद्रा अधिनियम पारित हो जाने के बाद भी निम्न विनिमय की प्रशसा करते रहे और उसके लिए दबाव डालते रहे। वस्तुतः मुद्रा प्रश्न पर 1893 के मुद्रा अधिनियम अपना लिए जाने के पहले और बाद मे वर्षो तक राष्ट्रीय नीति की उल्लेखनीय निरतरता के कारण इस पुस्तक मे इस विषय का एक पृथक विषय के रूप मे ही एक ही स्थान पर समग्र विवेचन किया गया है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण का प्रारंभिक पक्ष यह विश्वास था कि इस विषय का केंद्र विनिमय की स्थिरता न होकर सोने मे विनियमित होने वाले रुपये का अनुपात था। भारतीय नेताओं का विचार था कि विनिमय की ऊची दर की वकालत करने वाले विविध पक्ष अपने स्वार्थों के कारण ही ऐसा करते थे। सरकार विनिमय मे गिरावट के फलस्वरूप स्टर्लिंग के भुगतान मे होने वाले घाटे की उपेक्षा करना चाहती थी ताकि सरकारी कर्मचारी इंग्लैंड में अपनी अधिकाधिक धनराशि भेज सके और यूरोपीय सामान के आयातकर्ता आयात कर सकें, अन्यथा उन्हे भारतीय उत्पादनों से प्रतियोगिता के लिए बाध्य किया जा रहा था और इस प्रकार उन्हे अपेक्षाकृत कम मात्रा मे लाभ अर्जन करने के लिए विवश होना पड रहा था। इन्ही कारणो से ये लोग स्वार्थपूर्ण तथा निरर्थक आदोलन चला रहे थे।"[25] भारतीय नेताओं ने दृढतापूर्वक कहा कि देश के हितो के साथ विदेशी व्यापारियों, विदेशी पूजी और विदेशी कर्मचारियों के हितों को न तो रखा जाना चाहिए और न ही रखा जा सकता है। भारत के संबंध में यद्यपि इस देश की जनता के और इस देश की सरकार के हित परस्पर सबंधित नही हैं परंतु संक्षेपत: वाछनीय यह है कि भारतीय जनता के हितों को ही प्राथमिकता मिलनी चाहिए और इस प्रश्न पर किसी भी प्रकार से विचार करते समय भारतीयों के हितों को ही प्रामाणिक कसौटी मानना चाहिए।[26] राष्ट्रवादी नेताओं

ने इसी सिद्धात को व्यवहार मे लाते हुए, रुपये की कृत्रिम मूल्यवृद्धि करने के लिए रजत मान का परित्याग करके टकसालो को बद करने तथा स्वर्णमान को अपनाने के लिए इडियन करेसी एसोसिएशन द्वारा सचालित तथा भारत सरकार द्वारा उत्साहपूर्वक समर्थित आदोलन का विरोध किया ।[27] भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के 1892 के अधिवेशन मे भी इस आदोलन का मृदु भाषा मे निबद्ध प्रस्ताव मे विरोध किया गया ।[28] मजेदार बात यह है कि भारत मे सरकारी अधिकारियो ने उपहास के रूप मे अथवा जाने अन-जाने रूप मे मुद्रा प्रश्न पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण की उपेक्षा की और उसका गलत अर्थ निकाला । उन्होंने 21 जून 1892 को भारत राज्य सचिव को यह प्रतिवेदित किया कि भारतीय जनमत निर्णीत उपायो को स्वीकार करने की स्थिति मे है और चादी के सिक्के बनाने की समाप्ति को जनता सामान्यत स्वीकार करेगी ।[29]

सरकारी अधिकारियो का भारतीय जनमत सबधी मिथ्या ज्ञान उस समय उघड गया जब 1893 मे भारतीय टकसालो के बद होते ही राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने न्यूनाधिक रूप मे एक स्वर मे इस पग का विरोध किया और इसे भारतीय जनता के विशेषत उत्पादक और कृषक वर्ग के हितो के प्रतिकूल बताकर उसकी भर्त्सना की ।[30] बाद मे उसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने सरकार की कार्यवाही की निदा करते हुए प्रस्ताव पास किया ।[31] प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए डी० ई० वाचा ने 1893 के करेसी ऐक्ट की इन शब्दो मे भर्त्सना की 'अधेरे मे गहरी छलाग' और 'एक भारी अक्षम्य भूल' ।[32] जब सरकार ने रुपये का मूल्य 1 शिलिंग 4 पेंस निर्धारित करते हुए स्वर्णमान की व्यवस्था की योजना बनाई तो इसे '1893 के अपराध की 1898 मे पुनरावृत्ति'[33] बताते हुए वाचा ने सरकार की भर्त्सना सार्वजनिक रूप से की ।[34] दादाभाई नौरोजी ने टकसाल बद करने की निदा इन शब्दो मे की : 'यह एक अवैध, असम्माननीय और निरकुश कृत्य है ।' उन्होने स्वर्णमान के परित्याग की माग की ।[35] आर० सी० दत्त ने भी कृत्रिम रूप से रुपये के मूल्य बढाने के सरकार के प्रयत्नो की निदा 'अप्राकृतिक, निराशाजनक और भयकर' कहकर की ।[36] उन्होने सरकार को स्वर्णमान लागू करने के विरुद्ध चेतावनी दी ।[37] भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने भी एक बार फिर विनिमय से हुए घाटे की पूर्ति के लिए महगी कीमत पर मुद्रा मे तबदीली करने अथवा आतरिक मुद्रा के समेटने जैसे कृत्रिम उपाय अपनाने के प्रति अपनी असहमति प्रकट की ।[38] डी० ई० वाचा ने पूर्ववत बडी ही उग्रता से यह विचार प्रकट किया कि सामान्य रूप से सर्वसाधारण द्वारा तथा विशेष रूप से बैको और व्यापारीवर्ग द्वारा उस दिन से भोगे हुए ओर भोगे जा रहे दु खो के कारणरूप सभी आर्थिक बुराइयो की जड 1893 का करेसी ऐक्ट है ।[39] उल्टे नौरोजी, दत्त तथा अन्य भारतीय नेताओ ने दबाव डाला कि टकसाले खोल दी जाए और रुपये को चादी के धातु मूल्य तक नीचे जाने दिया जाए ।[40] भारतीय नेताओ ने फाउलर कमेटी मे भारतीय हितों के सरक्षक एक भी प्रतिनिधि को सम्मिलित न करने का बहुत ही बुरा माना ।[41] इस कमेटी की सिफारिशो की तथा उनके फलस्वरूप प्रस्तुत 1899 के करेसी ऐक्ट की भारतीय नेताओ ने पुन आलोचना की परतु अब की बार पहले जैसा उत्साह दृष्टिगोचर नही हुआ । इसका कारण कदाचित यह था कि इस समय तक मुद्रा क्राति एक व्यवस्थित तथ्य

बन चुकी थी।[42] फिर भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस परवर्ती अनेक वर्षों में इस प्रश्न को महत्व देती रही। अपने 17वें अधिवेशन में कांग्रेस ने नकली तौर पर रुपये की 30 प्रतिशत कीमत बढ़ाने वाले 1893 के करेंसी कानून के प्रति अपने विरोध की दोबारा पुष्टि की।[43] 18वें अधिवेशन में पुन: इस प्रकार का प्रस्ताव पारित किया गया।[44] असंख्य जननेता वर्षों तक रुपये की नकली मूल्यवृद्धि और लोकहित पर उसके दुष्प्रभाव की आलोचना करते रहे।[45]

भारत सरकार की मुद्रानीति की राष्ट्रवादी अस्वीकृति के तीन मुख्य आधार थे : 1. ह्रासोन्मुख रुपये का लाभकारी चरित्र, 2. मुद्रा के सरकार अथवा जनता की आर्थिक कठिनाइयो के मूल कारण होने के प्रमाण का अभाव, 3. जनता की आर्थिक स्थिति पर रुपये के बढते मूल्य का हानिकारक प्रभाव। इन आधारो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है क्योंकि इनसे समीक्षाधीन अवधि मे भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के आर्थिक दृष्टिकोण संबंधी मौलिक सिद्धातों पर भली प्रकार प्रकाश पडता है।

निम्न विनिमय के लाभ

बहुत सारे भारतीय नेताओं का यह विश्वास था कि 1873 से भारत के व्यापार और उद्योग ने जो प्रगति की है, उसमें गिरते रुपये वाले रजत मान ने भारतीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की संतोषजनक रूप से पूर्ति की है और इस प्रकार भारत द्वारा अपनाया जा सकने वाला यह कदाचित सर्वोत्तम मुद्रा मान था।[46] उनके अनुसार निम्न विनिमय की मुख्य उपयोगिता थी, विनिमय मे गिरावट की सीमा तक अत्यधिक महगे बन गए आयातों से भारतीय उत्पादनों, विशेषत: सूती वस्त्रो को परोक्ष संरक्षण देने के रूप मे प्रोत्साहन जुटाना। 'मराठा' ने अपने 25 सितंबर 1892 के अंक मे लिखा 'विनिमय कटौती सभी प्रकार के अंगरेजी सामान पर आयात शुल्क के रूप मे काम करती है। यहा विनिमय ने फिर वही काम किया है जो करने से सरकार निरंतर इनकार करती रही है।'[47] हिंदू तो 4 सितंबर 1889 के अक में यह देख पाने मे सफल हो गया कि निम्न विनिमय के कारण ही भारत इंग्लेंड के सूती वस्त्र उत्पादकों से चीन और जापान के बाजार हथियाने मे सफल हो सका है।[48] पी० सी० राय ने इस स्थिति मे एक और उपयोगिता देखी। उन्होंने कहा कि निम्न विनिमय ने अंगरेजी पूजी के लिए भारत को एक अनाकर्षक प्रदेश बनाकर भारतीय पूजीपतियो के लिए उद्यम के अवसर उत्पन्न किए हैं।[49]

यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि राष्ट्रवादियो ने चादी के रुपये के समर्थन मे स्वीकृत तर्क को उसी समय आगे नहीं बढाया। वह तर्क यह था कि विनिमय की निम्न दर विश्व के बाजारों में मूल्य को नीचे गिराकर निर्यात को प्रोत्साहन देती है। वास्तव मे कुछ भारतीय नेताओं ने (आर० सी० दत्त को छोड़ कर जिन्होंने थोडी बहुत अस्पष्टता के साथ यह स्वीकार किया कि चांदी के अवमूल्यन से भारत के विदेश व्यापार को हानि की अपेक्षा लाभ ही पहुंचा है[50]) सर्वथा अस्वीकार कर दिया कि रुपये के अवमूल्यन ने भारतीय निर्यात को प्रोत्साहन दिया है।[51] जो भी हो, उनमें सर्वाधिक व्यापक प्रवृत्ति, उनके विदेश

व्यापार विरोधी पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण के अनुरूप यह नकारने की थी कि कच्चे सामान के निर्यात को प्रोत्साहन देना एक अच्छी बात है।[52] इससे इस दृष्टिकोण को बल मिलता है कि भारतीय नेताओ को अवमूल्यित रुपये की रक्षा के लिए न तो मुख्य रूप से व्यापारीवर्ग के प्रति सहानुभूति थी और न ही विदेशी व्यापार में रुचि थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि किसान को रुपये के अवमूल्यन से अपने उत्पादनों से अधिक रुपयो के मिलने के रूप मे कोई लाभ पहुंचा है। उन्होंने निर्देश किया कि वस्तुत बहुत सारे कृषि उत्पादनो के मूल्य मे कोई वृद्धि नही हुई है, बहुत सारे उत्पादनो के मूल्य तो घट ही गए है।[53]

भारतीय वित्त में विनिमय की भूमिका

मुद्रा परिवर्तन के विरुद्ध भारतीय नेताओ की आपत्ति का दूसरा आधार उनकी यह धारणा थी कि रुपये की स्वर्ण मूल्य मे गिरावट भारत सरकार की आर्थिक कठिनाइयों का मूल कारण नही। उन्होने विनिमय से भारत के कोष को होने वाले घाटे को देखा ही नही, अपितु उसके प्रति चिंता भी प्रकट की क्योकि आखिरकार इस घाटे का भार बेचारे भारतीय करदाता के कधे पर ही तो पडना था। उन्होंने इसकी पूर्ण समाप्ति की इच्छा की।[54] उदाहरणार्थ 1886 मे दादाभाई नौरोजी ने विनिमय मे होने वाले घाटे को ब्रिटिश भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण और भारतीय जनता पर दुखद भार बताया। उन्होने लिखा 'दुर्भाग्यग्रस्त निर्धन भारतीय को गृह प्रभारो के लिए 14 करोड रुपये के मूल्य के उत्पादन को 2 शिलिंग प्रति रुपया की दर से बेचने के बदले 1 शिलिंग 4 पेंस की दर से बेचने से रुपये के विनिमय मे आई गिरावट से हुए घाटे को पूरा करने के लिए 7 करोड रुपये के मूल्य का और उत्पादन बेचना पडता है।'[55] भारतीय नेताओ और सरकार के मध्य समझौते का क्षेत्र इस जगह खत्म हो गया, क्योकि उनमे इस बुराई के लिए उत्तरदायी तत्वों और उनके उपचार की प्रकृति के बारे मे मतभेद था। भारतीय नेता यह मानने को तैयार नही थे कि यह विनिमय का घाटा रुपये के स्वर्ण मूल्य मे गिरावट का परिणाम है। उनका कथन था कि रोग का स्रोत कही अन्यत्र है। भारतीय नेताओं मे मुद्रा प्रश्न के इस पक्ष मे उल्लेखनीय एकता तथा सुसगति थी। रोग की यथार्थ प्रकृति की पहचान और प्रयोज्य उपचार ने उनकी समग्र मुद्रानीति मे विशिष्ट स्थिति बनाए रखी। रोग की पहचान को सार रूप मे निम्न विधि से प्रस्तुत किया जा सकता है :

इस सारी समस्या की जड विनिमय की दर न होकर भारत के इंग्लैंड के साथ आर्थिक और राजनीतिक सबध है। सरकार के विनिमय सबधी घाटे के लिए निम्न विनिमय के बदले गृह प्रभार ही उत्तरदायी है। यदि भारत से इंग्लैंड मे स्वर्ण के रूप मे अनिवार्य धन न भेजा जाता तो रुपये के स्वर्ण मूल्य मे गिरावट से संभवत. भारत सरकार के वित्त अथवा भारत के लोग प्रभावित ही न होते। दूसरी ओर जब तक गृह प्रभार बने हुए हैं, केवल मुद्रा परिवर्तन से कोई बहुत बडा लाभ नही होगा।[56]

इस संबध मे अनेक भारतीय प्रवक्ताओं ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के क्लासिकी मौद्रिक सिद्धात पर दृढ़ विश्वास प्रकट किया जिसके अनुसार—मुद्रा पद्धति इस विधि से प्रवर्तित

होती है कि किसी देश के भुगतानो का संतुलन अपने आप ही तुल्य स्थिति की ओर चला जाता है।[57] उन्होंने आवृत्तिपूर्वक बल देकर कहा कि गृह प्रभारो के भुगतान से होने वाले घाटे को छोड कर विनिमय की गिरावट अपने आप मे भारत के विदेश व्यापार को प्रभावित नही करेगी क्योकि कीमतो के उतार-चढाव द्वारा विदेश व्यापार विनिमय की अपेक्षाओ के अनुरूप अपने आपको स्वत ही व्यवस्थित कर लेगा।[58] कुछ अन्य भारतीय नेताओ ने भी निर्देश किया कि एक लबे समय तक निरतर विदेशो को अनिवार्य भुगतान की आवश्यकता ने सरकार को किसी भी मूल्य पर पौड खरीदने के लिए विवश कर दिया है। उसी का अप्रतिहार्य दुष्प्रभाव चादी के मूल्य मे ह्रास स उत्पन्न विनिमय की दुर्दशा है।[59] भारतीय रुपये के रजत मान मे हटने पर इस तर्क को बहुत बल मिला। 1899 मे वाचा ने बबई के मिल मालिको को बताया कि विनिमय के विक्षोभ का कारण विदेशो मे किए जाने वाले भुगतानो के फलस्वरूप भारत के विदेश व्यापार के सतुलन मे आई अव्यवस्था है। उन्होने स्पष्ट शब्दो म अपना मत प्रकट किया आपकी मुद्रा सोने की हो अथवा चादी की, रुई की अथवा गेहू को; जब तक यह प्रभार बहुत और बढते ही रहेंगे तब तक यह तथाकथित विनिमय कठिनता बनी ही रहेगी·· वस्तुत समस्या तो गृहप्रभारो की ही है।[60] उन्होने तथा उनके साथ जी० एस० अय्यर महोदय ने भी यह अनुभव किया कि 1872 तक और यहा तक कि उसके बाद भी इन गृहप्रभारो के दबाव पर ध्यान इसलिए नही गया क्योकि इस अवधि मे रेलो तथा अन्य प्रयोजनो के लिए बहुत बडी बडी रकमो के ऋण लिए गए है।[61]

राष्ट्रवादी नेताओ ने अपने उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर अधिकारियो के इस दृष्टिकोण की तीव्र भर्त्सना की कि विनिमय से होने वाला घाटा उनके नियत्रण से बाहर था और इसका उपाय या तो करो मे वृद्धि द्वारा इसे सहन करना था, अथवा रुपये का मूल्य बढाकर इसे निष्फल करना था, उनके अनुसार इसका एक अन्य उपाय भी था और उसका पता रोग की जाच-पडताल स लग जाता है। प्रथम, उनका कथन था सरकार को विनिमय से होने वाले घाटे का मूल कारण यदि विनिमय मे गिरावट नही तो स्पष्ट है कि सरकार द्वारा प्रस्तावित मुद्रा पद्धति सबधी परिवर्तन मे स्थिति म कोई बहुत बडा सुधार होने वाला नही।[62] द्वितीय, क्योकि मूल दोष गृह प्रभारो का ही है अत इस रोग का प्रभावी इलाज भारत के स्टर्लिंग दायित्वो मे निरतर वृद्धि करने वाली वर्तमान नीति मे आमूल-चूल परिवर्तन लाना ही है। अतएव प्रमुख एकमात्र स्वाभाविक और उपयुक्त उपचार है गृह प्रभारो की समाप्ति अथवा उनमे कटौती अथवा इग्लैंड की सपत्ति की निकासी की समाप्ति या कटौती अथवा कम मे कम स्टर्लिंग के बडे भाग का दायित्व रुपयो की देनदारी मे परिवर्तन ताकि उतनी रकम के बराबर भुगतान के लिए काफी कम रुपये देने पडें। यह भारतीय कोष भडारो के लिए एक बहुत बडी मुक्ति होगी।[63] इस उद्देश्य की प्राप्ति के निश्चिततम उपायो मे भारतीय नेताओ के विचार मे एक था, देश का प्रशासन देश के सपूतो द्वारा ही पूर्ण योग्यता के साथ चलाया जाना, क्योकि उस स्थिति मे उनके वेतन और पेंशन राशि का भुगतान सोने मे नही करना पडेगा।[64] दूसरा सुझाया हुआ उपाय यह था कि देश के भीतर ही सरकारी भंडारों के अपेक्षाकृत अधिक

बड़ी संख्या में अंश खरीदना।[65] एक अन्य उपाय यह भी था कि इंग्लैंड भारत सरकार के इंग्लैंड मे होने वाले व्यय के उचित अंश का भुगतान करे।[66] वस्तुतः कुछ नेताओ ने तो रुपये के मूल्य में ह्रास का और विनिमय मे घाटे का स्वागत ही किया क्योंकि उन्हें आशा थी कि यह स्थिति धन की निकासी की समस्या की ओर सरकार का और भारतीय जनता का ध्यान खीचेगी और जनता सरकार को सही पग उठाने के लिए विवश कर देगी।[67] बंगाली ने 3 सितंबर 1892 के अंक मे इस दृष्टिकोण का अत्यंत स्पष्टता से विश्लेषण किया :

> यदि वर्तमान स्थिति और अधिक समय तक चलती रही तो इसके कारण भारतीयों के लिए अत्यंत लाभप्रद परिवर्तन अवश्य होंगे। गृह प्रभारो को घटाना आवश्यक है और आवश्यकता की वस्तुओं को देश में ही पाने का प्रयत्न करना चाहिए।...यदि भारतीय बाजार मे सरकार ही खरीदार बन जाए तो भारतीय व्यापार को कितना प्रबल प्रोत्साहन मिलेगा।...(यह) भारतीय उद्योग को भी प्रोत्साहित करेगा।

इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया गया कि विनिमय मे गिरावट अंगरेजों की बहुत बड़ी संख्या को अपने देश में ही रहने और भारत मे हथियाई हुई नौकरियो को भारतीयों के लिए ही छोड़ने को बाध्य करेगी।[68]

भारतीय नेताओं ने इस बात से इनकार किया कि रुपये की मूल्यवृद्धि का प्रयोजन बढे हुए कराधान और आर्थिक संकट से भारत को मुक्ति दिलाना है। उनका तर्क था कि यदि गृह प्रभारो मे भारी कटौती न भी की जाए और विनिमय में होने वाला घाटा भी चलता रहे तो भी इनकी पूर्ति बिना किसी प्रकार के नए कराधान के वर्तमान आर्थिक संसाधनो से तथा उनमे होने वाली सामान्य बढोतरी से ही की जा सकती है।[69] उनकी धारणा थी कि निस्संदेह विनिमय एक पीडाजनक तत्व है परंतु इसे भारतीय वित्त का कृत्रिम समाधान नही मानना चाहिए। भारतीय वित्तों के असंतुलन का दायित्व प्रमुख रूप से विनिमय के घाटे पर न देकर सरकार के सिविल और मिलिट्री के खर्चों के विषम विकास पर ही देना चाहिए, क्योंकि इनके ही कारण भारत की स्टर्लिंग देनदारी में बढोतरी होती है।[70] अतः स्थिति का सही उपचार मुद्रा पद्धति मे परिवर्तन न होकर खर्चों, विशेषतः मिलिट्री के खर्चों, मे कटौती करना है।[71] डी० ई० वाचा ने तो विशेष रूप से दृढतापूर्वक इस धारणा का समर्थन किया और आकड़ों की सहायता से सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि 1884-85 से लेकर इस अवधि तक मिलिट्री के खर्चों ने सारे नए कर हजम कर लिए हैं और यदि मिलिट्री के इन व्ययों में कटौती कर दी जाए तो भारत विनिमय की बैसाखी के बिना ही अपने पाव पर खड़ा होने योग्य बन जाएगा।[72]

कुछ भारतीय नेताओं का एक अन्य सुझाव था कि यदि वर्तमान सभी स्थितियों को अपरिवर्तनीय ही मान लिया जाए तो भी विनिमय की कठिनता का सामना भारत में उत्पादित न की जाने वाली अथवा भारत की बहुसंख्या के काम में न आने वाली अथवा देश के विकास से संबंध न रखने वाली विदेशों से आयात की जाने वाली वस्तुओं पर थोड़े से आयात शुल्क को लगा कर किया जा सकता है।[73] यह विवरण कपास शुल्कों के सर्वथा अनुरूप था।[74]

प्रत्येक स्थिति में भारतीय नेताओं ने इस कथन पर तीव्र आपत्ति की कि टकमालों के बंद करने से अथवा रुपये की मूल्यवृद्धि से सरकार भारतीय जनता को नए कराधान की आवश्यकता की समाप्ति के रूप में किसी प्रकार का कोई सुख दे सकती है। उनका विचार था कि यह तर्क आर्थिक तथ्यों के साथ छल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। मुद्रा में परिवर्तन से संभवत: किसी प्रकार की अभीष्ट सिद्धि नहीं होगी। इसके विपरीत 1893 और 1898 के मुद्रा कानूनों से भारतीय जनता को रुपये के बढ़े मूल्य की सीमा तक भार रूप और अनिश्चित प्रकृति वाले परोक्ष करों का और अधिक शिकार बनाया गया है[75] क्योंकि अब पुराने कर भी कृत्रिम रूप से बढ़े हुए मूल्य वाले रुपयों के रूप में उगाहे जा रहे हैं।[76] दादाभाई नौरोजी ने 1898 में लिखा : टकमाल बंद करने से और उसके साथ रुपये के इस समय 11 पेंस के लगभग यथार्थ स्वर्ण मूल्य को 16 पेंस के झूठे स्वर्ण मूल्य में बदलना भारतीय करदाताओं पर कुल मिलाकर गुप्त रूप से करों में 45 प्रतिशत की विशुद्ध वृद्धि का भार डालना है।[77]

भारतीय नेताओं के मत में सरकार के मुद्रा संबंधी प्रश्न को हल करने के ढंग से उसकी चालाक राजनीतिक छल-कपट की नीति का पता चलता है जिसके तहत भोली-भाली तथा भटकी हुई भारतीय जनता पर, जो कर भार में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष वृद्धि से विक्षुब्ध हो उठती, गुप्त तथा परोक्ष कराधान के द्वारा उद्देश्य की पूर्ति की गई है।[78] इसके विपरीत कई राष्ट्रवादी नेताओं ने तो करों में प्रत्यक्ष और परोक्ष वृद्धि रूप दोनों बुराइयों में प्रत्यक्ष वृद्धि को अपेक्षाकृत छोटी बुराई मानते हुए उसका ही समर्थन किया, क्योंकि उनके विचार में इसमें बेचारे करदाता को देश के करों में प्रच्छन्न रूप से अपार बढ़ोतरी के स्थान पर केवल विनिमय में प्राकृतिक गिरावट से हुए घाटे की पूर्ति के लिए आवश्यक अतिरिक्त करों का ही भुगतान करना पड़ता।[79]

बाद में जब 1901 के बाद लाभ का बजट आना प्रारंभ हो गया तो राष्ट्रवादी नेताओं ने एक बार फिर यह दावा किया कि ये लाभ 1893 और 1898 में थोपे गए मुद्रा विधान के अंतर्गत परोक्ष कराधान के ही परिणाम हैं।[80] साथ ही उन्होंने अभिस्वीकार किया कि मुद्रा नीति में पीछे हटना व्यावहारिक राजनीति की सीमा के अंतर्गत दिखाई नही देता। नेताओं की माग थी कि इन अधिशेषों का उपयोग मुद्रा विधान के आघात से पीड़ित बेचारे करदाता को करों में छूट के रूप में ही करना चाहिए।[81] इस संबंध में जी० के० गोखले ने एक विशिष्ट प्रश्न पूछा कि यदि :

> रुपये के विनिमय मूल्य में वृद्धि से देश के कराधान में किसी प्रकार की परोक्षवृद्धि की असंभव संभावना को नकारा जा सकता है, तब भारत सरकार के मार्ग में कौन सी बाधा है कि वह रुपये का मूल्य और अधिक ऊंचा 1 शिलिंग 6 पेंस अथवा 1 शिलिंग 9 पेंस अथवा 2 शिलिंग नहीं कर देती ? उस स्थिति में तो लाभ इस समय के लाभ से भी बढ़ चढ़कर होगा। जब लार्ड जार्ज हैमल्टन यह मानते है कि इस कृत्रिम वृद्धि से किसी भारतीय को कोई हानि नही हुई तो फिर सरकार इस आश्चर्य-जनक सरल और सीधे उपाय से अपने संसाधनों में वृद्धि क्यों नही करती ?[82]

कुछ अधिक सचेत राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के अनुसार रुपये की मूल्यवृद्धि से देश द्वारा

इंग्लैंड को भेजे जाने वाले धन की बचत अथवा धन की निकासी में न्यूनता का दावा सर्वथा असंगत, 'कोरी कल्पित कथा तथा दुर्भाग्यपूर्ण भ्रांति', था।[83] उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि एकपक्षीय तथा कृत्रिम रूप से रुपये के स्वर्ण मूल्य में वृद्धि से भारत को इंग्लैंड को दिए जाने वाले सोने के भुगतानों में एक पैसे की भी बचत नही हो सकती। गृह प्रभारों की पूर्ति विदेशों में भारतीय सामग्री को भेजकर की जा रही है। उस निर्यातित सामग्री की मात्रा विदेशी बाजार में उसके सोने के मूल्य के परिप्रेक्ष्य मे ही निर्धारित की जाती है न कि भारत में उनके रुपये के मूल्य के परिप्रेक्ष्य में। अभी अभी वर्तमान में ही सभी पदार्थों के स्वर्णमूल्य में गिरावट के कारण भारत को अपने उत्पादनों को अधिक मात्रा में भेजने के लिए विवश होना पड़ा है। जब तक इन पदार्थों के स्वर्णमूल्य मे वृद्धि नही होती, तब तक भारत सरकार भले ही नए कर लगाकर उत्पादन जुटाए अथवा पुराने पदार्थों की क्रयशक्ति मे वृद्धि करे; प्रत्येक स्थिति में भारत को उतनी मात्रा मे ही अपने उत्पादनों का निर्यात करना पड़ेगा जितना वह अब तक करता आ रहा है।[84] दादा भाई नौरोजी का तो यहां तक मत था कि यदि भारत ने स्वर्णमान को भी अपनाया होता तो विनिमय से होने वाले घाटे को टाला नहीं जा सकता था।[85] उनकी धारणा थी कि वास्तव मे भारत की स्थिति स्वर्ण प्रयोग करने वाले और स्वर्ण मे ऋण का भुगतान करने वाले ऋणी देश की ही थी।[86] दादाभाई ने आगे कहा कि 'परंतु इसका अर्थ यह कदापि नही कि विनिमय में घाटे का देश पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा। घाटा तो था ही परन्तु यह स्वर्ण मूल्य मे वृद्धि का ही परिणाम था। भारत की मुद्रा मे परिवर्तन मे इस घाटे को कम नही किया जा सकता।' केवल स्वर्ण के मूल्य मे परिवर्तन से ही भारत को बचाया जा सकता है अथवा उसके घाटे को और अधिक बढाया जा सकता है।[87] करेंसी कमेटी के सामने बयान देते हुए 1893 मे दादाभाई ने राष्ट्रवादी स्थिति को अत्यंत सारगर्भित ढंग से अभिव्यक्ति दी। सर थामस फारर के इस प्रश्न के उत्तर में कि एक ओर आप मानते है कि भारत विनिमय में गिरावट से विपन्न है और साथ ही दूसरी ओर कहते है कि विनिमय मे बढ़ोतरी से भारत को कोई लाभ नही होगा ? दादाभाई ने उत्तर दिया.

> अरे, नही, मैने यह बिलकुल नही कहा। अरे, नही, यह मैने कभी नही कहा। मैने तो कहा है कि भारत को स्वर्ण मूल्य के अनुसार ही लाभ-हानि होगी। यदि स्वर्ण मूल्य मे गिरावट आती है जिसका अर्थ है विनिमय मे बढोतरी तो अन्य स्थितियो के पूर्ववत होने पर भारत को अपने उत्पादन कम परिमाण मे भेजने होगे। यदि स्वर्ण के मूल्य में और अधिक ऊंची वृद्धि होती है, दूसरे शब्दों मे यदि विनिमय मे और अधिक गिरावट आती है तो भारत को अपने उत्पादन और अधिक मात्रा मे भेजने पड़ेंगे।[88]

कुछ भारतीय नेताओ का यह निश्चित मत था कि रुपय की मूल्यवृद्धि से भारत मे धन की निकासी बढ़ जाएगी क्योंकि इससे स्टर्लिंग के दायित्व खाते मे कोई निवृति तो नही मिलेगी, चांदी के रूप में लोक ऋण बढ़ जाएंगे। इनमे से अधिकांश ऋण रुपये के मूल्य वृद्धि की सीमा तक इंग्लैंड में थे।[89] इसी प्रकार उन्होंने यह भी निर्देश किया कि सरकारी उपायों का भी प्रभाव यह होगा कि भारत के प्रशासन का व्यय बढ़ जाएगा क्योंकि

यूरोपीय अथवा भारतीय सरकारी कर्मचारियों को बढ़े हुए रुपयों मे वेतनों का भुगतान करना पड़ेगा। इसका अर्थ होगा कि कोटि कोटि सम्पदा उत्पादकों तथा भारत को समृद्ध बनाने वाले श्रमिकों के श्रम से अर्जित सम्पत्ति उनके हाथ मे छीन कर भक्षको के हाथ में सौपना।[90]

डी० ई० वाचा ने एक अन्य परोक्ष परंतु हानिप्रद प्रभाव की ओर ध्यान दिलाया, भारत स्वर्णमानवाले देशो के साथ नकारात्मक व्यापार-सतुलन रख सकता था क्योंकि चीन तथा अन्य रजत प्रयोक्ता देशो के साथ उसका सकारात्मक व्यापार सतुलन था। नया मुद्रा अधिनियम दूर के पूर्वी देशो मे भारत के निर्यात को घटाकर इग्लैंड को भेजी जाने वाली रकम को भेजने का काम अधिक कठिन बना देगा।[91]

रुपये की मूल्यवृद्धि के हानिप्रद प्रभाव

भारतीय नेताओ ने भारत सरकार के मुद्रा अधिनियम की अर्थता को सिद्ध करने के अतिरिक्त उसके द्वारा भारतीय जनता विशेषत: उत्पादक वर्ग के आर्थिक हितो को पहुचाई जा रही वास्तविक अथवा सभावित निश्चित हानि की ओर ध्यान दिलाया।

सर्वप्रथम, उन्होंने दावा किया कि रुपये की मूल्यवृद्धि भारत के देशी उत्पादको के प्रति पक्षपातपूर्ण रही है।[92] कइयो का तो मत था कि मुद्रा मे परिवर्तन ने देश के विदेश व्यापार पर घातक प्रभाव डालकर देश पर व्यापारिक अनुपयोगिता थोप दी है।[93] व्यापार के सबध म उनकी चिता प्राय दिखावटी ही थी। वास्तव म वे उद्योग स ही घनिष्ठ रूप से सबधित थे। वे रुपये की मूल्य वद्धि के कुल मिलाकर भारत के विदेश व्यापार पर अथवा यहा तक कि निर्यात व्यापार की समग्रता पर उसके दुष्प्रभाव से वास्तव मे भी चिंतित नही थे। उनके क्रोध के भड़कने का मुख्य कारण यह था कि भारत से चीन और जापान को किए जा रहे सूत के निर्यात का भविष्य दुर्दशाग्रस्त हो गया था क्योंकि भारत की इन दोनो देशो के उत्पादको से प्रतियोगिता थी और इन दोनो देशो ने या तो रजत मान अपनाए रखा था अथवा चादी और सोने के बीच विनिमय का निम्न अनुपात बनाए रखा था। इसके फलस्वरूप इन देशो के उत्पादको ने मूल्य के सदर्भ मे भारतीय उत्पादकों को पिछाड दिया।[94] सक्षेपत भारतीय नेता व्यापक रूप म सूती वस्त्र उद्योग के भविष्य के प्रति ही अधिक चिंतित थे जिस पर उस समय तक पूर्वी व्यापार सशक्त रूप से छा गया था।[95] उन्होने शीघ्र ही उच्च स्वर मे आर्त क्रदन करते हुए कहना प्रारभ कर दिया कि रुपये की मूल्यवृद्धि के फलस्वरूप भारतीय सूती वस्त्र उद्योग पगु और अस्तव्यस्त हो गया है।[96] उदाहरणार्थ, जी० के० गोखले ने 1902 मे यह आरोप लगाया कि सरकार के मुद्रा कानून के फलस्वरूप भारत के सूती वस्त्र उद्योग मे बड़े पैमाने पर भयकर मदी आई है।[97] और अम्बालाल शकरलाल देसाई ने 1904 की भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को सूचित किया कि पिछले कुछ वर्षों मे चीन के साथ विनिमय मे गिरावट (वृद्धि) के कारण बबई की बीस मिलो का दिवाला पिट गया है।[98] इस सबध मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण को भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के 18वें अधिवेशन मे स्वय एक सूती कपडा मिल के मालिक वी० डी० ठाकरसी ने अत्यत सरलता और सक्षेप से प्रस्तुत किया। उन्होने दृढ़तापूर्वक कहा :

'वर्तमान में हुए मुद्रा परिवर्तन के कारण देश के कताई उद्योग को पिछले कई वर्षों से भयंकर संकट की स्थिति से गुजरना पड रहा है।' उन्होंने अपनी धारणा को प्रकट करते हुए कहा: 'रुपये की मूल्यवृद्धि ने रजत प्रयोक्ता चीन के साथ विनिमय मे गंभीर वृद्धि ला दी है और इससे भारतीय उद्योग को चीन के बाजार में हानि पहुची है। इसके विपरीत जापानी वस्त्र उद्योग को जिसे किसी भी इस प्रकार की बाधा का शिकार नही होना पड़ा —परोक्ष रूप में लाभ ही पहुचा है। फलत जापान चीन की एक तिहाई से अधिक माग की पूर्ति करने में समर्थ हो गया है।' उन्होंने दुखित स्वर में कहा 'मुझे इसमें कुछ भी विस्मय नही होगा, यदि एक दिन जापान भारी बाजार पर उसी प्रकार कब्जा जमा लेगा, जिस प्रकार कभी भारत का था।'... हमारे प्रतियोगियों का इस पूर्व में 20 रुपये प्रति गांठ का उपहार ही है जिसने हमारे कताई-बुनाई उद्योग को आर्थिक दृष्टि से विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।'[99]

राष्ट्रवादी दृष्टिकोण सही था अथवा नहीं इसकी जांच में न पड़ते हुए हम इतना ही कहना चाहेंगे कि व्यापार का मूल व्यापार की अत्यंत संकीर्ण दृष्टि से देखने का उनका दृष्टिकोण तथा चिन्तन [illegible] अवमूल्यन से विदेश व्यापार को पहुची हानि अथवा सरकारी मुद्रानीति से विदेश व्यापार को पहुचे लाभ पर आधृत था। उसकी समीक्षा उसे सर्वथा अप्रासंगिक ही सिद्ध करती है। एक बार यह स्वीकार कर लेने पर, जैसा उनके बहुत सारे समीक्षकों ने किया है कि रुपए की मूल्यवृद्धि से (भले ही कितना आंशिक क्यों न हो) भारत के चीन और जापान को होने वाले सूत के निर्यात पर बुरा प्रभाव पड़ा है[100] तो भारतीय पक्ष भारी हो जाता है। वस्तुतः भारतीय राष्ट्रवादी नेता स्वयं ही अपनी एकपक्षीय मान्यता पर कि सूती उद्योग में गिरावट एकान्ततः मुद्रा परिवर्तन का परिणाम थी पुनर्विचार करने लगे। उदाहरणार्थ डी० ई० वाचा ने 1901 में स्वीकार किया कि गिरावट लाने में अन्यान्य कारण जैसे उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि, अकुशल प्रबंध व्यवस्था, प्लेग, अकाल का भी थोड़ा बहुत योगदान है। उन्होंने पुनः इस बात को दोहराया कि सरकार की मुद्रा नीति के विरुद्ध शिकायत करने वालों द्वारा अतिरंजित रूप में प्रस्तुत हानियों की सीमा तक संभवत न सही परंतु वह निश्चित रूप से हानिप्रद अवश्य रही है।[101]

भारतीय नेताओं ने वस्त्र उद्योग के संबंध में प्रस्तुत आधारों के सदृश ही निम्न विनिमय की आवश्यकता रखने वाले चाय तथा अन्य बागान उद्योगों की भी उन्हीं आधारों पर वकालत की।[102] वे इन उद्योगों से संबंधित संघर्ष के प्रति विशेष उत्साही नहीं थे। उन्होंने कांगड़ा की तराई में चाय बागान मालिक कैप्टन ए० बैनन जैसे कुछ अंग्रेज चाय बागान मालिकों का समर्थन पाने के लिए ही इस विषय को उठाया था।[103]

यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि मुद्रा समस्या के दोनों राष्ट्रवादी विशेषज्ञों, दादाभाई नौरोजी और डी० ई० वाचा, ने भारत सरकार पर आरोप लगाया कि वह मुद्रा प्रश्न पर विचार करते समय विदेश व्यापार की आवश्यकताओं पर ही केवल ध्यान देती है और मुद्रा की कठोरता की अपेक्षा उसकी अधिकता चाहने वाले अधिक महत्वपूर्ण आंतरिक व्यापार की आवश्यकताओं की उपेक्षा करती है।[104]

1893 और 1898 के मुद्रा परिवर्तनों पर राष्ट्रीय आलोचना का दूसरा आधार कृषकों पर पड़ने वाला उनका घातक प्रभाव था। उन्होंने यह आरोप लगाया कि इन परिवर्तनों से उस बेचारे को कमरतोड़ बोझ उठाना पड़ेगा।[105] सरकार की इस मुद्रानीति से वह बेचारा निम्नलिखित रूप से बुरी तरह से प्रभावित होगा :

प्रथम, निर्धन कृषकों और निर्धन श्रमिकों की अकाल तथा अन्य दैवी संकटों को सहन करने के प्रमुख साधन रूप बचतें प्रमुख रूप से चांदी के गहनों के रूप में ही मिलती हैं। चांदी की उपभोग वस्तु के रूप में उसकी कीमत मे गिरावट रुपये के रजतमूल्य में गिरावट के स्तर तक सहसा ही उन बचतों के मूल्य को घटा देगी।[106] आर० सी० दत्त ने भारत के गरीब आदमी की बचतों के एक तिहाई भाग को हडपने की सरकार की चेष्टा पर टिप्पणी की :

> गरीब आदमी की बचत को इस बुरे ढंग से प्रभावित करने वाली कोई भी योजना एक पल के लिए भी इंग्लैंड में वहा के लोगों द्वारा सहन नही की जा सकती और यह मानना भी संभव है कि यदि ऐसी योजना इटली जैसे निर्धन औपनिवेशिक देश में लागू की जाती तो प्रायद्वीप के एक छोर से दूसरे छोर तक क्रांति की आग भडक उठती।[107]

1902 में जी० के० गोखले ने बताया कि चांदी धातु के मूल्य में उस समय भी गिरावट आई है जबकि उपभोग की वस्तुओं के मूल्यों में कोई परिवर्तन नही आया।[108] इस संबध में 'अमृत बाजार पत्रिका' और 'मराठा' ने सरकार को यह भारी भूल सुधारने के लिए निम्नलिखित रोचक सुझाव दिए : प्रथम, सरकार टकमालों के बन्द होने मे पहले की चालू कीमत पर लोगों से सारी चांदी खरीद ले और सोने में उस मूल्य का भुगतान करे।[109] द्वितीय, किसान और साथ ही साथ अन्य गरीब हिंदुस्तानी सामान्य रूप से कर्ज में डूबे हुए हैं। रुपये की कीमत बढ़ाने का अर्थ हुआ उन बेचारों के ऋण में बढोतरी करना अथवा आर० सी० दत्त के शब्दो मे : 'दरिद्र वर्ग की विपन्नता पर पलने वाले समृद्धवर्ग के लाभों मे और राशि जोडना तथा गरीब और कर्जदार की गर्दन को जकडे चक्की के पाट को और अधिक भारी बनाना है।'[110] तृतीय, किसान को कृत्रिम रूप से ऊंची कीमतवाले रुपयों मे अपना भूराजस्व चुकाना पडेगा। इसका अर्थ यह होगा कि किसान को अब निर्धारित लगान को चुकाने के लिए अपेक्षित उतनी संख्या के रुपयों मे अपना भूराजस्व चुकाना पडेगा। इसका अर्थ यह होगा कि किसान को अब निर्धारित लगान को चुकाने के लिए अपेक्षित उतनी सख्या के लिए रुपयों की प्राप्ति के लिए पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में अपने उत्पादन को बेचना पडेगा। दूसरे शब्दों में रुपये की मूल्य वृद्धि से करों पर पड़ने वाला गुप्त भार अधिकांशत. बेचारे किसान को ही उठाना पडेगा।[111] इसी तर्क के आधार पर भारतीय नेताओं ने इस तथ्य का उल्लेख किया कि जहां भी भूमि का किराया नक़दी चुकाना पड़ता है, वहां उसमें भी वृद्धि हो गई।[112]

यदि कृषकों और उद्योगपतियों को सरकार की मुद्रा नीति के फलस्वरूप हानि उठानी पड़ रही है तो फिर इसका लाभ किसे हो रहा है? भारतीय नेताओं का निश्चित मत था कि इस विशेष सन्दर्भ में न केवल नए कर थोपने की विवशता से अथवा अपने खर्चों में

कटौती की आवश्यकता से बचने के लिए प्रत्युत भारत में रहने वाले विविध यूरोपीय वर्गों और समुदायों की सहायता के लिए संक्षेपतः ब्रिटेन के लाभ के लिए सरकार ने भारतीयो के हितो की बलि चढाई।[113] उनके अनुसार रुपये की मूल्य वृद्धि के विविध परिणामों मे प्रथम था सरकारी कर्मचारियो के विशेषत भारत के लिए भार रूप ब्रिटिश कर्मचारियों की सेना, के वतनो मे अनुपार्जित वृद्धि।[114] द्वितीय, विदेशी व्यापारियों की सुविधा को प्राथमिकता दी गई है ताकि मुट्ठी भर अगरेज ससार के किसी भी सभ्य देश मे व्यापारियो द्वारा झेले जाने वाले सामान्य खतरो से मुक्त होकर शात और स्थिर चित्त से अपना स्वर्णिम व्यापार चला सके।[115] तृतीय, नए मुद्रा कानून के अंतर्हित उद्देश्यो मे एक था भारत मे विदेशी पूजी के प्रवाह को सुविधाजनक बनाना।[116]

टकसाल बद होने से किसानो को हानि पहुचने का राष्ट्रवादियो का तर्क इस अनुमान पर, जिसे सरकार ने भी समान रूप से स्वीकार किया था, आधृत था कि उसके परिणामस्वरूप रुपये की कमी रुपये की क्रयशक्ति को बढा देगी। परतु थोडे से वर्षों, 1893-1899 की मध्यावधि, को छोडकर यह मौलिक अनुमान विशेषत. अनाज के मामले मे सत्य न सिद्ध हुआ। जैसी राष्ट्रवादियो ने भविष्यवाणी की थी, टकसालो के बद होते ही तत्काल उत्पादित सामग्री और कृ[illegible]री कच्चे सामान के मूल्य तो गिर गए परतु अनाज के मूल्य मे केवल 1894-1895 और 1899 के वर्षों मे 1893 के स्तर तक उल्लेखनीय गिरावट आई।[117] इस स्थिति के जिम्मेदार विभिन्न कारणो से यू तो हमारा कोई सबध नही, फिर भी भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने जिस ढग से अपने स्वीकृत मत के गलत सिद्ध होने पर जो कुछ भी किया, उसे समझना उचित ही होगा।

मुद्रा परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामान्य मूल्य स्तर मे गिरावट की स्वीकृति के विरुद्ध आर० सी० दत्त का प्रत्युत्तर 1898 मे इस तथ्य का पोषक था कि कम से कम खाद्यान्नो की कीमते सचमुच ही गिर गई थी और इससे कृषको का चिंतित होना स्वाभाविक था।[118] दूसरी ओर 1902 मे जी० के गोखले ने एकदम स्वीकार किया कि सामान्य मूल्य अपने को नए रुपये के सदर्भ मे शीघ्रता से ढाल नही पाए है। उनके मत मे व्यवस्थित होने मे इस ढील के लिए उत्तरदायी कारण गैरआर्थिक थे, जैसे, भारत जैसे पिछडे देश मे परंपरा की शक्ति, 1896-1901 की अवधि मे व्यापक रूप मे अकाल की स्थिति का बने रहना, तथा अन्य विभिन्न वाह्य परिस्थितिया। उन्हे अपने मन मे पूरा विश्वास था कि ये तत्व बहुत देर तक बने नही रह सकते और रुपये के मूल्य मे कृत्रिम वृद्धि के अनुरूप ही शीघ्र अथवा देर मे मूल्यो मे सामान्य गिरावट आएगी।[119] डी० ई० वाचा के अनुसार मूल्यों की गिरावट को रोकने वाला एक विशेष और वास्तविक कारण 1901 मे 14 करोड़ रुपयों के नए सिक्के जारी करना था। उन्होने 1901 में टिप्पणी की कि सरकार के इस पग ने न केवल रुपयो की अतिशयता की धारणा के भ्रम का पर्दाफाश कर दिया है प्रत्युत देश मे धन के अभाव को भी कम किया है।[120] थोड़ी अप्रासंगिकता के साथ यहा हम यह कह सकते है कि कम से कम एक राष्ट्रवादी पर्यवेक्षक बंगाली अपने 28 जून 1898 के अंक मे 'प्राप्त सफलता का कोई मुकाबला नहीं,' इस कहावत की उपेक्षा करने में और इस तथ्य को खोज निकालने में सफल हो गया कि स्टर्लिंग के संदर्भ

में रुपये की सुधरी स्थिति यह प्रमाणित नहीं करती कि टकसालों का बंद करना एक उचित नीति थी तथा न ही यह सिद्ध होता है कि रुपये की सुधरी विनिमय स्थिति में इस नीति का कोई योगदान है। वस्तुतः यह सुधार तो बाजार से कौंसिल बिल को लौटा लेने का और राज्य सचिव के निरंतर ऋण लेने का परिणाम था। 1893 के अधिनियम के प्राकृतिक प्रवर्तन से ये बातें सर्वथा भिन्न थी।[121]

राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण को सर्वाधिक सुदृढ़ समर्थन दादाभाई नौरोजी से मिला। उनकी सफाई का मुख्य आधार देखने मे ही सरल था। उन्होने दृढतापूर्वक कहा कि मूल्य गिरें या बढें, वास्तव मे राष्ट्रीय दृष्टिकोण के लिए इसका कोई विशेष महत्व नही। उन्होने निर्देश किया कि मूल्यों के उतार-चढाव तो कई तत्वों का सम्मिलित प्रभाव होता है, अत. मूल्य के संदर्भ में किसी एक तत्व को महत्व देना अथवा उसे उत्तरदायी ठहराना सर्वथा भ्रम है। सही आर्थिक विश्लेषण के लिए टकसालों के बद होने के वास्तविक तथा पूर्ण प्रभाव को अन्य पक्षो से अलग करके उसकी अपनी ही समग्रता मे उसकी जाच करनी चाहिए। समस्या को इस ढंग से देखते हुए नौरोजी का निश्चित मत था कि इस मान्यता का कि रुपये के सोने और चांदीगत मूल्य में वृद्धि के फलस्वरूप किसान को सरकार को राजस्व की अपेक्षाकृत ऊंची रकम चुकानी पडती है, वस्तुओ के वास्तविक यत्किंचित मूल्य के संदर्भ मे एक नितात स्वतंत्र रूप था। यदि किन्हीं अन्य तत्वों के प्रवर्तन मे वस्तुओं के वास्तविक मूल्य मे गिरावट नही आती तो इसका अर्थ केवल यह है कि मुद्रा परिवर्तन यदि न होता और अन्य तत्वो का प्रवर्तन जारी रहता तो वस्तुओ के मूल्य और अधिक बढ जाते तथा किसान को उसी मात्रा मे लाभ होता। इस प्रकार सरकार ने टकसालों को बंद करने के कपटपूर्ण उपाय द्वारा किसान को अन्य लाभप्रद तत्वो के लाभो से वचित कर दिया है। उन्होने अपनी इस चिंतन पद्धति को एक अन्य रूप मे भी अभिव्यक्ति दी। उनके अनुसार पुराने रुपये और नए रुपये के रजतमूल्य मे अतर आ गया है पुराने रुपये का मूल्य 184 ग्रेन चादी था और नए का मूल्य 269 ग्रेन हो गया है, इससे विशिष्ट बाजार मे और विशिष्ट समय मे वास्तविक मूल्य स्तर मे सर्वथा भिन्न चांदी के इन दो भिन्न परिमाणो से नियंत्रित उपभोग वस्तुओ के मूल्य के मध्य एक अतर तो सदा बना रहेगा और रुपये की मूल्य वृद्धि मे किसी भी घडी मे मूल्य मे आने वाला अतर किसान को होने वाला घाटा ही कहलाएगा।[122]

राजनीतिक आशय

राष्ट्रवादियो के सैद्धातिक दृष्टिकोण का कि भारत सरकार की मौद्रिक कठिनाइयो का मूल कारण गृह प्रभार थे, एक उपपरिणाम यह विश्वास था कि यदि भारत राजनीतिक दृष्टि मे स्वतत्र होता तो मुद्रा समस्या उत्पन्न ही न होती।[123] अब, जब समस्या उत्पन्न हो गई है; इससे निपटने के लिए सरकार को भारतीय जनता और उसके प्रतिनिधियो से परामर्श करना चाहिए।[124]

जब राष्ट्रीय विरोध के बावजूद 1893 मे निजी तौर पर सिक्के ढालने के लिए टकसालें बद कर दी गई और बाद मे भारत मे स्वर्णमान को लागू करने की कार्यवाही की

गई तो बहुत सारे भारतीयों ने यह असंतोषजनक निष्कर्ष निकाला कि वास्तव में भारत का शासन भारतीयों के हित में नहीं है बल्कि किसी अन्य के हित साधन के उद्देश्य के लिए है। इस तथ्य को 'मराठा' ने अपने 12 मार्च 1893 के अंक में इस प्रकार वाणी दी : सिद्धांततः वर्तमान सरकार अफसरों की, अफसरों के लिए और अफसरों द्वारा संचालित है।[125] 1898 मे आर० सी० दत्त ने शोकविह्वल होकर कहा : 'भारत सरकार की कार्यवाही से तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस देश का कार्य भारत सरकार के लिए और विदेशी व्यापारियों के लिए सुविधा जुटाना ही है। ऐसा दिखाई देता है कि इस देश की अपनी प्रसन्नता का तो जैसे कोई महत्व ही नही और इस देश के प्रतिनिधियों का मत तो जैसे बेकार ही है।'[126] दादाभाई नौरोजी ने भी 1898 मे इंडियन करेंसी कमेटी को प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में इसी तथ्य को इसी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया :

> सत्य यह प्रतीत होता है कि भारत एक उस लावारिस शरीर के समान है जिसे कोई भी अनाड़ी अपनी वैज्ञानिक शोध के लिए चीर-फाड़ सकता है, किसी भी प्रकार के अशिष्ट, क्रूर तथा अविवेकपूर्ण प्रयोग उसपर कर सकता है। उस शरीर पर क्या बीतती है, इसकी क्या चिंता ? भारत हमारा क्रीत दास है, इसे कुछ भी अदा करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।···सरकार यहा तो करदाताओं के साथ ऐसी क्रीडाओं का साहस ही नहीं कर सकती। भारत मे तो सरकार केवल विदेशी (सरकारी तथा गैरसरकारी) हितों की ही सर्वप्रथम चिंता करती है और बाद में ही प्रजा के हितों पर ध्यान देती है। जहा तक विदेशी हितों का संबंध है, वहा तो सरकार प्रजा की कदापि कोई चिंता ही नही करती।[127]

वस्तुत: मुद्रा रोग के राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा निरूपित लक्षण और उनके अनुरूप सुझाए गए उपचार मे गहरे राजनीतिक आशय निहित थे। गृह प्रभारों को समाप्त करने अथवा कम से कम उनमे भारी कटौती करने और सैनिक व्यय घटाने की सलाह देना एक प्रकार से विदेशी शासकों को अधिकार त्याग के पथ पर आरूढ़ होने की बात कहना था। हा, इसमे संदेह नही कि कुल मिलाकर भारतीय नेताओं ने सरकार की मुद्रा नीति को जनता की राष्ट्रीय भावनाओं को उभारने के लिए एक हथियार के रूप मे इस्तेमाल किया। विनिमय की क्षतिपूर्ति के भत्ते के प्रति उनके दृष्टिकोण के अध्ययन से यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जाता है।

विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ता

मुद्रा सुधार के विषय से भी अधिक प्रमुख दूसरा गौण विषय विनिमय क्षतिपूर्ति के भत्ते का था जिसने भारतीयों के क्रोध और शत्रुता को भडका कर चरम सीमा तक पहुंचा दिया तथा भारतीय राष्ट्रवाद की आग भडका दी। विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ता वह भत्ता था जिसे भारत सरकार ने 1893 में स्थाई रूप से भारत मे न रहने वाले, यूरोपीय और यूरोपीय-एशियाई अधिकारियों को इंग्लैंड भेजी जाने वाली धनराशि मे रुपये के स्वर्ण मूल्य मे आई गिरावट से होने वाले घाटे की पूर्ति के लिए देना स्वीकार किया था। यह भत्ता इस परिमाण तक स्वीकार किया गया था कि एक अधिकारी 1 शिलिंग 6 पेंस प्रति

रुपये की रियायती विनिमय दर पर 1000 पौंड प्रति वर्ष की अधिकतम सीमा तक अपना आधा वेतन यूरोप को भेज सकता था। इंग्लैंड को धन भेजा गया है अथवा नही, यह देखे बिना ही यह भत्ता दे दिया जाता था।[128] इससे इन सरकारी अधिकारियों के वेतन मे वास्तविक वृद्धि हो गई। इस बढ़े हुए धन की राशि 1893-98 की अवधि में लगभग 5 करोड़ रुपये थी। 1895-6 में जब यह अधिकतम सीमा तक पहुच गई, तब यह रकम लगभग 1.33 करोड़ रुपये थी।[129]

जब ब्रिटिश अधिकारियों ने प्रारंभ मे विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते की माग रखी तो भारतीय नेताओ ने उसका तीव्र विरोध किया। बाद मे जब सरकार ने इस माग को स्वीकार कर लिया तो सरकार की इस कार्यवाही के विरुद्ध विरोध का तूफान उठ खडा हुआ जो बाद मे वर्षों तक चलता रहा। इस भत्ते की निंदा करते समय राष्ट्रवादियों ने बडी ही कठोर और चुभती भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने यूरोपीय अधिकारियो के विरुद्ध घृणा की भावना को भडकाया। इस कार्यवाही से उत्पन्न देशवासियों की घृणा के स्वरूप, परिमाण, यहा तक कि उसके स्तर को, अपनी नरमी के लिए विख्यात नेताओ द्वारा प्रदर्शित निर्भीकता को 'कैसरे हिंद' के 27 अगस्त 1893 के अक की टिप्पणी के निम्नलिखित अवतरण मे बड़े ही सुदर रूप मे प्रदर्शित किया गया है .

> जब कभी निष्पक्ष इतिहास 19वी शताब्दी के अत की अवधि के ब्रिटिश प्रशासन के व्यवहार पर अनश्वर निर्णय को अभिलिखित करेगा तो उसके किसी भी भाग मे विदेशी शासको की, प्राचीन अथवा आधुनिक काल के इतिहास मे अनुपलब्ध, फिजूलखर्ची के रूप मे सहानुभूतिहीनता के लिए और शासनतंत्र की व्यवस्था हेतु इस महान देश के असहाय और बेजबान लोगो पर कमरतोड तथा निर्दयतापूर्ण बोझा डालने मे बरती जाने वाली बेहिसाब क्रूरता के लिए अति कठोर निंदा के अतिरिक्त और क्या होगा ? हेस्टिंग्स स लेंसडौन के दिनों तक भारत सरकार की वित्तीय भूलो और निर्दय लूट की एक दु:खद और विशाल सूची रही है परंतु उनकी बुद्धि मे कदाचित यह सूची न अधिक भारी होगी और न ही अधिक विस्तृत। उन्होंने पिछले अन्यायों और पिछली गलतियों के ढेर को वर्तमान के अपेक्षाकृत अधिक बडे अन्यायों और गलतियों से पीछे धकेल दिया है। यह असम्मानप्रद तथा अशोभन कार्य लार्ड लेंसडौन के लिए ही सुरक्षित था और कौन कहेगा कि उसने निर्लज्जतापूर्ण धृष्टता और विवेकहीन उत्तरदायित्व से अपना कार्य नही किया। ऐसा अनुमान है कि इस साहस और उत्तरदायित्व के लिए तो उन्हें ब्रिटिश अभिजातवर्ग मे उच्चतम पद पर प्रतिष्ठित करने के रूप मे पुरस्कृत ही किया जाएगा। लेंसडौन की उच्च पदवी ने परमादरणीया महारानी की भारतीय प्रजा के लाखों लोगों का बहुत ही अहित किया है। इसमे सदेह नही कि महारानी महोदया उसकी लार्डशिप को और अधिक उन्नत करेंगी और इसमे संदेह नहीं कि उसे ड्यूक के पद से अलंकृत करेंगी। संशोधित मुद्रा अधिनियम तथा विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते के लेखक होने के नाते उसके सम्मान असम्मान की कौन शिकायत करेगा। इस अधिनियम तथा भत्ते के द्वारा विदेशी करभक्षी दैत्यों के लिए भूखों मरते भारतीय करदाताओं के मूल्य पर गुलछर्रे उड़ाना

संभव हो गया है। इस प्रकार लार्ड लेंसडोन ने अपनी शासन सत्ता को स्मरणीय बना दिया है। उसने लार्ड लिटन द्वारा प्रारंभ किए गए और लार्ड डफरिन द्वारा जारी रखे गए अवर्णनीय लालच के क्षेत्रीय तथा वित्तीय चक्र के प्रवर्तन को पूरा कर दिया है। क्या यह कहने की आवश्यकता है कि देश के प्रशासन द्वारा गलती, अन्याय, लूट और छीना झपटी के दिन दहाड़े किए जाने वाले कार्यों पर हम क्रोध से जल रहे है। हम यह देखने के इच्छुक हैं कि इन गैरईसाई काम करने वालों के साथ न्याय हो। इस विषय पर और अधिक कहने की हममे हिम्मत नही है। ऐसा बिल्कुल नंगा लूटपाट का काम सर्वथा अदृष्टपूर्व ही है। कोई जनता की थोड़ी सी भलाई करने वाली सरकार ऐसे काम से शर्मिंदा हो उठती। परंतु यह मानना शायद गलत नही कि ब्रिटिश सरकार ईसाई तथा ईमानदार सरकार है अत: उसे एक के आनंद के लिए दूसरे को लूटने-खसूटने का पूरा पूरा अधिकार प्राप्त है।[130]

अन्य समाचारपत्रो ने भी बडी तीव्र प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की तथा विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते की स्वीकृति को इन शब्दों मे वर्णित किया : 'लूट', 'क्रूर कृत्य', 'डाका'।[131] कलकत्ता की इंडियन एसोसिएशन और पूना की सार्वजनिक सभा ने इस कार्यवाही के विरुद्ध भारत सरकार के पास विरोधपत्र भेजे।[132] 1893 मे हुए अपने अधिवेशन मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस भत्ते के विरुद्ध तीव्र विरोध अभिलिखित किया।[133] फलत: अगले 10 वर्षों तक कांग्रेस के कार्यक्रमो मे, जारी भत्ते को समाप्त करने की माग के प्रस्ताव पास होते रहे।[134] सरकार की इस कार्यवाही की निंदा मे सभी सार्वजनिक नेता एकजुट हो गए। उदाहरणार्थ सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने इस कार्यवाही को 'एक पाप कृत्य और पाप मे भी निकृष्ट कृत्य' तथा 'परले दरजे का लज्जाजनक कृत्य' बतलाया। उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा कि ऐसी कार्यवाही करने वाली सरकार को भी क्या सभ्य, ईसाई तथा सही आचरण करने वाली सरकार कहा जा सकता है ?[135] दादाभाई नौरोजी ने इस कार्यवाही को 'निर्धन भारत मे हृदयहीन, मनमानी और क्रूर छीना झपटी' कहा और इसे शाइलाक के दुष्कृत्य से भी बुरा बताया क्योंकि उसने शर्त के अनुसार मास का पौंड मागा था परंत यह सरकार तो भारतीयो का खून भी साथ ही चूस रही है।[136]

भारतीय नेताओ ने विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते के अन्याय को बड़ी तत्परता और गहरी रुचि के साथ इसलिए अनुभव किया कि भारत सरकार के बजट पर यह अतिरिक्त भार उस समय लादा गया था जब पहले ही वह जटिल कठिनाइयों मे परेशान थी, नई परेशानिया उसके चारों ओर मडरा रही थी और देश पर नए करों के लगाने का खतरा उपस्थित हो गया था जो सीमा शुल्कों के रूप मे शीघ्र ही सामने आया।[137] वस्तुत: भारतीय नेताओं को ऐसा प्रतीत हुआ कि नए कर विनिमय मुआवजा भत्ते की ही प्रत्यक्ष उपज थे और ये कर सरकारी अधिकारियों के हित मे ही लगाए जा रहे थे। भारतीय नेताओं के अनुसार यह कार्यवाही सचमुच सुबह से शाम तक मरने पिसने वाले और इतने पर भी पूरा भोजन न पा सकने वाले तथा अतिरिक्त करों का भार उठाने में सर्वथा असमर्थ भारतीयों की कमाई पर पलने वाले उन यूरोपीय अधिकारियों की सहायता करना था जो कुछ कम पर भी निर्वाह कर सकते थे।[138] 1893 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को

संबोधित करते हुए सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने इस समस्या का चित्रमय विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा . 'उच्च वेतनभोगी सरकारी अधिकारियों द्वारा सामान्यत: प्रयुक्त मास-मदिरा जुटाने के लिए अब अभावग्रस्त भारतीय को अपने गेहूं, चावल और नमक की मात्रा को परिमित करना पड़ेगा।[139] एक अन्य अत्यंत क्रुद्ध समीक्षक नार्थवैस्ट प्राविंस और अवध के जमी उल उलुम ने लिखा 'भारत तो इन अधिकारियों के लिए वेतन ही कठिनता से जुटा पाता है जबकि ये डाकू इससे भी अधिक कुछ और की माग करते है।[139-A]

राष्ट्रीय नेताओ का यह निश्चित मत था कि विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ता न केवल भार-रूप था प्रत्युत अनुचित और अनावश्यक भी था। उन्होने बल देकर कहा सर्वप्रथम तो रुपये के स्वर्णमूल्य मे गिरावट से भारत स्थित यूरोपीय अधिकारियो को वास्तव मे कोई उल्लेखनीय क्षति नही पहुंची क्योंकि इग्लैंड मे भेजी जाने वाली रकम का घाटा वहा उप-भोग वस्तुओं के स्वर्ण मूल्य मे गिरावट आ जाने से पूरा हो गया है अथवा दूसरे शब्दो मे दादाभाई नौरोजी ने इसे 1886 मे इस प्रकार स्पष्ट किया यद्यपि यूरोपीय अधिकारियो को इग्लैंड भेजे गए रुपयों से पहले की अपेक्षा थोडा सोना मिलता है परंतु उस सोने की क्रयशक्ति पूर्वापेक्षा अधिक है।[140] द्वितीय, भारतीय नेताओ के अनुसार भारत स्थित सरकारी अधिकारियो के वेतन बहुत ही ऊचे थे, विशेषत: इंग्लैंड और भारत के मध्य संचार साधनों और सुविधाओ मे आए परिवर्तनों के संदर्भ मे तो विनिमय मे आई गिरा-वट के बावजूद वे बहुत ही ऊंचे थे।[141] तृतीय, कर्मचारियों को यह रियायत पाने का कोई अधिकार ही नही था क्योंकि वे तो केवल रुपयों मे ही वेतन पाने के लिए अनुबंधित थे। अत: विनिमय के अनुपात को बीच मे घसीटना सर्वथा अनुपयुक्त है। जब रुपये का मूल्य अतीत मे ऊचा था और भविष्य में जिसके 2 शिलिंग तक बढ जाने की संभावना थी, इन कर्मचारियों ने अनुबधित वेतन लेने से न तो भूतकाल में इनकार किया और न भविष्य में ही वे इनकार करेंगे।[142] इसके साथ ही गोखले महोदय ने टिप्पणी की : सरकार रेल कंपनियों को अब भी 5 प्रतिशत की दर से सूद का भुगतान कर रही है जबकि अब वह 2½ प्रतिशत की दर मे ऋण ले सकती है। उनका स्पष्ट कथन था : यदि वर्तमान अनुबंधों को भारत के बजट के पक्ष मे नहीं छेडा जा सकता तो उन्हें उसके विपक्ष में क्यों छेड़ा जाए।[143]

भारतीय नेताओं का यह भी निश्चित मत था कि इस भत्ते के निर्णय मे वस्तुत: सरकार न्यायप्रिय तथा निष्पक्ष ही नहीं रह सकी है।[144] प्रथम, यह भत्ता वेतन के आधे भाग (चाहे विदेश भेजा गया हो अथवा नहीं) पर न देकर वास्तविक रूप से भेजी गई रकम पर ही देना चाहिए था। द्वितीय, यह भत्ता केवल उन्ही अधिकारियों को देना चाहिए था जिनके सेवा में आ जाने के उपरात रुपये के मूल्य मे गिरावट आई है न कि उन लोगों को जिन्होंने जानबूझकर रुपयों में वेतन लेना स्वीकार किया है।[145] तृतीय, भारत सरकार ने अपने संबंधियों को उनकी शिक्षा के लिए विदेशों में रुपया भेजने वाले भारतीय अधि-कारियों को इस भत्ते के देने से इनकार करके रंगभेद की नीति अपनाई है।[146]

भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने इस सारे कांड से राजनीतिक परिणामों पर पहुंचने मे

चूक नही की विशेषतः भारत मे ब्रिटिश शासन के प्रयोजन को उन्होने शीघ्र ही जान लिया। उन्होने भारत सरकार पर आरोप लगाया कि उसने भारतीय जनता के हितों के साथ खिलवाड किया है और उनकी रक्षा के स्वीकृत दायित्व को नही निभाया है।[117] उन्होने शिकायत की कि जहा सरकार ने भारत की अत्यत अनिवार्य आवश्यकताओ, सफाई, समाज सुधार और प्रशासनिक सुधार, को आर्थिक तगी के आधार पर पूरा नही किया है, वहा उसने विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते की स्वीकृति के रूप मे भारतीय वित्तो पर अनुचित और अनावश्यक भार डालने मे जरा भी सकोच नही किया।[148] 22 अगस्त 1893 मे अमृत बाजार पत्रिका ने क्रुद्ध होकर लिखा 'दिनो मे लोगो की जान बचाने के लिए तो पैसा नही था, परतु भारतीय किसान के भाग्य पर पहले से मोटे हो रहे, भयकर रूप म ऊचे वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियो को और अधिक मोटा करने के लिए पैसा है?' जी० के० गोखले ने भी इसी प्रकार की शिकायत की .

जनता की शिक्षा पर नगण्य और शोचनीय सरकारी खर्चे मे पिछले पाच साल मे इस आधार पर वृद्धि नही हुई कि सरकार के पास खर्च करने के लिए और अधिक पैसा है ही नही और इधर सरकार ने कलम की एक चोट से ही शिक्षा पर होने वाले सारे खर्च से भी अधिक बडी धनराशि यूरोपीय अधिकारियो को भेट कर दी है।[149]

भारतीय नेताओ न इस बात की भी शिकायत की कि जहा उच्च वेतनभोगी ब्रिटिश अधिकारियो के वेतन मे परोक्ष वृद्धि हो गई है, वहा सरकारी कार्यालयो मे क्लर्क अथवा प्रबध अधिकारी के रूप मे नियुक्त भारतीयो के वेतन मे किसी प्रकार की बढोतरी नही हुई।[150]

इस सबने इस तथ्य की पुष्टि कर दी कि भारत पर एकातत. इग्लैड के हितो की दृष्टि स शासन किया जा रहा था। वस्तुत इस विषय पर चितन ने पर्याप्त सीमा तक कटुता उत्पन्न की। सामान्यतया आशावादी दादाभाई नौरोजी ने निराश होकर लिखा कि 'परतु, देखा यह गया है कि जब यूरोपीय हितों की बात सामने आती है तो कानून और दिल, दोनो हवा हो जाते हे और वस्तुत· मात्र निरंकुशता और शक्ति ही कानून और तर्क रह जाते है।[151] सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने कटु व्यग्य करते हुए टिप्पणी की :

यह विनिमय प्रस्ताव एक मूर्तिमान सिद्धात है जिसका भारत सरकार निरतर अनुसरण करती रही है। वह सिद्धात क्या है? हम इस धरती के सपूत है, हम इस धरती के दास है – लकडी काटने वाले, पानी खीचने वाले सेवक है। हमारा अस्तित्व तो इस नौकरशाही रूपी भगवान की सेवा के लिए ही है।[152]

'गुजरात दर्पण' ने 31 अगस्त 1893 के अक मे अपने क्रोध और कुठा को निम्नलिखित शब्दो मे वाणी दी

हमारे देश की जनता के तथाकथित सरक्षको की स्मृति से भी भगवान बचाए जिन्होने इस देश के तीस करोड लोगो को, जिनकी वे पैतृक स्नेह के साथ रक्षा का दावा करते है, वास्तव मे नरक मे धकेल दिया है। जब हमे यह ध्यान आता है कि हमारा देश विनाश के गर्त मे धकेला जा रहा है तो हमारे लिए संयम संभव नही हो पाता। इस देश मे बतखो की सेना मे राजहस इसलिए भेजे गए हैं कि इस देश के वासियों की रक्षा करे, उन्हे सुसभ्य बनाए, उन्हे सुधारें, उन पर शासन करे, उन पर पाव की ठोकर

मारें तथा आवश्यकता पडने पर उन्हें मौत के घाट उतारे। भगवान, हमे हमारे इन दोस्तो से बचाओ।[153]

बहुत सारे अन्य भारतीय नेताओं ने विनिमय क्षतिपूर्ति भत्ते द्वारा प्रदर्शित ब्रिटिश शासन की प्रकृति तथा भारत मे ब्रिटिश कर्मचारियों की भूमिका पर इसी प्रकार की तीखी, आलोचनापरक टिप्पणिया की।[154]

निष्कर्ष

पूर्वगामी समीक्षा से यह निष्कर्ष पुष्ट होता है कि भारतीय नेताओ ने रुपये के गिरते विनिमय के प्रति अपने दृष्टिकोण को निर्धारित करने मे एक ओर स्पष्टत विकासशील सूती वस्त्र उद्योग के और कृषको के हितो को प्राथमिकता दी और दूसरी ओर कुछ अन्य वर्गों और समुदायो के हितो की उपेक्षा ही नही, उनका विरोध तक किया।

एक ऐसा समुदाय वेतनभोगी भारतीयो का था जिनमे अधिकाश सरकार द्वारा नियुक्त थे। इनमे अपेक्षाकृत उच्च वेतनभोगी बडे पैमाने पर आयातित सामान के उपभोक्ता थे, वे एक निश्चित आय ही प्राप्त करते थे, टकसालो के बद होने के फलस्वरूप भारत मे मूल्यो मे आई गिरावट से यह वर्ग लाभ मे था। राष्ट्रीय नेताओ द्वारा इनके हितो का विरोध प्रच्छन्न और मौन ही नही था प्रत्युत कभी कभी प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप भी ग्रहण करता था।[155] इसी प्रकार रुपये की मूल्यवृद्धि से ऋणकर्ता साहूकार भी स्पष्टत लाभ मे था। राष्ट्रीय नेताओ ने यहा भी सूदखोर के प्रति किसी प्रकार का पक्षपात न दिखाया प्रत्युत भारत सरकार की मुद्रानीति के विरुद्ध सूदखोर के मुद्रापरिवर्तन से लाभान्वित होने की सभावना का एक प्रमुख तर्क के रूप मे ही प्रयोग किया। ऋणकर्ताओ तथा वेतनभोगी कर्मचारियो पर पडे करेंसी लैजिस्लेशन प्रभाव के प्रति राष्ट्रवादियो का दृष्टिकोण डी०ई० वाचा के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नवम अधिवेशन मे किए गए भाषण के निम्नलिखित अवतरण मे अपने सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है 'कठोर श्रम करने वाले श्रमिको तथा करो के भार से दबे-किसानो को इसलिए दरिद्र बनाया जा रहा है ताकि उनके मूल्य पर सरकारी कर्मचारी और सूदखोर मोटे हो सके।[156] इसके अतिरिक्त उन्होने दैनिक वेतनभोगी मजदूरो, जिनकी मजदूरी का मूल्यवृद्धि की दशा मे पिछड जाना और दूसरी ओर मूल्यो मे गिरावट आने पर लाभ मे आ जाना स्वाभाविक था- के हितो की भी उसी कारण से कोई चिंता नही की। यह भी कम आश्चर्यप्रद नही कि स्वय भारतीय नेताओ ने एक भिन्न सदर्भ मे ही सही, निर्धन श्रमिको, कृषको के और मूल्य के बीच सह सबंध को उच्च स्तर से स्वीकार किया और उस पर दृढ विश्वास प्रकट किया।[157] हा, मुद्रा समस्याओ पर विचार करते समय यह विषय उनकी सगणनाओ मे छूट गया।[158]

मुद्रानीति के निर्धारण मे राष्ट्रीय नेताओ द्वारा सर्वाधिक उपेक्षित और यहा तक कि विरोध का शिकार व्यापारी वर्ग विशेषत सामग्री के आयात व्यापार मे सलग्न व्यापारी वर्ग था। निम्नलिखित तथ्यों से इस कथन की सुस्पष्ट और समुचित पुष्टि हो जाती है:

(क) प्रथम, जैसाकि पहले निर्देश किया जा चुका है, भारतीय नेताओं ने देश के लिए सही मुद्रानीति के प्रश्न पर निर्णय लेते हुए विदेश व्यापार की समृद्धि को एक

विचारणीय विषय नही बनाया ।[159]

(ख) द्वितीय, भारतीय नेताओं द्वारा अभिशंसित मुद्रानीति विदेश व्यापार में संलग्न व्यापारियों के बहुत बड़े समुदाय तथा उनके प्रवक्ताओ द्वारा प्रस्तुत मांग के विपरीत थी। उदाहरणार्थ, 1892 मे बगाल के राष्ट्रीय वाणिज्य सदन की पाचवी वार्षिक बैठक मे अध्यक्षीय भाषण करते हुए रायबहादुर धनपतसिंह ने निम्नलिखित चेतावनी दी : 'वर्तमान विनिमय दर व्यापार पर घातक प्रहार है और यदि रजत मूल्य मे वृद्धि के तत्काल उपाय न किए गए तो वह दिन दूर नही जब व्यापार का बेडा गर्क हो जाएगा और कलकत्ता की अनेक प्रतिष्ठित कपनिया बंद होने पर विवश हो जाएगी ।[160] जब 1892 मे इंडियन करेंसी एसोसिएशन ने टकसाल बंद करने और स्वर्णमान अपनाने का प्रबल आंदोलन प्रारंभ किया तो भारतीय व्यापारियो का एक बहुत बडा समुदाय सक्रिय समर्थक के रूप मे इस आदोलन मे सम्मिलित हो गया ।[161] जून 1892 मे कराची के 77 प्रमुख व्यापारियों ने और अक्तूबर 1892 मे बबई के 674 व्यापारियो ने सरकार को मानपत्र दिया, जिसमें रुपये के मूल्य को स्थिर करने का अनुरोध किया गया था और इसके लिए तर्क यह दिया गया था कि रुपये के मूल्य मे उतार-चढाव से उनके सुरक्षित व्यापार के न्यायोचित लेन-देनो मे विशुद्ध रूप से अनिश्चितता और जुआबाजी की सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है ।[162] बबई के अग्रणी व्यापारी तथा महाजन सर शापुरजी भरुचा ने टकसालों के बंद होने के उपाय की तथा रुपये के स्वर्णमान अपनाने की प्रबल वकालत की। उनके मंतव्य का आधार था कि रुपये के गिरते मूल्य ने भारत के विदेश व्यापार को बुरी तरह क्षतिग्रस्त किया है तथा विदेशी पूजी के भारत मे प्रवाह को बाधा पहुचाई है ।[163] इसी प्रकार 1898 मे बगाल के प्रतिष्ठित व्यापारी जयगोविन्द ला ने सरकार पर विनिमय की व्यावहारिक स्थिरता को प्राथमिकता देने के लिए दबाव डाला ।[164]

(ग) अत मे, कुछ भारतीय नेता तो विदेश व्यापार मे सलग्न व्यापारियों (जिनमे से अधिकाश सभी प्रकार से विदेशी ही थे) के प्रति सार्वजनिक रूप मे शत्रुता प्रकट करने लगे और उन्हे परामर्श देने लगे कि उन्हे अवसर के अनुकूल बदलना चाहिए, बडबडाने की आवश्यकता नही ।[165] दादाभाई नौरोजी के निम्नलिखित आवेगपूर्ण शब्दों मे इस विरोध की अभिव्यक्ति स्पष्ट है :

> सबसे ऊपर स्वर्ण मुद्रा के लिए सघर्ष करता हुआ व्यापारी बैठा हुआ है जो यह चाहता है कि किसानो की बलि चढाकर उसे उसके व्यापारिक खतरो मे बचाया जाए। व्यापार के लाभ तो इस व्यापारी की अपनी ही जेबो मे जाएं और व्यापारिक उथल-पुथल के खतरे बेचारा किसान उठाए। गरीबी मे जकडा किसान इन खाते पीते व्यापारियों को बचाए। भगवान, भारत की रक्षा करो ।[166]

विदेश व्यापार मे संलग्न व्यापारियो और उनकी मागो के प्रति तथा सूती कपडा उत्पादकों के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे एक रोचक अंतर स्पष्ट रूप मे मिलता है। भारतीय राष्ट्रीय नेताओ का मुद्रानीति के प्रति न केवल दृष्टिकोण ही प्रत्युत उस दृष्टिकोण के निर्धारक कारण भी बबई के सूती वस्त्र मिलमालिकों द्वारा प्रस्तुत कारणों से मिलते जुलते है। यह तथ्य बंबई मिल ओनर्स एसोसिएशन के 1893, 1898, 1899, 1900 और 1901 के

प्रतिवेदनों के तथा 'इंडिया' के 1 दिसंबर 1893 के अंक मे प्रकाशित जे० एन० टाटा के लबे साक्षात्कार के अध्ययन से उजागर हो जाता है। सचमुच भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने सूती उत्पादको को अपना मच सौप दिया था ताकि वे भारतीय लोकमत के समक्ष अपने उद्योग के मामले की ठीक वकालत कर सकें। इसी सुविधा के कारण जे० ए० वाडिया, विट्ठलदास, डी० ठाकरसी, सोराबजी कडका और अबालाल सकरलाल देसाई आदि सूती वस्त्र उद्योग के महारथी काग्रेस मे सम्मिलित होने के लिए आकर्षित हुए।[167]

वस्तुत. हमारे विचार मे रुपय के अवमूल्यन म भारतीय राष्ट्रवादी नताओं की वफादारी को एकातन. न सही, व्यापक रूप से तो अवश्य ही स्वदेशी पूजी के अभिकरण द्वारा देश के उद्योगीकरण के प्रति उनकी समग्र तथा एकनिष्ठ भक्ति के सदर्भ म ही रखना चाहिए। यह ठीक है कि रुपये की सभावित मूल्य वृद्धि के किसानो पर पडने वाले हानिप्रद फलितार्थो के सबध मे उनकी समीक्षा कदाचित उनके द्वारा किए गए दावा के अनुरूप न सही फिर भी कुछ औचित्य लिए हुई अवश्य थी।[168] यह भी सही है कि 1893 और 1899 के करेंसी लैजिस्लेशन द्वारा सरकार के विनिमय घाटे के कारणभूत गृह प्रभारो को हटाया नही गया था केवल उन्हे जनता के कधो पर डाल दिया गया था। इस घाटे की निरतरता प्रत्यक्ष रूप मे सरकार को लोक व्ययो और गृह प्रभारो मे कटौती के अत्यावश्यक पग उठाने को विवश कर सकती थी। हमे इसमे सदेह नही है कि अतत यह देश के वस्त्र उद्योग को होने वाली स्पष्ट और वास्तविक हानि थी जिसमे भारतीय नेता चिंतित हुए और इस प्रश्न पर एक कठोर दृष्टिकोण अपनाया और सरकार की युक्तियो को अनसुना कर दिया। निस्सकोच, देश के सूती वस्त्र उद्योग को होने वाला घाटा भारी था। उस समय यह उद्योग अपने उत्पादनो की खपत के लिए अधिकाश रूप मे ईस्ट एशिया के बाजार पर निर्भर था।[169] उदाहरणार्थ, 1895-6 मे भारतीय मिलो द्वारा निर्मित 430 472,000 पौड सूत मे से 185,493,000 पौड का निर्यात किया गया। इसका अधिकाश चीन को भेजा गया।[170] वस्तुत 1875 के बाद भारतीय वस्त्र उद्योग के द्रुतविकास का रहस्य, भारतीय सूती वस्त्र की विकास से तीव्रतर गति के साथ निर्यातो मे वृद्धि में ही निहित है।[171] इस तथ्य से भी इनकार नही किया जा सकता कि निम्न विनिमय दर ने भारत मे और रजतमान प्रयोक्ता विदेशी देशो में भारतीय सूती वस्त्र उद्योग के लिए संरक्षक का कार्य ही किया।[172] निस्सदेह इस उद्योग का परवर्ती इतिहास यह बताता है कि परंपरागत सस्ते श्रम और कच्चे माल की उपलब्धि की सुविधा के कारण इसकी प्रगति की प्रवृत्ति अबाधित रही परतु यह तथ्य वास्तविकता को झुठला नही सकता कि इस समय विशेष मे भारत की मुद्रानीति के फलस्वरूप भारतीयो द्वारा सचालित देश के प्रमुख आधुनिक उद्योग के भविष्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हुआ था। इस तथ्य को मुद्रानीति के सरकारी समर्थको तक ने स्वीकार किया है।[173] वस्तुत वित्त सदस्य डेविड बार्बूर द्वारा 1893 मे कठिनाइयो को हल करने के लिए सुझाए गए निम्नलिखित उपाय से भारतीय नेता सहमत ही थे :

इन आपत्तियो का उत्तर यह है कि स्वर्णमान अपनाने के प्रश्न का किसी एक पक्ष अथवा थोडे पक्षो को लेकर निर्णय नही करना चाहिए प्रत्युत इस विषय से सबधित

> **सभी स्थितियों की सतर्क परीक्षा के उपरात तथा लाभ की संतुलित स्थिति को देख-कर ही निर्णय करना चाहिए और फिर तदनुसार उस पर आचरण करना चाहिए।[174]**

इस प्रश्न के प्रति सरकारी और राष्ट्रीय दृष्टिकोण के बीच भारी अंतर की उलझन यह थी कि उन दोनों के लिए लाभ की सतुलित स्थिति भिन्न दिशाओं मे पडती थी। जहा सरकारी दृष्टिकोण यह था कि यदि रजतमान प्रयोक्ता देशो के साथ हमारे व्यापार को भारी क्षति पहुचेगी तो स्वर्णमान प्रयोक्ता देशो के साथ हमारे व्यापार को उसी अनुपात मे भारी लाभ मिलना है; और प्रथम (रजतमान) की अपेक्षा दूसरी शाखा (स्वर्णमान) अधिक व्यापक और अधिक महत्वपूर्ण है।[175] राष्ट्रवादियो का विचार था कि रजतमान प्रयोक्ता देशो के साथ व्यापार मात्रा मे थोडा होने पर भी गुणात्मकता की दृष्टि से स्वर्ण-मान प्रयोक्ता देशो के साथ व्यापार की तुलना मे कही बढ चढ कर था। अतः राष्ट्रवादी नेता देशी सूती वस्त्र उद्योग की समृद्धि के लिए स्वर्णमान के त्याग के लिए सहर्ष प्रस्तुत थे। वस्तुत उनके विचार मे सूती वस्त्र उद्योग देश के शृखलाबद्ध औद्योगिक विकास की एक कडी था।

तथ्यात्मक वास्तविकता यह है कि भारतीय राष्ट्रीय नेता देश के औद्योगिक विकास के लिए जानबूझकर अथवा अनजाने अपने शत्रु को भी गले लगाने को तैयार हो गए। यह शत्रु था 'निकासी'। यह स्पष्ट था कि विनिमय दर मे गिरावट का परिणाम व्यापार की शर्तो अथवा आयातो के बदले विनिमयाभूत होने वाले निर्यातो की दुर्दशा थी क्योकि कम से कम अतरिम काल मे अथवा जब तक देश मे और विदेशो मे मूल्य नई विनिमय-दर पर टिक नही पाते, तब तक तो यह दुर्दशा अवश्यभावी थी। आयातो के मूल्यो के यत्रीकरण से उनकी सापेक्ष वृद्धि के विरुद्ध भारतीय उत्पादनो को वास्तविक और सशस्त्र सरक्षण का निर्दिष्ट तर्क यह स्पष्ट सूचित करता था कि व्यापार की शर्तो पर दुष्प्रभाव पडा है और यह तब तक बना रहेगा जब तक विनिमय मे गिरावट बनी रहेगी। जैसा हम 'विदेश व्यापार' अध्याय मे दिखा चुके है, भारतीय नेता एक अन्य सदर्भ मे भारत के विदेश व्यापार की गतिविधियो के सबध मे पर्याप्त चितित थे। यद्यपि गिरता विनिमय कदाचित अधिक महंगा और अत्यत अशोभनीय ढग था तथापि भारतीय नेता विकासशील भारतीय उद्योग के सरक्षण और प्रोत्साहन के लिए इस अतिरिक्त निकासी को सहन करने को उद्यत हो गए।

इससे भारतीय नेताओ की मुद्रानीति से सबधित एक अन्य पक्ष उजागर होता है। उन्हें समस्या का विशेष रूप से भारतीय पक्ष देखने का श्रेय प्राप्त है। उन्होने अनुभव किया कि राजनीतिक दृष्टि से भारत पराधीन देश था।[176] और उसका अपने वित्तो पर अथवा शुल्क नीति पर कोई नियंत्रण नही था। वर्तमान संदर्भ मे राजनीतिक पराधीनता का दोहरा अर्थ था। प्रथम, इसका अर्थ था कि भारत को अपने उद्योगो को शुल्क सरक्षण देने का अधिकार नही था। द्वितीय, उसे गृह प्रभार देने ही पडते थे। भारतीय नेताओं ने निम्न विनिमय को इस दोहरी बुराई के निवारण के लिए एकमात्र उपलब्ध उपाय माना क्योंकि यह एक ओर भारतीय उद्योग के लिए संरक्षक जुटाता और दूसरी ओर निकट अथवा दूर भविष्य मे यह सरकार को इस बात पर विवश कर देता कि वह गृह प्रभारों

को घटाए, इस रूप में कि सर्वप्रथम, सरकार भारत में ही भंडारों की खरीद करे और अधिक से अधिक भारतीयों की ही सेवाओं में नियुक्ति करे। कुल मिलाकर निम्न विनिमय ने गृह प्रभारों की समस्या को उजागर किया। यह दोनों रूपों में महंगा उपचार था और सामान्य स्थिति मे इसे अपनाने का परामर्श ही न दिया जाता, परतु भारतीय नेताओं ने कदाचित अनुभव किया कि भारत जैसे एक असामान्य स्थितिवाले देश के लिए यही एकमात्र उपलब्ध उपचार था।

संदर्भ

1. उदाहरणार्थ हमने भारतीय मुद्रा इतिहास के सक्षिप्त विवरण के लिए निम्नलिखित ग्रंथो का आश्रय लिया है : जे० एस० कोयाजी . दि इडियन करेंसी सिस्टम, 1835-1926 (मद्रास 1930); एच० एल० चाबलानी : स्टडीज इन इडिया करेंसी ऐंड एक्सचेंज (बंबई 1931), सी० एन० वकील तथा एस० के० मुराजन : करेंसी ऐंड प्राइसेस इन इंडिया (बबई 1927), डी० के० मल्होत्रा : हिस्टरी ऐंड प्राब्लम्स आफ इडियन करेंसी--1835-1945 (लाहौर, 1945 तृतीय सस्करण); जे० एम० कीस : इडियन करेंसी ऐंड फाइनेंस, (लदन 1913, 1924 मे पुन. मुद्रित); परिमल राय · पूर्वोद्धृत.
2. इंग्लैंड और भारत के कुछ लोगो ने सोचा कि विनिमय की गिरती दर 1873 के परवर्ती 20 वर्षों की अवधि में भारत के विदेश व्यापार के द्रुतविकास, लगभग दुगना करने के लिए उत्तरदायी है परंतु इस धारणा पर किसी भी स्थिति मे विश्वास न किया गया था और न ही विश्वास किया जाता है व्यापारी वर्ग को इस बात का यकीन था कि गिरती विनिमय दर का उसके व्यापार पर विषैला प्रभाव पड रहा है तथा देखिए, दि रिपोर्ट आफ दि इंडियन करेंसी कमेटी—1893, कडिका, 25-6 और फाइनेंशल स्टेट्समेंट—1886-87, कडिका-2 और 1891-2 (कडिका 36)
3 विभिन्न सेवाओ, नागरिक, धर्मोपदेश, नौसेना तथा स्थल सेना, मे लगे यूरोपीय अधिकारियो के शिष्टमडल द्वारा 31 जनवरी 1893 को गवर्नर जनरल तथा इंडियन करेंसी कमेटी को प्रस्तुत प्रतिवेदन. साक्ष्य के विवरण तथा परिशिष्ट-1893, सी-7060 II अनुमानतः 1 से एन्क्लोजर 39.
4. भारत के तीन उत्तराधिकारी वायसरायो ने इस विषय पर बल दिया : लैंसडौन, स्पीचेज, खड II पृ० 621, एलगिन, स्पीचेज, पृ० 489, कर्जन · स्पीचेज खड II, पृ० 276 तथा देखिए, रिपोर्ट आफ दि इंडियन करेंसी कमेटी 1893, कडिका 28.
5. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खड IV पृ० 195
6. वकील और मुराजन . पूर्वोद्धृत, पृ० 40.
7. भारत राज्य सचिव का खजाने को लिखा गया पत्र, दिनाक 26 जनवरी 1886. भारत राज्य सचिव की ओर से भारत सरकार को सप्रेषण के साथ सलग्न. स० 6 दिनाक 28 जनवरी 1886 तथा देखिए, रिपोर्ट आफ दि इंडियन करेंसी कमेटी 1893 कडिका, 34.
8. उदाहरणार्थ देखिए, फाइनेंशल स्टेट्समेंट्स 1883-4(कडिका 136), 1886-7(कडिका 1, 2, 123) और 1893-4 (कडिका 28, 30, 31).
9. लैंसडौन, एल० सी० पी० 1893 खड XXXII पृ० 282-3.
10. जी० डब्ल्यू०फारेस्ट : ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मारक्विस आफ लैंसडौन ऐज वायसराय ऐंड गवर्नर

जनरल आफ इंडिया, 1888-1894, पृ० 35-6 इंडियन करेंसी एसोसिएशन के विस्तृत दृष्टिकोण के लिए देखिए, प्रोसीडिंग्स आफ दि पब्लिक मीटिंग आफ दि इंडियन करेंसी एसोसिएशन, 13 जुलाई 1892, और लैंसडौन, स्पीचेज, खंड II पृ० 518-20. भारतीय व्यापारियों की धारणा के लिए देखिए, बंगाल नेशनल चैंबर आफ कामर्स के पांचवे वार्षिक अधिवेशन में मंडल के अध्यक्ष का भाषण ए० बी० पी०-29 मई 1892 और एस० बी० भारुचा . स्पीचेज आन इंडियन इकानामिक्स (बंबई तिथिरहित) पृ० 2-9.

11 'सुवर्ण विनिमय मान का अस्तित्व देश में उस समय तक कहा जा सकता है, जबकि उसका प्रचलन उल्लेखनीय परिमाण में न हो, जब स्थानीय मुद्रा स्वर्ण में आवश्यक रूप में बदलने के योग्य न हो और जब केवल सरकार अथवा सामान्य बैंक ही विदेशों में रुपये के प्रेषण की व्यवस्था स्थानीय मुद्रा के संदर्भ में सोने के न्यूनतम निर्धारित मूल्य पर करते हों विदेशों में उल्लेखनीय परिमाण में सुरक्षित भंडार इन धन प्रेषणों की आवश्यक व्यवस्था करते हों' (केन्स पूर्वोद्धृत, पृ० 30-1)

12 प्रथम विश्वयुद्ध तक इन वर्षों में बड़े पैमाने पर टंकन हुआ · 1899, 1902, 1903, 1904, 1905, 1906, 1911 और 1912 इन वर्षों में टंकित रुपये का विशुद्ध परिमाण क्रमश इस प्रकार था : 16 9 करोड़, 11 1 करोड़, 7 8 करोड़, 16 9 करोड़, 23 4 करोड़, 15 7 करोड़, 12 4 करोड़ और 16 3 कर. . (वकील और मुरंजन-पूर्वोद्धृत पृ० 408)

13 केन्स पूर्वोद्धृत, पृ० 133, उन्होंने व्यंग्यपूर्वक कहा वे (भारत सरकार) अपनी नीति इस प्रकार की बनाते हैं जिसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक समुदाय न उसी बढ़ती भूख के साथ मुद्रा का उपभोग किया, जिस प्रकार कुछ समुदाय बीयर का उपभोग करते है —(पृ० 134).

14. उदाहरण के लिए देखिए, 1908-09 के बजट पर गोखले का भाषण, स्पीचेज, पृ० 177-80

15 केन्स पूर्वोद्धृत, पृ० 6.

16 एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 198, इन्दु प्रकाश, 7 अगस्त (आर० एन० पी० बंब 12 अगस्त 1876); बाबे समाचार 5 मई 1879 और 9 नवंबर 1880 (वही, 10 मई 1879 और 13 नवं० 1880 क्रमश), बंगाली, 11 जून 1881, ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1881; हिंदू, 10 अप्रैल 1885, मराठा, 23 मई 1886, रीस ऐंड रैयत, 29 मई, लिबरल, 30 मई (वी० ओ० आई० जून 1886); इंडियन स्पैक्टेटर, 18 जुलाई(वही, अगस्त 1886); भारतवासी, 23 जून (आर० एन० पी० बंग०, 30 जनवरी 1886); समय, 8 मार्च (वही, 13 मार्च 1886); साधारणी, 4 अप्रैल (वही, 10 अप्रैल 1886), सहचर, 9 जून, नवविभाकर, 14 जून (वही, 19 जून 1886), नौरोजी : एसेज, पृ० 374, हिंदुस्तान, 22 जून (आर० एन० पी० पी० एन०, 26 जून 1888). यह आश्चर्यजनक है कि जी० वी० जोशी चांदी के सोने का क्रय करने मूल्य में गिरावट से असंतुष्ट नहीं थे. उनका विचार था कि शीघ्र ही मांग और पूर्ति का नियम संतुलन ला देगा और कदाचित चांदी के पक्ष में ऊंचे मूल्य की प्रवृत्ति ही ला देगा. (पूर्वोद्धृत, पृ० 118, 128-9).

17. बंगाली, 11 जून 1881; ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1881, नौरोजी . एसेज, पृ० 514-20; इंडियन स्पेक्टेटर, 18 जुलाई (वी० ओ० आई० अगस्त 1886).

18. इंडियन स्पेक्टेटर, 17 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 23 जनवरी 1886); मराठा, 4 अप्रैल 1886, इंडियन स्पेक्टेटर 18 जुलाई (वी० ओ० आई०, अगस्त 1886), हिंदू, 8, 11, 15 जून, 4 सितंबर 1886. अगस्त 1886 के 'वायस आफ इंडिया' के अनुसार उस समय के भारतीय समाचारपत्र इस पर सामान्य रूप से एकमत थे

19. इन्दु प्रकाश, 7 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 12 अगस्त 1876); इंडियन स्पेक्टेटर, 17 जनवरी (वही, 23 जनवरी 1886), समय, 17 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 22 मार्च 1884); इंडियन स्पेक्टेटर, 18 जुलाई (वी० ओ० आई०, अगस्त 1886); समय, 22 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 23 अक्तू० 1886). जी० वी० जोशी इस सबध मे फिर अपवाद रूप थे उन्होंने रुपयों के ऋण के स्थान पर स्टर्लिंग ऋण की नौका पकड़ने का परामर्श दिया क्योंकि स्टर्लिंग की ब्याज दर कम थी. उनका विश्वास था कि विनिमय की गिरावट के लिए अपेक्षाकृत सस्ते धन के लाभ को निष्प्रभावित करना लगभग असभव ही होगा (पूर्वोद्धृत, पृ० 118, 128)
20. बाबे समाचार, 3 दिसबर 1880, 31 मार्च 1882 (आर० एन० पी० बब, 4 दिसबर 1880, 1 अप्रैल 1882 क्रमश); बगाली, 11 जून 1881; ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1881. नवविभाकर, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 10 अप्रैल 1886); सहचर, 9 जून (वही, 19 जून 1886).
21 इन्दु प्रकाश, 7 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 12 अगस्त 1876): न्याय प्रकाश, 6 दिस० (वही, 11 दिस० 1880); नवविभाकर, 12 अप्रैल, (आर० एन० पी० बग०, 22 मई 1886), हिंदुस्तान, 22 जून (आर० एन० पी० पी० एन०, 22 जून 1888); सहचर, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 18 अप्रैल 1891)
22 इन्दु प्रकाश, 7 अगस्त (आर० एन० पी० बब, 12 अगस्त 1876), ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 23 जन 1881; मराठा, 16 मार्च 1884
23. 'मिस्टर फासेट के 'एसेज आन इंडियन फाइनास', जे० पी० एस० एस०, खड III सख्या 1 (जुलाई 1880) पृ० 80.
24 वाचा : स्पीचेज, पृ० 375
25 वाचा . स्पीचेज, पृ० 379. मराठा, 4 सितबर 1892; ज्ञान प्रकाश, 1 सितबर, हितेच्छु 1 सित० (आर० एन० पी० बब, 3 सितबर 1892), गुजरात दर्पण, 22 सितबर (वही, 24 सितबर 1892), वृत्तात पत्रिका, 13 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1892): हिंदुस्तानी, 22 जून (आर० एन० पी० एन०, 29 जून 1892). रहबर, 8 जुलाई (वही, 27 जुलाई 1892)
26 एम० एच० वकील दि करेंसी प्राब्लम इन इंडिया ऐंड सर डेविड बारबर, दि ऐंग्लो इंडियन ऐंड दि रूपी (बबई 1892), पृ० 2 (एक भारतीय लेखक द्वारा मुद्रा समस्या का कदाचित यह प्रथम विस्तृत समीक्षात्मक विश्लेषण था); मराठा, 4 सितबर 1892; गुजरात दर्पण, 22 सितबर (आर० एन० पी० बब, 24 सित० 1892); आर० सी० दत्त . इंडियन पालिटिक्स, पृ० 51-2
27 मराठा, 4 सितबर 1892, 12 मार्च 1893; ए० बी० पी०, 31 जुलाई 1892, 8 फरवरी 1893; बगाली, 4 फरवरी 1893, एम० एच० वकील पूर्वोद्धृत, पृ० 2. वाचा स्पीचेज पृ० 376-8, 387 90, नौरोजी, 1893 की करेंसी कमेटी मे नौरोजी का वक्तव्य; पावर्टी, पृ० 560 तथा हाउस आफ कामस मे दिया गया भाषण हसार्ड : चतुर्थ माला, खड IX कालम 655-7; बर्दवान सजीवनी, 14 जून (आर० एन० पी० बग०, 25 जून 1892), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 13 जुलाई (वही, 16 जुलाई 1892), ज्ञान प्रकाश, 1 सित० (आर० एन० पी० बब, 3 सितबर 1892), गुजरात दर्पण, 22 सितबर (वही, 22 सितबर 1892); बाबे समाचार, 28 अक्तूबर (वही, 29 अक्तूबर 1892) एडवोकेट, 10 जन (वी० ओ० आई०, 19 जून 1892), वृत्तात पत्रिका, 13 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 15 अक्तूबर 1892), हिंदुस्तानी, 22 जून (आर० एन० पी० [illegible], 2[illegible] जून 1892 रहबर 8 जुलाई (वही 27 जुलाई 1892), बगाली के 18 फरवरी

1893 के अंक में प्रस्तुत इंडियन एसोसिएशन द्वारा 1892 में हाउस आफ कामंस को दिया गया ज्ञापन बंगनिवासी, 17 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 25 फरवरी 1893); बंगवासी, 18, 25 फरवरी (वही, 25 फरवरी, 4 मार्च 1893); हिमालय 10 मार्च (आर० एन० पी० पी० 18 मार्च 1893) आफताबे पंजाब, 29 मई (वही, 10 जून 1899). यही दृष्टिकोण नौरोजी 1896 से पहले ही अपने निबंधों में प्रस्तुत कर चुके हैं, एसेज, पृ० 518 और आगे हिंदू ने भी 4 सित० 1889 के अंक में यही विचार प्रकट किया था

28 प्रस्ताव IV

29 भारत सरकार का भारत राज्य सचिव को सप्रेषण, संख्या 160, तिथि 21 जून 1892. लार्ड एलगिन द्वारा सरकारी मुद्रानीति के जनसमर्थन का पक्का दावा भी बराबर झूठे आधारों पर किया गया स्पीचेज, पृ० 51 और लार्ड कर्जन स्पीचेज I, पृ० 118 हाल में परसीवल स्पीयर ने भी यह गलत धारणा व्यक्त की कि (कांग्रेस के) वाणिज्य से संबंधित पश्चिमी भारतीय सदस्यों ने रुपये के विनिमय मूल्य में गिरावट को रोक न पाने के लिए सरकार की आलोचना की है · · इंडिया, ए माडर्न हिस्टरी (एन आर्बर, 1961 पृ० 312)

30 ए० बी० पी०, 29 जून, 5, 6 जुलाई 1893, बंगाली, 1 जुलाई 1893, मराठा, 2 जुलाई 1893 इन्दु प्रकाश, 3 जुलाई 1893, हिंदू, 10 अगस्त, 12 सितंबर 1893, गुजराती, 2 जुलाई, बाबे समाचार, 3 औ. 4 जुलाई कैसरे हिंद, 2 जुलाई, 9 जुलाई, 20 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 8, 15, 22 जुलाई 1893 क्रमश), आम जन प्रियान, 8 जुलाई, केरल पत्रिका, 8 जुलाई (आर० एन० पी० एम०, 15 जुलाई 1893 वृत्तांत पत्रिका, 7 सित० (वही, 15 सितंबर 1893) हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893), हितवादी, 29 जून, दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 2, 5 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 8 जुलाई 1893), बंगवासी, 8 जुलाई वही, 15 जुलाई 1893), हिमालय, 14 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 29 जुलाई 1893), कोहेनूर, 29 जुलाई, ताज उल अखबार, 29 जुलाई (वही, 12 अगस्त 1893 अपवाद रूप केवल सहचर, 28 जून (आर० एन० पी० बंग०, 8 जुलाई 1893), बंग निवासी, 7 जुलाई (वही, 15 जुलाई 1893), हिंदुस्तान, 8 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893) के

31 आई० एन० सी०-1893 का प्रस्ताव XIV इस प्रस्ताव का विरोध करने वाले और बदले में स्वर्णमान को समर्थन देने वाले एकमात्र प्रतिनिधि हिंदुस्तान समाचारपत्र के मालिक राजा रामपाल सिंह थे (रिप० आई० एन० सी०-1893, पृ० 133)

32 रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 128, 130-1

33 वाचा रिप० आई० एन० सी०-1898, पृ० 98

34 कैसरे हिंद, 8 मई, इंडियन स्पेक्टेटर, 8 मई, ज्ञान प्रकाश, 9 मई (आर०एन०पी०बंब, 14 मई 1898), कैसरे हिंद, 15 मई, गुजराती, 15 मई (वही, 21 मई 1898), तोहफा ए हिंद, 13 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 23 मार्च 1898) हिंदी प्रदीप मई और जून (वही, 13 जुलाई 1898) इसका अपवाद था —अखबार ए आम, 24 जून (आर० एन० पी० पी०, 9 जुलाई 1898).

35 नौरोजी पावर्टी पृ० 532, 545 और 'इंडिया' 20 मई 1898, पृ० 317 और 8 जुलाई 1898 पृ० 11

36 आर० सी० दत्त का 1898 की करेंसी कमेटी के समक्ष साक्ष्य देना स्पीचेज I पृ० 93

37 वही, पृ० 76, 82 91 3, 104 तथा 'इंडिया' में 11 नव० 1893 को पुन मुद्रित, मांचेस्टर गार्जियन को लिखे उनके पत्र

38. आई० एन० सी०, 1898 का प्रस्ताव XIII तथा देखिए, 1898 के कांग्रेस अध्यक्ष ए० एम० बोस की टिप्पणिया, सी० पी० ए०, पृ० 424-5
39. वाचा रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 98 तथा 99
40. नौरोजी के 27 मई 1898 'इंडिया', मे सपादक के नाम नौरोजी का पत्र, और पावर्टी, पृ० 530, 544, दत्त . स्पीचेज I पृ० 103-4 कैसरे हिंद, 15 मई (आर० एन० पी० बब, 21 मई 1898). बाद मे वाचा ने यही माग दोहराई, रिप० आई० एन० सी०, 1899 पृ० 61; और जे० ए० वाडिया दि आर्टिफिशल करेसी ऐंड दि कामर्स आफ इंडिया (बबई 1902) पृ० 127
41. समिति मे केवल ऐंग्लो-इडियन-सरकारी और गैरसरकारी ब्रिटिश पजीपति व्यावसायिक और बैंक के हितो का प्रतिनिधित्व था और कौन गवाह होगा ? वही ऐंग्लो इडियन सरकार और गैरसरकारी वर्ग, ब्रिटिश पजीपतिवर्ग, व्यापारीवर्ग और बैंको से सबधित वर्ग' (नौरोजी का 'इंडिया' के सपादक को पत्र, 27 मई 1898 और देखिए, केसरे हिंद, 8 मई (आर० एन० पी० बब, 8 मई 1898), गुजराती, 15 मई (वही, 21 मई 1898) आई० एन० सी-1898 का प्रस्ताव XIII
42. हिंदू, 12 जुलाई 1890, इडियन स्पेक्टेटर, 16 जुलाई 1899; गुजराती, 16 जलाई, केसरे-हिद, 16 जुलाई, (आर० एन० पी० बब, 22 जुलाई 1899), आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव IV. दत्त . सी० पी० ए०, पृ० 490, वाचा रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 56-61
43 राष्ट्रीय कांग्रेस 1901 का प्रस्ताव XVII.
44 आई० एन० सी० 1902 का प्रस्ताव VI तथा देखिए, आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII
45. ए० एम० बोस · सी० पी० ए पृ० 424-5; वाचा · सी० पी० ए, प० 610-17, जे० एस० अय्यर 'दि वायसराय आन दि इकोनामिक कडीशन आफ इडिया' एच० आर०, जून 1901, पृ० 44 और ई० ए० पृ० 43, गोखले स्पीचेज, पृ० 10-11, 14, 76-7, एम० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 685, जे० एम० वाडिया पूर्वोद्धृत, पृ० 95 और आगे, रिप० आई० एन० सी०, 1901 पृ० 175-7, वी० डी० ठकरसे · रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 98-9, बगाली, 19 फरवरी 1903 फिरोजशाह मेहता ने 1900 मे जोर देते हुए यहा तक कहा : टकसालो के बद होने से वर्तमान अकाल द्वारा उत्पन्न गरीबो के दुख को सहन करने की भारतीयो की शक्ति नष्ट हो गई है इस प्रकार मे टकसालो के अत ने परोक्ष रूप से गरीबी बढाई है। (स्पीचेज, पृ० 604)
46. ए० बी० पी०, 1 अप्रैल 1886, हिंदू, 4 सितबर 1889, एम० एच० वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 2, 21-2 ज्ञान प्रकाश, 1 सित० (आर० एन० पी० बब, 3 सित० 1892); गुजरात दर्पण, 22 सितबर (वही, 24 सित० 1892); ए० बी० पी०, 17 जुलाई 1892; बगाली 3 सितबर 1892, मराठा, 25 सितबर 1892, हिंदू, 22 अगस्त 1893, वाचा, स्पीचेज, पृ० 389; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 56; दत्त ई एच II, पृ० 578 वाचा ने 1898 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में बताया कि वर्तमान मुद्रा सर्वथा उपयुक्त थी. 'यह वह मुद्रा थी जिसके विरुद्ध कभी किसी ने शिकायत नहीं की यह वह मुद्रा थी जो सभी प्रौढ विशेषज्ञो की राय मे भारत के लोगो के लिए सर्वथा अनुकूल और सुविधाजनक थी तथा उनकी भौतिक प्रगति के लिए हर प्रकार से लाभप्रद थी' (रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 100).
47 लाहौर के 'रफीके-हिंद' ने अपने 22 फरवरी 1893 के अक में लिखा · धार्मिक प्रवृत्तिवाले एक

व्यक्ति की यह मान्यता है कि जिस प्रकार सरकार भारतीयो के मत्थे आयात शुल्क में छूट देकर इग्लैंड को लाभ पहुचाना चाहती थी, उसी प्रकार राजनीतिक अर्थव्यवस्था के जन्मदाता प्रभु ने उस साधन को निष्फल करने के लिए विनिमय का सवाल प्रस्तुत किया है (आर० एन० पी० पी०, 11 मार्च 1893) तथा ए० बी० पी, 17 जुलाई, 11 सितबर 1892; ज्ञान प्रकाश, 1 सितबर (आर० एन० पी० बब, 3 सित० 1892), गुजरात दर्पण, 22 सितबर (वही, 24 सितबर 1892), बगवासी, 25 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 4 मार्च 1893), हिंदू, 5 जुलाई 1895, राय पावर्टी, पृ० 129-30 आर० सी० दत्त का भी मत था कि निम्न विनिमय भारत के उद्योगो के अनुकूल था (ई एच II, पृ० 584). वस्तुत: 13 फरवरी 1879 मे ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन ने अपना मत प्रकट किया था कि लकाशायर के भारत मे निर्यात मे ह्रास का वास्तविक कारण विनिमय म गिरावट थी इसके मुकाबले कपास शुल्क के हटाने से मिला लाभ नगण्य ही था

48 ज० ए० वाडिया ने भी एक भिन्न सदर्भ मे 1901 मे इसी तत्व की ओर सकेत किया

49 राय पावर्टी, पृ० 129-31

50 दत्त ई एच II, पृ० 578 तथा देखिए, पश्चिमी भारत की इडस्ट्रियल एसोसिएशन का 1892 मे प्रस्तुत स्मरणपत्र इडियन करेंसी कमेटी (साक्ष्य की कार्यवाही और परिशिष्ट) 1893 परि० III पृ० 338

51 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 626-7, 640 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 322, नवविभाकर साधारणी, 9 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 14 अगस्त 1886)

52 नौरोजी स्पीचेज, पृ० 322 3, हिंदू 10 अप्रैल 1885, गुजरात दर्पण, 22 सितबर (आर० एन० पी० बब, 24 सित० 1892), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 18 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 22 अक्तूबर 1892) वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101-02 बगवासी ने 1893 के करेंसी ऐक्ट म एकमात्र अच्छाई यह देखी कि इससे अनाज का निर्यात घट जाएगा (आर० एन० पी० बग० 2 सितबर 1893) तथा दोस्ते हिंद, 4 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 19 अगस्त 1893)

53 जोशी . पूर्वोद्धृत, पृ० 626-7, नवविभाकर, 25 जनवरी (आर० एन० पी० बग० 30 जनवरी 1886), नवविभाकर साधारणी, 9 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1886), मराठा, 9 अक्तूबर 1892; वाचा रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101-02

54 बगाली, 11 जून 1881, 3 सितबर 1892, ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1891, नौरोजी एसेज, पृ० 514-5 सी० बी० ए०, पृ० 177, जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 640, मराठा, 4 सितबर, 9 अक्तूबर, 4 दिस० 1892, 12 मार्च 1893, राय पावर्टी पृ० 333; हिंदू, 5 और 8 जुलाई 1895, वाचा, स्पीचेज, पृ० 379-80 रिप० आई० एन० सी०, 1899, पृ० 101-02

55 नौरोजी एसेज, पृ० 515-6 तथा पृ० 374

56 आई० एन० सी० क्रमश 1898 और 1899 का प्रस्ताव XIII और IV, नौरोजी, एसेज, पृ० 514-7, पावर्टी, पृ० 543-4, 560, 562; एम० एच० बकील पूर्वोद्धृत, पृ० 31; वाचा, स्पीचेज, पृ० 381-2, परिशिष्ट, पृ० 12; रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 97-105; दत्त, स्पीचेज I, पृ० 93, ई एच II, पृ० 578, 585-7; बबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का स्मरणपत्र, दिनाक 27 अगस्त 1886 सेकड एनुअल रिपोर्ट आफ दि बबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन 1886-7, पृ० 41-2; ए० बी० पी०, 1 अप्रैल 1886, 27 मार्च, 17 जुलाई 1892, 9 अप्रैल 1893,

13 फरवरी 1894, 29 सित० 1898; मराठा, 31 जुलाई, 9 अक्तू०, 4 दिस० 1892, 12 मार्च 1893; बगाली, 4 फरवरी 1893, 28 जून 1898, हिंदू, 10 अप्रैल 1885, 8, 15 जून 1886 22 अगस्त 1893, 5, 8 जुलाई 1895; इडियन स्पेक्टेटर, 18 जुलाई (वी० ओ० आई० अगस्त 1886); बिहार हेराल्ड, 18 फरवरी (वही, 18 मार्च 1894) पैसा अखबार, 6 जुलाई (आर० एन० पी० पी० 16 जुलाई 1898) एम० एन० बैनर्जी ने 1879 और 1881 मे ही (यद्यपि थोड़ा अस्पष्ट रूप से) यह विश्लेषण प्रस्तुत किया था देखिए, एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज I, पृ० 198 और बगाली, 11 जून 1881. अपने तर्क की पुष्टि म दादाभाई नौरोजी ने 1898 मे इडियन करेंसी कमेटी को भेजे गए प्रतिवेदन मे राज्य सचिव द्वारा 26 जनवरी 1886 को कोषागार को लिखा पत्र उद्धृत किया 'यह कहने की आवश्यकता नही कि भारत सरकार को इग्लैंड को स्वर्ण मुद्रा के रूप मे जो अनिवार्य भुगतान करने पडते है, उनके फलस्वरूप ही रुपये के विनिमय मूल्य मे आई गिरावट से सरकारी वित्त प्रभावित हो रहे हैं' (पावर्टी, पृ० 543)

57 लायड ए० मिट्जलर, 'दि थ्योरी आफ इटरनेशनल ट्रेड', ए सर्वे आफ कटेंपररी इकोनामिक्स, हावर्ड एस० एलिस द्वारा सपादित (फिलिपाइन, 1948) पृ० 221

58. नौरोजी : पावर्टी, पृ० 529, 531, 554-55, एसेज, पृ०512, 516-7 और 'इडिया' 20 मई 1888, पृ० 317; ए० बी० पी०, 1 अप्रैल 1886 10 जुलाई 1892, हिंदू 11 जून 1889, 5 जुलाई 1895 इस सबध मे अमृत बाजार पत्रिका ने 17 जुलाई 1892 के अक मे बडा ही साफ-सुथरा तथ्य प्रस्तुत किया उसने लिखा रुपये के अवमूल्यन का परिणाम सामान्यतया निर्यात मे वृद्धि होती और उसके फलस्वरूप चादी के आयात बढ जाते इसका परिणाम यह होना कि भारत मे चादी के मूल्य और ऊचे बढ जाने ताकि चादी के मूल्य मे भारत मे और बाहर के देशो मे समान रूप से अवमूल्यन हो जाता परतु यहा यह आर्थिक तथ्य और शृखला विच्छिन्न हो गई है इसका कारण यह है कि धन की निकासी ने भारत के अतिरिक्त आयात को निगल लिया है और इसका परिणाम यह हुआ है कि भारत के निर्यातो के मूल्य गिर गए है और इससे देश को हानि पहुची है

59. एम० एन० बैनर्जी स्पीचेज I पृ०, 198 बाम्बे पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1881 वाचा, स्पीचेज, पृ० 381; ए० बी० पी०, 8 फरवरी 1893

60. बबई मिल ओनर्स एसोसिएशन 1898 की रपट, पृ० 90.

61. वाचा : स्पीचेज, पृ० 381; जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 357

62 नौरोजी : एसेज, पृ० 517, और पावर्टी, पृ० 543-4; मराठा, 31 जुलाई 1892, बगाली, 28 जून 1898 कैसरे हिंद, 15 मई (आर० एन० पी० बब, 21 मई 1898)

63. वाचा . रिप० आई० एन० सी० 1898 पृ० 101-02 तथा नौरोजी, एसेज, पृ० 516-7 और पावर्टी, पृ० 545-6, 576 बबई प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का स्मरणपत्र, तिथि 27 अगस्त 1886, पूर्वोक्त स्थल; वाचा, रिप० आई० एन० सी०-1892, पृ० 84 और रिप० आई० एन० सी०-1898, पृ० 101-04, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 93, 97-8 इडिया, 11 नवबर, 4 दिस० 1898, पृ० 262, ई एच II, पृ० 582, 585, बाम्बे पब्लिक ओपीनियन, 23 जून 1881, मराठा, 31 जुलाई, 28 अगस्त, 4 सितबर और 9 अक्तू० 1892 तथा 12 मार्च 1893 ए० बी० पी०, 27 मार्च 1892, 8 फरवरी 1893, 13 फरवरी, 10 मार्च 1894, 29 सित० 1898, हिंदू 21 मई 1894, 8 जुलाई 1895, इडियन एसोसिएशन की हाउस आफ कामस को याचिका, 25 फरवरी 1893 के बगाली में, इडियन स्पेक्टेटर, 18 जुलाई (वी० ओ० आई०, अगस्त 1886 पृ० 392),

हिंदुस्तानी, 22 जून (आर० एन० पी० एन०, 29 जून 1892), बिहार हेराल्ड, 18 फरवरी (बी० ओ० आई०, 18 मार्च 1894 पृ० 216), ज्ञान प्रकाश, 9 मई (आर० एन० पी० बब, 14 मई 1898), कैसरे-हिंद, 15 मई (वही, 21 मई 1898)

64 दत्त स्पीचेज I, पृ० 93 तथा नौरोजी, पावर्टी, पृ० 545, 575-6, वाचा रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 104, हिंदुस्तानी, 24 अगस्त 1892, 8 फरवरी 1893 (आर० एन० पी० एन०, 31 अगस्त 1892, 15 फरवरी 1893 क्रमश.) 1893 मे इंडियन एसोसिएशन की हाउस आफ कामस को याचिका 25 फरवरी 1893 के बगाली मे, ए० बी० पी० 13 फरवरी 1894, ज्ञान प्रकाश, 9 मई (आर० एन० पी० बब, 14 मई 1898), कैसरे हिंद, 16 जुलाई (वही, 22 जुलाई 1899) दत्त, इंडिया, 11 नवबर 1898 पृ० 262

65 ज्ञान प्रकाश, 1 सितबर, हितेच्छु, 1 सित० (आर० एन० पी० बब, 3 सितबर 1892); 1893 मे इंडियन एसोसिएशन का हाउस आफ कामस को ज्ञापन, 25 फरवरी 1893 के बगाली मे, ज्ञान प्रकाश, 9 मई (आर एन० पी० बब, 14 मई 1898), तोहफा ए हिंद, 13 मार्च (आर० एन० पी० एन, 23 मार्च 1898)

66 आई० एन० सी-1898 का प्रस्ताव XIII नौराजी पावर्टी, पृ० 575

67 अमृत बाजार पत्रिका मे 17 जुलाई 1892 के अक म लिखा विनिमय की कठिनता एक प्राकृतिक चेष्टा है भारत को प्राकृतिक स्वस्थ स्थिति मे लाना भले ही कठिन हो, यह सपत्ति की अप्राकृतिक निकासी के, प्रति विरोध है जिसका शिकार भारत को बनाया जा रहा है तथा देखिए, ए० बी० पी० 1 अप्रैल 1886 हिंदुस्तानी, 24 अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 31 अगस्त 1892) बगाली, 4 फरवरी 1893, नौरोजी सी० पी० ए०, पृ० 177

68 ए० बी० पी० 17 जुलाई 1892, बगाली, 3 सितबर 1892

69 वाचा स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 31, 42 सी० पी० ए० पृ० 617, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 71-5, 103 ई एच II, पृ० 578

70 ए० बी० पी, 9 अप्रैल 1893, 15 मार्च 1894, कैसरे हिंद, इंडियन स्पेक्टेटर, 11 मार्च, इंदु प्रकाश, 12 मार्च (आर० एन० पी० बब, 17 मार्च 1894), पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 445-6, पावर्टी, पृ० 281-2, एस० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, पृ० 243-5, वाचा, स्पीचेज परिशिष्ट पृ० 6, 16-19 रिप० आई० एन० सी०-1892 पृ० 84, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101-02 सी० पी० ए०, पृ० 617 नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 128-30, दत्त स्पीचेज I पृ० 103 ई एच II, पृ० 583 तथा आई० एन० सी०-1895 का प्रस्ताव III

71 हितेच्छु, 1 सित० (आर० एन० पी० बब, 3 सित० 1892), इंडियन एसोसिएशन का हाउस आफ कामस को 1893 मे प्रस्तुत याचिका, बगाली के 25 फरवरी 1893 के अक मे प्रकाशित, ए० बी० पी०, 9 अप्रैल 1893, 29 सितबर 1898, बगाली, 1 जुलाई 1893, बिहार हेराल्ड, 18 फरवरी (बी० ओ० आई०, 18 मार्च 1894) नौरोजी पावर्टी, पृ० 539-40, 544, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 93, 103, 104 कैसरे हिंद, 15 मई 1898, 16 जुलाई 1899 (आर० एन० पी० बब, 21 मई 1898, 22 जुलाई 1899 क्रमश)

72. वाचा रिप० आई० एन० सी०, 1898 पृ० 102-04 तथा रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 132-3 स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 9, 31, 41 43 सी० पी० ए०-पृ० 617

73. 1893 में हाउस आफ कामस को इंडियन एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत याचिका, बगाली के 25 फरवरी 1893 के अक में प्रकाशित

74. नौरोजी : सी० पी० ए०, पृ० 177.
75. आई० एन० सी०-1893 का प्रस्ताव XIV तथा आई० एन० सी०-1901 का प्रस्ताव XVII.
76 एम० एच० वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 4, 19; मराठा, 9 अक्तूबर 1892, 2 जुलाई 1893. कैसरे हिंद, 9 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 15 जुलाई 1893); ए० बी० पी० 29 सितंबर 1898; वाचा : स्पीचेज, पृ० 389-90, सी० पी० ए०, पृ० 611, 614; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 362, 574-5, 604; जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०-1898, पृ० 106-07, एच० आर०, जून 1901, पृ० 441, ई ए पृ० 120-1. रिप० आई० एन० सी०-1904, पृ० 175; दत्त, स्पीचेज I, पृ० 70, 76-7; ई एच II, पृ० 458, 579-80, 596, 598; इंडिया, 11 नवं० 1898; जे० ए० वाडिया, पूर्वोद्धृत, पृ० 95, 129; गोखले, स्पीचेज, पृ० 14, 75-77; वी० डी० ठाकरसी, रिप० आई० एन० सी०-1902 पृ० 99; केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बंब; 4 अप्रैल 1903). वस्तुतः 1893 की मुद्रा समिति ने इस तर्क की सार्थकता को स्वीकार किया था और लिखा था : हम यह मानकर चल रहे हैं कि वर्तमान अनुपात अथवा अनुपात कर का कुछ अंतर बना रहेगा; ऐसा मानने के मुताबिक रुपये के मूल्यों के वर्तमान स्तर में एकदम से कोई परिवर्तन नहीं आएगा.
77. नौरोजी, पावर्टी, 531 तथा वही, पृ० 529, 533-6, 545, 561-2; इंडिया, 20 मई 1898, पृ० 317 और इंडिया, 8 जुलाई 1898, पृ० 11.
78 नौरोजी पावर्टी, पृ० 535, 537, 543, 557-8; ए० बी० पी०, 29 सित० 1898; जे० ए० वाडिया, रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 176. जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 100 और रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 175, और ई ए पृ० 10; दत्त, ई एच II, पृ० 585-6 तुलनीय रिपोर्ट आफ दि इंडियन करेंसी कमेटी, 1893 कंडिका 112.
79. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 545 तथा एम० एच० वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 5-6; मराठा, 9 अक्तूबर 1892.
80. वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 610.
81. आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII, दत्त : ई एच II, पृ० 596, गोखले, स्पीचेज पृ० 75, 77. रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 164-5, 168; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 604; जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 41-3.
82. गोखले, स्पीचेज, पृ० 76. 1902 के कांग्रेस अधिवेशन मे इसी प्रकार का प्रश्न वी० डी० ठाकरसी ने उठाया (रिप० आई० एन० सी०-1902, पृ० 99).
83. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 530
84 एम० एच० वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 19; नौरोजी, पावर्टी, पृ० 529, 531, 560-2, सी० पी० ए०, पृ० 176, इंडिया, 20 मई 1898, पृ० 317; मराठा, 4 सितंबर, 9 अक्तू० 1892; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 610. स्पीचेज, पृ० 382, जे० ए० वाडिया : पूर्वोद्धृत, पृ० 65, वी० डी० ठाकरसी, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 99; जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 175.
85. इंडियन करेंसी कमेटी, मिनट्स आफ एविडेंस ऐंड एपेंडिक्स-1893 सी- 7060 II, प्रश्न 2353-4.
86. वही, प्रश्न 2371
87. वही, प्रश्न 2355-9.
88. वही, प्रश्न 2391.

89. मराठा, 9 अक्तूबर 1892; एम० एच० वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 4; नौरोजी, पावर्टी, पृ० 536; दत्त, स्पीचेज I, पृ० 88-90, इंडिया, 11 नवंबर 1898, पृ० 262, ई एच II, पृ० 581.
90 वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 614. मराठा, 9 अक्तूबर 1892. वाचा, स्पीचेज, पृ० 390. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 561-3, एम० एच० वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 4-7
91. वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 131.
92. आई० एन० सी०, 1899 का प्रस्ताव IV तथा आई० एन० सी० 1893 और 1899 के प्रस्ताव क्रमश· XIV और XVII.
93. 1893 मे इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामंस मे प्रस्तुत याचिका बंगाली के 18 फरवरी 1893 मे प्रकाशित. बंगवासी, 26 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 2 सितंबर 1893); इंडियन स्पेक्टेटर, 8 मई 1898 कैसरे हिंद, 15 मई (आर० एन० पी० बंब, 21 मई 1898); आई० एन० सी० 1898 का प्रस्ताव XIII वाचा ने शिकायत की कि भारत का व्यापार भी सामान्यत. अस्त-व्यस्त हो गया है (रिप० आई० एन० सी०-1893, पृ० 131).
94 'बंबई समाचार', 27 जून, 3, 4 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 1 जुलाई, 8 जुलाई 1893); जामे जमशेद, 27, 29 जून, 1 जुलाई (वही, 1 जुलाई 1893), कैसरे हिंद, 2 जुलाई, इंदु प्रकाश, 3 जुलाई (वही, 8 जुलाई 1893), गुजरात दर्पण, 12 अक्तूबर (वही, 14 अक्तूबर 1893), 1893 म इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामंस को प्रस्तुत याचिका, बंगाली के 18 फरवरी 1893 के अंक मे प्रकाशित ए० बी० पी०, 23 जुलाई 1893, मराठा, 2 जुलाई 1893; हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 2 जुलाई (आर० एन० पी० बंग० 8 जुलाई 1893), बंगवासी, 26 अगस्त (वही, 2 सितंबर 1893), बंगाली, 3 फरवरी 1894 28 जून 1898, वाचा रिप० आई० एन० सी-, 1893 पृ० 130 सी० पी० ए०, पृ० 612, राय, पावर्टी, पृ० 11 जे० यू० याज्ञिक प्रेसिडेंशियल ऐड्रेस ऐट दि सैवंथ प्राविंशल्न काफ्रंस (सातवें प्रांतीय सम्मेलन मे अध्यक्षीय भाषण) जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1895 (खंड VIII सं० 3) पृ० 5, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 91, जे० ए० वाडिया रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 177.
95 वाचा ने निर्देश किया कि भारतीय सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन के अधिकांश का उपभोग चीन और जापान द्वारा किया जाता है (रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 130)
96. पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 362, बंबई समाचार, 4 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 8 जुलाई 1893), हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893), बंगाली, 3 फरवरी 1894, 28 जून 1898, राय, पावर्टी पृ० 11; याज्ञिक, अध्यक्षीय भाषण, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 4, वाचा : रिप० आई० एन० सी०-1893, पृ० 130-1 रिप० आई० एन० सी 1898, पृ० 98, सी० पी० ए०, पृ० 612-4
97 गोखले : स्पीचेज, पृ० 10 तथा देखिए पृ० 11.
98 रिप० आई० एन० सी०-1904 पृ० 174.
99 रिप० आई० एन० सी०-1902, पृ० 99 अहमदाबाद के एक अन्य मिल-अभिकर्ता सोराबजी कड़ाका ने उनका समर्थन करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा कि मुद्रा कानून ने देश के कारखाना उद्योग की अक्षरशः हत्या की है (वही, पृ० 101).
100. देखिए, परिमल राय : पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 177-208. राय तथा कुछ दूसरों जैसे एलमिन (स्पीचेज, पृ० 489-90) और कर्जन (स्पीचेज III, पृ० 135), ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि

भारत का 80 प्रतिशत अथवा उससे भी अधिक व्यापार स्वर्णमान वाले देशो के साथ था और रुपये के स्वर्णमान से स्थिर सबध होने पर भारत को लाभ पहुचना निश्चित था। जैसा हम बार बार दोहरा चुके हैं, भारतीय नेता तो समग्र विदेश व्यापार की चिता अथवा उससे सबध ही नहीं रखते थे, उन्होंने तो अपने दृष्टिकोण को एक सीमित क्षेत्र तक ही सकुचित कर लिया जिसके अनुसार उनके प्रयत्नो का प्रत्यक्ष सबध देश के उद्योगीकरण से ही था

101 वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 613-4 तथा देखिए मराठा, 12 जुलाई 1903

102 1893 में इडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामस को प्रस्तुत ज्ञापन बगाली के 18 फरवरी 1893 के अक मे प्रकाशित, बगाली, 3 फरवरी 1894, आई० एन० सी०-1901 का प्रस्ताव XVII, वाचा, सी० पी० ए० पृ० 612

103 काग्रेस के आठवें अधिवेशन मे कैप्टन बैनन ने मुद्रा प्रस्ताव का समर्थन किया (रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 64).

104 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 562, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1898 पृ० 100-01

105 मराठा, 4 सितबर 1892, और 2 जुलाई 1893, इडस्ट्रियल एसोसिएशन आफ वेस्टर्न इडिया द्वारा 1892 मे प्रस्तुत स्मरणपत्र, पूर्वोक्त स्थल, बबई समाचार 27 जून (आर० एन० पी० बब, 1 जुलाई 1893), वाचा रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101-02, आर० पी० करदीकर, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 132-3, नौरोजी, इडिया, 20 मई 1898, पृ० 317, दत्त, इडिया, 11 नवबर 1898, पृ० 261-2, सी० पी० ए०, पृ० 490, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1898 खड XXXIV पृ० 502-03 आई० एन० सी० 1899 और 1901 के प्रस्ताव IV और XVII, क्रमश, गोखले, स्पीचेज, पृ० 14-5 75, 111, एम० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 685, बी० डी० ठाकरसी, रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 98 बगाली, 10 फरवरी 1903

106 1893 में इडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामस का प्रस्तुत याचिका बगाली के 18 फरवरी 1893 के अक मे प्रकाशित, मराठा, 2 जुलाई 1893, ए० बी० पी०, 5, 6 जुलाई 1893, 19 सितबर 1898, हितवादी, 29 जून, दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 5 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 8 जुलाई 1893); हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893); तोहफा ए हिंद, 13 मार्च, (वही, 23 मार्च 1898), हिंदी प्रदीप, मई-जून (वही, 13 जुलाई 1898), अखबारे आम के 17, 24 अगस्त के अको मे एक पत्र (आर० एन० पी० पी०, 11 सितबर 1897); पैसा अखबार, 30 अप्रैल, 2 मई (वही, 14 मई 1898), इडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब, 14 अक्तू० 1899); दत्त, स्पीचेज I, पृ० 85-8 इडिया, 11 नवबर 1898, पृ० 261, इडियन पालिटिक्स, पृ० 52, सी० पी० ए०, पृ० 490, हिंदू, 12 जुलाई 1899, आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव IV, वाचा : सी० पी० ए०, पृ० 615; जी० एस० अय्यर दि वायसराय आन दि इकोनामिक कडीशन आफ इडिया, एच० आर० जून 1901, पृ० 441; गोखले, स्पीचेज, पृ० 14, 111 रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 163-4. ए० एस० देसाई रिप० आई० एन० सी०, 1904, पृ० 174.

107. दत्त . स्पीचेज I, पृ० 86.

108. गोखले : स्पीचेज, पृ० 14

109. ए० बी० पी०, 19 सित० 1898 तथा वही, 6 जुलाई 1893; मराठा, 2 जुलाई 1893.

110. स्पीचेज I, पृ० 81 तथा इडस्ट्रियल एसोसिएशन आफ वेस्टर्न इडिया का स्मरणपत्र, पूर्वोक्त

स्थल; इडियन एसोसिएशन द्वारा 1893 मे हाउस आफ कामंस को प्रस्तुत याचिका; बंगाली के 18 फरवरी 1893 के अंक मे प्रकाशित; मराठा, 12 मार्च 1893; हिंदू, 28 जून 1893, 12 जुलाई 1899, ए० बी० पी०, 26 जुलाई 1893, नौरोजी पावर्टी, पृ० 531-2; दत्त : स्पीचेज I, पृ० 81-5, इंडिया 11 नवबर 1898, पृ० 261-2 सी० पी० ए०, पृ० 490; जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 107 एच० आर०, जून 1901, पृ० 441; आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव IV, वाचा स्पीचेज, पृ० 390, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 60-1, सी० पी० ए०, पृ० 614, गोखले, स्पीचेज, पृ० 14, 111; ए० एस० देसाई, रिप० आई० एन० सी० 1904 पृ० 174

111 नौरोजी, एमज, पृ० 520, इंडिया, 20 मई 1898 पृ० 317, 8 जुलाई 1898 पृ० 11, 1893 मे इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामंस को प्रस्तुत याचिका, बगाली के 18 फरवरी 1893 के अंक मे प्रकाशित, मराठा, 12 मार्च, 2 जुलाई 1893; ए० बी० पी०, 23 जुलाई 1893, 19, 20 सितबर 1898, कैसरे हिंद, 9 जुलाई (आर० एन० पी० बब०, 15 जुलाई 1893), हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893); बगवासी, 8 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 15 जुलाई 1893) आर० पी० करदीकर, रिप० आई० एन० सी०-1893 पृ० 132-3, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 77-9, 85, बगवासी, 29 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 5 फरवरी 1898), जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 107, हिंदू, 12 जुलाई 1899; आई० एन० सी०-1899 का प्रस्ताव IV, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 60 सी० पी० ए०, पृ० 614, स्पीचेज, पृ० 389, गोखले, स्पीचेज, पृ० 14, 75, 111, वी० डी० ठाकरसी, रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 174

112 वाचा, स्पीचेज पृ० 389, 1893 मे इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामंस को प्रस्तुत याचिका बगाली के 18 फरवरी 1893 के अंक मे प्रकाशित, ए० बी० पी०, 23 जुलाई 1893, हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 11 जुलाई 1893); दत्त, स्पीचेज I, पृ० 80. इंडिया, 11 नवबर 1898, पृ० 261, आई० एन० सी०-1899 का प्रस्ताव IV.

113 बबई समाचार, 27 जून (आर० एन० पी० बब, 1 जुलाई 1893), मराठा, 2 जुलाई 1893, रहबर, 8 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 27 जुलाई 1892), हिंदुस्तानी, 5 जुलाई (वही, 11 जुलाई 1893). हिमालय, 14 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 29 जुलाई 1893) नौरोजी, पावर्टी, पृ० 534, इंडिया' 20 मई 1898, पृ० 317. हिंदी प्रदीप, मई, जून (आर० एन० पी० एन०, 13 जुलाई 1898), वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101. हिंदू, 12 जुलाई 1899, बगाली, 19 फरवरी 1903.

114. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 121 तथा एम० एच० वकील · पूर्वोद्धृत, पृ० 6-7, वाचा, स्पीचेज, पृ० 390, रिप० आई० एन० सी०-1893, पृ० 130, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 101 रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 56, हिंदुस्तानी, 22 जून (आर० एन० पी० एन०, 29 जून 1892); 1893 मे इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामस को प्रस्तुत याचिका; बगाली के 25 फरवरी 1893 के अंक में प्रकाशित, ए० बी० पी०, 29 जून 1893; मराठा, 2 जुलाई 1893. आर्यजनप्रियन, 8 जुलाई, केरल पत्रिका, 8 जुलाई (आर० एन० पी० एम०, 15 जुलाई 1893); नौरोजी, पावर्टी, पृ० 534, 561 इंडिया, 20 मई 1898, पृ० 317; जे० ए० वाडिया, पूर्वोद्धृत, पृ० 96 दत्त, स्पीचेज I, पृ० 89-90.

115 कैसरे हिंद, 27 अगस्त (आर० एन० पी० बब०, 2 सितबर 1893) तथा नौरोजी, पावर्टी,

पृ० 534, 547, 561; बंगबासी, 8 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 15 जुलाई 1893); दत्त, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 52; जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी०-1898 पृ० 107, ई ए, पृ० 120, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 56, बगाली, 19 फरवरी 1903.

116. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 120-1 हिंदू, 12 जुलाई 1899. वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 58-9; बंगाली, 19 फरवरी, 1903.

117. वकील और मुरांजन : पूर्वोद्धृत, पृ० 321-3 और परिमल राय : पूर्वोद्धृत, पृ० 203

118 दत्त : स्पीचेज I, पृ० 79-80, 89-90.

119. गोखले : स्पीचेज, पृ० 14 तथा पृ० 75 कुछ वर्षों के उपरात 1908 में गोखले ने इस समस्या पर विस्तार से विचार किया : सच कहा जाए तो सरकार के मुद्रा कानून से रुपये की नकली वृद्धि का परिणाम तभी निकलेगा जब नए आधार पर वस्तुए व्यवस्थित हो जाएगी, तब देश मे कीमतों में सामान्य गिरावट आएगी. चादी के सिक्के गढने वाली टकसालो के बद होने के बाद के प्रथम कई वर्षों मे उसका परिणाम अकालो की निरतरता से अभाव की स्थिति की व्यापकता से और कदाचित जोडे हुए रुपयो के परिचलन से नकारात्मक हो गया है इसके अतिरिक्त सारे विश्व में उपभोग वस्तुओ के स्वर्ण मूल्य मे वृद्धि की सामान्य प्रवृत्ति ने भी निस्सदेह भारत मे मूल्यवृद्धि मे सहायता दी है . · हमारे सिक्का विशेषज्ञ ने परीक्षा करके इस समस्या पर कुछ प्रकाश डाला है. · विशेषज्ञ मिस्टर हरीसन के अनुसार 1898 से पहले बने रुपयो का भडार 130 करोड़ के लगभग का है. इस दस वर्ष की अवधि मे सरकार ने विशुद्ध रूप मे इस भडार मे 100 करोड़ रुपयो की वृद्धि की है मेरा विचार है कि देश की मुद्रा के इतने आकस्मिक प्रसार का परिणाम मूल्यो मे सामान्य वृद्धि ही है' (स्पीचेज, पृ० 177-9)

120. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 615-6

121. यदि हम फौलर कमीशन द्वारा (भले ही) सकोचपूर्वक अभिव्यक्त विरोधी मान्यता को देखे तो यह अकालप्रौढ़ता वस्तुत. विस्मयजनक ही लगती है देखिए, इडियन करेंसी कमटी-1898 का प्रतिवेदन, कडिका 58. बगाली द्वारा प्रस्तुत दृष्टिकोण का कालातर मे जे० एम० केस ने पुष्ट किया (पूर्वोद्धृत पृ० 6) एक अन्य भारतीय लेखक रणछोड़ लाल छोटेलाल ने जो हालाकि महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नेता नही थे (वह अहमदाबाद की एक मिल के स्वामी थे और बबई विधानपरिषद के सदस्य थे), 1894 मे सरकार मे अपने आप रुपया गढ़ने की अपील इस आधार पर की कि जब एक बार भारत रजतमान से हट गया तो रुपया मुद्रा का सकेत मात्र बनकर रह जाता है. उस स्थिति मे भारत और इग्लैड के बीच विनिमय दर की ऊच-नीच पर रुपये की अधिकता और अभाव का कोई प्रभाव ही नही पड़ता अत: इग्लैड के लिए भारत के व्यापार सतुलन पर निर्भरता की दृष्टि से कोई चिता की बात नही इसके विपरीत इन स्थितियो मे रुपये की कमी उद्योगो और कृषि को और उसके फलस्वरूप देश के निर्यात को क्षति पहुचाती हुई रुपये के मूल्य को और भी नीचे की ओर ले जाएगी (लेटर्स आन करेंसी, बबई 1895).

122. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 532-4 और 'इडिया' 8 जुलाई 1898, पृ० 10-11.

123. नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 177. पावर्टी, पृ० 560. इडियन करेंसी कमेटी, साक्ष्य की कार्यवाही और परिशिष्ट—1893 सी-7060 II, प्रश्न 2346-7; बगाली 11 जून, 1881, हिंदू, 22 अगस्त 1893.

124. आई० एन० सी० 1892 का प्रस्ताव IV, दत्त, इडियन पालिटिक्स, पृ० 51-2, स्पीचेज I, पृ० 91.

125. 1893 के मुद्रा अधिनियम के कानून बन जाने पर 'मराठा' ने 2 जुलाई 1893 के अंक में पुनः बल-पूर्वक कहा कि इस देश की जनता के हितों पर ध्यान दिए बिना ही बिल पास कर दिया गया है. विश्व के किसी भी देश मे मुद्रा संबधी यह द्रुत परिवर्तन और वह भी इतनी आसानी से लागू करना कदाचित असभव ही होता.

126 दत्त, इडियन पालिटिक्स, पृ० 52 तथा देखिए, उनकी स्पीचेज I, पृ० 86.

127. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 542 और 547.

128 होम (पब्लिक) नव० 1893 प्राग 315 (ए) कडिका-1.

129 फाइनेंशियल स्टेटमेट 1896-7 कडिका-104; वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 33.

130. आर० एन० पी० बब, 2 सितबर 1893.

131 ए० बी० पी०, 22 अगस्त 1893, हिंदू, 25 अगस्त 1893, 18 अप्रैल 1894, 16 जून 1899; बंगाली, 18 नवबर 1893, 10 फरवरी, 10 मार्च, 7 अप्रैल 1894, मराठा, 27 अगस्त 1893, 21 जनवरी 1894, इंडियन स्पैक्टेटर, 27 अगस्त 1893, इदु प्रकाश. 25 सितबर 1893, आर० एन० पी० बब, 2 सितबर, 30 सित० 1893 मे उद्धृत समाचारपत्र, आर० एन० पी० बग०; 2, 9, 23 सितबर 1893 तथा आर० एन० पी० एम०, 15 सित० 1893 मे उद्धृत समाचारपत्र.

132 रिपोर्ट आफ दि इडियन एसोसिएशन 1829-3 से 1895-6, पृ० 34, और जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1894 (खड XVI स० 3) पृ० 60

133. आई० एन० सी० 1893 का प्रस्ताव XV

134 प्रस्ताव XVI (1894), XVI (1895), XI (1896), IV (1897), XX 1898), XIV (1899), X (1900), XIX (1901), XIX (1902), और XIII (1903).

135. रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 133-5.

136 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 344 और पृ० 143, 462 सी० पी० ए०, पृ० 176. देखिए, ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 143; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 200, 219; वाचा, स्पीचेज-परिशिष्ट, पृ० 17, 31; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1190; दत्त, ई एच II, पृ० 578

137. आई० एन० सी० के 1893 और 1894 के प्रस्ताव क्रमश: XV और XVI, 1893 में इडियन एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत स्मरणपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 35 1893 मे पूना सार्वजनिक सभा द्वारा प्रस्तुत स्मरणपत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1894 (खड XVI स० 3), पृ० 60, इडियन स्पैक्टेटर, 27 अगस्त 1893, मराठा, 27 अगस्त 1893, कैसरे हिंद, 2 जून (आर० एन० पी० बब; 8 जून 1895); वाचा, स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 17, 30, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 262, 701-02, ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 140-1

138 जी० वी० जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 200 तथा देखिए, वही, पृ० 199, 219; नौरोजी, एसेज, पृ० 517, स्पीचेज, पृ० 144; गुजरात दर्पण, 31 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 2 सितंबर 1893), पूना सार्वजनिक सभा द्वारा 1893 मे प्रस्तुत स्मरणपत्र—पूर्वोक्त स्थल, पृ० 63-4, ए० बी० पी, 22 अगस्त 1893; बगाली, 81 नवंबर 1893; स्वदेशमित्रन्, 25 अगस्त आर० एन० पी० एम० 15 सितबर 1893), वाचा, रिप० आई० एन० सी 1893, पृ 129, ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी—1895, पृ० 143; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1190; जमी उल उलुम, 28 मई

(आर० एन० पी० एन०, 2 जून 1897); जी० एस० अय्यर, विलबी आयोग, खंड III, प्र० 19027.

139. रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 135. 1895 के कांग्रेस अधिवेशन में बंगाल से आए एक अन्य प्रतिनिधि 'पुरेश चंद्र राय' ने भी इसी प्रकार के भाव प्रकट किए (रिप० आई० एन० सी०—1895, पृ० 145).

139-A. 28 मई 1897 (आर० एन० पी० एन०, 2 जून 1897).

140. नौरोजी, एसेज, पृ० 516. एम० एच० वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 12, 31-2, मराठा, 25 सितंबर 1892, 12 फरवरी 1893; गुजरात दर्पण, 22 सितंबर (आर० एन० पी० बंब, 24 सित० 1892); 1893 में प्रस्तुत इंडियन एसोसिएशन की याचिका, बंगाली, के 25 फरवरी 1893 के अंक में प्रकाशित, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 137 स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 17, 30. कैसरे हिंद, 2 जून (आर० एन० पी० बंब, 8 जून 1895). एम० एच० वकील (पृ०32-6). कैसरे हिंद का विचार था कि यदि सावधानी से हिसाब लगाया जाए तो कदाचित सरकारी अधिकारी लाभ में ही रहे हैं.

141. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1190 तथा जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 219, ए० बी० पी०, 27 मार्च 1892, 11 फरवरी और 22 अगस्त 1893, मराठा, 25 सित० 1892; 1893 में इंडियन एसोसिएशन द्वारा हाउस आफ कामंस को प्रस्तुत याचिका, बंगाली के 25 फरवरी 1893 के अंक में प्रकाशित, पी० एस० एस० का स्मरणपत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1894 (खंड XVI सं० 3) पृ० 64; गुजरात दर्पण, 31 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 2 सित० 1893), हितवादी 25 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 2 सित० 1893), वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1893 पृ० 130, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 30; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 263, पी० सी० राय, वही, पृ० 145, ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 141 जी० एस० अय्यर; विलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 19027, जमी उल उलूम, 28 मई (आर० एन० पी० एन०, 2 जून 1893). अंगरेज अधिकारियों द्वारा अपनाए गए रुख से यह दृष्टिकोण कितना भिन्न था, इन अधिकारियों की दुष्प्रवृत्ति के सजीव तथा सचित्र रूप को निम्नलिखित में से किसी एक के द्वारा देखा जा सकता है. जनरल चिमनो ने 1894 में अपनी 'इंडियन पालिटी' (पृ० 336-9) में लिखा यदि मनुष्य केवल चावल पर जीवित रहता और मोटा सा कपड़ा पहनता तो रुपये की गिरावट के घाटे को वह सह सकता था परिणाम यह है कि भारत के कनिष्ठ मिलिट्री अथवा सिविल कर्मचारी को रुपये के मूल्य में गिरावट के फलस्वरूप निर्धनता तथा अभाव का जीवन बिताना पड़ता है (पृ० 337-8) उसने चेतावनी दी कि यदि विनिमय को सुधारने के लिए कुछ नहीं किया जाता तो अंगरेज अधिकारी बहुत सारे प्रलोभनों का मोह न छोड़ पाएंगे

142. नौरोजी, एसेज, पृ० 517; स्पीचेज, पृ० 143, 462; मराठा, 25 सित० 1892, इंडियन एसोसिएशन का स्मरणपत्र, 29 सित० 1893, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 34; एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 134. एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 47, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1190; वाचा, स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 30; जी० एस० अय्यर, विलबी आयोग, खंड III, प्रश्न 18638.

143. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1190.

144. ज्ञान प्रकाश, 31 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 2 सित० 1893); 29 सितंबर 1893 का

इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 37. 1893 का पू० सा० स० का स्मरणपत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1894 (खंड XVI, सं० 3) पृ० 65; बंगाली 10 फरवरी 1894; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 143, एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 134. सी० पी० ए०, पृ० 262 और एस० ऐंड डब्ल्यू परिशिष्ट पृ० 47-8; ए० सी० मजूमदार : रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 143; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1192; हिंदू, 27 मार्च 1899.

145. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1192, तथा एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 262 एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 48; ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 143.

146 इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, 29 सितंबर 1893, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 37. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 144; एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 47-8; दत्त, इग्लैंड ऐंड इंडिया पृ० 165.

147. एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 134.

148 इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, 29 सितंबर 1893, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 35; बंगाली, 13 नव० 1893; हितवादी, 25 अगस्त, सोम प्रकाश, 28 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 2 सितंबर 1893); सहचर, 30 अगस्त (वही, 9 सित० 1893); समय, 15 सितंबर (वही, 25 सितंबर 1893); एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 135 एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 48; ए० सी० मजूमदार, रिप० आई० एन० सी०-1895 पृ०, 141. ए० सी० पी० नायडू, वह , पृ० 143

149 स्पीचेज, पृ० 1192

150 ज्ञान प्रकाश, 31 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 2 सितंबर 1893); अखबारे आम, 30 सितंबर (आर० एन० पी० पी०, 14 अक्तूबर 1893); एस० एन० बैनर्जी : सी० पी० ए०, पृ० 263, दत्त . इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 165 और ई एच II, पृ० 578

151 स्पीचेज, पृ० 462.

152. उन्होने आगे कहा : बंबई के महान व्यक्तियो, पंजाब के महान व्यक्तियो, उत्तरी भारत के महान व्यक्तियो, बंगाल के महान व्यक्तियो ! आओ, हम एकजुट हो जाए, आओ, हम सुदृढ़ पग उठाए आओ, हम निश्चय करें कि तब तक चैन नही लेंगे जब तक इन अन्याय के देवो को सीधे रास्ते पर नही ला देते और तब तक आराम से नही बैठेंगे जब तक कि उनकी आंखो से भ्रम के इस आवरण को हटा नही देते जिसे बनाए रखने की वे व्यर्थ चेष्टा करते हैं कि यह देश उनका है, हमारा नही (रिप० आई० एन० सी 1893, पृ० 135).

153. आर० एन० पी० बंब, 2 सितंबर 1893

154 ए० बी० पी०, 22 अगस्त 1893; मराठा, 27 अगस्त 1893; गुजराती, 27 अगस्त, (आर० एन० पी० बंब, 2 सितंबर 1893); बंगवासी, 26 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 2 सितंबर 1893); बंगाली, 18 नवंबर 1893; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1192; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 200. दत्त, इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 165.

155. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 562; जे० ए० वाडिया, पूर्वोद्धृत, पृ० 96; दत्त, स्पीचेज I, पृ० 90 तथा देखिए, पीछे पाद टिप्पणी 90

156. रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 128.

157. देखिए : अध्याय 1 और अध्याय 4.

158. स्वर्ण विनिमय के पक्षधर एस० बी० भरूचा ने निम्न विनिमय के समर्थकों की उनकी असंगति के

लिए भर्त्सना की उन्होने व्यग्य करते हुए टिप्पणी की . चरखा-मिलो के ये दलाल रुपये को रजत मूल्य 6 पैसे तक लाने की इच्छा क्यों करते हैं ? यह तो मजदूरो को ठगना है .. क्या इन लोगो को सभ्य प्राणी कहा जा सकता है, जो एक ओर मजदूरो को लूटने पर आमादा हैं और दूसरी ओर किसानो के हितो की वकालत करते हैं (स्पीचेज, आन इडियन इकोनामिक्स, पृ० 26)

159 बगाल का 'सहचर' एकमात्र अपवाद था जिसने स्वर्णमान का निरतर समर्थन किया और निम्न तथा घटते बढते विनिमय का विरोध किया. उसने व्यापारियो और विदेश व्यापार की सपन्नता को अपना सैद्धांतिक विषय बनाया उदाहरणार्थ देखिए : 15 जून 1892 का अक (आर० एन० पी० बग०, 22 जुलाई 1892 , 28 जून 1893 (वही, 8 जुलाई 1893), 21 फरवरी 1894 (वही, 3 मार्च 1894) अखबारे आम, 24 जून (आर० एन० पी० पी०, 9 जुलाई 1898).

160 ए० बी०पी०, 29 मई 1892 दुर्भाग्यवश मुझे सदन की 1893, 1894 की रपट प्राप्त नही हो सकी परतु 1897-8 की रपट से सदन के चिंतन की प्रवृत्ति को देखा जा सकता है. इस रपट मे विनिमय की अनिश्चितता पर चिंता प्रकट की गई और बाजार मे पर्याप्त धन की और इस विनिमय के अनुपात को सुनिश्चित करने की माग की गई थी

161. पेपर्स रिलेटिंग टु चेंजेस इन इडियन करेंसी सिस्टम (भारत सरकार, 1893), पृ० 60-4, 84-90

162 वही, पृ० 25-7, 73-4 तथा देखिए, वही, पृ० 89-90

163 एम० वी० भरूचा, पूर्वोद्धृत, पृ० 2-9, 11-5, 22-32

164 एल० सी० पी०, 1898, खड XXXVII, पृ० 513

165. मराठा, 25 सितबर 1892 तथा बगाली, 19 फरवरी 1903

166 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 561 तथा पृ० 547 इडियन करेंसी कमेटी (1893) द्वारा जाच के समय भी उन्होने इसी प्रकार के विचार प्रकट किए इडियन करेंसी कमेटी साक्ष्य की कार्यवाही तथा परिशिष्ट, सी-7060 II, प्रश्न 2393-7 इसी प्रकार जे० ए० वाडिया ने 1901 मे स्पष्ट रूप मे कहा कि वे किसानो के प्रति निरतर अत्याचार की अपेक्षा व्यापारियो पर पड़ने वाले अस्थाई घाटे को ही ठीक समझेंगे (पूर्वोद्धृत, पृ० 126) तथा मराठा, 4 सितबर 1892

167. देखिए, रिप० आई० एन० सी०, 1901, 1902 और 1904

168 1898 मे करेंसी कमेटी के समक्ष प्रश्न किए जाने पर आर० सी० दत्त को यह स्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ा था देखिए, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 76-89

169 वकील और बोस, पूर्वोद्धृत, पृ० 128 परिमल राय, पूर्वोद्धृत, पृ० 179, 193-4.

170 स्टेटिस्टिकल ऐब्स्ट्रैक्ट रिलेटिंग टु ब्रिटिश इडिया फ्राम 1891-92 टु 1900-01 सारणी 129 और 200 हमने 1895-6 वर्ष का लिया है क्योकि स्टेटिस्टिकल एबस्ट्रैक्ट मे उपलब्ध होने वाली साख्यिकी का यह प्रथम वर्ष है

171 इडियन करेंसी कमेटी, साक्ष्य की कार्यवाही और परिशिष्ट, 1893 सी-7060 II परिशिष्ट II पृ० 244, और गाडगिल, पूर्वोद्धृत, पृ० 71-2

172. चादी और रुपये के अवमूल्यन की अवधि मे जहां पूर्व के दूर देशो मे भारतीय सूती वस्त्रों के निर्यात कई गुना बढ़ गए, वहां इग्लैंड के सूती वस्त्रो के निर्यात में कोई वृद्धि नहीं हुई (इडियन करेंसी कमेटी; साक्ष्य की कार्यवाही और परिशिष्ट 1893, सी-7060 II परिशिष्ट II पृ० 244).

173. डी० बारबूर, एल० सी० पी० 1893 खंड XXXII, पृ० 274-5; वेस्टलैंड, एल० सी० पी० 1894 खंड XXXIII, पृ० 181

174 एल० सी० पी०, 1893 खंड XXXII, पृ० 275.

175. वही

176 दादाभाई नौरोजी ने इसे 'शासन की विदेशीयता' कहा (इंडियन करेंसी कमेटी, साक्ष्य की कार्य-वाही और परिशिष्ट 1893 सी-706 II, प्रश्न 2346)

अध्याय 8

श्रमिक वर्ग का उदय

> इस पनपते उद्योग के दम तोड़ने की अपेक्षा इसके सचालक श्रमिकों की अपेक्षाकृत ऊंची मृत्यु दर ही हमें रुचिकर है।…एक बार हमारे उत्पादकों को भली प्रकार व्यवस्थित हो जाने दीजिए उसके उपरात हम अपने श्रमिकों की सुरक्षा अपने आप कर लेंगे।
>
> — अमृत बाजार पत्रिका, 25 सितबर, 1875.

> हम इन अभागे वर्गों की निर्धनता, गंदगी और निम्न स्थिति को देखने के इतने आदी हो गए है कि अब हमारा मन कठोर हो गया है। हमारी और हमारे शासकों की आत्मा उनकी दशा देखकर उद्विग्न ही नही होती। वस्तुत उनकी यह दुर्दशा शताब्दियो से राज्य और समाज के उच्च वर्गो द्वारा किए जा रहे उनके तिरस्कार और दमन का ही फल है।
>
> —जी० सुब्रमण्य अय्यर

आधुनिक उद्योगो, खानों, परिवहन और बागान के विकास ने 19वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे भारतीय समाज मे औद्योगिक श्रमिकवर्ग के रूप मे एक सर्वथा नवीन वर्ग को जन्म दिया। 1880-81 तक इसका आकार साधारण था। उस वर्ष सूती कपड़ा मिलो मे 47,955 पटसन मिलो मे 35,235 और कोयला खानो मे 11,969 कर्मचारी कार्यरत थे। 1905-06 तक इस नए वर्ग का स्वतत्र रूप मे उल्लेखनीय विस्तार हो गया था। उस वर्ष सूती कपड़ा मिलो मे 212,720, पटसन मिलो मे 144,879 और कोयला खानो मे 89,995 कर्मचारी नियुक्त थे। इस प्रकार अकेले यत्रशक्ति से सचालित आधुनिक कारखानो मे ही 700 000 कर्मचारी नियुक्त थे।[1]

आधुनिक औद्योगिकता और उसके साथ जुड़ी पूंजीपति व्यवस्था के आने के साथ ही वे सब बुराइयां आ पहुंची जिन्होंने पहले अंगरेज श्रमिको की पीढ़ियो का जीवन विकृत किया था। आधुनिक उद्योगों मे लगे हुए श्रमिको, पुरुष, स्त्री और बच्चों की प्रारंभिक पीढ़ियों को भी आधुनिक मनुष्य को ज्ञात क्रूर तथा घृणित शोषण का शिकार बनना पड़ा था। भारत में फैक्टरी के जीवन का निकृष्टतम पक्ष यह था कि कर्मचारी को कारखानों में बहुत अधिक घटे काम करना पड़ता था क्योंकि कारखानो मे काम करने के समय की कोई सीमा निश्चित नही थी। आरंभ मे एक औसतन बारहमासी कारखाने में शीत ऋतु

मे दिन भर अर्थात 11½ घंटे प्रतिदिन अथवा 80½ घंटे प्रति सप्ताह काम होता था और ग्रीष्म ऋतु में 14 घंटे प्रतिदिन अथवा 98 घंटे प्रति सप्ताह काम चलता था।[2] लगभग 1887 के बाद जब कारखानो मे बिजली की रोशनी प्रचलित हो गई तो बेचारे कारीगरों के प्रतिदिन काम के घटे बढ़कर विभिन्न इलाको मे 12½ मे 16 के बीच हो गए। इस संबंध में सबसे अधिक दुष्प्रभावित कलकत्ता के पटसन कारखानो के बुनकर थे, जिन बेचारो को 15-16 घटे प्रतिदिन काम करना पडता था।[3] इतने अधिक घंटे काम करने के अतिरिक्त बेचारे श्रमिको को मिल मे आने और वहा से घर जाने में ही दो-तीन घंटे लग जाते थे, इस तथ्य को ध्यान मे रखने पर उन गरीबो की शारीरिक दुर्दशा का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

एक अन्य बात यह है कि काम के इन लंबे घंटो की थकावट और बोरियत को दूर करने के लिए अवकाश काल की कोई नियमित और उपयोगी प्रणाली नहीं थी। कुछ मिलमालिक अवकाश की व्यवस्था करते थे परतु यह समय 15-30 मिनट का होने के कारण सर्वथा अपर्याप्त होता था। अन्य कारखाने तो छुट्टी करते ही नही थे। वे तो यह आशा करते थे कि कर्मचारी खाना खाने समय भी मशीनों की चौकसी करें।[4] नियमित विश्राम अथवा अवकाश के दिनो की भी कोई व्यवस्था नही थी, जिससे वे बेचारे निरंतर कष्ट से निवृत्ति पा सकते। 1885 के बाद फैक्टरी लेबर कमीशन ने टिप्पणी की कि भारत के कारखानो मे सारे वर्ष में दी जाने वाली छुट्टिया औसतन पंद्रह है जबकि इंग्लैंड मे 10 अवकाश के अतिरिक्त 52 रविवारो का पूरी छुट्टी और 52 शनिवारों की आधी छुट्टी रहती है। इस प्रकार कुल मिलाकर वहा 88 दिनो का अवकाश रहता है।[5] इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों की शारीरिक शक्ति पूर्णत. क्षीण हो गई। वे बेचारे कभी कभी मशीनों में टूटने ही और अपने साथियो के कारखाने के दरवाजे मे बाहर निकल पाने मे पहले ही फर्श पर गहरी नींद सो जाते थे।[6]

इससे भी बदतर बात यह थी कि 1891 तक महिलाओ को भी पुरुषों के समान उतने ही लंबे घंटो तक काम करना पड़ता था जबकि उनके लिए काम के लिए 11 घंटे का अधिकतम समय निश्चित किया गया था। प्रारंभिक भारतीय कारखानों मे काम करने वाले बच्चो के साथ भी कोई अच्छा व्यवहार नही किया जाता था। 1881 तक बच्चों को भी उतने अधिक घटो तक काम करना पड़ता था, जितने घंटे वयस्क व्यक्ति काम करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वे बेचारे थकावट से चूर चूर होकर मशीनों के बीच गिर जाते थे।[7] 1881 के फैक्टरी ऐक्ट ने बच्चों के लिए काम के घटों की अधिकतम सीमा 9 घटे प्रतिदिन निर्धारित की और बच्चे की न्यूनतम परिभाषा 7 और 12 वर्ष के बीच की आयु में की। फिर भी बहुत सारे कारखानो मे बच्चे वयस्कों के समान लंबे घंटों तक काम करते रहे।[8] 1891 के फैक्टरी ऐक्ट ने बच्चों के काम के घंटों में और अधिक कटौती करके उसकी अधिकतम सीमा 7 घंटे प्रतिदिन निश्चित की और बच्चे की न्यूनतम और अधिकतम आयु सीमा भी 7-12 के स्थान पर क्रमश. 9-14 तक बढ़ा दी। परंतु व्यवहार में इन दोनो प्रावधानों का प्राय: उल्लघन किया जाता था।[9]

रुई पीजने-दबाने जैसे छोटे और मौसमी कारखानों की स्थिति तो आरंभ से ही

हृदयद्रावक तथा भयावह थी। 1885 के बाबे फैक्टरी लेबर कमीशन ने निर्देश किया कि खानदेश के पिजन और संपीडन कार्य में अधिकांशत. स्त्रिया और बच्चे ही लगे हुए थे और उनके काम के घंटे सामान्य रूप से सवेरे 4 अथवा 5 बजे से सायं 7, 8 अथवा 9 बजे तक होते थे और जब काम का दबाव बढ जाता था तो उन्हे 8-8 दिनो तक निरंतर दिन-रात तब तक काम करते रहना पडता था जब तक कि उनके हाथ थककर और स्वास्थ्य बिगड़ कर काम करने से इनकार नही कर देते थे।[10] यह तथ्य प्रस्तुत एक साक्ष्य के लबे अवतरण में उद्धृत है, जिसमे इन उद्योगो में प्रचलित स्थितियों का दुखद वर्णन किया गया है और साथ ही एक ओर भारी अभावो की दुःखद कथा पर तथा दूसरी ओर क्रूर लोभवृति पर प्रकाश डाला गया है।[11] एक गवाह ने स्वीकार किया कि उसने अपनी आखों से देखा है कि ऊंघती हुए मजदूर महिलाएं यंत्र की तरह बिनौले यंत्र मे रुई दिए जा रही हैं। एक मिनट वे मजदूर महिलाएं छाती मे चिपके बच्चे को स्तन चुसवाती हैं और दूसरे ही मिनट मशीन मे रुई डालने लगती है।[12]

यह स्थिति इस रूप मे तो और भी अधिक असह्य थी, इतने अधिक अमानवीय और कमरतोड लंबे घंटों की मेहनत से मिलने वाली मजदूरी तुच्छ और किसी भी मानदंड से पूर्णत: अपर्याप्त थी। इस अवधि के अधिकाश वर्षों मे बंबई के कपडा कारखानो मे काम करने वाले पुरुषों और स्त्रियों को मिलने वाला मासिक वेतन सात रुपये से बीस रुपये के बीच था।[13] रुई पींजने और सपीडन करने वाले छोटे कारखानो मे लगभग 18 घंटे के दैनिक श्रम का पारिश्रमिक 3-4 आने था।[14] इसके अतिरिक्त, और यह तथ्य समान रूप से महत्वपूर्ण है, उद्योगो के विकास के और श्रम की उत्पादकता वृद्धि के बावजूद श्रमिकों के वास्तविक वेतन मे कोई अतर नही आया।[15] श्रमिकों के वेतन में उस समय भी कोई वृद्धि नही की गई जब उद्योग अतिशय सपन्न स्थिति मे थे, इतने अधिक सपन्न कि कई एक कारखाने तो चार वर्षो मे ही अपनी लागत पूजी चुकाने मे समर्थ हो गए थे।[16]

भारतीय राष्ट्रीय नेताओ ने, सामान्य रूप से भारतीय जनता के दुर्भाग्य से द्रवित आधुनिक औद्योगिक पूजीवाद की बहुमुखी बुराइयो के प्रति तथा समाज के नए पनपते इस वर्ग के शोषण तथा विषम आर्थिक कष्टो के प्रति क्या दृष्टिकोण अपनाया ? यह प्रश्न एक विशेष महत्व रखता है क्योकि इसके साथ दो विरोधी हित जुडे हुए है और वे दोनों आशिक रूप से भारतीय होने के कारण राष्ट्रीय है। यह एक व्यापक परिमाण में निर्धनता का प्रत्यक्ष निदर्शन था जो पर्याप्त सीमा तक स्वय भारतीयो के ही एक वर्ग की लोभ लालसा की उपज थी। उदीयमान राष्ट्रीय नेताओं की श्रम नीति के विस्तृत विश्लेषण से पूर्व तीन महत्वपूर्ण तत्वों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रथम, 19वी शताब्दी के अंत तक भारतीय नेताओं की किसी स्वतंत्र श्रमनीति का विकास नही हुआ था, वह अधिकांशत: भारत सरकार द्वारा श्रमिकों की कार्यस्थितियों के नियमन अथवा सुधार के लिए किए गए प्रयत्नो की प्रतिक्रिया के रूप में ही प्रकट होती थी। द्वितीय, नेताओं के दृष्टिकोण के विश्लेषण के लिए कुछेक नेताओं में श्रम समस्याओ के प्रति विचार-अभिव्यक्ति का अभाव इतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सीधी व खुली टिप्पणी। अंतिम, अधिकांश रूप में आंशिक अथवा पूर्णतः भारतीय पूजीपतियों के स्वामित्ववाले आधुनिक

कारखानो मे नियुक्त श्रमिको के प्रति तथा पूर्णरूपेण विदेशी स्वामित्ववाले बागान और रेलो मे लगे श्रमिकों के प्रति भारतीय नेताओ का दृष्टिकोण उल्लेखनीय रूप से भेदभावपूर्ण था।

फैक्टरी ऐक्ट और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया, 1881

यह सचमुच आश्चर्यजनक तथ्य है कि भारत मे पूजीनिष्ठ औद्योगिकता की बुराइयो की उग्रता को शात करने के लिए कानूनी कार्यवाही करने का प्रथम प्रयास इग्लैंड की ओर से ही हुआ। इग्लैंड के परोपकार और सेवा व्रतधारियो तथा वस्त्र उत्पादको ने एकजुट होकर भारतीय कारखानो मे नियुक्त स्त्रियो और बच्चो के स्वास्थ्य सरक्षण की कानूनी माग की।[17] ससद सदस्यो तथा मानचेस्टर वाणिज्य मडल जैसी लोक सस्थाओ द्वारा अपने तौर पर लगातार प्रताडित भारत राज्य सचिव की प्रेरणा तथा उनके अतिम निर्देश से बबई सरकार ने 25 मार्च 1875 को बबई की फैक्टरियो के मजदूरो के कार्य की स्थितियो की जाच पडताल करने के लिए तथा उनमे सुधार के उपायो को सुझाने के लिए एक आयोग की नियुक्ति की।[18] आयोग किसी सर्वसम्मत निष्कर्ष पर न पहुच सका और इसके प्रतिवेदन पर केवल अध्यक्ष तथा एक अन्य सदस्य डा० ब्लनी ने हस्ताक्षर किए। इस आयोग के प्रतिवेदन मे ये सुझाव दिए गए थे : एक साधारण कानून बनाया जाए, जिसके अतर्गत एक वयस्क श्रमिक के लिए दिन मे 12 घटे कार्यकाल की व्यवस्था हो, इसमे एक घटे का विश्राम अवकाश भी सम्मिलित है। सप्ताह मे एक दिन के अवकाश की व्यवस्था हो। 8 वर्ष से नीचे की आयु के बच्चो के कारखानो मे काम करने पर पाबदी हो और बच्चो के (8 से 14 वर्ष तक की आयु के) कार्य के समय की सीमा 8 घटे प्रतिदिन हो।[19] आयोग के अन्य सात सदस्यो ने, जिसमे 6 पर्याप्त आश्चर्यजनक रूप मे कपास उद्योग पूजी निवेशक थे, कारखानो के सचालन मे किसी प्रकार के कानूनी हस्तक्षेप का विरोध किया।[20] बबई सरकार के हाथ मे इस विषय मे आगे कोई भी कार्यवाही न करने का बहाना आ गया। सरकार की युक्ति थी कि आयोग ने सरकारी हस्तक्षेप के लिए कोई समुचित आधार नही जुटाया और वर्तमान परिस्थितियो मे सरकारी हस्तक्षेप से बबई के पनपते उद्योगो को लाभ के स्थान पर हानि होने की ही सभावना अधिक है।[21]

भारत मे फैक्टरी कानून बनाने की चिल्लाहट ने अब इग्लैंड मे तेजी पकड ली।"[22] इसके अतिरिक्त कुछ भारतीय लोक परोपकारियो की गतिविधि से इस माग को और अधिक बल मिला। इन भारतीय लोक परोपकारियो मे सोराबजी शापुरजी बगाली अग्रगण्य थे। इन्होने फैक्टरी कानून के लिए बिल का प्रारूप फैक्टरी मे काम करने वाले वयस्क पुरुषो के प्रतिदिन के कार्यकाल की सीमा 11 घटे, स्त्रियो के प्रतिदिन के कार्यकाल सीमा 10 घटे, और बच्चो के प्रतिदिन कार्य समय की सीमा 9 घटे का निर्धारण करने वाला, इन घटो मे एक घटे का अवकाश भी सम्मिलित था, तैयार करके आदोलन को बडा भारी बल दिया।[23] अस्तु भारत सरकार ने उन्हे बबई विधान परिषद मे इस बिल को प्रस्तुत करने की अनुमति ही नही दी। 'फैक्टरी कानून के समर्थक अन्य स्थानीय लोक परोपकारियो मे था पूना का परोपकारी समाचारपत्र ज्ञानोदय।[24] उसी समय हल्की

फुल्की हलचल स्वयं श्रमिक वर्ग मे भी उभरती दिखाई दी। उदाहरणार्थ, राघव सखाराम ने, जो स्वयं एक श्रमिक था और डी० चमनलाल के अनुसार प्रथम श्रमिक नेता के रूप में उदित हुआ था, फैक्टरी कर्मचारियों की एक बैठक का आयोजन किया तथा उसने 578 श्रमिकों द्वारा हस्ताक्षरित एक ज्ञापन सरकार को भेजा जिसमें काम के दिन 9 घंटे करने और सप्ताह मे एक दिन के अवकाश की व्यवस्था की माग की गई थी।[5] बाद मे बालाजी रामचंद्र फाकड ने 634 श्रमिको द्वारा हस्ताक्षरित एक अन्य ज्ञापन प्रस्तुत किया था।[6]

भारत और इंग्लेंड मे आदोलन के फलस्वरूप और उसी समय भारत मे पूंजीपति हितों द्वारा किए गए प्रबल विरोध को देखते हुए भारत सरकार ने 7 नवबर 1879 को भारत के गवर्नर जनरल की परिषद मे एक नरम प्रकृति का बिल प्रस्तुत किया। बहुत सारे परिवर्तनो द्वारा शक्ति क्षीण किए जाने के उपरात यह बिल 'इंडियन फैक्टरी ऐक्ट —1881' से रूप मे कानून बन गया। कानून का प्रमुख सबध श्रमिक बच्चों की समस्या से था। इसके अनुसार बच्चो को श्रमिक रूप में रखने की न्यूनतम आयु सात वर्ष की निर्धारित की गई थी और 7-12 वर्ष के बच्चो को 9 घटे प्रतिदिन से अधिक समय कार्य करने की अनुमति नही थी। उन्हे प्रतिदिन इन 9 घटो से अलग एक घटे का अवकाश देने की तथा महीने मे चार दिनो के अवकाश देने की इस कानून म व्यवस्था थी। एक्ट मे खतरनाक मशीनो के लिए समुचित बाडा बनाने और सबधित स्थानीय सरकार को दुर्घटनाओ की शीघ्र ही रपट करने की भी व्यवस्था थी। ये सारी बाते केवल उन कारखानों पर लागू होती थी जो मशीनी शक्ति का प्रयोग करते थे, सौ अथवा इससे अधिक श्रमिको को नियुक्त करते थे और वर्ष मे चार महीनो से अधिक समय तक चालू रहते थे। नील के कारखानो, चाय और काफी बागानो को विशेष रूप से इस कानून की सीमा से बाहर रखा गया था।[7] इसके अतिरिक्त पुरुषों और महिलाओ के काम के घटो को भी नियमित नही किया गया था।

इस प्रकार 1881 का इडियन फैक्टरी ऐक्ट सर्वथा प्रारभिक और सभी व्यावहारिक दृष्टियो मे साधारण ही था। इस तथ्य को स्वय सरकार ने अनेक शब्दो मे स्वीकार किया। स्थानापन्न सचिव ने स्थानीय सरकारो को एक परिपत्र जारी करते हुए लिखा इस ऐक्ट को बनाते समय मिलमालिको के, व्यापारिक सगठनों के तथा अन्य सस्थाओ के प्रतिनिधित्व को बडी ही सावधानी से महत्त्व देते हुए उसका ध्यान रखा गया है। इस उद्देश्य को लगातार ध्यान मे रखकर इससे अधिक हलका कानून बनाना सभव ही नही था।"[8]

फैक्टरी कानून बनाने के लिए प्रारभिक सघर्ष के प्रति और उसके फलस्वरूप 1881 का इंडियन फैक्टरी ऐक्ट बन जाने के प्रति राष्ट्रवादियो की प्रतिक्रिया लगभग पूर्ण रूप से बबई प्रात तक ही सीमित थी। इसे अनुचित भी नही माना जा सकता क्योंकि इस विषय से जुडा सारा मतभेद प्रमुख रूप से बबई की कपड़ा मिलों से ही सबधित था तथा कुल मिलाकर कारखानो के कर्मचारियो की कार्यस्थिति मे सुधार की दिशा मे किए जा रहे प्रयत्नो की उपेक्षा करने वाला अथवा विरोधी था। उदाहरणार्थ यह उल्लेखनीय है कि बंबई प्रात के अधिकाश राष्ट्रवादी नेता, दादाभाई नौरोजी, एम० जी० रानाडे,

के० टी० तेलंग और फिरोजशाह मेहता, तथा अन्य प्रांतों के राष्ट्रीय नेताओं ने उस समय अस्तित्व मे आ रहे निम्नस्तरीय श्रमिक वर्ग के संबंध मे अपने विचार प्रकट नही किए। बबई के अग्रणी जननेता वी० एन० मांडलिक ने, जो 1875 के बाबे फैक्टरी कमीशन के एक सदस्य भी थे, श्रमिकों के हित मे कानून बनाने के विरुद्ध बहुमत के साथ अपना मत दिया। यदि बंबई के 'मराठा' और 'इंदु प्रकाश' और बंगाल के 'बगाली' और 'अमृत बाजार पत्रिका' सपादकीय टिप्पणियो को उनके निजी विचार माना जाए अथवा इस प्रकार की टिप्पणियों के अभाव को ही उनके विचार के रूप मे देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि इन पत्रो के ये सपादक क्रमशः बंबई के युवक नेता तिलक अगरकर और चंदावरकर तथा बगाल के एस० एन०बैनर्जी तथा घोष बंधु, एस० के० घोष तथा मोतीलाल घोष, श्रमिकों के हितो के प्रति उदासीन ही नही थे अपितु विरोधी थे।

जहा तक भारतीय समाचारपत्रो का संबंध है, केवल थोडे मे ही, सही गिनती के तौर पर बबई के केवल चार, समाचारपत्रो ने ही श्रमिक हितों का समर्थन किया। इन पत्रो ने 1874 के ब्रिटिश फैक्टरी ऐक्ट के समानातर इडियन ऐक्ट बनाने की वकालत की। 'अखबारे सौदागर' ने 24 नवबर 1874 के अंक मे लिखा : मिलमालिक निर्धन श्रमिको की निर्धनता का दुरुपयोग करते है और उनसे निर्दयतापूर्वक काम लेते है। श्रमिको को सप्ताह मे कम से कम एक दिन का अवकाश मिलना चाहिए और उनके काम के घटे प्रातः 7 बजे से साय $5\frac{1}{2}$ बजे तक होने चाहिए।[29] 'लोकमित्र' ने 29 दिसबर 1878 के अक मे मिलमालिको की उनकी स्वार्थाधता के लिए निदा की और सरकार से श्रम के घटो मे समुचित कटौती करने का अनुरोध किया।[30] रास्त गोफ्तार ने 29 दिसबर 1878 के अक मे और 19 जनवरी के अक मे एस० एम० बगाली के बिल के प्रारूप को पूरा समर्थन दिया।[31] इस पत्र ने 7 दिसबर 1879 के तथा 7 नवबर 1880 के अको मे, 7 नवबर 1880 के इडियन स्पैक्टेटर के अक और 22 मार्च 1881 के अखबारे सौदागर के अक के साथ सरकार द्वारा प्रस्तुत फैक्टरी बिल का समर्थन किया।[32] परतु दया और मानवता के भावो से ही द्रवित इन थोडे से समाचारपत्रो मे भी थोडे समय के बाद शीघ्र इस क्षेत्र को छोडने की प्रवृति दिखाई दी। 1879 मे ही लोकमित्र लेबर कानून का विरोधी बन बैठा।[33] इडियन स्पैक्टेटर 7 नवबर 1880 के अक मे पहले ही इन शब्दो मे विरोध प्रकट कर चुका था : 'वयस्क श्रम के मामले मे अनुचित हस्तक्षेप' मिलो की आतरिक आर्थिकता मे अनुचित हस्तक्षेप।[34] यहा तक कि अगले वर्ष सरकारी बिल का समर्थन करते करते यह पत्र विरोधी खेमे मे चला गया।[35] 'अखबारे सौदागर' भी फैक्टरी कानून के समर्थन मे कभी कभी भटक जाता था।[36] केवल 'रास्त गोफ्तार' अत तक श्रमिको के उद्देश्य के प्रति सच्चा और ईमानदार बना रहा।[37] बगाल के केवल एक समाचारपत्र 'सोमप्रकाश' ने 1881 के फैक्टरी ऐक्ट बनने का समर्थन किया।[38] सार्वजनिक सस्थाओं मे पूना सार्वजनिक सभा अकेला सगठन था, जिसने साप्ताहिक अवकाश लागू करने की तथा वयस्कों के काम के घटे सीमित करने की वकालत की। यह दूसरी बात है कि इस सस्था ने भी 1879 के बिल के प्रारूप की उस समय आलोचना की।[39]

इसके विपरीत दूसरी ओर भारतीय समाचारपत्रों की प्रबल बहुसंख्या ने किसी भी

फैक्टरी कानून की आवश्यकता को बडी ही प्रचडता से नकार दिया और कानून की पुस्तक मे इस विषय पर अवाछनीय किसी कानून को सम्मिलित करने की चेष्टा का चिल्लाकर विरोध किया तथा उसकी भर्त्सना की। 1875 मे जामे जमशेद', 'बबई समाचार' और 'अरुणोदय' ने बावे फैक्टरी कमीशन की नियुक्ति का इस आधार पर विरोध किया कि इसकी कोई आवश्यकता ही न थी।[10] जब एस० एस० बगाली ने 1878 मे फैक्टरी बिल का प्रारूप सामने रखा तो बबई तथा अन्य प्रान्तो के राष्ट्रवादी समाचार-पत्रो ने उस पत्र मे असहमति प्रकट की।[11] ब्राह्मो समाज के क्रातिकारी और सुधारक वर्ग के प्रवक्ता बगाल के 'ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन' पत्र ने भी 27 फरवरी 1879 को यही दृष्टिकोण प्रकट किया कि कारखाना कर्मचारियो के लिए सरक्षक कानून की सबसे ही नही आवश्यकता नही है। अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 16 मार्च 1880 के अक मे अपनी सामान्य उग्रता से बगाली के प्रयासो की खिल्ली उडाई।

नवबर 1879 मे विधान परिषद मे सरकारी फैक्टरी बिल के प्रस्तुत होने का, तद-नुसार उस पर प्रवर समिति और परिषद के विचार-विमर्श का और उसके फलस्वरूप 1881 मे फैक्टरी ऐक्ट के कानूनी रूप लेने का भारतीय प्रेस ने चीख चिल्लाहट द्वारा अपनी असहमति दिखाकर विरोध ही किया। चोटी के राष्ट्रवादी तथा समाजसुधार के समर्थक पत्रो उर्दू प्रकाश' (22 मार्च 1880, 21 मार्च 1881 और 4 अगस्त 1884), 'गुजराती (28 नवबर 1880 और 27 मार्च 1881), इडियन' 'स्पैक्टेटर' (20 मार्च 1881) नेटिव ओपीनियन' (27 मार्च और 19 जून 1881) और ज्ञान प्रकाश (30 जून 1881) ने इसके प्रति विरोध प्रकट किया।[12] पूना सार्वजनिक सभा की सामान्यत सयमी त्रैमासिक पत्रिका ने, जो उस समय बबई के देशभक्तो की अभिव्यक्ति का मच बनी हुई थी, घोषणा की 'फैक्टरी श्रम को नियमित करने के लिए कानूनी कार्यवाही का लेशमात्र भी औचित्य नही।[13] उस समय बाल गगाधर तिलक द्वारा सपादित 'मराठा' ने 13 मार्च 1881 के अक मे इस कानून के विरुद्ध प्रचड विरोध प्रकट किया। बगाल के दो अग्रणी राष्ट्रवादी समाचारपत्रो, 'अमृत बाजार पत्रिका' और बगाली', ने ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन के समान इस कानून की भर्त्सना की।[14] इलाहाबाद के 'हिंदी प्रदीप' ने भी इसी प्रकार के भाव प्रकट किए।[15] कुल मिलाकर बबई और बगाल के अन्यान्य असख्य समाचारपत्र इस बिल और उसके अतिम रूप 1881 के इडियन फैक्टरी ऐक्ट, के विरुद्ध सामूहिक राग अलापने मे उत्सुकतापूर्वक सम्मिलित हो गए।[16]

उस समय के आलोचको ने फैक्टरी कानून के विरुद्ध ऐसे ऐसे मजेदार और अनोखे तर्क प्रस्तुत किए कि जो अपने निष्कर्ष मे आज के पाठक को सुनने मे यदि जगली और घृणित नही तो भद्दे अवश्य प्रतीत होगे। उदाहरणार्थ, फैक्टरी कानून की अनावश्यकता को सिद्ध करने के लिए उनके द्वारा प्रस्तुत एक तर्क था : 'स्वय श्रमिको की ओर से न तो कोई माग पेश की गई है और न ही उनकी ओर से किसी प्रकार की शिकायत प्राप्त है। इन आलोचको के अनुसार श्रमिक तो नितान्त स्वेच्छा से ही लबे समय तक कार्य करने को सहमत है।'[17] अमृत बाजार पत्रिका ने 12 नवबर 1880 के अक मे इस दृष्टिकोण को सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया . 'यदि श्रमिको पर कारखानो मे भारी अत्याचार

होता है तो वे और कही नौकरी क्यो नही ढूढ लेते ? वे नौकरी से हटाए जाने से डरते क्यो है ? अत यह स्पष्ट है कि 'जुलुम' होने पर भी वे नौकरी मे बने रहना चाहते है।' इससे पूर्व इस पत्र ने 16 जनवरी 1880 के अक मे लोकोपकारको को अकारण परन्तु सर्वथा उपयुक्त सलाह यह दी कि वे सरकार पर कानून बनाने के लिए दबाव डालने के बदले श्रमिको के पास जाए और उन्हे नौकरी छोडने के लिए प्रेरित करे।

इस सबध मे प्रस्तुत दूसरा तर्क यह था कि फैक्टरियो मे काम करने वाले पुरुषो, स्त्रिया और बच्चो को किसी प्रकार की बाहरी सहायता की आवश्यकता नही। [illegible] किए जाने की बात तो दूर रही, वस्तुत उन्हे अपने स्वामियो से सदव्यवहार ही मिलता है।[1] यह बात जोर देकर कही गई कि वे दरिद्र और दु खी न होकर तुलना मे कही अधिक सपन्न और स्वस्थ है।[1] यह भी ध्यान देने योग्य है कि इन आलोचको द्वारा दावा किया गया कि फैक्टरी का काम श्रम सापेक्ष नही क्योकि कारखाने का श्रम [illegible] और [illegible] प्रवृत्ति का होने के कारण भारतीय श्रमिको मे अधिक [illegible] है [illegible] प्रति [illegible] विशेष [illegible] रखते है। भारत के शासको पर सदैव इस [illegible] और सर्वथा अनुपयुक्त सस्थाओ [illegible] गलती करने का आरोप लगाया [illegible]। भारतीय सामाजिक सगठन के व्यावहारिक सूक्ष्म ज्ञान के अभाव [illegible] समीक्षा [illegible] का कथन था कि यदि विदेशी शासक बदले मे देश [illegible] रखते तथा भारतीय समाज और भारतीय श्रमिको की वास्तविक आवश्यकताओ [illegible] का प्रयत्न करते तो [illegible] विदित होता कि उनके अगो की रक्षा और [illegible] मुक्ति पाने की अपेक्षा अधिक ज्वलन्त और महत्वपूर्ण उनकी समस्या [illegible] अभाव और उस [illegible] के साधनो के अभाव की ही थी।[0] श्रम कानून के समीक्षको के अनुसार भारत मे आर्थिक गतिविधि के अन्यान्य क्षेत्रो मे लगे श्रमिको की अपेक्षा कारखानो मे लगे श्रमिको की दशा निश्चित रूप से बेहतर थी।[51]

बच्चो के सबध मे यह बात विशेष रूप से सत्य थी क्योकि उन्हे कारखानो की अपेक्षा बागान स्थलो मे अथवा खाद्य व अन्यान्य स्थानो पर अधिक लबे घटो तक काम करना पडता था।' नेटिव ओपीनियन' ने तो अपने 29 दिसबर 1878 के अक मे यहा तक लिख डाला कि 'स्कूल जाने वाले बच्चो की अपेक्षा कारखानो मे काम करने वाले बच्चो का स्वास्थ्य अधिक अच्छा है।'[3] पूना सार्वजनिक सभा के जरनल के जुलाई 1881 के अक मे 'फैक्टरी लेजिस्लेशन इन इडिया' के अज्ञातनाम लेखक ने इससे भी आगे बढकर यह लिखा 'कारखानो मे काम करने वालो ने अपने काम को कभी भारी कष्टदायक तथा थकाने वाला नही समझा।'[1] लेखक महोदय ने आगे लिखा : 'फैक्टरी कानून से 12 वर्ष के नीचे की आयु के बच्चो को नौकरी से हटा दिया जाएगा क्योकि मालिक उन्हे नौकरी मे रखकर इसपैक्टर के अवाछनीय दुःखदायी हस्तक्षेप को क्यो पसद करेगा।'[58] इस कारण से अथवा फैक्टरी ऐक्ट मे निहित व्यवस्था के पालन से मिला जुला अनिवार्य परिणाम यह होगा कि जिन भाग्यशाली बच्चो की नौकरी जारी भी रखी जाएगी उनके वेतन मे भी कटौती कर दी जाएगी। इसके फलस्वरूप पहले से ही अभावग्रस्त श्रमिक परिवारो को अपने उन बच्चो को रोटी के टुकडे से वचित करना पडेगा तथा वे बच्चे अपने

माता-पिता पर भाररूप हो जाएंगे।[56] जहां तक बच्चों का सबंध था, इन आलोचकों के अनुसार इस ऐक्ट का निकृष्टतम परिणाम यह होगा कि बाल अपराधो की संख्या मे तेजी मे वृद्धि हो जाएगी क्योंकि फैक्टरी की नौकरी से हटाए हुए लड़के या तो भीख मागने पर, या उधार मागने पर या चोरी करने पर मजबूर हो जाएंगे।[57]

फैक्टरी कानून के विरुद्ध राष्ट्रवादियो की प्रबलतम आपत्ति का आधार यह विश्वास था कि यह कानून लंकाशायर के कारखानो के मुकाबले भारत के पनपते सूती वस्त्र उद्योग के उत्पादन व्यय मे वृद्धि और उसके फलस्वरूप उमकी प्रतियोगिक सामर्थ्य मे ह्रास करके इस उद्योग के विकास को बाधित करेगा।[58] कुछ राष्ट्रवादियो ने तो इसे विनाश के दैत्य का दरजा दे डाला। 13 मार्च 1881 के अक मे 'मराठा' ने विलाप करते हुए लिखा : 'भारत का शिशु उद्योग डूब गया है।' कुछ एक भारतीय नेताओं ने तो खुले तौर पर दृढता से यह स्वीकार किया कि औद्योगिक विकास की बडी भारी आवश्यकता दृष्टिगोचर करते हुए कारखानो के मजदूरो के हितो का बलिदान भी करना पड़े तो उसम किसी प्रकार का सकोच नही करना चाहिए। उदाहरणार्थ, 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 2 सितबर 1875 के अंक मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा इस पनपते उद्योग का गला घोटने की अपेक्षा कारखाने के कर्मचारियो की अपेक्षाकृत बढी हुई मृत्यु दर ही वाछनीय है।··· जब एक बार हमारे उत्पादन व्यवस्थित हो जाएगे तो हम इन श्रमिको की सुरक्षा का उपाय भी ढूढ लेगे।[59] इसके साथ साथ यह भी कहा गया कि कर्मचारियो के दृष्टिकोण मे भी यह कानून हानिप्रद है क्योंकि इसका परिणाम सोने का अडा देने वाली मुर्गी को मारना होगा। सूती वस्त्र उद्योग के विकास पर लगी किसी भी प्रकार की पाबदी का बदले मे यह फल होगा कि स्वय कर्मचारियो की आय के और उनकी आजीविका के साधन प्रभावित होगे।[60]

कई एक भारतीय लेखको ने शातिपूर्वक चल रहे निजी औद्योगिक उद्यम म खतरे से भरे हुए राज्य के हस्तक्षेप की प्रवृत्ति पर आपत्ति की।[61] उनके अनुसार उपयुक्त ढग यह था कि स्वामी और सेवको के झगडो को आपसी सौहार्द मे ही सुलझने दिया जाए।[62] भारतीय नेताओ ने दृढतापूर्वक कहा कि यदि सरकार किसी भी स्थिति मे इस संबध मे कानून बनाने पर तुली हुई ही है तो यह कानून सारे ब्रिटिश भारत मे लागू होना चाहिए ताकि बंबई प्रात के भारतीयो के स्वामित्ववाले उद्योगो के विरुद्ध अन्यान्य प्रातो के अगरेजो के स्वामित्ववाले उद्योगों को किसी प्रकार का लाभ न पहुच सके और दोनो मे किसी प्रकार का भेदभाव न हो।[63] इसी प्रकार यूरोपियो के स्वामित्ववाले चाय और काफी बागान, नील के कारखानों तथा इंग्लैंड को कच्चे माल के निर्यात का सवर्धन करने वाले, कपास पीजने और धुनने वाले छोटे कारखानो को इस कानून की सीमा मे बाहर रखने पर भी आपत्ति की गई। यह भेदभाव उस स्थिति मे और भी अधिक अरुचिकर था जबकि रुई पिजने-धुनने वाले छोटे कारखानों में तथा चाय और नील के क्षेत्र मे काम करने वालों की स्थिति बंबई के आधुनिक कपड़ा मिलों की कर्मचारियों की स्थिति से अधिक विषम थी। फलत: यह कहा गया कि लोकसेवा पर तुली हुई सरकार को सहायता की अपेक्षा रखने वाले भारतीय उद्योगों की सावधानी के साथ देखभाल करनी चाहिए।[64]

इस स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि आखिर भारत सरकार फैक्टरी ऐक्ट को कानून का रूप देने के लिए इतनी उत्सुक क्यों थी ? जितने भी भारतीय लेखकों ने व्यावहारिक रूप से इस विषय पर कुछ चर्चा की है, उन सबका एक यही उत्तर था कि भारत सरकार लंकाशायर के ईर्ष्यालु रईसों के, अनुचित होने के बावजूद, प्रबल और असह्य दबाव के अंतर्गत ही यह सब कुछ कर रही है। लंकाशायर के ये ईर्ष्यालु रईस लोकहित और उदारता के छद्मवेश में भारतीय वस्त्रों को महंगा बनाकर भारतीय प्रतियोगियों को पंगु बनाना चाहते हैं।[65] प्रमाण के रूप में, 'इंडियन स्पैक्टेटर' ने ऐक्ट के अंतिम रूप में कानून का रूप ग्रहण कर लेने के समाचार पर अपने 20 मार्च 1881 के अंक में व्यंग्यात्मक रूप से बधाई देते हुए लिखा : 'मांचेस्टर के शैतानों द्वारा प्रेरित कुछ अदूरदर्शी उत्साहियों की चीख-पुकार और लोकोपकार का दंभ भरने वाली सार्वजनिक भर्त्सनाओं को मूर्छाग्रस्त सरकार द्वारा रोक पाना संभव नहीं हुआ है।'[66] ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन ने 24 मार्च 1881 के अंक में बड़ा ही तीखा और स्पष्ट निर्णय इन शब्दों में दिया : 'मांचेस्टर ने भारत के सूती वस्त्र उद्योग पर कपटपूर्ण विजय प्राप्त कर ली।'

प्रथम इंडियन फैक्टरी ऐक्ट के प्रवर्तन के लिए उत्तरदायी घटनाओं से कुछ भारतीय विचारकों ने [illegible] निष्कर्ष निकालने में देर नहीं की। कटु स्वर वाली अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 17 मार्च 1881 के अंक में लिखा : 'भारत क्या है ? मांचेस्टर की कपास उत्पादक संपत्ति ही तो है। भारतीय रैयत क्या है ? मांचेस्टर के उपयोग के लिए कपास उगाने हेतु बनाई गई जानवरों की एक किस्म ही तो।' पूना के राष्ट्रवादियों की नई पीढ़ी के प्रवक्ता 'मराठा' ने अपने 13 मार्च 1881 के अंक में क्रुद्ध होकर लिखा : 'इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि इतने अधिक दीर्घकाल से हम पर किस लिए शासन किया जा रहा है अर्थात भारत पर भारत के हित में शासन नहीं किया जा रहा प्रत्युत इंग्लैंड के हितों के लिए इस देश पर शासन किया जा रहा है। भारतीयों को यह समझ लेना चाहिए कि वे विजित राष्ट्र हैं और उन पर विजित राष्ट्र पर किए जाने वाले शासन के अतिरिक्त और किसी भी रूप में शासन नहीं किया जा रहा।' इस पत्र ने भारतीयों से अनुरोध किया कि सरकार को ज्ञापन देना छोड़िए तथा अपना उद्धार स्वयं आप कीजिए। इस पत्र की राय में आत्मचेष्टा का एक प्रभावशाली पग था, बहिष्कार। अतः इस पत्र ने भारतीयों से अपील की कि आइए हम संगठित हो जाएं, हम दृढ़ निश्चय करें कि हम मांचेस्टर के वस्त्र धारण नहीं करेंगे : यदि हम यह सब कर लें तो सरकार के सैकड़ों फैक्टरी कानून हमारे उद्योगों का बाल भी बांका नहीं कर सकते। हां, यह दूसरी बात है कि सरकार स्वयं ही हमारे उद्योगों को बंद करने का साहसिक पग उठा ले। [illegible] मांचेस्टर के व्यापारियों को भारत में कपास न लेने दे।[67]

1891 का फैक्टरी ऐक्ट और राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया

मिल के कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए बने 1881 के इंडियन फैक्टरी ऐक्ट की अपर्याप्तता ने इसके पास होने के तुरंत बाद ही उसमें संशोधन के लिए आंदोलन को और अधिक भड़काया। स्पष्ट कारणों से लोकोपकारी महानुभाव तो कानून की व्यवस्थाओं से नितांत

असंतुष्ट थे ही, फिर यह ऐक्ट लंकाशायर के उत्पादकों को भी संतुष्ट न कर पाया क्योंकि वे भारत मे बढते हुए सूती वस्त्र उत्पादन तथा भारत मे ब्रिटिश वस्त्र के निरंतर गिरते आयात के कारण घबराए हुए थे।

1882 मे बंबई सरकार ने अंगरेजी कारखानो के इन्स्पेक्टर मीडे किग को बंबई प्रात मे कारखानो की कार्यप्रणाली की जाच पडताल के लिए निमंत्रित किया। उसने कारखानो मे बहुत सारी गलत बातो को प्रचलित पाया और वर्तमान कानून को अपर्याप्त घोषित किया।[69] उसने स्थिति मे सुधार के लिए कुछ सुझाव भी दिए। 23 मई 1884 को बबई सरकार ने सुझावो की व्यावहारिता के अध्ययन के लिए और समस्त विषय पर पूर्ण विचार के लिए एक अन्य आयोग की नियुक्ति की। आयुक्तो ने, जिनमे चार मिल-मालिकों के प्रतिनिधि थे,—मूल कानून मे संशोधन की सिफारिश की। उन्होने निम्न-लिखित व्यवस्थाए जोडने का सुझाव दिया बच्चो के और स्त्रियो के काम के घटो की अधिकतम सीमा क्रमश 9½ और 11½ घटे निर्धारित हो। उन्हे महीने मे चार दिनो का अवकाश मिले। बच्चो की न्यूनतम और अधिकतम आयु क्रमश 9 और 14 वर्षो तक बढाई जाए।[70] भारत सरकार को आयोग का प्रतिवेदन कार्यवाही करने के लिए भेजा गया परंतु वह वर्तमान कानून मे सामान्य संशोधन मे सहमत नही थी अत उसने उस समय इस संबध मे आगे और कोई भी कार्यवाही नही की।[71]

परतु मामला यही रुक नही गया। एक बार फिर इग्लैड मे एक तीव्र आदोलन उठ खडा हुआ जिसकी माग थी कि भारत मे कठोर इग्लिश फैक्टरी कानून लागू किया जाए। संसद सदस्यो ने बार बार हाउस आफ कामस मे और उसके बाहर इस विषय को दोहराया। वाणिज्य मडल को यह तथ्य जानकर भारी निराशा हुई थी कि भारत मे कपास कर हटाने पर भी भारत के सूती वस्त्र उद्योग के विकास मे किसी प्रकार की कोई बाधा उपस्थित नही हुई। अत उन्होने राज्य सचिव से अनवरत रूप से माग की और उसके बदले मे राज्य सचिव ने भारत सरकार पर इस संबध मे कार्यवाही करने के लिए निरंतर दबाव डाला।[72]

इस समय इस स्थिति मे एक नया तत्व देखने मे आया। इस समय न्याय और अधिकार के स्थान पर उपकार और मानवता की दुहाई देते हुए नितान्त दबे स्वर मे श्रमिक धीरे धीरे स्वयं ही अपनी मागें पेश करने लगे। इसके साथ ही इन मागो का रूप सरकार से आगे आने और श्रमिको की सहायता करने की विनीत विनतियों का था। मजदूरो द्वारा अथवा मजदूरो की ओर से सचालित आदोलनो के प्रेरणा स्रोत एन० एम० लोखडे थे। उन्होने 1880 मे 'दीन बधु' नाम से एक ऐंग्लो-मराठी साप्ताहिक पत्र चलाया और कारखाने के कर्मचारियो के हितो को ही उस पत्र का उद्देश्य बना दिया।[73] उन्होने नवंबर 1884 मे बबई के कपडा कारखानों के कर्मचारियो के दो सम्मेलनों का आयोजन किया जिनमे कर्मचारियों ने सर्वसम्मति से निम्नलिखित मागो के प्रस्ताव स्वीकार किए : सभी कारखाना कर्मचारियों के लिए रविवार का अवकाश रहना चाहिए। सभी कर्मचारियों के काम के घंटों की सीमा प्रातः 6½ बजे से सूर्यास्त तक रहनी चाहिए। दोपहर को आधे घंटे के अवकाश की व्यवस्था रहनी चाहिए। पिछले महीने के श्रम का उपार्जित

वेतन अगले महीने की 15 तारीख को मिल जाना चाहिए। औद्योगिक दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था होनी चाहिए। इन मागो को 5500 श्रमिको द्वारा हस्ताक्षरित एक ज्ञापन मे सम्मिलित किया गया था और उस ज्ञापन को उस समय अपने को श्रमिक संघ के अध्यक्ष होने का दावा करने वाले लोखडे ने अक्तूबर 1884 मे बंबई फैक्टरी आयोग को भेजा था।[74] परवर्ती सात वर्षो मे लोखडे तथा अन्य महानुभाव सम्मेलनो और ज्ञापनो के द्वारा श्रमिको की मागो पर कानून बनाने के लिए सरकार पर बराबर दबाव डालते रहे।[75] लोखडे के प्रयास को भारत म प्रबल श्रम आदोलन का प्रारभिक रूप मानना भ्रान्तिमूलक होगा क्योंकि वास्तव मे यह आदोलन कदापि न था।[76] जैसा कि उनकी पत्रिका के शीर्षक के शब्दार्थ मे ही घोषित है, लोखडे महोदय श्रमिको के सगठक नेता नहीं थे, वह तो केवल श्रमिको के हितेच्छु मित्र थे।[77] अत. लोखडे को न तो क्रान्तिकारी नेता माना गया और न ही उन्ह किसी प्रकार सरकार द्वारा दडित किया गया। जबकि नील उद्योग स सबधित आदोलन के आयोजको तथा सहायको को दडित किया गया था, उन्हे 1890 के फैक्टरी कमीशन का स्थानीय सदस्य नियुक्त कर दिया गया।

इस सबध मे यहा यह भी उल्लेखनीय है कि जब कभी भारत मे फैक्टरी कानून जारी करने के लिए इग्लैड मे आदोलन छिडा, भारतीय और ब्रिटिश उत्पादको ने भारत मे राज्य के हस्तक्षेप के विरुद्ध तत्काल प्रबल जवाबी आदोलन छोड दिया। उनके द्वारा प्रस्थापित तर्क थ भारतीय श्रमिको को किसी प्रकार के कानूनी सरक्षण की अपेक्षा नही। किसी भी प्रकार के नए कानून से देश के शिशु उद्योगो के क्षतिग्रस्त होने की ही सभावना है। अत इस प्रकार के नाजुक मामले मे बाहरी लोगो को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।[78]

इस ओर से एक दबाव और उस ओर से दूसरे दबाव मे आकुल-व्याकुल भारत सरकार ने अतत 1881 के फैक्टरी ऐक्ट मे सशोधन के लिए 31 जनवरी 1890 मे लेजिस्लेटिव कौसिल मे एक बिल पेश किया।[79] सशोधन की व्यवस्थाए इडियन फैक्टरी कानून को इग्लिश फैक्टरी कानूनो के समकक्ष बनाने मे पर्याप्त नही थी। इस अतर ने एक बार पुन इग्लैड के दबाव डालने वाले वर्ग को असतुष्ट कर दिया और वे अधिक सशक्त प्रावधानो के लिए पुन: सघर्षरत हो गए।[80] मार्च 1890 मे बर्लिन मे हुए अतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो के निर्णयो से उनके आदोलन को और प्रोत्साहन मिला।[81] फलत: राज्य सचिव ने, जिन्होने पहले बिल के प्रारूप को स्वीकृति दी थी, अब अपेक्षाकृत अधिक कठोर पग उठाने के लिए और एक अन्य आयोग को नियुक्त करने के लिए दबाव डाला।[82] भारत सरकार ने बबई बगाल, उत्तर-पश्चिमी प्रातों और अवध के कारखानों मे नियुक्त श्रमिको की स्थितियो की जाच-पडताल के लिए सितंबर 1890 मे एक अन्य आयोग की नियुक्ति की।

कमीशन की सिफारिशें इस प्रकार थी एक महिला श्रमिकों के दैनिक कार्यकाल की सीमा 11 घंटे निर्धारित की जाए। बच्चों के काम के समय की सीमा घटा कर 6¾ घंटे प्रतिदिन कर दी जाए। सभी कर्मचारियों के लिए, इनमे वयस्क पुरुषो को भी सम्मि-लित किया गया था, एक दिन के साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था की जाए। सभी

वयस्कों को 12 और 1 के बीच आधे घंटे का अवकाश दिया जाए। एम० एम० बंगाली को छोड़कर अन्य सदस्यों की सिफारिश थी कि स्त्रियों के काम के घंटों को निर्धारित सीमा में छूट दे देनी चाहिए यदि यह स्वयं महिलाओं के हितों के लिए आवश्यक हो। इस कमीशन ने वयस्क पुरुष के काम करने के घंटों के संबंध में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।[83]

जहां भारतीय उद्योगपतियों ने कमीशन के विचार विमर्श पर संतोष प्रकट किया और आशा प्रकट की कि यह श्रमिकों के मामलों में कानून विषयक यह अंतिम हस्तक्षेप होगा,[84] वहां इंग्लैंड के आंदोलनकारी और भारत सचिव अभी असंतुष्ट थे और उन्होंने और अधिक परिवर्तनों के लिए दबाव डाला।[85] उनके विचार में कमीशन की सिफारिशें कारखाना कर्मचारियों की मांगों के संदर्भ में बहुत ही कम थीं।[86]

आयोग की सिफारिशों और भारत सरकार तथा भारत सचिव के मध्य हुए पत्र व्यवहार की रोशनी में बिल की व्यवस्थाओं के प्रावधानों को नया रूप दिया गया और इसे इंडियन फैक्टरी (संशोधन) अधिनियम 1891 का नाम देकर 19 मार्च 1891 को पास कर दिया गया। यह अधिनियम उन कारखानों पर लागू होता था जो बिजली का प्रयोग करते थे, पचास अथवा उससे अधिक संख्या में श्रमिकों को नियुक्त करते थे तथा वर्ष में एक सौ बीस अथवा उससे भी अधिक दिन काम करते थे। इसमें प्रत्येक कर्मचारी के लिए सप्ताह में एक दिन के पूर्ण अवकाश की तथा प्रतिदिन दोपहर को आधे घंटे के अवकाश की व्यवस्था थी। महिलाओं के प्रतिदिन के काम के घंटे 11 निर्धारित थे जिनमें, विश्राम के लिए $1\frac{1}{2}$ घंटे का अवकाश भी जुड़ा हुआ था, बंगाल के शिफ्टों में चलने वाले कारखानों को छोड़कर अन्यत्र महिलाओं को रात में काम करने की अनुमति नहीं थी। बच्चों की न्यूनतम आयु सीमा 9 और अधिकतम 14 निर्धारित की गई। किसी भी एक दिन उनके काम के घंटों की सीमा 7 निश्चित कर दी गई। स्थानीय सरकारों को सफाई और स्वास्थ्य संबंधी प्रतिमानों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार दिया गया।[87]

यहां यह उल्लेखनीय है कि एक बार फिर छोटे और मौसमी कारखाने जिनमें स्थिति अत्यंत शोचनीय थी, कानून के हाथ से बच गए। इसके साथ ही लोकापकारियों की सभी कर्मचारियों के लिए समान रूप से 11 घंटे प्रतिदिन कार्य सीमा की मांग, दुर्घटनाओं में क्षतिपूर्ति की मांग तथा बीमारी की हालत में डाक्टरी सहायता की मांग भी स्वीकार नहीं हुई।[88] इसके अतिरिक्त कारखानों के निरीक्षण की पद्धति भी दोषपूर्ण बनी रही इसके फलस्वरूप फैक्टरी ऐक्ट की व्यवस्थाओं का नियमित रूप से उल्लंघन होता रहा।[89]

1891 के फैक्टरी अधिनियम की व्यवस्थाओं से फिर भी लंकाशायर के पूंजीपति प्रसन्न नहीं हुए। आगामी वर्षों में उन्होंने अपना आंदोलन जारी रखा, जिसमें डंडी के पटसन उत्पादक भी सम्मिलित हो गए।[90] 1891 के पश्चात तो इंग्लैंड में भारत सरकार के पक्ष की समर्थक शक्तियां भी अपना रूप दिखाने लगीं।[91] इसका कारण कदाचित प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में भारत के औद्योगिक उद्यमों में निवेशित भारी पूंजीवालों अथवा पूंजी के निवेश की योजना में संलग्न लोगों की बढ़ती हुई प्रबलता थी। भारत में अगले कुछ वर्षों में इस दिशा में लोकोपकारियों का प्रयास कमजोर होता दिखाई दिया

जबकि सितंबर 1905 मे 'टाइम्स आफ इंडिया' ने इस प्रश्न को फिर उठाया।[92]

श्रम कानून से संबंधित विविध विषयो के संबंध मे राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया अधिकांशत मालिको के अनुकूल थी और उसमे श्रमिको के प्रति सहानुभूति का अभाव था। राष्ट्रवादियो द्वारा श्रम कानून की किसी भी आवश्यकता को नकारा गया और कारखानो के आतरिक मामलो मे कानूनी हस्तक्षेप की व्यवस्था करने के सरकारी और निजी व्यक्तियो के प्रयत्नो पर आपत्ति की गई।[93] मराठा के 26 अक्तूबर 1890 के अक मे इस दृष्टिकोण की सामान्य प्रवृति का संक्षिप्त और सम्यक् विवेचन एक स्तभ लेखक ने इस प्रकार किया इलाहाबाद के समाचारपत्र के वक्तव्य मे पर्याप्त सत्य है कि आवश्यकता से अधिक अच्छे और कठोर विनियमो मे बधे ब्रिटिश श्रमिको के समान भारतीय श्रमिक के हाथ-पाव बध जाने पर जो स्थिति होती वर्तमान परिस्थितियो मे उसकी स्थिति उससे तो अच्छी ही है।

कुछ राष्ट्रवादी समीक्षको ने तो 1890 के फैक्टरी कमीशन की सिफारिशो का स्वागत प्रमुखत इस आधार पर किया कि वे परिमित, न्यायपूर्ण तथा समुपयुक्त थी। अथवा दूसरे शब्दो मे वे सिफारिशे उद्योग और उद्योगपतियो के हितो को दुष्प्रभावित नही करती थी तथा नितात हानिरहित थी।[94] यही कारण है कि राष्ट्रवादी समाचार पत्रो ने 1890 के बिल के प्रारूप की तथा 1892 के ऐक्ट की पहले ने तो सर्वथा आलोचना की ही नही और यदि की भी तो मात्र चलताऊ।[95] इसके साथ ही मालिक लोग पहले से ही बिल की बहुत सारी व्यवस्थाओ तथा ऐक्ट को स्वीकार कर चुके थे। अत कानून का यह अश मात्र मानचेस्टर की पराजय के रूप मे ग्रहण किया गया।[96] उनका एकमात्र भय यह था कि उत्पादको पर अपेक्षाकृत अधिक कठोर कानून थोपने की दिशा मे यह उद्वेग रहित कानून एक शुरुआत का काम न दे।[97] इसके साथ ही राष्ट्रवादियो के इस वर्ग का यह दृढ मत था कि कारखाने का श्रमिक किसी दुख पीडा का शिकार नही है और वह सुख तथा सतोष का जीवन व्यतीत कर रहा है। वस्तुत हिंदू ने 17 मई 1889 के अक मे यहा तक लिखा कारखाने के कर्मचारियो की तथाकथित कठिनाइयों की कहानी मनगढत है।[98] नेटिव ओपीनियन ने 18 मई 1890 के अक मे इसी भावना को दार्शनिक रग दे डाला 'इसमे सदेह नही कि बगाल और बबई प्रातो के कारखानो के कर्मचारियो की स्थिति इग्लैड के कारखाना कर्मचारियो की स्थिति से बेहतर है, इस आधार पर नही कि उनके वेतन ऊचे है प्रत्युत इस आधार पर कि अपेक्षाकृत उनकी आदतें सरल है, उनकी आवश्यकताए कम है, उनका भोजन सस्ता है और उन्हे कठोर सर्दीवाले वातावरण से बचाव के लिए महगे कपडो की आवश्यकता नही है।[99] बंबई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक, बंबई के ग्राट मैडिकल कालेज के प्रोफेसर, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के बबई के अग्रगण्य नेता के० एन० बहादुरजी एम० डी० (लंदन) ने 1891 मे लिखे एक वैज्ञानिक लेख में निष्कर्ष रूप से कहा कि भारतीय कारखाना श्रमिकों की शारीरिक दशा पूर्णत: संतोषप्रद है। उनके स्वास्थ्य और शरीर मे किसी प्रकार के ह्रास अथवा क्षीणता के कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। महिला श्रमिक तो विशेष रूप से स्वस्थ तथा पुष्ट हैं। उन्होंने किसी प्रकार के प्रतिबंधनशील फैक्टरी कानून लागू करने का विरोध किया, यहा तक कि

उन रुई पीजने-धुनने-कातने के कारखानों में भी नहीं, जिनके बारे में उन्होंने दबी जबान से स्वीकार किया कि वहां काम कभी कभी कठोर होता था।[100]

राष्ट्रवादी नेताओं का यह वर्ग तो विशेष रूप से ही वयस्क पुरुष श्रमिकों के काम के घंटों को सीमित करने के विरुद्ध था। इस वर्ग ने यह मानने से ही इनकार कर दिया कि भारतीय श्रमिक काम से दबे हुए है अथवा उन्हे अधिक लंबे और कठोर घंटों तक काम करना पडता है। इन नेताओं के अनुसार सतही तौर पर जो दिखाई देता है, व्यवहार में वास्तविक सत्य वह नही है। मराठा ने 20 दिसंबर 1888 के अंक में लिखा कि विचारणीय तथ्य यह है कि भारतीय श्रमिक का मौज-मजे से काम करने का एक अपना ढंग है। आप उसे घंटों लगातार काम पर लगाए रखिए फिर भी आपको यही देखने को मिलेगा कि वह अपने को काम से दबा अनुभव नही कर रहा। वह बीच बीच में काम छोड़कर बाहर जाने और आराम करने का अवसर निकाल ही लेगा।[101] 18 जनवरी 1889 के 'सुलभ समाचार' और 'कुशदाह' पत्रो के अनुसार तो भारतीय कारखानो के काम के घटे उष्णकटिबंधीय देश के अनुकूल है और विदेशी साथी की अपेक्षा अधिक कठोर श्रमशील और सहनशील भारतीय श्रमिक की प्रकृति के भी सर्वथा अनुकूल है।[102] इसके अतिरिक्त जोर देकर यह कहा गया कि काम के अपेक्षाकृत थोडे घटे स्वय श्रमिको के ही हित मे नही होगे क्योंकि इसे अपनाने का अर्थ उनके वेतन को नीचे लाना होगा।[103]

एक दिन के साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था का बहुत ही कम विरोध हुआ। इसका प्रमुख कारण, जैसाकि पहले बता चुके है, यह था कि मालिक लोग पहले ही जून 1890 में इसे मान्यता दे चुके थे।[104]

महिला श्रमिको की नियुक्ति संबंधी व्यवस्था के विरुद्ध राष्ट्रवादियों की आपत्ति सचमुच अत्यत आश्चर्यजनक थी। समाज सुधार, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह तथा 'एज आफ कानसेंट बिल' की आयु के प्रबल तथा उत्साही समर्थक 'इंदु प्रकाश' ने इस सबध मे इस प्रकार अपना विचार प्रकट किया : 'यह दुख की बात है कि सरकार ने भारतीय कारखानो मे महिलाओं की नियुक्ति के मामले मे हस्तक्षेप करना उपयुक्त समझा। नई व्यवस्था के अनुसार उन्हे रात को काम देने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है तथा अनुमत काम के 11 घटो मे उन्हे एक बहुत लबे समय तक विश्राम के लिए अनिवार्य रूप से अवकाश की व्यवस्था की गई है।'[105] अधिक रूढिवादी 'मराठा' भी इन समाज सुधारकों से पीछे नही रहा। उसने अपना मत प्रकट करते हुए 7 दिसबर 1890 को लिखा 'आयुक्तो ने अपने प्रतिवेदन मे यह कही भी नही लिखा कि काम के अप्रतिबाधित घटों के कारण भारतीय कारखानो मे काम करने वाली महिला श्रमिको के स्वास्थ्य को किसी प्रकार की हानि पहुचती है अत: हमारे विचार मे सरकार को इस मामले मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए था।' बाद मे जब मार्च 1892 मे यह समाचार मिला कि अहमदाबाद मे महिला श्रमिको की छटनी की जा रही है तो राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने यह मांग की कि फैक्टरी एक्ट की महिलाओ के काम के घटो को सीमित करने वाली धारा को महिलाओं के हित की दृष्टि से स्थगित कर देना चाहिए।[106] परंतु उनमे से किसी एक भी समाचारपत्र ने मालिको को इस स्वार्थपूर्ण कार्यवाही को करने से निवृत होने के लिए

उनकी आलोचना करने अथवा उन्हे सलाह देने के रूप मे एक शब्द भी नही लिखा।

इसी प्रकार कारखानो मे नियुक्त किए जाने वाले बच्चो की न्यूनतम आयु बढाने और उनके काम के घटे घटाने की व्यवस्थाओ का भी विरोध इस आधार पर किया गया कि इसका परिणाम निर्धन श्रमिको की पारिवारिक आय मे कटौती होगा।[107] 'सुरभि ओ पताका' ने 10 अप्रैल 1891 के अक मे शोकाकुल भाषा मे लिखा कि इस व्यवस्था के पश्चात स्वस्थ लडकी-लडके अपने विकलाग माता पिता की सहायता नही कर पाएगे।[108] एक बहुत पुराना तर्क, काम न करने वाले बच्चे अपराधी बन जाते है, भी इस समय पुन दोहराया गया। भारत मे समाज सुधार मे अग्रणी हिदू ने 16 सितबर 1891 के अक मे लिखा हमारी कल की आशाए, श्रमिक बच्चे, या तो अपने माता-पिता की सहायता के लिए श्रमदाय मे सलग्न रहेगे, अथवा अपना खाली समय मे पुलिस और अपराध शाखा के अधिकारियो के लिए नए नए आविष्कार करेगे। कारखाने तो अधिकाशत इन बच्चो को इस हानिप्रद मार्ग से बचाते है।[109]

राष्ट्रवादी नेताओ के उस वर्ग की यह निश्चित धारणा थी कि नए फैक्टरी कानून का अतिम परिणाम श्रमिको की स्थिति मे किसी प्रकार का सुधार नही होगा प्रत्युत इससे भारत के विकासशील वस्त्र उद्योग का विनाश हो जाएगा।[110] यह भी एक मजे की बात है कि काग्रेस के मच से श्रमिक पक्ष की बात केवल एक बार उस समय उठाई गई जब 1895 मे अपने अध्यक्षीय भाषण मे सुरेद्रनाथ बैनर्जी ने काम के घटो पर प्रतिबंध लगाने वाले और उत्पादन व्यय मे वृद्धि करने वाले फैक्टरी कानून के प्रयोग के विरुद्ध चेतावनी दी। उन्होने यह भी निर्देश किया कि यहा तक कि इग्लैड के अतिरिक्त जापान भी वस्त्र उद्योग के क्षेत्र मे भारत का प्रबल प्रतिद्वद्वी है।[111] इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादियो ने अनुभव किया कि यदि भारतीय उद्योग पगु हो गए तो उससे श्रमिक ही सबसे अधिक घाटे मे रहेगे क्योकि वे बेचारे आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन खो बैठेगे। 10 जनवरी 1900 के अक मे 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इस दृष्टिकोण को सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया कृपापूर्वक, निरपेक्ष भाव से श्रमिको के काम के घटे घटाने और उन्हे एक दिन का साप्ताहिक अवकाश देने की वकालत करने वाले परोपकारी लोग क्या मिलो के बद हो जाने पर इन श्रमिको का अपनी जेब से पालन-पोषण करेगे ? भारत की आवश्यकता है अनाज की पर्याप्तता और उसके लिए भारतीय कुछ भी करेगे। 16 घटे प्रतिदिन कार्य करना भी अधिक नही है।[112]

1881 के फैक्टरी कानून के समान ही 1891 मे फैक्टरी कानून के लिए आदोलन की राष्ट्रवादियो द्वारा अस्वीकृति के पीछे उनका यह विश्वास काम कर रहा था कि यह सब कुचले हुए भारतीय श्रमिको की शुभकामना की भावना से प्रेरित न होकर लकाशायर की अपने प्रतिद्वद्वी भारत का गला घोटने की भावना से ही प्रेरित था।[113] बगाली ने अपने 27 अप्रैल, 1889 के अक मे इसे सचित्र रूप मे प्रस्तुत करते हुए लिखा कि वस्तुत लकाशायर के उत्पादक और परोपकारी लोग भारत के प्रति ठीक उसी प्रकार की हितकामना की भावना रखते है जैसी एक जगली पशु मे अपने शिकार के प्रति होती है। वस्तुत श्रम कानून उस नीति की परपरा मे है जिसके अतर्गत पहले ही कपास पर

सीमा शुल्क को हटाकर भारत पर मुक्त व्यापार थोपा गया था।[114]

हा, कई एक राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने कारखाना कर्मचारियो की मागो के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया तथा उन्होने मिलमालिको से उन मागो मे से अपेक्षाकृत अधिक उचित मागो को स्वीकार करने का अनुरोध किया। इस दिशा मे एक समय फैक्टरी कानून के तीव्र समीक्षक 'मराठा' ने नेतृत्व दिया। 'मराठा' तथा इस समय के कुछ अन्य समाचारपत्रो के इस डावाडोल व्यवहार का विश्लेषण सामान्यत उन पत्रो के सपादको अथवा मालिको के परिवर्तन मे निहित है।[115] इन 'असहमत' राष्ट्रवादियो द्वारा समर्थित श्रमिको की एक माग थी, उनके काम के घटो मे कटौती।[116] यहा हमें 9 अथवा 8½ घटे के कार्य दिवस रखने के क्रातिकारी सुझाव देखने को मिलते है।[117] और इस क्रातिकारी सुझाव का कम से कम एक रूप मे तो वर्ग सघर्ष की जानकारी पर और राज्य के लोक हितकारी दायित्व पर आधृत क्रातिकारी दार्शनिक विचारधारा द्वारा समर्थन किया गया। इस प्रकार मराठा ने 1 जुलाई 1888 के अक मे निम्नलिखित सपादकीय टिप्पणी लिखी 'अपने कर्मचारियो अथवा नौकरो से यथासभव अधिकतम काम लेना तो मालिको की स्वभावगत प्रवृत्ति है। गरीब नौकरो का भी पैसा पाने के लिए मालिको की इच्छा के अनुसार श्वास रहने तक जीतोड परिश्रम करने पर तैयार होना सभव है। अत राज्य का हस्तक्षेप आवश्यक है। कारखाना मे नियुक्त कर्मचारियो के बच्चो के लिए शिक्षा की व्यवस्था, एक दिन का साप्ताहिक अवकाश, प्रतिदिन काम के समय मे कम से कम विश्राम के लिए आधे घटे का अतराल, डाक्टरी देखभाल, कारखानो के निकट रिहायशी क्वार्टरो का निर्माण, वेतन का साप्ताहिक अथवा कम से कम मासिक भुगतान आदि इन राष्ट्रवादियो द्वारा समर्थित कुछ अन्य मागे थी।[118]

भारतीय खान अधिनियम, 1901

बीसवी शताब्दी के प्रारभ तक खान उद्योगो मे काम को नियमित करने वाला कोई कानून नही था। उस समय जहा तक नौकरी की मात्रा का सबध था, खान उद्योगो मे कोयला खानो की प्रमुखता थी। 1900-01 मे कोयला खानो मे 6 टन कोयले का उत्पादन हुआ और 89,248 व्यक्ति नियुक्त थे।[119] कोयला खानो का विशेष पक्ष यह था कि भूगर्भस्थ खानो मे महिलाओ और बच्चो को भी व्यापक रूप मे नियुक्त किया जाता था।[120] इसके अतिरिक्त कोयला खानो के साथ साथ सभी खानो के कर्मचारियो की दशा अत्यत खराब, वस्तुत शोचनीय और दयनीय, थी।[121] खान उद्योगो मे उद्वेगजनक गदगी के अतिरिक्त उचित सावधानियो के अभाव के कारण दुर्घटनाओ की सभावना थी। इतने पर भी इन कोयला खानो के श्रमिको की दुर्भाग्यग्रस्त दशा की ओर सरकार का ध्यान पहले इसलिए नही गया कि एक तो भारतीय कोयला खान उद्योग की विदेश से किसी प्रकार की कोई प्रतियोगिता नही थी। दूसरे, इसके अधिकाश पर विदेशियो का स्वामित्व था।[122] इस क्षेत्र मे गिने चुने कुछ भारतीय व्यवसाय सघ भी थे परतु उनकी गतिविधि छोटी और साधारण कोयला खानो तक ही सीमित थी।[123]

अतत 1899 मे भारत सरकार ने लैजिस्लेटिव कौसिल मे इडियन माइंस बिल पेश

किया जो अत मे '1901 के इडियन माइस ऐक्ट' के रूप मे सामने आया। यह कानून अत्यत कोमल था, इसने बेमन से ही, खानो के निरीक्षण को और महिलाओ तथा बच्चो की नियुक्ति को नियमित करने का प्रयत्न किया।[134]

प्रयोजन विशेष से निर्मित अधिनियम की व्यवस्थाए यद्यपि इस सीमित और कठिन कार्य की पूर्ति म पूर्णत अपर्याप्त थी तथापि इस पर विचार अभिव्यक्त करने वाले सभी राष्ट्रवादी नेताओ ने सर्वसम्मति से इसका विरोध किया। उनके विरोध के आधार लगभग वही थे जो फैक्टरी कानून के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए थ। एक बार फिर खानो जैसे शिशु उद्योग के लिए किसी प्रकार के कानून की आवश्यकता को नकारा गया और खान मे काम करने वालो की स्थिति को सतोषप्रद घोषित किया गया।[135] यह कम विस्मय की बात नही कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने भी उसमे योग दिया। उसने 1901 म एक प्रस्ताव पास किया जिसमे खान बिल से श्रमिको की नियुक्ति पर प्रतिबधो से सबधित व्यवस्थाओ को हटाने का सुझाव दिया गया था।[136] इस प्रस्ताव के प्रस्तोता भूपेंद्रनाथ बसु ने यह अवश्य स्वीकार किया कि यह प्रस्ताव बगाल खान मालिको के सघ की प्रार्थना पर ही पारित किया जा रहा है। इसम आश्चर्य की कोई बात नही कि उन्होने महिलाओ द्वारा बच्चो को भूगर्भ मे अपने साथ ले जाने की मनाही करने वाली व्यवस्था का विरोध किया और घोषणा की कि 14 वर्ष म अधिक आयुवाले को बच्चा मानना ज्यादती है क्योकि इस आयु म तो भारतीय महिलाए मा बन जाती है। उन्होने निरीक्षको की नियुक्ति का भी इस आधार पर विरोध किया कि वे खान मालिको के लिए आतक बन जाएगे।[137]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा 1891 के इन्डियन फैक्टरी ऐक्ट के सबध मे अभियुक्त तर्को का भूगर्भ म स्त्रियो और बच्चो की नियुक्ति पर लगे प्रतिबधो के सबध मे भी उपयोग किया।[138] 4 और 10 वर्ष के बीच की आयु के बच्चो को भूगर्भ मे ले जाने पर प्रतिबध लगाने वाली 1899 के बिल की धाराओ पर राष्ट्रवादियो ने इस आधार पर आक्रमण किया कि इसमे परपरागत पारिवारिक सबध छिन्न भिन्न हो जाएगे।[139] एक सीमा तक यह प्रस्तुत किया गया कि श्रमिको ने इस प्रकार के कानून की इच्छा कभी प्रकट ही नही थी।[140] 'हितवादी' ने 24 मार्च 1899 के अक मे लिखा खान कर्मचारी सरकार की बिन मागी उदारता का स्वागत नही कर सकता। वह इस उदारता पर आश्चर्य प्रकट करता हुआ कहता है महाराज आपकी दानशीलता के लिए धन्यवाद। मुझे तो आपकी कृपा की आवश्यकता नही, आप अपना निरीक्षक वापस बुला लीजिए।[141]

बहुत सारे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओ ने योग्य प्रशिक्षित व्यक्तियो को ही खान प्रबधक नियुक्त किए जा सकने की व्यवस्था की तीखी आलोचना की। उन्होने बिलकुल ठीक ही निर्देश किया कि किसी उपयुक्त खान स्कूल के अभाव मे योग्य प्रशिक्षित भारतीय प्रबधक उपलब्ध ही नही है और भारतीयो के स्वामित्ववाली अधिकाश छोटी छोटी खान कपनियो को बडी बडी यूरोपीयो के स्वामित्ववाली कपनियो से प्रतियोगिता करनी पडती है। इस स्थिति मे वे उच्च वेतनभोगी प्रबधको को नियुक्त करने का भार उठा ही नही सकती है।[142] इस सबध मे उनकी माग थी कि देश मे एक खान स्कूल खोला जाए[143] और जब

तक यह नही हो जाता, तब तक कानून की इस धारा को अस्थाई रूप से स्थगित रखा जाए।[134]

भारतीय नेताओ ने पहले की ही तरह यह भय प्रकट किया कि खान कानून खान उद्योग के विशेषत भारतीयो के स्वामित्ववाले भाग के विकास को नुकसान पहुचाएगा।[135] उन्होने खुले तौर पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि इसकी सरचना इग्लैड के कोयला उद्योग की सहायता के लिए की गई है।[136] सत्य यह है कि इस मामले मे इस दोष के लिए कोई ठोस आधार नही था।

राष्ट्रवादी नीति का आधार

अब तक हमने श्रमिको के पक्ष म कानूनी हस्तक्षेप के सदर्भ मे भारतीय कारखानो और खान उद्योगो मे नियुक्त श्रमिको की बढती समस्याओ के किसी न किसी पक्ष पर अपने विचार प्रकट करने वाले भारतीय राष्ट्रीय नेताओ के बहुत बडे वर्ग के विरोधी रुख की समीक्षा की है। इसके साथ ही हमने यह भी देखा है कि श्रमिको की साधारण मागो के प्रति भी थोडे से राष्ट्रवादियो ने ही अपना समथन प्रकट किया है।हमने यह देखा कि यह विरोध न तो प्रचड था और न ही व्यापक। लकाशायर की भूमिका का उल्लेख आने पर ही उग्रता और व्यापकता आ जाती थी। अन्यथा यह विरोध एक प्रकार म उत्साहरहित ही था। इसी प्रकार श्रमिको की मागो के प्रति समर्थन भी टूटे दिल म था और परिणाम-स्वरूप महत्वशून्य था। इन दोनो तथ्यो की पुष्टि भारत सरकार की गतिविधियो की मालिको के प्रति पक्षपातपूर्ण प्रवृत्ति से तथा भारत सरकार द्वारा लाए गए बिलो अथवा कानूनो की मालिको की दृष्टि मे साधारण प्रवृत्ति से हो जाती है। बबई मिलमालिक सघ के 1891 के वर्ष के प्रतिवेदन से इस सत्य का समर्थन होता है। 1891 के फैक्टरी ऐक्ट को उद्धृत करते हुए प्रतिवेदन म कहा गया है ये परिवर्तन सघ के सदस्यो द्वारा पहले से ही समर्थित दृष्टिकोणो के बाहर नही जाते। अत बिल पर विचार विमर्श करते समय किसी प्रकार का शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण ग्रहण करने की कोई आवश्यकता नही।[137] सुझाए गए अथवा कानून का रूप दिए गए अधिकाश उपायो की मालिको द्वारा स्वीकृति के तथ्य को समकालीन कई समाचारपत्रो ने भी अनुभव किया।[138] 1885 के बाबे फैक्टरी कमीशन के जाच परिणामो के, 1890 के फैक्टरी कमीशन की सिफारिशो के और 1890 के फैक्टरी अधिनियम के मालिको द्वारा किए गए अधिकृत समर्थन म हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि राष्ट्रवादियो द्वारा किया गया विरोध मालिको के प्रति वफादारी का एक विचित्र रूप है।[139]

भारतीय नेताओ द्वारा प्रस्तावित अथवा वास्तविक श्रम कानून का जो समर्थन अथवा विरोध हुआ उससे बढकर अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि कारखानो तथा खानो के कर्मचारियो के अत्यत दलित वर्ग के प्रति इन नेताओ म सक्रिय सहानुभूति का लगभग पूर्ण अभाव था। राष्ट्रवादी आर्थिक चिंतन के समर्थक किसी भी महानुभाव ने इस विषय मे लगभग कुछ भी नही कहा। भारतीय राजनीति म न्यायमूर्ति के रूप मे विख्यात तथा समाजसुधारको मे अग्रगण्य रानाडे श्रमिक वर्ग के दुर्भाग्य पर पूर्णत मौन थे।[140] भारतीयो

की निर्धनता पर द्रवित होने वाले कोमल हृदय दादाभाई नौरोजी ने भी कारखाना श्रमिकों के जीवन के निम्न स्तर पर कोई ध्यान नही दिया। अपनी विश्वकोशीय बुद्धि से भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक श्रेणी का साधिकार विवेचन करने वाले जी० वी० जोशी ने भी श्रमिक आर्थिकता की ओर ध्यान नही दिया। आर० सी० दत्त ने अपने अतिविस्तृत महत्वपूर्ण ग्रथ 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' मे अथवा अपने अनेक सार्वजनिक भाषणो मे तथा असख्य लेखो मे कारखानो के श्रमिको के सबध मे एक शब्द भी नही लिखा या कहा। 19 वी शताब्दी के अत तक 'हिंदू' के सपादक जी० सुब्रमनिया अय्यर तो न्यूनाधिक रूप से कारखाने के श्रमिको के हितो के विरुद्ध ही थे। जी० के० गोखले ने अपने प्रसिद्ध सार्वजनिक अथवा ससदीय भाषणो मे इन श्रमिको की कठिनाइयो पर कुछ भी नही कहा।[11] सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी के भाषणो मे श्रमिक समस्या का एकमात्र उल्लेख उनकी कारखाने के श्रमिको के दुखो-कष्टो के प्रति नितान्त सहानुभूतिहीनता को ही प्रकट करता है।[11] इसके अतिरिक्त उनके द्वारा सपादित 'बगाली' सामान्यतया फैक्टरी कानून का विरोधी था। अखिल भारतीय काग्रेस ने भी कारखाना श्रमिकों की दुर्दशा से सबधित कोई प्रस्ताव पास नही किया। वस्तुत खान कानून से सबधित काग्रेस द्वारा पारित [illegible] प्रस्ताव श्रमिकविरोधी ही था। अधिकाश प्रमुख राष्ट्रवादी समाचारपत्र अमृत बाजार पत्रिका, हिंदू, मराठा, बगाली, इंदु प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, नेटिव आपीनियन, [illegible], [illegible] श्रमिको के सबध मे या तो मौन रहे अथवा उन्होने शत्रुतापूर्ण बर्ताव किया। सामान्य स्थिति मे राष्ट्रवादी नेताओ के इस पूर्ण मौन भाव की कदाचित उपेक्षा की जा सकती परन्तु उस अवधि मे जबकि श्रमिको की स्थिति सचमुच शोचनीय और हृदयविदारक थी तथा उसके साथ ही उनकी दुर्भाग्यग्रस्त स्थिति अपने समय की, विशेषत 1881-1891 की मध्य की अवधि की एक सार्वजनिक ज्वलन्त समस्या थी, लोकनेताओ का मौन यदि समझ से परे नही तो अर्थपूर्ण अवश्य है। जहा वाणी की बहुत जरूरत होती है वहा मौन स्वत मुखरित हो उठता है। यदि और [illegible] नही तो कारखानो और खानो मे हाडतोड काम करने वाले मजदूर श्रमिको की दुर्दशा तो बगला के अग्रणी ब्रह्मसमाजियो, बबई और मद्रास के सुधारको, पूना के पर्याप्तवादियो और लाहौर के आर्यसमाजियो के मन मे क्रोध की ज्वाला भडकाती। इस उदासीनता का विश्लेषण जस्टिस रानाडे के लेखो मे एक विचार के बारे मे मिल जाता है। उन्होने अपने निबध 'दि इंडस्ट्रियल आर्गेनाइजेशन आफ [illegible] इन इंडिया', मे लिखा कि भारत मे फैक्टरी कानून यद्यपि अपनी प्रणाली तथा प्रभाव मे उपयुक्त है तथापि भारत मे यह मानवीयता के सागर मे एक बूद के समान है।[11] परन्तु हमारे विचार मे भारतीय नेताओ के दृष्टिकोण की सभव व्याख्या यह है कि भारतीय नेताओ का उद्योगीकरण के लक्ष्य के प्रति समग्र और अविभाजित समर्पण का भाव था जिसने उन्हे उत्पादन की [illegible] ओद्योगिक कारखाना पद्धति के प्रचलन से उत्पन्न हो रही बुराइयो के प्रति सर्वथा अधा बना दिया था। उन्होने जनता की बढती हुई सामान्य दरिद्रता मे, राजीविका के, साधनो के क्षीण हो रहे साधनो के और पृथ्वी पर [illegible] दबाव के निदान का एकमात्र उपाय देश के उद्योगीकरण के रूप मे देखा और उसके द्रुत विकास का निर्धारण करने की फिक्र की। परन्तु इस

सबसे उन्हेंनिर्दोष नहीं ठहराया जा सकता। उनकी इस उपेक्षा का कारण यह भी हो सकता है कि उन्होंने फैक्टरी कानून की प्रत्येक चेष्टा के पीछे या तो मांचेस्टर का हाथ देखा, जो बहुत ही खुले तौर पर नजर नहीं आता था अथवा विदेशी प्रतियोगिता के खतरे को देखा। उन्होंने विकासशील श्रमिक वर्ग की वस्तुगत आवश्यकताओं और हितों की ओर ध्यान नही दिया। इस प्रकार वे औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के मुखिया बन गए अथवा कम से कम उनके हाथ में खेलते रहे। इसके अतिरिक्त यहा तक कि औद्योगिकता की समस्या को भी उन्होंने पूर्णत: और समग्रत मालिकों की आख से ही देखा। भारतीय उद्योगों की प्रतियोगी स्थिति विदेशी प्रतियोगिता मे सुधार का भारतीय मालिकों द्वारा कल्पना दृष्टि तथा अधिकाश भारतीय नेताओ द्वारा समर्थित उपाय था, उत्पादन व्यय को बनाए रखना और इसके लिए अपनाए जाने वाले साधन थे, थोडा वेतन और काम के लंबे घंटे आदि अथवा संक्षेप मे श्रमिकों से कमरतोड काम लेना। वस्तुत भारतीय नेताओ ने अनकहे और परोक्षरूप से लंकाशायर के इस आरोप को स्वीकार ही कर लिया कि श्रमिकों का अत्यधिक शोषण भारतीय उद्योग को परोक्ष संरक्षण दे रहा था। भारतीय नेताओं को न तो यह सूझा कि लाभाश को घटाने मे भारतीय उद्योग की प्रतियोगी स्थिति सुधर सकती है और न ही यह सूझा कि श्रमिकों को प्रोत्साहन देने मे अथवा अन्य किसी इस प्रकार के उपायों को अपनाने मे औद्योगिक उत्पादकता सुधर सकती है।[144] वस्तुत: इस अवधि मे भारतीय श्रमिक की उत्पादकता मे वृद्धि इतनी द्रुत थी और भारतीय कारखानों को होने वाले लाभ इतने ऊचे थे[145] कि अगरेज प्रतिद्वद्वियो के साथ भारतीय उद्योग को प्रतियोगी स्थिति को थोडी सी सीमा मे भी दुर्बल बनाए बिना ही श्रमिको की स्थिति मे आसानी से सुधार किया जा सकता था। परतु कालावधि मे तो भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने आधुनिक उद्योग के हितो के रूप मे समग्रत पूंजीपतियो के हितों पर ही ध्यान दिया।

निस्संदेह हम यह नही कहना चाहते कि उस विशिष्ट ऐतिहासिक घडी मे और तत्कालीन राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों मे भारतीय नेता कोई ऐसा पग उठाते अथवा उन्हे उठाना चाहिए था जो भारतीय समाज के उभरने दो नए वर्गों के बीच वर्ग संघर्ष पनपाता। अन्य किसी प्रयोजन से न सही, राजनीतिक उद्देश्य से तो निश्चित ही देश की राजनीतिक और आर्थिक मुक्ति के सघर्ष के लिए सभीदेशवासियों को सगठित करना न केवल लाभप्रद प्रत्युत आवश्यक भी था। यह एक स्वत सिद्ध सत्य है कि उस समय भारतीयों द्वारा अपनाया गया आदोलन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य था और किन्ही भी अन्य आधारों पर लोगों को विभाजित करना कदापि वाछनीय नहीं था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे ही अधिवेशन मे दादाभाई नौरोजी ने इस सिद्धात की प्रस्थापना की कि काग्रेस, सभी देशवासियो के समान रूप से प्रत्यक्ष हित के विषयों तक ही अपने को सीमित रखे और समाजसुधारों की व्यवस्था तथा अन्य वर्गीय प्रश्नों को वर्गीय सस्थाओं के लिए छोड़ दे।[146] परतु राष्ट्रीय संगठन के भीतर ही भीतर मतभेद, हितो मे संघर्ष तथा यहां तक कि विवाद उठ सकते थे और उठे भी। उन विवादो को हटाने और सुलझाने मे ही राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा किए गए प्रयत्नों में उनका पक्षपात उभरा। मालिकों और श्रमिकों के

बीच विवाद खड़े होने पर राष्ट्रवादी नेताओं ने दोनो विवादाधीन दलों में अपनी लेन-देन के आधार पर दोनों मे समझौते का कोई भी नुस्खा नही बनाया। वे या तो मौन रहे जिसका अर्थ अपेक्षाकृत अधिक सशक्त पक्ष की स्थिति का स्वीकृति के रूप मे समर्थन था अथवा उन्होंने व्यापक राष्ट्रीय हितों की वकालत की जिसका स्पष्ट अर्थ कारखानो और खानो के श्रमिकों के हितों की पूर्ण उपेक्षा था। औद्योगिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति अर्थात भारतीय उद्योग के विकास और उसकी संपन्नता का दृष्टिकोण अपनाने के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग के हितो की बलि चढ़ा दी गई। यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतीय नेताओ ने श्रमिकहितों के विरुद्ध अन्यान्य विषयो मे अभिशाप माने जाने वाले ब्रिटिश पूजीपतियों और नौकरशाही के साथ सामान्य उद्देश्य अपनाने मे भी संकोच नही किया।

1882 का बागान श्रम और अंतर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम

जहा तक ब्रिटिश स्वामित्ववाले बागानो मे नियुक्त भारतीय श्रमिकों का संबध था, भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का दृष्टिकोण ठीक विपरीत था। नेताओं की स्थिति मे यह पूरी की पूरी तब्दीली चाय बागान मे नियुक्त, सामान्यत. असम कुली कहे जाने वाले हजारो श्रमिको के कार्य और जीवन के प्रति अपनाए गए उनके दृष्टिकोण मे जितनी स्पष्ट है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। बागान श्रमिको की दुर्दशा की ओर भारतीय नेताओ ने हार्दिक सहानुभूति और पूरी तत्परता के साथ ध्यान दिया। उन्होने क्रूर विदेशी पूजीपतियो की भर्त्सना की। असुरक्षित और बेजबान श्रमिको के दुर्भाग्य पर आसू बहाए और उत्सुकतापूर्वक उनके मामले की वकालत की। इस मामले मे उन्होने राष्ट्रीय भावना का अच्छा प्रदर्शन किया तथा सामूहिक राष्ट्रीय अपमान के तथा क्षत विक्षत राष्ट्रीय गर्व के सुप्त भावो को जगाने के लिए, तथा असंख्य हृदयो मे राष्ट्रीयता की ज्योति जगाने के लिए कुलियो द्वारा अनुभूत दुर्भाग्य और लज्जाजनक अवहेलनाओ का सही उपयोग किया। स्थिति मे यह प्रत्यावर्तन पूरी सावधानी से उठाया गया पग था क्योंकि इस मामले मे मालिक विदेशी थे। 1891 मे कांग्रेस के सभापति पी० आनंद चारलु ने 1901 मे लैजिस्लेटिव कौंसिल में असम लेबर ऐंड इमिग्रेशन बिल पर अपने भाषण मे इस दृष्टिकोण को बड़े ही विशद और संक्षिप्त रूप में इस प्रकार प्रकट किया है :

> यदि मालिक और नौकर एक ही राष्ट्र के आवश्यक अंग हों तो कदाचित इस प्रकार के कानून के लिए आग्रह की आवश्यकता नही क्योंकि इस प्रकार की स्थिति मे भेदभाव का अवकाश थोड़ा होता है और पारस्परिक भ्रातृत्व की भावना अपेक्षाकृत अधिक होती है। परंतु जहां इस प्रकार के पारस्परिक सद्भाव का और सौहार्दपूर्ण आदान-प्रदान का वातावरण न हो, इतना ही नही प्रत्युत स्थिति सर्वथा विपरीत हो, वहां एकपक्षीय प्रमादजन्य अन्यायपूर्ण प्रवृतियों के निवारण के लिए तथा सामयिक समझौतों के लिए इस प्रकार के कानून की एक प्रकार से अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है।[147]

राष्ट्रीय नेताओ के निर्णय को प्रभावित करने वाला दूसरा तत्व यह था कि असम के चाय बागान में श्रमिक इकरारनामे द्वारा अनुबंधित थे और कार्य की स्थिति सर्वथा अहितकर थी।

चाय उद्योग का भारत मे वास्तविक प्रारंभ 1851 में कहा जा सकता है। इसके उपरात इसने तीव्र गति से विकास किया। हमारे अध्ययन की अवधि मे अधिकाश चाय बागान असम में स्थित थे। 1903 में इस उद्योग में 479,000 स्थाई और 93,000 अस्थाई श्रमिक कार्यरत थे।[148] असम की जनसंख्या विरल होने के कारण और चाय बागान के प्राय: निर्जन पहाडी ढलानों पर अवस्थित होने के कारण बंगाल तथा अन्यान्य प्रातो मे अत्यधिक आवश्यकता के अनुरूप विपुल संख्या में लोगों को मंगाना पडता था परंतु प्रति-वर्ष हजारों श्रमिकों को अपने घरो मे बहुत दूर अस्वस्थ वातावरणवाली तथा विचित्र रोगों से दूषित धरती पर लाना आर्थिक और अन्यान्य प्रलोभनो की व्यवस्था की अपेक्षा करता था और असम के चाय बागान के मालिक यह सब करने को प्रस्तुत नहीं थे। इसके बदले उन्होने छल-कपट और जोर-जबरदस्ती का मार्ग ग्रहण किया। उन्होने सरकार को दडनीय कानून पास करके इस अपवित्र पाप कर्म मे उनकी सहायता और सेवा करने के लिए मना लिया।[149] बस यही से असम के चाय बागान श्रमिकों के दुखो और दुर्भाग्य की कहानी आरंभ होती है। उन्हें यह जानकर घोर दुख हुआ कि विदेशी पूजीपतियो द्वारा देश के आर्थिक विकास का परिणाम यह निकल रहा है कि उनकी आजीविका के नए साधनों की सृष्टि उन्हें परंपरागत ग्रामीण दरिद्रता की अवस्था से निकाल कर इकरार-नामे मे अनुबधित रूप मे शोषण और दुर्भाग्य की स्थिति मे डाल रही है।

बंगाल के 1863 के और 1865, 1870 और 1873 मे संशोधित 'ट्रासपोर्ट आफ नेटिव लेबरर्स ऐक्ट' (संख्या 3) की व्यवस्थाओ के अतर्गत असम के चाय बागान के लिए श्रमिकों की भरती वर्षों तक अधिकाशत ठेकेदारों द्वारा की जाती रही। यद्यपि कानून मे अनुबंधित श्रमिकों के संरक्षण की अपेक्षा की गई थी क्योंकि इसमे लायसेंसधारी भरती की व्यवस्था थी परंतु 1865 मे यथा संशोधित अधिनियम से वास्तव मे मालिको को ही लाभ पहुचा। इसने श्रमिको के न केवल काम छोडने प्रत्युत काम करने मे सुस्ती को भी दंडनीय अपराध बना दिया और साथ ही साथ मालिको को नियुक्तिवाले क्षेत्र के जिले की सीमाओ के अंतर्गत भगाडे नौकरो को गिरफ्तार करने का अधिकार दे दिया। नौकरों को सीधे और सकरे मार्ग पर चलते रहने के लिए मालिकों ने पहले से बने अधिनियम अर्थात 1859 के अधिनियम संख्या XIII का भी उपयोग किया जिसके अनुसार काम करने के आश्वासन पर अग्रिम रुपया लिए हुए किसी श्रमिक द्वारा अनुबध भंग, काम करने से इनकार के लिए सत्याग्रह करना, शारीरिक रूप से दंडनीय अपराध और अर्थदड का विषय था। मालिकों ने भारतीय दड संहिता (1860 के अधिनियम XLV) की धारा 490 और 492 का भी उपयोग किया जिसके अनुसार यदि श्रमिक को मालिक के खर्चे पर कार्यस्थल पर लाया जाता है और वह सफर के बीच म अथवा कार्य के स्थान पर पहुंच कर अनुबंध तोडता है तो उस स्थिति मे वह दंडनीय अपराध का भागी बन जाता है।

चाय बागानों की अधिक और अधिक कर्मचारियो की भूख का मिटाने मे चालू

कानूनों के अपर्याप्त सिद्ध हो जाने पर भारत सरकार ने 1881 मे अखिल भारतीय स्तर पर सारे प्रश्न की जाच के लिए एक आयोग नियुक्त किया। कमीशन ने प्रतिवेदन मे कहा कि वर्तमान कानूनों म श्रमिको की भरती और कामचोरी को रोकने की पर्याप्त व्यवस्था नही है। यहा तक कि इन कानूनो से अनुबध का पालन कराना ही कठिन हो रहा है और बागान के सरदारो ने श्रमिको की भरती पर अनावश्यक पाबदिया लगा रखी है।[150] इन सिफारिशो के अनुसार ही 1882 का 'इनलैंड एमिग्रेशन ऐक्ट' पास किया गया जिसने पूर्ववर्ती सभी कानूनो को पीछे छोड दिया। यहा यह उल्लेखनीय है कि इसने 1859 के अधिनियम XIII को रद्द नहीं किया। 1882 के इस अधिनियम ने भरती करने वाले अभिकर्ताओ को कानूनी मान्यता दे दी और अनुबध लेखन को अत्यत सरल बना दिया। इसने प्रथम तीन वर्षो म पुरुषो और स्त्रियो का न्यूनतम मासिक वेतन क्रमश 5 रुपये और 4 रुपये तथा चौथे और पाचवे वर्ष मे क्रमश 6 रुपये और 5 रुपये निर्धारित किया। इसमे मालिक या दूसरे अधिकारी के निवास स्थान से पाच मील की सीमा के भीतर जहा मजिस्ट्रेट न हो, पकडे गए अनुबधित भगोडे कर्मचारी को गिरफ्तारी के आदेशपत्र के बिना ही गिरफ्तार करने का अधिकार देने की व्यवस्था थी।[151]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ विशेषत बगालियो ने असम के कुलियो की सचमुच शोचनीय स्थिति और सरकार के अनुबधित श्रम पद्धति को कानूनी मान्यता और समर्थन देने के प्रयास के विरुद्ध अपनी तीखी प्रतिक्रिया प्रकट की। इस पद्धति के दोषो पर बंगाली आदि भाषाओ के समाचारपत्र पहले से ही, 1870 से लिखते आ रहे थे। इसके साथ ही असम के श्रमिको के साथ किए जाने वाले निंदनीय व्यवहार की लोमहर्षक कहानिया लिखकर ये पत्र पाठको के हृदय मे सुप्त राष्ट्रीयता को जगा रहे थे।[152] लगभग 1880 के आसपास ब्रह्म समाज के साधारण प्रचारक रामकुमार विद्यारत्न ने 'कुली कहानी' नामक एक पुस्तक लिखी। इसमे असम के कुलियो की दयनीय दशा पर प्रकाश डाला गया था। पुस्तक शीघ्र ही लोकप्रिय बन गई।[1]

जब 1881 म इडियन एमिग्रेशन बिल प्रस्तुत किया गया और 1882 मे पारित किया गया, उस समय भारतीय समाचारपत्रो ने कुली को बागान मालिक का गुलाम बनाने के लिए तथा उसे पूर्णत मालिक की दया पर छोडने के लिए बडे ही आवेशपूर्वक भर्त्सना की।[151] उदाहरण के लिए 17 दिसबर 1881 के अक मे 'बगाली' ने लिखा कि इस बिल के द्वारा मानवीय स्वतत्रता के पवित्र अधिकार का उल्लघन होता है। पत्र ने घोषणा की कि यह कानून अपनी मूल प्रकृति मे दास कानून कहा जा सकता है। ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन ने अपने 29 दिसबर 1881 के अक मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा कि कुली की स्थिति चल सपत्ति से किसी भी रूप मे बेहतर नही है और यह कानून उनके प्रति ऐसा ही व्यवहार करता है। दूर प्रदेश बबई मे 'इडियन स्पैक्टेटर' ने इस कानून की निदा करते हुए लिखा कि इस कानून मे बंगाल के दुखी कुली को कानूनी तौर पर गुलाम बनाने से कम कुछ भी तो नही। इस पत्र ने टिप्पणी करते हुए लिखा . 'आज तक कभी श्रम को पूर्णतः पूजी की दयादृष्टि का अधीन नही बनाया गया।'[156] बगाल के युवा राष्ट्रवादियों की उदीयमान पीढ़ी के प्रवक्ता भारतीय सघ (इंडियन एसोसिएशन) ने भारत सरकार

को एक विस्तृत ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसमें बिल की कुछ धाराओं, विशेषतः धारा संख्या 170 और 172 की आलोचना की गई। ज्ञापन मे अनुरोध किया गया कि इस प्रकार से विवश करने के बदले माग और पूर्ति के सिद्धात को काम करने दिया जाए।[156] अधिकांश आलोचकों ने यह भी आरोप लगाया कि यह कानून एकाततः बागान मालिकों के हितो के लिए और उनके दबाव में ही बनाया जा रहा है।[157]

अगले कुछ वर्षों में कानून के अमल में आने पर आलोचकों के गंभीरतम भय तथा उनकी अत्यत अंधकारमय भविष्यवाणियां सत्य सिद्ध हुईं। अगले दस वर्षों मे राष्ट्रीय नेताओं ने इस कानून की निरंतर और तीखी आलोचना की तथा असम के चाय बागान के श्रमिकों की दयनीय दशा पर देश भर मे आंसू बहाए। सारे देश भर मे 'एमिग्रेशन ऐक्ट' की प्रसिद्धि 'दास कानून' के रूप मे ही हुई।[158] भारतीय समाचारपत्रो द्वारा प्रायः प्रकाशित प्रलोभन देने, गुप्त रूप से भागने, पीडा देने, बलात्कार और यहा तक कि हत्या करने आदि की लोमहर्षक कहानिया सुन सुनकर भारत के लोगो के और विशेषकर बंगाल के लोगो के हृदय बहुत ही व्याकुल हो गए थे।

चाय बागान के श्रमिकों के भाग्य मे सदैव गहरी रुचि लेने वाली इंडियन एसोसिएशन ने 1886 मे एक बार पुनः इस विषय को उठाया। उस समय इस संस्था ने अपने सहायक सचिव द्वारकानाथ गागुली को मौके पर जाच पड़ताल के लिए प्रतिनियुक्त किया। गागुली महोदय ने 'बंगाली' और 'संजीवनी' के पृष्ठों मे श्रमिकों की लगभग गुलामी की स्थिति और उन्हे सताने की गुप्त तथा मर्मांतक कथाओं के रूप मे अपने अनुभवों का वर्णन किया।[159] यह सस्था असम के कुलियों की स्थिति की ओर ध्यान देने के लिए वायसराय से पहले ही 1886 मे अनुरोध कर चुकी थी। अब संस्था ने अपने सहायक सचिव के अनुभवो और न्यायालयो द्वारा दिए गए कितने ही निर्णयों को उद्धृत करते हुए एक विस्तृत ज्ञापन 5 मई 1888 को भारत सरकार के पास भेजा।[160] परवर्ती वर्षों मे एसोसिएशन इस मामले में रुचि लेती रही और भारत मे तथा इंग्लैंड मे संबधित अधिकारियो के पास ज्ञापन भेजती रही।[161]

समय के साथ साथ असम के कुलियों के मामले को भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने उठाया परतु आश्चर्यजनक बात यह है कि कांग्रेस मे इस प्रश्न को उठाने के प्रारभिक प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुए। 1887 की मद्रास कांग्रेस में जब बंगाल के प्रतिनिधियों ने कांग्रेस के नेताओं से असम के कुलियों के प्रति अमानवीय व्यवहार को कानूनी मान्यता देने वाले ऐक्ट की निंदा करने का अनुरोध किया तो उनकी प्रार्थना को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि किसी आदेश विशेष के किसी विषय पर अखिल भारतीय कांग्रेस मे विचार-विमर्श नही किया जा सकता।[162] अगले वर्ष इलाहाबाद के अधिवेशन में किया गया प्रयास पुनः निरर्थक सिद्ध हुआ।[163] परंतु यह लोकप्रिय भावना सारे ही देश मे क्रमशः बड़ा ही व्यापक रूप ग्रहण करती जा रही थी अत. रूढ़िवादी कांग्रेसी नेताओं को देर सबेर इसके आगे झुकना ही पड़ा। कांग्रेस ने 1896 में 'उत्प्रवास अधिनियम' हटाने की वकालत करते हुए इस विषय का एक प्रस्ताव पारित करके चाय बागान के श्रमिकों के साथ संबंध जोड़ लिया।[164] प्रस्ताव के प्रस्तोता जोगेंद्रचंद्र घोष और समर्थक विपिनचंद्र पाल, दोनों

ने चाय बागान में व्याप्त लगभग गुलामी जैसी दुर्दशा की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान आकृष्ट किया।[165] कांग्रेस के आगामी चार अधिवेशनों में प्रस्ताव के महत्व को दोहराया गया।[166]

इस अवधि में 1887 के कांग्रेस अधिवेशन में अपने अनुभवों से ही कुंठित बंगाल के नेताओं ने 25 अक्तूबर 1888 को प्रथम बंगाल प्रांतीय सम्मेलन का आयोजन किया। इसका प्रमुख उद्देश्य असम के कुलियों के प्रश्न पर उग्र विचार प्रकट करना था। प्रांतीय सम्मेलन अत्यंत सफल हुआ और संयोजकों ने इसे वार्षिक आयोजन का रूप दे दिया। इसने सदैव असम के कुलियों की समस्याओं के प्रति उत्कट और सक्रिय रुचि दिखाई।[167]

आर० सी० दत्त ने अपनी पुस्तक 'इकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया' के माध्यम से इस भारतीय चाय उद्योग पर अमिट कलंक बताते हुए उसकी सामान्य निंदा में अपना सशक्त स्वर मुखरित किया तथा अर्धदासता की इस प्रणाली को समाप्त करने की मांग की।[168]

हां, यह अवश्य है कि एमिग्रेशन ऐक्ट तथा चाय बागों में व्याप्त भयंकर दुर्व्यवहारों के विरुद्ध आंदोलन में प्रमुख भूमिका राष्ट्रवादी प्रेस ने ही निभाई। भारतीय समाचार-पत्रों ने कुलियों के साथ पूरी सहानुभूति तथा समान मुद्रता दिखाते हुए वर्षों तक उनकी दुर्दशा के वि... अपनी प्रक्रिया में अपने ज्ञान के शब्दकोश का पूरा प्रयोग करते हुए तथा अपने क्रोध और दुःख को अभिव्यक्ति देते हुए विरोध प्रकट किया। उदाहरणार्थ, इंडियन एसोसिएशन ने 1888 में भारत सरकार को जो ज्ञापन दिया, देश भर के सभी समाचारपत्रों ने उसका पूर्ण रूप से समर्थन किया।[169] इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि इस विषय में विशेष रुचि लेने वाले पत्र थे, सुरेंद्रनाथ बैनर्जी द्वारा संपादित 'बंगाली' और कृष्णकुमार मित्र द्वारा संपादित 'संजीवनी'।[170]

राष्ट्रवादी समाचारपत्रों तथा लेखकों ने भरती और परिवहन व्यवस्था को अपने प्रहार का विशेष लक्ष्य बनाया। उन्होंने विस्तार से इस बात का विवरण प्रस्तुत किया कि किस प्रकार कानून का उल्लंघन करके अशिक्षित और भोले भाले मनुष्यों को बलपूर्वक विवश किया जा रहा है और उनका अपहरण किया जा रहा है तथा किस प्रकार धूर्त और सिद्धांतहीन भरती करने वालों द्वारा झूठी आशाओं और कपटपूर्ण प्रतिज्ञाओं द्वारा उन्हें छलकर और फुसलाकर उनकी स्वतंत्रता का अपहरण किया जा रहा है।[171] राष्ट्रवादियों की शिकायत थी कि एक बार जब कुली चाय बाग में पहुंच जाता था तो मालिक उससे घिनौना व्यवहार करता था और उसे बहुत ही भयंकर रूप से सताया जाता था।[172] उसे बलपूर्वक और गैरकानूनी ढंग से बागों में रखा जाता था और यदि वह बचाव का उपाय करता था तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाता था और दंडविधान के अंतर्गत उसे दंड दिया जाता था।[173] द्वारकानाथ गांगुली ने 1886 में प्रतिवेदन किया कि उन्होंने सचमुच काल-कोठरियों में असहमत श्रमिकों को गैरकानूनी ढंग से बंद करके रखे हुए देखा है। उन्होंने यह भी पाया कि चाय बागों में शारीरिक यंत्रणा एक सामान्य प्रवृत्ति है।[174] बहुत से भारतीय लोकनेताओं ने कुलियों के प्रति हृदयद्रावक दुर्व्यवहार की करुण कथाओं का वर्णन किया।[175] राष्ट्रवादी समाचारपत्रों तथा संस्थाओं ने भी महिलाओं के साथ

बलात्कार और पुरुषों की हत्याओं की कहानियां जनता में प्रचारित की। उन्होने कुलियों अथवा कुलियों के शुभचिंतकों द्वारा न्यायालयों में मालिकों के विरुद्ध मामला ले जाने पर न्यायालयों द्वारा मालिकों के पक्ष में विशुद्ध रूप से और अधिकांशतः न्याय का गला घोटने की कहानियां भी प्रकाशित की।[176]

भारतीय नेताओं का तर्कसंगत कथन था कि चाय बागों मे मृत्यु की ऊंची दर सचमुच वहां की वास्तविक स्थिति का सूचक तत्व है।[177] उनकी एक शिकायत यह थी कि काम की स्थितियों और प्रकृति के अरुचिकर होने पर भी चाय बागान के श्रमिको का वेतन बहुत कम था।[178] उन्होंने घोषित किया कि दंडनीय कानून बनाने का मुख्य प्रयोजन वस्तुतः कुलियो का वेतन कम रखना और इन नीचे वेतनो पर कुलियों को काम करने के लिए विवश करना था। यह निश्चित है कि सामान्यत वे इतने कम वेतन पर कार्य करने को प्रस्तुत नहीं होते। इस प्रकार दूसरे शब्दों में इस कानून का उद्देश्य कुलियो को ठगना था।[179] कुछ भारतीयो ने यह भी निर्देश किया कि भारत मे अथवा असम मे श्रमिको की कमी वास्तविक समस्या नहीं थी। ऊंचे वेतनो मे आवश्यकता के अनुरूप श्रमिक उपलब्ध हो सकते थे।[180] राष्ट्रवादियो ने इस मान्यता का जोरदार खंडन किया कि भोले-भाले श्रमिकों में काम से जी चुराने की जन्मजात प्रवृत्ति है। वह अपनी धरती पर भले मर जाता है परंतु दूसरी धरती पर जाकर जीने के लिए भी कठोर श्रम नहीं करता। इस प्रवृत्ति पर काबू पाने के लिए ही दंडनीय कानूनो की अपेक्षा है। राष्ट्रवादियो के अनुसार सत्य यह था कि यूरोपीय उपनिवेशवादी भारतीयो से अपने दासो के रूप से काम लेना चाहते हैं और यदि भारतीय काम करने मे इनकार करते है तो उन्हे सुस्त और निकम्मा कहकर गालिया दी जाती है, उन्हे 'श्रम की महत्ता' से अपरिचित बनाया जाता है तथा अनेक साधनों के प्रयोग द्वारा उन्हे काम करने के लिए विवश किया जाता है।[181]

भारतीय नेताओं ने यह निश्चयपूर्वक कहा कि वस्तुत. असम मे कुली श्रम की सारी पद्धति दासता के रूप से भिन्न नहीं थी क्योंकि वहा भारतीय कुली का जीवन प्राचीन काल के दासों अथवा आधुनिक काल के हब्शी दासों के जीवन से किसी भी रूप मे बेहतर नही था।[182] इस सबंध मे बी० सी० पाल ने बताया कि 1880 के आसपास के वर्षों मे बंगाल की शिक्षित जनता 'अंकल टाम्स कैबिन' पुस्तक की किस प्रकार प्रशंसा करती थी और फिर तत्काल असम के चाय बागान के कुलियो की दशा की तुलना अमरीका के हब्शियों की मुक्ति मे पूर्व की दशा के साथ करती थी।[183] इसी लेखक ने वर्षोपरात 'न्यू इंडिया' के 26 अगस्त 1901 के अंक मे लिखा : 'दंडनीय श्रमपद्धति दासता का संशोधित तथा आधुनिक रूप है।'

विचारणीय यह है कि इस गुप्त संसाधन के विकास से और उसके फलस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि से कुल मिलाकर देश को क्या लाभ हुआ तथा आजीविका और नौकरी के रूप में श्रमिक को क्या प्राप्त हुआ? कुछ भारतीय लेखकों ने समस्या के इस पक्ष की ओर भी ध्यान दिया। उनमें से सर्वाधिक संयत लेखकों ने इन लाभो को खुले तौर पर स्वीकार करते हुए भी विचार प्रकट किया कि महारानी महोदया की दरिद्रतम, अत्यंत निरीह और सर्वथा असहाय प्रजा के बहुत बड़े वर्ग के जीवन और स्वतंत्रता की बलि

चढाकर इन लाभों की उपलब्धि वाछनीय नही थी ।[184] अन्य, अपेक्षाकृत अधिक उग्र तथा क्षुब्ध वर्ग ने तो अनुभव किया कि इस प्रकार का आर्थिक विकास सर्वथा अवांछनीय है। उन्होने स्पष्ट शब्दो में कहा कि वे कुलियो को दासो के रूप मे बेचने की शोचनीय प्रथा को बनाए रखने के बदले चाय उद्योग का नष्ट-भ्रष्ट होना तथा असम का जंगली पशुओ का निवास बनना ही पसद करेगे ।[185]

उपाय

यह शोचनीय स्थिति अधिक समय तक नही चलने दी जा सकती थी, यहा तक कि अन्यथा भी यह स्थिति एक लंबे समय तक जारी नही रह सकती थी । 1887 मे ही सजीवनी ने चेतावनी की घटी बजा दी

> भारत के अगरेज शासकों ! ···यह भय और दमन बंद करो। अगरेज व्यापारियो ! ··· धन के लोभ मे मानव पर किए जा रहे अत्याचार की ओर से अपनी आखे बन्द मत करो। क्योंकि, इस तरह की स्थिति का लंबे समय तक चलते रहना असंभव है। तुम्हारे जैसे अनेक शक्तिशाली राष्ट्रों को भगवान के न्याय ने दबोचा और दबाया है। अपनी यह उन्मादी प्रकृति को छोड दो क्योंकि तुम्हे निश्चित रूप मे अपनी करनी का हिसाब देना पडेगा । इस देश मे अपनी इस पैशाचिक प्रथा के प्रत्येक चिह्न को मिटाने की चेष्टा करो ।[186]

भारतीय नेताओ ने इस सबध मे सर्वप्रथम उपाय के रूप मे इस बात पर बल दिया कि भारत सरकार कुलियों की वास्तविक स्थिति का, 1859 के श्रमिक अनुबन्ध भग अधिनियम (वर्कमेंस ब्रीच आफ कान्ट्रैक्ट ऐक्ट) के प्रवर्तन के यातनाप्रद प्रभावो को, और 1882 के अन्तर्देशीय उत्प्रवास अधिनियम (इनलैंड एमिग्रेशन ऐक्ट) के प्रवर्तन के दुष्परिणामो को अनुभव करे और इसके लिए उन्होने भारत सरकार पर जाच पडताल करने के लिए एक स्वतत्र आयोग की नियुक्ति हेतु दबाव डाला ।[187] द्वितीय, उनका सुझाव यह था कि शक्तिशाली और समृद्ध बागान मालिकों के मुकाबले श्रमिक निरीह तथा असहाय है, अत इस तथ्य को देखते हुए सरकार को स्वय उन्हे यातनाओ से मुक्ति दिलाने के उपाय करने चाहिए ।[188] इस प्रकार का एक उपाय यह होना चाहिए कि अपने श्रमिको के साथ दुर्व्यवहार करने वाले चाय बागान के प्रबधको को तत्काल और तदनुरूप समुचित दंड दिया जाए ।[189] परंतु भारतीयो की सर्वाधिक सर्वमान्य और लोकप्रिय माग दंडनीय कानूनो के निवर्तन की[190] और स्वतत्र उत्प्रवास को लागू करने की थी ताकि चाय बागान को भारत के बहुत बडे श्रम बाजार से माग और पूर्ति के सामान्य सिद्धात के आधार पर श्रमिक मिल सकें ।[191]

भारतीय नेता सरकार से असम के कुलियो को इस दुर्भाग्य से मुक्त करने की अनुनय विनय करते समय यह तथ्य नही भूले कि एक विदेशी सरकार द्वारा यूरोपीय बागान मालिकों के विरुद्ध कोई पग उठाए जाने की संभावना नही थी ।[192] इस विवेक एव सतर्कता के कारण ही असम कुलियो के प्रगाढ मित्र 'सजीवनी' ने अपनी सहायता आप ही करने का आह्वान किया । इस पत्र ने 14 अगस्त 1886 के संपादकीय मे भारतीयों की मर्दानगी को

ललकारते हुए लिखा कि यदि उनकी संपूर्ण शक्ति और साहस नष्ट नहीं हो गए तो उन्हें देश में क्रोध की ऐसी प्रचंड ज्वाला प्रज्वलित करनी चाहिए कि उसमें कुली ऐक्ट जलकर राख हो जाए।[193] इस पत्र ने भारतीयों से कुलियों को अथवा कुली बनने के इच्छुकों को कानूनी तथा अन्य इस प्रकार की सहायता देने के लिए तथा मालिकों की गतिविधि पर निगरानी रखने के लिए एक समिति के गठन का अनुरोध किया।[194] इस पत्र के एक संवाददाता ने यह सुझाव दिया कि शिक्षित भारतीयों को चाय पीना बंद कर देना चाहिए क्योंकि यह चाय पीना गरीब, प्रपीड़ित कुलियो का खून पीने के अतिरिक्त और कुछ नही।[195] आश्चर्यजनक न होने पर भी यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि उस समग्र भारत में किसी ने भी चाय बागान के श्रमिकों को श्रमिक संघ बनाने आदि के रूप मे अपनी सहायता आप करने का सुझाव नही दिया। हा, कुलियों ने स्वयं ही आक्रमण और झगड़े-फसाद के रूप में आत्मसहायता का मार्ग अपनाया[196] परंतु राष्ट्रीय नेताओं से उन्हे समुचित दिशानिर्देशन नही मिला।

असम श्रम और उत्प्रवास अधिनियम, 1901

भारतीयों द्वारा निरंतर आंदोलन तथा असम के उदार तथा साहसी मुख्य आयुक्त हैनरी काटन के सतत प्रयासों के फलस्वरूप जब भारत सरकार ने इस विषय पर नए कानून बनाने का निश्चय किया तो उस समय बीसवी शताब्दी के प्रारंभ मे चाय बागान के श्रमिकों का प्रश्न पुनः एक बार भारतीय राजनीति का प्रमुख विषय बन गया। 13 अक्तूबर 1899 को विधानपरिषद मे 'असम श्रम और उत्प्रवास बिल' लाया गया और 8 मार्च 1901 मे इसे कानून का रूप दे दिया गया। जहां एक ओर इस नए बिल ने चाहे बेमन मे ही सही, भरती की पद्धति को सुधारने का प्रयत्न किया[197] वहां दूसरी ओर कुल मिला कर पहले की तरह ही विषम दुर्व्यवहार चलते रहने से इसका प्रयोजन ही असफल हो गया था।[198] इसके एक प्रावधान ने, जो सारे अधिनियम के प्रयोजन और प्रभाव के अपेक्षाकृत व्यापक संदर्भ मे अत्यधिक महत्वपूर्ण नही थी, मतभेद की स्थिति उत्पन्न कर दी और राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य बन गई। 1899 मे अपने मूल रूप मे प्रस्तावित बिल में 1882 के अधिनियम के अंतर्गत अनुबंधित श्रमिकों के निश्चित न्यूनतम वेतन मे एक रुपया प्रति मास की वृद्धि की व्यवस्था थी। बाद मे इस व्यवस्था मे प्रवर समिति ने इस प्रकार से सुधार किया कि प्रथम वर्ष मे पुरुष श्रमिक और महिला श्रमिक का मासिक वेतन क्रमशः 5 और 4 रुपये, द्वितीय और तृतीय वर्ष मे क्रमशः 5½ और 4½ रुपये और चतुर्थ वर्ष मे क्रमशः 6 और 5 रुपये कर दिया गया। इस प्रकार प्रथम और चतुर्थ वर्ष में श्रमिकों के वेतन उतने ही बने रहे, जितने पहले के अधिनियम मे निर्धारित थे।[199] यद्यपि राष्ट्रवादियों ने इस बिल को इसके मूल रूप मे बागानमालिकों के हितों की सुरक्षा में गढ़ा हुआ तथा बलपूर्वक श्रम को जारी रखने वाला एक साधन मात्र माना[200] और इस वेतनवृद्धि को बहुत थोड़ा माना तथापि इन असहाय प्राणियों को इस विलंबित न्याय का एक अंश देने वाली इस धारा का समर्थन भी किया।[201]

सरकार द्वारा चाय बागानमालिकों की ओर से जे० बकिंघम द्वारा अधिनियम की

वेतनवालीधाराओं के प्रवर्तन को दो वर्षों तक स्थगित रखने के सुझाव की संशोधन के रूप मे स्वीकृति ने एक बार फिर आग म घी का काम किया।[202] वस्तुत: लार्ड कर्जन ने पहले ही विवाद मे हस्तक्षेप करते हुए बागानमालिकों को इस प्रकार की रियायत मागने का निमंत्रण प्रत्यक्ष रूप में दे दिया था।[203] असम के मुख्यायुक्त ने जब इस संशोधन का इस आधार पर विरोध किया कि इससे तो कुलियो के लिए पहले ही अपर्याप्त और अभी अभी विजित रियायत का कोई अर्थ ही नही रह पाएगा तो वायसराय ने इस लोकप्रिय मुख्यायुक्त की सार्वजनिक रूप से अवमानना और[204] भर्त्सना की। इस बात ने कोढ में खुजली का काम किया।[205] विदेशी बागानमालिको के सामने लार्ड कर्जन द्वारा हथियार डाल दिए जाने के विरुद्ध सारे भारतीय समाचारपत्र और लोकनेता एकजुट होकर खडे हो गए।[206] उन्होंने स्पष्ट देखा कि भारतीय लोगो के मूल्य पर यूरोपीय पूजीपतियों के हितो की सावधानी के साथ रक्षा करने का यह एक अन्य निदनीय निदर्शन था।[207] 'बगाली' ने 10 मार्च 1891 के अक मे लिखा : भारत मे ब्रिटिश शासन का मुख्य उद्देश्य यूरोपीय पूजीपतियो और व्यापारियो को लाभ पहुचाना है चाहे इसके लिए न्याय और मानवता का गला ही क्यो न घोटना पडे। राष्ट्रवादियो ने भारत सरकार की निदा करते हुए कुलियो के हितो की वकालत करने मे उनकी न्यायप्रियता तथा वीरता के लिए हेनरी काटन की भरपूर प्रशसा की।[208]

मद्रास बागान श्रम अधिनियम, 1903

1903 मे जब मद्रास सरकार ने 'मद्रास बागान श्रम अधिनियम' को कानून का रूप दिया तो राष्ट्रवादियो की विदेशी सरकार के विरुद्ध क्षोभ की और बागान श्रमिको के प्रति सहानुभूति की भावना एक बार फिर भड़क उठी। प्रमुख रूप से 1901 के 'असम श्रम और उत्प्रवास अधिनियम' पर आधृत मद्रास अधिनियम मे भी भाग जाने वालो के लिए गिरफ्तारी और सजा की तथा अनुपस्थित रहने वालों और सुस्ती बरतने वालो अर्थात काम मे जी चुराने वालो के लिए अर्थदंड और जेल की व्यवस्था थी। भारतीय नेताओं ने असम अधिनियम के समान मद्रास अधिनियम को भी पैशाचिक, ईश्वरविरोधी, अमानवीय, घृणित तथा अन्यायपूर्ण बताकर उसकी भर्त्सना की तथा कुलियो की स्वतत्रता नष्ट करने के लिए और दक्षिणी क्षेत्र के बागान मे दासता को कानूनी रूप देने के लिए उसकी आलोचना की।[209] उन्होंने सरकार पर बागानमालिकों और विदेशी पूजीपतियों को सदा उपकृत करने को प्रस्तुत रहने के लिए उनके हाथ मे एक खिलौना बनने का आरोप लगाया।[210]

व्यापक संबंध

बागान श्रमिकों की समस्याओं पर विचार विमर्श से उभरे कुछ संबंधित व्यापक राजनीतिक तथा आर्थिक प्रश्नों पर भी कई भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने गहरा विचार किया और उन प्रश्नों तथा सरकार के बागानश्रमिकों के प्रति दृष्टिकोण मे व्यापक संबंध सिद्ध करने का प्रयास किया। प्रथम, भारतीय नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस,

भारतीय समाचारपत्रों तथा विधानपरिषद के भारतीय सदस्यों के विरोध की उपेक्षा करके बागानमालिकों के अनुकूल कानून बनाने की सरकार की तत्परता से यही निष्कर्ष निकाला कि यह सरकार भारतीय लोकमत को कोई महत्व ही नही देती।[211] उन्होंने यह भी अनुभव किया कि संशोधित विधानपरिषद पूर्णत. अनुपयोगी सिद्ध हुई है और सरकार ने भारतीय सदस्यों की इच्छाओ की अवहेलना की है।'[212] जी० एम० अय्यर को इस स्थिति में यह मत प्रकट करना पडा कि 'आज की भारतीय पद्धति से अधिक हास्यजनक कानूनी पद्धति कही भी पहले नही रही।'[213] वस्तुत: विदेशी शासको की न्यायप्रियता तथा प्रगतिशीलता पर कोमल और उदार चिन्तनवालों तक का विश्वास हिल गया। 'मद्रास बागान श्रम अधिनियम' के कानून बनने पर लोगो के विश्वास भंग को 'कैसरे हिंद' ने अपने 8 मार्च 1903 के अंक मे सुदर अभिव्यक्ति दी है :

> यदि ये निष्पक्ष विधायक हैं तो हम उनके लिए किसी कटु विशेषण का प्रयोग न करते हुए पूछते है कि जिन बेजबान और बेसहारा लोगो के वे पिता के समान रक्षक बनते है, उन्हे वे क्यो एक अत्यत स्वार्थी वर्ग के ही आदेश से दास बना देते है ? इस बात से कौन इनकार करेगा कि न केवल ब्रिटिश नीतियो के प्रत्युत ब्रिटिश सदाचार के विनाश का भी यह एक अन्य सुदृढ प्रमाण है। निस्संदेह सारे विशाल ब्रिटिश राज्य मे चारों ओर विनाश के अपशकुन और सकेत दिखाई दे रह है जो परिणाम मे सुखद नही कहे जा सकते। भगवान ही ब्रिटिश राज्य को भावी विपत्तियो मे बचाए।[214]

'केसरी' ने भी 10 मार्च 1903 के अंक मे इस समग्र समस्या को विश्वव्यापी पैमाने पर आर्थिक साम्राज्यवाद के विस्तृत परिप्रेक्ष्य मे देखने का प्रयास किया। यह लिखने के उपरात कि आज के भयंकर प्रतियोगिता के युग मे यूरोपीय राष्ट्र भौतिक समृद्धि के लिए कड़ा परिश्रम कर रहे है और सभ्यता का वरदान लाने के बहाने अपने अधीनस्थ अविकसित राष्ट्रों के वस्तुगत और खनिज पदार्थगत साधनों का शोषण कर रहे है, इस पत्र ने शिकायत के स्वर मे लिखा कि यूरोपीय व्यापार के उद्देश्य से अथवा उपनिवेश स्थापित करने के उद्देश्य से जहा कही भी जाते है, उन देशों की जनता को ये लोग दास बनाकर ही उससे काम लेते है। दक्षिणी अफ्रीका मे काफिरों के प्रति और असम मे चायबागान कुलियों के प्रति इनका व्यवहार इसका प्रत्यक्ष और स्पष्ट प्रमाण है। निष्कर्ष रूप मे इस पत्र ने इस विचारधारा पर दुख प्रकट करते हुए लिखा कि मनुष्यो का एक वर्ग तो धन मे खेले और उसके शेष बंधुओ को उस वर्ग के ऐशो आराम के लिए खटने पर विवश किया जाए।[215]

कुछ भारतीय नेता बागान श्रमिकों की समस्या को श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच संबंधो की व्यापक समस्या के अश के रूप मे देखने को प्रेरित हुए। इन नेताओं ने श्रमिकों का ही पक्ष लिया। उदाहरणार्थ, जी० एम० अय्यर का विचार था कि वस्तुत: भारत सरकार की बागान श्रमिकों के प्रति नीति का तथ्य इस सत्य में निहित है कि वह चाय उद्योग मे केवल पूंजीपतियों के हितों को ही जुड़ा समझती है।[216] आर० सी० दत्त का भी अनुभव था कि भारत सरकार पर पूंजीपतियों का प्रभाव इतना प्रबल और प्रचंड

था कि चाहने पर भी श्रमिकों के लिए कुछ करना उनके लिए संभव नहीं था।[17] 'संजीवनी' पत्र भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि असम का संघर्ष मूल रूप में श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच का विवाद है।[18] इस नई जानकारी और राष्ट्रीय आंदोलन के लिए उसके महत्व का विपिनचंद्र पाल ने 1901 में अपने भाषण में बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया। हम उनके भाषण के एक लंबे अंश को उसकी महत्ता के साथ उसकी नवीनता के कारण देना चाहेंगे

> अध्यक्ष महोदय! यह प्रश्न एक बहुत ही पुराना प्रश्न है, श्रमिकों और पूंजीपतियों के मध्य संघर्ष का विश्वव्यापी प्रश्न है। सर्वशक्तिमान चाय की शक्ति से पूंजीपति शक्तियां पहले ही पर्याप्त बलशाली हैं और वे एकदम संगठित भी हैं। उनका संगठन केवल इसलिए नहीं कि श्रमिकों का उनको उपयुक्त पुरस्कार न मिल सके, प्रत्युत इसलिए भी है कि कानूनी न्यायालयों द्वारा अक्षमता प्राप्त तथा उच्च न्यायालय द्वारा दंडप्राप्त लोगों को संरक्षण दिया जा सके। जब यह सब हो रहा है तो क्या श्रम की शक्तियों का संगठित नहीं होना चाहिए? अध्यक्ष महोदय! आप, राजा महाराजाओं अथवा बड़े किसानों के प्रतिनिधि हैं। हम सब इस देश में श्रमिकों की ही स्थिति में हैं और ये सब लोग पूंजीपतियों की स्थिति में हैं।[19]

असम श्रम और उत्प्रवास बिल पर पी० आनंद चार्लू के भाषणों में यह दृष्टिकोण अत्यंत स्पष्ट परंतु सामाजिक व्यावहारिकता के साथ देखा जा सकता है। एक ओर उनका तर्क था कि सरकारी व्यवसायों तथा सुदृढ़ पूंजीपतियों की सफलता के लिए समान रूप से उत्तरदायी तथा महत्वपूर्ण रूप से सहायक श्रमिकों के एक बहुत बड़े वर्ग के दावे की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए; दूसरी ओर उन्होंने बखान की कि मालिकों और श्रमिकों के बीच भारी अंतर उठ सकते हैं जबकि श्रमिकों का वेतनवृद्धि के अभाव में जीना ही कठिन है। मालिकों के लिए इसका अर्थ पैसा आगम में साधारण सी कमी है परंतु श्रमिकों के लिए इसका अर्थ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं का भयंकर रूप से अभाव है।[20]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के मन में बागान श्रमिकों के प्रति सहानुभूति की भावना इसलिए उभरी क्योंकि इस उद्यम में विदेशी पूंजीपति संलग्न थे परंतु यही सहानुभूति भारतीयों के स्वामित्ववाले उद्यमों में नियुक्त श्रमिकों के प्रति भारतीय नेताओं ने नहीं दिखाई। इसका स्पष्ट रूप नाटकीय ढंग से उस समय प्रकट हुआ जब 8 मार्च 1901 को 'असम श्रम और उत्प्रवास अधिनियम' पारित हो जाने के बिलकुल सही तौर पर दो ही सप्ताहों के उपरांत विधानपरिषद में 'इंडियन माइंस बिल' विवाद और कानूनी रूप ग्रहण करने के लिए पेश हुआ तो जैसा हम पहले दिखा चुके हैं, सारे के सारे भारतीय समाचारपत्रों और परिषद के भारतीय सदस्यों ने खानों में काम करने वाले बच्चों और महिलाओं के संरक्षण के लिए बनाए गए अत्यंत ही साधारण व्यवस्थाओंवाले उस बिल का विरोध किया। श्रमिकों के प्रति यह दोमुंही नीति भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के व्यवहार में भी स्पष्ट रूप से देखी गई, जिसने एक ओर 1900 में सरकार को श्रमिकों की नियुक्ति पर प्रतिबंध लगाने वाली व्यवस्थाओं को 'इंडियन माइंस बिल' से हटाने का

उपदेश दिया और दूसरी ओर इसके केवल एक वर्ष उपरांत ही असम कुलियों के वेतन में वृद्धि का प्रस्ताव पारित किया।[221]

इस तरह के विरोधासपूर्ण रवैये का एक और नाटकीय उदाहरण 3 मार्च 1903 के हिंदू के संपादकीय में मिला। जैसा हम पहले दिखा चुके हैं, 'हिंदू' बागान-मालिकों के हितों में लाए जाने वाले सभी कानूनों का प्रबलतम निंदक और विरोधी रहा है। उसने उन सभी कानूनों को 'दास बनाने वाले कानून' कहकर उनकी भर्त्सना की। इस पत्र ने मद्रास प्लांटर्स बिल' के विरुद्ध लगातार निंदा का स्वर मुखरित किया था। 3 मार्च 1903 के संपादकीय में भी उसने यही विरोध प्रकट किया। परंतु इसी संपादकीय मे उसने आश्चर्यजनक ढग मे यह मांग प्रस्तुत की कि इस प्रकार का कानून श्रमिकों को नियुक्त करने वाले उन सभी मालिकों के लिए समान रूप से बनाना चाहिए 'जिन्हें श्रमिको को पाने में ही न केवल कठिनता का अनुभव होता है प्रत्युत उन्हें अनुबंध को निभाने के लिए श्रमिकों को विवश करने में कठिनाई का अनुभव होता है'। उसके अनुसार ऐसे कानून की दक्षिण भारत के भूमिपतियों को विशेष आवश्यकता है। ये भूमिपति तो 'पेनल लेबर ला' (दंडनीय श्रम कानून) को अत्यंत लाभप्रद और उपयोगी पाएंगे। अपने तर्क की पुष्टि में 'हिंदू' ने राष्ट्रवाद के नाम पर आग्रह किया : भारतीय कुलियों के सबंध मे वर्गीय कानून की कोई आवश्यकता नहीं। यदि वे यूरोपियों के दास बनाए जा सकते हैं तो उन्हें भारतीय जमीदारों के दास बनाने में कोई अनौचित्य नहीं होना चाहिए। भारतीय कुलियों को एक वर्गविशेष का ही दास नहीं बनाना चाहिए। इस तर्क पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नही। 'हिंदू' द्वारा निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत मांग मे उसकी अचेत विडंबना का तथा इस प्रश्न के बारे मे उसकी पाखंडपूर्ण पवित्रता का पता चलता है।

जिस प्रकार अनुचित रूप से पर्वतीय प्रदेशों में कुलियों को चाय बागानमालिकों की दया पर उनके हाथों में सौंपने को उचित नही माना जा सकता, उसी प्रकार भारतीय जमीदारो के हाथों में दंडनीय अपराध के अंतर्गत कुलियों को सौंपने मे इनकार करने को किसी प्रकार न्यायसंगत नही ठहराया जा सकता। हिंदू द्वारा इस प्रकार का व्यवहार अपनाना सर्वथा अविश्वसनीय नहीं लगता क्योंकि इससे दो महीने बाद ही तमिल पत्र-कारिता के अग्रदूत एक अन्य राष्ट्रवादी समाचारपत्र 'स्वदेशमित्रन' ने इसी प्रकार की मांग पेश की।[222]

जी. आई. पी. रेलवे सिगनलवालों की हड़ताल

भारतीयों से इतर स्वामित्व वाले उद्यमों में नियुक्त श्रमिकों के प्रति भारतीय राष्ट्र-वादी नेताओं के दृष्टिकोण की रोचक विडंबना 1899 में हुई जी० आई० पी० की हड़-ताल के संदर्भ में देखने को मिलती है। जब रेल कंपनियों के प्रबंधक मंडल ने वेतनों में कटौती न करने, उन्नतियों को व्यवस्थित रूप देने, कार्य के घंटे सीमित करने तथा निय-मित अवकाश की व्यवस्था करने की मांगें अस्वीकृत कर दीं तो 1899 में ही मई के प्रथम सप्ताह में 800 सिगनल कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी।[223] समाचारपत्रों की सूचना के अनु-सार हड़ताल ने रेलवे को बुरी तरह से प्रभावित किया। आमतौर पर माल की आवाजाही

कम अथवा स्थगित कर दी गई। यात्रियों के यातायात मे भी गाडियों की लंबी लंबी और बार बार की देर तथा भारी अव्यवस्था मे बाधा पहुंची।[224] भारतीय श्रमिकों के किसी वर्ग द्वारा की गई यह प्रथम सुनियोजित हडताल थी।[225] सिगनलवालों का एक नियमित संगठन था जिसका मुख्यालय शोलापुर मे था और उनके पास कानूनी सलाह देने वाली भी किराए पर ली गई एक व्यापार संस्था थी। इस हडताल के पीछे दो वर्ष तक लंबा आंदोलन चलता रहा और प्रबंधको को मागपत्र और अंतिम चेतावनी आदि पेश किए जाते रहे।[226]

रेलवे कर्मचारियों की यह संगठित कार्यवाही, इसे केवल शिक्षित वर्गवालों द्वारा की गई मानने पर भी, देश की उस समय की परिस्थितियों में श्रमिक कल्याण की दिशा में सरकार द्वारा कानून के रूप मे अब तक उठाए गए किसी भी पग की अपेक्षा एक प्रकार से अधिक क्रांतिकारी पग था। इस पग का पूजीपतियो के लिए तात्कालिक मामलों और संबंधित दलो से आगे जाकर विशेष अर्थ था।[227] कारखाना कर्मचारियो के प्रति राष्ट्रवादियो के उपेक्षापूर्ण व्यवहार को देखते हुए इन सिगनलवालो के प्रति नेताओं के व्यवहार मे खुले विरोध की नही तो तटस्थता की अथवा अधिक से अधिक दबे अनुमोदन की तो अपेक्षा की ही जा सकती थी। परतु वस्तुत एक को छोडकर बबई के प्रमुख समाचारपत्रों ने बडे जोश खरोश के साथ हडताल का समर्थन किया।[228] इससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह है कि बहुत सारे दूरस्थ राष्ट्रवादी समाचारपत्रो, 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हितवादी', 'हिंदू', 'हिंदुस्तानी' के कालमो मे सहानुभूति की लय गूंजती रही। हा, हडतालियों के लक्ष्य को अपना लक्ष्य बनाने वाले और महीनो तक अपने कालमों द्वारा आदोलन छेडने वाले दो ही समाचारपत्र थे, बालगगाधर तिलक के सपादकत्व मे निकलने वाले 'मराठा' और 'केसरी'।

सभी भारतीय समाचारपत्रो ने यह मत व्यक्त किया कि वर्षों से इन सिगनलवालों को थोडी तनख्वाह दी जा रही है, अधिक और कठोर काम लिया जा रहा है और उनके प्रति दुर्व्यवहार किया जा रहा है। अत उनका हडताल पर जाना सर्वथा न्यायसंगत ही है। उनकी मागे न्यायसगत, सही और उचित है। सचमुच वे मागें समर्थन और सहानुभूति के योग्य है। इसके अतिरिक्त इस हडताल का औचित्य इससे भी सिद्ध है कि प्रबंधको द्वारा सिगनलवालो की वास्तविक शिकायतो को दूर करने की प्रार्थना को लगातार ठुकरा कर इन बेचारों को हडताल का मार्ग ग्रहण करने को विवश कर दिया गया है।[229]

कई समाचारपत्र केवल सहानुभूति से भी बहुत आगे बढे, व हडतालियों के प्रबल और मुखर प्रशसक बन गए। उन्होने श्रमिको द्वारा हडताल के दिनों मे प्रदर्शित दृढता तथा एकता के लिए उनकी भरपूर प्रशंसा की।[230] 'मराठा' ने 28 मई 1899 के अंक मे सिगनलमैनो के लिए हडताल का स्थाई महत्व बताया और कहा कि इस हडताल ने एकता और आत्मत्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया है, अन्य लोगों को भी इसका अनुसरण करना चाहिए। इसी प्रकार 7 जून 1899 के अक मे 'हितवादी' ने भारतीय लोगों को झकझोरते हुए लिखा कि वे प्रबधकमंडल से अलग अलग रूप से समझौता करने से इनकार करके नैतिकता के उच्च स्तर कायम करने वाले सिगनलमैनों का अनुसरण करें।[231] इन समाचारपत्रों

ने हड़तालियों से नौकरी छूट जाने पर भी डटे रहने का निरंतर अनुरोध किया और हड़ताल छोडकर काम पर जाने वालो को गद्दार कहकर उनकी निदा की।[32]

भारतीय समाचारपत्रो ने रेलवे के प्रबधकमंडल द्वारा कर्मचारियो के प्रति किए जा रहे व्यवहार, दृष्टिकोण तथा कार्यवाही आदि की तीव्र निदा की।[33] उन्होने सार्वजनिक उपयोगिता के विभागो मे अनुशासन के तर्क को प्रबधको का वाक्छल कहकर ठुकरा दिया तथा जनता को हो रही असुविधा का सारा दायित्व प्रबधको पर डाल दिया।[34] उन्होने रेल कंपनियो पर हडतालियो की न्यायसंगत शिकायते दूर करके तथा विवाद को निपटाने के लिए मध्यस्थ को सौपने की हडतालियो द्वारा पहले से ही सहमति प्राप्त बात मानकर हडतालियों से समझौता करने के लिए दबाव डाला।[35]

राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने सरकार से विवाद मे हस्तक्षेप करने और प्रबधक मंडल को सिगनलमैनों की उचित मागे मानने के लिए विवश करने का अनुरोध किया।[36] उनका उपयुक्त तर्क यह था कि मानवता के दृष्टिकोण को छोड दिया जाए तो भी सरकार हस्तक्षेप करने के लिए कर्तव्यबद्ध है क्योकि जी० आई० पी० रेलवे प्रतिभूत सस्था है और इस प्रकार हडताल के कारण होने वाली हानि सरकार को और अतत. करदाता को ही भुगतनी पडेगी।[37] 'मराठा' ने 28 मई 1899 के अक मे लिखा कि अपने ही लोगो को जिनके प्रति हमारी गहरी सहानुभूति है, निराश और पराजित करने के लिए अपेक्षित दाम हमसे ही मागना कहा का न्याय है ? राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने यह भी लिखा कि सरकार का हड़ताल मे हस्तक्षेप करना नैतिक अधिकार के साथ साथ कर्तव्य भी है क्योंकि रेलवे जनोपयोगी सस्था है, इसमे किसी प्रकार की अव्यवस्था अथवा कुप्रबध से न केवल व्यापार, जन सुख और सुविधाओ को हानि पहुचती है प्रत्युत यात्रियों की सुरक्षा भी खतरे मे पड जाती है।[38] समाचारपत्रो ने यह अनुभव किया और देखा कि सरकार न केवल हस्तक्षेप करने से इनकार करती है अथवा तटस्थ रहती है प्रत्युत प्रबधको को समर्थन तथा सक्रिय सहायता भी दे रही है, सरकार के इस आचरण की समाचारपत्रों ने तीव्र भर्त्सना की।[39]

सिगनलरो के प्रति व्यापक सार्वजनिक सहानुभूति शाब्दिक प्रदर्शन तक सीमित न रहकर उससे आगे निकल गई। समाचारपत्रो ने जनता और जन सस्थाओ से हडताली सिगनलरों की सहायता के लिए पैसे जुटाने का अनुरोध किया।[40] बहुत से लोग अपने आप सहायता के लिए आगे आए। उनकी सहायतार्थ कोष सग्रह के लिए बबई प्रात के विभिन्न क्षेत्रो, अहमदाबाद, अमरावती, धुलिया और नागपुर मे सार्वजनिक सभाओ का आयोजन किया गया।[41] बबई मे 19 मई को गण्यमान्य भारतीय नागरिको और प्रतिष्ठित व्यापारियों की एक बैठक फिरोजशाह एम० मेहता के भवन मे हुई, इसमे हडतालियो के उपयोग के लिए एक कोष जारी करने का सकल्प किया गया। तत्काल मौके पर 2500 रुपयो की राशि इकट्ठी हो गई और अगले ही दिन 2500 रु० और देने का वचन दिया गया।[42] इस कोष के लिए बगाल मे सुरेंद्रनाथ टैगोर ने और बंगाली मासिक 'भारत' की संपादिका सुश्री घोषाल ने भी धन इकट्ठा किया।[43] हडताल के असफल होने तथा लगभग 700 सिगनलरो के हटाए जाने पर बबई मे उनके लिए एक सार्वजनिक कोष

कुछ महीनों के ही उपरांत बंबई की कपड़ा मिलों के कर्मचारियों के वेतन में कटौती के विरुद्ध की गई हड़ताल का विरोध करने में संकोच नहीं किया। 10 जनवरी 1900 के अंक में इस पत्र ने वकालत करते हुए लिखा कि मालिक इससे अधिक देने की सामर्थ्य ही नहीं रखते और उन्हें इस विषय में बाध्य करने की चेष्टा का अर्थ होगा भारतीय उद्योग को हानि पहुंचाना और इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि अंत में श्रमिक को भी 'भूखों मरना पड़ेगा'।

नए दृष्टिकोण का प्रारंभ

भारतीय श्रमिक वर्ग के उदय तथा श्रम और पूंजी में संघर्ष का धीरे-धीरे उदय होने से भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के मन में इस नए वर्ग की सामाजिक भूमिका के संबंध में नए विचार तथा इसके अधिकारों और दायित्वों के प्रति नए दृष्टिकोण ने जन्म लेना प्रारंभ कर दिया। यहां यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि ये नए विचार कुछ ही भारतीय नेताओं तक सीमित थे। इन विचारों ने सभी को समान रूप से समान परिमाण में प्रभावित नहीं किया था। यह काफी आश्चर्यजनक है कि इस नए दृष्टिकोण का विवेचन सर्वप्रथम मार्च 1899 में 'बंबई मिल ओनर्स एशोसिएशन' की बैठक में उस समय किया गया जब स्वयं एक मिल मालिक डी० ई० वाचा ने यह विचार प्रस्तुत किया कि वस्त्र उद्योग का उत्पादन व्यय दो तरीकों से घटाया जा सकता है : प्रथम, प्रयोग की जाने वाली कच्ची कपास के स्तर को सुधार कर और द्वितीय, कर्मचारियों के स्वास्थ्य और स्वच्छता की स्थिति सुधार कर। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि काम के लंबे घंटों, थोड़े वेतन तथा जनता के खाद्य पदार्थों पर करों ने सदैव औद्योगिक विकास को पंगु ही बनाया है। दूसरी ओर काम के अपेक्षाकृत कम घंटे, अपेक्षाकृत ऊंचे वेतन, सस्ते खाद्य पदार्थों की व्यवस्था और आवास सुविधा आदि ने निश्चित रूप से ही विकास को पुष्ट और सशक्त बनाया है।[218] वाचा महाशय ने अपनी इस सलाह को अप्रैल 1905 मे फिर दोहराया और उन्होने दस घंटों के कार्य दिवस की वकालत की, उन्होने मिलमालिकों को चेतावनी दी कि वे सोने का अंडा देने वाली मुर्गी की हत्या करने की नीति पर चलने से औरअपने लोभ-लालच से बाज आएं। उन्होने चुनौती के स्वर में कहा कि श्रमिकों का प्रश्न भविष्य में मिलमालिक के लिए एक जटिल समस्या का रूप ग्रहण करने जा रहा है। अतः मिलमालिकों की अपनी भलाई इसी में है कि श्रमिकों की ओर से सरकार अथवा किसी अन्य पक्ष द्वारा हस्तक्षेप करने से पूर्व स्वयं वे (मिलमालिक) ही इस समस्या को सुलझाना प्रारंभ कर दें।[219]

भारतीय रंगमंच पर उभरते हुए श्रमिक वर्ग के महत्व को उस समय पहचानने वाले बिपिनचंद्र पाल दूसरे नेता थे। दुर्भाग्यवश उनके इस अवधि (1901-05) के अधिकांश लेख नष्ट हो गए हैं अथवा कम से कम मुझे तो उपलब्ध नहीं हो सके हैं। 1901 में उनके द्वारा प्रकाशित किए जाने वाले साप्ताहिक पत्र 'न्यू इंडिया' की दो चार प्रतियां इस शताब्दी के सार्वजनिक पुस्तकालयों मे मिल पाई हैं। इसके अध्ययन से यह प्रकट हो जाता है कि पाल महोदय निश्चित रूप से श्रम समस्या पर प्रगतिशील

ढंग मे सोच रहे थे। 9 सितंबर 1901 के 'न्यू इंडिया' के संपादकीय मे उन्होंने लिखा : देश की वर्तमान आर्थिक समस्या के अंतर्गत तीस लाख सुदृढ श्रमिकों की स्थिति का गभीरतम महत्व है। आधुनिक स्थितियों मे काम करने वाले इसी वर्ग मे जनता की नई आशाओं और आकांक्षाओ की पूर्ति सभव है अत. इस वर्ग के हित अत्यंत महत्वपूर्ण है और उनकी उन्नति की ओर ध्यान देना ही चाहिए। कानून बना कर श्रमिक वर्ग के हितो की सुरक्षा के सरकार के प्रयत्न की सराहना करते हुए पाल ने अनुभव किया कि पूजीपतियो के भारी प्रभाव के कारण सरकार कुछ नही कर सकी है। 'न्यू इंडिया' के 14 अप्रैल 1902 के अंक के एक अन्य संपादकीय में उन्होंने दुर्घटनाओ की स्थिति में श्रमिकों को क्षतिपूर्ति देने का कानून बनाने की वकालत की।

'हिंदुस्तान रिव्यू' तथा 'कायस्थ समाचार' के 10 अगस्त 1901 के अंकों में प्रकाशित 'अवर लेबर प्राब्लम' लेख में तथा 1903 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'इकोनामिक आसपैक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया' मे श्रमिक प्रश्न पर व्यवस्थित रूप मे विचार करने वाले जी० सुब्रमनिया अय्यर ही थे। इस प्रश्न को ऊपर से नीचे तक श्रमिको की अनुकूलता की दृष्टि से देखने की चेष्टा करने वाले प्रथम भारतीय नेता भी यही थे।[250] उन्होंने विचारपूर्वक देखा कि जिस प्रकार पश्चिम मे श्रमिक समस्या पहले ही उभर चुकी है, उसी प्रकार भारत मे वह उभरनी शुरू हुई है। उन्होने कहा कि इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पिछले वर्षों कलकत्ता, मद्रास और बबई मे आमतौर पर होने वाली हडतालें है।[251] उनकी राय मे स्थिति का मूलभूत पक्ष था, 'श्रमिक वर्ग की आर्थिक दशा', जिसकी विशेषता है दरिद्रता और दुर्भाग्य।[252] उनके अज्ञान और शिक्षा के अभाव ने उनकी स्थिति का और भी अधिक शोचनीय बना दिया है, जहा कही शिक्षितों और चतुर योग्य व्यक्तियों के साथ उनके हितो का सघर्ष होता है, वही शिक्षित और शक्तिशाली मालिक सदैव इन असहायो और अशिक्षितों को मूर्ख बनाते है।[253] उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा कि यह स्थिति बहुत देर तक चलने वाली नही। वह दिन शीघ्र आएगा जब भारतीय श्रमिक जाग उठेंगे, राजनीतिक अधिकारो, सगठित होने का अधिकार तथा अपेक्षाकृत ऊचे वेतन का अधिकार की माग ही नही करेंगे प्रत्युत उन्हें पाने मे विजयी होगे।[254]

उसी समय जी० एस० अय्यर ने आधुनिक कर्मचारियों के हित-कल्याण की उपेक्षा करने के लिए भारत सरकार भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस, असंख्य राजनैतिक संस्थाओं तथा सम्मेलनों की भर्त्सना की।[255] इन संस्थाओं पर उपेक्षा के लिए बरसते हुए उन्होंने कहा :

> हम इन अभागे वर्गों की दरिद्रता, दुर्भाग्य और असम्मान को देखने के ऐसे आदी हो गए हैं कि अब हमे न तो उद्वेग होता है और न ही उनकी स्थिति को देखकर हमारे शासकों की तथा हमारी अपनी आत्मा विद्रोह करती है। वस्तुत: यह सब शताब्दियों से समाज के उच्च वर्ग द्वारा किए जा रहे निम्न वर्ग के शोषण और दमन का ही परिणाम है।[256]

इस संदर्भ में उन्होंने ताटस्थ्य सिद्धांत को एकदम अस्वीकार कर दिया। उनके विचार में इस मामले में प्रतियोगिता के सिद्धांत के प्रयोग की कोई व्यावहारिकता नहीं थी क्योंकि यह प्रतियोगिता सर्वथा असमान थी। कहने को तो श्रमिक स्वतंत्र थे परंतु वास्तव

में वे बेचारे अपनी दैनिक अनिवार्य आवश्यकताओ के दास ही थे। उनके सामने तो दो ही विकल्प थे : भूखो मरना अथवा किसी भी मूल्य पर अपने श्रम को बेचना।'[57] वस्तुतः प्रतियोगिता का अथवा पूर्ति और माग का यह नियम सर्वथा क्रूर था, जिसके अतर्गत धनी अधिक धनी और गरीब और अधिक गरीब बनता है। इस सिद्धात ने तो भारतीय श्रमिक को विवशता की स्थिति पर ला खडा किया है।[58] फिर इस तटस्थ सिद्धात का विकल्प क्या था ? जी० एस० अय्यर की मान्यता थी कि मालिको के मन मे अपने असहाय, दरिद्र कर्मचारियो के प्रति उदारता और दयालुता की सहज भावना को पनपाना चाहिए परतु उन्हे अपने सुझाव की व्यावहारिकता मे सदेह था क्योकि इस प्रकार की भावना का विकास अनिश्चित तथा अनिर्णीत था और उसका प्रवर्तन सकोचशील तथा अस्थिर था। इससे एक ही मार्ग शेष रहा। राज्य ही एक मात्र ऐसा अभिकरण था जो व्यग्य-उपहास के रूप मे स्वतंत्र कहे जाने वाले इस दुर्बल वर्ग को असीम और वस्तुत असमान प्रतियोगिता से बचाने का दायित्व ले सकता है, निभा सकता है और जिसे यह दायित्व उठाना और निभाना ही चाहिए।[59]

जी० एस० अय्यर ने साथ ही साथ यह भी अनुभव किया कि मालिको द्वारा अपने अधिकार दबाए जाने के विरुद्ध अपनी रक्षा के लिए श्रमिको को अवश्यमेव एकजुट होना चाहिए तथा अपने सगठन बनाने चाहिए।[60] इस समय यदि एक श्रमिक अपने मालिक के किसी दुर्व्यवहार के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में नौकरी छोडता है तो दूसरा श्रमिक कम वेतन पर ही कार्य करने को सहर्ष तैयार हो जाता है। श्रमिको मे एकता न होने के कारण 'ऐसा करने वाले श्रमिक का उसके समुदाय द्वारा किसी प्रकार का बहिष्कार नही किया जाता'। इसके विपरीत दूसरे देशो मे श्रमिक वेतन का सामान्य स्तर से नीचे गिरना सहन ही नही कर सकते। इसके स्थान पर तो वे काम ही बद कर देते है।[61] वस्तुत उन्होने अनुभव किया कि जब अगरेज श्रमिको ने सगठित होना सीखा, और 1824 मे सगठित होने के अधिकार को प्राप्त कर लिया तभी उनकी प्रगति प्रारभ हुई, पश्चिमी सभ्यता मे श्रमिक वर्ग को इतने सशक्त तत्व के रूप मे प्रतिष्ठित करने का कारण मात्र उनका सगठित होना है।'[62] उन्होने श्रमिको को सघ मे सगठित होने और अपने अधिकारो के लिए मालिको से सघर्ष करने के लिए कहा।[263] उन्होने जनता से भी इस बात की अपील की कि अपने को संगठित करने के काम मे जनता मजदूरो को हर तरह की सहायता दे।'[64]

जी० एस० अय्यर अपनी पूर्वनिर्दिष्ट महत्वपूर्ण पुस्तक मे कृषि श्रमिको की समस्याओं का अध्ययन करने वाले प्रथम और एकमात्र राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री थे। उन्होंने एक पूरे अध्याय मे इसी विषय का विवेचन किया। कृषि श्रमिको की अत्यत विषम दुर्दशा पर विचार प्रकट करते हुए उन्होने श्रमिको के हितो के लिए घातक जमीदारों के दबाव के आगे झुकने के विरुद्ध सरकार को चेतावनी दी।[265]

श्रमिक समस्या के प्रति जागरूकता दिखाने वाले दूसरे भारतीय लेखक 'डान' के सपादक सतीशचंद्र मुखर्जी थे। इस विषय पर उनके विचार अगस्त 1898 के 'डान' मे प्रकाशित लेखो, 'आसपेक्ट्स आफ इकोनामिक लाइफ इन इग्लेंड ऐंड इडिया' तथा 'डान'

के मार्च, अप्रैल, मई और जून 1100 के अंकों में प्रकाशित, 'दि इंडियन इकोनामिक प्राब्लम' में देखे जा सकते हैं। पश्चिम की औद्योगिक प्रणाली की संचालन विधि की जानकारी मुकर्जी को अपने समकालीन किसी भी अन्य भारतीय की अपेक्षा अधिक अच्छी थी। इसके अतिरिक्त उनका दावा था कि वे विशुद्ध रूप से प्रधानतया किसानों और श्रमिकों की हितकामना से ही प्रेरित थे।[266] परंतु उनके श्रमिक समस्या के विश्लेषण को एक अन्य कारण से भी महत्ता प्राप्त है। यह उन छोटे मोटे बुर्जुआओं, बुद्धिजीवियों, व्यावसायिकों, क्लर्कों तथा कर्मचारियों के उदीयमान वर्गों की प्रथम संयुक्त छवि थी जो पूंजीपतियों के विकासशील वर्ग के विरुद्ध तो थे परंतु वे अभी तक नए मजदूर वर्ग के साथ अपने को जोड़ नहीं पाए थे। यह एक संयोग की बात नहीं है कि यह सवाल सर्वप्रथम बंगाल में उठा जहां शिक्षित कर्मचारियों और व्यावसायिकों का वर्ग उठ खड़ा हुआ था और स्वदेशी पूंजीपति बहुत कम थे।

मुखर्जी प्रस्तावना रूप में यह मान कर चले कि भारतीय आर्थिक संसाधनों का पूरा पूरा विकास करना ही होगा।[267] परंतु उनका तर्क था कि यही पर्याप्त नहीं होगा। इस स्थिति में एक उपयुक्त प्रश्न उत्पन्न हुआ कि साधनों का विकास कौन करेगा और उन पर नियंत्रण कौन रखेगा।[268] ब्रिटिश उद्योगों के विकास के इतिहास का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा कि अब तक तो उद्योगीकरण के सारे लाभ पूंजीपतियों को मिलते रहे हैं। आधुनिक उद्योग के आगमन और विकास की परिणामगत स्थिति यही रही है :

> श्रमिकवर्ग जो पिछली कई शताब्दियों तक बड़े बड़े जमींदारों के आधिपत्य की बुराइयों का शिकार रहता था, वह अब समान रूप से अत्याचारी पूंजीपतियों के हाथों में पड़ गया है। यद्यपि वे कहने को (राजनीतिक दृष्टि से) मुक्त हैं परंतु वस्तुतः आर्थिक दृष्टि से वे अपने पूंजीपति मालिकों के पूर्वापेक्षा अधिक ही अधीन हैं।[269]

मुखर्जी ने फ्रेडरिक एंगल्स की प्रसिद्ध पुस्तक, 'वर्किंग क्लासेज इन इंगलैंड इन 1844' से तथ्य उद्धृत करते हुए ब्रिटिश श्रमिकों की दरिद्रता और निकृष्ट स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया।[270] उन्होंने सिद्ध किया कि आधुनिक कानून भी उन बुराइयों को मिटाने में असफल रहा था क्योंकि उन बुराइयों की जड़ जितनी प्रतीत होती है उससे कहीं गहरी थी।[271] फलतः यदि पश्चिम की औद्योगिक पद्धति को ही भारत में लागू किया गया है तो इसका एक और अनिवार्य परिणाम है, छोटे से अल्पमतीय सुगठित पूंजीपतिवर्ग का उदय, यह वर्ग विदेशी हो अथवा स्वदेशी। इस वर्ग की शक्ति और प्रभाव का अर्थ जनता की सुख-समृद्धि में उन्नति कदापि नहीं।[272] दूसरी ओर श्रमिकवर्ग एकमात्र मशीन बनकर रह जाएगा। वे श्रमिक दूसरों के लिए कमरतोड़ काम करने वाले बन जाएंगे। उनका आत्मसम्मान समाप्त हो जाएगा और वे असहाय बन जाएंगे और उस स्थिति में अपने मालिकों के अधीन हो जाएंगे।[273] इस दुर्दशा से बचने के लिए श्रमिकों को एकजुट होकर विशाल पैमाने पर श्रमिक संघों का संगठन करना पड़ेगा। उन्हें सुगठित पूंजीपतीय शक्तियों के विरुद्ध श्रमिक कल्याण संघों की व्यवस्था के रूप में अपनी सहायता आप

करने का मार्ग ग्रहण करना होगा। यही मार्ग उन्हें 'शांति और व्यवस्था' के लिए एक धमकी और सचमुच ही 'स्थाई रूप से राजनीतिक और सामाजिक खतरा' बना देगा।[274]

मुखर्जी ने अनुभव किया कि पूंजीपतीय औद्योगिकता का यह द्विमुखी परिणाम समाज को निश्चित रूप से एक गहरी विडंबना में डाल देगा। श्रमसंघों के अस्तित्व से जहां समाज की स्थिरता को खतरा सिद्ध होगा, वहां इनका अभाव इससे भी भयंकर खतरा उत्पन्न करेगा। भली प्रकार संगठित पूंजीपतिवर्ग के अबाध विकास का अंतिम परिणाम होगा, औद्योगिक अर्धदासता।[275] यह भयंकर स्थिति लोगों को रुकने और विश्लेषण करने के लिए विवश करेगी कि क्या इस स्थिति, जिसमें निश्चित रूप से अच्छाई को बुराई और बुराई को अच्छाई में मिलाने वाली सभी दूषित विचारों और प्रवृतियों वाली संस्थाएं शामिल है, के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा उपाय नही है कि जिससे भारत की औद्योगिक ममस्याओं का समाधान ढूढा जा सके।[276]

मुखर्जी द्वारा समस्या का सुझाया उपाय द्विमुखी था, प्रथम नैतिक तथा द्वितीय भौतिक। सारे आर्थिक जीवन को इस प्रकार पुनर्गठित करना चाहिए कि प्रतियोगिता का सिद्धांत नैतिक सिद्धांत पर आधारित हो जाए और वह नैतिकता की महत्ता स्वीकार करे।[277] आर्थिक समस्या को व्यापक नैतिक जीवन से संबद्ध रूप मे ग्रहण करना चाहिए।[278] वस्तुतः समाज की इस नई व्यवस्था में भौतिक संपन्नता को प्रोत्साहन तो दिया जाएगा परंतु जनता इस भौतिक संपन्नता को अनिवार्यतः प्रथम स्थान कदापि नही देगी। दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक विकास ही उन्नति का स्वरूप बन जाएगा।[279] भौतिक स्तर पर आधुनिक पूजीपतीय औद्योगिकता के दोषों का यथासंभव निवारण प्रथम तो स्वयं औद्योगिक संगठनों द्वारा ही किया जाएगा। इसके अतिरिक्त औद्योगिक पारिवारिक संघ के रूप मे उत्पादन-प्रणाली की व्यवस्था की जाएगी जिसका आधार यह होगा कि कर्मचारी, कारीगर और कृषक सब एक ही परिवार के अंग माने जाएंगे और समान लाभांश के अधिकारी होंगे। ये पारिवारिक संघ व्ययमाध्य मशीनो और पूजी की विपुल राशि की अपेक्षा रखने वाले बड़े पैमाने के पूजीगत उद्यमों, इंजीनियरी योजनाएं, खानें, रासायनिक तथा धातु शोधन उद्योग, की स्थापना करेंगे। इन उद्योगो के सफल प्रवर्तन से व्यक्तिगत तथा सामूहिक संस्कृति के विकास मे किसी प्रकार की बाधा के बदले सहायता ही मिलेगी।[280] मुखर्जी ने दावा किया कि आर्थिक संगठन की यह व्यक्तिनिष्ठ प्रणाली श्रमिकों के स्वाभिमानी और स्वतंत्र वर्ग को जन्म देगी। इस प्रणाली के अंतर्गत श्रमिक के एक एक दिन के श्रम का विशेष महत्व होगा।[281] अपनी पद्धति के नैतिक और आर्थिक तत्वों को जोडते हुए मुखर्जी ने 1900 मे प्रधान रूप से छोटे पैमाने के उद्योगों के निजी गठन पर आधृत सामूहिक समाज की मंस्थापना की सिफारिश इन शब्दों में की:

> मेरा विचार यह है कि राष्ट्रीय विकास का कार्य इस रूप नें संपन्न किया जा सकता है कि कार्य और गतिविधि के आध्यात्मिक, बुद्धिजीवी, सैनिक, व्यापारिक, तथा वेतन-भोगी सभी क्षेत्रों के कर्मचारियों के समक्ष एक उच्च सांस्कृतिक आदर्श हो। सामाजिक संगठन में सभी के लिए एक सर्वसम्मत निजी और सम्मानित स्थान हो। सभी इस प्रकार पारस्परिक समन्वय और सहयोग से कार्य करें जिससे बिना किसी भेद-

भाव के सारे भारतीय समाज की समान रूप से आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति हो।'[82]

संदर्भ

1 थियोडोर मोरिसन : दि इकोनामिक ट्रांजिशन इन इंडिया (लंदन, 1916), पृ० 174-75.

2 रिपोर्ट आफ दि बांबे फैक्टरी लेबर कमीशन आफ 1885, पृ० 5.

3. आर० के० दास : फैक्टरी लेबर इन इंडिया (बर्लिन, 1923), पृ० 56. बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 307-08 भारतीय कारखानों के काम के लंबे घटों ने रूढ़िवादी समाचारपत्र 'टाइम्स आफ इंडिया' को भी इतना उत्तेजित किया कि उसने अपने 16 सितंबर 1905 के अंक में इस कृत्य की इन शब्दो में निंदा की : मालिक श्रमिकों को सवेरे से शाम तक काम करने को विवश कर रहे हैं। नीच मालिक अपने लाभों की अतृप्त तृष्णा के लिए बेचारे श्रमिकों का जीवन रक्त पी रहे हैं —अहमद मुख्तार की पुस्तक 'फैक्टरी लेबर इन इंडिया', मद्रास, 1930 में पृ० 31 पर उद्धृत.

4. बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 312

5. रिपोर्ट आफ दि बांबे फैक्टरी लेबर कमीशन आफ 1885, पृ० 8

6 फैक्टरी इस्पैक्टर की रपट—1888. बुकानन . पूर्वोद्धृत, पृ० 310.

7. मारक्विस आफ सैलिसबरी का बांबे सरकार को सप्रेषण, ए० जी० क्लो : इंडियन फैक्टरी लैजिस्लेशन . ए हिस्टोरिकल सर्वे (कलकत्ता, 1926) (इंडियन इंडस्ट्रीज और लेबर की एक रेडियो वार्ता, स० 37) मे उद्धृत, पृ० 2.

8. दास · फैक्टरी लेबर इन इंडिया, पृ० 59.

9 दास : फैक्टरी लेबर इन इंडिया, पृ० 59-60. बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 308, 311. क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 29-30

10. रिपोर्ट, पृ० 10.

11 वही, पृ० 13.

12. वही, पृ० 12 तथा देखिए, वही, पृ० 11-3.

13 दास . फैक्टरी लेबर इन इंडिया, पृ० 139 बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 329.

14. रिपोर्ट आफ दि बांबे फैक्टरी लेबर कमीशन आफ 1885, पृ० 12-3.

15. बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 332 और 349-51; दास : फैक्टरी लेबर इन इंडिया, पृ० 145-6, 152-3. वाडिया और मर्चेंट ने 'ए शार्ट हिस्टरी आफ लेबर कंडीशंस ऐंड दि एंपायर (लेखक कुजिंस्की) (लदन 1942) से एक तालिका प्रस्तुत की है जिसमें यह दिखाया गया है कि 1880-1919 तक भारतीय कारखानों के श्रमिकों के वास्तविक वेतन में निरंतर गिरावट आई है। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम विश्वयुद्ध तक की अवधि में धन-वेतनों में वृद्धि की प्रवृत्ति में पर्याप्त एकरूपता रही है, इसके विपरीत दूसरी ओर वास्तविक वेतनों में ह्रास की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं (पूर्वोद्धृत, पृ० 372).

16. जेम्स जोंस, फैक्टरी इंसपैक्टर की रिपोर्ट. क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 17.

17. देखिए, दास : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया (बर्लिन 1923), पृ० 5-11.

18. जे० सी० किड : ए हिस्टरी आफ फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया (कलकत्ता 1920) पृ० 4-5 क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 4-5,
19. किड : पूर्वोद्धृत, पृ० 9. क्लो . पूर्वोद्धृत. पृ० 4
20. दास : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 15; किड : पूर्वोद्धृत पृ० 5
21. दास : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 16 सरकार ने इसके बदले एक अन्य स्थिति ग्रहण की कि स्वयं पीड़ितो द्वारा अपने आप अथवा उनके प्रतिनिधियो द्वारा मिलमालिको द्वारा किए गए किसी अत्याचार के विरुद्ध सरकार को कोई शिकायत ही नही मिली है। (क्लो द्वारा उद्धृत : पूर्वोद्धृत, पृ० 6)
22. दास : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 18-20
23. वही, पृ० 16-7.
24. उदाहरणार्थ इसका 15 जनवरी 1880 का अंक देखिए (आर० एन० पी० बम०, 17 जनवरी 1880).
25. डी० चमनलाल : कुली (लाहौर 1932) खंड II पृ० 78 और क्लो . पूर्वोद्धृत, पृ० 9.
26. क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 11.
27. 1881 के ऐक्ट की संख्या, 15.
28. किड—पूर्वोद्धृत, पृ० 21 पर उद्धृत.
29. आर० एन० पी० बब०, 28 नवंबर 1874
30. वही, 4 जनवरी 1879
31. वही, 4 जनवरी 1879 तथा 25 जनवरी 1879 क्रमश.
32. वही, 13 दिसबर 1879, 13 नवंबर 1880, 2 अप्रैल 1881 क्रमश
33. 26 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1879) और 23 नवबर (वही, 29 नवबर 1879)
34. वही, 13 नवंबर 1880.
35. वही, 26 मार्च 1881
36. वही, 22 नवंबर 1879.
37. इसका कारण कदाचित यह तथ्य था कि एम० एस० बगाली उनके स्वामियो मे एक थे
38. 28 मार्च (आर० एन० पी० बम०, 2 अप्रैल 1881).
39. क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 9.
40. आर० एन० पी० बब०, 27 मार्च, 22 मई, 2 अक्तूबर 1875 तथा देखिए, ए० बी० पी०, 2 सित० 1875. बी० बी० मजूमदार द्वारा पूर्वोद्धृत, पृ० 353 पर उद्धृत.
41. नेटिव ओपीनियन, 29 दिसबर 1878, 19 जनवरी 1879; गुजरात मित्र, 29 दिसबर 1878, 12 जनवरी 1879, जामे जमशेद, 8 जनवरी 1879; जलगांव समाचार, 19 जनवरी 1879, बबई समाचार, 23 जनवरी 1879; खानदेश वैभव, 13 जनवरी 1879; याजदान परस्त, 26 जनवरी 1879; अरुणोदय, 26 जनवरी 1879; लोकमित्र, 26 जनवरी 1879; और सत्य सदन, 15 फरवरी 1879 (देखिए आर० एन० पी० बंब०, सप्ताहात, 4, 11, 18 और 25 जनवरी तथा 1, 15, 22 फरवरी 1879); 'वकील ए हिंदुस्तान', 28 दिस०, 1878 (आर० एन० पी० पी० एन० 4 जनवरी 1879); अखबारे आम, 8 जनवरी (वही, 11 जन० 1879); नसीमे आगरा 30 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1879); भारत मिहिर, 29 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 8 फरवरी 1879); सहचर, 10 मार्च (वही, 15 मार्च 1879).

42 देखिए, आर० एन० पी० बब० के सबधित अक.

43 फैक्टरी लैजिरलेशन इन इडिया, ज० पी० एस०, जुलाई 1881 खड IV स० 1, पृ० 39

44. 17 माच, 26 मार्च और 24 मार्च 1881 क्रमश

45 जनवगे (आर० एन० पी० पी० एन० 8 जनवरी 1880)

46 बबई के लिए देखिए, जाम जमशेद, 28 नव० 1879 और 14 मार्च 1881, बबई समाचार 8 दिसबर 1879 और 22 दिस० 1880, हितेच्छु, 11 दिस० 1879, सूर्यप्रकाश, 13 दिस० 1879 और 19 मार्च 1881, समशर बहादुर, 17 दिस० 1879, सूर्योदय, 29 नव० 1880, बांबे क्रानिकल, 14 माच 1881, याजदान परस्त, 13 माच 1881 खानदेश वैभव, 18 मार्च 1881, गुजरात मित्र, 20 मार्च 1881, गगा लहरी, 2[?] मार्च 1881, शुभसूचक, 25 मार्च 1881, शिवाजी, 25 मार्च 1881, न्याय प्रकाश, 28 मार्च 1881 आर्यावर्त तथा नासिक वृत्त, 9 अप्रैल 1881 (देखिए आर० एन० पी० बब० के सबधित अक) बगाल के लिए देखिए, सहचर 14 मार्च (आर० एन० पी० बग० 26 मार्च 1881), नवविभाकर 21 मार्च, साधारणी 27 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881), भारत मिहिर, 29 माच (वही, 9 अप्रैल 1881), आनद बाजार पत्रिका, 4 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1881)

47 नेटिव ओपीनियन, 19 जनवरी (आर० एन० पी० बब०, 25 जनवरी 1879), गगा लहरी, 25 माच (वही, 2 अप्रैल 1881), बगाली, 26 मार्च 1881, और दि फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया पूर्वोक्त स्थल, पृ० 48 9 मजेदार बात यह है कि यह तर्क उस समय बिना किसी हिचकिचाहट या परेशानी के ताक पर रख दिया गया जब राष्ट्रवादी नेताओ ने बागान मजदूरो अथवा किसानो का मामला उठाया उस समय उन्होने अचानक इन मूक प्राणियो की वाणी की भूमिका अपना ली

48 जाम जमशेद, 25 मार्च (आर० एन० पी० बब०, 27 माच 1875), गुजराती, 28 नवबर (वही, 4 दिस० 1880), सहचर, 14 मार्च (आर० एन० पी० बग० 26 मार्च 1881), दि बाम्बे पब्लिक ओपीनियन ने 27 फरवरी 1879 के अक मे लिखा कर्मचारियो और मालिको के आपसी सबध पूर्णत: स्वस्थ हैं। कर्मचारियो से कभी उनकी इच्छा के विरुद्ध काम नही लिया जाता। उनके वेतन निश्चित हैं और वे पूर्ण उदारता के साथ तथा नियत समय पर दिए जाते हैं इसके लिए अगरेजी और देशी कारखाने सचमुच प्रशसा के पात्र हैं। कतिपय अपवादो को छोडकर सभी कारखाने प्राय ऐसे स्थानो पर बनाए गए है जो स्वास्थ्य और स्वच्छता की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है जब कोई कर्मचारी कारखाने मे बीमार पड जाता है तो मालिक उसके स्वास्थ्य की भलीभाति देखभाल करते है

49 बबई समाचार, 2 मई (आर० एन० पी० बब०, 3 मई 1879), और 2 दिसबर (वही 4 दिस० 1880), जामे जमशेद, 28 नवबर (वही, 29 नव० 1879), सहचर, 14 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 26 मार्च 1881)

50 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 49

51. जामे जमशेद, 17 मई (आर० एन० पी० बब०, 22 मई 1875), फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 35-6 और 41, ए० बी० पी० 17 मार्च 1881

52 गुजरात मित्र, 12 जन० (आर० एन० पी० बब०, 18 जन० 1879), 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 37, 40 और 49 इनमे से परवर्ती मे निम्नलिखित अवतरण प्रकाशित हुआ था : 'इस कथन मे कोई अतिरजना नही कि जहा तक नियमानुसार कारखानो मे काम

करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य और सामान्य रूप-आकार का संबंध है, वे पहले की किसी भी स्थिति से अथवा अन्य किसी भी प्रकार की नौकरी में होने पर संभावित स्थिति से अपेक्षाकृत अच्छे ही हैं।· · · अन्य व्यापारों में कार्यरत बच्चों की अपेक्षा कारखानों में काम करने वाले बच्चों को अच्छा भोजन मिलता है, पहनने को बढ़िया कपड़ा मिलता है, अतः वे अधिक स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हैं (पृ० 49).

53. आर० एन० पी० बंब०, 4 जनवरी 1879.

54. पृ० 47 तथा देखिए 19 जून का नेटिव ओपीनियन तथा अरुणोदय (आर० एन० पी० बंब०, 25 जून 1881); ज्ञान-प्रकाश, 30 जून (वही, 2 जुलाई 1881)

55. पूर्वोक्त स्थल, पृ० 44-7. लेखक ने विचार प्रकट करते हुए आगे लिखा : हमें समझ नहीं आता कि मालिक बेचारों को अपनी रक्षा के लिए उपाय करने के लिए कैसे दोषी ठहराया जा सकता है. (पृ० 47).

56. वही, पृ० 47-8 तथा लोकमित्र, 23 नवंबर (आर० एन० पी० बंब०, 29 नवंबर 1879); हितेच्छु, 11 दिस० (वही, 20 दिसंबर 1879); 19 जून का नेटिव ओपीनियन तथा अरुणोदय (वही, 25 जून 1881); ज्ञान प्रकाश, 30 जून (वही, 2 जुलाई 1881).

57. 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 48, 19 जून का नेटिव ओपीनियन और अरुणोदय (आर० एन० पी० बंब०, 25 जुलाई 1881); ज्ञान प्रकाश, 30 जून (वही, 2 जुलाई 1881).

58. नेटिव ओपीनियन, 29 दिस० 1878 (आर० एन० पी० बंब०, 4 जनवरी 1879); लोकमित्र, 26 जन० (वही, 1 फरवरी 1879); अखबारे सौदागर, 19 नव० (वही, 22 नवंबर 1879); बांबे क्रानिकल, 14 मार्च, याजदान परस्त, 13 मार्च, जामे जमशेद, 14 मार्च, सूर्य प्रकाश, 19 मार्च (वही, 26 मार्च 1881); न्याय प्रकाश, 28 मार्च, गुजराती, 27 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881), अखबारे आम, 8 जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 11 जनवरी 1879), नमीमे-आगरा, 30 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1879); हिंदी प्रदीप, जनवरी (आर०एन०पी०पी० एन०, 8 जनवरी 1880); ए० बी० पी०, 17 मार्च 1881; 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया'—पूर्वोक्त स्थल, पृ० 40; नवविभाकर, 21 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 2 अप्रैल 1881); भारत मिहिर, 29 मार्च (वही, 9 अप्रैल 1881); आनंद बाजार पत्रिका, 4 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1881).

59. बी० बी० मजूमदार : पूर्वोद्धृत, पृ० 353 पर पादटिप्पणी. इसी प्रकार 8 जनवरी 1879 के अंक में अखबारे आम ने दृढ़ता से स्वीकार किया कि यदि श्रमिकों से अधिक काम भी लिया जाता है तो भी इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि इससे आखिर देश को लाभ ही तो होता है। इस पत्र ने लिखा है कि युद्धकाल में एक सिपाही को न केवल अधिक कार्य करना पड़ता है प्रत्युत मरना भी पड़ता है. भारत का उद्योगीकरण युद्ध से कम महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि इसी में देश का उद्धार निहित है

60. नेटिव ओपीनियन, 29 दिस० 1878 (आर० एन० पी० बंब०, 4 जनवरी 1879); ए० बी०पी०, 12 नवंबर 1880; गुजरात मित्र, 20 मार्च, (आर० एन० पी० बंब०, 26 मार्च 1881); गंगा लहरी, 25 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881); 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया'—पूर्वोक्त स्थल, पृ० 31 और 40; साधारणी, 27 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 2 अप्रैल 1881); भारत मिहिर, 29 मार्च (वही, 9 अप्रैल 1881); आनंद बाजार पत्रिका, 4 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1881).

61. फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 31 गंगा लहरी, शुभसूचक और शिवाजी, 25 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 2 अप्रैल 1881); दि ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियम, 27 फरवरी 1879; ए० बी० पी०, 16 जनवरी, 1880

62 बंगाली, 26 मार्च 1881

63 पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र, एल० सी० पी० 1881 खंड XX पृ० 100 पर उद्धृत तथा रास्त गुफ्तार, 7 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 13 दिसंबर 1879). रास्त गुफ्तार तो इस कानून को सेना पर भी लागू करना चाहता था

64 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 35-6 तथा सोमप्रकाश, 28 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 2 अप्रैल 1881).

65 जामे जमशेद, 25 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 27 मार्च 1875), बंबई समाचार, 18 मई (वही, 22 मई 1875), अरुणोदय, 26 सितंबर (वही, 2 अक्तूबर 1875), गुजरात मित्र, 12 जनवरी (वही, 18 जनवरी 1879), नेटिव ओपीनियन, 19 जनवरी (वही, 25 जनवरी 1879), अरुणोदय, 26 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1879), खानदेश वैभव 13 जनवरी वही 15 फरवरी 1879), सत्य सदन, 15 फरवरी (वही, 22 फरवरी 1879), हितेच्छु, 11 दिसंबर और सूर्य प्रकाश, 13 दिसंबर (वही, 20 दिसंबर 1879); बंबई समाचार ० दिसंबर (वही, 13 दिसंबर 1879) इंदु प्रकाश, 22 मार्च (वही, 27 मार्च 1880), ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन 27 फरवरी 1879, ए० बी० पी, 16 जनवरी और 19 मार्च 1880. अखबारे आम, 8 जनवरी (आर० एन० पी० पी०एन०, 11 जनवरी 1879), नसीमे आगरा, 30 जनवरी (वही, 1 फरवरी 1879) भारत मिहिर, 29 जनवरी (आर० एन० पी० बंग० 8 फरवरी 1879); सहचर, 10 मार्च (वही, 15 मार्च 1879), हिंदी प्रदीप, जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 8 जनवरी 1880); गुजरात मित्र, 20 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 26 मार्च 1881), नेटिव ओपीनियम, 27 मार्च, गंगा लहरी, 25 मार्च न्यायप्रकाश, 28 मार्च, गुजराती, 27 मार्च, शुभसूचक, 25 मार्च और शिवाजी, 25 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881); मराठा, 13 मार्च 1881, ए० बी० पी० 17 मार्च 1881, बंगाली, 26 मार्च 1881, 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया' पूर्वोक्त स्थल पृ० 30 और 43, सहचर, 14 मार्च (आर० एन० पी० बंग० 26 मार्च 1881), नवविभाकर, 21 मार्च, साधारणी, 27 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881); आनंद बाजार पत्रिका, 4 अप्रैल (वही, 16 अप्रैल 1881).

66 आर० एन० पी० बंब०, 26 मार्च 1881.

67. 'मराठा' तो कुछ एक सर्वथा अकालप्रौढ सुझाव देने की सीमा तक चला गया . 'जनता को जागरूक बनाने की चेष्टा किए बिना राजनीतिक अधिकारो के लिए किसी प्रकार के संघर्ष का कोई भी फल नही निकलेगा. आइए भोलीभाली अनजान जनता को समझाए कि मानचेस्टर कितनी प्रबलता से अपने लक्ष्य की पूर्ति मे जुटा है. भारत के अबोध लोगो को सरकार की गतिविधियो से परिचित कराइए. उन्हे बताइए कि हम क्या हैं और हमे क्या होना चाहिए. हमे विश्वास है कि हमारे प्रयत्नो को अवश्य सफलता मिलेगी.

68. नेटिव ओपीनियन ने भी 26 मार्च 1891 के अंक मे इसी प्रकार की अपील की थी (आई० एस० बी० ओ० आई० 19 अप्रैल 1891, पृ० 316). यह अपील इंडियन फैक्टरी, (संशोधन) ऐक्ट, 1891 के पास होने के समय की गई थी.

69. दास : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया; पृ० 31-2. क्लो : पूर्वोद्धृत, पृ० 13.

70 रिपोर्ट आफ दि फैक्टरी लेबर कमीशन आफ 1885 पृ० 10 15 उन्होंने यह भी सिफारिश की थी कि वर्ष में 6 महीने से कम समय तक काम करने वाले कारखानों में स्त्रियों और बच्चों को 16 घंटे प्रतिदिन की नौकरी मिलनी चाहिए और उन्हें दो घंटे का अवकाश मिलना चाहिए यह सिफारिश कमीशन की मानवीय मनःप्रवृत्ति या सर्वोत्तमता का प्रदर्शन नहीं करता अस्तु श्रमिकों के पक्षधर किंतु राष्ट्रविरोधी, ... के साप्ताहिक 'दीनबंधु' ने 25 जनवरी 1885 के अंक में कमीशन की सिफारिशों की निंदा की और लिखा अभी अभी प्रकाशित रिपोर्ट यह स्पष्ट करती है कि कमिश्नर वे लोग हैं जिन्होंने मिलमालिकों के हितों की ही रक्षा की है यदि सरकार ने कमीशन की सिफारिशों के अनुरूप कोई कार्यवाही की तो श्रमिकों का बड़ा भारी अहित होगा (आर० एन० पी० बंब०, 31 जनवरी 1885)

71 दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 37

72 वही, अध्याय 3 और किड पूर्वोद्धृत, पृ० 37

73 आर० एन० पी० बंब० न 9 अक्तूबर 1880 के बाद के अंकों में इसे अपने मूल रूप में सम्मिलित किया इसका प्रथम अंक संभवत 3 अक्तूबर 1880 को प्रकाशित हुआ आर० के० दास और उनके परवर्ती लेखकों ने इस समाचारपत्र का 1880 वर्ष में जन्म गलत लिखा है उदाहरणार्थ देखिए फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 62, मुखर्जी पूर्वोद्धृत पृ० 96 और एस० डी० पुणेकर ट्रेड यूनियनिज्म इन इंडिया (बंबई 1948) पृ० 59

74 रिपोर्ट आफ दि बाबे फैक्टरी लेबर कमीशन 1885, पृ० 230।

75 रिपोर्ट आफ दि इंडियन फैक्टरी लेबर कमीशन 1890 पृ० 15 20 दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 13, किड पूर्वोद्धृत पृ० 51 2

76 रिपोर्ट आफ दि वर्किंग आफ दि फैक्टरी ऐक्ट इन बाबे फार दि इयर 1895 में इस संबंध में निम्नलिखित अवतरण है बंबई के कारखाना श्रमिकों का कोई संगठन श्रमिक संघ नहीं है यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि यद्यपि पिछले फैक्टरी कमीशन में काम करने वाले श्री एन० एम० लोखंडे अपने आपको बंबई के श्रमिक संघ का प्रधान बताते हैं परन्तु उस संघ का एक संगठित दल के रूप में न कोई अस्तित्व है और न तो सदस्यों की कोई सूची है न कोई कोष है और न ही कोई नियमावली है मेरे विचार में जो भी श्रमिक लोखंडे के पास आता है वह उससे स्वेच्छा से परामर्श लेता है (पृ० 15) मुखर्जी द्वारा उद्धृत पूर्वोद्धृत पृ० 8 फैक्टरी इंस्पेक्टर की 1892 की रिपोर्ट के अनुसार संघ एक ऐसा तत्व था जो किसी भी रूप में कम से कम वर्तमान में तो स्वामी और सेवकों के आपसी संबंधों को किसी रूप में प्रभावित नहीं कर सकता था (बुकानन पूर्वोद्धृत, पृ० 421 उद्धृत)

77. दीनबंधु का अर्थ है 'गरीबों का दोस्त' इसके अतिरिक्त वह कदाचित सोराबजी एस० बंगाली के अभिन्न मित्र थे

78 देखिए, दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, अध्याय 3 किड पूर्वोद्धृत, अध्याय 3

79 इस बिल के प्रारूप में स्त्रियों के लिए एक दिन में 11 घंटे कार्य करने की सीमा निर्धारित करने की तथा महीने में स्त्रियों और बच्चों के लिए चार अवकाश दिनों के निर्धारण की व्यवस्था थी वयस्क श्रमिकों से संबंधित किसी प्रकार का कोई प्रावधान इसमें नहीं था, दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 48-9

80 किड पूर्वोद्धृत, पृ० 48-49, दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 49-50

81 किड पूर्वोद्धृत, पृ० 48-49, दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, पृ० 50-60.

(वही, 13 दिस० 1890), गुजरानी, 7 दिस० (वही), मराठा, 14 दिसवर 1890, समय, 12' दिसवर (आर० एन० पी० बग०, 20 दिसबर 1890)

95 1890 के बिल और 1891 के ऐक्ट पर समाचारपत्रो की टिप्पणियो मे कमी का एक अन्य कारण यह था कि समाचारपत्र पहले ही एज आफ कानसेंट बिल (सहमति बिल) मे व्यस्त थे

96 जामे जमशेद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बब०, 4 मार्च 1891) तथा इदु प्रकाश 11 अप्रैल 1891, मराठा, 5 अप्रैल 1891, सुरभि ओ पताका, 10 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 18 अप्रैल 1891), सहचर, 9 सितबर (वही, 19 सितबर 1891)

97 मराठा, 16 फरवरी 1890 और 5 अप्रैल 1891, सुरभि ओ पताका, 13 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 22 फरवरी 1890), दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 5 मार्च (वही, 8 मार्च 1890), के० एल० नुलकर, एल० सी० पी० 1891 खड XXX, पृ० 177, 179

98 हिंदू ने 10 दिसबर 1890 के अक मे अपेक्षाकृत और अधिक आशा प्रकट की उसके सपादक ने यह कहते हुए कि—"श्रमिको की स्थिति अच्छी है और वे काफी प्रसन्न हैं, लिखा कि उसने स्वय अपनी आखो से देखा है कि किस प्रकार उनके पारिश्रमिक बढ़ गए हैं, किस अच्छी प्रकार से उनकी देखभाल की जाती है और कितना सुखद भविष्य उनके सामने है सहचर, 11 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 21 मार्च 1891)

99 आर० एन० पी० बब०, 17 मई 1890 तथा सहचर, 9 सितबर (आर० एन० पी० बग०, 19 सितबर 1891) यह द्रष्टव्य है कि सरकारी प्रवक्ताओ ने भारत मे निर्धनता की स्थिति को नकारने के लिए आय और आवश्यकताओ की सापेक्षिकता का तर्क पेश किया तो राष्ट्रवादी नेताओ ने इसे अवैज्ञानिक, 'क्रूर तथा हृदयहीन' बताकर अस्वीकृत कर दिया देखिए अध्याय 1

100 दास फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इडिया, पृ० 90-1 तथा हिंदुस्तान, 1 जून (आर० एन० पी० एन० 5 जून 1889)

101 मराठा, 3 जून 1884, गुजरात दर्पण, 30 मई (आर० एन० पी० बब०, 1 जून 1889), भारत जीवन, 1 दिसबर (आर० एन० पी० एन, 9 दिस० 1890), दास के फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इडिया, पृ० 90 पर उद्धृत के० एन० बहादुरजी; सहचर, 9 सितबर (आर० एन० पी० बग०, 19 सितबर 1891)

102 आर० एन० पी० बग०, 26 जनवरी 1889

103 हिंदू, 17 मई 1889, समय, 28 दिसबर 1888 (आर० एन० पी० बग०, 5 जनवरी 1889), सुलभ समाचार और कुशदाह, 18 जन (वही 26 जनवरी, 1889), मराठा, 14 दिस० 1890, समय, 14 फरवरी (आर० एन० पी० बग० 22 फरवरी 1890), नेटिव ओपीनियन, 6 फरवरी (आर० एन० पी० बब०, 8 फरवरी 1890)

104. कतिपय समाचारपत्रो ने इस प्रस्ताव का भी विरोध किया परतु केवल जून 1890 से पहले तक ही देखिए, समय, 24 मई (आर० एन० पी० बग०, 1 जून 1889), हिंदुस्तान, 22 मई (आर० एन० पी० एन०, 29 मई 1889), और 23 अप्रैल (वही, 28 अप्रैल 1890), भारत जीवन, 1 दिस० (वही, 9 दिस० 1890), नेटिव ओपीनियन, 6 फरवरी (आर० एन० पी० बब०, 8 फरवरी 1890), इस सदर्भ में 22 फरवरी 1889 के अंक मे हिंदुस्तान ने इस तर्क को आगे बढाते हुए लिखा कि इस कदम से मिलमालिक अपने लाभ के सप्तमाश से वचित हो जाएगे यह भी मजेदार बात है कि उस समय हिंदुस्तान का सपादक कोई और नहीं मदनमोहन मालवीय थे और मालिक थे राजा रामपालसिंह जो उन दिनो कांग्रेस के मच के एक प्रबल

साहसी वक्ता थे. देखिए : दि इंडियन नेशन बिल्डर्स (मद्रास, तिथि-रहित, तृतीय संस्करण) भाग 1 पृ० 146.

105. 6 अप्रैल 1891. इस बात का श्रेय उसे अवश्य मिलना चाहिए कि इस विचित्र रवैये का प्रयोजन भी उसने उसी संपादकीय में स्पष्ट कर दिया है····"परंतु श्रमिकों के हितों से अलग हटकर ···यह पूछना उपयुक्त होगा कि क्या सरकार पर पूंजीपतियों, इस प्रकार के कानून से जिनके उत्पादक उद्यम बुरी तरह से अस्त व्यस्त हो गए हैं, के हितों की देखभाल का दायित्व नहीं है. स्पष्ट है कि इंदु प्रकाश के लिए उदीयमान औद्योगिक पूंजीवाद की शक्तियों के विरोध की अपेक्षा हिंदू रूढ़िवादिता को क्षीण करने वाली शक्तियों का विरोध करना सरल ही था.

106. मराठा, 13 मार्च 1892; संजीवनी, 5 दिसंबर (आर० एन० पी० बंग०, 12 दिसंबर 1891); नेटिव ओपीनियन, 10 मार्च, गुजरात दर्पण, 10 मार्च, बंबई समाचार, 7 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 12 मार्च 1892) और देखिए, बंगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 16 (अप्रैल 1892).

107 हिंदुस्तान, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 28 अप्रैल 1890); भारत जीवन, 1 दिसंबर (वही, 9 दिसंबर 1890); मराठा, 7 दिस० 1890. हिंदू, 16 मित० 1891.

108 आर० एन० पी० बंग०, 18 अप्रैल 1891.

109. और देखिए, बंबई समाचार, 4 दिसंबर (आर० एन० पी० बंब०; 6 दिसंबर 1890)

110. ए० बी० पी० [illegible] 1889; हिंदू, 17 मई 1889, कोहेनूर, 28 मई (आर० एन० पी० पी०, 8 जून 1889); समय, 14 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 22 फरवरी 1890); भारत जीवन, 1 दिसम्बर (आर०एन०पी०एन०), 9 दिसम्बर 1890) दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 5 मार्च (वही, 8 मार्च 1890), सुरभि ओ पताका, 10 अप्रैल (वही, 18 अप्रैल 1890); सहचर, 9 सितंबर (वही, 19 सितंबर 1891); इंदु प्रकाश, 11 अप्रैल 1891.

111. सी० बी० ए०, पृ० 264-5. बैनर्जी ने बंगाल के विदेशी स्वामित्ववाले पटसन उद्योग को भी अपने संरक्षण में लिला जो हुंडी के प्रहार का शिकार था

112 और देखिए, मराठा, 23 दिसंबर 1888; समय, 28 दिसंबर (आर० एन० पी० बंग०, 5 जनवरी 1889); सुरभि ओ पताका, 10 अप्रैल (वही, 18 अप्रैल 1891); गम ख्वारे हिंद, 21 मार्च (आर० एन० पी० पी०, 28 मार्च 1891)

113. मराठा, 23 दिस० 1888; ए० बी० पी० 8 फरवरी 1889; हिंदू, 14 और 17 मई 1889 और 10 दिस० 1890; ज्ञान प्रकाश, 16 मई और ट्रिब्यून, 22 मई (वी० ओ० आई०, जून 1889); सुलभ समाचार और कुशदाह, 18 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 26 जनवरी 1889); सुरभि ओ पताका, 31 जनवरी (वही, 9 फरवरी 1889); सहचर, 7 फरवरी (वही, 16 फरवरी 1889); प्रतिकार, 7 जून (वही, 15 जून 1889); हिंदी प्रदीप (आर० एन० पी० एन० 26 जून 1889); गुजरात दर्पण, 30 मई और शिवाजी, 24 मई (आर० एन० पी० बंब०, 1 जून 1889); कोहेनूर, 28 मई (आर० एन० पी० पी०, 8 जून 1889); संजीवनी, 8 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 15 फरवरी 1890); समय, 14 फरवरी (वही, 22 फरवरी 1890); दैनिक ओ समाचार चन्द्रिका, 5 मार्च (वही, 8 मार्च 1890); कासिम उल अखबार, 10 फरवरी (आर० एन० पी० एम० 28 फरवरी 1890); भारत जीवन, 1 दिस० (आर० एन० पी० एन०, 9 दिस० 1890); ट्रिब्यून, 11 मार्च (आई एस० वी० ओ० आई०, 29 मार्च 1891 पृ० 257); नेटिव ओपीनियन, 26 मार्च (वही, 19 अप्रैल 1891 पृ० 316); सहचर, 11 मार्च (आर० एन० पी०

बग, 21 मार्च 1891), गम ख्वारे हिंद, 21 मार्च और 20 जून (आर० एन० पी० पी०, 28 मार्च और 4 जुलाई 1891) के० एन० नुलकर, एल० सी० पी० 1891 खंड XXX पृ० 177; बगवासी, 9 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 16 अप्रैल 1892) एस० एन० बैनर्जी, मी० पी० ए०, पृ० 264 5

114 लैजिस्लटिव कौंसिल म फैक्टरी बिल पर विचार प्रकट करते हुए के० एन० नुलकर न मानवतावाद को एक मात्र निर्देशक तत्व मानने वाले इग्लैंड के परोपकारियो के सबध मे व्यग्य करते हुए कहा है 'उनका कदाचित यह विश्वास है कि वे अपनी निरपेक्षता का पर्याप्त प्रमाण भारतीयो के समक्ष प्रस्तुत कर चुके है वस्तुत ये ही वे लोग थे जिन्होने कुछ वर्ष पूर्व कपास पर सीमा शुल्क हटवाने म सफलता प्राप्त की थी और इससे हुए घाटे को पूरा करने के लिए सरकार पर नमक कर मे वृद्धि के लिए दबाव डाला था भारतीय जनता इन महानुभावो के प्रति कृतज्ञता प्रकट नही कर सकती वह तो इन निरपेक्ष मित्रो से क्षमा चाहती है और इनसे नागरिक होने के बदले जगली रहना ही अधिक पसद करती है क्योकि इसमे उसे सस्ता नमक और थोड बहुत वस्त्र तो उपलब्ध हो सकेगे एन० सी० पी० 1891 खंड XXX पृ० 178 तथा बगवासी, 27 अप्रैल 1889 और हिंद, 17 मई 1889

115 उदाहरणार्थ 1884 'मराठा' के सपादक महाराष्ट्र के क्रातिकारी सामाजिक और राजनीतिक विचारक जी० जी० आगरकर थे 188। मे इसके सपादक और स्वामी बदल गए अक्तूबर 1888 तक अगरकर इस पत्र के लिए लिखते रहे सितबर 1891 म एक और परिवर्तन आया

116. इडिया स्पैक्टेटर, 3 अगस्त (आर० एन० पी० बब०, 9 अगस्त 1881), मराठा, 5 अक्तूबर 1884 और 1 जुलाई 1888, गुजराती, 9 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 15 नवबर 1890)

117. इडियन स्पैक्टेटर 4 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 10 नवबर 1883), मराठा, 12 अक्तूबर 1890

118 इडियन स्पैक्टेटर, 4 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 10 नव० 1883 सुबोध पत्रिका 28 सितबर वी० ओ० आइ० अक्तूबर 1994), मराठा, 5 अक्तूबर 1881 7 दिसबर 1888, 15 सितबर 1889, 16 मार्च 1890 और 12 अक्तूबर 1890, गुजराती 9 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 15 नवबर 1890

119. मोरिसन पूर्वोद्धृत, पृ० 175

120 बुकानन . पूर्वोद्धृत, पृ० 272

121 वही, पृ० 303, 307, 322 तथा देखिए, कर्जन, स्पीचेज II, पृ० 257-8

122 बुकानन पूर्वोद्धृत, पृ० 265, 267

123 वही, पृ० 268

124 दि इडियन माइस ऐक्ट —1901 (1901 को ऐक्ट की सख्या VIII) मे भारत सरकार द्वारा खानो के प्रधान इसपैक्टर की और राज्य सरकार द्वारा दूसरे इसपैक्टरो की नियुक्ति की व्यवस्था थी प्रधान इसपैक्टर को सुरक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से स्थिति के भयकर अथवा अनुपयुक्त होने पर खानो मे बच्चो और स्त्रियो की नियुक्ति को रोकने का अधिकार दिया गया इसपैक्टरो का यह दायित्व था कि वे खानो मे उपयुक्त रोशनदानो तथा सफाई के अन्य एव साधनो की व्यवस्था कराए, 12 वर्ष तक की आयु के व्यक्ति को बच्चा माना गया था अधिनियम मे खान प्रबधको के कर्तव्यो और योग्यताओ से सबधित नियमो के बनाने की भी व्यवस्था थी

125 हितवादी, 24 मार्च (आर० एन० पी० बग० 1 अप्रैल 1899) समय, 6 अप्रैल (वही, 14 अप्रैल 1900), इदु प्रकाश, 22 मार्च (आर० एन० पी० बब, 24 मार्च 1900), हिंदुस्तान, 24 फरवरी

जाती रही.… मेरा विचार है कि हम मिल अभिकर्ताओं के लिए इस संबंध में (1891 का फैक्टरी ऐक्ट) शिकायत करने की कोई बात नहीं इसके विपरीत हमें तो यह पग उठाने के लिए सरकार का धन्यवाद करना चाहिए (वही, पृ० 211) तथा दक्षिण, ज० एल० मार्शा)एल० सी० पी० 1891 खंड XXX पृ० 162) मेरे विचार मे सरकार ने शरता और साथ ही साथ विवेक के साथ युद्ध लड़ा है

138 बंबई समाचार, 3 और 5 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 8 फरवरी 1890, मराठा 22 जून 1890, जामे जमशेद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 14 मार्च 1891)

139 हिंदी मुहावरे, 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त' का भाव ही यहां अधिक उपयुक्त है

140 अपनी पुस्तक रानाडे प्राफेट आफ लिबरेटेड इंडिया में टी० जी० वर्वे लिखते है कि रानाडे राज्य के हस्तक्षेप को इस रूप में चाहते थे कि जिससे औद्योगिक प्रगति का पथ इस रूप में नियमित हो जाए कि थोड़ी सी परिहार्य कठिनाई न हो (पृ० 118) परंतु हम रानाडे के भारतीय अर्थशास्त्र पर लिखे निबंधों में अथवा उनके अन्य किसी प्रसिद्ध निबंध में इस प्रकार का कोई उद्धरण ढूंढ पाने में असफल रहे है दुर्भाग्यवश कर्वे ने संदर्भ निर्देश नहीं दिया दूसरी ओर बंगाली अवतार दत्त की धारणा है रानाडे ने समग्र लेखन में वर्गों के प्रति न्याय की आवश्यकता के संबंध में, कुछ लोगों के हाथ में पूंजी के केंद्रित हो जाने के दुष्प्रभाव के संबंध में, श्रमिक संघों की आवश्यकता के संबंध में अथवा मिल मालिकों के विरुद्ध श्रमिकों के हितों के संरक्षक प्रभावी उपायों के संबंध में किसी उद्धरण का ढूंढना निरर्थक ही है दि बैकग्राउंड आफ रानाडेज इकानामिक्स इंडियन जरनल आफ इकानामिक्स' जनवरी 1942 खंड XXII सं० 3 पृ० 262-3

141 इसके विपरीत उन्होंने 1911 में 1911 के इंडियन फैक्टरी बिल की व्यवस्था, जिसमें कपड़ा कारखानों में वयस्क श्रमिक के काम के घंटों का प्रतिदिन बारह तक सीमित करने का विधान था, के विरुद्ध मतदान किया

142 सी० पी० ए०, 264 5

143 रानाडे एसेज, पृ० 60

144 वाडिया और मर्चेंट पूर्वोद्धृत, पृ० 373

145 1867 में फैक्टरी इंसपेक्टर जेम्स जोन्स ने स्पष्ट दी कि बंबई वस्त्र उद्योग अत्यंत समृद्ध है और कई कारखानों ने चार वर्षों में ही अपनी लागत पूंजी वापस चुकता कर दी है (वर्ला पूर्वोद्धृत, पृ० 17 पर उद्धृत) 1905-06 में भारतीय वस्त्र उद्योग का औसत विशुद्ध लाभ 227 लाख रुपये था जबकि इन दो वर्षों में वेतन के रूप में वार्षिक भुगतान की राशि थी केवल 209 लाख रुपये एम० डी० मेहता दि इंडियन काटन टैक्सटाइल इंडस्ट्री (बंबई 1953) पृ० 103

146 सी० पी० ए० में पृ० 12

147 एल० सी० पी०, 1901 खंड XL पृ० 132

148 इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खंड III पृ० 56-7

149 तुलनीय कर्जन स्पीचेज II पृ० 238-9 असम में श्रम व्यवस्था अनिवार्यतः इकरारनामे के ढंग की थी जिसके अंतर्गत श्रमिकों को निश्चित वर्षों का अनुबंध करके असम जाना होता था यदि श्रमिक अनुबंध की पूर्ति नहीं करते थे तो सरकार दंड विधान के प्रवर्तन की योजना द्वारा बागान मालिकों की सहायता करती थी भारतीय परिस्थितियों के अनुसार इकरारनामा पद्धति एक बार असम पहुंचे श्रमिकों को पूर्णतः मालिकों के अधीन और उनकी दया पर निर्भर बना देती थी

1901 मे असम लेबर ऐंड एमिग्रेशन बिल पर भाषण करते हुए विधि सदस्य टी रेलिफ न इस तथ्य को बडी ही सुस्पष्ट अभिव्यक्ति इस प्रकार से दी 'इस बिल द्वारा मान्यता प्राप्त श्रम अनबध एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अनुसार, बिना लाग लपेट के कहा जाए तो कोई व्यक्ति यह जानने से पहले ही कि वह क्या कर रहा है, असम मे काम करने को प्रतिबद्ध हो जाता है फिर वह अपने चार वर्ष के अनबध से जकडा रहता है जिसके मुताबिक अनुबधित समय तक काम न करने पर दड और जेल की धमकी दी जाती है इस तरह की दशाओ का मालिक और नौकर की किसी सामान्य कानून मे कोई अवकाश नही हमने इन्हे ब्रिटिश भारत के कानून का हिस्सा असम के बागान मालिको के अनुरोध पर और उनके ही हित म बना दिया है सत्य यह है कि इस बिल के पीछे प्रेरक शक्ति बागानमालिको के हित है न कि बेचारे कुलिया। क (एल० सी० पी०, 1901, खड XL, पृ० 133)

150 दास हिस्टरी आफ इडियन लेबर लैजिस्लेशन, पृ० 1)

151 1882 का इनलैड एमिग्रेशन ऐक्ट, 1882 (1882 का एक्ट स० 1) भरती के ठिकान पर अनुबध करन से इनकार करने पर एक महीने तक की जल को सजा दी जा सकती थी श्रमिको को भागने के लिए फुसलाने अथवा भागे हुओ को शरण देने का दड था एक म स का कारावास अथवा 200 रु० का अर्थदड अथवा दोनो

152 बिपिनचद्र पाल मेमोरीज आफ माइ लाइफ एड टाइम्स, खड I (कलकत्ता 1932) पृ० 246 (इससे आग सदर्भ के लिए 'मेमारीज से सकेतित किया जाएगा)

153 वही, खड II (कलकत्ता 1951) पृ० 53, ज० सी० बागल हिस्ट्री आफ दि इडियन एसो सिएशन 1876-1951 (कलकत्ता 1953) पृ० 53 102

154 दखिए आर० एन० पी० बग 6 अगस्त 10 17 सितबर 24 31 दिसबर 1881 7 14 21, 28 जनवरी, 18 फरवरी 1882 साप्ताहिक, 4 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन 14 फरवरी 1882

155 15 जनवरी (आर० एन० पी० बग 21 जनवरी 1882)

156 बगाली, 14 जनवरी 1882

157 मिमारियल आफ दि इडियन एसोसिएशन वहा तथा पाद 154 की पादटिप्पणी मे उद्धृत बहुत सारे राष्ट्रवादी समाचारपत्र 17 दिसबर 1881 म बगाली न टिप्पणी की कि यदि भारत की अपनी सरकार होती तो ऐसा कानून कभी पास न किया जाता

158 दत्त इग्लैड एड इडिया, 131 ई एच II पृ० 352 तथा देखिए, सी० वाई० चिंतामणि इडिया ऐड लार्ड कर्जन, एच० आर०, अप्रैल 1901, पृ० 243

159 बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 103

160 वही, पृ० 104 उपर्युक्त पुस्तक मे परिशिष्ट ई के अतर्गत ज्ञापन पुनरुद्धृत है

161 1892 3 से 1895-6 तक की 'रिपोर्ट आफ दि इडियन एसोसिएशन पृ० 21 7 82 8, 92

162 बी० सी० पाल ममोरीज, खड II पृ० 54 5

163 वही इस द्वितीय प्रयास का पाल द्वारा प्रस्तुत विवरण गलत है इसका कारण स्पष्टत वृद्धावस्था म याददाश्त कमजोर हो जाना ही था सही लेख-जोखे के लिए देखिए, रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 158-62

164 कलकत्ता मे हुए 12वे अधिवेशन मे स्वीकृत प्रस्ताव XV

165 रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 165-9 प्रस्ताव पर बोलते हुए आर० के० सरकार न घोषणा

थी कि 'देश के किसी भी कानून में इससे अधिक बर्बर व्यवस्थाएं मिलना संभव नहीं' (वही, पृ० 169)

166 1897, 1898, 1899, 1900 और 1901 के प्रस्ताव क्रमशः IV, XX, XIV, X तथा XIII.

167 बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 105-07.

168 खंड II पृ० 352, 522 तथा देखिए, इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 131

169 बंगाली, 12 मई 1888; बंगाल के समाचारपत्रों के लिए देखिए, आर० एन० पी० बंग०, 26 मई, 2, 9, 16 और 23 जून 1888; दायस आफ इंडिया, जुलाई 1888 (खंड VI, सं० 7), इंडियन स्पेक्टेटर, 3 जून (वही); आफताबे हिंद, 15 जून (आर० एन० पी० पी०, 23 जून 1888); इंपीरियल पेपर, 23 जून (वही, 7 जुलाई 1888)

170 विशेष रूप से देखिए, उनके 1886 के अंक जब प्रेस ने 'कुली' अधिनियम के विरुद्ध एक संयुक्त अभियान छेड़ दिया था 'संजीवनी' के अक्तूबर, नवंबर और दिसंबर में प्रकाशित अंकों में इस विषय पर सुंदर और प्रामाणिक लेखमाला उपलब्ध है

171. ए० बी० पी०, 19 अगस्त 1886, संजीवनी 20 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 27 अगस्त 1887), 1888 का मेमोरियल आफ दि इंडियन एसोसिएशन बागल पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट ई, पीछे 169 पादटिप्पणी में उल्लिखित समाचारपत्र ए० बी० पी० 24 मई 1888, हिंदू, 30 मई 1888, इंदु प्रकाश 11 जून 1888, नेटिव ओपीनियन, 3 जून 1888, ए० एम० भीमजी, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 160, रहबर, 14 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 18 फरवरी 1892), 1893 में इंडियन एसोसिएशन द्वारा राज्य सचिव को प्रस्तुत विरोधपत्र 1892-3 से 1895-6 तक के वर्षों की रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन पृ० 32 जे० सी० घोष, रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 165-6, दत्त इंग्लैंड ऐंड इंडिया पृ० 131 और ई० एच० II, पृ० 352 उदाहरणार्थ जे० सी० घोष ने 1896 में कांग्रेस के प्रतिनिधियों को बताया मैंने गरीब आदमी और औरतों को मौत से भी बदतर भाग्य से बचने के लिए जहाज से ब्रह्मपुत्र के गहरे पानी में छलांग लगाते देखा है, उसी कांग्रेस के समक्ष आर० के० सरकार ने विवरण देते हुए [illegible] अनाचार और अत्याचार [illegible] एक फौज सी खुली छोड़ दी गई है और मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि देश के दुर्गम प्रदेशों में इनके अर्थात् इन पहाड़ियों के आतंक से [illegible] है रिप० आई० एन० सी० 1896, पृ० 165 और 170 क्रमशः

172 प्रभाती 4 जून (आर० एन० पी० बंग०, 7 जून 1884), सहचर, 4 जून (वही, 14 जून 1884) संजीवनी, 22 नवंबर (वही, 29 नव० 1884) पताका, 25 सित० और नवविभाकर, 28 सित० (वही, 3 अक्तूबर 1885), दि रिपोर्ट आफ नेटिव प्रेस फार बंगाल 1886; सोम प्रकाश 19 जुलाई और आनंद बाजार पत्रिका, 19 जुलाई (वही, 24 जुलाई 1886), संजीवनी, 7 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1886), भारत मिहिर 19 अगस्त (वही, 28 अगस्त 1886), अक्तूबर, नवंबर और दिसंबर की 'संजीवनी' (वही अक्तू० नव० और दिस० 1886), ए० बी० पी०, 13 अगस्त 1886; हिंदू, 24 जून 1887, मराठा, 12 फरवरी और 27 मई 1888, 1888 का इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; पीछे 169 की पादटिप्पणी में उल्लिखित समाचारपत्र ए० बी० पी०, 24 मई 1888 वायस आफ इंडिया, जुलाई 1988 (खंड VI सं०7) इंडियन स्पेक्टेटर, ट्रिब्यून 23 मई 1888 3 जून 1888 (वही), रहबर, 14 फरवरी (आर० एन० पी० एन० 18 फरवरी 1892), बंगाली, 4 फरवरी 1893, दत्त ई एच II, पृ० 522, कैसरे हिंद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 14 मार्च 1903) जी० एस० अय्यर ई० पू०, पृ० 195

173. ए० बा० पी०, 24 मई 1888; इंडियन एसोसिएशन का 1888 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; दत्त . इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 131. ई एच II, पृ० 352.

174. बागल : पूर्वोद्धृत, पृ० 103 तथा इंडियन एसोसिएशन का 1888 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल.

175. जे० सी० घोष ने 1896 में कांग्रेस के अधिवेशन मे एकत्रित प्रतिनिधियो का एक घटना बताई जहा बडी संख्या में औरतो और मरदो पर सामूहिक रूप से कोड़े बरसाए गए. चीफ कमिश्नर की 1887 की श्रमिको के असम में उत्प्रवास संबधी रिपोर्ट का उद्धृत करते हुए उन्होंने एक घटना का विवरण दिया कि किस प्रकार मैनेजर के घर के बरांडे के एक खंभे के साथ स्त्रियों को बाध दिया गया, उनके कपड़े कमर तक उठा दिए गए और उनके नगे चूतडो पर चमड़े के चाबुक से पिटाई की गई. (रिप० आई० एन० सी-1896, पृ० 167)

176 रिपोर्ट आन आ दि नेटिव प्रेस, बगाल-1886, सोम प्रकाश, 19 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 24 जुलाई 1886); ए० बी० पी०, 24 मई और 19 जुलाई 1888; मराठा, 12 फरवरी, 27 मई 1888; ट्रिब्यून, 23 मई (बी० ओ० आई०, जुलाई 1888), इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; जे० सी० घोष : रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 167, दत्त : ई एच II, पृ० 352; कैसरे हिंद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903)

177 इंडियन एसोसिएशन 1888 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; ट्रिब्यून, 23 मई (बी ओ० आई०, जुलाई 1888); बगाली, 4 फरवरी 1893: जे० सी० घोष : रिप० आई० एन० सी०-1896, पृ० 167; जी० एस० अय्यर . ई ए, पृ० 185 तुलनीय कर्जन स्पीचेज I पृ० 243 असम म स्वतंत्र श्रमिको की अपेक्षा अनुबधित श्रमिको की मृत्यु दर भयकर रूप से ऊची थी

178. इंडियन एसोसिएशन द्वारा 1893 मे राज्य सचिव का प्रेषित याचिका · रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन फार 1892-3 टु 1895-6, पृ० 82, बगाली, 21 जनवरी 1893. जे० सी० घोष, रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 167; सी० वाई० चिंतामणि : इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 243; जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 180-5

179 जे० सी० घोष : रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 167 तथा बी० सी० पाल . वही, पृ० 168; बगाली, 4 फरवरी 1893; हितवादी, 23 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 31 मार्च 1900), इंडियन एसोसिएशन ने 10 मार्च 1893 के ज्ञापन मे उल्लेख किया कि यदि कुलियों को अस्वास्थ्य कर स्थानों में काम करना पडता है अथवा यदि उन्हे अपने घरो से बहुत दूर आना पड़ता है तो उन्हे अपेक्षित त्याग के अनुरूप ही उपयुक्त वेतन मिलना चाहिए (रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1892 3 टु 1895-6, पृ० 22)

180. जे० सी० घोष : रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 167; हितवादी, 23 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 31 मार्च 1900); जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 182

181. केसरी, 10 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903)और देखिए, जे० सी० घोष . रिप० आई० एन० सी०-1896 पृ० 165 जी० एस० अय्यर ई ए पृ० 181

182 सोम प्रकाश, 19 जुलाई; आनंद बाजार पत्रिका, 19 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 24 जुलाई 1886); ए० बी० पी०, 19 मई 1886, सजीवनी, 20 अगस्त (आर० एन० पी० बग, 27 अगस्त 1887); प्रतिकार, 26 मई (वही, 2 जून 1888), परिदर्शक 11 जून (वही, 23 जून 1888), ए० बी० पी०, 24 मई 1888, मराठा, 27 मई 1888, हिंदू, 30 मई 1888; 1888 का इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, बी० सी० पाल : रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 159; बंगाली, 4 जून 1892; रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1892-3 टु 1895-6,

पृ० 22-7, जे० सी० घोष रिप० आई० एन० सी० 1896, पृ० 167; केसरी, 19 मार्च (आर० एन० पी० बब०, 23 मार्च 1901) कैसरे हिंद, 8 मार्च (वही, 14 मार्च 1903); दत्त : ई एच II, पृ० 352.

183. बी० सी० पाल : मेमोरीज, खंड II पृ० 54.

184. बंगाली, 11 मार्च 1893; ए० बी० पी०, 28 फरवरी 1901; दत्त : ई एच II पृ० 351-2.

185 सजीवनी 19 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 26 नव० 1887) तथा ए० बी० पी०, 19 जुलाई 1888

186 20 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 27 अगस्त 1887).

187 मई 1888 का इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; बागल : पूर्वोद्धृत, पृ० 105-06; बी० सी० पाल : रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 158, 162; ए० बी० पी०, 19 अगस्त 1886, बंगाली, 12 मई 1888, मराठा, 27 मई 1888; हिंदू, 30 मई 1888; नेटिव ओपीनियन, 3 जून 1888, इंदु प्रकाश, 11 जून 1888; वायस आफ इंडिया, जुलाई 1888 (खंड VI, स०7); ट्रिब्यून 23 मई और इंडियन स्पेक्टेटर, 3 जून (वही). बंगाल के समाचारपत्रों के लिए देखिए, आर० एन० पी० बंग०, 26 मई, 2, 9, 23 जून 1888; इंडियन एसोसिएशन का 1893 का ज्ञापन, रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1892-3 टु 1895-6 पृ० 83-8.

188 सजीवनी, 29 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 29 नव० 1884); मराठा, 27 मई 1888; ए० बी० पी० 24 मई 1888

189 इंडियन एसोसिएशन का 1893 में दिया गया ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 23-7; बंगाली, 11 मार्च 1893.

190 हिंदू, 30 मई 1888; बंगाली, 5 दिसंबर 1891; इंडियन एसोसिएशन द्वारा 1893 में प्रस्तुत ज्ञापन रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1892-3 टु 1895-6, पृ० 21. इंडियन एसोसिएशन द्वारा 1896 में प्रस्तुत ज्ञापन, वही, पृ० 92; बंगाली, 6 जून और 15 अगस्त 1896; आई० एन० सी०, 1896, 1897, 1898, 1899, 1900 और 1901 के प्रस्ताव संख्या XV, IV, XX, XIV, X और XIII क्रमशः हिंदू, 3, 8, नव० 1899; न्यू इंडिया, 26 अगस्त 1901; सी० वाई० चिंतामणि : इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन, एच० आर० अप्रैल 1901, पृ० 244 जे० सी० घोष : रिप० आई० एन० सी०-1901, पृ० 166; दत्त : ई एच II, पृ० 352.

191. दत्त : ई एच II पृ० 352 तथा 1893 का इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन पूर्वोक्त स्थल, पृ० 22. बंगाली, 15 अगस्त 1896; हितवादी, 23 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 31 मार्च 1900); ए० बी० पी०, 26 फरवरी 1901; हिंदू, 13 मार्च 1901.

192. सजीवनी, 28 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 4 सितंबर 1886); भारत मिहिर, 2 सितंबर (वही, 11 सितंबर 1886); सी० वाई० चिंतामणि : इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन, एच० आर०, अप्रैल 1901, पृ० 244 दत्त : ई एच I, पृ० XIL ई एच II, पृ० 352, 522.

193. आर० एन० पी० बंग०, 21 अगस्त 1886

194. 28 अगस्त (वही, 4 सितंबर 1886) तथा भारत मिहिर, 2 सितंबर (वही, 11 सितंबर 1886)

195. 3 दिसंबर, (वही, 10 दिसंबर 1887).

196. देखिए, दास : प्लांटेशन लेबर इन इंडिया (कलकत्ता 1931) पृ० 34, 94-5.

197. असम लेबर ऐंड एमिग्रेशन ऐक्ट—1901 (1901 का ऐक्ट नं० VI), अध्याय I-VII. विशेष रूप से धारा 3 देखिए, जिसमें स्थानीय सरकारों को किसी भी अन्य जिले में अथवा उसके किसी

भाग मे उत्प्रवासियो की धरती पर प्रतिबध लगाने का अधिकार दिया गया था दडनीय कानून न्यूनाधिक रूप से अपरिवर्तित ही रहा देखिए अधिनियम का अध्याय IX.

198 दास हिस्टरी आफ इडियन लेबर लैजिस्लेशन, पृ० 23 और चमनलाल . पूर्वोद्धृत, खड II, पृ० 6-7 चालू दुर्व्यवहारो के प्रति श्रमिको क असतोष की अभिव्यक्ति 1903 मे बडे पैमाने पर असम के चाय बागानो मे हुए उपद्रवो के रूप म हुई देखिए, दास . प्लाटेशन लेबर इन इडिया, पृ० 34

199 कर्जन स्पीचेज II, पृ० 245

200 हिंदू, 3 नवबर 1899, ए० बो० पी०, 26, 28 फरवरी 1901, कमरी, 19 मार्च (आर० एन० पी० बग, 23 मार्च 1901), हितवादी, 15 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 23 मार्च 1901); बगाली, 19 मार्च 1901

201 सजीवनी, 2 नव० (आर० एन० पी० बग०, 11 नवबर 1899), बगवासी, 11 नव० (वही, 18 नवबर 1899), आर० एन० पी० बग०, 9 मार्च 1901 म उल्लिखित बगाल के समाचारपत्र; सजीवनी, 28 फरवरी, हितवादी, 1 मार्च, इडियन मिरर, 1, 2, मार्च 1901 (वही, 9 मार्च 1901), बगाली 17, 22, 24 फरवरी 1901, ए० बी० पी०, 26, 28 फरवरी 1901, हिंदू, 13 मार्च 1901, मद्रास स्टैंडर्ड, 10 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 16 मार्च 1901), एडवोकेट, 1 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 2 मार्च 1901), श्रीराम, एल० सी० पी०-1901, खड XL पृ० 86, पी० आनद चारलु, वही, पृ० 131-2 जब के० बकिघम ने परिषद मे प्रथम तीन वर्षों म पुरुषो और स्त्रियो के वेतन क्रमश 5 और 4 रुपये तथा चतुर्थ वर्ष मे क्रमश: 6 और 5 रुपये निर्धारित करने का सशोधन पेश किया तो परिषद के सभी भारतीय सदस्यो ने उसके विरुद्ध मतदान किया (वही, पृ० 146)

202 एल० सी० पी०-1901 खड XL पृ० 147

203 कर्जन स्पीचेज II, पृ० 236

204 वही पृ० 246-7 तथा देखिए पृ० 234-5

205 एल० सी० पी०-1901 खड XL पृ० 150

206 बगाली, 10 मार्च और 19 मार्च 1901, हिंदू, 13 मार्च 1901, ए० बी० पी० 11 मार्च 1901, बगाल के समाचारपत्रो के लिए देखिए, आर० एन० पी० बग० 16, 23, 30 मार्च 1901; मद्रास स्टैंडर्ड, 10 मार्च और स्वदेशमित्रन 11 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 16 मार्च 1901); इदु प्रकाश, 28 मार्च (आर० एन० पी० बब, 30 मार्च 1901), अवध टाइम्स, 7 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 9 मार्च 1901), दत्त : ई एच I, पृ० XIV और ई एच II, पृ० 522, आई० एन० सी० 1901 का प्रस्ताव XIII, पी० आनद चारलु श्रीराम तथा बिपिन कृष्ण बोस ने सर हेनरी काटन के स्वर के साथ स्वर मिलाया और बकिघम के सशोधन के विरुद्ध मत दिया. एल० सी० पी०-1901 खड XL पृ० 158

207 मराठा, 17 मार्च 1901 तथा इडियन मिरर, 10 मार्च, प्रतिवासी, 11 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 16 मार्च 1901), बगवासी, 16 मार्च, वसुमती, 21 मार्च (वही, 23 मार्च 1901), प्रभाती, 20 मार्च (वही, 30 मार्च 1901); दत्त : ई एच I, पृ० 14-15 ई एच II, पृ० 352 और 522 दत्त ने एक अन्य उदाहरण देकर सरकार के मजदूरो के प्रति और बागान मालिको के प्रति व्यवहार मे अतर दिखाया कि जब 1903 मे बागानमालिको ने उस निर्यातित चाय पर कर लगाने की माग की, जिसकी आय का उपयोग भारत में चाय की खपत पर होना था तब भारत

सरकार ने अपने सम्मान को ताक पर रखकर इस माग को स्वीकार कर लिया और सिद्ध कर दिया कि वह चाय बागानमालिकों की चाय बेचने वाली एजेंट ही है (ई एच II, पृ० 522-3)

208. ए० बी० पी०, 11 मार्च 1901; बगाल के समाचारपत्रो के लिए देखिए, आर० एन० पी० बग०, 16, 23, 30 मार्च 1901, केसरी, 19 मार्च (आर० एन० पी० बब, 23 मार्च 1901), ज० सी० घोष रिप० आई० एन० सी०-1901 पृ० 165

209 बगाली, 15 फरवरी 1903; हिंदू, 28 फरवरी, 2, 3, मार्च 1903, इंडियन पीपल, 13 मार्च 1903; युनाइटिड इडिया, 3 मार्च (वी० ओ० आई०, 21 मार्च 1903), दी यन रिव्यू फरवरी 1903; आर० एन० पी० एम०, 7 फरवरी, 7, 14 मार्च 1903 और आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903 मे उल्लिखित मद्रास और बबई के लगभग सभी महत्वपूर्ण समाचारपत्र जी० एस० अय्यर : ई ए, पृ० 183 मद्रास विधान परिषद मे मद्रास बागान श्रम बिल का अधिकाश भारतीय सदस्यो द्वारा तीव्र विरोध किया गया था देखिए प्रासीडिंग्स आफ मद्रास लैजिस्लेटिव कौसिल-1902, खड XXX पृ० 211-6 और 1903 के लिए, खड XXXI पृ० 93-7

210. बगाली, 15 फरवरी 1903; हिंदू 3 मार्च 1903, इडियन पीपुल, 13 मार्च 1903; युनाइटिड इडिया, 3 मार्च (वी० ओ० आई० 21 मार्च 1903), स्वदेशमित्रन, 5 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 7 फरवरी 1903), कैसरे हिंद, 8 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903)

211. सुधारक, 9 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903), इसके बदले जी० एस० अय्यर ने अनुभव किया कि सरकार ने सार्वजनिक सगठन के रूप मे एकमात्र वाणिज्य सदन और निजी व्यक्तियो के रूप मे इस सदन के शीर्षस्थ प्रतिनिधियो से ही परामर्श किया था (ई ए, पृ० 184).

212. केसरी, 10 मार्च, सुधारक, 9 मार्च (आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903), जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 183-5

213 जी० एस० अय्यर ई ए, पृ० 185

214. आर० एन० पी० बब, 14 मार्च 1903.

215 वही

216 जी० एम० अय्यर . ई ए, पृ० 180 और 'अवर लेबर प्राब्लम', एच० आर०, अगस्त 1901, पृ० 117-8.

217 दत्त ई एच I, पृ० XIV-XV, पृ० 352, 522

218 14 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 23 मार्च 1901)

219 रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 168

220 एल० सी० पी०, 1901 खड XL, पृ० 131 और 153

221 आई० एन० सी० 1901 का प्रस्ताव XIII और आई० एन० सी०-1900 का प्रस्ताव XXIV.

222 25 मई (आर० एन० पी० एम०, 30 मई 1903)

223 मराठा, 7, 21 मई 1899.

224 मराठा, 14 मई 1899, सुधारक, 15 मई (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899)

225. जहा तक हमारी जानकारी है, भारत मे श्रम आदोलन के इतिहास लेखको ने इस तथ्य की पूर्ण उपेक्षा की है यह आश्चर्य का विषय है कि वे इस हड़ताल तक का उल्लेख नही करते इससे पूर्ववर्ती इसी रेलवे के ऐंग्लो-इडियन गार्डों की हड़ताल का वर्णन किया जाता है परतु उस हड़ताल में भारतीय श्रमिको का योगदान तो माना ही नही जा सकता वस्तुत 1899 से पूर्व बबई और कलकत्ता की कितनी ही कपड़ामिलों मे हड़तालें हुई वे तात्कालिक तथा असगठित, अधिक

से अधिक अर्धसंगठित थी.

226 केसरी, 16 मई (आर० एन० पी० बंब, 20 मई 1899).

227 14 मई 1899 के कैसर हिंद ने यह स्पष्ट देखा था, उसने यह निर्देश किया कि यदि यह सफल हुआ तो यह अन्य दो श्रमिकों के लिए अनिष्टकारी उदाहरण सिद्ध होगा. (आर० एन० पी० बंब, 20 मई 1899)

228 कैसर हिंद अपवाद था शीर्षस्थ समर्थकों में है, मराठा, केसरी, इंडियन स्पेक्टेटर, इंदु प्रकाश, सुधारक, नेटिव ओपीनियन, ज्ञान प्रकाश, सुबोध पत्रिका और मोद वृत्त

229 मराठा, 7, 14, 21, 28 मई, 4 जून, 16 जुलाई 1899 बंबई के समाचारपत्रों के लिए देखिए, आर० एन० पी० बंब, 13, 20 मई 1899, ए० बी० पी०, 24 मई 1899, हितवादी; 26 मई (आर० एन० पी० बंग०, 3 जून 1899), हिंदू, 8 मई 1899, बंगाल पत्रिका, 17 मई (आर० एन० पी० एम० 31 मई 1899), हिंदुस्तानी 17 मई (आर० एन० पी० एन० 31 मई 1899); जामे उल उलूम, 7 जून अल्मोड़ा अखबार, 10 जून हिंदुस्तानी, 7 जून (वही, 14 जून 1899), शहाना ए हिंद, 24 जून और 1 जुलाई (वही, 5 जून 1899), अमृत बाजार पत्रिका ने तो समस्या का सामान्यीकरण तक कर दिया ये हड़तालें कुचले हुए लोगों के जीने का अधिकार मांगने के प्रयत्न हैं . . . जहां कहीं, जहां कहीं हड़ताल होती है, समझ लीजिए कि वहां शिकायतों की इतनी अधिक प्रबलता और व्यापकता है कि उसने हड़तालियों को अपने अन्नदाताओं के विरोध में . . . के लिए विवश कर दिया है (24 मई 1899

230 केसरी, 16, 30 मई (आर० एन० पी० बंब, 27 मई, 3 जून 1899); नेटिव ओपीनियन, 25 मई (वही, 27 मई 1899); ए० बी० पी०, 2 जून 1899, हिंदुस्तानी, 17, 31 मई (आर० एन० पी० एन० 31 मई, 7 जून 1899), मराठा, 28 मई 1899

231 आर० एन० पी० एन०, 14 जून 1899

232 केसरी, 23 मई, नेटिव ओपीनियन, 25 मई (आर० एन० पी० बंब०, 27 मई 1899), केसरी, 30 मई (वही, 3 जून 1899)

233 मराठा, 7, 14, 21 मार्च, 1899, नेटिव ओपीनियन, 11 मई श्री सयाजी विजय, 6 मई, ज्ञान प्रकाश, 11 मई (आर० एन० पी० बंब०, 13 मई 1899); इंदु प्रकाश, 18 मई; सुधारक, 15 मई, नेटिव ओपीनियन 18 मई, केसरी 16 मई, गुजराती, 14 मई (वही. 20 मई 1899): नेटिव ओपीनियन, 25 मई (वही, 27 मई 1899); पैसा अखबार, 17 जून (आर० एन० पी० पी०, 1 जुलाई 1899), हिंदुस्तानी, 17 मई (आर० एन० पी० एन०, 31 मई 1899)

234 मराठा, 21 मई 1899, केसरी, 16 मई (आर० एन० पी० बंब 20 मई 1899)

235 मराठा, 14 मई 1899; इंदु प्रकाश, 18 मई, इंडियन स्पेक्टेटर, 14 मई, सुबोध पत्रिका, 14 मई, नेटिव ओपीनियन, 18 मई, गुजराती, 14 मई (आर० एन० पी० बंब०, 20 मई 1899). 14 मई 1899 के इंडियन स्पेक्टेटर ने सारे मामले को मैत्रीपूर्ण ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया : अच्छा हो या बुरा, हमें अब इस देश में बड़ी बड़ी संस्थाओं के रूप में श्रमिकों को संगठित करना है हम इसे छोड़ नहीं सकते. श्रमिकों को संगठित करके यह सिद्ध करना है कि उनमें कितनी शक्ति है. श्रम और पूंजी के बीच शत्रुता की भावना के विकास को रोकने का उपाय यह है कि श्रमिकों और पूंजीपतियों को समय समय पर उठने वाले विवादों को निपटाने के लिए सात्वनाप्रद योजनाएं अपनानी चाहिए (वही)

236 मराठा, 7 मई 1899; सुधारक, 15 मई, केसरी, 16 मई, इंदु प्रकाश, 18 मई, जामे जमशेद,

16 मई (आर० एन० पी० बब०, 20 मई 1899), नेटिव ओपीनियन, 25 मई, केसरी, 23 मई (वही, 27 मई 1899); वृत्तात पत्रिका, 17 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1899); अखबारे आम, 9 जून (आर० एन० पी० पी०, 24 जून 1899).

237. मराठा, 14, 21, 28 मई, 4 जून 1899, सुधारक, 25 मई (आर० एन० पी० बब०, 27 मई 1899); केसरी, 30 मई (वही, 3 जून 1899) 24 मई 1899 के 'बबई समाचार' न रपट दी कि कितने ही शीर्षस्थ व्यक्ति फिरोजशाह एम० मेहता के भवन पर इकट्ठे हुए है और उन्होंन इसी प्रकार के मत प्रकट किए है वही, 27 जून 1899

238. मराठा, 14, 21, 28 मई, इदु प्रकाश, 18 मई, सुधारक, 15 मई, नेटिव ओपीनियन, 18 मई, केसरी, 16 मई (आर० एन० पी० बब०, 20 मई 1899); नेटिव ओपीनियन, 25 मई (वही, 27 मई 1899).

239. मराठा, 28 मई 1899, ए० बी० पी०, 15 मई 1899; मोद वृत्त, 20 मई को समाप्त होने वाले सप्ताह का और गुजराती, 14 मई (आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899), केसरी, 30 मई (वही, 3 जून 1899), अल्मोड़ा अखबार, 10 जून (आर० एन० पी० एन०, 14 जून 1899)

240. मराठा, 28 मई, 16 जुलाई 1899; नेटिव ओपीनियन, 18 मई, केसरी, 16 मई, गुजराती, 14 मई आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899), खानदेश वैभव, 19 मई, सुदर्शन, 20 मई, सुधारक, 22 मई (वही, 27 मई 1899), केसरी, 30 मई (वही, 3 जून 1899), हिंदुस्तानी, 31 मई (आर० एन० पी० एन०, 7 जून 1899)

241. केसरी, 23 मई (आर० एन० पी० बब, 27 मई, 1899); मराठ, 4 जून 1899 अहमदाबाद के 'जगदादर्श' ने अहमदाबाद के जन सम्मेलन की रपट देते हुए लिखा कि एक प्रतिष्ठित प्रमुख नागरिक ने ढोंड-मनमाड लाइन पर काम करने वाले सिगनलरो के दो मास तक जीवन निर्वाह का सारा भार उठाने का जिम्मा लिया है. (आर० एन० पी० बब, 27 मई 1899)

242. 'बबई समाचार', 24 मई, नेटिव ओपीनियन, 25 मई (आर० एन० पी० बब, 27 मई 1899)

243. ए० बी० पी०, 17 जून 1899

244. इदु प्रकाश, 27 जून (आर० एन० पी० बब, 29 जुलाई 1899)

245. और हिंदुस्तानी, 2 अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 9 अगस्त 1899).

246. आर० एन० पी० बब, 20 मई 1899, और हिंदुस्तानी, 7 जून (आर० एन० पी० एन० 14 जून 1899).

247. मुख्तार : पूर्वोद्धृत, पृ० 87; बुकानन : पूर्वोद्धृत, पृ० 422

248. वाचा . स्पीचेज, पृ० 435-7.

249. वही, पृ० 445

250. परतु उनका यह श्रमपक्षीय दृष्टिकोण स्पष्टत 19वी शताब्दी की समाप्ति पर ही बना क्योंकि 'हिंदू' के सपादक के उत्तरदायित्व को उन्होंने 1900 मे ही छोडा, उस समय तक तो उनका व्यवहार निरतर मालिको के पक्ष मे और कर्मचारियो के विरुद्ध था.

251. जी० एस० अय्यर, ई ए, पृ० 177-8 और 'अवर लेबर प्राब्लम' एच० आर०, अगस्त 1901 पृ० 116.

252. ई ए, पृ० 175 तथा पृ० 185 और 188 और 'अवर लेबर प्राब्लम' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 118.

253. अवर लेबर प्राब्लम, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 119 तथा ई ए, पृ० 178

254. अवर लेबर प्राब्लम, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 120.

255. ई ए, पृ० 175
256. वही, पृ० 228-9
257. वही, पृ० 227.
258. वही, पृ० 230
259 वही, पृ० 227.
260 वही, पृ० 218-9.
261 वही, पृ० 232
262 वही, पृ० 221.
263 वही, पृ० 219 इस सबध मे उन्होने यह भी निर्देश किया कि किसी विशिष्ट मामले मे कानून का किमी रूप मे उल्लघन हुआ है, इसके निणायक श्रमिक ही हो सकते हैं. (वही)
264 वही
265 वही, पृ० 208
266. 'दि इंडियन इकोनामिक प्राब्लम' लेख के प्रारभ मे ही उन्होने घोषणा की कि मैं अधिक प्रत्यक्ष देखता हू · महान श्रमिक वर्ग की प्रसन्नता और कल्याण को न कि भावी पूंजीपतिवर्ग के कल्याण को यह पूजीपतिवर्ग तो श्रमिको को दबाएगा मेरी दृष्टि मे तो किसानो और कारीगरो के हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए इनके मूल्य पर उपलब्ध किसी भी राष्ट्रीय अथवा अतर्राष्ट्रीय गौरव का मेरी दृष्टि मे कोई मूल्य नही (डान, खड III पृ० 233).
267 वही, पृ० 236
268 वही, पृष्ठ 229
269 वही, खड II पृष्ठ 179-80, और खड III पृष्ठ 229
270 वही, खड III पृष्ठ 263
271. वही, खड II पृष्ठ 182
272 वही, खड III पृष्ठ 231 और पृष्ठ 269. मुखर्जी ने यह भी निर्देश किया कि भारतीय श्रमिक का शोषण करने मे विदेशी और स्वदेशी पूंजीपति कोई भेदभाव नही बरतेंगे. यह दूसरी बात है कि विदेशी पूजीपति धन की निकासी की दृष्टि से भारतीय पूजीपति की अपेक्षा अधिक भयंकर और अवाछनीय है (वही, पृ० 233).
273. वही, पृष्ठ 269 यह उल्लेखनीय है कि सहानुभूति की मोटी खुराक देते हुए घृणा नही तो भर्त्सना को अभिव्यक्ति पर्याप्त और प्रचुर रूप मे की गई इस विचार को किसी भी रूप में बी० सी० पाल के आधुनिक औद्योगिक श्रमिकों का भविष्य प्रगतिशील मानने वाले विचार को भिन्न रूप मे देखा जा सकता है.
274 वही, पृष्ठ 229, 231, 269.
275. वही, पृष्ठ 232 मुखर्जी ने तो और आगे बढ़कर यहा तक कहा कि जहां तक पश्चिमी औद्योगिक पद्धति अपनाए जाने का प्रश्न है श्रमिक सघो के संगठन की चिंता एक प्रकार से श्रमिको के हित की चिता करने वालों का दायित्व है (वही, पृ० 229).
276. वही, खंड II पृ० 183.
277. वही, खंड III पृ० 226 तथा पृ० 230.
278. वही, पृ० 232.
279. वही, पृ० 264-5. उनके विचार में भारत विशेष रूप से इस प्रयोग के लिए सर्वथा उपयुक्त क्षेत्र

था क्योंकि यह देश में सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक दृष्टि से उच्च जीवन का महत्व देने वाला देश है न कि उच्च जीवन स्तर को (वही, पृष्ठ 291)

280. वही, पृष्ठ 264, 269

281 वही, पृष्ठ 266, 269

282. वही, पृष्ठ 265-6

अध्याय 9

कृषि का विकास : एक

> जमींदारों के हितों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ कांग्रेस का आंदोलन (सरकार को विवश करने की नीति लिए हुए), खेतिहरों पर ही, अधिकांशतया खर्च किए जाने वाले जमींदारों पर लगे करों की उनसे वसूली के परित्याग का पक्षधर है।
>
> जे० डी० रीस

> भारत की आत्मा रूप किसान के ऊपर मंडराने वाले जड़ता और उदासीनता के बादलों को हटाने पर ही देश का उद्धार किया जा सकता है। हमें अवश्यमेव उन बादलों को हटाना होगा और उसके लिए हमें अपने आपको किसान के साथ जोड़ना होगा और यह अनुभव करना होगा कि किसान हमारा है और हम किसान के हैं।
>
> बाल गंगाधर तिलक

कदाचित भूमि संबंधी समस्या 19वीं शताब्दी के समाप्ति काल में भारत के लिए सिरदर्द बनने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या थी। खेतीबाड़ी भारतीयों का प्रमुख आर्थिक आधार थी। लगभग 80 प्रतिशत लोग अपनी आजीविका के लिए इस पर निर्भर थे। 19वीं शताब्दी की अवधि मे ब्रिटिश सर्वोच्चता के प्राथमिक प्रभाव के अंतर्गत देश के निरंतर ग्रामीकरण ने, भारतीयों की कृषि पर परपरागत निर्भरता को, और अधिक बढ़ा दिया था। फलत आर० सी० दत्त के शब्दो मे स्थिति यह हो गई थी कि खेतीबाड़ी के फलने-फूलने का अर्थ था भारतीयों की खुशहाली और फसलों के बिगड़ जाने का अर्थ था देश मे अकाल की स्थिति।[1]

इसके अतिरिक्त भारतीय कृषि अत्यंत पिछड़ी हुई थी और यहा के खेतिहर बहुत गरीब थे। भारत में उस समय तक ज्ञात अकालों मे सर्वाधिक भयंकर 1876-8 के भयंकर अकाल तथा 1896-1901 तक देश को अपनी जकड़ मे रखने वाले भीषण अकालों ने यह तथ्य नाटकीय ढंग से उजागर कर दिया। खेतिहरों की निराशापूर्ण स्थिति का एक अन्य संकेत 19वी शताब्दी के उत्तरार्ध में पनपता असतोष था जिसकी अभिव्यक्ति बंगाल मे 1873 को पबना दंगों मे, 1875 में दक्षिण के खेतिहरो के दंगो मे, बंबई मे 1878-9 के फड़के के विद्रोह मे तथा 1894 में असम कृषि दंगों मे देखने को मिली। भयंकर

विनाशकारी अकालों तथा कृषक असंतोष ने सरकार तथा भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं का ध्यान भारतीय किसानो की समस्याओ और निर्धनता की ओर खीचा।

भारतीय नेताओं के कृषि संबधी विभिन्न पक्षों के प्रति दृष्टिकोण का, सरकार की कृषि सबधी नीतियो का तथा खेतिहरो की दरिद्रता के कारणों का विवेचन निम्नलिखित पाच शीर्षको के अतर्गत किया गया है 1 भूराजस्व अथवा कृषक और राज्य 2. कृषक और भूमिपति 3. कृषक और साहूकार 4 पूजीवादी खेतीवाडी 5 कृषि और उद्योग।

भूराजस्व अथवा कृषक और राज्य

अनेकानेक ऐतिहासिक तत्वो के परिणामस्वरूप 19वी शताब्दी के मध्य तक भारत मे भूमि की पट्टेदारी और भूराजस्व प्रणालियो का मिला जुला रूप विकसित हुआ। यहा सक्षेप मे भी इन दोनों पद्धतियो की समीक्षा करना सभव नही अतः हमे यहा केवल अपेक्षित सार-सक्षेपो से ही सतोष करना पडेगा। निस्सदेह इनसे स्थिति का पूर्ण ज्ञान तो नहीं हो सकता; हा, उचित अनुमान अवश्य हो जाएगा। बगाल मे और उत्तरी मद्रास मे जमीदारो ने स्थाई बंदोबस्त पद्धति के अंतर्गत धरती अपने कब्जे मे कर रखी थी। इस पद्धति के अनुसार वे सरकार को स्थाई तौर पर निर्धारित राजस्व का भुगतान करते थे। उत्तरी भारत मे जमींदारो अथवा ग्राम समुदायो ने धरती पर कब्जा कर रखा था और वे भूमि कर चुकाते थे। यह कर समय समय पर राजस्व के नए समझौतो के अनुसार बदला जाता था। बबई और मद्रास मे प्रचलित रैयतवाडी पद्धति के अंतर्गत धरती पर किसान मालिको का ही कब्जा था जो सीधे राज्य सरकार को कर चुकाते थे। प्रत्येक पृथक जोत पर पृथक पृथक तौर पर राजस्व कूता जाता था और प्रत्येक नए समझौते मे इसे नियमित रूप मे बदला जाता था।[2] ईस्ट इंडिया कपनी के शासनकाल मे समय और स्थान के अनुसार राजस्व की मात्रा निर्धारण का सिद्धात बदलता रहता था परन्तु 19वी शताब्दी के मध्य तक स्थाई बंदोबस्त मे न आए देश के सभी भागो मे न्यूनाधिक रूप से, कम से कम सिद्धात रूप मे ही, एकरूपता का आधार अपनाया गया। इसका सामान्य आधार अथवा नियम यह था कि जमीदारो और ग्राम समुदायो के कब्जो की जोतो पर वास्तविक अथवा अनुमानित प्रतियोगिक किराए का आधा भाग तथा रैयतवाडी मे आर्थिक किराए का, अथवा निवल (नेट) सपत्ति से प्राप्त अथवा निवल उत्पादन पूजी का आधा भाग[3] सरकार द्वारा भूराजस्व के रूप मे वसूल किया जाएगा।[4] व्यवहार मे इस सिद्धात पर कठोरता से अमल नही किया गया, चालू राजस्व का कूता जाना जारी रहने, धरती की उत्पादकता को तख-मीने, लोगो की सामान्य आर्थिक स्थिति और भूमि के क्रय मूल्य आदि अन्य तत्वो पर भी समुचित ध्यान दिया जाता रहा।[5] चालू करो मे वृद्धि का आधार विशुद्ध रूप से केवल उपज की ओर यह एक अनिश्चित ढग था। इस वृद्धि के पीछे अनेक अन्य विचारणीय विषय भी जुडे रहते थे।[6]

समीक्षाधीन अवधि मे भूराजस्व सरकारी आय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन था। 1881-2 में सरकार की कुल निवल राजस्व 46.86 करोड मे से भूराजस्व की वसूली 19 67 करोड़ थी। 1901-02 मे सरकार की कुल वसूली 60.79 करोड़ में भूराजस्व का

योगदान 23.99 करोड था।[7] जैसाकि ये अंक सूचित करते है, इन वर्षों में भूराजस्व की वसूली मे क्रमिक वृद्धि हो रही थी।[8] इसके लिए सरकारी विश्लेषण यह था कि यह वृद्धि 'मुख्य रूप मे कृषि भूमि के विस्तार तथा मूल्यो मे वृद्धि का परिणाम' थी।[9]

राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीय कृषि संबंधी समस्त समस्याओं मे कर निर्धारण पद्धति तथा भूराजस्व की मात्रा को सर्वाधिक महत्त्व दिया। उन्होंने भारत सरकार की भूराजस्व नीति को किसानों के दुर्भाग्य और दरिद्रता का तथा कृषि के पिछड़ेपन का मुख्य कारण घोषित किया। समीक्षाधीन अवधि के प्रारंभ में राष्ट्रवादियों द्वारा सरकारी नीति पर दोषारोपण की शुरुआत भारतीय कृषि समस्याओ पर 'जरनल आफ दि पूना सार्वजानक सभा' मे प्रकाशित जस्टिस रानाडे की लेखमाला से हुआ।[10] इस प्रकार 1879 मे 'एग्रेरियन प्राब्लम एंड इट्स सोल्यूशन' शीर्षक अपने लेख मे जस्टिस रानाडे ने एक कटु सत्य का उल्लेख किया : 'सर्वे एवं राजस्व विभाग की कार्यवाहियों ने देश को कंगाल बना दिया है'।[11] 1881 मे प्रकाशित अपने लेख 'लैंड ला रिफार्म एंड एग्रीकल्चरल बैंक्स' में उन्होंने अपना मत अभिव्यक्त किया कि जब तक वर्तमान कर निर्धारण पद्धति के अंतर्गत भूराजस्व के दबाव को कम नहीं किया जाता, तब तक कृषि में किसी भी प्रकार का सुधार संबंधी प्रयत्न कोई लाभप्रद परिणाम उत्पन्न नहीं कर सकता। उन्होंने आरोप लगाते हुए कहा कि हमारी भौतिक समृद्धि के विकास के मार्ग में भूमि पर एकाधिकार तथा अपनी ही मर्जी से भूमि के लगान में वृद्धि का अधिकार दोनो मुख्य बाधाएं हैं।[12]

सरकार की भूराजस्व नीति के विरुद्ध अन्य कई भारतीय नेताओं ने भी यथासमय विचार प्रकट किए। 1891 मे नागपुर में हुए अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस प्रसंग की चर्चा करते हुए निर्णयात्मक स्वर मे घोषणा की कि भूराजस्व प्रशासन की अविवेकपूर्ण पद्धति देश में दरिद्रता और भुखमरी की व्यापकता के कई कारणो में से एक था। इस सुधार के चलते देश की 90 प्रतिशत जनसंख्या की आजीविका का साधन कृषि का सुधार न केवल असंभव हो गया है प्रत्युत उस कृषि का क्रमिक ह्रास भी निश्चित हो गया है।[13] 1888 से 1902 तक की अवधि मे एक भी वर्ष ऐसा नहीं बीता जबकि भूराजस्व प्रशासन के किसी न किसी पक्ष पर कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित न किया हो। बीसवी शताब्दी के शुरू होते ही और देश के विनाशकारी अकालों के पंजे मे फंसते ही आर० सी० दत्त ने राष्ट्रवादियों की भूराजस्व संबंधी आलोचना को एक तीव्र आंदोलन का रूप दे दिया। अपनी लेखमाला और भाषणों के जो बाद मे 'ओपेन लेटर्स टु लार्ड कर्ज़न' नाम से छपे, तथा भूमि राजस्व की ही व्यापक विवेचना करने वाले, 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया', ग्रंथ के (दो खंडो में) प्रकाशन के माध्यम से दत्त ने बार बार भूराजस्व प्रणाली पर कृषि को पंगु बनाने का, भारतीयों को दरिद्र बनाने का तथा अकालों के परिमाण और प्रभाव को गहरा करने का अभियोग लगाया।[14] दत्त को अपने इस धर्मयुद्ध में जी० वी० जोशी से मूल्यवान समर्थन मिला। जोशी ने 1900-01 मे 'टाइम्स आफ इंडिया' में 'जे' नाम से प्रकाशित पत्रमाला मे बंबई के भूराजस्व प्रशासन पर चोट की।[15] गुजरात मे भूमिकर निर्धारण की प्रभावी निंदा करने वाले गोकुलदास के० पारीख ने भी दत्त को समर्थन दिया।[16] बहुत सारे अन्य लोक नेताओं तथा समाचारपत्रों ने भूराजस्व प्रशासन को ही कृषि के ह्रास का

तथा कृषकों की दरिद्रता का मूल कारण ठहराया।[17] इस संबंध में यहां यह उल्लेखनीय है कि यह आलोचना अधिकांशतया बंबई, मद्रास और केंद्रीय प्रांतों की भूमिकर निर्धारण पद्धति तक ही सीमित थी। स्थाई बंदोबस्तवाले बंगाल में यह पद्धति स्पष्टतया शिकायत का कारण नहीं बन सकती थी। प्रमुखतया 'सहारनपुर नियमों' के लागू होने के कारण उत्तर-पश्चिमी प्रांतों, अवध तथा पंजाब में कर की मात्रा कुछ मिलाकर संतोषप्रद समझी जाती थी।[18]

वस्तुतः भूराजस्व नीति उन विषयों में से एक थी जिस पर राष्ट्रीय नेताओं का सारा वर्ग और सारी की सारी विचारधारा सुदृढ़तापूर्वक सुगठित थी। भूराजस्व संबंधी सरकारी नीति की राष्ट्रवादियों द्वारा समीक्षा का व्यापक ज्ञान आर० सी० दत्त के लेखों से होता है। अतः हम इस अध्ययन में इसके कुछ पक्षों की परीक्षा करेंगे। इस संबंध में देश में व्यापक परिमाण में हुई समीक्षा के विवरण का न देकर, हम यहां केवल राष्ट्रवादियों द्वारा की गई समीक्षा की संक्षिप्त रूपरेखा ही प्रस्तुत करेंगे।

बुराइयां

भारतीय नेताओं के अनुसार भारतीय भूराजस्व पद्धति का प्रथम बड़ा भारी दोष यह था कि कर निर्धारण अत्यंत कठोरतापूर्वक ऊंची दर पर था और इस दोष का प्रत्येक बंदोबस्त में खेतिहर के भुगतान की उच्चतम सामर्थ्य सीमा तक निरंतर और जोर पर बढ़ाया जाता था। इस प्रकार यह राजस्व वास्तव में बहुत अधिक लगान के रूप में बदल जाता था तथा खेतिहर वर्ग को निर्धन बनाना प्रारंभ कर देता था।[19] बहुधा यह दावा था कि देश के बहुत भागों में भूराजस्व की वास्तविक मांग आधे निवल किराए अथवा किराया उपज की अपेक्षा बहुत ऊंची है। सरकार ने इस अपनी मांग की अंतिम सीमा के रूप में स्वीकार किया है और यह प्राय सकल (ग्राम) उपज का बीस प्रतिशत तक ले जाती है।[20] बंबई और मद्रास में कभी कभी कर निर्धारण की मात्रा इतनी ऊंची होती कि सारा का सारा आर्थिक किराया इसी में निपट जाता था।[21] इसके अतिरिक्त घटिया जमीनों केवल गुजारेवाली तथा अलाभप्रद जोतों के संबंध में सरकारी मांग खेतिहर का वेतन और उसकी पूंजी के लाभ को ही हड़प लेती थी। जस्टिस रानाडे ने 1879 में इस स्थिति का विश्लेषण इस प्रकार किया

> खराब भूमिवाले सभी खेतों में जुताई के दाम तथा किसान के वेतन इस सीमा तक पहुंच जाते हैं कि सारी फसल में उनकी पूर्ति ही मुश्किल से हो पाती है। उस ऐसी धरती से कोई लाभ नहीं मिलता है। वह अपने खेत में श्रम करने के बदले केवल रोटी कमा पाता है। अतः इस प्रकार के खेतों पर कोई आर्थिक किराया नहीं हो सकता। किसान बेचारा जो भी लगान चुकाता है, वह या तो ऋण लेकर चुकाता है अथवा किसी अन्य साधन से प्राप्त आय से चुकाता है। भूमि से प्राप्त आय से यह संभव ही नहीं।[22]

इस भारी लगान का कभी कभी परिणाम यह निकलता है कि उस खेत में स्थित निजी संपत्ति का राज्य द्वारा बलपूर्वक अधिग्रहण कर लिया जाता है और बेचारा किसान

वास्तव मे राज्य का खेत जोतने वाला दास बन कर रह जाता है।[23]

राष्ट्रवादी नेताओं ने अपने सभी लेखो और भाषणो मे आकड़ोंसहित प्रमाण उद्धृत किए। कई एक भारतीय नेताओ ने इस ओर भी निर्देश किया कि भुगतान न कर पाने वाले खेतिहरो पर लगान का भुगतान करने के लिए अनुचित और भारी दबाव डालना, धरती के लगान की उगाही के लिए बडी संख्या मे उनके जोतो का बिक जाना, जोतों को मजबूरी मे सस्ते दामों पर बेचना व रेहन रखना आदि मामले धरती के लगान की ऊंची दर के ही सूचक प्रमाण है।[24] इनके अतिरिक्त देश मे अकाल, भुखमरी और मौत की बढती संख्या भी इसी तथ्य की पुष्टि करती है।[25] राष्ट्रवादियो ने सारे देश मे धरती के निरंतर बढते दामो तथा किरायो मे निरंतर हो रही बढोतरी को लगान के निम्नस्तरीय होने का प्रमाण और परिणाम मानने मे सर्वथा इकार कर दिया। इसके विपरीत उनका तर्क यह था कि यह तो देश की बढती जनसख्या के उद्योगो मे खपत न पाने मे बेचारे खेतिहरो मे धरती को पाने के लिए बढती हुई प्रतियोगिता का तथा देश के बढते हुए ग्रामीकरण का ही दुष्प्रभाव था।[26] उन्होने यह भी निर्देश किया कि पूजीनिवेश के निकायों की कमी से भी इस वृद्धि को समझने मे सहायता ली जा सकती है।[27] वस्तुत बंदोबस्त अधिकारियों के विरुद्ध निजी सुधारो पर कर न लगाने की सरकारी प्रतिभूति खेतिहरों द्वारा किए गए सुधार को व्यवहार मे करमुक्त नही करती। यह प्राय या तो परोक्ष रूप से धरती के पुनर्वर्गीकरण के वेश मे किया जाता है अथवा सरकार द्वारा किए गए सुधारो से हुए सुधार कहकर किसानो को बहकाया जाता है अथवा निजी सुधारो के फलस्वरूप तथा अशत प्राकृतिक अथवा अन्य कारणो से हुई आय को 'अनुपार्जित आय' घोषित करके किया जाता है।[28]

राष्ट्रवादी नेताओ के अनुसार धरती की लगान पद्धति का एक दूसरा महत्वपूर्ण दोष यह था कि सामयिक सशोधनो के फलस्वरूप सरकार की धरती मे माग अनिश्चित और अपने प्रभाव मे उतार-चढाववाली थी। इसके साथ ही बढोतरी के कोई निश्चित अथवा विशिष्ट नियम नही थे। यह लगान अज्ञात, अस्पष्ट, अनिश्चित, भ्रामक और अवास्तविक, अस्थिर और अपर्याप्त आधारो पर बढाया जा सकता था और बढाया जाता था। किसान बेचारा इन आधारो को न तो समझता था और न ही समझ सकता था। राजस्व अधिकारियों को दोबारा बदोवस्त के समय अपनी स्वेच्छाचारी शक्ति का सोत्साह दुरुपयोग करने का अवसर मिल जाता था। मजेदार बात यह थी कि उन अधिकारियों पर किसी प्रकार का न्यायिक अथवा विभागीय प्रतिबध नही था।[29]

तृतीय, भारतीय नेताओं ने भूराजस्व पद्धति की कठोरता की भी निदा की। उन्होने घोषित किया कि धरती का लगान सख्ती के साथ, दृढतापूर्वक तथा कसकर वसूला जाता था। इसके उगाहने का ढग और समय असुविधाजनक, दुखदायक तथा भारतीय कृषि की परिस्थितियो के प्रतिकूल था।[30] उनका कथन था कि सरकार फसलो के बिगड जाने और अकालो की ओर कोई ध्यान ही नही देती। इस प्रकार के प्राकृतिक संकट के काल में जबबेचारा किसान आर्थिक दृष्टि से भारी कष्ट झेल रहा होता है, उस समय भी उसे अपने हिस्से का सरकारी लगान चुकाने को कहा जाता है।[31]

कुछ भारतीयों ने विभिन्न प्रदेशों और वर्गों मे भूमि लगान के भार की स्थिति के

प्रश्न पर भी विचार किया और अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि विभिन्न प्रांतों में इस बोझ का रूप भिन्न भिन्न था। बंगाल का योगदान अपने हिस्से की तुलना में बहुत कम था।[32] इसके अतिरिक्त समाज के अन्य वर्गों की अपेक्षा किसान को काफी अधिक भार उठाना पड़ता था।[33] कई नेताओं ने तो स्पष्ट अनुभव किया कि ब्रिटिश भारत मे प्रचलित भूमि लगान पद्धति में जो भी दोष वर्तमान हैं, उनका कारण भारत सरकार द्वारा रिकार्डियन सिद्धांत में विश्वास और उसका अनुसरण करने मे है और इसके साथ यह धारणा काम कर रही थी कि भारत में राज्य ही वास्तविक रूप से भूमिपति अथवा भू-स्वामी था। फलतः सरकारी भूराजस्व नीति के पीछे विद्यमान मान्यता पर प्रहार का अभियान चलाया। इस प्रहार का विवेचन 'इंडियन पोलिटिकल इकोनमी' अध्याय मे आगे किया गया है। भारतीय नेताओं के अनुसार भूराजस्व पद्धति के कृषि पर पड़ने वाले घातक और क्षतिकारक प्रभाव निम्नलिखित थे :

प्रथम, ऊंचे परिमाण मे भूमि लगान किसान की संभावित बचत का एक बहुत बड़ा भाग हड़प कर ग्रामों को धनशून्य बना देता है, भूमि को धन निवेश से वंचित कर देता है और सामान्य रूप से कृषि संबंधी सुधारों पर होने वाला खर्च रोक देता है।[34] द्वितीय, भारी लगान देहातों में साधनहीनता बढ़ाकर अकालों की व्यापकता और विस्तार बढ़ा देते है। किसान अच्छे वर्षों में बुरी फसलवाले वर्षों के लिए कुछ नहीं बचा पाता फलतः वह आसानी से अकाल और मृत्यु का शिकार बन जाता है। यह उसकी बचत शक्ति का अभाव ही था जो सूखे को अकाल का रूप दे देती थी।[35] आजीविका वाली जोतों पर तो भारी और ऊंचे लगान सामान्य वर्षों में भी भुखमरी की स्थिति ला देते है।[36] तृतीय, लगानों में निरंतर संशोधन, अल्पकालीन बंदोबस्त, लगान वृद्धि के अनिश्चित आधार, प्रत्येक व्यक्ति के भूभाग का नया मूल्यांकन और उसके फलस्वरूप जोतने वाले के सुधारों पर नए लगान लगाना आदि, ये सब किरायों का आधार अनिश्चित बना देते हैं। अनिश्चित किरायों के साथ जुड़े ऊंचे लगान, किसान के सारे बचत के लक्ष्य को, तथा उसकी धरती के स्थाई सुधार की तथा कृषि संबंधी उत्पादन में वृद्धि की प्रवृत्ति को ही नष्ट कर देते है। किरायों की असुरक्षितता तथा लगानों में ऊंची बढ़ोतरी किसान को असमंजस में डाल देते हैं कि वह कठोर श्रम करे कि आराम का जीवन बिताए, क्योंकि उसे तो यह भी विश्वास नहीं होता कि वह अपने कठोर श्रम का फल भी पाएगा कि नहीं। भूराजस्व पद्धति के साथ जुड़ी हुई यही असुविधाजनक स्थिति थी जिसने भारतीय किसान को आलसी, फिजूलखर्च बना दिया था। देहातों में उद्यम और उत्साह की भावना के अभाव के लिए यही उत्तरदायी है। इसका परिणाम यह निकला है कि कृषि में गतिहीनता तथा ह्रास आ गया है और भारतीय ग्रामों में निर्धनता का साम्राज्य स्थापित हो गया है।[37] भारतीय नेताओं ने इस धारणा का बड़ी तीव्रता तथा उग्रता के साथ खंडन किया कि भारतीय किसान का शक्तिहीन, अकर्मण्य तथा अदूरदर्शी स्वभाव और चरित्र ही उसकी आर्थिक कठिनाइयों के लिए उत्तरदायी था, उसकी ये तथाकथित चरित्रगत विशेषताएं तो काफी हद तक वस्तुतः भूराजस्व पद्धति का ही परिणाम थीं अन्यथा भारतीय कृषक तो स्वभाव से ही मितव्यी, परिश्रमी तथा दूरदर्शी है।[38] चतुर्थ, भूराजस्व का ऊंचा

परिमाण और उसके साथ जुडी अनिश्चितता भूमि पर निजी पूजी के निवेश को बाधित ही नही प्रत्युत असभव बना देती है और इस प्रकार भूमि सुधारों को और पूजीनिष्ठ कृषि के विकास को नकार देती है।[39] पचम, सरकारी लगानों मे वृद्धि बडे बडे जमीदारो और बडी बडी जोतो के मालिको को किराया बढाने का बहाना जुटा देती है और वे वास्तविक से भी बहुत अधिक किराया बढा देते है जिसके फलस्वरूप वास्तविक जमीन जोतने वालो पर भारी बोझ पडता है।[40] आर० सी० दत्त ने बताया कि जहा जोतो पर लगान किराए के एक भाग के रूप मे होता था, वहा लगान कर्मचारी उन जमीदारो पर, जो सामान्यतया किराया बढाने के प्रति उदार हो सकते थे, किराया बढाने के लिए जोर देते थे ताकि सरकार अधिक लगान लगा सके।[41] छठे कृषि उत्पादन मे ऊचे परिमाण म किसी प्रकार की बढोतरी न होने पर, लगान की ऊची दर और उसके साथ सबद्ध भूमि लगान पद्धति की कठोरता तथा उग्रता धरती को बचाने के लिए इच्छुक और लगान की माग की पूर्ति मे असमर्थ बेचारे परेशान किसान को निर्दयतापूर्वक साहूकार के क्रूर पजो मे डाल देती है जहा एक बार फसा वह गरीब कभी मुक्त नही हो पाता।[42] भूमि के लगानो के सग्रह की कठोरता और असुविधा से भी किसान को अपनी उपज बेचने के लिए विवश होना पडता था और बाजार मे एकदम उपज का तूफान सा आ जाता था, जिससे हितो के विरुद्ध मूल्यो म नकली गिरावट आ जाती थी जो उन बेचारे किसानो के लिए हानिकर थी।[43]

कुछ भारतीय नेताओ ने भूमि लगान की समस्या को धन की निकासी के साथ भी जोडा और कहा कि ऊचे लगान के दोष उस स्थिति म और भी तीव्र हो जाते है जब इस लगान की राशि का भूमि को उपजाऊ बनाने मे उपयोग न करके उसके बहुत बडे भाग को देश स बाहर निकासी की जाती है।[44]

उपचार

राष्ट्रवादियो द्वारा की गई भूराजस्व प्रशासन की आलोचना के उपर्युक्त सक्षिप्त विश्लेषण स यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नेताओ का विश्वास था कि कृषि सबधी सभी समस्याओ और दोषो की आधारभूत भूराजस्व पद्धति मे उपयुक्त सुधार किए बिना किसी भी समस्या का समाधान असभव है। उनके इस दृष्टिकोण को जस्टिस रानाडे के शब्दो मे निम्नलिखित रूप स सक्षिप्त रूप म रखा जा सकता है

> उनकी (खेतिहरो की) एक ही माग है कि उन्हे, सामाजिक स्तर पर अपने को बेहतर बनाने के निरर्थक सघर्ष मे उनकी शक्तियो को नष्ट करने वाले उनकी योग्यताओ को अपगु करने वाले अत्यत कष्टदायक तथा असह्य भार रूप, लगान के बदोबस्तो से मुक्त किया जाए। इस भारी दबाव को थोडा हलका कीजिए, गतिविधि तथा लचीली शक्ति को भीतर से ही उमडने दीजिए, उनकी स्वत ही भौतिक सपन्नता की ओर गति होगी और इससे उनके सारे पुराने घाव भर जाएगे ..।[45]

परन्तु अब प्रश्न यह था कि इस भारी भार को हलका बनाया किस प्रकार जाए ? राष्ट्र-वादियो का उत्तर यह था कि भारतीय भूराजस्व पद्धति के अनिवार्य दोषपूर्ण तत्व ये थे कि एक ओर काश्तकारी असुरक्षित थी, दूसरी ओर लगान की खाई बडी गहरी थी और

तीसरी ओर लगान वृद्धि अनिश्चित आधार लिए हुए थी। उपचार में केंद्रीय उपाय ये हो सकते थे कि काश्तकारी को सुरक्षित बनाया जाए ताकि भूमि जोतने वाले अपने को स्वतन्त्र मालिक समझें ही नही, प्रत्युत यथार्थ मे वास्तविक और स्वतंत्र रूप से मालिक बन भी जाएं। जैसा कि जस्टिस रानाडे ने बार बार बल दिया, भारत मे तो संपत्ति के जादू की ही आवश्यकता थी।[16] 1890 मे इस विषय पर लिखते हुए जी० बी० जोशी ने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट शब्दों मे अभिव्यक्ति दी :

> स्वत्वाधिकार एक ऐसी प्रभावी और मानव को गतिशील बनाने वाली शक्ति है जिससे विश्व भर मे सुधारो को स्वत प्रेरणा और गति मिलती है। तथाकथित आत्मसियो, परोपकारियो और ससार को मिथ्या मानने वाले वेदान्तियो के इस देश मे भी स्वत्वाधिकार का प्रभाव स्वत: मान्य है। वस्तुत: मानव प्रकृति का और मानव श्रम का नियम भारत, फ्रांस अथवा नार्वे कही भी, बदला नही जा सकता। किसी भी व्यक्ति को आप एक काली चट्टान का ही सुरक्षित स्वामित्व दे दीजिए, वह उस पथरीली धरती को लहलहाते बाग में बदल देगा, किसान की वर्तमान उपेक्षावृत्ति को बदलने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई समर्थ साधन हमे दिखाई नही देता कि उसकी रुचि उत्पन्न करने के लिए उसकी जोत का उसे सुरक्षित अधिकार दिया जाए तथा उसे अपने श्रम का फल पाने का पूरा आश्वासन दिया जाए।[17]

भारतीय नेताओ द्वारा सुझाए गए उपचारमूलक साधनो को आर० सी० दत्त ने 1900 मे लार्ड कर्जन को लिखे अपने पांचवें और अंतिम ओपेन लेटर टु कर्जन मे बडी सफाई के साथ संक्षिप्त रूप दिया।[18] उन्होंने लार्ड कर्जन के भूमि प्रस्ताव के द्वितीय प्रत्युत्तर 'सेकड रिप्लाइ टु लार्ड कर्जन्स लैंड रिजाल्यूशन' में इसे तत्व रूप मे इस प्रकार से प्रस्तुत किया : एक कृषिप्रधान देश की सपन्नता और प्रसन्नता व्यापक रूप मे भूमि लगान पर कुछ स्पष्ट, निश्चित, समझ आने वाली तथा व्यावहारिक सीमा लगाने पर ही निर्भर करती है···।[19] सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधनो का विवेचन निम्नलिखित रूप मे है

भूमि लगान का भार इस स्तर तक कम किया जाना चाहिए जिससे किसान के पास आजीविका के लिए समुचित बचत रह जाए, खराब मौसमो के लिए व्यवस्था सभव हो सके, तथा पूंजी के निवेश द्वारा भूमिसुधार किया जा सके। दोबारा बदोबस्त करते समय भी लगान वृद्धि पर इस प्रकार से एक सीमा निर्धारित करनी चाहिए जिससे किसान इस विश्वास के साथ स्वेच्छापूर्वक सुधार कर सके कि उसे उसके श्रम और त्याग का फल अवश्य मिलेगा।[50] कुछ भारतीय नेताओं का यह भी कथन था कि भारत की अपनी स्थितियों में भूमि लगान के निर्धारण का उचित मानक आधार यह होगा कि निवल उपज का, अथवा किराए से आय का, अथवा आर्थिक किराए का आधा भाग उगाहना होगा। इसमे शर्त यह होगी कि इसका हिसाब सही सही और ईमानदारी से किया जाए। इस आधार पर लगाया गया लगान होगा तो कष्टदायक और असुविधाजनक ही परतु भारतीय स्थिति मे इसे उचित माना जा सकता है।[51] भारत सरकार की भूमि लगान नीति के विरुद्ध युद्ध की तीव्रता में आर० सी० दत्त ने कुल उत्पादन के 1/5 भाग के अधिकतम तक लगान सीमा निर्धारित करने का अतिरिक्त माग प्रस्तुत की।[52] मजेदार बात यह

है कि जस्टिस रानाडे ने 1879 में दक्षिणी प्रदेशों के लिए लगान की अधिकतम सीमा कुल उपज का 1/6 भाग निर्धारित करने की सिफारिश की थी।[53] इस संदर्भ मे जी० वी० जोशी का क्रांतिकारी सुझाव यह था कि अलाभप्रद जोतों पर लगान लगाना ही नही चाहिए क्योंकि उनमें किसी प्रकार की अतिरिक्त उपज नही होती जिससे किराए अथवा लगान का भुगतान किया जा सके। ऐसे मामलो मे सरकारी माग किसान की अपने ही लिए सर्वथा अपर्याप्त उपज से कटौती का रूप ले लेती है। इस प्रकार सरकार गरीब किसान की पहले से ही निम्नस्तरीय तथा स्वल्प खाद्यपूर्ति का एक बडा अश हडप लेती है।[54]

द्वितीय, देश के अस्थाई बंदोबस्तवाले भागो मे सरकार लगानो के स्थाई बंदोबस्त की व्यवस्था करे। कृषि के संदर्भ मे यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा व्यापक रूप मे समर्थित राष्ट्रीय मागों मे एक थी और इसका विवेचन आगे एक पृथक भाग मे किया गया है। राष्ट्रवादियों का सुझाव था कि जब तक इन क्षेत्रों मे स्थाई बंदोबस्त नही हो जाता, तब तक सरकार दोबारा होने वाले बंदोबस्त के समय मनमानी बढ़ोतरी से किसान को सरक्षण दे। सरकार यह काम इस प्रकार कर सकती है कि वह लगान वृद्धि के लिए स्पष्ट तथा सुनिश्चित आधारों, सीमाओं और व्यवस्थाओ का निर्देश इस रूप मे कर दे कि जिसमे एक ओर किसान इन सबको भली प्रकार जान और समझ ले तथा दूसरी ओर बंदोबस्त अधिकारी अपनी मरजी से उनका उल्लंघन अथवा उनमे परिवर्तन न कर सकें,[55] किसानो द्वारा किए गए सुधारो पर लगान न लगाने के सिद्धात का सावधानी से पालन कराए,[56] बंदोबस्त शब्द को व्यापक रूप दे[57] तथा दीवानी और अन्यान्य न्यायालयों मे लगान वृद्धि को न्याय का विषय बनाए जा सकने की व्यवस्था करे।[58]

तृतीय, राजस्व पद्धति को और अधिक लचीला बनाना चाहिए और उगाही के ढंग को सुधारा और अधिक आसान बनाया जाना चाहिए।[59] यह कार्य लगान को विभिन्न किस्तो मे बाटने की और उन किस्तो को सुविधानुसार तिथियो पर चुकाने की व्यवस्था करके किया जा सकता है।[60] इसके अतिरिक्त कमी और अकाल के वर्षो मे प्रशासनिक कार्य के रूप मे मात्र स्थगन नही प्रत्युत सिद्धान्त रूप मे रिआयत, व्यापक और उदार छूटें देकर भी लगान पद्धति सुधारी जा सकती है ताकि विपन्न किसान अकाल के बाद के वर्षों में फिर अपने आपको सभाल सकें।[61] इस संदर्भ मे सामान्य भारतीय नेताओ का लगान का किस्तों में भुगतान के सिद्धात को अथवा अन्य किसी इस प्रकार के सशोधित ढंग को पर्याप्त समर्थन मिला।[62] परतु उन्होंने इस सुझाव को मानने के लिए सरकार पर दबाव नहीं डाला क्योंकि उन्हें यह मालूम था कि वर्तमान व्यवहार से यह एक क्रांतिकारी प्रत्या-वर्तन था अत. सरकार द्वारा इसे स्वीकार करना संभव नही था।[63]

राष्ट्रवादियों की भूराजस्व पद्धति से संबंधित नीति का एक रोचक पक्ष यह था कि उन्होंने राजस्व प्रशासन संबंधी मांगों के लिए संघर्ष करने के लिए किसानो को सगठित करने का कोई वास्तविक प्रयत्न नहीं किया। इस सुस्ती अथवा उपेक्षा का कदाचित एक-मात्र उल्लेखनीय अपवाद 1896 में लोकमान्य तिलक द्वारा अकाल पीडित महाराष्ट्र में यथार्थ रूप में कर न देने के आंदोलन को चलाने का प्रयास था। 1896 के अकाल की अवधि में सरकार द्वारा कर वसूली में स्थगन अथवा रिआयत देने से इनकार किए जाने

पर उत्तेजित तिलक ने चालू 'अकाल सहायता कोड' के अंतर्गत अपने अधिकार मांगने के लिए लोगों को सुशिक्षित और संगठित करने का बीड़ा उठाया। 'केसरी' पुस्तिकाओं, जनसभाओं, प्रचार दौरों तथा अभी अभी अपने नियंत्रण में आई 'पूना सार्वजनिक सभा' के अभिकरणों के माध्यम से तिलक दक्षिण के किसानों को यह समझाने में जुट गए कि अकाल की अवधि में उनके बचाव और सहायता के लिए कानूनी व्यवस्था थी, सरकार उनके जीवन की रक्षा के लिए नैतिक रूप में बाध्य थी। सरकारी अधिकारी अकाल संहिता के अंतर्गत उनकी सहायता के लिए कर्तव्यबद्ध थे। उस संहिता का पालन करने के लिए किसान भाई सरकारी अधिकारियों पर दृढ़तापूर्वक और उच्च स्वर से दबाव डालें, करों के भुगतान करने की स्थिति में न होने पर भुगतान करने से इनकार करने पर किसान भाई न केवल कानूनी दृष्टि से बिल्कुल न्याय पर होंगे प्रत्युत वस्तुतः वे कानून पालन कराने में सहायक भी सिद्ध होंगे।[64] यह लगान-मनाही आंदोलन के एक प्रारंभिक रूप से अलग कुछ न था।[65] तिलक के सरकार विरोधी न होने के दृढ़ कथनों के बावजूद सरकार ने स्थिति को भली प्रकार समझ लिया था और उसने पूना सार्वजनिक सभा के अभिकर्ताओं के विरुद्ध कठोर कार्यवाही की, सभा के विरुद्ध और अंत में स्वयं लोकमान्य के विरुद्ध कठोर पग उठाया।[66] तिलक पर 1897 में राजद्रोह का अभियोग लगाकर उन्हें गिरफ्तार किए जाने और उन्हें 18 महीने कारावास का दंड दिए जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 1896 की शीत ऋतु में दक्षिण के किसानों में उसके आंदोलन की क्रांतिकारी शक्तियों को दूरदर्शी ब्रिटिश अधिकारी न केवल भाप गए थे प्रत्युत उसके प्रति सावधान भी हो गए थे। इसके साथ ही स्वयं तिलक ने भी अपने इस कार्य के गहरे राजनीतिक परिणाम निकाले तथा उससे उपयुक्त सबक लिया। जब अन्य राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने उनके नेतृत्व का अनुसरण न किया और 1896 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी अकालपीड़ितों की सहायता के लिए प्रभावी पग उठाने में पिछड़ गई तो लोकमान्य ने कांग्रेस की उसके निकम्मेपन के लिए भर्त्सना की तथा केसरी के 12 जनवरी 1897 के अंक में लिखा :

> पिछले बारह वर्षों से हम गला फाड़फाड़कर इस इच्छा से चिल्लाते आ रहे हैं कि सरकार हमारी बात सुने परंतु अब तक सरकार के कान पर जूं तक नहीं रेंगी और हमारी आवाज नक्कारखाने में तूती की आवाज बनकर रह गई है। हमारे शासक हमारे वक्तव्यों पर विश्वास नहीं करते अथवा विश्वास न करने का दावा करते हैं। आइए, अब हम सुदृढ़ सांविधानिक उपायों से सरकार को अपनी शिकायतें सुनने के लिए विवश कर दें। हम अशिक्षित ग्रामीणों को यथासंभव सर्वोत्तम राजनीतिक शिक्षा दें। उनके साथ समता के स्तर पर व्यवहार करें। उन्हें उनके अधिकार बताएं तथा उन्हें सिखाएं कि सांविधानिक तरीकों से वे अधिकार कैसे पाए जाते हैं। तभी, केवल तभी सरकार इस बात को समझेगी कि कांग्रेस के तिरस्कार का अर्थ भारत राष्ट्र का तिरस्कार है। तभी कांग्रेसी नेताओं के प्रयास सफल होंगे। इस महान अनुष्ठान के लिए योग्य और दृढ़ निश्चयवाले व्यक्तियों के एक विशाल दल की अपेक्षा है, जिनके लिए राजनीति अवकाश और मनोरंजन का साधन न होकर

कठोरतम नियमितता और पूर्णतम योग्यता के साथ निभाया जाने वाला प्रतिदिन का कर्तव्य हो।[67]

भारत जैसे देश मे खेतिहरो की ऐतिहासिक, राजनीतिक भूमिका के प्रति भी उन्होने अपनी जागरूकता का परिचय दिया। उन्होंने घोषणा की :

भारत की आत्मा रूप किसान पर मडराते सुस्ती और बेपरवाही के बादलो को हटाए बिना देश की स्वतत्रता प्राप्त नही की जा सकती। हमे इन बादलों को अवश्यमेव हटाना होगा और उसके लिए किसानों के साथ अपने को पूर्णरूप मे जोडना होगा। हम यह समझ लेना होगा कि किसान हमारा है और हम किसान के है।[68]

भूराजस्व का स्थाई बंदोबस्त

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा भूराजस्व कम करने की माग तथा राजस्व मे वृद्धि और उसकी वसूली के सिद्धातो मे सुधार की वकालत मूल उपाय न होकर शामक औषधि ही थे। उनके विचार मे जिस अश तक राजस्व समस्या और किसान की साधनहीनता और दरिद्रता का जन्म राजस्व प्रशासन के फलस्वरूप होता है, उस अश तक उनका वास्तविक और व्यापक समाधान भूमि पर सरकारी माग के स्थाई बदोबस्त मे ही निहित था। जब किसान को यह भरोसा हो जाए कि वह बदोबस्त कर्मचारी के चंगुल से सदा के लिए मुक्त है तभी वह धरती को अपनी और सुरक्षित मानेगा और तभी सपत्ति का जादू देश मे अपना चमत्कार दिखाएगा। तभी किसान मे धरती के लिए पूजी बचाने और धरती मे विनियोजित करने की, धरती को सुधारने की तथा अधुनातन वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग का उत्साह और प्रवृत्ति पनपेगी।

समीक्षाधीन अवधि के प्रारंभ मे भूराजस्व के स्थाई बंदोबस्त के मामले पर जस्टिस रानाडे ने कृषि समस्या पर लिखे अपने लगभग सभी निबंधों मे बडे विश्वासपूर्वक बहस की।[69] 1889 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने सरकार से यह अनुरोध करने का प्रस्ताव पारित करते हुए इस माग को अपनी माग बना लिया :

कि विचाराधीन स्थाई बदोबस्त के विषय को एक बार फिर हाथ में लिया जाए और उस पर इस रूप मे व्यावहारिक कार्यवाही की जाए कि देश के सभी बसे हुए और भली प्रकार जोते गए भूभागो पर किसी भी मूल्य पर बिना और अधिक विलंब किए सरकारी भूमि लगान को स्थायित्व और निश्चितता दी जाए।[70]

उल्लेखनीय यह है कि काग्रेस का इसके उपरात वास्तव मे शायद ही कोई अधिवेशन हुआ हो जिसम इस माग को दोहराया न गया हो।[71] लगभग सभी अन्य प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं[72] जिनमे आर० सी० दत्त भी सम्मिलित थे।[73] तथा प्रमुख राष्ट्रवादी समाचार-पत्रों ने इस माग के लिए आदोलन किया।[74]

यह राष्ट्रवादी माग काफी अस्पष्ट रही है क्योंकि भारतीय इतिहास और भारतीय अर्थशास्त्र के बहुत सारे विद्वानों तथा भारतीय नेतृत्व के विभिन्न आलोचकों ने इस माग को बंगाल के 1793 के स्थाई बंदोबस्त के समकक्ष माना और यह धारणा प्रकट की कि इस माग के माध्यम से तत्कालीन भारतीय नेता रैयतबाड़ी क्षेत्रों में बंगाल की जमीदारी

प्रथा लाना चाहते थे। इस मान्यता को अंगीकार करते हुए उनमें से कितनों ने व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से भारतीय नेताओं पर विशेषाधिकार संपन्न जमींदारों के प्रवक्ता होने तथा अधिकारहीन और कुचले हुए कृषकों के हितों की उपेक्षा ही नहीं प्रत्युत उनका विरोध करने का आरोप लगाया। राजस्व के स्थाई बंदोबस्त की निरंतर वकालत करने के कारण आर० सी० दत्त को तो जमींदारों का पिट्ठू होने की उपाधि दी गई। वस्तुतः आर० सी० दत्त तथा अन्य नेताओं पर राजस्व के स्थाई बंदोबस्त के संबंध में लगाए गए आरोप सर्वथा निराधार थे। विषय के इस पक्ष का विस्तृत विवेचन अनुचित न होगा।

निस्संदेह, इस भ्रम की जड़ें बहुत पुरानी थीं, यहां तक कि उस युग के भारतीय नेताओं के मन में भी यह भ्रांति व्याप्त थी, परंतु परवर्ती लेखकों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला तत्व भारत सरकार की भूमि लगान नीति के संबंध में 1902 में भारत सरकार द्वारा पारित प्रस्ताव है। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि कर्जन ने प्रस्ताव का प्रारूप तैयार करते समय जानबूझकर ऐसी विधि अपनाई जिससे वह सरकारी भूराजस्व नीति के समीक्षकों के विरुद्ध भारतीयों के मन में भ्रम का बीज बोकर बहस में विजय प्राप्त कर सके। कुछ भी हो उसने पहले उस प्रसिद्ध प्रस्ताव में राजस्व के स्थाई बंदोबस्त को बंगाल के 1793 के स्थाई बंदोबस्त के साथ जोडा और उसके पश्चात पराङ्-मुख होकर कहा कि भारत सरकार के वर्तमान विरोधियों, पूर्ववर्ती विचार परंपरा के प्रतिनिधियों ने इससे पहले ही सारे भारतवर्ष में स्थाई बंदोबस्त की वकालत की है।[75] उसने आगे चलकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि स्थाई बंदोबस्त बंगाल को अकाल से नहीं बचा सका है। यह विश्वास करने का भी कोई आधार नहीं कि बंगाल का किसान भारत के अन्यान्य प्रांतों के किसान की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। स्थाई बंदोबस्त होने के कारण जमीदार का किराएदार बना हुआ बंगाल का किसान वास्तव मे सुखी नही है अपितु विपरीत स्थिति यह है कि वह किराए में दबा पडा है, कंगाल है और दलित पीड़ित है। जमींदारी प्रथा के अभाव से उत्पन्न सहानुभूतिशून्य अभिकर्ताओं द्वारा प्रदेश का प्रबंध संचालन, जमींदार और किराएदार के बीच विकृत संबंध और बिचौलियो का बहुमुखी हस्तक्षेप आदि बुराइयां बढ़ती जा रही हैं। अंतिम सत्य यह है कि यदि इन सबके बावजूद बंगाल का किसान सुरक्षित और संपन्न है तो इसका कारण स्थाई बंदोबस्त न होकर सरकार द्वारा उसकी रक्षा के लिए पारित काश्तकारी कानून हैं।[76] इस प्रकार कर्जन ने डंके की चोट पर कहा कि किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार किसी भी सभ्य देश के लोक आदर्श के रूप में सहायक होने के अनुभव से शून्य कृषि 'किराया पद्धति के प्रस्ताव का जानबूझकर समर्थन नहीं कर सकती···।[77] बस, यही कथन का आधार बन गया। कर्जन ने जानबूझकर अथवा अनजाने सरकार विरोधियों की स्थाई बंदोबस्त की मांग को बंगाल में प्रचलित कृषि किराया पद्धति के साथ जोड़ दिया। उसने आलोचकों पर परोक्ष रूप से और बड़ी ही सफाई तथा चतुरता से जमींदार समर्थक होने का बिल्ला लगाने की भी चेष्टा की। उसने जमींदारों के विरुद्ध काश्तकार की स्थिति को सुधारने और सुरक्षित करने के सरकारी प्रयत्नों में सहयोग न देने के लिए उन नेताओं पर ताने कसे और उन्हें आड़े हाथों लिया।[78]

इस संबंध में कर्जन द्वारा प्रदर्शित मार्ग का परवर्ती अनेक लेखकों ने अनुसरण किया और समय बीतने के साथ भ्रमजाल और कसता गया। इसी क्रम में जे० डी० रीस ने 1908 में लिखा कि जमीदारों के हितों के साथ घनिष्ठता से जुड़ा कांग्रेस का आंदोलन सरकार को उन करों की वसूली बंद करने के लिए विवश करने पर तुला हुआ है जो सरकार बड़े बड़े जमींदारों से उगाहती है और बड़े पैमाने पर छोटे छोटे किसानों पर खर्च करती है।[79] भारत में कर्जन के प्रशासन के भाग जीवनीकार लोवेट फ्रेजर ने 1911 में अपने लेख मे आर० सी० दत्त पर अभियोग लगाते हुए लिखा कि 'वह प्रमुख रूप से समृद्ध वर्ग के हितों की ही देखभाल कर रहे है।' फ्रेजर ने राष्ट्रवादियो की गतिविधियों पर साफ तौर पर लिखा 'अखिल भारतीय राजनीतिक आदोलन का एक विचित्र पहलू यह है कि अत्यत दरिद्र वर्ग का सरकार के सिवाय अन्य कोई प्रवक्ता और सरक्षक ही नही है।[80] 1921 मे प्रकाशित के० टी० शाह के 'सिक्स्टी इयर्स आफ इंडियन फाइनास' के निम्नलिखित अवतरण स फ्रेजर की राष्ट्रवादियो की स्थिति के प्रति गलत धारणा के अत्यत भ्रष्ट रूप को देखा जा सकता है .

> यदि स्वर्गीय श्री आर० सी० दत्त के लेखो को इस सबंध मे गत शताब्दी के लोकमत का सूचक स्वीकार कर लिया जाए तो यह मानना पडेगा कि बंगाल के स्थाई बदाबस्त को दूसरे प्रातो मे लागू करने को भारतीय लोकनेताओ की व्यापक स्वीकृति प्राप्त थी और इसका उद्देश्य अगरेजी ढंग के जमीदारो के हाथ मे पूरे तौर पर जमीन का आधिपत्य सौपना था।[81]

अतीत म राष्ट्रवादियो के दृष्टिकोण के सबध मे तीन अन्य प्रमुख भारतीय अर्थशास्त्रियों, पी० जे० थामस, पी० एस० लोकनाथन तथा बी० आर० मिश्र ने भी गलतफहमी पैदा की।[82] भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के दो भारतीय इतिहासकारों, पनसी छाया घोष तथा बी० बी० मिश्र ने काफी हाल मे और सभवत: उसके लिए उनके पास कोई कारण न था इसी गलती को दुहराया है। डाक्टरेट की उपाधि के लिए लिखे अपने शोध प्रबंध, 'दि डेवलपमेंट आफ इडियन नेशनल कांग्रेस, 1892-1909', मे श्रीमती घोष ने कांग्रेस की स्थाई बदाबस्त की माग को बगाल टाइप के स्थाई बदोबस्त का विस्तार मान लिया है।[83] श्रीमती घोष ने तो यहा तक लिख डाला है कि 1899 के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए आर० सी० दत्त ने सरकार से भारत के दूसरे भागो मे बगाल पद्धति को लागू करने की प्रार्थना की थी।[84] बी० बी० मिश्र अपने हाल के ग्रथ, 'दि इडियन मिडल क्लासेज देयर ग्रोथ इन माडर्न टाइम्स' मे लिखते है कि काग्रेस ने 1888 मे सरकार पर देश के सभी भागो मे बगाल के ढंग के स्थाई बंदोबस्त को, जिसने काश्तकारो को बहुत दुख पहुचाया था और इस प्रकार जो सर्वथा अनुपयोगी था, यह हम पहले ही दिखा चुके है, लागू करने के लिए दबाव डाला था।[85] इस सुदृढ मान्यता की स्थापना पुस्तक के 'मिडल क्लास अपोजीशन टु टेनेंट राइट्स' शीर्षक उपविभाग मे की गई है। इसमे लेखक का तर्क है कि 1880 के वर्षों मे लैजिस्लेटिव कौंसिल के विस्तार के लिए सरकार की आनाकानी का एक कारण यह भय था कि उनका विस्तार और भारतीयकरण काश्तकारी मे सुधार जैसे प्रगतिवादी कानूनों के मार्ग मे आड़े आएगा।

भारत सरकार के मन मे यह भय न केवल कौंसिल के भारतीय सदस्यो की काश्तकार विरोधी भूमिका से उत्पन्न हुआ प्रत्युत शिक्षित वर्गो के राजनीतिक सगठन, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, द्वारा उठाई गई मागो की प्रकृति से भी उत्पन्न हुआ।[86] हाल मे एक अन्य लेखक परसिवल स्पीयर यह स्वीकार करते हुए भी कि पश्चिम तथा दक्षिण प्रदेशो के कांग्रेसी सदस्यो को जमीदारो मे कोई विशेष सरोकार नही था, दृढतापूर्वक कहते है कि बंगाली सदस्य सामान्यतया जमीदारो से सबधित थे और उन्होने सारे भारत मे स्थाई बंदोबस्त लागू न करने से उत्पन्न अनेक बुराइयो के लिए सरकार को दोषी ठहराया था।[87]

वास्तव मे, समीक्षाधीन अवधि के प्रारंभ से उसकी समाप्ति तक भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ के प्रबल बहुमत को जमीन पर स्थाई बंदोबस्त की सरकारी माग और बंगाल के स्थाई बंदोबस्त के बीच अतर की स्पष्ट जानकारी थी। उन्होने यथासंभव स्पष्ट तथा निर्व्याज भाषा मे और बार बार इस तथ्य को उजागर किया कि स्थाई बंदोबस्त की चर्चा का अर्थ देश के अन्यान्य भागो मे बंगाल पद्धति के दोहराने की माग अथवा 1793 के जमीदारी लगान के विस्तार की माग कदापि नही था, उसका अभिप्राय केवल भूमि के लगान की माग की निरतरता को स्थिर करने की माग थी। उन्हे यह ज्ञात था कि उन्हे गलत समझा जा सकता है और उनके मंतव्य का गलत अर्थ निकाला जा सकता है अतः उन्होने स्पष्ट रूप से यह कहने मे कोई सकोच नही किया कि जमीदारी तथा रैयतवाडी पट्टे के सापेक्षिक गुण-दोषो के सबध मे उनके निजी विचार कुछ भी क्यो न हो परन्तु स्थाई बंदोबस्त की माग करते समय उनका न पट्टेदारी प्रथा से कोई वास्ता था और न ही लगान वसूली से। उन्हे तो एकमात्र लगान की निश्चितता अथवा पट्टेदारी प्रथा के अतर्गत कराधान के सिद्धान्तो से ही प्रयोजन था।

स्थान की कमी के कारण यहा भारतीय नेताओ द्वारा इस सबध मे दिए गए सभी विश्लेषण सर्वथा स्पष्ट तथा पूर्ण रूप से उद्धृत करना सभव नही था। अध्ययनाधीन की सारी अवधि मे फैले हुए कुछ उद्धरण नीचे पुनः उद्धृत किए जा रहे है। बंगाल के इस संबंध मे सर्वाधिक बदनाम नेताओ के अवतरणो पर बल दिया गया है। 1879 मे एक प्रमुख बंगाली नेता, उल्लेखनीय है कि अपनी पीढी के कदाचित सर्वप्रमुख नेता, लालमोहन घोष ने लिखा :

> मेरे विचार मे बंगाल मे प्रचलित पद्धति के सशोधित रूप निरतरतावाले बंदोबस्त को सारे देश मे व्यापक रूप देने से बढकर देश के लिए अन्य कोई वरदान नही हो सकता। हम तो चाहेंगे कि स्वय कृषक वर्ग अपने आप ही बंदोबस्त की कार्यवाही करे न कि यह कार्य बंगाल के जमीदारो जैसे बिचौलियो के द्वारा किया जाए। हम तो भारत मे स्विट्जरलैंड तथा यूरोप महाद्वीप के अन्य भागो मे प्रचलित पद्धति जैसी ही कोई पद्धति चाहते है।[88]

1880 मे जस्टिस रानाडे ने कहा : 'भूमि द्वारा उत्पादित अनाज के अनुरूप निर्धारित स्थाई रैयतवाडी बंदोबस्त···इस कृषि समस्या का एकमात्र समाधान बन सकता है।[89] चार वर्षों के बाद उन्होने यह अधिकृत घोषणा की :

यहां हम यह कहना चाहेंगे कि समय समय पर इस पत्र मे तथा अन्यान्य पत्रों मे प्रकाशित हमारे विचारों को प्राय: गलत समझा गया है। हमने रैयतबाडी पट्टेदारी को नष्ट करने की मांग कभी नही की अथवा इसके साथ जमीदारी बंदोबस्त की व्यवस्था के लिए कभी नही सोचा···रैयतबाडी प्रथा तो इस प्रात मे चिरकाल मे प्रचलित है और यह एकमात्र पद्धति है जो हमारे ग्रामीण समाज की लोकतंत्रीय व्यवस्था के सर्वथा अनुकूल है।···हमने तो इस प्रात मे किसानों की जोतो पर लगान के स्थाई निर्धारण के लिए आदोलन किया है।[90]

इदु प्रकाश ने स्थाई बंदोबस्त की वकालत करते हुए 7 मार्च 1881 के अंक में दृढ़तापूर्वक लिखा :

भारत के इस प्रात के किसी भी वर्ग ने जमीदारी लागू करने की वकालत नही की और यदि इदु प्रकाश ने बगाल की कृषिसबंधी संपन्नता की जय जयकार की है तो इसका श्रेय बगाल मे लगान के स्थाई निर्धारण को ही है···परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि हम जमीदारो द्वारा किसानो को असहाय करना चाहते है। हमारी स्थिति को इस रूप मे देखना इस सारे प्रश्न को समझने मे शोचनीय रूप से अपने अज्ञान का ही प्रदर्शन करना है।[91]

मराठा ने 17 फरवरी 1884 के अंक मे इस प्रश्न पर जिस स्पष्टता और दो टूक निर्णयात्मकता के साथ प्रकाश डाला, वह सचमुच ही विशेष रूप से ध्यान देने योग्य तथा उल्लेखनीय है

यदि स्थाई बंदोबस्त उचित है तो सरकार को कुछ त्याग अवश्य करना पडेगा। उसे बिचौलियो अथवा जमीदारो पर निर्भर न रहकर किसानो के पास जाना होगा। सरकार उद्योगो और शिल्पो को प्रोत्साहन देने के बदले बेचारे किसानो को जमीदारो की दया पर ही निर्भर रहने को विवश कर रही है। बगाल की जमीदारी अर्थशास्त्रियों की दृष्टि मे खुदकाश्त कृषि नहीं है।···खुदकाश्तवाली पद्धति ही स्थाई रैयतबाडी पद्धति होगी।···यह वह पद्धति है जिसके लिए हम संघर्ष करते रहे है।[93]

1888 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन मे स्थाई बंदोबस्त के संबंध मे प्रस्तावित प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए शेख राजा हुसैन खा ने स्पष्ट उद्घोष किया कि वह सरकारी माग की स्थिरता तथा निश्चितता चाहते है न कि आवश्यक रूप से बगाल मे प्रचलित पद्धति जैसी किसी स्थाई बंदोबस्त की पद्धति। उन्होंने बल देकर कहा कि सारे देश में जमीन की पट्टेदारी विविधता लिए हुए है, उसके अनुसार प्रत्येक स्थान पर स्थाई बंदोबस्त का रूप भी भिन्न भिन्न होगा।[93] हिंदू ने भी 13 सितंबर 1889 के अंक मे इस बात से इनकार किया कि राष्ट्रवादियों की मांग जमीदारी पद्धति लागू करने की है। उसने दावा किया कि स्थाई बंदोबस्त का कोई भी समझदार समर्थक इस पद्धति का पक्षधर कतई नही है। 2 जनवरी 1891 के अंक में तो हिंदू इस बार और भी अधिक स्पष्ट तथा सबल प्रवक्ता था :

स्थाई बंदोबस्त की वकालत करने वाले आज के नेता जमीदारों के किसी बड़े वर्ग

की सृष्टि नहीं करना चाहते। वे तो धरती की उपज में सरकार के भाग को उन लोगों द्वारा हड़प लेना नही देखना चाहते जो न श्रम करते है और न कष्ट उठाते है। वे तो एक ऐसी पद्धति चाहते हैं जिसमे बंगाल की पद्धति के दोषों का अभाव हो और इस प्रकार किसान को सभी लाभ प्राप्त हों।

अपने समय के बगाल के उच्चतम नेता सुरेंद्रनाथ बैनर्जी द्वारा संपादित 'बंगाली' पत्र ने न केवल जोतने वालों की सलाह से ही स्थाई बंदोबस्त का समर्थन किया प्रत्युत उसने 1793 के बंदोबस्त की निंदा भी की। उसने 28 जून 1890 के अपने अंक मे लिखा कि जमीदारी-पट्टेदारी का परिणाम यह हुआ कि जमीदारो और असली खेतिहरो के बीच बिचौलियो की एक लबी शृंखला अस्तित्व मे आ गई है। उसने घोषित किया :

हम स्थाई बंदोबस्त के सिद्धात को पूर्ण रूप से स्वीकार करते है, परतु इस संबंध मे हम यह कहना चाहते है कि देश के लिए यह परम सौभाग्य होता यदि यह सीधा किसानों से किया जाता। लार्ड कार्नवालिस द्वारा जमीदारो के परिप्रेक्ष्य मे इस विषय को देखना एक भारी और दुखद गलती है···देश के किसी भाग मे भी नए सिरे से इस समय 1793 के बंदोबस्त के विस्तार की किसी भी योजना के विरुद्ध हमे अवश्य अपना विरोध प्रकट करना चाहिए। धरती के बदोबस्त का राज्य द्वारा अपनाया जाने वाला सही सिद्धात यह होना चाहिए कि धरती को रखने वाले, जोतने वाले और सुधारने वाले श्रमिक को श्रम का फल पाने मे किसी प्रकार की असुविधा, परेशानी तथा बेचैनी न हो और उसे भूस्वामी के रूप मे राज्य को केवल निश्चित और उचित किराए का ही भुगतान करना पड़े।[94]

1893 के अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन मे स्थाई बंदोबस्त के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बाल गगाधर तिलक ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह जमीदारो के लिए नही प्रत्युत किसानो के लिए ही बोल रहे है। उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया कि इस प्रस्ताव मे सरकारी लगान के अथवा बंदोबस्त के कूतने के किसी उपाय का कोई उल्लेख ही नही है। इसमे तो केवल भूमि लगान की माग को नियमित और निश्चित करने का कहा गया है।[95] एक अन्य मराठी नेता वी० आर० नातू ने 1894 मे कांग्रेस के अगले अधिवेशन मे इसी तथ्य को दोहराया तथा विदेशियो को यह भ्रान्त धारणा बनाने मे बचने के लिए सावधान किया कि देश की बहुसख्या स्थाई बदोबस्त के रूप मे बगाल मे प्रचलित पद्धति चाहती है।[96] 1901 मे लिखी अपनी पुस्तिका, दि इडियन फैमिस मे पी० सी० राय ने बंगाल के जमीदारो की सभी प्रकार से भर्त्सना करने के उपरात माग की कि अवश्यंभावी स्थाई बंदोबस्त भविष्य मे सीधे राज्य और खेतिहर के बीच होना चाहिए। उसमे किसी भी प्रकार के बिचौलियों, जमीदारों, तालुकेदारों तथा मालगुजारो को बीच मे नही लाना चाहिए। उन्होने सरकार और जनता से अपील की कि वे दमन का ऐसा दुश्चक्र कदापि न चलने दें जो बेचारे किसान के लिए दबाव अथवा मृत्यु का फंदा बन जाए।[97] लार्ड कर्जन द्वारा 1902 के प्रस्ताव मे प्रस्तुत भारतीयों की माग का गलत विश्लेषण जी० सुब्रह्मण्य अय्यर की आखों से छिप न सका। उन्होने फरवरी 1892 मे प्रकाशित अपने एक लेख, 'लार्ड कर्जन रिजाल्यूशन आन लैंड रैवेन्यू' मे प्रखर स्वर में लिखा कि प्रस्ताव ने यह

अनुमान लगाने में गलती की है कि :

> भूराजस्व नीति के आलोचक···स्थाई बंदोबस्त की मांग के रूप में जमींदारी पद्धति की भी मांग कर रहे हैं।···श्री दत्त तथा दूसरों ने अपने को राज्य और किसान के बीच जमींदारों, बिचौलियों की सृष्टि की वकालत करने वाले समझे जाने के विरुद्ध बचाव की बार बार चेष्टा की है। उनकी योजना थी स्थाई बंदोबस्त सीधे सरकार और किसान के बीच हो···स्थाई बंदोबस्त के लिए जमींदार पद्धति कोई आवश्यक पक्ष नही और हमारा सुझाव है कि सीधा बंदोबस्त सरकार और किसानों के बीच होना चाहिए। दुख देनेवाला यह जमीदारों का तत्व तो वर्तमान विवेचन के अंतर्गत आता ही नहीं।[98]

अंतिम रूप में हम यह दिखाना चाहेंगे कि आर० सी० दत्त इस तथ्य को निरंतर अपनी आंखों के सामने रखने वाले तथा भली प्रकार इसे समझने वाले किसी भी अन्य भारतीय नेता से किसी भी प्रकार पीछे नही थे कि बंगाल की जमीदाराना पट्टेदारी मे तथा भूमि लगान के स्थाई बंदोबस्त मे बड़ा भारी अंतर था। 1874 में ही एक युवक अधिकारी के रूप मे उन्होंने बंगाल के स्थाई बंदोबस्त पर सशक्त प्रहार किया और इसे कार्नवालिस की 'जबरदस्त गलती' कहा।[99] इसके साथ यह भी दर्शनीय है कि सरकारी अधिकारी के रूप में जमीदारों और उनके स्थाई बंदोबस्त के लिए स्थाई घृणा के कारण उन्हें जमीदारों से सदैव अपयश और तिरस्कार ही मिला।[100]

इसमें संदेह नहीं कि समय के बीतने के साथ साथ बंगाल के स्थाई बंदोबस्त के प्रति उनकी अरुचि नर्म पड़ती गई और यहा तक कि बाद मे एक प्रकार से मर्यादित प्रशंसा के रूप में बदल गई, फिर भी उनके दिमाग में यह बात स्पष्ट थी कि देश के अन्य भागों में बंगाल पद्धति के विस्तार की चर्चा करना निरर्थक ही नहीं, गलत भी था। इस प्रकार 1897 मे उन्होंने कहा कि यदि प्रत्येक प्रदेश की विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार भूमि लगान के स्थाई बंदोबस्त के सिद्धांत का प्रयोग किया जाए तो उससे संबंधित सभी प्रश्न अपने आप ही समाप्त हो जाएंगे।[101] 1899 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जिस अधिवेशन में पी० सी० घोष ने 'देश के अन्य भागों मे बंगाल पद्धति के विस्तार की मांग' महसूस की, दत्त महोदय ने इस मांग को आगे तो नही ही बढाया साथ ही खुले तौर पर इस बात की घोषणा की कि वे भारत के विभिन्न भागो मे प्रचलित विभिन्न पद्धतियों; बंगाल की जमीदारी पद्धति, अवध की ताल्लुकेदारी पद्धति, उत्तर-पश्चिम की महलवाड़ी पद्धति, मध्य भारत की मालगुजारी पद्धति और दक्षिण भारत की रैयतवाडी पद्धति के गुणों का विवेचन ही नहीं करना चाहते। उन्होने बड़ी ही सुस्पष्ट भाषा में जोर देकर कहा : किसान किस पद्धति अथवा बंदोबस्त के अंतर्गत रह रहा है, इसकी चिंता करना बेकार है। उसे केवल अपनी भूमि की उपज का उचित भाग मिलने का विश्वास होना चाहिए···इसी में उसकी रक्षा है और इसी में देश की रक्षा है।[102] लार्ड कर्जन को लिखे अपने चतुर्थ पत्र में उन्होंने इस मामले मे अपनी स्थिति एकदम साफ कर दी :

> देश के अन्यान्य भागों मे बंगाल पद्धति के विस्तार की माग मैं इस समय नही करता। आपको लिखे अपने प्रथम तीन पत्रों में मैंने ऐसा कोई सुझाव नहीं दिया। भारत के

> प्रत्येक प्रांत में अपनी भूमि पद्धति है, जिसके अंतर्गत वहां के लोग पीढ़ियों से रहते आ रहे हैं।...श्री सभापति महोदय। मैंने तो केवल यह मांग की है कि जिस भी पद्धति के अंतर्गत किसान रहता आ रहा है उसमें उसे संरक्षण प्रदान किया जाए।[103]

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय नेताओं ने और विशेषत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्थाई बंदोबस्त की मांग करते समय सदैव भूमि लगान के स्थाई बंदोबस्त शब्द का तथा भूमि पर सरकारी मांग की स्थिरता और स्थायित्व शब्द का ही प्रयोग किया। इस रूप में उन्होंने इस संबंध में संदेह के लिए कोई अवकाश ही नहीं छोड़ा कि उनकी वास्तविक इच्छा क्या थी।[104] इसी प्रकार अतीत में सरकारी क्षेत्रों में इस प्रश्न पर हुए विवाद के इतिहास में उनका व्यवहार 9 जुलाई 1862 और 24 मार्च 1865 में राज्य सचिव को संप्रेषित अपने पत्रों में उनके विशेष उल्लेख और इन संप्रेषणों को पूरे तौर पर लागू करने से भारतीयों के पूर्णतया संतुष्ट होने के उनके उद्घोष इस तथ्य को उजागर करते हैं कि स्थाई बंदोबस्त की मांग करते समय उनके मन में बंगाल की जमींदारी पट्टा पद्धति कदापि नहीं थी। इसके विपरीत वे धरती पर सरकारी मांग को स्थाई रूप से सीमित करना चाहते थे।[105] यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भारत की विभिन्न लगान पद्धतियों के विकास का ऐतिहासिक विश्लेषण करते हुए आर० सी० दत्त ने रैयतवाड़ी पद्धति में न केवल पट्टेदारी अथवा किसानों के स्वत्वाधिकार में प्रत्युत भूमि के अस्थाई लगान निर्धारण के रूप में भी अनेक भयंकर दोष देखे क्योंकि रैयतवाड़ी पद्धति के व्यवस्थापक थामस मोनरो ने रैयतवाड़ी क्षेत्रों में लगान के स्थाई बंदोबस्त का समर्थन किया था, दत्त महोदय ने उनकी प्रशंसा की।[106]

स्थाई बंदोबस्त की मांग के संदर्भ में राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण के संबंध में यदि अन्य प्रमाण अपेक्षित है तो वह समझौते और यथार्थवादिता की भावना से उनकी इस योजना की स्वीकृति और सहमति में देखे जा सकते हैं जिसके अंतर्गत इस व्यवस्था की मांग की गई कि लगान का एक स्थाई बंदोबस्त होगा जिसमें भूमि लगान को निरंतरता का रूप देते हुए निश्चित किया जाएगा परंतु उसमें मूल्यों में परिवर्तन की सीमा तक परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा।[107] इस संदर्भ में राष्ट्रवादी नेताओं ने लार्ड रिपन द्वारा सुझाए गए समझौते का समर्थन किया।[108] अक्तूबर 1882 और मई 1883 के संप्रेषणों में यह कहा गया कि जब तक भूमि का कोई नया सर्वेक्षण नहीं किया जाएगा तथा लगान को ऊंचा नहीं बढ़ाया जाएगा जब तक कि (क) प्रांत का क्षेत्र बढ़ नहीं जाता, (ख) कीमतें बढ़ नहीं जातीं, (ग) राज्य के कोष द्वारा किए गए सुधारों के फलस्वरूप उपज बढ़ नहीं जाती।[109] इसके अतिरिक्त इस आपत्ति को कि लगान के स्थाई बंदोबस्त से उन क्षेत्रों में जहां बड़े बड़े जोतने योग्य भूभाग जोते नहीं गए हैं, जमीन के मालिकों को अनुपार्जित आय की अपरिमित राशि मिलने लगेगी दूर करने के लिए भारतीय नेताओं ने अपनी सहमति प्रकट करते हुए यह मांग की कि सरकार अपनी इस मांग को अपने ही मापदंड से पहले से ही पूर्णतया विकसित क्षेत्रों तक ही सीमित रखे।[110] इन सब बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि संशोधित राष्ट्रवादी मांग के अंतर्गत भूमि लगान की राशि को मूल्यों के साथ जोड़ दिया जाए तो वास्तविक मांग से पट्टेदारी

पद्धति का नही प्रत्युत कर निर्धारण के सिद्धान्त का ही संकेत मिलता है।

अब रोचक प्रश्न यह उठता है कि उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ मे जब राष्ट्रवादियों की स्थाई बंदोबस्त की माग के संबंध में स्थिति नितान्त स्पष्ट और निश्चित थी तब फिर यह मतिभ्रम कैसे उत्पन्न हो गया? इसके उत्तर मे हमारे इस कथन मे कुछ हद तक सत्य है कि कम से कम आंशिक रूप से ही सही, यह घपला जानबूझकर पैदा किया गया था ताकि भूमि लगान पद्धति पर राष्ट्रवादियो के प्रहार का कोई श्रेय न मिल सके। राष्ट्रवादियों की स्थिति को जानबूझकर गलत ढंग से प्रस्तुत किया गया ताकि भारतीयों द्वारा उठाए गए प्रमुख विषयों पर से विशेषतया भूमि पर भारी लगान से इंग्लैंड और भारत की जनता का ध्यान हटाया जा सके। यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि इसके पीछे एक भ्रष्ट तथा पाखण्डपूर्ण प्रवृत्ति काम कर रही थी जिसके अंतर्गत इंग्लैंड का संपूर्ण व्यवस्था, उपाधिकारी महानुभाव, वंशानुगत लार्ड, आयरिश काश्तकार की सहायता तथा रक्षा के लिए किसी भी प्रयास का विरोध करने वाले तथा अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करने वाले आयरलैंड के बड़े बड़े भूमंडलों के स्वामी, मालिक, टोरी पार्टी के पथप्रदर्शक, इंग्लैंड मे भूमि के राष्ट्रीयकरण के विरोधी तथा विश्व मे सर्वोच्च वेतनभोगी सिविल सर्विस के सदस्य सभी के सब भारतीय किसान के उद्धारक बन गए और भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ पर जमींदारो के पिट्ठू होने का आरोप लगाने लगे। वस्तुत स्थिति की यह विडम्बना भारतीयो से छिपी नही थी। उदाहरणार्थ कर्जन के इस दृढ मत का कि स्थाई बंदोबस्त किसी भी सभ्य देश मे सफल नहीं हुआ है, खंडन करते हुए आर० सी० दत्त ने 1902 मे टिप्पणी की इंग्लैंड के वे जमींदार जो 1798 के पिट्स ऐक्ट के अंतर्गत हुए स्थाई बंदोबस्त के लाभो का उपभोग कर रहे है और उन्हें गौरव दे रहे है, भारत आने पर यह शिक्षा ग्रहण करते है कि जो उनके लिए अच्छा है वह भारतीयों के लिए अच्छा नही है।[110-ए]

हा, यह अवश्य है कि यह व्यापक गलतफहमी केवल तथ्यो को गलत ढंग से प्रस्तुत करने का ही परिणाम न थी। वस्तुत कुछ भारतीय नेताओ की भूमि नीति के कुछ पक्षों और लगान के स्थाई बंदोबस्त पर तर्क प्रस्तुत करने का उनका ढंग कुछ इस प्रकार का अवश्य था कि उससे कभी कभार इस ओर ध्यान देने वाले को भ्रांति अवश्य हो सकती थी। प्रथम, कभी कभी भारतीय नेताओ ने और विशेषतया भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने परवर्ती कुछ वर्षो मे अपनी माग प्रस्तुत करते हुए केवल 'स्थाई बंदोबस्त' शब्दों का प्रयोग किया। वे भूमि लगान' शब्द जोड़ना भूल गए।[111] वस्तुतः यह लोप भाषा संबंधी भूल अथवा आलस्य के अतिरिक्त अन्य कोई विशेष महत्व नही रखती थी और जिसने भी कांग्रेस के पूर्ववर्ती प्रस्तावों को और अनेकानेक राष्ट्रवादियो के इस विषय पर लेखो और जनभाषणो को, जिनमे से कुछ को हम पहले ही ऊपर उद्धृत कर चुके है, ध्यान से पढा है, वह इन शब्दो के छूट जाने से भटक नही सकता।

द्वितीय, यह कदाचित सर्वाधिक महत्वपूर्ण था, भूमि लगान के स्थाई बंदोबस्त के बहुत से समर्थको ने विशेषतः आर० सी० दत्त ने बंगाल के किसानों की स्थिति का रंगीन चित्र खींचा और बंगाल को ही स्थाई बंदोबस्त की व्यावहारिक उपलब्धियो के आदर्श

के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने यह भी घोषणा की कि बंगाल के किसानों को अकाल से विशेष कष्ट नहीं पहुंचा; इसका कारण उनके अनुसार यह था कि स्थाई बंदोबस्त ने उसे इस योग्य बना दिया है कि वह अकालों के विरुद्ध उच्च स्तर पर आर्थिक प्रतिरोध अपना सके। उन्होंने यह भी कहा कि बंगाल का किसान देश के अन्य भाग के किसानों की अपेक्षा भौतिक साधनों की दृष्टि से अधिक संपन्न है।[115] इस भावना को कभी कभी आर० सी० दत्त महोदय बहुत ही अतिरंजित रूप दे देते थे और इस सीमा तक कह डालते थे कि स्थाई बंदोबस्त ने बंगाल की जनता को समृद्ध और सुखी बना दिया है।[113] दत्त बार बार यह भी घोषित करते रहे कि बंगाल के जमींदार उचित तथा न्यायसंगत किराया वसूल करते हैं और इस किराए की रकम कुल उपज के 1/5 भाग से अधिक नही होती।[114] बंगाल के तथा देश के अन्यान्य भागों के बहुत सारे और नेता भी थे जिन्होंने बंगाल के किसानों को जमींदारी की कृपा का पात्र बनाने वाले बंगाल के स्थाई बंदोबस्त की आलोचना की। उदाहरणार्थ पी० सी० राय ने बंगाल बंदोबस्त की निम्न शब्दों मे निंदा की :

> जनता के एक अत्यंत सीमित और निपट स्वार्थी वर्ग जो जमीदार वर्ग कहलाता है के सिवाय इस पद्धति ने न तो राज्य को और न ही किसानों को कोई लाभ पहुंचाया है।···बंगाल के किसान अत्यंत शोचनीय अवस्था मे है और भारत के किसी भी प्रदेश के कृषि क्षेत्रों से बेहतर अवस्था में नही है।···यदि बंगाल का किसान थोड़ा बहुत खाता-पीता और समृद्ध दिखाई देता है तो इसमे जमीदारो का कोई भी सहयोग नही, यह तो उसका अपना श्रम है। बंगाल का औसत जमीदार विशेषत: अपने कार्य से अनुपस्थित रहने वाला, उतना ही क्रूर और अत्याचारी है जितने कि बनिया, साहूकार तथा महाजन आदि विभिन्न नामो वाले किसान के शत्रु हृदयहीन हैं।[115]

यहां यह उल्लेखनीय है कि आर० सी० दत्त ने स्वयं कभी इस विषय पर कोई चर्चा नही की कि 1793 के स्थाई बंदोबस्त ने बंगाल के किसान को समृद्ध बनाया है। उन्होने तो सदैव उसके लाभों को 1859 और 1885 के पट्टेदारी कानूनों के लाभों से जोडने की ओर ध्यान दिया। उनकी दृष्टि में 1793 का विनियम तथा 1859 और 1885 के कानून परस्पर सहयोगी हो नहीं प्रत्युत एक ही पहलू के दो पक्ष थे। कानूनो के इन दोनों वर्गों के सम्मिलित प्रवर्तन से ही बंगाल के किसान की स्थिति सुधर सकी थी तथा भारत के अन्य प्रांतों के किसानों की अपेक्षा अच्छी बन सकी थी। जिस तरह उन्होंने 1793 के स्थाई बंदोबस्त की प्रशंसा की उसी तरह, उसी ऊंचे स्वर मे, उस ढग से और उसी उत्साह से उन्होंने 1859 और 1885 के अधिनियों का स्वागत किया।[116] जब कर्जन ने 1902 के प्रस्ताव में अनुदारतापूर्वक उनपर तथा अन्य नेताओं पर अपने काश्तकारों पर ज़मीन्दारी की मांग के सीमा निर्धारण की आवश्यकता पर समुचित ध्यान न देने का आरोप लगाया[117], तो दत्त को आघात पहुंचा और उन्होंने मृदुता के साथ कर्जन को उत्तर दिया कि उन्होंने सदैव इसे अभिस्वीकार ही नही किया कि 'बगाल के रेंट ऐक्ट' ने स्थाई बंदोबस्त द्वारा किए अच्छे कार्य को पूर्णता तक पहुंचाया है प्रत्युत 1885 के 'रेंट

ऐक्ट' की रूपरेखा तैयार करने में भी पर्याप्त योगदान दिया है।[118] दत्त को इस समय वास्तव मे यह भी कहना चाहिए था कि उन्होंने 1874 में ही जमीदारों और किसानों के बीच स्थाई बंदोबस्त के लिए दबाव डाला था, उन्हें इस बात की भी वकालत करनी चाहिए थी कि विस्तृत सर्वेक्षण के उपरान्त भुगतान किए जाने वाले किराए की दर सावधानी से निश्चित कर इसे सदा के लिए स्थिर घोषित कर दिया जाए।[119]

तृतीय, अधिकांश भारतीय नेताओं ने जमीदारी की पट्टेदारी के उन्मूलन की मांग नही की। उनकी दृष्टि मे जहा तक किसानों के हितों का संबंध था, जमीदारी पट्टेदारी और रैयतवाड़ी पट्टेदारी के बीच कोई अंतर न था। उनके इस उपेक्षा भाव का अर्थ जमीदारी के प्रति उनका अनुराग कदापि नही था अपितु उन्हें यही विश्वास था कि जहां तक जमीदारी प्रथा के दोषों का संबंध था, दोनों वास्तव मे जमीदारी पद्धति के दो भिन्न भिन्न रूप थे —एक निजी जमीदारी का रूप था और दूसरा राजकीय जमींदारी का। जहां प्रथम मे किराए का निर्धारण निजी स्वामी करते थे वहा दूसरे मे सरकार आगे बढकर इस काम को सम्पन्न करती थी। व्यवहार मे किसान के लिए इन दोनो मे चुनाव की कोई बात ही नहीं थी।[120] आर० सी० दत्त का इस विषय मे कथन था कि ईस्ट इंडिया कपनी ने रैयतवाड़ी पद्धति का सगठन किसान को जमीदारी के चंगुल से बचाने के लिए नही, अपितु बिचौलियों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले लाभो को हथियाने और अपने राजस्व को अधिकतम बढाने की इच्छा मे ही किया है।[121] कपनी जमीदारों के लाभों के प्रति ईर्ष्यालु रही है और किसानो के हितों के प्रति उत्सुक नही रही। इस पद्धति के अतर्गत कपनी का किसानो पर इतना अधिक कड़ा नियंत्रण हो गया है जितना किसी दासो के स्वामी का अपने दासो पर होता है, जो उनकी जीवन की आवश्यकता के लिए अपेक्षित से अतिरिक्त और सब कुछ छीन लेता है।[122] कई नेताओ ने तो यह भी कहा कि जमीदारी प्रथा रैयतबाडी प्रथा से दो बातो मे तो बेहतर ही है। प्रथम, जहां सरकार किसान को धरती के अनुचित लगान बढाने तथा अन्य इस प्रकार के दूसरे दबावों से बचाने के लिए जमीदार के विरुद्ध कानून बना सकती है और बनाती है, वहा भूराजस्व को बढाने की अपनी शक्तियों पर, तथा अन्य कई प्रकार से किसान के साथ संबधों को कटु बनाने की प्रक्रियाओ पर कानूनी अथवा अन्य किसी प्रकार के प्रतिबंध लगाने से इनकार करती है। यदि एक बार लगान का स्थाई बंदोबस्त स्वीकार कर लिया जाए तो जमीदारों अथवा अन्य बड़े बड़े मालिकों के किराया बढाने पर प्रतिबंध लगाकर किसानों तक इसके लाभो का विस्तार किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। वस्तुतः यह कार्य तो सरकार अब भी सम्मानपूर्वक कर सकती है। जमीदारों को किराया बढाने की अनुमति देने, प्रोत्साहन देने यहां तक कि कभी कभी विवश करने की वर्तमान नीति को छोड़कर उसके स्थान पर सरकार एक आदर्श प्रस्तुत कर सकती है।[123] कुछ भारतीय नेताओं के अनुसार रैयतवाड़ी पट्टेदारी से जमीदारी को बेहतर बनाने वाला दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष निकासी का था। उनका तर्क था कि जमींदारी पद्धति में यदि किसान को ऊंचा किराया देना पड़ता है तो इसमें एक अच्छाई तो है कि यह किराया भारतीय मालिक को जाता है जो उस धन को भारत में ही खर्च करता है। इसके विपरीत विदेशी चरित्र

वाली सरकार को दिए जाने वाले किराए की देश के बाहर निकासी हो जाती है।[124]

चतुर्थ, कुछ गलतफहमी इस तथ्य से भी उत्पन्न हुई कि कुछ भारतीय नेता इस बात से व्याकुल थे कि जिस ढंग से अपनी प्रतिभा के उपयोग के अभाव मे भारतीय लोगो का सारा सामाजिक जीवन समान रूप मे निम्न स्तर पर पहुच गया था, उस समय इन नेताओ ने उत्सुकता के साथ यह अनुभव किया कि जमीदार उस वर्ग से सबध रखता है जिसे सामाजिक स्तर और बौद्धिक उत्कर्ष को किसी रूप मे बनाए रखने मे सफलता मिली है अतः वह संपूर्ण भारतीय जनता को अधकारपूर्ण तथा गवार अस्तित्व मे पहुचने से बचाने मे सहायक और उद्धारक सिद्ध हो सकता है।[125] इसके अतिरिक्त भारतीय नेताओ के एक वर्ग का यह भी विश्वास था कि लोगो को नेताओ और बिचौलियो की आवश्यकता है और जमीदार अच्छे बिचौलिए सिद्ध हो सकते है तथा वे ग्रामीण क्षेत्रो के प्राकृतिक नेता है।[126] इस सबध मे अमृत बाजार पत्रिका द्वारा 20 जनवरी 1871 के अंक मे 1793 के स्थाई बदोबस्त की रक्षा मे प्रस्तुत लब सपादकीय विश्लेषण का अध्ययन रोचक होगा। यह उद्धरण दर्शनीय है क्योकि इसमे बगाल के नेताओ के एक महत्वपूर्ण वर्ग के और सभवत भारत के ही राष्ट्रवादी नेताओ की वैचारिक प्रक्रिया की सूक्ष्म दृष्टि देखने को मिलती है। यह बात और है कि इस उद्धरण का सबध अध्ययन-काल से दस वर्ष पूर्व मे है, फिर भी यह अवतरण ध्यान देने योग्य है

> यह सर्वविदित और विश्वमान्य सत्य है कि वर्ग के रूप मे जमीदार देशवासियो के सद्व्यवहार के पात्र नही। उनकी एक बहुत बडी सख्या अनुत्साहियो निकम्मो, दुर्बलो, अज्ञानियो, शोषको और स्वार्थियो की है। हम यह भी भली प्रकार जानते हैं कि वे ओछेपन और धूर्ततापूर्ण कार्यों मे प्रतिवर्ष बहुत बडी धनराशि, जिसपर वास्तव मे किसानो का ही नैतिक अधिकार है, हडप जाते है। हम यह भी जानते है कि इन जमीदारो मे कुछ के विनाश से ही लाखो किसानो को अर्धदासता के बधन से मुक्ति मिलेगी। हम यह सब जानते है और जमीदार की अपेक्षा किसान से ही अधिक प्यार और उसका ही अधिक आदर करते है। इतने पर भी हम जमीदारो का समर्थन करते है। यह हमारी क्रूर आवश्यकता है। निस्सदेह यह क्रूर है, परतु है हमारी आवश्यकता ही।

संपादकीय मे आगे कहा गया है कि यह आवश्यकता दो रूपो मे है, प्रथम, जनता के आदोलन के लिए भारतीयो को पैसा चाहिए और वह पैसा केवल जमीदारो के पास है, व्यापारी तो पहले ही नष्ट हो चुके है। मद्रास मे जहा जमीदार नही हैं, धन और दानियो के अभाव मे वहा जन आदोलनो को गहरा धक्का लगा है। द्वितीय, अगरेजो ने पहले ही सपत्ति उत्पादन के सभी साधनो, व्यापार, उद्योग तथा लाभ नियुक्तियो को हथिया रखा है। भूमि ही बची हुई है। यदि जमीदारो को हटा दिया जाए तो सपदा के इस स्रोत पर भी अगरेज अधिकार जमा लेगे और इससे किसानो को लाभ की दृष्टि से कोई अंतर नही पडेगा। अत जमीदारो को ही चलने देना चाहिए जो किसानो के श्रम के फल को हडपने के कारण बुरे अवश्य हैं परतु यूरोपीयो से अधिक बुरे तो नही। संपादकीय ने इस विषय का विस्तृत विवेचन इस प्रकार प्रस्तुत किया है .

जमीदारो की कीमत पर किसान की समृद्धि ठीक उसी प्रकार सदैव उचित है जिस प्रकार किसानो और जमींदारो की कीमत पर यूरोपीयो की समृद्धि अनुचित परन्तु हम इस बात का कोई भरोसा नही कि सरकार किसानो के हित मे ही बदोबस्त को नष्ट करना चाहती है। इसके विपरीत हमे तो यह आशका है कि धरती पर बढाया हुआ लगान हमारे लाभ के लिए नही प्रत्युत अगरेज जाति के लाभ पर ही खर्च होगा।

महाशयीय ने इस साहसिक घोषणा के साथ यह निष्कर्ष निकाला 'पहले हमे अपने देश के वित्तो पर नियत्रण करने दीजिए फिर हम दिल और दिमाग से बदोबस्त का विरोध करेगे परतु इस समय तो हम उसका समर्थन करने को ही विवश है।'

उपर्युक्त सभी तथ्यो से यह अधिक स्पष्ट सिद्ध होता है कि बहुत सारे भारतीय नेता जमीदारी और जमीदारो द्वारा किसानो के शोषण के प्रश्न की उपेक्षा करना चाहते थे परन्तु इन पक्षो से यह निष्कर्ष निकाला नही जा सकता कि स्थाई बदोबस्त की माग करते समय भारतीय नेता जमीदारी पट्टेदारी के लागू करने का षड्यत्र नहीं कर रहे थे।

संदर्भ

1 दत्त, स्पीचेज II पृ० 20

2 दत्त इकनॉ II पृ० 27

3 निवल (प्राप्त) उपज के मूल्य तथा श्रमिको के वेतन और लाभ की औसत दर पर कृषि में विनियोजित पूजी के लाभ आदि की गणना के उपरान्त उत्पादन के अनुमानित व्यय का अतर निवल (नेट) प्राप्ति अथवा उपज थी

4 दत्त, इकन II पृ० 15 इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV, पृ० 217

5 इम्पीरियल गजेटियर आफ इडिया (1905) खड IV, पृ० 222-3

6 वित्त सदस्य ए० कोल्विन द्वारा 1884 मे सामान्य रूप से सरकार द्वारा करवृद्धि के लिए अपनाए जाने वाले सिद्धात का प्रस्तुत सक्षेप इस प्रकार से है पहला, मूल्याकन करते समय जमीदार अथवा किराएदार द्वारा किए गए सभी प्रकार के सुधारो पर छूट दी जाती थी दूसरा, पहले से ही वर्गीकृत धरती के पुन वर्गीकरण की अथवा पुन मूल्याकन की अनुमति किसी भी रूप मे नही दी जाती थी तीसरा, चालू मूल्यो को ही सशोधन का आधार माना जाता था तथा किसी प्रकार का परिवर्तन केवल सावधानी से निर्धारित दो या तीन आधारो पर ही किया जाता था ये आधार थे, भारत सरकार जोत को स्थिर कर सकती थी, नियत्रित कर सकती थी तथा उसमे बढोतरी कर सकती थी वृद्धि का आधार राज्य द्वारा किए गए सुधारो से उपज मे वृद्धि और मूल्यो मे वृद्धि थी वित्त सदस्य (फाइनेंस मेबर) ने इस बात का सकेत दिया कि नियम कठोर नही थे और उनकी प्रयोगशीलता का विचार प्रत्येक मामले मे पृथक पृथक रूप से ही सावधानी के साथ किया जाता था (फाइनैंशल स्टेटमेट 1884-5, कडिका 75) कुछ का कहना था कि वास्तविक कर निर्धारण तो और भी अधिक व्यावहारिक था देखिए, बी०एच० बोडेन पावेल ;

'ए शार्ट एमाउट आफ दि लैंड रैवेन्यू ऐंड इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ब्रिटिश इंडिया' (आक्सफोर्ड, 1894), पृ० 48

7 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV, पृ० 201

8 1856 7 और 1901-2 की अवधि मे भूराजस्व लगभग 58 6 प्रतिशत बढ गया दूसरी सगणना 1888 9 और 1905-6 के फाइनेशल स्टेटमेट मे दिए गए अको से की गई है

9 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1909) खड IV पृ० 239, और देखिए, स्ट्रैची · इडिया (1903) पृ० 125

10 मनकर पूर्वोद्धृत, म इन लेखो के साथ रानाडे का नाम जुड़ा हुआ है, पृ० 213 6

11 जे० पी० एस० एस०, जलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 2 और देखिए, पृ० 19, 21

12 वही अक्तू० 1881 (खड IV, स० 2) पृ० 53, और देखिए वही, पृ० 55, 57 8 दि डक्न ऐग्रीकलचरिस्ट रिलीफ बिल', वही, अक्तूबर 1879 (खड II, स० 2), दि ला आफ लैंड सल इन ब्रिटिश इडिया, वही अक्तूबर 1880 (खड II स० 2), सेंट्रल प्राविसेज लैंड रैवन्यू ऐंड टैनेंसी बिल्स, वही, अप्रैल 1881 (खड II, स० 4), एमैसिपेशन आफ सर्फ्स इन रसिया, वही, अक्तूबर 1882 (खड V, स० 2), प्रशियन लैंड लैजिस्लेशन ऐंड दि बगाल टैनसी बिल, वही, अक्तूबर 1883 (खड VI, स० 2) प्रपोज्ड रिफार्म्स इन दि रिसैटलमेंट आफ लैंड एसेसमेंट्स', वही, जनवरी 1884 (खड VI, स० 3) और प्रार्टस्ट एंड बार्निग अगस्ट दि न्यू डिपार्चर . ा दि लैंड एसेसमेंट पालिसी वही, अप्रैल 1884 (खड VI सख्या 4)

13 प्रस्ताव III

14 दत्त द्वारा ईस्ट इडिया कपनी प्रशासन की भूराजस्व नीति पर लगाए गए आरोपो के लिए विशेष रूप स देखिए ई एच I पृ० 79, 189-90, 194, 231 245, 362, 372 3, और ओपन लेटस टु लार्ड कर्जन' (लाड कर्जन क नाम खुल पत्र 1900 मे लिखित) (इसे आगे सदर्भ क लिए 'ओपन लेटस से सकेतित किया जाएगा) परवर्ती काल के लिए विशेष रूप मे देखिए, दत्त इग्लैंड एड इडिया' पृ० 134, सी० पी० ए०, पृ० 481-90, स्पीचेज I, पृ० 27, 40 158 60, ओपन लटस, स्पीचेज II पृ० 30, 38, ई एच II, पृ० XIII फैमिन एड लैंड एसेसमेंट इन इडिया (लदन 1900, पृ० XI XII

15 जाशी पूर्वोद्धृत म पुन मुद्रित, पृ० 392-574 उन्होने इसी प्रकार क विचार 1884 मे (पृ० 696) तथा 1890 मे अपन निबध, 'दि इकोनामिक सिच्युएशन इन इडिया एग्रीकल्चर' (देखिए विशेषतया पृ० 672, 686 904-05) म भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए थे

16 देखिए, नटेसन ऐंड कपनी (मद्रास 1902) द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक 'लैंड प्राब्लम्स इन इडिया' मे एक लेख दि बाबे लैंड रैवेन्यू सिस्टम', मई 1900 म बबई म हुए प्रातीय सम्मेलन म दिए गए उनके अध्यक्षीय भाषण के उद्धरण, जो बगाली के 22 मई 1900 के अक मे पुन मुद्रित हुए थे और डिगबी पूर्वोद्धृत, पृ० 624-8 और रिप० आई० एन० सी०—1902, पृ० 81 एव आगे

17 पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खड I, सख्या 3), पृ० 37-43, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 22, सी० पी० ए०, पृ० 561, 574-5, राय, पावर्टी पृ० 180-1 इडियन फैमिस पृ० 50, पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 607, जी वेंकटरमन, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 131, ए० नदी इडियन पालिटिक्स, पृ० 130, जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III, प्रश्न 18716, रिप० आई० एन० सी०-1901, पृ० 87,

बारहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्ताव, मराठा, 16 नव० 1902; गोखले, स्पीचेज, पृ० 80-82, 110-2, 1017; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 743, 757, एल० ए० जी० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903, पृ० 52, आर० एन० मधोलकर, दि इकोनामिक कंडीशन इन इंडिया, एच० आर०, अगस्त 1904 समाचारपत्रों में उदाहरण रूप में देखिए, इंदु प्रकाश, 25 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब०, 30 अक्तूबर 1880), मराठा, 31 जुलाई 1881, 1 जनवरी 1882; ए० बी० पी०, 5 अक्तूबर 1882, 18 मार्च 1901, हिंदू, 18 जनवरी, 5 सितंबर 1884, 4 जून 1900; इंडियन स्पेक्टेटर, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बंब०, 13 जनवरी 1883), (इंडियन स्पेक्टेटर ने अपने 8 मार्च 1884 के अंक में टिप्पणी की कि भूमि पुत्रों के साथ ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों ने सभी प्रकार के संबधों में लुटेरों की भूमिका ही निभाई है);' स्वदेशमित्रन, 27 जुलाई (आर० एन० पी० एम०, अगस्त 1885), स्वदेशमित्रन, 13 नवंबर (वही, 30 नवंबर 1889), हिंदुस्तान, 3 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 10 मार्च 1891); बंगाली, 13 फरवरी 1892; स्वदेशमित्रन, 17 मार्च, 28 अप्रैल, 12 दिस० (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च, 30 अप्रैल, 15 दिस० 1900 क्रमश); केसरी, 25 दिस० (आर० एन० पी० बंब०, 29 दिस० 1900), न्यू इंडिया, 19 मई 1902

18. उदाहरण के लिए देखिए, दत्त, ओपेन लेटर्स, पृ० 71, 74-5

19 उदाहरण के लिए देखिए, पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का एक पत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1880 (खंड III, स० 1) पृ० 37-9, रानाडे, 'ऐग्रेरियन प्राब्लम एंड इट्स सॉल्यूशन', जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879(खंड II, स० 1)पृ० 5-9; 'लैंड ला रिफार्म एंड एग्रीकल्चरल बैंक्स', जे० पी० एस० एस० अक्तूबर 1881 (खंड IV, स० 2) पृ० 37, 54, 16 मई 1880 को पूना सार्वजनिक सभा द्वारा आयोजित पूना की एक सार्वजनिक सभा में स्वीकृत याचिका, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III, स० 1) पृ० 5; 'ए प्ली फार स्टार्विग आफ इंडिया', जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1885 (खंड VII स० 3) पृ० 7-15, तैलंग, स्पीचेज, पृ० 16, आई० एन० सी०-1896, 1897, 1901, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश: XII, IX, VIII(a), III, III, III, राय, पावर्टी, पृ० 180-1, 184-9, जोशी : पूर्वोद्धृत पृ० 334, 392, 536 (विशेष रूप से देखिए, पृ० 452-3, 457-61, 466-81, 494-5, 508-10) 890-902, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 450, ए० नदी . इंडियन पोलिटिक्स पृ० 130-3, पी० पी० पिल्लई, रिप० आई० एन० सी० 1892 पृ० 99; तिलक, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 132, दत्त, स्पीचेज I पृ० 21, 40, 180, सी० पी० ए०, पृ० 480-9, ओपेन लेटर्स, पृ० 18-9 तथा पांच पत्र, स्पीचेज II पृ० 30, 57, 179-80; ई० एच० I पृ० IX, पाद टिप्पणी 370, ई० एच० II पृ० XIII, 483, 490-1, 496-7, 535; दसवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में पारित प्रस्ताव (प्रस्तोता : तिलक), मराठा, 27 मई 1900, जी० के० पारिख, 10वें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, बंगाली, 22 मई 1900 (तथा डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 624-8); प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1901 खंड XXXIX पृ० 227-36; 'लैंड प्राब्लम इन इंडिया', पृ० 124-34, रिप० आई० एन० सी० 1903, पृ० 59, वी० आर० नाबियार, रिप० आई० एन० सी०-1900 पृ० 101; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 561, 564; स्पीचेज, पृ० 436; गोखले, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1900, खंड XXXVIII, वही, पृ० 92-3, वही, 1901, खंड XXXIX, पृ० 244; स्पीचेज, पृ० 80-2, 110-12, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 86-7;

जी० एस० अय्यर, वही, पृ० 93, ई ए, पृ० 48, डी० ए० खरे का तेरहवे बबई प्रातीय सम्मेलन मे अध्यक्षीय भाषण, मराठा, 26 अप्रैल 1903, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 757 9 समाचारपत्रों के लिए देखिए, उदाहरणार्थ, इदु प्रकाश, 25 अक्तू० और 29 नवबर (आर० एन० पी० बब०, 30 अक्तूबर और 4 दिस० 1880 क्रमश) मराठा, 1 जनवरी 1882, इण्डियन स्पेक्टेटर, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बब०, 13 जनवरी 1883), हिंदू, 18 जनवरी, 7 फरवरी, 5 सितबर 1884, 4 जून 1900, स्वदेशमित्रन, 27 जुलाई आर० एन० पी० एम०, अगस्त 1885), 13 नव० (वही, 30 नव० 1889), स्वदेशमित्रन, 8 मई, शांतिनेगा, 15 मई (वही, 31 मई 1896); तमिल प्रतिनिधि, 10 अक्तू० (वही, 31 अक्तू० 1900), स्वदेशमित्रन, 12 दिस० (वही, 15 दिस० 1900), 4 अगस्त के पैसा अखबार मे महबूब आलम का पत्र (आर० एन० पी० पी०, 18 अगस्त 1900), कसरा, 25 दिस० (आर० एन० पी० बब०, 29 दिस० 1900), 12 मार्च (वही, 16 मार्च 1901); ए० बी० पी०, 17, 23 जनवरी, 18 मार्च 1901, न्यू इंडिया, 19 मई 1902

20 रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 11 और अक्तूबर 1881 (खड IV, स० 2) पृ० 55, ए नोट फार स्पोलिएशन आफ इंडिया वही जनवरी 188[illegible] (खड VII, स० 3), पृ० 16, जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 890 1, दत्त सी० पी० ए०, पृ० 18[illegible], फैमिन इन इंडिया, पृ० XI ओपेन लेटर्स, पृ० 1[illegible] 39 पाद टिप्पणी 51 स्पीचेज II स० 73 179-80 ई० एच० II पृ० XIII, 0[illegible], 306 320 4[illegible] 1[illegible] 702, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 47 तथा आगे

21 दत्त, स्पीचेज II पृ० 57, 74, 177, 202 ई० एच० I पृ० X [illegible] ई० एच० II पृ० [illegible] 335, 492, 499, जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 50 1

22. जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 9 [illegible] रिपोर्ट आफ [illegible] सबकमेटी आफ पूना सार्वजनिक सभा पूना 1873 पृ० 32, 33 [illegible] प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे 1875 खड XXXVIII [illegible] इंडियन पालि-टिक्स, पृ० 111, 132, जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 376, 479-80, 4[illegible], 49[illegible] 500 प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे 1900, खड XXXVIII, पृ० 94, जी० के० पारिख, लैंड प्राब्लम इन इंडिया, पृ० 147 दत्त, ई० एच० II, पृ० 493 पाद टिप्पणी, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 50, 79-80 और देखिए ए० बी० पी०, 18 अक्तूबर 1900 और 12 फरवरी 1902; पी० पी० पिल्लई, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 60 रानाडे ने भी वकालत की कि राजस्व अधिकारियों को इस तथ्य को ध्यान मे रखते हुए तथा थोडी बहुत छूट देते हुए चलना चाहिए कि धरती को निरतर बढती हुई आबादी का पालन पोषण करना पडता है जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 3

23. पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र; जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खड I, स० 3), पृ० 37; रानाडे, जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खड IV, स० 2), पृ० 54, 56-7, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 347, 869, 904-05, डी० ए० खरे, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 117; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 625-6; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 568

24 रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 7-8, राय, पावर्टी, पृ० 186-7; जी० के० पारिख, लैंड प्राब्लम इन इंडिया, पृ० 124-34, तथा डिगबी पूर्वोद्धृत, मे उद्धृत, पृ० 625; दत्त, स्पीचेज I, पृ० 22; 'सर फिलिप फ्रांसिस' मिनट्स आन दि सब्जेक्ट आफ ए

परमानेंट सेटलमेंट फार बंगाल, बिहार ऐंड उड़ीसा विद ए प्रिफेस बाइ आर० सी० दत्त, (कलकत्ता 1901) पृ० XII, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 758, 760-1. पी० पी० पिल्लई, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 61

25 दत्त, स्पीचेज I, पृ० 22, स्पीचेज II, पृ० 170, ए० बी० पी०, 18 अक्तू० 1900 और 12 फरवरी 1902

26 तैलंग, स्पीचज, पृ० 17. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 654, 658, 900, जी० के० पारिख, डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 627 उद्धृत, और रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 82, गोखले, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाब 1901, खंड XXXIX, पृ० 244 और देखिए, डी० ए० खरे का तेरहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, मराठा, 26 अप्रैल 1903

27 तेरहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में डी० ए० खरे का अध्यक्षीय भाषण, मराठा, 26 अप्रैल 1903.

28 मालवीय, स्पीचज, पृ० 511 पूना सार्वजनिक सभा के सचिव के पत्र जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खंड I, सं० 3) और जुलाई 1886 (खंड IX, सं० 1) पृ० 2-5, रानाडे, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1) पृ० 3, जनवरी 1884 (खंड VI, सं० 3) पृ० [illegible], तैलंग, स्पीचेज पृ० 10-1, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 497, 902-04; मराठा, 25 जुलाई 1886 पी० पी० पिल्लई रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 117; जी० वेंकटरमन, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 132, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 450, जी० के० पारिख, डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 6[illegible], एन [illegible] चैरियार, रिप० आई० एन० सी० 1903, पृ० 64, दत्त, [illegible] II [illegible]

29 पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खंड I, सं० 3) पृ० 37, रानाडे, [illegible], जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1), पृ० 3, जनवरी 1884 (खंड VI, सं० 3), पृ० [illegible] जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 4[illegible]7, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 48-9 पी० मेहता पूर्वोद्धृत, पृ० 606, दत्त ओपेन लेटर्स, पृ० 47, 52, स्पीचेज II पृ० 39 1[illegible], ई० एच० II पृ० IX-XI, 152, 169, 171, 370, पाद-टिप्पणी 3[illegible]0, 382 ई० एच० II, पृ० XII-XIII 335, 491-2, 499, 505, 515-6, जी० के० पारिख डिगबी, पूर्वोद्धृत पृ० 626-8 पर, रिप० आई० एन० सी० 190[illegible], पृ० 56-7, वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 564 आर० एन० मधोलकर, 'दि इकोनामिक कंडीशन आफ इंडिया' एच० आर० अगस्त 1904, पृ० 259

30 रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1) पृ० 9; नेटिव ओपीनियन, 7 नवबर (आर० एन० पी० बंब०, 13 नवंबर 1880), सुबोध पत्रिका, 14 नव०, खानदेश वैभव, 12 नव०, लोकमित्र, 14 नव० (वही, 20 नव० 1880); ज्ञान प्रकाश, 13 दिस० (वही, 18 दिस० 1880), सूर्योदय, 20 दिस०, कल्पतरु, 19 दिस० (वही, 25 दिसंबर 1880); नव विभाकर, 6 नवबर (आर० एन० पी० बंग०, 11 नव० 1882), इंडियन स्पेक्टेटर, 7 जन० (आर० एन० पी० बंब०, 13 जन० 1881); अखबारे आम 12 दिस० (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 दिस० 1883), हिंदू, 5 सित० 1884; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 22 तथा सी० पी० ए०, पृ० 561; पी० पी० पिल्लई, रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 98-100; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 394-5, 451, 575-6, 622; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 364; आर० एन० मधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 39; एन० जी० चंदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 509-10, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 453; जी० एस० अय्यर रिप० आई० एन० सी०,

1901, पृ० 92-3, ई० ए०, पृ० 52-4; राय, इंडियन फैमिन, पृ० 58; न्यू इंडिया, 19 मई 1902; डी० ए० खरे का 13वें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, मराठा, 26 अप्रैल 1903, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 759- दत्त, ई० एच० II, पृ० 487

31. 16 मई 1880 को पूना में हुई सार्वजनिक सभा में स्वीकृत याचिका, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III, सं० 1), पृ० 5-6, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 575, 671, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 404-05, 408-10, 415, 418, 508-10, गोखले, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे 1900, खंड XXXVIII, पृ० 88-92 और स्पीचेज, पृ० 6, जी० के० पारिख, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे 1900, खंड XXXVIII, पृ० 118 और आगे, वही, 1901 खंड XXXIX, पृ० 236-7, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 87, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 52, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 760.

32. इंडियन स्पेक्टेटर, 11 और 18 सितंबर (आर० एन० पी० बंब० 17 और 24 सितंबर 1881), जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 466

33. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खंड IV, सं० 2) पृ० 57, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 177. जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 80, और आगे अध्याय 11

34. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1), पृ० 19, और वही, अक्तूबर 1881 (खंड IV, सं० 2) पृ० 56-7, राय, पावर्टी, पृ० 180-4, 187-8, जी० एस० अय्यर, विलबी आयोग, खंड III प्रश्न 18737, जी० के० पारिख, डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 628 पर, दत्त : इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 69, ई० एच० I, पृ० XI स्पीचेज II, पृ० 75

35. पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 607, दत्त, स्पीचेज I, पृ० 22, 37, 40, 180, सी० पी० ए० में, पृ० 480-1, 485, 487, ओपेन लेटर्स, पृ० 18-9 स्पीचेज II पृ० 57, ई० एच० I, पृ० XI, 94, 171, केसरी, 25 दिस० (आर० एन० पी० बंब०, 29 दिस० 1900), आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 259

36. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 480, 497, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 50

37 पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खंड-I, सं० 3), पृ० 43; रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1884 (खंड VI, सं० 3), पृ० 5-6, हुसैन खान, रिप० आई० एन० सी० 1888, पृ० 176; एस० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 50; इंदु प्रकाश, 28 जुलाई 1890; आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 48; जे० राम, वही, पृ० 52; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 696-7, 824, 969-71, 886 तथा आगे, 894, 904-05, डी० ए० खरे, रिप० आई० एन० सी० 1893 पृ० 117, एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 521-2; जी० एस० अय्यर, विलबी आयोग, खंड I, प्रश्न 18737, दत्त ओपेन लेटर्स, पृ० 52; स्पीचेज II, पृ० 30, 39, 41, 75, 105, 184, 186, 188, 198; लैंड प्राब्लम्स आफ इंडिया, पृ० 17-8; ई० एच० I, पृ० XI, 94 171, ई० एच० II, पृ० XII, 467, 501, 516.

38. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1881 (खंड IV, सं० 2), पृ० 55, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 347, 453, 870-1, 904-05, अखबारे आम, 21 जुलाई (आर० एन० पी० पी० 30 जुलाई 1898); एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 521; दत्त, सी० पी० ए०, पृ० 478, 480, स्पीचेज II, पृ० 91 तथा आगे, ई० एच० II, पृ० XIII.

39. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 2) पृ० 48, 57, ज्ञान प्रकाश, 8 फरवरी (आर० एन० पी० बब०, 10 फरवरी 1883); बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 49, जे० एन० बोस, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 50, आई० एन० सी० 1891 और 92 के प्रस्ताव क्रमश III और IX, डी० ए० खरे, रिप० आई० एन० सी० 1893 पृ० 117, आर० एन० मधोलकर, इडियन पालिटिक्स, पृ० 45, स्वदेशमित्रन, 17 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1900), एल० ए० जी० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903, पृ० 55 रानाडे ने 1879 मे ही निर्देश किया था कि कृषि मे इस समय जितनी भी पूजी नियोजित है वह सारी की सारी वैयक्तिक तथा अनुत्पादक उद्देश्य लिए हुए है अत उसकी प्रकृति सूदखोर पूजी की है न कि निवेश पूजी की जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II, स० 1) पृ० 16 7

40 बगाली 21 अक्तूबर 1882, जी० एम० खरपडे, रिप० आई० एन० सी० 1893, पृ० 118

41 दत्त, ई० एच० II, पृ० 269, 306, 463, 480-3

42 इदु प्रकाश, 25 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब०, 30 अक्तू० 1880), सुबोध पत्रिका, 14 नव० (वही 20 नव० 1880), इदु प्रकाश, 5 सित० (वही, 10 सित० 1881), दि वायसरायल्टी आफ लार्ड लिटन जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खड III, स० 1), पृ० 61, रानाडे, जे० पी० एस० एस० जन० 1881 (खड III स० 3) पृ० 18 और अक्तू० 1881 (खड IV, स० 2) पृ० [illegible], अखबारे आम, 12 दिस० (आर० एन० पा० पी०, 19 दिसबर 1883), हिंदू, 18 जन० 1884, पी० पी० सिन्हा, रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 98, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 150 575 605, 622 आई० एन० सी० 1895 का प्रस्ताव X, आर० एन० मधोलकर इडियन पालिटिक्स पृ० 39, ए० नदी, इडियन पालिटिक्स, पृ० 131 2 दत्त सी० पी० ए०, पृ० 480 स्पीचेज II पृ० 578 193-4 ई० एच० II, पृ० 487, 516, जी० के० पारिख का दसवे बबई प्रातीय सम्मेलन मे अध्यक्षीय भाषण, बगाली, [illegible] 1900, दसवे बबई प्रातीय सम्मेलन मे तिलक द्वारा प्रस्तुत और सम्मेलन द्वारा पारित प्रस्ताव, मराठा, 27 मई 1900, राय इंडियन फेमिस, पृ० 50, 59, जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 410, 414 421, 426, 435, गोखले, स्पीचेज, पृ० 52, 1017, वाचा सी० पी० ए०, पृ० 561-2, 585 न्यू इडिया, 19 मई 1902 तथा देखिए, अध्याय 10 आगे

43 गोखले, प्रोसीडिग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर ग्राफ बाब 1901, खड XXXIX, पृ० 247, जी० एम० अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1901, पृ० 92 3, दत्त, ई० एच० II, पृ० 487 तथा देखिए अध्याय 4 का 72 सख्या की पादटिप्पणी

44 देखिए आगे अध्याय 12 और 13

45 जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खड IV, स० 2), पृ० 58 और देखिए, रानाडे, जे० पी० एस० एस० जनवरी 1884 (खड VI, स० 3) पृ० 4, वाचा, सी० पी० ए० पृ० 574-5

46 रानाडे जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1881 (खड IV, स० 2) पृ० 57, एसेज, पृ० 256-7

47 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 870 और देखिए, पृ० 347

48 दत्त ओपेन लेटर्स, पृ० 79-80 तथा देखिए, वही, पृ० 81-3, फेमिस इन इडिया पृ० XIV-XVI

49 उन्होने तो जोर देकर यहा तक कह डाला कि भारत मे भूमि समस्या का कभी समाधान नही हो पाएगा और भारत चैन से तब तक नही बैठेगा जब तक यह नही किया जाता

50. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 173, 176, रानाडे, जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1879 (खंड II, सं० 2) पृ० 66, जन० 1881 (खंड III सं० 3), पृ० 17 और अक्तू० 1881 (खंड IV, सं० 2), पृ० 42, 45-6, एल० एम० घोष, स्पीचेज, पृ० 28, मराठा, 31 जुलाई 1881, स्वदेशमित्रन 8 मई, शशिलेखा, 15 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1896), आई० एन० सी०, 1890 और 1902 के प्रस्ताव क्रमश XIII तथा III, जी० एस० अय्यर विलबी आयोग, खंड 3, प्रश्न 18643-4, दत्त, स्पीचेज I पृ० 23,26,37,40, सी० पी० ए०, पृ० 486, ओपेन लेटर्स, पृ० 53, स्पीचेज II पृ० 17-8, 41,59,87,200, 202, ई० एच० II पृ० 528, 606-07; स्वदेशमित्रन, 17 मार्च (आर० एन० पी० एम० 31 मार्च 1900), ए० बी० पी०, 21 अप्रैल, 4 जून, 18 अक्तू० 1900, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 364-5, 457, 497, 513, एम० एम० मालवीय, रिप० आई० एन० सी०, 1900 पृ० 98, वाचा, सी० पी० ए० पृ० 601, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 691, 698-699, बारहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन का प्रस्ताव, मराठा, 10 नव० 1902, तेरहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन में तिलक का भाषण, मराठा, 10 मई 1903, एल० ए० जी० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 523, गोखले, स्पीचेज, पृ० 77, 80, 83 112 तथा देखिए आगे पाद टिप्पणी 55 58

51 रानाडे, जे० पी० एस० एस० अप्रैल 1884 (खंड VI, सं० 4), पृ० 55 और 61 आगे, रानाडे, वही, जुलाई 1879 (खंड II सं० 1) पृ० 11-3, दत्त ओपेन लेटर्स पृ० 41 53, 65, 89, 82-3 फैमिन्स इन इंडिया पृ० XVI स्पीचेज II पृ० 18 75, 104, 178 9 20, ई० एच० I पृ० 396, ई० एच० II, पृ० X, XII, 471, 485, 495 501-02 507 612 मराठा, 3 मई 1903

52 दत्त, सी० पी० ए०, पृ० 482 3 ओपेन लेटर्स, पृ० 41-2, 53, 65 9, 82-3 बाद में आर० सी० दत्त ने विरोध प्रकट करते हुए कहा कि उन्होंने सकल उपज के 1 5 भाग पर लगान की अधिकतम सीमा निर्धारित किए जाने पर न बढ़ाने का प्रस्ताव किया था न कि उसको लगान के सामान्य मानक के रूप में रखने का प्रस्ताव रखा था अधिकतम लगान पर इस प्रकार की रोक की आवश्यकता उस समय उत्पन्न हुई,जब राजस्व अधिकारियों द्वारा उपज के आधे भाग पर संगठित लगान कभी कभी कुल उपज के 1 5 भाग से अधिक बैठता था और कभी कभी तो सकल उपज के 1/3 से भी बढ़ जाता था आपेन लेटर्स पृ० 39 पाद टिप्पणी 47 पाद टिप्पणी, 53 पाद टिप्पणी, 65 पाद टिप्पणी, स्पीचेज II पृ० 178-9, ई० एच० II पृ० 512-3 यह संभव है कि दत्त इस ढंग से अपनी उस गलती पर परदा डालने की चेष्टा कर रहे थे जो मतभेद की तीव्रता में उनसे हो गई थी और कर्जन ने राष्ट्रवादियों की समालोचना को नकारने के लिए जिसका बड़ी बुद्धिमत्ता से उपयोग किया था

53 जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खंड II सं० 1) पृ० 13

54 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 480-1

55 एल० एम० घोष, स्पीचेज, पृ० 28, आई० एन० सी० 1895, 1896 और 1901 और 1903 के प्रस्ताव क्रमश: XIV, XIII, III और III पूना सार्वजनिक सभा की ओर से 9 नवंबर 1895 को लार्ड एलगिन के स्वागत में किया गया भाषण जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1896 (खंड XVIII सं० 3), पृ० 11; सी० शंकरन नायर सी० पी० ए०, पृ० 385; दत्त, स्पीचेज I पृ० 40, 181, ओपेन लेटर्स पृ० 48-9, स्पीचेज II पृ० 41, 49, 75, 104, 180-1, 186-7, 190, 198-202, लैंड प्राब्लम आफ इंडिया, पृ० 25-6, ई० एच० I पृ० XIV, ई०

एच० II, पृ० 485, 495, 501, 595, 612, एल० ए० जी० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 55

56 तेलग, स्पीचेज, पृ० 4, 6-7, 20, रानाडे, जे० पी० एस० एस० जनवरी 1884 (खंड VI स० 3), पृ० 8-11 और वही, अप्रैल 1884 (खंड VI स० 4), पृ० 48-9, मराठा, 30 मार्च 1884, 25 जुलाई 1886, ज्ञान प्रकाश, 3 अप्रैल, इदु प्रकाश 31 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 5 अप्रैल 1884), इंडियन स्पेक्टेटर, 20 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1884), इदु प्रकाश, 12 जुलाई (वही, 17 जुलाई 1886), पूना सार्वजनिक सभा के सचिवो के पत्र, दिनाक 4 जून 1884, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1886 खंड IX, स० 1), पृ० 3, 5-6, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 824, दत्त, ई० एच० II पृ० 465-7.

57 एन० एम० घोष, स्पीचेज, पृ० 28, एम० एम० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1869, पृ० 50, आई० एन० सी०, 1894 1896, 1898, 1901 और 1903 के प्रस्ताव क्रमश II (बी), XVII, VI, III और III, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 497, दत्त, ओपेन लेटर्स पृ० 53, 65-6, [illegible], 83 एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 698-9

58 [illegible] स्पीचेज पृ० 395, 622-4, दत्त, ओपन लेटर्स पृ० [illegible] 54, 80, फैमिन इन इंडिया, पृ० XVI स्पीचेज II पृ० 12, 4 [illegible] एच० II पृ० [illegible], 612, आई० एन० सी० 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश III, III (ए) III (बी), डी० ई० [illegible] बंबई प्रांतीय सम्मेलन मे अध्यक्षीय भाषण, मराठा, 26 मई 1903

59 आई० एन० सी० 1895 का प्रस्ताव स० X, एन० जी० चंदावरकर [illegible] पी० ए० पृ० 520

60 [illegible], प्रोसीडिंग्स आफ दि कौसिल आफ दि गवर्नर आफ बम्बे 1901, खंड XXXIX पृ० 24 [illegible] आई० एन० सी० 1901 पृ० 93 और [illegible] पृ० 54-5

61 [illegible] उठाई गई और देखिए रानाडे जे० पी० एस० एस० अक्तूबर 1879 खंड II स० 2), पृ० 66, पी० पी० [illegible] आई० एन० सी० 1892 पृ० [illegible] 100 मराठा, 17 जन० 1897, जी० के० [illegible], प्रोसीडिंग्स आफ दि कौसिल आफ दि गवर्नर आफ बाम्बे 1900 खंड XXXVIII पृ० 118 और आगे, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 404 413 4, 420, 511, 555-8, हिंदू० 18 अगस्त 1902 दत्त, स्पीचेज II पृ० 53, जी० एस० अय्यर, ई० [illegible] पृ० 55-7 गोखले स्पीचेज, पृ० 82 [illegible]

62 रानाडे, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खंड II स० 1), पृ० 10 13-4, और अप्रैल 1884 (खंड II स० 4) पृ० 55, बबई समाचार, 22 नव० (आर० एन० पी० बंब, 27 नव० 1880), पूना सार्वजनिक सभा द्वारा प्रस्तुत स्मरणपत्र, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1881 खंड IV स० 1), पृ० [illegible], ए० बी० पी०, 26 जून 1884, और 19 जून 1892, मराठा का एक स्तंभ लेख, 7 फरवरी 1892, राय, इंडियन फैमिंस, पृ० 58 दत्त, ई० एच० II, पृ० 493 पाद टिप्पणी आर० एम० सयानी, एल० सी० पी० 1897 खंड XXXVI पृ० 191

63 रानाडे, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खंड II स० 1), पृ० 13-4; दत्त, ई० एच० II पृ० 493 पादटिप्पणी

64 केसरी, 15 और दिस० (आर० एन० पी० बंब, 19 और 26 दिस० 1896); आर० एन० पी० बंब, 2, 9, 16, 23 और 30 जनवरी और 6, 13 और 27 फरवरी 1897 मे यथाप्रतिवेदित विभिन्न समाचारपत्रो मे प्रकाशित रिपोर्ट, मराठा 3, 10, 17 जनवरी 1897; रामगोपाल,

पूर्वोद्धृत, पृ० 122-30, तहमकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 69-73, प्रधान और भागवत, पूर्वोद्धृत, पृ० 100 03, मास मैटीरियल्स फार ए हिस्टरी आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, (बबई), खड II पृ IX, 196, 638

65 उदाहरणार्थ, 15 दिसबर 1896 के अक के केसरी का लेख अशिक्षित किसान को यह पढ़ाने की आवश्यकता है कि उसके अधिकार क्या है और उन्हे वह किस प्रकार प्राप्त कर सकता है' उन्होने यह घोषणा की कि नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे किसान जनता को समझाए कि यदि उनकी फसल खराब हो गई है तो उन्हे लगान चुकाने की आवश्यकता नही है (आर० एन० पी० बब०, 19 दिस० 1896), उन्होने इसी अक मे लिखा 'यदि लोग गोली [illegible] अपने अधिकारो के लिए लडने का दृढ निश्चय कर ले तो नेतागण उनका युद्ध म [illegible] के लिए कर्तव्यबद्ध होगे (प्रधान तथा भागवत, पूर्वोद्धृत, पृ० 102) तथा देखिए रामगोपाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 125-6, और तहमकर, पूर्वोद्धृत, पृ० 71

66 रामगोपाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 126-9

67 वही, उद्धृत, पृ० 129-30

68 तहमकर –पूर्वोद्धृत, पृ० 63 पर उद्धृत

69 जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खड II स० 1), पृ० 14-20 और अक्तू० 1881 (खड IV स० II), पृ० 54-8 एमेज, पृ० 256-7 रिप० आई० एन० सी० 1887 पृ० 143, इस प्रकार 1881 मे स्थाई कर निर्धारण की वकालत करते हुए कहा 'सरकार के पास अवशिष्ट एकमात्र विकल्प, जिसके साथ सभी उपकरणो का सुधार महत्वहीन हो जाता है' का अनुपस्थिति मे अन्य उपचारो के प्रभाव की चर्चा करते हुए उन्होने शोकाकुल होकर कहा भारी लगानो की वसूली की आसान सुविधाओ ने इसे विस्मृति की नीद मे सुला दिया है और वे यह मानने लगे हैं कि रोटी के टुकडे के लिए परेशान लाखो किसान वैधानिक कानूनो के रूप म पत्थर के टुकडो के उपहार से सतुष्ट हो जाएगे वस्तुत गहरे घावो को और गहरा करने वाली पद्धति म नव जीवन रक्त और शक्ति का सचार किए बिना किरायो की सतही खाई को पाटने वाले कानूनो से कोई लाभ नही होगा.' जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर (खड IV, स० 2) पृ० 54 और 57 क्रमश

70 प्रस्ताव VII 1888 म प्रस्ताव पारित कराने के प्रयत्न की असफलता के लिए देखिए रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 163-4 174-8

71 1890 का प्रस्ताव VI 1891 का III, 1892 का IX, 1893 का X और XI, 1894 का II, 1896 का XIII, 1897 का VII, 1898 का VI, 1900 का XXIII, 1901 का III, 1902 का III, 1903 का III और 1904 का III

72. एल० एम० घाप, स्पीचेज, पृ० 5; पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र, जे० पी० एस० एस० जनवरी 1879 (खड I स० 3) पृ० 43, 16 मई 1880 को पूना मे हुई एक सार्वजनिक सभा मे स्वीकृत याचिका, जे० पी० एस० एस० जुलाई, 1880 (खड III स० 1) पृ० 8-9, पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र दिनाक 2 मार्च, 1881 जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खड IV, स 1), पृ० 8-9, शेख राजा हुसैन खा, मुशी शेख हुसैन खा और राजा रामपालसिंह, आई० एन० सी० 1888 पृ० 1756-, बी० एन० सेन रिप० आई० एन० सी० 1889, पृ० 48-9, एस० सुब्रह्मण्य अय्यर वही, पृ० 50-1, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 49, और इडियन पालिटिक्स पृ० 45-6, बी० जी० तिलक, रिप० आई० एन० सी०

1893 पृ० 114 और रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 133, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 362-3, 811, 824-5, एम० आर० सयानी, एल० सी० पी०—1897, खंड-XXXVI स० 191 और सी० पी० ए० पृ० 365, जी० आर० एम० चिननवीस, एल० सी० पी० 1898 खंड X XVII पृ० 481, पी० ए० चारलू, वही, पृ० 502 और एल० सी० पी० 1900, खंड XXXIX पृ० 146, पी० महता, स्पीचेज, पृ० 606 07 एम० एम० मालवीय, रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 91 3 और रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 99 एम० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 75 6, गोखले, स्पीचेज पृ० 24 5 112 जी० एम० अय्यर एन० आर०, फरवरी 1902 पृ० 149 51, बारहवें और तेरहवें बबई प्रांतीय सम्मलन के प्रस्ताव, मराठा 16 नवबर 1902 और मई 1903 क्रमश

73 भूराजस्व के स्थाई निर्धारण की माग आर० सी० दत्त के भूमि समस्या पर लिखे गए लगभग सभी लेखों में उपलब्ध है उदाहरणार्थ देखिए, इग्लैंड एंड इंडिया पृ० 51 133 5 फैमिस इन इन्डिया', पृ० XII, स्पीचेज I पृ० 18-24, 158 180-1 इ० एच० II पृ० X XI

74 ज्ञान प्रकाश 6 फरवरी (आर० एन० पी० बब, 8 फरवरी 1879) अरुणोदय, 27 अप्रैल (वही, 3 मई 1879), शिवाजी, 8 अगस्त (वही 16 अगस्त 1879) सुबोध पत्रिका, 1 अगस्त (वही, अगस्त 1880 इंदु प्रकाश 7 मार्च (वही 12 मार्च 1881), अरुणोदय 30 अक्तूबर (वही, 5 नवबर 1890) 24 मार्च 1900 3 फरवरी 1901, ज्ञान प्रकाश 8 फरवरी (आर० एन० पी० बब० 10 फरवरी 1883) सोमप्रकाश 8 जनवरी (आर० एन० पी० बग० 13 जनवरी 1883), नेटिव ओपीनियन, 1 अप्रैल 1883 हिंदू 27 फरवरी 1884, 13 सित० 1889 2 जून० 1891, नसीम आगरा 23 अग० ' ' एन० पी० पी० एन० अगस्त 1884), स्वदेशमित्रन, 27 जुलाई (आर० एन० पी० ए० अगस्त 1885) बगाली, 28 जून 1890, इंदु प्रकाश, 28 जून 1890 हिंदुस्तान, 3 मार्च आर० एन० पी० एन० 10 मार्च 1891) हिंदुस्तानी ' अक्तू० (आर० एन० पी० एन० 15 अक्तू० 1891), हिंदुस्तानी, 8 नवबर (वही 15 नवबर 1893), विक्टोरिया पेपर, 25 अक्तू० (आर० एन० पी० पी०, 4 नवबर 1893, पैसा अखबार, 13 अक्तू० (वही 20 अक्तू० 1894), केरल पत्रिका, 26 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 31 जन० 1895), सियालकोट पपर, 8 अक्तू०, पैसा अखबार, 7 अक्तू० (आर० एन० पी० पी०, 28 अक्तू० 1899), स्वदेशमित्रन 18 मार्च और 21 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च और 31 अगस्त 1900 क्रमश)

75 लैंड रैवेन्यू पालिसी आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया, (कलकत्ता, 1902) कंडिका 5

76 वही, कंडिका 5 और 6

77 वही, कंडिका 6

78 वही, कंडिका 9

79 रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 63 यह काफी मनोरंजनक है कि एक ओर तो रीस ने लगान के स्थाई बदोबस्त सबधी काग्रेस के आंदोलन को जमींदार समर्थक नाम दे डाला दूसरी ओर उसी प्रस्ताव के तीन ही पृष्ठों के उपरांत प्रत्येक जमींदार के निजी स्वामित्व के स्थाई बदोबस्त की वकालत प्रारभ कर दी रीस की मान्यता थी कि यह स्थाई बदोबस्त बगाल के स्थाई बदोबस्त से भिन्न होगा (वही, पृ० 66-9) इससे स्पष्ट है कि उसे यह मालूम था कि स्थाई बदोबस्त शब्द के विपरीत रूप से दो भिन्न अर्थ हो सकते थे

80 लोवेट फ्रेजर पूर्वोद्धृत, पृ० 154-5

81 शाह : सिक्सटी इयर्स आफ इंडियन फैमिस, पृ० 196 और देखिए, पृ० 200.

82 थामस, पूर्वोद्धृत, पृ० 123, लोकनाथन, दि इकोनामिक्स आफ गोखले', इंडियन जरनल आफ इकोनामिक्स, जनवरी 1842, खंड XXII सं० 3 पृ० 228, बी० आर० मिश्र : लैंड रेवेन्यू पालिसी इन दि यूनाइटिड प्राविंसेज (बनारस 1942) पृ 37-39 हां लोकनाथन ने गोखले को स्थाई बंदोबस्त का समर्थन करने के दोष से मुक्त कर दिया

83 पी० सी० घोष 'दि डेवलपमेंट आफ इंडियन नेशनल कांग्रेस, 1892-1909 (कलकत्ता, 1960) पृ० 41-3

84 वही, पृ० 44 यह एक भारी आश्चर्य का विषय है, जैसाकि बाद में दिखाया जाएगा, भाषण में कोई ऐसा अवतरण ही न था, जिसकी इस ढंग से व्याख्या की जा सके

85 बी० बी० मिश्रा दि इंडियन मिडिल क्लासेज देयर ग्रोथ इन माडर्न टाइम्स (लंदन 1961), पृ० 350 यह भी एक संयोग है कि जिस वर्ष यह प्रस्ताव, जो मिश्रा के अभिप्राय के अनुकूल नहीं, पारित हुआ, वह वर्ष 1888 न होकर 1889 था 1888 में तो यह मामला कांग्रेस की विभिन्न स्थाई समितियों के सदस्यों के पास उनकी राय जानने के लिए ही भेजा गया था (देखिए प्रस्ताव XIV)

86 वही, पृ० 349-50

87 पी० स्पीयर : इंडिया ए माडर्न हिस्ट्री (एन० आर्बर, यू० एस० ए० 1961) पृ० 312 इसी प्रकार एच० एल० सिंह लिखते हैं जहां तक भूमिधारी वर्गों का संबंध है, कांग्रेस की नीति अधिकांशतः उनके पक्ष में थी कांग्रेस स्थाई बंदोबस्त के विस्तार की समर्थक था, जो किसानों और जमींदारों के लिए बहुत अधिक और रैयत तथा राज्य के लिए बहुत ही कम उपयोगी था कांग्रेस की इस नीति का सबसे जोरदार समर्थन करने वाले [illegible] ही उजागर किया कि बंगाल के जमींदार बड़े ही शोषणकारी थे और इस प्रांत के वकीलों और वक्ताओं के साथ उनके व्यापारिक संबंध थे' प्राबलम्स एंड पालिसीज आफ दि ब्रिटिश इन इंडिया, 1885-1898 (बंबई 1963) पृ० 217

88 एल० एम० घोष स्पीचेज पृ० 8

89 रानाडे, एसेज, पृ० 327

90 जे० पी० एस० एस० जनवरी 1874 (खंड VI सं० 3) पृ० 19-20.

91 आर० एन० पी० बंगाल, 12 मार्च 1881

92 और देखिए मराठा, 22 अगस्त 1886 और बंगाल पब्लिक ओपीनियन (बी० ओ० आई०, 31 जनवरी 1884)

93 रिप० आई० एन० सी, 1888 पृ० 175 1889 के कांग्रेस के अधिवेशन में स्थाई बंदोबस्त के प्रस्ताव के प्रस्तोता बी० एन० सेन ने इस पक्ष पर बल दिया था रिप० आई० एन० सी० 1889 पृ० 48-9) इसी प्रकार 1890 के कांग्रेस के अधिवेशन में जानकीनाथ घोष ने विश्वास दिलाया कि सारे बंबई और मद्रास में हम किसानों के स्वत्वाधिकार वाला स्थाई बंदोबस्त ही देखना चाहते हैं (रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 51-2)

94 और देखें एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 75-6

95 रिप० आई० एन० सी० 1893 पृ० 14 उन्होंने यह भी टिप्पणी की कि सरकार देश के विभिन्न भागों में प्रचलित स्थिति के अनुरूप जमीदारों अथवा ग्रामों के मालिक अथवा किसानों के साथ बातचीत कर सकती है

96 रिप० आई० एन० सी० 1894, पृ० 38 और देखिए पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 606-07; पी० ए० चारलु, एल० सी० पी० 1900 खंड XXXIX पृ० 147

97. राय . इंडियन फैमिंस, पृ० 567.

98. एच० आर० फरवरी 1902, पृ० 149-51, और देखिए, गोखले स्पीचेज, पृ 24

99. दत्त पीजटरी इन बगाल (कलकत्ता, 1874) पृ० 46 और आगे

100 बगबासी, 10 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 17 अगस्त 1895)

101 दत्त इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 134

102 सी० पी० ए०, पृ० 480 पी० सी० घोष को गुमराह करने वाली बात कदाचित आर० सी० दत्त की भारत के दूसरे भागो मे बगाल प्रशासन के विस्तार की माग थी, परन्तु दत्त विस्तार की माग कर रहे थे न कि जमीदारी पट्टेदारी की. वह उस पद्धति की माग कर रहे थे जिसमे कुल उपज का 1/6 भाग ही किराए के रूप मे चुकाना होता है उनके भाषण का पूरा वाक्य इस प्रकार है 'बगाल नियम को भारत के दूसरे भागो म विस्तार कीजिए दूसरे प्रांतो मे कुल उपज के 1/6 भाग को किसान से वसूल किए जाने वाले धरती के किराए की अधिकतम सीमा निर्धारित कीजिए, तब देखिए कि अकाल व रावन की समस्या कैसे सुलझती है,' (वही, पृ० 481).

103 दत्त ओपन लेटर्स पृ० 65 और देखिए, वही, पृ० 74 स्पीचेज II, पृ० 17-8, ई० एच० II, पृ० X;

104 उदाहरणार्थ देखिए पूना सार्वजनिक सभा के सचिव का पत्र, जे० पी० एस० एस० जनवरी 1879 (खंड I स० 3) पृ० 43 रानाडे, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खंड II, स० 1) पृ० 1, तमेज पृ० 256; 16 मई 1880 को पूना की जन सभा म स्वीकृत याचिका जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880, (खंड III स० 1) पृ० 9, ज्ञान प्रकाश, 8 फरवरी (आर० एन० पी० बंब० 10 फरवरी 1883, आई० एन० सी० -1888, 1889, 1890, 1891, 1892, 1893, 1895 1897 और 1900 के प्रस्ताव क्रमश XIV VII, VI III, IX, X, XIV, VII और XXIII, सी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1889 पृ० 48, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 363, 811, 854-5 आर० एन० मधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 45-6, पी० ए० चारलु, एल०सी०पी०, 1898, खंड XXXVII, पृ० 502 और वही, 1900, खंड XXXIX, पृ० 147, सी० शकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 384-5 दत्त : इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 51, 134-5 स्पीचेज II पृ० 168 गोखले, स्पीचेज, पृ० 24

105 रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II स० 1), पृ० 14-15, 16 मई 1880 को पूना म हुई जन सभा में स्वीकृत याचिका, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1880 (खंड III, स० 3, पृ० 9, रिप० आई० एन० सी० 1889 पृ० 48-9, आई० एन० सी० 1889, 1893, 1894, 1898, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव VI, XI, II, III, III, और VI (बी) क्रमश , जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 364 811, दत्त इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 91-2 स्पीचेज I पृ० 19-20 स्पीचेज II पृ० 40-1, 172-3, फैमिंस इन इंडिया, पृ० XII, ई एच II पृ० X-XI, 273-291; आर० एन० मधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 45 , गोखले, स्पीचेज, पृ० 25.

106. दत्त, ई० एच० I पृ० 123-5, 135-40, 152, 168 और देखिए, दत्त : इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 49-50 ओपेन लेटर्स, पृ० 31, ई० एच० II पृ० 77-8 दत्त ने एलफिंस्टन के रैयतवाड़ी पद्धति के प्रबल समर्थक होने पर भी ग्राम समुदायो और ग्राम पचायतो आदि के बचाने की चेष्टा के लिए उसकी प्रशसा की (ई० एच० I, पृ० 352-55)

107. 16 मई 1880 को पूना में हुई जन सभा मे स्वीकृत याचिका जे० पी० एस० एस० जुलाई 1880

(खंड III सं० 1), पृ० 8-9; रानाडे, एसेज, पृ० 327, जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खंड IV सं० 2) पृ० 56, वही, जनवरी 1884 (खंड VI सं० 3) पृ० 21 वही, अप्रैल 1884. (खंड VI सं० 4) पृ० 55; शेख राजा हुसैन खां, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 175; आर० एन० मधोलकर, रिप० एन० सी० 1890 पृ० 49, के० जी० देशपांडे, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 33 आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव II (बी), पी० ए० चारलु, एल० सी० पी० 1900 खंड XXXIX पृ० 146; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 607, दत्त, स्पीचेज I पृ० 181-2; ओपेन लेटर्स पृ० 48, 66, 79, फैमिस इन इंडिया पृ० XV, स्पीचेज II पृ० 187-8, ई० एच० II पृ० 514, गोखले, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे 190 खंड XXXIX पृ० 245 एल० ए० जी० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 56.

108. दत्त, ई० एच० II पृ० 503-04, एस० गोपाल, दि वायसरायल्टी आफ लार्ड रिपन (लंदन, 1953), पृ० 189.

109. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1884 (खंड VI सं० 3), पृ० 4-11; साधारणी, 23 नव०, संजीवनी, 22 नव०, समाचार चंद्रिका, 24 नव० (आर० एन० पी० बंग० 29 नव० 1884); ग्रामवर्त प्रकाशिका, 29 नव० (वही, 6 दिस० 1884), प्रतिकार, 12 दिस० (वही, 20 दिस० 1884), आई० एन० सी० 1893, 1894, 1898 और 1899 के प्रस्ताव क्रमश XI, II, VI और II (बी) आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 159, रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 87, पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 607; दत्त, स्पीचेज I पृ० 158-60, ओपेन लेटर्स, पृ० 35, 41, 53-4, 79, फैमिस इन इंडिया, पृ० XIII, XV, स्पीचेज II पृ० 9, ई० एच० I पृ० XI-XII, 503-504

110 आई० एन० सी० 1889, 1890, 1902 1903 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश VII, VI, III, और III (बी) दत्त, स्पीचेज I पृ० 181 2, ई० एच० पृ० 154 गोखले, स्पीचेज, पृ० 24, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 87

110-ए दत्त, स्पीचेज II, पृ० 173 तथा देखिए, गोखले, स्पीचेज, पृ० 25

111 आई० एन० सी० 1896, 1901, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश XIII, III, III, III और III

112. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1) पृ० 17 8, इंदु प्रकाश, 10 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 15 मार्च 1879), शिवाजी, 8 अगस्त (वही, 16 अगस्त 1879), इंदु प्रकाश, 7 मार्च (वही, 12 मार्च 1881), पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र, ज० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV, सं० 1), पृ० 8; ए० बी० पी०, 5 अक्तूबर 1882, 28 नव० 1889, 27 मार्च 1900, बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1889 पृ० 48, जे० एन० बोस, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 51, ए० नंदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 33-4, मालवीय, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 99, दत्त . इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 13, 134; स्पीचेज I, पृ० 15-18, 180-1, सी० पी० ए०, पृ० 481; ओपेन लेटर्स, पृ० 59 60, 64-5, स्पीचेज II, पृ० 4 5, 40, 169, ई० एच० I, पृ० 94-6, ई० एच० II, पृ० X 461, 509 और जे० एन० गुप्ता की लाइफ ऐंड वर्क आफ आर० सी० दत्त (लंदन 1911) पुस्तक पृ० 333-4 पर उद्धृत एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 698, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 759.

113 दत्त फ्रामिस मिनिट्स, पृ० IV तथा देखिए, स्पीचेज I, पृ० 18, ओपेन लेटर्स, पृ० 64 ई० एच II, पृ० 94-5

114 दत्त, सी० पी० ए०, पृ० 484 ओपेन लेटर्स, पृ० 22, 61-4, फैमिंस इन इंडिया पृ० IX, 106 07, ई० एच० II, 461 इस संबंध मे दत्त के विवेचन मे स्पष्ट गलती यह है कि वह यह देखने मे चूक गए कि बंगाल में वास्तविक किसानों और जमींदारों के मध्य बिचौलिए थे जमींदार के पास तो काबिज किसान की ओर से 1/5 भाग से अधिक नहीं पहुचता था जबकि वास्तव में किसान बेचारे को शायद अपनी कुल उपज के प्रतिशत का बहुत बड़ा भाग देना पड़ता था और सचमुच ही यह सब कुछ रैयतवाड़ी मे भी हो रहा था

115 राय इंडियन फैमिंस, पृ० 55-6 और देखिए, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज II, 12-3, इंडियन स्पेक्टेटर, 25 सितंबर (आर० एन० पी० बंब० 1 अक्तूबर 1881), ग्रामवर्त्त प्रकाशिका, 16 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 1 मार्च 1884), मराठा, 17 फरवरी 1884, बंगाली, 28 जून 1890 और आगे देखिए, बंगाल रेंट बिल की धारा जैसा पहले निर्देश किया जा चुका है, एक नवयुवक के रूप मे दत्त ने स्वयं 1874 में असहाय किसानों का दमन करने और उन्हे दरिद्र बनाने की जमींदारों को अनुमति देने वाले 1793 के स्थाई बंदोबस्त की निंदा की थी. देखिए, 'पीजेंटरी आफ बंगाल', पृ० X, 46 और आगे 1886 मे जी० वी० जोशी ने बंगाल मे ऊंचे किराए लागू होने की निंदा लगातार की थी पूर्वोद्धृत, पृ० 884

116 दत्त इंग्लैंड एंड इंडिया पृ० 90-1, 116, स्पीचेज I, पृ० 156 180, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 55 सी० पी० ए०, पृ० 481 ओपन लेटर्स पृ० 18 9 59, 61 65, 78 फामिस मिनिट्स पृ० VII VIII स्पीचेज II, पृ० 4 5 10, ई० एच० II, पृ० 263 4 437, 460-1

117 लैंड रैवेन्यू पालिसी आफ गवर्नमेंट आफ इंडिया 1902, कंडिका-9

118 दत्त स्पीचेज II, पृ० 170

119 दत्त पीजेंटरी आफ बंगाल, पृ० 83 इस बायबाजी के नैतिक उद्देश्य की चर्चा दत्त ने निम्न-लिखित रूप में प्रस्तुत की है और फिर यह जमींदार है कौन ? वही, जो किराया बढ़ाने के लिए किसान को परेशान करता है ? वही, जो स्वर्ग महलों के शहर मे अपने आरामदेह घर मे चुपचाप बैठा रहता है और उसके मजदूर प्रात से सायं तक खेतों मे श्रम करते हैं और रात भर जागते रहते हैं वे जेठ की तपती दुपहरी में, सावन के बरसते पानी और पौष की सख्त कपाने वाली सर्दी में खुले आसमान के नीचे काम करते है वे जमीन जोतते है और फसल काटते हैं पौधे लगाते हैं और फल बीनते है उन्हें इसलिए परेशान किया जाता है कि वे अपने अथक श्रम के फल के भाग पर निरंतर बढ़ती मांग को पूरा करने से इनकार करते हैं जमींदारों के पास किसानों को तंग करने की शक्ति कहां से आता है ? क्या एक निकम्मे आदमी को किसी महनती गरीब को परेशान करने का नैतिक अधिकार प्राप्त है ? इस कार्य का समर्थन करने वाली आचारसंहिता सचमुच ही विचित्र होगी (पृ० 87)

120 उनके दृष्टिकोण का तर्क आधारभूतया असंदिग्ध था हां, यह कभी कभी स्पष्ट रूप से प्रकट किया जाता था प्रमाण रूप मे देखिए, सी० जे० ओ० डोनिल की समीक्षा 'दि रूइन आफ इंडियन प्राविंस' जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1881 (खंड III, सं० 3) पृ० 38, इंदु प्रकाश, 7 मार्च (आर० एन० पी० बंब०, 12 मार्च 1881), हिंदू 14 अप्रैल 1884, जोशी, पूर्वोद्धृत, 885, दत्त इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 130, ए० बी० पी०, 28 जुलाई 1904

121 दत्त ई० एच० I, पृ० 128, 232-3 190, 362, 365 दत्त ने कंपनी के एक डायरेक्टर हेनरी

सेंट जान टकर की पुस्तक से निम्नलिखित अवतरण को उद्धृत किया : इसे न ही छुपाया जा सकता है और न ही नकारा जा सकता है कि इस रैयतवाड़ी पद्धति का उद्देश्य किराए के रूप में मिलने वाले सरकारी राजस्व की अधिकाधिक प्राप्ति है.

122. वही, पृ० 362.

123. रानाडे एसेज, पृ० 29-30, 327, सी० जे० ओ० डोनिल की समीक्षा 'रूइन आफ इंडियन प्राविंस' जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1881 (खंड III, सं० 3); एस० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1886, पृ० 62, एच० ए० रहीम, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 55, जी० सी० सिंह, रिप० आई० एन० सी० 1893 पृ० 115-6, केरल पत्रिका 26 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 31 जनवरी 1895), मालवीय, स्पीचेज, पृ० 266-8, दत्त इग्लैंड एंड इंडिया, पृ० 13, स्पीचेज I पृ० 15 सी० पी० ए०, पृ० 482, ओपेन लेटर्स, पृ० 59, 74-6, 78, और देखिए पीछे 40-1 पाद टिप्पणी. उदाहरणार्थ, आर० सी० दत्त ने विभिन्न प्रांतों के किराया-कानूनों को पूरा समर्थन दिया और किसानों की सुरक्षा के लिए इससे भी कोई बड़ा साधन अपनाने की वकालत की. देखिए फरवरी 1899 को अवधि मे पायनियर को लिखे पत्र, तथा 14 सित० 1900 को ऍटनी मैकडानल को लिखा पत्र, जे० एन० गुप्ता : पूर्वोद्धृत, पृ० 349 पर स्पीचेज II. पृ० 178, और ई० एच० II, पृ० 268-71, 458-60 467.

124. एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज II, पृ० 10-11, हिंदू, 14 अप्रैल 1884, ए० बी० पी०, 22 नवबर 1883, 3 फरवरी 1901, दत्त, ई० एच० I, पृ० 96, 133 और जे० एन० गुप्ता पूर्वोद्धृत, पृ० 334 पर; और देखिए, ए० बी० पी०, 25 जन० 1902 यहा यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रवादियों ने सरकारी तर्क को बड़ी ही सफाई से मोड़ दिया कि जमींदारी पद्धति के अंतर्गत जहा किराए का लाभ खून चूसने वाले जमींदारवर्ग को मिलता है, वहा रैयतवाडी मे यह खून चूसने वाली संस्था सरकार है.

125. रानाडे, एसेज, पृ० 287, 290; दत्त, ई० एच० I, पृ० 131-2 ई० एच० II, पृ० 43.

126. रानाडे, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II, सं० 1) पृ० 2, 17-18, एसेज, पृ० 239-42; पूना सार्वजनिक सभा का स्मरणपत्र, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV, सं० 1) पृ० 9; बाम्बे पब्लिक ओपीनियन, 28 अक्तूबर 1880; ए० बी० पी०, 22 नवबर 1883, मराठा, 27 जुलाई 1890, इंदु प्रकाश, 28 जुलाई 1890; बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 50; ए० बी० पी०, 20 फरवरी 1899, दत्त, ई० एच० I, पृ० 132, दत्त, ई० एच० II, पृ० 52, 58, 86, 88-9, 264, 267 दत्त ने अपने ग्रंथ 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' के द्वितीय खंड मे टिप्पणी की कि ग्राम समुदायो और बिचौलिया जमींदारो के अभाव में पंजाब मे व्यापारी सर्राफ और रकम उधार देने वाले आदि के रूप मे एक नया वर्ग अस्तित्व में आ गया है जो किसी भी देश के कुलीनतंत्र का निकृष्टतम रूप है (ई० एच० II, पृ० 89-90).

अध्याय 10

कृषि का विकास : दो

जमीदारो को इस स्थिति मे रखना चाहिए कि वे काश्तकारो का दमन न कर सकें। साथ ही काश्तकारो को भी भूस्वामियों को अपमानित और तिरस्कृत करने के लिए प्रोत्साहित नही करना चाहिए। सामाजिक शिष्टाचार का निर्वाह इस रूप मे हो कि भूमिपति काश्तकार से प्रेम करें और काश्तकार भूमिपतियो का आदर करें।

अमृत बाजार पत्रिका, 8 जनवरी, 1885

समाज के एक वर्ग को कठोर श्रम और दासता के बंधन मे जकडने वाली तथा दूसरे वर्ग को शारीरिक श्रम से सर्वथा छूट, सुख-चैन और पूर्ण अवकाश की सुविधा जुटाने वाली प्रवृत्तियों के प्रमुख कारण कुछ भी क्यों न रहे हो···परंतु अब यह नितांत स्पष्ट है कि आधुनिक सभ्यता की प्रवृत्तिया तथा समता की पनपती भावना इन दोनो वर्गों मे असमान और अन्यायपूर्ण संबंधो को दीर्घकाल तक बने नही रहने देंगी। देर सवेर समाज की पुनर्व्यवस्था होना निश्चित है, और अच्छा यही है कि हम बिना किसी प्रहार की शिकायत किए और बुडबुड़ाए उस समय के स्वागत के लिए तैयार रहे।'

मराठा, 21 अक्तूबर, 1893

यदि अगरेजों के दमन को चिंगारी की संज्ञा दी जाए तो राजाओं और जमींदारों के दमन को शोले की संज्ञा देनी पड़ेगी।

बंगनिवासी, 30 अक्तूबर, 1891

किसान और जमींदार

भूमि जोतने वाले की उपज पर केवल कर कर्मचारी का ही अधिकार नही था। बंगाल, बिहार, उडीसा, उत्तरी मद्रास, मध्य भारत के प्रातों मे, उत्तरी पश्चिमी प्रात तथा अवध और बंबई तथा पंजाब के छोटे से भागों के जमींदारी क्षेत्रों मे भूमि जोतने वाला काश्तकार था जो जमीदार को किराया चुकाता था, उसमे से ही जमीदार सरकार को लगान का भुगतान करता था। इसके साथ ही साथ इन सभी इलाकों में किराया लेने वाले

जमींदार और किराया चुकाने वाले तथा असल मे ही जमीन जोतने वाले किसानो के बीच बिचौलियों की संख्या निरंतर कई गुना बढ़ती जा रही थी। इधर रैयतबाड़ी इलाको मे भी धीरे धीरे खुदकाश्त की प्रणाली विच्छिन्न तथा विलुप्त होती जा रही थी। मालिक किसान धीरे धीरे अपनी धरती ऋणदाता, व्यापारी तथा व्यवसायी वर्ग के हाथो बेचते जा रहे थे। व्यापारी लोग भूमि के मालिक तो बन जाते थे पर धरती जोतते नहीं थे। वे उन पुराने किसान मालिको को धरती पर बने तो रहने देते थे परन्तु अब उनकी स्थिति दरिद्र व असहाय किराएदार किसान की हो जाती थी। देश के देहातो मे निरंतर बढ़ते हुए किरायो तथा धरती का खाली कराने की घटनाओ ने विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी थी और किसी न किसी रूप मे किसानो और जमींदारो के पारस्परिक संबंधो के प्रश्न को देश की एक महत्वपूर्ण आर्थिक तथा राजनीतिक समस्या बना दिया था। अत सरकार किराए के असहनीय भार से दबे किसानो को कुछ राहत देने के लिए तथा विभिन्न प्रांतो मे काश्तकारी और किराए संबंधी कानूनो की शृंखला बनाने के लिए विवश हो गई। यहां यह उल्लेखनीय है कि सरकार ने रैयतबाड़ी इलाकों मे मनमर्जी पर रखे काश्तकारो की समस्या की पूर्ण रूप से ही उपेक्षा कर दी।

यह काफी आश्चर्यजनक बात है कि इस प्रश्न पर राष्ट्रवादी नेताओं की नीति न केवल अनिश्चित थी प्रत्युत इस पर उन्होंने विशेष ध्यान भी नहीं दिया। इन नेताओ ने न तो किसान और जमींदार के बीच के प्रश्न को प्रमुख आर्थिक समस्या माना और न ही किसानो के लक्ष्यो को सामान्य राजनीतिक आदोलन से जोड़ा। राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा किसानो की समस्याओ की उपेक्षा के परिमाण को इस तथ्य से नापा जा सकता है समीक्षाधीन अवधि मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस मे उनके संबंध मे वास्तव मे ही कुछ भी नहीं कहा' परन्तु उस समय देश के सामने आने वाली आर्थिक यथार्थताओ से उत्तरोत्तर भिड़ने वाले राजनीति मे सक्रिय और सजीव भाग लेने वाले नेताओ से तो इन समस्याओ से आंख मूंदने की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इन नेताओ ने इन समस्याओं को दो रूपो मे लिया : सामान्य और विशिष्ट। सामान्य रूप के अंतर्गत इन नेताओं ने किसानो का अस्पष्ट रूप से ही पक्ष लेते हुए छिटपुट टिप्पणियां की तथा सामान्य उपचार सुझाए। और विशिष्ट रूप के अंतर्गत उन्होंने सरकार द्वारा पारित विभिन्न काश्तकारी और किराया संबंधी अधिनियमो पर अपने मत प्रकट किए। यहां उन्हें रोग विशेष के लिए निश्चित उपचार सुझाना था अथवा अपना स्पष्ट मत प्रकट करना था। अत उन्हें खुले तौर पर ही किसानो अथवा जमींदारो के समर्थक के रूप मे आना पड़ा।

सामान्य रूप के अंतर्गत राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने जमींदारी-इलाको मे किसानो के प्रति मानवीय चिंता प्रकट की तथा जमींदारो द्वारा किसानो के सामान्य दमन कमर-तोड़ किरायो की वसूली और किसान की बेदखली के प्रति विरोध प्रकट किया।[4] यह विरोध कभी कभी तीखी भाषा मे भी होता था। उदाहरणार्थ, शक्तिशाली जमींदारो द्वारा किसानों के दमन की आलोचना करते हुए बंगाली ने अपने 9 दिसंबर 1882 के अंक में लिखा : 'किसी भी प्रकार का अत्याचार निंदनीय है। अत्याचारी भले ही गोरा हो अथवा काला आदमी, दमन करने वाला भले ही भारत मे जन्मा और पला हो अथवा दूर

पश्चिम से आया हो, सर्वथा और समान रूप में घृणा का पात्र है।'[3] दस हजार व्यक्तियों के खून पसीने की कमाई पर एक व्यक्ति को जीवन की सभी सुख-सुविधाएं तथा विलासिताएं जुटाने वाली लगान संग्रह पद्धति को असान्य ठहराते हुए 'सोम प्रकाश' ने 24 जुलाई, 1882 के अंक में व्यंग्यपूर्वक पूछा : 'एक के श्रम का दूसरे द्वारा लाभ उठाया जाना और गुलछर्रे उड़ाना कहां का न्याय है?' उसने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि 'समय की गति के साथ जमींदार उत्तरोत्तर जितना अधिक शक्तिशाली हुआ है, किसान उत्तरोत्तर उतना ही अधिक दीन-हीन हुआ है।'[4] 14 जून, 1884 के अंक में 'बंगवासी' ने गांव के जमींदार को सभी प्रकार के कानूनों का उल्लंघन करने वाला था। बंगाल का सबसे बड़ा उत्पाती बनाया।[5] 'बंगनिवासी' ने 30 अक्तूबर, 1891 में जमींदारों, उनके गुमाश्तों तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों द्वारा किसानों के अमानवीय और अकथनीय दमन की निंदा करते हुए एक लंबा और क्रोधपूर्ण संपादकीय प्रकाशित किया। उसने इस संबंध में शिक्षित लोगों की अकर्मण्यता तथा उपेक्षा वृति की आलोचना करते हुए लिखा

> यदि हमारे अपने ही देशवासी (जमींदार और उनके दलाल) साधारण सा अधिकार पाकर इतना भारी अत्याचार और दमन कर सकते हैं तो असीम शक्तियों से संपन्न विदेशी जिलाधीश के अन्याय के विरुद्ध चीखा-चिल्लाहट करना कहां तक उचित है? यदि अंग्रेजों द्वारा किए गए दमन को चिंगारी कहा जाए तो इन जमींदारों और राजाओं द्वारा किए जा रहे दमन को धधकते हुए शोले की संज्ञा दी जानी चाहिए।[6]

उत्तरी पश्चिमी प्रांत और अवध में उत्तरी भारत के कांग्रेस के मुस्लिम समर्थकों में अग्रणी सज्जाद हुसैन द्वारा संपादित प्रमुख हास्य-व्यंग्य प्रधान पत्र 'अवध पंच' के 18 जनवरी 1894 के अंक में एक कार्टून प्रकाशित हुआ। इसमें अधनंगे बदन और नंगे पैरों दो किसान एक जमींदार को पालकी में उठाए हुए चित्रित किए गए थे। बड़ी तोंदवाले जमींदार ने चमकीले गहने और 'स्टार आफ इंडिया' का तमगा पहन रखा था। कार्टून का शीर्षक था, 'अकाल का कारण'। उन दोनों में एक किसान दूसरे साथी से कह रहा था : 'भाई इसका बोझ तो हमारा दम तोड़ देगा, क्यों न इस पाजी को फेंक दिया जाए?'[7] मालाबार में निकलने वाली, के० पी० करुणाकर मेनन द्वारा संपादित, 'केरल पत्रिका' ने अपने 21 मार्च 1896 के अंक में बार बार होने वाले मोपला बलवों के लिए, जमींदारों द्वारा किए गए असहनीय दमन से उत्पन्न गरीबी को उत्तरदायी बनाया और अत्याचारी जमींदारों को सभी वर्गों और समुदायों के किसानों का समान रूप से क्रूरतापूर्वक दमन करने वाला घोषित किया।[8] 4 जुलाई 1896 के अंक में 'केरल पत्रिका' ने सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने जमींदारों का दमन न रोका तो न केवल मोपलों के बलवे नहीं रुक पाएंगे प्रत्युत नायर लोग भी विद्रोह पर उतर आएंगे।[9]

कुछ एक भारतीय जननेताओं ने 1870 के आसपास जमींदारी प्रथा की निंदा की। जमींदारों पर सशक्त प्रहार बंकिमचंद्र चटर्जी ने अपने बंगदर्शन के अंतर्गत 'समय' लेख में किया।[10] युवक नेता आर० सी० दत्त ने चटर्जी महोदय का अनुसरण किया।[11] 17 फरवरी 1884 को 'मराठा' ने अपने एक लंबे लेख में जमींदारी पद्धति पर तीखा प्रहार

किया। जैसा कि हम आगे विवेचन करेंगे, बंगाल किरावा बिल पर मतभेद के समय अनेक भारतीय संस्थाओं और राष्ट्रवादी नेताओं ने किसान समर्थक दृष्टिकोण अपनाया। बाद मे पृथ्वीशचंद्र राय ने अपने दो लेखों, 1895 मे प्रकाशित 'पावर्टी प्राब्लम इन इंडिया' और 1901 मे प्रकाशित 'दि काजेज आफ इंडियन फेमिन' मे जमींदारी प्रणाली और जमीदारों के दमन को ही लोगो की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी माना।[12] जी० वी० जोशी ने जमीदारी की विस्तृत आलोचना की। उन्होंने 1890 में प्रकाशित अपने निबंध 'इकोनामिक सिच्युएशन इन इंडिया' मे जमींदारी और रैयतवारी दोनो क्षेत्रो की बुराइयो की तफसील से आलोचना की। उन्होंने लिखा कि सारे देश मे काश्तकार द्वारा आगे धरती को किराए पर देने की घटनाएं बढ़ रही है। बिचौलियो और मनमर्जी से रखे काश्तकारो की संख्या कई गुना बढ़ गई है। एक ओर जनसंख्या की वृद्धि और दूसरी ओर गैरकृषि उद्योग मे बराबर ह्रास होने से किसानों मे धरती के पाने के लिए होड और प्रतियोगिता की स्थिति उत्पन्न हो गई है और इस स्थिति का दुरुपयोग करते हुए जमीदारो ने किसानों को गगनचुंबी किराया देने के लिए बाध्य कर दिया है। इन ऊंचे किरायो और काश्तकारी की असुरक्षा का दुष्परिणाम यह निकला है कि असली हल जोतने वाले किसान का धरती को सुधारने का निश्चयात्मक उत्साह ही नष्ट हो गया है।[13] जोशी जी के निबंध का संक्षेप इस प्रकार है

> किसान की स्थिति यह है कि वह कितनी भी समझदारी से काम कर ले, कृषि उद्योग अथवा उपज से उसे कुछ मिलता मिलाना नही है और यदि वह अपने काम की उपेक्षा करता है तो उसका कुछ बिगड़ता नही। उसे किसी प्रकार की कोई आशा नही है। अपने कब्जे की कुछ एकड धरती को बचाने के लिए वह भूखे मरने की बजाय मुंहमांगा ऊंचा किराया चुकाता है। अपनी सहायता आप करने का उद्देश्य ही इस स्थिति का अंग नहीं और न ही इस स्थिति मे स्वतः कठोर श्रम की प्रेरणा की अपेक्षा की जा सकती है।[14]

1894 में प्रकाशित अपने निबंध 'नोट्स आन ऐग्रीकलचर इन बाबे' में जोशी ने जमींदारी और स्वैच्छिक काश्तकारी के विकास पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किया। उन्होंने दुख-पूर्वक कहा कि आंशिक रूप से उपकाश्तकारी के व्यापक व्यवहार के कारण और आंशिक रूप से ऋण ग्रस्तता से मुक्ति न मिलने के फलस्वरूप बंबई प्रांत मे समुचित काश्तकारी अधिकार अथवा काश्तकारी कानून नाम की कोई वस्तु ही नही रह गई है। इस प्रकार काश्तकारी अधिकारों तथा अधीनस्थ काश्तकारों की बेदखली अथवा किराया वृद्धि के विरुद्ध संरक्षण की कोई व्यवस्था ही नही है।[15]

बहुत सारे भारतीय नेताओं ने काश्तकारों को संरक्षण देने के निश्चयात्मक उपाय भी सुझाए। इनमें सर्वाधिक लोकप्रिय उपाय था किरायों मे अनुचित वृद्धि के, भारी लगानों के, बेदखली के तथा काश्तकारों के अधिकारों के हनन के विरुद्ध काश्तकारों को कानूनी संरक्षण प्रदान करना तथा कब्जे के अन्यान्य अधिकारो को विस्तृत तथा सुदृढ़ रूप देना।[16] यह एक रोचक तथ्य है कि सरकार द्वारा अपनाए गए काश्तकारी कानून का जी० वी० जोशी, आर० सी० दत्त तथा जस्टिस रानाडे तीनों मुख्य अर्थशास्त्रियों ने

समर्थन किया तथा काश्तकारी अधिकारों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के पक्ष में प्रबल तर्क दिए।[17] जोशी ने अधिकारियो से बंबई के नितान्त असुरक्षित उपकाश्तकारोवाले रैयतवाड़ी इलाके मे भी कानूनी संरक्षण के विस्तार का अनुरोध किया।[18]

यह स्वाभाविक ही था कि समीक्षाधीन अवधि के दौरान जमीदारी प्रणाली के उन्मूलन की व्यापक माग तो नही की गई परन्तु यह कम महत्वपूर्ण नही कि यह माग क्यों उठाई गई। इस प्रकार 2 अक्तूबर 1881 के अंक मे इंडियन स्पेक्टेटर ने सरकार से सारी जमीदारी खरीदने और फिर सीधे किसानो से समझौता करने का अनुरोध किया।[19] 24 जुलाई 1882 के अंक मे 'सोम प्रकाश' ने सरकार को रूस सरकार के आदर्श उदाहरण का अनुसरण करने का उपदेश दिया और कहा कि सरकार जमीदारी प्रथा समाप्त कर दे। जमीदारो को पांच वर्षो मे होने वाले लाभ के बराबर का धन उनकी जमीन के मूल्य के रूप मे देकर उनका स्वामित्व समाप्त कर दिया जाए। यह धन आधा सरकार जुटाए और आधे की व्यवस्था किसान करें।[20] कभी कभी भारतीय नेता माग के प्रति टालमटोल काम लेते थे और जमीदारी प्रणाली को एक सिद्ध तथ्य मानकर जमीदार और पट्टेदार के मध्य न्यायपूर्ण समझौते की वकालत करते थे।[21]

12 जून, 1880 के अंक मे बंगाली ने बंगाल के स्थाई बंदोबस्त की एक और मजेदार आलोचना प्रस्तुत की। बंगाली पत्र ने इस स्वर मे कहा कि बंगाल मे औद्योगिक और व्यावसायिक गतिविधियो का नितान्त अभाव है। जमीदारी ही वहा पूजी के निश्चित लाभदायक निवेश का एकमात्र अवशिष्ट आधार है। यही कारण है कि पूजी निवेश की प्रवृत्ति उद्योग की अपेक्षा जमीदारी की ओर होती है। दो वर्ष पश्चात 28 जनवरी 1882 के अंक मे बंगाली ने अपनी आलोचना दोहराते हुए अपना मत प्रकट किया कि जमीदारी पद्धति का प्रचलन बंगाल और बंबई के औद्योगिक और व्यापारिक स्तर का उल्लेखनीय अंतर स्पष्ट करता है।

इसके विपरीत सामान्य आधार पर जमीदारो अथवा अन्य बडे बडे भूखडो के स्वामियो के हितो के भारतीय नेताओ द्वारा समर्थन के उदाहरण बहुत ही कम थे। बंगाल मे 'बंगाली' ने पट्टेदारो के समर्थन की अपनी पहली नीति से हटते हुए 19 मार्च 1887 के अंक मे सरकार से पूर्वी बंगाल मे किसान संगठनो को तोड़ने के उपाय करने का और किसानो को उचित किरायो के भुगतान की अनिवार्यता से परिचित कराने का अनुरोध किया। 20 फरवरी 1899 के अंक मे अमृत बाजार पत्रिका ने भी दावा किया कि अंग्रेजी राज्य की अकालो, कृषि संबंधित लोगो के विप्लवो तथा अनेक अन्यान्य बुराइयो से सुरक्षा जमीदारो के अधिकारो और सुविधाओ को बनाए रखने पर ही निर्भर है न कि उनके विनाश मे। एक वर्ष पश्चात इसी पत्रिका ने अपने 12 जनवरी 1900 के अंक मे सरकार से अनुरोध किया कि वह या तो जमीदारो के प्रति अपनी कठोरता की नीति में मृदुता लाए या उन्हे किसानो से किराया वसूल करने की सुविधाएं जुटाए। 'केसरी' ने 18 अक्तूबर 1881 के अंक मे शिकायत की कि देश के दूसरे भाग मे, बंबई के सतारा तथा अन्य दूसरे जिलो मे किसानो से जमीन के निर्धारण लगानों की वसूली करने में इनामदारो को सफल बनाने के लिए अधिकारियो ने उनकी आवश्यक तथा अपेक्षित

सहायता नही की ।[23] 27 जुलाई 1890 के अंक मे 'मराठा' ने विलाप करते हुए लिखा कि देश में जमीदारो और भूस्वामियो की दुर्दशा के उदाहरण बढ़ते जा रहे है । उसने सरकार की क्रमश जमींदारो के अधिकारो के उन्मूलन की प्रवृत्ति की शिकायत की । उसने जमीदारो को और कुछ नही तो अपने को जीवित रखने के लिए परस्पर संगठित होने का परामर्श दिया । उसने दक्षिण के जमीदारो को तो विशेष रूप से ही अपना एक संघ बनाने की सलाह दी । 9 दिसंबर 1900 के अंक मे इस पत्र ने सरकार से लगान वसूली मे इनामदारो की सहायता करने का अनुरोध किया । यहा इस बात को दोहराना अनुचित न होगा कि जमीदारो की संस्था और उनके अधिकारो की रक्षा की वकालत के पीछे यह भावना काम कर रही थी कि दलित भारतीय जनता का सच्चा नेतृत्व यही जमीदार वर्ग ही कर सकता था ।[24]

जैसा हम पहले ही निर्देश कर चुके है कि जमींदार और किसान के सवाल पर राष्ट्रवादियो के सामान्य विचार अत्यन्त मृदु है । वस्तुत राष्ट्रवादी नेताओ ने किसान समर्थक अथवा जमीदार समर्थक प्रवृत्ति दिखाने के बजाय कृषि क्षेत्र से सम्बन्धित इस पक्ष की ओर विशेष रुचि नही दिखाई । सरकार द्वारा 1880-1905 की अवधि मे स्वीकृत काश्तकारी कानून के प्रति उनके दृष्टिकोण के अध्ययन से भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है । 1885 के बगाल काश्तकारी कानून को छोड़कर इन नेताओ ने किसी भी अन्य काश्तकारी कानून मे कोई गहरी या पर्याप्त रुचि नही दिखाई ।

1885 का बंगाल टेनेंसी ऐक्ट

1793 के स्थाई बदोबस्त ने किसानो को जमीदारो की दया पर ही छोड़ दिया था । 60 वर्षों से भी ऊपर समय बीत जाने के बाद सरकार का बगाल के किसानो की दुर्दशा की ओर ध्यान गया । 1859 के लगान के अधिनियम (अधिनियम सख्या 10) के अनुसार 12 वर्षों से ऊपर एक ही भूभाग के पट्टेदार किसानो को मौरूसी हक मिल गया । इसके अतिरिक्त इस अधिनियम मे यह भी व्यवस्था थी कि इसके अतर्गत निर्धारित विशिष्ट और उचित आधारो को छोड़कर अन्य किसी भी रूप मे लगान नही बढ़ाया जा सकता था । यह अधिनियम तथा 1869 का सशोधित अधिनियम जमीदारो और किसानो के मध्य पनपते तनाव को दूर न कर सके । जमीदारो ने किसानो को निकालने लगान मे बराबर परिवर्तन करते रहने, बलपूर्वक उन्हें तग करने, अवैध रूप से उनकी कुर्की करने और उन्हे बेदखल करने आदि गंदे तरीके जारी रखे । उन्होने किसी न किसी तरीके से किसानो को मौरूसी हक पाने से वचित करने मे तथा लगान बढ़ाने मे सफलता पाने के मार्ग निकाल ही लिए । एक ओर जमीदार पूर्ववत धूर्तता करते रहे और दूसरी ओर यह शिकायत करते रहे कि 1859 और 1869 के कानूनो के अतर्गत उनके लिए चालू लगान की वसूली अत्यत कठिन हो गई है यहा तक कि सर्वथा उपयुक्त कारणो से भी लगान मे वृद्धि तो लगभग असभव हो ही गई है ।[26] फलत: 1872-76 मे बगाल मे कृषकों और जमीदारो के बीच अनेक संघर्ष हुए और जमीदार विरोधी विप्लव हुए । ऐसा लगने लगा कि स्थिति किसी समय भी नियत्रण से बाहर हो सकती है ।[27] बिहार मे

तो किसानो की स्थिति बंगाल के किसानो से भी अधिक खराब थी और किसानो के जमीदारो के साथ सबध अत्यत द्वेषपूर्ण थे।"[8] 1876 के परवर्ती वर्षो मे बगाल सरकार और भारत सरकार ने स्थाई बदोबस्त के लडखडाते ढाचे को स्थिरता देने की दृष्टि से तथा स्वय ब्रिटिश शासन के लिए गभीर राजनीतिक खतरे का आधार सिद्ध होने वाली प्रबल कृषि क्रान्ति से राज्य सत्ता बचाने के लिए इस प्रश्न को कानूनसम्मत रूप देने के बराबर प्रयत्न किए। इस रोग का सीधा सादा और साफ इलाज यह था कि जमीदारो और किसानो के सबधो को सुदृढ आधार दिया जाए, परन्तु इस इलाज को कार्य रूप देने के सबध मे अधिकारियो के मन मे अनेक शकाए, सोच-विचार और तर्क-वितर्क थे। इस दिशा मे किए जा रहे प्रयत्नो के सर्वमान्य उद्देश्य थे बसे हुए किसानो के लिए अधिभोग अधिकारो का विस्तार करना, सुरक्षा के अधिकारो का विस्तार करना, अधिभोगी अथवा दूसरे सभी प्रकार के किसानो को निर्धारित स्थिरता न सही, अनुचित रूप से लगान बढाने से जमीदारो की ओर से सुरक्षा प्रदान करना इसके साथ ही लगान वसूली की समुचित सुविधाए जुटाकर जमीन की बढी हुई उपज के बढे मूल्य के भाग के अनुरूप लगान बढाने की प्रतिभूति जुटाकर जमीदारो और उनके अधीनस्थ पट्टेधारियो को उनके हितो की सुरक्षा का आश्वासन देना और साथ ही साथ कृषि सबधी झगडो के उठने पर उन्हे तत्काल और न्यायपूर्ण ढग से निपटाने के लिए नियमो और व्यवस्थाओ का निर्धारण करना।[9] परन्तु इन सभी सुधारो को लेकर चलने वाले जमीदारो को व्यथित किए बिना काश्तकारो को सतुष्ट करने वाले काश्तकारी कानून का बनाना कठिन ही नही; अतत असभव कार्य सिद्ध हुआ। 1878 मे लगान कानून आयोग ने बगाल मे इस समस्या की जाच-पडताल की। आयोग ने 1880 मे सरकारी और गैरसरकारी विस्तृत विचारो पर आधृत अपना प्रतिवेदन और कानून का प्रारूप प्रस्तुत किया।[10] अगले वर्ष लगान कानून कमीशन द्वारा प्रस्तुत प्रारूप पर आधृत होते हुए भी कितने ही जरूरी विषयो मे उससे भिन्नता लिए हुए बिल का एक प्रारूप भारत सरकार के पास भेजा गया।[11] भारत सरकार ने इग्लैड के अधिकारियो के साथ इस विषय पर विचार विमर्श करने और अपना मत स्थिर करने मे लगभग दो वर्ष लगा दिए। अत मे 1883 मे उसने इपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल मे इस विषय पर एक बिल पेश किया। इस बिल के साथ जुडे हुए पाच महत्वपूर्ण सुझाव थे (1) उन सभी किसानो को मौरूसी हक देना, जो एक ही गाव मे अथवा जागीर मे 12 सालो से धरती जोत रहे है। भले ही इस अवधि मे भिन्न भिन्न कालों मे उसके पास धरती के खड भिन्न भिन्न क्यो न रहे हो। इसके साथ ही किसानो के मौरूसी हकों के नकारने को प्रमाणित करने का भार भी जमीदार पर ही डाला गया था, (2) मौरूसी हक को उत्तराधिकार का विषय बनाना और आसानी से हस्तांतरित किया जाने वाला हक बनाना, हालाकि जमीदार हकशुफा कह सकता था। मौरूसी किसानों को बेरोकटोक जमीन आगे लगान पर देने का अधिकार प्रदान करना, (3) लगान वृद्धि के संबध में यह व्यवस्था करना कि किसान द्वारा भुगतान की जाने वाली लगान की राशि उसकी कुल उपज का 1/5 भाग से अधिक न हो तथा दस वर्षों की अवधि के अंतराल से पूर्व लगान किसी भी रूप मे दुगुना न किया जा सके। गैरमौरूसी किसान द्वारा चुकाए

जाने वाले लगान की राशि का उसकी कुल उपज के 5/16 भाग से अधिक का न होना। (4) गैरमौरूसी किसान के जोत से हटाए जाने पर उसे मुआवजे का हक होना, तथा (5) लगान के मुकदमे की सरल और संक्षिप्त सुनवाई के साथ उनके शीघ्र निपटारे की व्यवस्था के रूप में जमींदारों की प्रमुख शिकायत को दूर करना। इसके अतिरिक्त अदालत के माध्यम से फसल की बिक्री और कुर्की की व्यवस्था की गई। इन सभी महत्वपूर्ण धाराओं के लागू होने की निश्चितता के लिए दीवानी अदालतों के तथा कार्यकारी अभिकरण के हस्तक्षेप की भी इस बिल में व्यवस्था थी।''

1883 के काश्तकारी बिल पर जमींदारों ने तीखे प्रहार किए। इस प्रहार से घबराकर सरकार ने जमींदारों को शांत और संतुष्ट करने वाले परिवर्तनों के सुझाव के लिए प्रवर समिति नियुक्त की। इस समिति में जमींदारों के दो महत्वपूर्ण प्रवक्ता क्रिस्तोदास पाल (उनकी मृत्यु के बाद उनके स्थान पर प्यारेमोहन मुखर्जी को रखा गया) तथा महाराजा दरभंगा सम्मिलित थे।[31] इस समिति ने बिल का इस रूप में संशोधन किया कि उसका कृषक समर्थक आधार ही नामशेष हो गया। संशोधित बिल ने मार्च 1885 में कानून का रूप ले लिया। 1885 के काश्तकारी कानून में मौरूसी हक की प्राप्ति को संकुचित बना दिया गया। अब इस अधिकार को केवल उसी गांव में धरती जोतने तक सीमित कर दिया गया। पहले के 1883 के बिल में निहित 'उसी जागीर में' धारा को छोड़ दिया गया। 1883 के ही बिल द्वारा किसान को हस्तांतरण करने की दी गई पूर्ण शक्ति को भी इस बिल ने छीन लिया। मौरूसी और गैरमौरूसी किसानों पर लगान बढ़ाने की सीमाएं भी हटा दी गईं। गैरमौरूसी किसानों का बेदखल करने पर क्षतिपूर्ति की व्यवस्था वाली धारा को भी इस बिल से हटा दिया गया। इस प्रकार 1883 के बिल की किसानों को लाभ पहुंचाने की संभावनावाली तीनों धाराओं को तो छोड़ ही दिया गया और मौरूसी अधिकार प्राप्ति से संबंधित धारा को हलका बना दिया गया। विरोधी दिशा में बिल का एकमात्र संशोधन इस रूप में था कि मौरूसी हक वाले किसान के लगान की वृद्धि को घटा दिया गया था। यह वृद्धि कचहरी के बाहर आपसी अनुबंध द्वारा 6 आने प्रति रुपये के बदले दो आने प्रति रुपया कर दी गई थी। 1885 का काश्तकारी अधिनियम मौरूसी किसानों के अधीनस्थ मुजारों का कोई संरक्षण नहीं दे सका था।[34] अधिनियम के प्रशंसकों का दावा था कि यद्यपि इसमें जमींदारों को सुविधाएं जुटाने की व्यवस्था है तथापि जिस ढंग से अधिनियम को अंतिम रूप में निर्धारित किया गया है, उसमें किसान के अधिकार को, अधिकृत भूमि पर उसके स्वामित्व को, एकपक्षीय स्वत्वापहरण के विरुद्ध उसके हितों की सुरक्षा को वास्तविक रूप में सुदृढ़ता प्रदान की गई है।[35] उनकी राय में इस अधिनियम की निर्दोषता का सर्वोत्तम प्रमाण सैद्धांतिक रूप से इससे संबद्ध सभी प्रमुख वर्गों द्वारा शांतिपूर्वक इसकी स्वीकृति थी।[36] दूसरों के विचार में 1883 में फ्लारेंस नाइटिंगेल द्वारा अभिव्यक्त भय, कि जमींदार अपने वर्ग को सुविधाएं पहुंचाने वाले बिल पास करा लेंगे और किसानों को मिलने वाली सुविधाएं छीन ली जाएंगी,[37] सत्य सिद्ध हुआ है।[38]

जैसी आशा की जाती थी, जमींदार किसी भी ऐसे काश्तकारी कानून के पूर्णत

विरोधी थे जिसमें किसानों को मौरूसी हक देने की तथा धरती का हस्तान्तरित करने की शक्ति प्रदान करने की व्यवस्था हो और लगान बढ़ाने के तथा किसानों को बेदखल करने के अधिकारों पर नियंत्रण की व्यवस्था हो। उनका दावा था कि इस प्रकार का कोई कानून बनाना उनके स्वत्वाधिकारों पर छापा मारना, उनके यश, सम्मान और निहित अधिकारों को धूमिल करना तथा 1793 की संधि का उल्लंघन करना होगा। उनकी यह भी धारणा थी कि अधिकारियों द्वारा विचारित कानून का रूप स्वयं किसानों के लिए हानिप्रद सिद्ध होगा क्योंकि इसका परिणाम निरर्थक मुकद्दमेबाजी तथा उस पर्दे हानी होगा।

दूसरी ओर इंडियन एसोसिएशन, बंगाल के युवा राष्ट्रवादियों के उदीयमान नेता सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने तथा बंगाल के बहुसंख्यक राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने किसानों के समर्थन का पक्ष लिया। उन्होंने किसानों और जमींदारों के मध्य के संबंधों में सरकार के हस्तक्षेप करने के अधिकार को न्यायोचित ठहराया। किसानों के पक्ष में इस प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता को स्वीकार किया तथा यह मानते हुए भी कि ये बिल किसानों की रक्षा की दृष्टि से अधिक सार्थक नहीं है, 1880-1883 की अवधि में पेश किए गए सभी काश्तकारी बिलों के प्रारूपों को सामान्य स्वीकृति दी और इन बिलों के विरुद्ध जमींदारों द्वारा किए जा रहे प्रदर्शनों का विरोध किया।[39] बंगाल के राष्ट्रवादी नेताओं का अपेक्षाकृत अधिक युवा और अधिक प्रगतिशील वर्ग तो सरकारी कानूनों के प्रति कोरे समर्थन को प्रकट करने से आगे बढ़ गया। उनमें से बहुतों ने बड़ी ही प्रबलता के साथ किसानों के उद्देश्य का अनुमोदन किया और बंगाल के शिक्षित लोगों, राजनीतिक संस्थाओं और नेताओं से किसानों के हितों को वाणी देने तथा जमींदारों द्वारा संचालित शक्तिशाली आंदोलन का विरोध करने का अनुरोध किया। उदाहरणार्थ, 18 दिसंबर 1880 के अंक में बंगाली ने लिखा :

> हमारे अपने संगठन हैं जो देश के लाचार किसानों के हितों की देखभाल तथा सुरक्षा का दम भरते हैं। हमें तो समझ ही नहीं आता कि आज से ज्यादा देशभक्ति के व्यापार तथा कर्तव्य पालन का अपेक्षाकृत कोई और श्रेष्ठ अवसर अगले पचास वर्षों में कभी आएगा भी कि नहीं। सचमुच ही समय आ गया है कि ये संगठन अपनी उपयोगिता का प्रमाण दें तथा अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करें।…बंगाल की बेबस कृषक जनता देश के लाखों निरीह लोग इतना भी तो नहीं जानते कि उनके चारों ओर हो क्या रहा है।… यह उनके मित्रों का काम है कि वे उनकी भावनाओं को अभिव्यक्ति दें, उनकी अगुआई करें तथा उनकी ओर से काम करें। आडंबर और थोथे प्रदर्शन का समय अब बीत गया है। अब तो ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो हृदय से उत्साही हों, किसानों के प्रति गहरी सहानुभूति रखते हों और उनके भाग्य को संवारने को उत्सुक हों। ऐसे व्यक्ति एक जिले से दूसरे जिलों में जाएं। किसान के समर्थन में जनसभाएं करें और उसके पक्ष में प्रदर्शनों का आयोजन करें। अभावग्रस्त झोंपड़ीवासी निम्नस्तरीय किसान की सेवा करने वाला अपने व्यापक रूप में देश की सेवा ही करता है।[40]

वस्तुतः बंगाली ने तो 3 जनवरी 1880 के अंक मे किसानों का एक अंग होने का दावा किया। इंडियन एसोसिएशन ने आगे बढ़कर किसानो की आवश्यकताओं और शिकायतो के प्रवक्ता के रूप मे कार्य करने के पवित्र कर्तव्य के निर्वाह की प्रतिज्ञा की।[41] इंडियन एसोसिएशन तथा अन्य कतिपय महानुभावो, द्वारिकानाथ गांगुली, कृष्णकुमार मित्र और रंगलाल मुखर्जी आदि ने व्यक्तिगत रूप से किसानो को अपनी मांगो के लिए अपने आप आंदोलन करने के लिए संगठित करने का बीडा उठाया। संगठन के अधिकारी तथा अन्य किसानो से सहानुभूति रखने वाले बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों मे गए और उन्होंने 1880, 1881 और 1885 मे असंख्य किसान प्रदर्शनो तथा किसान जनसभाओ का आयोजन किया। कुछ सभाओ मे तो दस से बीस हजार तक किसान सम्मिलित हुए और इन सभाओ में सुरेंद्रनाथ बैनर्जी, आनंदमोहन बोस तथा द्वारिकानाथ गांगुली जैसे वक्ताओ ने भाषण दिए।[42] अनेक स्थानो पर लगान संघो तथा किसान संघो की स्थापना की गई।[43] वस्तुतः इंडियन एसोसिएशन ने इन संघो का उपयोग देहातो में अपनी शाखाओं के जाल बिछाने और राजनीतिक गतिविधि का विस्तार करने के लिए ही किया।[44]

1883 के बंगाल टेनेंसी बिल को देश के अन्य भागो के गण्यमान्य नेताओं का भी समर्थन प्राप्त हुआ। विशेषतः बाल गंगाधर तिलक अथवा जी० जी० आगरकर द्वारा बिल के समर्थन में लिखित तथा 1883 मे मराठा मे प्रकाशित संपादकीय लेख सचमुच विस्तृत रूप मे उद्धृत करने योग्य है क्योंकि इनमे राष्ट्रीय नेताओं के उच्च पदाधिकारियो के कृषि संबंधी क्रांतिकारी दृष्टिकोण के प्रारंभिक लक्षण देखने को मिलते है। 14 अक्तूबर 1883 के अंक के संपादकीय ने गहरी राजनीतिक दूरदर्शिता तथा मानवता के प्रति छलकते प्रेम के महान साधन के रूप मे बिल की प्रशंसा करते हुए घोषित किया कि भौतिक सुख सुविधाओं के समान वितरण का यह एक छोटा सा प्रारंभ है जो प्रगतिशील संसार में एक न एक दिन अवश्य पूरा होगा। सरकार से अपने न्यायसंगत कार्य पर सुदृढ़ बने रहने का अनुरोध करते हुए संपादकीय ने सलाह दी कि इस श्रेष्ठ कार्य के विरुद्ध निहित स्वार्थी वर्ग चिल्लाएंगे परंतु दूरदर्शितापूर्ण राजनीतिज्ञता इसी में है कि शक्ति, संपत्ति और संरक्षकता के हाथ में जाने वाले लोगों द्वारा अपनाए गए धमकी भरे व्यवहार की उपेक्षा की जाए, उसके आगे झुका न जाए। संपादकीय मे यह निर्देश किया गया कि यदि जमींदारो के पास सृष्टि के प्रारंभ काल मे स्वत्वाधिकार होते तो भी समय की गति के साथ उनमे संशोधन करना ही पडता। इसके अतिरिक्त सरकार जमींदारो के निहित हितों को बनाए रखने के लिए तब तक बाध्य है जब तक वे लोकहित के मार्ग मे आड़े नही आते। जब समाज कल्याण के लिए खतरा उपस्थित हो तो इन अधिकारो मे संशोधन एक तकाजा बन जाता है। जब उपयुक्त समय आ जाए, परिस्थितियां अनुकूल हों तब परिवर्तन तो समाज मे अपना मार्ग आप ही बनाएगा तथा समाज पर अपने को बलपूर्वक ही थोपेगा, भले ही समाज के कुछ सदस्य उसे न चाहें। जमींदारों द्वारा उठाई गई आपत्तियों का उत्तर 'मराठा' ने 21 अक्तूबर 1883 के अंक के संपादकीय मे दिया। जमींदारो की इस धारणा का कि काश्तकारी कानून के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं आया है, उत्तर देते हुए संपादकीय ने टिप्पणी की कि प्रत्यक्ष और तात्कालिक क्षतिग्रस्त व्यक्ति कभी

यह स्वीकार नहीं करेंगे कि उनके अधिकारों को छीनने का उपयुक्त समय आया है अथवा कभी आएगा। सारे विश्व मे खतिहरों के दुर्भाग्य पर रुदन करते हुए संपादकीय मे लेखक ने लिखा :

प्रमुख कारण कुछ भी हो, चाहे खेत म वरीयता हो अथवा न्यायालय मे वरीयता हो, इसन समाज के एक वर्ग पर कमरतोड कठोर श्रम और दासता लाद दी है तथा दूसरे वर्ग को पूर्ण आराम तथा शारीरिक श्रम मे मुक्ति का वरदान दे दिया है परन्तु अब यह पूर्ण रूप मे नितात स्पष्ट हो गया है कि आधुनिक सभ्यता तथा समता की पनपती भावना इन दोनो वर्गों के मध्य असमान और अन्यायपूर्ण संबंधो को लंबे समय तक बने नही रहने देगी। समाज की पुनर्व्यवस्था का दिन जल्दी या देर सवेर आना निश्चित है। अच्छा हो कि हम बुदबुदाने अथवा गिला शिकायत करने के बदले उस दिन के स्वागत के लिए ही अपने आप को तैयार कर ले।

लेखक ने घोषणा की कि यदि उस पर छोड दिया जाए तो वह अधिक क्रांतिकारी साधन प्रस्तुत कर सकता है जिसके अनुसार जमीदार किसानो को भूमि वापस देने को विवश हो जाएगे। 18 नवबर 1883 के अक म 'मराठा' ने पुन. अत्युच्च नैतिकता का स्वर अपनाया और घोषणा की कि बिल सबधी सारे मतभेद के विषय मे विचारणीय विषय यह है कि क्या हम सुस्त, आलसी और मुफ्तखोरो का एक ऐसा वर्ग बनाए रखना चाहते है जो दूसरे आदमियो के श्रम के फल को तो डकार जाए, दूसरो के श्रम से अर्जित धन पर गुलछर्रे उडाए परन्तु इस बात की जरा भी चिन्ता न करे कि वे श्रमिक, जिनके श्रम पर वह पलता है, सर्दी मे ठिठुर कर तथा खाद्य पदार्थों के अभाव मे भूखे मरते है। 6 जनवरी 1884 के अक मे उसने जमीदारो को चेतावनी देते हुए लिखा : जमीदारो के पास पैसा है और उस पैसे के फलस्वरूप उनके पास प्रभाव और शक्ति है, इसके विपरीत दूसरी ओर किसान निस्संदेह निर्धन, दुर्बल और अवाक है परन्तु किसान सदैव इस रूप मे नही बना रहेगा यदि जमीदार समय पर नही चेतते तो जब कभी भी किन्तु एक बहुत जोर का झटका उन्हे अवश्य लगेगा और वह झटका जमीदारो को बिलकुल कुचल कर रख देगा।[45] 'इडियन स्पेक्टेटर' ने भी अपने 25 मार्च 1883 के अक मे बिल पर इसी प्रकार के जमीदार विरोधी और किसान समर्थक विचार प्रकट किए।[46] 25 मार्च तथा 1 अप्रैल 1883 के अंकों मे 'नेटिव ओपीनियन' ने भी बिल पर इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की।[47] बंगाल के बाहर के भी कितने ही पत्रो ने बिल का समर्थन किया।[48] यहा यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि जस्टिस रानाडे ने बंगाल टेनेंसी ऐक्ट का इस पुस्तक के एक अलग भाग मे आगे विवेचित आधारों पर विरोध किया तथापि उन्होने किसानों की पूर्ण सहायता के लिए उपचार स्वरूप कानून की तात्कालिक आवश्यकता को पूर्ण रूप मे अभिस्वीकार ही नही किया प्रत्युत 1793 के विनियम होने पर भी इस कानून को बनाने के सरकारी पग को न्यायोचित घोषित किया।[49] यहा यह भी बताना उचित होगा कि सरकारी अधिकारी के रूप मे आर० सी० दत्त ने बंगाल मे किसान अधिकारों को लागू करने के एशले ईडन के प्रस्तावों का पूर्ण रूप से समर्थन किया।[50]

बंगाल और बिहार मे राष्ट्रवादी नेताओ के एक वर्ग ने जमीदारों का पक्ष लिया तथा

1881 और 1883 के काश्तकारी विलों का विरोध किया। कई मामलों में यह विरोध खुले तौर पर ही किया गया।[51] 'अमृत बाजार पत्रिका' और उसके बंगाली प्रतिरूप 'आनंद बाजार पत्रिका' ने सामान्यतया विरोधी दृष्टिकोण अपनाया परंतु उनके विरोध के आधार भिन्न थे। उन्होंने पितृवादी तर्क प्रस्तुत किया जो परिणाम में जमीदारों के पक्ष में जाता था। उदाहरणार्थ उनका एक तर्क था कि किसी प्रकार के कानूनी हस्तक्षेप मे जमीदारो और किसानो के मध्य मैत्री और सौहार्द के संबंधों को धक्का पहुंचेगा। 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपने 8 जनवरी 1885 के अंक मे बड़े सकोच और हिचकिचाहट के साथ इस तर्क को इस प्रकार प्रस्तुत किया :

> जमीदार और किसान से संबधित विषय पर हमारा सिद्धात पक्ष यह है कि किसानों के जोत सबंधी अधिकारो की स्पष्ट और संतोषप्रद परिभाषागत व्याख्या की जानी चाहिए ताकि उन्हे छीना झपटी के प्रयासो के विरुद्ध बचाया जा सके परतु इसके साथ ही दोनों को परस्पर सामाजिक सद्भाव और सहानुभूति से बांधने वाले तथा समय की कसौटी पर खरे सिद्ध हुए बधनों को निर्ममतापूर्वक टूटने नही देना चाहिए। सक्षेप मे जमीदारों को इस स्थिति में रखा जाए कि वे किसानों सता न सकें परंतु इसके साथ ही किसानो को भी जमीदारों को नकारने के लिए और सामाजिक परपराओं मे उनके महत्व को अस्वीकार करने के लिए प्रोत्साहित नही करना चाहिए। जमीदार अपना हित किसान से स्नेह करने मे और किसान अपना हित जमीदार का आदर करने मे अनुभव करें।[52]

कभी कभी तो उन्होंने यह अनुभव किया कि बंगाल के जमीदारों पर प्रहार एक प्रकार मे देश में एकमात्र अवशिष्ट सपन्न और नेतृत्व प्रदान करने वाले वर्ग पर ही आक्रमण था।[53] परतु उनके विरोध का प्रमुख आधार उनका यह विश्वास था कि प्रस्तावित उपायो मे जमीदार और किसान के बीच के बिचौलियो, मध्यवर्ती किसान तथा मालिक, के हितों की पूर्ण रूप मे उपेक्षा की गई थी।[54]

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जब जमीदारों ने अलबर्ट बिल के विरुद्ध विषैला आंदोलन चलाने वाले बगाल के अंगरेजों से अपने पक्ष मे समर्थन की मांग की तो अमृत बाजार पत्रिका तक ने तथा अन्य जमीदार समर्थक राष्ट्रवादी पत्रों ने जमींदार विरोधी पत्रों का साथ दिया और जमीदारो की इस कार्यवाही की निंदा करते हुए उसे देश के प्रति विश्वासघात, वचन भंग, टुच्चापन तथा निर्लज्ज व्यवहार बताया।[55]

राष्ट्रवादी समाचारपत्रों और तत्कालीन नेताओं द्वारा प्रस्तावित काश्तकारी बिल के पक्ष अथवा विपक्ष में प्रस्तुत तर्कों की भिन्नता का आधार उनकी सहानुभूति के पात्र जमींदार, बिचौलिया अथवा किसान की भिन्नता थी।

जमीदार समर्थक राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने मौरूसी अधिकारों के विस्तार संबंधी व्यवस्था[56] का मौरूसी हक के हस्तांतरण की व्यवस्था का,[57] लगान की वृद्धि पर प्रतिबंध लगाने की व्यवस्था का [58] तथा गैरमौरूसी किसानों को बेदखल करने पर उन्हें क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था[59] का विरोध किया। उन्होंने मांग की कि यदि लगान पर सीमा ही लगानी है तो उसकी अपेक्षाकृत अधिकतम ऊंची सीमा निर्धारित करनी चाहिए।[60]

राष्ट्रवादी समाचारपत्रों के एक समूह ने सोच समझकर ही ताल्लुकेदार जोतदार जैसे बिचौलियों के हितों की वकालत की। उदाहरणार्थ, 'अमृत बाजार पत्रिका' ने खुले आम बिचौलियों के हितों का समर्थन किया तथा उन्हे बंगाली समाज का आधार और भविष्य बताया।[60]ए आनंद बाजार पत्रिका का तर्क था कि सरकार जो प्रस्तावित अधिकार सभी किसानों को देना चाहती है, यदि वे अधिकार बिचौलियों को दिए जाएं तो उनका अधिक अच्छा उपयोग हो सकता है क्योंकि ये बिचौलिये पट्टेदार उल्लेखनीय रूप मे उन सभी दोषो से मुक्त है जो किसानो और जमीदारो मे प्राय: पाए जाते हैं। ये लोग जमीदारो मे अपेक्षाकृत अच्छे हैं और वे जमीदारों और किसानो की अपेक्षा धरती मे प्रत्यक्ष और गहरी रुचि लेते है। ये एक साधारण किसान की अपेक्षा अधिक समृद्ध और सुशिक्षित है अत भूमि सुधार और वैज्ञानिक साधनो के उपयोग मे अधिक सक्षम है। साथ ही, ये लोग जमीदारो के दमन का रोकने मे भी पर्याप्त समर्थ और शक्ति सपन्न हैं। इसके अतिरिक्त ये किसानों मे अपना प्रत्यक्ष सबध भी बनाए रखते है। इन्हे किसानों के साथ संबध के लिए चपरासियों, नायबों और दिवानो आदि क माध्यम की आवश्यकता नही होती।[61] जब एक बार इस समाचारपत्र को यह विश्वास हो गया कि यह बिल इन बिचौलिये पट्टेदारो के [illegible] जाता है तो उसने 1883 के काश्तकारी बिल का विरोध किया।[62] इस पत्र ने यह भी देखा कि ये बिचौलिये सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से बगाल के एक महत्वपूर्ण वर्ग मे सबधित थे। बहुत से मध्यवर्गीय बगाली, छात्र, वकील, क्लर्क, डाक तथा पुलिस अधिकारी, इसी बिचौलिये वर्ग मे सबध रखते थे और यह वर्ग स्वशासन के आदोलन का आधार था।[63] बगाली ने 17 मार्च 1883 के अक मे बंगाली समाज की रीढ़ की हड्डी बने इन बिचौलियों के हितो की सुरक्षा करने और उन्हे सुदृढ बनाने का समर्थन किया। इस पत्र ने इस समर्थन के साथ यह भी सकेत किया कि यह कार्य काश्तकारी बिल द्वारा पहले ही किया जा चुका है। बगवासी, नवविभाकर, भारत मिहिर, तथा साधारणी आदि ने भी बिचौलियों को अधिकार देने के पक्ष का समर्थन किया।[64]

किसानो के पक्ष के समर्थक भारतीय नेताओ ने काश्तकारी बिल की काश्तकारो के अधिकारो को विस्तृत करने वाली धाराओ का अनुमोदन किया, इन अधिकारो को और सुदृढ बनाने की वकालत की तथा किसानो के हित के विरोधी दिखाई देने वाले तत्वो की आलोचना की। प्रथम, उन्होने व्यापक और स्थाई आधार पर मौरूसी हक देने वाली व्यवस्थाओं का अनुमोदन किया।[65] उन्होने इस दिशा मे और अधिक बडी सुविधाओं की मांग की।[66] द्वितीय, उन्होने मौरूसी हक को हस्तातरित किया जा सकने वाला बनाने तथा उसे उत्तराधिकार का रूप देने का पूरा पूरा समर्थन किया।[67] तृतीय, उन्होने जमींदार के लगान बढाने के अधिकार पर प्रस्तावित प्रतिबंध का स्वागत किया।[68] कइयों का तो विचार था कि प्रतिबंध वांछनीय रूप मे नही है और अधिकतम निर्धारित सीमा भी बहुत ऊंची है।[69] कुछ ने माग की कि जब भूमि के सुधार मे जमीदार का कोई योगदान ही नहीं है तो उसे लगान बढाने की अनुमति क्यों दी जाए।[70] कुछ ने तो जमीदार और किसान के मध्य स्थाई रूप से लगान के निर्धारण की मांग की।[71] चतुर्थ, गैरमौरूसी हकवाले किसानों

को जमीदारों द्वारा बेदखल करने पर किसानो को जमीदारों द्वारा क्षतिपूर्ति की प्रस्तावित व्यवस्था का भी उन नेताओं ने अनुमोदन किया।[72] कुछ नेताओं ने यह प्रस्ताव किया कि जमीनों के लगान और इसकी वृद्धि के संबध मे मौरूसी और गैरमौरूसी हकवाले किसानों मे किसी प्रकार का भेदभाव नही करना चाहिए।[73] पंचम, किसानों से लगान के आसान तरीकों से वसूली की सुविधाएं जमीदारो को प्रदान की जानी चाहिए।[74] जमीदारों को फसल की कुर्की का अधिकार दिए रखने का यह अभिप्राय होगा कि वे किसानों का दमन करते रहेगे।[75]

राष्ट्रवादी नेताओ के इस वर्ग ने 1883 के टेनेंसी बिल के एक विशिष्ट पक्ष के प्रति कि इससे उपकाश्तकारी के प्रसार के निवारण मे कोई सहायता नही मिलती है तथा इससे मौरूसी हक प्राप्त किसानो के अधीनस्थ काश्तकारो के हितो को सुरक्षा नही मिलती है, ऐसा तीखा आलोचनात्मक और लगभग आधुनिक दृष्टिकोण अपनाया कि बंगाल के ग्रामों में कालातर में घटित घटनाओं के सदर्भ मे इस आलोचना को एक अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो गया है।[76] अत: उसकी हम थोडी सी विस्तृत चर्चा नीचे प्रस्तुत कर रहे है :

इन नेताओ ने निर्देश किया कि 1883 के बिल के विभिन्न प्रावधानो, मौरूसी हक को व्यापक बनाने, मौरूसी हक को हस्तातरण का विषय बनाने तथा किसान को जमीन को आगे लगान पर देने का अधिकार देने का परिणाम यह निकलेगा कि बिचौलिया वर्ग बड़े पैमाने पर उभर कर अस्तित्व मे आ जाएगा जो जमीदार की अपेक्षा किसानो का अधिक दमन करे और उनसे बहुत ऊंचे लगान वसूल करे। इस प्रकार असली धरती जोतने वालो की बहुत बडी सख्या तो अधिकारहीन और सर्वथा असहाय तथा अधीनस्थ किसान बनकर रह जाएगी।[77] इस सबका कारण उनके विचार मे यह था कि इस बिल में न तो धरती के असली जोतने वालों के समुचित सरक्षण की कोई व्यवस्था थी और न ही 'किसान' शब्द का उपयुक्त विश्लेषण किया गया था। अत उनकी माग थी कि इस नए वर्ग के विकास को अवश्यमेव रोकना चाहिए। परन्तु यह कार्य कैसे हो ? इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि जमीदार मौरूसी हक के हस्तातरण के विरुद्ध इस आधार पर थे कि उनके अनुसार इसके परिणामस्वरूप जमीन सूदखोर बिचौलियो के हाथो मे पड जाएगी। नेताओ के जिस वर्ग के विचारो का हम यहा विश्लेषण कर रहे है वह बिचौलियो के विरुद्ध इसलिए था कि यह वर्ग जमीदारो के नही प्रत्युत किसानो के हितों के प्रतिकूल था। अतः उन्होने जमीदारो द्वारा अपनाई गई स्थिति को मानने से इनकार कर दिया और इसके विपरीत मौरूसी हक के हस्तातरण का इस आधार पर समर्थन किया कि इससे किसानो को सहायता मिलेगी। इसके साथ ही इसके परिणामस्वरूप बिचौलियों के विकास की संभावना को निर्मूल करने तथा उपकाश्तकारी को निरुत्साहित करने के लिए उन्होंने कुछ अन्य उपचार भी सुझाए जो किसानो के अनुकूल और जमीदारों, बिचौलियों तथा सूदखोरो के प्रतिकूल थे। सर्वाधिक व्यापक लोकप्रिय उपचार था कि मौरूसी हक असली खेत जोतने वाले को मिलना चाहिए। नाम के लिए जमीन के स्वामी को नही। इसके साथ ही उनका कथन था कि जब कभी जितने समय के लिए मौरूसी

हक प्राप्त किसान अपनी सारी धरती को अथवा उसके कुछ भाग को लगान पर चढाता है, उतनी अवधि के लिए उसे अपने मौरूसी हक से वंचित कर देना चाहिए और उसके बदले असली जोतने वाले उपकाश्तकार को ही यह अधिकार मिल जाना चाहिए।[78] 10 नवबर 1883 के अंक मे सजीवनी ने और 12 नववर 1883 के अक मे नवविभाकर ने उपकाश्तकारी पर कानूनी प्रतिबध लगाने की माग की।[79] नवविभाकर ने बडी ही बुद्धिमत्तापूर्वक स्वयं हल जोतनेवाले किसान की परिभाषा निम्नलिखित रूप मे की, 'क्या यह कानून बनाना ठीक नही होगा कि जो स्वय अपने हाथो अथवा नौकरो के माध्यम से हल नही जोतना, जोत के हानि-लाभो का प्रत्यक्ष रूप से भागीदार नही बनता, किसान कहलाने का हकदार नही है और इसके फलस्वरूप ऐसा व्यक्ति मौरूसी हक प्राप्त नही कर सकता।' 13 मार्च 1883 के अक मे 'बगाली' ने जमीन की जोतो की सीमा निधारित करने वाले आज के प्रस्ताव के महत्व का पूर्वाभास करते हुए सिफारिश की कि किसी भी काश्तकार को समुचित और नियमित रूप से जोतने के लिए अपेक्षित साधनो की उपलब्ध पर्याप्तता से अधिक धरती रखने की अनुमति नही देनी चाहिए। अतिम, कुछ कृषक समर्थक समाचारपत्रो ने प्रस्ताव रखा कि मौरूसी हकदार किसान द्वारा और गैरमौरूसी हकदार किसान द्वारा चुकाए जाने वाले लगान का अतर इतना थोडा हो कि कोई भी मौरूसी हकदार किसान अपनी धरती को किराए, पट्टे पर देने मे किसी प्रकार के लाभ की प्राप्ति की सभावना ही न देखे।[80]

1884 की प्रवर समिति और भारत सरकार द्वारा 1883 के काश्तकारी बिल के तीन प्रमुख सिद्धातो पट्टे की स्थिरता, न्यायसगत लगान तथा स्वतत्र रूप मे बिक्री का अधिकार, मे कतरब्योत किए जाने ही किसानसमर्थक राष्ट्रवादी नेताओ ने इन परिवर्तनो के विरुद्ध रोषपूर्ण आदोलन शुरू कर दिया। उन्होने किसानो के हितो के साथ विश्वासघात करने के लिए और जमीदारो के हितो के अनुरूप बिल मे सशोधन करने के लिए, विशेषत मौरूसी हक प्राप्त करने सबधी, हस्तातरण करने सबधी धाराओ को पानी मे डालने तथा लगान वृद्धि को सीमित करने वाली और बेदखली की हालत मे क्षतिपूर्ति करने वाली व्यवस्थाओ को छोडने के लिए सरकार की आलोचना की।[81] कुछ लोगो का विरोध तो इस सीमा तक पहुच गया कि वे सशोधित बिल को स्थगित करने की ही माग करने लगे क्योंकि उनका विचार था कि किसानो के दृष्टिकोण से यह बिल न केवल असतोषजनक प्रत्युत उनके हितो के प्रतिकूल भी था।[82] अत मे किसानो के पक्षधर, जो इस बिल के आलोचक थे, केवल इसी विश्वास से इसका समर्थन करने लगे कि कुछ भी न होने से तो कुछ होना अच्छा है।[83] इसके अतिरिक्त बहुतो ने यह अवश्य अनुभव किया होगा जैसा 'साधारणी' ने अपने 5 जुलाई 1885 के अक मे लिखा 'यद्यपि काश्तकारी अधिनियम संतोषप्रद नही है तथापि इसके अतर्गत प्रमुख सिद्धात कृषको के अनुकूल है अत. यह अधिनियम इस रूप मे किसानो के अन्यान्य हितो तथा अधिकारो के आदोलन के लिए आधारशिला का कार्य करेगा।[84] यहा यह उल्लेखनीय है जो सभवत आश्चर्यजनक ही है कि वस्तुत. हमारे अध्ययन के अतर्गत अवधि से संबधित 1885 के परिवर्ती बीस वर्षों की अवधि मे बगाल में इस सबध मे कोई आदोलन नही हुआ। साथ ही यह निष्कर्ष

निकालना भी बिलकुल सही होगा कि भारत सरकार बंगाल और बिहार के जमींदारों के आगे उनके द्वारा डाले गए दबाव के कारण झुकी न कि इस कारण कि किसानों के पक्ष में अपेक्षित समर्थन तथा बंगाल के उभरते बहुसंख्यक राष्ट्रवादी नेताओं के विरोध का अभाव था। वस्तुतः राष्ट्रवादियों का एक वर्ग सरकारी अधिकारियों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील और अधिक दूरदर्शी था। जब बहुत सारे सरकारी अधिकारी उपकाश्तकारी को देहाती बेरोजगारों का एक सुरक्षित सहारा अथवा अधिक से अधिक एक अपरिहार्य रोग मानते थे, इन नेताओं ने उपकाश्तकारी को रोकने के लिए और मजदूर किसानों के हितों की सुरक्षा के लिए आंदोलन किया।[85]

पट्टेदारी संबंधी कानून, 1880-1905

1881 के उत्तर-पश्चिमी प्रांतीय लगान अधिनियम (नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज रेंट ऐक्ट) पर राष्ट्रवादियों की कोई भी टिप्पणी उपलब्ध नही।[86] 'जरनल आफ दि पूना सार्वजनिक सभा' में अप्रैल 1881 में बिना नाम से प्रकाशित एक लेख में 1883 में कानून का रूप ग्रहण करने वाले मध्य प्रदेशीय प्रांतों के काश्तकारी बिल की तीखी आलोचना की गई।[87] लेखक ने बिल की उन व्यवस्थाओं पर आपत्ति की जिनके अंतर्गत मालगुजारों के लगान बढ़ाने की शक्तियों को सीमित किया गया था, विशेषतः सरकार अपने राजस्व की मांगो पर इस प्रकार की कोई सीमा लगाने के पक्ष मे नही थी, लगान वसूली मे किसानों को कष्ट देने पर तथा उन्हे बेदखल करने पर प्रतिबंध लगाया गया था। लेखक ने उन व्यवस्थाओ की भी निंदा की जिनका संबंध गैरमौरूसी किसान को बेदखल करने पर भूमिसुधार की क्षतिपूर्ति करना था तथा मौरूसी हकों को व्यापक रूप देना था।[88] लेखक ने सैद्धांतिक रूप मे यह मान लिया था कि जमीदारो और किसानों के सबंध किसी बाहरी एजेंसी द्वारा नियमित नही किए जा सकते, इन्हें तो किसी प्रतियोगिता पर छोड़ देना पड़ेगा।[89] 'न्यायसुधा' ने भी जमींदारों के दृष्टिकोण से सेंट्रल प्राविंसेज टेनेंसी बिल की आलोचना की।[90] दूसरी ओर बंगाली ने बिल का समर्थन तो किया परंतु यह अनुभव किया कि किसानों के हितो की सुरक्षा की दिशा में बिल पर्याप्त नही है।[91] जब सरकार ने बाद में 1883 के सी० पी० टेनेंसी ऐक्ट को थोडा और अधिक किसानों के अनुकूल बनाने की इच्छा से उसमें परिवर्तन का प्रयत्न किया तो 'मराठा' ने अपने 29 सितंबर 1889 के अंक में जमींदारों के हितों के साथ खिलवाड़ करने का सरकार की नीति के प्रति विरोध किया।

राष्ट्रवादी नेताओं ने 1886 के अवध रेंट ऐक्ट पर तथा पंजाब काश्तकारी अधिनियम पर अपने विचार प्रकट नही किए।

1885 के बंगाल टेनेंसी ऐक्ट मे संशोधन का बिल 1897 मे पेश किया गया और 1898 में पारित किया गया। इससे उल्लेखनीय रूप से ही बंगाल में नाममात्र का मतभेद उभरा। 'ढाका प्रकाश' और 'बंगबासी' ने इस बिल के प्रति जमीदार समर्थक दृष्टिकोण अपनाया[92] तो 'बंगाली' और 'हितवादी' किसान समर्थक ही बने रहे।[93] बंगाल विधान परिषद में सुरेंद्रनाथ बैनर्जी और कालीचरण बैनर्जी ने अपने विचार मे किसानों के हितों

के विरुद्ध जाने वाले बिल के पक्षों के विरुद्ध भाषण दिया।[94] एन० एन० सेन ने इन दोनों महानुभावों के साथ बिल के संशोधन तक का प्रयास किया ताकि किसानों के अधिकारों को और अधिक दृढ़तापूर्वक सुरक्षित किया जा सके।[95]

16 अप्रैल 1884 के अंक में 'हिंद' ने और 15 फरवरी 1888 के अंक में 'स्वदेशमित्रन' ने 1880 के दशक में मद्रास के जमींदारीवाले इलाकों में किसानों के हितों की सुरक्षा की दिशा में सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रयत्नों को अनावश्यक घोषित किया।[96] 'हिंदू' ने अपने 27, 28 और 30 मई और 23 जून 1898 के अंकों में 1898 के मद्रान टेनेंसी बिल का अनुमोदन किया। 'हिंदू' ने यह अवश्य अनुभव किया कि बिल की व्यवस्थाएं किसानों के हितों का पर्याप्त सीमा तक संरक्षण नही करतीं। उसकी इच्छा थी कि सभी किसानों को सदा के लिए मौरूसी हक दे देने चाहिए क्योंकि जमीन के वास्तविक मालिक वे ही थे न कि जमींदार। मद्रास विधान परिषद में राष्ट्रवादी सदस्यों ने ढुलमुल स्थिति इख्तियार की।[97]

मालाबार के जमींदारों द्वारा बड़े पैमाने पर किसानों की बेदखली रोकने के उद्देश्य से 24 जनवरी 1890 को 'मालाबार कंपनसेशन फार टेनेंट्स इंप्रूवमेंट बिल' (किसानों की स्थिति मे सुधार के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करने वाला मालाबार का बिल) प्रस्तुत किया गया। मालाबार की प्रमुख राष्ट्रवादी पत्रिका 'केरल पत्रिका' इस विषय पर चालू कानूनों के विरुद्ध वर्षों से शिकायत करती आ रही थी, बार बार होने वाले मोपला विद्रोहों के लिए जमींदारों द्वारा उत्पन्न गरीबी को उत्तरदायी बताती आ रही थी तथा मालाबार के किसानों को धरती पर किसी न किसी प्रकार के मौरूसी हक देने की मांग करती आ रही थी।[98] उसने 'केरल संचारी' और 'केरल चंद्रिका' आदि पत्रिकाओं के साथ इस बिल का बड़ी ही तत्परता और सक्रियता मे समर्थन किया।[99] दूसरी ओर 'हिंदू' और 'मनोरमा' ने बिल का विरोध किया।[100] मद्रास विधान परिषद के राष्ट्रवादी सदस्यों, सी० विजयराघवाचारी, जी० वेंकटरमन और पी० रत्नसभापति पिल्लई ने भी बिल का विरोध किया।[101] सी० विजयराघवाचारी की एक आपत्ति यह थी कि बिल में केवल मालाबार के 'करनोमदार' पट्टेदारों के संरक्षण की व्यवस्था थी, जबकि ये लोग वास्तव मे ग्रामीण क्षेत्र के साहूकार थे और किसी प्रकार की सहायता की अपेक्षा नही रखते थे। बिल में वास्तविक किसान की सुरक्षा की कोई व्यवस्था ही न थी। उन्होने घोषणा की कि यही बात है कि इस बिल का समर्थन नंबूदरी जमींदारों और असली हल जोतने वालों के बीच के नायर बिचौलियों द्वारा ही किया जा रहा है।[102]

जमींदारों के दृष्टिकोण से 'तोहफा ए हिंद', 'नसीमे आगरा', 'अनीसे हिंद' और 'प्रयाग समाचार' ने उत्तर-पश्चिमी प्रांतों के लगान अधिनियम में संशोधन के प्रयत्नों का विरोध किया। 'अवध पंच' ने किसानों की दृष्टि से समर्थन किया। 'हिंदुस्तानी' ने जमींदारों के लक्ष्य के प्रति अपना झुकाव दिखाते हुए भी बीच की स्थिति अपनाए रखी।[103] 'इंडियन डेली मेल' ने अपने 25 अक्तूबर 1901 के अंक में 1901 के उत्तर पश्चिमी प्रांतों के लगान बिल को पूर्ण समर्थन दिया।[104] परंतु कुल मिलाकर प्रांत के राष्ट्रवादी नेताओं ने जमींदार समर्थक दृष्टिकोण ही अपनाया। उन्होंने जमींदारों की मांग पूर्ति की दृष्टि से बिल के संशोधन के लिए दबाव डाला तथा बाद में पर्याप्त परिमाण में उद्देश्य की पूर्ति न

होने पर अधिनियम की आलोचना की ।[105]

1898 और 1904 की अवधि में बंबई सरकार ने रत्नगिरि जिले में खेतों और उनके किसानों के मध्य के संबंधों के जटिल प्रश्न पर कानून बनाने का एक प्रयास किया । इस संबंध मे उत्पन्न मतभेद की स्थिति में बंबई के राष्ट्रवादी नेताओं ने निश्चित रूप से खोत समर्थक दृष्टिकोण ही अपनाया ।[106]

किसान और साहूकार

ग्रामीण भारत की तीसरी मुसीबत थे गांव के साहूकार अथवा कर्ज देने वाले बनिए। 19वी शताब्दी के अंतिम चरण मे ग्रामीण कर्जदारी इतनी तेजी से बढ गई कि वह ग्रामीण क्षेत्र की विषमतम समस्या बन गई । ग्रामीण ऋणदाता साहूकार द्वारा वसूली जाने वाली, आसमान को छूने वाली ब्याज की दर ने दो प्रमुख रोगो को जन्म दिया : ब्याज के भुगतान किसान की आय का बहुत बड़ा भाग हडप जाते थे और किसान की प्राय. ही ऋण की वापसी मे असमर्थता के फलस्वरूप बडे पैमाने पर किसानों की भूमि हल न चलाने वाले ऋणदाता साहूकारो के हाथ मे चली जाती थी । इस प्रकार पुराना किसान साहूकार की मरजी पर पट्टेदार बन गया था और इसका अवश्यभावी परिणाम यह निकला कि कृषि और कृषक दोनों की हालत पहले से अधिक बिगड़ गई ।[107]

ग्रामीण कर्जदारी की समस्या के प्रति भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं का रवैया प्राय. कुछ जटिल, बहुमुखी और उभयपक्षी और कभी कभी विपरीत था । जहा ब्रिटिश भारतीय प्रशासकों ने साहूकार और उसके ब्याज की ऊंची दरो को किसान की निर्धनता और कर्जदारी के प्रमुख कारणों मे से एक माना,[108] वहा भारतीय नेताओ का विश्वास था कि ऋणदाता साहूकार खेतिहरों की गरीबी और ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण न होकर गौण कारण ही था । इस संबंध मे उनकी आशका यह थी कि साहूकार को ही इस अपराध का प्रमुख और एकमात्र कारण बनाना किसान की गरीबी और ऋणग्रस्तता के वास्तविक और मूल कारणो से ध्यान हटाने जैसा था ।[109] उनकी धारणा थी कि इस प्रश्न को इस रूप में प्रस्तुत करना चाहिए कि किसान को साहूकार के पास आना ही क्यों पड़ता है ? साहूकार के पास रुपया उधार लेने के लिए जाना किसान के लिए कोई खुशी अथवा फायदे की बात तो है नही ।[110]

उनके अनुसार ग्रामीण ऋणग्रस्तता मे चौंकानेवाली वृद्धि के प्रमुख कारणों मे एक भारतीय किसान की निर्धनता भी थी । भारतीय किसान को अपनी धरती से पर्याप्त आजीविका नही मिल पाती थी फलत. वह अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए, विशेषत: तंगी के दिनों मे, ब्याज की बहुत ऊंची दरों पर ऋण लेने को बाध्य था । इस प्रकार किसान के पास दो ही विकल्प थे, या तो वह भूखों मरे या साहूकार की शरण में जाए ।[111] उनके विचार मे ऋणग्रस्तता का दूसरा कारण था, लगान की ऊंची दर के साथ साथ निश्चित तथा कठोर भूराजस्वपद्धति । उन्होने घोषित किया कि अधिकांशतया किसान सरकार के लगान का भुगतान करने के लिए ही ऋण लेते थे । 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 12 जून 1884 के अंक मे लिखा : 'खून चूसने वाला ऋणकर्ता साहूकार सरकारी भूराजस्व

पद्धति की ही उपज है। साहूकार का जन्म ही इसलिए हुआ है क्योंकि सरकार लगान से दबे किसान को संकट के समय में भी लगानों में किसी प्रकार की राहत नहीं देती थी।[112] कुछ भारतीय नेताओं ने तो ग्रामीण कर्जदारी का सारा दोष जटिल और अत्यंत विस्तृत कानून प्रणाली पर डाला जो व्यवहार मे साहूकार की सहायता करती थी और उसे किसान से उसकी भूमि का कब्जा हथियाने मे प्रोत्साहित करती थी और इस प्रकार साहूकारी की सारी बुराइयों को तीव्रता प्रदान करती थी।[113] बहुत सारे नेताओं ने इस सरकारी धारणा का जोरदार और दृढ़ता से खंडन किया कि किसान विवाह, मृत्यु तथा अन्य इस प्रकार के सामाजिक और धार्मिक समारोहों के लिए अनावश्यक रूप से ऋण लेता है अथवा दूसरे शब्दों में किसान की ऋणग्रस्तता का कारण उसकी फिजूलखर्ची है।[114]

इस प्रकार राष्ट्रवादियों द्वारा ग्रामीण कर्जदारी के विश्लेषित कारणो के पीछे उनका यह विश्वास था कि यह ब्रिटिश प्रशासनिक पद्धति की ही देन है और ऋणदाता साहूकार तो ब्रिटिश अर्थनीतियो का एक उपकरणमात्र है। इस विश्वास को किन्ही मामलो मे अत्यंत स्पष्ट भाषा मे अभिव्यक्त भी किया गया। उदाहरणार्थ 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 2 जनवरी 1901 के अंक मे दृढतापूर्वक कहा कि इस देश मे कम से कम मारवाडी उद्यमी तो ब्रिटिश शासन की ही उपज थे। 'केसरी' ने 18 फरवरी 1902 के अक मे टिप्पणी की :

> निस्संदेह ऋणदाता साहूकारो की संख्या ब्रिटिश शासन के अंतर्गत बढी है परंतु इसका कारण ब्रिटिश शासन द्वारा स्वदेशी उद्योगो की हत्या है। जब राष्ट्रीय उद्योग नामशेष हो गए हैं, जब प्रतिवर्ष 45 करोड रुपयो की इग्लैंड को निकासी कर दी जाती है तब यह क्या आश्चर्य का विषय है कि भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों द्वारा एक दूसरे को खाने के सिवाय उनके लिए और कोई वैकल्पिक मार्ग ही नही रह गया है। ब्रिटिश सरकार न केवल यह परिवर्तन लाई है अपितु उसने कानूनी साधनो से इसे निरंतर बनाए रखने का प्रयत्न भी किया है।[115]

बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओ ने किसान की दरिद्रता के प्रमुख कारण देहाती कर्जदारी तथा साहूकार को मानने की सरकारी धारणा से असहमत होते हुए भी साहूकारी से उत्पन्न बुराइयो को तत्परतापूर्वक स्वीकार किया, ग्राम के साहूकारो द्वारा वसूले जाने वाले ऊंची दर के ब्याज की निंदा की तथा किसान को लूटने के लिए बनिए द्वारा अपनाए जाने वाले अवैध और घृणित हथकडों की भर्त्सना की तथा साहूकारी को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उसे किसानो की गरीबी का एक गौण कारण ही घोषित किया। उन्होने प्राय: 'खून चूसने वाले' के रूप मे विख्यात और ज्ञात साहूकार के पजो से किसान को बचाने की माग की।[116] उदाहरणार्थ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1899 के अधिवेशन मे पंजाब के प्रतिनिधि लाला मुरलीधर ने कर्ज देने वाले साहूकार का रेखाचित्र निम्नलिखित रूप मे प्रस्तुत किया :

> साहूकार मनुष्य और पशु का विचित्र समन्वित रूप है। जो लोग आत्मा के पुनर्जन्म तथा पुन: शरीर धारण करने के सिद्धात मे विश्वास करते हैं, वे मेरी इस धारणा से एकदम सहमत होंगे कि साहूकार के पास शेर के पंजे हैं, लोमड़ी का दिमाग है और

बकरे का दिल है।···वह पैसे को हडपने वाला, घृणित जोक है, मैं तो कहूंगा कि यह वह व्यक्ति है जो गरीब खेतिहर का खून चूसता है।[117]

कुछ भारतीयों ने कृषि भूमि के गैर खेतिहर वर्गों के पास हस्तातरण होने की बढ़ती प्रवृत्ति पर चिंता प्रकट की तथा उसकी निंदा की।[118]

इसके साथ ही साथ सारे भारतीय नेताओ ने यह अनुभव किया कि वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों मे तथा ऋण लेने के वैकल्पिक साधनो के अभाव की स्थिति मे साहूकार ग्रामीण भारत की आर्थिक आवश्यकता था, क्योकि उसके बिना किसान के लिए कृषि कार्यों का सचालन लगान की माग का शीघ्रता से भुगतान आर्थिक कठिनता के समय अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण करना कठिन हो जाएगा। अत. उनका विचार था कि साहूकार को दबाना नही चाहिए प्रत्युत उसे सुधारना चाहिए और उस पर नियन्त्रण रखना चाहिए।[119] निस्सदेह उस समय की परिस्थितियो मे यह चिंतनधारा अपने मे सार्थक तथा सुदृढ थी।[120] नेताओ मे से कुछ लोग इस तर्क को बहुत आगे ले गए और कभी कभी साहूकारो और उनके हितो की रक्षा के लिए खुले आम बोलने लगे।[121]

साहूकारो के साथ किसानो के सबधो के प्रति भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ के दृष्टि-कोण को कदाचित समय समय पर साहूकारो के शोषण तथा अपदस्थ करने के प्रयत्नो मे किसानो को बचाने के लिए और इन प्रयत्नो के परिणाम मे ब्रिटिश शासन की राजनीतिक और सामाजिक स्थिरता के लिए उत्पन्न होने वाले खतरो को बचाने के लिए सरकार द्वारा किए गए प्रयासो के प्रति अपनाए गए उनके दृष्टिकोण के संदर्भ मे ही भली प्रकार समझा जा सकता है।

दकन खेतिहर सहायता अधिनियम, 1879

अधिकारियो द्वारा उठाया गया साहूकार विरोधी प्रथम महत्वपूर्ण चरण 1879 का दक्षिण के कृषिको की सहायता का अधिनियम था। इसका उद्देश्य 1875 के गंभीर उपद्रवो के रूप मे दक्षिण बबई के खेतिहरो द्वारा अभिव्यक्त असतोष को दूर करना था। यह कार्य साहूकारी को दबाने, साहूकारो की गलत और कपटपूर्ण प्रवृतियों को रोकने, कानूनी कार्यवाही को सरल रूप देने तथा ग्रामीण ऋणो को नीचे लाने से किया जा सकता था। दक्षिण के चार जिलो मे लागू किए गए अधिनियम के अतर्गत न्यायालयो को यह अधिकार दिया गया कि वे प्रतिज्ञापत्रो की भावना को देखें, ऋण के इतिहास और योग्यता की जाच करें, अनुचित ब्याज दरो की वसूली की अनुमति न देते हुए समुचित आधार पर वास्तव मे ही देय ऋण राशि निर्धारित करें। यह अधिनियम कर्जदार की धरती को बिकने से बचाता था जब तक कि किसान ने जमीन देने का ही निश्चित रूप में लिखित इकरारनामा न कर रखा हो। इतने पर भी कुछ विशेष परिस्थितियों मे से इस अधिनियम में किसानो को धरती लौटवाने की व्यवस्था भी थी। अधिनियम मे ग्राम रजिस्ट्रार की नियुक्ति की व्यवस्था थी, जिसके आगे ऋण सबधी सभी प्रतिज्ञापत्रो का पजीकरण कराना पडता था और ऋण की रकम अधिक होने पर कर्जदार को दिवालिया घोषित

करने का प्रार्थनापत्र देना होता था। इस अधिनियम के अंतर्गत ऋण चुकता न करने पर जेल के दंड को हटा दिया गया था तथा ऋण परामर्शदाता की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। 1882 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया और कर्जदारो को रेहन रखी गई धरती को छुड़वाने की चिंता किए बिना ही हिसाब के लिए कानून की शरण लेने की शक्ति दी गई।

इस अधिनियम को जस्टिस रानाडे, पूना सार्वजनिक सभा तथा बंबई के कई समाचारपत्रो ने सक्रिय समर्थन दिया।[122] रानाडे ने अपने दृष्टिकोण को निम्न शब्दों में संक्षिप्त रूप दिया :

> इस अधिनियम का समग्र औचित्य इसी एक तथ्य मे निहित है कि साधारण कानून दिवालिये और अशिक्षित किसान में तथा संपन्न और चालाक साहूकार मे बुद्धि और सुविधाओं की समानता के सिद्धांत को लेकर चलता है जबकि वस्तुतः इस समानता का किसी भी रूप मे अस्तित्व ही नही है, नकली कानून द्वारा समानता की धारणा पूर्ण रूप से ही कल्पनामूलक है और इसका बहुत ही दुरुपयोग होता रहा है। अपेक्षाकृत दुर्बल वर्ग के संरक्षण की दृष्टि से पुरानी रूढिवादी स्वदेशी परंपराओं की ओर लौट कर इस बुराई के उन्मूलन का समय आ गया है।[123]

रानाडे ने अक्तूबर 1879 मे 'जरनल आफ दि पूना सार्वजनिक सभा' मे प्रकाशित अपने लेख, 'डकन ऐग्रीकलचरिस्ट बिल' मे बिल की लगभग सभी महत्वपूर्ण धाराओ का समर्थन किया।

बबई के बहुत सारे राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने प्रमुख रूप से इस आधार पर बिल को अस्वीकृत कर दिया कि यह अनिच्छापूर्वक किया गया प्रयास है अत: यह किसानो की सुरक्षा मे सफल नही होगा। यह साहूकार के रूप मे गौण बुराई का तो उपचार करता है परंतु कठोर और दकियानूसी लगान पद्धति के रूप मे प्राथमिक बुराई को छूता तक नही। इसका परिणाम यह होगा कि किसान के दायित्व तो यथापूर्व बने रहेंगे परतु उसकी ऋण लेने की साख जाती रहेगी अतः उसकी और दुर्दशा होगी।[124] अधिनियम के आलोचको के मन मे कदाचित वही विश्वास काम कर रहा था जिसे 3 फरवरी 1884 के अंक मे मराठा ने खुले तौर पर प्रकट किया : 'यह एक ऐसा साधन है जिसे दुर्भाग्य के वास्तविक आधार को छिपाने के लिए अपनाया गया है।···सरकार द्वारा अपने उत्तरदायित्व को साहूकार के कंधों पर फेंकने की दिशा मे किए जा रहे प्रयत्नो का यह एक रूप है।' यहा तक कि अधिनियम का खुलकर समर्थन करने वाले रानाडे ने यह शर्त जोड दी कि यह बिल किसानों को राहत पहुचाने मे तभी सहायक सिद्ध हो सकता है जब इस कल्पना से काम लिया जाए कि भूराजस्व नीति को उदार बनाया जाएगा बिल की सफलता के लिए यह एकमात्र शर्त है।[125] उन्होन आगे दृढतापूर्वक लिखा : 'नही तो यह कानून कोई भी उल्लेखनीय और स्थाई लाभ नही पहुंचा सकेगा और सभव यह भी है कि वर्तमान स्थिति को ही और अधिक विषम बना देगा क्योकि किसान बेचारो को बढे हुए भूमि लगानों को चुकाने के लिए किसी न किसी तरह रुपया जुटाना पड़ेगा।[126] थोड़े से भारतीय नेताओं ने अधिनियम का विरोध भी किया। उनके विचार

मे यह साहूकार के हितों की पूर्ण उपेक्षा करता था और परिणामस्वरूप पूरी तरह बरबाद कर रहा था।[127]

धरती के संक्रमण पर प्रतिबंध

1879 के उपरात शताब्दी के अत तक सरकार ने देहाती कर्जदारी के बढते खतरे के विरुद्ध कोई बडा कदम नही उठाया। परतु धरती के किसानो के हाथ से निकल कर गैर-खेतिहर वर्गों के हाथ मे जाने की गति इतनी अधिक बढ गई कि अधिकारी घबडा उठे। तब सरकार पहले से अपनाए गए प्रयत्नो की अपेक्षा और अधिक वेगवान और प्रभावी उपचार करने को विवश हो गई। इस सबध मे वर्षो तक सरकारी चिंतन इस धारणा के चारो ओर घूमता रहा कि किसानो के हाथो से धरती के गैरखेतिहर वर्गों के पास जाने के प्रमुख कारण थे, सरकारी माग की अत्यधिक कोमलता। सरकारी कर नीति आर्थिक लगान का एक भाग लेने के बाद बहुत बडे अनुपार्जित अवशिष्ट भाग को भूस्वामियो के हाथ मे छोड देती थी और इससे खून चूसने वाले लगान वसूलने वाले वर्ग के बने रहने मे सहायता मिलती थी। ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भूस्वामियो को धरती बेचने अथवा रेहन रखने के रूप मे धरती को हस्तातरित करने की अबाधित शक्तिया दी गई थी। भारतीय किसान की फिजूलखर्ची की आदत थी। वह एक ओर अपनी इस प्रकृति के कारण और दूसरी ओर भूमि के सक्रमण की शक्ति से सपन्न होने के कारण अधिकतम रुपया उधार लेता था।[128] अत यह विश्वास बनाया गया कि जितना ऊचा कराधान होगा किसानो के लिए वह उतना ही अधिक फायदेमद होगा। यदि ब्रिटिश प्रशासको ने राजनीतिक दृष्टि से अपने प्रस्ताव को लागू करना असभव अनुभव न किया होता तो अवश्य ही उन्होने गैर-खेतिहर जमीदारी को लाभरहित बनाने के लिए भूमि लगान मे वृद्धि के प्रस्ताव को रखने की उत्सुकता अवश्य दिखाई होती।[129] अधिकारियो द्वारा विकल्प रूप मे अवशिष्ट दूसरा उपाय था, अबुद्धिमान और अदूरदर्शी किसानो के लिए घातक सिद्ध हो रहे भूमि हस्तातरण के उपहार रूप अधिकार को उनके हाथो मे छीन लेना, धरती बेचने की उसकी शक्ति पर प्रतिबध लगाना तथा इस प्रकार उसकी साख को सीमित करते हुए बड़े पैमाने पर ऋण लेने की उसकी शक्ति और प्रलोभन को दूर करना।[130]

नई नीति का प्रथम प्रमुख साकार रूप 1900 का पजाब एलिनेशन ऐक्ट था। अधिनियम के अतर्गत उत्तराधिकारी किसान द्वारा डिप्टी कमिश्नर की स्वीकृति के बिना और परिभाषित खेतिहर के सिवाय किसी अन्य को स्थाई रूप से भूमि के स्वामित्व परिवर्तन पर प्रतिबध लगा दिया गया। गैरखेतिहरो को भूमि के स्वामित्व की कई रूपो मे अस्थाई स्वीकृति अधिकतम बीस वर्ष की अवधि के लिए निश्चित की गई। इस अवधि के उपरात, बिना किसी प्रकार की बाधा के धरती मूल स्वामी के अधिकार में मानी जाने की व्यवस्था की गई तथा किसी आदेश अथवा आज्ञप्ति के परिपालन के लिए कृषि भूमि को न बेचे जा सकने की व्यवस्था की गई।[131] इससे स्पष्ट है कि यह अधिनियम किसान को चालू ऋणग्रस्तता से मुक्त करने के लिए नही बल्कि पजाब के कृषक वर्ग के एक बाहरी व्यक्ति के रूप मे साहूकार द्वारा किए जा रहे सपत्तिहरण से और इस

रूप से शायद निरंतर बढ़ रहे राजनीतिक खतरे के रोग से बचाने के लिए तथा भविष्य में उसे न बढ़ने देने के लिए बनाया गया था।[132] यही कारण है कि भूमि के खेतिहर वर्गों में हस्तांतरण की पूरी इजाजत थी और वास्तव मे भूमि के संक्रमण को पूर्णरूप से रोकने की जगह इसे कम किया गया और नियमित बनाया गया। हां, यह आशा अवश्य की गई थी कि इससे किसान की थोड़ी सी आवश्यकता होते ही साहूकार के पास भागे जाने की प्रवृत्ति और सामर्थ्य पर परोक्ष रूप से दबाव अवश्य पड़ेगा।

इस दिशा मे उठाया गया अगला महत्वपूर्ण कदम 1901 में बंबई मे लैंड रैवेन्यू अमेंडमेंट ऐक्ट (भूराजस्व संशोधन अधिनियम) को कानून का रूप देना था। इसमें सरकार को भूमि लगान का भुगतान न करने के अपराध में सरकार द्वारा जब्त किए गए खाली भूखंडों और खेतो के तथा हस्तानरण के अधिकार से रहित नए प्रकार के जोतों के बदोबस्त करने की शक्ति दी गई थी। इसके अतिरिक्त अधिनियम मे कलक्टर द्वारा यथानिर्दिष्ट अवधि के लिए तथा यथानिर्दिष्ट शर्तों पर जब्त धरती देने की भी व्यवस्था थी।[133] इस अधिनियम में सामर्थ्य देने की व्यवस्था थी, बाध्यता की नहीं थी तथा जब्त धरती को असंक्रमणीय बनाने की व्यवस्था थी। अत ऐसा कहा जा सकता है कि इस अधिनियम का क्षेत्र पंजाब के क्षेत्र की अपेक्षा बहुत ही संकीर्ण था, इसके अतिरिक्त पंजाब अधिनियम की ... यह अधिनियम दो रूपों में कठोर था, प्रथम, इसके अंतर्गत जितनी भी धरती आती थी, यह अधिनियम उस पर प्रतिबंध ही नहीं लगाता था प्रत्युत रेहन, बिक्री आदि किसी भी रूप में धरती के हस्तानरण पर पूर्ण निषेध लगाता था। द्वितीय, यह सरकार को सर्वेक्षित जोतों पर स्थाई मौरूसी हक देने के बदले जब्त किए गए खंडो को थोड़े समय के पट्टे पर देने का अधिकार देता था।

धरती के निजी स्वामित्व परिवर्तन की शक्ति को प्रतिबंधित करने की चेष्टाओं के प्रति राष्ट्रवादियों का दृष्टिकोण ग्रामीण ऋण ग्रस्तता के कारणो और निवारण के उपायो के संबंध मे ब्रिटिश अधिकारियों और भारतीय नेताओं के बीच मतभेदो को उजागर करता है। इन मतभेदों को देखते हुए यह स्वाभाविक ही था कि राष्ट्रवादी नेताओं ने इस अधिनियम का उसके जन्म काल से लेकर सरकार द्वारा उसे स्वीकृति देने के समय तक विरोध किया।[134]

पंजाब के बाहर पंजाब भूमि संक्रमण बिल का या तो विरोध हुआ और या उसे समर्थन नहीं मिला।[135] पंजाब मे भी राष्ट्रवादी पदाधिकारियों मे इस बिल ने मतभेद उत्पन्न कर दिया।[136] इसने बहुत सारे भारतीय राष्ट्रवादियो को अजीब स्थिति मे डाल दिया। उदाहरणार्थ पंजाब प्रांत के राष्ट्रवादी पत्रों मे उर्दू भाषा के मुखपत्र 'अखबारे आम' ने आरंभ मे बड़ी ही संकोच की सी स्थिति अपनाई और अपनी प्रतिक्रिया समर्थकों और विरोधियो दोनो के विचारों को प्रकाशित करने के रूप मे प्रकट की। लगभग एक वर्ष तक बीच मे लुढकते रहने के उपरात आखिरकार उसने अपने 7 अगस्त 1900 और 27 अक्तूबर 1900 के अंको मे बिल का विरोध किया।[137] परंतु दो ही सप्ताहों के उपरांत उसने अपना रुख बदल दिया और उसने 10 नवंबर 1900 के अंक मे

विश्वास के साथ भविष्यवाणी की कि यह अधिनियम सफल होगा और इसके संबध मे उठाई गई सभी आपत्तिया असगत हैं।[138] किसी भी रूप मे पजाब के भीतर अथवा बाहर पंजाब एलिएनेशन बिल का कठोर रोषपूर्ण अथवा दीर्घकालीन विरोध नही हुआ।

दूसरी ओर 'बबई भूराजस्व सशोधन बिल' मे बबई प्रदेश की जनता मे व्यापक रोष की लहर दौड गई।। प्रदेश के सभी भागो मे विरोध सभाए हुई तथा बबई प्रेजीडेंसी एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा तथा दकन सभा ने इसके विरुद्ध ज्ञापन भेजे।[139] प्रमुख राष्ट्रवादी समाचारपत्र इस बिल की निंदा के लिए कटिबद्ध हो गए[140], और प्रमुख लोकनेता हाथ धोकर इसके पीछे पड गए।[141] बबई लैजिस्लेटिव कौंसिल के कुछ भारतीय सदस्यो, पी० एम० मेहता, जी० के० गोखले, जी० के० पारिख, बालचद्र कृष्ण और डी० ए० खरे ने बिल को जल्दबाजी मे कानून का रूप देने के विरुद्ध अपना विरोध प्रदर्शित करने के लिए कौंसिल से बहिर्गमन का अभूतपूर्व कदम उठाया, यह भारतीय विधान परिषदो के इतिहास मे कदाचित प्रथम उदाहरण था।[142]

भूस्वामित्व परिवर्तन विरोधी कानून के विरुद्ध राष्ट्रवादियो के विरोध का आधार यह विश्वास था कि भले ही यह कानून किसानो को साहकारो द्वारा किए जाने वाले स्वामित्वहरण मे बचाने के उत्तम उद्देश्य को लेकर बनाया गया है परन्तु इससे व्यवहार मे कोई लाभ तो होगा नही उलटे यह किसानो के हितो के विरुद्ध ही जा सकता है। प्रथम, उनकी धारणा थी कि स्वामित्व परिवर्तन पर लगे प्रतिबधो से किसान की साख जडमूल से नष्ट न होने पर भी क्षीण अवश्य हो जाएगी। क्योंकि किसान को कृषि सबधी गतिविधियो के सचालन के लिए, सरकारी मागो के भुगतान के लिए और अभाव के दिनो मे परिवार के भरण-पोषण के लिए ऋण की आवश्यकता पडती ही रहती है, उस कानून का परिणाम यह होगा कि या तो वह ऋण ले ही नही पाएगा अथवा उसे इसके लिए बहुत ऊची ब्याज दर देनी पडेगी।[143] उनका यह भी दावा था कि इस प्रकार के प्रतिबधो का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि भूमि का मूल्य घट जाएगा।[144] उनकी यह भी धारणा थी कि ये प्रतिबध किसानो के स्वामित्व के अधिकारो के क्षेत्र म घुसपैठ है। धीरे धीरे ये प्रतिबध किसानो को वास्तव मे ही राज्य का दास बना देंगे।[145] भारतीय नेताओ ने विशेष रूप से बबई भूराजस्व सशोधन बिल पर प्रहार करते हुए अपनी इस आलोचना को उग्र स्वर दिया। उनके अनुसार जब्त की गई धरती पर समुचित समझी जाने वाली शर्तों पर और समुचित समझी जाने वाली अवधि के लिए बदोबस्त का सरकार को अधिकार देने वाली व्यवस्थाए न केवल किसान से स्वामित्व का अधिकार छीनने का उद्देश्य लिए हुए है प्रत्युत उसके स्थाई मौरूसी हक और निरतर जोतने का हक भी छीनती हैं। इस प्रकार नेताओ ने इन व्यवस्थाओ को राजकीय जमीदारी अथवा भूमि के राष्ट्रीयकरण के सिद्धात को लागू करने का एक गुप्त षड्यत्र बताया।[146] कुछ ने तो भविष्यवाणी की कि जहा तक किसान का सबध है, इन 'क्रातिकारी' व्यवस्थाओ से विपरीत परिणाम ही प्राप्त होगे। बेचारा किसान अपने पूर्ण स्वामित्व के अधिकार को बचाने के लिए साहूकार पर और अधिक निर्भर रहेगा

और साहूकार बदले में भविष्य में सरकार द्वारा जब्त किए जाने की आशंका से भूमि का कब्जा लेने की चेष्टा करेगा।[147] उनमे से कुछ ने तो निर्धन, असमर्थ और विपन्न किसानों के हाथ में भूमि विपन्न बनाए रखने की बुद्धिमत्ता को ही चुनौती दी और स्पष्ट घोषित किया कि इसका अनिवार्य परिणाम कृषि का अवपात ही तो होगा। दूसरी ओर उन्होंने धरती के स्वच्छंद हस्तातरण की वकालत की क्योंकि उनके अनुसार इसका परिणाम यह होगा कि धरती अपेक्षाकृत अधिक योग्य और साधन संपन्न किमानों के हाथ में आ जाएगी जो कृषि उत्पादन को ऊंचे स्तर पर लाने के लिए नई तकनीक का प्रयोग और पूजी का निवेश कर सकेंगे।[148] इस विचारधारा का प्रधान समर्थक प्रवक्ता जस्टिस रानाडे ने 1880 मे जिस स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया, उसे हम आगे एक पृथक भाग मे दिखाएगे।

धरती के स्वामित्व के परिवर्तन पर लगाए गए प्रतिबंधों का विरोध करते हुए भारतीय नेताओं ने साहूकार की हानि को विरोध का आधार कम ही माना।[149] यहा तक कि उन्होंने पूरे जोर से इस बात का खंडन किया कि इसके पीछे उनके कोई साहूकार समर्थक रुझान थे। उदाहरणार्थ, फिरोजशाह मेहता और जी० के० गोखले दोनों को तीव्रता से इस बात का खंडन करना पडा कि बंबई राजस्व संशोधित बिल के विरोध के पीछे साहूकारों के हितो की चिता किसी भी रूप मे प्रेरक कारण थी।[150]

भारतीय नेताओ ने व्यापक रूप मे यह अनुभव किया कि स्वामित्व के परिवर्तन को प्रतिबधित करना समस्या की मौलिक स्थितियों की भ्रात धारणा के कारण ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता पर गलत दिशा मे प्रहार करना था। सारी योजना विषम भ्रांति पर ही आधारित थी। निस्संदेह भूमि हस्तातरित करने का अधिकार किसान को भूमि की जमानत पर ऋण लेने की सुविधा जुटाता था परंतु उनका तर्क यह था कि यह अधिकार ऋण लेने का कारण नही था। अत: उनकी धारणा थी कि बडे पैमाने पर भूमि के हस्तांतरण की बुराई को रोकने के लिए किसान की साख पर नही प्रत्युत उसके ऋण लेने के लिए उत्तरदायी कारणो पर प्रहार करना चाहिए। प्रथम को प्रतिबंधित करके दूसरे को बने रहने देने का अर्थ है, रोग के लक्षणो को दबाना परंतु उसके मूल कारण को बने रहने देना।[151] इस संदर्भ मे उन्होने इस कथन का कि भारतीय किसान स्वभाव से अदूरदर्शी है अतः वह ऋणसुलभता की अधिकतम सीमा तक सदैव ऋण लेता ही रहता है अथवा लेता रहेगा बार बार और लगातार खंडन किया।[152] उन्होने इस तर्क को बेहूदा बताया कि धरती पर सरकारी माग के हल्केपन के परोक्ष परिणामस्वरूप अनुपार्जित फालतू आय के कारण धरती पर साहूकारी का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है।[153] उन्होंने शिकायत की कि जहा सरकार किसी भी बाहरी साधन को अपनाने के लिए सहमत है, वहा अपने द्वारा वसूले जाने वाले धरती के ऊंचे और कठोर लगानों को, जो वास्तव मे किसान की ऋणग्रस्तता के सही कारण हैं, हटाने के लिए सहमत नही क्योंकि इससे उसके अपने वित्तीय हित प्रभावित होते हैं।[154] डान पत्रिका के दिसंबर 1899 के अक में प्रकाशित 'दि इकोनामिक सिचुएशन इन इंडिया' लेख में सतीशचंद्र मुखर्जी ने इस विषय में उल्लेखनीय गहरी पैठ और पैनी दृष्टि का परिचय दिया। ब्रिटिश प्रशासन में भारत मे भूमिस्वामित्व में परिवर्तन के

अधिकार के स्रोत की खोज करते हुए उन्होंने निर्देश किया कि कठोर वित्तीय पद्धति लागू करने पर भारत सरकार के लिए किसान को भूमि बेचने अथवा रेहन रखने के रूप मे स्वामित्व में परिवर्तन का अधिकार अनुपूरक पग के रूप मे ही देना पड़ा अन्यथा लगान की द्रुत वसूली संभव ही न हो पाती। स्वामित्व परिवर्तन के अधिकार मे किसी प्रकार का प्रतिबंध लगाना सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न करना होगा और उसके साथ वित्तीय पद्धति मे, जिसके संदर्भ मे इन अधिकारो का देना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गई थी, प्रभावी संशोधन करना ही नही प्रत्युत उसे खत्म करना होगा।[155]

बहुत सारे भारतीय नेता इस तथ्य से सहमत थे कि स्वामित्व परिवर्तन, निषेधक कानूनी उपायों की वास्तविक प्रभावात्मकता के संदर्भ मे दृष्टिगोचर परिणाम के अनुरूप सिद्ध नही हो रहा था क्योकि यह उपाय ग्रामीण ऋणग्रस्तता के सतही पक्ष से ही संबध रखता था। यह उपाय अधिक से अधिक रोग के प्रभाव को कम ही कर सकता था परतु वास्तविक समस्या का न तो यह विश्लेषण कर पाता था और न ही समाधान।[156]

वैकल्पिक उपचार

ग्रामीण ऋणग्रस्तता की समस्या के प्रति भारतीय नेताओं का मूल दृष्टिकोण यह था कि अपेक्षाकृत अधिक असंदिग्ध उपायो के रूप मे केवल साहूकार विरोधी उपायो पर ही अधिक बल नही देना चाहिए प्रत्युत देखना यह चाहिए कि वे कौन से कारण है जिनसे विवश होकर किसान को साहूकार और ऋणदाता के चगुल में फसना पडता है। ग्रामीण ऋण के अपेक्षाकृत अच्छे अभिकरण (एजेंसिया) खोलने से ही किसान को साहूकार से छुटकारा मिलना संभव है। 'मराठा' ने इस दृष्टिकोण को अपने 8 अक्तूबर 1899 के अक मे स्पष्ट रूप से इस प्रकार व्यक्त किया

> जब तक रुपया ऋण लेने की आवश्यकता बनी रहेगी, मेनिहर और ऋणदाता साहूकार एक दूसरे के निकट आते ही रहेगे और भूस्वामित्व परिवर्तन निषेधक कानूनो के पवित्र उद्देश्य की पूर्ति नही होगी। वस्तुत सरकार जितना कर सकती है उसे उतना अवश्य करना चाहिए। या तो वह ऋणग्रस्तता के वास्तविक कारण लगान मे कुछ कटौती करके ऋणग्रस्तता को, आंशिक रूप मे ही सही, कुछ कम करे अथवा किसानो की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तथा उन्हे शैतान और क्रूर प्राइवेट ऋणदाता साहूकारो के पजों से छुडाने के लिए स्वयं ऋणदाता के रूप में कार्य करे।[157]

इसी प्रकार गोपालकृष्ण गोखले ने बबई भूमिलगान संशोधन बिल पर भाषण करते समय सरकार को चुनौती दी कि वह एक छोटा सा इलाका छाट ले। वहा के किसानों के सारे ऋण साहूकारों से लेकर अपने हाथ मे कर ले और किसानो की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कृषि बैंक चालू करे और फिर किसान से भूस्वामित्व परिवर्तन का अधिकार छीने। उन्होंने दृढतापूर्वक कहा कि समस्या को सही ढंग से सुलझाने का यही एकमात्र सही उपाय होगा। उन्होंने यह भी घोषणा की कि हमारे बहुत सारे देशवासी सरकार की इस नीति का समर्थन करेंगे। उन्होंने अनुभव किया कि मूल समस्या यह है

कि जब तक उसके चालू ऋणो को कम नही किया जाता और उसकी अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति की व्यवस्था नही की जाती तब तक किसान को किमी प्रकार की राहत ही नही मिल मकती। कानून तत्र के सचालन मात्र म किसान की स्थिति मे सुधार की आशा करना निरर्थक है।[158] सक्षेप मे उपशामक उपचारो के साथ साथ रोग की निवृत्ति के लिए स्थाई और मौलिक औषधियो को भी आवश्यक रूप मे अपनाना चाहिए।[159]

भारतीय नेताओ ने ग्रामीण दरिद्रता को निर्मल करने के लिए उपचार के रूप मे श्रम, उद्योग तथा फालतू पूजी के नए अवसर जुटाने[160] तथा भूमि लगान को शिथिल बनाने के सुझाव देने[161] के साथ साथ किसानो के लिए साख की सरल और सस्ती व्यवस्था जुटाने पर बल दिया। उन्होने इस सबध मे तर्क प्रस्तुत किया कि जहा किसान को ऋणदाता साहूकार की लूट से बचाना आवश्यक था वहा उसके लिए ब्याज की नीची दर पर आवश्यक निधि के ऋण लेने की सुविधाओ की व्यवस्था करना भी आवश्यक था। साख की वैकल्पिक व्यवस्था जुटाए बिना साहूकार की गतिविधि पर प्रतिबध लगाना किसान को वर्तमान स भी अधिक बुरी शर्तो पर साहूकार की दया पर छोडने के समान होगा। अत हमारे अध्ययन के अतर्गत सारी अवधि म व देश म कृषि बैको का जाल बिछाने के लिए आदोलन करते रहे।[162] जब भारत सरकार ने कृषि बैको और ऋण समितियो की उन्नति की व्यवस्था के लिए कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज बिल (सहकारी साख समिति बिल) पेश किया तो इन नेताओ न उसका प्रसन्न मन मे पूर्ण समर्थन किया।[163] इस सदर्भ मे राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण तत्व उनका यह दृढ विश्वास था कि सरकार कृषि बैको के उन्नयन का काय अपने ही हाथ मे ले, इस कार्य को निजी उद्यमियो के हाथ मे न छोड।[165] जस्टिस रानाडे, जी० वी० जोशी और जी० के० गोखले ने भी यही मत प्रकट किया कि सिर स पैर तक कर्ज मे डूबे किसानो के पुराने ऋणो को इकट्ठा करके बेबाक कर दिए जाने पर ही किसान कृषि बैंको की सहायता से अपने पैरो पर खडा हो सकता है।[166]

पूजीनिष्ठ खेती

भूमि विषयक सबधो के वर्तमान ढाचे के अतर्गत जमीदार और साहूकार के अत्याचारो से किसान को सुरक्षित करने के सरकार और भारतीय नेताओ के प्रयत्नो और उपायो से उसकी स्थिति का सामान्य रूप मे ही सुधारना सभव था, प्रशा, रूस, और फ्रास मे भूमि सबधी कानूनो से सबधित और अनुभवप्राप्त रानाडे ने भूमि सबधो को सवथा नए आधारो पर स्थिर करने की नीति पेश की।[166] किसानो के प्रति उनकी पूरी सहानुभूति थी। राज्य, जमीदार और साहूकार के दमन से किसान को बचाने की विभिन्न सरकारी चेष्टाओ का उन्होने न केवल समर्थन किया था प्रत्युत अपनी ओर से इस सबध म सुझाव भी रखे थे। वह सरकारी साधनो की भावना और दिशा से सहमत नही थे। उनका विश्वास था कि इनसे न तो कृषक वर्ग के उस रूप मे वर्तमान कष्ट दूर होगे और न ही उस वर्ग पर लगे प्रतिबध उस रूप मे दूर होगे जिस रूप मे प्रशा के कानून ने 19वी शताब्दी के

पूर्वार्ध में वहां के किसानों की दशा में सफलतापूर्वक सुधार किया है। उन्होंने निर्देश किया कि भारतीय काश्तकारी कानून के अंतर्गत किसान और जमींदार दोनों का कृषि संबंधों की पुरानी व्यवस्था के बंधनों में बंधा रहना जारी रहेगा। इस प्रकार का कानून तो कर्तव्यों और अधिकारों की वर्तमान जटिलताओं में वृद्धि करने का काम ही करेगा, जमीदार वर्ग को केवल लगान के रूप में अनुग्रह राशि (पेंशन) खाने वाला बनाने के और किसान को जमीन के पूर्ण स्वत्वाधिकारी के रूप में राज्य की ओर अधिक से अधिक देखने के लिए विवश करेगा। दोनों को अपनी स्थिति को सही प्रकार से समझने में कोई सहायता नहीं मिलेगी। एक वर्ग के हित में वर्तमान अधिकारों को सतही तौर पर दुहा जा रहा है, हालांकि इसे 'शीघ्र सुधार' व 'क्रांतिकारी' सुधार का नाम दिया जा रहा है। इस प्रकार की नीति का परिणाम यह होगा कि झगड़ालू भागीदारों में भूमि पर स्वामित्व और हितों का पूर्ववत पृथक और विभाजित रूप बना रहेगा और किसी भी प्रकार का वास्तविक सुधार नहीं हो पाएगा।[167] इसी प्रकार किसान को कर्जदार साहूकार की लूट से बचाने के लिए भूमि संक्रमण को अवैध बनाने के प्रस्ताव पर आपत्ति करते हुए रानाडे ने अपना मत प्रकट किया : वास्तविक संपत्ति के इच्छित तथा अनिच्छित सभी प्रकार के हस्तांतरणों पर प्रतिबंध लगाने से स्थिति में किसी प्रकार का कोई सुधार नही होगा। इससे तो केवल वर्तमान गरीबी की जड़ें मजबूत होंगी और वर्तमान असहाय अवस्था और अधिक विषम बन जाएगी।[168]

रानाडे ने चालू भूमि संबंधों के स्थान पर निजी और स्वतंत्र संपत्ति के आधार पर नए भूमि संबंध स्थापित करने का आह्वान किया।[169] संरक्षित पट्टेदारी के स्थान पर उन्होंने किसान को स्वतंत्र तथा उन्मुक्त बनाने का सुझाव दिया ताकि उसके निजी अस्तित्व की स्थापना हो सके। इस प्रकार का स्वतंत्र किसान दबाया नही जा सकेगा, वह स्वामित्व के पूर्ण अधिकार का उपभोग करेगा। संपत्ति के जादू से सम्मोहित वह अपनी धरती पर कठोर श्रम करेगा।[170] इसके साथ ही उनका यह विश्वास था कि छोटे छोटे किसानों में बटी हुई कृषि, भारतीय परिस्थितियों में न तो स्थाई और प्रगतिशील बन सकेगी और न ही सभी वर्गों की सर्वोत्तम शक्तियों का सदुपयोग या उन्नत तकनीक और लोक कर्मों का समुचित उपयोग कर सकेगी। उन्होंने लिखा कि जमीन जोतने वालों का जमीन से पूर्णतः अलगाव एक राष्ट्रीय रोग है और सारे देश में छोटे छोटे किसानों के स्तर का बहुत नीचे गिरना भी किसी रूप में कम गंभीर रोग नही।[171] उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा : कृषि के समुचित और संतुलित विकास के लिए बड़े पैमाने के पूंजीनिष्ठ किसानों का होना आवश्यक है। ऐसे संपन्न किसान भारतीय जमींदारों के समान नहीं प्रत्युत बरतानवी जमींदारों तथा जर्मन जमींदारों के आदर्श पर धरती के पूरे तौर पर मालिक होंगे। 1879 में उन्होंने आशा प्रकट की कि एक बार धरती को कृत्रिम प्रतिबंधों से मुक्त कीजिए, समझदार और मितव्ययी वर्ग धरती पर अधिकार करने में सफल हो ही जाएगा। सारे देश में जमीदारों का एक ऐसा वर्ग अस्तित्व में आ जाएगा, जिसका उद्देश्य धरती के अधिकाश साधनों का और सरकार द्वारा निर्मित लोक कार्यों का उपयोग करना होगा[172] थोड़ा आगे उन्होंने ये रोचक टिप्पणियां की :

भारत जैसे पुराने और पिछड़े हुए सभी देशो मे शक्ति के सभी तत्वों पर एकाधिकार करने वाला एक अल्पसंख्यक वर्ग सदैव मिलता है। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में इस वर्ग के लोग सदैव अग्रणी रहते हैं। इस वर्ग के लोगों के पास प्रतिभा, संपत्ति, मितव्ययी प्रकृति, ज्ञान और सयोजनशक्ति होती है जबकि बहुसंख्यक वर्ग के लोग अशिक्षित, अदूरदर्शी, बेसमझ, फिजूलखर्च और साधनहीन होते हैं, इन दोनो वर्गों मे किसी भी राजनीतिक चातुरी से सतुलन नही रखा जा सकता। प्रतिभा और संपत्ति के प्रति शक्ति का आकर्षण निश्चित है। अत कंगाली मे फसे किसानों को भूमि का स्वामी बनाए रखने के लिए सघर्ष करना सर्वथा निरर्थक है। यह तो धरती और पूजी के स्वाभाविक ऐक्य को भग करना है।[173]

1883 मे बंगाल काश्तकारी अधिनियम की समीक्षा करते हुए रानाडे ने खमार भूमि अथवा जमीदारो के निजी अधिकार की भूमि को कम करने की और किसानो के अधीनस्थ धरती मे बढोतरी करने की प्रवृत्ति की आलोचना की।[174] उन्होने इस बिल की व्यवस्थाओं का प्रशा की भूमि कानून व्यवस्थाओ से अतर दिखाते हुए प्रशा के कानून की इस आधार पर प्रशसा की कि उसमे पुराने जमीदारो को अपनी भूसपत्ति के एक भाग को अपने अबाधित अधिकार मे ही बडे पैमाने के पूजीनिष्ठ खतो मे बदलने की अनुमति थी।[175] इसी प्रकार सरकार की नीति की आलोचना के अन्यान्य कारणो के साथ एक महत्वपूर्ण कारण उनका यह विश्वास था कि इससे बडे पैमाने की पूजीनिष्ठ कृषि के विकास मे रुकावट पैदा होती है।[176] इसी प्रकार उनके भूमि के हस्तातरण के अधिकार पर प्रतिबध लगाने के विरोध का प्रमुख आधार उनका यह भय था कि इन प्रतिबधो से देश की भूमिगत सपत्ति के केंद्रित होने की अपरिहार्य प्रवृत्ति रुक जाएगी।[177]

अतएव रानाडे ने भारत म कृषि सबधो मे भावी विकास को साथ साथ जीवित रहने वाले दो कृषि सबधित वर्गों को जन्म देकर उन पर आधृत करने की वकालत की : (क) व्यापक क्षुद्र कृषक वर्ग, जो राज्य के अथवा जमीदारो के किसी भी प्रकार के भार से पूर्णतया मुक्त होगा। उसे स्थाई और निम्न दर पर निर्धारित भूराजस्व की प्रतिभूति प्राप्त होगी और उसके लिए कृषि बैंको के द्वारा सस्ती दर और आसान शर्तों पर ऋण की व्यवस्था होगी। (ख) पूजीपति किसानो का बडा वर्ग, जो किसी भी काश्तकारी कानून से अप्रभावित होगा अर्थात उसके पास धरती का पूर्ण और एकातत स्वत्वाधिकार होगा। यह वर्ग इस स्थिति मे होगा कि अपेक्षित पूजी का निवेश तथा अधुनातन वैज्ञानिक कृषि संबधी तकनीक का उपयोग कर सके। प्रशा मे इस सबध मे उन्होंने 19वी शताब्दी के मध्य मे प्रचलित जमीदार और किसान दोनो वर्गों के सपत्ति पर स्वतत्र अधिकारवाली स्वामित्व पद्धति के अनुकरण और स्वीकरण की अपील की।[178] उन्होने बताया कि प्रशा मे 1860 मे 15 प्रतिशत भूमि पर राज्य अथवा चर्च का अधिकार था, 44 प्रतिशत पर बडे बडे जमीदारो का अधिकार था, 35 प्रतिशत पर किसानो का स्वत्वाधिकार था और 5 प्रतिशत पर छोटे छोटे मालिको का अधिकार था। इस प्रकार समर्थन के स्वर मे उन्होने कहा कि वहा भूमि समृद्ध जमीदार और भारमुक्त निर्धन म बराबर बटी हुई है। सामती अर्धदास ने वहा भारमुक्त स्वत्वाधिकारी का और जागीरदार लार्ड ने अपनी सपत्ति के

अबाध स्वामी का रूप ले लिया है।[179] प्रशा के आदर्श को भारत पर लागू करते हुए जस्टिस रानाडे इस निष्कर्ष पर पहुचे :

> यदि इस देश को अपनी शक्ति और समृद्धि के आधार के रूप मे स्वाभिमानी व स्वतत्र भूधरो की गहरी आवश्यकता है तो भूमि पर स्वामित्व प्राप्त व्यक्तियो के प्रकाश और नेतृत्व की भी आवश्यकता किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नही।···ऊपर के दस हजार लोगो द्वारा बडे बडे भूभागोवाली जागीरो पर अधिकार करना और बडी सख्या मे छोटे छोटे खेतिहर किसानो द्वारा छोटे छोटे भूभागो पर अधिकार रखना, इस प्रकार बडे और छोटे खेतो पर खेती···। देश की उन्नति और स्थिरता की प्राप्ति के लिए ग्रामीण समाज की यह मिश्रित रचना एक आवश्यकता है।[180]

रानाडे ने पूजीनिष्ठ किसान और जमीदार वर्ग के अस्तित्व मे आने के साधनो और उपायो पर भी विचार किया। उन्होंने आशा प्रकट की कि कुछ एक मितव्ययी स्वतत्र किसान धीरे धीरे अपनी स्थिति म विस्तार करेंगे और अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति मे आ जाएगे।[181] उन्होने यह आशा भी प्रकट की कि धनिक वर्ग के बहुत सारे लोग भूमि की ओर आकृष्ट होगे, बेपरवाह और निकम्मे किसानो से भूमि खरीदेगे तथा इस प्रकार पूजीपति जमीदार की भूमिका निभाने के लिए आगे बढेंगे।[182] स्पष्टतया यह उपचार रैयतबाडी इलाके पर ही लागू होगा। बगाल के जमीदारी क्षेत्र के सबध मे रानाडे ने प्रशा के भूमि सुधारो के अनुकरण का सुझाव दिया। उनका इस सबध म सर्वप्रथम सुझाव यह था कि कृषि से संबधित सारे क्षेत्र मे सभी प्रकार के सुधार समाज के विभिन्न वर्गों के आर्थिक सबधो पर किसी प्रकार की हिंसक गडबड डाले बिना अथवा क्रांति का झटका अनुभव किए बिना तथा अतर्वर्गीय सघर्षो को जन्म दिए बिना ही किए जाने चाहिए।[183] बगाल काश्तकारी कानून के प्रति उनके विरोध के कारणो मे उनकी एक यह आशका थी कि इस बिल का अनिवार्य परिणाम वर्ग सघर्ष होगा।[184] वह जमीदारो के वर्तमान अधिकारो के एकतरफा छीने जाने के भी विरुद्ध थे और बंगाल बिल म, उनके अनुसार यह भावना निहित थी।[185] इसके साथ ही उनकी यह भी मान्यता थी कि छीने गए अधिकारो की क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।[186] इस सबध मे रानाडे की अपनी योजना किसानो और जमीदारो दोनो को धरती के स्वामित्व का समान अधिकार देकर दोनो मे सौहार्द और सौमनस्य की भावना उत्पन्न करता था। उनका प्रस्ताव था कि किसान को भूमि का पूर्ण स्वत्वाधिकार दे देना चाहिए परतु केवल उतने ही भाग का, जितना उसकी पटटेदारी के अतर्गत आता है। इस स्वामित्व को खरीदने के मूल्य के रूप मे उसे अवशिष्ट धरती पर जमीदार के पक्ष मे अपने सभी दाव छोडने होगे। इस प्रकार उसकी पट्टेदारीवाले भूभाग पर उसका पूर्ण स्वत्वाधिकार होगा और शेष भाग पर जमीदार का पूर्ण स्वामित्व हो जाएगा। यदि जमीदार का फिर भी कुछ बकाया निकलता है तो उसकी पूर्ति किसान कुछ एक वर्षों तक किराया प्रभारो के नकद भुगतान द्वारा करेगा।[187] सक्षेप मे जमीदारी अधिकारो को खोने के लिए जमीदारो को क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए तथा उसे पट्टेदारी के अतर्गत भूमि का कुछ भाग अपनी जोत के लिए रखने का अधिकार मिलना चाहिए। इस योजना के अंतर्गत निष्क्रिय लगान वसूलने वाले जमीदार सोत्साह पूजी निवेशक उद्यमी किसान

और जमीदार का रूप ले लेंगे। रानाडे ने अपनी योजना को और अधिक स्पष्ट रूप देते हुए ये प्रस्ताव सामने रखे कि बंगाल में 2/3 मौरूमी हकवाले भूभाग पर और 1/2 गैर-मौरूमी हकवाले भूभाग पर किसानों को एकाधिकार दे देना चाहिए और 1/3 मौरूसी भूभाग और 1/2 गैरमौरूमी भूभाग जमीदारों को उनकी निजी भूमि के रूप में सौंप देना चाहिए क्योंकि रानाडे का विश्वास था कि इस विभाजन में जमींदार की क्षतिपूर्ति नहीं हो पाएगी। अत: उनका इस संबंध में आगे और सुझाव यह था कि अधिकारों और दायित्वों के संतुलन को व्यवस्थित रखने के लिए किसानों को ब्याज समेत क्रय मूल्य के भुगतान के लिए घटी हुई जोतों पर भी तीस अथवा चालीस वर्षों तक पुराने लगान का भुगतान करते रहना चाहिए। सरकार एकदम एकाधिकार पाने के लिए चुकाया जाने वाला अग्रिम रुपया किसानों को ऋण रूप में दे सकती है। यह ऋण राशि उनके अनुसार 340 करोड़ रुपये बैठेगी।[99] इस प्रकार रानाडे को आशा थी कि निहित अधिकारों का बिना किसी प्रकार से उल्लंघन किए बंगाल में किसान की एक अथवा दो पीढ़ियों में मुक्ति सुलभ हो जाएगी।[100] यहां यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र किसान और पूंजीनिष्ठ जमींदार के बारे में रानाडे की सारी की सारी योजना जमींदारों के पक्ष में थी। उनके द्वारा प्रस्तावित सुधारों से स्वतंत्र कृषकों के विकास को इतनी सहायता नहीं मिलती थी जितनी लगान वसूलने वाले जमीदारों के पूंजीपति जमीदार के रूप में विकास को प्रगति मिलती थी। उनका स्वतंत्र स्वामित्व का सिद्धांत भी कृषकों में भूमिवितरण की अपेक्षा जमींदारों को भूमि सौंपने पर आधारित था। वास्तविकता यह थी कि उनकी भूमि सुधार की यह योजना किसानों के हितों के इतनी अधिक प्रतिकूल थी कि उसका अनुमान ही नहीं किया जा सकता था। उनके अनुसार सुरक्षित अथवा असुरक्षित पट्टेदार किसान अपनी वर्तमान स्थिति के बदले भूमि के स्वतंत्र स्वत्वाधिकारी की नई उपाधि ग्रहण करना चाहेगा।

कुछ भारतीय नेताओं ने भारतीय कृषि के विकास के लिए पूंजी और श्रम के मेल की मांग करते समय रानाडे की भारतीय कृषि के संस्थागत पुनर्गठन की प्राथमिक योजना का अस्पष्ट समर्थन ही किया।[100] इस योजना को व्यापक और स्पष्ट समर्थन विरल ही मिला। ऐसा 1890 में कांग्रेस के अधिवेशन में देवराव विनायक का भाषण ऐसा ही एक विरल समर्थन था जिसमें उन्होंने कहा था कि भूमि पर केवल उन्हीं लोगों का अधिकार होना चाहिए जो उसमें सुधार कर सकें न कि गरीब तथा अभावग्रस्त किसानों का। उनका दावा था कि वास्तव में संपन्न लोगों के एक छोटे वर्ग, मध्यवित्तीय वर्ग, की सृष्टि द्वारा देश की कृषि संपदा बढ़ाई जा सकती है।[101] इस योजना के विरुद्ध, 'डान' के संपादक सतीशचंद्र मुखर्जी का स्पष्ट मत था कि पूंजीनिष्ठ कृषि देश के लिए हानिप्रद और अवांछनीय है। एक ओर यह बेकारी को जन्म देती है और दूसरी ओर इससे किसानों के आत्मसम्मान को चोट पहुंचती है।[101-A]

कृषि और उद्योग

कुछ एक भारतीय नेताओं ने कृषि विकास की समस्या को और किसान की आर्थिक स्थिति में सुधार को भारतीय अर्थव्यवस्था के व्यापक संदर्भ में देखा और इस निष्कर्ष पर पहुंचे

कि कृषि की प्रगति देश के उद्योगों के साथ और द्रुतविकास के साथ बड़ी घनिष्ठता से संबंधित है। जब तक देश के ग्रामीण की प्रवृत्ति को शीघ्रता से रोका नहीं जाता देश की कृषि समस्या के समाधान की दिशा में किया जाने वाला कोई प्रयास सफल नहीं हो सकता।

इस दृष्टिकोण के प्रारंभिक प्रस्तावक के रूप मे रानाडे ने 1881 मे तर्क प्रस्तुत किया कि भारतीय कृषि में व्याप्त रोग का मूल कारण राजनीतिक पद्धति के गहरे अन्तस्तल मे निहित है अतः बाहरी उपचार अथवा चमडी पर मरहम पट्टी करने का कोई लाभ नहीं होगा। स्थिति के उपचार के लिए किसी भी अन्य वस्तु से बढ़चढ़कर अपेक्षित यह है कि कृषि पर राज्य के भार को कम किया जाए और श्रम, उद्योग और फालतू पूंजी के लिए नए मार्ग खोलकर धरती पर आबादी का भार घटाया जाए।[102] बाद मे 1892 मे रानाडे ने 'भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था' पर दिए गए अपने भाषण मे इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया कि कृषि पर सदा के लिए निर्भर रहने वाले देश का निर्धन रहना तथा अपेक्षाकृत और अधिक निर्धन बनते जाना निश्चित है क्योंकि कृषि तो ह्रासमान प्रतिफल नियम (ला आफ डिमिनिशिंग रिटर्न्स) की अवांछनीय स्थिति के अतर्गत संचालित होती है और भारत मे तो वर्षा की अनिश्चितता का एक और दुर्गुण इसके साथ जुडा है।[103] 'मराठा' ने 1881-84 की अवधि मे अपनी संपादकीय माला मे कृषि प्रगति और औद्योगिक प्रगति के घनिष्ठ रूप से अन्योन्याश्रित होने पर बार बार जोर दिया। उदाहरणार्थ, 4 सितंबर 1881 के अंक मे उसने लिखा :

> कृषि संबंधी श्रम बाजार मे कृषक श्रमिकों का आधिक्य है और जब तक यह आधिक्य कृषि मे हटाया नहीं जाता और कहीं दूसरे स्थान पर खपाया नहीं जाता तब तक कृषकों की दीन-हीन दशा मे सुधार के लिए उपचार रूप मे किए गए किसी भी प्रयास का उत्तम, लाभप्रद और स्थाई परिणाम नहीं निकलेगा। कृषि और मशीनी उद्योग का विकास साथ साथ ही होना चाहिए।

इसी प्रकार अपने 12 फरवरी 1882 के अंक मे उसने तर्क प्रस्तुत किया 'केवल कानूनों से, बैंकों से यहां तक कि किसानों को स्थाई रूप से काश्तकारी के अधिकार देने से किसानों की हालत मे तब तक कोई सुधार नहीं होगा, जब तक कि देश मे विविध उद्योगों की स्थापना नहीं की जाती क्योंकि एकमात्र कृषि पर निर्भर रहने वाला देश कभी संपन्न नहीं रह सकता।'[104] नेटिव ओपीनियन ने भी अपने 25 मई 1884 के अंक मे इस तर्क को दोहराया।

1895 मे पी० सी० राय ने रानाडे के विचार से सहमति प्रकट करते हुए घोषणा की कि कृषिप्रधान देश दस्तकारों और हस्तशिल्पियों के देश की अपेक्षा सदैव पिछडा रहेगा। देश की आर्थिक कठिनाइयों का सर्वोत्तम समाधान मृतप्राय भारतीय उद्योगों का पुनरुद्धार तथा पश्चिम के आधुनिक उद्योगों को अपनाना है। इससे कृषि में श्रम का आधिक्य कम होगा और देश संपन्न बनेगा।[105]

जी० वी० जोशी ने जमीन पा लेने की अस्वस्थ और अत्यधिक प्रतियोगिता के लिए कृषि पर बढ़ते भार को उत्तरदायी ठहराया। उनके अनुसार इस प्रतियोगिता का दुष्परि-

णाम यह हुआ है कि धरती के लगान गगनचुंबी हो गए हैं, धरती को छोटे छोटे टुकड़ों में बांटना पड़ा है और किसान की धरती सुधारने की आकांक्षा क्षीण हुई है।[196] इसके अतिरिक्त कृषि पर जनसंख्या के बढ़ते भार ने बेकारी बढ़ाई है और लाखों को जबरदस्ती निकम्मा बना दिया है अथवा दूसरे शब्दों में इसने देश की आर्थिक शक्ति को विनाशात्मक रूप से बेकार कर दिया है। उनकी संगणना के अनुसार आधी से अधिक ग्रामीण जनता वास्तव में उपयुक्त काम के अभाव का शिकार थी।[197] अतएव उन्होंने फालतू और बेकार जनसंख्या को समुचित काम जुटाने के लिए अकृषीय उद्योगों के विकास की सिफारिश की। उन्होंने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि श्रम के नए अवसरों को जुटाने के रूप में वर्तमान अस्वस्थ और असामान्य दबाव से किसान जितना ही अधिक मुक्त होगा उतनी ही अधिक उसकी कार्यस्थिति भाररहित होगी और सफलता के अधिक अच्छे अवसर उसे उपलब्ध होंगे।[198] उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि जब तक भारत एकमात्र कृषि-उद्योग पर निर्भर है, हमारी आर्थिक कठिनाइयों का मूल अछूता ही रहेगा।[199] तिलक के केसरी ने 18 जून 1901 तथा 11 नवंबर 1902 के अंकों में इन दोनों धारणाओं की पुष्टि की।[200]

जी० सुब्रह्मण्य अय्यर ने भी 1903 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सम इकोनामिक आसपेक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया' में इसी विचारधारा को असंदिग्ध अभिव्यक्ति दी। रूस के वित्तमंत्री एम० डी० वित्ते के इस कथन से सहमति प्रकट करते हुए कि जब तक कोई भी देश विशुद्ध रूप से कृषिप्रधान देश बना रहेगा, तब तक वह समय समय पर आने वाले अकालों और सामान्य दरिद्रतापरक अभावों से मुक्ति नहीं पा सकेगा, अय्यर ने आरोप लगाया कि इस संबंध में भारत की स्थिति रूस से भी बदतर है। यहां की 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है और शेष मजदूरी अथवा छोटे छोटे अनुत्पादक धंधों पर आश्रित है। उन्होंने लिखा कि जब तक देश की आर्थिक दशा की इस गंभीर अव्यवस्था का उपचार नहीं किया जाता तब तक हजारों वर्षों की अवधि में भी न यहां का किसान संपन्न बन पाएगा और न ही दूसरे वर्ग समृद्धि प्राप्त कर सकेंगे। निर्धनता की इस चरम सीमा का निराकरण कभी नहीं हो पाएगा। अतएव देश का उद्योगीकरण देश की संपन्नता की अनिवार्य शर्त है।[201]

संदर्भ

एकमात्र अपवाद 1899 का था और वह भी पंजाब लैंड एलिएनेशन बिल पर प्रस्ताव के रूप में. कांग्रेस ने और बातों के साथ इस बात की भी सिफारिश की कि निजी किराया वसूली वाले जमींदारों के मामले में अनुचित रूप से किराये में बढ़ोतरी रोकने की कुछ व्यवस्था की जानी चाहिए. (प्रस्ताव II बी) जमींदारी पर कांग्रेस की चुप्पी को ए० ओ० ह्यूम की पुस्तिका, 'हिंट्स आन ऐग्रीकल्चरल रिफार्म इन इंडिया' में की गई टिप्पणियों, तीखी भर्त्सनाओं, 'पूर्णतः भूस्वामी', "किराया वसूली करने वाले बेकार बिचौलिए' आदि के संदर्भ में देखिए उनकी पुस्तिका 'हिंट्स

आन ऐग्रीकल्चरल रिफार्म इन इंडिया' (कलकत्ता 1889, पृ० 3).

2 'सोम प्रकाश', 14 जून (आर० एन० पी० बंग०, 19 जून 1880), नवविभाकर 12 जुलाई (वही 17 जुलाई 1880), बर्दवान सजीवनी, 9 नवंबर (वही, 20 नवंबर 1880), भारत बंधु, 26 नव० (आर० एन० पी० पी० एन०, 2 दिसंबर 1880), साधारणी, 15 मई (आर० एन० पी० बंग०, 21 मई 1881), केरल मित्रन, 30 अप्रैल (आर० एन० पी० पी० एम०, मई 1881), हिंदी प्रदीप अगस्त (आर० एन० पी० पी० एन०, 3 सितंबर 1881), इंडियन स्पेक्टेटर 25 सितंबर (आर० एन० पी० बंब० 1 अक्तू० 1881) परिदर्शक, 1 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 14 जनवरी 1882), सोम प्रकाश, 26 जून, वही, 1 जुलाई 1882), उत्कल दीपिका 15 जुलाई (वही, 22 जुलाई 1882), प्रयाग समाचार, 11 दिसंबर में प्रकाशित लेख (आर० एन० पी० पी० ए०, 14 दिस० 1882), साधारणी, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 13 जनवरी 1883), समय, 28 मई (वही 2 जुलाई 1883), सहचर, 18 जुलाई (वही, 28 जुलाई 1883), ग्रामवर्त प्रकाशिका, 22 मार्च (वही, 5 अप्रैल 1884), समय, 29 दिसंबर 1884 (वही, 3 जनवरी 1885), सहचर, 6 मई (वही 16 मई 1885), सुरभि ओ पताका 9 दिस० (वही 18 दिसंबर 1886), सजीवनी 14 जनवरी (वही, 21 जनवरी 1892), प्रकृति 21 जनवरी (वही 28 जनवरी 1892), सञ्जीवनी 11 फरवरी (वही, 18 फरवरी 1892), बंगनिवासी 25 अक्तू० (वही, 2 नवंबर 1895), चारु मिहिर 27 अप्रैल (वही 9 मई 1896), केरल पत्रिका 16 नव० और केरल सचारी 20 नवंबर (आर० एन० पी० एम०, 30 नव० 1895), केरल चंद्रिका, 20 मार्च (वही, 31 मार्च 1896) केरल सचारी, 1 जुलाई (वही 15 जुलाई 1896), हिंदुस्तान 25 अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 31 अगस्त 1896) और आगे उल्लिखित समाचारपत्र और देखिए, मराठा, 17 फरवरी 1884

3 बंगाली 23 जनवरी 1892 भी देखें

4 आर० एन० पी० बंग०, 29 जुलाई 1882

5 वही, 21 जून 1884

6 वही, 7 नवंबर 1891

7 आर० एन० पी० एम०, 24 जनवरी 1894

8 आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1896 तथा दक्षिण केरल पत्रिका, 1 अगस्त, 12 और 26 दिसंबर (वही 15 अगस्त, 31 दिसंबर 1896)

9 वही 15 जुलाई 1896

10 दत्त पाजटरी इन बंगाल पृ० 210 28

11 वही पृ० 46 और आगे

12 राय चावर्गी, पृ० 179-200, इण्डियन फाइनान्सेज 1, 39 40, 55 57

13 जोशी पूर्वोद्धत पृ० 870-94, 900 01 904-05

14 वही पृष्ठ 884

15 वही, पृ० 351-2 तथा पृ० 412

16 एम० एस० अय्यर स्पीचेज एंड राइटिंग्स, पृ० 250 4 सोम प्रकाश, 14 जून (आर० एन० पी० बंग०, 19 जून 1880) साधारणी, 23 जन० (वही, 29 जनवरी 1881), सोम प्रकाश, 14 अगस्त वही, 19 अगस्त 1882) कविवचनसुधा, 5 मार्च (आर० एन० पी० पी० एन०, 15 मार्च 1883) एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज II पृ० 15, 17, केरल पत्रिका, निर्दिष्ट

(आर० एन० पी० एम०, मार्च 1886); एच० ए० रहीम, रिप० आई० एन० सी० 1890, पृ० 55, बंगनिवासी, 25 अक्तूबर (आर० एन० पी० बम०, 2 नवबर 1895), केरल पत्रिका, 16 नवबर और 14 दिसबर (आर० एन० पी० एम०, 30 नवबर और 31 दिसबर 1895), केरल पत्रिका, 4 जुलाई और 1 अगस्त (वही, 15 जुलाई और 15 अगस्त 1896), हिंदुस्तान, 25 अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 31 अगस्त 1898), राय पावर्टी, पृ० 217, 273, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 266-8, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 98, आई० एन० सी० 1899 का प्रस्ताव II (बी०)

17 रानाडे एसेज, पृ० 30-1, 327, जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 878-84, इस पीछे अध्याय 9 मे पाद टिप्पणी 116 तथा सी० पी० ए०, पृ० 482, ओपेन लेटर्स, पृ० 18, 74-8 मे तथा ज० एन० गुप्ता पूर्वोद्धृत, पृ० 349

18 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 365-6

19 आर० एन० पी० बब०, 8 अक्तूबर 1881

20 आर० एन० पी० बग०, 29 जुलाई 1882 तथा देखिए सोम प्रकाश, 27 नवबर (वही, 2 दिसबर 1882)

21 बगाली 19 फरवरी 1881, सोम प्रकाश, 14 जून (आर० एन० पी० बग०, 19 जून 1880); सोम प्रकाश, 27 नवबर (वही, 2 दिस० 1882); भारत मिहिर, 22 जनवरी (वही, 2 फरवरी 1884); तथा देखिए आगे पाद टिप्पणी 71 यहा यह उल्लेखनीय है कि किरायेदारो के स्थाई बन्दोवस्त की माग को सर्वप्रथम 1831 मे राजा राममोहन राय ने ही मुखरित किया था अमिन मेन नोट्स आन बगाल रिनेमा (कलकत्ता, द्वितीय सस्करण 1957) पृ० 12, बी० बी० मजूमदार : पूर्वोद्धृत, पृ० 67-9 सोम प्रकाश ने अपने 24 जुलाई 1882 के अक मे अपने दृष्टिकोण के समर्थन में राममोहन राय का मत उद्धृत किया था (आर० एन० पी० बब०, 29 जुलाई 1882).

22 आर० एन० पी० बग०, 26 मार्च 1887, बगबासी, 16 दिसबर (वही, 23 दिस० 1893).

23 आर० एन० पी० बब०, 22 अक्तूबर, 1881.

24 विशेष रूप से देखिए, मराठा, 27 जुलाई 1890 और ए० बी० पी०, 20 फरवरी 1899.

25 इस सबध मे राष्ट्रवादी विचारधारा की शून्यता का उपलब्ध कारण कदाचित यह हो सकता है कि विभिन्न प्रातो के स्वदेशी पत्रो के सवाददाताओ ने इस सबध मे अपेक्षित प्रतिवेदन ही न भेजे हो यहा इस तथ्य की ओर हम अवश्य निर्देश करना चाहेगे कि हमने जितने भी राष्ट्रवादी पत्रो और पत्रिकाओ का उनकी मूल भाषा मे तथा साथ ही साथ राष्ट्रवादियो के लेखो और भाषणों का अध्ययन किया है, उनसे हम इस परिणाम पर ही पहुचे हैं कि ये सब तत्कालीन राष्ट्रवादी नेताओ की इस विषय मे वैचारिक गहराई और रुचि क अभाव के ही परिचायक हैं, साथ ही यह निष्कर्ष निकालना भी गलत और अनुचित न होगा कि यदि सवाददाताओ ने व्यापक तथा प्रबल दृष्टिकोण के सवाद भेजे होते तो विषय की गभीरता को देखते हुए पत्र-पत्रिकाओ द्वारा उनकी उपेक्षा कदापि सभव न होती.

26 सी० ई० बकलैंड : बगाल अडर दी लेफ्टिनेंट गवर्नर (कलकत्ता 1901) खड II, पृ० 705, 812-3; इलबर्ट, एस० सी० पी० 1883 खड XXII, पृ० 77-8; स्ट्रैची : इडिया (1903) पृ० 424. जमीदारो द्वारा किसानो के दमन के लिए सरकारी रिपोर्ट के अवतरण देखिए, जिन्हें पार्वती चरण राय ने अपने ग्रथ 'दि रेंट क्वेश्चन इन बगाल' (कलकत्ता 1883) पृ० 122 और आगे में पुनरुद्धृत किया है.

27. बकलैंड . पूर्वोद्धृत, खंड I, पृ० 544-8, खंड II, पृ० 631-2, 636-8
28. वही, खंड II, पृ० 702; स्ट्रैची : इंडिया (1903) पृ० 425-6
29 बकलैंड पूर्वोद्धृत, खंड II, पृ० 704-05, 813.
30 इलबर्ट · एल० सी० पी० 1883 खंड XXII पृ० 80-3
31. वही, पृष्ठ 84-8.
32. वही, पृष्ठ 100-126.
33. बकलैंड · पूर्वोद्धृत, खंड II, पृष्ठ 809.
33-A. वही, पृष्ठ 811-2 और 1885 का अधिनियम VIII
34. देखिए, 1885 के अधिनियम की धारा-49.
35 लायल लाइफ आफ दि मोरक्विस आफ डफरिन एंड एवा (लंदन 1905), खंड II, पृ० 80.
36 बकलैंड पूर्वोद्धृत, खंड II, पृ० 816.
37 जरनल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन, खंड XV संख्या 3, 1883, पृ० 191.
38 जे० एन० गुप्ता . पूर्वोद्धृत, पृ० 101-03 पर आर० सी० दत्त और ए० पी० मैकडोनल
39 27 जून 1881 को इंडियन एसोसिएशन द्वारा प्रेषित ज्ञापन बागल पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट, पृ० I, II, XIV पर, 1879-80 का इंडियन एसोसिएशन का प्रतिवेदन, ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन के 25 अगस्त 1881 के अंक में उद्धृत; इंडियन एसोसिएशन का 29 अक्तूबर 1883 का विज्ञापन इंडियन एसोसिएशन का 1883 का प्रतिवेदन, पृ० 15 और आगे; एस० एन० बैनर्जी . स्पीचेज II, 6-11; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 28 अक्तूबर, 9, 16 दिसंबर 1880 19 मई, 16 जून, 18 अगस्त 1881; बंगाली, 24 जुलाई, 14, 21 अगस्त, 4 सित०, 9 अक्तू, 13 नव० 11, 18 दिस० 1880; 8, 15, 29 जनवरी, 3 फरवरी, 17, 24, 31 मार्च, 7 अप्रैल, 1 नवंबर 1884; समालोचक, 27 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 6 मार्च 1880); सोम प्रकाश, 9 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1880); साधारणी 15 अगस्त (वही, 21 अगस्त 1880), नव विभाकर, 10 जनवरी (वही, 22 जन० 1881); परिदर्शक, 6 फर० (वही, 19 फरवरी 1881); साधारणी, 13 मार्च (वही, 26 मार्च 1881); सुधाकर, 14 मई (वही, 21 मई 1881); बंगवासी, 11 नवंबर (वही, 18 नवंबर 1882), साधारणी, 24 दिस० (वही, 30 दिस० 1882); इंडियन मिरर, 31 मार्च (वी० ओ० आई०, अप्रैल 1883); ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 9, 16, 23 अप्रैल (वही, मई 1883), और 5, 21 जुलाई (वही, जुलाई 1883); बंगवासी, 7 जुलाई, भारत मिहिर, 17 जुलाई, प्रतिनिधि, 12 जुलाई. साधारणी, 24 जून, ग्रामवर्त प्रकाशिका, 14 जुलाई, संजीवनी, 7 जुलाई (वही, जुलाई 1883); साहस, 23 जुलाई, मध्यभारत, 30 जुलाई (वही, 30 अगस्त 1883); सहचर, 28 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 31 मार्च 1883); भारत बंधु, 31 मार्च, प्रभाती, 3 अप्रैल (वही, 7 अप्रैल 1883); साधारणी, 15 जुलाई (वही, 28 जुलाई 1883); संजीवनी, 11 अगस्त, बंगवासी, 11 अगस्त (वही, 25 अगस्त 1883); समय. 10 सित०, आलोक, 14 सितंबर (वही, 22 सित० 1883), हार्वेशहर प्रकाशिका, 3 नवंबर (वही, 17 नव० 1883); ग्रामवर्त प्रकाशिका, 10 नव० (वही, 24 नव० 1883); बर्दवान संजीवनी, 4 दिस० शक्ति, 7 दिस०, प्रजाबंधु, 4 दिस० (वही, 8 दिसंबर 1883); भारत मिहिर, 11 दिसंबर (वही, 22 दिसंबर 1883); बंगाल पब्लिक ओपीनियन, 20 दिस० 1883 (वी० ओ० आई०, 15 जनवरी 1884), इंडियन नेशन, 7 जनवरी (वही, 31 जनवरी 1884); बंगाल पब्लिक ओपीनियन,

10 अप्रैल (वही, 30 अप्रैल 1884), सजीवनी, 16 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 23 फरवरी 1884), ग्रामवर्त प्रकाशिका, 16 फरवरी, प्रतिकार, 22 फरवरी (वही, 1 मार्च 1884)

40 इसी प्रकार इस पत्र ने 19 फरवरी 1881 के अक म दृढतापूर्वक लिखा राष्ट्र का गठन किससे होता है ? क्या ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन के कुछ सौ सदस्यो मे ? अथवा मुफस्सिल मे मिलने वाले कुछ हजार जमीदारो मे ? अथवा सैकडो हजारो कलकत्तावासियो मे ? राष्ट्र तो झोपडी म निवास करता है वस्तुत बगाल की यह गरीब कृषक जनता ही है, जिससे वास्तव म राष्ट्र का गठन होता है इसी प्रकार अन्य सबद्ध मा यताओ के लिए देखिए, बगाली, 14 अगस्त, 13 नवबर 1880 15 जनवरी 1881, ब्राह्मा पब्लिक ओपीनियन, 9 दिसबर 1880, 25 अगस्त 1881, एस० एन० बैनर्जी स्पीचज II, पृ० 13 20 साधारणी, 15 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 28 जुलाई 1883), सजीवनी 11 अगस्त (वही 25 अगस्त 1883), बगाल पब्लिक ओपीनियन, 20 दिसबर 1883 मी० ओ० ग्राइ०, 15 जनवरी 1884)

41 इडियन एसोसिएशन का 1879 80 का वार्षिक विवरण 25 अगस्त 1881 के ब्राह्मा पब्लिक ओपीनियन म उद्धृत किसानो के प्रतिनिधि होने की हैसियत म ही एसोसिएशन ने बगाल सरकार को 27 जून 1881 को किराएदारी कानून पर एक ज्ञापन भेजा बागल पूर्वोद्धृत परिशिष्ट 'ग' म उद्धृत और दूसरा ज्ञापन 29 अक्तूबर 1883 को भेजा (इडियन एसोसिएशन का 1883 का वार्षिक विवरण) पृ० 15 और आगे

42 बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 50, 53 1 70 1, 90 और परिशिष्ट, पृ० 1, बगाली, 8 जनवरी, 5, 19 फरवरी 2 अप्रैल 14 25 मई 1881, ब्राह्मा पब्लिक ओपीनियन 20 जनवरी 10 फरवरी 1881 इडियन एसोसिएशन का पाचवा वार्षिक विवरण, 4 मार्च 1882 के बगाली मे उद्धृत, ए० ब्रो० पी०, 25 जून 1885.

43 बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 53-54, 71, ए० बी० पी०, 25 जून 1885.

44 बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 72-3, 78 इडियन एसोसिएशन के 1885 मे पाचवे वार्षिक विवरण मे इस सदर्भ मे कहा गया इस समय एसोसिएशन बडी सक्रियता से ग्राम सघो के निर्माण मे जुटी हुई है शक्ति के प्रदर्शन के लिए आयोजित किए जाने वाले राजनीतिक प्रदर्शनो की सफलता के लिए लोगो की विपुल सख्या के सघो की बडी भारी आवश्यकता है यह तथ्य जब हमारे सामने आता है कि हमारा आदोलन थोडे से शिक्षित बाबुओ तक सीमित है तो हमारे मन मे बडी ही कसक पैदा होती है एसोसिएशन ने इस कसक अथवा कलक को मिटाने का सकल्प कर लिया है (उसी मे उद्धृत, पृ० 90) तथा देखिए, बगाली, 4 मार्च 1882

45 और देखिए, मराठा 10 अप्रैल, 7 सितबर 1884

46 वी० ओ० आई०, मार्च 1883 और आर० एन० पी० बब, 31 मार्च 1883; इडियन स्पेक्टेटर, 24 जुलाई (आर० एन० पी० बब, 30 जुलाई 1881) और 1 अप्रैल तथा 1 जुलाई (वी० ओ० आई० अप्रैल और जुलाई 1883) भी देखे

47 नेटिव ओपीनियन ने बाद मे अपनी स्थिति बदल ली और बिल का विरोध करना प्रारभ कर दिया देखिए, उसका दिनाक 11 नवबर 1883 का अक

48 बाबे क्रानिकल, 25 फरवरी (वी० ओ० आई०, मार्च 1883) ट्रिब्यून, 7 अप्रैल (वही, अप्रैल 1883) रास्त गोफ्तार, 4 नवबर (वही, नव० 1883) जामेजमशेद, 20 दिसबर 1883 बाबे क्रानिकल, 30 दिसबर 1883 गुजराती समाचार, 1 जनवरी (वही, 15 जनवरी 1884) केसरी, 16 मार्च (वही, मार्च 1885)

49. रानाडे : एसेज, पृ० 275-7.
50. दत्त स्पीचेज II, पृ० 170 तथा जे० एन० गुप्ता : पूर्वोद्धृत, पृ० 50, 98-103.
51. उदाहरणार्थ, भारत मिहिर, 17 अगस्त, ढाका प्रकाश, 22 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 28 अगस्त 1880); भारत मिहिर, 14 सित० (वही, 25 सित० 1880); बिहार बंधु, 9, 16, 23 सितंबर (वही, 2 अक्तूबर 1880); सोम प्रकाश, 3 जनवरी (वही, 8 जनवरी 1881), ढाका प्रकाश, 16 जनवरी (वही, 22 जनवरी 1881); बिहार हेराल्ड, 13 मार्च (वी० ओ० आई०, मार्च 1883), इंडियन क्रानिकल, 21, 28 मई, लिबरल, 3, 10 17 जून (वही, जून 1883), चारु वर्त, 2, 9 जुलाई (वही, जुलाई 1883), उत्कल दीपिका, 30 दिसंबर 1882 (आर० एन० पी० बंग०, 20 जनवरी 1883), उत्कल दर्पण, 21 जनवरी (वही, 10 फरवरी 1883), चारु वर्त, 5 फरवरी (वही, 17 फरवरी 1883); सोम प्रकाश, 27 अगस्त (वही, 1 सितंबर 1883), 10 सितंबर (वही, 22 सितंबर 1883); ढाका प्रकाश, 11 नवंबर (वही, 17 नवंबर 1883); इंडियन क्रानिकल, 22, 29 दिसंबर 1884 (वी० ओ० आई०, जनवरी 1885); नवविभाकर, 9 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 14 मार्च 1885), बी० एन० माउलिक . स्पीचेज, पृ० 636 7, 640-1, 645.
52 वी० ओ० आई०, जनवरी 1885 तथा देखिए ए० बी० पी० 3 मार्च 1880, 7 दिसंबर 1882, 19 मार्च 1885, आनंद बाजार पत्रिका, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 4 सित० 1880). 12 फरवरी (वही, 17 फरवरी 1883); तथा देखिए, कविवचन सुधा, 26 मार्च (आर० एन० पी० पी० एन०, 5 अप्रैल 1883). यहां यह उल्लेखनीय है कि 1883 के पट्टेदारी टेनेंसी बिल पर रानाडे के प्रहार का यह एक आधार था. रानाडे की आशंका यह थी कि इस बिल से एक वर्ग के दूसरे वर्ग के बीच हस्तक्षेप की सरकार को अधिक शक्ति प्राप्त है जिसका दुरुपयोग वह वर्ग-संघर्ष को जन्म देने और बढ़ाने में कर सकती है (एसेज पृ० 276) तथा देखिए, पृ० 283-4
53 ए० बी० पी०, 22 नवंबर 1883; आनंद बाजार पत्रिका, 20 जून (आर० एन० पी० बंग०, 5 जुलाई 1883), और 21 जुलाई (वही, 26 जुलाई 1881) देखिए, शिवाजी, 8 फरवरी (वी० ओ० आई०, 15 फरवरी 1884)
54 ए० बी० पी०, 10 मार्च 1881, 21 मार्च 1884, 19 मार्च 1885; आनंद बाजार पत्रिका, 14 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 26 मार्च 1881) तिथिरहित (वी० ओ० आई०, फरवरी 1883) तथा आगे 61-3 पाद टिप्पणियों में उद्धृत.
55 ए० बी० पी०, 22, 29 नवंबर 1883; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 29 नव०, 6, 13 दिस० (वी० ओ० आई० दिस० 1883 ; बंगाली, 24 नव०, 15 दिसंबर 1883, समय, 26 नवंबर, आनंद बाजार पत्रिका 26 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 1 दिस० 1883), नवविभाकर, 3 दिसंबर (वही, 8 दिसंबर 1883); भारत मिहिर, 11 दिस० (वही, 22 दिस० 1883); इंडियन स्पेक्टेटर, 2 दिसंबर, लिबरल, 25 नवंबर इंडियन मिरर, 27 नवंबर, 13 दिसंबर, इंडियन इको, 27 नव०, भारत मिहिर, 27 नव०, नवविभाकर, 26 नवंबर (वी० ओ० आई० दिसंबर 1883), मराठा, और गुजराती मित्र, 23 दिसंबर 1883 (वही, 15 जनवरी 1884).
56. 30 अगस्त के नवविभाकर में एक संवाददाता (आर० एन० पी० बंग०, 4 सित० 1880); भारत मिहिर, 21 दिसं० 1880 (वही, 1 जन० 1881); बिहार हेराल्ड 27 मार्च 3 अप्रैल (वी० ओ० आई० अप्रैल 1883); इंडियन क्रानिकल, 21, 28 मई (वही, मई 1883); इंडियन क्रानिकल 21 जन०, 4 फर०, बिहार हेराल्ड 29 जन० (वही, 15 फर० 1884); साधारणी, 7 दिस० (आर० एन० पी० बंग०, 13 दिस० 1884).

57 ढाका प्रकाश, 16 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 22 जनवरी 1881); बिहार हेराल्ड, 12 और 19 फरवरी (बी० ओ० आई०, 29 फरवरी 1884)

58 बिहार बंधु, 9, 16, 23 सितंबर (आर० एन० पी० बंग०, 2 अक्तूबर 1880); हिंदू रंजिका, 8 दिस०, ढाका प्रकाश, 12 दिस० (वही, 18 दिसंबर 1880); भारत मिहिर, 21 दिसंबर 1880 (वही, 1 जनवरी 1881); सोम प्रकाश, 9 मार्च (वही, 14 मार्च 1885)

59 30 अगस्त के नवविभाकर का एक संवाददाता (आर० एन० पी० बंग०, 4 सितंबर 1880); भारत मिहिर, 7 सितंबर (वही, 18 सितंबर 1880), उत्कल दीपिका, 23 जून (वही, 7 जुलाई 1883 ; बिहार हेराल्ड 8, 15 अप्रैल(बी० ओ० आई०, 30 अप्रैल 1884); साधारणी, 7 दिसंबर (आर० एन० पी० बंग०, 13 दिसंबर 1884)

60 बिहार हेराल्ड, 27 मार्च, 3 अप्रैल (बी० ओ० आई०, अप्रैल 1883), इंडियन क्रानिकल 30 जलाई (वही, अगस्त 1883), बिहार हेराल्ड, 11, 18 मार्च (वही, 31 मार्च 1884).

60 ए ए० बी० पी०, 3 और 10 मार्च 1881, 21, 28 फरवरी और 6 नवंबर 1884 तथा 19 मार्च 1885 उसने अपने 3 मार्च 1881 के अंक मे यह भी निर्देश किया कि वस्तुतः बंगाल के गांवो का बिचौलिया बाबू था जिसने परीक्षा पास कर रखी थी और जो 'लिखना, पढ़ना और गरजना' था

61 आनंद बाजार पत्रिका, 12, 19, 26 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 17, 24 फरवरी, 3 मार्च 1883 और बी० ओ० आई० फरवरी 1883)और 23 जलाई (बी० ओ० आई० अगस्त, 1883).

62 आनंद बाजार पत्रिका, 5, 19 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 10, 24 नवंबर 1883); 10 मार्च, 18 अगस्त, 22 सितंबर (वही, 15 मार्च, 23 अगस्त, 27 सितंबर 1884); 3 अगस्त (वही, 8 अगस्त, 1885)

63 आनंद बाजार पत्रिका, 26 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 3 मार्च 1883); 10 मार्च, 18 अगस्त (वही, 15 मार्च, 18 अगस्त 1884) तथा देखिए, नवविभाकर, 17 नवंबर (वही, 22 नवंबर 1884).

64 बंगवासी 17 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 24 नवंबर 1882), भारत मिहिर, 20 नवंबर, 11 दिसंबर (वही, 1, 22 दिसंबर 1883), नवविभाकर 25 फरवरी, 7 नव० (वही, 1 मार्च, 22 नवंबर 1884), साधारणी, 25 मई (वही, 31 मई 1884)

65 बंगाली, 24 जलाई, 18 दिसंबर 1880 8 जनवरी 1881, 24, 31 मार्च, 7 अप्रैल 1883, 22, 29 नवंबर 1884, इंडियन एसोसिएशन का 27 जून 1881 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, इंडियन एसोसिएशन का 29 अक्तूबर 1883 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, साधारणी, 24 दिस० (आर० एन० पी० बंग, 30 दिस० 1882), मराठा, 15 अप्रैल 1883, इंडियन मिरर, 31 मार्च (बी० ओ० आई०, अप्रैल 1883), इंडियन नेशन, 22 अक्तूबर (वही नव० 1883 , समय, 10 सितंबर (आर० एन० पी० बंग०, 22 सितंबर 1883); संजीवनी, 10 नवंबर (वही, 17 नव० 1883); इंडियन नेशन, 7 जनवरी (बी० ओ० आई० 31 जनवरी 1884); ग्रामवर्त प्रकाशिका, 16 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 1 मार्च 1884). संजीवनी, 3 मई (वही, 10 मई 1884); एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज II, पृ० 15

66 बंगाली, 15 जनवरी 1881, इंडियन एसोसिएशन का 27 जून 1881 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; इंडियन एसोसिएशन के तत्वावधान में विलिंगटन स्क्वेयर कलकत्ता मे हुई पट्टेदारो के सम्मेलन की कार्यवाही बंगाली, 2 अप्रैल 1881.

एसोसिएशन का 27 जून 1881 तथा 23 अक्तूबर 1883 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल

76 सुनतीश ए० मित्रा सेंसस आफ इंडिया 1951 खण्ड VI (बंगाल, सिक्किम और चन्द्रनगर) भाग I ए रिपोर्ट (दिल्ली 1953) पृ० 154 यद्यपि इन कानूनों (1859 और 1885 के किरायेदार (टेनेंसी) कानूनों) का उद्देश्य किसानों को जमींदारों के किराया और बेदखली से बचाने का था तथापि व्यवहार में वे जमींदारों के नहीं प्रत्युत किसानों के ही मूल्य पर ग्रामीण मध्य वर्ग और जोतदार के हित संरक्षक ही सिद्ध हुए। लाभ उस मध्य वर्ग को तथा समृद्ध किसान वर्ग को पहुंचा जो पिछली शताब्दी में जमींदारों के विनाश के फलस्वरूप उभर कर अस्तित्व में आया था, यह वर्ग भूमिहीन मजदूरों को भूमि पर रख कर उनकी फसल में हिस्सा बांटता था और इस रूप में फैलता जा रहा था। इस शताब्दी में और पिछली शताब्दी में इस वर्ग में अनुराग सरकार की [illegible] आवश्यकता [illegible]

77 बंगाली 31 मार्च 30 [illegible] [illegible] सितंबर 27 अक्तूबर 1883 29 नवंबर 1884 इंडियन एसोसिएशन का 20 अक्तूबर 1883 का ज्ञापन पूर्वोक्त स्थल नवविभाकर, 12 नवंबर आर० एन० पी० बंग [illegible] जनवरी 1883) संजीवनी 1 नवं (वही 24 नवंबर 1883) बंगाल पब्लिक ओपीनियन [illegible] (बी० ओ० आई० [illegible] फरवरी 1884) समय 24 दिसंबर 1883 (आर० एन० पी० बंग० [illegible] जनवरी 1884), संजीवनी [illegible] अप्रैल (वही 26 अप्रैल 1884

78 इंडियन एसोसिएशन का 2 [illegible] 1883 का ज्ञापन पूर्वोक्त स्थल बंगाली, 29 सितंबर 1883 नवविभाकर 12 नवंबर (आर० एन० पी० बंग०, 17 नवंबर 1883), संजीवनी 17 नवंबर (वही 24 नवंबर 1883) बंगाल पब्लिक ओपीनियन [illegible] फरवरी (बी० ओ० आई० 29 फरवरी 1884 समय 24 दिस० 1883 (आर० एन० पी० बंग० [illegible] जनवरी 1884), 3 नवंबर (वही, 8 नवंबर 1884) 3 नवंबर 1884 के अंक में समय ने प्रस्ताव किया कि यह कानून बना देना चाहिए कि जिसमें उस व्यक्ति का, जो स्वयं हलधर नहीं, मौरूसी हक के हस्तांतरण पर निषेधाज्ञा लागू हो

79 आर० एन० पी० बंग०, 17 नवंबर 1883

80 बंगाल पब्लिक ओपीनियन 7 फरवरी (बी० ओ० आई०, 29 फरवरी 1884), बंगाली, 29 नवंबर 1884 इंडियन इको 19 दिस० (बी० ओ० आई० दिसंबर 1884)

81 इंडियन एसोसिएशन का 1885 का ज्ञापन बंगाली द्वारा पुनः उद्धृत, 28 फरवरी 1885 बंगाली, 21 फरवरी, 14 मार्च 1885 मराठा, 1 मार्च 1885 इंडियन नेशन, 2 अप्रैल (बी० ओ० आई० मई 1884), ग्रामवर्त्त प्रकाशिका 3 मई (आर० एन० पी० बंग०, 10 मई 1884), साधारणी, 21 सित० (वही, 27 सित० 1884), समय, 22 दिस० (वही, 27 दिस० 1884), इंडियन इको, 6 मार्च संजीवनी, 14 मार्च, साधारणी, 15 मार्च (बी० ओ० आई०, मार्च 1885); प्रभाती, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 21 फरवरी 1885), प्रजाबंधु, 20 फरवरी, समय, 23 फरवरी (वही, 28 फरवरी 1885), प्रतिकार, 27 फरवरी, संजीवनी, 28 फरवरी (वही, 7 मार्च 1885), साधारणी, 8 मार्च (वही, 14 मार्च 1885), साधारणी, 15 मार्च (वही, 21 मार्च 1885), सहचर, 18 मार्च (वही, 28 मार्च 1885), आनंद बाजार पत्रिका, 3 अगस्त (वही, 11 जुलाई 1885)

82 बंगाली, 28 फरवरी 1885, मराठा, 1 मार्च 1885 इंडियन इको, 6 मार्च, बंगाल पब्लिक ओपीनियन 19 मार्च, सुरभि, 10 मार्च समय, 16 मार्च (बी० ओ० आई०, मार्च 1885); प्रभाती, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 21 फरवरी 1885), समय, 23 फरवरी (वही, 28 फरवरी

1885); सजीवनी, 28 फर० (वही, 7 मार्च 1885), साधारणी, 7 मार्च, ग्रामवर्त प्रकाशिका, 7 मार्च (वही, 14 मार्च 1885); सजीवनी, 14 मार्च, ग्रामवर्त प्रकाशिका, 14 मार्च (वही, 21 मार्च 1885), प्रतिकार, 20 मार्च (वही, 28 मार्च 1885);

83. बगाली, 14 मार्च 1885; मराठा, 15 मार्च 1885, इडियन स्पेक्टेटर, 8 मार्च, इडियन नेशन, 16 मार्च, केसरी, 16 मार्च बगवासी 14 मार्च (वी० ओ० आई०, मार्च 1885); सजीवनी, 4 जुलाई, साधारणी, 5 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 11 जुलाई 1885).
84 आर० एन० पी० बग०, 11 जुलाई 1885
85. अफसरों के मत के लिए देखिए, पार्वती चरण राय . पूर्वोद्धृत, पृ० 216-29
86. देखिए, पीछे 25 म० पादटिप्पणी.
87. 'दि सेंट्रल प्राविंसेज लैंड रैवेन्यू ऐंड टैनेंसी बिल्स', जे० पी० एस० एस०, अप्रैल 1881 (खड III, स० 4) हमारे पास यह कहने के लिए कि यह लेख जस्टिस रानाडे द्वारा लिखा गया था, मनकर महोदय का प्रमाण है (मनकर पूर्वोद्धृत, खड I, पृ० 214).
88 जे० पी० एस० एस०, अप्रैल 1881 (खड III, स० 4) पृ० 17, 23.
89. वही, पृ० 18 तथा देखिए, पृ० 22
90. 29 नवबर, 13 दिसंबर (आर० एन० पी० पी० एन०, 7, 21 दिस० 1882).
91. 30 सितबर 21 अक्तूबर 1882.
92. ढाका प्रकाश, 28 मार्च, 4 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 3, 10 अप्रैल 1897), बगवासी, 8 मई (वही, 15 मई 1897).
93. बगाली, 2 अप्रैल 1898, हितवादी, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 16 अप्रैल 1898)
94. प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि लेफ्टिनेंट गवर्नर आफ बगाल 1898, खड XXX, पृ० 14-9.
95. वही, पृ० 65 और आगे
96. आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी 1898.
97 पी०आर०पिल्लई · प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ मद्रास 1898, खड XXVI, पृ० 147 तथा आगे, सी० जे० मुदलियार, वही, पृ० 163 तथा आगे; सी० विजयराघवाचारी, वही पृ० 180 तथा आगे.
98. उदाहरणार्थ देखिए, आर० एन० पी० एम०, 30 नवबर और 31 दिसबर 1895, 31 मार्च, 15 जुलाई, 15 अगस्त और 31 दिसबर 1896
99. केरल पत्रिका, 25 फरवरी, केरल सचारी, 15 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 28 फरवरी 1899); केरल चद्रिका, 2 मार्च (वही, 15 मार्च 1890)
100 हिंदू, 9 फरवरी 1899, मनोरमा, 30 जनवरी और 28 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 15 फरवरी और 31 अगस्त 1899)
101. प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ मद्रास 1899, खड XXXVII, पृ० 22-30, 326 और आगे.
102 वही, पृ० 24-9.
103. आर० एन० पी० एन०, 26 जुलाई, 2 और 16 अगस्त, 4 और 18 अक्तूबर 1899
104. वही, 26 अक्तूबर 1901.
105. एडवोकेट, 1, 5, 15 मार्च (आर एन० पी० एन०, 2, 9, 16 मार्च 1901); अवध टाइम्स,

5 अप्रैल (वही, 6 अप्रैल 1901); एडवोकेट, 19 सितंबर, 20 अक्तूबर (वही, 21 सितंबर, 26 अक्तूबर 1901). एच० आर० नवंबर 1901 पृ० 456-7; विशम्भरनाथ, प्रोसीडिंग्स आफ दि लेजिस्लेटिव कौंसिल फार एन० डब्ल्यू० पी० एन० अवध, 1901, पृ० 65-70, श्रीराम, वही, पृ० 70-71; विशम्भरनाथ और श्रीराम, वही, पृ० 72 और आगे 'केसरी' और 'इंडियन मिरर' ने भी अपने अपने क्रमश: 22 अक्तूबर 1901 (आर० एन० पी० बंब, 26 अक्तूबर 1901) और 19 अक्तूबर 1901 अंक में (आर० एन० पी० बंग०, 26 अक्तूबर 1901) बिल का विरोध किया

106 मराठा, 18 सितंबर, 25 दिसंबर 1898, 29 जनवरी, 19 फरवरी 1899; गुजराती, 15 जनवरी; मवई वैभव, 17 जन० (आर० एन० पी० बंब, 21 जनवरी 1899); केसरी, 11 अप्रैल, 18 जुलाई (वही, 15 अप्रैल, 22 जुलाई 1899); केसरी, 20 फर० (वही, 24 फरवरी 1900); केसरी, 2 सितंबर (वही, 6 सितंबर 1902); मराठा, 27 सित०, 11 अक्तू० 1903; सुधारक, 21 सित०, सयाजी विजय, 19 सित० (आर० एन० पी० बंब, 26 सितंबर, 1903); ज्ञान प्रकाश, 1 अक्तूबर, सज वर्तमान, 30 सितंबर. सत्य शोधक, 27 सितंबर, केसरी, 29 सितंबर (वही, 3 अक्तूबर 1903); गुजराती, 14 फरवरी, केसरी, 16 फरवरी, सज वर्तमान, 17 फरवरी (वही, 3 अक्तूबर 1903); गुजराती, 14 फरवरी, केसरी, 16 फरवरी, सज वर्तमान, 17 फरवरी (वही, 20 फरवरी 1904); मराठा, 21 फरवरी 1904; डी० ए० खरे, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1899, पृ० 20-8, वही, 1903, पृ० 186-8, वही, 1904, पृ० 21-3, एन० जी० चंदावरकर और जी० के० पारिख वही, 1899 पृ० 35.

107 ए० ओ० ह्यूम : हिंट्स आन ऐग्रीकल्चरल रिफार्म इन इंडिया (कलकत्ता, 1879) पृ० 35, एस० एस० थार्बर्न-ऐग्रीकोला रेडिविवस, एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू, जुलाई 1901. पंजाब के चार क्षेत्रों में ऋणग्रस्तता संबंधी एस० एस० थार्बर्न द्वारा की गई जांच पड़ताल की रिपोर्ट के उद्धरण, डब्ल्यू० डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 297-304; राधाकमल मुखर्जी : लैंड प्राब्लम्स इन इंडिया (लंदन 1933) पृ० 263-75, बी० एम० भाटिया : पूर्वोद्धृत, 150-5

108 उदाहरणार्थ देखिए, इर्फा्नन, स्पीचेज, पृ० 240; चिमने, पूर्वोद्धृत, पृ० 395, कर्जन, स्पीचेज I पृ० 124, स्पीचेज II पृ० 166; 1901 के अकाल आयोग के अध्यक्ष अटोनी मैकडोनल द्वारा 1901 में डिगबी को लिखा पत्र जो डिगबी की पुस्तक में दिया गया है, पूर्वोद्धृत पृ० 323, जे० डी० रीस, 'फैमिन-फैक्ट्स ऐंड फैलेसीज', एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू, जुलाई 1901, पृ० 9.

109. जोशी : पूर्वोद्धृत, पृ० 347. पी० मेहता : स्पीचेज, पृ० 394, 770; बी० आर० नीतू. रिप० आई० एन० सी०, 1894 पृ० 38; ए० बी० पी०, 12 जून 1884, 20 मार्च 1892, 1, 2 जनवरी 1901, अखबारे आम, 6 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 14 जनवरी 1899); हिंदुस्तानी, 4 अक्तू० (आर० एन० पी० एन०, 11 अक्तूबर 1899), बंबई में 10वें प्रांतीय सम्मेलन में जी० के० पारिख का भाषण, बंगाली, 22 मई 1900, तेज बहादुर सप्रू, 'रिव्यू आफ आर० सी० दत्तस ओपन लेटर्स', एच० आर०, नव० 1900, पृ० 36, हिंदू, 14 दिसंबर 1900; स्वदेशमित्रन, 12 दिसंबर (आर० एन० पी० एम० 15 दिसंबर 1900); जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 29; सी० वाई० चिंतामणि, 'इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन, एच० आर० मई 1901 पृ० 341-2; केसरी 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंब०, 22 फरवरी 1902); एस० एस० थार्बर्न के 'पंजाब इन पीस एंड वार' की समीक्षा, एच० आर०, अगस्त 1904 पृ० 196-7.

110. जी० एस० अय्यर : रिप० आई० एन० सी०, 1900 पृ० 29.

111 इंदु प्रकाश, 4 अगस्त (आर० एन० पी० बंब०, 9 अगस्त 1879), मराठा, 10 अप्रैल 1881; रानाडे . 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकलचरल बैंक्स' जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खंड IV संख्या 2), पृ० 39-40; जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 350, 356, 515,521-2; ए०बी० पी०, 20 मार्च 1892, 22 नव० 1898; राय, पावर्टी, पृ० 222, नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 116. 118, सियालकोट पेपर, 16 नवंबर (आर० एन० पी० पी०, 25 नव० 1899); दत्त सी० पी० ए०, पृ० 478, बंगाली 21 अगस्त 1901, एन० सी० केलकर, एच० आर०, सितंबर-अक्तूबर 1901 पृ० 243, जी० एम० अय्यर ई० ए०, पृ० 13, 16, केसरी 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंब०, 22 फरवरी 1902)

112 और देखिए, ज्ञान प्रकाश, 5 सितंबर, बोध सुधाकर, 28 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 7 सित० 1878), ज्ञान प्रकाश, 30 सित० (वही, 5 अक्तू० 1878) इंदु प्रकाश, 4, 11 अगस्त (वही, 9, 16 अगस्त 1879); इंदु प्रकाश, 25 अक्तू० (वही, 30 अक्तूबर 1880), इंदु प्रकाश, 5 सित० (वही, 10 सित० 1881), रानाडे 'दि डकन ऐग्रीकल्चरिस्ट्स बिल' जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1879 (खंड II स० 2) पृ० 46 7 लैंड ला रिफार्म ऐंड एग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 37, 55 और केलाक पूर्वोद्धृत, पृ० 27, मराठा, 24 सितंबर 1882, इंडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब 14 अक्तूबर 1882), ए० बी० पी०, 26 जून 1884, 20 मार्च 1892, 22 नवंबर 1898, 1, 2 जनवरी 1901, रहबर हिंद, 3 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 15 जुलाई 1893), जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 348-9, 357, 408, 410 414 421, 426, 435, 443-4, 448-50, 515, 522, पी० मेहता पूर्वोद्धृत, पृ० 394 5, 450, 575, 655, मालवीय, पूर्वोद्धृत, पृ० 305-06, 312-3, आई० एन० सी०, 1895 का प्रस्ताव X आर० एन० मुधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 111, आर० पी० करांडकर, वही, पृ० 112, नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 131-2, गोखले स्पीचेज, पृ० 1016 7, जी० एस० अय्यर विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 19024, रिप० आई० एन० सी०, 1900 पृ० 29 और ई० ए० पृ० 13, 16 7, अखबारे आम, 6 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 14 जनवरी 1899); पंजाब समाचार 18 मार्च (वही, 25 मार्च 1899), ज्ञान अक्तूबर 1899 पृ० 67, दिसंबर 1899 पृ० 136, दत्त, सी० पी० ए०, पृ० 480, स्पीचेज II पृ० 194, ई० एच० II पृ० 331, जी० के० पारिख, बंबई के दमव प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, बंगाली, 22 मई 1900, सी० वाई० चिंतामणि, इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 341-2, बंगाली, 21 अगस्त 190 , मद्रास स्टैंडर्ड, 2 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, 10 अगस्त 1901), 'रिव्यू आफ थार्बर्न 'पंजाब इन पीस ऐंड वार' एच० आर०, अगस्त, 1904 पृ० 196, और देखिए पीछे अध्याय 9 और आगे 'भूमि स्वामित्व परिवर्तन' भाग I

113 एल० एम० घोष स्पीचेज, पृ० 88, रानाडे 'दि डकन ऐग्रीकल्चरिस्ट्स बिल' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 50-1, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 44, पूना सार्वजनिक सभा 6 सितंबर 1879 का विरोधपत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1880 (खंड II स० 3) पृ० 106; संजीवनी, 6 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 13 अगस्त 1898); ज्ञान, अक्तूबर 1899 पृ० 67, दिसंबर 1899, पृ० 136-7, गोखले स्पीचेज, पृ० 1016; दत्त स्पीचेज I पृ० 13-4, 27; 'रिव्यू आफ थार्बर्न्स—'पंजाब इन पीस ऐंड वार' एच० आर० अगस्त 1904 पृ० 197

114 उदाहरणार्थ देखिए, रानाडे, 'दि डकन ऐग्रीकल्चरिस्ट्स बिल' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 45 'लैंड

रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 55; जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 346-7, 443 4, 515, 517, 519, 536, मेहता स्पीचेज, पृ० 663 4, 810, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 308, आर० एन० मुधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 111, नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 117, जी० एस० अय्यर ई० ए०, प० 13 6, दत्त ओपन लटर्स, पृ० 79, स्पीचेज I पृ० 27 तथा देखिए पीछे अध्याय 9 और आग पाद टिप्पणी सख्या 152

115 आर० एन० पी० बब, 22 फरवरी 1902

116 उदाहरणार्थ देखिए ज्ञान प्रकाश, 30 सितंबर (आर० एन० पी० बब, 5 अक्तूबर 1878); एल० एम० घोष स्पीचेज पृ० 88, आनद बाजार पत्रिका, 7 सितबर (आर० एन० पी० बग० 18 सितबर 1880), इदु प्रकाश, 25 अक्तू० (आर० एन० पी० बब 30 अक्तूबर 1880), भारत बधु, 26 नवबर (आर० एन० पी० पी० एन०, 2 दिस० 1880), रानाडे 'मिस्टर वडरबन एड हिज क्रिटिक्स आन ए परमानेंट सैटलमेंट फार दि डकन' जे० पी० एस० एस० जनवरी 1881 (खड III स० 3) प० 17 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 41, 50 मराठा 1 जनवरी, 12, 19 फरवरी 1882, बगाली, 2 दिस० 1882 भारत मिहिर 28 नवबर (आर० एन० पी० बग०, 9 दिस० 1882), भारत मिहिर 28 नवबर (आर० एन० पी० बग०, 9 दिसबर 1882), भारत मित्र 22 नवबर (वही, 1 दिसबर 1883) ए० बी० पी० 12, 26 जून 1884, सजीवनी, 19 अप्रैल (आर० एन० पी० बग० 26 अप्रैल 1884) हिंदू पत्रिका, 30 अप्रैल (वही 10 मई 1884) हिंदू, 29 दिसबर 1884 राजा रामपाल सिंह, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 65 6 कोहेनूर, 13 15 17 अगस्त गार्वा 14 अगस्त, आफताब पजाब, 16 अगस्त (आर० एन० पी० पी० 24 अगस्त 1889) हितवादी 25 जुलाई (आर० एन० पी० बग, 1 अगस्त 1891) बगनिवासी 28 अगस्त (वही 5 सितबर 1891 बगाली, 23 जनवरी 1892, हिंदुस्तान, 26 अप्रैल (आर० एन० पी० एन० 28 अप्रैल 1892) ताज उल अखबार 4 फरवरी (आर० एन० पी० पी० 18 फरवरी 1893) रहबरे हिंद 3 जुलाई (वही 22 जुलाई 1893), अखबार आम, 13 नवबर (वही 21 नवबर 1894 रहबरे हिंद, 14 मार्च 20 जून (वही 23 मार्च और 6 जुलाई 1895), अखबारे आम, 15 जुलाई (वही 27 जुलाई 1895) गमख्वारे हिंद 20 जुलाई (वही 3 अगस्त 1895) जोशी पूर्वोद्धृत, प० 350 61, 407-08 411 3 447 8, राय पार्वती, पृ० 20 सहचर, 13 मार्च सजीवनी, 16 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 23 मार्च 1895), आर० एन० मुधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1896 प० 15 दिनकर रामगोपाल पूर्वोद्धृत प 145, सजीवनी, 19 मार्च, 6, 13, 27 अगस्त (आर० एन० पी० बग० 26 मार्च, 13, 20 अगस्त 3 सितबर 1898), आर० एम० सयानी एल० सी० पी० 1898 खड XXXVII पृ० 524, फोइनेक्स, 5 अक्तूबर, गुरखी, 6 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब०, 6 अक्तूबर 1898); ताज उल अखबार, 21 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 4 फरवरी 1899), पैसा अखबार 1 फरवरी (वही, 18 फरवरी 1899) सियालकोट पेपर, 8 अक्तू० (वही 28 अक्तूबर 1898 अलमोड़ा अखबार, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० एन० 17 अप्रैल 1899), मराठा, 8 अक्तूबर 1899, वाचा स्पीचेज, पृ० 436 दत्त स्पीचेज I पृ० 4, तेज बहादुर सप्रू एन० आर० नवबर 1900 प० 36, 'प्रोसीडिंग्स आफ दि फर्स्ट नार्थ अरकोट डिस्ट्रिक्ट कान्फ्रेंस हेल्ड आन 21 22 जुलाई 1900 पृ० 9 एन० जी० चंदावरकर सी० पी० ए० प० 51, केसरी के 12 फरवरी 12 मार्च के मवादहाता (आर० एन० पी० बब 16 फरवरी 6 मार्च 1901) विकट

हूतन, 4 मई (आर० एन० पी० एम०, 4 मई 1901); इंडियन मिरर, 28 सित० (आर० एन० पी० बग० 5 अक्तू० 1901); न्यू इंडिया 25 नव० 1901; सी० वाई० चिंतामणि · इंडिया ग्रेड लार्ड कर्जन . पूर्वोक्त स्थल, पृ० 341; पी० मेहता · स्पीचेज, पृ० 625; एम० आर० आर० अय्यर : रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 142; सी० सी० घोष . वही, पृ० 144; गोखले : स्पीचेज, पृ० 111, 329, 1034; मालवीय . स्पीचेज, पृ० 30

117 रिप० आई० एन० सी०, 1899 पृ० 44

118 रानाडे एसेज, पृ० 293-4; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 419-20, 439, 447-8 519-21; आर० एन० मुधोलकर · रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 108 09, नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 116-7, एम० एन० बैनर्जी सी० पी० ए०, प० 698; बंगाली, 13 फरवरी 1892, संजीवनी, 13 अगस्त (आर० एन० पी०, बंग, 20 अगस्त 1898); इंडियन स्पेक्टेटर, 11 दिसंबर 1898; पैसा अखबार, 1 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 18 फरवरी 1899); सियालकोट पेपर, 8 अक्तूबर (वही, 28 अक्तूबर 1899); इंदु प्रकाश, 9 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब०, 14 अक्तूबर 1899)

119. रानाडे, 'दि डकन ऐग्रीकलचरिस्टस बिल' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 49-50; आनंद बाजार पत्रिका, 7 सितंबर (आर० एन० पी० बंग०, 18 सितंबर 1880); ज्ञान प्रकाश, 25 सित० (आर० एन० पी० बंब, 30 सितंबर 1882), इंडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर, 26 नवंबर (वही 14 अक्तू०, 2 दिस० 1882); ए० बी० पी०, 25 जनवरी, 1 फरवरी 1883, 20 मार्च 1892 22 नवंबर 1898, इंडियन स्पेक्टेटर, 29 जून (आर० एन० पी० बंब, 5 जुलाई 1884); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 343; एन० जी० चंदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 517, प्रधान और भागवत पूर्वोद्धृत, में तिलक, पृ० 133; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 656-7, जी० के० पारिख प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1901, खंड, XXXIX पृ० 314; डी० ए० खरे, वही, पृ० 325-6; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 582; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 156

120 तुलनीय, गाडगिल, पूर्वोद्धृत, पृ० 97 तथा कर्जन, स्पीचेज II पृ० 29, सी० एम० रिवाज, एन० सी० पी० 1899, खंड XXXVIII पृ० 325-6; जी० हैमिल्टन, इंडियन डिबेट्स, 3 फरवरी 1901 लगभग 113

121. मराठा, 6 मार्च 1881, 7 मई 1882; अखबारे आम, 6 नवंबर (आर० एन० पी० पी० 17 नवंबर 1894), और 6 जनवरी (वही, 14 जन० 1899); विक्टोरिया पेपर, 17 जुलाई (वही, 5 अगस्त 1899); भारत मित्र, 22 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 27 जनवरी 1900); ए० बी० पी०, 1 जनवरी 1901; केसरी, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 22 फरवरी, 1902)

122. रानाडे, 'दि डकन ऐग्रीकलचरिस्ट बिल', जे० पी० एस० एस० अक्तूबर 1879 (खंड II सं० 2) (यह लेख मूल रूप मे लेखक के नाम के बिना प्रकाशित हुआ था और मनकर के अनुसार इसे जस्टिस रानाडे ने ही लिखा था लेख मे ऐसे साक्ष्य हैं जिससे इस संबंध मे मनकर का विचार असंदिग्ध रूप से सत्य सिद्ध होता है) पूना सार्वजनिक सभा का 6 सितंबर 1879 का विरोधपत्र, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1880(खंड II सं० 3 ; 20 जुलाई का रास्त गुफ्तार और लोकमित्र) आर० एन० पी० बंब, 26 जुलाई 1879); स्वदेशमित्र, 9 अगस्त (वही, 16 अगस्त 1879), जामे जमशेद, 22 अगस्त (वही, 23 अगस्त 1879).

123 रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकलचरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 43

124 इदु प्रकाश, 22 जुलाई (आर० एन० पी० बब, 27 जुलाई 1878), ज्ञान प्रकाश, 30 सितबर (वही, 5 अक्तूबर 1878), गुजरात मित्र, 29 दिसबर 1878 (वही 4 जनवरी 1879); अरुणोदय, 27 जुलाई (वही, 2 अगस्त 1879); इदु प्रकाश, 4 अगस्त (वही, 9 अगस्त 1879); नेटिव ओपीनियन, 10 अगस्त (वही, 16 अगस्त 1879); इदु प्रकाश, 29 नवबर (वही, 4 दिसबर 1880), सुबोध पत्रिका, 5 दिसबर (वही, 11 दिसबर 1880), मराठा, 3 अप्रैल 1881, 3 फरवरी 1884, इदु प्रकाश, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 8 अप्रैल 1882), शिवाजी, 22 सितबर (आर० एन० पी० बब, 30 सितबर 1882), इडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर (वही, 14 अक्तूबर 1882), मराठा, 15 अक्तूबर 1882, जनवरी 1883 क बी० ओ० आई० मे उद्धृत समाचारपत्र

125 'दि डकन ऐग्रीकल्चरिस्ट्स ऐक्ट,' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 44.

126 एसेज, पृ० 327, और 'द लैंड ला रिफार्म ऐड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स,' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 42, 45-6, 49-53, पूना सार्वजनिक सभा का 6 सितबर 1879 का विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 110-11 परवर्ती वर्षों मे बहुत सारे भारतीयो ने इसी प्रकार का भय प्रकट किया तथा निर्देश किया कि बिल साहूकार और कर्जदारो मे झगडा पैदा करने के लिए बनाया गया है और इसका परिणाम बहुत सारे मामलो मे किसानो की धरती के यथार्थ रूप मे हा साहूकारो के हाथो मे चले जाने के रूप मे हुआ है अत उन्होंने अधिक उदार राजस्व नीति की और किसान के ऋण के लिए वैकल्पिक साधन की व्यवस्था की वकालत की नेटिव ओपीनियन, 23 सितबर 1888, मराठा, 4 अक्तूबर 1891, केसरे हिंद, 28 अक्तूबर (वही 24 अक्तूबर 1891), गुजरात दर्पण, 29 नवबर (वही, 5 दिसबर 1891), जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 355, 359-60, बी० आर० नातू, रिप० आई० एन० सी०, 1894 पृ० 38; इदु प्रकाश, 7 मई (आर० एन० पी० बब, 12 मई 1891), इडियन स्पेक्टेटर, 13 मई (वही, 19 मई 1894), एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 509-10, 517 8, पी० महता, स्पीचेज, पृ० 304-05

127 मराठा, 5 जून 1881, 24 सितबर 1882, 4 अक्तूबर 1891, इदु प्रकाश, 21 सितबर 1891, प्रकाशक, 4 जनवरी, काल 4 जनवरी, (आर० एन० पी० बब, 12 जनवरी 1901)

128 प्रमाण के रूप मे देखिए, भारत सरकार का 3 जनवरी 1894 का भारत सचिव को सप्रेषण, होम (पब्लिक) प्रोसीडिंग्ज, जनवरी 1894, प्रोग स० 186 (ए) कडिका-28, ज० मोन्टी, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौसिल आफ दि गवर्नर आफ बाब, 1900, खड XXXVIII पृ० 141 और वही 1901 खड XXXIX पृ० 179-84, जार्ज हैमिल्टन, इडियन डिबेटस 3 फरवरी 1901 लगभग 111-5 लैंड रेविन्यू पालिसी आफ दि गवर्नमट आफ इडिया, 1902 कडिका, 29 एरिक स्टोक्स: दि इग्लिश युटिलिटेरियस गेड इडिया (आक्सफोर्ड 1959) पृ० 138-39, रीस . पूर्वोद्धृत, पृ० 319

129 जे० मौन्टी, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1900, खड XXXVIII पृ० 141, जार्ज हैमिल्टन, इडियन डिबेट्स, 3 फरवरी 1901 लगभग 111-2, एस० एम० थार्बन का 10 जनवरी 1902 को फैबियन सोसायटी मे भाषण, स्टेट्स्मैन, 6 फरवरी 1902

130 इस दृष्टिकोण के विकास के इतिहास के लिए देखिए, सी० एम० रिवाज, एल० सी० पी० 1899, खड XXXVIII पृ० 318-20 1857 और 1880 मे सरकारी क्षेत्र मे इस विषय पर मतभेद के लिए देखिए, रानाडे, एसेज, पृ० 294-324

131 1900 का अधिनियम XIII.

132. सी० एम० रिवाज, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 325-7; कर्जन, स्पीचेज I पृ० 124-5, स्पीचेज II पृ० 28-9, 34.

133. 1901 का बंबई अधिनियम IV जे० एम० मौंटी, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे 1901, खड XXXIX पृ० 186, जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 532, 539, 545.

134. रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 32, एसेज, पृ० 325-7; आई० एन० सी० 1895 का प्रस्ताव X ; 9 नव० 1895 को पूना सार्वजनिक सभा द्वारा लार्ड एलगिन को संबोधन जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1896 (खड XVIII स० 3) पृ० 11; दत्त, सी० पी० ए० पृ० 478 और स्पीचेज II पृ० 36

135. आई० एन० सी०, 1899 का प्रस्ताव II, इडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर, इदु प्रकाश, 9 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब, 14 अक्तू० 1899), हिंदुस्तानी, 20 दिसबर (आर० एन० पी० एन०, 26 दिसबर 1899), इडियन स्पेक्टेटर, जुलाई 1900, केसरी, 30 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब, 3 नव० 1900); बगाली, 8 नवबर 1900 7 अक्तूबर के अक मे हिंदू ने तथा 8 अक्तूबर 1889 के अक मे मराठा ने बिल की निंदा तो नही की परतु उसे निरर्थक घोषित किया

136 बिल के समर्थको के लिए देखिए, सिविल ऐड मिलट्री न्यूज, 4 अक्तू० (आर० एन० पी० पी०, 21 अक्तू० 1899), पैसा अखबार, 4 नवबर (वही, 18 नवबर 1899), रफीके हिंद, 18 नव० (वही, 25 नवबर 1899), रफीके हिद, 3 मार्च, 28 अप्रैल, 9 जून 8 सितबर, 3 नवबर (वही, क्रमश 10 मार्च, 5 मई, 30 जून, 15 सितबर, 17 नवबर 1900), गमख्वारे हिद, 27 जनवरी (वही, 3 फरवरी 1900) विरोधियो के लिए देखिए, ट्रिब्यून, 7 अक्तू० (आई० एस० वी० ओ० आई० 22 अक्तूबर 1899); वकील, 31 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 12 अगस्त 1899), सियालकोट पेपर 8 अक्तूबर (वही, 28 अक्तूबर 1899), विक्टोरिया पेपर, 4 नवबर (वही, 18 नवबर 1899), पजाब समाचार, 18 नवबर (वही, 25 नवबर 1899), दारुले हिद, 2 मार्च, विक्टोरिया पेपर, 5 मार्च (वही, 10 मार्च 1900); सियालकोट पेपर, 8 अप्रैल (वही, 14 अप्रैल 1900), पब्लिक गजट, 24 अक्तूबर (वही, 3 नवबर 1900), पजाब के दो काग्रेसी नेताओ, मुरलीधर और कन्हैयालाल ने काग्रेस अधिवेशन मे बिल का विरोध किया देखिए, रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 45-7

137 आर० एन० पी० पी०, क्रमश 18 अगस्त और 3 नवबर 1900

138. वही, 24 नवबर 1900 इसी प्रकार 22 अगस्त 1900 के अक मे विक्टोरिया पेपर भी अपनी पिछली स्थिति से पलट गया और सशोधन बिल का समर्थन करने लगा आर० एन० पी० पी०, 8 सित० 1900

139. होयलैंड . पूर्वोद्धृत, पृ० 71, एच० मोदी पूर्वोद्धृत, खड 1 पृ० 424

140. मराठा, 30 जून, 7, 14 जुलाई 1901, हिंदू 31 जुलाई 1901, ए० बी० पी०, 26 अगस्त 1901; आर० एन० पी० बब, 1, 8, 22 जून 1901 मे प्रतिवेदित समाचारपत्र तथा देखिए, जुलाई, अगस्त और सितबर 1901 के आर० एन० पी० बब

141 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 439-44, 512-54, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 641-6, 651-712; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1017-48; जी० के० पारिख, प्रासीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1901, खड XXXIX, पृ० 191-5, 312-9; डी० ए० खरे, वही, पृ० 319-28, प्रधान और भागवत पूर्वोद्धृत मे तिलक, पृ० 132-3; वाछा, सी० पी० ए०, पृ० 569-70, एन० सी० केलकर, 'दि रीसेंट लैंड लैजिस्लेशन इन बांबे' एच० आर०, सितबर-अक्तूबर 1901 पृ० 242

और आगे तथा देखिए दत्त, स्पीचेज II पृ० 136, 138 और इग्लैंड मे रहने वाले भारतीयो के सम्मेलन की ओर से दादाभाई नौरोजी, आर० सी० दत्त और के० हरनामसिंह द्वारा हस्ताक्षरित ज्ञापन; दत्त, स्पीचेज II पृ० 141-9 मे पुन उद्धृत.

142 प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1901, खड XXXIX पृ० 367-8

143 पूना सार्वजनिक सभा का 6 सितबर 1879 का विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 110, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 110 रहबर, 1 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 10 मार्च 1897), आई० एन० सी०-1899 का प्रस्ताव II, इडियन स्पेक्टेटर, 8 अक्तूबर, इदु प्रकाश, 9 अक्तू० (आर० एन० पी० बब, 14 अक्तूबर 1899); पैसा अखबार, 1 फरवरी (आर० एन०पी०पी०, 18 फरवरी 1899), वकील 31 जलाई (वही, 12 अगस्त 1899), विक्टोरिया पेपर, 1 नवबर (वही, 18 नवबर 1899), सियालकोट पेपर 16 नवबर (वही, 25 नवबर 1899), इडियन एसोसिएशन की लाहौर की उपसमिति का प्रतिवेदन, रफीके हिंद, 25 नवबर मे पुन उद्धृत वही, 9 दिसबर 1899), केसरी, 30 अक्तूबर (आर० एन० पी० बब, 3 नवबर 1900); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 444, 515, 544, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1032 3, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 674, 686, जी० के० पारिख पूर्वोद्धृत पृ० 192 [illegible] सी० एन० [illegible] पूर्वोक्त स्थल पृ० 325; सी० वाई० चितामणि इडिया [illegible] लार्ड कर्जन' [illegible] मई 1901 पृ० 340-1 मराठा, 14 जुलाई 1901, अहमदाबाद टाइम्स, कैसरे हिंद 26 मई गजराती 26 मई (आर० एन० पी० बब [illegible] जून [illegible] इदु प्रकाश 20 जून (वही 2[illegible] जून 1901 मालवीय, स्पीचेज पृ० 310, 317

144 रहबर, 1 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 10 मार्च 1897 विक्टोरिया पेपर 4 नवबर (आर० एन० पी० पी० 18 नवबर [illegible], पजाब समाचार, [illegible] नवबर सियालकोट पेपर 16 नवबर (वही [illegible] नवबर 1899), इडियन एसोसिएशन लाहौर की उपसमिति का प्रतिवेदन, पूर्वोक्त स्थल [illegible] हिंद, 2 मार्च (आर० एन० पी० पी० 1[illegible] मार्च 1901), दत्त सी० पी० ए०, पृ० 477 ओपेन लेटर्स, पृ० 7[illegible] स्पीचेज II पृ० [illegible] [illegible] II पृ० 471, 487, 494, मधोलकर रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 4[illegible] जोशी पूर्वोद्धृत पृ० 444, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 317

145 रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐड एग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 32[illegible], पूना सार्वजनिक सभा का लार्ड एलगिन को सबोधन, 9 नवबर 1895, पूर्वोक्त स्थल पृ० 11, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 109-10, मधोलकर रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 45

146 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 444, 513, 515, 522, 530 1, पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 643-4, 654, 658-9 680-5, 692-3, 697-702, 704, गोखले स्पीचेज पृ० 1018 9, 1038-9, वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 569-70, केसरी 4, 18 जून (आर० एन० पी० बब, 8, 22 जून 1901)

147 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 531, 543, पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 675, 711, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1037

148 रानाडे, एसेज, पृ० 325-7, जे० एन० गुप्ता पूर्वोद्धृत मे दत्त पृ० 168, इडियन स्पेक्टेटर 8 जुलाई 1900, जी० के० पारिख, पूर्वोक्त स्थल पृ० 316

149 विक्टोरिया पेपर, 4 नवबर (आर० एन० पी० पी०, 18 नव० 1899), वकील, 20 नव० (वही, 2 दिस० 1899), इडियन एसोसिएशन लाहौर की उपसमिति का प्रतिवेदन, पूर्वोक्त स्थल,

कन्हैयालाल, रिप० आई० एन० सी०, 1899, पृ० 46; एन० सी० केलकर, 'दि रीसेंट लैंड लेजिस्लेशन इन बाबे', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 247. दूसरी ओर गोखले ने शिकायत की कि बबई लेजिस्लेशन के तथाकथित शिकार इससे किसी भी रूप मे बुरी तरह से प्रभावित नही होंगे (स्पीचेज, पृ० 1030, 1037-8).

150 उदाहरणार्थ, फिरोजशाह मेहता ने यह निर्देश करने के उपरात कि अगरेज अधिकारी, देशी व्यक्तियों के साथ सपर्क बनाता है, वह सहानुभूतिपूर्ण होने पर भी अकेला पड जाता है, जिज्ञासु होने पर भी अनभिज्ञ रहता है और जीवनपर्यंत अजनबी और विदेशी ही बना रहता है, दृढतापूर्वक कहा कि मैं और मेरे साथी ही यह कहने का दावा कर सकते हैं कि हम किसानो के विचारो और भावो को व्यक्तिगत रूप से और सही तौर पर जानते तथा उनकी जानकारी का अनुभव रखते हैं. हम ही उनके जीवन के ढग, उनकी इच्छाओ और आकाक्षाओं, उनके स्वभाव, उनके पूर्वग्रहो और रुचियो आदि को जानते और समझते हैं अत कृषको के विचारो को ठीक ढग से प्रस्तुत करने के और उनका प्रतिनिधित्व करने के सही अधिकारी हम ही है, न कि दूर द्वीप में रहने वाले अगरेज और कृषक जनता से दूर तथा अलग-थलग अगरेज अधिकारी (स्पीचेज, पृ० 670), तथा देखिए, वही, पृ० 640-1, 652, 703; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1029-30

151. एन० सी० केलकर, 'दि रीसेंट लैंड लेजिस्लेशन इन बाबे', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 244 तथा आर० एन० मघोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 111, मराठा, 8 अक्तूबर 1899, 30 जून, 7 जुलाई 1901, हिंदू, 7 अक्तूबर 1899; इदु प्रकाश, 9 अक्तू० (आर० एन० पी० बब, 14 अक्तू० 1899), इडियन स्पेक्टेटर, 28 अक्तू० 1900; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 443, 447, 512-5, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 304, दत्त, स्पीचेज II पृ० 135-6, सी० वाई० चितामणि, 'इडिया ऐंड लार्ड कर्जन' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 340-2; गुजराती, 2 जून (आर० एन० पी० बब, 8 जून 1901); बगाली, 21 अगस्त, 1901; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 313-4

152 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 448, 515-22, 544, पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 663-4, 676-7, जी० के० पारिख, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 193, 318; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 308 तथा देखिए पीछे पादटिप्पणी स० 114

153 उदाहरणार्थ, जी० एस० अय्यर ने टिप्पणी की 'यदि सरकार यह समझती है कि लगान इतना कम है कि इससे ग्रामीण ऋणग्रस्तता जैसे विलक्षण और भारी रोग को बढावा मिलता है तो सरकार के लिए रास्ता खुला है, वह लगान मे इतनी अधिक वृद्धि की घोषणा कर दे कि किसान बचारे को अपनी खेती से आजीविका ही न मिल सके और उसे इस प्रकार सदा के लिए ऋण-ग्रस्तता से मुक्ति मिल जाए सरकार भविष्य मे और अधिक नरमी बरतने के लिए, जैसा लार्ड कर्जन कहते रहे है, अपने को वचनबद्ध क्यो करती है ? (ई० ए०, पृ० 13-4) आर० सी० दत्त ने सरकार पर पुरानी परपरा के जमीदारो की प्रवृत्तियो को दोहराने का आरोप लगाया: 'किरायेदारो को इतना चूसा कि वे दूर दूर ही रहे, गरीब आदमी बद से बदतर हो जाए' (स्पीचेज II पृ० 194-5) तथा पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 656-7

154 डी० ए० आर० बिल पर पूना सार्वजनिक सभा का 6 सितबर 1879 का विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 110; आर० पी० करदिकर, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 112-3; मराठा, 8 अक्तू० 1899; हिंदू, 7 अक्तूबर 1899; पैसा अखबार, 7 अक्तूबर (आर० एन० पी० पी०, 28 अक्तूबर 1899); सियालकोट पेपर, 16 नवबर, 1 दिस० (वही, 25 नवबर, 9 दिस० 1899); दोस्ते हिंद, 2 मार्च (वही, 10 मार्च 1900); मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 45; जोशी,

पूर्वोद्धृत, पृ० 440, 443-4, 450; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1019, सी० वाई० चिंतामणि, 'इंडिया ऐंड लार्ड कर्जन' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 341-2, मराठा, 30 जून, 7 जुलाई 1901, इंदु प्रकाश, 20 जून (आर० एन० पी० बंब, 22 जून 1901); एन० सी० केलकर, 'दि गैरोंट लैंड लेजिस्लेशन इन बाबे', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 243-4; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 305-06, 312-4

155 सरकार द्वारा भूमि का अधिकार न पाने पर भी किसान सरकारी नकद माग की पूर्ति आसानी से कर सकता है, इसका अनुमान अथवा ज्ञान होने पर सरकार उसे स्वामित्व का अधिकार न दे यह एक बात है तथा किसान द्वारा प्राप्त भूमि के स्वतन्त्र व्यापार के अधिकार का अपनी अबुद्धिमत्ता, हठधर्मिता और फिजूलखर्ची आदि के कारण दुरुपयोग करने पर सरकार द्वारा उस अधिकार का छीना जाना दूसरी बात है दूसरी स्थिति मे सरकार का पग न्यायसगत हो जाता है.

156 बबई भूराजस्व बिल पर अपने भाषण में समीक्षा के इस रूप को स्पष्ट अभिव्यक्ति गोपालकृष्ण गोखले ने की उन्होने यह घोषणा की कि यदि बिल वास्तव मे साहूकारो के बुरी तरह शिकार बने हुए किसानो को किसी प्रकार की राहत दे सकता है तो मैं यह कहना चाहूंगा कि इस उपाय के विरुद्ध कितना भी कुछ क्यो न कहा गया हो, उससे उन किसानो के पक्ष मे तो यह लाभ ही पहुचाएगा उन्होने अपना यह दृढ मत अभिव्यक्त किया यह कहना असभव है कि बिल इस प्रकार से कुछ भी कर सकता है (स्पीचेज, पृ० 102) तथा देखिए, वही, पृ० 25, 1022-4, 1036-40, दत्त, सी० पी० ए० पृ० 460 ओपेन लेटर्स, पृ० 78; एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 519-20 हिंद 7 अक्तूबर 1899, सियाल्कोट पेपर, 16 सितबर (आर० एन० पी० पी०, 6 अक्तूबर 1900), मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी० 1899, पृ० 45, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 444, 512, 514-5, 530, 541 2, 544, सी० वाई० चिंतामणि, 'इंडिया एंड लार्ड कर्जन' पूर्वोक्त स्थल पृ० 340 1, मराठा, 14 जुलाई 1901, कैसरे हिंद, 26 मई, गुजराती, 26 मई (आर० एन० पी० बब, 1 जून 1901), बगाली, 21 अगस्त 1901 तथा देखिए पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 672

157 और देखिए, मराठा, 30 जून 1901

158 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1039-40.

159 और देखिए, वही, पृ० 25, 1017, रानाडे 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 48, 57 एसेज, पृ० 256-7; एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 520

160 रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 42 तथा देखिए, मराठा, 4 सित० 1881, 1 जनवरी, 12 फरवरी 1882, 25 मई 1884 25 जनवरी 1885, प्रकाशक, 8 जनवरी, कल, 4 जन० (आर० एन० पी० बब, 12 जनवरी 1901), केसरी, 18 जून (वही, 22 जून 1901) 10, 17 नवबर (वही, 14, 21 नवबर 1903); जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 65-6

161 प्रमाण के रूप मे देखिए, पूना सार्वजनिक सभा का 6 सितबर 1879 का विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 105-06, 110-1; रानाडे, 'दि डकन ऐग्रीकल्चरिस्ट बिल' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 49, मिस्टर वेडरबर्न ऐंड हिज क्रिटिक्स आन ए परमानेंट सैटलमेंट फार दि डकन' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 17; 'लैंड ला रिफार्म ऐंड एग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 42, 46, 53-7, एसेज, पृ० 256-7; मराठा, 1 जनवरी 1882, इदु प्रकाश और ज्ञान प्रकाश ,उपिरहित (वी० ओ० आई० जनवरी 1883), जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 355-60, आई० एन० सी० 1895 का प्रस्ताव X; आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 111; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 395, 673-4,

दत्त, सी० पी० ए०, पृ० 480 और आगे, स्पीचेज II पृ० 135-6, ई० एच० II पृ० 495; एन० पी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 520; ए० बी० पी०, 22 नवंबर 1898, सी० वाई० चिंतामणि, 'इंडिया ऍंड लार्ड कर्जन' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 340-2, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 313-4. तुलनीय म्यूहर मैकजी छूट की कोई पद्धति ऋणग्रस्तता को न तो समाप्त करेगी और न ही धन के रूप मे बढ़ाएगी भूमिलगान को समाप्त कर देने का भी अपेक्षित प्रभाव नही पड़ेगा (प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, खड XXXIX, पृ० 353)

162. एल० एम० घोष, स्पीचेज पृ० 88, सोम प्रकाश, 31 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 5 नवबर 1881), भारत बधु, 26 नव० (आर० एन० पी० पी० एन०, 2 दिस० 1880); 28 अप्रैल (वही, 3 मई 1882), बगाली, 10 सित० 1881, 2 दिस० 1882, माडलिक, पूर्वोद्धृत, पृ० 131-8, रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐंग्रीकल्चरल बैंक्स' पूर्वोद्धृत और एसेज, पृ० 40 65, 256, नेटिव ओपीनियन, 19 नव० (आर० एन० पी० बब, 25 नव० 1882), सोम प्रकाश, 20 नव० (आर० एन० पी० बग०, 25 नव० 1882) भारत मिहिर, 28 नव०, मुलभ समाचार, 2 दिस० (वही, 9 दिस० 1882), बगवासी, 16 दिस० (वही, 23 दिस० 1882), भारत मित्र, 22 नव० (वही, 1 दिस० 1883), इंडियन मिरर, ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, दि हेराल्ड (बिहार) इंडियन स्पेक्टेटर, नेटिव ओपीनियन, मराठा सभी तिथिरहित (वी० ओ० आई०, जनवरी 1883); इंडियन मिरर, 2 अगस्त, पीपुल्स फ्रेंड, 4, 11, 18 अगस्त, ट्रिब्यून 11 अगस्त, इंडियन स्पेक्टेटर, 12 अगस्त इंडियन इको, 14 अगस्त, इदु प्रकाश, 6 अगस्त (वी० ओ० आई०, अगस्त 1883), सजीवनी, 19 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 26 अप्रैल 1884), ग्रामवर्त प्रकाशिका, 26 अप्रैल (वही, 3 मई 1884), आनद बाजार पत्रिका, 5 मई (वही, 10 मई 1884), महचर 7 मई, नवविभाकर 12 मई (वही, 17 मई 1884), बगवासी, 16 अगस्त (वही, 23 अगस्त 1884), बबई समाचार, 26 अप्रैल (आर० एन० पी० बब 26 अप्रैल 1884), ज्ञान प्रकाश 19 मई (वही, 17 मई 1884), इंडियन स्पेक्टेटर, 29 जून (वही 5 जुलाई 1884), हिंदू, 29 दिस० 1884, 3 फरवरी 1888, मराठा, 25 जनवरी 1885, पजाबी अखबार, 9 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 16 फरवरी 1889), हिंदुस्तान, 10 दिस० (आर० एन० पी० एन०, 16 दिस० 1890), बगनिवासी 28 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 5 सित० 1891), गुजरात दर्पण, 29 नवबर (आर० एन० पी० बब, 5 दिस० 1891) आई० एन० सी० 1891, 1896, 1901 और 1902 के प्रस्ताव III, XIII III, और III क्रमश, एस० मुदलियार, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 36-7, हिंदुस्तान, 26 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 28 अप्रैल 1892), जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 359 366 राय, पार्वर्टी, पृ० 222-5, सजीवनी, 26 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 2 नव० 1895), विक्टोरियन पेपर, 9 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 16 फरवरी 1895), आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 158, दत्त, स्पीचेज I पृ० 14, आर० एम० सयानी, एम० सी० पी० 1897, खड XXXVI पृ० 191, रहबर, 1 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 10 मार्च 1897), पैसा अखबार, 23 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 10 जुलाई 1898); अखबारे आम, 25 जुलाई (वही, 6 अगस्त 1899), अल्मोडा अखबार, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 12 अप्रैल 1899), ताज उल अखबार, 21 जन० (आर० एन० पी० पी०, 4 फरवरी, 1899); विक्टोरिया पेपर, 4 फरवरी (वही, 18 फरवरी 1899). वकील, 3 अप्रैल (वही, 29 अप्रैल 1899), नवाब एच० हुसैन, रिप० आई० एन० सी० 1899

पृ० 49; जी० के० पारिख, 22 मई 1900 के बगाली में उद्धृत; तेज बहादुर सप्रू, एच० आर० नवबर 1900 पृ० 36; रफीके हिंद, 16 जून (आर० एन० पी० पी०, 7 जुलाई 1900); सियालकोट पेपर 16 सित० (वही, 6 अक्तूबर 1900); अखबारे आम, 10 नवबर (24 नवबर 1900); जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 29; चित्तोड़ में 21-22 जुलाई 1900 को हुए प्रथम अरोटा सम्मेलन की कार्यवाही, पृ० 9 पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 673; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 580-4, बी० के० बोस, एल० सी० पी० 1901 खड XL, पृ० 266-8; ए० बी० पी०, 1 जन०, 25 सित० 1901, हिंदू 23 मार्च 1901, बगाली, 28 नवबर 1901; न्यू इडिया, 2 दिसबर 1901; सी० वाई० चितामणि, 'इडिया ऐड लार्ड कर्जन' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 341; इडियन डेली मेल, 24 नव०; हिंदुस्तानी, 27 नव० (आर० एन० पी० एम०, 30 नवबर 1901); इदु प्रकाश, 2 दिसबर, कैसरे हिंद, 1 दिसबर, मुधारक 2 दिस० (आर० एन० पी० बब, 7 दिस० 1901); मराठा, 16 नवबर 1902; श्रीराम, एल० सी० पी० 1903, खड XLII, पृ० 103

163 ए० बी० पी०, 28, 29 अक्तू० 1903; बगाली, 28 अक्तू० 1903; मराठा, 8 नव० 1903; आर० एन० पी० बग०, 14, 21 नवबर 1903, आर० एन० पी० बब, 31 अक्तू०, 7, 14 नवबर 1903, आर० एन० पी० एम०, 7, 21 नव० 1903 मे उल्लिखित सभी समाचारपत्र; एडवोकेट, 1 नव० (आर० एन० पी० यू० पी०, 7 नव० 1903), ट्रिब्यून, 21 अक्तू० (आर० एन० पी० पी०, 31 अक्तूबर 1903), पैसा अखबार, 8 नव० (वही, 14 नवबर 1903), आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव XII; गोखले, स्पीचेज, पृ० 329-30; ए० मुखोपाध्याय और श्रीराम, एल० सी० पी० 1904, खड XLIII क्रमश पृ० 389 और 401-02

164 रानाडे, एसेज, पृ० 61, 63, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 359-60, 366, हिंदू, 29 दिस० 1884, नवविभाकर, 12 मई (आर० एन० पी० बग०, 17 मई 1884), महचर, 14 मई (वही, 24 मई 1884), एस० मुदालियर, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 37, राय, पावर्टी, पृ० 224, इदु प्रकाश, 2 दिस० (आर० एन० पी० बब, 7 दिस० 1901), गोखले, स्पीचेज, पृ० 332-3; मराठा, 8 नव० 1903; एच० आर०, मार्च 1904 पृ० 302-03

165 रानाडे, 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकलचरल बैंक्स', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 49-51, एसेज, पृ० 256, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 367, गोखले, स्पीचेज, पृ० 25, 112, 331-2

166 रानाडे के इस विषय पर विचार 1879-83 की अवधि मे प्रकाशित पूना सार्वजनिक सभा के जरनल मे लिखे चार लेखो में प्रकट हुए थे. देखिए, दि ऐग्रेरियन प्राब्लम ऐंड इट्स सोल्यूशन' जे० पी० एस० एस० जुलाई 1879 (खड II स० 1), 'दि ला आफ लैंड सेल इन ब्रिटिश इडिया' (1880), एसेज में 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स', जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1881 (खड IV, स० 2) और 'प्रशियन लैंड लेजिस्लेशन ऐंड दि बगाल टेनेंसी बिल' (1883) एसेज मे

167. रानाडे, एसेज, पृ० 275-81, 283, 288-9 यहा यह उल्लेखनीय है कि उन्होने बगाल मे वर्तमान बुराइयो को हटाने के लिए उपाय के रूप मे कानूनी साधन की महत्ता को स्वीकार किया था.

168. वही, पृ० 326

169. इस प्रकार, बगाल के सबध मे उन्होने लिखा . रैयतवाड़ी भूमि पहले ही अधिकारो की जटिलता को सीमित करने की कल्पना करती है जबकि सभी वैधानिक उपायो की प्रवृत्ति यथासभव जोतो को अधिक से अधिक जिरायती अथवा खाम बनाने की होनी चाहिए. कानूनो का रूप ऐसा होना चाहिए कि उनके अंतर्गत भूमि का स्वामी सभी प्रकार के लाभ का तो भागी बने और हानियो

से उसका कोई सबध न हो. (वही, पृ० 278).

170 वही, पृ० 257, 264, 287, 289 तथा 'लैंड ला रिफार्म ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 56-7

171. एसेज, पृ० 287 तथा देखिए, 'ऐग्रेरियन प्राबलम ऐंड इट्स सोल्यूशन', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 17

172. 'दि ऐग्रेरियन प्राब्लम ऐंड इट्स सोल्यूशन', पूर्वोक्त स्थल पृ० 17 उन्होने आगे कहा 'समृद्ध वर्गों को इस समय भूमि मे किसी प्रकार की कोई रुचि नही है न उन्हे धरती से कोई पद मिल सकता है न प्रतिष्ठा और न ही वे जमीदारो के रूप मे काम कर सकते हैं इस प्रकार के सपन्न वर्ग की अनुपस्थिति कृषि के सर्वतोमुखी विकास को अवरुद्ध कर देती है.

173 वही, पृ० 18 तथा देखिए, वही, पृ० 10-1, 13-14, 19 और एसेज, पृ० 325-7

174. एसेज, पृ० 277 ९

175 वही, पृ० 267-70, 273-5

176 'दि ऐग्रेरियन प्राब्लम ऐंड इट्स सोल्यूशन', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 16-7

177 एसेज, पृ० 326-7 उन्होने यह भी लिखा 'इस समय देश सक्रमण की अवस्था मे है वह वर्तमान अर्धसामती और पितसत्तात्मक स्थितियो से गुजर रहा है वह इस समय अधिक व्यवस्थित और व्यवसायपरक स्थिति को अपनाता जा रहा है प्रवाह के विरुद्ध जाने वाला अथवा प्रवाह को अवरुद्ध करने वाला कोई आर्थिक कानून वर्तमान परिस्थितियो मे सफल नही हो सकता सभी देशो मे सभी प्रकार की—भूमिगत अथवा पदार्थगत सपत्ति का स्वामित्व बेसमझ अदूरदर्शी और अपने हस्तगत साधनो को सभालने और उनका सही रूप मे उपयोग करने मे असमर्थ लोगो के वर्ग के हाथो से निकल कर बुद्धिमान, दूरदर्शी, व्यावहारिक तथा दृढ निश्चयी वर्ग के हाथ मे ही चला जाना चाहिए यह दूरदर्शिता का नियम है इस सबध मे सरकार अधिकतम जो प्रयास कर सकती है, वह यह है कि अपरिहार्य हस्तातरण को सरकार नियमित रूप दे दे ताकि तात्कालिक कठिनाई दूर हो जाए (वही, पृ० 325-6) यह भी उल्लेखनीय है कि रानाडे को यह भलीभाति ज्ञात था कि साहूकार भूमि का कब्जा ब्याज की ऊची दर वसूलने के लिए लेता था न कि कृषि व्यवसाय मे उत्साहपूर्वक प्रवृत्त होने के लिए स्वामित्व सभालता था ('लैंड ला रिफार्म ऐंड एग्रीकल्चरल बैंक्स', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 38).

178 एसेज, पृ० 264, 268-9, 276 रानाडे ने बगाल के जमीदारो को अपनी योजना के सपन्न जमीदार मानने मे कोई गलती नही की परवर्ती भारतीय लेखको ने आमतौर पर यह गलती की है दूसरी ओर उन्होने देखा कि 19वी शताब्दी मे बगाल की और 19वी शताब्दी के पूर्वार्ध मे सुधार से पूर्व प्रशा की स्थिति वास्तव मे ही एक समान थी क्योकि बगाल के जमीदारो और प्रशा के जागीरदार शिष्टजनो दोनो मे निकटतम सादृश्य था इसी सादृश्य के कारण ही उन्होने प्रशा भूमि प्रश्न का सावधानी के साथ अध्ययन किया था तथा उसकी वकालत की थी (वही, पृ० 259).

179 वही, पृ० 272-4

180 वही, पृ० 287 तथा देखिए, पृ० 290.

181. 'दि ऐग्रेरियन प्राब्लम ऐंड इट्स सोल्यूशन', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 17.

182 वही, और एसेज, पृ० 325-7.

183. एसेज, पृ० 274-5

184. वही, पृ० 276 तथा देखिए, पृ० 283, 287, 288

185 उन्होंने आरोप लगाया कि वर्तमान प्रस्ताव केवल एक वर्ग के लाभ के लिए दूसरे वर्ग के अधिकारों को छीनता है इसे केवल समाजवादी अथवा साम्यवादी सिद्धांतों पर ही न्यायसंगत माना जा सकता है (वही, पृ० 287) तथा देखिए, पृ० 279 80 283, 289, 291

186 वही, पृ० 280

187 वही, पृ० 284

188 वही पृ० 285-6

189 वही, पृ० 286-7

190 नसीम आगरा, 23 अगस्त (आर० एन० पी० पी० एन०, 25 अगस्त 1884), जे० एन० बोस, रिपो० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 52, आई० एन० सी०—1891 और 1892 के प्रस्ताव III और IX हिंदुस्तानी, 8 नवंबर (आर० एन० पी० एन०, 15 नवंबर 1893), विभुदरजनी, 25 नवंबर (आर० एन० पी० एम०, 15 अप्रैल 1896) इन स्पीचेज I पृ० 161 सी० शंकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 385, स्वदेशमित्रन, 17 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 31 मार्च 1900)

191 रिपो० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 53 उन्होंने यह सवाल उठाया 'क्या यह अच्छा नहीं होगा कि भूमि के सुधार में कुछ भी योग देने में असमर्थ निठल्ले किसानों को जोतों का स्वामी बनाने या अपना खुद किसान बना दिया जाए? क्या यह स्वयं उनके अपने लिए, धरती के लिए तथा देश के लिए बेहतर नहीं होगा?'

191ए ज्ञान, अप्रैल 1900 पृ० 268

192 लैंड ला रिफार्म एंड एग्रीकल्चरल बैंक्स पूर्वोक्त स्थल, पृ० 42 अपनी सामान्य गहरी पकड़ के अनुरूप, रानाडे ने सवाल के दूसरे पक्ष पर भी विचार किया 'इसमें संदेह नहीं कि कृषि अनुसंधानों ... से प्राप्त प्रेरणाएं ग्रामों में अपने आप अन्य उद्योगों को संप्रेरित करेंगी और परिणाम में देश के साधनों का इस रूप में पूंजीपक्षीय विकास होगा जिसका कि इस समय पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता।' (वही पृ० 53)

193. रानाडे, एसेज, पृ० 256 तथा देखिए पृ० 207

194 तथा देखिए, मराठा, 23 जनवरी, 13 फरवरी, 17 जुलाई, 1881, 1 जनवरी 1882, 25 मई 1884

195 राय, पावर्टी, पृ० 97-8

196 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 350, 353, 870 2

197 वही, पृ० 849, 851 2

198 वही, पृ० 368 तथा देखिए, पृ० 852-3

199 वही, पृ० 642

200 आर० एन० पी० बब, क्रमश 22 जून 1901 और 15 नवंबर 1902 तथा देखिए, केसरी, 10, 17 नव० (आर० एन० पी० बब, 14, 21 नव० 1903); बारहवें बंबई प्रांतीय सम्मेलन का प्रस्ताव, मराठा, 16 नवंबर 1902

201. जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 64-6.

अध्याय 11

लोकवित्त : एक

सभ्य प्रशासनवाला कोई ऐसा देश नही, जहा पर इतना हलका कराधान हो।

— जान स्ट्रेचो

हा, कुछ वस्तुए अभी ऐसी बची है जिन पर कर लगाया जा सकता है ताकि अगरेजो का विजय अभियान पूरा हो सके। ऐसी अवशिष्ट वस्तुओ मे उल्लेखनीय है भारतीय लोगो की चमडी और उनका वायुमडल। —'केसरी', 31 जनवरी 1888

न्यायप्रिय सरकार द्वारा प्रशासित प्रत्येक देश मे निर्धनो की अपेक्षा धनिको पर ही अधिक मात्रा मे कर लगाना उचित समझा जाता है क्योकि यह धनी वर्ग ही पुलिस सगठन से, न्यायिक अदालतो की स्थापना से रेलो, तार आदि से लाभान्वित होता है परतु जिस देश का प्रशासन उच्च वर्गो के लोगो के ही हाथ मे हो वहा क्या वे अपने आप पर कर थोपने की मूर्खता करेगे? —'स्वदेशमित्रन', 18 फरवरी 1888

समीक्षाधीन अवधि मे भारत सरकार की औद्योगिक और शुल्क पद्धति सबधी नीतियो तथा निकासी समस्या के उपरात भारतीय राष्ट्रीय नेताओ की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करने वाला तत्व था उसकी वित्त नीति। इस अवधि म भारतीय वित्तो के निर्धारक तत्व थे एशिया मे अगरेजी-रूसी शत्रुता के बढने के फलस्वरूप भारत पर रूस के आक्रमण की आशका मे सैनिक व्ययो मे भारी बढोतरी, चादी के स्वर्ण मूल्य मे अवपात, रेलवे के द्रुत विकास पर होने वाला व्यय तथा इन सभी तत्वो के फलस्वरूप व्ययो मे विकास द्वारा करो की बढोतरी को एक आवश्यकता का रूप दिया जाना। यद्यपि कुछ एक वर्षों मे भारतीय वित्त सदस्य बचत का बजट प्रस्तुत करने मे सफल हो गए तथापि कुल मिलाकर ये वर्ष आर्थिक असतुलन, कष्ट तथा करो द्वारा व्यय की राशि प्राप्त करने के प्रयत्नो की असफलता के ही वर्ष थे।[1] यह कम हैरानी की बात नही कि वर्ष प्रति वर्ष सभी वित्त सदस्य पृथक पृथक रूप से भारत के वित्तो की दुर्दशा का रोना रोते रहे तथापि जब कभी

ब्रिटिश और ब्रिटिश भारतीय राजनीतिज्ञों ने भारतीय वित्तों की सामान्य चर्चा की उन्होंने सदैव अत्यंत आशावादी दृष्टिकोण प्रकट किया। इस प्रकार 1893 मे अपनी पुस्तक 'इंडियन पालिटी' मे जनरल चिसनी ने भारतीय वित्तों की उल्लेखनीय स्थिरता पर हर्ष प्रकट किया।[2] 1878-98 के बीच की अवधि के भारतीय वित्तो की समीक्षा के उपरांत जैम्स वैस्टलेंड ने 1898-99 के वित्त विवरण में बड़े साहस के साथ दृढ स्वर में कहा कि मेरे द्वारा ऊपर के अंको मे प्रदर्शित-विवेचित 20 वर्षो के वित्तो के अभिलेख से यह सिद्ध है कि इग्लैंड को छोडकर विश्व के लगभग किसी भी देश के वित्तो मे इस देश के वित्त बेहतर है।[3] 1901 मे भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन ने भारतीय वित्तीय पद्धति की स्थिरता तथा पुनः बल प्राप्त करने की शक्ति पर आश्चर्य तथा हर्ष के भाव प्रकट किये।[4]

दूसरी ओर राष्ट्रवादी नेताओं ने ठीक इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। उदाहरणार्थ, 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 30 मार्च 1882 के अक मे भारतीय वित्त पद्धति के सिर से पाव तक अशक्त होने की घोषणा की। राष्ट्रीय काग्रेस के 1894 के अधिवेशन मे डी० ई० वाचा ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि हमारी शिकायत के मूल कारण हमारे वित्त ही है और ब्रिटेन को भारत मे हाथ धाना पडा तो उसका कारण शोचनीय वित्त ही होगे।' काग्रेस के 1895 के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण मे सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने जान ब्राइट की इस मान्यता को उद्धृत करते हुए कि किसी देश के लोगो की स्थिति का निर्णय उनके वित्तो की स्थिति की समीक्षा के सदर्भ में ही किया जा सकता है, घोषणा की कि इस आधार पर भारत की स्थिति की जाच करने पर वह सचमुच ही दु:खद एव चिंतनीय है क्योंकि भारत के वित्तो की स्थिति नित्य आवर्तक घाटे ("रेकरिंग डेफिसिट") तथा नित्य बढते ऋण की है।[6] 1896 मे जनवरी मे प्रकाशित अपने निबंध 'दि प्रेजेंट फाइनांशियल पोजीशन' मे जी० वी० जोशी ने इस सरकारी धारणा का खडन करते हुए कि भारतीय वित्त वित्तीय कौशल के उज्ज्वल रूप को प्रदर्शित करते है, निश्चित स्वर मे कहा कि परिमाण और तीव्रता की दृष्टि से देश अभूतपूर्व वित्तीय सकट के कारण गभीर अवस्था मे पड़ा हुआ है।[7] स्थिति की विषमता ने इस तथ्य मे और भी गंभीर रूप ले लिया था कि वर्तमान शोचनीय स्थिति किसी व्यक्ति अथवा प्रशासक विशेष की गलतियो और कार्रवाहियो का परिणाम नही थी अपितु वित्त पद्धति, देश की सारी की सारी वित्तीय प्रबध व्यवस्था ही इसके लिए उत्तरदायी थी।[8] इसी प्रकार इपीरियल लैजिस्लेटिव कौसिल में 1902 मे अपने सर्वप्रथम भाषण मे जी० के० गोखले ने 1885-6 के वर्षों के भारतीय वित्तों का बडा ही भयावह चित्र खीचा और आरोप लगाया कि उस वर्ष से हमारे वित्तों को प्रबंध-व्यवस्था इस रूप मे की गई है कि इस धारणा को बल मिलने लगा है कि भारतीय राजस्वो के प्रबंध मे भारतीय हितो की अपेक्षा अन्यान्य हितो को ही प्राथमिकता दी जा रही है।[9]

भारतीय नेताओं ने भारत के वित्तों की प्रकृति और प्रबंध-व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए सरकारी राजकोषीय नीति की विस्तृत परीक्षा की तथा वैकल्पिक नीतियां अपनाने का सुझाव दिया। उन्होंने विशेष रूप से सरकार के

प्रत्येक ऐसे महत्वपूर्ण अधिनियम की, जिसे उन्होंने जनता पर नए कर थोपने का, अनावश्यक, निरर्थक तथा अकल्याणकारी व्यय का तथा भारत और ब्रिटेन के संबंधों में अन्याय का उदाहरण समझा, परीक्षा की, निंदा की तथा उसके विरुद्ध लोकप्रिय आंदोलन चलाया। प्रत्येक इस प्रकार के उदाहरण से उन्होंने भारत में ब्रिटिश राज्य की प्रकृति और उद्देश्यों के संबंध में समुचित निष्कर्ष निकालने की चेष्टा की।

कराधान

भारत सरकार के कुल राजस्व 1880 में 74.3 करोड़ के मुकाबले 1993 में 90.6 करोड़ और 1904 में 172.2 करोड़ तक पहुंच गए।[10] परंतु जहां तक अन्य बातों के साथ राज्य रेलवे की कुल रेलवे वसूली, सिंचाई योजनाओं की वसूली तथा अन्य रेलों के खातों की विशुद्ध वसूली को सम्मिलित करने का संबंध था, ये अंक विकृत रूप लिए हुए थे। इसके अतिरिक्त खाते के एकक में परिवर्तन जैसे कुछ और तत्वों ने भी वर्षों तक वित्तीय आंकड़ों की तुलनात्मकता को विकृत किया था।[11]

लोगों पर राजस्व भार के संबंध में ब्रिटिश अधिकारियों और भारतीय नेताओं द्वारा परस्पर विरोधी मत प्रकट किए गए। बहुत सारे ब्रिटिश लेखकों और अधिकारियों ने सारे सरकारी राजस्व को कराधान के परिमाणारूप देखने पर प्रारंभिक आपत्ति की।[12] उदाहरणार्थ उनमें से बहुतों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि भूमि पर लगान सरकारी किराया था, कर नहीं।[13] इसी प्रकार उन्होंने अफीम से मिलने वाले राजस्व को भी लोगों पर लगने वाला कर मानने से इनकार कर दिया।[14] दूसरी ओर भारतीय लेखकों ने सरकारी राजस्व के स्रोतरूप लगभग सभी महत्वपूर्ण वस्तुओं का कर स्रोतों के रूप में वर्गीकरण किया। उदाहरणार्थ दादाभाई नौरोजी ने 'कर' की परिभाषा इस प्रकार से की : देश की कुल वार्षिक आय में से देश की सरकार अपने प्रशासन और सार्वजनिक ऋण आदि के लिए जो रकम लेती है, वह कर है।[15] शब्द के वर्तमान स्वीकृत अर्थ को ध्यान में रखते हुए भारतीय नेताओं द्वारा विश्लेषित परिभाषा को अपेक्षाकृत अधिक सही मानना उचित है।

ब्रिटिश प्रशासक प्राय: इस बात को दृढ़तापूर्वक कहते रहे कि भारत पर बहुत हल्के कर लगाए गए हैं और सर्वाधिक संभावना यही है कि यह विश्व भर में सर्वाधिक हलके कर चुकाने वाला देश है। प्रमाण के रूप में भूतपूर्व वित्त सदस्य जान स्ट्रैची ने बड़े विश्वास के साथ यह दावा किया : 'विश्व में सभ्य प्रशासन वाला कोई भी देश भारत के समान हलके कर चुकाने वाला देश नहीं है।'[16] कर्जन भी इसी प्रकार की स्थिति के प्रति पूर्ण विश्वस्त था। जी० के० गोखले की इस धारणा को कि करारोपण भारतीय जनता को बहुत बुरी तरह से व्यथित कर रहे हैं, नकारते हुए कर्जन ने 1902 में तिरस्कारपूर्ण स्वर में टिप्पणी की : यदि सम्माननीय सदस्यों को किसी यूरोपीय देश में रहने के लिए भेज दिया जाए तो मुझे आशा है कि वे राजस्व पद्धति के मामलों में परिवर्तित विचारों के साथ ही शीघ्र इस देश में रहने के लिए वापस लौट आएंगे।'[17]

ब्रिटिश अधिकारियों का इस संबंध में दृढ़ मत यह था कि कराधान की व्यावहारिक

शब्दावली में भारत में प्रतिव्यक्ति कर भार विश्व के दूसरे देशों, विशेषतया ब्रिटेन में प्रति व्यक्ति कर भार के मुकाबले बहुत ही कम था। 1860 में, तत्कालीन वित्त सदस्य जेम्स विल्सन ने इस अंतर को इस प्रकार से स्पष्ट किया। उनके अनुसार भारत मे प्रति व्यक्ति 5 शिलिंग कर भार था जबकि इंग्लैंड में प्रति व्यक्ति कर भार की राशि 2 पौंड 3 शिलिंग थी।[18] ग्यारह वर्षों के उपरात वायसराय लार्ड मेयो ने भी यह कहते हुए कि भारत में प्रतिव्यक्ति कर भार की रकम केवल 1 शिलिंग और दस पेंस है, कराधान का हलकापन स्पष्ट करने की चेष्टा की।[19] करभार का यह अंक निकालने के लिए उन्होंने सरकार के कुल सभी प्राप्य राजस्वो मे से भूमि लगान, अफीम शुल्क, उपहार कर तथा इस प्रकार के अन्य करों से होने वाली प्राप्तियों को अलग कर दिया था। इसी अनुमान पर विश्वास करते हुए भारत राज्यसचिव हेनरी फाउलर ने 1894 मे दृढ स्वर में कहा: 'भारत में प्रतिव्यक्ति करभार लगभग 2 शिलिंग 6 पेंस अथवा इंग्लैंड मे प्रति व्यक्ति करभार के मुकाबले 1/20वा भाग तथा आयरलैंड मे प्रतिव्यक्ति करभार का 1/13वा भाग है।'[20]

यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि 1880-1904 की अवधि मे भारत के राजस्वों मे वृद्धि को, जिसके संबंध मे यह दावा किया गया था कि किसी प्रकार के वृद्धि के साधन रूप नए करभार को लगाए बिना ही हुई थी, ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों ने देश की विकासशील संपन्नता के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया।[21] जनरल चिमनी ने दृढ़तापूर्वक कहा 'राजस्व की विभिन्न शाखाओं में वृद्धि देश की संपन्नता की वर्ष प्रतिवर्ष क्रमिक, निरतर तथा संतुलित प्रगति की सूचक है।'[22] 1903 मे कर्जन ने गर्वोक्ति करते हुए टिप्पणी की कि हमने भौतिक संपन्नता के सूचक राजस्वो मे निरंतर सुधार, व्यापक तथा बढ़ती हुई वचतें और सभी परीक्षाओं मे अग्रगति दिखाई है।[23] कुछ एक ब्रिटिश अधिकारियों ने तो यहां तक कहा कि 1860 के उपरात कराधान वस्तुतः कम हुए है।[24]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने इन सरकारी धारणाओ को पूर्णत. अस्वीकार कर दिया।[25] उन्होंने जोर देकर कहा कि भारत मे कराधान कमरतोड़ और असह्य है और देश के सामर्थ्य और साधनों का अतिक्रमण करते हैं। ये अपनी ऊंचाई के चरम शिखर पर पहुंच चुके है। वास्तव में कराधान का दमतोड दबाव ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राष्ट्रवादियो द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले अभियोगपत्र का एक नियमित अग बन गया था और इसने बहुत सारे भारतीय नेताओं को इस विषय पर कठोर, तीखी और रोषपूर्ण भाषा मे अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने के लिए आदोलित किया था।

1838 मे हम 'यंग बंगाल' को अन्यान्य वस्तुओं के साथ साथ देश पर लगे विशाल कराधान के विरुद्ध शिकायत करता हुआ पाते है।[26] 1871 में बाबे एसोसिएशन ने हाउस आफ कामंस को एक ज्ञापन प्रस्तुत किया जिसमे यह आरोप लगाया गया था कि ब्रिटिश शासन के अनेक वर्षों में भारी कर भारत के दुख का कारण रहे हैं।[27] 1879 मे सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने यह मत प्रकट किया कि 'कोई अत्यंत लापरवाह प्रेक्षक भी यह देख सकता है कि इस देश मे कराधान अपनी अतिम सीमा तक पहुंच गया है। नए कराधान के रूप में और भार डालने का कोई भी प्रयास जनता के लिए असहनीय सिद्ध हो सकता है।'[28] इसी

प्रकार 1880 में रानाडे ने टिप्पणी की कि 'कराधान में और अधिक वृद्धि करना राजनीतिक पागलपन का परिचय देना होगा।'[29] 'अमृत बाजार पत्रिका' ने मत प्रकट किया कि एक सीमा होती है जिसके आगे कराधान असंभव सा हो जाता है और यह सिद्ध करने के कई प्रमाण उपलब्ध हैं कि भारत उस सीमा तक पहुंच चुका है। उसने 27 अगस्त 1885 के अंक में चेतावनी देते हुए लिखा : 'जब विवेकशून्य शासक सीमा का अतिक्रमण करते हैं तो वे विद्रोह को निमंत्रण देते हैं। यदि लोग विद्रोह करने मे अत्यंत अशक्त हैं तो प्रकृति स्वयं ही हस्तक्षेप करती है तथा अपने रोष का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। भारत मे इस सीमा का अतिक्रमण हुआ है, इसका प्रमाण लगातार अकालो के रूप में देखा जा सकता है।' यहा तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में भी कराधान पर बहुत तीखी आलोचनाए हुई। दादाभाई नौरोजी ने शासकों पर आरोप लगाया कि वह इस प्रकार ऊचे और ऊचे कर लगाए जा रहे है, जैसे निचुडे हुए सतरे को और निचोडने की चेष्टा की जा रही हो। इस प्रकार ये शासक जनता के कष्टो और दुखों में वृद्धि कर रहे हैं।[30] इसके साथ ही तिलक के 'केसरी' ने अपने 31 जनवरी 1888 के अंक मे टिप्पणी की : 'भारत में कोई भी वस्तु कराधान से मुक्त नही, यहा तक कि वृक्षों के पत्तों तक को कराधान का विषय बनाया गया है।' व्यंग्यपूर्ण प्रहार करते हुए केसरी ने सुझाव दिया : हा अभी भी कुछ एक वस्तुए बची है, जिन पर कर लगाया जा सकता है ताकि अंग्रेजों का विजय अभियान पूरा हो जाए। इन अवशिष्ट वस्तुओ मे उल्लेखनीय हैं, भारतीय लोगो की चमडी और उनका वायुमण्डल।'[31] 9 फरवरी 1888 के 'सत्यमित्र' ने चेतावनी दी कि सरकार को यह बात अपने ध्यान म 'भली प्रकार धारण कर लेनी चाहिए कि गुस्सा दिलाए जाने पर एक निरीह गाय भी हाथी को फाडकर टुकडे टुकडे कर सकती है अथवा स्वत. दुहे जा सकने वाले दूध को दोहने के उपरात ग्वाला यदि गाय के स्तनों से फिर दूध को दोहने की चेष्टा करता है तो उस ग्वाले को वह गाय दुलत्ती मार सकती है।" लगभग विद्रोहात्मक स्वर में उसने धमकी देते हुए लिखा : 'झासी की रानी, निजाम-उल-मुल्क, चिमनाजी अप्पा, बाजीराव तात्या टोपे और अन्यान्य श्रेष्ठ वीर योद्धा यद्यपि इतिहास के पात्र बन गए हैं तथापि उनकी तलवार आज भी विश्व के सामने घूम रही है तथा हमारी वीरता का प्रमाण जुटा रही है।'[32] 1896 मे कांग्रेस के अध्यक्ष भी बराबर इस तथ्य से सहमत और प्रभावित थे कि किसी भी नए कराधान को सहन करने की देश की शक्ति नष्टप्राय हो चुकी है।[33] वर्षों तक इसी प्रकार की विरोधी भावनाए और इसी प्रकार के मत बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा प्रकट किए जाते रहे।[34]

भारतीय नेताओं की एक अन्य शिकायत यह थी कि देश मे कराधान अत्यन्त ऊचा और भारी ही नहीं है प्रत्युत निरंतर बढता भी जा रहा है।[35] उदाहरणार्थ, जी० वी० जोशी ने 1896 मे हिसाब लगाया कि रेलवे तथा अन्य व्यापारिक वसूलियो को निकाल देने पर भी कोरे कराधान का भार 1883-4 और 1895-6 की अवधि में 35 प्रतिशत बढ़ा है।[36]

भारत में कराधान की भारी ऊंचाई प्रमाणित करने के लिए भी भारतीय नेताओं ने

अन्यान्य सरकारी कर्मचारियो द्वारा अपनाई गई विधि के समान आकडो को ही कसौटी बनाया परंतु इस कसौटी का निर्धारण उन्होने अपने ढग से ही किया। उन्होने यह स्वीकार किया कि स्वतत्र रूप से प्रति व्यक्ति कराधान की राशि कम थी परतु उनका तर्क यह था कि प्रति व्यक्ति आय को देखे बिना ही प्रति व्यक्ति से लिए जाने के स्वतत्र आकडो मे कराधान के परिमाण का निर्णय नही किया जा सकता। इस सबध मे यहा प्रति व्यक्ति कराधान की राशि नही प्रत्युत इससे सबद्ध प्रतिव्यक्ति आय के अनुपात को देखना अधिक महत्वपूर्ण था। यदि भारत मे कराधान नीचा था तो राष्ट्रीय आय उससे भी अधिक नीची थी। भारतीय नेताओ का कथन था कि इस सदर्भ मे देखे जाने वाले पर भारत मे कराधान सचमुच ही अत्यत भारी और दबाने वाला सिद्ध होता है। दादाभाई नौरोजी इस तर्कपद्धति के मुख्य निर्माता थे। उन्होने 1871 मे पूर्वी भारत के वित्तो के लिए नियुक्त प्रवरसमिति को प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन मे इस तर्क पद्धति का प्रयोग किया था। उन्होने इस तथ्य को वाणी दी कि इग्लैड मे प्रतिव्यक्ति कराधान का परिमाण लगभग 8 प्रतिशत है जबकि भारत मे यह 16 प्रतिशत के लगभग है।[17] उन्होने तथा अन्य भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए सांख्यिकी प्रमाणो का वर्षो तक उपयोग किया। इस सबध मे यह उल्लेखनीय है कि उनके अको की सगणना म प्रतिशत मे भिन्नता आ जाती थी।[18]

कुछ भारतीय नेताओ न अनुभव किया कि आय के साथ कराधान का यह औसत भी बोझ के भारीपन को सही रूप मे और यथोचित ढग मे प्रस्तुत नही कर पाता। उनका कथन था कि कुल मिलाकर कराधान को जनता की भुगतान की क्षमता के साथ सबधित करना चाहिए। एक निर्धन व्यक्ति स उसकी आय के एक निश्चित अनुपात को कर के रूप म लेना एक बात थी और एक धनी व्यक्ति स उसकी आय के उसी अनुपात को कर के रूप मे लेना सर्वथा भिन्न बात थी क्योकि इसस निर्धन व्यक्ति के लिए तो जीवनस्तर बनाए रखने मे कम और अधिक कठिनता का सामना करना पडेगा। चिंतन की इस रूपरेखा की स्पष्ट और निश्चित अभिव्यक्ति दादाभाई नौरोजी के लेखो मे देखने को मिली। उन्होने राष्ट्रवादियो की स्थिति मे प्रतीत होने वाले विरोधाभास के समाधान के लिए इस चिंतन पद्धति का प्रयोग इस प्रकार मे किया कि भले ही यह मान लिया जाए कि प्रति व्यक्ति कराधान नीचा है फिर भी वह भारतीय लोगो के लिए कमरतोड है। उन्होने पूर्वी भारत के वित्तो से सबधित प्रवरसमिति को भेजे गए अपने प्रतिवेदन मे इस तथ्य का सम्यक विश्लेषण इस प्रकार से किया

> इस तथ्य को भली प्रकार ध्यान मे रखना चाहिए कि एक हाथी के लिए एक टन वजन भी भारी नही परतु बच्चे को कुछ एक किलो भार ही कुचलने के लिए काफी है। कराधान के प्रतिशत से आसानी के साथ भार उठा सकने अथवा उस भार से कुचले जाने को नही मापा जा सकता, प्रत्युत इसे मापने के लिए उपयुक्त आधार है भुगतान के लिए आय के साधनो की प्रचुरता अथवा कृच्छता। आय के साधनो की प्रचुरता की स्थिति मे भारी प्रतिशत के करो का सुविधा से भुगतान किया जा सकता है और आय के साधनो की सीमितता की स्थिति मे यह भार कठिनता से ही सहन-

हो पाता है अथवा थोड़ा-बहुत क्लेश उत्पन्न करता है परंतु आय के साधनों की अपर्याप्तता की स्थिति मे तो यह भार अत्यधिक कष्टदायक हो जाता है।[39]

उन्होंने अपने इस सूत्रबद्ध सिद्धांत को 'पावर्टी आफ इंडिया' लेख मे दोहराया और बाद में अपने असंख्य भाषणो आदि मे इसका विस्तृत विवेचन किया।[40] 1896 मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष आर० एम० सम्यानी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अत्यंत स्पष्ट शब्दों में दादाभाई के तर्क को दोहराया।[41]

दादाभाई ने जब इस चिंतनपद्धति का भारत पर प्रयोग किया तो उन्हे यह घोषणा करनी पड़ी कि भारत मे कराधान का भार इंग्लैंड के कराधान के भार से दुगना ही नही अपितु दुखदायक भी है क्योकि यह गरीबो से लिया जा रहा था।[42] इसी प्रकार आर० एम० सम्यानी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत के संबंध मे आय पर करों की औसत 16 प्रतिशत है और यद्यपि इंग्लैंड के संबंध मे प्रचलित अनुपात के मुकाबले कहने को केवल 2½ गुना ऊंचा है तथापि वास्तव मे यह परिमाण मे उल्लेखनीय रूप से अत्यधिक भारी है और इस प्रकार सूचक अनुपात की अपेक्षा भारत इंग्लैंड से वास्तव में ही कही अधिक बुरी स्थिति मे है।[43] के० टी० तैलंग, मदनमोहन मालवीय, गोपालकृष्ण गोखले, आर० सी० दत्त तथा कितने ही अन्य नेताओं ने भी इसी ढंग से देश की निर्धनता और कराधान भार में सहसंबंध जोडा।[44] 1896 में जी० वी० जोशी ने सर्वथा ठोस सिद्धान प्रस्तुत किया कि जब तक कुल राष्ट्रीय उत्पादन मे विकास नही होता, वर्तमान कराधान मे किसी प्रकार की वृद्धि नही होनी चाहिए। इस संबंध मे उन्होंने दावा किया कि कराधान बढ रहा है जबकि राष्ट्रीय उत्पादन का ह्रास हो रहा है।[45] दादाभाई नौरोजी और मदनमोहन मालवीय ने भी थोडे भिन्न शब्दो मे इसी तर्क वाक्य को दोहराया। उन्होंने जोर देकर इस तथ्य को दोहराया कि भारतीय अपेक्षाकृत ऊंचे कर देने को भी प्रसन्नतापूर्वक उद्यत होंगे, परंतु शर्त यह है कि इनका संबंध बढती राष्ट्रीय आय के साथ होना चाहिए।[46]

अपने मन्तव्य के समर्थन के लिए भारतीय नेताओं ने इस संबंध में अंगरेज अधिकारियों के वक्तव्य प्रस्तुत किए जिनमे कहा गया था कि भारत सरकार ने संकटकाल मे भारत पर किसी प्रकार के कराधान का अवकाश ही नही छोडा है। अब स्थिति यह हो गई कि भारत मे आर्थिक और राजनीतिक संकट लाए बिना किसी प्रकार का नया कराधान किया ही नही जा सकता।[47]

बाद मे जब लाभ के बजट पेश किए जाने लगे तो राष्ट्रवादियों ने उन्हें इस तथ्य के प्रमाण के रूप मे प्रयुक्त किया कि भारतीय जनता से आवश्यकता अथवा वांछनीयता से अधिक कर ऐंठे गए है।[48] 1902 मे आवर्तक बजट बचतों को अपने बजट भाषण का केंद्रीय विषय बनानेवाले गोपाल कृष्ण गोखले ने यह घोषित करते हुए भारत सरकार की वित्त नीति पर घातक प्रहार करना आरंभ किया कि ये बचतें अत्यंत दु:खद रूप मे और स्पष्ट ढंग से यह सिद्ध करती हैं कि देश के लोगों की स्थिति और देश के वित्तों के बीच किसी प्रकार का भी व्यावहारिक संबंध नही है। कहने की आवश्यता नही कि अन्यायपूर्ण ढंग से बडे ऊचे परिमाण मे जनता पर भारी करों का दबाव निर्धारित किया

गया है और उसे बनाए रखा जा रहा है। इस प्रकार एक ओर विपन्न राष्ट्र और दूसरी ओर भरपूर कोश के प्रत्यक्ष विरोध का सुविधापूर्वक विश्लेषण किया जा सकता है।[49]

राष्ट्रवादी नेताओं में से कुछ अर्थशास्त्रियों ने भी लोगों के विभिन्न वर्गों में कराधान के वितरण के प्रश्न पर विचार किया। 1880 के प्रारंभ में भारत सरकार के वित्त विभाग द्वारा कराधान के परिमाण के संबंध में विहित विस्तृत जाच-पडताल के निष्कर्ष के रूप में यह परिणाम सामने आया था कि भारत में कराधान का प्रमुख भार प्रधान रूप से अपेक्षाकृत अधिक निर्धन वर्गों पर ही पडता है।[50] राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने इस परिणाम के साथ पूर्ण सहमति प्रकट की और कराधान पद्धति की उसके प्रतिगामी चरित्र के लिए आलोचना की। उनके अनुसार कराधान पद्धति का प्रतिगामी चरित्र यह था कि इसकी प्रवृत्ति धनिकों की अपेक्षा निर्धनों पर अधिक भार डालने की थी। 1871 में दादाभाई नौरोजी ने जनता के अन्यान्य वर्गों की अपेक्षा किसानों में अधिक कर ऐंठने के लिए सरकार को आडे हाथों लेते हुए व्यंग्यपूर्वक पूछा: 'या इसका कारण यह है कि समृद्ध वर्ग आंदोलन का आश्रय ले सकता है और सरकार को अपनी बात मानने के लिए विवश कर सकता है, जबकि गरीब मजदूर और खेतिहर यह सब कुछ नहीं कर सकते। क्या इसी कारण से यह उचित समझा गया है कि अन्यान्य वर्गों की अपेक्षा इस वर्ग को निचोडना आसान है?' जी० वी० जोशी ने अप्रैल 1888 में अपने निबंध 'दि बर्मा डेफिसिट ऐंड दि एनहेंसमेंट आफ साल्ट ड्यूटीज' में इस प्रश्न की विस्तृत समीक्षा की। उन्होंने 'सपन्न जमींदारों और उसके धनिक मित्रों तथा चायबागान के स्वामियों को छूट देने वाली और निर्धनों पर भार डालने वाली' कर नीति अपनाने के लिए वित्त सदस्य की भर्त्सना की।[51] उन्होंने कराधान पद्धति की विषमता पर दुःख प्रकट करते हुए कहा कि यह बडे आश्चर्य की बात है कि इस पद्धति के अंतर्गत ब्रिटिश प्रशासन ब्रिटिश न्याय और ब्रिटिश शांति में अधिकाधिक लाभान्वित होने वाले सपन्न व्यक्ति तो कम टैक्स देते हैं जबकि लाखों, कम उपार्जन करने वाले निर्धन लोग अधिकतम कर चुकाते हैं। उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कराधान के भार की विषमता एक वर्ग और दूसरे वर्ग के मध्य ही नहीं प्रत्युत नगरों में विभिन्न वर्गों के बीच और देहातों की साधारण जनता के बीच विद्यमान है।[51] इस संबंध में भावी कार्यवाही के लिए उन्होंने पथप्रदर्शक के रूप में सरकार को सलाह दी कि सर्वप्रथम वह सार्वजनिक कराधान के वितरण की विषमताओं के संशोधन और निवारण को अपने प्राथमिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार करे।[51] इससे पूर्व 1886 में उन्होंने कराधान के निम्न सिद्धात का उल्लेख किया था :

> सभी वित्तीय विचार विमर्शों में व्यावहारिक वित्त विशेषज्ञ के लिए विचारणीय प्रश्न यह नहीं है कि सामान्य जनसंख्या पर कराधान का कुल बोझ भारी है अथवा हलका, यह तो व्यावहारिक राजनीति का एक तत्व है। अर्थशास्त्री के लिए तो विचारणीय यह है कि सार्वजनिक भार को एक साथ लेते हुए यह देखना है कि उसका विभाजन समान रूप से और निष्पक्ष रूप से हुआ है अथवा नहीं··· (और) यह देखना है कि उसका भार सभी वर्गों पर न्यायसंगत और निष्पक्ष रूप से उनकी भुगतान क्षमता के अनुरूप पडता है अथवा नहीं ?[55]

नमक कर में वृद्धि के बदले आय कर में बढ़ोतरी की वकालत करते हुए सुब्रह्मण्य अय्यर के स्वामित्ववाले तथा उनके द्वारा संपादित 'स्वदेश मित्रन' ने अपने 18 फरवरी 1888 के अंक में जोशी जी के विचारो को इस प्रकार दोहराया :

> एक न्यायसंगत सरकार द्वारा प्रशासित प्रत्येक देश मे निर्धनो की अपेक्षा धनिकों पर ही अधिक परिमाण में कराधान करना उचित समझा जाएगा क्योंकि धनी लोग ही लाभान्वित होते है परंतु यदि किसी देश की सरकार ही उच्च वर्ग के लोगो के हाथ मे है तो क्या वे अपने आप पर कराधान की मूर्खता करेंगे।[56]

'स्वदेशमित्रन' ने अपने 25 फरवरी 1888 वाले अगले अक मे यह सिद्धात प्रस्तुत किया कि केवल वही सरकार न्यायप्रिय सरकार कही जा सकती है जो निर्धन वर्गो को कष्टो से मुक्ति दिलाती है तथा उच्च और मध्यवर्ग पर कराधान द्वारा अपने राजस्व की वसूली करती हैं।[57] इसी प्रकार 18 मार्च 1888 को पूना सार्वजनिक सभा के तत्वावधान मे नमक कर के प्रति विरोध प्रकट करने के लिए हुए पूना के निवासियो के एक सम्मेलन ने अपने ज्ञापन मे शिकायत की कि इस देश का निर्धन वर्ग पहले से ही भारी करों के बोझ से दबा हुआ है जबकि उच्च वर्ग के तथा अधिक समृद्ध लोग तुलनात्मक रूप में छूट और राहत का आनद भोग रहे है।[58] पृथ्वीश चंद्र राय भी कराधान क असमान परिमाण की आलोचना करने मे पर्याप्त उग्र थे और उन्होंने इस अपेक्षाकृत बड़ा कलंक बताया। नमक कर, आय कर तथा भूमि लगान का विस्तृत विश्लेषण करने के उपरान वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अतत. दुर्व्यवस्थित वित्तों का सारा भार बेचारे निर्धनों को ही उठाना पडता है।[59] बाद मे 1903 में अपन बजट भाषण म गोखले ने भी यही मत प्रकट किया कि कराधान में प्रस्तावित किसी प्रकार की राहत अपेक्षाकृत निर्धन वर्गों को ही मिलनी चाहिए क्योंकि अपने साधनों की अपेक्षा वे ही राजकोश म वाछनीय से बहुत अधिक भुगतान का योगदान करते है।[60]

यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि इस काफी कुछ क्रांतिकारी दृष्टिकोण को अपने समय के अग्रणी भारतीय उद्योगपति जे० एन० टाटा का प्रबल समर्थन मिला। उन्होने 1895 मे 'लंदन डेली क्रानिकल' को भेजे अपने पत्र मे लिखा

> मै सदैव इस मत का समर्थक रहा हू कि भारत मे निर्धनो पर कराधान का बोझ बहुत ही भारी है और अच्छे खाते-पीते वर्ग के समृद्ध लोगो पर यह भार अत्यत हलका है। जिन लोगों को अपने जीवन और सपत्ति की सुरक्षा के लिए सरकारी सहायता की अपेक्षा रहती है, इसके लिए कुछ भी चुकाना नही पड़ता, जिन्हे सरकारी सहायता के अभाव में किसी हानि की आशका नही रहती यहा तक कि सरकार के बदल जाने का भी जिन्हे कोई अतर नहीं पडता, उन बेचारो को सरकारी देनदारी के भुगतान के लिए अपने भोजन तक की बलि चढानी पडती है।[61]

इस विचारधारा को राष्ट्रवादी विचारकों के सभी वर्गों द्वारा दिए गए व्यापक समर्थन की चर्चा हम नमक कर और आय कर के प्रति भारतीय राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण की समीक्षा के संदर्भ मे करेंगे जहा यह दिखाया गया है कि बहुत सारे भारतीय नेताओं ने इस मंतव्य की पुष्टि की कि यदि भारतीय लोगों पर कराधान करना ही है तो केवल

धनिकों पर कर लगाने चाहिए, निर्धनों पर नही।[62]

कराधान के कारण अन्याय

भारतीयों के विचार मे अत्यधिक कराधान भारत की घोर निर्धनता के ही नही यहा तक कि प्राय. निरंतर पड़ने वाले अकालो के भी तात्कालिक और प्रमुख कारणों मे से एक था। इस संबंध मे राष्ट्रीय विचारधारा को दादाभाई नौरोजी ने 1880 में भारतीय अकाल आयोग के प्रतिवेदन मे निहित कुछ विवरणों पर ज्ञापन मे स्वर दिया गया। उन्होंने दृढतापूर्वक कहा कि भारी कराधान लाखों की भुखमरी और मौतों के लिए उत्तरदायी थे।[63] भारत के असंख्य राष्ट्रवादी जननेता तथा पत्रकार वर्षो तक इस दृष्टि-कोण को दोहराते रहे।[64] अंतत. 1896 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसे अपने एक मौलिक सिद्धात के रूप मे अपना लिया। उस समय कांग्रेस ने घोषणा की कि हाल के अकालो का कारण भारतीयों की घोर दरिद्रता थी और दरिद्रता लाने के अन्यान्य कारणो मे प्रमुख थे अत्यधिक कराधान तथा ऊचे लगान।[65]

इससे भी अधिक रोचक तथ्य यह है कि कुछ भारतीय नेताओं ने और सर्वो-परि जी० वी० जोशी ने उपर्युक्त तर्क के अतिरिक्त भारतीय उद्योग और भारतीय उद्यम की दृष्टि से भी ऊचे कराधान की निंदा करते हुए अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय दिया। उन्होंने घोषणा की कि ऊचे कराधान पूजी निर्माण की प्रक्रिया को बाधित करते थे और इस रूप में देश के आर्थिक विकास को यदि पूर्णत असभव नही तो कठिन अवश्य बना रहे थे।

1888 में जी० वी० जोशी ने प्रथम इस बात पर जोर दिया कि राज्य द्वारा लगाए गए भारी कर मजदूरी की बढोतरी और मजदूरी कोष के विकास मे बडे पैमाने पर हस्तक्षेप करते थे।[66] बाद मे 1890 में उन्होंने अपने एक विस्तृत लेख 'इकोनामिक सिच्यूएशन इन इंडिया' मे इस तथ्य को उजागर किया कि भारत में औद्योगिक श्रमिक को पीड़ित करने वाला एक क्लेश पूजी की अपर्याप्तता थी जो अन्यान्य विषयों के साथ इस तथ्य का परिणाम थी कि भारतीयों की कुल आय मे प्रथम तो बचतों का अवकाश ही कम रहता है और फिर हमारी कुल अर्जन आयों पर भारी कर लगाकर उन्हे और भी क्षीण कर दिया जाता है। उन्होंने संगणना की कि कुल राष्ट्रीय बचतो (कुल उत्पादन मे से लोगो के जीवन निर्वाह पर होने वाले व्यय को घटा कर) की राशि प्रतिवर्ष 90 करोड रुपये थी, जिसमे से सरकार 50 करोड रुपये करों के रूप मे ले लेती थी। इस प्रकार राष्ट्रीय वार्षिक बचतों का आधे से अधिक भाग न्यूनाधिक रूप मे अधिकाशत. अनुत्पा-दक व्ययो की पूर्ति के लिए सरकारी कोश मे चला जाता था। इससे स्पष्ट है कि हमारी औद्योगिक प्रगति को पीछे की ओर धकेलने वाला इससे अधिक बडा आर्थिक रोग और क्या हो सकता है ?[67] गोपालकृष्ण गोखले ने 1902 मे अपने प्रथम बजट भाषण मे इन भावनाओं को प्रतिध्वनित किया। गोखले ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा : 'भारतीय वित्तो पर कराधान का स्तर इतना अधिक निम्न होना चाहिए कि उससे राष्ट्रीय उद्योग की अबाधित गतिविधि और विकास के लिए यथासंभव अवकाश मिल सके।'[68]

तथ्यात्मक रूप से बहुत सारे भारतीय नेताओं ने भारत की विशिष्ट आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों से संबंधित सैद्धांतिक नियम के स्तर पर निम्न कराधान की मांग उठाई। यह मांग 'अमृत बाजार पत्रिका' के 7 फरवरी 1871 के अंक में बड़ी स्पष्टता से अभिव्यक्त की गई। उसमें इस सरल कथन को निम्नलिखित रूप से अभिव्यक्ति दी गई :

> लोगों पर कराधान स्वयं लोगों द्वारा लगाया ही नही जाता और उनका साम्राज्य के वित्तों पर कोई नियंत्रण भी नही है। उनकी चीखोपुकार कराधान में कटौती के लिए हो सकती है न कि वृद्धि के लिए। हमारी विनम्र सम्मति मे संसदविहीन जनता के लिए कराधान में कटौती के लिए निरंतर और सुदृढ़ मांग करते रहना ही एकमात्र बुद्धिमत्तापूर्ण नीति है।

1886 में जी० वी० जोशी ने बल देकर घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश शासन की विशिष्ट स्थितियों के कारण राष्ट्र की भौतिक और नैतिक प्रगति के लिए सरकारी बोझो का यथासंभव हलका होना आवश्य है।[69] जब 1898 के उपरात भारतीय बजटों में निरंतर बचत होनी प्रारंभ हो गई, बहुत सारे भारतीय नेताओं ने करों में छूट की मांग की।[70] 1902 में सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने टिप्पणी की कि जब देश के सामान्य करदाता भूखो मरते किसान हों तो देश के शासकों का उन प्रजाजनों को कराधान में छूट देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व बन जाता है।[71] 1905-06 के बजट पर भाषण करते हुए गोपाल कृष्ण गोखले ने निम्न कराधान के मामले को अत्यंत स्पष्टता के साथ इस प्रकार प्रस्तुत किया :

> सभी देशों में यह वित्त का सर्वमान्य नियम है कि सरकारी करों का भार यथासंभव हलका होना चाहिए। · · · यदि संपन्न यूरोपीय देशों में यह स्थिति है तो भारत में इसकी और अधिक जरूरत है क्योंकि यहां राजस्व की वसूली निर्धन और असहाय जनता से की जाती है तथा उस राजस्व के अपेक्षाकृत बड़े भाग का भुगतान जीर्ण-शीर्ण एवं नितांत अभावग्रस्त कृषक वर्ग द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त यहां भारत में मामले की विशिष्ट स्थितियों के कारण सरकारी व्ययों के एक बहुत बड़े भाग को जनता की नैतिक तथा भौतिक उन्नति से असंबद्ध अथवा अत्यंत दूर से संबद्ध कार्यों पर व्यय करना पड़ता है।[72]

भारतीय दृष्टिकोण के कुछ पक्ष

देश पर अधिक कर भार होने के विचार की लोकप्रियता में वृद्धि के लिए कई तत्व उत्तरदायी थे। सी० एन० वकील के अनुसार 1871-1901 की अवधि में कराधान का परिमाण राष्ट्रीय आय की औसत के 8-9 प्रतिशत के बीच था।[73] द्वितीय, आवश्यकता से ऊपर कराधान अथवा कराधान का ऊंचा स्तर विकासशील देश की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश के लिए अधिक से भी कुछ बढ़कर कठिनता उत्पन्न करता था। क्योंकि यह किसानों, दस्तकारों अथवा दूसरे शब्दों में निम्न मध्य वर्गों के सभी तत्वों से बलपूर्वक संपत्तिहरण था। यह धारणा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की अवधि मे स्वतः प्रमाण के

रूप में सामने आ गई । तृतीय, वर्तमान कराधान के स्तर के समर्थक तत्व के रूप में देशानुराग अथवा सामाजिक जागरूकता की भावना नहीं थी । इसके विपरीत, जैसा हम बाद में स्पष्ट रूप से दिखाएंगे, भारतीय नेताओं के मन में यह भय था कि भारत सरकार की विदेशी प्रकृति के कारण प्रशासन की न्यूनतम आवश्यकताओं मे किसी प्रकार का अधिक राजस्व शाही उद्देश्यों की पूर्ति मे लाया जाएगा । चतुर्थ, भारतीय नेताओं ने भूमि और नमक पर करों के तथा शराब पर उत्पादन शुल्कों के माध्यम से सरकार के भारतीय राजस्वो के उगाहने पर आपत्ति की । अंतिम, भारतीय नेताओं ने कराधान के स्तर और उसके उपयोग के ढंग को सहसंबंधित कर दिया । उन वर्षों में भारत सरकार अंततः राज्यों के कार्यो मे अहस्तक्षेप के सिद्धांत की संकीर्ण परिधि में काम कर रही थी और किसी बड़े पैमाने के विकास को सक्रियता से नही ले रही थी ।

राजस्व के स्रोत

अब हम भारत सरकार के राजस्व के तत्कालीन मुख्य स्रोतों, भूमि लगान, नमक कर, अफीम और उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क, और आयकर के प्रति भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के दृष्टिकोण का विवेचन करेंगे ।[71] वर्तमान भूमि लगान के परिमाण और उसमे किसी प्रकार की वृद्धि के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रवादी, नेताओं की तीव्रतम आलोचना तथा चुने हुए कुछ उत्पादनो पर आयात कर लगाकर कोश जुटाने की उन नेताओ द्वारा की गई जोरदार वकालत का विस्तृत विवेचन पूर्ववर्ती अध्यायों में किया जा चुका है । अगले पृष्ठों में आय कर, नमक कर, अफीम कर तथा उत्पादन शुल्क के संबंध में उनके विचार प्रस्तुत करते हुए उनका विश्लेषण किया गया है ।

आय कर

हमारे अध्ययन के अंतर्गत अवधि के प्रारभ मे ही अर्थात 1880 में लाइसेंस कर के रूप में प्रसिद्ध आय कर का एक संशोधित रूप भारत मे लगाया जाता था । इस दिशा में सर्वप्रथम प्रारंभ 1860 में किया गया, जब प्रथम वित्त सदस्य जेम्स विल्सन ने व्यापार, कृषि, व्यवसाय, सरकारी तथा गैरसरकारी नौकरी से 200 रुपये प्रति वर्ष से अधिक आय पर कर लगा दिया । इस कर में निरंतर परिवर्तन किए जाते रहे हैं और अत में 1865 मे इसका परित्याग कर दिया गया, साथ में यह घोषणा की गई कि इसे देश के एक बहुत बड़े सुरक्षित कोष का काम करना था ।[76] उस वर्ष के उपरांत व्यक्तिगत आय पर कर लगाने के मामले को कई बार अपनाया गया और कई बार छोड़ा गया । अंततः उसे कुछ विभिन्न रूपों में फिर ग्रहण किया गया ।

1878 में भारत सरकार ने अंतिम रूप से तब तक नियमित रूप ले चुके अकालों के मुकाबले के लिए लंबी अवधि की बीमा निधि योजना के रूप में समुचित राजकोशीय व्यवस्था का दृढ़ निश्चय किया । इस निधि के लिए रकम अंशतः भूराजस्व और लगान पर उपकर लगाने से और अंशतः व्यवसायी और व्यापारी वर्गों तथा दस्तकारों पर लाइसेंस कर लगाने से उगाही जानी थी । इस कार्य के लिए कोई केंद्रीय कानून नहीं बनाया गया ।

प्रातीय उपायों की ही इस विषय मे सहायता ली गई। लाइसेंस कर वस्तुत सीमित आय कर था और इसका निर्धारण प्राय लगभग आय के अनुसार वर्गीकरण के आधार पर होता था।[77] कृषि, व्यवसाय तथा वेतनो मे तथा इनके अतिरिक्त प्रतिभूतियो से प्राप्त होने वाली आय को इस कर की क्षेत्र सीमा के बाहर रखा गया था। इस कर का परिमाण और प्रकृति सब प्रातो मे समान न थी। उत्तर-पश्चिमी प्रातो और अवध मे तथा मद्रास मे कर योग्य न्यूनतम आय की राशि 200 रुपये थी जबकि बगाल, बबई और पजाब मे यह राशि 100 रुपये थी। कर का परिमाण भी विभिन्न वर्गो (जिनके अतर्गत करदाता विभक्त किए गए थे) के अनुसार भी भिन्न था परतु यह किसी भी रूप मे करदाता के कुल लाभ के दो प्रतिशत से अधिक अथवा 500 रुपये से अधिक नही था। 1879-80 मे सरकार ने व्यवसायी और वेतनभोगी वर्गो तक इस कर के विस्तार की असफल चेष्टा की। 1880 मे कर मे छूट की सीमा 500 रु० तक बढा दी गई। इस समय कर से प्राप्त होने वाली राशि 5 लाख पौड से ऊपर थी और करदाता व्यक्ति 228,447 थे।[78]

भारतीय नेताओ ने लाइसेंस कर लगाने के समय ही सामान्य रूप से उसका विरोध किया[79] और परवर्ती वर्षो मे उसे हटाने की माग करते रहे।[80] यहा यह ध्यान देने योग्य है कि उन्होने प्रमुख रूप से लाइसेंस कर लगाने के पीछे निहित सिद्धात पर प्रहार नही किया। उन्होने इसे लगाने के ढग पर आपत्ति की, जो उनके अनुसार असमान और अन्यायपूर्ण था। इस कर के विरुद्ध उनकी सर्वप्रथम आपत्ति यह थी कि यह आय के बहुत ही निम्न स्तर तक आक्रमण करता था, अत निर्धनो की बहुत बडी सख्या इससे दुष्प्रभावित होती थी। कुछ का तो यह भी विचार था कि करो का बोझ निर्धनो पर अत्यधिक भारी था, जबकि समृद्ध वर्ग इससे अपेक्षाकृत रूप से मुक्त था। उदाहरणार्थ, 14 जनवरी 1878 के अक मे 'इदु प्रकाश' ने इस कर की न्यायोचितता पर प्रश्नात्मक स्वर मे पूछा कि यह कहा का न्याय है कि यह बडे बडे और प्रभावशाली व्यक्तियो, व्यापारियो तथा वाणिज्य मे लगे व्यक्तियो, जिनमे अधिकाश यूरोपीय है की जेबो को तो हलके रूप मे प्रभावित करता है जबकि छोटे छोटे व्यापारियो और दस्तकारो पर जिनमे अधिकाश भारतीय है, पर भारी बोझा डालता है।[81] इसी प्रकार 'इडियन स्पेक्टेटर' ने 23 अक्तूबर 1881 के अक मे इस कर को वर्णसकर राक्षस बताया जो आधा भीरु और आधा गुडा था। समृद्धतम और अच्छी सरकार के सर्वोत्तम लाभो का आनद उठाने वालो के पास से तो यह दुबक कर निकल जाता था और छोटे छोटे व्यापारियो का खून चूसता था।[82] राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने इस ओर भी सकेत किया कि निर्धन लोग कर निर्धारण और समाहरण से संबधित छोटे छोटे अधिकारियो के कुप्रशासन की प्रवृत्ति से भी बुरी तरह दुखी थे।[83] अतएव कुछ समाचारपत्रो ने कर सीमा बढाने की माग की।[84] यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि 17 जनवरी 1880 के अक मे 'बगाली' ने बडी तीव्रता से कर की अधिकतम सीमा निर्धारित करने पर आपत्ति की क्योकि इससे उन लखपति व्यापारियों के प्रति, जिन्हे इस प्रकार के किसी अपवादात्मक पक्षपात की कोई आवश्यकता नही थी और जो अधिकाशत. यूरोपीय ही थे, विशिष्ट पक्षपातपूर्ण व्यवहार होता था। यहा यह उल्लेखनीय है कि भारतीय समाचारपत्र इस मामले मे शहरी निर्धनों की तीव्र भावनाओ

को अभिव्यक्ति दे रहे थे। उनकी इन भावनाओ को अन्यान्य रूपों में भी अभिव्यक्ति मिल रही थी।[85] प्रमाण के रूप मे कलकत्ता मे 1878-9 में इस कर के विरोध में भिश्तियों, नालबंदों तथा ठेलेवालो ने हड़ताल कर दी।[86] अप्रैल 1878 मे सूरत में इस कर के ऊंचे निर्धारण के विरुद्ध गंभीर दंगे हुए।[87]

राष्ट्रवादियों के लाइसेंस कर पर प्रहार का दूसरा आधार यह था कि उच्च वेतन-भोगी यूरोपीय तथा भारतीय सरकारी कर्मकारी और फलते-फूलते व्यवसायी अन्याय-पूर्ण ढग से इस कर के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखे गए थे।[88] फलत: उन्होंने इस कर के अधिकार क्षेत्र के व्यवसायी वर्गो तथा वेतनभोगी वर्गों तक विस्तार के लिए दबाव डाला।[89] पूना सार्वजनिक सभा के तत्वावधान में पूना के निवासियों के 16 मई 1880 को पूना में हुई जनसभा मे स्वीकृत ज्ञापन मे राष्ट्रवादियों की लाइसेंस कर के विरुद्ध समीक्षा को संक्षेप मे बड़े सुदर रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रार्थियों ने ज्ञापन मे इस तथ्य पर दृढ़ता-पूर्वक प्रकाश डाला कि यह कर अतिरिक्त कराधान का भार वहन करने मे सर्वथा समर्थ उच्च वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियो तथा अन्य सपन्न वर्गो तक छूट देकर तथा आजी-विका और कर भुगतान के साधनों से सर्वथा विहीन अकालग्रस्त निर्धन वर्गो पर कराधान का बोझा डा कर अनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धातों का उल्लंघन करता था।[90]

यहा यह भी उल्लेखनीय है कि अपने युग के अग्रणी दो समाचारपत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' और 'हिंदू' ने परोक्ष कराधान के सिद्धात का अत्यत स्पष्ट रूप से समर्थन किया तथा इस लाइसेंस कर को न केवल समाप्त करने के लिए बल्कि इसे आय कर का परि-वर्तित रूप देने के लिए सरकार पर दबाव डाला।[91]

1882 मे सीमा शुल्क को हटा देने के उपरात विनिमय की दर के घटने और सैनिक व्यय के बढने के कारण भारत सरकार को शीघ्र ही आय के नए साधनों की खोज करनी पडी। साधनो की इस खोज मे स्वभावत: दृष्टि लाइसेंस कर की ओर गई जो उस समय आधा करोड रुपये की तुच्छ राशि जुटाता था। 1886 मे सरकार ने आय कर लगाया जहां तक आय की दृष्टि से निम्नतम वर्गों का संबंध था, यह कर वस्तुत: वर्तमान लाइसेंस कर का ही परिवर्धित, विस्तृत और समीकृत रूप था। नया कर व्यवसायी और वेतनभोगी वर्गों पर भी लागू किया गया। 2,000 रुपये प्रति वर्ष की राशि से कम आय पर इस कर की दर 4 पाई प्रति रुपया और 2,000 रुपये प्रति वर्ष की राशि से ऊपर की आय पर 5 पाई प्रति रुपया निर्धारित की गई। 500 रुपये अथवा उससे कम राशि प्रतिवर्ष की आय को आय कर से मुक्त रखा गया। सैनिक अधिकारियों के मामले में छूट की सीमा 6000 रुपये प्रति वर्ष रखी गई। अन्यान्य साधनों, धरती (जिसमें चाय बागान भी सम्मिलित थे) वेतन, पेंशन, इंग्लैंड में भुगतान किए जाने वाले अवकाश भत्ते, इंग्लैंड में व्यवस्थापित जहाजरानी कंपनियां, इंग्लैंड में चुकाई गई प्रतिभूतियों के ब्याजों और प्रतिभूत राशि की सीमा तक रेलों को होने वाले लाभ से प्राप्त होने वाली कुछ अन्य किस्म की आय को भी आय कर के सीमा क्षेत्र से बाहर गया था। इस कर के चालू होने के प्रथम वर्ष अर्थात 1886-7 में लगभग 3,51,000 लोगों ने आय कर चुकाया और इससे लगभग 1.37 करोड़ रुपयों की राशि वसूल हुई। इस कुल आय की लगभग तीस प्रतिशत राशि वेतनों तथा

पेंशनों से वसूल की गई। 1902-03 मे करदाताओ की संख्या बढकर लगभग 5,31,000 हो गई और लगभग 2 1 करोड रुपयों की राशि इकट्ठी हुई।[92]

आय कर के प्रति राष्ट्रवादी नेताओ के दृष्टिकोण मे सामान्यतया मतभेद ही था। यदि समय की पर्याप्त लबी अवधि के सदर्भ मे देखा जाए तो यह मतभेद और भी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ जाता है। वस्तुत कुछ भारतीय नेताओ ने विभिन्न कालो मे भिन्न भिन्न यहा तक कि परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाया।

1880 मे आय कर लगाने के प्रस्ताव का और 1886 मे वास्तविक रूप में इस कर के आरोपण का राष्ट्रवादी पत्रों और नेताओ ने बडे पैमाने पर विरोध किया।[93] यह विरोध स्वयं कर की प्रकृति के विरुद्ध उमे यूरोपीयो और समृद्ध तथा प्रभावशाली भारतीयों का डर है। इतना नही था क्योंकि अतिरिक्त करो के किसी भी प्रस्ताव पर राष्ट्रवादियों में विश्वास का अभाव था और यह उस समय राष्ट्रवादी नेताओ के लिए एक प्रकार से स्थाई अभिशाप था, राष्ट्रवादियों का विरोध उस आवश्यकता की अस्वीकृति के प्रति था जिसके अंतर्गत यह कर लगाया गया था। उदाहरण के रूप मे भारतीय समाचारपत्रों द्वारा अपनाई गई स्थिति की समीक्षा करते हुए 'वायस आफ इडिया' के सपादक ने राष्ट्रवादियों के मंतव्य को इसी रूप मे ग्रहण किया।[94] इसके अतिरिक्त 1882 से पहले तक तो बहुत सारे भारतीय राष्ट्रवादियो को यह आशंका थी कि आय कर लगाने मे बजट मे बचत हो सकती है और इन बचतों को सरकार आयात कर हटाने के बहाने के रूप मे इस्तेमाल कर सकती है।[95] 1882 के उपरात जब सचमुच आयात कर हटा दिया गया तो भारतीय नेताओं ने इस आधार पर आय कर का विरोध किया कि राजस्व वसूली का अपेक्षाकृत अच्छा साधन आयात करों को पुनः लगाना होगा।[96] थोडे से भारतीयो ने इस कर से प्राप्त राजस्व को सरकार द्वारा तेजी मे बढते सैनिक व्ययो की पूर्ति के लिए प्रयोग करने का संदेह भी किया। ये व्यय भारतीयो के लिए क्लेश और कष्ट का कारण बने हुए थे।[97] अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आय कर विरोधियो के शीर्षस्थ नेताओ ने इस कर के एक पक्ष, व्यवसायी और वेतनभोगी वर्गों को इसके सीमा क्षेत्र मे लाने का समर्थन किया।[98]

इतना सब जानने के बाद यहा यह जान लेना भी आवश्यक है कि जब आय कर के कुछ विरोधियो ने भारत के लिए प्रत्यक्ष कर के सर्वथा अनुपयुक्त होने की घोषणा की[99] अथवा उनमे से कुछ ने आय कर लगाने के स्थान पर नमक कर के विस्तार और उसमे वृद्धि की वकालत की।[100] तो उस समय उन्होंने यह सर्वथा स्पष्ट कर दिया कि उनका विरोध किसी भी रूप मे सामान्य लोकहित की कामना से उतना प्रेरित नही था जितना संकुचित वर्ग तथा निहित स्वार्थपूर्ण हितो मे किसी भी रूप मे देखा जाए, वी० एन० मांडलिक पर्याप्त स्पष्टवक्ता दिखाई देते है, उन्होने 1886 मे आय कर बिल (इन्कम टैक्स बिल, 1886) पर भाषण करते हुए सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया कि उच्च वर्गों को लाइसेंस कर के स्थान पर आय कर के अंतर्गत रख देने से इस ऐक्ट का संतुलन जाता रहा है।[101]

आय कर के इस विरोध के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व जिसकी भारतीय

आय कर के इतिहास लेखकों ने न्यूनाधिक रूप से लगभग उपेक्षा ही की है, यह था कि आय कर लगाने का विरोध करने के बदले राष्ट्रवादी नेताओं मे अधिक सशक्त वर्ग ने कर लगने के पूर्व, कर लगने के समय और कर लग चुकने के बाद एक प्रकार से उसका प्राय. सक्रिय और प्रबल तथा किन्ही किन्ही मामलो मे अनिच्छा तथा अनुत्साहपूर्ण समर्थन ही किया।

'अमृत बाजार पत्रिका' ने 1870 के बाद से आय कर का सक्रिय समर्थन किया।[102] बहुत सारे राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने 1880 मे आय कर को वेतनभोगी तथा व्यवसायी वर्गों पर लागू करने के जान स्ट्रैची के प्रयास का स्वागत और समर्थन किया।[103] भारत मे रहने वाले अगरेजों के विरोध के कारण जब स्ट्रैची के प्रस्ताव को वापस लेना पडा तो 'अमृत बाजार पत्रिका' ने तीखे व्यग्य बाण बरसाए। 5 मार्च 1880 के अक मे इस पत्र ने भारतीय आलोचको के आय कर हटाने के प्रयास को आडे हाथो लेते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की :

> अब वेतनभोगियो और व्यवसायी वर्गों पर लगा कर हटा लिया गया है। एक निपट मूर्ख को भी यह समझने मे देर नही लगेगी कि सर स्ट्रैची के आय कर को लगाने के क्षेत्र मे [illegible] घोषणा के विरुद्ध की गई चिल्लाहट कितनी निरर्थक और निराधार थी। प्रत्येक समाज मे कुछ गधे अवश्य होते है, यदि वे न हों तो भला अपनी पीठ पर धोबी के कपडो का बोझ कौन उठाएगा ? परन्तु इन गधो को धोबी के कपडों का भार उठाने पर ही लगाए रखना चाहिए। उन्हे राजनीतिक संस्थाओ का नेतृत्व अथवा सार्वजनिक पत्रो का सपादकत्व नही सभालने देना चाहिए।

परवर्ती वर्षो मे 'हिंद्', 'इंदु प्रकाश' और 'इंडियन स्पेक्टेटर' जैसे अग्रणी राष्ट्रवादी समाचारपत्रो की बहुसंख्या ने चालू लाइसेंस कर के स्थान पर आय कर लगाने का अनुरोध किया।[104] अतत भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने 1885 मे अपने प्रथम अधिवेशन मे अन्यान्य वस्तुओं के साथ फिलहाल इस कर से मुक्त सरकारी और गैरसरकारी वर्गो के समुदाय पर इस कर के विस्तार के अनुरोध का प्रस्ताव पारित किया।[105] 1886 मे जब अंतत आय कर लगाया गया तब 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हिंद्', 'मराठा' तथा अन्य अनेक राष्ट्रवादी समाचारपत्रो ने उसका समर्थन किया।[106]

1886 के उपरात राष्ट्रवादी क्षेत्रो मे आय कर को और अधिक व्यापक तथा और अधिक विस्तृत लोकप्रियता मिलने लगी, विशेष रूप से यह इस तथ्य से सिद्ध है कि यह माना जाने लगा कि इसके हटाने का परिणाम अन्य करों को लगाना होगा। यह तथ्य इस दृष्टिकोण को भी सिद्ध करता है कि कुछ भारतीय नेताओ का पूर्ववर्ती विरोध वस्तुत: अपने आप मे आय कर का विरोध न होकर किसी प्रकार के नए कराधान का ही विरोध था। जब एक बार यह प्रमाणित हो गया कि नए करों का लगाना अपरिहार्य है तो राष्ट्रवादी नेताओं ने एक स्वर से आय कर हटाने की माग का विरोध किया तथा किसी भी प्रकार के अन्य कर लगाने की अपेक्षा इस कराधान का ही पक्ष लिया। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के 1887 के तृतीय अधिवेशन मे यह तथ्य उस समय नाटकीय ढंग से सामने आया जब एक प्रतिनिधि वी० आर० चक्रवर्ती आयंगर ने छठे प्रस्ताव मे संशोधन के रूप मे

आय कर हटाने की माग पेश की, तत्काल नही' 'नही' 'संशोधन वापस लो' की ऊची ऊची आवाजें आई, यह कहा गया कि हम अपने आपको कराधान से मुक्त नही करना चाहते हम इस कर के 'पक्षधर' है। 'बैठ जाइए' 'बकवास बंद कीजिए'। चक्रवर्ती आयंगर को अपना सशोधन वापस लेने पर विवश होना पडा।[107] काग्रेस के अगले अधिवेशन (1888) मे मदनमोहन मालवीय ने घोषणा की कि काग्रेस धनिकों अथवा उन लोगो पर जो कर चुकाने मे समर्थ है, आय कर लगाने की वाछनीयता मे सहमति प्रकट करती है और उसकी पुष्टि करती है।[108]

1902 मे सी० वाई० चितामणि ने तेहरवा प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कर हटाने के आदोलन की बडी जोरदार निंदा की[109], साथ ही उस वर्ष के काग्रेस अध्यक्ष एस० एन० बैनर्जी की भी कर हटाने की माग के प्रति सहानुभूति न थी।[110] भारत के अन्य सार्वजनिक नेताओं मे से दादाभाई नौरोजी ने वायसराय की कौंसिल के सदस्य एस० एम० मलाबारी को 26 अप्रैल 1889 को लिखे पत्र द्वारा आय कर के विरुद्ध नमक कर के पक्ष मे मत देने के लिए उनकी निदा की।[111] आर० सी० दत्त ने अपनी पुस्तक 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इडिया' मे आय कर के न्यायसगत और उचित होने के कारण उसकी प्रशसा की।[112] 1888 मे जी० वी० जोशी ने नमक कर मे वृद्धि के बदले आय कर मे वृद्धि और विस्तार के पक्ष मे जोरदार तर्क प्रस्तुत किया।[113] 'इडियन एसोसिएशन' ने भी 1894 मे इसी प्रकार की माग प्रस्तुत की।[114]

समाचारपत्रों मे 'अमृत बाजार पत्रिका' ने तो आय कर के पक्ष मे जिहाद जारी रखा।[115] इस पत्र ने 18 अप्रैल 1893 के अपने अक मे इस कर के परिमाण मे वृद्धि की माग की। 28 दिसंबर 1887 के अपने अक मे हिंदू ने माग की कि आय कर को भारतीय कराधान का स्थाई स्रोत बना देना चाहिए।[116] 15 दिसबर 1890 के अपने अक मे सुधारक ने घोषणा की कि कर को हटाने की माग असदिग्ध रूप से स्वार्थपूर्ण ही होगी।[117] 'संजीवनी' ने 10 मार्च 1894 के अंक मे आय कर म वृद्धि की वकालत की। उसका आधार यह था कि वर्तमान दर से वास्तव मे धनिकों को छूट मिलती थी।[118] 'बगाली' ने भी 4 नवंबर 1902 के अक मे कर हटाने पर आपत्ति की। 29 मई 1904 के अंक मे 'मराठा' ने बजट मे बचत होने पर भी इस कर के बने रहने की इच्छा प्रकट की और सुझाव दिया कि इस कर से होने वाली आय का न्यास बना देना चाहिए और उस आय को शिक्षा विशेषत औद्योगिक शिक्षा पर खर्च करना चाहिए। बहुत सारे अन्य समाचारपत्र आय कर हटाने के विरुद्ध वर्षों तक यही स्थिति अपनाए रहे और कई मामलों मे तो इसके क्षेत्र विस्तार की निरंतर वकालत करते रहे।[119] विशेषत 1888 मे नमक कर मे वृद्धि के समय बहुत अधिक संख्या मे समाचारपत्रों ने इसके बदले आय कर मे वृद्धि की वकालत की।[120]

1886 के उपरांत आय कर के पक्ष में उत्पन्न राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रचंड बहुमत के विरुद्ध केवल मुट्ठी भर भारतीय समाचारपत्रों और नेताओ ने ही उस वर्ष के बाद इस कर को हटाने की माग की। जहां तक हम निश्चित रूप से जान पाए हैं। 10 नवंबर 1890 का 'सोम प्रकाश' (बंगाल मे निकलने वाला) और 11 फरवरी 1891

का 'सहचर', 'नार्थ वेस्ट प्राविंसेज' तथा अवध मे प्रकाशित होने वाला 'भारत जीवन' ही इस कर को हटाने की माग कर रहे थे ।[121] राजनीतिक नेताओ मे जी०आर० चितनवीस, महाराजा दरभगा और आशुतोष मुखर्जी ही, जिनकी उच्च स्तर के राष्ट्रीय नेताओं मे गिनती नही होती थी । कर का विरोध करने वालो मे थे ।[122]

जहा तक आय कर लगाने के ढग का सबध है, कुछ भारतीय नेताओं ने भ म ही जमीदारो और भूमिपतियो को इस कर मे मुक्त करने की आलोचना की। 17 जनवरी 1880 को 'बगाली' न इसी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए जमीदारों द्वारा पहले से ही सडक शुल्क और लोककर्म शुल्क चुकाए जाने के कारण उन्हे इस कर से मुक्ति देने के औचित्य की धारणा का खडन किया । उस पत्र ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा कि ये कर वस्तुत परोक्ष रूप मे किसानो द्वारा ही चुकाए जाते है। 7, 9, और 12 जनवरी 1886 के अको मे 'हिंदू' ने, 25 फरवरी 1886 के अक मे 'इडियन नशन' ने और 18 जनवरी 1886 के अक मे 'गुजरात मित्र' न जमीदारो को 1885 के कर के अधिकार क्षेत्र स बाहर रखने की आलोचना की ।[123] 1888 म जी० वी० जोशी न जमीदारो, ताल्लुकेदारों और बागान मालिको तक आय कर के क्षेत्र विस्तार के पक्ष मे तर्कों का विस्तृत विवेचन किया ।[124] 9 जनवरी 1890 के अक मे 'हिंदू' ने और 18 फरवरी 1894 के अक म 'कैसरे हिंद'[125] ने भी इसी प्रकार की माग करते हुए तर्क प्रस्तुत किए।

थोडे से भारतीय नेताओ ने भारतीय आय कर मे नियमित वृद्धि के नितात अभाव की भी चर्चा की । इस कर की दृष्टि मे 2000 रुपये से ऊपर की सभी प्रकार की वार्षिक आयो को इकट्ठे वर्गीकृत करन पर आपत्ति करते हुए हिंदू ने दृढतापूर्वक लिखा कि क्रमिक कराधान का सिद्धात विश्व के अन्य किसी भी देश के समान ही भारत मे भी सही तौर पर लागू है । अपना मत प्रकट करते हुए उसने लिखा कि उच्च वेतनभोगियो के लिए 2½ प्रतिशत कर की दर बहुत ही नीची दर है ।[126] इडियन एसोसिएशन ने 8 मार्च 1894 के ज्ञापन मे सुझाव दिया कि जीवन की उपभोग सामग्री पर परोक्ष ढग से कराधान के बदले आय कर की दर क्रमिक रूप से बढा देनी चाहिए। अपेक्षाकृत उच्च वेतनों पर अपेक्षाकृत ऊंचा करारोपण करना चाहिए ।[127] बहुत सारे और भारतीय नेताओ ने सुव्यवस्थित रूप से क्रमिक आय कर के लगाने की माग की ।[128]

इस समय राष्ट्रवादी नेताओं के विशाल बहुमत द्वारा आय कर के समर्थन के अथवा कम से कम उसके अधिकार क्षेत्र के वेतनभोगी और व्यवसायी वर्गों तक विस्तार के आधारों का संक्षिप्त विवेचन कदाचित अनुचित न होगा । इन आधारों मे प्रथम और कदाचित सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण यह समझ थी कि आय कर ही एक ऐसा अकेला महत्वपूर्ण कर है जिसके द्वारा भारत मे रहने वाले यूरोपीय, भले ही वे सरकारी अधिकारी हों, निजी व्यवसाय संस्थानों के कर्मचारी हों, व्यवसाय वर्ग के लोग हों अथवा व्यापारी हो, भारत सरकार के शासन-संचलान के व्यय मे अपने भाग का योगदान कर सकते हैं ।[129] 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इसी भावना की अभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दों में की : आय कर भारत में रहने वाले शत प्रतिशत यूरोपीयों की जेबों को प्रभावित करता

है जबकि इससे हजार भारतीयों में केवल एक व्यक्ति की जेब ही प्रभावित होती है।[130] कुछ समाचारपत्रों ने तो यह दृढ़ मत अभिव्यक्त किया कि आय कर का विरोध करना यूरोपियों के हाथों खेलना है।[131] राष्ट्रवादियों द्वारा आय कर को समर्थन देने का दूसरा कारण था, कराधान मे सामाजिक न्याय और समता की भावना। इस अत्यंत प्रजातंत्रीय दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति किन्ही किन्ही मामलों मे तो सर्वथा स्पष्ट रूप मे की गई। उदाहरणार्थ, 17 जनवरी 1880 के अंक मे 'बंगाली' ने बल देकर कहा कि यदि भारत सरकार अपने खर्चों में कटौती न करके उन खर्चों की पूर्ति के लिए नए कर लगाने पर ही तुली हुई है तो अच्छा, बहुत ही अच्छा यह होगा कि यह कर निर्धनो पर थोपने की अपेक्षा उन लोगों पर लगाए जाए जो उनका भार सहन कर सकते है।[132] 5 मार्च 1880 के अंक मे तो 'अमृत बाजार पत्रिका' ने और भी अधिक दृढता के साथ लिखा : 'इस समय हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यह नही है कि प्रत्यक्ष कर भारत के अनुकूल है अथवा नही ? इस समय तो विचारणीय यह है कि हमारे समाज के अपेक्षाकृत संपन्न सदस्यों को इस भार मे अपने समुचित भाग का योगदान करना चाहिए अथवा नहीं ? यदि उन्हें अपना योगदान करना है तो प्रत्यक्ष कराधान के अतिरिक्त उन तक पहुंचने का और कोई मार्ग ही नही।' अगले वर्ष 'पत्रिका' ने आय कर लगाने के औचित्य की एक बार फिर वकालत की तथा इस कर के द्वारा लोगो को अत्यधिक असुविधा और कष्ट मिलने और इस कारण इसके लाभो के निर्मूल हो जाने के तर्क के औचित्य को मानने से इनकार कर दिया। उसने अपने 29 दिसंबर '1881 के अक मे लिखा : 'सर्वप्रथम, सत्य तो यह है कि जब बीस करोड़ लोगो को नमक कर, भूमि लगान और मुद्राक शुल्क आदि के भुगतान मे होने वाले कष्ट की निश्चित रूप मे ही कोई चिता नही की जाती तो फिर इस देश मे समृद्ध वर्ग के दो लाख लोगो को होने वाली साधारण सी असुविधा की चिंता ही कौन करता है ?'[133] 19 दिसम्बर 1884 के अंक मे 'हिंदू' ने भी निर्देश किया · 'निर्धन लोगों को धनिको पर कर लगाने पर आपत्ति करने का कोई अधिकार नही। निर्धनों को तो उलटे अपने पर नमक कर, उत्पादन शुल्क और मुद्रांक शुल्क आदि लगाने के विरुद्ध शिकायत करनी चाहिए।'[134] 1888 मे जी० वी० जोशी ने भी इसी दृष्टिकोण को बड़ी स्पष्टता और प्रबलता के साथ अभिव्यक्ति दी। 1886 में आय कर लगाने का अनुमोदन करते हुए उन्होने यहा तक कहा कि 1886 के आय कर अधिनियम के अंतर्गत उच्च तथा उच्च मध्यम वर्गों पर डाला गया भार निर्धन वर्गों पर डाले गए भार के मुकाबले किसी भी परिमाण मे, स्तर मे पर्याप्त, उचित अथवा अनुरूप नही है। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि कराधान के नए उपाय से लोक कराधान मे समानता तथा समुचित संतुलन सिद्ध नही होता।···1886 के कराधान के उपरात आज भी स्थिति यह बनी हुई है कि संपन्न वर्ग तो कर थोड़े परिमाण में चुकाता है जबकि जनता को अपने उचित भाग की अपेक्षा अधिक करो का भुगतान करना पडता है।[135]

हां, आय कर के समर्थकों ने इसके हर पहलू का अनुमोदन नही किया। सिद्धांत रूप में इसे स्वीकार करते हुए भी जिस ढंग से कर लगाया जा रहा था, उसकी आलोचना की। उनके अनुसार तथा सम्मानपूर्वक समझौते का निर्णय करने वाले कर

समीक्षकों के अनुसार 1886 में यथा आरोपित आय कर का निकृष्टतम पहलू छूट की निम्नतम सीमा थी। वे लोग यह सीमा कम से कम 500 रुपये से बढाकर 1000 रुपये प्रति वर्ष करने के पक्ष में थे। व्यापक रूप से देखें तो राष्ट्रवादियों की स्थिति यह थी कि आय कर की छूट की सीमा निम्न होने के कारण यह कर कम आयवाले उन लोगों, निम्न वेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों, छोटे छोटे व्यापारियो, दुकानदारों और दस्तकारों को बुरी तरह प्रभावित करता था क्योंकि विशेषन: संयुक्त परिवार प्रथा के संदर्भ में इन लोगों के पास करों के भुगतान की सामर्थ्य ही नही थी। अल्प आय वालो के प्रति कर समाहरण करने वाले प्रशासन का व्यवहार भी असंतोषजनक था। यह विभाग उन्हें अनुचित रूप से परेशान तथा तंग करता था। इन स्वल्प आयवालों में बहुत सारे लोग कर समाहरण कार्य पर नियुक्त छोटे-मोटे सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार और क्रूरता सहन करने में सर्वथा असमर्थ थे।

कुछ राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने आय कर को लागू करने से पहले ही उसे निर्दोष बनाने के लिए उसकी छूट की ऊंची सीमा निर्धारित करने का सुझाव दिया।[136] 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने वेतनभोगी और व्यवसायी वर्गों को लाइसेंस शुल्क के सीमा क्षेत्र मे लाने की सिफारिश करते हुए सुझाव दिया कि जहां तक सब वर्गो का संबंध है, उन के न्यूनतम कर योग्य राशि की सीमा पर्याप्त मात्रा मे ऊंची करनी चाहिए।[137] 1886 में आय कर लगाने के समय बहुत सारे भारतीय नेताओं ने इसकी छूट की सीमा बढ़ाने के लिए सरकार पर दबाव डाला।[138] 1887 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने तृतीय अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास करते हुए कर योग्य आय की सीमा न्यूनतम एक हजार रुपये निर्धारित करने की माग की।[139] अगले वर्ष मदनमोहन मालवीय ने इस प्रस्ताव को सम्माननीय निर्धन लोगों का प्रस्ताव बताया[140] तथा यह कांग्रेस के अधिवेशनों में हर वर्ष पास होता रहा।[141] राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने वर्षों तक इस विषय पर आंदोलन का नियमित वातावरण बनाए रखा।[142] भारतीय लोकनेताओं ने कांग्रेस के मंच से, विधानसभा में तथा समाचारपत्रों में इस विषय को बार बार उठाया।[143]

आय कर की कार्यविधि से संबंधित राष्ट्रवादी आलोचना के औचित्य तथा न्यायपरता को अधिकारियों ने भली भांति अभिस्वीकार किया और उसके फलस्वरूप 1903 में भारत सरकार ने कर योग्य आय की सीमा 1000 रुपये प्रति वर्ष कर दी।[144] इस सरकारी पग का राष्ट्रवादी नेताओं ने बड़े उत्साह के साथ स्वागत किया।[145] विरल अपवादों को छोड़कर आय कर के संबंध में किसी अन्य प्रकार की रियायत की कोई मांग प्रस्तुत नहीं की गई।[146]

राष्ट्रीय दृष्टिकोण के आशय

आय कर के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण के उपर्युक्त विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में राष्ट्रवादी नेताओं की विपुल बहुसंख्या संकुचित वर्गगत हितों से ऊपर उठने में समर्थ हो सकी। इन नेताओं में अधिकाश स्वयं वकील और पत्रकार थे।

इनके वेतनभोगी वर्ग के साथ घनिष्ठ पारिवारिक संबंध थे फिर भी उनमें से बहुत बड़ी संख्या में नेताओं ने इस कर का समर्थन ही नहीं किया प्रत्युत आय कर लगाने की वकालत तक की। यहां तक कि इस कर का अपने उस रूप में विरोध करने वाले नेताओं की बहुत बड़ी संख्या ने इसका समर्थन ही नहीं किया प्रत्युत इसकी अधिकार सीमा का वेतनभोगी वर्गों तथा व्यवसायी वर्गों तक विस्तार करने की माग की। इस प्रकार शिक्षित मध्यवित्तीय वर्गों को किसी प्रकार के प्रत्यक्ष कराधान की अधिकार सीमा के अंतर्गत लाने की वाछनीयता के बारे मे राष्ट्रवादी नेताओं मे प्राय. यथासंभव व्यापक एकमत था। जब एक बार आय कर अस्तित्व मे आ गया तो परवर्ती वर्षो मे इस हटाने के लिए इसके विरुद्ध कोई एक भी महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी स्वर सुनने को नही मिला।

इस संदर्भ मे यह अत्यंत सावधानी के साथ उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिकाश शीर्षस्थ नेता तथा अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी समाचारपत्रो, 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हिंद्', 'मराठा', 'बगाली', 'हितवादी', संजीवनी', 'इदु प्रकाश', 'इंडियन स्पेक्टेटर' तथा 'स्वदेशमित्रन' के स्वामी तथा संपादक निश्चित रूप से आय कर के निर्धारण क्षेत्र के अंतर्गत आते थे और अन्यथा प्रत्यक्ष करो के बंधन से अथवा यहा तक कि अधिकांशतः परोक्ष करो के बंधन से सर्वथा मुक्त थे।[117] इतने पर भी वे अपने आप को अपने पर कर लगाने के लिए समर्पित करने के लिए और इस रूप मे आत्मक्षति के कष्ट को भुगतने के लिए सहमत थे ताकि भारत सरकार के विदेशी कर्मचारियो पर कराधान किया जा सके। भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का यह दृष्टिकोण एक ओर राष्ट्रीय भावनाओ के तथा देश पर विदेशी शासको के विरुद्ध शत्रुता की भावनाओं के उभरते तूफान का द्योतक है और दूसरी ओर उस समय के राष्ट्रीय नेताओ द्वारा सामान्य राष्ट्रीय हितो के समक्ष अपने निजी स्वार्थो को गौण बनाने की प्रवृत्ति का सूचक है।[148]

राष्ट्रवादी नेताओ ने जनता के केवल उसी वर्ग के हितों की इस मामले में देखभाल की जिस वर्ग की वार्षिक आय एक हजार रुपये प्रति वर्ष से नीचे थी अथवा दूसरे शब्दो में निर्धन दुकानदारों तथा निम्नवेतनभोगी सरकारी कर्मचारियों के हितों की वकालत की। इस संबंध मे यह अवश्य उल्लेखनीय है कि भारतीय नेताओं द्वारा आय कर की छूट सीमा को बढ़ाने की वकालत केवल सामाजिक न्याय और समता के आधारो पर ही उपयुक्त नही थी प्रत्युत छोटे छोटे दुकानदारों और निम्न स्तरीय सरकारी कर्मचारियों को राष्ट्रीय पक्ष मे लाने की यह एक सभी दृष्टियों से सर्वथा उपयुक्त राजनीतिक युक्ति भी थी। यहां तक कि इस मामले में नेताओं ने आय कर की छूट सीमा बढ़ाने की अपेक्षा नमक कर और भूमि लगान घटाने के लिए अपेक्षाकृत कठोर संघर्ष किया। सत्य यह है भारतीय नेताओं ने करों में राहत देने के मामले में सदैव सतर्कता बरतते हुए और खुलकर किसी भी योजना की सिफारिश करते हुए ऊपर दी गई प्राथमिकताओं का ध्यान रखा।[149] यहा यह भी उल्लेखनीय है कि वास्तव में भारतीय नेताओं ने आय कर के मामले में इस कर को हटाने के लिए निरंतर वकालत तथा आदोलन कर रहे बड़े बड़े व्यापारियों और जमींदारों के हितों का यांत्रिक रूप से प्रतिनिधित्व नही किया।[150]

नमक कर

1880 से 1905 की अवधि में नमक कर भारत सरकार की आय का एक दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत था। नमक पर कराधान की पद्धति एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भिन्न भिन्न रूप लिए हुए थी। बंबई मे इसे उत्पादन शुल्क का रूप प्राप्त था, बंगाल में प्रधान रूप से आयातित नमक पर सीमा शुल्क लगता था[151] और मद्रास, उत्तरी भारत तथा पंजाब में सरकार द्वारा एकाधिकार के रूप मे स्वत: उत्पादित नमक पर कर सरकार द्वारा वस्तुओं के निर्धारित मूल्य मे सम्मिलित रहता था।

1878-79 तक नमक कर की दर भी एक प्रांत से दूसरे प्रांत मे व्यापक रूप मे भिन्न थी।[152] कलंकित अंतर्देशीय सीमा शुल्क रेखा समाप्त करने के उपरांत जब नमक कर की दर मे लगभग एकरूपता लाई गई तो उत्तरी भारत मे उसे समानांतर रूप देने के लिए उसकी दर घटाकर 3 रुपये प्रति मन के स्थान पर 2 रु० 8 आने प्रति मन कर दी गई, बंगाल मे भी यह दर घटाकर 3 रु० 4 आने के बदले 2 रु० 14 आने प्रति मन कर दी गई। मद्रास और बंबई मे यह दर बढाकर 1 रु० 13 आने के स्थान पर 2 रु० 8 आने कर दी गई। यह सुधारकारी एकीकरण सरकार के लिए लाभप्रद सिद्ध हुआ। 1875-77 से 1879-81 मे नमक कर के राजस्व की राशि लगभग दस लाख पौंड बढ़ गई।[153] परंतु लोगों ने इस वृद्धि के पूरे परिमाण को अनुभव नहीं किया क्योंकि उस समय परिवहन सुविधाओ के समकालीन विस्तार के कारण बाजार मे नमक के मूल्यों मे उल्लेखनीय रूप में गिरावट आ गई थी।

1858 से पहले भी प्रमुख भारतीयों ने नमक कर की आलोचना की थी।[154] 1882 तक भारतीय नेता नमक कर में कटौती और उसे हटाने तक की माग करते रहे। नमक कर के समानीकरण की प्रक्रिया 1859 मे प्रारंभ हुई और उसके फलस्वरूप बंबई प्रांत में कर की दर बढ़कर काफी ऊंची हो गई। अत: स्वाभाविक रूप से ही उस प्रदेश मे कर के विरुद्ध तथा कर में वृद्धि के विरुद्ध आलोचना का स्वर अत्यंत मुखर था।[155] उदाहरणार्थ, 1880 मे दादाभाई नौरोजी ने नमक कर को ब्रिटिश नाम पर एक कलंक बताया।[156]

इस समय हम इस तथ्य की ओर भी ध्यान देना होगा कि भारतीय नेताओ के एक अन्य वर्ग ने भले ही वह अल्पसंख्यक था, नमक कर का समर्थन किया। यह बहुत स्वाभाविक था कि यह वर्ग प्रधान रूप से बंगाल मे ही था जहा नमक कर मे परिवर्तन नीचे की ओर जा रहे थे और जहां जमीदार सदैव किसानों के हितो के मूल्य पर अपने हितों की रक्षा के प्रति चिंतित थे। बगाल में नमक कर के पक्षधर दो प्रारंभिक प्रतिनिधि थे, राजा दिगंबर मित्र और क्रिस्तोदास पाल।[157] इससे भी अधिक आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि 'अमृत बाजार पत्रिका' ने भी सड़क शुल्क जैसे अन्यान्य करो में वृद्धि के बदले नमक कर मे वृद्धि की वकालत की।[158] इस अप्रत्याशित स्थिति अपनाने के लिए पत्र के संपादकों द्वारा निर्दिष्ट कारण यह था कि बंगाल में नमक कर प्रधान रूप से नमक पर आयात शुल्क था। यह नमक लिवरपूल और चेशायर से लाया जाता था अत: इस कर में वृद्धि का सारा भार विदेशियों पर ही पड़ने की संभावना थी।[159]

1882 मे भारत सरकार ने नमक कर मे कटौती की। बर्मा अथवा पंजाब के सिंधु

पार के जिलों को छोड़कर सारे देश में यह कर दो रुपये प्रति मर्न कर दिया गया। इस कदम के प्रति राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया मिश्रित थी। मराठा और बंबई के बहुत सारे अन्य पत्रों ने और बंगाल के कुछ पत्रों ने इसका स्वागत किया और सरकार से इसे और अधिक घटाने यहां तक कि इसे समाप्त करने का ही अनुरोध किया।[160] दूसरी ओर 'अमृत बाजार पत्रिका' और बंगाल तथा उत्तरी भारत के कितने ही दूसरे पत्रों ने अनुभव किया कि इस कदम का स्वागत नहीं किया जा सकता क्योंकि वस्तुतः लोगों ने नमक कर को कभी दुखप्रद नहीं माना। इसके बदले तो लाइसेंस कर के भुगतान में राहत देनी चाहिए थी।[161]

1882 और 1888 की मध्यावधि में नमक कर के विरुद्ध अनेक राष्ट्रीय स्वर मुखरित हुए। उदाहरणार्थ नमक कर विरोधी आंदोलन के संचालन मे अग्रदूत होने का श्रेय प्राप्त करने वाले जी० वी० जोशी ने इन्ही वर्षों की अवधि में नमक कर के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी किया था। 1886 में प्रकाशित अपने एक लेख 'वेज ऐंड मींज आफ मीटिंग दि ऐडीशिनल आर्मी एक्सपेंडीचर' में उन्होंने नमक कर का और जनजीवन तथा लोकश्रम पर उसके प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने नमक कर मे किसी भी प्रकार की वृद्धि का अत्यंत प्रखरता के साथ विरोध किया तथा किन्हीं क्षेत्रों में इस कर को सुरक्षित राजस्व मानने की नीति को घातक प्रवृत्ति बताते हुए उसकी तीव्र निंदा की। उन्होंने नमक कर को देश मे स्थाई कराधान का एक अंग बनाए रखने की भर्त्सना की।[162] 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सर्वप्रथम अधिवेशन में ही एस० ए० स्वामिनाथन अय्यर तथा वी० एस० पंतुलु ने नमक कर में किसी प्रकार की वृद्धि के प्रयत्न की निंदा की तथा कांग्रेस और जनता मे इस प्रकार की किसी भी अवांछनीय घटना के विरुद्ध अपनी आवाज उठाने का अनुरोध किया।[163] इन वर्षों की अवधि में कुछ एक अग्रगण्य समाचारपत्रों ने भी नमक कर घटाने अथवा उसे समाप्त करने की वकालत की।[164] दूसरी ओर 1886 में कुछ समाचारपत्रों ने आय कर लगाने के बदले नमक कर में वृद्धि की वकालत की।[165]

1888 तक ऊपरी बर्मा पर विजय और उसके संयोजन के उत्तर-पश्चिमी सीमा मे सैनिक कार्यवाही के तथा विनिमय में होने वाली निरंतर गिरावट के फलस्वरूप भारत सरकार की आर्थिक स्थिति एक बार फिर गड़बड़ हो गई थी और एक बार फिर नए करों का लगाना अनिवार्य हो गया। इस सबके परिणामस्वरूप तत्कालीन वित्त सदस्य जेम्स वैस्टलैंड को 19 जनवरी 1888 के अपने एक कार्यकारी आदेश द्वारा नमक पर 2 रुपये प्रति मन कर के स्थान पर उसे बढ़ाकर ढाई रुपये प्रति मन कर देना पड़ा।[166] 1902 में नमक कर से कुल आय 9.1 करोड़ रुपये हुई जबकि 1888 में इस कर से होने वाली आय की राशि 7.6 करोड़ रुपये थी।[167]

नमक कर में वृद्धि ने भारत में असंतोष, रोष और विरोध की सशक्त, तीव्र लहर उत्पन्न कर दी। 'मराठा', 'हिंदू', 'बंगाली' और यहां तक कि 'अमृत बाजार पत्रिका' के साथ साथ देश के बहुत सारे अग्रणी राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने बड़ी ही तीखी और निंदात्मक भाषा में इस पग की कठोर भर्त्सना की।[168] कुछ समाचारपत्रों के विरोध

का ढंग तो विद्रोह की सीमा को छूता सा लगने लगा। उदाहरणार्थ, बाल गंगाधर तिलक द्वारा संपादित केसरी ने अपने 31 जनवरी 1888 के अंक में टिप्पणी करते हुए लिखा :

> विश्व के किसी भूभाग में भारत के समान दुर्भाग्यग्रस्त लोग नहीं रहते। यदि विश्व के किसी भी देश के किसी व्यक्ति को उसके पापों के लिए दंड देना हो तो उसे भारत में भेज दीजिए। हमें यह सब भारत सरकार के नमक कर विषयक नवीन आदेश के संदर्भ मे ही सोचने को विवश होना पड रहा है। वस्तुतः इस प्रकार का अमानवीय पग केवल वही उठा सकता है जिसे भारतीय जनता की सर्वथा अभावग्रस्त और दीन-हीन दशा की चिंता ही न हो।···इस समय तो उन लोगों की ही बन आ रही है जो यह मानते हैं कि तलवार के बल पर अंगरेजों ने भारत को जीता है और तलवार के बल पर उन्हे इसे अपने अधीन बनाए रखना चाहिए।···बिल्ली स्वभावतः विनम्र और भीरु होती है परतु जब उसे आवश्यकता से अधिक दबाया जाता है तो वही पलटकर इस प्रकार से झपटती है कि उसका प्रहार असह्य हो जाता है। इस समय यही संभव स्थिति हिंद की है। यहां यह स्मरणीय है कि इस समय अंगरेज लोगो पर थोडा सा भी कर भार डालने में संकोच करने वाली सरकार के लिए भारत पर अपना स्थाई प्रभुत्व खोने की आशंका हो सकती है।[169]

'बोध समाचार ने अपने 25 जनवरी 1888 के अक मे चेतावनी देते हुए लिखा कि वर्तमान बढोतरी गहरी खाई के धसते कगार के अतिरिक्त और कुछ नही और इसे लागू करना जनता के रिसते घावो को हरा करना है, इसमे जनसाधारण की शाति और संतोष भंग होने की निश्चित आशका निहित है।[170] महाराष्ट्र मित्र ने अपने 8 मार्च 1888 के अक मे अन्यान्य वस्तुओं के साथ नमक कर मे वृद्धि के विरुद्ध लोगो को भडकाते हुए एक हिंदू और एक अगरेज के बीच एक वार्तालाप प्रकाशित किया, जिसमे हिंदू लार्ड डफरिन को कसाई की उपमा देता है। अगरेज जब हिंदू के इस व्यवहार पर आपत्ति प्रकट करता है तो वह उत्तर म स्पष्ट शब्दो मे कहता है : 'क्या नमक कर में वृद्धि जीवन रक्त चूसना नही ?'[171] इसी प्रकार बंगाल के पत्र 'प्रजाबंधु' ने अपने 27 जनवरी 1888 के अक मे आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा : 'सचमुच भारतीयो के लिए वह घडी अभिशाप रूप ही थी, जब लार्ड डफरिन ने भारत भूमि पर पाव रखा।'[172]

नमक कर मे बढोतरी ने एक बार फिर जी० वी० जोशी को 1888 मे सरकार की नमक कर नीति पर घातक प्रहार करने को उत्तेजित किया।[173] अततः इस प्रश्न को 1888 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने हाथ मे लिया और कर वृद्धि के पग को अमान्य ठहराते हुए उसके विरुद्ध प्रस्ताव पारित तथा अभिलिखित किया।[174] यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि काग्रेस ने यह प्रस्ताव अपनी ही स्थाई समिति की इच्छाओं के विरुद्ध पारित किया। स्थाई समिति इस प्रस्ताव का पहले ही इस आधार पर विरोध कर चुकी थी कि एक बार जब वृद्धि कर ही दी गई है तो उसके तुरंत उपरांत उसे हटाने की माग करना सर्वथा निरर्थक है।[175] अतः इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं कि रत्नगिरि जिले

के दो साधारण सदस्यों द्वारा प्रस्तुत तथा समर्थित प्रस्ताव पर कांग्रेस के किसी भी मुख्य नेता ने कोई भी वक्तव्य नहीं दिया।[176]

इस प्रश्न पर राष्ट्रवादी सर्वसम्मत मत को छिन्न-भिन्न करते हुए थोड़े से स्वर सरकारी पग के समर्थन में भी मुखरित हुए।[177] यहा यह उल्लेखनीय है कि पहले से ही विरोधी राज्य के चतुर्थ स्तंभ के रूप में मान्यता प्राप्त 'अमृत बाजार पत्रिका' और 'ट्रिब्यून' जैसे अधिकाश समाचारपत्रों के नाम इस समय इस प्रश्न पर राष्ट्रीय भावना के मुख्य स्रोत में पुन: सम्मिलित होकर उसे संयुक्त स्वर से वाणी देनेवालों की सूची के अंतर्गत नहीं था।

राष्ट्रीय नेताओं द्वारा परवर्ती वर्षों में नमक कर की तीव्र निंदा और उसमें कटौती की निरंतर मांग जारी रही। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने इस संबंध मे राष्ट्रीय भावना का सम्यक प्रतिनिधित्व किया और एक के बाद दूसरे वर्ष निरंतर इस कर में तात्कालिक कटौती की माग के प्रस्ताव पारित करती रही।[178] बहुत सारे प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं ने इसी पथ का अनुसरण किया।[179] जी० वी० जोशी के राजनीतिक शिष्य गोपालकृष्ण गोखले ने अपने राजनीतिक विषयों में नमक कर के प्रश्न को अपनी रुचि का विषय बनाया तथा अपने गुरु के कार्य को राजनीतिक मंच तथा विधानसभा के सदन से आगे बढाया।[180] इसी प्रकार अधिकाश राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने इस कर के विरुद्ध वर्षो तक अविच्छिन्न रूप से आंदोलन चलाए रखा।[181] इस संबध मे आर० डी० रसडन नामक एक अंगरेज व्यापारी द्वारा 'मराठा' के संपादक को लिखे और 'मराठा' के ही 21 जुलाई 1889 के अंक मे प्रकाशित पत्र का विवरण भी एक पर्याप्त रोचक तथ्य प्रस्तुत करता है। यद्यपि स्पष्टत: इसमें व्यक्तिगत मत का ही प्रकाशन था तथापि इसके प्रकाशन का अर्थ निश्चित रूप से इसके संपादक तिलक के मत के थोडा बहुत अनुकूल होना था। इसके प्रकाशन से संपादक जेल जाने से बाल बाल बचा।[182] पत्र लेखक रसडन ने भारतीय नेताओं को अनाज कानून विरोधी आदोलन के समानुरूप नमक कर के विरुद्ध आदोलन चलाने की सलाह दी। उन्होंने भारतीयों से अनुरोध किया कि वे सरकार को बताए कि अकाल मे बहुत बडी संख्या में होने वाली मृत्यु तो नमक कर से होने वाली हत्या ही है। यह सारी कार्यवाही घृणाजनक, लज्जाजनक तथा कलकपूर्ण है। हम इस कर को वापस लेने का अनुरोध करते है। यदि तुम इस कर को नहीं हटाओगे तो हम प्रयत्न करेंगे और स्थिति को इस प्रकार से असह्य और विषम बना दें कि तुम चाहो अथवा न चाहो पर तुम्हें इस कर को शीघ्रता से हटाना ही पड़ेगा। महात्मा गांधी द्वारा लगभग चालीस वर्ष बाद अपनाए गए पथ का निर्देश करते हुए उसने भारतीय नेताओं को सलाह दी कि वे अपने लोगों को समझाएं कि 'वे स्वयं नमक तैयार करें ताकि उन्हें नमक कर देना ही न पड़े · · · और आप नेतागण उनकी आवश्यकता के समय उन्हें सुरक्षा और संरक्षण प्रदान करने के लिए कोष की व्यवस्था करके उन्हें इस दिशा में प्रोत्साहन दे सकते हैं।'

बाद मे शताब्दी के बदलते बदलते जब बजटों में बचतें होने लगीं तो भारतीय नेताओं ने इन बचतों का निम्नलिखित रूप मे उपयुक्त उपयोग करने और सर्वप्रथम, नमक कर में कटौती करने के लिए संघर्ष किया।[183] मिलमालिक संघ को संबोधित करते हुए

डी० ई० वाचा ने तो यहां तक कहा कि कपास पर सीमा शुल्क हटाने से भी पहले नमक कर में कटौती करनी चाहिए।[184]

अंततः 1903 में 8 आने प्रति मन की दर से नमक कर मे कटौती की घोषणा की गई। जैसी कि आशा की जाती थी, भारतीय नेताओं ने इस घोषणा का सहर्ष स्वागत किया। हा, उस समय उन्होंने कर की इस दर को और नीचा करने की माग पेश कर दी।[185] परवर्ती महीनो और वर्षों में यह माग दोहराई गई[186] और जब 1905 में सरकार ने आठ आने प्रति मन की दर से और अधिक राहत देने की स्वीकृति दी तो भारतीयो ने अपनी प्रतिक्रिया सरकार को बधाई देने के साथ साथ इस कर मे और अधिक कटौती करने की मांग के रूप मे प्रकट की।[187]

यह उल्लेखनीय है कि जहा एक ओर भारतीय नेताओं का शक्तिसपन्न तथा प्रभुत्व-प्राप्त वर्ग नमक कर के विरुद्ध सघर्ष कर रहा था, वहा दूसरी ओर एक छोटा सा अल्पमत प्रमुख रूप से 'अमृत बाजार पत्रिका' के नेतृत्व मे नमक कर के बदले आय कर मे अथवा अन्यान्य करो मे राहत देने के पक्ष मे अपने विचार प्रकट कर रहा था।[188] जैसा हम पहले ही दिखा चुके है, थोड़े से अंतराल के लिए 1885 मे 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपनी स्थिति बदली थी और नमक कर मे वृद्धि का विरोध किया था, परतु 1888 के उपरात उसने एक बार पुनः अपनी पूर्ववर्ती स्थिति अपना ली।[189]

नमक कर पर राष्ट्रवादियों के प्रहार के कारण

राष्ट्रवादियो ने नमक कर पर अपने आक्रमण के लिए कौन से आर्थिक कारण प्रस्तुत किए? उन्होंने सैद्धांतिक आपत्ति उठानी प्रारभ की। उनकी घोषणा के अनुसार उत्तम राजस्व और न्यायपूर्ण कराधान का यह नियम है कि जीवन की प्रधान आवश्यकता की वस्तु नमक निस्सदेह जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता थी पर कराधान और वह भी इस असाधारण परिमाण मे नही होना चाहिए।[190] इसके उपरात उन्होंने प्रशासको की इस धारणा के आगे प्रश्नचिह्न लगाया कि यद्यपि इस कर से समृद्ध राजस्व की प्राप्ति होती है तथापि इसका भार लोगो को दुखप्रद प्रतीत नही होना क्योंकि यह जनसख्या के विशाल भाग मे बटा हुआ है।[191] उनका कथन था कि इसके परिमाण को अमूर्त रूप मे नहीं नापना चाहिए प्रत्युत भारतीय जनता की निपट दरिद्रता के सदर्भ मे और उस प्रसग मे ही उसे देखना चाहिए। यदि लोगो की आय के अत्यत निम्न स्तर को देखा जाए तो कुछ आने प्रति व्यक्ति कर भी वास्तव मे ही स्पष्ट रूप से उनकी कमर तोडने वाला सिद्ध होगा। इस दिशा मे तर्क देते हुए जी० वी० जोशी ने टिप्पणी की कि यदि अन्यान्य बातो के साथ अपेक्षाकृत निर्धन वर्गों की स्थिति मे निरतर उत्तरोत्तर सुधार हुआ होता जिससे उनके पास उनके जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अधिकाधिक सुविधा तथा अवकाश प्राप्त होता तो यह नमक कर इतना अधिक दुखद न होता।[192] 1888 मे इलाहाबाद कांग्रेस में नमक कर प्रस्ताव को पेश करने वाले एन० वी० बरवे ने अपनी मान्यता को सचित्र रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा : 'इस देश मे लाख लाख ऐसे लोग है कि जिनके लिए इन अतिरिक्त आठ आनो का अर्थ है वर्ष मे आठ दिन बिना भोजन किए व्यतीत

करना और विशेषत: उन लोगों के लिए जिन्हें पहले ही 24 घंटों में कठिनता से एक समय का खाना मिल पाता है।[193] कुछ राष्ट्रवादियो ने तो नमक कर के परिमाण की गणित-रूप में संगणना करके इस तर्क को बढ़-चढ कर समर्थन देना चाहा। उदाहरणार्थ, 1890 में प्रिंगल केनेडी ने संगणना की कि पाच व्यक्तियों के परिवार की पांच रुपये प्रति मास की आय पर नमक कर 6 पाई प्रति रुपये की दर से पड़ता था जबकि निम्न स्तर पर आय कर की दर चार पाई प्रति रुपये प्रति व्यक्ति पडती थी।[194] इसी प्रकार डी० ई० वाचा ने उसी वर्ष संगणना की कि यदि प्रति व्यक्ति आय को 2 पौंड भी मान लिया जाए तो नमक कर प्रति व्यक्ति आय का 1.1 प्रतिशत था।[195]

राष्ट्रवादियो के नमक कर विरोध का प्रधान आधार उसका दोषपूर्ण स्वरूप था जिसका उद्भव इस तथ्य से होता था कि यह कर देश के निर्धनो मे अत्यंत निर्धनो को, जो न तो किसी प्रकार के कर का भुगतान करने मे समर्थ थे और न ही जिनकी आय कठिनता से भी तन और प्राण एक साथ रख पाने में समर्थ थी, बहुतो की तो आय जीवन निर्वाह के ही उपयुक्त नही थी,[196] अत्यंत भारीपन, दबाव तथा क्रूरतापूर्वक प्रभावित करता था।[197] यही मुख्य कारण था कि भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने बार बार इस टैक्स में बढ़ोतरी का विरोध किया। इस सदर्भ मे थोडे से भारतीय नेताओ ने राजस्व की असमानता और नमक कर की प्रतिगामी प्रकृति का भी उल्लेख किया। 1871 मे इसी प्रमुख आधार पर दादाभाई नौरोजी ने नमक कर के विरुद्ध आपत्ति की। 'सिलेक्ट कमेटी आन ईस्ट इडिया फाइनास' को प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन मे दादाभाई ने निर्देश किया कि नमक कर के भार का परिमाण जितना अधिक गरीबो पर पड़ता था, अन्य धनिक वर्गो द्वारा भुगतान किए जाने वाले राजस्व के भाग का परिमाण उतना अधिक नही था। निर्धन कुलियो, श्रमिको और किसानो पर नमक कर का भार उनकी साधारण 20 शिलिंग वार्षिक आय का चार प्रतिशत था, यह बताने के उपरात उन्होने दृढ स्वर मे कहा : 'बीस शिलिंग प्रतिवर्ष कमाने वाले निर्धन व्यक्ति के लिए चार प्रतिशत कर भी अपेक्षाकृत धनी वर्गो की आय पर दस अथवा बीस प्रतिशत कर की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है।'[198] इसी प्रकार 1880 मे 'जरनल आफ पूना सार्वजनिक सभा' प्रकाशित 'फाइनास आफ इंडिया अंडर लार्ड लिटन' के अज्ञातनामा लेखक ने लिखा : 'यह कर अपने परिमाण मे धनिकों और निर्धनो को समान रूप मे प्रभावित करता है किंतु उनके साधनो के अनुरूप उन्हें प्रभावित नही करता। यही एक प्रबलतम कारण है कि इसे बराबर नीची दर पर ही रखा जाए जिससे यह निर्धन जनता के लिए दुखद सिद्ध न हो।[199] इसी प्रकार की भावनाएं अन्य नेताओं ने भी प्रकट की।[200] हां, जी० वी० जोशी ने अवश्य ही इस दृष्टिकोण को 1886 में अत्यंत स्पष्टता तथा निर्व्याजना के साथ अपने लेख मे प्रस्तुत किया। उनका तर्क था कि रकम के भुगतान मे समानता एक प्रकार की झूठी समानता है। यह सच्ची समानता अर्थात 'बलिदान की समानता' नही है।[201] दो वर्षो के उपरात 1888 में उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि नमक कर मे वृद्धि लोक करो के निर्धनों और धनिकों मे वितरण की विषमता को और गहरा करती है।[202]

भारतीय नेताओं द्वारा अपनाई गई दूसरी कसौटी नमक कर का नमक की खपत पर

पडने वाला प्रभाव था। इस संबंध मे यहा यह उल्लेखनीय है कि भूतकाल मे ब्रिटिश इडियन प्रशासक अपनी नमक कर नीति को इस कसौटी पर परखने के लिए बराबर सहमत रहे थे।[203] यहा तक कि 1888 मे कर मे बढोतरी करते हुए जेम्स वेस्टलेड ने यह आशा प्रकट की कि ढाई रुपये का भार अब नमक की खपत की बढती हुई दर को किसी भी रूप मे बाधित नही करेगा।[204] दूसरी ओर भारतीय नेता इस तथ्य मे पूर्णतया सहमत थे कि बनाए रखी जाने वाली नमक कर की ऊची दर से और विशेषतया 1888 मे की गई वृद्धि से नमक की खपत बाधित और क्षीण हुई है। बदले मे इसका अर्थ हुआ लोगो के दुखों और कष्टो मे भयकर रूप से वृद्धि क्योकि नमक एक ऐसा उपभोग्य पदार्थ था जिसकी शारीरिक स्थिति और मानव के स्वस्थ जीवन के लिए अनिवार्य उपयोगिता थी।[205]

एक बार फिर जी० वी० जोशी ने ही राष्ट्रवादियो के पक्ष को बडे ही सशक्त और युक्तियुक्त ढग से प्रस्तुत किया। सामान्य रूप मे उन्होने अपने पक्ष के समर्थन मे तथ्यो का ही आश्रय लिया। उन्होने पिछले 19 वर्षों के अनुभव का विस्तृत सांख्यिकी विश्लेपण प्रस्तुत किया।[206] उन्होने सिद्ध किया कि 'नमक की खपत सदैव नमक कर दरो मे परिवर्तन के अनुरूप ही परिवर्तित होती रही है। नमक कर मे वृद्धि से खपत घटी है और नमक कर मे कटौती का परिणाम खपत मे वृद्धि के रूप मे सामने आया है।[207] उन्होने निर्देश किया कि नमक के मूल्य मे वृद्धि के फलस्वरूप निर्धन व्यक्ति को ही अपनी खपत मे कटौती करने को विवश होना पडता है जबकि उच्च वर्ग के सपन्न खाते-पीते लोगो पर अथवा मध्यवर्ग के लगभग खाते-पीते लोगो पर नमक कर मे वृद्धि और कटौती से नमक की खपत मे किसी प्रकार का कोई प्रभाव नही पडता। इसके विपरीत नमक कर की दर मे स्वल्पतम तबदीली भी समाज के पिछडे निर्धन वर्ग की खपत पर उल्लेखनीय परिमाण मे अतर को स्पष्ट प्रदर्शित करती है। अत सारा समाज नमक की खपत मे किसी भी प्रकार की गिरावट का समान रूप से भागीदार नही होता, इसका सारा भार समाज के अधिक निर्धन वर्ग को ही अकेले उठाना पडता है।[208] 1896 मे उन्होने अपने लेख 'दि साल्ट ड्यूटी क्वेश्चन' मे इस तर्क को पुन दोहराया। इस लेख मे उन्होने 1888 के बाद के वर्षो मे अनुभूत अपने अनुभव को अभिव्यक्त किया तथा दृढता-पूर्वक कहा कि निराशाजनक भविष्यवाणी नितात सत्य सिद्ध हुई है। सख्यागत अको को उद्धृत करते हुए उन्होने सिद्ध किया कि नमक की खपत 1888 के उपरात 1888 से पूर्व की खपत के अनुरूप नही रही है। 1882-87 से नमक की खपत की दर औसतन 3 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी, 1887-8 से 1894-5 तक यह दर 0 12 प्रतिशत हो गई। इससे भी अधिक निराशाजनक स्थिति यह थी कि इस अवधि मे नमक की खपत जनसख्या मे वृद्धि के अनुरूप भी नही रही। जोशी ने सगणना की कि भारत मे प्रति व्यक्ति नमक की खपत जहा 1880-81 मे 8 8 पौड थी, और 1886-7 मे बढकर 10 3 पौंड हो गई थी, वहा 1894-5 मे वह फिर घटकर 9 5 पौंड हो गई। उन्होने संगणना की कि जनसंख्या के 8 करोड लोगो को 8 वर्ष पूर्व की खपत की आदत के मुकाबले अनुमानत लगभग 2 से तीन पौंड प्रति व्यक्ति नमक की खपत मे कटौती करने को विवश होना पडा। अतत: उनके द्वारा निम्नलिखित अभिव्यक्त निष्कर्ष उन्हे चौंकाने वाला ही था :

> भूखो मरते निर्धनो का रक्त चूसने वाली कर पद्धति, कितनी ही महत्वपूर्व आवश्य-कता से प्रेरित क्यो न हो, सर्वथा निंदनीय तथा स्पष्टतया तिरस्करणीय है। कोई भी राजस्व कानून, राजनीतिक अर्थव्यवस्था का कोई भी सिद्धात इस प्रकार की क्रूर कर पद्धति लागू करने की स्वीकृति नही देता। कितनी ही बडी अपरिहार्य आवश्यकता क्यो न हो ? राजस्व सबधी सकटकालीन स्थिति कितनी ही विषम और असह्य क्यो न हो ? जनसाधारण के कष्टो को इस प्रकार की निर्मम उपेक्षा को किसी भी रूप मे न्यायोचित नही ठहराया जा सकना।

इस कथन के उपरात आक्रोश और निराशा मे पूर्ण लेखक ने अपना अतिम निर्णय देते हुए लिखा: 'परन्तु दुख तो यह है कि हमारा वित्तीय प्रशासन सामान्य मानवीयता की दुर्बलता से परिचित ही नही, उसे सघर्षशील दरिद्रता से किसी प्रकार की सहानुभूति ही नही।'[209]

1888 के उपरात नमक कर विरोधी आदोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले दूसरे प्रमुख नेता थे गोपालकृष्ण गोखले। उन्होने जोशी का अनुकरण ही नही किया प्रत्युत सभी महत्वपूर्ण स्थितियो मे उन्होने जोशी द्वारा प्रस्तुत तर्को के साथ साथ उनके ही द्वारा उद्धृत साख्यिकी सगणनाओ को दोहराया। इस दिशा मे उनका महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होने जोशी के कार्य को लोकप्रिय बनाया।[210]

नमक कर के विरुद्ध राष्ट्रवादियो का दूसरा आरोप यह था कि इसमे नमक जैसी आवश्यक उपभोग्य वस्तु की पर्याप्त मात्रा मे अनुपलब्धि के कारण पशुओ और भूमि को नमक से वचित करके कृषि को हानि पहुचाने की प्रवृत्ति निहित थी।[211] इसके अतिरिक्त जी० वी० जोशी और गोपालकृष्ण गोखले ने नमक कर की इस रूप मे भी निदा की कि नमक उद्योग पर कर एक औद्योगिक कर था क्योकि इसके परिणामस्वरूप एकाधिकार पद्धति को बढावा मिलता था अत इससे भारत की विशेषतया आवश्यक और सशक्त आर्थिक प्रगति बुरी तरह से प्रभावित होती थी।[212] इसके साथ ही साथ उन्होने यह भी आरोप लगाया कि नमक कर लगाने के फलस्वरूप अस्तित्व मे आने वाले कतिपय विभिन्न तत्व जैसे कि नमक पर सरकार का एकाधिकार, विभिन्न प्रातो मे नमक कर का समा-नीकरण और कर की ऊची दरें आदि भारत के विभिन्न प्रातो मे विशेषतया बगाल मे एक फलते-फूलते स्थानीय उद्योग को प्रतिबाधित और विनष्ट करने मे तथा स्वदेशी उत्पादन को बाजार से निकाल फेंकने मे उत्तरदायी सिद्ध हुए हैं।[213] जी० वी० जोशी ने तो इस सीमा तक आरोप लगाया कि बगाल मे उद्योगो का सामूहिक ह्रास सभी देशी उद्योगो को विदेशियो को हस्तातरित करने की कर नीति की एक चातुरीपूर्ण रणनीति है।[214] उन्होने यह आशका भी प्रकट की कि एकाधिकार की मध्यवर्ती स्थिति अपनाए बिना ही कपटपूर्ण ढग से बगाल की ही घातक नीति बबई मे भी अपनाई जाने लगी है।[215]

कराधान के वैकल्पिक साधन

बहुत सारे भारतीय नेताओ ने धीमे स्वर मे या खुले रूप मे यह अभिस्वीकार किया कि बजट के घाटे ने सचमुच ही सरकार को इतनी ऊंची दर पर नमक कर बनाए रखने के

लिए बाध्य कर दिया है। इस घाटे की पूर्ति किसी न किसी रूप में होनी ही चाहिए। अतः उन्होंने अतिरिक्त राजस्व की उगाही के लिए नमक कर की अपेक्षा कम आपत्ति-जनक कुछ उपाय और साधन सुझाए। उनके विश्वास के अनुसार यह कार्य वास्तव में कोई बहुत कठिन कार्य नहीं था। उन्होंने प्रथम विकल्प के रूप में आयात कर पुनः लगाने की सिफारिश की।[216] कुछ नेताओं द्वारा सुझाया गया दूसरा वैकल्पिक साधन आय कर में वृद्धि थी।[217] और अब तक इसके अधिकार क्षेत्र से मुक्त वर्गों को इसकी अधिकार सीमा के अंतर्गत लाने की वकालत थी।[218] कुछ नेताओं ने तो धनिकों पर और धनिकों द्वारा उपभोग किए जाने वाले उत्पादनों पर सामान्य रूप से ही कर लगाने के लिए शासन पर दबाव डाला। इन नेताओं ने यह स्पष्ट नहीं किया कि इन करों की रूपरेखा क्या होगी ?[219] कुछ ने तो यह भी अनुभव किया कि 1888 मे नमक कर मे वृद्धि करने से पूर्व सिविल और मिलिट्री के चालू खर्चों में कटौती के परिमाण पर ध्यान दिया जाना उचित था।[220] उदाहरण के रूप में बंबई प्रांत के लगभग सभी समाचारपत्रो ने यह सुझाव दिया कि यूरोपीय सरकारी अधिकारियो के वेतन में लगभग चतुर्थांश की कटौती करके उस समय बजट के घाटे को बडे अच्छे ढंग से पूरा किया जा सकता था।[221]

जोशी और गोखले ने निर्देश किया कि स्वयं नमक कर की प्रचलित पद्धति के अंतर्गत ही राजकोषीय सिद्धात अपनाने की व्यवस्था की जाती तो अंततः इस कर मे होने वाली वसूली पर्याप्त मात्रा में बढ़ गई होती। यह सिद्धांत कराधान की इस सुप्रसिद्ध मान्यता पर आधारित था कि कर की दर इतनी नीची रखनी चाहिए कि जिसमे खपत को बढ़ावा मिले। इस नियम को अपनाने मे नमक कर जैसा राजस्व का साधन बड़ा ही सफल सिद्ध होता। 1896 मे जी० वी० जोशी ने गणना की कि यदि 1888 के उपरांत नमक की खपत का 1888 से पूर्व के वर्षों की दर पर बढ़ना जारी रहता तो इस खपत का परिमाण 1895-6 तक लगभग 100 लाख मन तक बढ जाता और राज्य को 2 रुपये प्रति मन कर की पुरानी दर पर दो करोड़ रुपये के लगभग बढ़े राजस्व की उतनी ही वसूली होती, जितनी कि कर के बढाने पर खपत के गिर जाने से वास्तव मे ही अब वसूली हुई है।[222] गोखले ने अपने 1902 के बजट भाषण मे कराधान का यह सिद्धांत अपनाने का अनुरोध किया।[223] अत में उन्होंने 1903 के अपने बजट भाषण मे स्पष्ट रूप मे प्रति-पादित किया : 'इस संबंध में' यहा तक कि राजस्व की दृष्टि से भी सर्वोत्तम नीति यह होनी चाहिए कि करों के परिमाण को घटा कर खपत की वृद्धि के अनुरूप कर वसूली मे होने वाली वृद्धि का लाभ ग्रहण किया जाए।[224]

भारतीय नेता अपने द्वारा सुझाए गए कराधान के वैकल्पिक साधनों में से किसी एक को भी मानने से सरकार द्वारा इनकार किए जाने पर रुष्ट हो गए। बहुतों ने तो सरकार के ब्रिटिश उत्पादकों, ब्रिटिश अधिकारियो और भारतीय जनता के अपेक्षाकृत समृद्ध और प्रभावशाली वर्गों के आगे झुकने के कारण उस पर कायरता और पक्षपात का तथा इस देश के करोड़ों असहाय और बेजबान लोगों को परेशान करने का तथा उन पर भार डालने का आरोप तक लगाया। उदाहरणार्थ केसरी ने अपने 24 जनवरी 1888 के अंक में निम्नलिखित व्यंग्यात्मक टिप्पणी की :

> यदि परम श्रेष्ठ वायसराय महोदय मांचेस्टर से आने वाले सूती सामान पर आयात कर लगाने का निश्चय करते तो इससे माचेस्टर के व्यापारियों मे व्याकुलता फैल जाती···क्या कृपालु ब्रिटिश सरकार संसद के चुनाव के समय उपयोगी सहायता देने वालो के प्रति कृतघ्न हो सकती थी ? यदि आय कर मे वृद्धि की जाती तो उसका भार अधिकांशतया उच्च यूरोपीय अधिकारियों और यूरोपीय व्यापारियो पर पडता । विनिमय की दर पहले से ही ऊंची होने के कारण यह भार उनकी कमर तोडने वाला होता और इससे वे विद्रोह के लिए उठ खडे होते । क्या लार्ड डफरिन जैसा समझदार व्यक्ति इस प्रकार के विरोधी तत्वो को उभार कर अपने उज्वल नाम को कलंकित करेगा ? संक्षेप मे लार्ड डफरिन ने इन दोनो विकल्पो को अस्वीकार कर तथा नमक कर मे वृद्धि के अवशिष्ट उपाय को अपना कर अपनी प्रतिभा का ही परिचय दिया है । लार्ड डफरिन को यह भली भांति ज्ञात है कि भारत की निहत्थी और वफादार जनता जब तक भी वह जीवित है, किसी माग के प्रति इनकार के स्वर का उच्चारण नही करेगी । भारतीयो को संगठनात्मक रूप से सुदृढ होने की भी तो आवश्यकता नही क्योंकि सरकार ने कृपापूर्वक उनकी सुरक्षा का दायित्व लिया हुआ है ।[225]

इसी प्रकार 'इंडियन स्पेक्टेटर' ने अपने 22 जनवरी 1888 के अंक मे लिखा .

> अथवा, कदाचित सरकार लोकमत से भयभीत है क्योंकि यह निश्चित है कि धनिक वर्गों पर लगे करो मे किसी प्रकार की वृद्धि के परिणामस्वरूप पच्चीस करोड लोगो के प्रतिनिधियो के विरोध के रूप मे सरकार को बुरा समय देखना पडता, जबकि बीस करोड लोगो के मुह मे जबान ही नही जिसमे नमक कर मे वृद्धि के विरुद्ध उनके द्वारा किए जाने वाले किसी प्रकार के विरोध की संभावना हो । सरकार की न्याय भावना के प्रति कुछ न कहा जा जाए, इतना तो निश्चित है कि भारत सरकार इस पीढी मे काफी समझदार है ।[226]

22 जनवरी 1888 के 'मराठा', 25 जनववरी 1888 के 'हिंदू', 26 जनवरी 1888 के 'अमृत बाजार पत्रिका', 28 जनवरी 1888 के 'बंगाली' ने तथा 4 फरवरी 1888 के 'संजीवनी' ने इसी स्वर मे अपना मत प्रकट किया ।[227] जी० वी० जोशी ने इस विषय मे सरकार की कार्यवाही के पीछे निहित कारणो का समान भावना से उल्लेख किया ।[228] 18 मार्च 1888 के 'मराठा' ने तो यहा तक दावा किया कि नमक कर से जुडा विचारणीय प्रश्न वस्तुत: यह है कि भारत देश भारतीयो के लिए है अथवा औरों के लिए ?

राजनीतिक सीख

बहुत सारे राष्ट्रवादी समीक्षकों ने विधान परिषद के दो नामजद सदस्यों, प्यारे मोहन मुकर्जी और दिनशा पेटिट के 1888 में नमक कर मे वृद्धि को समर्थन देने के व्यवहार की तीव्र भर्त्सना की ।[229] उन्होंने इसे राष्ट्रवादियों की इस धारणा के प्रमाण रूप मे प्रस्तुत किया कि वर्तमान विधान परिषदें भारतीय लोकमत को न सही रूप में प्रतिबिंबित करती हैं और न कर सकती हैं और न ही यह देश के जनसाधारण के हितों की रक्षा कर सकती

है। अतः इन विधानपरिषदो मे लोकप्रिय तत्वो को सम्मिलित करके इनका सुधार करना चाहिए।[230] इस निष्कर्ष को जी० वी० जोशी ने अच्छा समर्थन दिया। उन्होने टिप्पणी करते हुए लिखा कि 'नमक कर मे वृद्धि सबधी चर्चा विधान परिषद के लिए अपमानजनक है।···और देशी सदस्यो के लिए तो यह और भी अधिक अपमानजनक है।···इस सबसे बढ़कर तो व्यवस्था के लिए ही यह सर्वाधिक अपमानजनक है।'···[231] इसी प्रकार काग्रेस के 1890 के अधिवेशन मे मदनमोहन मालवीय ने कहा : 'हम इस बात पर सतोष कर लेंगे कि विधान परिषद मे कोई गैरसरकारी सदस्य न हो परन्तु हमारे लिए इस बात पर सतोष करना सभव नही कि ऐसे लोग गैरसरकारी सदस्य हैं जिनका जनता के साथ किसी भी प्रकार का कोई सपर्क नही, जो जनता की वास्तविक स्थिति मे सर्वथा अनजान है तथा जनता के प्रति अनिवार्यतया वाछनीय सहानुभूति न दिखाकर उसके प्रति विश्वासघात करते है।' उन्होने पी० एस० मुकर्जी और दिनशा पेटिट को निजी आय का उपभोग करने वाले और ऊचे वेतन पानेवाले अत्यन सम्मानीय सज्जन बताते हुए आलकारिक भाषा मे पूछा 'सज्जनो, क्या आपको विश्वास है कि विधानपरिषद के चुनाव मे यदि जनता के मत के लिए कोई अवकाश हो तो क्या जनता इन लोगो को सदस्य के रूप मे भी च ना चुनेगी ?' श्रोताओ की ओर से 'नही', नही', 'कभी नही' की तुमुल ध्वनि के मध्य उन्होने पुनः पूछा कि और यदि किसी भी प्रकार की गलती से ये लोग एक बार विधानपरिषद के सदस्य नियुक्त हो भी गए तो क्या अगले चुनाव मे उन्हे अपमान और घृणा के साथ ठकरा नही दिया जाएगा।[232]

निष्कर्ष

नमक कर के प्रति राष्ट्रीय दृष्टिकोण के उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने नमक कर मे कटौती और उस कर को समाप्त करने की माग को राष्ट्रीय स्तर पर और राष्ट्रीय नीति के रूप मे ही अपनाया था। वस्तुत· इस माग का नेताओ ने चालू वित्त नीति की निदा और उसकी व्यावहारिकता के आगे प्रश्नचिन्ह लगाने के लिए उपयोग किया। इसके साथ ही साथ इस मामले मे राष्ट्रवादी नेताओ ने देश की निर्धन जनता के हितो को सही रूप मे और तत्परतापूर्वक अभिव्यक्ति दी और इसके द्वारा उन्होने उभरते हुए राष्ट्रीय आदोलन मे निर्धन जनता को साथ लेकर चलने का प्रयास किया। वस्तुतः इस प्रयास मे निर्धनो को साथ लेकर चलने के तथ्य को भारतीय नेताओ ने अत्यत स्पष्टतापूर्वक समझ लिया था। 1890 मे राष्ट्रीय काग्रेस के छठे अधिवेशन मे नमक कर मे कटौती की माग के प्रस्ताव को पेश करते हुए प्रिगले केनेडी ने प्रतिनिधियो को निम्नलिखित अवतरण मे इस प्रकार सबोधित किया :

> प्रतिनिधि मित्रो ! क्या आप उन लोगो के कथन को जो आप पर यह दोष लगाते है कि आपका मामला निजी स्वार्थ से प्रेरित है और आपका आदोलन मात्र कृष्ण वर्ण के शूद्रों की गौर वर्ण के ब्राह्मणो के प्रति घृणा को अगरेजों के प्रति घृणा के रूप मे परिवर्तित करने के अतिरिक्त और कुछ भी नही, यह कहकर गलत सिद्ध कर सकेंगे कि यदि गुलामी का यह जुआ और किसी रूप मे कम दुखदायी नही बनाया जा

सकता तो हम पर ही कर लगाइए, धनिकों पर कर लगाइए परंतु कृपा करके निर्धनों को तो क्षमा कर दीजिए।[233]

इसी प्रकार 1892 मे काग्रेस के एक प्रतिनिधि जी० एस० खपर्दे ने नमक कर पर प्रस्ताव को दरिद्र नारायण की काग्रेस से विनय के रूप मे वर्णित किया।[234]

इसके विपरीत राष्ट्रीय नेताओ ने इस मामले में देश के धनिको के हितो की सुरक्षा की कोई चिता नही की अन्यथा धनिक वर्गो के प्रवक्ता के रूप मे वे भी इसी विश्वास से कि इससे धनिकों पर लगे आय कर जैसे अन्यान्य करो की समाप्ति मे सहायता मिलेगी, नमक कर को बनाए रखने तथा उसमे वृद्धि करने का समर्थन ही करते।[235] राष्ट्रवादियो की स्थिति और धनिक वर्गों के हितो के बीच अतर को स्पष्ट रूप से तभी देखा जा सकता है यदि जमीदारो, बड़े बडे व्यापारियो और गैरसरकारी अगरेजो के समकालीन प्रवक्ताओ द्वारा अपनाए गए और सार्वजनिक रूप मे अभिव्यक्त कर समर्थक दृष्टिकोण के सदर्भ मे राष्ट्रवादी नेताओ के दृष्टिकोण को देखा जाए। 1882 मे कलकत्ता के व्यापारियो के प्रवक्ता दुर्गाचरण लाहा ने इपीरियल विधानपरिषद मे नमक कर में कटौती की विचाराधीन नीति को भावनात्मक बताकर इसका विरोध किया। उन्होंने सुझाव दिया कि इससे अच्छा तो यह होता कि इसके बदले सरकार देश की परिस्थितियो के अनुकूल न बैठने वाले प्रत्यक्ष करो को हटा ही देती।[236] विधानपरिषद मे बगाल के जमीदारो के प्रतिनिधि महाराजा जीतेंद्र मोहन टैगोर ने लाहा के मत का पूरा पूरा समर्थन किया।[237] इसी प्रकार बगाल के जमीदारो के एक अन्य प्रवक्ता प्यारेमोहन मुकर्जी ने बबई के व्यापारियो के प्रवक्ता दिनशा पेटिट तथा भारत मे रहने वाले ब्रिटिश सरकारी कर्मचारियो और व्यापारियो के अनेक प्रवक्ताओ ने 1888 मे नमक कर मे की गई वृद्धि का पूरा पूरा समर्थन किया।[238] 1887 के बगाल राष्ट्रीय वाणिज्य सदन की समिति के प्रतिवेदन मे यह दावा किया गया कि आय कर की वर्तमान दर को दुगना करने की अपेक्षा नमक कर मे वृद्धि कम आपत्तिजनक थी।[239] सदन के 1889 के अध्यक्ष और सचिव ने तो पूरी शक्ति और दृढता के साथ नमक कर मे किसी प्रकार की कटौती का विरोध किया।[240]

उत्पाद राजस्व

राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत तथा एक अन्य परोक्ष कर उत्पादनो पर उत्पादन शुल्क के रूप मे तथा मादक द्रव्यो, शराब, भाग-धतूरा और अफीम, बेचने के लिए लाइसेंस फीस के रूप मे लगाया गया कर था। इस साधन से होने वाली कुल आय 1860-1 मे 1.18 करोड रुपये से 1880-01 मे 3 19 करोड तथा 1902-03 मे 6 64 करोड रुपये हो गई।[241] हमने यहा देशी अथवा कच्ची शराब से प्राप्त होने वाले राजस्व के उस पक्ष विशेष का ही यहा विवेचन प्रस्तुत किया है जो इस मद से होने वाली आय का प्रमुख भाग था।[242] देशी शराब पर शुल्क पद्धति देश के भिन्न भिन्न कालो मे है। इन पद्धतियों को मोटे तौर पर परस्पर दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है : (1) केंद्रीय शराब कारखाना पद्धति, इसके अंतर्गत उत्पादित तथा बिक्री के लिए अनुज्ञप्त प्रत्येक गैलन

शराब पर एक निश्चित शुल्क लगाया जाता था; (2) ठेका बिक्री पद्धति, इसके अंतर्गत उत्पादित मात्रा पर शुल्क न लगाकर कुल उत्पादन पर शुल्क लगाया जाता था और उसका भुगतान एक मुश्त नीलामी के आधार पर किया जाता था। स्पष्ट है केंद्रीय पद्धति की अपेक्षा ठेका बिक्री पद्धति मे शराब की खपत पर सरकारी नियंत्रण का अवकाश काफी कम था।[243] 1890 के वर्षो मे शराब की न्यूनतम खपत म अधिकतम राजस्व की उगाही भारत सरकार की एक नीति थी। इसका अर्थ था शुल्क की दर को बढाना तथा शराब की बिक्री के स्थानो को इस सीमा तक प्रतिबंधित करना कि उसकी खपत न्यूनतम हो जाए। इसके साथ ही साथ गैरकानूनी शराब के उत्पादन को भी सीमित कर दिया गया।[244] कम से कम 1890 के पश्चात तो क्रमश. नीलामी पद्धति को हटाते जाना और केंद्रीय शराब कारखाना पद्धति का विस्तार करना सरकार की निश्चित, निर्धारित और और घोषित नीति बन गई।[245]

भारतीय नेताओ ने मादक द्रव्यो की खपत और उन पर करारोपण के प्रश्न को बहुत अधिक महत्व दिया। भारतीय नेता कुल मिलाकर मदिरा के प्रयोग के विरुद्ध थे और देश मे मदिरापान की प्रवृत्ति के प्रसार के विरोधी थे। उनके विचार मे मदिरापान की प्रवृत्ति एक घातक दोष तथा भयकर उत्पात था जो नैतिकता को ध्वस करने वाला एक प्रकार का पापमय कृत्य था, आर्थिक दृष्टि मे देश को दरिद्र और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल बनाने वाला था।[246] कुछ नेताओ का तो यहा तक विश्वास था कि मदिरापान की प्रवृत्ति के विकास से श्रमिको की कार्यक्षमता घट जाने से औद्योगिक प्रगति दुष्प्रभावित होगी।[247]

मदिरा की खपत म वृद्धि की निदा करते समय भारतीय नेताओ ने यहा एक बार फिर 'पहली चपत सरकार के मुह पर मारी।' उन्होने सरकार पर यह आरोप लगाया कि वह और उसकी आबकारी नीति ही मदिरापान की प्रवृत्ति के प्रसार के लिए पूरी तरह उत्तरदायी थी। उन्होने अधिकतम उत्पादन शुल्क की वसूली के लिए जानबूझकर अथवा अनजाने मदिरापान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए अथवा तत्परता के साथ उसे निरुत्साहित करने मे असफल रहने के लिए सरकार की तीव्र भर्त्सना की।[248] 1880 के वर्षो मे बगाल मे तो सरकारी उत्पादन शुल्क नीति की आलोचना अत्यत उग्र तथा निरंतर थी क्योकि वहा उस प्रात मे ठेका पद्धति प्रचलित थी जिस पर मदिरा को सस्ता करने का आरोप लगाया जा रहा था।[249]

भारतीय नेताओ ने यह भी दोष लगाया कि एक ओर तो सरकार सार्वजनिक रूप से तथा सिद्धात रूप मे मदिरापान की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करने का दावा करती है परतु दूसरी ओर व्यावहारिक रूप मे उसकी नीति का प्रभाव सर्वथा विपरीत रूप म पड रहा है।[250] प्रशासन द्वारा उत्पादन शुल्क की वसूली मे वृद्धि करने वाले सरकारी अधिकारियो की मुक्तकठ से प्रशसा करने, उन्हे उन्नति देने तथा इस वसूली मे वृद्धि न कर पाने वाले अधिकारियो की निंदा करने की नीति अपनाने का वास्तविक परिणाम यह देखने मे आया है कि सरकारी कर्मचारी मदिरा की खपत को बढाकर उत्पादन शुल्क की वसूली मे वृद्धि करने के प्रति और उत्साही बन गए है।[251] यहा यह उल्लेखनीय है कि इस

विषय में सरकारी पक्ष के प्रवक्ता भी राष्ट्रवादियों के आरोप का प्रत्याहार करने में तथा उत्पादन राजस्व में वृद्धि का कारण उत्पादन शुल्क की ऊंची दर और उस पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रणों को सिद्ध करने मे कम उत्साही तथा कम तत्पर थे।[252] यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि कुछ एक अन्यान्य सदर्भो मे सरकारी अधिकारियों ने परोक्ष रूप में मदिरा की खपत में वृद्धि को स्वीकार तो किया परतु इसे सरकार ने जनता की बढ़ती संपन्नता के संकेत के रूप में ही प्रस्तुत किया।[253] राष्ट्रवादी नेताओ ने प्रश्न के समग्र रूप के अनुरूप ही सरकारी मान्यता का खंडन किया और उसके विपरीत यह धारणा प्रस्तुत की कि मदिरापान ने पियक्कडों और उनके परिवारो मे दुर्भाग्य, विनाश और दरिद्रता का आधिपत्य स्थापित कर दिया है।[254]

राष्ट्रवादी नेताओ का इस तथ्य के प्रति निश्चित मत था कि मदिरापान के व्यसन के विरुद्ध संघर्ष करने मे शिक्षा एक अत्यंत मद प्रभाववाला शस्त्र था। इस व्यसन के प्रसार को तत्काल कम करने के लिए प्रशासकीय उपाय ही उपयोगी सिद्ध हो सकते थे।[255] अत: उन्होंने मदिरापान के विरुद्ध लोकप्रिय आदोलन छेडने की ओर विशेष ध्यान नही दिया। उन्होने अपना सारा ध्यान और सारे प्रयास सरकार से जनता के नैतिक व्यवहार की श्रेष्ठता के आदर्श के समक्ष राजस्व के दृष्टिकोण को गौण बनाने और इस प्रकार मदिरापान की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करने की नीति को अपनाने के लिए अनुरोध और विवश करने पर ही केंद्रित किया।[256] उन नेताओं द्वारा सुझाए गए लगभग सभी प्रशासकीय उपायों का उद्देश्य मधुशालाओं और मदिरा बिक्री की दुकानो की संख्या घटा कर मदिरा को महंगा और मदिरा की प्राप्ति को दुर्लभ तथा कष्टसाध्य बनाना था। नेताओ द्वारा प्रचारित उपायो मे जिस उपाय को सर्वाधिक व्यापक लोकप्रियता मिली, वह था स्थानीय लोकमत। उन्होने माग की कि किसी भी स्थान पर नई मदिराशाला अथवा नई मदिरा बिक्री दुकान को खोलने के प्रश्न को निर्णय के लिए प्रत्यक्ष रूप मे अथवा स्थानीय नगरपालिका जैसी संस्थाओ के माध्यम से अभिव्यक्त लोकमत को निर्णायक तत्व के रूप मे ही ग्रहण करना चाहिए।[257] एक अन्य लोकप्रिय माग जो अधिकाशत. बगाल तक ही सीमित रह गई वह थी ठेका प्रथा की समाप्ति।[258] जब 1889-90 की अवधि मे बगाल के अधिकाश भागों मे ठेका पद्धति समाप्त कर दी गई, स्वयं भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने आगे बढकर उसका स्वागत किया।[259] राष्ट्रवादियो ने मदिरा पर आयात कर और उत्पादन शुल्क बढाने का समर्थन किया।[260] कुछ ने तो सरकार से मदिरा बिक्री केंद्र बंद करने, मदिरा की परचून बिक्री की दुकानों को लाइसेंस देने मे कठोरता बरतने जैसे विशुद्ध प्रशासनिक पग उठाने का अनुरोध किया।[261] यह भी कम आश्चर्यजनक नही कि राष्ट्रवादी नेताओं मे इन सभी उपायों की वकालत करते हुए नशाबंदी को कोई विशेष महत्व नही दिया। संभवत. उनके विचार मे यह उपाय व्यावहारिकता तथा संभावना के क्षेत्र से बाहर था।[262]

मदिरा से सबद्ध उत्पादन शुल्क से प्राप्त होने वाले राजस्व के प्रति राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण से उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका दृष्टिकोण और उसके पीछे प्रेरणा विशुद्ध राष्ट्रीय ही थी। भले ही मदिरा उत्पादन शुल्क राजस्व का एक

फलता-फूलता साधन था और इसका भुगतान केवल मदिरा के वास्तविक उपभोक्ताओं द्वारा ही किया जाना था जिससे देश की सामान्य जनता पर अतिरिक्त कर लगाने की आवश्यकता नहीं थी फिर भी राष्ट्रवादी नेताओं ने सर्वसाधारण की हितकामना की दृष्टि से इसे देखा और इस रूप में उसकी निंदा करने में किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं किया। इस संबंध में राष्ट्रवादियों की नीति के इस पक्ष को एक और दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। मदिरा को अपेक्षाकृत अधिक महंगा करने की राष्ट्रीय नीति अपनाने पर एक ओर मदिरा का सेवन करने वाले भारतीय नेताओं का भी घाटे मे रहना स्पष्ट था, दूसरी ओर मदिरा की पूर्ति में कटौती का स्वाभाविक परिणाम उत्पादन शुल्क मे ह्रास था और यह मदिरापान न करने वालों के हित के सर्वथा विरुद्ध था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस मामले में वित्तीय विषयों में भी भारतीय राष्ट्रवादियों ने नि:स्वार्थपरता और परोपकारिता का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया।

विचाराधीन प्रश्न से संबंधित दो अन्य तत्व भी यहां उल्लेखनीय हैं, प्रथम, कालांतर में भारत मे राष्ट्रीय आंदोलन में एक प्रबल राजनैतिक शस्त्र के रूप मे प्रयुक्त मदिरा विरोधी संघर्ष के इस रूप में प्रयोग करने की प्रवृत्ति का इस समय तक अभाव था। उच्च भारतीय नेताओं में यह भावना अवश्य उभरने लगी थी कि मदिरा विरोधी आंदोलन का जनता को राजनैतिक कार्यों का प्रशिक्षण देने के लिए उपयोग किया जा सकता है। 17 अप्रैल 1905 मे ऐंग्लो इंडियन टेंपरेंस एसोसिएशन के अधिवेशन मे बोलते हुए दादाभाई नौरोजी ने कहा :

> भारत मे इन लोगों की संस्था की 300 शाखाएं थी और इसका अर्थ था कि नीचे से ऊपर तक के सभी वर्गों, धर्मों और स्थितियों के लोग परस्पर संगठित होने, एक दूसरे के प्रति भ्रातृभाव अपनाने तथा एक महान उद्देश्य के लिए कार्य करने का पाठ सीख रहे थे।···यह संस्था भारत में मदिरापान के व्यसन को निर्मूल करने के लिए ही प्रयास शुरू करने नहीं जा रही थी, प्रत्युत समान रूप से ही महत्वपूर्ण परस्पर संगठित होने के उच्च विचारों को अपनाने के लिए भी जनसाधारण को प्रशिक्षित करने जा रही थी। यह संघ प्रवृत्ति इन लोगों के लिए सचमुच अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।[263]

द्वितीय, विदेशी सरकार के मदिरापान के प्रसार के लिए दोषी घोषित करने की प्रवृत्ति ने भारतीय उत्पादन शुल्क नीति को एक राष्ट्रीय रंग दिया।

अफीम से प्राप्त होने वाला राजस्व

अफीम भारत सरकार के राजस्व का एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत था। 1884 तक यह बजट की द्वितीय और 1884 के उपरांत तृतीय सर्वाधिक महत्वपूर्ण और लाभप्रद मद थी। इसकी वसूली में वर्ष प्रतिवर्ष बड़े ही भयंकर रूप से उतार-चढ़ाव आता रहता था और इसके फलस्वरूप भारतीय वित्त को निश्चित रकम की वसूली में सदैव अस्थिरता और अनिश्चितता रहती थी। उदाहरणार्थ, 1880-81 में अफीम से प्राप्त होने वाली विशुद्ध रकम 8.45 करोड़ थी, 1890-91 में 5.70 करोड़ और 1900-91 में 4.97 करोड़ थी

जबकि 1897-8 में यह 2.70 करोड की निम्न सीमा को पहुंच गई।[264] अफीम राजस्व की वसूली बंगाल अफीम के निर्यात से जिसका उत्पादन बंगाल सरकार के अधिकार के अंतर्गत बिहार, उत्तर-पश्चिम प्रात और अवध के राज्य एकाधिकार व्यवस्था के अतर्गत होता था तथा बंबई में मालवा अफीम पर भारी निर्यात शुल्क के संग्रह से होती थी। निर्यातित अफीम का अधिकाश चीन को भेजा जाता था और उसका एक भाग उत्पादन और राजस्व पद्धति के अतर्गत भारत मे बेचा जाता था जिसकी बिक्री से प्राप्त आय उत्पादन कर के खाते में जमा की जाती थी। अफीम से प्राप्त होने वाला उत्पादन शुल्क 1870-1871 में 36 लाख था जो धीरे धीरे बढकर 1900-01 मे 103 लाख हो गया।[265]

सारी 19वी शताब्दी मे ब्रिटेन की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और अनेकानेक लोक संस्थाओ ने नैतिकता और मानवीयता के आधारों पर चीन के साथ ब्रिटेन के अफीम के व्यापार की कटु आलोचना की। 1888 में अफीम व्यापार निरोध संघ (सोसाइटी फार दि सप्रेशन आफ दि ओपियम ट्रेड) की स्थापना के रूप मे अफीम व्यापार के, सरकार द्वारा उसे दिए जा रहे संरक्षण के तथा उसके उन्नयन के विरुद्ध एक सुनियोजित आदोलन प्रारभ हुआ।[266] इस आदोलन के फलस्वरूप 10 अप्रैल 1891 को हाउस आफ कामस ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमे इस बात को दृढतापूर्वक स्वीकार किया गया कि भारत मे अफीम से वसूल किया जाने वाला लगान अनैतिक था। इसके साथ ही भारत सरकार पर दबाव डाला गया था कि उचित रूप से औषधि के रूप मे प्रयोग मे आने वाली माग को छोड कर उसे पोस्त की खेती और अफीम की बिक्री के लिए लाइसेंस देने बंद कर देने चाहिए। 1893 मे इस प्रश्न को उसके समग्र रूप में देखने और उसकी छानबीन करने के लिए एक राजकीय आयोग (रायल कमीशन) नियुक्त किया गया। कमीशन ने 1895 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया और यथास्थिति मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन न करने की सलाह दी।[267] इन सभी वर्षों में भारत सरकार ने अफीम के व्यापार को निषिद्ध और प्रतिबंधित करने के किसी भी प्रस्ताव का तीव्र प्रतिवाद किया। भारत सरकार का प्रमुख तर्क यह था कि इस प्रकार के पगो से वित्तीय तथा राजनीतिक स्थितियों के दुष्प्रभावित होने की आशका थी।[268]

अफीम व्यापार और उससे प्राप्त होने वाले राजस्व के प्रति भारतीय नेताओ के दृष्टिकोण का अध्ययन रोचक है। उनके सामने एक ऐसी स्थिति आ गई थी जहा उन्हें दो बातो मे से एक का चुनाव करना था. प्रथम, अपना राष्ट्रीय हित, जो अनेक अन्य मामलो मे उनका पथप्रदर्शक तत्व बना रहा था; द्वितीय, मानवीयता और परोपकार की भावना, जिसके आधार पर वे प्राय: ब्रिटिश सरकार से आर्थिक तथा राजनीतिक रियायतें देने के लिए निवेदन करते आ रहे थे।

अफीम कर के नैतिक पक्ष के सबध मे अधिकाश राष्ट्रीय नेताओं ने सरकारी स्थिति के प्रतिकूल पक्ष ही ग्रहण किया। उनका यह पक्ष इस लगान के विरोधी आलोचक अंगरेजों की स्थिति के ही अधिक निकट था क्योंकि इन नेताओं ने खुले तौर पर घोषित किया कि अफीम का व्यापार और उससे उगाहा जाने वाला कर दोनों सर्वथा अनैतिक होने के कारण अत्यत निंदनीय थे। 1870 मे ही केशवचंद्र सेन ने हजारों दरिद्र चीनियों के हत्यारे

अन्यायपूर्ण अफीम व्यापार को हटाने की मांग की।[269] 1880 में दादाभाई नौरोजी ने बड़े क्षोभपूर्ण स्वर में घोषणा की कि अफीम व्यापार इंग्लैंड के मस्तक पर कलंक का टीका है और भारत के लिए इसमें भागीदार होना अभिशाप रूप है।[270] उसी तीव्र स्वर में 7 अगस्त 1881 के अंक मे 'मराठा' ने 40 करोड मानवों को विष देने के अभिशाप को भारतीय जनता के मत्थे मढ़ने के विरुद्ध विरोध प्रकट किया।[271]

दादाभाई नौरोजी और रमेश चंद्र दत्त अफीम मे प्राप्त राजस्व की प्रवृति के संबंध में सरकारी दृष्टिकोण से असहमत थे। सरकारी दृष्टिकोण यह था कि अफीम लगान का भुगतान भारतीय जनता द्वारा नहीं प्रत्युत चीनी उपभोक्ताओं द्वारा ही किया जाता है।[272] नौरोजी और दत्त का विपरीत मत यह था कि वस्तुतः यह भारतीय जनता पर एक गुप्त कर है क्योंकि यदि अफीम व्यापार पर सरकार का एकाधिकार न होता तो अफीम कर के रूप मे सरकार को होने वाले सारे के सारे लाभ भारतीय जनता को उपलब्ध होते।[273]

अफीम व्यापार के प्रमुख प्रश्न, अफीम व्यापार को खत्म करने पर भारतीय नेताओ मे मतभेद उत्पन्न हो गए। जहा अधिकाश नेताओं ने इस प्रकार का पक्ष ग्रहण किया जो भारत सरकार की नीति से बहुत कुछ मिलता-जुलता था, वहा उल्लेखनीय सख्या मे नेताओ ने मानवीय आधारो पर अफीम व्यापार को त्यागने का भी पक्ष ग्रहण किया। प्रथम पक्षवालो का तर्क था कि कोरी भावना को आधार बना कर अफीम कर की बलि चढाने की बात कहना युक्तिसंगत नही लगता क्योकि अफीम मे प्राप्त होने वाली राशि भारतीय वित्त का एक उल्लेखनीय अग है और उसे छोडने का अर्थ होगा उसके स्थान पर अन्य नए कर लगाना। अत उन्होने उस समय इग्लैंड मे चलाए जा रहे अफीम विरोधी ग्रादोलन की तीव्र आलोचना की।[274] इस प्रकार 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपने 9 जुलाई 1880 के अक मे टिप्पणी करते हुए लिखा . 'नैतिकता के दृष्टिकोण मे राजस्व के इतने अच्छे स्रोत को छोडकर उसकी पूर्ति के लिए नए करो को लगाने के रूप मे पहले ही निर्धन तथा अभावग्रस्त जनता के जीवन रक्त को निचोडना हमारी विनम्र नैतिक सम्मति मे ऊंचे स्तर की अनैतिकता होगी।'[275] संघर्षशील साधारण ब्रह्म समाज का उच्च नैतिक मुखपत्र, 'ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन' ने 15 जुलाई 1880 के अक मे अफीम लगान के संबध मे आदर्श नैतिक दृष्टिकोण अपनाने के रूप मे भारतीय अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने के विरुद्ध चेतावनी दी।[276] यहा तक कि भारत मे सामाजिक सुधारो के लिए सतत यत्नशील तथा प्रचंड प्रवक्ता 'इंडियन स्पेक्टेटर' ने अपने 12 मार्च 1882 के अक मे इंग्लेंड के अफीम विरोधी आंदोलन करने वालो को 'अच्छी भावनाओ से प्रेरित परतु अज्ञानी कट्टर लोगों का शक्तिशाली वर्ग बताया।[277] एक अन्य सुधारक पत्र हिंदू' ने अपने 3 जुलाई 1883 के अंक मे घोषणा की कि वह अफीम राजस्व को हटाने की माग का केवल इस शर्त पर समर्थन कर सकता है कि इंग्लेंड के करदाता इससे भारत सरकार को होने वाली क्षति की पूर्ति करने का वचन दें।[278]

बहुत सारे भारतीय नेताओं ने अंगरेजों के अफीम विरोधी प्रयास को दूसरे लोगों के मूल्य पर लोकोपकार के दभ का रूप देते हुए उस पर तीखे व्यंग्य प्रहार किए। उनका सुझाव था कि यदि ब्रिटिश लोग चीनियों के कल्याण के प्रति सचमुच ही उत्सुक थे तो

उन्हें अपनी सरकार पर भारत सरकार को अफीम राजस्व के खोने से होने वाली क्षतिपूर्ति के लिए दबाव डालना चाहिए।[279] यह भी पर्याप्त रोचक तथ्य है कि ब्रिटेन के अफीम विरोधी आदोलन के जिन अग्रणियों की ईमानदारी के आगे प्रश्नचिह्न लगाया गया और जिन्हे मूर्ख तथा कट्टर की उपाधियो मे विभूषित किया गया, उनमे भारत समर्थक, राष्ट्रीय काग्रेस के उत्साही पक्षधर, समद सदस्य डब्ल्यू एस० केन और सैमुअल स्मिथ जैसे लोग भी सम्मिलित थे।

भारतीय नेताओ के इस वर्ग ने अफीम व्यापार को प्रतिबंधित करने के विरोधी अपने पग के समर्थन मे कुछ और रोचक तर्क भी पेश किए। प्रथम, उनका निश्चित मत था कि चीन के दोषो मे सुधार के कार्य को हाथ मे लेने से पहले अधिकारियो और सुधारको का यह नैतिक दायित्व है कि वे भारत मे मदिरापान के दुर्व्यसन के विरुद्ध सघर्ष करें क्योकि मदिरापान अफीम फूकने की अपेक्षा किसी भी रूप में कम हानिप्रद नही था।[280] द्वितीय, कुछ की तो यह मान्यता थी कि अफीम निर्यात के त्याग से सबधित भारत सरकार का कोई भी पग सर्वथा निष्फल सिद्ध होगा क्योकि अभाव की खाई की पूर्ति प्रशा, तुर्की और सयुक्त राज्य अमरीका द्वारा अथवा अपने देश मे अफीम की खेती के विस्तार तथा अफीम के उत्पादन मे वृद्धि करके स्वयं चीनियो द्वारा अत्यत तत्परता और शीघ्रता से की जाएगी। इस प्रकार लोकहित का उद्देश्य तो अपूर्ण तथा अप्राप्त ही रहेगा। हा, इसमे भारतीयो को निश्चय ही आय के एक बढिया स्रोत से हाथ धोना पडेगा।[281] यह आश्चर्यजनक तथा उत्सुकतावर्धक है कि समाचारपत्रो ने यह तर्क प्रस्तुत नही किया कि अफीम व्यापार को निषिद्ध करने से इस व्यापार मे सलग्न भारतीय व्यापारी बहुत बुरी तरह प्रभावित होगे। इसके विपरीत अफीम विरोधी पत्रिका 'सजीवनी' ने अपने 23 दिसबर 1893 के अक मे व्यापारियो पर अफीम व्यापार के समर्थन का अभियोग लगाते हुए लिखा कि उनका ऐसा करना स्वाभाविक था क्योकि इससे उन्हे बहुत बडा लाभ जो था।[282] अफीम विरोधी आदोलन के विरोधी राष्ट्रवादियो द्वारा प्रस्तुत तर्कों के पीछे व्यापारिक प्रेरणा का अभाव तथा राजस्व प्रेरणा की प्रमुखता से यही सिद्ध होता है कि राष्ट्रवादी नेताओ के इस वर्ग की इस नीति के निर्माण के पीछे व्यापारियो के हित की किसी प्रकार की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नही थी।

मानवीयता के आधार पर अफीम उत्पादन को प्रतिबधित और अफीम व्यापार को कानूनी रूप से निषिद्ध करने के समर्थक भारतीय नेताओं के दूसरे वर्ग ने इस कार्यवाही से राजस्व को होने वाली क्षति की पूर्ति व्ययों मे कटौती द्वारा करने का सुझाव दिया। इस संबंध मे 'मराठा', 'हिंदू', 'सोम प्रकाश' और 'आनंद बाजार पत्रिका' जैसी बहुत सी पत्र-पत्रिकाओ की स्थिति समय विशेष पर सपादकीय लिखने वाले किसी भी महानुभाव की व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अनुरूप परिवर्तित रूप लेने वाली और इस प्रकार अस्थिर तथा डावाडोल रही है। 'आनद बाजार पत्रिका' ने अपने 20 जुलाई 1880 के अंक मे राष्ट्रवादियों की अफीम विरोधी भावनाओ को बडी ही स्पष्टता तथा प्रबलता के साथ निम्नलिखित अवतरण मे इस प्रकार से वाणी दी है :

क्योंकि चीन को अपनी मांग की सतुष्टि के लिए कही न कही से अफीम का आयात

आवश्यक रूप से करना ही है, अतः यदि भारत चीन को अफीम की पूर्ति करता है तो इसमे हानि ही क्या है ?' इस तर्क ने हमारे शासकों को नैतिकता की क्या ही बढ़िया आचार-संहिता सिखाई है ? इस प्रकार तो एक डाकू भी अपने कृत्य को आवश्यक बताकर न्यायोचित सिद्ध करेगा। एक हत्यारा भी यह कहेगा कि जिस व्यक्ति की उसने हत्या की है, उसे अंततः तो एक दिन मरना ही था, यह दूसरी बात है कि उसके हाथों से अथवा किसी अन्य कारण से ? यदि ब्रिटिश सरकार ईमानदारी से चाहे तो वह आसानी से कुल व्यय के आधे की कटौती कर सकती है और इस प्रकार सुविधापूर्वक अफीम के अनैतिक व्यापार को बंद कर सकती है।[283]

अफीम व्यापार के प्रबल तथा सतत विरोधी दादाभाई नौरोजी ने यद्यपि यह अभिस्वीकार किया कि बहुत सारे दूसरे राष्ट्रीय नेता इस प्रश्न पर उनके साथ नहीं थे,[284] तथापि उन्होंने उस समय इंग्लैंड जाकर राष्ट्रवादियों के लक्ष्य का प्रचार करने के लिए अफीम पर वाद-विवाद करने की चेष्टा की और इस रूप मे उन्होंने एक बार यह पुनः सिद्ध कर दिया कि उस समय कोई ऐसा सार्वजनिक विषय नहीं था जिसका प्रयोग उन्होंने राष्ट्रीय लक्ष्य के लिए न किया हो। 1880 मे अफीम व्यापार से भारत को किसी भी प्रकार के होने वाले लाभ को अस्वीकार करते हुए उन्होंने दावा किया कि इस व्यापार से होने वाला लाभ तो वास्तव में खिसक कर इंग्लैंड के पास पहुंच जाता है। भारत को तो केवल चीनियों की बद्दुआएं ही मिलती हैं। वस्तुत. अफीम कर तो केवल भारत की उस गंभीर आर्थिक रुग्णता तथा वित्तीय दिवालियापन को छुपाता है जिससे देश बहुत बुरी तरह से ग्रस्त है। उनका तर्क था कि यदि अफीम का यह अभिशप्त व्यापार न होता तो भारत इंग्लैंड की मांग को पूरा करने की स्थिति में न होता। उस समय भारत का दुर्भाग्य शीघ्रता से उभर कर सतह पर आ जाता और उसका उपचार संभव हो पाता। अत इस अफीम व्यापार ने भारत के कष्टों को और बढ़ावा दिया है।[285] 1886 में लंदन मे बुलाए गए अफीम व्यापार निरोध संघ की बैठक मे दिए गए अपने भाषण मे शब्द प्रतिशब्द इसी तर्क को दुहराते हुए दादाभाई नौरोजी ने संघ से अनुरोध किया कि अफीम के प्रश्न को भारत की प्रमुख समस्या दरिद्रता के संदर्भ मे अपने समग्र रूप मे ही देखें। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि भारत को अपने उत्पादको को रखने और अपने भौतिक संसाधनों को विकसित करने की स्वतंत्रता दी जाए तो भारत आसानी से इतने अधिक और पर्याप्त राजस्व जुटा सकता है कि सरकार बिना किसी संकोच अथवा सोच-विचार के अभिशप्त अफीम राजस्व को छोड़ सकती है।[286]

इस प्रकार राष्ट्रवादी नेताओं का अफीम व्यापार के प्रति दृष्टिकोण दोमुही भावनाओं से प्रभावित था और इस विषय मे ये दोनों भावनाएं परस्पर विरोधी मानवतावादी और निजी राष्ट्रीय हितवादी प्रवृत्तियां थीं। कुछ नेताओ ने इन दोनों विरोधी प्रवृत्तियो मे एकता लाने का प्रयास किया परंतु जब उन्हें इन दोनो मे एक का चुनाव करने को विवश होना पड़ा तो उन्होने मानवतावादी प्रवृत्ति को ही अपनाया। एम० जी० रानाडे, बाल गंगाधर तिलक, एस० एन० बैनर्जी और मोतीलाल, शिशिर कुमार घोष भ्रातृद्वय के साथ साथ बहुत सारे अन्य नेताओं ने नैतिकता के प्रश्न की अपेक्षा राष्ट्र

हित को ध्यान में रखते हुए अफीम व्यापार को निषिद्ध करके नए करों की संभावना की आशंका प्रकट की। इस संबंध में यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार भारतीय नेताओं ने 1877 से 1882 तक सीमा शुल्क को हटाने के लिए व्यापक और संयुक्त विरोधी आंदोलन चलाया था, अफीम व्यापार मे अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत वित्तीय संभावनाएं निहित होने पर भी इन नेताओं ने इस व्यापार के विरुद्ध संचालित ब्रिटिश आदोलन के विरुद्ध उसी प्रकार के किसी व्यापक और संयुक्त विरोध का आयोजन नही किया।[87] इसका विश्लेषण कदाचित इस तथ्य से हो जाता है कि अफीम राजस्व के मामले मे संभावित हानि केवल वित्तीय थी, उससे किसी प्रकार से औद्योगिक हित प्रभावित नही होते थे जबकि कपास सीमा शुल्क से वित्तीय हानि के साथ साथ औद्योगिक हितों को हानि पहुंचती थी। अतः स्पष्टतः भारतीय नेताओं का यह मंतव्य था कि वित्तीय हानि के प्रति विरोध प्रकट करके उसे भले ही सहन कर लिया जाए, चाहे इससे चित्त को संतोष न मिले और न ही सिद्धातों के पालन की प्रसन्नता मिले, परतु औद्योगिक हानि को तो किसी भी रूप मे सहन नही किया जा सकता क्योंकि इसके परिणाम दूरगामी होते हैं और इससे राष्ट्रीय हितो को वास्तविक और व्यापक क्षति पहुंचती है।

संदर्भ

1. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खंड IV पृ० 165-9, क्राने. पूर्वोद्धृत, पृ० 12-6; पी० जे० थामस : ग्रोथ आफ फेडरल फाइनास इन इंडिया (मद्रास, 1939) पृ० 239-54
2. चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 339.
3. कंडिका, 82
4. 16 अगस्त 1901 हसार्ड (चौथी सिरीज) खंड XCIX लगभग 1208 इसी प्रकार 1899 मे कर्जन ने घोषणा की कि बुरी हालत मे भी बजट मे 4½ करोड़ लाभ की उपस्थिति यह दिखाती है कि भारतीय वित्तो मे केवल सहन शक्ति ही नही प्रत्युत उनमे अद्भुत सामर्थ्य का स्रोत भी अंतर्हित है (स्पीचेज, I पृ० 76) तथा देखिए जी० हैमिल्टन, हसार्ड (चौथी सिरीज) 4 सितंबर 1895, खंड XXXVI लगभग 1702-05.
5. रिप० आई० एन० सी, 1898 पृ० 131
6. एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 242 तथा देखिए उनकी, स्पीचेज III पृ० 12 जान ब्राइट के उसी अवतरण को उद्धृत करते हुए पी० सी० राय ने 1895 मे दावा किया कि ब्राइट की कसौटी पर तो भारत पर ब्रिटेन का शासन स्वत: विनिंदित, स्वतः कलंकित तथा स्वतः लांछित सिद्ध होता है. (पावर्टी पृ० 276-7)
7. वही, पूर्वोद्धृत, पृ० 207.
8. वही, पृ० 229-30. जोशी ने इस सुझाव को भी अस्वीकार कर दिया कि भारतीय वित्तों की प्रवृत्ति व्ययों में संतुलन लाने की है अतः भारतीय वित्त को स्वस्थ कहा जा सकता है. जोशी के अनुसार यह संतुलन वित्तीय स्वास्थ्य का सूचक न होकर देश की सरकार की निरंकुश प्रकृति

का ही सूचक है ·· यह केवल प्रशासन की क्रूर शक्ति का ही प्रदर्शन है. ···व्यावहारिक रूप से अनुत्तरदायी और स्वेच्छाचारी विभाग की विवेकहीन नीति को राज के व्यय निर्धारित करने की अनुमति दी जा रही है इस प्रकार से व्यवस्थित व्ययो से जनता पर कराधान का स्तर निश्चित किया जा रहा है, जिसका वस्तुत जनता की कर भुगतान की क्षमता से किसी भी प्रकार का कोई सामान्य सबध नही (वही, पृ० 207).

9 गोखले, स्पीचेज, पृ० 21.

10 वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 607-08 भारत सरकार का विशुद्ध राजस्व 1881-2 मे 46-86 करोड रुपये और 1904-05 मे 65 17 करोड रुपये था (इपीरियल गजेटियर आफ इडिया, 1908 खड IV पृ० 201)

11 चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 326-8, दत्त, ई० एच०, II, पृ० 37-43, वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 85-91 और थामस पूर्वोद्धृत, पृ० 120

12 उदाहरणार्थ देखिए, रिपोर्ट आफ दि इंडियन फेमीन कमीशन, 1880 खड II पृ० 82, फाउलर हसार्ड (चौथी सिरीज) 15 अगस्त 1894, खड XXVIII लगभग 1140, और स्ट्रैची, इडिया (1903), पृ० 120-1

13 अध्याय 14 मे लैण्ड रैवेन्यू के अतर्गत 'इडियन पोलिटिकल इकोनमी' सबधी अश देखिए

14 आगे ओपीयम रैवेन्यू पर अनुभाग देखिए.

15 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 60 उन्होने साथ मे यह भी कहा : 'आप इस रकम को कर राजस्व कहें अथवा अपनी रुचि का कोई अन्य नाम दें सरकार इसे किसी भी रूप मे अथवा किसी भी शैली मे ग्रहण करें, इतना तो निश्चित है कि यह रकम सरकार के लिए देश की आय से ही ली जाती है इस तथ्य को तो नही बदला जा सकता है. भारत के सबध मे सरकार यह रकम भूमि लगान के रूप मे लेती है, अफीम कर के रूप में अथवा किसी भी अन्य रूप मे, इससे कोई अतर नहीं पडता तथ्य यह है कि सरकार देश की कुल आय मे से अपने लिए इतना अधिक राजस्व ले लेती है जो अन्यथा जनता के पास ही रहता' (वही) उन्होंने अपने इस मत को दोहराते हुए थोडे समय के उपरात और अधिक सशक्त अभिव्यक्ति दी राजस्व के इस भाग को राजस्व, कर, किराया, अशदान, वरदान, अभिशाप अथवा अगरेजी शब्दकोश की वर्णमाला के ए से जैड तक अक्षरके पर अन्य किसी नाम से पुकारिए, सीधी सी सच्चाई तो यह है कि देश को अपनी आय से सरकार को उसके प्रयोजनो के लिए एक निश्चित भाग देना ही पडता है यह भाग न तो आकाश से बरसता है और न ही देश की सरकार द्वारा किसी जादू से उत्पन्न किया जाता है (वही, पृ० 220) तथा देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 316, परिशिष्ट, पृ० 40 और आगे वाचा, सी० पी० ए० पृ० 539 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 223.

16 स्ट्रैची, इडिया (1894) पृ० 395 तथा देखिए चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 347

17 कर्जन, स्पीचेज, खड II पृ० 452 तथा वही, खड III पृ० 146.

18 थामस पूर्वोद्धृत, पृ० 77 पर.

19 नौरोजी की पावर्टी पृ० 58 पर उद्धृत, 1880 के अकाल आयोग की संगणना के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति पर 4 शिलिंग का कर भार था (रिपोर्ट आफ दि इडियन फैमिन कमीशन, 1880 भाग II पृ० 93).

20. हसार्ड (चौथी सिरीज) 15 अगस्त 1894, खड XXVIII, लगभग 1140 वित्त सदस्य एडवर्ड ला के अनुसार 1904 में कर भार का परिमाण केवल 1 42 प्रति व्यक्ति था (एम० सी० पी०

1904) खंड XLIII पृ० 534). स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 120 भी देखिए.

21. देखिए, पीछे अध्याय I.
22. चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 328 तथा पृ० 331.
23. कर्जन : स्पीचेज, खंड III पृ० 148 तथा जी० हैमिल्टन, इंडियन डिबेट्स, 3 फरवरी 1902 लगभग 106; ला : फाइनांशल स्टेमेंट, 1903 कंडिका 35.
24. स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 119; वैस्टलैंड, एल० सी० पी० 1895 खंड XXXIV पृ० 436.
25. उदाहरणार्थ, सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने 1895 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए व्यंग्यात्मक टिप्पणी की : 'यहां तक कि प्रेम के क्षेत्र मे भी कोई अपेक्षाकृत सुदर मूर्ति सामने नही आती किंतु ज्यों ही छानबीन करने वाली सर्च लाइट का प्रकाश उस पर डाला जाता है, सारा भ्रमजाल तत्काल लुप्त हो जाता है. (सी० पी० ए० में, पृ० 702).
26. हिंदू पायनियर, बिमानबिहारी मजुमदार की हिस्टरी आफ पोलिटिकल थाट फ्राम राममोहन टु दयानद (1882-4) खंड I (कलकत्ता, 1934) पृ० 91 पर उद्धृत.
27. दत्त, ई० एच० II पृ० 385 पर उद्धृत, और देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट डी०.
28. एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज I पृ० 203.
29. रिव्यू आफ फासेट्स 'थ्री एसेज आन इंडियन फाइनांस', जे० पी० एस० एस०, खंड III संख्या 1 (जुलाई 1880), पृ० 80 हमारे पास जी० ए० मन्नेकर का कथन प्रमाण रूप में उपलब्ध है जिनके अनुसार यह समीक्षा जस्टिस रानाडे द्वारा लिखी गई थी. (मनकर : पूर्वोद्धृत, पृ० 214).
30. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 116.
31. आर० एन० पी० बंब, 4 फरवरी 1888. उसी मनोदशा में लिखते हुए 'हिंदी प्रदीप' ने 1 जनवरी 1879 के अंक में टिप्पणी की : हमारी सरकार के पवित्र चरण असंदिग्ध रूप से अत्यंत चमत्कारी हैं, जहा जहा पडते हैं, वह धरती और वहा की घटिया से घटिया वस्तु राजस्व का बहुमूल्य स्रोत बन जाती है. (आर० एन० पी० पी० एम०, 11 जनवरी 1879).
32. आर० एन० पी० बंब, 11 फरवरी 1888. अपने 5 मार्च 1888 के अंक में इसी पत्र ने व्यंग्यात्मक ढग से सरकार को बजट का घाटा पूरा करने के लिए लोगो को लूटने और हवा, मेलों, विवाह तथा वेश्यागमन पर कर लगाने की सलाह दी (आर० एन० पी० बंब 10 मार्च 1888).
33. सी० पी० ए०, पृ० 354 पर तथा देखिए पृ० 351 और 367. दो वर्ष उपरांत सयानी ने चेतावनी दी कि वर्तमान करो में वृद्धि करना अथवा और नए करारोपण करना राजनीतिक खतरे का विषय बन जाएगा क्योंकि भारतीय जनता मे और अधिक करों के भुगतान की सामर्थ्य नही है (एल० सी० पी० 1898 खंड XXXVII पृ० 531)
34. उदाहरण के लिए देखिए, इंडियन स्पेक्टेटर, 24 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब, 30 अक्तूबर 1880); 'रिव्यू आफ दि इंडियन साल्ट टैक्स' जे० पी० एस०, जुलाई 1881 खंड IV संख्या 1), पृ० 60; नर्वाविभाकर, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बंब०, 12 जनवरी 1884); संजीवनी, 6 मार्च, साधारणी 7 मार्च (वही, 13 मार्च 1886); महाराष्ट्र मित्र, 9 सित० (आर० एन० पी० बंब, 18 सितबर 1885); एस० वी० सुब्बारायुडु, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 70; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 220-1, 281, हिंदू 29 अगस्त 1887 बंगाली 3 सितबर 1887; इंडियन स्पेक्टेटर, 28 अगस्त, 11 सितंबर, ज्ञान प्रकाश, 29 अगस्त, इंडियन यूनियन, 31 अगस्त, बिहार हेराल्ड और इंडियन क्रानिकल, 3 सितंबर, सुबोध पत्रिका, 4 सितंबर, इंदु प्रकाश, 5 सितंबर, इंडियन नेशन, 5 सितबर तथा अन्य अनेक भारतीय समाचारपत्र (वी० ओ० आई०, अक्तूबर

1887); बोध सुधाकर, 25 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888); मराठा, 22 जनवरी 1888; हितवादी, 22 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 20 मार्च 1895); बंगवासी 20 अप्रैल (वही, 27 अप्रैल 1895); राय, पावर्टी, पृ० 260 तिलक, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे 1895, खड XXXIII पृ० 90-1: पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 447-8; जी० वी० जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 203, 228-9; ट्रिब्यून, 16 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 25 जनवरी 1902); एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 259, 700; गोखले, स्पीचेज, पृ० 6-7, 21 परिशिष्ट, पृ० 1169 और 1178; नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 51; नंदी, इण्डियन पालिटिक्स, पृ० 120, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 747, 756, दत्त, ई० एच० II पृ० 559, 603.

35 राय, पावर्टी, पृ० 256-8; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 221-6; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 448; सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 348; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 611; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 700; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18965 और ई० ए०, पृ० 38-40; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 219-291. दत्त इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 141-2, ई० एच० II पृ० 383-4; गोखले, स्पीचेज, पृ० 6.

36. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 223

37. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 182

38. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 141, 156-7, 189, 292-4, 592. परिशिष्ट पृ० 38 एसेज, पृ० 374, पावर्टी, पृ० 60-1. 221; इंडियन स्पेक्टेटर, 24 जून (आर० एन० पी० बब, 30 जून 1883); तेलंग· सेलेक्टेड राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज (बबई 1885) (इसे आगे सदर्भ के लिए स्पीचेज से संकेतित किया जाएगा), पृ० 222; एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III पृ० 143 और सी० पी० ए०, पृ० 703, राय, पावर्टी, पृ० 259; सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 347-8; नंदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 110; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 756, दत्त, ई० एच० II पृ० 603-04, ए० मुखर्जी, एल० सी० पी० 1904 खड XLIII पृ० 423-4 तथा देखिए पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 447-8, 451-2; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 276, 279-80, 291-2; ज्ञान प्रकाश, 2 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903)

39. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 183

40 उदाहरणार्थ नौरोजी, पावर्टी, पृ० 60-1, 221-2 और स्पीचेज पृ० 156 और 293-4

41. सी० पी० ए०, पृ० 348.

42 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 157. भारत के व्ययों पर उन्होंने विलबी आयोग को बताया कि किसानों पर कराधान मात्र इस दृष्टि से दुखदायक है कि यह दुखदायक बन जाता है (स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 51) तथा पावर्टी, पृ० 221-2.

43 सी० पी० ए०, पृ० 348.

44 तेलंग, स्पीचेज, पृ० 223, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 30-1; गोखले, स्पीचेज, पृ० 15,21; दत्त, ई० एच० II पृ० 572; राय, पावर्टी, पृ० 258-9; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 32; बिशम्भरनाथ, एल० सी० पी०, 1897 खंड XXXVI, पृ० 182; ए० मुखर्जी, एल० सी० पी० XLIII, पृ० 424.

45. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 226 तथा देखिए, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 219 और 291.

46 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 116, 316, 361, 609 परिशिष्ट, पृ० 21; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 219

और 291 तथा देखिए, तिलक, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे 1895 खड XXXIII पृ० 91; दत्त, स्पीचेज, II पृ० 83-4; गुजराती, 22 मार्च (आर० एन० पी० बब, 28 मार्च, 1903).

47 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 61 स्पीचेज, पृ० 131, 528; राव, पावर्टी, पृ० 260-1, मालवीय, स्पीचेज पृ० 221, नटी, इडियन पालिटिक्स, पृ० 120; दत्त, ई० एच० II पृ० 377; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 10.

48 जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 45 तथा पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 574-5, 604.

49. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1-2, 8-9 तथा पृ० 6-7, 21, 71, 74 और 101 तथा देखिए, गोखले, रिप० आई० एन० सी०, 1904 पृ० 170 और आगे; वाचा, सी० सी० ए०, पृ०610-1 एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 700; आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII

50 रिवर्स थापसन, एल० सी० पी० 1882 खड XVI, पृ० 313-4, 1880 के भारतीय अकाल आयोग के अनुसार कराधान का भार पृथक पृथक वर्गों पर प्रति व्यक्ति भिन्न भिन्न था, भूमि से सबधित जमीदार वर्गों पर यह भार ·273 पौंड, कृषक श्रमिको पर ·085 पौंड व्यापारियो और अधिकारियो पर 164 पौंड और हस्तशिल्पियो पर ·1 पौड था इस सगणना के उद्देश्य के लिए आयोग को अपनी इच्छाओ के नितात प्रतिकूल भूमि लगान को समग्र कराधान मे सम्मिलित करना पडा (रिपोर्ट आफ दि इडियन फेमीन कमीशन, 1880, खड II पृ० 93)

51. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 177.

52 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 152 तथा देखिए, पृ० 89, 100, 142

53. वही, पृ० 164.

54 वही, पृ० 185 तथा पृ० 165.

55 वही, पृ० 91 और देखिए, पृ० 100, 149.

56 आर० एन० पी० एम०, 29 फरवरी 1888.

57. वही.

58 जे० पी० एस० एस०, जनवरी-अप्रैल 1888 (खड X, सख्या, 3-4) पृ० 21. इसी प्रकार 4 फरवरी 1888 के सजीवनी ने निर्देश किया कि इस देश मे धनिक वर्ग पर केवल उपयुक्त एव पर्याप्त कर नही लगा, इतनी ही बात नही, बल्कि बात यह है कि वह उतना कर भी नही देता जितना निर्धन वर्ग देता है (आर० एन० पी बग० 11 फरवरी 1888).

59. राय, पावर्टी, पृ० 261 और 274. बाद मे 1901 मे उन्होने सिफारिश की कि गरीबो पर कराधान भार को अवश्य कम करना चाहिए, भले ही इसके लिए उन करो को भारी खाते-पीते लोगों के कधो पर ही क्यो न डालना पडे (इडियन फैमिस, पृ० 67).

60. गोखले, स्पीचेज, पृ० 40 तथा देखिए, गोखले, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1900 खड XXXVIII पृ० 94, सोम प्रकाश, 24 जुलाई (आर० एन० पी० बग०, 29 जुलाई 1882); एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 704, दत्त : इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 163, केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903).

61. राय, पावर्टी, पृ० 274-5 पर उद्धृत.

62. प्रमाण के रूप मे देखिए, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 100, 140-2, 161-6,

63. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 222

64. उदाहरणार्थ, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 185, 221, 228; राय, पावर्टी, पृ० 241; जी० एस० अय्यर,

बिलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18646; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 250-2, 281; दत्त : इग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 133; स्पीचेज I पृ० 27, आर० एन० मधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 83, ज्ञान प्रकाश, 16 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 18 जनवरी 1879); बोध सुधाकर, 22 जनवरी, (वही, 29 जनवरी 1879), नवविभाकर, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 12 जनवरी 1884); सजीवनी, 18 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1885), साधारणी, 7 मार्च, सजीवनी, 6 मार्च (वही, 13 मार्च 1886), हितवादी, 13 जुलाई (वही, 21 जुलाई 1900); जी० एम० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1900 पृ० 29, ए० बी० पी० 18 मार्च 1901, एडवोकेट, 2 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 4 फरवरी 1905)

65 प्रस्ताव XII इस प्रकार का एक प्रस्ताव लगभग इसी भाषा मे काग्रेस ने निम्नाकित वर्षों मे पारित किया, देखिए, 1897 का प्रस्ताव IX, 1901 का प्रस्ताव VIII; 1902 का प्रस्ताव III और 1904 का प्रस्ताव III

66 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 185.

67 वही, पृ० 793-5 तथा पृ० 824, 1136. यहा यह उल्लेखनीय है कि जोशी ने अपनी उद्योग की परिभाषा के अतर्गत कृषि को भी शामिल किया था

68 गोखले, स्पीचेज, पृ० 13 तथा देखिए, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 710

69 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 1

70. जी० एस० अय्यर ई० ए०, पृ० 42-3; गोखले, स्पीचेज, पृ० 4, 15, 21, 73, दत्त, ई० एच० II पृ० 559, 596-7, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 691, 700-02, आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII

71 सी० पी० ए०, पृ० 700 पर

72 गोखले, स्पीचेज, पृ० 101

73 वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 533 निश्चय ही यह कामचलाऊ तखमीना था फिर भी मेरे विचार मे विचाराधीन विषय के लिए यह उपयुक्त और पर्याप्त था हमारे पास बहुत सारे उच्च सरकारी प्रवक्ताओ की मान्यताए प्रमाण रूप मे उपलब्ध हैं कि किसी भी अन्य कराधान को सहन करने की भारत की क्षमता पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न हो चुकी थी प्रमाण रूप मे देखिए, एलगिन, स्पीचेज, पृ० 490

74 1880 मे भूमि राजस्व से 21 1 करोड, नमक कर से 7 1 करोड, अफीम शुल्क से 10 4 करोड़, उत्पादन शुल्क से 3 1 करोड, सीमा शुल्क मे 2 5 करोड़ और आय कर (लाइसेंस कर) से ·5 करोड रुपयो की वसूली हुई, 1904 मे इन करो से प्राप्त होने वाली राशि क्रमश 28 3 करोड़, 7 9 करोड 9 0 करोड, 7 9 करोड, 6 4 करोड और 1 8 करोड रुपये थी. (पी० जे० थामस : पूर्वोद्धृत, पृ० 408).

75 लाइसेंस कर और आयकर के सक्षिप्त इतिहास के लिए देखिए, जे० पी० नियोगी : दि इवाल्यूशन आफ दि इडियन इनकम टैक्स (लदन 1929), प्रमथनाथ बैनर्जी : ए हिस्टरी आफ इडियन टैक्सेशन (कलकत्ता, 1930), और पी० के० आर० वी० राव टैक्सेशन आफ इनकम इन इडिया (कलकत्ता, 1931).

76. वित्त सदस्य चार्ल्स ट्रिवेलियन. पी० बैनर्जी . इडियन टैक्सेशन, पृ० 94 पर उद्धृत.

77. जान स्ट्रैची और रिचार्ड स्ट्रैची . दि फाइनांस ऐंड पब्लिक वर्क्स आफ इडिया, पृ० 197.

78 पी० बैनर्जी : इडियन टैक्सेसन, पृ० 72

79. आर० एन० पी० बंब, 12, 19, 26 जनवरी, 2 फरवरी, 1878, आर० एन० पी० बंग०, 12, 19, 26 जनवरी, 2 फरवरी, 2, 23 मार्च 1878, आर० एन० पी० एम०, अप्रैल 1878, आर० एन० पी० पी० एन०, 19, 26 जनवरी, 2, 9, 16, 23 फरवरी, 9, 16 मार्च, 6 अप्रैल 1878; एल० एम० घोष : स्पीचेज, पृ० 6

80. उदाहरण के रूप में देखिए, ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 1, 8 जनवरी 1880; बंगाली, 4 दिस० 1880; नवविभाकर, 1 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 6 मार्च 1880); विवेकवर्धिनी, सं० 12 (आर० एन० पी० एम०, मार्च 1880); बंबई समाचार, 11 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 11 दिसंबर 1880); रास्त गुफ्तार, 27 मार्च, जामे जमशेद, 1 अप्रैल (वही, 2 अप्रैल 1881); इंडियन स्पेक्टेटर, 3 अप्रैल (वही, 9 अप्रैल 1881); नेटिव ओपीनियन, 17 अप्रैल (वही, 23 अप्रैल 1881); इंडियन स्पेक्टेटर, नेटिव ओपीनियन, 12 मार्च (वही, 18 मार्च 1882); ए० बी० पी०, 16 मार्च 1882; अखबारे आम, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 अप्रैल 1882); रहबरे हिंद, 24 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1882); भारत मिहिर, 14 मार्च, सहचर, 15 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 25 मार्च 1882); द्रविड़ावर्तमणि, 2 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, अप्रैल 1883); इंडियन स्पेक्टेटर, 16 मार्च (बी०ओ०आई०, 31 मार्च 1884); बंगाली, 22 मार्च 1884.

81. आर० एन० पी० बंब, 19 जनवरी 1878.

82. वही, 29 अक्तूबर 1881. और देखिए बोध सुधाकर, 9 जनवरी (आर० एन०पी०बंब, 12 जनवरी 1878); रास्त गुफ्तार, 13 जनवरी (वही, 19 जनवरी 1878); कवि वचन सुधा, 21 जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 26 जनवरी 1878); आफताबे पंजाब, 21 फरवरी (वही, 23 फरवरी 1878); ए० बी० पी०, 10 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 10 जनवरी 1878); भारत मिहिर, 17 जनवरी, सोम प्रकाश, 21 जनवरी (वही, 26 जनवरी 1878); साधारणी, 20 जनवरी (वही, 2 फरवरी 1878); सुदेशाभिमानी, 1 मई (आर० एन० पी० एम०, मई 1878); विवेकवर्धिनी, सं० 12 (वही, मार्च 1880); आनंद बाजार पत्रिका, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 24 अप्रैल 1880); सोम प्रकाश, 7 जून (आर० एन० पी० बंग०, 12 जून 1880); एल० एम० घोष, स्पीचेज, पृ० 6; 16 मई 1880 को पूना की सार्वजनिक सभा में स्वीकृत ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III, सं० 1) पृ० 4.

83. जुलाई से दिसंबर 1878 तक के महीनों का आर० एन० पी० बंब, ए० बी० पी०, 21 फरवरी, प्रतिकार, 22 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 2 मार्च 1878); वर्ष 1879 में बंबई, बंगाल, पंजाब, और उत्तर पश्चिम प्रांतों तथा अवध और मद्रास के नेटिव प्रेस के प्रतिवेदन. ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 8 जनवरी 1880; बंगाली, 4 दिस० 1880; आनंद बाजार पत्रिका, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 24 अप्रैल 1880); सोम प्रकाश, 7 जून (वही, 12 जून 1880); नवविभाकर, 21 जून (वही, 26 जून 1880); इंडियन स्पेक्टेटर, 23 अक्तू० (आर० एन० पी० बंब, 29 अक्तूबर 1881)

84. सहचर, 14 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 26 जनवरी 1878); बनारस अखबार, 17 जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 26 जनवरी 1878); आफताबे पंजाब, 21 फरवरी (वही, 23 फरवरी 1878); ए० बी० पी०, 2 जनवरी 1880; बंगाली, 17 जनवरी 1880; हिंदू हितैषिणी, 21 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 28 फरवरी 1880); नवविभाकर, 1 मार्च (वही, 6 मार्च 1880); साधारणी, 7 मार्च (वही, 13 मार्च 1880); भारत मिहिर, 9 मार्च (वही, 20 मार्च

1880); इंडियन स्पेक्टेटर, 7 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 12 मार्च 1881).

85. जे० पी० नियोगी : दि इवाल्यूशन आफ दि इंडियन इनकम टैक्स, पृ० 100-03.

86. वही, पृ० 101.

87. सोर्स मैटीरियल फार ए हिस्टरी आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया, खंड I, 1818-85 (बंबई, 1957) पृ० 29-40.

88 इंदु प्रकाश, 14 जनवरी, रास्त गुफ्तार, 13 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 19 जनवरी 1878); जामे जमशेद, 24 जनवरी (वही, 26 जनवरी 1878), मफीदे बोधाना, 6 फरवरी, आफताबे पंजाब, 21 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 23 फरवरी 1878); सोम प्रकाश, 7 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 12 जनवरी 1878); वकीले हिंदुस्तान, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० पी० एन०, 13 अप्रैल 1878); सुदेशाभिमानी, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, अप्रैल 1878); साधारणी, 16 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 13 मार्च 1878): एल० एम० घोष, स्पीचेज, पृ० 6, 19 नए कर के अधिकार क्षेत्र से सरकारी कर्मचारियों और व्यवसाय में लगे हुए लोगों को बाहर रखने संबंधी प्रावधान की भर्त्सना करने के लिए मद्रास में एक जनसभा हुई. शम्स उल अखबार, 18 मार्च (आर० एन० पी० एम०, मार्च 1878).

89. बंगाली, 17 जनवरी, 6 मार्च 1880; ए० बी० पी०, 2 जनवरी 1880; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 8 जनवरी 1880: आर० एन० पी० बंब, 4 सितंबर 1880 में प्रतिवेदित समाचारपत्र, हिंदू हितैषिणी, 21 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 28 फरवरी 1880); नवविभाकर, 1 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 6 मार्च 1880); साधारणी, 7 मार्च (वही, 13 मार्च 1880); भारत मिहिर, 9 मार्च (वही, 20 मार्च 1880); सहचर, 15 मार्च (वही, 27 मार्च 1880); इंडियन स्पेक्टेटर, 6 मार्च, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 12 मार्च, 9 अप्रैल 1881); नेटिव ओपीनियन, 17 अप्रैल (वही, 23 अप्रैल 1881), सुबोध पत्रिका, 19 फरवरी (वही 25 फरवरी 1882); मराठा, 30 अप्रैल 1882; नेटिव ओपीनियन, 16 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 22 अगस्त 1885); इंडियन स्पेक्टेटर, 23 अगस्त (वही, 29 अगस्त 1885); जे० यू० याज्ञिक, रिप० आई० एन० सी० 1885, पृ० 67. और देखिए, आई० एन० सी० 1885 का प्रस्ताव VI.

90 जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III, संख्या 17) पृ० 4.

91. देखिए, 2 जनवरी 1880 की अमृत बाजार पत्रिका और 19 दिसंबर 1884 का हिंदू तथा देखिए, ए० बी० पी०, 3 जनवरी, ग्रामवर्त प्रकाशिका, 5 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 12 जनवरी 1878); हिंदू हितैषिणी, 12 जनवरी (वही, 26 जनवरी 1878); भारत मिहिर, 21 फरवरी (वही, 2 मार्च 1878); और साधारणी, 16 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 23 मार्च 1878); और इंडियन स्पेक्टेटर, 23 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब, 19 अक्तूबर 1881). 10 जनवरी 1878 के अमृत बाजार पत्रिका ने टिप्पणी की कि सरकार ने आय कर नहीं लगाया है क्योंकि उसे यूरोपियों और समृद्ध तथा प्रभावशाली भारतीयों का डर है.

92. बी० के० आर० वी० राव : टैक्सेसन आफ इनकम, पृ० 292. तथा पी० बैनर्जी : इंडियन टैक्सेसन, पृ० 127; ए कालविन, एल० सी० पी० 1886 खंड XXV पृ० 21 और आगे.

93. ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 8 जनवरी 1880; 22 दिसंबर 1881; बंगाली, 24 दिस० 1881; रास्त गुफ्तार, गुजरात मित्र, बांबे क्रानिकल और अरुणोदय, 11 दिस० सूर्य प्रकाश, 10 दिस०, न्याय प्रकाश, 12 दिस०, कासिदे मुंबई, 16 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 17 दिसंबर 1881); बंबई समाचार, जामे जमशेद, 20 दिस० (वही, 24 दिस० 1881); सहचर, 28 दिस० 1881

(आर० एन० पी० बंग०, 7 जनवरी 1882); परिदर्शक, 1 जनवरी (वही, 14 जनवरी 1882); नसीमे आगरा, 30 दिसंबर 1881 (आर० एन० पी० पी० एन०, 10 जनवरी 1882); सोम प्रकाश, 5 अक्तूबर, सुरभि ओ पताका 7 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 10 अक्तू० 1885); सहचर, 7 अक्तू०, भारत मिहिर, 8 अक्तू०, सजीवनी, 10 अक्तू (वही, 17 अक्तू० 1885); वायस आफ इंडिया जनवरी 1886; इडियन मिरर, 7, 9, 15 जनवरी, ट्रिब्यून, 9 जनवरी, बिहार हेराल्ड 19 जनवरी, इंडियन नेशन, 11 जनवरी, इडियन इको 11 जनवरी (वी० ओ० आई०, जनवरी 1886); हिंदुस्तानी 8 जन०, अखबारे ग्राम 9 जन० (वी० ओ० आई०, जन० 1886), बंगाली 9, 16, 23 जन० 1886; इडियन एसोसिएशन के सेक्रेटरी का भारत सरकार को पत्र बंगाली, 23 जनवरी 1886. बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का भारत सरकार को विरोधपत्र. रिपोर्ट आफ बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन 1885-6, पृ० 205-08; बबई समाचार और जामे जमशेद, 5 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 9 जनवरी 1886); इदु प्रकाश, 11 जनवरी, 10 जनवरी के गुजराती, गुजरात मित्र, रास्त गुफ्तार और येजदां परस्त. हितेच्छु, 14 जनवरी, पडित, 15 जन० (वही, 16 जन० 1886); सुरभि ओ पताका, भारत मिहिर, 31 दिस० 1885; भेरी, 1 जन० नव मेदिनी, 3 जन० ढाका प्रकाश, 3 जन० सोम प्रकाश और नवविभाकर, 4 जन० (आर० एन० पी० बग०, 9 जनवरी 1886), सहचर, 6 जनवरी, सजीवनी, 9 जन० (वही, 16 जनवरी 1886); उत्कल दीपिका, 16 जनवरी, (वही, 30 जन० 1886); कर्णाटक प्रकाशिका, तिथिरहित. हिंदू जनभूषयी, निथिरहित केरल मित्रन, तिथिरहित. शम्स उल अखबार, 8 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, फरवरी 1886); माडलिक, स्पीचेज, पृ० 660, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज, III पृ० 1-9.

94. वायस आफ इडिया, जन० 1886 तथा देखिए, इडियन मिरर, 7, 9, 15 जनवरी, इडियन इको, 11 जनवरी (वी० ओ० आई०, जन० 1886); बगाली, 9, 16 जन० 1887; 1886 में बबई प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का भारत सरकार को विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल; इडियन स्पेक्टेटर, 10 जन० (आर० एन० पी० बब, 16 जन० 1886); आर० एन० पी० बग०, 16 जनवरी से 6 फरवरी 1886, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III, पृ० 3-4.

95. रास्त गुफ्तार, गुजराती, गुजरात मित्र और अरुणोदय, 11 दिस०, इंदु प्रकाश, 12 दिस० (आर० एन० पी० बब, 17 दिस० 1881); बबई समाचार और जामे जमशेद, 20 दिस० (वही, 24 दिसबर 1881)

96. सहचर, 7 अक्तूबर, सजीवनी, 10 अक्तू० (आर० एन० पी० बग०, 17 अक्तू० 1885); सुरभि ओ पताका, 31 दिस० 1885, नवविभाकर, 4 जनवरी (वही, 9 जन० 1887); भारत मित्र, 7 जनवरी, उचित वक्त, 8 जनवरी, बगवासी, 9 जनवरी (वही, 16 जनवरी 1886); सहचर, 13 जन०, भारत मिहिर, 14 जन० (वही, 23 जनवरी 1886); सोम प्रकाश, 1 फरवरी (वही, 6 फर० 1886); बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का 1886 मे भारत सरकार को ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल मांडलिक, स्पीचेज, पृ० 651-60; एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III, पृ० 8.

97. जनवरी 1886 के वायस आफ इंडिया में भारतीय समाचार पत्रों की राय का सार-सक्षेप. 1886 में बांबे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III, पृ० 8.

98. ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 8 जनवरी 1880; बंगाली, 9, 16 जन० 1886; भारत सरकार को इंडियन एसोसिएशन के सेक्रेटरी का पत्र, बंगाली 23 जनवरी 1886 में; ट्रिब्यून, 9 जन० (वी० ओ० आई, जन० 1886); जनवरी 1886 के वायस आफ इंडिया में भारतीय समाचारपत्रों के

दृष्टिकोण का सार संक्षेप; 1886 में बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन के सैक्रेटरी का भारत सरकार को ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; सहचर, 30 दिसंबर 1885, सुरभि ओ पताका, 31 दिस० 1885 (आर० एन० पी० बग०, 9 जन० 1886); संजीवनी, 9 जनवरी (वही 16 जन० 1886)

99. ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 8 जनवरी 1880; 22 दिसं० 1881; पूना सार्वजनिक सभा, 1881 का ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, खंड IV, स० 1 (जुलाई 1881) पृ० 15; सहचर, 7 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 17 अक्तू० 1885). ट्रिब्यून, 6 फर० (वी० ओ० आई०, फरवरी 1886); मांडलिक, स्पीचेज, पृ० 665.

100. पूना सार्वजनिक सभा का 1881 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल. नवविभाकर, 4 जन० (आर० एन० पी० बग०, 9 जनवरी 1886); सहचर, 6 जनवरी (वही, 16 जनवरी 1886); सोम प्रकाश, 1 फरवरी (वही, 6 फरवरी 1886).

101. मांडलिक, स्पीचेज, पृ० 661.

102. 1870 और 1872 के लिए देखिए, बी० बी० मजूमदार : पूर्वोद्धृत, पृ०382-3 तथा ए० बी० पी०, 7 फरवरी 1871.

103. ए० बी० पी०, 2 जनवरी 1880; बगाली, 17 जनवरी 1880; आनंद बाजार पत्रिका, 30 दिस० 1879; नवविभाकर, 5 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 10 जन० 1880); नवविभाकर, 1 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 6 मार्च 1880); साधारणी, 7 मार्च (वही, 13 मार्च 1880);. भारत मिहिर 9 मार्च (वही, 20 मार्च 1880); सहचर, 15 मार्च (वही, 27 मार्च 1880);. तथा देखिए पीछे पादटिप्पणियां 89-90.

104. हिंदू, 19 दिस० 1884; इदु प्रकाश, 3 मार्च 1884; इंडियन स्पेक्टेटर, 23 अक्तूबर (आर० एन० पी० बंब, 29 अक्तू० 1881); 18 दिस० (आर० एन० पी० बब, 24 दिसंबर 1881); 9 मार्च 1884; सुबोध पत्रिका, 11 दिस० (आर० एन० पी० बब, 17 दिस० 1881); नवविभाकर, 19 दिस० (आर० एन० पी० बग०, 24 दिस० 1881); आनद बाजार पत्रिका, 26 दिस० 1881 (आर० एन० पी० बग०, 7 जनवरी 1882); साधारणी, 15 जन० (वही, 21 जन० 1882); प्रभाती, 7 अप्रैल (वही, 7 अप्रैल 1883); स्वदेशमित्रन, 11 दिस० (आर० एन० पी० एम०, दिस० 1884); दैनिक, 23 नव० (आर० एन० पी० बग०, 28 नव० 1885). 1880 से पूर्व इस प्रकार की माग के लिए देखिए, पीछे पादटिप्पणी स० 91.

105. प्रस्ताव VI. बाद में जब सरकार ने दोबारा कर लगाने का निर्णय किया तो गवर्नर जनरल ने कांग्रेस के इस प्रस्ताव को भारतीयो के प्रगतिशील वर्ग के मत के रूप में लेते हुए अपने पग की स्वीकृति के तौर पर उद्धृत किया. (एल० सी० पी० 1886 खड XXV, पृ० 27).

106. ए० बी० पी०, 14, 28 जन०, 4, 11 फरवरी 1886; हिंदू, 7, 9, 15 जनवरी 1886 (वी० ओ० आई० जनवरी 1886); मराठा, 17 जनवरी 1886 (मराठा ने आय कर को कराधान पद्धति के स्थाई पक्ष बनाए जाने का विरोध किया) इदु प्रकाश, 25 जनवरी 1886; सुबोध पत्रिका, 24 जन० (आर० एन० पी० बंब, 30 जन० 1886); शिवाजी, 29 जन० (वही, 6 फरवरी 1886); दैनिक, 30 दिस० 1885 (आर० एन० पी० बंग० 2 जनवरी, 1886); भारतवासी, 9 जन०, साधारणी, 10 जनवरी (वही, 16 जनवरी (1886); आनंद-बाजार पत्रिका 18 जन०, (वही 23,30 जन० 1886); सुरभि औ पताका, 28 जन० (वही, 6 फरवरी 1886); आफताबे पंजाब, 13 जनवरी (वी० ओ० आई०, जनवरी 1886); इन पत्रों में कुछ ने इससे पहले यहां तक कि कुछ ही दिन पहले आय कर का विरोध किया था. इसी सूची में प्रदर्शित बंगाल के प्रमुख समाचारपत्रों की व्यापक संख्या को देखते हुए, 1886 में बंगाल के हिंदुस्तानी भाषाई

समाचारपत्रों के प्रतिवेदन में की गई इस स्वीकृति पर आश्चर्य होता है कि आनंद बाजार पत्रिका को छोड़कर किसी एक भी स्वदेशी भाषाई पत्र ने आय कर का पक्ष लेते हुए उसका समर्थन नही किया. होम (पब्लिक) मार्च 1888. प्राग, 404 (ए) कडिका, 56.

107. रिप० आई० एन० सी० 1887 पृ० 135.
108. मालवीय, स्पीचेज, पृ० 505.
109. रिप० आई० एन० सी० 1902, पृ० 133
110. सी० पी० ए०, पृ० 704.
111 मसानी . पूर्वोद्धृत, पृ० 318 पर.
112 दत्त, ई० एच० II पृ० 165. समान रूप से ही महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि राष्ट्र की आय को दुष्प्रभावित करने वाले करो को लौटाने की माग के समय उनके द्वारा उल्लिखित कर थे : भूमि लगान, भूमि लगान पर उपकर, नमक कर, कपास उत्पादन शुल्क. उनके द्वारा हटाए जाने के लिए उल्लिखित किए गए करों में आय कर सम्मिलित नही था. देखिए, ई० एच० II पृ० 596-7. इसी प्रकार 1904 के बजट पर उनके भाषण. बी० के० बोस और श्रीराम ने आय कर जारी रखने के पक्ष मे ही भाषण दिया. (एल० सी० पी० 1904, खड XLIII पृ० 432 और 508 क्रमश).
113. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 141, 161-6, 190.
114. ज्ञापन, दिनाक 8 मार्च 1894. रिपोर्ट आफ दि इडियन एसोसिएशन 1892-3 से 1895-6 पृ० 43 तथा देखिए, पूना सार्वजनिक सभा का ज्ञापन, दिनाक, 23 दिस० 1890, जे० पी० एस० एस०, जन० 1891. (खड XIII स० 3) पृ० 80.
115. 20 सित० 1891, 7-8 मार्च 1894, 23 अक्तूबर 1902.
116. और देखिए, हिंदू, 8 अप्रैल 1889, 28 मई 1890, 3 दिसबर 1890.
117. आर० एन० पी० बंब, 20 दिस० 1890.
118 आर० एन० पी० बंग०, 17 मार्च 1894 तथा सजीवनी, 30 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 6 सित० 1890).
119. तिरगा निशान, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1889) इदु प्रकाश, 8 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 13 दिस० 1890); नेटिव ओपीनियन, 14 दिस० (वही, 20 दिस० 1890); मराठा, 14 दिस० 1890; बंगबासी, 30 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 6 सित० 1890); हिंदुस्तानी, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 27 जन० 1891); कैसरे हिंद, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 24 फरवरी 1894); स्वदेशमित्रन, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 15 अप्रैल 1899); जमी उल उलूम, 7 नव० (आर० एन० पी० एन०, 13 नव० 1900); अवध समाचार, 7 नव० (वही, 8 नव० 1902); हितवादी, 31 अक्तूबर (आर०एन०पी० बंग०, 8 नवबर 1902); स्वदेशमित्रन, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 9 अप्रैल 1904).
120. देखिए आगे 'नमक कर' सबधी भाग.
121. आर० एन० पी० बग०, 15 नव० 1890, वही, 21 फरवरी 1891 और आर० एन० पी० एन०, 25 नवंबर 1890 क्रमश:.
122. जी० आर० चितनवीस, एल० सी० पी० 1894 खंड XXXIII पृ० 246; महाराजा आफ दरभंगा, एल० सी० पी० 1897. खंड XXXVI पृ० 210; आशुतोष मुखर्जी, एल० सी० पी० 1904 खंड XLIII पृ० 416-20.

123. बी० ओ० आई०, जनवरी 1886, वही, फरवरी 1886 और आर० एन० पी० बंब, 16 जनवरी 1886 क्रमश:.
124. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 141-2, 161, 165, 190
125. आर० एन० पी० बंब, 24 फरवरी 1894.
126. हिंद, 7, 9, 12 जनवरी (बी० ओ० आई० जनवरी 1886).
127. रिपोर्ट आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1892-3 से 1895-6 पृ० 43.
128 बंगबासी, 9 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 16 जनवरी 1886); कैसरे हिंद, 18 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 24 फरवरी, 1894); संजीवनी, 10 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 17 मार्च 1894); ए० मुखर्जी, एल० सी० पी०, 1904 खंड XLIII पृ० 420-2. दुर्भाग्यवश इस मामले की मुखर्जी द्वारा की गई वकालत कर हटाने की वैकल्पिक मांग के कारण स्वत: महत्वहीन हो गई. (वही, पृ० 416-20).
129. आनंद बाजार पत्रिका, 30 दिसंबर 1879 (आर० एन० पी० बंग०, 10 जनवरी 1880); अखबारे आम, 21 जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 31 जनवरी 1882); मराठा, 17 जनवरी 1886; ट्रिब्यून, 20 फरवरी (बी० ओ० आई०, फरवरी 1886); सुबोध पत्रिका, 24 जनवरी, इंदु प्रकाश 25 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 30 जन० 1886); शिवाजी, 29 जन० (वही, 6 फरवरी 1886); सहचर, 30 दिस० 1885, सुरभि ओ पताका, 31 दिस० 1885 (आर० एन० पी० बंग०, 9 जनवरी 1886) आर्य दर्पण, 8 जनवरी, सजीवनी, 9 जन० आनंद बाजार पत्रिका 11 जन० (वही, 23 जनवरी 1886); साधारणी, 17 जन०, आनंद बाजार पत्रिका, 18 जन० (वही, 23 जन० 1886), हिंदू, 28 दिस० 1887, 8 अप्रैल 1889, 28 मई 1890, मराठा, 14 दिस० 1890; इंदु प्रकाश, 8 दिसंबर (आर० एन० पी० बंब, 13 दिस० 1890); नेटिव ओपीनियन, 14 दिस० (वही, 20 दिस० 1890), सजीवनी, 30 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 6 सित० 1890); स्वदेशमित्रन, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 15 अप्रैल 1899); जमी उल उलूम, 7 नवंबर (आर० एन० पी० एन०, 13 नव० 1900); अवध समाचार, 7 नवंबर (आर० एन० पी० एन०, 8 नवंबर 1902)
130. 29 दिसंबर 1881 तथा ए० बी० पी०, 2 जनवरी, 5 मार्च 1880, 28 जनवरी, 1886, 20 दिसंबर 1891 और 23 अक्तूबर 1902.
131. ए० बी० पी०, 29 दिस० 1881; सुबोध पत्रिका, 11 दिसंबर (आर० एन० पी० बंब, 17 दिस०, 1881); हिंदू, 3 दिस० 1890; बंगबासी, 30 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 6 सित० 1890); ए० बी० पी०, 20 सितंबर 1891. आफताबे पंजाब, 2 नवंबर (आर० एन० पी० पी०, 14 नव० 1891), स्वदेशमित्रन, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 9 अप्रैल 1904).
132. प्रत्यक्ष कर के भारत के अनुकूल न होने की धारणा पर प्रहार करते हुए उसने आगे लिखा : जबकि हम खर्चों में कटौती की माग और सभी प्रकार के प्रत्यक्ष करो को उठाने की प्रार्थना करना समाप्त नही करेंगे, यहां यह स्मरण रखना हमारे लिए कर्तव्य रूप है कि भारत मे प्रत्यक्ष करों का अत्यंत क्रूर, अत्यंत घातक और अत्यंत अन्यायपूर्ण भाग वह नही जिसका भुगतान हम स्वयं करते हैं प्रत्युत वह है जिसका भुगतान वास्तविक हल जोतने वाले अपने जीवन रक्त से ही करते हैं.
133. तथा देखिए, ए० बी० पी०, 2 जनवरी 1880, 14, 28 जनवरी, 4 फरवरी 1886, 20 सित० 1891. 18 अप्रैल 1893. 7, 8 मार्च 1894, 23 अक्तूबर, 1902
134. और देखिए, हिंदू, 8 अप्रैल 1889, 28 मई 1890.

135. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 164-6 तथा नवविभाकर, 5 जन० (आर० एन० पी० बंग०, 10 जनवरी 1880); सुबोध पत्रिका, 11 दिस० (आर० एन० पी० बब, 17 दिस० 1881); अखबारे आम, 21 जनवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 31 जन० 1882); इंदु प्रकाश, 8 मार्च 1884; इंडियन स्पेक्टेटर, 9 मार्च 1884 स्वदेशमित्रन, 11 दिस० (आर० एन० पी० एम०, दिस० 1884); दैनिक, 23 नवबर (आर० एन० पी० बग०, 28 नवबर 1885); मराठा, 17 जन० 1886. भारतवासी, 9 जनवरी, साधारणी, 10 जनवरी (वही, 16 जनवरी 1886); सुरभि ओ पताका, 28 जन० (वही, 30 जन० 1886); रिप० आई० एन० सी० 1887 पृ० 135; तिरंगा निशान, 13 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1889); सुधारक, 15 दिस० (आर० एन० पी० बब, 20 दिस० 1890); पूना सार्वजनिक सभा का 23 दिसंबर 1896 का ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1891 (खड XIII स० 3), पृ० 80; हिंदुस्तानी, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 27 जन० 1891), आफताबे पजाब, 2 नवबर (आर० एन० पी० पी०, 14 नवबर 1891); सजीवनी, 10 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 17 मार्च 1894); स्वदेशमित्रन, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 15 अप्रैल 1899); उमी उल उलुम, 7 नवबर आर० एन० पी० एन०, 13 नवंबर 1900) अवध समाचार, 7 नवबर (वही, 9 नवंबर 1902); हितवादी, 31 अक्तूबर, बगाली, 4 नव० (आर० एन० पी० बंग०, 8 नवबर 1902); स्वदेशमित्रन, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 9 अप्रैल 1904).

136 नवविभाकर, 26 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 31 जनवरी 1880); ए० बी० पी०, 29 दिस० 1881); इंडियन स्पेक्टेटर, 18 दिस० (आर० एन० पी० बब०, 24 दिस० 1881), और 9 मार्च 1884, सजीवनी, 10 अक्तू०, सोम प्रकाश, 12 अक्तू० (आर० एन० पी० बग०, 17 अक्तूबर 1885)

137. प्रस्ताव संख्या VI.

138 ए० बी० पी०, 28 जनवरी, 11 फरवरी 1886, बंगाली, 9, 23 जनवरी 1886; दैनिक, 30 दिस० 1885 (आर० एन० पी० बंग०, 2 जनवरी 1886); बगबासी, 9 जनवरी (वही, 16 जन० 1886); दैनिक और आनंद बाजार पत्रिका, 11 जनवरी (वही) सहचर, 13 जन०, भारत मिहिर 14 जन०, सजीवनी और भारतवासी, 16 जनवरी, साधारणी, 17 जनवरी (वही, 23 जनवरी, 1886); सुरभि ओ पताका, 28 जनवरी (वही, 6 फरवरी 1886); एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III पृ० 4; इंडियन एसोसिएशन का ज्ञापन, बगाली के 23 जन० 1886 के अंक में प्रकाशित· बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का ज्ञापन, रिपोर्ट आफ बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन 1885-6 पृ० 206-07.

139 प्रस्ताव संख्या VI.

140. मालवीय, स्पीचेज, पृ० 504.

141 1888 का प्रस्ताव VIII, ; 1889 का प्रस्ताव; III (जी); 1890 का प्रस्ताव II (जी); 1891 का प्रस्ताव IV, 1892 का प्रस्ताव V (बी), 1893 का प्रस्ताव III (बी); 1894 का प्रस्ताव XVI (बी); 1895 का प्रस्ताव XXII (ए); 1896 का प्रस्ताव XIII; 1898 का प्रस्ताव XX (बी); 1899 का प्रस्ताव XIV (III डी); 1900 का प्रस्ताव X (iii डी); 1901 का प्रस्ताव III तथा XIX (i ए)

142. उदाहरणार्थ, हिंदू 8 अप्रैल 1889; बंगवासी, संजीवनी, 30 सितंबर (आर० एन० पी० बंग०, 6 सित० 1890); नेटिव ओपीनियन, 14 दिसंबर (आर० एन० पी० बंब, 20 दिस० 1890); हिंदुस्तानी, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एन०, 27 जनवरी 1891); ए० बी० पी०, 20

सितंबर 1891; आफताबे पंजाब, 2 नवंबर (आर० एन० पी० पी०, 14 नवबर 1891); हिंदू, 4 अप्रैल 1894, 30 नवबर 1895, स्वदेशमित्रन, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 15 अप्रैल 1899); जमी उल उलुम, 7 नवबर (आर० एन० पी० एन०, 13 नवबर 1900), अवध समाचार, 7 नवबर (वही, 8 नवबर, 1902); ए० बी० पी०, 12 मार्च 1902; हितवादी, 31 अक्तूबर (आर० एन० पी० बग०, 8 नव० 1902)

143. जी० पी० सेन, रिप० आई० एन० सी०, 1887 पृ० 131-2. ज० सी० घोष, वही पृ० 133; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 505-08; राय, पावर्टी, पृ० 267-71, जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1894 खड XXXVIII पृ० 246, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1896, खड XXXV पृ० 285; जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1899 खड XXXVIII पृ० 234; पी० ए० चारलू, वही, पृ० 243, गोखले, स्पीचेज, पृ० 10, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902, खड XLI. पृ० 119; श्रीराम, वही, पृ० 142-3, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 704; सी० वाई० चितामणि, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 133.

144. रियायत की घोषणा करते हुए वित्त सदस्य सर एडवर्ड ला ने टिप्पणी की . 'जहा तक आय कर में छूट की सीमा को बढ़ाने की बात है, हमारा विश्वास है कि हजार रुपये से कम रकम पर कर का भुगतान अधिकाशत. साधारण व्यापारियों, व्यापारिक सस्थानो तथा सरकारी कार्यालयो के क्लर्कों और पेंशनभोगियो द्वारा किया जाता है जो आय के अपने निम्न तथा साधारण साधनो के कारण इस कर को असाधारण भार के रूप मे ही ग्रहण करते है. इसके अतिरिक्त हमारे विचार मे कर निर्धारको की जाच सबधी अनुचित कार्यवाही का शिकार भी अधिकाशत: इस निम्न वर्ग को होना पड़ता है. ये कर निर्धारक कभी कभी जाच के समय अन्यायपूर्ण ढग से बहुत ऊचे कर निर्धारित कर देते है. (फाइनांशल स्टटमेंट, 1903-04 कडिका 39)

145 गोखले, स्पीचेज, पृ० 38 श्रीराम, बी० के० बोस०, पी० आनद चारलू, एल० सी० पी०, 1903 खड XLI पृ० 100, 126 7, 140-2 क्रमश , हिंदू, 18 मार्च 1903, ए० बी० पी०, 19, 23 मार्च 1903; बगाली, 21 मार्च 1903; 28 मार्च, 4, 11 अप्रैल 1903 क० बी० ओ० आई० मे, 28 मार्च के आर० एन० पी० बब, मे, 28 मार्च, 4 11 अप्रैल 1903 के आर० एन० पी० बग मे, 4, 11, 22 अप्रैल 1903 मे आर० एन० पी० पी० मे, 28 मार्च, 4, 11 अप्रैल 1903 आर० एन० पी० यू० पी० मे तथा 21 मार्च 1903 के आर० एन० पी० एम० मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव स०, VIII

146. प्रमाण रूप मे देखिए, गोखले, स्पीचेज, पृ० 77 और आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव स०, VIII.

147. राष्ट्रीय दृष्टिकोण के इस पक्ष पर अमृत बाजार पत्रिका के संपादक मानिक ने 23 अक्तूबर 1902 को सार्वजनिक रूप से बल दिया उन्होने निर्देश किया कि वह आय कर का तब भी समर्थन कर रहे हैं जबकि उन्हें इस कर के कारण एक बहुत बडी रकम का भुगतान करना पड़ेगा

148. अत: भारतीय नेताओं की बड़ी सख्या वित्त सदस्य ए० कालविन की 1886 में उच्च वर्गों पर इस निंदापरक टिप्पणी से बच गई कि ये लोग जनता पर कराधान का भार डालने के लिए तो उत्सुक है परतु अपनी उगली भी छुआना नही चाहते. फलत. ये वर्ग विशेषत: व्यापारी और व्यवसायी लोग जिस सरकार की छत्रछाया मे फलते-फूलते हैं, उस सरकार के समर्थन के लिए कर के रूप में उसके प्रति अपना कोई भी योगदान नही देते कालविन ने अपने मित्रो, सपादकों का कररहित उल्लेखनीय आय अर्जन करने के लिए मजाक उड़ाया तथा उनसे जनता के भार मे

उनके समुपयुक्त भाग की उगाही द्वारा उच्च तथा मध्यवर्ग को कर से बचने के इस 'कलंक' से मुक्त करने का वचन दिया. (एल० सी० पी० 1886 खंड-25 पृ० 11 और 18) जैसा हम दिखा चुके हैं, भारतीय पत्रकार तथा अन्यान्य राष्ट्रीय नेता 'इस कार्य में सरकार की सहायता करने के लिए आधे से भी अधिक मार्ग तक आगे बढ़ने को सहमत थे. वस्तुत: जैसा कि नमककर वाले अगले भाग में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है, सरकार ने ही इस संबंध में इनकार का रवैया अपनाया. दो वर्ष बाद सरकार ने इस राह पर आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया. भारतीय नेताओं के पास इस इनकार की तीव्र आलोचना का मार्ग ही बचा था. तुलनीय डफरिन मिनिट्स, एन्क्लोजर टु डिस्पैच (पब्लिक)आफ गवर्मेंट आफ इंडिया, सख्या 68 दिनांक 6 नवंबर 1888.

149. उदाहरण के रूप में 8 अप्रैल 1889 के अंक में हिंदू ने निर्देश किया कि निम्न मध्य वर्ग का सालना 500-1000 उपार्जन करने वाला व्यक्ति आय कर चुकाने की अच्छी स्थिति में था उस व्यक्ति की अपेक्षा जो बेचारा नमक कर का भुगतान करता है. पत्र ने इस आधार पर मांग की कि प्रत्याशित राहत देने के किसी भी प्रश्न पर इन दोनों में निर्धन व्यक्ति को प्राथमिकता मिलनी चाहिए. और देखिए एस० एन बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 703-04; और पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902. खंड XLI, पृ० 119. कराधान में किसी प्रकार की राहत आय कर की अपेक्षा नमक कर और भूमि लगान के भार को हलका करने के दृष्टिकोण के लिए देखिए, ए० बी० पी०, 4 फरवरी 1886; मराठा, 14 दिस० 1890; सजीवनी, 30 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 6 सित० 1890); पूना सार्वजनिक सभा का 23 दिस० 1890 को प्रेषित ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जनवरी, 1891 (खड XIII स० 3) पृ० 80; मराठा, 29 मई 1904.

150. 1882 में इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल मे कलकत्ता के व्यापारियो के प्रतिनिधि दुर्गाचरण लाहा और बगाल के जमीदारो के प्रतिनिधि जीतेंद्र मोहन टैगोर ने नमक कर मे कटौती का विरोध किया. उन्होने इसके बदले लाइसेंस कर को हटाने की सिफारिश की (एल० सी० पी०, 1882 खंड XXI पृ० 290-1, 304), 1889 में दुर्गाचरण लाहा ने नमक कर में कटौती का विरोध किया और उसके बदले आय कर समाप्त करने का सुझाव दिया. उनके अनुसार आय कर समाप्त करने से जनता को ठोस और वास्तविक राहत मिलेगी तथा लोग इसका सचमुच ही स्वागत करेंगे. (एल० सी० पी०, 1889, खड XXVIII पृ० 141). 1890 मे बंगाल के राष्ट्रीय वाणिज्य सदन (बगाल नेशनल चैंबर आफ कामर्स) ने सरकार के पास आय कर समाप्त करने के लिए ज्ञापन भेजा (चैंबर की 1890 की रिपोर्ट, पृ० 23)

151. बगाल और असम को उनकी जरूरत का सारा नमक इग्लैंड और यूरोप से मिलता था. इसका प्रमुख कारण यह था कि देशी नमक उद्योग आयातित नमक की प्रतियोगिता नही कर सकता था. यह आयातित नमक वस्तुत: विदेशी पोतों मे पोत के भार को सतुलित करने के लिए लादा जाता था. स्थानीय नमक पर और आयातित नमक पर शुल्क लगाने के उपरांत दोनों का मूल्य बराबर हो जाता था. (पी० बैनर्जी : इडियन टैक्सेशन, पृ० 280-6; वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 457-8).

152. 1859 में यह दरें निम्नलिखित रूप से थी :
बगाल में 2 रु० 8 आने प्रति मन, मद्रास में 14 आने प्रति मन, बबई में 12 आने और उत्तरी भारत में 2 रुपये प्रति मन (पी० बैनर्जी : इडियन टैक्सेशन, पृ० 278).

153. जान और रिचार्ड स्ट्रैची : पूर्वोद्धृत, पृ० 219-32.

154. उदाहरण के रूप में देखिए, पी० बैनर्जी : इंडियन टैक्सेशन, पृ० 277. बी० बी० मजूमदार : पूर्वोद्धृत, पृ० 204, 484-5; दत्त, ई० एच० II पृ० 150-1

155. प्रमाण के रूप में देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 178. एसेज, पृ० 107; नेटिव ओपीनियन, 18 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 24 अगस्त 1872), सत्य शोधक, 5 सितंबर जगन्मित्र, 6 सित०, ज्ञान प्रकाश, 16 सित० (वही, 18 सितंबर 1875), बंबई समाचार, 21 सित० (वही, 25 सितंबर 1875), शुभसूचक 22 जनवरी और रास्त गुफ्तार, 14 जनवरी (वही, 20 जनवरी 1877), सूर्य प्रकाश, 5 जनवरी, गुजरात मित्र, 6 जनवरी, जाम जमशेद, 10 जन० (वही, 12 जनवरी 1878); इंदु प्रकाश, 14 जनवरी रास्त गुफ्तार, 13 जन० (वही, 19 जनवरी 1878); नेटिव ओपीनियन, 20 जन० (वही, 26 जन० 1878); बाबे क्रानिकल, 14 मार्च, जामे जमशेद, 17 मार्च (वही, 20 मार्च 1880), 'दि फाइनांसेज आफ इंडिया अंडर लार्ड लिटन' जे० पी० एम० एस०, अप्रैल 1880 (खंड II, सं० 4) पृ० 30, प्रोसीडिंग्स आफ दि सभा, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III सं० 1), पृ० 3, 'दि वायसरायल्टी आफ लार्ड लिटन', वही, पृ० 63, भारत मिहिर, 27 जुलाई (आर० एन० पी० बंग०, 7 अगस्त 1880), मराठा, 15 मई 1881; 'दि इंडियन साल्ट टैक्स, ए बुक रिव्यू', जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV सं० 1) पृ० 59-61, इंडियन स्पेक्टेटर, 14 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 20 अगस्त 1881); केसरी, 23 अगस्त (वही, 3 सितंबर 1881), इंडियन स्पेक्टेटर और रास्त गुफ्तार, 29 जनवरी (वही, 4 फरवरी 1882), हिंदी प्रदीप, जनवरी 1879 (आर० एन० पी० पी० एन०, 11 जनवरी 1879).

156 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 215.

157 बी० बी० मजूमदार पूर्वोद्धृत, पृ० 314 और 317

158 1877 में 'पत्रिका द्वारा अपनाई स्थिति के लिए देखिए, वही, पृ० 383 1881 में उसके रवैये के लिए देखिए 30 जून 1881 का उसका अंक, और देखिए, नवविभाकर, 26 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 31 जनवरी 1880); आनंद बाजार पत्रिका, 11 जुलाई (वही, 23 जुलाई 1881)

159. ए० बी० पी०, 30 जून 1881 तथा आनंद बाजार पत्रिका, 11 जुलाई 1881 पूर्वोक्त स्थल.

160 मराठा, 2 अप्रैल 1882, बंबई समाचार और जामे जमशेद, 10 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 11 मार्च 1882); अरुणोदय, नेटिव ओपीनियन, रास्त गुफ्तार और इंडियन स्पेक्टेटर, 12 मार्च (वही, 18 मार्च 1882), सोम प्रकाश, 13 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 18 मार्च 1882), सुलभ समाचार और बंगबासी, 18 मार्च (वही, 25 मार्च 1882), साधारणी, 19 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1882).

161. ए० बी० पी०, 16 मार्च 1882, भारत मिहिर, 14 मार्च, सहचर, 15 मार्च, नवविभाकर 20 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 25 मार्च 1882), चारुवर्त और आनंद बाजार पत्रिका, 20 मार्च, बिहार बंधु, 30 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1882), परिदर्शक, 26 मार्च (वही, 8 अप्रैल 1882); अखबारे आम, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० पी० एन०, 19 अप्रैल 1882), रहबरे हिंद, 24 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1882).

162 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 89-100 तथा देखिए पृ० 3

163 रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 69 और 73.

164. मराठा, 25 जन०, 22 मार्च 1885; शिवाजी, 23 जनवरी, जामे जमशेद, 29 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 31 जन० 1885), नेटिव ओपीनियन और इंडियन स्पेक्टेटर, 22 मार्च (वही, 28 मार्च 1885); हिंदू, 3 अप्रैल 1885, स्वदेशमित्रन, 18 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, जनवरी 1886); बंगबासी 2 और 23 जनवरी (आर०एन०पी० बंग०, 9 और 30 जनवरी 1886).

165. देखिए पीछे पादटिप्पणी संख्या, 100. उदाहरणार्थ ट्रिब्यून, 1 मई (वी॰ ओ॰ आई॰, मई 1886).
166. एल॰ सी॰ पी॰ 1888 खंड XXVII, पृ॰ 20.
167. थामस, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 498
168 मराठा, 22 और 29 जनवरी 1888; हिंदू, 25 जन॰ 1888; बंगाली, 28 जन॰ 1888; ए॰ बी॰ पी॰, 26 जन॰ 1888; नेटिव प्रेस बंबई के रिपोर्टर ने 28 जनवरी और 4 फरवरी 1888 को समाप्त होने वाले सप्ताहों की रिपोर्टों में लिखा कि इस सप्ताह के लगभग सभी समाचारपत्रों ने नमक कर में वृद्धि के संबंध में न्यूनाधिक रूप में रोष प्रकट किया है. और देखिए, आर॰ एन॰ पी॰ बंब, 11 फरवरी 1888; संजीवनी, 21 जनवरी, नवविभाकर, साधारणी, 23 जन॰ (आर॰ एन॰ पी॰ बंग॰, 28 जन॰ 1888); सुरभि ओ पताका, 26 जनवरी, प्रियबंधु और समय, 27 जनवरी, बंगवासी, 28 जन॰, ढाका प्रकाश, 29 जन॰ (वही, 4 फरवरी 1888); हिंदू रंजिका, 1 फरवरी, जगतवासी, 2 फरवरी, प्रतिकार, 3 फरवरी (वही, 11 फरवरी 1888); आर॰ एन॰ पी॰ एम॰ 31 जन॰, 15, 29 फरवरी 1888 में उल्लिखित लगभग सभी समाचारपत्र. कोहेनूर, 28 जनवरी, (आर॰ एन॰ पी॰ पी॰ एन॰, 31 जन॰ 1888); हिंदुस्तान, 1, 2, 3 फरवरी, पंजाबी अखबार, 4 फरवरी सुबोध सिंधु, 1 फर॰ (वही, 7 फरवरी 1888); अवध अखबार, 10 फरवरी (वही, 14 फरवरी 1888); वायस आफ इंडिया के कार्यालय में प्राप्त समाचारपत्रों द्वारा अभिव्यक्त मत को संक्षेप में प्रस्तुत करते हुए उसके संपादक ने लिखा कि अधिकांश ने नमक कर में वृद्धि के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया है, वी॰ ओ॰ आई॰, फरवरी 1888; नेटिव ओपीनियन, 22 जनवरी, इंडियन नेशन, 23 जनवरी, इंडियन यूनियन, 25 जन॰, पीपुल्स फ्रेंड्स, 28 जन॰ (वी॰ ओ॰ आई॰, फरवरी 1888); बिहार हेराल्ड और ट्रिब्यून, 11 फरवरी (वही, मार्च 1888).
169. आर॰ एन॰ पी॰ बंब, 4 फरवरी 1888.
170. वही, 28 फरवरी 1888 इसी प्रकार मृदु स्वर वाले इंदु प्रकाश ने अपने 30 जनवरी 1888 के अंक में चेतावनी देते हुए लिखा : कहा जाता है कि जैसे लार्ड डलहौजी ने अधिग्रहण नीति अपना कर लार्ड केनिंग के लिए विद्रोह से जूझने का वातावरण तैयार किया था, उसी प्रकार लार्ड डफरिन भी भारतीय जनता पर विभिन्न करों की वृद्धि द्वारा अपने उत्तराधिकारी के लिए कदाचित वैसा ही वातावरण तैयार कर रहे हैं. (आर॰ एन॰ पी॰ बंब, 4 फरवरी 1888).
171. आर॰ एन॰ पी॰ बंब, 17 मार्च 1888.
172. आर॰ एन॰ पी॰ बंग॰ 4 फरवरी 1888. बंबई के 'सत्य शोधक' ने अपने 25 जनवरी 1888 के अंक में टिप्पणी की कि 'इस प्रकार की अक्षम्य भूल करके लार्ड डफरिन ने भारतीय जनता की दृष्टि में अपने को घृणा का पात्र बना दिया है. (आर॰ एन॰ पी॰ बंब, 28 जनवरी 1888) 22 जनवरी के अंक में गुजरात मित्र ने व्यंग्यपूर्वक लिखा कि लार्ड डफरिन 'इस देश से बदनाम होकर ही जाएगा. भारतीय लोग उसकी अवहेलना करेंगे और भगवान से प्रार्थना करेंगे कि उन्हें शीघ्रातिशीघ्र इस व्यक्ति से छुटकारा मिले!' (वही).
173. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ॰ 137-90. सरकारी नीति के अन्याय से असंतुष्ट उन्होंने घोषणा की : वायसराय और राज्य सचिव आते जाते रहते हैं, उनकी कीर्ति भी बुलबुलों के समान क्षणभर के लिए दीप्त रहकर अनंत में सदा के लिए विलीन हो जाएगी, परंतु करोड़ों दुखी और क्लेशग्रस्त भारतीयों का अंत नहीं हो पाएगा. सांविधानिक रूप से उन्हें बोलने का अधिकार प्राप्त नहीं परंतु उनमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो अपने पर किए गए अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहने

कर लें' (वही, पृ० 140).

174. प्रस्ताव स० XV.

175. रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 179.

176. वही, पृ० 179-80.

177. इंडियन मिरर, 22 फरवरी (बी० ओ० आई०, फरवरी 1888); सोम प्रकाश, 23 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 28 जन० 1888); बर्दवान सजीवनी, 24 जनवरी, सहचर, 25 जन० (वही, 4 फरवरी 1888).

178. 1899 का प्रस्ताव III (i), 1890 का प्रस्ताव V; 1891 का प्रस्ताव VI (ए), 1892 का V(ए), 1893 का VII (ए), 1894 का XVI (ए), 1895 का XIX, 1896 का VIII, 1897 का IV, 1898 का XX, 1899 का XIII, 1900 का X, 1901 का XIX, 1902 का XIII. पूना सार्वजनिक सभा का 23 दिस० 1890 का ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1891 (खंड XIII सं० 3) पृ० 79-80. विभिन्न प्रातीय कांग्रेसो ने भी अपने वार्षिक अधिवेशनों में इस प्रश्न पर विचार किया.

179. नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 177. स्पीचेज, पृ० 142 (उन्होंने नमक कर को किसी सभ्य देश मे प्रचलित राजस्व पद्धतियो मे सर्वाधिक क्रूर बताया); वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1890. पृ० 37 9, रिप० आइ० एन० सी० 1895, पृ० 158; एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III पृ० 160; एस० ऍड डब्ल्यू०, पृ० 312; रिपोर्ट आफ दि बगाल नेशनल चैंबर आफ कामर्स 1888, पृ० 34; राय, पावर्टी, पृ० 266-7; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1896, खंड XXXV पृ० 84, 285; जी० वी० जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 191-202, 1136; जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1899, खंड XXXVIII पृ० 234; पी० ए० चारलू, वही, पृ० 243 और एल० सी० पी० 1902 खंड XLI पृ० 118.

180 उदाहरण के रूप मे देखिए, आई० एन० सी० 1890, पृ० 39 और रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 151.

181. उदाहरण के रूप में, बंगाली, 9 मार्च 1889; ओनामी अखबार, 7 फरवरी (आर० एन० पी० पी०, 9 फरवरी 1889); कोहेनूर, 5 मार्च (वही, 9 मार्च 1889); मराठा, 14 दिस० 1890, 23 जन० 1891; हिंदू, 10 जन० 1891; बंगाली, 28 मार्च 1891; आर० एन० पी० बंब, 28 मार्च और 4 अप्रैल 1891; पैसा अखबार, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 18 अप्रैल 1891); अखबारे आम, 16 अप्रैल (वही, 25 अप्रैल 1891).

182. रामगोपाल, पूर्वोद्धृत, पृ० 45, 47.

183. स्वदेशमित्रन, 16 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 4 दिस० 1900); बंगाली, 16 अक्तूबर 1901; भारत जीवन, 17 फरवरी (आर० एन० पी० यू० पी०, 22 फर० 1902); गोखले, स्पीचेज, पृ० 10-3; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902, खंड XLI पृ० 118-9; हितवादी, 4 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 12 अप्रैल 1902); आई० एन० सी० 1902 का प्रस्ताव XIII. स्वदेशमित्रन, 17 जन० (आर० एन० पी० एम०, 17 जनवरी 1903); 1902 की कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण करते हुए एस० एन० बैनर्जी ने घोषणा की कि यदि करों में राहत देनी ही है तो विचारणीय तथ्य यह है कि कटौती के लिए किस कर को प्राथमिकता देनी चाहिए. मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि नमक कर में ही सर्वप्रथम कटौती की जानी चाहिए (सी० पी० ए०, पृ० 703).

184. वाचा, स्पीचेज, पृ० 434.
185. आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव VIII. गोखले, स्पीचेज, पृ० 38, 40-1; श्रीराम तथा पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1903 खड XLII पृ०99-100 और 140-2; मराठा, 22 मार्च 1903; हिंदू, 18 मार्च 1903; बगाली, 19, 21, 25 मार्च 1903; वायस आफ इडिया, 21 मार्च 1903, मद्रास स्टैंडर्ड, 18 मार्च (वी० ओ० आई०, 28 मार्च 1903); इदु प्रकाश, 19 मार्च, इडियन मिरर, 20 मार्च, इडियन सोशल रिफार्मर, 22 मार्च (वही, 4 अप्रैल 1903), एडवोकेट और न्यू इडिया, 26 मार्च (वही, 11 अप्रैल 1903); आर० एन० पी० बब, 21, 28 मार्च, 4 अप्रैल 1903, आर० एन० पी० बग०, 28 मार्च, 4 अप्रैल 1903; आर० एन० पी० एम०, 21, 28 मार्च 1903; आर० एन० पी० यू० पी०, 28 मार्च, 4, 11 अप्रैल 1903; आर० एन० पी० पी०, 28 मार्च, 4, 11, 25 अप्रैल 1903 मे उल्लिखित समाचारपत्र.
186 उदाहरण के रूप मे हिंदू, 18 नव० 1903; हिंदुस्तान रिव्यू और कायस्थ समाचार, सितबर 1902; गोखले, स्पीचेज, पृ० 77-9; आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII (बी).
187. आई० एन० सी० 1905 का प्रस्ताव VII. गोखले, स्पीचेज, पृ० 93-5; मराठा, 26 मार्च 1905; बगाली, 28 मार्च 1905, आर० एन० पी० बब, 25 मार्च, 1, 8 अप्रैल 1905, आर० एन० पी० बग०, 1, 8 अप्रैल 1905, आर० एन० पी० एम०, 1, 8 अप्रैल 1905 मे उल्लिखित समाचारपत्र, सिटीजन, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० यू० पी०, 8 अप्रैल 1905).
188 डी० पी० सर्वाधिकारी, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 43-4. उन्होने नमक कर मे कटौती को मद्रास और बबई की (वर्गगत) माग बताते हुए उसकी आलोचना की. दैनिक औ समाचार चद्रिका, 20 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 24 फरवरी 1894)
189 ए० बी० पी०, 4 दिम० 1902, 12 जन०, 23, 24 मार्च 1903, 27 मार्च 1905 उसके द्वारा प्रस्तुत तर्कों मे एक यह था कि नमक कर में किसी भी प्रकार की कटौती का लाभ लिवरपूल और चेशायर के नमक व्यापारियो को ही मिलेगा
190. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 213-6, 'दि इडियन साल्ट टैक्स' जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खड IV स० 1) पृ० 59-61, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 91; केसरी, 24 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888), सजीवनी, 28 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 4 फरवरी 1888), हिंदुस्तान, 1, 2, 3 फरवरी, सुबोध सिधु, 1 फरवरी पजाबी अखबार, 4 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 7 फरवरी 1888), एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III, पृ० 161 और सी० पी० ए०, पृ० 703, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 38, पैसा अखबार, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 18 अप्रैल 1891); राय, पावर्टी, पृ० 261-2; गोखले, स्पीचेज, पृ० 13, 94, 1890 के कांग्रेस अधिवेशन मे इसी आपत्ति को चित्रात्मक भाषा में प्रकट करते हुए पजाब के लाला मुरलीधर ने नमक कर को 'भूख और प्यास पर, मानव जीवन पर कर' बताया. (रिप० आई० एन० सी०-1890 पृ० 42).
191. प्रमाण के रूप मे देखिए, ड्यूक आफ आरगिल का 21 जनवरी 1869 का सप्रेषण, जान स्ट्रेची तथा रिचार्ड स्ट्रेची : पूर्वोद्धृत, पृ० 222-3 पर; लिटन, एल० सी० पी० 1878 खड XVII पृ० 99-100, वेस्टलैंड, एल० सी० पी० 1888 खड XXVII पृ० 20.
192. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 184-5.
193. रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 179. 1890 के कांग्रेस अधिवेशन में यही तथ्य प्रस्तुत करते हुए मोहन चटर्जी ने आश्चर्यचकित होकर कहा "जब उच्च पद प्रतिष्ठित और विलासिता की

गोद मे लोटते हुए महानुभाव कहते हैं, 'अरे गरीब आदमी, इसे महसूस नहीं करेगा' तो हमे यह बहुत दुखदायी, बहुत निरुत्साहित करने वाला तथा बहुत हृदयद्रावक लगता है वस्तुत: हमारे पास इस मूर्खता, नग्नता तथा स्वार्थपरता को सही रूप में परिभाषित करने के लिए शब्द ही नहीं' (रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 46) इसी प्रकार की अन्य टिप्पणियो के लिए देखिए, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 186-7; नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 64; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 30-1; राय, पावर्टी, पृ० 265; हिंदू, 18 नवबर 1903.

194 रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 36

195. वही, पृ० 37 तथा देखिए वाचा को सी० एल० पारिख . पूर्वोद्धृत, पृ० 345 पर

196 नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 178; एस० ए० स्वामिनाथ अय्यर रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 69; बबई के नागरिको के द्वारा दिनाक 18 मार्च 1888 को प्रस्तुत सार्वजनिक ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जन-अप्रैल 1888 (खड X स० 3-4) पृ० 18, बगाली, 28 जन० 1888, इडियन स्पेक्टेटर, नेटिव ओपीनियन, 22 जन०, इडियन नेशन, 23 जन०, इडियन यूनियन, 25 जनवरी, पीपुल्स फ्रेंड, 28 जन० (वी० ओ० आई०, फरवरी 1888), बिहार हेराल्ड, ट्रिब्यून, 11 फरवरी (वही, मार्च 1888), स्वदेशमित्रन, 28 जन० (आर० एन० पी० एम०, 31 जन० 1888) एन० वी० बरवे, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 179, एस० एन० बैनर्जी और एस० तथा डब्ल्यू०, पृ० 312, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 37 और स्पीचेज, पृ० 434, जी० एस० अय्य, बिलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18762, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 30-1, राय, पावर्टी, पृ० 265-6, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902 खड XLI पृ० 118, हिंदू, 18 नवबर 1903 नमक कर मे वृद्धि से प्रभावित भारतीय जनता के दुर्भाग्य का सजीव चित्र खीचते हुए जी० के गोखले ने 1890 मे घोषणा की कि इस वृद्धि ने अकाल की सीमा पर जीवन निर्वाह करने वाले निर्धन तथा अभावग्रस्त लोगो के भयकर कष्ट, विषम दुख, गहन बाधाओ और भारी कठिनाइयो को और अधिक बढा दिया है जी० वी० जोशी ने इस विषय पर अपने विस्तृत लेख में इस तथ्य को भली प्रकार उजागर किया गोखले, रिप० आई० एन० सी०, 1890, पृ० 40; आई० एन० सी० 1895 की रिपोर्ट, पृ० 150-1, स्पीचेज, पृ० 11, 95, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 83-105, 137-90 191-202 विशेष रूप से देखिए, पृ० 3, 92, 140, 149, 167, 185-7, 195, 1136

197. 1888 का प्रस्ताव IV; 1895 का प्रस्ताव XIX, 1896 का प्रस्ताव VIII 1897 का प्रस्ताव IV, 1898 का प्रस्ताव XX (II बी), 1899 का प्रस्ताव XIV (II बी), 1900 का प्रस्ताव X (II बी) 1901 का प्रस्ताव XIX (II बी)

198 नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 178

199 जे० पी० एस० एस०, अप्रैल 1880 (खड II स० 4) पृ० 30

200 सजीवनी, 28 जन० (आर० एन० पी० एम०, 4 फरवरी 1888), पूना मे पारित प्रस्ताव, जे० पी० एस० एस०, जन०-अप्रैल 1888 (खड X स० 3-4) पृ० 31; जे० मुदालियार, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 46; गोखले स्पीचेज, पृ० 40

201. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 91

202 वही, पृ० 185 तथा देखिए, पृ० 149, पृ० 188

203 आरगिल के ड्यूक का 1869 का सप्रेषण, जान स्ट्रेची और रिचार्ड स्ट्रेची . पूर्वोद्धृत, पृ० 222 पर फाइनांशल स्टेटमेंट, 1877. दूसरी ओर दो भूतपूर्व वित्त सदस्य, ई० बेरिंग तथा ए० कालविन

अपना यह सुविचारित मत प्रकट कर चुके थे कि नमक कर में किसी प्रकार की वृद्धि का परिणाम निर्धनों पर भार में वृद्धि और नमक की खपत में कटौती होगी (एल० सी० पी०, 1882, खंड XXI पृ० 321-3 और एल० सी० पी० 1886, खंड XXVI पृ० 9-10).

204. एल० सी० पी० 1888 खंड XXVII पृ० 20

205. सत्य शोधक, 5 सित० जगन्मित्र, 6 सित०, ज्ञान प्रकाश 16 सित० (आर० एन० पी० बंब, 18 सित० 1875); केसरी, 23 अगस्त (वही, 3 सित० 1881), इंडियन स्पेक्टेटर, 22 जन०, केसरी, 24 जन०, शुभ सूचक, 20 जन० (आर० एन० पी० बंब, 28 जन० 1888); बंगवासी और संजीवनी, 28 जन० (आर० एन० पी० बंग०, 4 फरवरी 1888); पंजाबी अखबार, 4 फरवरी, सुबोध सिंधु, 1 फर०, हिंदुस्तान 1, 2, 3 फर० (आर० एन० पी० पी० एन०, 7 फर० 1888); पूना में सार्वजनिक सभा द्वारा 18 मार्च 1888 को स्वीकृत ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जन-अप्रैल 1888 (खंड X स० 3-4) पृ० 26-27; वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 37 और सी० एल० पारिख : पूर्वोद्धृत, पृ० 382 पी० केनेडी, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 36 बंगाली, 28 मार्च 1891; पैसा अखबार, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 18 अप्रैल 1891); अखबारे आम, 16 अप्रैल (वही, 25 अप्रैल 1891); राय, पावर्टी, पृ० 264-5; ए० डी० उपाध्याय, रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 151; 1902 की कांग्रेस का प्रस्ताव सं० XIII इस विषय पर लोकप्रिय भावना के प्रदर्शनार्थ कुछ एक अवतरण नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं : 1890 की कांग्रेस में पी० केनेडी ने दुखित होकर कहा : नमक की सस्ते दाम पर उपलब्धि न हो पाने के कारण इस विशाल भारत देश के लाखों-करोड़ों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की इन दिनों आयु घट गई है, उनका शरीर क्षीण हो गया है, शारीरिक दुर्बलता के साथ साथ उनके मानसिक और नैतिक स्तर के विकास की सुविधाएं भी धूमिल पड़ गई हैं' (पूर्वोद्धृत), 1895 की कांग्रेस में ए० डी० उपाध्याय ने क्षोभ प्रकट करते हुए कहा : 'आखिर हमने ऐसा कौन सा भयकर अपराध किया है कि जिसके फलस्वरूप हमें वर्षों तक पर्याप्त नमक की अनुपलब्धि का अवांछनीय दंड दिया जा रहा है (पूर्वोद्धृत). अपने 31 जन० 1888 के अंक में तिलक के केसरी ने लिखा : 'वायसराय महोदय की अथवा किसी अन्य महानुभाव की सलाह पर वित्त सदस्य ने नमक की पूर्ति को घटाकर उचित ही पग उठाया है. उसने अपने एक ही तीर से दो शिकार मारे हैं, एक ओर तो राजस्व की उगाही कर ली गई है और दूसरी ओर शासन के विरुद्ध अपने लेखों द्वारा निरर्थक उछलकूद मचाने वालों को क्षीणकाय बना दिया है. (आर० एन० पी० बंब, 4 फरवरी 1888).

206. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 169-83.

207. वही, पृ० 184.

208. वही, पृ० 187-8.

209. वही, पृ० 195-8.

210. गोखले, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 40; रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 150-1; स्पीचेज, पृ० 13, 31, 39-41, 79.

211. हिंदू, 3 अप्रैल 1885; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 90, 824; इंडियन स्पेक्टेटर, 22 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 28 जनवरी 1888); इंडियन नेशन, 23 जनवरी (वी० ओ० आई०, फरवरी 1888); हिंदू, 25 जनवरी 1888; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 37; राय, पावर्टी पृ० 263-4; ताज उल अखबार, 27 दिसंबर 1890 (आर० एन० पी० पी०, 10 जन० 1891).

212. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 92
213 वही, पृ० 93-9, 178-9, गोखले, स्पीचेज, पृ० 79-80
214 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 97
215 वही, पृ० 98 शुभसूचक ने अपने 22 जनवरी के अक मे और रास्तगुफ्तार ने अपने 14 जनवरी के अक मे इस प्रकार की आशकाए प्रकट की थी (आर० एन० पी० बब, 20 जनवरी 1877)
216 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 100, 142, स्वदेशमित्रन, 18 जनवरी (आर० एन० पी०, जनवरी 1886); पीछे पादटिप्पणी सख्या 168 मे निर्दिष्ट लगभग सभी समाचारपत्र आई० एन० सी०, 1889 का प्रस्ताव सख्या III (1) नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 177-8
217 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 166, 190, मराठा, 22 जन० 1888, ए० बी० पी०, 26 जन० 1888, 28 जनवरी 1888 को समाप्त होने वाले सप्ताह के बबई के लगभग सभी समाचारपत्र रिपोर्टर का सार सक्षेप (आर० एन० पी० बब, 28 जन० 1888), ट्रिब्यून, 11 फरवरी (वी० ओ० आई०, मार्च 1888), सजवनी, 28 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 4 फरवरी 1888), स्वदेशमित्रन, 28 जन०, 25 फर० (आर० एन० पी० एम०, 31 जनवरी, 29 फरवरी 1888); अमृत बोधिनी, 2 फरवरी (वही, 15 फर० 1888), हिंदुस्तान, 1, 2, 3 फरवरी, सुबोध सिधु, 1 फरवरी (आर० एन० पी० पी० एन०, 7 फरवरी 1888)
218 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 141-2, 161, 165-6, 190, कंसरे हिंद, 22 जन० (आर० एन० पी० पी० बब, 28 ज० 1888)
219 एन० वी० बरवे, रिप० आई० एन० सी०, 1888 पृ० 179, इदु प्रकाश, 30 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 4 फरवरी 1888), स्वदेशमित्रन, 18 फरवरी (आर० एन० पी० एम० 29 फरवरी 1888), गोखले, रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 39-40, शशिलेखा, 27 दिस० (आर० एन० पी० एम०, 31 दिस० 1895)
220 पूना निवासियो द्वारा 18 मार्च 1888 को एक सार्वजनिक सभा मे स्वीकृत ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जनवरी अप्रैल 1888 (खड X स० 3-4), पृ० 17, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 141, 189 तथा देखिए आगे *अध्याय* XII
221 रिपोर्टर का सार सक्षेप, आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888; केसरी, 31 जन० (आर० एन० पी० बब, 4 फरवरी 1888).
222 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 199.
223 गोखले, स्पीचेज, पृ० 39
224 वही, पृ० 79
225 आर० एन० पी० बब, 28 जन० 1888.
226 आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888.
227 आर० एन० पी० बग०, 11 फरवरी 1888.
228 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 139
229 मुकर्जी और पेटिट द्वारा नमक कर के समर्थन के लिए देखिए, एस० सी० पी०, 1888 खड XXVII पृ० 24 और 31 मुकर्जी ने घोषणा की कि साथ ही साथ यह एक ऐसा साधन है जिससे सर्वसाधारण को सामान्य सतोष मिल गया और जो देश के निर्धनतम व्यक्ति की जेब को भी उल्लेखनीय रूप से प्रभावित नही करेगा उनकी कार्यवाही की आलोचना के लिए देखिए, 9 फरवरी 1888 का गुजरात गजट, जिसने लिखा : "क्रूरता की यह पराकाष्ठा है. तुम क्या

जानो कि तुम किस तरह अधीन जनता का खून चूस रहे हो (आर० एन० पी० बब, 11 फरवरी 1888); 5 फरवरी 1888 के 'राज्यभक्त' ने भी एन० मुकर्जी को 'जादूगर लार्ड डफरिन के संकेतों पर नाचने वाली कठपुतली' की संज्ञा देते हुए टिप्पणी की कि मुकर्जी महोदय का स्वार्थ घृणास्पद है और यह उसके 'देशद्रोही' होने का प्रमाण है (आर० एन० पी० बब, 11 फरवरी 1888); ज्ञान प्रकाश, 9 फरवरी, श्री शिवाजी, 10 फरवरी और बबई के बहुत सारे अन्य समाचारपत्र (आर० एन० पी० बब०, 11 फरवरी 1888) वृत्त घर, 9 फरवरी, सुबोध सिंघु, 8 फर० (आर० एन० पी० पी० एन०, 14 फरवरी, 1888), जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 143-4, 186-7, स्वदेशमित्रन, 18 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 29 फरवरी 1888), डब्ल्यू० सी० बैनर्जी का लेख, बगाली, 25 अगस्त 1888 के अक मे, मसानी पूर्वोद्धृत, पृ० 318 पर नौरोजी का कथन, वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 38 मालवीय, स्पीचेज, पृ० 27-8, 30, एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू०, पृ० 312 इसके बहुत समय पश्चात 1897 मे जमी उल उलुम ने अपने 28 मई के अक मे घटना का स्मरण कराते हुए अपना रोष निम्नलिखित शब्दो मे प्रकट किया : 'नमक कर के मामले मे महामहिम की अपेक्षा पदवियो के भूखे भारतीय ही वास्तव मे अधिक दोषी हैं ऐसा लगता है कि यह धोखेबाजी उन्हे मा के दूध के साथ घुट्टी मे पिलाई गई है वे देशद्रोही हैं बगाल मे एक राजा है जिन्होने नमक कर का जोरदार समर्थन किया है ऐसे लोग जिस भी देश मे उत्पन्न हुए हैं और रहते हैं, उस देश के और मानवता के नाम पर कलक रूप हैं, ऐसे लोगो को तो समुद्र मे फेक देना चाहिए जब तक ऐसे धोखेबाज इस देश मे जीते हैं, देश कभी समृद्ध नही हो सकता (आर० एन० पी० एन०, 2 जून 1897)

230 बबई के नेटिव प्रेस के सवाददाता ने अपनी साप्ताहिक टिप्पणी मे लिखा कि राम्त गुफ्तार और सप्ताह के अन्य अनेक समाचारपत्र विधानसभाओं के वर्तमान दोषपूर्ण गठन की एक बार फिर शिकायत कर रहे हैं और उन्हे वास्तविक रूप मे अधिक लोक प्रतिनिधित्व का रूप देने की माग कर रहे हैं (आर० एन० पी० बब, 11 फरवरी 1888) मराठा 18 फरवरी 1888 स्वदेश-मित्रन, 18 फरवरी (आर० एन० पी० एम०, 29 फरवरी 1888), हिदुस्तान, 1, 2, 3 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 7 फरवरी 1888); एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू०, पृ० 311-2 स्पीचेज III पृ० 137, 161, वाचा रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 38; लाला मुरलीधर, वही, पृ० 42

231 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 144

232 मालवीय स्पीचेज, पृ० 26-7 और 30-1.

233 रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 36

234 रिप० आई० एन० सी०, 1892 पृ० 67 और गोखले, स्पीचेज, पृ० 79, और जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 200

235 सी० पी० जान स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 165-6 'जिन लोगो पर यह कर लगा है, उन लोगो की बहुसख्या तो इस कर के अस्तित्व तक से परिचित नही जनता तो शात और अप्रभावित रहती है अपनी आवाज सुना सकने वाले केवल अल्पसख्यक सपन्न वर्ग ही उन बातों का, जिनका उनके अपने जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नही पडता, गला फाडकर समर्थन करते रहते हैं.' स्ट्रेची द्वारा स्थिति का अध्ययन यो तो सर्वथा सही है परतु केवल एक बात गलत है जिसका उल्लेख उसने नही किया, उस समय भारतीय नेता भी अपनी आवाज सुना सकने मे समर्थ थे और उन्होने नमक कर का विरोध ही नहीं किया प्रत्युत उसके विरुद्ध बहुत ही ऊचा स्वर

उठाया. इस प्रकार उन्होंने मूक जनता की भावनाओ को वाणी दी.

236 एल० सी० पी०, 1882 खड XXI पृ० 290-1. 1889 मे उसने नमक कर मे किसी प्रकार की कटौती के अपने विरोध को दोहराया और एक बार फिर उसने आय कर मे राहत देने की वकालत की (एल० सी० पी० 1889 खड XXVII पृ० 141)

237 एल० सी० पी०, 1882 खड XXI पृ० 303-04.

238 एल० सी० पी०, 1888 खड XXVII पृ० 24 और आगे

239 रिपोर्ट आफ दि बगाल नेशनल चैंबर आफ कामर्स, 1887 पृ० 23-4 तथा देखिए, हिंदू पैट्रियाट, 23 जनवरी (वी० ओ० आई०, फरवरी 1888)

240 रिपोर्ट आफ दि बगाल नेशनल चैंबर आफ कामर्स, 1889 पृ० 3-4, 34-5

241 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV, पृ० 276

242 कुल 6 64 करोड राजस्व मे से 4 86 करोड मदिरा पर उत्पादन शुल्क से ही वसूल हुआ (वही)

243 यह समझने मे कठिनाई नही होनी चाहिए कि नीलामी पद्धति का सबसे बडा दोष यह था कि इससे मदिरा के मूल्य मे भारी कटौती की सभावना थी एकाधिकार का एकमात्र उद्देश्य यथासभव अधिकतम लाभ कमाना था बहुत सारे मामलो मे यह पाया गया कि थोडी मात्रा में ऊची कीमतवाली मदिरा की बिक्री की अपेक्षा बडी मात्रा मे थोडी कीमतवाली मदिरा की बिक्री से अधिकतम लाभ की सुरक्षित प्राप्ति हुई (वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 470)

244 पी० बैनर्जी . इडियन फाइनेंस, पृ० 482-5

245 वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 477

246 उदाहरणार्थ, मराठा, 18 फरवरी 1883, 29 सितबर 1885, बगाली, 9 अप्रैल, 19 अप्रैल 1887; इडियन एसोसिएशन का बगाल सरकार को प्रतिवेदन, दिनाक 15 नवबर 1887, बगाल : पूर्वोद्धृत, परिशिष्ट डी० एस० एन० बैनर्जी ए नेशन इन मेकिंग, पृ० 93-7, दादाभाई नौरोजी के दृष्टिकोण के लिए देखिए मसानी पूर्वोद्धृत, पृ० 363, 365; आई० एन० सी०, 1888 का प्रस्ताव VII; आई० एन० सी०, 1900 का प्रस्ताव XV, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 565, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 381, मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 32, जी० सी० मित्रा रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 77 9, गोखले, स्पीचेज, पृ० 16, 84 मदिरापान की प्रवृत्ति के प्रति प्रारभिक भारतीय समालोचना के लिए देखिए, पेटीशन आफ दि ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन 1852 बी० बी० मजूमदार पूर्वोद्धृत, पृ० 486 पर, और केशवचद्र सेन, लाइफ एंड वर्क्स' पी० एस० बसु द्वारा सपादित (कलकत्ता 1940) पृ० 209-10

247 आई० एन० सी० 1900 का प्रस्ताव XV एस० एन० चौधरी, रिप० आई० एन० सी 1900, पृ० 86

248 लोकनताओ और सस्थाओ के लिए देखिए, इडियन एसोसिएशन द्वारा बगाल सरकार को 15 नवबर 1887 को प्रस्तुत ज्ञापन पूर्वोक्त स्थल, आई० एन० सी० 1888 का प्रस्ताव VII और आई० एन० सी० 1900 का प्रस्ताव XV, तिलक के मत को रामगोपाल ने उद्धृत किया है : पूर्वोद्धृत, पृ० 72-3, 217, तिलक, प्रोसीडिंग्ज आफ दि कौंसिल आफ दि बाबे 1895 खड XXX पृ० 91-2, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 564-5, एस० एन० बैनर्जी ए नेशन इन मेकिंग, पृ० 381, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 381 गोखले, प्रोसीडिंग्ज आफ दि कौंसिल आफ बांबे 1901, खड XXXIV, पृ० 249 स्पीचेज, पृ० 16, 83-4, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1888. पृ० 140, और रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 31, जी० सी० मित्रा, रिप० आई० एन०

सी० 1899 पृ० 77-9 समाचारपत्रो के लिए देखिए, समाचार चद्रिका, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 17 अप्रैल 1880); सुलभ समाचार, 30 अक्तूबर (वही, 6 नवबर 1880), सोम प्रकाश, 6 दिसबर (वही, 11 दिस० 1880), ए० बी० पी०, 24 नव० 1881, 22 नव० 1883 और 2 अप्रैल 1885, मदार मजरी, स० 4 (आर० एन० पी० एम०, फरवरी 1882), सोम प्रकाश, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 8 अप्रैल 1882), सोम प्रकाश 3 अप्रैल (वही, 5 मई 1883); भारत मिहिर, 1 मई (वही, 12 मई 1883), बगबासी, 27 अक्तूबर (वही, 3 नवबर 1883), सशोधिनी, 7 नवबर, (वही, 17 नव० 1883), परिदर्शक, 11 नवबर (वही, 24 नवबर 1883), मराठा, 17 मई और 29 सितबर 1885, बगाल के सभी पत्र-पत्रिकाओ ने इडियन एसोसिएशन द्वारा 15 नवबर 1887 को प्रस्तुत ज्ञापन का समर्थन किया देखिए, आर० एन० पी० बग०, नवबर, दिसबर 1887, सजीवनी, 7, 14 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 14 और 21 अप्रैल 1888), आर० एन० पी० बग०, 22 मार्च 1890, 25 अप्रैल 1891 में उल्लिखित सभी समाचारपत्र हिंदुस्तान, 17 और 18 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 24 जुलाई 1889), भारत जीवन, 1 जुलाई (वही, 9 जुलाई 1895), स्वदेशमित्रन, 13 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 15 मार्च 1889), इडियन पीपुल, 26 मई (आर० एन० पी० यू० पी०, 4 जून 1904), स्वदेशमित्रन, 2 दिस० (आर० एन० पी० एम०, 3 दिस० 1904) राष्ट्रवादियो की कभी कभी अभिव्यक्त होने वाली हार्दिक भावनाओ की सुदर अभिव्यक्ति लाला मुरलीधर के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के 1890 के अधिवेशन के सदस्यो को सबोधित भाषण के निम्न अवतरण मे इस प्रकार से हुई है 'जहा पूर्व ने पश्चिम की गणित, ज्योतिष तथा अन्य विज्ञानो की शिक्षा दी है वहा प्रतिदान मे पश्चिम ने पूर्व को मुक्ति के बदले मदिरा के रूप मे नरक-यातना दी है यहा तक कि हमारे मुस्लिम शासक भी मदिरा से घृणा करते थे और मदिरा से प्राप्त आय को अभिशाप मानते थे यह ईसाई शासको को ही समर्पित है कि वे इसे प्यार करें, उत्तेजित हो, इसे चूमे-चाटे और इससे लाखो करोडो पौंड धन कमाए क्या ऐसे मनुष्य भी ससार मे हैं जो ईश्वर और परलोक पर विश्वास करने का ढोग तो रचते है परतु ईश्वर द्वारा उनके अधीन किए लोगो के प्रति क्रूरता, निर्दयता तथा योजनाबद्ध निर्ममता का व्यवहार करते हैं ? इस प्रकार ये लोग उस परमपिता के प्रति प्रत्येक प्रकार के पापमय और घृणित आचरण करते हैं (रिप० आई० एन० सी०, 1890, पृ० 32-3)

249 248 की पादटिप्पणी मे उद्धृत प्रसगो के अतिरिक्त उदाहरणार्थ देखिए, आर० एन० पी० बग०, 17 अप्रैल, 30 अक्तू०, 27 नवबर 1880 26 फरवरी, 12 मार्च, 16, 25 जुलाई, 1 अक्तू०, 26 नवबर, 10, 17 दिस० 1881 18, 25 फरवरी, 18 मार्च, 15 जुलाई 1882 27 अक्तू०, 10, 17 नवबर 1883, इडियन मिरर, 20 नव०, बगाल पब्लिक ओपीनियन, 13 दिस० (वी० ओ० आई०, दिस० 1883), बगाली, 10 नवबर 1883, 9 अप्रैल और 19 नवबर 1887, सजीवनी, 30 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 7 मई 1887), बगाल की प्रथम प्रातीय परिषद का प्रस्ताव, 3 नव० 1888 के बगाली मे उद्धृत

250 1898 मे पी० मेहता ने टिप्पणी की कि उत्पादन (एक्साइज) विभाग 'उस प्रचारक के उदाहरण का अनुकरण कर रहा है कि जो यह कहता है कि वह अच्छे सिद्धातो और आदर्शों के प्रचार के लिए तो प्रतिबद्ध है परतु उन सिद्धातों पर आचरण करने के लिए किसी भी रूप मे विवश नही है. (स्पीचेज, पृ० 564) तथा देखिए, तिलक, प्रोसीडिग्ज आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1895, खड XXX पृ० 92.

251. ए० बी० पी०, 22 नवंबर 1883; वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1888 पृ० 140; दैनिक ओ समाचार चंद्रिका, 10 मार्च सहचर, 12 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 22 मार्च 1890); जी० सी० मित्रा, रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 78-9 तथा देखिए, केशवचंद्र सेन, पूर्वोद्धृत, पृ० 210.

252. फाइनांशल स्टेट्समेंट, 1888-9 कंडिका, 65 तथा भारत सरकार का संप्रेषण, सख्या 166, 25 जून 1887. उसी में उद्धृत फाइनांशल स्टेटमेंट 1891-2 कडिका-38. 1903 में लिखते हुए जान स्ट्रेची ने बल देकर कहा : '1880 के पश्चात लगभग सभी ओर मदिरा की दुकानों की संख्या में और मदिरा की खपत में कमी हुई है, इसे सामान्य रूप से देखा जा सकता है.' इंडिया (1903) पृ० 170.

253. फाइनांशल स्टेटमेंट, 1884-5 कंडिका, 37; फाइनांशल स्टेटमेंट, 1889-90 कंडिका, 22; फाइनांशल स्टेटमेंट, 1891-2 कंडिका, 38; एडवर्ड ला, एल० सी० पी० 1901 खंड XL पृ० 309; फाइनांशल स्टेटमेंट 1902-03 कंडिका, 91.

254. जी० सी० मित्रा, रिप० आई० एन० सी०, 1899 पृ० 70; रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 217 पर तिलक, गोखले, स्पीचेज, पृ० 16; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 380.

255. 1904 में जी० के० गोखले ने कहा था : 'शिक्षा एक उपयोगी उपचार हो सकता है परंतु इसके प्रवर्तन की प्रक्रिया का मंद होना अनिवार्य है मेरे विचार में स्थानीय लोकमत को इस सबध मे वैधानिक मा.[illegible] दी जानी चाहिए' (स्पीचेज, पृ० 85).

256. आई० एन० सी० 1888 का प्रस्ताव VII, 1889 का प्रस्ताव, IV; 1890 का प्रस्ताव IV, 1891 का प्रस्ताव VI (सी), 1892 का प्रस्ताव V (सी), 1893 का प्रस्ताव III (सी); 1894 का XVI (सी), 1895 का प्रस्ताव XXII (बी), 1896 का प्रस्ताव XI (ए) 1897 का प्रस्ताव IV (ए) 1898 का प्रस्ताव XX (ए), 1800 का प्रस्ताव XV रानाडे, 'एडमिनिस्ट्रेटिव रिफार्म्स इन बांबे प्रेजीडेंसी केलाक : पूर्वोद्धृत, पृ० 45 पर; मराठा, 18 फरवरी 1883· हिंदू, 15 जुलाई 1885; वी० एन० मांडलिक, स्पीचेज, पृ० 579; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 140 और रिप० आई० एन० सी० 1890 पृ० 31; प्रधान ऐंड भागवत : पूर्वोद्धृत, पृ० 90 पर तिलक; गोखले, स्पीचेज, पृ० 83-5

257. ए० बी० पी०, 24 नव० 1881; नेटिव ओपीनियन; 26 अगस्त (बी० ओ० आई० सित० 1883 सं० 9 खंड-1); लिबरल, 18 नवंबर, बंगाल पब्लिक ओपीनियन, 13 दिस० (वही, दिसंबर 1883 संख्या 12 खंड I); बंगवासी, 21 मई, नवविभाकर, साधारणी, 23 मई (आर० एन० पी० बंग०, 28 मई 1887); इंडियन एसोसिएशन का 15 नवंबर 1887 का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल; बंगाली, 5 और 19 नव० 1887; प्रथम प्रांतीय सम्मेलन का प्रस्ताव बंगाली के 3 नवंबर 1888 के अंक में उद्धृत, ए० बी० पी०, 21 फरवरी 1889; आई० एन० सी० के 1890-1900 के प्रस्ताव, पीछे 256 संख्या पादटिप्पणी में उद्धृत. रामगोपाल : पूर्वोद्धृत, पृ० 72-3 पर तिलक; हिंदू, 27 नव० 1890; वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1890 पृ० 31; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 290; गोखले, स्पीचेज, पृ० 84-5.

258. देखिए पीछे पादटिप्पणी सं० 249 में प्रस्तुत संदर्भ.

259. आई० एन० सी० 1890 का प्रस्ताव सं० IV.

260. केलाक : पूर्वोद्धृत पृ० 45 पर रानाडे का दृष्टिकोण, सोम प्रकाश, 13 फरवरी (आर० एन० पी० बंग०, 18 फरवरी 1882); मराठा, 18 फरवरी 1883; समय, 26 जन० (आर० एन० पी०

बंग०, 31 जन० 1885); बंगवासी, 30 अप्रैल (वही, 7 मई 1887); आई० एन० सी०, 1890 का प्रस्ताव IV. तिलक, प्रोसीडिंग्ज आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1896. खंड XXXIV पृ० 117. आई० एन० सी० 1990 का प्रस्ताव XV.

261. आई० एन० सी०, 1899 का प्रस्ताव IX तथा समाचार चंद्रिका, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 17 अप्रैल 1880); सुलभ समाचार, 30 अक्तू० (वही, 6 नवंबर 1880); मांडलिक, (स्पीचेज, पृ० 584; मराठा, 18 फर० 1883; समय, 26 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 31 जन० 1885); आई० एन० सी० 1890 का प्रस्ताव सं० IV. तिलक, प्रोसीडिंग्ज आफ दि कौंसिल आफ गवर्नर आफ बाबे, 1895 खंड XXXII पृ० 92; गोखले, वही-1901, खंड XXXIX पृ० 249. इस मबंध मे गोखले ने एक रोचक तथ्य का निवेश किया कि "जब तक शराब मिलने की संभावनाओं में कटौती नही की जाती, तब तक मदिरा जैसे पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि का अर्थ दरिद्र उपभोक्ता की जेब को हल्का करना ही होगा. तिलक महोदय ने तो यहां तक कह डाला कि यदि लोग 'पक्के पियक्कड़ ही हैं तो फिर मदिरा के मूल्यों में वृद्धि करने में कोई तुक नही.

262. हमारे अध्ययन काल की अवधि मे 1900 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह माग बेमन से उस समय प्रस्तुत की जबकि उसने सरकार से 'अमरीका के प्रमुख मदिरा कानून' जैसे उपायों को अपनाने का अनुरोध किया, परंतु उसी सांस में उसने स्थानीय लोकमत और मदिरा पर अतिरिक्त कराधान की भी वकालत की (प्रस्ताव XV).

263. मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 366. 1891 में नितांत परहेज (मदिरापान न करने) करने वाले भारतीय भ्रातृ भाव वाले सघ (इडियन ब्रदरहुड आफ टोटल ऐब्स्टेनर्स) का उद्घाटन करते हुए दादाभाई नौरोजी ने सुविचारित रूप से कहा था : 'इसका एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व यह है कि हिंदू और मुसलमान इकट्ठे मिलने मे समर्थ हुए हैं तथा सभी समुदायो को समान रूप से दुष्प्रभावित करने वाले महान प्रश्न पर सुविचारित कार्यवाही करने को प्रस्तुत हुए हैं, वही, पृ० 365-6 तथा देखिए, एस० एन० बैनर्जी . ए नेशन इन मेकिंग, पृ० 94-07.

264 इपीरियल गजेटियर आफ इंडिया .(1908) खड IV पृ० 275 और वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 603.

265 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV, पृ० 275.

266. वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 492.

267. इंपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) पृ० 245-6 अफीम के हानिप्रद प्रभाव के सबध में कमीशन की राय थी कि भारत मे अफीम के सयत प्रयोग को उसी रूप मे लेना, जिस रूप मे इंग्लैंड में मदिरा के संयत प्रयोग को लिया जाता है. अफीम हानिप्रद है, हानिरहित है और यहां तक कि अफीम लाभप्रद भी है, यह सब उस परिस्थिति और उस विवेक पर निर्भर है जिसके अंतर्गत इसका उपयोग किया जाता है (वही, पृ० 246).

268. ई० बेरिंग, फाइनांशल स्टेटमेंट, 1882 कंडिका, 146-73; 1893 में डेविड बारबर का अफीम के लिए नियुक्त शाही कमीशन के समक्ष साक्ष्य, वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 49 पर तथा देखिए चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 328-30, जान स्ट्रेची, इंडिया, (1903) पृ० 155.

269. केशवचद्र सेन पूर्वोद्धृत, पृ० 210

270 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 215 तथा देखिए, वही, पृ० 201; स्पीचेज, पृ० 142 तथा 192-3; मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 316. दादाभाई नौरोजी का भी अफीम व्यापार के सबंध में बहुत ऊंचा नैतिक आदर्श था. जब उन्होंने 1855 में व्यापारिक संस्थाओं के साथ व्यापारिक गठबंधन किया तो

उन्होंने उसी समय यह शर्त रख दी थी कि वे अफीम के व्यापार से होने वाले लाभ के भागीदार नही बनेंगे. बाद में उन्होंने सचमुच ही अफीम तथा मदिरा से अर्जित लाभ में से अपना अंश लेने से इनकार कर दिया (नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 192 और मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 74)

271. और देखिए, रास्त गुफ्तार, 12 जून (आर० एन० पी० बंब, 18 जून 1870); नेटिव ओपीनियन (वही, 24 अगस्त 1872); बंगाली, 3 जुलाई 1880, 12 मार्च 1882; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 26 मई 1881; हिंदू, 5 दिस० 1884; मराठा, 22 मार्च 1885, ए० बी० पी०, 20 मई 1886, 16 फरवरी 1888; आंध्र प्रकाशिका, स० 19 (आर० एन० पी० एम०, मई 1886); बंगनिवासी, 17 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 25 अप्रैल 1881); संजीवनी, 26 अगस्त (वही, 2 सित० 1893).

272. रिपोर्ट आफ दि इंडियन फैमिन कमीशन 1880, भाग II, पृ० 89, पी० बैनर्जी : इंडियन टैक्सेशन, पृ० 314, तथा पीछे पादटिप्पणी सं० 268 मे उद्धृत अधिकारीगण.

273. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 41 तथा मसानी पूर्वोद्धृत, पृ० 316; दत्त, ई० एच० II, पृ० 155 इसके दूसरी ओर जी० वी० जोशी ने अभिस्वीकार किया कि अफीम लगान का भुगतान विदेशी उपभोक्ताओ द्वारा ही किया जाता है (पूर्वोद्धृत, पृ० 222).

274. बंबई समाचार, 29 जून (आर० एन० पी० बंब, 3 जुलाई 1875), जामे जमशेद, 19 फरवरी (वही, 22 फरवरी 1879); बंबई समाचार, 3 मई (वही, 8 मई 1881), बाबे क्रानिकल, 8 मई (वही, 14 मई 1881); आर्यावर्त, 4 जून और शिवाजी, 3 जून (वही, 11 जून 1881); बंगाली, 3 जुलाई 1880; नवविभाकर, 29 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 3 अप्रैल 1880); नेटिव ओपीनियन, 19 जून, 25 दिस० 1881; मराठा, 16 अप्रैल 1882, सुबोध पत्रिका, 22 जून (आर० एन० पी० बंब, 28 जून 1882); केसरी, 2 मई (वही 6 मई 1882), नेटिव ओपीनियन, रास्त गुफ्तार और बाबे क्रानिकल 7 मई (वही, 13 मई 1882); सहचर, 25 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 4 फरवरी 1882); समय, 4 जून (वही, 9 जून 1882); साधारणी, 11 मई और नवविभाकर, 12 मई (वही, 17 मई 1884), समाचार चंद्रिका, 16 मई (वही, 24 मई 1884); आनंद बाजार पत्रिका, 2 जून (वही, 7 जून 1884); मराठा, 22 मार्च 1885; गुजरात दर्पण, 12 मई (आर० एन० पी० बंब, 18 मई 1889), नेटिव ओपीनियन, 7 मई (वही, 9 मई 1891); पूना वैभव, 6 सितंबर (वही, 12 सित० 1891); ज्ञान प्रकाश, 17 नव० (वही, 19 नवंबर 1892), आफताबे पंजाब, 27 अप्रैल और ताज उल अखबार, 25 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 9 मई 1891); अखबारे आम, 18 अगस्त (वही, 29 अगस्त 1891); हिंदुस्तान, 8 मई (आर० एन० पी० एन०, 15 मई 1889); न्यायसिंधु, 22 अप्रैल (वही, 30 अप्रैल 1891); सुबोध सिंधु, 29 अप्रैल (वही, 7 मई 1891), बंगाली, 18 अप्रैल 1891; सहचर, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 25 अप्रैल 1891); ढाका प्रकाश, 26 अप्रैल और सुरभि ओ पताका, 17 अप्रैल (वही, 2 मई 1891); सोम प्रकाश, 8 जून (वही, 13 जून 1891); हिंदू जनभूषणी, 18 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1889); वृतांत पत्रिका, 14 दिस० तथा मद्रास के अन्य पत्रो की स्वीकृति (वही, 15 दिस० 1893); ताज उल अखबार, 5 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 19 अगस्त 1893); कोहेनूर, 9 सितंबर (वही, 23 सित० 1893) दोस्ते हिंद, 13 अक्तूबर (वही, 21 अक्तूबर 1893); पैसा अखबार, 8 दिस० (वही, 16 दिस० 1893); बिहार हेराल्ड, 18 मई (आई० एस० वी० ओ० आई०, 9 जून 1895); फोइनिक्स, 8 मई (आर० एन० पी० बंब, 18 मई 1895; इंडियन स्पेक्टेटर, 12 मई 1895); कर्णाटक प्रकाशिका, 30 अगस्त (आर०

एन० पी० एम०, 31 अगस्त 1897)

275. अफीम विरोधी आंदोलनकारी अंगरेजों और लोकोपकारियो पर चोट करते हुए पत्रिका ने अपने 20 मई 1886 के अंक मे व्यंग्यपूर्ण भाषा में लिखा : 'वे भूल जाते हैं कि इंग्लैंड जैसे आक्रमणकारी और विजेता देश को किसी देश को विष देने जैसी साधारण सी घटना पर बड़बड़ाना नहीं चाहिए.'' इतना तो असंदिग्ध रूप से तथ्य है कि अफीम की अपेक्षा लोहा और सिक्का किसी भी देश को अधिक शीघ्रता और अधिक निश्चितता से विनष्ट करने वाले साधन हैं' इसके साथ ही पत्र ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा . 'अफीम राजस्व की क्षति पूर्ति के लिए भारतीयो पर कर लगाने के लिए भारत सरकार को कहना चाहिए कि यह इस प्रकार का कृत्य होगा कि जहर देने के स्थान पर सरकार लूट का धंधा अपनाने पर विवश होगी'. और देखिए ए० बी० पी०, 16 फरवरी 1888 और 17 अप्रैल 1891.

276. ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन ने अपने 26 मई 1881 के अंक मे और अधिक दृढ़तापूर्वक लिखा कि भले ही अफीम लगान के अभाव मे भी बजट मे किसी प्रकार का असतुलन न आने पाए फिर भी भारत जैसा निर्धन देश अफीम राजस्व को हटाने का सामर्थ्य नही रखता

277. आर० एन० पी० बब, 18 मार्च 1882; मराठा ने अपने 22 मार्च 1885 के अंक मे इन आदोलनकारियों को 'अतिरिक्त श्रेष्ठ आदर्शवादियो के सामाजिक सगठन' की सज्ञा दी.

278. हिंदू ने अपने 11 मई 1895 के अंक मे और आगे लिखा . 'अफीम एक भारी बुराई हो सकती है परतु राष्ट्रीय दिवालियापन उससे बड़ी बुराई है'

279. ए० बी० पी०, 9 जुलाई 1880 और 20 जुलाई 1886; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 15 जुलाई 1880; आनंद बाजार पत्रिका 2 जून (आर० एन० पी० बग०, 7 जून 1884); हिंदू, 26 जनवरी 1885, 9 दिसबर 1890, 3 जुलाई 1893; बगाली, 18 अप्रैल 1891.

280. केलाक : पूर्वोद्धृत, पृ० 45 पर तिलक; ए० बी० पी०, 9 जुलाई 1880. 16 फरवरी 1888; ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन, 15 जुलाई 1880; नेटिव ओपीनियन, 19 जून 1881; मराठा, 17 जुलाई 1881, 23 अप्रैल 1882, 22 मार्च 1885; 'दि इंडियन साल्ट टैक्स' जे० पी० एस० एस०, खड IV स० 1 जुलाई 1881, पृ० 61; केसरी, 2 मई (आर० एन० पी० बब, 6 मई 1882); साधारणी, 11 मई और नवविभाकर, 12 मई (आर० एन० पी० बग०, 17 मई 1884); समाचार चद्रिका, 16 मई (वही, 24 मई 1884); सहचर, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 25 अप्रैल 1891); सोम प्रकाश, 8 जून (वही, 13 जून 1891); सुलभ दैनिक, 15 दिस० (वही, 23 दिसबर 1893); रहबरे हिंद, 28 सितबर (आर० एन० पी० पी०, 14 अक्तू० 1893); अखबारे आम, 31 अक्तू० (वही, 4 नवंबर 1893); वृतांत पत्रिका, 14 दिसंबर तथा अन्य पत्र-पत्रिकाए (आर० एन० पी० एम०, 15 दिस० 1893).

281. नवविभाकर, 29 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 8 अप्रैल 1880); नेटिव ओपीनियन, 19 जून 1881; मराठा, 16 अप्रैल 1882 और 7 दिस० 1893; केसरी, 2 मई (आर० एन० पी० बब, 6 मई 1882); समय, 4 जून० (आर० एन० पी० बंग०, 9 जून 1882); साधारणी, 11 मई (वही, 17 मई 1884); हिंदुस्तान, 8 मई (आर० एन० पी० एन०, 15 मई 1889).

282. आर० एन० पी० बंग०, 30 दिस० 1893.

283. आर० एन० पी० बंग०, 31 जुलाई 1880 मराठा ने अपने 7 अगस्त 1881 के अंक में टिप्पणी की : 'निस्संदेह चीन के साथ अफीम व्यापार बंद कर देने से भारतीय वित्तो में चौड़ी खाई पड़ जाएगी परंतु 40 करोड़ लोगों को विष देने के आरोप सिर पर लेने की अपेक्षा इस खाई को

भरने के लिए अन्य आर्थिक उपाय सोचना तथा विभिन्न विभागों के खर्चों मे कटौती करना ही अधिक उपयुक्त है' थोड़े ही समय के उपरान्त 12 मार्च 1832 के अंक में मराठा ने मत प्रकट करते हुए लिखा : 'अफीम व्यापार जैसे गर्हित कार्य को निषिद्ध करने जैसे नैतिक और लाभप्रद साधन में अपने रुपये के उपयोग में किसी भी भारतीय को शिकवा-शिकायत नहीं होगी'. इसी प्रकार सजीवनी ने 26 अगस्त 1893 के अंक मे दावा किया : 'पाप पूर्ण व्यापार से अर्जित राजस्व से कोई भी सरकार फलती-फूलती नहीं रह सकती. न्यायप्रिय भगवान द्वारा सभी पापी अवश्य दंडित किए जाएगे. अतः सरकार के लिए उचित यही है कि वह इस पापमय व्यापार को छोड़ दें' (आर० एन० पी० बंग०, 2 सितंबर 1893) और देखिए, सोम प्रकाश, 19 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 24 जुलाई 1880) इंडियन स्पेक्टेटर, 7 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 13 अगस्त 1881); हिंदू, 5 दिस० 1884 और 14 अप्रैल 1891, नौरोजी, पावर्टी पृ०215 स्पीचेज, पृ० 196 और मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 359, 362 पर; हिंदुस्तानी, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 21 अप्रैल 1891); इंडियन मिरर, 15 अप्रैल और एडवोकेट, 17 अप्रैल (आई० एस० वी० ओ० आई०, 3 मई 1891); दि एंटी आपियम एलायन्स मूवमेंट' जे० पी० एस० एम०, खंड XIV, स०-2 अक्तूबर 1891 पृ० 6, 16, वृतांत पत्रिका, 16 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1891); रहबरे हिंद, 16 और 20 अप्रैल (आर० एन० पी० पी० 25 अप्रैल 189), बंगनिवासी, 17 अप्रैल और सजीवनी, 18 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 25 अप्रैल 1891); समय 24 अप्रैल (वही, 2 मई 1891).

284. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 194.

285. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 215

286. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 192-6

287. सीमा शुल्क से होने वाली शुद्ध आय 1875-6 मे 2.5 करोड़ रुपये, 1877-8 में 2 4 करोड़ रुपये थी. 1882-3 में यह घटकर 1 1 करोड रुपये रह गई. इसका अर्थ हुआ कि कर नीति मे सुधार के पांच वर्षों मे 1.4 करोड़ रुपये घट गई. 1882 और 1893 की अवधि के बीच इसकी निम्नतम प्राप्ति 1884 5 में 0-8 करोड रुपये थी. इस प्रकार कर नीति से सुधार के फलस्वरूप सीमा शुल्क में किसी भी एक अकेले वर्ष में होने वाली अधिकतम हानि दो करोड रुपये से कम की थी अफीम राजस्व से 1875-1898 के बीच मे होने वाली शुद्ध आय 6 1 करोड़ रुपये थी देखिए, वकील : पूर्वोद्धृत, पृ० 596 और 603.

अध्याय 12

लोकवित्त : दो

सरकारी और गैरसरकारी दृष्टिकोणों में प्रमुख मतभेद का विषय है व्यय की दिशाएं।
बालगंगाधर तिलक

भयंकर बढते सैनिक व्यय जैसा कोई भी अन्य विषय भारत देश को बुरी तरह से झकझोरने वाला नही।
डी ई वाचा

व्यय

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने कराधान के परिमाण तथा कर निर्धारण की पद्धति की जांच-पड़ताल के साथ साथ उसके उपयोग पर भी विस्तृत विचार किया क्योंकि उनके विचार में करो से प्राप्त कुल रकम के समान कराधान के उद्देश्यो और उनके वितरण का प्रश्न भी किसी रूप मे कम विचारणीय तथा कम महत्वपूर्ण नही था। उन्होंने इस तथ्य को पूर्ण रूप से स्वीकार किया कि कर राजस्व के लोकहित में व्यय होने वाले रूप में अथवा करदाताओ को परोक्ष रूप से कर राजस्व लौटाए जाने के संभावित रूप मे तथा कर राजस्व के अनुत्पादक, निरर्थक और व्यर्थ के कार्यों मे उपयोग किए जाने वाले रूप मे बड़ा भारी अंतर था। इस कसौटी को आधार बनाने पर भारतीय नेता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत सरकार की व्यय नीति असतोषप्रद ही नही थी, प्रत्युत सर्वसाधारण के हितों के लिए क्षतिकारक भी थी। प्रथम, उन्होने इस तथ्य को बड़े ही गंभीर रूप में लिया कि भारत के राजस्व का एक बहुत बड़ा भाग देश के भीतर खर्च न होकर देश के बाहर खर्च होता है, इस प्रकार देश से राजस्व की निकासी हो रही है। उन्होने निर्देश किया कि इस संबंध में भारत की स्थिति ब्रिटेन जैसे स्वतंत्र देश से, जहां भले ही भारी कर लगाए गए हैं, सर्वथा भिन्न थी।[1] इस विषय का विस्तृत विवेचन हमने निकास शीर्षक अध्याय में किया है। यहां तो हमें इतना संकेत करना है कि कुछ भारतीय नेताओं ने लोकवित्तों की कुल वसूली की अपेक्षा व्यय की व्यावहारिक दिशाओं के प्रति अधिक ध्यान दिया। इस प्रकार 1800 में दादाभाई नौरोजी ने अपना मत प्रकट करते हुए लिखा :

'इस समय वास्तविक प्रश्न, सभी प्रश्नों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह नहीं कि 60,00,00,00 पौंड या 100,000,000 पौंड कैसे प्राप्त किए जाएं। हो सकता है कि यह विषय भी आवश्यक हो परंतु अधिक आवश्यक और अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जनता से उगाही रकम जनता को किस प्रकार लौटाई जाए।[2] 1887 में लिखे अपने एक पत्र में वह और भी अधिक सुस्पष्ट और मुखर थे : 'भारत में कराधान की बुराई उसका परिमाण नहीं, यहां तक कि अकबर के समय वसूल किए जाने वाले भूमि लगान जितना इस समय वसूल किए जाने पर भी उसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा। राजस्व के एक भाग की देश से निकासी ही दुर्भाग्यपूर्ण बुराई है।'[3] 'अमृत बाजार पत्रिका' ने भी अपने 22 फरवरी 1900 के अंक में इसी प्रकार की धारणा प्रकट की :

> यदि करों द्वारा उगाही धनराशि इस देश में व्यय की जानी है तो इस देश के वासी ऊंचे कराधान और उनके भुगतान से भी अपने को व्यथित अनुभव नहीं करेंगे परंतु यदि 25 करोड रुपये के मूल्य का इस देश का उत्पादन प्रतिवर्ष इंग्लैंड को ही भेजना है जिसके बदले में इस देश को कोई लाभ नहीं मिलना है तो इस देश के वासी हलके कराधान का भुगतान करने में भी अपने को दरिद्र और असमर्थ अनुभव करेंगे।[4]

द्वितीय, भारतीय नेताओं ने देखा कि सरकारी खर्च की प्रकृति फिजूलखर्ची वाली है और उनका वितरण देश की आर्थिकता और जनता की परिस्थितियों और सच्ची आवश्यकताओ के अनुकूल और उनसे संबंधित नहीं है। उनका विश्वास था कि इनका और अधिक लाभप्रद तथा सार्थक उपयोग किया जा सकता था। यू तो उनका यह निष्कर्ष सामान्यतया भारतीय वित्तों के व्यय की आलोचना ही करता था परंतु कभी कभी विशेषतः इन नेताओं मे अर्थशास्त्र के पंडितों द्वारा इसे भली प्रकार पकडा और अपने विश्लेषण का आधार बनाया गया। इस प्रकार 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपने 30 मार्च 1882 के अक मे यह मत प्रकट किया कि देश की वित्त व्यवस्था की किसी भी रूप में जाच करने पर प्रथम प्रश्न यह उभर कर सामने आता है कि उगाही गई धनराशि में से कितनी इस देश पर खर्च की गई है और कितनी यों ही बरबाद की जा रही है? इस पत्रिका की दृष्टि मे इसका उपयुक्त उपचार था, करों की राशि का उपयोग निश्चित रूप से केवल उन्ही के लिए किया जाना चाहिए जिनसे वह वसूल की गई है। इस बात को स्वीकार करते हुए कि अंगरेजी शासन को कायम रखने का व्यय दायित्व भारत पर है, पत्रिका ने भारतीय वित्तों का सभी पक्षों, चेशायर, माचेस्टर, लंदन, सिविल सर्विस, मिलिट्री सर्विस, नौकरी करने वाले तथा साहसियों की इच्छापूर्ति के लिए प्रयोग किए जाने का अथवा इंग्लैंड के युद्ध अभियानों, आक्रमणों और दुष्कर्मों में सहायता देने के लिए प्रयोग किए जाने का विरोध किया। फिरोजशाह मेहता ने 1883 मे देश भर में निर्मित सड़कों, पुलों, दवाखानों, स्कूलों और पुलिस चौकियों की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी यह पूछा कि मौलिक प्रश्न यह है कि क्या इन सुधारों में संसाधनों का व्यय आवश्यकता से अधिक तथा गलत दिशा में नही हुआ है? क्या इन संसाधनों का और अधिक सार्थक तथा और अधिक लाभप्रद उपयोग नहीं किया जा सकता था? क्या देश की

वास्तविक आवश्यकताओं की जानकारी से इतनी भारी गलतियां सुधारी नहीं जा सकती थीं।[5] 1895 में बंबई विधान परिषद में अपने प्रथम बजट भाषण में बाल गंगाधर तिलक ने यह सिद्धांत निर्धारित किया कि बजट के मूल्यांकन की वास्तविक कसौटी यह होनी चाहिए कि पिछले 25 वर्षों मे राजस्व में कितनी वृद्धि हुई है और प्रांत की भौतिक संपन्नता के लिए उस राशि का कितना अंश समर्पित किया गया है।[6] 1896 के अपने निबंध 'दि प्रेजेंट फाइनांशियल पोजीशन मे' 1883-4 के वर्षों से भारतीय खर्चों का साख्यकीय विश्लेषण करने के उपरांत जी० वी० जोशी ने अपना मत प्रकट किया कि यदि देश का इतना भारी अतिरिक्त धन देश के आतरिक विकास और प्रगति के उद्देश्यों पर खर्च किया जाता तो देश के लाखों करोडों लोग संतोष और आनंद का उपभोग करते।[7] दादाभाई नौरोजी ने 21 मार्च 1896 को विलबी कमीशन को लिखे अपने पत्र में इस स्थिति का अत्यंत सुस्पष्ट प्रतिवेदन प्रस्तुत किया।[8]

विलबी कमीशन के समक्ष और अपने प्रसिद्ध बजट भाषणों में सुस्पष्ट सैद्धांतिक रूप में राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने और उसके आधार पर भारतीय वित्तों के विश्लेषण करने का सारा दायित्व अकेले गोपालकृष्ण गोखले ने निभाया। 1897 में विलबी कमीशन के समक्ष तर्क करते हुए उन्होंने कहा कि खर्चों में वृद्धि, राष्ट्रीय वित्त के एक पक्ष के रूप में कोई विशेष गंभीर आपत्तिजनक नही। उन्होंने लोकवित्तों का सिद्धांत निर्धारित करते हुए कहा : 'इस संबंध में सभी कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि जिस क्षेत्र में व्यय में वृद्धि हुई है, उसके उद्देश्य का स्वरूप क्या है ? और लोकवित्तो के उस दिशा में किए गए खर्चों का परिणाम क्या निकला है ?' उन्होने यह स्वीकार किया कि पिछली बहुत सी दशाब्दियों से यूरोपीय देशों के व्ययों में वृद्धि हो रही है परंतु उनका कथन था कि वह वृद्धि भारत के खर्चों में हो रही वृद्धि से मौलिक रूप से बहुत भिन्न है। जहां उन देशों के बढे खर्चों ने उन देशों की सुरक्षा और शक्ति में वृद्धि की है, उन देशवासियो के ज्ञान और संपन्नता में वृद्धि की है, वहा स्वेच्छाचारी शासकों के प्रबध के दोषग्रस्त वैधानिक नियंत्रण के तथा विदेशी शासन के अंतर्निहित दोषों के अंतर्गत भारत के निरंतर बढ़ते खर्चो ने भारत में केवल हमारे संसाधन के निरंतर शोषण मे वृद्धि करने में सहायता की है, हमारी भौतिक प्रगति को अवरुद्ध किया है, हमारी प्राकृतिक सुरक्षा को दुर्बल क्षीण किया है तथा हम पर अपरिभाषित तथा अनिश्चित वित्तीय दायित्वों का बोझ लाद दिया है।[9] भारत के सार्वजनिक खर्चों तथा अन्य देशों के सार्वजनिक खर्चों के बीच एक अन्य मौलिक अंतर यह था कि जहां अन्य देशों मे सार्वजनिक व्यय करदाताओं के हितो मे किया जाता है, वहां इस देश में दूसरों के हितों को पर्याप्त महत्व दिया जाता है और कभी कभी तो उन हितों को भारतीय हितों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार के उदाहरण के रूप में यहां यह उल्लेखनीय है कि भारतीय वित्तों को ब्रिटिश सर्वोच्चत्ता के हितों के स्थाई दावों की पूर्ति करनी पड़ती है। उन्हें ब्रिटिश प्रभुत्व के पूर्व में विस्तार के हितों की देखभाल और भारत में सिविल और मिलिट्री सेवा में संलग्न यूरोपियों के हितों की सुरक्षा करनी पड़ती है। इसके साथ ही साथ ब्रिटिश वाणिज्य, व्यापारी तथा धनिक वर्गों के हित भारतीय करदाताओं के हितों पर हावी हो जाते हैं।[10]

कराधान के प्रश्न के समान भारतीय नेता प्राय यह तर्क करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते थे कि भारत की निर्धनता और भारतीयों की कर भुगतान की अक्षमता के सदर्भ मे सरकारी खर्चे भारत जैसे निर्धन देश के ससाधनो और शक्ति के बाहर थे। मदनमोहन मालवीय ने 1889 मे घोषणा की कि भारत की दरिद्रता के सदर्भ मे खर्चो मे वृद्धि न केवल अनुचित तथा अन्यायपूर्ण थी प्रत्युत निश्चित रूप से पाप कर्म भी थी। उन्होने यह तो माना कि सरकारी खर्चों मे वृद्धि अपने आप मे कोई बुराई नही, यह वृद्धि तो वस्तुत स्वागत योग्य होती है परंतु यह तब होता है जबकि उसका परिणाम जनता की धन-सपत्ति में वृद्धि के रूप मे सामने आए। जैसे कि इगलेंड मे था परतु इस देश का दुर्भाग्य तो यह है कि सरकारी खर्चे तो निरतर बढते जा रहे है जबकि देशवासियो की दशा दिन प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है।[11] इसी तर्क को आधार बनाते हुए 1894 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने दृढतापूर्वक कहा. 'वित्तीय खर्चो की जाच-पडताल से तब तक कोई परिणाम नही निकलेगा, जब तक उसमे भारतीयो की चालू वित्तीय माग को सहन करने की शक्ति की जाच-पडताल का कार्य सम्मिलित न किया जाए।'[11-A] 1895-6 की इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल मे अपने भाषण मे फिरोजशाह मेहता ने भी इस दृष्टिकोण का विस्तृत विवेचन किया। उन्होने निर्देश किया कि व्ययो की आवश्यकता तो एक तुलनात्मक शब्द ह। व्यय की किसी भी विशिष्ट मद के लिए कितनी ही अधिक आवश्यकता क्यो न हो, इस आवश्यकता की पूर्ति करते समग्र व्यय के लक्ष्य और दिशा को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। उन्होने इस बात पर बल दिया कि अतत करों का भार निर्धन किसानो को ही उठाना पडता है। इस कथन के उपरात अपने दृढ विश्वास को व्यक्त करते हुए उन्होने कहा कि यदि लगान की वसूली केवल इसी ढग से ही की जानी है तो जिस खर्चे की आवश्यकता की पूर्ति के लिए राजस्व वसूल किया जाता हे, अपने आप मे भले ही कितना उपयुक्त, उचित तथा निर्विवाद सिद्ध क्यो न कर दे उसका भुगतान देश के ससाधनो और शक्ति की सीमा के बाहर है।[1]'

पिछले बहुत सारे वर्षों की अवधि मे बढते सरकारी खर्चों को सर्वथा अनुचित, नितात हानिप्रद, यहा तक कि भारत की निर्धनता के लिए उत्तरदायी कारणो मे से एक मानते हुए भारतीय नेताओ ने व्यापक स्तर पर सरकारी खर्चों मे कटौती का समर्थन किया और उसके लिए आदोलन किया। उन नेताओ ने यह घोषित किया कि भारत के आर्थिक तथा वित्तीय दोषो की निवृति के लिए खर्चों मे कटौती एक आवश्यक उपचार था। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने बढे हुए सैनिक व्ययो की पूर्ति के लिए अपने पहले ही अधिवेशन में अन्य सार्वजनिक व्ययो मे कटौती करने का सुझाव दिया।[13] काग्रेस ने अपने 1887 के तृतीय अधिवेशन मे वित्तीय कठिनाइयो पर काबू पाने के लिए खर्च मे कटौती का सुझाव एक बार पुन: दिया।[14] 1891 मे काग्रेस ने घोषणा की कि अनुचित रूप से बढे हुए सैनिक और नागरिक सेवाओं के खर्चे भारत की दरिद्रता के महत्वपूर्ण कारणो मे से एक थे और इन सरकारी खर्चों मे कटौती भारत की दरिद्रता के निवारण के साधनो मे एक थी।[15] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सरकारी खर्चों और दरिद्रता व अकालों मे सहसबध को तथा इन खर्चों मे कटौती को बार बार 1892, 1896, 1897, 1899 1901 और 1904 मे दोहराया।[16]

1894, 1895 और 1897 में कांग्रेस ने अपने दृढ़ मत को पुन: बलपूर्वक दोहराया कि देश के दुर्दशाग्रस्त वित्तों में सुधार का एकमात्र उपचार सरकारी खर्चे में कटौती है।[17] 1885 में कलकत्ता में हुए अधिवेशन में राष्ट्रीय सम्मेलन ने सरकारी खर्चों में कटौती के लिए इसी प्रकार के सशक्त तर्क प्रस्तुत किए।[18] 'पूना सार्वजनिक सभा ने,' 'बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन'[19] 'मद्रास महाजन सभा' [19]-A ने सरकारी खर्चों मे कटौती के लिए 1886 मे इस संबंध में सरकार को विस्तृत ज्ञापन दिए। जी० वी० जोशी ने अपने 1886-7 में प्रकाशित लेख 'ए नोट आन रिट्रेंचमेंट' में,[20] गोपालकृष्ण गोखले और डी० ई० वाचा ने विलबी कमीशन के समक्ष प्रस्तुत अपने साक्ष्यों[21] में तथा रमेशचंद्र दत्त[22] ने 1898 में इसी मांग को मुखरित किया।

यहां यह जानना कम रोचक नही होगा कि दादाभाई नौरोजी ने खर्चों में कटौती के संबंध में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह बताया जा सकता है कि उन्होंने भारत की निर्धनता के निवारण के लिए संपत्ति का उत्पादन बढाने पर ही सारा बल दिया। उनका विश्वास था कि यदि राष्ट्रीय उत्पादन बढाया जा सके तो भारत किसी भी व्यय की पूर्ति में समर्थ हो जाएगा।[23] अत. उन्होंने ऊंचे खर्चों को घटाने की आवश्यकता पर बल न देकर धन की निकासी को रोकने की आवश्यकता पर ही सारा बल दिया। यहां तक कि बडे पैमाने पर यूरोपीयों को नौकरी देने की आलोचना भी उन्होंने इसी आधार पर की कि इससे देश से धन की निकासी होती है, न कि इस आधार पर कि इससे प्रशासन महगा हो जाता है।

इस प्रकार सरकारी खर्चों के वर्तमान ऊंचे स्तर के कटु आलोचक तथा इन खर्चो मे कटौती के प्रबल समर्थक होने के नाते राष्ट्रवादी नेताओ ने सरकारी खर्चों के वास्तविक विकास की जाच के लिए तथा इन व्ययो को सीमित करने के ठोस तथा व्यावहारिक उपाय सुझाने के लिए सारी समस्या की छानबीन आरभ की। वे इस तथ्य से सहमत थे कि सरकारी खर्चो की ऊची दर के कारण अनिवार्य नही हैं, अत: उनका उपचार किया जा सकता है।[24]

सरकारी खर्चो के सबध मे राष्ट्रीय नेताओ के दृष्टिकोण का एक अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन्होंने इसके विवरण के प्रति कोई विशेष रुचि नही दिखाई। उनका मुख्य उद्देश्य व्यय सबधी मूल नीतियों तक ही सीमित था। इस प्रकार उदाहरण के रूप मे 1895 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने यह मत अभिव्यक्त किया कि व्यय आयोग (एक्सपेंडीचर कमीशन) की जाच-पडताल का तब तक कोई उपयोग नही होगा जब तक कि इन व्ययो को नियमित करने वाली नीति की रूपरेखा की जाच-पडताल न की जाए।[25] इसी प्रकार दादाभाई नौरोजी ने विलबी कमीशन को बताया कि वे विभागीय खर्चों के विवरण की जानकारी के प्रति कोई उत्सुकता नही रखते क्योकि व्यय के समग्र प्रशासन को स्वाभाविक आधार पर स्थापित किए बिना इस प्रकार की जाच-पडताल केवल रोग के लक्षणो को दबाना मात्र होगा, इसकी जड को दूर करना नही। उन्होने कहा कि आवश्यकता तो इस बात की है कि उन सिद्धातों की चर्चा की जाए जिनके अनुसार व्यय के सारे ढांचे का संचालन होता है।[26] उन्होंने यह भी अनुभव किया कि गैर सरकारी लोग न

तो व्ययों के विवरण की समीक्षा कर सकते हैं और न ही व्ययों के सही आंकड़ों का गहरा अध्ययन कर सकते हैं क्योंकि इसके लिए आवश्यक जानकारी उपलब्ध ही नही होती। उन्होंने टिप्पणी की कि वस्तुतः उन्हें तो यह भी नही मालूम कि व्यय के विवरण से संबंधित कौन से प्रश्न पूछें ? अतः वे केवल नीतियों की सामान्य रूपरेखा की आलोचना कर सकते हैं।[27]

सैनिक व्यय

1880 से 1905 तक की अवधि मे भारतीय बजट मे खर्चों का सबसे बडा भाग सेना पर होने वाले खर्चों का था। 1881-2 मे सेना पर और सेना से सबंधित कार्यों पर होने वाले सामान्य खर्चों की कुल विशुद्ध राशि 17.88 करोड थी जो भारत सरकार के कुल व्ययों का लगभग 41.9 प्रतिशत था। 1885 के पश्चात प्रमुखतया बर्मा युद्ध, उत्तर-पश्चिम में रूस के आगे बढ आने की आशका, समय समय पर सेना के सुधार और आधुनिकीकरण के लिए उठाए गए पगो और इस मद मे लदन मे किए जाने वाले भुगतान में हुई विनिमय की हानि, आदि कारणो से यह राशि और भी अधिक बढने लगी। समीक्षाधीन अवधि मे सेना पर होने वाले व्ययो मे निरतर और क्रमिक वृद्धि को इन आकडों से देखा जा सकता है. 1886-7 मे यह राशि 19.41 करोड अथवा बजट के कुल शुद्ध खर्चों का लगभग 42.4 प्रतिशत थी। 1891-92 मे 22 57 करोड अथवा लगभग 45 4 प्रतिशत,1901-02 मे 23.55 करोड अथवा लगभग 45 2 प्रतिशत तथा 1904 05 मे 30.22 करोड अथवा कुल शुद्ध खर्च का 51 9 प्रतिशत थी।[28] इसके अतिरिक्त भारत को रायल नेवी (शाही नौ-सेना) को देश की सामान्य जलीय सुरक्षा का दायित्व निभाने के लिए आर्थिक सहायता देनी पडती थी जिसकी राशि विविधता लिए रहती थी। 1869 मे जहा यह राशि 70,000 पौंड थी, वहा 1900 मे 100,000 पौड हो गई। इसके साथ ही भारत सरकार को स्थानीय रायल इंडियन मैरीन का खर्च भी उठाना पडता था।[28-A] इसके अतिरिक्त युद्ध, विशेष अभियान तथा विशिष्ट सुरक्षा कार्य पर होने वाले विशिष्ट प्रकार के व्यय भार भी सहन करने पडते थे। 1876-7 और 1902-03 मे सैनिक प्रक्रियाओं पर 22 2 करोड रुपये और विशिष्ट सुरक्षा कार्यो पर 4.5 करोड रुपये खर्च हुए।[29]

भारतीय नेताओ ने सेना पर होने वाले खर्चों पर प्रबल प्रहार किए तथा इस विषय पर एकमत होकर निरंतर और नियमित रूप से अभियान चलाए रखा। वस्तुत. हमारे अध्ययन के अंतर्गत संपूर्ण अवधि मे सेना संबंधी व्यय राष्ट्रीय आदोलन के आक्रमण का सबसे प्रमुख लक्ष्य रहा है। यद्यपि इन नेताओ ने सेना संबंधी व्यय और उसके सभी पक्षों, धनराशि के साथ साथ उद्देश्य और उसके उपयोग किए जाने के ढंग आदि की तीखी आलोचना की तथापि उनका ध्यान प्रमुख रूप से इस प्रश्न के आर्थिक पक्ष पर ही केंद्रित रहा। उदाहरणार्थ, कुछ आर्थिक प्रश्नों से संबद्ध पक्षों को छोडकर इन नेताओं ने सैन्य संगठन, कार्यक्षमता की समस्याओं तथा सैनिक नीति की न्यूनाधिक रूप से उपेक्षा ही की। इस प्रवृति का एकमात्र अपवाद सेना के भारतीयकरण की इच्छा थी।

संक्षेप में भारतीय नेताओं ने यह घोषणा की कि भारत के वित्तों के असंतुलन का

प्रधान कारण तथा ऊंचे कराधान के अस्तित्व का कारण मिलिट्री के ऊंचे और निरंतर बढते हुए व्यय ही थे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि जब तक अनावश्यक सेना संबंधी खर्चे इमी प्रकार बढते जाएंगे अथवा इतने ऊंचे बने रहेंगे तब तक भारतीय वित्तों में सुधार की कोई संभावना नही। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने पहले ही अधिवेशन से मैनिक व्यय में वृद्धि के प्रति विरोध प्रकट किया।[30] 1889 में कांग्रेस ने देश में सेना संबंधी व्ययों में वृद्धि की निरंतरता के स्थान पर उसमें कटौती की आवश्यकता पर बल दिया।[31] 1891 में उसने अपना यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि देश की घोर दरिद्रता का कारण वर्तमान सैनिक और नागरिक प्रशासन पर होने वाली फिजूलखर्ची है। इसमें भी सैनिक प्रशासन की फिजूलखर्ची विशेष चितनीय है।[32] परवर्ती वर्षों में कांग्रेस सेना के खर्चो मे कटौती करने और उस कटौती को बनाए रखने की निरंतर और बार बार मांग करती रही। राष्ट्रवादियो की अन्य सस्थाएं भी समय समय पर इस प्रश्न को उठाती रही। 1885 में 'ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन', कलकत्ता की 'इंडियन एसोसिएशन', 'बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन', 'पूना सार्वजनिक सभा', मद्रास की 'महाजन सभा', कराची की 'सिंध सभा' तथा सूरत की 'प्रजा हितवर्धक सभा' ने संयुक्त रूप से अंगरेज मतदाताओं से 'भारत की अपील' शीर्षक से इंग्लैंड मे इश्तहारो की एक सामान्य माला निकाली और उसका वितरण किया।[33] इश्तहार नंबर-9 का शीर्षक था '20 वर्षों मे भारत के सैनिक व्ययों में 21 प्रतिशत की वृद्धि।' इसका अर्थ था कि जो सैनिक व्यय 1857 मे 11,463,000 पौंड पर पहुंच गया था, वही 1884 मे और अधिक बढ़कर 16,975,550 पौंड हो गया है, इसे आसानी से घटाकर 14 लाख पौंड किया जा सकता था।[34]

बहुत सारे प्रमुख राष्ट्रवादी लोकनेताओ ने सैनिक खर्चों की विस्तार में और तीखेपन के साथ चर्चा की। डी० ई० वाचा निश्चित रूप से इस प्रश्न पर प्रमुख राष्ट्रवादी प्रवक्ता थे। इस विषय पर दिए गए उनके भाषणों और लिखे गए लेखों को यदि एक स्थान पर इकठ्ठा किया जाए तो एक काफी बडा ग्रंथ तैयार हो जाएगा। 1885 में उन्होंने प्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को संबोधित करते हुए 1871 में सेना पर किए जा रहे खर्चों में वृद्धि की समीक्षा की तथा इस घोर पातक के लिए सरकार की भर्त्सना की।[35] 1891 के कांग्रेस के अधिवेशन में एक अन्य विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि इस समय सेना के खर्चों में कष्टदायक वृद्धि के प्रश्न के समान दुखदायक अन्य कोई प्रश्न नही। सेना पर होने वाले व्ययों में वृद्धि तो देसवासियों की क्षमता को खाए जा रही है।[36] उन्होने अपने इसी दृष्टिकोण को परवर्ती वर्षों में बार बार दोहराया।[37] जी० वी० जोशी ने प्रथम अपने 1886 में प्रकाशित निबंधों 'ए नोट आन रिट्रेंचमेंट' और 'दि नेटिव इंडियन आर्मी' में देश के वित्तों पर बढ़ते हुए सैन्य व्ययों के घातक प्रभाव की जांच की।[38] उन्होंने 1886 में प्रकाशित अपने लेख 'दि प्रेजेंट फाइनांशल पोजीशन' में विस्तृत सांख्यिकी विश्लेषण के आधार पर अपना आरोप दोहराया।[39] अत्यधिक सैन्य व्ययों के विरुद्ध अभियान चलाए रखने वाले गोपालकृष्ण गोखले एक दूसरे राष्ट्रवादी नेता थे।[40] अनेक अन्य राष्ट्रवादी जननेताओं ने भी बराबर जोशो खरोश के साथ बढ़े सैनिक व्ययों के विरुद्ध भाषण दिए तथा लेख लिखे।[41] इसी प्रकार

राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओं ने भी सैन्य व्ययों के विरुद्ध बराबर जोरदार आवाज उठाई और इन व्ययों मे कटौती की माग के लिए दबाव डाला।[42]

भारतीय नेताओ ने मिलिट्री के खर्चो की आलोचना के लिए केवल उन खर्चों के विस्तृत आकार को ही अपना आधार नही बनाया प्रत्युत भारतीय संसाधनों की शून्यता पर विचार करते हुए उनके औचित्य को भी समीक्षा का आधार बनाया। उन्होंने इस सिद्धान्त पर बल दिया कि देश की सुरक्षा और सेना संबंधी आवश्यकताओं को मिलिट्री के खर्चों के उपयुक्त आकार के निर्धारण की एकमात्र कसौटी न मानकर देश की उन खर्चों को सहन करने की क्षमता को पर्याप्त महत्व दिया जाना चाहिए।[43] अतएव उनका तर्क था कि इस समय देश सशस्त्र सेनाओं पर जितना व्यय कर रहा है, वह उसकी सहनशक्ति के बाहर है।[44] कुछ लोगो ने तो यह तथ्य प्रतिपादित किया कि सैन्य खर्चो का इससे बढ़-कर अधिक निदनीय पक्ष क्या हो सकता है कि भारत जैसा निर्धन देश अपने वार्षिक राजस्व का जितना बडा भाग सेना पर खर्च कर रहा है, उतना तो ब्रिटेन और जारशाही रूस को मिलाकर विश्व के अपेक्षाकृत अधिक विकसित, अधिक संपन्न और सैनिक तानाशाह देश भी नही कर रहे।[45] उन्होने यह तथ्य भी प्रस्तुत किया कि सैनिक खर्चे भारत के सारे विशुद्ध भूराजस्व को हजम कर जाते है। उन्होने इस तथ्य का प्रयोग इस महगे सशस्त्र सेनाओं के सैन्यतन्त्र को भारत द्वारा वहन करने मे उसकी अक्षमता के प्रमाण के रूप मे किया।[46] भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सातवें अधिवेशन मे डी० ई० वाचा ने टिप्पणी की कि 'दरिद्र किसानो का खून चूसा जा रहा है ताकि सैनिक करभोक्ता मजे उडा सकें, स्टार और मैडल प्राप्त कर सके।'[47]

भारतीय नेताओ के अनुसार भारत की आर्थिक क्षमता के बाहर सैन्य खर्चों का प्रत्यक्ष तथा कदाचित निकृष्टतम दुष्परिणाम यह हो रहा था कि सरकार एक ओर तो सेना पर पानी की तरह रुपया बहा रही थी और दूसरी ओर राष्ट्र निर्माता विभागो पर बहुत कम खर्च कर रही थी। इस प्रकार देश की स्वस्थ आतरिक प्रगति और आर्थिक विकास को धक्का लग रहा था। समस्या के इस तथ्य को प्राय. ही प्रबलता के साथ प्रस्तुत किया गया। उदाहरणार्थ, डी० ई० वाचा ने 1891 मे चिंतित होकर आश्चर्य प्रकट किया : 'यदि भारत का 54 करोड का बडा भारी अनावश्यक, सामान्य से अतिरिक्त और फालतू खर्चा 5 वर्षो मे बचाया गया होता तो भारत न जाने कितना सुखी-संतुष्ट, कितना सपन्न तथा कितना उन्नत हो गया होता।'[48] दस वर्षो के उपरांत उन्होने दृढतापूर्वक कहा . 'जनता के कल्याण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण, देश के सभी आतरिक सुधारों के मार्ग मे प्रधान बाधा मिलिट्री के खर्चे हैं।'[49] इसी प्रकार तिलक के 'केसरी' ने अपने 15 अप्रैल 1902 के अक मे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा : 'घरेलू प्रशासन के मामलों में जनता के हितो के प्रति सरकार की उपेक्षा वृत्ति का वास्तविक कारण भारत के बढ़ते हुए मिलिट्री के खर्चे ही है।'[50] जी० के० गोखले ने 1903 मे इस तथ्य पर कि 1885-1898 की अवधि में सरकार द्वारा जनता से अतिरिक्त राजस्व के रूप में इकट्ठी की गई 120 करोड़ रुपये की धनराशि में से लगभग 80 करोड रुपया सेना द्वारा हड़प लिया गया है और इस विशाल धनराशि में से सार्वजनिक शिक्षा के भाग मे आधे करोड़ रुपये से भी कम रकम

आई है, शोक प्रकट करते हुए दृढ़तापूर्वक कहा कि जब हमारे राजस्व निरंतर बढ़ते हुए सेना के उद्देश्यों की पूर्ति की ओर ही उन्मुख किए जा रहे हैं तब राज्य द्वारा किसी बड़े परिणाम पर जनता की भौतिक समृद्धि तथा नैतिक प्रगति से संबंधित किसी सुदृढ और स्थाई प्रयास की संभावना के लिए अवकाश ही नहीं।[51]

ऊंचा सैन्य व्यय तथा सुझाए गए उपाय

भारतीय नेताओं ने अनुभव किया कि ऊंचे सैन्य व्ययों की कोरी निंदा करना ही काफी नहीं है क्योंकि सरकारी अधिकारी इस तथ्य से तो इनकार ही नही करते कि ये खर्चे ऊंचे हैं। उनका तर्क तो यह रहता है कि ये खर्चे अनिवार्य है और भारत साम्राज्य की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए इनमें किसी प्रकार की कटौती संभव नही। उदाहरणार्थ 1894-5 के वित्तीय विवरण पर हुए विवाद में जनरल ब्रिकबरी ने सैन्य व्ययों के आलोचकों को उत्तर देते हुए कहा था :

> मैंने निंदा प्रस्ताव देखे हैं, मैंने आरोप पत्र देखे हैं, मैंने जोरदार वक्तव्य सुने है, मैने भारत सरकार से खर्चा घटाने की अपीलें भी देखी है, परतु किसी व्यक्ति ने भी इस संबंध मे कोई एक भी तर्क प्रस्तुत नही किया कि किस प्रकार उचित मात्रा में सैन्य व्ययों में कटौती की जा सकती है।[52]

इस प्रकार लार्ड कर्जन के वायसराय काल में सैन्य व्यय उत्तरोत्तर बढते बढते आसमान पर पहुंच गए इसके बावजूद उसने 1901 में घोषणा की :

> मुझे इस तर्क से जरा भी क्षोभ नहीं पहुंचा कि सेना पर किया जाने वाला सारा व्यय निरर्थक है और इस धन का अधिक अच्छा उपयोग देश के आर्थिक विकास की योजनाओं पर खर्च करके किया जा सकता है। मैं बडी प्रसन्नता से सारे राजस्व को ही विकास योजनाओं पर खर्च करने को प्रस्तुत हूं परंतु मैं यह स्पष्ट शब्दों मे कहना चाहता हूं कि मैं ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकता। देश को सुरक्षित रखने के लिए सेना की आवश्यकता है और भारत को सुरक्षित नही माना जा सकता।[53]

इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय नेता सैन्य व्यय में वृद्धि के लिए उत्तरदायी तत्वों की जांच-पडताल करने और तदनुरूप उपायों को सुझाने के लिए विवश हो गए। परंतु इस महत कार्य को हाथ मे लेकर भी इन नेताओं ने इस प्रश्न के व्यापक नीति संबधी पक्षों के अध्ययन तक ही अपने को सीमित रखा। उन्होंने न तो कोई व्यावहारिक सुझाव दिए और न ही सरकारी पक्ष द्वारा पेश किए गए अपेक्षित तकनीकी प्रशासनिक विवरणो का अध्ययन किया।[54] इस दृष्टिकोण का स्पष्ट और युक्तियुक्त प्रतिपादन डी० ई० वाचा ने 1895 में उस समय किया, जब उन्होंने यह टिप्पणी की कि अधिकारी लोग सेना के खर्चों के आलोचकों से रचनात्मक सुझावों की मांग तो इस प्रकार कर रहे हैं, जैसे कि मानो इन आलोचकों के पास सारे सूक्ष्म तथा विस्तृत विवरण उपलब्ध हों और इनकी सहायता से उनके लिए सुझाव भेजना संभव है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार की स्थिति है, उसमें 'रचनात्मक' कहे जाने वाले सुझावों का भेजना संभव ही नही है। रचनात्मक प्रस्ताव देने के लिए जब हमे अपेक्षित सामग्री ही नहीं दी जाती तो हम केवल समीक्षा ही कर सकते

हैं और इसके लिए हमें दोष नही दिया जा सकता।[55] विध्वंसक आलोचना का कार्य भारतीय नेताओं ने प्रभावात्मकता, सशक्तता तथा व्यापकता के साथ किया। वास्तव में जो थोड़े बहुत विधाई उपाय इन नेताओ ने सुझाए भी, वे भी मूलतः प्रभाव की दृष्टि से विध्वसक थे।

हमारे अध्ययन की अवधि मे विभिन्न युद्ध, जिनमे भारतीय सेनाओं ने भाग लिया था, तथा अनेक बड़े पैमाने के साहसिक अभियान जिन्हे भारत सरकार ने अपनाया था, ही सेना के खर्चों मे वृद्धि के प्रमुख आधारभूत कारण थे। 1876-7 मे 1902-03 की अवधि मे ही अकेले इस खाते मे जुड़ने वाली अतिरिक्त खर्चो की राशि लगभग 22 करोड़ रुपए थी।[56] भारतीय नेताओ ने इन युद्धो और अभियानो मे भाग लेने की निंदा की। उनके इस दृष्टिकोण का प्रमुख आधार तो आर्थिक कारण थे परतु साथ ही उनके विरोध का आधार राजनीतिक नैतिकता भी थी और वस्तुत उनके अनुसार इन युद्धो तथा अभियानो से भारतीयों के हितो तथा उद्देश्यो का तो सबध ही नही था। इनसे ब्रिटेन के प्रादेशिक तथा व्यापारिक विस्तार के हित ही मुख्य रूप मे जुडे हुए थे। भारतीय नेताओ ने लगभग उन सभी युद्धो को सर्वथा अनावश्यक तथा ब्रिटिश लोलुपता की सृष्टि घोषित किया। भारतीय नेताओ ने इन युद्धो और अभियानो पर हुए खर्चे को इंग्लैंड और भारत के बीच बाटने के अनुचित तथा अन्यायपूर्ण ढग की भी आलोचना की क्योकि उनके अनुसार इन युद्धो आदि से होने वाले सारे के सारे लाभ तो इग्लैंड ने उठाए थे जबकि उन पर होने वाले खर्चे भारत के मत्थे मढ़ दिए गए थे। इन नेताओ ने प्राय. यह माग की कि इनके सारे ही खर्चो का भुगतान ब्रिटेन को करना चाहिए। निंदित और आलोचित युद्धों और अभियानो मे अधिक उल्लेखनीय थे—1878-80 का अफगान युद्ध, 1882 मे मिस्र पर अभियान, 1884-5 मे सूडान पर आक्रमण, 1885 मे बर्मा का सयोजन, 1888 मे सिक्किम पर अभियान, 1895 मे चितराल पर अभियान, 1896 मे मिस्र पर अभियान और 1903-04 मे तिब्बत पर अभियान।[57]

राष्ट्रवादी नेताओ के मत मे सेना के अनावश्यक ऊचे खर्चों का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण भारतीय सेना का अनावश्यक रूप से विस्तृत आकार था। 1885-87 मे रूसी खतरे का सामना करने के लिए 10000 बर्तानवी सैनिको की और 20000 भारतीय सैनिको की भरती करके इस सीमा तक भारतीय सेना मे वृद्धि करने को और लगभग 2,26,700 सैनिको की सेना रखने को[58] राष्ट्रवादियो ने सर्वथा अवाछनीय, हर तरह से अनावश्यक बताया और इसीलिए उस पर होने वाले व्यय को सार्वजनिक कोषो का व्यर्थ दुरुपयोग बताकर उसका तीव्र विरोध किया।[59] आगामी वर्षों मे इन नेताओ ने दृढता-पूर्वक यह मत व्यक्त किया कि सेना देश की न्यायोचित आवश्यकताओ से बहुत अधिक बढ गई है अत उसमे यथाशीघ्र कटौती की जानी चाहिए।[60] बाद मे जब 1896 मे सूडान मे, 1899-1900 मे दक्षिणी अफ्रीका मे और 1900-01 मे चीन मे भारतीय सैनिक टुकड़ियो को ब्रिटिश सेना की सहायता के लिए भेजा गया तो भारतीय नेताओं ने दृढतापूर्वक कहा कि इन मामलो मे बडी संख्या मे सैनिको को देश से बाहर भेजा गया है और इससे देश की आतरिक अथवा बाहरी सुरक्षा किसी भी प्रकार से प्रभावित नही

हुई। यह घटना इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि सेना मे कटौती बडी आसानी से की जा सकती है।[61] सेना की अधिकता की व्यर्थता के उप सिद्धात के रूप मे नेताओं ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि जब कभी सेना की सख्या तथा उसकी क्षमता मे सुधार के लिए कदम उठाने की आवश्यकता पडी है, उन कदमो का अतिम निर्णय सुरक्षा से सबंधित विषयो के सदर्भ मे नही हुआ है। सामान्य रूप मे ब्रिटेन के शाही हितो की सुरक्षा और उन्नयन के विचारो को महत्व दिया जाता रहा है। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने 1903 और 1904 के अधिवेशनो मे इस विचारधारा को बडी स्पष्टता तथा प्रबलता के साथ प्रतिपादित किया।[62] 1896 मे विलबी कमीशन को भेजे अपने एक सप्रेषण मे दादाभाई नौरोजी ने असाधारण प्रखरता तथा कटुता के साथ इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दो मे व्यक्त किया

> वास्तव मे सारी यूरोपीय (अशत भारतीय) सेना ब्रिटिश सेना का अविभाज्य अग है। ब्रिटिश सेना द्वारा भारत को एक श्रेष्ठ प्रशिक्षण क्षेत्र के रूप में समझा जाता है और उसी रूप मे इसका उपयोग किया जाता है। किसी भी मूल्य पर अगरेजो के लाभ, सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए तथा उनके देशवासियो के लिए आखेट स्थल के रूप मे, एक ब्रिटिश साम्राज्य तथा यूरोपीय सम्मान की सुरक्षा की दृष्टि से ही भारत का उपयोग किया जाता है। भारतीय लोगो के साथ दासो का व्यवहार किया जाता है। उन्हे मालिको की चरम उन्नति के लिए सारे खर्चो के भुगतान के गर्व गौरव का अनुभव करने को तो मिलता है परतु सारे मामले मे जरा सी भी जबान खोलने की अनुमति नही मिलती।[63]

इसी प्रकार गोखले ने अपना निश्चित मत अभिव्यक्त किया कि ब्रिटिश नीति एशियाई साम्राज्यो को हडपने की तथा यूरोपीय शक्तियों की दौड में आगे बढने के लिए भारतीय संसाधनो का प्रयोग करने की ही रही है।[64] बहुत सारे अन्य भारतीयो ने भी इसी उग्रता से लेख लिखे तथा भाषण किए।[65]

भारतीय नेताओ ने माग की कि भारत की प्राकृतिक सीमाओ के बाहर के सैन्य उद्देश्यो के लिए भारतीय सशस्त्र सेनाओ का उपयोग तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की सेवा के लिए भारतीय राजस्वो का व्यय नही किया जाना चाहिए।[66] उन्होने कहा कि शाही उद्देश्यों के लिए निर्दिष्ट भारतीय सेना के भाग विशेष के भरण-पोषण का, भारत मे स्थित सुरक्षित ब्रिटिश सेना का और शाही युद्धो मे प्रयुक्त भारतीय सेना के व्यय का सारा भार ब्रिटिश सरकार को वहन करना चाहिए। ध्यानपूर्वक देखने से यह सब सर्वथा उपयुक्त तथा न्यायोचित ही होगा।[67] जब ब्रिटिश सरकार ने 1903 मे भारतीय नेताओ द्वारा अनुमोदित सिद्धात का उल्लघन करते हुए दक्षिणी अफ्रीका मे नियुक्त ब्रिटिश-सेना की एक टुकडी के भरण-पोषण के व्यय के कुछ भाग का भुगतान भारतीय राजस्व से करने की योजना की घोषणा की तब उसे सुनकर भारतीय नेता तिलमिला उठे। उन्होने बहुत दूरस्थ प्रदेश दक्षिणी अफ्रीका मे शाति स्थापित करने के लिए किए जा रहे खर्चे के भार को भारत के ऊपर डालने की चेष्टा को एक धूर्ततापूर्ण और निदनीय योजना घोषित की। उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे कहा कि साम्राज्य के उद्देश्यों के लिए भारतीय धन को खर्च

करने का यह एक दूसरा उदाहरण था। उन्होंने अपनी भावनाएं प्राय. तीखी और कठोर भाषा में ही अभिव्यक्त की। उदाहरण के रूप मे 'एडवोकेट' ने अपने 23 जुलाई 1903 के अंक में लिखा था। भारतीयों की छाती से माम के एक और बडे टुकड़े को काटने के लिए मि० ब्रोडरिक ने अपना छुरा तेज कर लिया है।[68] 'इडियन सोशल रिफार्मर' ने 19 जुलाई 1903 के अंक मे भारत को लूटने की नीति के विरुद्ध विरोध प्रकट करते हुए भारतीय लोक नेताओं मे कहा कि वे दस आदेशों की सीधी-सादी शब्दावली मे इस घृणित योजना की निंदा करें।[69] दादा भाई नौरोजी ने स्पष्ट शब्दो मे प्लेटो के समान दार्शनिक भाषा मे लंदन की सभा में उपस्थित लोगो मे पूछा : 'वे कौन मे कारण है और वे कौन सी परिस्थितिया है जिन्होंने हमारे शासकों के मन को इतना अधिक कलुषित कर दिया है कि उन्हे ऐसा नीच और घृणित सुझाव देना पड़ा है ?'[70]

भारतीय नेताओ ने यू तो अपना सारा ध्यान प्राय सैन्य-व्यय के नीतिपरक पहलुओं की सामान्य समीक्षा तक ही सीमित रखा, कुछेक नेताओ ने अवश्य 1890 की अवधि मे अग्रिम सीमा नीति के अपनाने के फलस्वरूप सैन्य-व्ययों मे वृद्धि होने मे पूर्व ही सैन्य-संगठन के पक्षो को विशेष रूप मे आलोचना और सशोधन का आधार बनाया।

सामान्यत: अधिकाश भारतीय नेताओं की आलोचना मे केवल अस्पष्ट और थोडे से नेताओ की अभिव्यक्ति मे सुस्पष्ट प्रस्तुत किया गया। पहला आक्षेप यह था कि भारतीय सेना जहा एक आर अधिक खर्चीली है वहा दूसरी ओर अपेक्षित रूप मे कुशल नही है।[71]

बहुत सारे भारतीय नेताओ ने यह सिद्ध करने के लिए तथ्य तथा आकड़े प्रस्तुत किए कि भारत मे सेना का प्रति सैनिक मूल्य सारे विश्व से ही उच्चतम था। उन्होंने आकडों से सिद्ध किया कि यूरोप में जर्मनी के कुशलतम सैन्यतंत्र से भी भारतीय सेना का व्यय अधिक ऊंचा था। यहा तक कि ईस्ट इंडिया कपनी के शासन काल मे हुए व्यय से भी यह व्यय अधिक ऊचा था।[72] उन नेताओं के विचार मे भारतीय सेना के महगेपन के लिए कई तत्व उत्तरदाई थे। उनका कहना था कि 1859 की एकीकरण योजना, अल्पकालीन सेना पद्धति, इंग्लैड मे भर्ती और प्रशिक्षण प्रणाली, इंग्लैंड और भारत के मध्य ब्रिटिश सेनाओं के परिवहन की पद्धति, अनुपयोगी सेवाओ का विकास तथा ब्रिटिश सैनिकों को पेंशन देने जैसी बातो ने भारत पर व्यर्थ का गलत और अनावश्य रूप से ज्यादा वित्तीय भार डाल दिया है इसलिए इन खर्चों को समाप्त करने की अथवा उनमें कटौती करने की आवश्यकता है।[73] 1897 मे विलबी कमीशन के समक्ष अपना साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए जी० के० गोखले ने भारतीय स्टाफ कार्प्स सिस्टम पर कटु प्रहार किए। गोखले ने वक्रता से टिप्पणी की कि सेना मे उन्नति की पद्धति सेनाओं की आवश्यकता के संदर्भ में नियमित नही की गई प्रत्युत अफसरों के हितो को देखते हुए ही उसका नियमन किया गया है। इसका अर्थ तो यह निकला कि सेना अधिकारियों के लिए है अधिकारी सेना के लिए नही हैं। वास्तव में उनके चितन का निष्कर्ष यह था कि सेना के अधिकारियों को उनके सेवा काल में तथा सेवा निवृत्ति के उपरांत आवश्यकता से बहुत अधिक वेतन दिया जाता है।[74]

एकाध भारतीय नेताओं का तो यहां तक विश्वास था कि भारत स्थित ब्रिटिश सैनिकों के वेतन और भत्ते आदि एकदम अपव्यय थे। उदाहरणार्थ 'इंडियन स्पेक्टेटर' ने अपने 15 अगस्त 1880 के अंक में यह निर्देश किया कि यूरोप में किसी एक सैनिक पर आने वाले व्यय की तुलना में भारत स्थित ब्रिटिश सैनिक पर व्यय पांच गुना अधिक आता है। पत्र ने टिप्पणी करते हुए लिखा :

> छंटाई की छुरी का चलाना नितांत आवश्यक हो गया है। निश्चित रूप से ही हम यह नहीं चाहते कि हमारे सिपाही विलासिता का जीवन बिताएं।...हम यह तो किसी भी रूप में नहीं देखना चाहते कि वीर ब्रिटिश सैनिक घटिया वस्त्र पहनें और घटिया भोजन खाएं परंतु लोगों की आशंका यह है कि वे यदि आवश्यकता से अधिक बढ़िया वस्त्र नही पहनते तो भोजन अवश्य आवश्यकता से अधिक बढ़िया खाते हैं।...हमारा भी विश्वास है कि स्वदेशी सेना को मिलने वाले तुच्छ राशन की तुलना में ब्रिटिश सैनिक अत्यंत विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं।[75]

जब इंग्लैंड में हुई वेतन-वृद्धि के समान भारत मे ब्रिटिश सैनिको के वेतन में भी 1902 में वृद्धि की गई तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके साथ साथ अन्यान्य नेताओं ने इस पग के विरुद्ध अपना अत्यंत सशक्त विरोध प्रकट किया।[76] यहा उल्लेखनीय है कि उस समय कुछ ने तो भारतीय सैनिकों के वेतन में वृद्धि की वकालत की[77] और जब भारत सरकार ने 1895 में भारतीय सैनिकों का वेतन 7 रुपये से बढा कर 9 रु० माह कर दिया तो उनमें से बहुत सारे नेताओं ने 'हर्षवर्धक समाचार' के रूप में इस पग का स्वागत किया।[78]

कुछ भारतीय नेताओं द्वारा बचत का सुझाया गया दूसरा उपाय था पृथक अध्यक्षीय कमानों की समाप्ति, क्योंकि उनके वक्तव्य के अनुसार केंद्रीय शाही नियंत्रण के कारण सैनिक दृष्टि से उनकी सार्थकता निस्सार तथा नामशेष हो गई थी। उस समय तो उन्हें बनाए रखने का एकमात्र उद्देश्य बिना कार्य के ही अधिकारियों को वेतन जुटाना था।[79] भारतीय नेताओं ने लार्ड किचनर की 1904 की सेना के पुनर्विभाजन और पुनर्गठन की योजना का भी विरोध किया क्योंकि इसके साथ अतिरिक्त खर्चे जुड़े हुए थे। उन्होंने मांग की कि इस योजना का भार भारतीय राजकोष पर नही डालना चाहिए।[80]

सैन्य विभागों के प्रश्न पर किचनर-कर्जन मतभेद[81] के प्रति भारतीय नेताओं द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से यह अत्यंत स्पष्ट हो जाता है कि वे लोग किस सीमा तक सैन्य-व्ययों में बचत के लिए कृत-संकल्प थे। इस मतभेद का, जिस पर कर्जन ने स्वयं अपने वायसराय पद के भविष्य तक को दांव पर लगा दिया था, पता जनता को 1905 में उस समय चला, जब कर्जन द्वारा बनाए गए यूनीवर्सिटी ऐक्ट, कलकत्ता विश्वविद्यालय में उसके द्वारा दिए गए दीक्षांत भाषण तथा बंगाल के किए गए विभाजन के कारण राष्ट्रवादी कर्जन के प्रबल विरोधी बन गए थे। उन नेताओं के लिए अपनी घृणा के पात्र, जिसके विरुद्ध वे प्रचंड संघर्ष करते आ रहे थे, के विरोधी किचनर का समर्थन करना सहज और मानवीय कृत्य ही था। परंतु उनके द्वारा कर्जन का किया गया विरोध किसी व्यक्तिगत कारण से प्रेरित नहीं था प्रत्युत उसका मूल-आधार राष्ट्रीयतावाद ही था,

अतः उन्होंने प्रधान सेनापति की शक्तियों में वृद्धि द्वारा सैन्यव्ययों में वृद्धि की संभावना की आशंका मे किचनर और भारत सचिव के विरुद्ध मदैव कर्जन के पक्ष का समर्थन किया। हां, यह बात दूमरी है कि इन लोगों का यह ममर्थन उत्साह शून्य था और कभी कभी तो उसका स्वर भी मंद रहता था।[82]

कुछ भारतीय नेताओं के मत में भारत में सेना के ऊंचे खर्चों के लिए उत्तरदायी एक अन्य तत्व था, भारतीय सेना में महंगी ब्रिटिश सैनिक टुकड़ियों का अधिक अनुपात। इस कारण से तथा बहुत सारे अन्यान्य कारणो से इन नेताओं ने सेना के भारतीयकरण की मांग की।[83] हां, थोड़े-बहुत नेताओं ने यह अवश्य स्वीकार किया कि भारत सरकार की विदेशी प्रकृति के कारण उसके लिए भारत में एक निश्चित संख्या में ब्रिटिश सैनिकों का रखना एक प्रकार से अनिवार्य सा हो गया है परंतु उनका सुझाव यह था कि उन सैनिकों की संख्या इतनी बडी नही होनी चाहिए, जितनी कि उस समय थी।[84] इसके अतिरिक्त बहुतों का तो यह भी तर्क था कि ब्रिटिश सैनिक टुकड़ियों की आवश्यकता विदेशी शासन को बनाए रखने के लिए है। अत: उनका सारा खर्चा ब्रिटिश वित्तों को ही उठाना चाहिए। यदि सारा नही तो कम से कम भारत के साथ इस खर्चे का भागीदार तो बनना चाहिए।[85] उन्होंने भारतीय सैनिकों को अधिकारी बनने का अवसर देने से इनकार करने की भी आलोचना की तथा अनुभव किया कि यह अन्यान्य आधारों के अतिरिक्त वित्तीय आधार की दृष्टि से आपत्तिजनक है क्योंकि ब्रिटिश अधिकारी भारतीय अधिकारियों की अपेक्षा अधिक महंगे पडते थे। अत: उन्होने भारतीयों के लिए सेना की सेवा मे उच्च पदों के द्वार खोलने का अनुरोध किया।[86] यहा यह उल्लेखनीय है कि इस मांग को उठाने के पीछे वित्तीय आधार कदाचित अपेक्षाकृत गौण कारणों मे से एक था।

जी० वी० जोशी और जी० के० गोखले ने भी भारतीय सेना में किसी भी प्रकार की वालंटियर पद्धति राष्ट्रीय देशरक्षक सेना तथा रिजर्व सेना के अभाव मे स्थाई सेना को युद्ध के लिए निरंतर तैयार रखने की नीति की आलोचना की। उनका कथन था कि इससे अन्यान्य दुर्बलताओं के साथ देश में नपुंसकता की प्रवृत्ति पनपती है और देश के वित्तों का व्यर्थ दुरुपयोग होता है जिसके फलस्वरूप करदाता को अपने भुगतान के अनुरूप प्रतिदान नहीं मिल पाता है। उनका कथन था कि किसी देश की क्षमता का आधार सकटकाल में सैनिकों की संख्या में वृद्धि कर सकना होना है। जहा अन्य देशों ने अपनी शांति काल की सेना में अल्पकालिक सूचना से ही अनेक समयो मे अपेक्षित वृद्धि कर ली है, वहां भारत एक भी बटालियन के विस्तार की सामर्थ्य नहीं रखता, अकगणना की दृष्टि से खर्चों में वृद्धि के रूप में सेना में वृद्धि दिखा देना दूसरी बात है। इससे भारतीय पद्धति अकुशल और विनाशात्मक रूप से अपव्ययी तथा महगी बन जाती है। दूसरी ओर उनका सुझाव यह था कि रिजर्व सेना की पद्धति को अपनाने से एक तो सरकार सेना की संख्या में कटौती कर सकेगी और दूसरे इससे वित्तों को राहत मिलेगी। उल्लेखनीय यह है कि इस सबका कुल मिलाकर देश की सशस्त्र सेनाओं की क्षमता पर किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नहीं पड़ेगा बल्कि उलटे इससे उसकी क्षमता में वृद्धि ही होगी।[87]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा इस दिशा में प्रस्तावित दूसरा पग था, वालंटियर

पद्धति की स्थापना। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1886 में ही इस साधन को अपनाने की वकालत की थी और इसके उपरांत लगभग प्रतिवर्ष उसने इस मांग को दोहराना जारी रखा।[88] इस मांग का प्रत्यक्ष प्रयोजन देश की सुरक्षा-क्षमता में वृद्धि करना था परंतु इन प्रस्तावों पर वक्तव्य देने वाले प्राय. ही इसके वित्तीय लाभों का ही गुणगान करने लग जाते थे।[89]

भारतीय राष्ट्रीय नेताओं का विश्वास था कि किसी भी अन्य तत्व की अपेक्षा सीमावर्ती अभियान और उन अभियानों के लिए की जाने वाली तैयारियां ही सेना को बड़ी भारी संख्या में बनाए रखने के तथा दुखप्रद व भारस्वरूप सैन्य व्ययों के लिए उत्तरदायी तत्व थे। क्योंकि इन अभियानों का संबंध सरकार की सीमा नीति से था अतः भारतीय नेताओं ने इस नीति की विस्तृत रूप से भर्त्सना की तथा इस नीति को छोड़ने के लिए सरकार पर दबाव डाला।[90] इसके अतिरिक्त इन नेताओं ने मांग की कि यदि सरकार के लिए अग्रगामी सीमा नीति को छोडना संभव नही तो इग्लैंड को या तो सारे का सारा अथवा उल्लेखनीय परिमाण में खर्चे का भार उठाना चाहिए क्योंकि यह नीति प्रधानतया इंग्लैंड के सामाजिक लक्ष्यों व हितों के लिए अपनाई गई है तथा इंग्लैंड ही इनसे प्रमुख रूप से लाभान्वित होता है।[91]

हम ऊपर इस बात का विवेचन कर चुके हैं कि किस प्रकार राष्ट्रवादियों ने यह मांग पेश की कि भारत के विदेशी युद्धों में भाग लेने के सारे अथवा आंशिक व्यय का, भारत स्थित ब्रिटिश सेना के भरण-पोषण के व्यय के भाग का, भारत की आवश्यकता से बढ़-चढ़ कर शाही उद्देश्यों के लिए हुए सैन्य व्ययों का, सीमावर्ती अभियानों में हुए व्यय का तथा सामान्य रूप से इस प्रकार की अग्रगामी नीति के अपनाने से होने वाले व्यय का भार ब्रिटेन को उठाना चाहिए। अपने युग के कुछ प्रमुख नेता तो एक पग और आगे बढ़कर यहा तक कहने लगे कि भारत के सामान्य सैनिक व्यय में ब्रिटिश कोष को अपना योगदान देना चाहिए। यह मांग इस अपील के साथ जुड़ी हुई थी कि भारत के समग्र प्रशासकीय व्यय में इंग्लैंड को अंशदान करना चाहिए।

इस विचित्र मांग के पीछे विद्यमान तर्क इस मांग से भी अधिक रोचक हैं तथा भारत में ब्रिटिश राज्य के उद्देश्यों के सबंध में राष्ट्रवादी नेताओं की गहरी जानकारी पर बहुत प्रकाश डालते हैं। निष्कर्ष रूप से राष्ट्रवादियों का तर्क यह था कि अंग्रेज भारत की सुरक्षा में इतनी अधिक रुचि रखते हैं, जितनी कि भारत स्वयं, क्योंकि अंगरेजों को भारत पर शासन करने मे महत्वपूर्ण आर्थिक तथा राजनैतिक लाभ प्राप्त होते हैं। इस तर्क को प्रायः ही पर्याप्त सुस्पष्ट तथा सुदृढ भाषा में प्रस्तुत किया गया है। 1893 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादाभाई नौरोजी ने प्रश्न किया :

> ब्रिटेन के इतने गहरे, व्यापक और महान हितों के साथ साथ महत्ता और संपन्नता अनिवार्यत: पूर्वी साम्राज्य पर निर्भर है और इसके साथ अविच्छिन्न रूप से संबद्ध है। क्या यह उचित है, क्या यह न्यायसंगत तथा वांछनीय है कि ब्रिटेन की इस महानता, प्रतिष्ठा और समृद्धि का सारा मूल्य दरिद्र भारतीय जनता की गर्दन पर लाद

> दिया जाए ? इससे तो यही ज्ञात होता है कि मैकाले द्वारा निंदनीय रूप से यथा-निर्दिष्ट इंग्लैंड और भारत के संबंध जैसे कि पारस्परिक लाभों के न होकर केवल स्वामी और दास के ही हों।[92]

इस भाग के लिए जीवनपर्यंत आंदोलन करने के उपरांत देश के इस महान सपूत तथा भारतीय राष्ट्रीयतावाद में मृदु प्रवृत्ति के संस्थापक महान वृद्ध नेता ने प्रत्यक्ष कटुता के साथ लिखा : भारत में यूरोपीय सैन्य-व्यय का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शक्ति पर, ब्रिटिश सम्मान पर, ब्रिटिश हितों के लिए प्रतिवर्ष चार-पांच करोड़ की अन्यायपूर्ण लूट पर रूस के संभावित आक्रमण से सुरक्षा प्राप्त करना है।[93] इसी प्रकार 1895 में पी० सी० राय ने साहसपूर्वक पूछा : यदि रूस ने भारत को कभी जीत भी लिया (भगवान ऐसा दुर्भाग्य का दिन न दिखाए) तो क्या अकेले भारत की ही हानि होगी ? क्या इंग्लैंड को इससे कोई हानि नहीं पहुंचेगी ? क्या इंग्लैंड की महत्तम शक्ति अत्यन्त मूल्यवान बाजार उसके हाथ से नहीं छिन जाएंगे ? और इस संबंध में उन्होंने लार्ड रेंडोल्फ चर्चिल को उद्धृत किया : भारत के बिना तो इंग्लैंड राष्ट्र ही नहीं रह पाएगा।[94] पूना के एस० एम० परांजपे द्वारा संपादित उग्रवादी समाचारपत्र 'काल' तो अपने 28 अगस्त 1903 के अंक में यह घोषणा करते हुए विद्रोह की सीमा के निकट ही पहुंच गया कि यदि रूस भारत पर अधिकार कर ले तो इससे भारत का कुछ नहीं बिगड़ेगा। इस पत्र ने लिखा :

> भारतीय किसान यथापूर्व अपने खेत जोतते रहेंगे। ये खेत देश से बाहर नहीं ले जाए जा सकते। भारतीय किसान की दशा पहले ही इतनी अधिक शोचनीय है कि रूसी आक्रमण से भी वह और अधिक विषम बन ही नहीं सकती। अत: रूस के आक्रमण से सुरक्षा की चिंता तो प्रधान रूप से हमारे शासकों को ही करनी चाहिए, क्योंकि इस आक्रमण से वे ही सिद्धान्त रूप में प्रभावित होंगे। उन्हें ही भारत के आधिपत्य से हाथ धोने पड़ेंगे।[95]

भारत में बड़े पैमाने पर ब्रिटिश सैनिकों की नियुक्ति की, सेना के अपेक्षाकृत उच्च पदों से भारतीयों के बहिष्कार की, तथा रिजर्व दल बनाने की अपेक्षा स्थाई सेना पर निर्भरता की आलोचना करते हुए भारतीय नेताओं में अधिक जागरूक लोग इस तथ्य से ठीक ही परिचित थे कि भारत के लोगों को निहत्था बनाने की प्रवृत्ति के साथ साथ संयुक्त रूप से ही उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजों के इस प्रकार के निर्णय में किसी प्रकार की भूलचूक नहीं थी। वस्तुत उन्हें भारतीय लोगों के हृदय में अपने (अंग्रेजों के) प्रति गहरी घृणा और भय का पता था और इसी संदर्भ में उनके ये पग थे। 'मराठा' ने अपने 29 मार्च 1891 के अंक में घोषणा की कि भारत के सैन्य व्यय में हो रही वृद्धि का एकमात्र कारण यह था कि ब्रिटिश शासक अधिकाधिक अलोकप्रिय होते जा रहे हैं और उनके प्रति जनता की घृणा बढ़ती जा रही है। इसके फलस्वरूप जनता में संत्रास की भावना को बलपूर्वक थोपने के लिए और उनके चारों ओर एक तटस्थ क्षेत्र बनाने के प्रबल प्रयास किए जा रहे हैं। पी० सी० राय ने 1885 में लिखा कि भारतीय सेना में यूरोपीय तत्वों की व्यापक वृद्धि का प्रधान कारण भारत को मात्र पशु-बल से अपने अधीन बनाए रखने की नीति है। उन्होंने टिप्पणी की कि यह अविश्वास

भावना न केवल हमारे शासकों को देश पर शस्त्रबल से शासन करने को प्रोत्साहित करती है प्रत्युत निकृष्टतम संकटकालीन स्थिति का उपयुक्त और प्रभावी सामना करने के लिए सदैव सैनिक दृष्टि से उद्यत रहने की प्रेरणा भी देती है।[96] 'अमृत बाजार पत्रिका' ने भी अपने 6 सितंबर 1894 के अंक में इसी भावना को प्रतिध्वनित करते हुए लिखा, भारतीय सेना के खर्चों में वृद्धि का कारण शासकों के मन में जनता के प्रति अविश्वास-भावना है। इससे पूर्व पत्रिका ने अपने 3 सितंबर 1885 के अंक में यह मत प्रकट किया था कि भारतीयों के प्रति ब्रिटेन के इस अविश्वास को मध्य एशिया में रूस की गतिविधि के प्रति ब्रिटेन के दृष्टिकोण के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस पत्रिका ने दावा किया कि अंग्रेज रूसियों से भयभीत नही हैं प्रत्युत उन्हें इस बात का भय है कि रूसियों के पहुंचते ही इस देश के वासी ही उनके विरुद्ध न हो जाएं। अतः उनकी इच्छा रूसियों को भारत की सीमा से हजारों मील दूर रखने की है। 1897 में कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में सी० शंकरन नैयर ने तथा 1903 मे अपने बजट-भाषण मे जी० के० गोखले ने भी इसी प्रकार की आलोचना अपनी सामान्य मृदु अभिव्यक्ति के साथ की।[97] विलबी कमीशन के समक्ष जिरह के प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस दृष्टिकोण को तीखी और सुस्पष्ट अभिव्यक्ति देने का श्रेय दादाभाई नौरोजी को है। उन्होंने दृढतापूर्वक कहा कि भारतीय सेना मे दो भारतीय सैनिकों की तुलना में एक ब्रिटिश सैनिक रखने का अनुपात इस भय का परिणाम है कि भारतीय सैनिक पर विश्वास नही किया जा सकता। उनसे विशेष रूप से पूछा गया कि क्या यह भय सैनिकों से है? उनका उत्तर था : 'मेरा अभिप्राय भारतीय सैनिक से है। ब्रिटिश सरकार को भारतीय सैनिक से ही भय है।' अगले प्रश्न का उत्तर देते हुए वे पुनः अपने मुख्य विषय की ओर लौट आए और बोले : यदि आप यह मानते है कि यूरोपीय सैनिको की एक निश्चित संख्या का होना आवश्यक है तो इसका कारण यह आशंका है कि भारतीय सेना उपयुक्त ढंग से कार्य नही करेगी।[98]

अविश्वास और भारी सैन्य-व्ययो की नीति के एक विकल्प के रूप मे इन नेताओं ने एक नई नीति अपनाने की वकालत की जिसके अतर्गत देश की सुरक्षा को राष्ट्रीय आधार दिया जाए। भारतीय लोगों पर विश्वास तथा भरोसा किया जाए और भारतीयो को संपन्न तथा संतुष्ट बनाया जाए।[99] इसी प्रकार बहुतो का सुझाव था कि रूसी आक्रमण के विरुद्ध बचाव के लिए महंगी अग्रगामी सीमा-सुरक्षा नीति अपनाने की अपेक्षा जनता की वफादारी तथा विश्वास को पाना अधिक बेहतर और अधिक उपयोगी वैकल्पिक नीति है। उनके अनुसार वास्तविक सीमा तो वफादार जनता का हृदय है और विदेशी आक्रमण से सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय आंतरिक सुधार और जनता का संतोष है।[100]

असैनिक व्यय

भारतीय राष्ट्रवादी नेता सैन्य व्ययों के समान असैनिक व्ययों के प्रति इतने अधिक कटु और उग्र नहीं थे। हा, बहुत सारे नेताओं ने असैनिक व्ययों में वृद्धि की आलोचना अवश्य की, परंतु उसमें अन्यान्य विषयों के विरोध में पाई जाने वाली तीव्रता और उग्रता का

प्राय: अभाव ही था। इस संबंध मे उनकी प्रधान आलोचना यह थी कि विशेषतः भारत जैसे निर्धन देश के लिए यहा का प्रशासन बहुत अधिक महंगा था। 1897 में इस दृष्टिकोण को संक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत करते हुए डी० ई० वाचा ने लिखा : 'एशियाई निर्धनता लिए रहने वाले भारत जैसे एशियाई देश मे पश्चिमी ढग का प्रशासन चलाना वित्तीय-राजनीतिज्ञता के प्रतिकूल ही है।[101]

भारतीय नेताओं के अनुसार प्रशासन के महगेपन का प्रधान कारण प्रशासन के उच्च पदो के लिए ऊचे वेतन का ढाचा है। वास्तव मे असैनिक प्रशासन के विरुद्ध उनकी कदाचित यही अकेली महत्वपूर्ण शिकायत थी। स्वभावत: असैनिक प्रशासन के व्ययों में कटौती के सुझाव इस पक्ष-विशेष तक ही सीमित थे।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा असैनिक खर्चों मे कटौती के लिए सुझाए गए उपायों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपाय था, सभी प्रशासनिक सेवाओं, नगर, रेलवे, इंजीनियरी, मेडिकल, डाक-तार, पुलिस, लोक-कर्म, सीमा-शुल्क आदि, के वरीय पदों का और विशेषत: महान इंडियन सिविल सर्विस का भारतीयकरण इस सेवा पर व्यावहारिक दृष्टि से ब्रिटिश नागरिको का एकाधिकार था और इसमें प्राय स्पृहणीय वेतन-पेंशन और भत्ते आदि की व्यवस्था थी। यह विषय अपने आप में इतना अधिक विस्तृत है कि इस ग्रंथ मे इसे समेटा नही जा सकता और साथ ही यह विषय हमारे अध्ययन-क्षेत्र की सीमा से भी बाहर है। इसके अतिरिक्त यह राष्ट्रवादियो की मागों मे से एक है, जिसे 1858-1905 की मध्यावधि में पनपते राष्ट्रीय आदोलन के विकास के अध्ययनो में गलत रूप से बढा-चढाकर पेश किया गया है। फिर भी, 19वीं शताब्दी के अतिम चरण की अवधि में इस माग के राष्ट्रवादी आदोलन के एक अत्यत महत्वपूर्ण, व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त तथा समर्थित आधारफलक होने के कारण हम यहा इसका सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कर रहे है। सरकारी सेवाओ के भारतीयकरण के लिए भारतीय नेताओ ने सुझाव दिया कि सेवा में भारतीयो की वृद्धि जैसे प्रत्यक्ष पगो को उठाने के अतिरिक्त, आई० सी० एस० तथा अन्यान्य सेवाओ की भारत और इग्लैंड में साथ साथ ही परीक्षा की व्यवस्था करने तथा प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए आयु सीमा में वृद्धि करने जैसे कुछ एक परोक्ष प्रशासनिक पगो को भी उठाना चाहिए।

राष्ट्रीय नेताओ ने सरकारी सेवाओ के भारतीयकरण की माग सामाजिक और नैतिक लाभो के अनेक और विविध आधारो पर की। वे आधार थे, राजनैतिक औचित्य, न्याय तथा विशुद्धता, । 1858 मे की गई 'प्रतिज्ञा' की पूर्ति, प्रशासनिक क्षमता तथा प्रशासन मे बचत।[102] हमारा सबध इस विषय मे केवल आर्थिक आधारो से है और इन्ही आधारो के प्राय: पूर्वापेक्षा सर्वाधिक व्यापक प्रमुखता तथा महत्ता प्राप्त होने का विश्वास किया जाता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादियों की प्रशासनिक विभागों मे यूरोपियों के प्रभुत्व से संबंधित आर्थिक-आलोचना दोधारी थी। एक ओर तो उन्होंने यूरोपियो की संख्या मे अधिकता पर यह आरोप लगाया कि इससे देश की सपत्ति की निकासी होती है, क्योंकि यूरोपीय अधिकारियो द्वारा विपुल राशि मे प्राप्त किए जाने वाले वेतनों और पेंशनो का निर्यात कर दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि देश को दरिद्रता

का सामना करना पडता है। दूसरी ओर उनका अभियोग यह था कि यूरोपियो का ऊचे स्तर पर दी जाने वाली वेतन राशि से सरकार के लिए आर्थिक कठिनाइया उत्पन्न होती हैं। यहा विवेचन के लिए हमे पुन एक बार इस प्रश्न के इन दोनो पक्षो को पृथक करना है। हम यहा केवल व्यय-पक्ष का ही विवेचन करेगे, धन की निकासी के पक्ष का हमने अगले अध्याय 'ड्रेन' मे ही विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय नेताओ मे इन दोनो पक्षो के सबध मे अपने आप श्रम विभाजन हो गया था। उदाहरणार्थ, भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अपनी माग को सुदृढ आधार देते हुए न्याय, राजनैतिक औचित्य, प्रशासनिक कुशलता तथा 1858 के शासनपत्र म निहित व्यवस्थाओ को अपनाने की अपील की। दादा भाई नौरोजी, वाचा दत्त तथा कुछ अन्य महानुभावो ने धन की निकासी पर अधिक बल दिया। 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हिन्दू', 'केसरी', 'मराठा', जी० वी० जोशी तथा अन्य बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओ ने मितव्ययी प्रशासन के प्रश्न पर बल दिया। इस प्रकार ये तीनो वर्ग अपने तर्कों को सर्वथा पृथक रूप मे ही प्रस्तुत नही करते थे, प्रत्युत बहुत बार वे तीनो प्रकार के तर्कों को मिला-जुलाकर भी उपस्थित करते थे।

भारतीय नेताओ द्वारा प्रस्तुत वित्तीय तर्क सार रूप मे इस प्रकार थे। यूरोपीय ऊची दर पर वेतन पाते है और कदाचित उन्हे ऊचा वेतन मिलते रहना निश्चित ही है। अत. उच्च पदो पर विदेशियो की व्यापकता भारतीय प्रशासन के महगेपन का महत्वपूर्ण कारण है। इसके विपरीत दूसरी ओर क्योकि भारतीय अपेक्षाकृत तुलनात्मक रूप म कम वेतन पर नियुक्त किए जा सकते हैं अत यूरोपीय अधिकारियो के स्थान पर भारतीयो को नियुक्त करके प्रशासनिक खर्चों को उल्लेखनीय रूप से नीचे लाया जा सकता है।[01] इस सदर्भ मे आर्थिक पक्ष को कभी कभी नैतिक तथा राजनीतिक पक्षो से अलग करते हुए उस पर बल दिया जाता था। उदाहरणार्थ, अमृत बाजार पत्रिका' ने 18 नवबर 1886 के अपने अक मे खरेपन के साथ, यह खरापन इस पत्रिका की अनेक महत्वपूर्ण तथा विशिष्ट विशेषताओ मे मे एक उल्लेखनीय विशेपता उस समय थी, जब यह दो भाइयो, शिशिर कुमार तथा मोतीलाल घोष द्वारा सपादित किया जाता था, टिप्पणी की :

> ऊचे वेतन वाले सभी पदो से भारतीयो को दूर रखने की सरकारी कार्यवाही की अनैतिकता पर सरकार से बात करना अथवा भारतीयो को बिना किसी प्रकार के राजनैतिक अधिकार दिए अधीनस्थ प्रजा बनाए रखने और इस प्रकार उनमे असतोष पनपाने की राजनैतिक गलती करने की बात सरकार से करना भैस के आगे बीन बजाने के अतिरिक्त और कुछ नही। अत तुच्छ बातो की ओर ध्यान देने की अपेक्षा हमे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आर्थिक विषय पर ही डटा रहना चाहिए। (बल दिया गया)।

भारतीय नेताओ मे अर्थशास्त्रियो ने भी समस्या के सांख्यिकी विश्लेषण का प्रयत्न किया। 17 मई 1892 के संसदीय विवरण को आधार बनाते हुए उन्होने सगणना की कि 1000 रु० अथवा उससे अधिक प्रतिमाह वेतन अथवा पेंशन पाने वाले यूरोपीयो को प्रतिवर्ष दी

जाने वाली धनराशि 14½ करोड़ रुपये बैठती है, जो भारत सरकार के कुल शुद्ध राजस्व का 30 प्रतिशत है।[101]

सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण के पक्ष में प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत तर्कों के पीछे यह धारणा काम कर रही थी कि जब कभी एक भारतीय प्रशासनिक सेवा में किसी यूरोपीय का स्थान ग्रहण करता है तो उसे अपेक्षाकृत निम्न वेतन दिया जाना चाहिए। वस्तुतः राष्ट्रवादी मंतव्य का आधार यह पूर्वानुमान ही था, परंतु यह एक पर्याप्त रोचक आश्चर्य है कि जिस निरंतरता के साथ इस मंतव्य को ग्रहण किया गया, उस मंतव्य के तथा उस मंतव्य के प्रतिपादन के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका खुले आम प्रतिपादन अथवा प्रचार विरल ही हुआ। उसके सर्वथा विपरीत कुछ भारतीय नेताओं ने जातीय समानता के तर्क को आधार बना कर यहां तक मांग करनी प्रारंभ कर दी कि प्रशासनिक स्थानों की प्रकृति और उनके साथ जुड़े उत्तरदायित्वों के संदर्भ में ही वेतनों और सुविधाओं के निर्धारण का न्याय पथ अपनाना चाहिए, न कि उन पदों पर आरूढ़ व्यक्ति विशेषों की राष्ट्रीयता को किसी भी रूप में आधार बनाना चाहिए। उन्होंने यह भी मांग की कि भारतीय असैनिक सेवा में भारतीय व्यक्तियों को यूरोपीय व्यक्तियों के समान ही वेतन समान अवकाश तथा समान पेंशन आदि देकर इस सेवा की गरिमा और प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहिए। उदाहरणार्थ 'ब्रह्मो पब्लिक ओपीनियन' ने अपने 11 सितंबर 1879 के अंक में अंगरेज असैनिक प्रशासकों को मिलने वाले वेतन, अवकाश और पेंशन इंडियन सिविल सर्विस में नियुक्त कर्मचारियों को देने की मांग करते हुए एक नई जाति प्रथा चलाने का विरोध किया। पत्रिका के अनुसार यह प्रथा भारतीय प्रशासकों में हीन भावना की सृष्टि करेगी। इसी प्रकार सिविल सर्विस को कानूनी रूप देने की लिटन की योजना के विरुद्ध प्रतिवाद तथा उसे निवारण की चेष्टा करते हुए बंगाली ने अपने 10 जनवरी 1880 के अंक में टिप्पणी की :

> भारतीय प्रशासनिक कर्मचारी तो एक ऐसा विचित्र जंतु है जिसे यूरोपीय कर्मचारियों के लिए मोहक सम्मान, भविष्य तथा वेतनों आदि से कुछ लेना-देना ही नहीं। अपने यूरोपीय साथी की अपेक्षा वेतन, पेंशन, यश, पदवी आदि की दिशा में तो उसकी स्थिति नितांत भिन्न है, परंतु संसार में कोई भी सम्मानित और स्वतंत्रता प्रेमी व्यक्ति इस प्रकार के असम्मानित पद के प्रति आकृष्ट नहीं होगा और न ही इस प्रकार के स्थान को ग्रहण करने का लालच करेगा।

1886 में लोक सेवा आयोग को अपने प्रत्युत्तरों में वी० एन० मांडलिक, फिरोजशाह मेहता और बी० जी० तिलक ने, 'समान कार्य के लिए समान वेतन सिद्धांत', की वकालत की।[105] इसके उपरांत 1898 में कांग्रेस के सभापति ए० एम० बोस ने और जी० के० गोखले ने वेतनों के संबंध में भारतीय और यूरोपीयों में किसी भी प्रकार का भेदभाव बरतने पर तीव्र आपत्ति की।[106] दूसरी ओर 'अमृत बाजार पत्रिका', 'हिंदू', 'स्वदेशमित्रन', 'केसरी', तथा अन्य अनेक ने खुले आम तथा दृढ़तापूर्वक भारतीयों को कम वेतन देने की वकालत की। उनका तर्क था कि इस प्रकार के त्याग के बिना आर्थिक आधारों पर प्रशासन के भारतीयकरण का राष्ट्रवादियों का सारा मामला ही व्यर्थ सिद्ध हो जाएगा। इस

संदर्भ में 'अमृत बाजार पत्रिका' द्वारा अपनाई गई स्थिति का स्वयं उसी के शब्दों में अध्ययन अपने आप में पर्याप्त रोचक है। इस पत्रिका ने नवंबर-दिसंबर 1886 की अवधि में प्रकाशित संपादकीय लेखमाला में भारतीयों को यह सुझाव स्वीकार करने की सलाह देते हुए लिखा कि जो प्रत्याशी भारत में हुई प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल होते हैं, उन्हें नियमित वेतन का 2/3 भाग ग्रहण करने को प्रस्तुत होना चाहिए। अपने 18 नवंबर 1886 के अंक में इस पत्रिका ने लिखा : यदि हम यूरोपीय लोगों के साथ समान वेतन पाने के लिए झगड़ते हैं तो इस संबंध में सरकार द्वारा सेवाओं के भारतीयकरण के उद्देश्य को ही हम समाप्त कर देते हैं।···इस समय प्रश्न सही अथवा गलत के बीच चुनाव का नहीं। प्रत्युत हमें 'भारतीयकरण' लेना है अथवा नहीं इसके बीच चुनाव का है। अपने 9 और 16 दिसंबर के अंकों में इस तर्क को सशक्त वाणी में प्रस्तुत करते हुए इस पत्रिका ने आगे बढ़कर लिखा : सत्य यह है कि यदि भारतीय अपेक्षाकृत कम वेतन लेकर क्षमता तथा कार्यकुशलता का प्रदर्शन करेंगे तो इससे परोक्ष रूप से सरकार पर प्रशासनिक अधिकारियों के वेतनों में कमी करने का दबाव पड़ेगा। कम वेतन पाने वाले भारतीय कर्मचारियों को सम्मान और लोक-प्रतिष्ठा से हाथ धोना पड़ेगा, इस आपत्ति का उत्तर देते हुए पत्रिका ने जो लिखा, वह एक ओर तो अकाल-प्रौढ़ विचार है, और दूसरी ओर संपादक के मन में व्यापक रूप से उदार प्रजातान्त्रिक विचारों के गहरी जड़ पकड़े होने का प्रमाण है। पत्रिका ने लिखा :

> हमें यह अपने मन में भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि अधिकारियों में सम्मान की प्रवृत्ति के जन्मदाता देश के विदेशी शासक हैं। कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक नहीं कि अधिकारियों को इतना अधिक अनुचित रूप से आदर-सम्मान दिया जाए, जितना कि भारत में दिया जाता है। सरकार ने यह सब जानबूझकर इसलिए किया है ताकि ये अधिकारी जनता की पहुंच के बाहर हो जाएं।···निरंकुश सरकार को अपने कर्मचारियों को जनता पर निरंकुश शासन के लिए निरंकुश शक्तियां देनी ही होती हैं।···हम प्रजाजनों के मान-सम्मान तथा स्वतंत्र-चरित्र की बलि चढ़ाकर अधिकारियों को ऊपर उठाना ही सरकार की नीति है।···सरकारी कर्मचारियों के लिए सम्मान प्राप्ति की बात करना स्पष्टत: देशद्रोह है। हमें अपनी सारी शक्तियां कर्मचारियों को नीचे लाने में और जनता को थोड़ा ऊपर उठाने में खर्च करनी चाहिए।

इसी प्रकार 'हिंदू' ने अपने 15 जुलाई 1886 के अंक में यह आशावादी दृढ़ मत व्यक्त किया कि शिक्षित भारतीय भाड़े के टट्टू यूरोपीय द्वारा मांगे गए वेतन की अपेक्षा थोड़े वेतन पर ही अपने देश तथा अपने देशवासियों के लिए काम करना स्वीकार कर लेंगे। उसने भारतीयों से विदेशियों के समान वेतन पाने की आत्महत्या जैसी मांग को छोड़ने का अनुरोध किया।[107] 25 मई 1887 के अंक में इस पत्र ने फिर लिखा कि अंगरेजों को मिलने वाले जिन वेतनों को धन का अपव्यय कहकर हम उनकी निंदा करते आ रहे हैं, उन्हीं वेतनों की देशवासियों द्वारा अपने लिए मांग करना विवेकशून्य है, देशानुराग विरोधी कृत्य है।[108] इसी प्रकार 1886 के लोक सेवा आयोग के समक्ष अपने साक्ष्य में

अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने या तो कहा कि भारतीयों को यूरोपीयों को मिलने वाले वेतनों से कम वेतन मिलना चाहिए[109], या उन्होंने एक मिला-जुला सुझाव रखा कि एक हजार प्रतिमास के वेतन तक तो यूरोपीयों और भारतीयों के वेतन में समानता रहनी चाहिए। इस राशि से ऊपर के वेतनों मे भारतीयों को कम मिलना चाहिए।[110] 1898 में विलबी कमीशन के समक्ष अपना साक्ष्य देते सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने कदाचित अपने साथी मित्रों के कटु प्रहारों से बचने के लिए इस दृष्टिकोण को स्पष्ट कहने की अपेक्षा उसे मृदु भाषा में प्रस्तुत किया। 'जहां कहीं किसी पद के लिए योग्य भारतीय उपलब्ध है, वहा उसकी नियुक्ति अवश्य ही करनी चाहिए, इस सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि यदि किसी पद के लिए अपेक्षित योग्यताओ के मूल्य का स्थानीय बाजारी मूल्य के संदर्भ में परीक्षण किया जाए और तदनुरूप वेतन का निर्धारण किया जाए तो इससे सरकारी खर्चे मे उल्लेखनीय बचत हो सकती है।'[111] इसी प्रकार विलबी कमीशन के समक्ष अपने साक्ष्य मे दादाभाई नौरोजी ने अभियोग स्वीकार किया कि भारत का प्रशासन भारतीयों के हाथ मे होना चाहिए और उन भारतीयों को स्थानीय परिस्थितियो के अनुरूप वेतन मिलना चाहिए। उन्होंने दावा किया कि योग्यता के स्तर के वहीं बने रहने पर स्वयं सरकार के अपने ही तखमीने के अनुसार कम से कम 1/3 भाग की सरकारी खर्चे में बचत होगी।[112]

सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण के सिवाय भारतीय नेताओं ने उल्लेखनीय परिमाण मे सरकारी खर्चों मे कटौती करने के लिए कोई अन्य ठोस सुझाव नही दिया। उन्होंने असैनिक प्रशासन के खर्चो मे कटौती के लिए प्राय: अस्पष्ट और सामान्य माग प्रस्तुत करने तक ही अपने को सीमित रखा। उनके द्वारा कटौती के लिए सुझाए गए उपायों में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण कुछ उपाय जो 1880 की अवधि मे ही सुझाए गए थे, निम्नलिखित हैं :

> उनके मत में उच्च सरकारी अधिकारियों को दिए जा रहे वेतनों मे कटौती करके प्रशासनिक व्ययों में वास्तविक बचत की जा सकती है। उन्होंने घोषणा की कि इकरारनामे के अंतर्गत असैनिक प्रशासन के अधिकारियो जिनमें अधिकांश यूरोपीय हैं तथा अन्य उच्च पदस्थ अधिकारियों, उदाहरणार्थ, गवर्नर जनरल, प्रांतों के गवर्नरों, भारत सरकार के तथा आयुक्तों के सचिवों के वेतन पेंशन तथा भत्ते गगनचुंबी है, इनमें कटौती करने से सरकारी वित्तों को भारी लाभ हो सकता है और इस कटौती से इन वेतन भोगियों को भी कोई असुविधा नही होगी क्योंकि अतीत मे इन लोगो के ऊंचे वेतनों के लिए जिस देश-निर्वासन तथा कष्टमय जीवन को न्यायसंगत बताया जाता था, और आज इंग्लैंड और भारत में यातायात-साधनों के विकास के फलस्वरूप तथा भारत में निवास की स्थितियों में सुधार आ जाने के फलस्वरूप पहले की परिस्थितियां बदल चुकी हैं।[113]

भारतीय नेताओं ने इसके अतिरिक्त यह भी अनुभव किया कि कुछ ऊंचे प्रशासनिक स्थान जैसे कि राजस्व बोर्ड, राजस्व आयोग का स्थान तथा कुछ मध्य-स्तरीय अधीक्षकों के स्थान, निरर्थक ही नही प्रत्युत बिना कार्य के वेतन का भुगतान करने वाले थे;

अतः उनकी मांग थी कि इन स्थानों को समाप्त कर देना चाहिए।[114] उनमें से बहुतों ने तो इंग्लैंड में 'इंडिया कौंसिल' (भारत परिषद) को ही समाप्त करने की मांग की। उनकी इस माग के पीछे अन्य कुछ कारणो के साथ साथ परिषद का आर्थिक दृष्टि से महगा तथा उपयोगिता की दृष्टि से सर्वथा निरर्थक होना था।[115]

इसके साथ साथ कुछ राष्ट्रवादियों ने कटौती के नाम पर निचले स्तर के निम्न वेतन वाले स्थानो को समाप्त करने की अथवा उन स्थानो के वेतनो मे कटौती करने की सरकारी प्रवृत्ति का विरोध किया।[116] उनमे से बहुतों ने तो काफी आगे बढकर सरकार से कभी कभी उसी जोश-खरोश के साथ, जिस जोश-खरोश के साथ वे ऊंचे वेतनों मे कटौती की वकालत कर रहे थे, बहुत कम वेतन वाले अधीनस्थ प्रशासनिक तथा पुलिस-कर्मचारियों के वेतनों मे वृद्धि की वकालत की। इस प्रकार उदाहरण के रूप मे, 1895 में कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण मे सुरेंद्रनाथ बैनर्जी ने विनिमय क्षति पूर्ति भत्ते की आलाचना करते हुए सरकारी कार्यालयों मे काम करने वाले क्लर्कों और चपड़ासियों की वेतन वृद्धि के लिए तर्क प्रस्तुत किया। उन्होने शिकायत की कि बेचारे अभावग्रस्त सरकारी कर्मचारी अपने वेतन मे बडी कठिनता से ही जीवन निर्वाह कर पाते हैं। विवश होकर जीविका जुटाने के लिए उन्हे गलत तरीके अपनाने पडते हैं। वे बहुत सालों से वही वेतन प्राप्त कर रहे है।[117]

सरकारी खर्चों में कटौती का राष्ट्रवादी क्षेत्र मे व्यापक रूप से लोकप्रियता प्राप्त एक अन्य उपाय केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का प्रतिवर्ष गर्मी के महीनों मे प्राय. अप्रैल से अक्तूबर तक पर्वतीय प्रदेशों मे जाना तथा वहा से वापस लौटना था। यद्यपि इस उपाय को अपनाने के फलस्वरूप रुपयों-पैसों के रूप में होने वाली बचत विशेष उल्लेखनीय नहीं थी तथापि इस उपाय को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई। वस्तुतः भारतीयों ने इस मांग को मनवाने के लिए दो बार छोटे-मोटे आदोलन किए। प्रथम, 1886-7 की अवधि मे भारत सरकार द्वारा वित्त समिति की नियुक्ति ने भारतीय राजनीति मे व्ययों मे कटौती को एक सजीव विषय बना दिया और पुनः जब भयंकर अकाल ने देश को अपनी लपेट मे ले लिया। उन्होने विविध आर्थिक, राजनैतिक तथा प्रशासनिक आधारो पर सरकारों के पर्वतगमन की निंदा की।[118] यहा हमे केवल उनकी आर्थिक आपत्तियो से प्रयोजन है और वे थीं, प्रतिवर्ष पर्वतीय प्रदेशों में अल्पकालीन पड़ाव की विलासिता के लिए भारी और निरर्थक धन की व्यवस्था करनी पड़ती है और भारत जैसे निर्धन देश के लिए यह सब जुटाना कठिन कार्य ही है।[119] इस तर्क को कभी कभी तो और अधिक प्रबलता से प्रस्तुत किया गया। उदाहरणार्थ, 'बिहार हेराल्ड' ने अपने 20 जुलाई 1886 के अंक में टिप्पणी की कि पहाडों पर सरकारी अधिकारियों का जीवन मात्र प्रसन्नता और मौजों का जीवन है। इस पर होने वाले भारी खर्च की पूर्ति बेचारे करदाताओं के जीवन रक्त को चूसकर ही की जाती है।[120] कुछेक भारतीय नेताओं ने इस व्यवस्था के तार्किक दृष्टि से असंगत होने की भी चर्चा की। उनके अनुसार ब्रिटिश अधिकारियों को इस अनुमान तथा आवश्यकता के संदर्भ में ही ऊंचे वेतन दिए जाते हैं कि इन बेचारों को मैदानों की सख्त गर्मी में काम करना पड़ता है। फिर गर्मियों के महीनों में उन्हें पर्वतीय प्रदेशों में जाने के लिए

सुविधाएं जुटाने और विपुल परिमाण मे धनराशि खर्च करने के पीछे क्या तुक है ?[121]

सरकारी खर्चो मे कटौती के राष्ट्रवादियों द्वारा सुझाए गए अन्य उपाय थे, (क) सरकारी ऋणो पर ब्याज की वसूली मे कटौती। इसके लिए सारे ऋणो को ब्रिटिश सरकार की प्रतिभूति के अतर्गत रख देना चाहिए क्योकि वित्त-मडी मे उसकी साख भारत सरकार की साख की अपेक्षा कही अधिक उत्कृष्ट है।[122] (ख)लोक कर्मविभाग मे फिजूलखर्ची मे पर्याप्त कटौती।[123]

भारतीय नेताओ का कथन था कि खर्चो को घटाने के महत्वपूर्ण उपायो मे एक था, रेल पथो के निर्माण की गति को मद करना। हम इस पुस्तक के पाचवें अध्याय मे राष्ट्रवादियो की वित्तनीति के इस पक्ष का पहले ही विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर चुके है।

ब्रिटेन और भारत के बीच व्यय-विभाजन

भारत के वित्तो की कठिनाइयो को दूर करने के लिए भारतीय नेताओं द्वारा सुझाया गया दूसरा उपाय यह था कि ब्रिटेन भारतीय साम्राज्य को बनाए रखने के मूल्य का योगदान करते हुए वित्तीय मामलो मे भारत के प्रति न्यायोचित व्यवहार करे। भारत से धन की निकासी को रोकने अथवा कम करने के साधन के रूप मे भी इन नेताओ ने इस उपाय को प्रस्तुत कि . दादाभाई नौरोजी ने तो विशेष रूप से ही इस द्वितीय कारण (धन की निकासी रोकने) के लिए आदोलन किया।[124] अंततः संसद सदस्य के नाते, उन्हे ब्रिटेन और भारत के समान हितो मे खर्ची जाने वाली धनराशि के दोनो सरकारो मे विभाजन की जाच-पडताल के लिए मई 1895 मे शाही कमीशन (विलबी कमीशन) को नियुक्त करान मे सफलता मिल गई। इससे पहले दिसबर 1894 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने भी इस प्रकार की जाच-पडताल करने का प्रस्ताव पारित किया था।[125]

भारतीयो द्वारा ब्रिटेन और भारत मे व्यय के और अधिक निष्पक्ष बंटवारे की माग निम्नलिखित दो आधारो पर की गई। प्रथम, सकुचित आधार यह था कि ब्रिटेन के खजीने की सकट कालीन आवश्यकताओ के लिए भारत की बलि चढा दी जाती है और वे सारे व्यय भारत के मत्थे मढ दिए जाते है, जिनका समग्रतः नही तो अशतः भुगतान किसी भी न्याय के अतर्गत अनिवार्यतः ही ब्रिटिश कोष को करना चाहिए क्योंकि प्रमुख रूप से ब्रिटिश हितो मे उन सारे व्ययो का विनियोजन होता है।[126] ऐसे व्यय थे, देश के भीतर और देश के बाहर लडी गई लडाइया, जिनमे भारत ने भाग लिया है और भारतीय सेना पर हुए व्यय का भार उठाया है।[127] लदन-स्थित 'इंडिया आफिस' (भारत-सचिवालय) का व्यय,[128] एशिया के विविध देशो मे स्थित दूतावासों और जलसेना के कार्यालयो के व्यय[129] तथा अन्य अनेक फुटकर विविध व्यय, जैसे कि 1895 मे अफगान राजकुमार नसरुल्ला खा की लदन यात्रा पर हुआ व्यय,[130] कोरोनेशन मे भारतीय सेना टुकड़ी पर हुआ व्यय[131] और 1902 मे परशिया की खाडी मे वायसराय के दौरे पर हुआ व्यय।[132] द्वितीय, अधिक व्यापक, अधिक महत्वपूर्ण तथा अधिक सुदृढ आधार यह था कि भारत मे ब्रिटिश की सर्वोच्चता से कानून और व्यवस्था के बने रहने से तथा कुशल प्रशासन से ब्रिटेन के ही व्यापार, उद्योग और पूजी को अत्यंत लाभ पहुचता है, ब्रिटेन के ही

नागरिको को विपुल परिमाण मे नौकरी के अवमर जुट पाते है; अत: ब्रिटिश सरकार को इस सर्वोच्चता का मूल्य चुकाने के लिए और भारत सरकार के साधारण, सामान्य व्ययों के एक भाग का भुगतान करने के लिए महमत होना ही चाहिए।[133]

सैन्य व्यय मे योगदान करने के अतिरिक्त कुछ एक भारतीय नेताओ ने इस सबध मे दो महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सुझाव रखे। प्रथम, भारत मे सभी प्रकार की सेवाओ मे नियुक्त यूरोपियो पर होने वाले व्यय का ब्रिटेन को अशदान ही नही प्रत्युत सारे के सारे व्यय का ही भुगतान करना चाहिए, क्योकि भारत सरकार ने किमी भी रूप मे स्पष्टतया और अनिवार्यतया भारत मे ब्रिटिश सर्वोच्चता को सुरक्षित बनाए रखने के लिए ही इनकी नियुक्ति की है।[134] द्वितीय, ब्रिटेन को भारत सरकार के गृह प्रभारो के तथा इग्लंड मे हुए भारत सरकार के व्ययो के न्यायोचित भाग का योगदान करना चाहिए।[135]

ब्रिटेन के भारतीय व्ययो मे योगदान करने को सहमत गान का एक परोक्ष मभावित लाभ भारतीय नेताओ की दूर दृष्टि के अनुसार यह था कि इमसे ब्रिटेन की ममद और वहा की जनता भारतीय वित्तो के प्रति अधिक गहरी रुचि और अधिक समीक्षापरक दृष्टि अपनाएगी क्योकि इसमे उनकी अपनी जेब ही प्रभावित होगी।[136]

विलबी कमीशन ने 1900 मे अपना प्रनिवेदन प्रस्तुत किया। यह कमीशन कुल मिलाकर ब्रिटेन और भारत के मध्य प्रचलित वित्तीय सबधो से सतुष्ट था। अत उमने ब्रिटिश कोष मे से भारतीय कोष को साधारण सी ही राहत देने की सिफारिश की। दादाभाई नौरोजी, विलियन विडरबर्न तथा डब्ल्यू० एस० केन, जो कमीशन के सदस्य भी थे, कमीशन के बहुमत से असहमत थे तथा उन्होने भारतीय दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करने वाला अपना अल्पमतीय प्रतिवेदन पृथक रूप से ही प्रस्तुत किया।[137] भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने जहा विलबी कमीशन द्वारा प्रतिज्ञात ब्रिटिश अशदान को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कर लिया, वहा बहुत सारे अन्य सदस्यो ने कमीशन के निष्कर्षो के प्रति असतोष प्रकट किया।[138] उनका विचार था कि यह योगदान थोडी असुविधाजनक प्रकृति का है और इसे भारत के प्रति किए गए न्याय की एक छोटी सी किरत ही ममझना चाहिए। दूसरी ओर उन्होने अल्पमतीय प्रतिवेदन का बडे ही उत्माह के साथ स्वागत किया।[139]

कल्याणकारी कार्यों में व्यय

यद्यपि भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने भले ही मरकारी व्ययो मे कटौनी के लिए निरतर आदोलन किया तथापि वे सिद्धान रूप मे सभी प्रकार के व्ययो मे वृद्धि के विरुद्ध नही थे। दूसरे शब्दो मे उनका दृष्टिकोण किमी भी रूप मे सब प्रकार से कराधान के न्यूनतम तथा व्ययों के न्यूनतम करने के सिद्धात तक मीमित नही था। इसके सर्वथा विपरीत जहा उन्होंने सेना, असैनिक प्रशासन तथा रेलो पर होने वाले खर्चों को अनावश्यक, निरर्थक तथा अत्यधिक महगे मानते हुए उनमे कटौनी के लिए आदोलन किया, वहा उन्होंने राज्य की विकासपरक तथा क्षेत्र-कल्याणकारक मानी जाने वाली गतिविधियो, जैसे कि प्राथमिक, माध्यमिक तथा तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था, औद्योगिक तथा कृषि-सबधी उन्नति

कृषि-बैंकों का विकास, सफाई और सार्वजनिक स्वास्थ्य, लोकप्रिय तथा कुशल पुलिस-प्रणाली तथा न्याय-प्रशासन के लिए व्ययों में वृद्धि, का न केवल स्वागत किया प्रत्युत उसके लिए अनुरोध किया और दबाव तक डाला। वास्तव मे भारतीय नेताओं द्वारा बचतों की वांछित दिशाओं के अध्ययन के उपरांत तथा उनके द्वारा बचतों की अवांछित दिशाओं की समीक्षा के उपरान्त यह रोचक तथ्य सिद्ध हो जाता है कि सरकारी खर्चों के समुचित वितरण और उसके क्षेत्र की समस्या के संबंध मे राष्ट्रवादियों की समझ सचमुच ही प्रशंसनीय थी।

सामान्यीकरण के स्तर पर राष्ट्रवादी नेताओं ने देश की सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक प्रगति को द्रुतगामी बनाने के लिए सरकारी वित्तों के उपयोग की संभावनाओं को पूर्ण रूप से स्वीकार किया। उन्होंने इस संबंध मे कहा कि राज्य की पुलिस और सेना के प्रयोजनों के लिए किए जा रहे व्ययों के मुकाबले भारत सरकार द्वारा जनता के प्रत्यक्ष हितों के अथवा उनके नैतिक और भौतिक विकास के कार्यों पर वास्तव मे किए जाने वाले खर्च की राशि साधारण तथा तुच्छ थी। अतः उन्होंने माग की कि सरकार को इस दिशा मे अधिक खर्च करना चाहिए और जब कभी कटौती की छुरी चलानी पड़े तो उसका उपयोग राज्य के अनावश्यक खर्चों मे कटौती के लिए किया जाना चाहिए, आवश्यक खर्चों के लिए उसका प्रयोग कदापि नही करना चाहिए। 1886-7 के आर्थिक संकट से उभरने के लिए कटौती के उपायों की एक सूची प्रस्तुत करते हुए जी० वी० जोशी ने आवश्यक तथा उपयोगी खर्चों को समाप्त न करने की सरकार को चेतावनी दी क्योंकि इसका अनिवार्य दुष्परिणाम देश के विकास का अवरुद्ध अथवा पराङ्मुख होना था। उन्होंने बचत के लिए एक सिद्धांत प्रस्तुत किया : जिस भी क्षेत्र मे बचत की योजना बनाई जाए वहां यह अवश्य देखना चाहिए कि उससे स्थाई तथा उपयोगी रूप से कुशलता तथा प्रगति पर किसी प्रकार से बुरा प्रभाव तो नही पड़ता।[110] बाद मे 1888 मे उन्होंने इंडियन पोलिटिकल ऐसोसिएशन और लेखकों पर लगाए जा रहे इस अभियोग से उनका बचाव किया कि वे वास्तव मे ही उपयोगी और आवश्यक खर्चों मे भी कटौती चाहते हैं और दावा किया कि वे तो उलटे तकनीकी शिक्षा, न्याय प्रशासन पर खर्चों आदि में वृद्धि की माग करते आ रहे है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि लोकमत के व्याख्याता निरंतर लंबे समय से जिस बात पर दबाव डालते आ रहे है, वह इस प्रकार से है :

> सरकार को उन खर्चों मे कटौती करनी चाहिए, जिन्हे अनुभव और विवेक ने जनता के धन का निरर्थक अनावश्यक और धूर्ततापूर्ण अपव्यय सिद्ध कर दिया है। विलासिता वाले बड़े बड़े भवन बनवाना, पर्वतीय प्रदेशों मे पड़ाव डालना, समान योग्यता वाले अथवा अधिक योग्यता वाले भारतीय प्रत्याशियों के सुलभ होने पर भी महंगे यूरोपीय लोगों को नियुक्त करना सर्वथा निरर्थक व्यय है। सेना मे अनावश्यक बढ़ोतरी करना तथा गृह प्रभारों मे अनुचित वृद्धि करना अनावश्यक व्यय है। सीमाओं के 'वैज्ञानिक संशोधन' पर, दूसरे देशों की सीमा मे 'सैनिक विनोद-विहार' पर किए जाने वाले व्यय धूर्ततापूर्ण है।[111]

1895 मे इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल मे अपने बजट-भाषण मे फिरोजशाह मेहता ने

शिकायत की कि सेना और नगर प्रशासन के अत्यधिक ऊंचे व्ययों की एक बहुत बडी बुराई यह थी कि शिक्षा और पुलिस-सुधार जैसे अत्यत आवश्यक प्रयोजनों के लिए भी अपेक्षित राशि सुलभ नही हो पाती थी।[112] 1895 मे बंबई के बजट पर अपने सर्वप्रथम भाषण में ही बी० जी० तिलक ने सरकार को लताड़ते हुए कहा कि 1870 मे सरकार ने 5½ करोड रुपये का अतिरिक्त राजस्व इकट्ठा करने पर भी राज्य के भौतिक विकास पर कठिनता से कुछ लाख रुपये ही खर्च किए है। उन्होने निर्देश किया कि जहा देश को औद्योगिक, तकनीकी अथवा उदार शिक्षा, ग्रामो मे सफाई, सडकें और नहरें आदि लोकोपयोगी कार्यों के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी,[113] उस दिशा मे खर्च न करके अतिरिक्त राजस्व की उगाही राशि को विविध प्रशासकीय विभागों पर अनावश्यक रूप से खर्च कर दिया गया है। 1896 के बजट पर बोलते हुए उन्होने विशेष रूप मे सरकार का ध्यान इस तथ्य की ओर खीचा कि सरकारी और गैरसरकारी क्षेत्रो के दृष्टिकोण मे मतभेद का प्रमुख विषय खर्चों की दिशाएं है[144] इसी प्रकार 1897 मे विलबी कमीशन के सामने अपना साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए डी० ई० वाचा ने सुस्पष्ट रूप मे यह सिफारिश की कि उत्पादक प्रकृति के असैनिक व्यय अपनी पर्याप्त मात्रा मे सदैव वांछनीय रहे है। इस कथन के उपरांत उन्होंने उत्पादक प्रकृति के व्यय का अत्यंत वैज्ञानिक ढग से विश्लेषण प्रस्तुत किया। करदाता को बदले में शिक्षा, न्यायपूर्ण अधिक कुशल प्रशासन, ग्राम तथा नगरों की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी सफाई, लोकहित के अन्य दूसरे कार्य—जिनसे प्रांत के संसाधनों और जनता की समृद्धि मे योगदान मिलता है—जिस व्यय मे हो पाते है, वह 'उत्पादक प्रकृति का व्यय' है।[145]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, जो वर्षों से सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा के लिए, न्याय प्रशासन की व्यवस्था आदि के लिए बजट मे अधिक व्यवस्था की माग करती आ रही थी, 1897 में अपनी मांगों को अधिक व्यवस्थित रूप दिया तथा सरकार से अनुरोध किया कि सेना तथा अन्य इस प्रकार की मदों मे होने वाले अनुत्पादक खर्चो को घटाकर बची राशि के बड़े भाग का जनता की प्रगति और सुख-समृद्धि के उन्नयन मे सदुपयोग करना चाहिए।[146] अत में हमें जी० के० गोखले के विचारों पर ध्यान देना चाहिए। उन्होने सिंचाई कार्यों के व्ययों में वृद्धि, पुलिस सेना मे सुधार, विदेशो मे औद्योगिक शिक्षा के लिए राजकीय छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, पूसा मे कृषि-महाविद्यालय की स्थापना और सहकारी ऋण-समितियों को प्रोत्साहन देने जैसे प्रस्तावित सरकारी उपायों का पूर्ण समर्थन किया तथा 1904 के बजट-भाषण में उन्होने यह निर्देश किया कि इन उपायों तथा इन जैसे लोकहित कारक उपायों के लिए विपुल धनराशि अपेक्षित है। इसके साथ उनका यह भी दृढ मत था कि लोक कल्याण के इन कार्यों पर बढ़े हुए व्ययो की न केवल शिकायत ही नहीं की जाएगी प्रत्युत देश भर में उसके प्रति ईमानदारी से संतोष और कृतज्ञता की भावना अभिव्यक्त की जाएगी।[147]

इस संबंध मे दो चुने वर्षों में कुछ अपने लोक कल्याण के विभागों पर भारत सरकार द्वारा खर्च की गई राशियों का अध्ययन भी पर्याप्त रोचक होगा[148]:

	1885	1898
शिक्षा	1.4 करोड़	1.37 करोड़
विज्ञान-विभाग	.40 करोड़	.45 करोड़
डाक्टरी और जन-स्वास्थ्य	.69 ,,	1.53 ,,
कानून और न्याय	2.77 ,,	3.43 ,,
सिंचाई	.79 ,,	.2 ,, (वास्तविक राजस्व)
पुलिस	2.5 ,,	3.8 ,,

लोकहित के किसी भी अन्यान्य क्षेत्र की अपेक्षा भारतीय नेता शिक्षा को सर्वाधिक महत्व देते हुए उसके लिए पर्याप्त वित्त की व्यवस्था चाहते थे। इसका कारण उनका यह सुप्रसिद्ध सिद्धांत था कि आधुनिक शिक्षा राष्ट्रीयतावाद को पुनर्जन्म देने के प्रमुख कारणों मे सबसे पहला है। इस विश्वास को स्वयं वर्षों से सरकारी प्रवक्ता पनपाते तथा विकसित करते आ रहे थे। सर्वप्रथम, राष्ट्रवादी नेताओं ने शिक्षा पर सामान्य रूप से तथा उच्च शिक्षा पर विशेष रूप से खर्चों मे कटौती के प्रयासों का विरोध किया।[149] यहां यह देखना भी रुचिवर्धक होगा कि उच्च शिक्षा पर किसी प्रकार के भी प्रतिबंध अथवा उस पर होने वाले व्यय मे किसी प्रकार की कटौती के प्रबलतम मुखर विरोधी फिरोजशाह मेहता ने सरकार द्वारा भारत में उच्च शिक्षा के प्रसार में किसी प्रकार की बाधा के प्रयास को नव शिक्षित भारतीयों के प्रति शासकों का ईर्ष्याभाव बताया। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा, प्रजाजनों को शासकों के स्तर पर उन्नत करने की बात करना अपने मे बड़ा मोहक लगता है परंतु जब प्रजा सरकार पर दबाव डालने लगती है, मानव स्वभाव की सहज दुर्बलता के कारण उस समय प्रबल प्रवृत्ति यह होती है कि प्रजा को पीछे धकेल दिया जाए।[150] इसी प्रकार वर्षों तक और लगभग निरंतर ही भारतीय नेता शिक्षा पर सरकारी खर्चे में व्यापक वृद्धि के लिए दबाव डालते रहे। उदाहरणार्थ, यह एक ऐसी माग थी कि जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1888 से आगे धार्मिक मांग का रूप दे दिया था।[151] 1893 में लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने सरकारी स्कूलों और कालेजों में निर्धन छात्रों की फीस में रियायत अथवा मांफी देने की मांग की।[152] इसी प्रकार 1895 में उसने शिक्षा संस्थाओं में फीस बढ़ाने के राज्य द्वारा पूर्णत: अथवा अंशत: समर्थित प्रस्ताव का विरोध किया।[153] 1904 में कांग्रेस ने नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की दिशा मे सरकार द्वारा पथ-प्रदर्शन करने की क्रांतिकारी मांग की।[154] बहुत सारे दूसरे राष्ट्रवादी नेताओं ने शिक्षा के लिए अधिक धनराशि निर्धारित करने की मांग की तथा साथ ही साथ अन्य देशों द्वारा शिक्षा पर किए जाने वाले व्ययों के मुकाबले तथा स्वयं भारत सरकार द्वारा सेना पर किए जाने वाले व्ययों के मुकाबले भारत में शिक्षा पर होने वाले व्यय की तुच्छ-राशि की आलोचना की।[155]

शिक्षा को और विशेषतया प्राथमिक शिक्षा को अथवा जन-साधारण को शिक्षित करने के लक्ष्य को अपने सारे जीवन का लक्ष्य बनाने वाले जी० के० गोखले के विचारों का संक्षिप्त विवेचन अनुचित न होगा। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के प्रारंभ में ही

इस उद्देश्य को अपनाया और 1891 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में शिक्षा के लिए निर्धारित संसाधनों की स्वल्पता के लिए निंदा और शिकायत की। उन्होंने निर्देश किया कि यूरोप के सर्वाधिक पिछड़े देशों में भी शिक्षा पर किए जाने वाली व्यय की राशि उन देशों के सरकारी राजस्वों का 6.5 प्रतिशत है जबकि भारत में शिक्षा पर व्यय की जाने वाली राशि का अनुपात केवल एक प्रतिशत है। भारत में वास्तव मे ही शिक्षा पर व्यय होने वाली राशि 20 वर्ष पूर्व खर्च होने वाली राशि से भी कम थी, जबकि उसका अनुपात 1.4 प्रतिशत था।[156] 1897 मे विलबी कमीशन के समक्ष उन्होंने शिक्षा पर व्यय की तुच्छना को भारतीय व्यय के मस्तक पर एक बडा भारी कलंक बताया और कहा: ग्रेट ब्रिटेन में शिक्षा पर बढ़ते हुए व्यय के मुकाबले भारत मे शिक्षा पर हो रहे व्ययों की तुलना करने पर सरकार द्वारा पवित्र कार्य की उपेक्षा करने के लिए जितने भी अधिक कठोर शब्दों का प्रयोग किया जाए, थोड़ा ही है। ब्रिटेन और भारत मे शिक्षा पर किए गए व्यय के अंतर को दिखाते हुए उन्होने टिप्पणी की कि सगे बेटो और सौतेले बेटों के प्रति व्यवहार में एक बहुत बडा अंतर होता है। उन्होंने देश मे प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं के नितांत अभाव के लिए प्रशासन को विशेष रूप से ही आडे हाथो लिया।[157] 1901 मे अपने बजट-भाषण में बोंबे लेजिस्लेटिव कौंसिल मे उन्होंने अपने विचारो को दृढतापूर्वक दोहराया।[158] इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में अपने प्रसिद्ध वार्षिक बजट भाषणों में गोखले ने शिक्षा के सामान्य रूप से और प्राथमिक शिक्षा के विशेष रूप से प्रसार का निरंतर तथा सशक्त शब्दों में समर्थन किया। इस प्रकार 25 वर्षों तक सर्वसाधारण की शिक्षा की योजना के लिए वकालत करते रहने के उपरांत 1903 मे उन्होंने कहा: 'देश की तात्कालिक और अनिवार्य आवश्यकता है, सर्वप्रथम जनता के लिए प्राथमिक विद्यालय। शिक्षा के प्रसार के प्रति अपने अत्यधिक उत्साह के कारण वे स्वयं अपनी मान्यताओं के तथा अवशिष्ट अन्यान्य नेताओं के प्रशासन के और अधिक विकेंद्रीकरण के विश्वास के भी विपरीत चले गए। उन्होने मांग की कि शिक्षा को राज्य के विषयों की सूची से हटाकर केंद्रीय विषय बना देना चाहिए ताकि देश की सर्वोच्च सरकार जिस प्रकार और जितना ध्यान सैन्य सेवाओ तथा रेल पथ प्रसार जैसे अपनी सूची के विषयों पर देती है, उतना ही महत्व और ध्यान देश की जनता की शिक्षा पर दे सके। वस्तुत: शिक्षा के लिए गोखले के मन में इतना अनुराग था कि उन्होने राष्ट्रवादियों द्वारा समर्थित एक अन्य सिद्धात का भी अतिक्रमण कर दिया। उन्होने भारतीय विश्वविद्यालयों मे योग्य अंग्रेजों को अध्यापक बनने के लिए आकृष्ट करने के लिए उन्हें ऊंचे-ऊंचे वेतन देने की वकालत की।'[159] इस संबंध में उनके द्वारा निर्दिष्ट सुस्पष्ट उपयोगी प्रस्ताव यह था कि जब कभी बजट मे बचत हो, उसका उपयोग देश के शैक्षणिक तथा औद्योगिक हितों के संवर्द्धन में करना चाहिए।[160]

यहां यह उल्लेखनीय है कि प्राथमिक और तकनीकी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में जहां भारतीय नेता सरकार से बहुत आगे बढ़ गए, वहां उन्होंने सरकार द्वारा उदार ऊंची शिक्षा के प्रसार को बाधित करने की दिशा में प्राथमिक शिक्षा को एक बहाने के रूप में उपयोग करने पर आपत्ति की। उसका कथन था देश की राजनैतिक,

सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए उच्च शिक्षा की भी समान रूप से आवश्यकता थी और सत्य तो यह कि उसके बिना शिक्षा के अन्य दोनो क्षेत्रों में भी किसी प्रकार की प्रगति नहीं की जा सकती।[161]

भारतीय नेता शिक्षा के अतिरिक्त देश के औद्योगीकरण,[162] सिंचाई[163] कृपि-विकास, ग्रामीण ऋणग्रस्तता से मुक्ति के लिए कृषि बैंकों की स्थापना,[164] स्वास्थ्य तथा सफाई-सुविधाओं,[165] तथा प्रशासन से न्यायाधिकरण को पृथक करने[166] तथा पुलिस पद्धति मे सुधार करने[167] जैसे प्रशासनिक सुधारों के लिए भी सरकारी बजट मे से अधिक धन के निर्धारण के इच्छुक थे।

सरकारी अधिकारियों ने एक ही साथ दो परस्पर विरोधी मांगों, व्ययों और कराधान में कटौती करने तथा अपनी प्रिय लोक-कल्याणपरक योजनाओं पर व्ययों को बढ़ाने, के लिए प्रायः ही राष्ट्रवादी नेताओं को फटकारा। उदाहरण के रूप मे 1894 में वित्त सदस्य जेम्स वेस्टलैंड ने लाहौर मे क्रिसमिस के अवसर पर इकट्ठे हुए राजनीति में रुचि रखने वाले भारतीय सभ्य महानुभावों (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) के मामले पर व्यंग्य-आक्षेप करते हुए पूछा : 'क्या हमें आप ही सिखाएंगे कि भारत पर किस प्रकार शासन करें ?' उन पर बरसते हुए उसने कहा कि वे एक ही साथ एक मद मे खर्चों मे भारी कटौती करने और दूसरी मद मे खर्चों में वृद्धि करने की अपनी सलाह और बुद्धिमत्ता को अपने पास ही रखें।[168]

राष्ट्रवादी नेताओं द्वारा इस आलोचना का प्रत्युत्तर सीधा-सादा परंतु निरुत्तर करने वाला था। आवश्यकता से अत्यधिक बढे हुए सैन्य व्ययो और प्रशासनिक व्यय मे कटौती करने से एक साथ ही कराधान मे कमी और लोकहित के व्ययो मे वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार वेस्टलैंड की फटकार का उसी तीखी और व्यंग्यपूर्ण वाणी मे उत्तर देते हुए फिरोजशाह मेहता ने इस तथ्य को मानने से इनकार कर दिया कि भारतीय नेता इस प्रकार के सुझाव देने मे सर्वथा तर्कबुद्धि रहित और विवेकहीन थे हालांकि वे विश्व की विशिष्टतम सेवा के सदस्यों का मुकाबला तो नही कर सकते थे। इसके उपरात उन्होने दृढ़तापूर्वक कहा कि यह समझना कठिन नही कि यदि सही दिशा मे बचत की जाए तो राजस्व मे कमी करना तथा अन्य दिशा मे व्यय को बढाना संभव है। उन्होंने कराधान और व्ययों के संबंध में राष्ट्रवादियों की समग्र स्थिति को सक्षेप मे इस प्रकार प्रस्तुत किया :

> यदि आप सैन्य व्यय में उचित कटौती कर सकें, यदि आप व्ययसाध्य, महंगे अभियानों को न अपनाने की नीति पर स्थिर रह सकें, यदि आप विपुल सेना और घरेलू तरमीनों में संतुलन ला सकें, यदि आप वेतनों और पेंशनों के जटिल तथा कमरतोड़ भार को हलका करने के व्यावहारिक उपाय अपना सकें तो यह अनुमान सर्वथा निर्मूल और काल्पनिक नहीं होगा कि न्याय-व्यवस्था मे सुधार लाया जा सकता है, पुलिस को अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है, शिक्षा की अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित और सुदृढ़ पद्धति को अपनाया जा सकता है, देश में लोक कल्याणकारी कार्यों और रेल पथों का जाल बिछाया जा सकता है, सफाई के व्यापक साधन अपनाए जा सकते

हैं, डाक तार को अपेक्षाकृत सस्ता बनाया जा सकता है, इतने पर भी थोड़ी आय वालों को कर भार में राहत दी जा सकती है, धरती पर लगान की दर कम करके किसानों को सुख-चैन की सांस लेने का अवसर जुटाया जा सकता है और नमक कर में भी कटौती की जा सकती है।[169]

ए० एम० बोस ने[170] 1898 में और जी० के० गोखले ने 1902 तथा 1905 में[171] इसी तर्क को दोहराया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण तथा चिंतन का आधार-भूत तत्व यही था कि बढ़ते हुए सैन्य-व्यय ही देश के अन्य सभी प्रकार के आंतरिक सुधारों के मार्ग की प्रधान बाधा थे।

कुछ भारतीय नेताओं ने तो एक कदम और आगे बढ़कर यहां तक कह डाला कि यदि वर्तमान करों की आय के पूर्वापेक्षा अधिक बड़े और व्यापक भाग को आंतरिक सुधारों के उद्देश्यों के लिए खर्च किया जाए तो कराधान के चालू परिणाम को भी सहन किया जा सकता है।[172] विशिष्ट दूरदर्शी तथा प्रतिभाशाली जी० पी० जोशी महोदय ने तो उत्पादक-प्रयोजनों के लिए विशेष रूप से लगाए गए अतिरिक्त कराधान तक का समर्थन देने का वचन दिया। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों से औद्योगिक प्रयासों के प्रोत्साहन के उद्देश्य से विशेष रूप से लगे नए करों का भार सहर्ष उठाने का अनुरोध किया।[173] इसी प्रकार उन्होंने 1893 में व्यापक परिमाण में कृषि शिक्षा के कार्यक्रम को अपनाने की वकालत की, भले ही इसके लिए विशेष कराधान द्वारा धन की व्यवस्था क्यों न करनी पड़े।[174] जी० के० गोखले ने भी विलवी कमीशन के समक्ष कुछ कुछ इसी प्रकार का सुझाव रखते हुए कहा कि प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए स्थानीय संस्थाओं को विशेष कर लगाने का अधिकार दिया जाना चाहिए।[175] जी० सुब्रह्मण्य अय्यर ने भी कमीशन को सूचित किया कि शिक्षा के प्रसार के लिए वे करों में वृद्धि करने के भी समर्थक हैं।[176]

सरकारी कोश पर लोकप्रिय भारतीय नियंत्रण

भारत सरकार की वित्तनीति की समीक्षा करते समय भारतीय नेता कठोरतापूर्वक तथा अनिवार्य रूप से इस परिणाम पर पहुंचे कि सरकारी वित्तों पर भारतीयों के नियंत्रण की लोकप्रिय मांग सर्वथा उचित है। उनके विचार में यदि भारत में कराधान कमरतोड़ स्थिति में ऊंचा और अधिक रहे और व्यय निरर्थक तथा अनावश्यक हों तो इस सारी स्थिति के लिए स्पष्टतया उत्तरदायी कारणों में एक वर्तमान में वित्तों पर नियंत्रण रखने वाला संवैधानिक तंत्र है, जो संतोषजनक रूप से अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में असफल रहा है। 1892 से पूर्व भारत की इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल का वस्तुतः ही बजट से किसी प्रकार का कोई संबंध नहीं था। 1892 के इंडियन कौंसिल अधिनियम के अधीन कौंसिल में बजट का विश्लेषण प्रस्तुत करना होता था। सदस्यों को उस पर अपने विचार प्रकट करने का अधिकार अवश्य था परंतु उन्हें उस पर किसी प्रकार के प्रस्ताव रखने का अथवा कौंसिल में मतदान करने का कोई अधिकार नहीं था। भारतीय वित्तों पर सर्वोच्च नियंत्रण ब्रिटिश संसद का था। भारत सरकार संसद में विद्यमान भारत राज्य सचिव के माध्यम से ब्रिटिश संसद के प्रति ही उत्तरदायी थी।[177]

राष्ट्रवादी नेताओं ने वित्त नियंत्रण के प्रचलित तंत्र को सर्वथा दोषपूर्ण घोषित किया। उनका कथन था कि यह तंत्र सरकार के कार्यपालक अंगों की व्ययपरक और कराधानपरक प्रवृत्तियों पर प्रभावी नियंत्रण रखने में असफल सिद्ध हुआ है। यह तंत्र कमरतोड़ कराधान को रोकने में और देश के संसाधनों के निरर्थक, व्यर्थ, अनुचित तथा अनुपयोगी खर्चों को रोकने में नितांत असफल रहा है, इसी प्रकार जी० के० गोखले ने विलबी कमीशन के समक्ष अपने साक्ष्य में निर्देश किया कि भारतीय वित्तों की प्रबंध व्यवस्था में भारतीय हितों पर भारत में ब्रिटिश सर्वोच्चता के हितों को, एशिया में ब्रिटिश विस्तार को, ब्रिटिश की नागरिक और सैन्य सेवाओं को तथा ब्रिटिश वाणिज्य और पूंजी को प्राथमिकता दी जाती है। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा .

> भारतीय कर-दाताओं के हितों को इन अन्य हितों के गौण बनाने की व्यापक चेष्टा ने और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि भारतीय वित्तों के न्यायोचित तथा मितव्ययी प्रशासन के लिए संवैधानिक नियंत्रण तंत्र द्वारा उनकी सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था की जानी उचित है। मुझे तो यह आशंका है कि हमारे देश के समान और किसी भी देश में वित्तों की सुरक्षा की ऐसी भ्रांतिपूर्ण व्यवस्था नहीं है।[178]

भारतीय नेताओं ने दृढ़तापूर्वक यह मत प्रकट किया कि वर्तमान संविधान के अंतर्गत भारतीय कर-दाताओं के हितों की सर्वोच्च संरक्षक ब्रिटिश संसद समुचित रूप से और ईमानदारी से अपने कर्तव्य का निर्वाह करने में असफल रही है। सत्र के अंतिम समय में खाली बेंचों के सामने भारत के बजट को पेश किया जाता है और बिना किसी गंभीर विवाद, चिंतन और छानबीन के कुछ थके मांदे सदस्यों द्वारा इसे पारित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त दलीय स्थिति के कारण भारत सचिव का सुरक्षित और निश्चित बहुमत का विश्वास रहता है।[179] भारतीय नेताओं की शिकायत थी कि भारत में भी किसी प्रकार के आर्थिक नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था का अभाव था, इसके बदले स्वत निर्मित अपव्यय पद्धति ही प्रचलित थी। भारत सरकार के वित्त विभाग को छोड़कर लगभग और सभी विभाग पूर्णत खर्च करने वाले विभाग है।[181] इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल का इस संबंध में अस्तित्व अवश्य है परंतु वित्तीय मामलों में वह सर्वथा अशक्त है। इसके सदस्य केवल भाषण दे सकते है, वे किसी भी रूप में सरकार की निंदा नहीं कर सकते, यहां तक कि सरकार के प्रस्तावों से अपनी असहमति तक प्रकट नहीं कर सकते। फलत. बजट पर हुए विवाद या तो निर्जीव होते है या अधिक से अधिक पांडित्यपूर्ण होते हैं।[181]

राष्ट्रवादी नेताओं के अनुसार वित्तीय नियंत्रण के चालू तंत्र के असंतोषप्रद चरित्र का मूल कारण इस तंत्र में लोकप्रिय भारतीय तत्व का नितांत अभाव था। अत. 1891 की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने दृढ़तापूर्वक कहा कि भारतीय लोगों की बढ़ती दरिद्रता के अन्यान्य कारणों में एक मूल और व्यापक कारण, भारतीयों के अपने ही देश के वित्तों पर नियंत्रण से तथा उनके प्रशासन में समुचित योगदान से उन्हें सर्वथा पृथक रखना था।[182] इसी प्रकार 1901 में कांग्रेस के सभापतीय भाषण में डा० ई० वाचा ने बल देकर कहा कि यह देश का दुर्भाग्य है कि देश के व्ययों और कराधान पर देशवासियों को बोलने का कोई

अधिकार ही नहीं अन्यथा वे यह दिखा देते कि किस प्रकार न्यूनतम राजस्व से अधिकतम बचत और कुशलता उपलब्ध की जा सकती है।[183] आर० सी० दत्त ने अपने ग्रंथ—'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया इन दी विक्टोरियन एज' में अपने लोकवित्तों के तथा बिलबी कमीशन की कार्यवाहियों के परीक्षण का निष्कर्ष इस शिकायत रूप मे निकाला—भारतीय प्रशासन मे इस लोकप्रिय भारतीय तत्व की अनुपस्थिति में सभी कार्यरत प्रभाव विशुद्ध रूप से भारतीय हितों से सर्वथा असंबद्ध प्रयोजनों के लिए भारतीय राजस्व की बलि चढाकर खर्चो मे वृद्धि और कराधानों मे वृद्धि के लिए ही निरंतर कार्य करते रहे हैं और करते रहेंगे।[184]

रोग निदान में उपचार भी निहित था। इंग्लैंड में नियंत्रण तंत्र को सुदृढ बनाने के संबंध में सुझाए गए उपचारों मे महत्वपूर्ण—ढीले-ढाले समदीय नियंत्रण को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावों बनाने की आवश्यकता थी। इस संबध मे भारतीयों की सर्वाधिक माग देश की वित्तीय स्थिति की जांच-पड़ताल करने तथा तत्संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए प्रतिवर्ष हाऊस आफ कामन्स की एक प्रवर समिति नियुक्त करने की थी।[185] दूसरा प्रस्ताव भारतीय मामलों की समय-समय पर संसदीय जाच-पड़ताल करने की 1858 से पूर्व की पद्धति को पुनर्जीवित करना था।[186] इनके अतिरिक्त 1897 मे जी० के० गोखले ने सुझाव दिया कि भारतीय मत का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत के प्रातों को संसद में सीधा प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।[187] इस सदर्भ मे एक अन्य राष्ट्रवादी प्रस्ताव यह था कि प्रांतीय तथा इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसलों द्वारा निर्वाचित योग्य भारतीयों को पर्याप्त संख्या में भारत सचिव की कौंसिल मे प्रतिनिधि नियुक्त करना चाहिए।[188]

ये सारे के सारे उपचार अपनी प्रकृति मे केवल उपशामक ही थे। वित्तीय रोग के उपचार के लिए भारतीय नेताओं ने एक और अधिक महत्वपूर्ण माग पेश की। उनका कथन था कि सरकारी कोष को प्रत्यक्ष रूप मे भारतीयो के प्रभावी नियंत्रण के अतर्गत लाया जाए। वित्तों को सुव्यवस्थित रूप देने का, राजस्व की वसूली मे वृद्धि का और जनता के हित मे तथा जनता की इच्छाओं के अनुकूल वित्तों के व्यय का यह एकमात्र सुनिश्चित उपाय था। यह माग प्राय: सामान्य रूप मे पेश की जाती थी जबकि इसने पूर्णत: क्रातिकारी रूप लिया। इस प्रकार प्रथम भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को संबोधित करते हुए दादाभाई नौरोजी ने जोर देते हुए कहा : कराधान के साथ प्रतिनिधित्व अवश्य मिलना चाहिए। उन्होंने घोषणा की कि हमारा प्रथम सुधार यह हो कि हमे स्वय अपने पर कराधान करने की शक्ति मिले।[189]

इसी प्रकार अपने 16 सितंबर 1886 के अंक मे 'अमृत बाजार पत्रिका' ने साहसपूर्वक यह मांग की कि देश के लोगों को अपने लिए कानून बनाने की, अपने करों के निर्धारण करने की तथा अपने वित्तों को व्यवस्थित करने की अनुमति अवश्यमेव मिलनी चाहिए। पत्रिका ने बड़ी स्पष्टता से लिखा···भारत के लिए यह एक प्रकार का गृह-प्रशासन है और केवल इसी से भारत स्थाई रूप से इंग्लैंड से संलग्न हो सकता है। जुलाई 1902 में 'हिंदुस्तान रिव्यू' ने और 'कायस्थ समाचार' ने भी इसी प्रकार की स्वशासन की माग अपेक्षाकृत अधिक आत्मविश्वास पूर्ण स्वर में की।[190] अन्य अनेक भारतीय नेताओं ने

भारतीयों को अपने वित्तों की प्रबंध व्यवस्था का अधिकार देने की मांग के पक्ष में विभिन्न स्तर के सशक्त तर्क प्रस्तुत किए।[191]

बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओं ने अवश्य अपेक्षाकृत अधिक रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया तथा सरकारी वित्तों के प्रबंधक पर लोकप्रिय भारतीय नियंत्रण के सुस्पष्ट और ठोस सुझाव पेश किए। उन्होंने उन व्यावहारिक प्रस्तावों में 'बिना प्रतिनिधित्व के कराधान नहीं, के सिद्धांत पर अधिक बल नही दिया और उससे काफी कम पर समझौते के लिए अपनी सहमति प्रकट की।[192] उन्होंने प्रधान रूप से वर्तमान में प्रचलित इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल और प्रांतीय विधान परिषदों में इस प्रकार से सुधार की मांग की जिससे उनमें व्यापक रूप मे लोकप्रिय भारतीयों के अपेक्षाकृत अधिक भाग लेने की तथा उनकी शक्तियों में अधिक वृद्धि करने की व्यवस्था हो सके। इस संबंध में यहां यह उल्लेखनीय है कि विधान परिषदो में सुधार की मांग अनेकानेक राजनैतिक और आर्थिक आधारों पर की गई थी। हमारा संबंध केवल वित्तीय आधारों पर की गई मांग से ही है।

1892 से पूर्व सरकारी खर्चों पर वैधानिक नियंत्रण की माग एक प्रकार से कायरतापूर्ण तथा अस्पष्ट ढंग मे पेश की गई थी। इसी प्रकार 1885 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने माग की कि बजटों को संशोधित तथा अधिक प्रतिनिधित्व वाली विधान परिषदों मे प्रस्तुत किया जाना चाहिए।[193] अगले वर्ष काग्रेस ने परिषदों के सुधार के लिए एक विस्तृत योजना तैयार की और सरकार से मांग की कि बजटो सहित सभी वित्तीय मामले इन्हीं परिषदों को सौपने चाहिए तथा परिषदों को ही इनका निपटारा करना चाहिए।[194] 1887 में 1888 मे और 1889 मे इस माग को दोहराया गया।[195] यहा यह उल्लेखनीय है कि 'सौपना' 'पेश करना' 'निपटाना' आदि जैसे शब्द सुझावपरक होने पर भी सर्वथा धुधलापन लिए हुए थे। वे कम से कम प्रत्यक्ष रूप से लोकप्रिय नियंत्रण का अर्थ सूचित नही करते थे। विधान परिषदो के सुधार के संबंध में वित्तीय तर्क प्रस्तुत करने वाले अन्य भारतीय नेता भी प्राय: इन परिषदों के वित्तीय मामलो पर नियंत्रण के परिमाण और प्रकृति के निर्देश करने में कम दुर्बल और कम अस्पष्ट नहीं थे।[196]

1892 के उपरात राष्ट्रवादियों की माग ने उस समय सुस्पष्ट रूप लिया, जब इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल का और प्रांतीय विधान परिषदों का पुनर्गठन किया गया। उनमे भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया और निर्वाचित प्रतिनिधित्व के सिद्धात को आंशिक रूप से अपनाया गया। अब नेतागण यह मांग करने लगे कि गैर सरकारी सदस्यों को वित्तीय मामलों पर प्रस्ताव पेश करने और उस पर मतदान कराने का अधिकार दिया जाना चाहिए।[197] कुल मिलाकर इस क्रांतिकारी माग को रखने के उपरांत बहुतों ने इस धारणा का खडन करना आवश्यक समझा कि उनका इरादा सरकार पर किसी प्रकार का नियंत्रण रखने का है। उन्होने निर्देश किया कि संशोधित परिषदों में भी सुस्पष्ट रूप से निश्चित बहुमत सरकारी सदस्यों का होगा, जिसे किसी भी रूप में अल्पमत में बदलने का हम में से बहुतों का कोई भी विचार नही है, अतः सरकार को किसी भी मामले मे मतदान में हार का सामना करने की आशंका से घबड़ाने की कोई आवश्यकता नही।[198] इसके अतिरिक्त इन नेताओं ने भारत में कार्यपालिका के सिद्धांत,

परिषदों द्वारा किए गए किसी भी निर्णय को रद्द करने की विशिष्ट और अंतिम शक्ति का इंग्लैंड के हाथ मे होना, को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया।[199] यह पर्याप्त आश्चर्यजनक ही है कि जी० के० गोखले ने विलबी कमीशन के समक्ष इस सीमा तक अभिस्वीकार किया कि नीति संबंधी बड़े-बड़े प्रश्नों पर विचार-विमर्श तथा उन पर निर्णय ठीक प्रकार से इंग्लैंड मे ही हो सकता है।[200] इस प्रकार भारतीय नेताओ ने अपनी शक्तिमत्ता से दूर-गामी प्रभाव वाली मांग को नपुसक बना दिया और साथ ही साथ स्पष्ट शब्दों मे यह कहते हुए उसे दबाव के ढंग का रूप दे दिया कि उनके द्वारा सुझाए गए सुधारो का प्रधान प्रभाव यह नही होगा कि भारत मे ब्रिटिश कार्यपालिका के अधिकार खडित अथवा दुर्बल पड़ जाएंगे। इसका प्रभाव तो पूर्ण रूप से मात्र नैतिक होगा, क्योकि जब कभी गैर सरकारी सदस्य सरकार के विरुद्ध अथवा पक्ष मे मतदान करेगे तो ब्रिटिश जनता को और अधिकारियों को भारत के लोकमत की सही स्थिति का सच्चा रूप देखने को मिल जाएगा।[201] इन नेताओ की सरकारी वित्तो पर वैधानिक नियंत्रणो के अपने ही तर्कों मे संकोच शीलता कदाचित् आशिक रूप से तो कडवी गोली को चीनी मे लपेट कर प्रस्तुत करने की भावना मे प्रेरित थी परतु मुख्य रूप मे एक-एक पग आगे बढने के विश्वास की उपज थी।

संदर्भ

1 उदाहरणार्थ देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 59, 222-4 और स्पीचेज, पृ० 331, 157, 220, 294, 316, 593, परिशिष्ट, पृ० 39-43, 50-1, 181, भोलानाथ चद्र, एम० एम०, खंड II (1873) पृ० 92; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 248, राय, पृ० पावर्टी, 251-2, 259 60, 276, दत्त, ई० एच० I, पृ० XI-XIII; ई० एच० II पृ० XIX, 613 स्पीचेज II पृ० 21, 61-2; गोखले, स्पीचेज, पृ० 15; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 759

2 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 200.

3. मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 316 और देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 223-4 और स्पीचेज, पृ० 142, 316, परिशिष्ट, पृ० 18-20, 41, 50, 52.

4 और देखिए, ए० बी० पी०, 18 जून 1885, 24 दिस० 1896, 1 जून 1900, इंडियन स्पेक्टेटर, 5 जुलाई 1885; राय, पावर्टी, पृ० 251-3; ए० नदी, इडियन पालिटिक्स, पृ० 126; दत्त : फेमिंस इन इंडिया, पृ० 100-01; ई० एच० I पृ० XII वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 605.

5 पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 152 तथा देखिए, पृ० 350, 451, 456-8.

6. प्रोसीडिंग्ज आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे, 1895, खंड XXXIII पृ० 90.

7. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 220 तथा देखिए, पृ० 199-200.

8. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 361 और देखिए, जी० सी० अय्यर, विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18567, 18917, 18963, 19048, न्यू इंडिया, 18 दिसंबर 1902.

9. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1168-9.

10 वही, पृ० 1156-7 तथा देखिए पृ० 1159.

11 मालवीय, स्पीचेज, पृ० 219 तथा देखिए पृ० 276-81, 291.

11-ए प्रस्ताव सख्या V तथा देखिए मालवीय स्पीचेज, पृ० 279, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 124-49

12 पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 447-52. इडियन स्पेक्टेटर ने तो इससे भी पूर्व 1883 मे अपने 24 जून के अक मे सरकार को सुझाव दिया था कि सरकार को अनावश्यक रूप मे बजट को सतुलित करने अर्थात पहले आवश्यक खर्चों के लिए सकल्प कर लेने तथा पुन उन खर्चों की पूर्ति के लिए आवश्यक वित्तीय साधनो की खोज करने की चेष्टा छोड देनी चाहिए बजट को सतुलित करने का एकमात्र उपयुक्त ढग यह है कि प्रथम हिसाब-खात के साथ साथ करधान की समीक्षा करनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि कौन सा कर निर्धनों को किसी प्रकार का विशेष कष्ट दिए बिना सुविधा से उगाहा जा सकता है, फिर उसके अनुरूप खर्चों की व्यवस्था करनी चाहिए (आर० एन० पी० बब, 30 जून 1883) इस से व्यया और ससाधना मे सह सबध की व्यवस्था की माग करने वाले अन्य नेता एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज, III पृ० 13, गोखले, स्पीचज, पृ० 1169, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 32. एन० पी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 528 9 तथा आर० डी० नागरकर, रिप० आई० एन० सी०, 1894, पृ० 78-9, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 207-08

13 प्रस्ताव स० VI

14 प्रस्ताव स० VI

15 प्रस्ताव सख्या III

16. प्रस्ताव सख्या IX, XII, IX, XIII, VIII और III क्रमश

17 प्रस्ताव सख्या XIV, III (ii) क्रमश

18 बगाली, 2 जनवरी 1886 तथा देखिए, बागल पूर्वोद्धृत, पृ० 86

19 जे० पी० एस० एस०, अक्तू० 1886 और जन० 1887 (खड IX सख्या 2 और 3) तथा बाबे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का प्रथम वार्षिक प्रतिवेदन, क्रमश 1885-86 पूना सार्वजनिक सभा ने इस तर्क को दोहराते हुए बडे प्रबल तथा सशक्त ढग से एक अन्य ज्ञापन 6 मार्च 1894 को प्रस्तुत किया जे० पी० एस० एस०, अप्रैल 1894 (खड XVI सख्या 4)

19-ए रिपोर्ट आफ दि फाइनास कमेटी 1886, खड II पृ० 452

20 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 1-82 तथा पृ० 140-1, 189-90, 201, 222, 824-6

21 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1169 और आगे, वाचा, स्पीचेज परिशिष्ट, पृ० 9 और आगे तथा 31-2

22 दत्त, स्पीचेज I पृ० 26, 36-7 इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० IX, 137, 141-2, 144-5. फैमिस इन इंडिया, पृ० XIV, XVI, XVII, ई० एच० II पृ० 612 और देखिए, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III पृ० 13; जे० यू० याज्ञिक एस० ए० स्वामिनाथ अय्यर, वी० एस० पतुलु गुरु, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 65-72, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 443-50, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 219-21, 248-52, 276-81, 285-302, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1896 खड XXV पृ० 286; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 309, 351-2, एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 527 भारतीय समाचारपत्रो ने प्रत्येक उपलब्ध अवसर पर विशेषतया नए कर लगाने के अवसर पर बढते सरकारी खर्चों की आलोचना की तथा उन खर्चों में कटौती का समर्थन किया.

23. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 147, 361 परिशिष्ट, पृ० 16-8 25, 48 और देखिए, पावर्टी, पृ० 200

24. उदाहरण के लिए बी० बी० जोशी द्वारा 1886-7 मे दिया गया वक्तव्य देखिए, भारत सरकार

के वर्तमान खर्चों के प्रमुख कारण नीति संबंधी गलतियों की तरह या तो दूर किए जा सकते हैं या निरीक्षण की कठिनाइयों के कारण इनकी व्यावहारिक शक्ति कम होती जा रही है. (पूर्वोद्धृत, पृ० 10) इस संबंध में राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोण और सरकारी दृष्टिकोण के अंतर को समझना दिलचस्प होगा. उदाहरणार्थ जान स्ट्रैची के कथन को देखिए : 'यह सत्य है कि अनुत्तरदायी लोगो के लिए यह दावा करना सरल है कि सरकारी खर्चों में बचत करने की बड़े पैमाने पर संभावनाएं हैं, परंतु मैं निर्भीकता के साथ चुनौती देता हूं कि प्रशासनिक आवश्यकताओं की वास्तविक जानकारी रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए यह सिद्ध करना आसान नही होगा कि नागरिक सेवा के लिए जितनी राशि खर्च की जा रही है, उससे कहीं अधिक की आवश्यकता है (फाइनांशल स्टेटमेट, 1878) ई० बेरिंग ने 1883-4 के फाइनांशल स्टेटमेंट मे अपनी राय प्रकट करते हुए लिखा : भारत के वित्तों के लिए खतरा पैदा करने वाले सभी खतरे, जिनमें युद्ध का खतरा भी शामिल है, ऐसे कारणो से नियत्रित हैं जिन पर भारत सरकार का कोई नियंत्रण नही. (कंडिका-121). इसी प्रकार एलगिन से 1894 मे घोषणा की कि भारत सरकार के वित्तों की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कारणों पर हमारा कोई नियत्रण नही. (स्पीचेज, पृ० 50).

25. प्रस्ताव स० II.
26. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 6, 22-3, वही, पृ० 361, 379. परिशिष्ट, पृ० 26-30; जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी०, 1894 पृ० 76; बी० एन० सेन०, रिप० आई० एन० 1895 पृ० 61 इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए जे० मुदालियर ने कहा कि भारतीयों को हिसाब किताव ठीक रखने की ब्रिटिश क्षमता पर पूरा भरोसा है. (वही, पृ० 62).
27. वही, परिशिष्ट, पृ० 22, 28 तथा वाचा, विलबी कमीशन, खंड III 17316
28. इपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खड IV पृ० 202. मैंने गजेटियर में दी गई तालिका से ही प्रतिशत की संगणना की है अंको के अन्य आकड़े निम्नलिखित लेखको के निम्नलिखित ग्रथो में दिए गए हैं, सी० एन० वकील, फाइनाशल डिवलपमेट आफ माडर्न इडिया, पृ० 547-8; के० टी० शाह · सिक्सटी ईयर्स आफ इडियन फाइनास, पृ० 72-3 और पी० जे० थामस : दि ग्रोथ आफ फैडरल फाईनास इन इडिया, पृ० 502.

28-ए. इंपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV पृ० 382-3

29. वही, पृ० 187.
30. आई० एन० सी०, 1885 का प्रस्ताव L, वक्ताओ मे एक वी० एस० पांतुलु गुरु ने भावोद्बोधक घोषणा की कि यदि रूस के आक्रमण की आशंका से ही सेना संबधी व्यय बढ़ाया जाना है तो इसके फलस्वरूप कराधान में वृद्धि करनी होगी. बढ़े हुए करो को चुकाने में देश दरिद्र हो जाएगा, किसानों को भूमि छोडनी पड़ेगी और सरकार को उनके पथ का अनुसरण करते हुए भारत देश छोड़ना पड़ेगा···यह तो रूस के आक्रमण की अपेक्षा बदतर ही होगा अत: यह औषधि रोग से बदतर ही है. (रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 73).
31. 1890 का प्रस्ताव संख्या III (एफ) तथा प्रस्ताव II (एफ).
32. प्रस्ताव सं० III.
33. इसके उपरांत इसे 'इंडियन लीफलैट्स' के नाम से सकेतित किया जाएगा.
34. तथा देखिए 26 जनवरी 1886 को बढ़ हुए मिलट्री खर्चों पर भारत सचिव को दिया गया बांबे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का ज्ञापन, 1885-6 का बांबे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का प्रथम वार्षिक

प्रतिवेदन, पृ० 209-16; 30 सितंबर 1886 को पूना सार्वजनिक सभा द्वारा प्रस्तुत विरोध पत्र, जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1886 और जनवरी 1887 (खंड IX संख्या 2 और 3) पृ० 1-3; और प्रोसीडिंग्स आफ दि पब्लिक मीटिंग हेल्ड ऐट दि फ्रामजी कावसजी इंस्टिट्यूट अंडर दि आस्पीशस आफ दि बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएसन आन सैटरडे, दि फिफ्टीथ जुलाई 1893, फार दि परपस आफ एडाप्टिंग पेटीशस टु दि हाउस आफ कामंस आन सिमल्टेनिअस एक्जामिनेशस फार दि इंडियन सिविल सर्विस ऐंड होम मिलिट्री चार्जेज.

35. रिप० आई० एन० सी०, 1885, पृ० 60
36. वही, 1891, पृ० 25
37. वही, 1892, पृ० 84, वही, 1894. पृ० 132-3; वही, 1895 पृ० 71-3; वही, 1897, पृ० 29; स्पीचेज, पृ० 396-7 और परिशिष्ट पृ० 9-11, 16. 31-2, 41-3. सी० पी० ए०, 617, 619.
38. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 7-8, 252-3.
39. वही, पृ० 216-20 तथा देखिए, पृ० 141.
40. गोखले, स्पीचेज, पृ० 26, 43-4, 88-90, 105 परिशिष्ट पृ० 1179-87.
41. उदाहरणार्थ, 1898 में मृदु स्वभाववाले आर० एम० सयानी ने इंपीरियल लैजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य के रूप मे बोलते हुए घोषणा की कि निस्सदेह आवश्यक तथा अनुचित रूप से बढ़े हुए सैनिक व्यय यदि देश को बरबादी की ओर ले जाने वाली हमारी वित्तीय उलझनो के प्रमुखतम कारण न भी हो तो भी प्रमुख कारणो मे से एक अवश्यक हैं' (एल० सी० पी० 1898 खंड XXXVI पृ० 527). आर० सी० दत्त, ने 1900 मे दृढता पूर्वक कहा : 'भारत में सामान्य रूप से पड़ने वाले अकालो का कारण शास्त्रास्त्रो पर तथा युद्धो पर भारी खर्च करने की दूषित नीति है जो भारत को आकुल व्याकुल करने वाली है. भारत किसी कीमत पर न तो ये खर्चे सहन कर सकता है और न ही उसे सहन करने चाहिए (फैमिंस इन इंडिया, पृ० XIX). वी० कृष्णास्वामी ने 1903 की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधियों को झकझोरते हुए कहा : 'कोरे प्रस्तावो पर विश्वास करना छोड़िए. उन्होने घोषणा की कि इश्तहारो और छोटी छोटी पुस्तिकाओं के द्वारा जनता के क्रोध को भडकाना होगा. प्रत्येक झोपड़ी मे जाइए किसान के पास खेतों में जाइए तथा उन्हे इन अन्यायपूर्ण करो के प्रति जागरूक बनाइए (रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 121). और देखिए, एस० एन० बैनर्जी, (स्पीचेच II पृ० 73. स्पीचेज III पृ० 143; एस० ऐंड० डब्ल्यू, परिशिष्ट, पृ० 26, सी० पी० ए०, पृ० 243-6, 706-08; राय, पावर्टी, पृ० 281-3, 298; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 334 349-55, 458; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 220, 281; नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 128, 130; पी० ए०, चारलू एल० सी० पी०, 1902, खंड XLI, पृ० 113-5; श्रीराम, वही, पृ० 148 और वही 1903, खड XLII पृ० 105; मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 454 में नौरोजी; दत्त, ई० एच० II, पृ० XVII, इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 166.
42. देखिए, उदाहरण के रूप में ज्ञान प्रकाश, 20 जन० (आर० एन पी० बंब, 1 फरवरी 1879); शिवाजी, 31 जनवरी, (वही, 8 फरवरी 1879); इंडियन स्पेक्टेटर, 15 अगस्त (वही, 21 अगस्त 1880); हिंदू, 30 अगस्त (वी० ओ० आई०, सितंबर 1883); सोम प्रकाश, 31 अगस्त (आर० एन० पी० बंग, 5 सित० 1885); संजीवनी, 20 फरवरी (वही, 27 फरवरी 1886); मराठा, 29 मार्च 1891, 13 अप्रैल 1902; हिंदुस्तान, 7 अक्तूबर (आर० एन० पी० एन०, 8 अक्तूबर 1891); हिंदुस्तानी, 20 अप्रैल (वही, 28 अप्रैल 1892); इंदु प्रकाश, 27 मार्च, बंबई

समाचार, 1 अप्रैल और कैसरे हिंद, 26 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 1 अप्रैल 1993), बंगवासी, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 15 अप्रैल 1893), प्रांतकार, 21 अप्रैल (वही, 29 अप्रैल 1893), पैसा अखबार, 26 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 9 फरवरी (895), ए० बी० पी०, 3 अप्रैल 1885, 27 अप्रैल 1902, इंदु प्रकाश, 25 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 30 मार्च, 1895), अवध टाइम्स, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 13 अप्रैल 1901), भारत जीवन, 17 फरवरी (वही, 22 फरवरी, 1902), ट्रिब्यून, 16 जनवरी (आर० एन० पी० पी०, 25 जनवरी 1902), मराठा, 13 अप्रैल 1902, केसरी, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 19 अप्रैल 1902), केसरी, 21 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1903), हितवादी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 11 अप्रैल 1903), गुजराती, 17 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब, 23 अप्रैल 1904), इण्डियन एडवोकेट, 18 अगस्त (आर० एन० पी० यू० पी०, 27 अगस्त 1904), स्वदेशमित्रन, 9 मई और प्रपंच तारकी 13 मई, द्रविडावर्तमणि, 11 मई (आर० एन० पी० एम०, 13 मई 1905), इंदु प्रकाश, 23 मार्च कैसरे हिंद, 26 मार्च, गुजराती, 26 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 25 मार्च 1905), इंडियन सोशल रिफार्मर, 26 मार्च ओरियंटल रिव्यू, 29 मार्च कल 31 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1905)

43 बहुत सारे राष्ट्रवादी नेताओं की धारणा में जबकि यह स्वतः सिद्ध तथ्य अंतर्हित था, जी० के० गोखले ने उसे सुस्पष्ट वाणी दी 'जिस प्रकार लार्ड सैलिसबरी ने स्वयं एक बार निर्देश किया था सैन्य क्षमता का निर्धारण प्रत्येक देश के दो तत्वों के संयुक्त विचार के संदर्भ में ही करना चाहिए प्रथम, देश की सुरक्षा संबंधी आवश्यकताएं तथा द्वितीय, इस उद्देश्य के लिए उस देश द्वारा सुविधापूर्वक जुटाए जा सकने वाले साधन (स्पीचेज, पृ० 43)

44 ए० बी० पी०, 13 अगस्त, 15 अक्तूबर 1885, हिंदू 20 अगस्त, 24 सितंबर 8 अक्तूबर 1885, मराठा, 11 अक्तू० 1885, इंडियन स्पेक्टेटर, 27 सित०, 4 अक्तू०, इंदु प्रकाश, 28 सित० 12 अक्तू०, सुबोध पत्रिका, 23 सित०, इंडियन मिरर, 4, 6, 10 अक्तूबर इंडियन नेशन, 5 अक्तू० नेटिव ओपीनियन, 11, 18 अक्तू०, स्वदेशमित्रन 28 सित० संजीवनी 3 अक्तू०, हिंदुस्तान, 11 अक्तूबर, गुजराती, 29 सितंबर, कैसरे हिंद, 11 अक्तू० (वी० ओ० आई०, अक्तूबर 1885); ऐडवोकेट, 23 अक्तू०, सिंध टाइम्स, 24 अक्तूबर ट्रिब्यून 31 अक्तू० बिहार हेराल्ड, 3 नवंबर (वही, नवंबर 1885), समाचार चंद्रिका, 4 जनवरी (आर० एन० पी० बंग०, 9 जन० 1886), हिंदू, 13 फरवरी 1890, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III पृ० 143 एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 26 ए० बी० पी०, 5 अप्रैल 1895, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 452 राय, पावर्टी, पृ० 304, दत्त इंगलैंड ऐंड इंडिया, पृ० 136, अवध टाइम्स, 5 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 13 अप्रैल 1901), वाचा, स्पीचेज, पृ० 397, वी० के० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 121, गोखले, स्पीचेज, पृ० 45 104, आई० एन० सी०, 1904 का प्रस्ताव XII

45. ए० बी० पी०, 13 अगस्त 1885, राय, पावर्टी, पृ० 286-7 गोखले, स्पीचेज, पृ० 44, 1180 हितवादी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 11 अप्रैल 1902) 1886 में जी० वी० जोशी ने अंकों को प्रस्तुत करते हुए यह प्रमाणित किया कि विशुद्ध पारिभाषिक दृष्टि से देखने पर भी यह स्पष्ट होता है कि फ्रांस को छोड़कर विश्व के अन्य किसी भी देश की तुलना में भारत ने अपनी सेना पर अधिक खर्च किया है (पूर्वोद्धृत पृ० 253)- 'इंडियाज अपील टु दि इंग्लिश एलेक्टर्स', 1885 ने भारत के मामले को उस समय दूसरे ढंग से पेश किया जब उसने

यह तुलनात्मक तथ्य प्रस्तुत किया कि इग्लैंड मे सेना पर होने वाला व्यय राष्ट्रीय आय का 2 16 प्रतिशत था जबकि भारत मे इस व्यय का अनुपात 4 25 प्रतिशत बैठता था (इडियन लीफलैट्स स०-11 पूर्वोद्धृत)

46 इडियन लीफलैटस, स० 9 पूर्वोद्धत, वाचा, रिप० आई० एन० सी० पृ० 60 तथा सी० पी० ए०, पृ० 619, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 449, गोखले, स्पीचेज, पृ० 44, 105, केसरी 21 जुलाई (आर एन० पी० बब, 25 जुलाई 1903)

47 रिप० आई० एन० सी०, 1891 पृ० 25

48 वही

49 सी० पी० ए०, पृ० 619 पर

50 आर० एन० पी० वब, 19 अप्रैल 1902 दूसरी और इसने अपने 31 मार्च 1903 के अक मे टिप्पणी की कि यदि देश को समग्रत सुरक्षित रखना है ता उसका आतरिक विकास करना आवश्यक है (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903)

51 गाखले, स्पीचेज, पृ० 43 4 इसी प्रकार 1892 के भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के अधिवेशन मे एच० सी० मित्रा ने करुण अभिव्यक्ति करते हुए कहा शस्त्र, लेखनी की हत्या कर रहा है. सैनिक बर्बरता कला और सस्कृति का नष्ट करने जा रही है (रिप० आई० एन० सी० 1892 पृ० 96) देखिए वाम्बे प्रजीडसी एसोसिएशन का 27 जनवरी का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 334 5, 350, 457 8 मालवीय, स्पीचज पृ० 295 जी०एस०अय्यर, विलबी कमीशन खड III प्रश्न 18963, आर० एम० सयानी, एल० सी० पी० 1898, खड XXXVII प० 527 ए० एम० बास, सी० पी० ए०, पृ० 425 7, हिंदू, 26 अप्रैल 1902 गोखले, स्पीचेज, प० 26, 28, 109 सी० वाई० चिंतामणि, 'इडियन मिलिट्री एक्सपेंडीचर' एच० आर०, फरवरी 1903 प० 233 हितवादी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 11 अप्रैल 1903), आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव VII

52 एल० सी० पी० 1894 खड XXXIII प० 273

53 कर्जन, स्पीचेज, II प० 266 एक वर्ष पूर्व उसने कहा था 'भारत मे साम्राज्य के राजनीतिज्ञ के दो बडे कर्तव्य है प्रथम यथासभव इस देश के लाखो करोडो लोगो को अधिकाधिक सतुष्ट, प्रसन्न और समृद्ध बनाना द्वितीय, देशवासियो को तथा उनकी सपत्ति को सुरक्षित बनाना हम एक कर्तव्य की उपेक्षा करके दूसरे कर्तव्य के पालन की ओर नही बढ सकते' (स्पीचेज I पृ० 325) तथा देखिए, स्पीचेज III पृ० 404

54 उदाहरण के रूप मे जनरल ब्रेकनबरी ने अपने पूर्वोद्धृत भाषण मे घोषित किया · 'भारत सरकार मितव्ययिता की दिशा मे दिए गए किसी भी व्यावहारिक सुझाव का स्वागत करती है और सदा स्वागत करेगी' (एल० सी० पी० 1894 खड XXXIII पृ० 274)

55 वाचा रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 73

56 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV पृ० 187

57 इस विषय के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए, मेरा लेख, 'इडियन नेशनलिस्ट्स ऐंड फारेन वार्स ऐंड एक्सपीडिशस 1878-99 हिस्टोरिकल स्टडीज, स०-1, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

58 इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) खड IV पृ० 348-9

59 आई० एन० सी० का 1885 का प्रस्ताव V, वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 601-1

जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 254. ए० बी० पी०, 13 अगस्त, 15 अक्तू० 1885; हिंदू, 20 अगस्त, 24 सित०, 8 अक्तूबर, नवबर 1885. मराठा, 11 अक्तू० 1885.'अक्तू०-नवबर, 1885 के वी० ओ० आई०, मे उद्धृत पत्र, आर० एन० पी० बग०, 22 अगस्त, 5, 26 सित०, 7 नवबर 1885, 9 जनवरी 1886 मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए; बाबे प्रेसीडेसी एसोसिएशन का 27 जनवरी 1886 को प्रस्तुत स्मरणपत्र, रिपोर्ट आफ दि बाबे प्रेसीडेमी एशोसिएशन 1885-6, पृ० 209, 214-5, मद्रास महाजन सभा का लार्ड डफरिन को सबोधित पत्र, मराठा, 7 मार्च 1886, पूना सार्वजनिक सभा द्वारा 30 सितबर 1886 को प्रस्तुत विरोधपत्र; जे० पी० एस० एस० अक्तूबर 1886 और जनवरी 1887) खड IX, सख्याए, 2-3).

60 आई० एन० सी० का 1891 का प्रस्ताव स० III, वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1891, पृ० 23-6, राय, पावर्टी, पृ० 304-06; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 141, 201, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 9 10, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1183, 1205 सी० शकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 386, केसरी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 7 अप्रैल 1900); वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 617; गोखले, स्पीचेज, पृ० 26-7 हिंदू, 4 अप्रैल (वी० ओ० आई०, 26 अप्रैल 1902), एच० आर०, अगस्त (आर० एन० पी० एन०, 4 अक्तूबर 1901), एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 706, सी० वाई० चितामणि, 'इडियन मिलिट्री एक्सपेंडीचर,' एच० आर० मार्च 1903 पृ० 227 एल० एम० घोष० सी० पी० ए०, पृ० 764 दत्त, ई० एच० II, पृ० XVII

61 बगाली, 23 मई 1896 ए० बी० पी०, 27 मई 1896, हिंदू, 27 मई (आई० एम० वी० ओ० आई०, 12 जुलाई 1896), आई० एन० सी०, 1899, 1901, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव सख्या-3, 10, 7, 7(बी)और 12(सी) क्रमश , बी० एन० बसु, रिप० आई० एन० सी०, 1899 पृ० 53, बगाली, 29 जून 1900, दत्त, स्पीचेज II पृ० 85, एच० एस० दीक्षित, रिप०, आई० एन० सी, 1901 पृ० 154; गोखले,(स्पीचेज, पृ० 27, पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902 खड XLI पृ० 114-5, श्रीराम, वही, पृ० 148, एम० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 706, बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी०, 1902 पृ० 105, ए० बी० पी०, 15 मार्च 1903; वाचा, स्पीचेज, पृ० 400 श्रीराम, एल० सी० पी०, 1903 खड XLII प० 105; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 764, वी० एन० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1903 पृ० 121,

62 प्रस्ताव स० VII (ए) तथा प्रस्ताव स० XII (सी) क्रमश

63 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 352 और देखिए, पृ० 250, 340-1, और मसानी पूर्वोद्धृत, 434-5

64 गोखले, स्पीचेज, पृ० 106-07 और देखिए पृ० 21, 26-7 1156, 1205

65 राय, पावर्टी, पृ० 287, 293 305-06 हिंदू 24 सित० और 8 अक्तू० 1885, मराठा, 11 अक्तू० 1885, अक्तू०-नवबर 1885 के वी० ओ० आई० मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए पूना सार्वजनिक सभा द्वारा 30 सितबर 1886 को प्रस्तुत विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 29, तथा सी० पी० ए०, पृ० 607, 618 स्पीचेज, पृ० 396; दत्त इग्लैड ऐंड इडिया, पृ० 110, 137, सी० पी० ए०, पृ० 490, स्पीचेज II पृ० 45, 85, ई० एच० II पृ० 566-7, श्रीराम, एल० सी० पी० 1902 खड XLI पृ० 148 और वही, 1903 खड XLII पृ० 106, एच० आर०, अगस्त (आर० एन० पी० एन, 4 अक्तू० 1902); एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 706, 708 बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 105, ए० बी० पी०, 22 सितबर 1903, एन० एम० समर्थ, रिप० आई० एन० सी०, 1903 पृ० 119.

बंगाली, 18 मार्च 1905.

66. देखिए ऊपर, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 155. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1163; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 33.

67. आई० एन० सी० 1899, 1901. 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव संख्या IIL, X, VII, VII (ए) और XII (सी) क्रमश:; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 158; गोखले, स्पीचेज, पृ० 27, 107, 995, 1205-07; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 163, 250, 340-2, 350 परिशिष्ट पृ० 93. मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 454 5; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 453-5, वाचा, स्पीचेज, पृ० 400-01, परिशिष्ट, पृ० 33 और सी० पी० ए०, पृ० 618-9; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खंड खड III प्रश्न 19800; दत्त, स्पीचेज, I पृ० 34-5, स्पीचेज II पृ० 85, ई०एच० II पृ० 566, 612; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 706. एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 765; अक्तूबर और नवबर 1885 के बी० ओ० आई० मे उद्धृत पत्र-पत्रिकाएं; पैसा अखबार, 4 मई (आर० एन० पी० पी०, 18 मई 1895); बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1899 पृ० 53; पैसा अखबार 18 जन० आर० एन० पी० पी० 21 जनवरी 18899; केसरी, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 7 अप्रैल 1900); बंगाली, 29 जून 1900; श्रीराम, एल० सी० पी० 1902, खड XLI पृ० 148, और वही, 1903 खड XLII पृ० 105, बी० एन० सेन, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 105; ए० बी० पी०, 22 सित० 1903 बगाली, 18 मार्च 1905; केसरी, फरवरी (आर० एन० पी० बब, 11 फर० 1905) वस्तुत 1867 मे ही दादाभाई नौरोजी ने एक सिद्धात प्रस्तुत किया और कदाचित उन्होने इस प्रश्न पर राष्ट्रवादियो के आदोलन के लिए एक आदर्श भी जुटाया. वह आदर्श यह माग की कि ब्रिटेन को अबीसीनिया अभियान मे नियोजित भारतीय सेनाओ के सभी साधारण खर्चों का भुगतान करना चाहिए. (एसेज, पृ० 51-9).

68. आर० एन० पी० यू० पी०, 25 जुलाई 1903. तथा एडवोकेट, 30 जुलाई (बी० ओ० आई०, 22 अगस्त, 1903).

69. आर० एन० पी० बब, 25 जुलाई 1903

70. इडिया, 7 अगस्त 1903 और देखिए हिंदू, 18, 23 जुलाई 1903; मराठा, 26 जुलाई, 2,9 अगस्त 1903; ए० बी० पी०, 18, 20 जुलाई 1903, बगाली, 19, 22 जुलाई 1903; वायस आफ इडिया 25 जुलाई 1903, आर० एन० पी० बब, 25 जुलाई 1903; उल्लिखित पत्र. आर० एन० पी० बग, 25 जुलाई, 1 अगस्त 1903, आर० एन० पी० यू० पी० 8, 15, 22 अगस्त 1903, आर० एन० पी० पी०, 1, 8, 15 22, 29 अगस्त 1903, बी० ओ० आई०, 1, 8, 15 अगस्त 1903 मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए; इडियन रिव्यू, अगस्त 1903, पृ० 45; वाचा, स्पीचेज, पृ० 398; कैसरे हिंद, 16 अगस्त (वही, 22 अगस्त 1903); गुजराती सभा के तत्वावधान में अहमदाबाद मे हुई जनसभा प्रजाबधु, 16 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 22 अगस्त 1903).

71. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 155-6. 253-4; इडियन लीफलैट्स स०, 11 पृ० 2. वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 53, 61; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1181-3; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902 खंड XLI पृ० 113, 115.

72. एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज II पृ० 73. स्पीचेज III पृ० 6-7; इंडियन लीफलैट्स-सं० 11 पृ० 2; ए० बी० पी०, 13 अगस्त 1885; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 53, 61,

स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 16; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 253; राय, पावर्टी, पृ० 285; गोखले स्पीचेज, पृ० 1183, ए० भीमजी, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 40

73. 1859 की एकीकरण योजना की आलोचना के लिए देखिए, पूना सार्वजनिक सभा, 'ए स्टेटमेंट आफ इंडियन क्वेश्चस' जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV सं०-1) पृ० 10, वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1885, पृ० 53-6, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ० 23, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 71, रिप० आई० एन० सी०, 1897 पृ० 29 स्पीचेज, पृ० 395; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 245; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1184, सी० वाई० चिंतामणि, 'इंडियन मिलिट्री एक्स्पेंडीचर' एच० आर०, फरवरी 1903, पृ० 120, आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव VII (डी) अन्य पक्षों के लिए देखिए, रानाडे, 'रिव्यू आफ फासेट्स थ्री एसेज आन इंडियन फाइनांस' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 80, इंडियन स्पेक्टेटर, 11 मई (आर० एन० पी० बंब, 17 मई 1884); वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 57-60, इंडियन लीफलैट्स, सं० 9 पृ० 6-7, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 156, आई० एन० सी० 1891 का प्रस्ताव III, गोखले, स्पीचेज, पृ० 992 5, 1184, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 160, 352, बंगवासी, 20 अप्रैल (आर० एन० पी० बंग०, 27 अप्रैल 1905)

74. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1186-7 1880 में ही जस्टिस रानाडे ने स्टाफ कोम्स सिस्टम समाप्त करने की मांग की थी देखिए उनका 'रिव्यू आफ फासेटस थ्री एस्सेज आन इंडियन फाइनांस' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 80 भारतीय सैनिक अधिकारियों को मिलने वाले भारी वेतन की आलोचना भी इंडियन लीफलैट्स सं० 9 पृ० 6 पर की गई है

75 आर० एन० पी० बंब, 21 अगस्त 1880 और इंडियन स्पेक्टेटर, 20 अगस्त (वही, 26 अगस्त 1882); इंडियन लीफलैटस सं० 11 पृ० 2, स्वदेशमित्रन, 17 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, अगस्त 1885); ए० बी० पी०, 16 सित० 1886; ए० भीमजी, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 133-4.

76 आई० एन० सी० 1902 और 1903 के प्रस्ताव सं० VII और VII (सी) ए० बी० पी०, 28 अप्रैल 1902; हिंदू, 24 मार्च, 15 अप्रैल, 9 जुलाई 1902, मराठा, 6 जुलाई 1902, गुजराती, 6 जुलाई, मद्रास स्टैंडर्ड, 8 जुलाई, नेटिव ओपीनियन, 9 जुलाई, इंडियन नेशन 21 जुलाई (बी० ओ० आई०, 2 अगस्त 1902); केसरी, 8 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 12 जुलाई 1902). आंध्र प्रकाशिका 16 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 19 अप्रैल, 1902), स्वदेशमित्रन, 16 जुलाई (वही, 26 जुलाई 1902), निजाम उल मुल्क, 24 मार्च (आर० एन० पी० एन०, 29 मार्च 1902); एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 706, वाचा, स्पीचेज, पृ० 397, ए० बी० पी०, 20 और 23 अगस्तत 1903, बंगाली, 22 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 29 अगस्त, 1903). शयम आफ इंडिया, 18 जुलाई, कल 17 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 18 जुलाई 1903); केसरी, 21 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1903); अहदाबाद में जनसभा, प्रजाबंधु, 16 अगस्त (वही, 22 अगस्त 1903) (यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि प्रजाबंधु ने शिकायत की कि नगर के प्रमुख धनी, सेठ सभा में बिलकुल अनुपस्थित थे) इंडियन पीपुल और अवध समाचार, 7 अगस्त (आर० एन० पी० यू० पी०, 15 अगस्त 1903); एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 763; अखबारे आम, 16 जुलाई (आर० एन० पी० पी०, 25 जुलाई 1903)

77. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 239, 241, 252; सुबोध पत्रिका, 16 नवंबर आमे जमशेद, 22 नवंबर

(आर० एन० पी० बब, 22 नव० 1884); एडवोकेट, 29 जनवरी (आर० एन० पी० यू० पी०, 4 फर० 1905)

78 राय पावर्टी, पृ० 285; मराठा, 24 मार्च 1895, जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1895 खंड, XXXIV पृ० 400, बगबासी, 29 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 6 अप्रैल 1895), सहचर, 10 अप्रैल (वही, 20 अप्रैल 1895), अखबारे आम, 28 मार्च (आर० एन पी० पी०, 6 अप्रैल 1895), शुभ सूचक, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 20 अप्रैल 1895)

79 इदु प्रकाश, 28 मई (आर० एन० पी० बब, 2 जून (1883), एस० वी० सुब्बरायुडु, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 72, हिंदू, 24 जून 1885; स्वदेशमित्रन, 17 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, अगस्त 1885), ट्रिब्यून, 18 सित० (वी० ओ० आई०, अक्तू० 1886), जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 6-8, एन० जी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 529, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 15 यहा यह उल्लेखनीय है कि 1893 मे पृथक प्रसीडसी सेना को समाप्त कर दिया गया था

80 आई० एन० सी० 1904 प्रस्ताव XII (बी), कैसरे हिंद, 25 दिस० (आर० एन० पी० बब, 31 दिस० 1904), इडियन पीपल, 28 अगस्त (आर० एन० पी० यू० पी०, 3 सित० 1904), एडवोकेट, 29 जनवरी (वही 4 फरवरी 1905), गोखले स्पीचेज, पृ० 102-4, इदु प्रकाश, 23 माच कैसरे हिंद, और गुजराती, 26 मार्च (आर० एन० पी० बब, 25 मार्च 1905), इडियन सोशल रिफामर, 26 माच, ओरियटल रिव्यू, 29 मार्च, रस्त, 31 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1905), स्वदेशमित्रन 9 मई प्रपच तारकी, 13 मई द्रविडावर्तमणि, 11 मई (आर० एन० पी० एम०, 13 मई 1905)

81 देखिए लेवे, फ्रेजर पूर्वोद्धृत, पृ० 415-53

82 ए० बी० पी०, 15 मई 1905, मराठा, 25 जन 1905, एच० आर०, जुलाई, 1905, पृ० 80-1; आर० एन० पी० बब 1, 8 जुलाई 1905 म, आर० एन० पी० एम०, 1, 15 जुलाई 1905 मे आर० एन० पी० बग०, 1, 8, 15 जलाई 1905 मे तथा आर० एन० पी० यू० पी०, 1, 8 जुलाई 1905 मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए

83 रानाडे, 'रिव्यू आफ फासेट्स, 'थ्री एसेज, आन इडियन' फाइनास' जे० पी० एस० एम०, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 80, हिंदुस्तान, 6 दिसबर (आर० एन० पी० पो० एन०, 12 दिस० 1883); सहचर, 12 अगस्त (आर० एन० पी० बग०, 22 अगस्त, 1885), ट्रिब्यून, 30 मई, सुबोध पत्रिका, 27 मई (वी० ओ० आई०, जून 1885), एस० ए० स्वामिनाथ अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 68, नवविभाकर, 1 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 6 फरवरी 1886), ए० भीमजी, रिप० आई० एन० सी०, 1888 पृ० 68 नवविभाकर 1 फर० (आर० एन० पी० बग०, 6 फरवरी 1886), ए० भीमजी, रिप० आई० एन० सी०, 1888 पृ० 133-4, बी० एन० दर, रिप० आई० एन० सी०, 1894, पृ० 139, राय, पावर्टी, पृ० 284; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 75-6, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1182-3; सी० वाई चितामणि, 'इडियन मिलिट्री एक्सपेंडीचर' एच० आर०, फरवरी 1903, पृ० 226-7

84. नौरोजी, (स्पीचेज, पृ० 74-5 गोखले, स्पीचेज, पृ० 182

85 इस मांग का विस्तृत विवेचन आगे किया गया है

86. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने तो यह मांग बहुत पहले 1887 और 1888 में उठाई थी (प्रस्ताव IV और VI क्रमश) और तब लगभग 1904 तक निरतर इस माग को दोहराती रही. इसके

प्रस्तावों में आर्थिक तर्कों का स्पष्ट प्रतिपादन तो नहीं है परंतु जिन लोगों ने इन प्रस्तावों को प्रस्तुत किया और जिन महानुभावों ने इन पर वक्तव्य दिए, उन्होंने आर्थिक तर्क एवं युक्तियां अवश्य पेश की थीं, देखिए, ए० एम० भीमजी, रिप० आई० एन० सी०, 1888 पृ० 134, और तिलक, रिप० आई० एन० सी०, 1891 पृ० 38-9 और देखिए, इंडियन स्पेक्टेटर, 22 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 28 जन०, 1882); मराठा, 14 फरवरी 1886; हिंदुस्तान, 7 अक्तू० (आर० एन० पी० एन०, 8 अक्तू० 1891); गोखले, स्पीचेज, पृ० 1185, 1187-8; केसरी, 17 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 21 जनवरी 1899).

87. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 156, 242, 246-7, 253-4; गोखले, स्पीचेज, पृ० 46-8, 90-1, 1183-5, और देखिए, राजा रामपाल सिंह, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 93. यह देखना भी मजेदार होगा कि यहां तक कि ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में ही राजा राममोहन राय ने देश के प्रशासनिक व्ययों में कटौती के उपाय के रूप में स्थाई सेना के एक बहुत बड़े भाग के लिए नगर रक्षक दल की स्थापना की वकालत की थी. उन्होंने कहा था कि मानव को दुःख देने वाले भूमि राजस्व आदि में वृद्धि करने के किसी भी प्रकार को ढंग की अपेक्षा इससे होने वाली बचत से अधिक उपयोगी लाभ होगा (बी० बी० मजूमदार · पूर्वोद्धृत, पृ० 70)

88. 1886 का प्रस्ताव सं० XII, 1887 का प्रस्ताव सं० V तथा 1888 का प्रस्ताव सं० VI तथा निम्नलिखित

89. रामपालसिंह, रिप० आई० एन० सी०, 1886 पृ० 93; एम० वाहिद अली, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 133; तिलक, रिप० आई० एन० सी०, 1891 पृ० 38-9; गोखले, स्पीचेज, पृ० 48-9 इस दृष्टि से कि इस माग को इस्तेमाल शिक्षित भारतीयों को अथवा बंगालियों को धकेलने के लिए एक और प्रयास की तरह न किया जाए, गोखले ने प्रस्ताव रखा कि 'सरकार प्रयोग के लिए किसी विशिष्ट क्षेत्र का तथा किसी विशिष्ट जाति के किसी विशिष्ट वर्ग का चुनाव कर सकती है' (वही) तथा देखिए वही, पृ० 90-1; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 7-8, 252, हिंदू, 20 अप्रैल 1885

90. इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, मेरा लेख, 'इंडियन नेशनलिज्म ऐंड फारेन वार्स ऐंड एक्सपीडिशन्स, 1878-9' प्रकाशित, 'हिस्टोरिकल स्टडी', अंक 1.

91. आई एन० सी० के 1892, 1895, 1897 और 1898 के प्रस्ताव क्रमशः VII, VIII, I, II, III, और VII, पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 452-3; राय पावर्टी, पृ० 299-300; आजाद, 17 मई (आर० एन० पी० एन०, 25 मई 1895); एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 255; एस० ऐंड० डब्ल्यू०, परिशिष्ट पृ० 48; डी० जी० उपाध्ये, रिप० आई० एन० सी० 1895 पृ० 101; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1896 खंड XXXV पृ० 286; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 344-6, 349-50, परिशिष्ट, पृ० 79, 93 तथा आगे; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 33, रिप० आई० एन० सी० 1897 पृ० 32 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1206-07; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन खंड III प्रश्न 19800; हिंदू, 26 अगस्त 1897; रियाज उल अखबार, 12 जन० (आर० एन० पी० एन० 19 जन० 1897); हिंदुस्तानी, 13 अक्तू०, 22 दिस० (वही, 20 अक्तू०, 29 दिसंबर 1897); सहचर, 22 दिस० 1897 (आर० एन० पी० बंग०, 1 जन० 1898); संजीवनी, 12 फरवरी, (वही, 19 फरवरी 1898); जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1898, खंड XXXVII पृ० 486; आर० एम० सयानी, वही, पृ० 525-7; बंगाली, 26 मार्च 1898; गुरखी, 26 फर०, राज्यभक्त, 1 मार्च, कैसरे हिंद, 27 फर० (आर०

एन० पी० बंब, 5 मार्च 1898) दत्त · इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पूर्वोद्धृत, 110-1 स्पीचेज I पृ० 34 5, 41, ए० एम० बोस, सी० पी० ए, पृ० 421; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी०, 1902 खंड XLI पृ० 116; एच० ए० वाडिया, रिप० आई० एम० सी० 1904 पृ० 203; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 765; केसरी, 7 फरवरी (आर० एन० पी० बंब 11 फरवरी 1903)

92 सी० पी० ए० पृ० 168 तथा देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 75-6, 78, 90

93. मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 456 पर.

94 राय, पावर्टी, पृ० 299 इसी प्रकार 1898 की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष ने पूछा · 'क्या इंग्लैंड को यह पक्का विश्वास है कि यदि भारत की सुरक्षा नष्ट हो गई और भारत ब्रिटिश साम्राज्य से छिन गया तो गृह प्रभारो के रूप मे ज्ञात मूल्यवान विषयो के रूप मे इंग्लैंड को मिलने वाले लाखो करोड़ो रुपयो की हानि से इंग्लैंड की प्रतिष्ठा को, उसके गौरव को, उसके व्यापार को, उसके विनियोजन को, उसकी पूजी को तथा उसकी जनता को किसी प्रकार की कोई हानि नही उठानी पड़ेगी ?' (ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 420) और देखिए, हिंदू, 20 अगस्त 1885, 13 फरवरी 1890; सुरभि, 1 सित० (आर० एन० पी० बंब०, 5 सित० 1885); पताका, 18 सित० (वही, 26 सित० 1885), तिरगा निशान, 1 सितंबर (आर० एन० पी० एम०, 15 सित० 1888), ए० बी० पी०, 5 अप्रैल 1895, 27 मई 1896, आर० एम० सयानी एल० सी० पी० 1898 खंड XXXVII पृ० 527, एस० एन० बैनर्जी, एम० ऐंड० डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 26, 48; विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 19435, सी० पी० ए०, पृ० 708, केसरी, 10 जून (आर० एन० पी० बंब, 14 जून 1902); दत्त इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 140-1, 145, 166, ई० एच० II पृ० 567; गोखले, स्पीचेज, पृ० 28, 105, 1208

95 आर० एन० पी० बंब, 29 अगस्त 1903

96 राय, पावर्टी पृ० 296

97. सी० शंकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 387; गोखले, स्पीचेज, पृ० 48

98 नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 75-6 तुलनीय एच० एल० सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ० 165-8, 206

99 आई० एन० सी० 1891 का प्रस्ताव IV; तिलक, रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 38-9; एस० ए० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1885, पृ० 68, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 156,252; नौरोजी, स्पीचेज परिशिष्ट पृ० 75, राय, पावर्टी, पृ० 297, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 16; गोखले, स्पीचेज, पृ० 48-9, 90-1

100 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 216, सी० पी० ए, पृ० 165-6 स्पीचेज, पृ० 658-9. 664, एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज, I पृ० 192, एस० ऐंड डब्ल्यू, पृ० 422 और सी० पी० ए०, पृ० 250, ए० बी० पी०, 3 सितंबर 1885 और 19 जुलाई 1891; बंगाली, 4 जून 1887, 10 अक्तू० 1897 और 1 जुलाई 1903, केसरी, 14 सितंबर (आर० एन० पी० बंब, 18 सित० 1897), ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 403; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1902 खंड XLI पृ० 115-6 अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 1 मई 1884 के अंक मे इस दृष्टिकोण का विपरीत ढंग से प्रयोग किया उसने लिखा 'यही कारण है कि भारतीय जनता रूसी सेना के भारतीय सीमाओ की ओर आगे बढ़ आने पर असीम संतोष अनुभव करती है, क्योंकि उसका विश्वास है कि रूसी जितना ही भारत की सीमा के अधिक निकट आएंगे, उतना ही उसके मालिक उसका अधिक आदर-सम्मान करेंगे'

101. इंडिया, जुलाई 1897 पृ० 202 और उदाहरणार्थ देखिए, ए० बी० पी०, 21 मई 1885, 31 मई

1888; 27 अगस्त 1886 को व्ययों की कटौती पर बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन द्वारा प्रस्तुत ज्ञापन, सेकंड एनुअल रिपोर्ट आफ दि बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन 1886-7; 30 सितंबर 1886 को पूना सार्वजनिक सभा द्वारा प्रस्तुत विरोधपत्र, जे० पी० एस० एस० अक्तू० 1886 और जनवरी 1887 (खंड IX सं० 2 और 3); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 824-5; आई० एन० सी० 1891 और 1904 के प्रस्ताव सं० III (बी) और III क्रमश:, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 456; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 250, 281; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 9, 31-2, सी० पी० ए०, प० 607-8; ए० नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 127; 'दि इकोनामिक सिच्युएशन इन इंडिया' ज्ञन, अक्तू० 1899 (खंड IV सं० 3) पृ० 65.

102. नैतिक और सामाजिक लाभो के लिए हम थोड़े से ही उदाहरण प्रस्तुत कर सकते है. देखिए, जी० के० गोखले, स्पीचेज, पृ० 188 इंडियन पीपुल्स राइट : अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 23 दिसंबर 1886 के अंक में अपना दृढ़ मत प्रकट करते हुए लिखा कि "भारत के लोगो का दावा है कि भारतीय प्रशासन के सभी स्थानो पर हां उनका ही अधिकार है उनके इस दावे का आधार यह है कि इन सभी स्थानो का व्यय भार भारतीय संसाधनो द्वारा उठाया जाता है अत भारत के नागरिक होने के नाते इन स्थानो को वे अपनी ही संपत्ति समझते हैं. इसी प्रकार 1904 मे राष्ट्रीय कांग्रेस मे प्रस्ताव सं० I क. पेश करते हुए सुरेंद्रनाथ बेनर्जी ने तर्क उपस्थित किया कि विचारणीय तत्व यह है कि यद्यपि देश हमारा है, धन हमारा है, भारी जनसंख्या हमारी है फिर भी हमारे भाग्य मे ऊंची नियुक्तियो का केवल 14 से 17 प्रतिशत भाग ही उपलब्ध है, ऐसा क्यो? (रिप० आई० एन० सी० 1904 पृ० 64). सेवाओ के भारतीयकरण का प्रचार राजनीतिक दृष्टि से इस रूप मे किया गया कि यदि शिक्षित भारतीय लोगो का लाभप्रद नियुक्तियां न दी गई तो वे राजनीतिक दृष्टि से असंतोष अनुभव करेंगे. उदाहरण के लिए देखिए; नौरोजी, एसेज, पृ० 38, पावर्टी, पृ० 205, स्पीचेज, पृ०507; मांडलिक, स्पीचेज, पृ० 701; ए० बी० पी०, 9 जनवरी 1880; गोखले, स्पीचेज, पृ० 68-9.

103 आई० एन० सी० 1891, 1897, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव संख्या, III, III (ii), XV, II (सी) और I (बी) क्रमश:, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 124, 184, 639, स्पीचेज, पृ० 284-6, परिशिष्ट, पृ० 5; एस० एन० बेनर्जी, स्पीचेज I पृ० 191, सी० पी० ए० पृ० 270, एस० ऐंड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 26-8, 32, 44, 47; 16 मई 1880 को पूना को जनसभा में स्वीकृत विरोधपत्र, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III सं० 1), पृ० 7. रानाडे, 'रिव्यू आफ फारवेट्स 'थ्री एसेज आन इंडियन फाइनांस', जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खंड III सं०-1), पृ० 80; पूना सार्वजनिक सभा द्वारा 2 मार्च 1881 को प्रस्तुत ज्ञापन, जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV सं०-1), पृ० 12; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 5, 6, 49, 155; बांबे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन का 27 अगस्त 1886 को प्रस्तुत स्मरणपत्र सेकंड ऐनुअल रिपोर्ट आफ दि बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन; मद्रास महाजन सभा का स्मरणपत्र, रिपोर्ट आफ दि फाइनांस कमेटी (कलकत्ता, 1887), खंड II पृ० 452-3; रानाडे मेमोरेंडम आफ डिसेंट, वही, खंड-I पृ० 398. मालवीय, स्पीचेज, पृ० 280, 299-301, 518. गोखले, स्पीचेज, पृ० 28, 63-4, 1187-8. वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 26-7, 29, 31-2 सी० पी० ए०, पृ० 609. दत्त, ई० एच० I पृ० 413. ई० एच० II पृ० XVII. सी० पी० ए०, पृ० 491. जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 100. विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18764 एस० ए० स्वामिनाथ अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 68; लाला मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी०, 1891,

पृ० 15. जी० ए० पाटिल, रिप० आई० एन० सी०-1902 पृ० 139. नवविभाकर, 14 जून (आर० एन० पी० बग०, 19 जून 1880). अरुणोदय, 23 जन० (आर० एन० पी० बब, 29 जन० 1881), बकुल, 31 दिस०, शिवाजी, 29 दिस० 1882 (वही, 7 जन० 1883), इंडियन स्पेक्टेटर, 25 फरवरी और 24 जून (वही, मार्च और 30 जून 1883 क्रमश). मराठा, 3 जून, 9 सितंबर 1883, अल्मोड़ा अखबार, 9 जुलाई (आर० एन० पी० पी० एन०, 14 जुलाई 1883); उचित वक्ता, 15 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 22 मार्च 1884), नवविभाकर, 1 सित० (वही, 6 सित० 1884), पताका, 10 जुलाई (वही, 18 जुलाई 1885), नेटिव ओपीनियन, 19 अप्रैल (आर० एन० पी० बब, 25 अप्रैल 1885); इंदु प्रकाश, 25 मई (वही, 30 मई 1885); ए० बी० पी०, 21 मई 1885, 18 नवबर, 9 और 16 दिस० 1886; बगाली, 16 जन० 1886, 14 फरवरी 1886; इंडियन स्पेक्टेटर 27 जून और 14 नव० 1886, मराठा 20 जून, हिंदू, 15 जुलाई (वी० ओ० आई०. जुलाई 1886) भारतीय प्रेस के विचारो का संपादकीय सार-सक्षेप, वी० ओ० आई०, जुलाई 1886 केसरी, 31 जन० (आर० एन० पी० बब, 4 फरवरी, 1888); अखबारे आम, 21 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 28 अप्रैल 1888); ए० बी० पी०, 31 मई 1888 और 3 मार्च और 24 मई 1894; विक्टोरिया पेपर, 30 नव० (आर० एन० पी० पी०, 12 दिस० 1891), आर्यजनप्रियन, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1893), ज्ञानोदयम, 1 मई (वही, 15 मई 1893), बगवासी, 20 अप्रैल (आर० एन० पी० बग० 27 अप्रैल 1895), वसुमती, 5 मई (वही 14 मई 1898); केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903), इंडियन पीपुल, 18 अगस्त (आर० एन० पी० यू० पी० 27 अगस्त 1904)

104 भिन्न भिन्न लोगो का जोड भिन्न भिन्न था और यह स्वाभाविक ही था क्योंकि उन सबने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के 1892 के अधिवेशन मे मदनमोहन मालवीय द्वारा जुटाए गए अनुमानित और मिलते जुलते आकडो पर ही हिसाब लगाया था (स्पीचेज, पृ० 515-6) तथा देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 134 (उनकी प्रकगणना 20 करोड रुपये बैठती थी) परिशिष्ट पृ० 6, 89-90; वाचा, सी० पी० ए०. पृ० 607; दत्त, ई० एच० I पृ० 427 की पादटिप्पणी, स्पीचेज I पृ० 178 गोखले स्पीचेज, पृ०1187 8 सरकारी लेखा-जोखा के लिए देखिए, इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खड IV पृ० 201

105. माडलिक, स्पीचेज, पृ० 186-7; पी० मेहता, स्पीचेज पृ० 225, अन्य भारतीय नेताओ के लिए देखिए, प्रोसीडिंग्स आफ पब्लिक सर्विस कमीशन (कलकत्ता, 1887, खड I भाग III पृ० 18-20, 45-6, खड II भाग II पृ० 23, खड III भाग III पृ० 5; खड IV भाग II पृ० 102, 325 (तिलक); खड V भाग II, पृ० 288. 393, खड VI, भाग II पृ० 36,240, 273, 428, 442, 494, 504, भाग II पृ० 32, 71, 86

106 ए० एम० बोस, सी० पी० ए० पृ० 407; गोखले, स्पीचेज, पृ० 68

107. वी० ओ० आई०, जुलाई 1886.

108. और देखिए, रास्त गुफ्तार, 29 जून शुभ सूचक, 13 जून (आर० एन० पी० बब, 5 जुलाई 1879); एस० ए० स्वामिनाथ अय्यर रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 68; इंडियन स्पैक्टेटर और मराठा, 20 जून (वी० ओ० आई, जुलाई 1886), स्वदेशमित्रन तिथिरहित (आर० एन० पी० एम०, फरवरी 1887); केसरी, 31 जनवरी (आर० एन० पी० बब, 4 फरवरी 1888); आर्यजनप्रियन, 8 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1893); ए० बी० पी०, 24 मई

1894; बसुमती, 5 मई (आर० एन० पी० बग०, 14 मई 1898); जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 100, दत्त, स्पीचेज I पृ० 94.

109 प्रोसीडिंग्स आफ पब्लिक सर्विस कमीशन (1887) खड II भाग III पृ० 41; खड III भाग III पृ० 7; खड IV भाग III पृ० 147 खड IV भाग II पृ० 214, खड VI भाग II पृ० 386, भाग III पृ० 93.

110. वही, खड IV भाग II पृ० 130 (नौरोजी), पृ० 145 (रानाडे), खड V भाग II पृ० 230; खड VI, भाग II पृ० 74.

111. एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डबल्यू०, परिशिष्ट पृ० 47 तथा देखिए एस० एन० बैनर्जी, बिलबी कमीशन, खड III प्रश्न 19419.

112. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, 5 इसके अतिरिक्त परिशिष्ट 11, 31-2, 37 भी

113. ए० बी० पी०, 27 फरवरी 1880; रानाडे, 'रिव्यू आफ फासेट्स थ्री एसेज आन इंडियन फाइनास' जे० पी० एस० एम०, जुलाई 1880 (खड III, स० 1) पृ० 80; जलवा तूर, 1 मार्च (आर० एन० पी० पी० एन, 4 मार्च 1880), भारत मिहिर, 3 अगस्त (आर० एन० पी० बग, 14 अगस्त 1880), जे० पी० एस० एस० जुलाई 1881 (खड IV स० 1) पृ० 10, बगाली, 29 अक्तू० 1881; बकुल, 31 दिस० 1882, शिवाजी, 29 दिस० 1882 (आर० एन० पी० बब, 6 जन० 1885), भारत मिहिर, 5 जून (आर० एन० पी० बग०, 9 जून 1883), सुरभि, 2 जून (वही, 7 जून 1884); नवविभाकर, 1 सित० (वही, 6 सित० 1884), तत्व-विवेचनी, 4 मई (आर० एन० पी० एम०, मई 1884); बगाली, 19 जुलाई 1884, प्रजाबधु, 6 फर० (आर० एन० पी० बग, 14 फरवरी 1885), पताका, 11 सित० (वही, 19 सित० 1885); नेटिव ओपीनियन 19 अप्रैल आर० एन० पी बब, 25 अप्रैल 1885 इदु प्रकाश, 25 मई, वही, 30 मई 1885); स्वदेशमित्रन, 17 अगस्त (आर० एन० पी० एम०, अगस्त 1885); वी० राघवाचारी, रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 44-5; जे० यू० याज्ञिक, वही, पृ० 65, एस० ए० एस अय्यर, वही पृ० 68, एम० एन० बैनर्जी, स्पीचेज, III पृ० 15-6, 195; मराठा, 14 फर० और 18 जुलाई 1886; सिंध टाइम्स, 10 जून, बगालो, 3 जुलाई (वी० ओ० आई०, जुलाई, 1886); सजीवनी, 9 जन० सोम प्रकाश, 11 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 16 जन० 1886), भारत मिहिर, 14 जन० (वही, 23 जन० 1886); सार सुधानिधि, 15 मार्च, उचित वक्ता, 13 मार्च, सोम प्रकाश और समाचार चद्रिका, 15 मार्च (वही, 20 मार्च 1886); बगवासी, 6 नव० (वही, 13 नव० 1886); रिपोर्ट आफ दि प्रेसीडेंसी एसोसिएशन 1886-7, पृ० 44-6, 54; 30 सितबर 1886 का पूना सार्वजनिक सभा का ज्ञापन, जे० पी० एम० एस०, अक्तू० 1886, जनवरी 1887 (खड IX स० 2-3) पृ० 6 मद्रास महाजन सभा तथा अन्य स्थानीय सार्वजनिक सस्थाओ के ज्ञापन रिपोर्ट आफ दि फाइनास कमेटी 1886 खड II पृ० 453; स्वदेशमित्रन, तिथिरहित (आर० एन० पी० एम० फरवरी 1887); एस० एस० अय्यर, और जी० एस० अय्यर, प्रोसीडिंग्ज आफ दि पब्लिक सर्विस कमीशन, 1887 खड V भाग II पृ० 214 और 288 क्रमशः, ए० बी० पी०, 16 सित० 1886; ट्रिब्यून, 18 सितंबर और बिहार हेराल्ड, 21 सित० (वी० ओ० आई०, अक्तू० 1886); हिंदू, 25 मई 1887; आर० एन० पी० बब, 28 जनवरी 1888 में उल्लिखित पत्र पत्रिकाएं; केसरी, 31 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 4 फरवरी 1888); आजाद, 3 फरवरी (आर० एन० पी० एन० 7 फरवरी 1888); हिंदुस्तान, 18 अगस्त (वही, 21 अगस्त 1889); तिरगा निशान, 5 अक्तू० (आर० एन० पी० एम०, 31 अक्तू० 1889) नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 144, 397, परिशिष्ट पृ० 32-3; रहबर ए

हिंद, 26 फर० (आर० एन० पी० पी०, 3 मार्च 1894), राय, पावर्टी, पृ० 306, 308-10, 318, एस० के नायर, रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 74; विशभर नाथ, एल० मी० पी०, 1897 खड XXXVI पृ० 185 और वही 1898 खड XXXVII पृ० 518-9. वस्तुत उच्च वेतनो मे कटौती की माग एक पुरानी माग ही थी क्योकि 1852 मे सर्वप्रथम ब्रिटिश इडियन एसोसिएशन के तथा बगाल प्रेमीडेसी के मूल निवासियो की एसोसिएशन के ज्ञापन मे यह माग की गई थी (बी० बी० मजूमदार; पूर्वोद्धृत, पृ० 482 पर)

114 डकन स्टार, 12 सित० (आर० एन० पी० बब, 18 सित० 1880). जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खड IV स० 1), पृ० 10, जोशी, पूर्वोद्धत, पृ० 3-7, 64, 69, 75-7, 82, मराठा, 25 फरवरी 1883 इदु प्रकाश, 20 मार्च, 28 मई (आर० एन० पी० बब, 31 मार्च, 2 जून 1883); जे० यू० याज्ञिक, रिप० आई० एन० सी० 1885 पृ० 65; एस० ए० अय्यर, वही, पृ० 68, हिंदू, 24 जून 1885, इडियन प्रेस ओपीनियन का सपादकीय सार सक्षेप, वी० ओ० आई०, जलाई 1886, मराठा, 17 जून 1886, मराठा 20 जून, इडियन मिरर, 22 जून, 3 जुलाई, बगाली, 3 जुलाई (वी० ओ० आई०, जुलाई 1886); 27 अगस्त 1886 को बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन द्वारा खर्चों पर प्रस्तुत ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल, 30 सितबर 1886 को पूना सार्वजनिक सभा का विरोधपत्र, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 7, 10 मद्राम महाजन सभा तथा अन्य अनेक स्थानीय सार्वजनिक मस्थाओ द्वारा प्रस्तुत ज्ञापन,, रिपोर्ट आफ दि फाइनास कमेटी 1886, खड II पृ० 450, 452-54, 459 65, 471-84 रानाडे, 'मेमोरेडम आफ डिसेंट' (अस्वीकृति मे ज्ञापन) वही, खड 1 पृ० 395-6 398, 403 01, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1197-9 और देखिए, तिलक, प्रामीडिग्स आफ दि कौमिल आफ दि गवर्नर आफ दि बम्बे, 1895, खड XXXIII पृ० 91.

115 भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन मे ही इस माग को उठाया और उसके पश्चात वर्षों तक यह माग दोहराती तो रही परतु उसने इसके पक्ष मे किसी प्रकार के आर्थिक कारण उपस्थित नही किए काग्रेस के लिए देखिए 1885, 1894, 1896, 1897 और 1998 के प्रस्ताव सख्या II, IV, XI (जी), IV (एफ) और XX (एफ) क्रमश, एम० मुदालियर, रिप० आई० एन० सी 1885 पृ० 27 8, स्वदशमित्रन, 17 अगस्त (आर० एन० पी० एम० अगस्त 1885), तिरगा निशान, 11 जुलाई (आर० एन० पी० एम०, 15 जुलाई 1888); स्वदेशमित्रन, 21 जुलाई (वही, 31 जुलाई 1888), स्वदेशमित्रन, 6 जून (वही, 15 जून 1900)

116 भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे भाषण करते हुए जे० यू० याज्ञिक ने इस तथ्य की आलोचना की कि प्राय. विभाग अध्यक्षो द्वारा खर्चों मे कटौती के लिए बनाई गई योजना दिखावटी होती है अथवा उसका पालन इधर उधर किसी क्लर्क को नौकरी से हटाने के रूप में अथवा किसी सरकारी सस्थान के प्यासे कर्मचारियो को पानी पिलाने वाले किसी नौकर को अथवा 8-10 रु० मासिक वेतन पाने वाले किसी चपरासी को नौकरी से हटाकर किया जाता है इसके पश्चात उन्होने अपना मत प्रकट किया कि इस प्रकार की आसू पोछने वाली नीति अपनाने से निश्चित रूप से किसी प्रकार के सतोषप्रद परिणाम की आशा नही की जा सकती, (रिप० आई० एन० सी०. 1885 पृ० 65); जलवा तर, 1 मार्च (आर० एन० पी० पी० एन०, 4 मार्च 1880); ए० बी० पी०, 21 मई 1985, सोम प्रकाश और आनद बाजार पत्रिका, 1 जून (आर० एन० पी० बग०, 6 जून 1885), रहबरे हिंद, 1 जून (आर० एन० पी० पी०, 15 जून 1889); सजीवनी, 21 सितबर (आर० एन० पी० बग, 28 सितबर 1889), तिरगा निशान, 5 अक्तूबर (आर० एन० पी० एम०, 31 अक्तूबर 1889), रहबरे हिंद, 26 फरवरी (आर० एन० पी० पी०

3 मार्च 1894); सजीवनी, 20 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 27 अप्रैल 1895); बसुमती, 5 मई (वही, 14 मई 1898).

117. एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 263-4 और स्वदेशाभिमानी, 15 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, अप्रैल 1878); आई० एन० सी० के 1891, 1892, 1893, 1894, 1901 और 1902 के क्रमश प्रस्ताव सख्या VII (सी) V (ई) III (ई) XVI (ई) VII और X; अखबारे आम, 20 अगस्त (आर० एन० पी० पी०, 7 सितबर 1895); सहचर, 10 अप्रैल (आर० एन० पी० बग, 20 अप्रैल 1895); बगाली, 11 अप्रैल 1896; एस० एन० बैनर्जी, एम० ऐंड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 25, जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18963, 19710, 19719-20, 19735, 19761; हिंदुस्तानी, 14 जुलाई (आर० एन० पी० एन० 20 जुलाई 1898); ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 426; गोखले, स्पीचेज, पृ० 95, 1200; विक्टोरिया पेपर, 8 जुलाई (आर० एन० पी० पी० 19 जुलाई 1902) और देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 15

118 1886 मे एस० एन० बैनर्जी ने इन कारणो को बडे ही सुदर ढग से सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है देखिए (स्पीचेज III पृ० 10-20)

119. ए० बी० पी०, 19 नवबर 1880 इडियन स्पेक्टेटर, 24 अक्तूबर (आर० एन० पी० बव, 30 अक्तू० 1880); बगाली, 19 मार्च 1881, 12 मार्च 1832; मराठा, 27 मार्च 1881; सोम प्रकाश, 17 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 22 जन० 1881); ढाका प्रकाश, 20 फरवरी (वही, 26 फर० 1881); बर्दवान सजीवनी, 22 मार्च (वही, 2 अप्रैल 1881); साधारणी, 13 नव० (वही, 10 नव० 1881); चारुवार्ता, 6 मार्च (वही, मार्च 1882), सोम प्रकाश, 27 मार्च (वही, 1 अप्रैल 1832); बर्दवान सजीवनी, 2 मई (वही, 13 मई 1882); अल्मोडा अखबार, 7 मई (आर० एन० पी० पी० एन०, 10 मई 1883); हिंदुस्तान, 28 मार्च (वही 2, अप्रैल 1884); बगाली, 15 मार्च और 21 जून 1884, आर० एन० पी० बग० 31 मई, 21, 28 जून, 5, 12 19 जुलाई 1884, वी० ओ० आई०, 30 जून, 15, 31 जुलाई 1884, जून, जुलाई 1886, तथा आर० एन० पी० बर्ग०, 2, 9, 16, 23, 30 जनवरी, 3, 10, 24 जुलाई 1886 मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए, शफीके हिंद 22 मई (आर० एन० पी० पी०, 31 मई 1886); गमख्वारे हिंद, 26 जून (वही, 5 जुलाई 1886), बगाली, 10 जून 1885, वी० एस० पातुलु गुरु, रिप० आई० एन० सी०, 1885 पृ० 72 बगाली, 3 अप्रैल, 17 जुलाई 1886, मराठा, 17 अक्तूबर 1886; एस० एन० बैनर्जी स्पीचेज III, पृ० 6, 12-4; बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन द्वारा 27 अगस्त 1886 को प्रस्तुत ज्ञापन पूर्वोक्त स्थल, मेरठ एसोसिएशन और मद्रास महाजन सभा के स्मरण-पत्र रिपोर्ट आफ दि फाइनास कमेटी 1886 खड-2 पृ० 452-3; हिंदू, 2 मई 1887; बगवासी, 26 फर० (आर० एन० पी० बग०, 5 मार्च 1887), रास्त गुफ्तार, 2 अप्रैल (आर० एन० पी० बब; 27 अप्रैल 1887), मुलतान उल अखबार, 15 दिस० (आर० एन० पी० एम०, 15 दिस० 1887); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 155, हिंदू, 22 जून 1888, 1 जून 1891, 3 फरवरी 1892, 31 जुलाई 1893 2 अप्रैल 1894, हिंदुस्तान 5 फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 10 फर० 1889); समय 10 मार्च, सजीवनी, 11 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 18 मार्च 1893); चारु वार्ता, 20 मार्च सहचर, 22 मार्च (वही, 1 अप्रैल 183), हिंदुस्तान 5 अप्रैल (आर० एन० पी० बंब०, 11 अप्रैल 1876), वाचा, स्पीचेज परिशिष्ट, 26, ए० बी० पी० 27, 28 फरवरी 1897; मराठा, 14 मार्च 1897; सजीवनी, 13 फरवरी (आर० एन० पी० बग०, 20 फरवरी 1897);

24 मार्च के उड़िया और नवसवाद (वही, 15 मई 1897); मद्रास स्टेंडर्ड, 11 मार्च (आई० एस० वी० ओ० आई०, 21 मार्च 1897); ज्ञान प्रकाश, 11 मार्च, सत्य मित्र, 7 मार्च काठियावाड टाइम्स, 10 मार्च (आर० एन० पी० बब, 13 मार्च 1897); श्री सयाजी विजय, 17 मार्च, इंडिपेंडेंट, 21 मार्च (वही, 27 मार्च 1897); आजाद, 5 मार्च, हिंदुस्तानी, 3 मार्च (वही, 10 मार्च 1897), अंजुमने हिंद, 3 मार्च, रफी उल अखबार 5 अप्रैल (वही, 14 अप्रैल 1897), कर्णाटक प्रकाशिका, 8 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 15 मार्च 1897), शशिलेखा, 16 मार्च (वही, 31 मार्च 1897); स्वदेशमित्रन, 1 अप्रैल (वही, 15 अप्रैल 1897); शशिलेखा, 30 सित० (वही, 15 अक्तू० 1898), स्वदेशमित्रन, 14 अप्रैल (वही, 30 अप्रैल 1899); हितवादी 3 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 11 मार्च 1899 (वही, 30 अप्रैल 1899) हितवादी, 3 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 11 मार्च 1899); आध्र प्रकाशिका, 10 मार्च (आर० एन० पी० एम०, 15 मार्च 1900); दत्त : इंग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 165

120 वी० ओ० आई०, जुलाई 1886

121 बर्दवान सजीवनी, 17 जून, सहचर, 18 जून, समय, 23 जून (आर० एन० पी० बग०, 28 जून 1884): अवध पच, 29 जुलाई (आर० एन० पी० पी० एन०, 4 अगस्त 1884) ट्रिब्यून, 19 जुलाई (वी० ओ० आई०, 31 जुलाई 1884), एस० एन० बैनर्जी, स्पीचेज III, पृ० 16

122 नौरोजी, ..., पृ० 170, पावर्टी, पृ० 142, 210, सी० पी० ए०, पृ० 173-4, आई० एन० सी० 1885 का प्रस्ताव सख्या V I जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 102-05, 111-2, 131-5, केसरी, 31 मई (आर० एन० पी० बब, 4 जून, 1898), दत्त, ई० एच० II पृ० XVII, 612.

123 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 55-61, 27 अगस्त 1886 का बाबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन का ज्ञापन, पूर्वोक्त स्थल राय, पावर्टी पृ० 311-5 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1202

124. विशेषतया देखिए, नौरोजी पावर्टी, पृ० 149, 150 और आगे उन्होंने इस तथ्य को इस रूप मे प्रस्तुत किया कि ... तथा इंग्लैंड और भारत के बीच वित्तीय सबध इस प्रकार के थे जिस प्रकार के मालिक और नौकर के बीच होते हैं (स्पीचेज, पृ० 163, 337, 342, परिशिष्ट, पृ० 78, 93 सी० पी० ए०, पृ० 168)

125 प्रस्ताव V अनेक अन्य भारतीय नेताओ ने दोनो देशों के बीच खर्चों के समुचित वितरण की माग का पूर्ण समर्थन किया, उद्धरणो के लिए देखिए आगे इस माग के विस्तृत विवेचन से सबधित विवरण, उदाहरण के रूप मे देखिए, आर० एम० सायानी, सी० पी० ए०, पृ० 368; आई० एस० वी० ओ० आई०, मई, जून, जुलाई मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाएं, गोखले वाचा, नौरोजी, एस० एन० बैनर्जी, और एस० अय्यर के विल्बी कमीशन के समक्ष साक्ष्य, दत्त : फेमिस इन इंडिया, पृ० XX और ई० एच० II, पृ० 213.

126 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1204-07, वाचा, पृ० 394-5, नौरोजी, स्पीचेज पृ० 343. पावर्टी, पृ० X. एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 253-4, 268-9, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 361-2, दत्त, स्पीचेज, II, पृ० 46; ए० बी० पी०, 4 जून 1883.

127. देखिए, पीछे

128. नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 173, स्पीचेज, पृ० 339, पावर्टी, पृ० 607; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 254, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1204-05; दत्त, स्पीचेज II पृ० 47, ई० एच० II पृ० XVI, 613; वाचा, स्पीचेज, पृ० 395; आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VII.

129. एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 254; वाचा, स्पीचेज, पृ० 395, परिशिष्ट, पृ० 33.

130. ए० बी० पी०, 24 जून, 15 सित० 1895; आर० एन० पी० बंब, 22, 29 जून 1895 में, आर० एन० पी० बंग०, 29 जून, 6 जुलाई 1895 में, आर०एन०पी० एन०, 4 जून, 2, 9, 16, 23, 30 जुलाई 1895 मे आर० एन० पी० एम०, 30 जून, 15, 31 जुलाई 1895 में उल्लिखित पत्र-पत्रिकाएं, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 256; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 351; राय, पावर्टी, पृ० 338

131. ए० बी० पी०, 11 जुलाई 1902; हिंदू 18 जुलाई 1902; आर० एन० पी० बंब, 26 जुलाई 23 अगस्त 1902, आर० एन० पी० एम०, 19, 26 जुलाई 1902, आर० एन० पी० पी० एन०, 19, 26 जुलाई, 9, 16, 23 अगस्त 1902, आर० एन० पी० बंग०, 19, 26 जुलाई 1902, और आर० एन० पी० पी०, 2 अगस्त 1902 मे उल्लिखित पत्र-पत्रिकाए

132 हितवादी, 30 अक्तू० (आर० एन० पी० बंग०, 7 नव० 1903); इंडियन पीपुल, 6 नव० (आर० एन० पी० यू० पी०, 7 नव० 1903); एडवोकेट, 13 दिस०, (वही, 19 दिस० 1903)

133. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 142, सी०पी०ए० 167-8, 171, स्पीचेज, पृ० 146, 151-5, 158, 162-3, 299 330-6, 380, परिशिष्ट, पृ० 78-9, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1208; पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1897, खंड XXXVI पृ० 231; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 19800; दत्त, ई० एच० पृ० 409 ई० एच० II पृ० XVI-XVII, 605, 613 इस संबंध में इन नेताओं ने अपने शासकों का स्मरण कराया कि भारतीय साम्राज्य को पाने मे इन्होंने अपनी ओर से तो एक पाई भी खर्च नही की 1857 के विद्रोह को कुचलने के खर्चे को मिलाकर भारतीय साम्राज्य को विजित करने के सारे खर्चे का भार भारतीय जनता ने ही उठाया है नौरोजी, पावर्टी; पृ० IX, 210, सी० पी० ए० पृ० 170, स्पीचेज, पृ० 222, 351. परिशिष्ट, पृ० 78, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1207; दत्त, ई० एच० पृ० 399, 406, 409 स्पीचेज II पृ० 46.

134 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 142, 657, सी० पी० ए०, पृ० 167-8, स्पीचेज, पृ० 146, 150, 158-9, 337-40, परिशिष्ट, पृ० 5, 23, 43-4, 75, 79, 89-90; वाचा, स्पीचेज, पृ० 400, परिशिष्ट, पृ० 33 सी० पी० ए०, पृ० 618; एस० एन० बैनर्जी, विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 19419; जी० एस० अय्यर, वही, प्रश्न 19800.

135. इंडियन स्पैक्टेटर, 25 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 3 मार्च 1883); एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 254-5; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 340, परिशिष्ट, पृ० 79; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 33 आई० एन० सी० 1898 का प्रस्ताव XIII (बी), दत्त, ई० एच 11 पृ० XVI-XVII, 215, 613

136. एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 256-7, एच० ए० वाडिया, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 91, सी० शंकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 386 दत्त, स्पीचेज I पृ० 35: वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 618-9, स्पीचेज, पृ० 400.

137. फाइनल रिपोर्ट आफ दि रायल कमीशन आन दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि एक्सपेंडीचर आफ इंडिया (खंड IV) (हाउस आफ कामंस) 1900 खंड 29 पृ० लगभग 131.

138. 1900 का प्रस्ताव XI

139. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 618, स्पीचेज, पृ० 398, 400-01, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए, पृ० 708; ई० एच० II पृ० 557, 559; बंगाली, 24 अप्रैल 1900; मराठा और कैसरे हिंद, 6 मई (आर० एन० पी० बंब, 12 मई 1900); हिंदुस्तानी, 25 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०,

1 मई 1900); स्वदेशमित्रन, 16 अप्रैल, (आर० एन० पी० एन० 30 अप्रैल 1900)

140. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 1-2.
141. वही, पृ० 154-5.
142. पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 456-7
143. प्रोसीडिंग्स, आफ कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बांबे 1895 खंड XXXIII पृ० 90-1.
144. वही, 1896, खंड XXXIV पृ० 119; और देखिए इसी अध्याय के पृ० 2 और 3.
145. वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 31.
146. प्रस्ताव III (ii) इसी प्रकार 1904 में कांग्रेस ने मांग की कि जब तक बजट की बचतो में करदाताओं को राहत देकर सरकार के अपने खर्चों को बढ़ाने के प्रलोभन की आशंका को समाप्त किया जाए, सरकार को चाहिए कि अपने बजट की बचतों के एक भाग को जनता को लाभान्वित करने वाले, जैसे वैज्ञानिक, कृषि संबधी तथा औद्योगिक शिक्षा, डाक्टरी राहत की सुविधाओ मे वृद्धि कार्यों मे खर्च करे तथा अवशिष्ट राशि को स्थानीय तथा नगर प्रशासन मडलों को अत्यावश्यक रूप से अपेक्षित सफाई सुधार तथा दूरस्थ प्रदेशो मे सचार साधनो के विकास कार्यों को हाथ में लेने के लिए सहायता देने में खर्च करे (प्रस्ताव VIII सी)
147. गोखले, स्पीचेज, पृ० 92; और देखिए पृ० 109. लोक कल्याण के खर्चों मे वृद्धि की वकालत करने वाले कुछ और नेता थे, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 25; एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 22-5, जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन खंड III प्रश्न 19002.
148. वकील, पूर्वोद्धृत, पृ० 158-67, 555-6, 566.
149. आई० एन० सी० 1891, 1892, 1893 और 1894 के प्रस्ताव सख्या VIII, XII, XV और XX क्रमश, के० टी० तैलग, मिनिट टु दि रिपोर्ट आफ दि इडियन एजुकेशन कमीशन, 1883 पृ० 609 और रिप० आई० एन० सी, 1888 पृ० 152, रानाडे, 'मेमोरेंडम आफ डिसेंट,' रिपोर्ट आफ दि फाइनांस कमेटी, 1886, खंड पृ० 411; ए० बी० पी०, 21 मई 1885, 26 जुलाई 1888; सहचर, 2 सित०, सुरभि, 8 सितबर (आर० एन० पी० बग० 12 सित० 1885,; चारु वार्ता, 7 सित०, पताका 11 सित० (वही 19 सित० 1885); सोमप्रकाश, 28 सित० (वही, 3 अक्तू० 1885); सुरभि ओ पताका, 10 जून (वही, 19 जून 1886); 1888 के भारत सरकार के शिक्षा बिल पर बगाल और बबई के समाचारपत्रों मे टिप्पणिया, विभिन्न पत्रों और जुलाई, अगस्त 1888 के नेटिव प्रेसो में क्रमश उद्धृत एच० सी० मित्रा, रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 49; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 331-5 339-55, 502-04, 508; बी० एन० सील, रिप० आई० एन० सी 1892 पृ० 87-8: डबल्यू०सी० बैनर्जी, सी०पी०ए०, पृ० 130; गोखले, स्पीचेज, पृ० 56-7, 1193
150. पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 334 एक अन्य अवसर पर उन्होने कहा कि भारत में उच्च शिक्षा के अनेक विरोधी से कहा 'भारत में प्रत्येक महाविद्यालय को विषैले नाग सेने की जगह मानते है और इसीलिए चाहते हैं कि जितने कम विद्यालय हों उतना ही अच्छा हे (वही, पृ० 348)
151. आई० एन० सी० 1888 का प्रस्ताव सख्या IX और आगे.
152. प्रस्ताव संख्या XII और देखिए, तैलंग, मिनिट टु दि रिपोर्ट आफ इंडियन एजुकेशन कमीशन, 1883 पृ० 614.
153 प्रस्ताव संख्या, XX 1903 के शिक्षा सुधारों पर आपत्ति करते हुए 1903 में कांग्रेस के अध्यक्ष लाल मोहन घोष ने घोषणा की : 'हम अपने देश के अपेक्षाकृत निर्धन छात्रों के मार्ग मे कठिनाइयां

उत्पन्न करना नही चाहते हम अपने दरिद्र देश मे एटन और आक्सफोर्ड के स्तर की आभिजात्य (ठाट-बाटवाली) शिक्षापद्धति का प्रस्तावन और प्रचलन नहीं चाहते' (सी०पी०ए०, पृ० 777). और देखिए—तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 600-08

154 प्रस्ताव स० 11 इसी के साथ अपने तृतीय प्रस्ताव मे काग्रेस ने देश की दरिद्रता के निवारण के उपाय के रूप मे शिक्षा के प्रसार का समर्थन किया. लाल मोहन घोष ने अपने अध्यक्ष भाषण मे जनता की नि शुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए जोरदार तर्क दिए (सी०पी०ए० पृ० 777-9). और देखिए, जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 19685.

155. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 222, 826, 1076, 1086-7, 1090 और आगे, तैलग, रिप० आई० एन० सी० 1888 पृ० 152, जी० एस० अय्यर, वही, पृ० 153-4, एच० सी० मित्रा रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 49-50, बी० एन० सील, रिप० आई० एन० सी० 1892 पृ० 87-95; एच० सी० मित्रा वही, पृ० 95-6; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 290-1, एस० ऐड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 22-4; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 28-9, सी० पी० ए०, पृ० 584, 619; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 295, 359-68; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 352-3, 457-8, बी० जी० तिलक, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1896, खड XXXIV, पृ० 115-9, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 777-9 समाचारपत्रो के मत के लिए देखिए, इदु प्रकाश, 26 मार्च (आर० एन० पी० बब, 31 मार्च 1883), नव-विभाकर, 1 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 6 मार्च 1886); हितवादी 24 दिस० 1898 (आर० एन० पी० बग० 1 जन० 1899); स्वदेशमित्रन, 15 सित० (आर० एन० पी० एम०, 20 सित०, 1902); केसरी, 31 मार्च (आर० एन० पी० बब, 4 अप्रैल 1903) इस सबध मे एक विचित्र टिप्पणी 20 सितबर 1896 कैसरे हिंद की थी उसने यह निर्देश किया कि 1896-7 के लिए शिक्षा पर 6,319,000 रुपये बजट के खर्चे का तखमीना था तथा मदिरा मे वसूल होने वाला उत्पादन शुल्क 5 करोड रुपये था, उसने टिप्पणी की कि 'वे भारत को पियक्कड बनाने के लिए अत्यधिक उत्सुक हैं, परतु ज्ञान के प्रकाश के व्यापक प्रसार के प्रति सर्वथा उदासीन हैं उनके पास 'आबकारी शुल्क' के 1/11 भाग से अधिक खर्च करने के लिए हृदय ही नहीं है (कि हर 100 मे 23 व्यक्तियो क ख ग तक सीख सके ब्रिटिश शासन के 150 वर्ष के बाद भी देश मे सभ्यता का यह कैसा सुदर प्रसार है, आर० एन० पी० बब, 26 सित० 1896) तकनीकी शिक्षा के लिए देखे अध्याय 2

156 रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 51.

157 गोखले, स्पीचेज, पृ० 192-3, 1200

158 प्राथमिक शिक्षा के लिए बजट के अपेक्षाकृत अधिक बडे भाग की व्यवस्था तथा बबई सरकार से प्रातीय राजस्व के एक निश्चित अश के शिक्षा के लिए निर्धारण करने की वकालत करते हुए गोखले ने प्राथमिक शिक्षा के लाभो का विस्तृत वर्णन किया और कहा : 'शिक्षा का अर्थ है, समाज की बहुसंख्या को बुद्धिमत्ता का स्तर प्रदान करना, सुशिक्षित श्रम के प्रति अपेक्षाकृत अधिक रुचि और उत्साह उत्पन्न करना, उचित और अनुचित मे विवेक की अपेक्षाकृत अधिक योग्यता उत्पन्न करना (प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1901, खड XXXIX पृ० 250-1).

159 गोखले, स्पीचेज, पृ० 59-62 तथा देखिए, पृ० 25-6, 43-4, 95-6.

160. वही, पृ० 61.

161. तैलंग, मिनिट टु दि रिपोर्ट आफ दि इंडियन एजुकेशन कमीशन, 1883 पृ० 609; बंगाली, 17 अप्रैल 1886; मराठा, 1 अगस्त 1886; भारतीय समाचारपत्रों के विचारो का सम्पादकीय सार-संक्षेप, बी० ओ० आई०, अगस्त 1886; इंडियन नेशन, 2 अगस्त, इंडियन मिरर, 8 अगस्त, ट्रिब्यून, 14 अगस्त, बिहार हेराल्ड, 17 अगस्त (बी० ओ० आई० अगस्त 1880); भारत मिहिर, 8 अप्रैल, नवविभाकर, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 17 अप्रैल 1886); भारत मिहिर, 15 अप्रैल, सहचर, 14 अप्रैल (वही, 24 अप्रैल 1886); साधारणी और ढाका प्रकाश, 25 अप्रैल (वही, 1 मई 1886); सुरभि ओ पताका, 12 मई (वही, 22 मई 1886); भारतवासी, 14 सित०, नवविभाकर, साधारणी, 6 सित० (वही, 11 सित० 1886); डब्ल्यू० सी० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 130, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 334, 349-51 506-08; एच० सी० मित्रा, रिप० आई० एन० सी० 1891, पृ० 49-50; बी० एन० भील, रिप० आई० एन० सी० 1892, पृ० 87-90; एच० सी० मित्रा, वही, पृ० 96; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 291-2; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 628

162 देखिए अध्याय III.

163. देखिए अध्याय V.

164. देखिए अध्याय X

165. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 64; नवविभाकर, 1 मार्च (आर० एन० पी० बग०, 6 मार्च 1886); पीछे पादटिप्पणी सख्या 143 और 145; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 368-76, आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VII (सी).

166. आई० एन० सी० 1886, 1887, 1888, 1892, 1894, 1901, और 1904 के प्रस्ताव क्रमश: XI, III, III, XII, IV और XIII; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 457; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 154, 222; ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 447-8; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 619; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 717-8.

167. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 222; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 457; ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 450-2; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 619; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 719-21; विशंभरनाथ, एल० सी० पी० 1897, खंड XXXVI पृ० 183; गोखले, स्पीचेज, पृ० 91-2, 95. इसका निर्देश पहले ही पीछे किया जा चुका है कि भारतीय नेताओं ने पुलिस व्यवस्था मे योग्यता और ईमानदारी बढाने के लिए निम्न वेतनभोगी पुलिस कर्मचारियों के वेतन मे वृद्धि की वकालत की

168. एल० सी० पी० 1894, खंड XXXIII पृ० 306. इसी प्रकार एक अन्य वित्त सदस्य ई० ला ने टिप्पणी की : 'आदरणीय श्री गोखले एक ऐसे वर्ग से सबंधित हैं जो खजाने के द्वार पर आकर 'दो', 'दो' की रट लगाता है. परंतु वह बढे हुए खर्चे ही नही चाहता प्रत्युत वर्तमान चालू करों को भी समाप्त करवाना चाहता है. (एल० सी० पी०, 1904, खंड XLIII, पृ० 539; और देखिए, कर्जन, स्पीचेज II पृ० 464.

169. नौरोजी, स्पीचेज पृ० 319-20; दत्त, ई० एच० I, पृ० 308-9, 406-9, ई० एच० II, पृ० XV-XVI, 215-20, 373-5, 604. भारतीय नेताओं ने अन्य संदर्भों में भी इस ओर संकेत किया था कि भारतीय रक्त और पैसे के मूल्य पर साम्राज्य हथियाया गया था. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 567, 640, स्पीचेज, पृ० 221-2; गोखले, स्पीचेज, पृ० 120; दत्त, ई० एच० I, पृ० 399.

170. ए० एम० बोस, सी० पी० ए०, पृ० 427, 448.

171. गोखले, स्पीचेज, पृ० 26-8 तथा 109 क्रमशः, और देखिए टी० ई० वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1891 पृ०25; इंडियन एडवोकेट, 18 अगस्त (आर० एन०पी०यू०पी० 27 अगस्त 1904).

172. बी०जी० तिलक, प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाबे, 1895 खंड XXXIII, पृ० 91; गोखले, स्पीचेज, पृ० 61; आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव VIII; गोखले रिप० आई० एन० सी० 1904 पृ० 169. मराठा ने अपने 29 मई 1904 के अंक मे आय कर समाप्त करने का विरोध किया. उसने इसके बदले यह प्रस्ताव किया कि इसकी आय के लिए एक न्यास बना दिया जाए जो इस रकम को शिक्षा पर खर्च करे. इससे पूर्व अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 3 अगस्त 1900 के अंक में लिखा कि धरती पर लगे ऊंचे लगानो को भी यदि कृषि सुधारों, सफाई और ग्रामीण शिक्षा आदि पर खर्च किया जाता, तो हम इन लगानों को उपयोगी मान लेते.

173. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 751.

174. वही. पृ० 1088.

175. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1200.

176, विलबी कमीशन, खड III, प्रश्न 19686

177. सी० एन० वकील, पूर्वोद्धृत, अध्याय 1.

178. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1156-7; और देखिए, वही, पृ० 21, 1159-60, नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 155; 6, स्पीचेज, पृ० 300; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 203, 207, 220-1, 229-30; एस० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 2-3; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 3-4, सी० पी० ए०, पृ० 620; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18559; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 287-90; सी० शकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 385; दत्त, ई० एच० पृ० XV, और ई० एच० II पृ० 386-7.

179. आई० एन० सी० 1889 और 1890 के प्रस्ताव क्रमश IX और III, पी० मेहता, सी० पी० ए०, पृ० 90; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 107-8 सी० पी० ए, पृ० 156; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 17-20, 46, 216-7; गोखले, स्पीचेज पृ० 1158, 1160-1, एस० एन० बैनर्जी एस० ऐड० डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 3; जी० एस० अय्यर, रिप० आई० एन० सी० 1894 पृ० 77; विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18559, 18765, 18769; एच० एन० दत्त, रिप० आई० एन० सी० 1897 पृ० 44.

180. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1161; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 287; दत्त, ई० एच० I पृ० XV; ई० एच० II पृ० XVIII, 360.

181. उदाहरणार्थ, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 20वें अधिवेशन मे वी० के० अय्यर ने दावा किया कि 1892 मे कौंसिल मे बजट पर विचार-विमर्श करने दी गई शक्ति वास्तव मे कोरी बकवास और निरा धोखा था क्योकि इस कौंसिल में किए गए भाषणों का सरकार की नीति और प्रशासन पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता था. उन्होने आगे टिप्पणी करते हुए कहा : 'बजट पहले से ही तैयार रहता है, उसके सभी पक्ष पूर्वनिर्धारित रहते हैं और कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यो को केवल अपना मत प्रकट करना होता है और इसके लिए पहले से हो लिखे गए निबधों को पढ़ना भर होता है. (रिप० आई० एन० सी० 1904, पृ० 181). और देखिए, नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 154-5, स्पीचेज, पृ० 245, पावर्टी, पृ० 637-8; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 236, एस० ऐंड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 3; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 369;

गोखले, स्पीचेज, पृ० 1158, 1161; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 3; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 50

182. प्रस्ताव III.

183 सी० पी० ए०, पृ० 620.

184. पृ० 601. उन्होने यह भी शिकायत की कि ब्रिटेन का प्रत्येक हित और ब्रिटिश जनता का प्रत्येक वर्ग भारत सरकार पर दबाव डाल सकता है परतु भारत की जनता अपनी ही सरकार पर कोई दबाव नही डाल सकती है(पृ० 598) तथा देखिए उनकी ई०एच० I पृ० XV, ई० एच० 2 पृ० 387, स्पीचेज I पृ० 41, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 108, 131, 222, 245, 300, 356. पावर्टी, पृ० 638-9 सी० पी० ए०, पृ० 172-3, जोशी, पूर्वाद्धृत, पृ० 220 गोखले, स्पीचेज, पृ० 8, 1156, 1158-9, 1161, 1169, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 287 आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 357

185. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 108 आई० एन० सी० 1885, 1886 और 1897 के प्रस्ताव क्रमश: III, IV और III (i) गोखले, स्पीचेज, पृ० 1162, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 5, एस० एन० बनर्जी, एम० ऐड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 3, 6; जी० एस० अय्यर, बिलवी कमीशन, खड III प्रश्न 18767, 18834, 18847

186 एस० एन० बनर्जी, एस० ऐड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 5-6.

187. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1164 1904 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस माग को व्यापक सदर्भ मे दोहराया, प्रस्ताव IX (ए) तथा देखिए, इदु प्रकाश, 4 जून (आर० एन० पी० बब०, 9 जून 1883)

188 वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 34 एस० एन० बनर्जी, एम० ऐड डब्ल्यू०, परिशिष्ट, पृ० 5-6. जी० एस० अय्यर, बिलवी कमीशन, खड III प्रश्न 18767 आई० एन० सी० 1897 का प्रस्ताव सख्या III (i) आर० सी० दत्त ने 1903 मे बिना किसी निर्धारित सिद्धात के इस माग को उठाया (ई० एच० II, पृ० 600), तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने व्यापक प्रशासनिक सुधारो के सदर्भ मे इस माग को उठाया (प्रस्ताव स० IX) और देखिए, दत्त, स्पीचेज I पृ० 98

189 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 105 भारतीय नेताओ की उदीयमान पीढ़ी के प्रथम वास्तविक अखिल भारतीय सम्मेलन के महान ऐतिहासिक महत्व के प्रति सम्यक रूपेण जागरूक दादाभाई नौरोजी ने भावी राष्ट्रवादी प्रयास के लिए एक लक्ष्य निश्चित किया 'मैं यहा यह कह सकता हू कि भारत की इस प्रथम राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रधान कार्य जनता की उच्चतम और अंतिम आकाक्षाओ को स्पष्ट रूप से और साहसपूर्वक प्रकाशित करना है हमें तत्काल अपनी आकाक्षाओ की प्राप्ति मे सफलता मिलती है अथवा नही यह एक दूसरी बात है परतु हमारे शासको को यह ज्ञात होना चाहिए कि हमारी उच्चतम आकाक्षाए कौन सी है···यदि हम स्पष्ट शब्दो मे यह कहते हैं कि हम स्थाई समिति को सामान्य नियत्रण क्षमता प्राप्त होने के अतर्गत इग्लैंड से भारत को हस्तातरित वास्तविक सरकार लेना चाहते हैं और इसके साथ साथ हम यह चाहते है कि हम पर 'कराधान का अधिकार हमारी प्रतिनिधि परिषदो को होना चाहिए. हमे बता देना चाहिए कि हमारा अतत. लक्ष्य क्या है ?' (इस पर बल दिया गया). (वही, पृ० 109) और देखिए, वही, पृ० 222, 300 परिशिष्ट पृ० 10, 108 और आगे, बाद में 1897 मे डी० ई० वाचा को लिखित पत्र, मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 379 पर.

190. आर० एन० पी० यू० पी०, 23 अगस्त 1902 इग्लैंड मे ताजपोशी के अवसर पर उपस्थित

अतिथियों पर हुए खर्चे की देनदारी भारत पर डालने की तीव्र निंदा करते हुए और इस तथ्य पर शोक प्रकट करते हुए बडी ही वीरता तथा साहस के साथ उन्होंने घोषित किया : 'निर्धन भारत देश एक बहुत कठिन समय से गुजर रहा है भारतीयो की दशा तब तक ऐसी बनी रहेगी जब तक इस देश के सपूत अपने अधिकारो के लिए डट नही जाते तथा उन अधिकारो की प्राप्ति के लिए उपनिवेशियो की तरह धीरता तथा साहस का परिचय न दे, अन्यथा ब्रिटिश सरकार के हाथो वित्तीय मामलो मे उदारता की कौन कहे न्याय तथा औचित्य की भी आशा नही की जा सकती

191. उदाहरणार्थ देखिए, सहचर, 26 जनवरी (आर० एन० पी० बग०, 7 फरवरी 1880), सजीवनी, 9 जून (वही, 16 जून 1883), नवविभाकर 29 मार्च (वही, 3 अप्रैल 1886); मद्रास महाजन सभा का ज्ञापन, रिपोर्ट आफ दि फाइनास कमेटी 1886, खड II पृ० 453, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 7 एमिनेंट इडियस, पृ० 29 पर डब्ल्यू० सी० बनर्जी, मराठा, 1 अप्रैल 1894. गुजराती, 24 मार्च (आर० एन० पी० बब, 30 मार्च 1895); जनोपकारी, 16 जून (आर० एन० पी० एम०, 30 जून 1896), हिंदुस्तान, 28 दिस० (आर० एन० पी० एन०, 29 दिस० 1897), दत्त, इडियन पालिटिक्स, पृ० 51 फैमिस इन इडिया, पृ० XX, ई० एच० I पृ० 408 और ई० एच० II पृ० XVII-XVIII, 380-1, 387, 599-601; एस० एन० बनर्जी, स्पीचेज III पृ० 136, 145, 159, सी० पी० ए०, पृ० 710-1, बगाली, 22 जुलाई 1903

192 उदाहणार्थ, सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने 1895 के काग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण मे बडे निश्छल शब्दो मे कहा कि 'बिना प्रतिनिधित्व के कराधान नही, यह आधुनिक सभ्य सरकार का तात्विक सिद्धात है' काग्रेस ने सरकार से प्रशासन मे इस सिद्धात को अपनाने की बात नही कही है उन्होने काग्रेस के प्रतिनिधियो को यह निर्देश किया कि राजनीति एक व्यावहारिक कला है, इसमे कोरे सिद्धातो की बातें करने से काम नही चल सकता (सी० पी० ए०, पृ० 236-7)

193 प्रस्ताव स० III

194 प्रस्ताव स० IV

195. प्रस्ताव स० II, I और II और III क्रमश

196 उदाहरणार्थ, 1887 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस को सबोधित करते हुए मदनमोहन मालवीय ने तर्क दिया 'हम आपसे न्याय और औचित्य के नाम पर अपने बजट पर थोडे बहुत नियत्रण की अनुमति की प्रार्थना करते हैं कौसिल मे लाए जाने पर अपने प्रतिनिधियो के माध्यम से इस पर कुछ कहने की स्थिति मे रखने के लिए हम आपसे अनुनयविनय करते हैं (स्पीचेज, पृ० 20) और देखिए, इडियन स्पैक्टेटर, 6 मार्च, इदु प्रकाश, 7 मार्च (आर० एन० पी० बब, 12 मार्च 1881); नेटिव ओपीनियन, 13 मार्च (वही, 19 मार्च 1881), एस० एन० बनर्जी, स्पीचेज III पृ० 9, 26, 34, 38; नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 109-10, सोम प्रकाश, 24 जन० (आर० एन० पी० बग०, 29 जन० 1887)

197 एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 236 और एस० ऐंड डब्ल्यू०, परिशिष्ट 4-6, आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 369, वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 3-5; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18765, 18767, 18873-4; आई० एन० सी० 1897 का प्रस्ताव III (1); सी० शकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 386, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 292-3. आई० एन० सी०, 1904 का प्रस्ताव IX.

198. एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 236-7, एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 4-5; आर०

एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 369, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1161; वाचा, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 4; सी० शकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 386, एच० एन० दत्त, रिप० आई० एन० सी०, 1897 पृ० 44; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 293

199 एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 237 एम० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृष्ठ 5, जी० एस० *अय्यर*, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18767, 18875; आई० एन० सी० 1904 का प्रस्ताव स० IX तथा देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 106

200 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1161

201 वही, एम० एन० बैनर्जी, एस० ऐंड डब्ल्यू० परिशिष्ट, पृ० 5, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 293-4: एच० एन० दत्त, रिप० आई० एन० सी० 1897 पृ० 44

अध्याय 13

धन की निकासी

ब्रिटिश शासन की लोकोपकारी प्रवृत्ति की चर्चा तो केवल कल्पित कहानी के अतिरिक्त और कुछ नही। इस शासन की सही प्रवृत्ति तो देशवासियो का रक्त चूसना है।

अपनी सरकार के बिना भारतीय वर्तमान आर्थिक निकासी से मुक्ति नही पा सकते···किसी भी प्रकार के कोई भी शामक उपाय उपयोगी सिद्ध नही हो सकते। प्रशासनिक तंत्र मे किसी प्रकार के यांत्रिक हेर-फेर अथवा सुधार से न तो भारतीयों को कोई लाभ हो सकता है और न ही होगा।

दादाभाई नौरोजी

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ के मत मे भारत की दरिद्रता के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारणो मे एक था— भारत से इंग्लैंड को संपत्ति की निकासी। नेताओ के एक वर्ग के अनुसार तो यह निकासी भारत के सभी आर्थिक दोषो का प्रधान आधारभूत कारण है। वस्तुत हमारे अध्ययन काल की अवधि मे राष्ट्रवादी आदोलन का प्रमुख आधार 'निकासी सिद्धात' अथवा यह विश्वास था कि भारत की राष्ट्रीय संपत्ति अथवा कुल वार्षिक उत्पादन का एक भाग इग्लैंड को निर्यातित किया जा रहा है, जिसके बदले मे भारत को कोई समुचित आर्थिक अथवा भौतिक लाभ नही मिलता। अथवा दूसरे शब्दों मे भारत को परोक्ष रूप से ब्रिटिश राष्ट्र को खिराज देने के लिए बाध्य किया जा रहा है। धीरे धीरे कुछ वर्षों के उपरात देश मे जनता के दिलो मे निकासी-सिद्धात ने इतनी अधिक व्यापक लोकप्रियता और प्रभाव जमा लिया कि कितने ही ब्रिटिश प्रवक्ताओं और लेखकों को यह सिद्ध करने के लिए प्रबल प्रयास करने को बाध्य होना पड़ा कि यह सारी की सारी कल्पना आर्थिकता की दृष्टि से निराधार तथा भ्रातिमूलक है।

निकासी सिद्धांत के सर्वमान्य प्रमुख आचार्य दादाभाई नौरोजी थे। उन्होंने अपने लंबे सार्वजनिक जीवन-काल की सारी ही अवधि मे विरल संकल्प के साथ रात-दिन इसके लिए संघर्ष किया। इस सिद्धात की उलझनों को सुस्पष्ट करने की चेष्टा तो थोड़े से ही नेताओं ने की परंतु इसमें विश्वास रखने और इसका प्रचार करने वालों की सख्या कम नही थी। दादा

भाई नौरोजी ने 1867 में अपनी मान्यता को वाणी दी और उसके उपरांत यह धीरे धीरे व्यापकता और समर्थन प्राप्त करती गई। उनके ग्रंथों—'पावर्टी ऐंड आनब्रिटिश रूल इन इंडिया' डिगबी के ग्रंथ—'प्रास्परस ब्रिटिश इंडिया' और दत्त के ग्रंथ—'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' के दो खंडों के प्रकाशित होने पर तो यह मान्यता प्रचार के अपने चरम शिखर पर पहुंच गई तथा उसे राष्ट्रवादियों और लोकनेताओं में व्यापक मान्यता ही मिल गई। इस ग्रथ मे हम अपने अध्ययन के अंतर्गत अवधि मे राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा प्रचारित तथा मान्य 'निकासी-सिद्धात' के विस्तृत विश्लेषण को प्रस्तुत करने के लिए प्रमुख रूप से दादा भाई नौरोजी के भाषणों और लेखों को ही विश्वस्त आधार बनाकर चलेंगे।

सर्वप्रथम, 2 मई 1867 को लदन मे हुई ईस्ट इंडिया ऐसोसिएशन की एक बैठक के समक्ष पढे गए अपने एक लेख—'इंग्लैंड्स डैट टु इंडिया'[1]—मे इस धारणा को प्रस्तुत किया कि ब्रिटेन भारत मे अपने शासन की कीमत के रूप मे उस देश की सपदा को उस देश से छीन रहा है। भारत मे वसूल किए गए कुल राजस्व का लगभग चौथाई भाग देश से बाहर चला जाता है, तथा इंग्लैंड के संसाधनों से जुड जाता है। इसके फलस्वरूप भारत का रक्त निरतर निचोडा जा रहा है।[2] बबई के दो प्रमुख समाचारपत्रों—'नेटिव ओपीनियन' और 'रास्त-गोफ्तार'—को उन्होने यह दिखाने के लिए उद्धृत किया कि शिक्षित भारतीयो की उदीयमान पीढी उनके विचारो की समर्थक है।[3] इसके साथ ही देश मे व्याप्त आर्थिक दुर्दशाओं के उपचार के रूप मे उन्होंने सुझाव दिया कि कम से कम इंग्लैंड की जनता के लिए जो करना उचित है, वह यह है कि वह भारत से छीनी गई संपत्ति भारत को वापस लौटा दें ताकि भारत अपने संसाधनो का विकास कर सके।[4] दादा भाई नौरोजी ने 1870 और 1872 मे लदन की कलासमिति के समक्ष क्रमश: पढे गए दो लेखो—'दि वाट्स ऐंड मीन्स आफ इंडिया'[5] तथा 'आन दि कामर्स आफ इंडिया'[6]—मे भारत से भौतिक और नैतिक धन की निकासी संबधी अपने दृष्टिकोण को फिर से दोहराया। हा, इस सिद्धात के साथ कालातर मे जुडे क्रातिकारी आशय तथा मौलिक चितन का इन लेखों में अभाव ही था, इस समय धन निकासी के आर्थिक परिणामो की निदा करते समय दादा भाई नौरोजी निकासी के लिए भारत और इंग्लैंड के बीच राजनैतिक संबंध के महत्व के उत्तरदायी होने मे विश्वास रखते थे। उन्होंने अभिस्वीकार किया कि यदि इंग्लैंड ने भारत को अपने अधीन नया रूप ही देना है तो भारत को उसका मूल्य चुकाने के लिए प्रस्तुत हो ही जाना चाहिए।[7] उन्होंने इंग्लैंड को अवश्य यह परामर्श दिया कि वह भारत के साथ न्यायोचित ढंग से आर्थिक संबधों को स्थापित करने की चेष्टा करे,[8] तथा देश के उत्पादन को बढ़ाने की चेष्टा करे ताकि देश दरिद्रता के अभिशाप को भोगे बिना ही ब्रिटिश-शासन के मूल्य का भुगतान कर सके तथा देश से धन की निकासी का भार उठा सके।[9]

1871 में अपने द्वारा संगणित लगभग 120 करोड़ पौंड प्रतिवर्ष की देश से निकासी के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा—मैं इसे एक शिकायत के रूप में नहीं कह रहा हूं। आपको भारत में की गई सेवाओं का प्रतिदान तो मिलना ही चाहिए, परंतु प्रश्न तो यह है कि हमारे पास भुगतान के साधन तो होने चाहिए।[10] उन्होंने घोषणा

की कि वस्तुत: यह तो इंग्लैंड का ही कर्तव्य है कि वह हमें एक ऐसी सरकार दे, अपनी शक्ति और साख के सभी लाभ हमें दे ताकि हम बिना भूखे मरे अथवा अकाल का शिकार बने ब्रिटिश-शासन का मूल्य चुका सकें।[11] उन्होंने एक बार फिर देश के उत्पादन में वृद्धि के लिए बड़े परिमाण में विदेशी पूंजी के विनियोग की सिफारिश की। इस प्रकार उन्होंने 1870 में ब्रिटेन से अनुरोध किया कि वह विदेशी शासन के दरिद्रता-वर्धक प्रभावों को दूर करने के लिए बडे परिमाण में विदेशी पूंजी का आयात करे।[12] उन्होंने आशा की कि यदि समुचित परिमाण में विदेशी पूंजी का भारत देश मे आयात किया गया और उसका यथोचित रूप से विनियोग भी किया गया तो शीघ्र ही वर्तमान वित्तीय कठिनाइयां और असंतोष दूर हो जाएंगे।[13]

1871 में 'सिलैक्ट कमेटी आन ईस्ट इंडिया फाइनान्स' को दिए अपने प्रतिवेदन में दादा भाई नौरोजी ने एक बार फिर स्वीकार किया कि धन की निकासी विदेशी शासन का ही एक प्राकृतिक आर्थिक परिणाम था।[14] उन्होंने ब्रिटिश राजनेताओं से वर्ष-प्रतिवर्ष करोड़ों पौंड के भारत से इंग्लैंड को निकासी के भार को समुचित रूप से हल्का करने के तथा भारतीय लोगों की, धन की निकासी के न्यायोचित भाग के भुगतान की समुचित और आवश्यक परिमाण तक क्षमता बढ़ाने के उपायों को ढूंढने का अनुरोध किया।[15]

1873 तक जब दादा भाई नौरोजी ने 'भारत की दरिद्रता' पर अपने प्रसिद्ध लेख का प्रथम प्रारूप तैयार किया, तो उस समय तक धन की निकासी पर उनके विचार अपेक्षाकृत अधिक सुप्रसिद्ध रूप मे ज्ञात संघर्षशीलता का रूप ग्रहण करने लगे थे। 1876 तक निकासी-सिद्धांत ने उनके मन में सुस्पष्ट रूप ग्रहण कर लिया और उसे उन्होंने उसकी समग्रता में ईस्ट इंडिया ऐसोसिएशन की बम्बई शाखा के समक्ष पढ़े अपने लेख—'पावर्टी आफ इंडिया' के संशोधित प्रारूप में अभिव्यक्त किया। इस सिद्धांत के दादा भाई नौरोजी द्वारा प्रस्तुत आर्थिक और राजनैतिक पक्षों के विस्तृत विश्लेषण को तो हम अगले पृष्ठों में पेश करेंगे। यहां केवल इतना ही निर्देश करना चाहते है कि उन्होंने अपने लेख का निष्कर्ष इन जोरदार शब्दो मे निकाला :

> ब्रिटिश शासन की भारत के हितों की उपेक्षा करने की और भारतीयों को इंग्लैंड के हित मे दास वृत्ति से परिश्रम करने वाले बनाए रखने की अस्वाभाविक नीति के फलस्वरूप सारा शासन गलत, अस्वाभाविक आत्महत्या के गढ़े में धंसता हुआ चला जा रहा है। उन्होंने इस कथन के साथ ही चेतावनी दी कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नही किया जा सकता। जब तक प्रकृति के ये नियम अचल हैं, तब तक प्रत्येक उल्लंघन के लिए दंड का न्याय उसी प्रकार निश्चित रूप से जुड़ा हुआ है, जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात के आने का क्रम निश्चित रूप से जुड़ा हुआ है।[16]

इस समय से दादा भाई नौरोजी ने अपने निकासी-सिद्धांत के प्रचार के लिए तथा निकासी के विरुद्ध प्रचंड और प्रबल संघर्ष चलाने के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। उनके विचार में निकासी भारत में ब्रिटिश-शासन का प्रधान आधारभूत दोष था। अपने असंख्य भाषणों में ब्रिटिश समाचार-पत्रों को लिखे पत्रों में, पत्र-पत्रिकाओं में लिखे लेखों में, अधिकारियों के साथ किए गए पत्र-व्यवहार में, सरकारी आयोगों, समितियों और निजी

संवाददाताओ के समक्ष दिए गए साक्ष्यों मे—वास्तव मे सार्वजनिक सचार के सभी उपलब्ध साधनों द्वारा उन्होने इस अकेले निकासी के प्रश्न पर जनता तथा सरकार का ध्यान आकृष्ट करने तथा केंद्रित करने का प्रयत्न किया।[17] इस प्रकार के उदाहरण के रूप मे उन्होने 1880 मे लिखा—इस समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारत से इग्लैड को हो रहे रक्त-प्रवाह को किस प्रकार रोका जाए। इस सबंध मे किसी भी उपचार की उपयुक्तता और श्रेष्ठता का आधार इस दुखदायक प्रवाह को रोकने मे उसकी क्षमता की परीक्षा ही होगी।[18] 1886 मे भारत मे ब्रिटिश शासन के अपने समीक्षात्मक लेख का सार-सक्षेप प्रस्तुत करते हुए उन्होने टिप्पणी की कि सारे मामले का निष्कर्ष यह है कि वर्तमान रोग तथा भारतीय व्यय के अन्याय-सगत प्रशासन के अतगत ब्रिटिश शासन के लोकोपकार की चर्चा करना केवल काल्पनिक होगा वास्तविकता तो यह है कि ब्रिटिश-शासन खून चूसने वाला है।[19] इस प्रकार वे अपने इस निकासी-सिद्धात को कभी कभी अखड परतु प्राय साधारण भाषा म प्रस्तुत करते हुए इसकी स्वीकृति के लिए लगभग आधी शताब्दी तक निरतर प्रयत्न करते रहे। ज्यो ज्यो वर्ष बीतते गए त्यो-त्यो उनकी उत्तेजना और क्रोध बढता गया। भारत की जनता और भारत की सपदा के जीवनरक्त की इग्लैड को निकासी करने के लिए उनके अपने मन म उत्तरदायी ब्रिटिश नीति के लिए उन्होने अनुचित, निरकुश, डाकाजनी वाली, अस्वाभाविक, विध्वसक विशेषणो का प्रयोग किया।

दादा भाई नौरोजी के लगभग साथ-ही साथ दो अन्य भारतीय नेताओ ने भी निकासी की बुराई को समझा। जस्टिस रानाडे ने 1872 मे पूना मे भारतीय व्यापार और उद्योग पर एक भाषण दिया। इसमे उन्होने भारत म ब्रिटेन की भारत की पूजी और साधनो की निकासी की आलोचना की तथा यह टिप्पणी की कि भारत की कुल राष्ट्रीय आय का तिहाई स अधिक भाग किसी न किसी रूप म ब्रिटिश द्वारा छीन लिया जाता है।[20] बाद मे 1892 म 'भारतीय राजनैतिक अर्थशास्त्र' पर दिए गए अपने पथ-प्रदर्शक भाषण मे रानाडे ने टिप्पणी की कि उत्तराधिकार मे प्राप्त और परपरागत जिन दुर्बलताओ ने आर्थिक विकास पर घातक प्रभाव डाला है, उन सब को विदेशी शक्ति द्वारा की जा रही भारत की सपत्ति और प्रतिभा की निकासी के साथ ही सबद्ध करना चाहिए।[21] भोलानाथ चद्र दूसरे भारतीय लेखक थे, जिन्होने 1873 म प्रतिवर्ष और अधिक चौडी होती जा रही निकासी की खाई का विस्तृत विवेचन किया। उनके विचार मे निकासी का प्रारभ उस समय हुआ—जब ईस्ट इडिया कपनी ने भारत के राजस्व के कुछ भाग को अपने व्यापारिक निवेष के लिए एक तरफ अलग रख दिया था परतु अब तो स्थिति पूर्वापेक्षा बदतर ही हो गई है। उस समय धन एक स्रोत मे बहकर जाता था परन्तु अब हजारो द्वारो मे बहकर जाता है।[22]

निकासी-सिद्धात पर बल देने वाले तथा अपने लेखो और सार्वजनिक गतिविधियो के माध्यम से उसका प्रचार करने वाले दूसरे प्रमुख और महत्वपूर्ण भारतीय नेता आर० सी० दत्त थे। यद्यपि वे इस खेमे मे देर से दीक्षित हुए तथापि उन्होने लोकोक्ति के रूप मे प्रचलित नवीन धर्मानुयायी का-सा उत्साह दिखाकर विलब की क्षति पूर्ति कर दी। 27 फरवरी 1901 को इग्लैड मे नेशनल लिबरल फेडरेशन के सम्मेलन मे दिए गए अपने

भाषण में उन्होंने घोषणा की कि भारत से हो रही निकासी का उदाहरण आज तक विश्व के किसी भी अन्य देश में ढूढ़ने से भी नही मिलता। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि यदि इंग्लैंड को प्रतिवर्ष स्वयं अपने राजस्व का आधा भाग खर्च करने के लिए जर्मनी, फ्रांस अथवा रूस को भेजना पड़ता तो इंग्लैंड में वर्षों पूर्व अकाल पड़ गया होता।[23]

अपने ग्रंथ—'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' के प्रथम खंड की भूमिका में उन्होंने निर्णयात्मक स्वर मे लिखा—शुद्ध राजस्वो का आधा भाग प्रतिवर्ष भारत से बाहर निष्कासित कर दिया जाता है। उन्होने शोक विह्वल होकर कहा—सचमुच ही भारत का उपजाऊपन, दूसरे देशो को ही संपन्न और भाग्यशाली बना रहा है।[24] पुस्तक के परवर्ती भाग मे उन्होने निकासी के माथे निम्नलिखित पाप को मढते हुए लिखा—'देश के साधनों की सीमा से बढकर इतनी बडी आर्थिक निकासी विश्व के किसी समृद्धतम देश को दरिद्र बना सकती है। इसने भारत को विश्व के इतिहास मे अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व रूप मे निरंतर और व्यापक रूप से पडने वाले घातक अकालो का देश बना दिया है।[25] इसी प्रकार ग्रंथ के दूसरे खड की भूमिका मे उन्होने इंग्लैंड की आलोचना करते हुए लिखा कि इग्लंड जैसा विश्व का समृद्धतम देश विश्व के दरिद्रतम देश-भारत से वार्षिक योगदान को वसूलने की नीचता पर उतर आया है। उन्होने जोर देकर दृढ स्वर मे कहा कि इस योगदान के लिए भारतीयो को निरंतर अबाध रूप से अपने जीवन-रक्त का निर्यात करना पड़ता है।[26]

जी० वी० जोशी, पी० सी० राय, मदन मोहन मालवीय, डी० ई० वाचा, जी० के० गोखले, सी०सुब्रह्मण्य ऐयर और और सुरेंद्रनाथ बैनर्जी सहित अन्य बहुत सारे भारतीय नेता भी निकासी के प्रश्न मे सबधित आदोलन मे सम्मिलित हो गए।[27]

राष्ट्रवादी समाचार पत्रो मे अमृत बाजार पत्रिका निकासी-सिद्धात का प्रबलतम समर्थक था। 24 जुलाई 1870 मे ही इस पत्रिका ने निकासी को भारत की दरिद्रता का कारण घोषित किया और कालातर मे वर्षो तक अपने इस सुदृढ मत को दोहराया। उदाहरणार्थ 14 अगस्त 1881 के अक मे इस पत्रिका ने शिकायत की कि भारत अनेक विभिन्न ढगो मे तथा अनेक दलो द्वारा इस प्रकार चूसा जा रहा है कि वे स्वयं अपने आप भी एक दूसरे की गतिविधियो और कार्यवाहिया मे परिचित नही। वे यह भी नही जानते कि इस शल्य क्रिया के परिणामस्वरूप उनका रोगी किस अत्यंत विषम तथा शोचनीय दशा में पहुंच गया है। 2 मार्च 1896 के अंक मे इस पत्रिका ने अपने कथन को इस प्रकार दोहराया—इस लगातार निकासी के फलस्वरूप भारत दरिद्रता का शिकार हो गया है और इंग्लैंड संपन्न देश बन गया है। यह व्यवस्था भारत को संपत्ति की स्थिति में और भारतीयों को पशुओं की स्थिति मे लाकर उनका अवमूल्यन करती है।[28] अधिकांश अन्य प्रमुख भारतीय पत्रों ने भी नियमित रूप से इस संबंध में अपने विचार प्रकट किए तथा भारत से संपत्ति की निकासी की निंदा की।[29]

कितने ही वर्षों तक सोच विचार करने के उपरांत अथवा कदाचित संकोच के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1896 मे कलकत्ता मे हुए अपने अधिवेशन में औपचारिक रूप से निकासी-सिद्धांत को स्वीकार करते हुए यह मत व्यक्त किया कि वर्षों से निरंतर

देश से संपत्ति की हो रही निकासी देश में अकालों के लिए और देशवासियों की निर्धनता के लिए उत्तदायी है।[30] परवर्ती वर्षों मे कांग्रेस ने इस आरोप को अनेक बार फिर दृढता-पूर्वक दुहराया।[31]

भारतीय नेताओं ने निकासी को अतीत मे भारत के शासकों और ब्रिटिश शासकों के बीच अतर का आधार मना। अतीत के शासको ने देश से थोडी सी संपत्ति की निकासी की। मुगल और मराठा शासकों ने अपनी प्रजा को भले ही लूटा हो, परतु देश की सपत्ति देश के भीतर ही बनी रही और देश के भीतर ही खर्च की गई। इसमे निजी तौर पर कुछ नागरिको को कष्ट अवश्य पहुचा होगा, उन लोगो के दबाव अवश्य अनुभव किया होगा और वे अपनी सपत्ति से वचित भी अवश्य हुए होंगे परन्तु कुल मिलाकर देश को कोई हानि नही हुई। देश के एक व्यक्ति को पहुंची हानि दूसरे के लिए लाभ बन गई। दूसरी ओर ब्रिटिश देश की पूजी को देश से ही बाहर ले गया और उसे देश के बाहर ही उसने खर्च किया।[32] इसी प्रकार पुराने शासको के अंतर्गत कराधान का भार कितना भी भारी क्यो न रहा हो परंतु उसके आर्थिक समघात देश की जानता के लिए इतने अधिक हानिप्रद नही थे, जितने कि ब्रिटिश-शासन के अंतर्गत अपेक्षाकृत नीचे कराधान के आर्थिक समघात हानिकारक है। इसका कारण ब्रिटिश राज्य मे राजस्व के बडे भाग की निकासी है।[33] यहा तक कि जब नादिरशाह जैसे विदेशी आक्रमणकारियों ने इस देश पर आक्रमण किया, इस देश को लूटा और उसके तत्काल उपरात वापस चले गए। तब भी देश को होने वाली आर्थिक हानि अस्थाई थी। ऐसे झटके निरंतर बार बार नही लगते थे। ये झटके अनियमित थे परतु ब्रिटिश शासन के मामले में निकासी सरकार की चालू व्यवस्था का ही एक अग थी। अत वह अबाध और निरंतर चलने वाली थी प्रतिवर्ष प्रतिवर्ष बढने वाली भी थी। इस प्रकार से घाव सदा ही हरे बने रहते थे और निकासी एक रिसते नासूर की तरह थी।[34]

निकासी की संगणना

जैसाकि हम पहले निर्देश कर चुके हैं राष्ट्रवादियों के अनुसार निकासी की मूल रूपरेखा थी भारत से इंग्लैंड को भारत की संपदा और उपभोग सामग्री का वह निर्यात, जिसके समनु-रूप भारत को किसी प्रकार के आर्थिक, व्यापारिक अथवा भौतिक, प्रतिदान नही मिलते थे। इस प्रकार भारतीयों की परिभाषा के अंतर्गत निकासी अनिवार्य रूप से ही आयातो की अपेक्षा निर्यातो की अधिकता थी अथवा निर्यातो का एकतरफा होना थी।[35] वस्तुत: इस अधिकता से एक साथ ही निकासी का अस्तित्व, सपत्ति के प्रेषण का रूप तथा उसके परिमाण अथवा मात्रा के साधन आदि सिद्ध होते थे। निकासी को परिभाषित करने के पीछे भारतीय नेताओं की यह भावना थी कि इससे उनके लिए निकासी की आर्थिक रूप से दुर्जेय तथा विचित्र रूप से सरल संगणना करने की व्यवस्था सुलभ हो जाती है, क्योंकि निर्यातों और आयातो के अतर को दृष्टिगोचर करते ही निकासी की राशि सहज उप-लब्ध हो जाती थी।[36] दादा भाई नौरोजी अवश्य एक पग और आगे बढ गए और उन्होंने आयातों पर निर्यातों की अधिकता के अतिरिकत अपने विचारानुसार निर्यातों पर लाभ

के रूप में भारत को दी जाने वाली परंतु न दी गई एक अन्य विपुल राशि को लिया और इसमे निकासी का अपेक्षाकृत अधिक सही अनुमान लगाया।[37] उनके इस दृष्टिकोण के दो आधार थे। प्रथम, उनका अनुमान था कि ब्रिटेन और कई दूसरे देशों में निर्यातों पर आयातों की अधिकता इस तथ्य को सिद्ध करती है कि पूजी के सौदों तथा भारत से धन की निकासी पर होने वाले व्ययों को पृथक कर देने पर भी निर्यातों से लाभ होता था।[38] यह तर्क वस्तुतः सर्वथा कोरी कल्पना ही था। इसका अर्थ यह हुआ कि आयातों और निर्यातों के मूल्यों के अंतर द्वारा निर्दिष्ट राशि की अपेक्षा वास्तव में ही निकासी की राशि अपने परिमाण में बहुत अधिक है। इस तर्क की प्रामाणिकता स्पष्ट रूप से दादा भाई की इस धारणा पर आधृत है कि भारतीय निर्यातों का निर्यात-पत्तन पर घोषित मूल्य लागत मूल्य रहता था न कि बिक्रेता के लाभ के साथ बिक्री का मूल्य रहता था तथा भारतीय आयातो में ब्रिटिश निर्यातकार के लाभ पहले ही सम्मिलिन रहते थे।[39] अस्तु, निकासी की राशि के इस विकृत अनुमान का किसी भी मामले मे बहुत सारे अन्य नेताओं ने कोई उल्लेख नही किया। निकासी के विषय से संबंधित बहुतों ने तो व्यापार के निर्यात—सतुलन की सीधी सादी संगणनाओं तक ही अपने को सीमित रखा। यहा तक कि स्वयं दादा भाई नौरोजी भी भारत के वित्तीय न्याय के मामले को पेश करते हुए कभी कभी निर्यातों पर होने वाले लाभों की गणना को छोड़ने के लिए सहमत हो जाते थे।[40]

बहुत सारे भारतीय नेताओं ने निकासी की सही राशि की संगणना की चेष्टा की। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा संगणना की विभिन्न विधिया अपनाए जाने के कारण प्रति व्यक्ति तथा प्रतिवर्ष आयातों और निर्यातों की खाई निरंतर चौड़ी होती जाने से प्रतिवर्ष निकासी संबंधी आंकडे भिन्न भिन्न रूप में ही सामने आने लगे। उदीयमान राष्ट्रीय नेता वर्ग ने इन आकडों को अपने हाथ मे लिया तथा जन-संपर्क के प्रत्येक उपलब्ध माध्यम के द्वारा देश के कोने कोने मे इनका प्रचार-प्रसार करते हुए इन्हें लोकप्रिय बनाया। जब जनता के सामने देश की संपत्ति की निकासी के सुस्पष्ट आंकडे आए तो स्पष्टतः जनता के मन मे इस प्रश्न पर राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकता ने प्रबलता तथा विश्वसनीयता का रूप ले लिया। अतः इस सबंध में कुछ-एक प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा जो अर्थ-शास्त्री भी थे की गई संगणनाओं का अध्ययन रोचक ही होगा।[41]

दादा भाई की निकासी संबंधी सगणनाएं अत्यधिक जटिल थी। इसका कारण यह था कि सभी प्रकार की संभव आपत्तियों का सामना करने के लिए तथा आलोचकों को संतुष्ट करने के लिए वे अपनी संगणना के आधारों को ही निरंतर बदलते रहे। 1867 मे उनके द्वारा निकासी की सगणित राशि 80 लाख पौंड थी।[42] 1870 में उनके आकडे बढ़ कर 1 करोड़ बीस लाख पौंड हो गए।[43] 1876 में प्रकाशित 'पावर्टी आफ इंडिया' में उन्होंने घोषणा की कि रेल पथो के ब्याज को निकाल कर 1835 से लेकर निकासी की औसतन वार्षिक राशि इस प्रकार से थी[44]:

वर्ष	वार्षिक औसत (पौंड में)
1835-1839	5,347,000
1840-1844	5,930,000
1845-1849	7,760,000
1850-1854	7,458,000
1855-1859	7,730,000
1860-1864	17,300,000
1865-1869	24,600,000
1870-1872	27,400,000

1893 मे उन्होने गिनती की कि निकासी की राशि 25 करोड रुपये प्रति वर्ष से अधिक बैठती है।[45] 1897 मे उनके आकडे 1883-92 की अवधि मे लगभग 359 करोड रुपये थे, परंतु सरकारी ऋण पर वसूल किए जाने वाली रकम को निकासी न मानने के समर्थको को सतुष्ट करने के लिए उन्होने प्रभारो की राशि को निकासी की सीमा से अलग कर दिया और फिर भी देखा कि इन दस वर्षों मे निकासी की राशि लगभग 288 करोड थी, जिसमे अनुमानतः 118 करोड रुपये की राशि विदेश व्यापार के लाभो से अर्जित आय थी। दादा भाई द्वारा सगणित अल्पतम राशि थी 241 करोड रुपयो अथवा 24 करोड रुपयों की वार्षिक निकासी।[46] अतत 1905 मे उन्होने घोषणा की कि लगभग 3 करोड 40 लाख पौंड का अथवा 51 5 करोड रुपयो के मूल्य के सामान की प्रति वर्ष देश से निकासी हो रही है।[47]

जी० वी० जोशी के अनुसार 1834-1888 तक लगभग 66 करोड पौड की देश से निकासी हो चुकी थी। उन्होने यह भी निर्देश किया कि यह निकासी प्रति वर्ष बढ रही है और 1888 तक कुल 25 करोड रुपये प्रतिवर्ष तक पहुच गई है।[48] 1901 मे भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के सभापति पद से भाषण करते हुए डी० ई० वाचा ने निकासी की राशि 30 से 40 करोड रुपये प्रतिवर्ष बताई।[49] काग्रेस के अगले ही अधिवेशन मे एस० एन० बैनर्जी ने 19वी शताब्दी के पिछले तीस वर्षों मे निकासी की औसत राशि 3 करोड पौड संगणित की।[50] आर० सी० दत्त का अनुमान कम था। उनके अनुसार बीसवी शताब्दी के प्रारभिक वर्षों मे निकासी की राशि लगभग 2 करोड पौड प्रतिवर्ष थी।[51] पृथ्वीचद्र राय द्वारा 1901 मे सगणित निकासी की अत्यधिक राशि 6 से 7 करोड पौड प्रतिवर्ष थी।[52]

अपनी मान्यता के अनुसार लोगों को यह समझाने के लिए कि निकासी की राशि सचमुच ही परिणाम मे विपुल है, बहुत सारे भारतीय नेताओ ने सरकारी राजस्व के अनुपात के संगणन की पद्धति को अपनाया। इस प्रकार उदाहरण के रूप मे आर० सी० दत्त ने बार बार इस ओर निर्देश किया कि भारत के कुल राजस्व का लगभग आधा भाग विदेशों को निष्कासित हो जाता है।[53] असल मे, जैसा कि हम इस ग्रंथ के एक अध्याय मे पहले ही दिखा चुके है कि भारत सरकार की वित्त नीति की राष्ट्रवादियों द्वारा की गई

महत्वपूर्ण आलोचना यही थी कि देश में वसूल किए गए राजस्व के एक विपुल भाग का देश के बाहर व्यय किया जा रहा है।[54]

निकासी का उद्भव

भारतीय नेताओं के अनुसार व्यापार सतुलन मे अधिशेष निकासी का रूप लेता था। परंतु कौन से तत्व निकासी को जन्म देने के आधारभूत कारण थे ? यहां यह उल्लेखनीय है कि 1858 के उपरांत ही निकासी के विश्लेषण के समय यह प्रश्न प्रमुख रूप से उपस्थित हुआ। यद्यपि कंपनी के शासन काल में विशेषतया 1833 से पहले की अवधि में हुई संपत्ति की निकासी की राशि की तो प्राय: संगणना की गई और उसकी निंदा भी की गई तथापि इन नेताओं ने इन वर्षों की मध्यावधि में हुई निकासी के विश्लेषण की आवश्यकता को अनुभव नहीं किया।[55] इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी दो कारण थे :—प्रथम, भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी का निवेश, इसके भागीदारों को लाभों का भुगतान, इसके सरकारी ऋण तथा खुली लूट की प्रक्रिया के माध्यम से इसके अधिकारियों द्वारा निजी संपत्ति का संचय आदि भारत से शुल्क वसूलने अथवा संपत्ति लौटाने के अत्यंत स्पष्ट और महत्वपूर्ण तत्व थे। इन शुल्कों के परिमाण और इनकी आर्थिक महत्ता पर भले ही मतभेद हो, परंतु इनकी सत्ता निर्विवाद थी। द्वितीय, भारतीय नेता अगणित उच्च सरकारी और गैरसरकारी अंगरेजों के अधिकृत वक्तव्यो को उद्धृत करने और उनकी विस्तृत परीक्षा करने के चक्कर में बिना पड़े ही निकासी के तथ्य को सिद्ध कर सकते थे।[56] वस्तुत: निकासी और उसके दुष्परिणामों के संबंध मे भारत से सहानुभूति रखने वाले अगरेजों की सख्या इतनी बड़ी थी कि आर० सी० दत्त महोदय को आश्चर्यचकित होकर यह कहना पडा—'कोई एक निंदक यह टिप्पणी कर सकता है कि भारत की ओर से तो इंग्लेंड को संपत्ति प्रवाहित होती है और वहां के लोग भारतीयों को कोरी सहानुभूति और खेदों के रूप में बदला चुकाते हैं।[57] इसके अतिरिक्त भारतीयो को भूतकाल की इतनी अधिक चिता नही थी, जितनी कि भविष्य की। भविष्य के सुरक्षित हो जाने पर तो वे भूत को भूलने तक के लिए सहमत थे।[58]

1858 के पश्चात् अथवा यहां तक कि 1833 के पश्चात् निकासी का प्रश्न जटिल और विवादास्पद बन गया था क्योंकि न तो भारत द्वारा उस समय इंग्लेंड को किसी प्रकार का शुल्क दिया जा रहा था और न ही भारत के अधिशेष राजस्व को इंग्लेंड के कोश मे डाला जा रहा था। अत: निकासी के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं के लिए यह दिखाना आवश्यक हो गया कि किस प्रकार भारत ब्रिटेन के पृथक् पृथक् नागरिकों के भुगतानों के रूप में तथा वह भी विभिन्न मार्गों से ब्रिटेन को 'परोक्ष' शुल्क चुका रहा था।[59] उन्हें यह भी सिद्ध करना पड़ा कि इस परोक्ष निकासी का कारण पूर्णतया भारत पर ब्रिटेन का राजनैतिक तथा आर्थिक प्रभुत्व था।

भारतीय नेताओं के अनुसार निकासी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व असैनिक सेवा में, सेना में तथा रेलवे में नियुक्त अंग्रेज कर्मचारियों, अंग्रेज वकीलों तथा अंग्रेज डाक्टरों आदि द्वारा अपनी बचतों, आय और वेतन के एक बहुत बड़े भाग का इंग्लेंड में भेजना

था तथा भारत सरकार द्वारा अंग्रेज सरकारी कर्मचारियों की पेंशनों तथा अवकाश-कालीन भत्तों का इंग्लैंड में ही भुगतान करना था। दूसरे शब्दों में आंशिक रूप से भारतीय प्रशासन में, सेना में तथा रेलवे में यूरोपियो की असामान्य नियुक्ति का ही परिणाम निकासी था।[60] इस संदर्भ में यहां यह उल्लेखनीय है कि कभी कभी तो दादा भाई नौरोजी ने निकासी के उद्‌गम के संबंध में बड़ा ही संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने विशेषतया विवादों में संलग्न होने पर निकासी के सारे ही रोग का दायित्व भारतीय प्रशासन में अंग्रेजों की अत्यधिक नियुक्ति पर डाला।[61] कभी कभी तो उनकी यह सकीर्ण मनोवृत्ति मूर्खता की सीमा पर पहुंच जाती थी। उदाहरण के रूप में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए उन्होंने अपना मत प्रकट किया कि भारत की जनता की इस विषम दरिद्रता और चरम दीनता का एकमात्र कारण देश की सरकार में विदेशी कर्मचारियों की असामान्य नियुक्ति है। इसी के फलस्वरूप देश को भौतिक हानि हो रही है और देश की संपत्ति की निकासी हो रही है। उन्होंने उस समय चेतावनी देते हुए कहा—देश के लिए यह जीवन और मृत्यु का प्रश्न है।···आप केवल इसी एक बुराई को हटा दीजिए, भारत प्रत्येक रूप में सौभाग्यशाली बन जाएगा।[62] ··· दादा भाई नौरोजी द्वारा इस संकुचित दृष्टिकोण को अपनाने का परिणाम यह निकला कि उनके निंदकों को निकासी-सिद्धात के खोखलेपन को सिद्ध करने के लिए केवल उनके वक्तव्य को ही विवेकशून्य प्रमाणित करने की आवश्यकता रह गई। कदाचित् इससे भी अधिक दुर्भाग्यजनक बात यह है कि दादा भाई के इस हास्यप्रद विश्लेषण ने बहुत सारे विचारकों को निकामी पर स्वयं उनके तथा अन्य राष्ट्रवादियों के विचारों की वास्तविक गहराई व जटिलता को समझने में पथभ्रष्ट ही किया। दादा भाई नौरोजी के निकासी पर तर्क के इस अंधकारपूर्ण पक्ष की व्याख्या किसी सीमा तक निम्नलिखित तीन पहलुओं से की जा सकती है :(1) दादा भाई नोरौजी स्वभाव से उग्रवादी थे। (2) 1870 तक सरकारी विदेशी पूजी विपुल परिमाण में नहीं थी और उससे काफी समय बाद तक निजी विदेशी पूजी की मात्रा भी उल्लेखनीय नहीं थी। उस समय भारतीयों के विश्लेषण के अनुसार यूरोपीयों की नियुक्ति निश्चित रूप से ही निकासी का सर्वाधिक विस्तृत स्रोत थी। (3) 1860 की अवधि तक दादा भाई नौरोजी विदेशी पूंजी के विरुद्ध नहीं थे[63] और यहां तक कि उन्होंने तथा अन्य भारतीय नेताओं ने इसके बाद भी कई वर्षों तक विदेशी पूंजी के प्रयोग का अत्यंत सुदृढता तथा प्रबलता के साथ विरोध नहीं किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि बाद में जब विदेशी पूंजी भारत से संपत्ति की इंग्लैंड को निकासी का महत्वपूर्ण स्रोत बन गई तो दादा भाई नौरोजी ने निकासी के इस स्रोत के विरुद्ध ऊंचे स्वर में उसकी निंदा करना प्रारंभ कर दिया।[64]

भारतीय नेताओं के अनुसार भारत से धन की निकासी का एक अन्य प्रधान और आधारभूत स्रोत भारत सरकार के गृह प्रभार अथवा भारत सरकार की ओर से भारत सचिव द्वारा इंग्लैंड में किया गया खर्च था। गृह प्रभारों के अंतर्गत भारत के सरकारी ऋणों और प्रतिभूत रेल पथों के ब्याज का भुगतान भारत को संभरित सैन्य तथा अन्यान्य भंडारों का मूल्य, भारत सचिवालय में भारत सचिव के कर्मचारियों पर होने

वाले खर्चों तथा भारत सरकार के यूरोपीग कर्मचारियों को पेंशनों और भत्तों को मिलाकर भारत के खाते मे इंग्लैंड मे भुगतान किए गए सैनिक व असैनिक व्यय आदि सम्मिलित थे।[65] गृह प्रभारों के इनमे से प्रत्येक अंग का कभी कभी भारतीय नेताओं ने पृथक्-पृथक् विवेचन किया तथा निकासी के स्रोत के रूप मे इसकी निंदा की।[66]

भारतीय नेताओ के अनुसार निकासी का तीसरा प्रमुख स्रोत भारत मे व्यापार और उद्योग मे निवेशित निजी विदेशी पूजी पर होने वाले लाभ थे।[67]

निकासी के आर्थिक प्रभाव

जैसाकि हम पूर्व निर्देश कर चुके है तथा जैसाकि आधुनिक इतिहास के छात्रो को सम्यक रूप मे ज्ञात है, निकासी के साथ जुडा उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण दुष्परिणाम देश की घोर दरिद्रता थी। हा, प्रमुख भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ के इस सबध मे दृष्टिकोण थोडा-बहुत भिन्न रूप अवश्य लिए हुए थे। उदाहरणार्थ, दादा भाई नौरोजी ने निकासी को देश के सभी रोगो, दुखो और दरिद्रता का वास्तविक, प्रधान और यहा तक कि एक मात्र मूल कारण घोषित किया, तथा अन्यान्य कारणो को केवल भ्रामक बताया।[68] उन्होने 1880 में बडी प्रबलता के साथ तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा :—

> यह आर्थिक नियमों की क्रूर प्रक्रिया नही है प्रत्युत यह तो ब्रिटिश नीति की विवेक-शून्य और क्रूर कार्यवाही है। यह भारत की धन-सपत्ति को ही भारत मे हडपने का क्रूर कृत्य है और इससे भी बढकर देश से इंग्लेंड को सपत्ति की क्रूर निकासी है। संक्षेपत: यह भारत का रक्त चूसने के रूप मे दुखद ढंग से आर्थिक नियमो को विकृत करना और इसके फलस्वरूप भारत को विनष्ट करने का निर्मम प्रयास है।[69]

इस संबंध मे दादा भाई के दृष्टिकोण को अपनाने वाले केवल थोडे से ही और राष्ट्रवादी नेता थे। इन थोडे मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति थे —अमृत बाजार पत्रिका के सपादक-गण।[70] इन नेताओ में अधिकाश ने तो इस धारणा से कि भारतीय जनता को दरिद्र बनाने में निकासी की महत्वपूर्ण ही नही कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है, सहमति के रूप मे अपने विचार प्रकट करके ही संतोष कर लिया।[71] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी निकासी को केवल भारत की दरिद्रता के कारणों मे से एक बताया।[72] यहा इस तथ्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा कि बहुत सारे भारतीय नेताओ ने निकासी के सापेक्षिक महत्व के प्रश्न पर तथा दरिद्रता के लिए उत्तरदायी अन्यान्य विविध पक्षों पर विचार ही नही किया। जब उन्होने निकासी पर विचार-विमर्श किया तो उन्होने इसकी प्रबलता से निंदा की और जब उन्होंने अपने विश्वासानुसार भारत की दरिद्रता क लिए उत्तरदायी किसी दूसरे पक्ष पर विचार-विमर्श किया तो उन्होंने पहले जैसी ही प्रबलता से उसकी निंदा की।

लोगों को कदाचित यह सम्यक रूप से ज्ञात नही है कि राष्ट्रवादी नेताओं की निकासी को देश को दरिद्र बनाने वाली मानने की अथवा उसे देश के लिए आर्थिक दृष्टि से विध्वंसक तथा दुर्भाग्यजनक कारण मानने की धारणा के पीछे कौन-सा आर्थिक तर्क काम कर रहा था। इस दृष्टि से इस संबंध में ध्यान देने योग्य तत्व यह है कि भारतीय

नेताओं ने निकासी को केवल सपत्ति की हानि के रूप मे ही नही लिया प्रत्युत उसे पूजी की हानि भी माना। उनके द्वारा प्रतिपादित निकासी-सिद्धात केवल धन के अथवा सामग्री के निर्यात के संकुचित विचार क्षेत्र तक सीमित नही था प्रत्युत वह व्यापक आर्थिक कारणो तथा विचारों पर ही आधारित था।

सपत्ति की प्रत्यक्ष हानि की अथवा राष्ट्रीय उत्पाद के एक भाग के स्थूल रूप से स्थानान्तरण होने की अथवा लोगो की आजीविका के साधनों में वास्तविक कमी होने की धारणा तो निकासी की परिभाषा मे निहित थी। राष्ट्रवादी नेताओ में बहुत सारे अर्थ-शास्त्रियो ने व्यापक रूप मे निकासी के रूप और अर्थ को जिस प्रकार समझा तथा स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप मे जिस प्रकार उसका प्रचार-प्रसार किया, वह यह था कि इस निकासी का देश की अर्थव्यवस्था पर भले ही अन्य कोई दुष्प्रभाव न पड़ता हो फिर भी इससे राष्ट्रीय उत्पादन मे होने वाली कटौती ही अपने आप मे इतना विशाल दोष है कि इसे एक भारी रोग कहा जा सकता है।[73]

कुछ एक भारतीय नेता इस तथ्य को भी समझने मे सफल हो गए कि विदेशो में राष्ट्रीय संपत्ति के स्थानातरण मे देश की आय पर और देश के भीतर रोजगार पर उसका घातक प्रभाव ही पडता है। उन्होंने इस तथ्य की ओर निर्देश किया कि निकासी का अर्थ राष्ट्रीय आय के कुछ निश्चित भाग का देश के बाहर विदेशों मे खर्च करना मात्र ही नही प्रत्युत देश के भीतर ही उसके खर्च किए जाने पर उसमे आय और रोजगार मे होने वाली अतिरिक्त वृद्धि मे कमी है। इस प्रकार 1903 मे आर० सी० दत्त ने टिप्पणी की कि :

> जब देश मे उगाहे करो को देश मे ही खर्च किया जाता है तो धन देश की जनता मे परिचालित होता है, व्यापारों, उद्योगों और कृषि को परिपुष्ट करता है तथा किसी एक न एक रूप मे सर्वसाधारण के पास पहुच जाता है परंतु जब देश मे वसूल किए गए करो को देश के बाहर प्रेषित कर दिया जाता है तो देश का वह धन देश के लिए सदा के लिए ही नष्ट हो जाता है। वह न तो देश के व्यापारो अथवा उद्योगो को सपन्न बनाता है और न ही किसी रूप मे देश के जनसाधारण के हाथ मे पहुंचता है।[74]

आर० सी० दत्त सहित कुछ एक भारतीय नेताओं ने जार्ज विगेट की निम्नलिखित सुप्रसिद्ध टिप्पणियो को उद्धृत करते हुए देश के करो के देश के बाहर विदेशो मे खर्च किए जाने पर उसके देश की आर्थिकता पर पडने वाले दुष्प्रभावों से संबंधित तथ्य को सिद्ध किया :

> किसी देश से वसूल किए गए करों को उसी देश में खर्च करने तथा एक देश से वसूल किए गए करों को दूसरे देश मे खर्च करने मे प्रभाव की दृष्टि से एक महान अंतर है। प्रथम स्थिति मे जनता मे वसूल किए गए करों का विशाल भाग सरकारी सेवा में लगे लोगों को ही वापस मिल जाता है। उन लोगों द्वारा पाया गया धन खर्च किए जाने पर फिर श्रमिक वर्गों के पास पहुंच जाता है। परंतु वह स्थिति सर्वथा और पूर्णतया भिन्न होती है जबकि किसी देश से उगाहे करों को उस देश में नहीं

> खर्चा जाता। इस स्थिति मे···उस देश को भारी और वास्तविक हानि होती है और करारोपित देश से निकाला गया धन पूर्णतया नष्ट हो जाता है। जहा तक राष्ट्रीय उत्पाद पर इसके प्रभावो का सबध है, सारे का सारा धन समुद्र मे फेका गया ही समझना चाहिए।[75]

इस तथ्य के आधार पर भी भारतीय नेताओ ने भारत के पुराने स्वेच्छाचारी शासको और ब्रिटिश शासको के बीच अतर को स्पष्ट किया। इस प्रकार 1902 मे सुरेद्रनाथ बैनर्जी ने टिप्पणी करते हुए लिखा . पुराने विजेताओ ने विजित देश को शीघ्र ही अपना देश बना लिया था तथा देश की जनता स छीनी गई सपत्ति शोघ्र देश के लोगो के पास लौट आई थी। इस प्रकार उन्होंने गृह उद्योग के स्रोतो को प्रोत्साहित किया तथा देश की जनता की भौतिक सपन्नता मे योगदान दिया।[76] अपने 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' ग्रथ के प्रथम खड की भूमिका मे आर० सी० दत्त ने भी इस विषय पर अत्यत स्पष्ट शब्दो मे प्रकाश डाला। एक भारतीय कवि के शब्दो मे जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के जल को सुखाकर भाप के रूप मे ग्रहण करता है और फिर उसी जल को धरती को हरा-भरा करने के लिए वर्षा के रूप मे उसे वापस लौटा देता है उसी प्रकार देश शासक को देश के करो को उगाहकर देश की सपन्नता के लिए खर्च करने के रूप मे उन करो को देश-वासियो को लौटा देना चाहिए। परतु भारत के उगाहे गए कर भारत का सपन्न न बना कर किसी अन्य देश की ही सपन्नता मे वृद्धि करते है—इसका विरोध करते हुए उन्होने निश्चित स्वर मे कहा कि ऐसा तो अफगान और मुगल शासको के निकृष्टतम शासन काल मे भी नही हुआ। दूसरी ओर उन्होने दावा किया कि उन्होंने जो चकाचौध उत्पन्न करने वाले महल और स्मारक बनवाए तथा साथ ही साथ जिन विलासी कार्यों मे वे प्रवृत्त हुए, उन्होने भारत के उत्पादको और कारीगरो को प्रोत्साहन और सपोषण दिया। उन्होने इस प्रकार अपना निश्चित मत अभिव्यक्त करते हुए कहा —बुद्धिमान शासको के तथा मूर्ख शासको के अधीन शासन काल मे एक बात समान रही है कि करो स वसूल किया गया धन जनता के पास ही लौट आया है और उसने देश के व्यापार और उद्योगो को सपुष्ट बनाया है।[77]

यहा यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रवादियो की इस माग—वसूल किए गए कर जनता को ही वापस लौटा देने चाहिए, ताकि उनकी जेबें भारी हो सकें।[78] अथवा उनके व्यापार और उद्योग समृद्ध बन सकें—के पीछे करो को देश ही के भीतर खर्च करने से देश की गौण आय पर उसके पडने वाले प्रभाव के सबध मे राष्ट्रवादियो की जानकारी का परिचय प्राप्त होता है।[79]

दादा भाई नौरोजी ने निकासी की परिभाषा को और अधिक विस्तृत रूप दिया तथा विदेशियों द्वारा अपने वेतनो और आयो के भारत में खर्च किए जाने वाले भाग के विरुद्ध भी शिकायत की। इस शिकायत के सबध मे उनका दावा था कि विदेशियों द्वारा किया गया उपभोग भी आशिक रूप से भारतीय सामग्रियो और सेवाओ की हानि ही थी क्योंकि अन्यथा ये वस्तुएं उपभोग के लिए भारतीयों को ही सुलभ होती।[80]

भारतीय नेताओं मे अर्थशास्त्रियो ने अवश्य निकासी से होने वाली संपत्ति की हानि

की अपेक्षा पूजी की हानि को अधिक भयकर माना, क्योकि उन्होंने यह भली प्रकार और स्पष्ट रूप से समझ लिया था कि सक्षेपतया निकासी इस रूप मे हानिप्रद थी क्योकि यह देश को उत्पादक पूजी से वचित करती थी। दादा भाई नौरोजी निकासी सबधी अपनी समीक्षा के विश्लेषण मे प्रारभ से ही इस पक्ष को सर्वोच्च स्थान देने वाले महानुभाव थे। उन्होने निकासी पर अपनी लगभग सभी अधिकृत घोषणाओ मे पूजी की हानि वाले तत्व को बडी ही सुस्पष्ट अभिव्यक्ति दी जो इनके निकासी-सिद्धात का सार थी। उल्लेखनीय यह है कि दादा भाई के निकासी-सिद्धात के इस पक्ष को आगे चलकर समुचित महत्व प्राप्त नहीं हुआ। फलत राष्ट्रवादी अर्थशास्त्री के रूप मे दादा भाई की सूक्ष्म अतर्दृष्टि तथा योगदान की न्यूनाधिक रूप मे उपेक्षा ही की गई। उन्हे पक्के राष्ट्रीय नेता के और महान व्यक्ति के रूप मे तो मान्यता दी गई, परतु अर्थशास्त्र जैसे विषयो मे उन्हे अनाड़ी नही तो अनजान अवश्य समझा गया, जो मूर्खतापूर्ण ढग से यह विश्वास करता था कि भारत जैसे विशाल देश मे कुछ एक हजार अग्रेजो को दिया गया धन उस देश की सपत्ति मे उल्लेखनीय कमी लाता है। निकासी सिद्धात को समुचित रूप मे समझने मे कमी हमे राष्ट्रवादी नेताओ के और विशेषत दादा भाई के निकासी से पूजी की हानि सबधी विचारो के विस्तृत विवेचन को प्रेरित करती है।

सर्वप्रथम, यहा यह उल्लेखनीय है कि बहुत सारे राष्ट्रवादी नेता सचेत रूप से यह विचार रखते थे और इन्ही विचारो का व्यापक प्रचार करते थे कि निकासी प्रमुख रूप से इस प्रकार से क्षति-कारक है क्योकि इससे देश मे पूजी-सचय मे बाधा उपस्थित हो रही है और वर्तमान सचित पूजी के विशाल भाग को विदेशी भूमि पर ले जाने के रूप मे देश की प्रगति विलबित हो रही है।

1817 के प्रारभ मे ही 'सिलेक्ट कमेटी आन ईस्ट इडिया फाइनास' को प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन मे दादा भाई नौरोजी ने इस दृष्टिकोण को सुस्पष्ट अभिव्यक्ति दी 'अन्यान्य देशो द्वारा जितना भी राजस्व देशवासियो से उगाहा जाता है उदाहरणार्थ, इग्लैंड मे वहा की जनता से 70,000,000 पौड वसूल किया जाता है वह सारे का सारा राजस्व देश के लोगो के पास ही लौट आता है और देश के भीतर ही रह जाता है। अत देश की पूजी पर आधृत देश के उत्पादन मे किसी प्रकार का ह्रास नही आता। परतु भारत के विदेशी राज्य द्वारा शासित होने के कारण प्रतिवर्ष उगाहे जाने वाले 50,000,000 पौंड मे से 12,000,000 पौंड तो साफतौर पर ही खुलेआम इग्लैंड को ले जाए जाते हैं और राष्ट्रीय पूजी अथवा दूसरे शब्दो मे इस देश की उत्पादक्षमता मे निरतर वर्ष प्रतिवर्ष गिरावट ही आती जा रही है।[51]

दादा भाई नौरोजी ने अपने ग्रथ 'पावर्टी आफ इडिया' मे अपनी उक्त मान्यता को लगभग ऐसे ही शब्दो मे दोहराया[52] और उन्होने दावा किया कि निकासी न केवल वर्तमान राष्ट्रीय बचतो को नामशेष कर रही है प्रत्युत विरसे मे मिली विद्यमान राष्ट्रीय पूजी के भण्डार को भी रिक्त कर रही है।[53] अपने उक्त लेख के समीक्षकों को प्रत्युत्तर देते हुए उन्होने सेवाओ के यूरोपीकरण की अपनी आपत्ति को बडी ही सुस्पष्ट भाषा मे विज्ञापित किया और दृढ़तापूर्वक कहा कि कृषि तथा अन्यान्य उद्योगों के संचालन और

प्रगति के लिए अपेक्षित जीवन रक्त की व्यवस्था के लिए देश की पूजी को बचाना अत्यावश्यक है और उसका एक मात्र उपाय भारतीयो की सेवाओं मे नियुक्ति है।[84] इसी प्रकार 1887 मे एम० ई० ग्राट डफ को लिखे अपने प्रत्युत्तर मे दादा भाई ने शिकायत की कि वर्तमान नीति के अंतर्गत ब्रिटिश भारत अपनी तुच्छ आय से निरंतर निकासी के कारण अपनी किसी प्रकार की पूजी को रख पाने की स्थिति से वंचित किया जा रहा है।[85] 12 फरवरी 1895 को 'हाउस आफ कामन्स' मे दिए गए अपने भाषण मे उन्होने घोषित किया—निकासी के फलस्वरूप देश से पूजी हटा दी गई है और देशवासियों को पूजी को बढाने से वंचित कर दिया गया है। वस्तुत इससे इग्लैड को अनिवार्यत लाभ पहुंचा है और ब्रिटिश भारतीयो के साधन इस तरह लडखडा गए है कि वे किसी भी रूप में अपने साधनों को पुनर्जीवन नही दे सकते। अत उनके लिए दरिद्रता का अभावग्रस्त जीवन जीने के सिवाय अन्य कोई चारा ही नही।[86] विलबी कमीशन के सामने जिरह के दौरान दादा भाई ने निकासी से भारत की पूजी को होने वाली हानि की ओर कमीशन का ध्यान दिलाने की पूरी-पूरी चेष्टा की तथा अपने आलोचको को बीच मे ही पकडते हुए उन्होने कहा कि भारतीयो को उपयुक्त खिराज देने मे किसी प्रकार की आपत्ति नही है परंतु यह खिराज इस परिणाम मे होना चाहिए कि जिससे भारत के पूजी-निर्माण को किसी प्रकार की क्षति न पहुचे।[87]

दादा भाई नौरोजी ने विलबी कमीशन के अध्यक्ष के साथ जो लंबा-चौडा वाद-विवाद किया उसमे उन्होने बडी ही सुस्पष्ट भाषा और नाटकीय शैली से निकासी के प्रश्न को प्रभावशाली ढग से ही पूजी निर्माण तथा आय-प्रजनन के साथ जोड दिया। इस विषय मे दादा भाई नौरोजी ने भारत जैसे अविकसित देश मे निवेश वृद्धि और आय-वृद्धि के पारस्परिक सबध मे 'बडी ही सुव्यवस्थित तथा अकाल-प्रौढ सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया। आइए, हम उनके तर्क को उसके मूल रूप[88] मे सिलसिलेवार समझे।

दादा भाई ने अपने साक्ष्य के प्रारंभिक भाग मे प्रतिपादित किया कि देश की कुशल और प्रगतिशील सरकार के लिए भारत का 6400 लाख रुपये राजस्व नितांत अपर्याप्त पड रहा है और यह राशि इतनी कम, सरकार की उस अस्वाभाविक प्रणाली के कारण है जो लोगो को दरिद्र बना रही है तथा उन्हे सरकार को अधिक भुगतान करने मे नितांत असमर्थ बना रही है। उन्होने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि विदेशी सत्ता द्वारा रक्त चूसे जाने के स्थान पर यदि भारतीयों को अपने साधनों को भारत मे ही रखने दिया जाए तो भारतीय आवश्यकता पडने पर करों के रूप मे ही 20,000 लाख रुपयों का भुगतान कर सकते हैं। लार्ड विलबी दादा भाई के इस मंतव्य से सहमत नही थे, तभी उन्होंने पूछा कि स्वतंत्र सत्ता के अधीनस्थ किए जाने पर एक निर्धन देश 2 रु० 12 आने (3 शिलिंग 8 पेंस) प्रति व्यक्ति कर के स्थान पर उससे बढाकर 1 पौंड 6 शिलिंग 6 पेंस प्रति व्यक्ति कर का भुगतान किस प्रकार कर सकता है? दादा भाई का स्पष्ट उत्तर था कि अपने लाभो को अपने ही पास रखने की अनुमति प्राप्त होने पर आज का निर्धन देश कल धनी बन जाएगा। यह तर्क विलबी की समझ मे न आया अथवा वह समझना ही नहीं चाहता था, अतः उसने पूछा कि क्योंकि दादा भाई यूरोपीय सिपाहियों और राजकीय

प्रशासकों पर खर्च किए जा रहे 2000 लाख रुपयो पर आपत्ति करते है और यहा तक कि यदि यह रकम भारतीयो को लौटा दी जाए तो भी इससे दो रुपये के स्तर से बढ़कर 1 पौंड 6 शिलिंग 6 पेंस प्रति व्यक्ति के स्तर तक अर्थात् 6400 लाख रुपयो से बढ़कर 30,000 लाख रुपये प्रति वर्ष तक कर वृद्धि मे सहायता कैसे मिल सकती है ? दादा भाई द्वारा इस प्रश्न का दिया गया उत्तर इस तथ्य का उद्घाटन करना है कि उनकी दृष्टि में निकासी का अर्थ केवल सपत्ति का स्थानातरण नही था। उनका उत्तर था कि देश से खीचा जाने वाला धन यदि बचा लिया जाए तो उसके आर्थिक प्रभाव ये होगे कि इससे देश समृद्ध हो जाएगा। दूसरे शब्दो मे देश का लाभ केवल 2000 लाख रुपयो की वास्तविक बचतों तक ही सीमित नही रह पाएगा। विलबी इस पर भी सतुष्ट नही था और उसने और अधिक कुरेदा परतु आप इसे (भारत को) इस रकम (2000 लाख रुपये) से बढ़कर तो समृद्ध नही बना सकते ? दादा भाई का प्रत्युत्तर था —यदि यह रकम देश मे ही रहने दी जाए तो आर्थिक दृष्टि मे वर्तमान की अपेक्षा यह अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी प्रभाव ही डालेगी। इसका अर्थ केवल 2000 लाख रुपयो की बचत ही नही होगी प्रत्युत यह पुनः उत्पादनो की, देश मे पूजी को बढ़ाने की दिशा मे बचत होगी, परतु यहा विचारणीय है कि दादा भाई ने पूजी की बढ़ोतरी को एक बुढिया की पाई वाली कहानी की तरह यात्रिक रूप मे नही देखा जिसमे पैसा चक्रवर्ती ब्याज (या नफा) की सहायता से हर साल बढ़ता जाए। भले ही उनके वास्तविक आकडे और सगणनाएं अस्पष्ट और कभी कभी निराधार भी हों परंतु इतना निश्चित है कि वे निवेशित आर्थिक विकास की जड को ही पकड नही रहे थे तथा आर्थिक विकास के आधुनिक सिद्धातो को पूर्व सूचित ही नही कर रहे थे प्रत्युत निवेशगुणक की धारणा की भी कदाचित् भविष्यवाणी कर रहे थे। इस पर जब विलबी ने विरोध प्रकट किया—कि यहा भारत मे रखे गए 2000 लाख रुपयो से भारत को केवल निश्चित राशि ब्याज की ही तो प्राप्ति होगी। दादा भाई ने एकदम मह तोड उत्तर दिया—ब्याज ही केवल सब कुछ नही है, इससे तो देश के साधनो का विकास होगा जिससे आज की अपेक्षा देश की पाच गुणा अधिक समृद्धि हो सकती है। वस्तुत भारतीयो के रक्त के रूप मे भारत की पूजी देश से बाहर ले जाई जाती है, उसे देश मे ही रहने दिया जाए और भारत के अपने साधनो का रूप लेने दिया जाए तो देश इसी से पर्याप्त सपन्न बन जाएगा। यह पूजी देश के रक्त समान है। विलबी ने फिर भी ठीक से न समझने का ढोंग रचा[89] और टिप्पणी की—मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भारत इतना संपन्न देश है कि 2000 लाख रुपये यदि यहा लगाए जाएं तो वह एक वर्ष के भीतर ही 20000 लाख से 30000 लाख रुपया अर्जित कर सकता है। दादा भाई ने तत्काल यह उत्तर देकर विलबी की टिप्पणी को नाकारा कर दिया कि उनके द्वारा पूर्व सूचित परिणाम का अर्थ यह नही कि यह सब एक ही वर्ष मे हो जाएगा। उनके कथन का अभिप्राय तो केवल इतना था कि यदि निकासी को रोक दिया जाए तो भारत आवश्यक करों का भुगतान यथासमय करने की स्थिति मे आ जाएगा। भले ही वे कर 20000 लाख रुपये हों अथवा 30,000 लाख रुपये। इस वाद-विवाद के उपरांत भी विलबी ने दो तीन बार पुनः यह प्रयास किया कि दादा भाई यह स्वीकार कर लें कि

2000 लाख रुपयों की छोटी सी रकम भारत के साधनों को एक बड़े परिमाण में सफल बना सकती है—यह धारणा नितांत निर्मूल तथा मिथ्या कल्पित है परंतु दादा भाई तो अपने कथन पर डटे रहे।

जी० वी० जोशी ने भी निकामी को पूजी की क्षति माना और इस क्षेत्र मे भी उन्होंने राष्ट्रवादी चिंतन को एक नया धरातल प्रदान किया। उनका सुझाव था कि निकासी को वार्षिक कुल राष्ट्रीय उत्पादन के एक अश के रूप मे नही लेना चाहिए भले ही यह भाग चाहे जितना ऊचा और भारी क्यों न हो; प्रत्युत इसे तो वार्षिक शुद्ध कार्य-क्षम अधिशेष अथवा बचत का एक भाग समझना चाहिए। इस प्रकार 1884 मे अपने लेख—'दी इकोनामिक रिजल्ट आव फ्री ट्रेड एंड रेलवे ऐक्सटेंशन' —मे उन्होंने सगणना की कि 1882 मे आयात पर निर्यात की अधिकता 23 करोड़ रुपये थी। भारत का कुल वार्षिक उत्पादन 350 करोड था और कुल उत्पादन 12 प्रतिशत पर सर्वाधिक अनुकूल दर से लाभ की राशि 40 करोड थी। अतएव राष्ट्रीय समाधनो पर निकामी का भाग राष्ट्रीय उत्पादन के लाभो का पचास प्रतिशत से अधिक था।[90] छ वर्ष पश्चात अपने लेख– 'दि इकोनामिक सिच्युएशन इन इंडिया' मे जोशी जी ने निम्नलिखित शब्दो मे अपनी उक्त धारणा को सीधी तर्कसम्मत अभिव्यक्ति दी

> निकामी का पूरा माप देश की कुल वार्षिक आय के साथ उसका अनुपात नही है यह अनुपात तो लगभग 6 प्रतिशत है। उसका वास्तविक माप देश के प्रशासन के सचालन पर होने वाले वार्षिक आवश्यक व्ययो को निकाल कर शुद्ध आय का अनुपात है और यह अनुपात लगभग एक तिहाई भाग है। शुद्ध राष्ट्रीय आय के पूरे एक तिहाई भाग का विदेशी दायित्वो के निभाने के लिए देश के बाहर चले जाना और बदले में देश को किसी प्रकार का आर्थिक लाभ न पहुचना सचमुच ही देश की भारी क्षति है और यही भारत में लघु पूंजी सचय का कारण है।[91]

डी० ई० वाचा और जी० एस० ऐयर सहित कितने ही अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने वार्षिक निकासी के संबंध मे इसी प्रकार के विचार प्रकट किए। उन्होंने भी देश से पूंजी के बाहर ले जाने को देश की उल्लेखनीय और तात्विक क्षति बताया।[92]

द्वितीय, कुछ एक भारतीय नेताओं का यह निश्चित मत था कि निकासी से उत्पन्न होने वाली पूजी की न्यूनता का परिणाम यह निकलता है कि इससे भारत की आर्थिक मुक्ति का आधारभूत औद्योगिक विकास प्रतिबंधित हो जाता है। वस्तुत उनका यह अनुभव था कि भारत मे आधुनिक उद्योग की मदगति का प्रमुख दायित्व निकासी पर ही था। इस प्रकार दादा भाई नौराजी ने अपने लेख—'दि पावर्टी आफ इंडिया' में तर्क प्रस्तुत किया कि यद्यपि बडे पैमाने पर औद्योगीकरण भारत की एक अत्यंत अप्रतिहार्य आवश्यकता थी परंतु व्यवहार मे उद्योग उपलब्ध पूजी की कमी के कारण सीमित था और यहां उन्होंने जान स्टुअर्ट मिल के इस मंतव्य को उद्धृत किया –

'उत्पादक श्रम को समर्थन और नियोजन देने वाला तत्व निवेशित पूजी है न कि श्रम के उत्पादन के लिए उसके पूर्ण होने पर क्रेताओ की किसी प्रकार की मांग।' और भारत पूंजी के अभाव से पीड़ित है जिसका एक कारण तो यह है कि इसका अधिशेष उत्पादन

स्वल्प है और इससे भी बढकर बात यह है कि इसके दैनिक पुन: उत्पादन की आवश्यकताओं की और यहां तक कि अधिशेष की निकासी कर दी जाती है। इसलिए देश अपनी संपदा की वृद्धि के लिए उद्योग का उपयोग ही नही कर पाता और इसके फलस्वरूप देश की दरिद्रता का उत्तरोत्तर विस्तार अबाधित रूप मे होता जा रहा है।[93] 1881, मे अपनी इस तर्क प्रणाली की उन्होने व्यग्यात्मक रूप से टिप्पणी की—जबकि अंग्रेज लोग भारत की मूल पूंजी का ही अपहरण कर रहे है तो फिर वे इस बात पर आश्चर्य क्यो प्रकट कर रहे है कि भारत मे उद्योगो की स्थापना नही हो सकती।[94] इसी प्रकार विलबी कमीशन के सामने जिरह मे उन्होने इस आरोप का खंडन किया कि भारतीयों की उद्योगों मे पूंजी निवेश करने मे असहमति ही भारत के औद्योगिक विकास के अभाव का प्रधान कारण है। उन्होने दृढतापूर्वक कहा कि तथ्य यह है कि भारतीयो के पास उपलब्ध पूंजी पर्याप्त नही है। इससे भारत अपने ही लाभ के लिए अपने ही ससाधनो से अपने ससाधनो का स्वतंत्र विकास नही कर सकता। यदि प्रतिवर्ष भारत को पूंजी से वंचित न किया जाए तो वह निश्चित ही अपने साधनो का विकास करने मे समर्थ हो जाएगा।[95] बाद मे 1900 मे दिए गए अपने भाषण मे दादा भाई ने घोषणा की कि यहा तक कि भारत के पुराने उद्योगों की क्षति का [illegible] दायित्व निकासी पर है। ग्रेट ब्रिटेन ने भारतीयो का जीवन रक्त चूस लिया है और वे अब अपने उद्योगो के संचालन की स्थिति मे नही है, क्योकि इसके लिए उनके पास साधन ही नही हैं।[96]

जी० वी० जोशी ने यह मत भी प्रकट किया कि भारत मे औद्योगिक प्रयोजनो के लिए उपलब्ध कार्यरत पूंजी की अपर्याप्तता का कारण बडे पैमाने पर पूंजी के सग्रह का अभाव था और यह अंशत भारत से ब्रिटेन को पूंजी की निकासी का परिणाम था। उन्होंने दृढतापूर्वक कहा : कोई भी देश इस निकासी को सहन करते हुए अपने औद्योगिक क्षेत्र को प्रगतिशील नही बना सकता।[97] इसी प्रकार डी० ई० वाचा ने भी अनुभव किया कि भारत तब तक नए उद्योगो की स्थापना के सबध मे सोच तक नही सकता, जब तक कि वह पूंजी की निकासी के अभिशाप से मुक्त नही हो जाता क्योकि पैसा पैसे को खीचता है और भारत के उद्योग धनाभाव से पीडित है। उन्होने अपने मतव्य की सत्यता के प्रमाण के रूप मे जापान की उल्लेखनीय औद्योगिक प्रगति को उद्धृत किया जहा दम तोडने वाली प्रक्रियाएं···संपत्ति के राष्ट्रीय अधिशेष का वार्षिक अपहरण नही किया जा रहा था।[98] विलबी कमीशन द्वारा जी० के० गोखले से जिरह के दौरान दादा भाई नौरोजी और गोखले के मध्य हुए प्रश्नोत्तरों मे निकासी और औद्योगीकरण के अभाव के मध्यवर्ती संबंध के विषय मे राष्ट्रवादी स्थिति को अत्यंत ही स्पष्ट भाषा मे अभिव्यक्ति दी गई। गोखले से यह प्रश्न किया गया कि भारतीय नए उद्योगो की स्थापना क्यो नही करते ?

(दादा भाई) इसका क्या कारण है कि भारतीय इन उद्योगों को जैसे कि चाय उद्योग को अथवा इनमें से किसी और उद्योग को अथवा इनमे किसी उद्यम को हाथ में नही ले सके जबकि विदेशी आए और उन्होने इन पर कब्जा जमा लिया। क्या इसका कारण यह नही है कि हमारे देश की पूंजी देश से बाहर ले जाई जा रही है ?

(गोखले) हा, यही कारण है।

(दादा भाई) क्या यह सभी रोगों का मूल कारण नही है ?

(गोखले) हा, सभी रोगों की जड यही है।[99]

कुछ एक भारतीय नेताओं ने थोड़ा और आगे बढ़कर यह निर्देश भी किया कि जहाँ निकासी भारत की पूजी की क्षति का एक स्रोत है. वहा अतीत में यह इंग्लैंड के पूजी संग्रह का एक स्रोत सिद्ध हुई है और उसने देश के साधनों को सफल बनाया है तथा देश के द्रुत औद्योगीकरण मे सहायता प्रदान की है।[100]

इस संबंध मे यहा यह उल्लेखनीय है कि दादा भाई नौरोजी तथा उपर्युक्त अन्यान्य नेता कुल मिलाकर इस तथ्य से अपरिचित ही थे कि उनके द्वारा परिभाषित राष्ट्रीय अधिशेष अपने आप से औद्योगिक पूजी का रूप ग्रहण नही कर सकता, उसके इस रूप मे परिवर्तित होने के लिए तो दो अडचनो को हटाना होगा प्रथम, उन्होने इस तथ्य की उपेक्षा की कि बचत करने वाले वर्गो के अनाप-शनाप खर्चो के कारण राष्ट्रीय पूजी का भीतर ही भीतर ह्रास होता जा रहा है। इसके साथ, बचत करने वाले वर्गों की प्रवृत्ति या तो सपत्ति के सग्रह की है अथवा, औद्योगिक, अनुत्पादक क्षेत्रो मे धन के निवेश करने की है। दादा भाई ने समस्या के इस पक्ष पर ध्यान अवश्य दिया परतु चलता सा। उन्होने विलबी कमीशन के समक्ष अपने साक्ष्य मे भारत की रियासतों के कुछ एक शासको की धन-संग्रह की प्रवृत्ति की आलोचना की। इसी प्रकार जसाकि हम ऊपर निर्देश कर चुके है, जी० वी० जोशी ने सरकार की भारतीय जनता से सरकारी ऋण उगाहने की प्रवृत्ति की निंदा की क्योकि उनके अनुसार ये ऋण देश मे निवेश की जाने वाली पूजी का देश मे अपहरण करते है। इसी प्रकार 'बगाली' ने 25 दिसबर 1880 के अक मे तथा 28 जनवरी 1832 के अक मे बगाल की जमीदारी पद्धति की इसलिए आलोचना की कि इससे बगाल की उपलब्ध पूजी को व्यापार और उद्योग के क्षेत्र स हटाकर भूमि मे उसका निवेश किया जा रहा है। परंतु साधारणतया भारतीय नेताओ के इस वर्ग ने पूजी निर्माण के इस पहलू की प्राय उपेक्षा ही की। द्वितीय इन नेताओ ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान नही दिया कि अधिशेष को औद्योगिक पूजी के रूप मे लाने से पूर्व तकनीक, पूजी सगठन, उद्यम-कौशल आदि से संबधित समस्याओ का निपटारा भी आवश्यक है। वस्तुत: जैसे कि हम द्वितीय और तृतीय अध्याय मे अन्यान्य सदर्भो मे देख चुके हैं कि बहुत सारे नेताओ ने इन समस्याओ पर ध्यान अवश्य दिया परतु निकासी के सबंध मे उन नेताओं ने इन समस्याओ को गौण स्थान ही दिया। विशेषत. दादा भाई नौरोजी ने तो इन्हे तुच्छ मानते हुए इनकी पूर्ण उपेक्षा की। उनका कदाचित यह विश्वास था कि निकासी को रोकना और उससे पूजी का निर्माण करना ही प्रधान लक्ष्य था, और इस लक्ष्य की सिद्धि हो जाने के उपरात ही अन्यान्य समस्याओ का सामना करना उचित है।

दादा भाई नौरोजी द्वारा निकासी के विरुद्ध लगाया गया एक अन्य आरोप यह था कि इससे विदेशी पूजी को देश मे घुसने और देश का शोषण करने की सुविधा उपलब्ध होती थी। उनके अनुसार सुविधा जुटाने का यह कार्य दो रूपों मे होता था; प्रथम, निकासी भारत के अंदर पूंजी ही के संग्रह मे बाधा पहुचाकर और इस प्रकार से आतरिक पूजी को

पंगु बनाकर, किसी प्रकार की स्वदेशी प्रतियोगिता की संभावना को समाप्त करके ही विदेशी पूंजीपतियों को भारत में आकर एकाधिकार जमाने तथा भारत के सभी संसाधनों का स्वेच्छापूर्वक दोहन करने की सुविधा जुटाती थी।[101] द्वितीय, निकासी देश मे निवेशित विदेशी पूजी के संग्रह का एक प्रधान स्रोत थी क्योंकि निकासी का एक बहुत बडा भाग विदेशी पूंजी के रूप में फिर भारत मे लाया जाता था।[102] इस संबंध में दादा भाई की मान्यता थी कि यूरोपीय सेवाएं भारत में दुधारी तलवार का काम कर रही हैं। एक ओर तो वे भारतीय वेतनभोगी वर्गों के हाथों मे पूजी संग्रह करने में बाधक बन रही हैं तथा यूरोपीय अधिकारियों की बचतों के माध्यम से विदेशी पूजी के विकास का संवर्धन कर रही है और दूसरी ओर वे ब्रिटिश पूजीपतियों को सुरक्षा और संरक्षण प्रदान कर रही है।[103]

दोनों, निकासी-सिद्धांत और ऊंचे भूमि लगानो द्वारा देश के दरिद्रीकरण के सिद्धान्त के अत्यत मुखर वकील आर० सी० दत्त ने भी इन दोनो सिद्धांतों में आपसी संबंध स्थापित करने की और यह दिखाने की चेष्टा की कि निकासी का भुगतान प्रमुखतया भूमि लगानों से किया जाता है अत: यह देश के कृषकों की दरिद्रता की सूचक है। इस प्रकार अपनी 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया' के द्वितीय खड की भूमिका मे उन्होंने लिखा कि 1900 ई. में गृह प्रभार कुल भूराजस्व के लगभग बराबर ही थे।[104] बाद मे अपनी पुस्तक में उन्होंने इन दोनो के मध्य और अधिक जटिल आर्थिक संबंध सिद्ध किया। इन दोनो के वित्तीय संबधो पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा : निकासी का प्रत्यक्ष संबध सरकारी राजस्व मे है और सरकारी राजस्व मे बहुत बडा भाग भूमि लगानो का है। आर्थिकता की दृष्टि मे निकासी का रूप अनिश्चित निर्यात है। निकासी के वित्तीय और आर्थिक पक्षों का संबंध निम्नलिखित रूप से है : किसानों को भूमि के लगान अथवा राजस्व का भुगतान करने के लिए अपनी उपज के एक बहुत बडे भाग को बेचना पडता है। इस उपज का निर्यात कर दिया जाता है, क्योंकि देश को अपेक्षित निर्यात अधिशेष की सृष्टि करनी पडती है और क्योंकि कठोर भूमि लगान पद्धति के अतर्गत गाव से बलपूर्वक छीने गए कृषि उत्पादनों को बाजार मे लाना ही पडता है। इस प्रकार भूमि लगान की यान्त्रिकता के द्वारा किसान को निकासी के लिए भुगतान करने और निकासी को माध्यम बनने वाले कृषि उत्पादनो को जुटाने के लिए बाध्य होना ही पडता है। इसका परिणाम यह है कि एक ओर तो वह बेचारा भारी और कठोर भूमि लगानो के कारण दरिद्र है और दूसरी ओर अन्न के अभाव मे भूखा मरता है क्योंकि वह अपने अनाज को बेचने के लिए और देश उस अनाज को निर्यात करने के लिए विवश है। इसका कारण उस गरीब किसान पर भूमि लगान और निकासी की दोहरी मार ही है।[105]

इससे पूर्व 1901 मे उन्होंने दादा भाई नौरोजी की इस मित्रतापूर्ण आलोचना, भूमि लगानों को भारत की दरिद्रता के कारण बताकर उन पर अधिक बल देना निर्धनता के मूल कारण, निकासी से जनता का ध्यान हटाना ही था—का प्रत्युत्तर देते हुए निकासी और भूमि लगानों को परस्पर अधिक प्रत्यक्ष संबद्ध करने का प्रयास किया। 24 मई 1901 को लंदन में हुए भारतीयों के एक सम्मेलन मे भारत मे भूमि लगानों को कोमल बनाने

की मांग का प्रस्ताव पेश करते हुए उन्होंने दावा किया कि वस्तुतः यह निकासी पर पहले के ही प्रस्तुत प्रस्ताव का पूरक है। उन्होंने कहा कि दादा भाई नौरोजी जहां भारतीय राजस्व के एक बहुत बडे भाग की प्रतिवर्ष निकासी के विरुद्ध आंदोलन कर रहे हैं, मैं स्वयं भी यही दिखाने को उत्सुक हूं कि राजस्व के एक बहुत बडे भाग की वसूली देश के दरिद्रों में दरिद्रतम लोगो, भारत के किसानों, से ही की जाती है। उन्होंने स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि इससे प्रकट होता है कि हम दोनों (मैं और दादा भाई) दो भिन्न भिन्न प्रश्नों पर विचार नही कर रहे हैं प्रत्युत एक ही प्रश्न के दो पहलुओं पर विचार कर रहे हैं। उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा कि हम दो विभिन्न सुधारों की मांग नहीं कर रहे हैं। हम तो केवल बाहरी और भीतरी दृष्टि से सुधार की आवश्यकता को दिखाते हुए उसी एक सुधार की मांग कर रहे हैं। उन्होंने दृढ़ स्वर मे अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए कहा : कि आर्थिक निकासी तब तक कम नही होगी जब तक भूमि लगान कम नही होंगे, और भूमि लगान तब तक कम नही होंगे, जब तक धन की निकासी नही घटाई जाती।[106] इसी प्रकार 'अमृत बाजार पत्रिका' ने 1 अक्टूबर 1900 के अंक में मत प्रकट किया कि भूमि पर ऊंचे लगान एक भारी रोग हैं और यह अकाल के प्रमुख कारण निकासी का फल है।

डी० ई० वाचा ने 1886 में निकासी के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव के एक अन्य पक्ष को उजागर किया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि निकासी कृषि को सभी प्रकार की उत्पादक पूजी से वंचित कर रही है। उन्होंने बल देकर कहा कि जब तक सारी जनता के सभी लाभों की निकासी की जा रही है, तब तक धरती की उत्पादकता मे किसी प्रकार की कोई वृद्धि नहीं की जा सकती। क्योंकि यह वृद्धि तभी संभव है जब धरती पर सर्वत्र पूजी का व्यय प्रत्येक स्थिति में निश्चित रूप मे थोड़ी मात्रा में और कुल मिलाकर बड़ी मात्रा में किया जाए।[107]

बहुत सारे भारतीय नेता यह देखने में भी सफल हो गए कि संपत्ति के एकपक्षीय स्थानांतरण के परिणामस्वरूप होने वाली प्रत्यक्ष हानि के अतिरिक्त निकासी भारत के विदेशों के साथ व्यापार संबंधों को बिगाड़ने के रूप में एक दूसरा आघात भी कर रही थी क्योंकि निकासी के साथ विनिमय अधिशेष अनिवार्य रूप से जुड़ा तत्व था और यह भारत के निर्यात की एक अनिवार्य विशेषता बन गई थी। भारत के लिए दो ही मार्ग थे या तो वह निर्यात करे या नष्ट हो जाए। फलतः भारत को विदेशी क्रेताओं को अपना माल खरीदने को प्रलोभित करने के लिए अपने माल की कीमत घटानी पड़ती थी। दूसरे शब्दों में निकासी के फलस्वरूप जिन शर्तों पर भारत आयात के बदले निर्यात करता था, वह इसके सर्वथा अनुकूल नहीं थीं।[108]

यहां यह एक उल्लेखनीय रोचक तथ्य है कि राष्ट्रवादियों को निकासी की आलोचना में कुछ विशिष्ट महानुभावों का समर्थन प्राप्त हुआ। आदम स्मिथ ने 'वैल्थ आफ नेशन्स' में भारत के प्रारंभिक ब्रिटिश शासकों को 'भारत के लुटेरे डाकू' बताया।[109]ए इसी प्रकार कार्ल मार्क्स ने भी निकासी के लिए लगभग उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया, जिनका दादा भाई नौरोजी प्रयोग किया करते थे। 1857 में मार्क्स ने लिखा :.

ये पेंशन पाने वाले (भारत सरकार के सेवा निवृत ब्रिटिश कर्मचारी) ऋणों पर इग्लैंड मे देय लाभ और ब्याज के रूप मे भारत मे प्रतिवर्ष 150 से 200 लाख डालर की राशि खीचकर उसका उपभोग करते है। इस विपुल राशि को वस्तुत भारतीय जनता द्वारा परोक्ष रूप से अग्रेज सरकार को दिया गया खिराज ही मानना चाहिए। प्रतिवर्ष विभिन्न सेवाओ से अवकाश प्राप्त करने वाले ब्रिटिश कर्मचारी अपने साथ वेतनो मे उल्लेखनीय परिमाण मे बचाई गई धन राशि अपने साथ ले जाते हैं, इसे भी निश्चित रूप से भारत से धन की होने वाली निकासी मे जोडना चाहिए।[109बी] और 1881 मे उन्होने ध्यानपूर्वक देखते हुए लिखा : अग्रेज लोग भारत से प्रतिवर्ष लगान मे और रेलो, जो हिंदुओ के लिए वेकार है, पर लाभ के रूप मे जो ले जाते है, सेना और असैनिक शासन के कर्मचारियो के लिए पेंशन, अफगानिस्तान तथा अन्यान्य युद्धों आदि के लिए जो कुछ भी वे ले जाते है, उसके बराबर वे कुछ भी बदले मे नही देते और भारत के भीतर प्रतिवर्ष खर्च किए जाने वाले धन मे वह सर्वथा अतिरिक्त ही होता है। भारत द्वारा उदारतापूर्वक प्रतिवर्ष इग्लैंड को भेजी जाने वाली उपभोग सामग्री के मूल्य को ही यदि देखा जाए तो यह भारत के 6 करोड औद्योगिक श्रमिको और कृषि श्रमिकों की कुल वार्षिक आय बैठती है। यह रक्त चूसने की घनघोर प्रक्रिया है।[109सी]

अन्त मे दो अन्य आर्थिक पक्ष भी विचारणीय है। प्रथम, क्या निकासी का अर्थ अनुत्पादक सेवाओ पर होने वाले व्यय के रूप मे सकीर्ण रूप मे लिया जाए अथवा व्यापक रूप मे जिसके अतर्गत सार निर्यात अधिशेष की रकम, भले ही वह दादा भाई नौरोजी की सगणना के अनुसार 24 करोड रुपये मानी जाए जिसमे सरकारी ऋणो पर सूद सम्मिलित नही है, अथवा मोरिसन की सगणना के अनुसार 30 करोड रुपये मानी जाए, जिसका आधार निर्यात अधिशेष का परिमाण है, अथवा और कोई राशि स्वीकार की जाए, भारत की निम्न राष्ट्रीय आय के अथवा अर्थव्यवस्था द्वारा सचालित विशुद्ध अधिशेष के अथवा 1881-2 में उगाहे जाने वाले सरकारी लगानो की 46 86 करोड रुपये की राशि के और 1901-2 मे उगाहे जाने वाले लगानो की 60 79 करोड रुपये की राशि के मुकाबले पर्याप्त महत्वपूर्ण राशि थी।[109डी] द्वितीय, आज यह व्यापक रूप से स्वीकार किया जाता है कि देश को अपने आर्थिक विकास की आधार शिला रखने के लिए अथवा आत्मनिर्भरता की स्थिति पर पहुचने के लिए पहले उसका पूजी आयातक देश बनना आवश्यक है अथवा दूसरे शब्दो मे उसके पास आयात अधिशेष अवश्य ही होना चाहिए। अपने आर्थिक विकास की परवर्ती स्थिति मे ही वह केवल निर्यात अधिशेष के द्वारा ऋणो को लौटाने की स्थिति मे आ सकता है। यहा तक कि इसके अवसर भी थोडे समय की परिधि मे तो विरले ही होते है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात की अवधि मे बडी सख्या में आर्थिक दृष्टि से पिछडें देश अपनी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए जिस प्रकार प्रयत्नशील हैं उनमे एक भी देश का उदाहरण देखने को नही मिलेगा जहा यह प्रगति निर्यात अधिशेष के साथ हो रही हो। लगभग प्रत्येक स्थिति मे इन देशो का व्यापार सतुलन ऋणात्मक ही है। उदाहरण के लिए आज के भारत को ही लीजिए और यह एक सर्वथा विशिष्ट स्थिति का देश भी है, तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि सारी 19वी शताब्दी

में, केवल 1857 के विद्रोह के कुछ एक वर्षों को छोड़कर और वह भी 250 लाख डालर के साधारण परिमाण तक, यह देश विशुद्ध रूप से पूजी का निर्यातक ही रहा है।

निकासी में कटौती

निकासी सिद्धांत के कुछ एक समर्थकों का तो विश्वास था कि जब तक निकासी जारी है भारत का आर्थिक पुनर्निर्माण कभी संभव ही नही और यदि भारत को निकासी से एक बार मुक्ति मिल जाए तो और सब कुछ अपने प्राकृतिक रूप में ही स्वतः ठीक हो जाएगा।[110] कुछ एक अन्य नेताओं ने थोडा कम कठोर दृष्टिकोण अपनाया और उन्होंने भारत की दरिद्रता और अकाल को निर्मूल करने के लिए अन्य बातों के साथ साथ निकासी मे कटौती को भी एक आवश्यक शर्त माना।[111]

इस संबंध में दो अन्य बातें भी विचारणीय है। प्रथम, जैसा कि हम पहले दिखा चुके हैं, दादा भाई तक इस तथ्य से परिचित थे कि विदेशी शासन के आवश्यक उपकरण के रूप में थोडी बहुत निकासी का बना रहना तो सर्वथा अनिवार्य ही है। विदेशी शासन को उखाड़ फेंके बिना तो इसे सर्वथा निर्मूल किया ही नही जा सकता और हमारे अध्ययन के अंतर्गत अवधि के दौरान सामान्यतया भारत से विदेशी शासन को उखाड फेंकने की कल्पना ही दादा भाई के मस्तिष्क में नही थी।[112] द्वितीय, दादा भाई और आर० सी० दत्त ने ब्रिटिश जनता को यह समझाने की पूरी चेष्टा की कि निकासी मे कटौती से स्वय उन्हें असीम लाभ पहुंचेगा क्योंकि इससे उनका भारत को निर्यात कई गुना बढ़ जाएगा।[113] दादा भाई ने अपने लक्ष्य मे सिद्धि प्राप्त करने के लिए हमारे अध्ययन के अंगर्गत अवधि के दौरान ब्रिटिश जनता के विभिन्न वर्गों मे उत्पन्न हो रहे तीखे राजनैतिक मतभेदो का लाभ उठाने मे भी किसी प्रकार का सकोच नहीं किया। उन्होंने पहले 1893 में और फिर 1896 मे ब्रिटेन के श्रमिक वर्ग से अपील करते हुए यह अभियोग लगाया कि उच्च वर्ग के थोड़े से लोग ही हैं जो इस समय भारत से सभी प्रकार के लाभ उठा रहे है जबकि दूसरी ओर यदि निकासी समाप्त कर दी जाए तो भारत ब्रिटिश के सामान एक इतनी बड़ी भारी मण्डी बन जाएगा कि ब्रिटेन को अपने श्रमिको की बेकारी का शब्द ही नही सुनना पडेगा।[114]

निकासी मे कटौती कैसे की जा सकती है? इस संबंध मे राष्ट्रवादियो का उत्तर बड़ा ही सीधा-सादा था। निकासी के कारणो को हटा दीजिए। निकासी के कारणों की पहले ही विस्तृत समीक्षा की जा चुकी हे अत: राष्ट्रवादियो द्वारा सुझाए गए उपायों के विस्तृत विवेचन की कोई आवश्यकता नही। हम यहा केवल राष्ट्रवादियों द्वारा सुझाए गए उपचारो का मात्र उल्लेख ही करेंगे।

इन उपचारो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण था नगर तथा सैनिक सेवाओं का भारतीयकरण और इसके फलस्वरूप इन सेवाओं मे यूरोपीय तत्वो की समुचित परिमाण मे कटौती।[115] इस सबंध मे यहा यह उल्लेखनीय है कि जैसा कि हम पहले दिखा चुके है दादा भाई नौरोजी ने प्राय. ही संकीर्ण आधार देते हुए यह सुझाव दिया कि भारतीयकरण ही इस रोग की एकमात्र औषधि है। इससे निकासी सिद्धात एक प्रकार के फूहड़ और

उपहासास्पद बनकर रह गया। यह स्थिति उस समय और भी अधिक विकृत रूप धारण कर गई जब उन्होंने यह धारणा प्रकट की कि असैनिक सेवाओं की एक साथ इंग्लैंड और भारत मे परीक्षा तथा अप्रतिश्रुत और गौण सेवाओं की न्यायोचित प्रतियोगिता देश को संपन्न बनाने की पर्याप्त आवश्यक शर्तें हैं।[116]

द्वितीय, भारतीय नेताओं ने गृहप्रभारों मे कटौती की माग की।[117] इस पग की वकालत कभी कभी तो निकासी मे इसे सबधित किए बिना ही की गई। गृह प्रभारो को अनेक रूपों मे घटाया जा सकता है। भारतीय नेताओ मे सर्वाधिक लोकप्रिय उपाय था ब्रिटेन द्वारा इस भार के एक बडे भाग को वहन करने मे भागीदार बनना।[118] कुछ एक नेताओं ने यह सुझाव भी दिया कि इंग्लैंड मे लिए गए सरकारी ऋणो पर भारत द्वारा देय ब्याज के भुगतान के और स्वय सरकारी ऋणो के भार को हटाकर[119] इन ऋणो के लिए शाही प्रतिभूति जुटा करके ब्याज की दर मे कटौती करके,[120] सरकारी ऋण इंग्लैंड मे लेने के बदले भारत मे ही लेकर[121] रेलपथ निर्माण की गति को कम करते हुए रेलवे ऋणो के भार को कम करके,[122] भारत के सरकारी भडारो के लिए स्वयं सरकारी भंडारो के लिए स्वय भारत मे ही सामान की खरीदारी करके,[123] अनावश्यक आयात को रोकने के लिए भारतीय उद्योगों को उन्नत करके,[124] निजी विदेशी पूजी के बढते आयात के प्रवाह को रोककर [125] गृह प्रभारों को घटाया जा सकता है। भारतीय नेताओं द्वारा निकासी को रोकने के लिए सुझाया गया महत्वपूर्ण उपचार था—इंग्लैंड और भारत मे गृह प्रभारो का न्यायोचित विभाजन।[126]

निकासी सिद्धांत में विश्वास न रखनेवाले कुछ भारतीय

यह एक व्यापक मान्यता है कि भारतीय राष्ट्रवादियो मे एक ऐसा वर्ग भी विद्यमान था जो निकासी सिद्धात पर विश्वास नही करता था। इस वर्ग का नेतृत्व रानाडे के हाथ मे था और वे निकासी के रूप मे प्रसिद्ध धन के निर्यात को भारत की दरिद्रता के लिए उत्तरदायी कारण नही मानते थे।[127] इस धारणा का आधार, 1890 मे पूना मे प्रथम उद्योग सम्मेलन मे उनके द्वारा दिए गए उद्घाटन भाषण के लिखित रूप का एक अवतरण है। इस भाषण मे रानाडे ने घोषणा की थी कि कुछ ऐसे लोग भी है जो यह सोचते है कि जब तक हमे इंग्लैंड को ऊचे खिराज देने को विवश रहना पडेगा, जिसका अर्थ लगभग 20 करोड रुपये के अधिशेष निर्यात से हाथ धोना है, तब तक हम पतन के गर्त मे गिरे पड़े रहेंगे और किसी प्रकार भी अपना उद्धार आप नही कर सकेंगे। यह न तो किसी रूप में उपयुक्त है और न ही यह वीरोचित स्थिति है। उन्होने निर्देश किया कि इस निकासी का एक भाग तो भारत मे निवेशित अथवा भारत के लिए ऋण मे ली गई विदेशी पूजी पर ब्याज की राशि है और हमे इस विषय मे शिकायत करने के बदले धन्यवाद करना चाहिए कि हमारे पास एक ऐसा ऋणदाता है, जो ब्याज की इतनी नीची दर पर हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। एक अन्य भाग भारत को सभरण किए गए भंडारो के मूल्य की राशि का है, जिस भंडार के अनुरूप सामान का हम भारत मे उत्पादन नही करते। अवशिष्ट भाग प्रशासन और सेना पर व्ययो का तथा पेंशनो के भुगतान का है।

यद्यपि इस संबध में अवश्य शिकायत की जा सकती है कि यह सारा आवश्यक खर्च नही है। रानाडे ने अपने श्रोताओं को सलाह दी कि वे खिराज के प्रश्न के निरर्थक विवाद में अपनी शक्तियों का दुरुपयोग अथवा अपव्यय न करें। उन्हें इस प्रश्न को राजनीतिज्ञों पर ही छोड़ देना चाहिए।[128]

हमारे विचार मे यह अवतरण सचमुच यह सिद्ध नही करता कि रानाडे इस बात में विश्वास नही करते थे कि भारत से संपत्ति की निकासी हो रही है अथवा यह आर्थिक दृष्टि से हानिकारक है। जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, रानाडे 1872 के प्रारंभ मे निकासी सिद्धांत का भारत में प्रचार करने वाले प्रथम व्यक्ति थे और औद्योगिक सम्मेलन में दिए गए उनके इस भाषण के मुश्किल से ही दो वर्षों के उपरांत 'भारतीय राजनैतिक आर्थिकता' विषय पर दिए गए इससे भी अधिक महत्वपूर्ण भाषण मे भारत से संपत्ति और प्रतिभा की निकासी के लिए उत्तरदायी विदेशी शासन की निंदा की।[129] इसके अति-रिक्त ऊपर उद्धृत अवतरण मे भी उन्होने भारतीयों को आधुनिक उद्योगों की वृद्धि के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य विशेष से बुलाए गए औद्योगिक सम्मेलन का विरोध निकासी के प्रश्न को उठाने के आधार पर किया न कि राजनीतिज्ञों को इस प्रश्न पर विचार न करने की सलाह दी। वस्तुत: 1881 में पूना सार्वजनिक सभा ने, जिसके कर्ता-धर्ता और सर्वेसर्वा उस समय रानाडे ही थे, कुछ विषय प्रस्तुत किए जिन पर भारतीय विशेष रूप मे क्षुब्ध थे और इन विषयों मे एक विषय था—आयातों की अपेक्षा निर्यातो की अधिकता के माध्यम से निकासी का प्रश्न तथा उस निकासी को रोकने के उपाय।[130] इसी प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने, जिसके पर्दे के पीछे रानाडे महत्वपूर्ण और अग्रणी नेता थे और जिसके प्रस्तावों के प्रारूप तैयार करने मे उनकी भूमिका विशेष महत्वपूर्ण थी, घोषणा की कि निकासी भारत की दरिद्रता का महत्वपूर्ण कारण है।[131] इन संकेतों से भी बढ़ चढ़कर और अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणस्वरूप तथ्य यह है कि आर्थिक मामलों मे उनके दोनों निकट सहयोगी और शिष्य—जी० वी० जोशी और जी० के० गोखले ने इस दृष्टिकोण की पुष्टि की कि निकासी ने औद्योगिक विकास को प्रतिबंधित किया है और देश की जनता को दरिद्र बनाया है।[132] हा, यह कहना तो अवश्य ही गलत होगा कि जोशी और गोखले के विचार रानाडे के विचार थे परंतु यह अनुमान गलत नहीं होगा कि शिष्यों ने ऐसे किसी विचार का समर्थन नही किया होगा, जो उनके गुरु के सिद्धांतों के मूल रूप से ही विरुद्ध हो।

इस कथन मे इतना जरूर सत्य है कि रानाडे तथा कितने ही और भारतीय निकासी सिद्धांत के विरुद्ध थे। रानाडे, जोशी और गोखले और भारतीय नेताओं में कदाचित बहुत-सारे अन्य निकासी सिद्धांत को भारतीय राजनीति का अथवा राष्ट्रवादी प्रचार और आंदोलन का प्रधान विषय नही बनाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त वे इस प्रश्न को कुछ समय के लिए आंखों से ओझल भी करना चाहते थे। यहां यह भी उल्लेख-नीय है, जैसा कि हम पहले दिखा चुके हैं, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, और भारतीय नेताओं का बहुमत, वास्तव मे दादाभाई नौरोजी, 'अमृत बाजार पत्रिका' और कुछ इनेगिने लोगों को छोड़कर लगभग सभी भारतीय नेताओं के विचार में देश को दरिद्रता के गढ़े में

धकेलने वाले मुख्य कारणों मे निकासी भी केवल एक कारण ही था।

निकासी सिद्धांत के आलोचक

राष्ट्रवादी नेताओ की आर्थिक नीतियों के वैज्ञानिक दृष्टि से खरेपन का निर्णय देना तथा उनकी नीतियो का विश्लेषण करने के लिए तथा उन्हे सही सिद्ध करने के लिए उनके द्वारा प्रस्तुत तर्को की समीक्षा करना कदाचित् हमारे ग्रथ के लिए उपयुक्त नही होगा। निकासी के राष्ट्रवादी विरोधियो के सबध मे भी हमारा यही मत है। परन्तु इसके साथ ही निकासी सिद्धात पर भारत मे सरकारी और गैरसरकारी प्रवक्ताओं द्वारा, सलाहकारो द्वारा तथा भारत मे ब्रिटिश राज्य के रक्षको द्वारा 1880-1905 की अवधि मे और उसके उपरात जिस उग्रता के साथ प्रहार किए गए, उसका उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त सरकारी पक्ष के अर्थशास्त्रियो और लेखको की यह भी कल्पना थी कि राष्ट्रवादियो द्वारा निकासी पर किया जा रहा प्रहार उनकी पूर्ण मूर्खता और राष्ट्रवादी नेताओ के पूर्वाग्रह से नही तो उनकी आर्थिक अज्ञानता और सबधित आर्थिक प्रश्नो की उपयुक्त जानकारी के अभाव से अवश्य उत्पन्न हुआ। इस सदर्भ मे हम निकासी सिद्धान्त पर ब्रिटिश प्रहार के प्रमुख तर्को और राष्ट्रवादियो द्वारा दिए गए उत्तरो की समीक्षा करेंगे, जिससे यह स्पष्ट हो जाएगा कि निकासी के राष्ट्रवादी आलोचक आर्थिक वास्तविकताओ से अनभिज्ञ नही थे। उन्होने तो अपने विरुद्ध बाद मे लगाए जाने वाले आरोपो को पहले से ही भाप लिया था कि कदाचित यह कहा जा सकता है कि उनके समीक्षको ने इस विषय के प्रति पूण न्याय नही किया और न ही किसी सूक्ष्म चिंतन का परिचय दिया। वे अपने निकासीवाद के स्वरूप निर्धारण मे भले ही सही रहे हो अथवा गलत, परंतु इतना निश्चित है कि आर्थिक मामलो मे वे अनाडी नही थे और निकासी के प्रति उनका दृष्टिकोण देश की स्थिति के विस्तृत, पूर्ण और अन्त सबंधित तथा समन्वित आर्थिक विश्लेषण का ही एक अग था। निकासी सिद्धात का तुरत ब्रिटिश द्वारा खंडन थिओडोर मोरिसन के प्रत्युत्तर परक ग्रंथ, 'दी इकोनामिक ट्रांजिशन इन इडिया' मे किया गया। यह ग्रंथ 1911 मे प्रकाशित हुआ और कदाचित यह सर्वाधिक विस्तृत और आलोचको के दृष्टिकोण का सर्वोत्तम विश्लेषण था।[133] आधुनिक भारत के आर्थिक इतिहास मे एल० सी० ए० नोल्स और वीरा एंस्टे ने निकासी सिद्धात की मोरिसन द्वारा आलोचना की व्यापक रूपरेखा को ही ग्रहण किया।[134] यह एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि निकासीवाद के समर्थक और विरोधी एक बात पर पूर्ण रूप से सहमत थे कि भारत को अपने निर्यातो के भाग के बदले कुछ आर्थिक तुल्य-मूल्य की प्राप्ति नही होती। इसी प्रकार जान स्ट्रेची ने 1878 के वित्तीय विवरण मे टिप्पणी की कि इंग्लैंड के साथ भारत के संबंध और उस संबंध के वित्तीय परिणाम भारत को प्रतिवर्ष लगभग 200 लाख पौड का उत्पादन बदले मे बिना किसी प्रकार के प्रत्यक्ष रूप से व्यापारिक दृष्टि से तुल्य मूल्य की सामग्री के प्राप्त किए ही यूरोप को भेजने को विवश होना पडता है। आयातों पर निर्यातों की इस अधिकता को ही अर्थशास्त्री अपनी भाषा में खिराज का नाम देते है।[135] और मोरिसन ने 'निकासी' को इस प्रकार परिभाषित किया कि भारत से सामग्री अथवा

धन के निर्यातों की वह धनराशि, जिसके बदले भारत को उस वर्ष उस धन राशि के तुल्य मूल्य का किसी प्रकार का सामान प्राप्त नहीं हुआ निकासी है।[136] इस प्रकार निकासीवाद के आलोचकों और समर्थकों के मध्य मतभेद का आधार एकतरफा निर्यात अधिशेष के सही आर्थिक शब्दार्थ, उद्गम और परिणाम के संबंध में अपनी अपनी समझ है। निकासी सिद्धांत पर प्रहार का रूप इस प्रकार से था :—

प्रथम, यह कहा गया कि भारतीय आवश्यक कटौतियों का हिसाब न करके प्राय: निकासी को बढ़ा चढ़ाकर पेश करते हैं। वे इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि निर्यात अधिशेष का एक भाग तो अदृश्य आयातों, जैसे कि जहाजरानी सेवाएं, आयातों और निर्यातों पर लगने वाला बीमा शुल्क तथा भारतीय छात्रों और पर्यटकों द्वारा विदेशों में किए गए खर्चे आदि के खाते में चला जाता है।[137] पूंजी खाते के कार्य व्यापार भी आयातों और निर्यातों को सापेक्ष महत्व देने की झूठी प्रवृति लिए हुए हैं क्योंकि पूजी के आयात वास्तविक निर्यात अधिशेष को घटा देते है और पूजी के वापसी भुगतान इन्हे अतिरंजित रूप दे देते हैं।[138] अंतिम, निर्यात अधिशेष की संगणना करते समय सोने और चांदी के भारी आयातों की भी गिनती करनी चाहिए।[139] मोरिसन ने संगणना की कि वार्षिक निकासी—जिसका अर्थ उसके अनुसार सोने और चांदी के कार्य व्यापार तथा पूंजी के आयातों को मिलाकर विशुद्ध निर्यात अवशेष था—की राशि 210 लाख पौंड थी।[140]

द्वितीय, आलोचकों का कथन था कि भारत अतिरिक्त निर्यातों के बदले पर्याप्त आर्थिक तुल्य मूल्य की सामग्री प्राप्त करता है। निकासी का सबसे बडा भाग ऋण लिए हुए धन पर ब्याज की राशि का था, ये ऋण भारत के आर्थिक विकास और संपन्नता के सूचक थे न कि दरिद्रता के। विदेशी पूजी की सहायता से रेलों का निर्माण किया गया है, सिंचाई को विकसित किया गया है तथा बागान और दूसरे औद्योगिक साहस के कार्य प्रारंभ तथा विकसित किए गए हैं, जिनसे भारत लाभ अर्जित कर रहा है। इस लाभ का ही एक छोटा-सा भाग ब्याज के रूप में देश के बाहर भेजा जाता है। इसके साथ साथ इन लाभों के अर्जन के अतिरिक्त यह उद्योग प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से देश की राष्ट्रीय आय में वृद्धि करते हैं। यदि सारे लाभ ही देश से बाहर भेज दिए जाएं तो भी किराए और श्रम की राशि का भुगतान तो इस देश को ही प्राप्त होगा।[141] अत. भारतीयों को अपने पूजीगत साधनों की कमी को पूरा करने के लिए विदेशी निवेशकों का आभारी होना चाहिए।[142] भारत को प्राप्त लाभों को और अधिक बढा चढ़ा कर इस प्रकार चित्रित किया गया कि भारत को इंग्लेंड के साथ राजनैतिक संबंधों का यह लाभ होता है कि इंग्लैंड उसे विश्व की सबसे सस्ती बाजार से ऋण लेने की सुविधा जुटाता है। यदि भारत में निवेश के लिए पर्याप्त पूजी के उपलब्ध होने की कल्पना कर भी ली जाए तो उसे ऋण रूप में लेना अपेक्षाकृत अधिक मंहगा पड़ेगा।[143] मोरिसन ने घोषणा की कि वास्तव में भारत को सरकारी ऋण जिस प्रकार सस्ती दर पर मिलते हैं, उससे तो 'राजनीतिक निकासी'[144] की बात खत्म हो जाती है और निष्कर्ष रूप में यह कहना ही पड़ता है कि भारत ब्रिटिश राज्य से अपने संबंधों के कारण आर्थिक लाभ प्राप्त कर रहा है।[145] इस संबंध में भारत की स्थिति की तुलना—यू० एस० ए०, रूस, आस्ट्रेलिया, और जापान जैसे अन्यान्य देशों

से की जा सकती है। अमेरिका को यूरोपीय देशों की कर्ज़दारी के कारण व्यापक निर्यात अधिशेष रखने पड़ते हैं, तो भी वह समृद्धि की ओर बढ रहा है। वस्तुतः वह देश इसी लिए समृद्ध हो रहा है क्योंकि वह अपनी पूजी की रिक्तता की पूर्ति विदेशी पूंजी से कर रहा है और विदेशी पूजी की ही सहायता से अपने साधनों का विकास कर रहा है।[146] इसके अतिरिक्त इन देशों के उदाहरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निर्यात अधिशेष का किसी देश की राजनैतिक स्थिति से कोई संबंध ही नही है।[147] जहा तक भारत के अनुत्पादक ऋण का संबंध है, इस विषय में विशेष स्मरणीय और विचारणीय बात यह है कि अन्य देशों के अनुत्पादक ऋणो की तुलना मे यह अत्यल्प मात्रा मे है।[148]

तृतीय, जहा तक सरकारी ऋणों पर ब्याज को घटाकर गृह प्रभारों का, यूरोपीय कर्मचारियो द्वारा अपनी बचतों को बाहर भेजने आदि का सबंध था, आलोचक इस बात मे सहमत थे कि इस विषय मे भारत की स्थिति अन्य देशों मे भिन्न ही नही प्रत्युत विचित्र थी। हा, यह बात अवश्य है कि ये गृह प्रभार अधिक नही थे और इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि भारत को इसके बदले क्षति पूर्ति के रूप मे परिश्रमी, निस्स्वार्थी तथा योग्य ब्रिटिश अधिकारियो की सेवाएं और शाति तथा व्यवस्था के रूप मे इतर-आर्थिक लोक-कल्याण, आधुनिक प्रशासन, विदेशी आक्रमण से सुरक्षा, अथवा दूमरे शब्दो मे 'उत्तम सरकार' उपलब्ध थी।[149] उत्तम सरकार की उपलब्धि को आर्थिक स्वरूप इस प्रकार दिया जा मकता है कि इसके अभाव मे भारत की औद्योगिक प्रगति सभव ही नही थी।[150] इसे और अधिक स्पष्ट रूप देना चाहे तो कहा जा सकता है कि भारत को आर्थिक विकास के सर्वथा अनुकूल एक ऐसा प्रशासन उपलब्ध हुआ है, जो उसके अपने द्वारा जुटाए जाने वाले किमी भी प्रशासन की अपेक्षा अधिक सहायक है।[151]

निकासीवाद के सिद्धातवादी प्रचारक—इससे हमारा तात्पर्य सबसे पहले दादा भाई नौरोजी से है—आलोचको द्वारा उठाए गए सभी प्रश्नो को पहले ही जानकर उनका उत्तर भी दे चुके थे। उनके प्रत्युत्तरो की समीक्षा के प्रारभ मे यह लिखना अनुचित न होगा कि समर्थकों ने निकासी की संगणना और परिभाषा के सबंध मे कोई बहुत बड़ी गलती नही की। संगणना के लिए उन्होंने अपने आयातों और निर्यातो के खाते मे सोने चांदी के कार्य व्यापार को शामिल नही किया।[152] द्वितीय, उन्होने देखा कि पूजी का कार्य व्यापार वास्तविक व्यापार संतुलन को झूठा सिद्ध कर देता है। इस रूप मे वस्तुतः निर्यातों की वास्तविक अधिकता विदेश-व्यापार के आकड़ो के अध्ययन मात्र से सतही तौर पर दिखाई देने वाली अधिकता से कही बढ़ चढ कर है क्योकि आयातो मे उपभोग सामग्री सम्मिलित रहती है, जिसके लिए वित्त की व्यवस्था पूजी के आयातों के साधनों द्वारा की जाती है। भले ही पूजी के इन आयातों की व्यवस्था सरकारी खाते से की गई हो अथवा जनता के निजी खाते से, भले ही इंग्लैंड मे यह पूजी उगाही गई हो अथवा अंग्रेजों द्वारा भारत मे पुनः निवेशित की गई हो। देर-अबेर उसका भुगतान तो आखिर निर्यातों की अधिकता के रूप में करना ही पड़ता था।[153] यह कहना भी गलत होगा कि भारतीय नेता प्रत्यक्ष और परोक्ष आयातों मे अंतर नही कर पाए अथवा व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन के भेद को नही समझ पाए। प्रमुख परोक्ष आयात

थे—इंग्लैंड अथवा भारत में की गई सेवाओं का भुगतान, जहाजरानी, बीमा और बैंक प्रभार। भारतीयों ने इन सेवाओ पर विचार ही नही किया प्रत्युत इन्हे प्राय: ही अपनी शिकायत का प्रमुख आधार भी बनाया। बैंक, बीमा व्यापार और भारत के भीतर ही तटवर्ती जहाजरानी स्पष्टतया भारत मे विदेशी व्यापार और उद्यम के ही अग थे और भारत मे विदेशी पूजी के निवेश के इन लाभो को राष्ट्रवादियो ने अपनी जाच-पडताल का विषय बनाया था। जहा तक आलोचको के इस कथन का सबध था कि निर्यातो की अधिकता का एक भाग तो आयातो और निर्यातो पर होने वाले जहाजी खर्चे और बीमा की देनदारी का रूप था, दादा भाई ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया परतु साथ ही यह निर्देश किया कि निर्यातो और आयातो के मूल्य की सगणना करने का सरकारी ढग यह था कि निर्यातों की वर्तमान अधिकता के ही अतर्गत पहले से ही इन किरायो आदि का विधान किया जा चुका है। यह कैसे हुआ—इसका विश्लेषण उन्होने निम्नलिखित ढग से किया—भारतीय आयातो का मूल्य सरकारी खातो मे भारतीय पत्तनो पर प्रचलित मूल्य के रूप मे ही आका गया अत उस मूल्य मे तो भाडे का व्यय और बीमा की देनदारी स्वत: सम्मिलित हो गए और दूसरी ओर निर्यातों का मूल्य भारतीय पत्तनो पर प्रचलित मूल्य के रूप मे ही कूता गया, अत उनमे भाडे और बीमा का व्यय—जो उसके मूल्य मे सम्मिलित किया जाना था और जिसका भुगतान आयात के पत्तन पर किया जाना था—को अलग रखा गया। अत उनके द्वारा संगणित निकासी इस विशिष्ट वक्रता से मुक्त थी।[154] सत्य तो यह है कि वे इसके भी आगे बढ गए तथा उन्होने अपना मत प्रकट किया कि यदि निर्यातो के मूल्य मे मालभाडे और बीमे की रकम को जोड दिया जाए तो निकासी उनकी सगणना से भी अधिक बढे चढे रूप मे सामने आएगी।[155] आलोचको के इस प्रमुख तर्क का कि निकासी का वास्तविक सबध तो पजीगत सेवाओ तथा व्यक्तिगत सेवाओ के भुगतान से है, राष्ट्रवादियो द्वारा दिया गया उत्तर उपयोगिता तथा अनिवार्यता के मौलिक सुदृढ तथा परिपक्व आधार को लिए हुए था। उनका कथन था कि यदि किसी सेवा विशेष की वास्तव मे ही उपयोगिता और आवश्यकता है और उसे विदेश मे रुपया खर्च करके ही पाया जा सकता है तो इस रूप मे तो निकासी को सहन करना अनुचित नही कहा जा सकता परतु इसके सर्वथा विपरीत यदि सेवा निरर्थक है अथवा उपयोगी होने पर भी स्वय भारत मे उपलब्ध की जा सकती है तो उस पर रुपया खर्च करने के रूप मे निकासी अवश्यमेव आपत्तिजनक है।

इस धारणा का कि निकासी के प्रमुख भाग का सबध उत्पादक सरकारी ऋणो पर ब्याज और निजी विदेशी पूजीपति उद्यमियो के लाभो से है और ये दोनों ही भारत के आर्थिक विकास और सपन्नता के सूचक है, राष्ट्रवादियो ने कई तरह से उत्तर दिया। उन्होने निर्देश किया कि अव्वल तो विदेशी पूजी आवश्यक ही नही थी। इसकी आवश्यकता तो तब पडी है जबकि देश के शासक इस देश की पूजी की निकासी करते रहे हैं और कर रहे हैं। इस निकासी के न होने पर तो भारत रेलपथ आदि के लिए स्वय ही पूजी जुटा पाता और साधारणतया अपनी पूजीगत आवश्यकताओ की पूर्ति स्वयं करने में वास्तव में ही समर्थ होता। अत: विदेशी पूजी ने भारतीय पूजी का स्थान ग्रहण किया

है, उसमें किसी प्रकार की वृद्धि नही की। यदि विदेशी पूंजी का देशी पूंजी की वृद्धि में वास्तविक योगदान रहता तो उसका अवश्य स्वागत किया जाता। इसके अतिरिक्त भारत मे आयातित पूंजी वास्तव मे भारत की अपनी ही पहले निर्यात की गई पूंजी थी। अतः भारत में वास्तविक रूप में विदेशी पूंजी का निवेश किया ही नही गया है।[156]

दूसरे भारतीय नेताओ का यह निश्चित मत था कि विदेशी पूंजी वास्तव में उतनी लाभकारी कदापि नही थी जितना इसके समर्थक कहते थे। रेलें भी शुद्ध वरदान नहीं हैं और उन्हें देश की आवश्यकता से अधिक तीव्र गति से आगे धकेला जा रहा है।[157] रेलों के निर्माण के लिए उठाए गए सरकारी ऋण स्पष्टतया न तो लाभप्रद है और न ही आवश्यक। निजी विदेशी पूंजी केवल ब्याज को ही इस देश मे बाहर नही खीच ले जाती प्रत्युत उद्यम के सभी प्रकार के लाभ भी हड़प जाती है और इससे देश पूंजी के पुर्नानिवेश के गौण लाभों मे भी वंचित रह जाता है।[158] इसके अतिरिक्त रेलगाडियो ने 19वी शताब्दी के अंत तक किसी प्रकार का कोई लाभ नही दिखाया।[159] वेतन आदि के रूप मे देश को कुछ लाभ अवश्य हुआ परंतु इन वेतनों का भी एक अंश विदेशियों को प्राप्त हुआ और यह भी निकासी का ही एक रूप है।[160] इससे भी बढ़कर उल्लेखनीय सत्य यह है कि विदेशी उद्यमो मे कार्य की शोचनीय स्थिति को और पारिश्रमिक के रूप मे मिलने वाली रकम की तुच्छता को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इनसे भारत को होने वाला लाभ मामूली ही है।[161]

भारतीय नेताओ ने और अधिक तर्क प्रस्तुत किए। उनका कथन था कि औद्योगिक क्षेत्र मे एकाधिकार जमाने की प्रवृत्ति के कारण विदेशी पूंजी स्वदेशी पूंजी के उपयोगी विनियोजन को निरुत्साहित और वंचित कर रही थी, उसके मार्ग मे बाधा बन रही थी, इस रूप मे वह देश के लिए हानिकारक थी।[162] और कुल मिलाकर विदेशी पूंजी का उद्देश्य भारत को विकसित और संपन्न बनाना नही था प्रत्युत उसका दोहन, शोषण और अपहरण करना था।[163]

इस प्रकार इस धारणा का कि भारत को सस्ते ब्याज की दर पर ऋण उपलब्ध होने से उसे लाभ पहुंचता है, उत्तर यह था कि अव्वल तो ऋणों की सर्वथा ही कोई आवश्यकता नही। दूसरे, उनका उपयुक्त ढंग से प्रयोग ही नही किया जाता। वस्तुतः वे ऋण कुछ और न होकर भारत मे निष्कासित भारत की ही पूंजी थे, अतः उनकी सस्ती दर पर उपलब्धि का प्रश्न ही नही उठता। इसके अलावा यदि ऊंची दर पर ही सही, देश में देशवासियो से ही ऋण लिया जाता तो भुगतान देश मे रहता और देश के साधनों को फलीभूत बनाता, जबकि नीची दर के विदेशी ऋण निकासी का ही कारण बनते हैं।

भारतीय नेताओ ने भारत की तुलना कुछ समय निर्यात अधिशेष रखने वाले अमेरिका से करने को सर्वथा अनुचित बताया। इस तथ्य के अलावा कि अमेरिका आमतौर पर ऋण ली गई पूंजी पर केवल ब्याज का ही भुगतान करता है और उद्यम के सारे लाभ देश के भीतर अपने पास ही रखता है।[164] भारत के निर्यात अधिशेष और अमेरिका के निर्यात अधिशेष के बीच एक अन्य बहुत बडा और चौंकाने वाला अंतर था। अमेरिका इस समय अपने निर्यात अधिशेषों के द्वारा बाहरी देशों के लिए गए ऋणों का भुगतान

कर रहा है, जिसका अर्थ यह है कि अतीत में वह निर्यात अधिशेष वाला देश था। इसके निर्यात अधिशेष इसकी आस्थगित वसूलियों से संबंधित है। परंतु भारत का मामला बिल्कुल अलग-थलग था। वह पिछले ऋणों का भुगतान नही कर रहा है क्योंकि भारत के निर्यात अधिशेषों की संगणना ही केवल तब की जाती है, जब उनमे आयात पूजी आयातों में सम्मिलित कर दी जाती है। इस प्रकार जहा तक भुगतान-चिट्ठे का सबंध है ऋण में ली गई धनराशि का भुगतान तो उसी समय स्वयं निर्यातो के साथ ही कर दिया जाता है। इस प्रकार एक ओर तो भारत के पास अतीत मे कोई आयात अधिशेष नही थे। 1857 के विद्रोह के पश्चात कुछ-एक वर्षों तक थे भी, तो उनका परिमाण तुच्छ था। दूसरी ओर भारत के निर्यात अधिशेषों ने भविष्य के लिए इसे दूसरे देशो पर किसी प्रकार की दावेदारी प्रदान नही की। इसलिए कालातर मे आयात अधिशेष इसकी किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति नही कर पाएंगे। फलत भारत का निर्यात अधिशेष एक ऐसी विचित्र प्रक्रिया है—जिसकी पूजी के कार्य व्यापार का न तो कोई अतीत है और न ही कोई भविष्य। यह तो पैदा होते ही दम तोडने की सी स्थिति है।[165]

इन सब तर्कों के बावजूद निकासी सिद्धात के प्रस्तावक प्राय ही निकासी संबधी अपनी संगणनाओ से उत्पादक सरकारी ऋणो के लागत मूल्य को शामिल न करने पर सहमत थे।[166] इस संबध मे यहा यह भी उल्लेखनीय है कि उपयोगिता को आधार मानते हुए इन नेताओ ने उधार ली गई पूजी के सपन्न किए गए सिचाई कार्य के विरुद्ध एक शब्द भी नही कहा। इसी प्रकार कुछ-एक नेताओ ने तो देश के उत्पादक ससाधनों के विकास के लिए विदेशो से ऋण लेने का समर्थन किया।[167]

भारतीय नेताओ ने एक अन्य तथ्य की ओर सकेत करते हुए कहा कि भारतीय सरकारी ऋण का एक भाग पूर्णतया राजनैतिक प्रकृति का होने के कारण निरर्थक, अनावश्यक और अपने स्वरूप मे अनुत्पादक है तथा इसके बदले मे तुल्य मूल्य का कुछ भी प्राप्त नही होता है।[168] 1858 मे लगभग 690 लाख पौंड तक पहुचे साधारण सरकारी ऋण के उद्गम की खोज करते हुए भारतीय नेता इस परिणाम पर पहुचे कि इसको अस्तित्व में लाने वाली ईस्ट इडिया कपनी है, जिसने अपने शासन काल मे ब्रिटिश द्वारा भारत को जीतने के लिए किए गए युद्धो के खर्चे की पूर्ति के लिए तथा भारत को कंपनी के लाभों का भुगतान करने के लिए इस रोग की सृष्टि की है। इसके साथ इसमे कपनी द्वारा ताज को भारत के प्रशासन के हस्तातरण के मूल्य के रूप मे ईस्ट इंडिया कपनी के भागीदारों को क्षतिपूर्ति के रूप मे दी जाने वाली धनराशि तथा 1857 के विद्रोह को कुचलने में खर्च की गई धनराशि भी जोड़ दी गई है। इस प्रकार 1858 के बहुत बाद भी भारत विदेशी शक्ति द्वारा विजित होने का मूल्य चुकाता आ रहा है।[169] भारत और इंग्लैंड के अनुचित वित्तीय संबधों के उदाहरण हैं—1878 के अफगान युद्ध का, मिस्री युद्धों का, 1890 के बर्मा युद्ध तथा सीमात युद्धों का खर्च भारत के मत्थे मढ़ना। ताज द्वारा भारत का प्रशासन संभालने के उपरात साधारण सरकारी ऋणों का भार उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।[170] अत राष्ट्रवादी भारतीय नेताओं की दृष्टि से लगभग 1000 लाख पौंड भारतीय सहकारी ऋण का एक बहुत बड़ा भाग स्पष्टतया व्यापार-ऋण नहीं है। इसलिए

नैतिक दृष्टि से वह भारत का दायित्व नही। इसका ब्याज स्पष्टतया धन की निकासी है। यहा यह उल्लेखनीय है कि दादा भाई कभी कभी ऋण के इस अंश के प्रति भी उदारता बरतने को सहमत हो जाया करते थे।[171]

जहा तक भंडारों का संबंध था, वे पहले से ही आयातो में सम्मिलित थे[172] और इसके अतिरिक्त वे निकासी प्रकृति के ही थे, क्योंकि मूलत: वे इस रूप मे अनावश्यक थे क्योकि उनका उत्पादन देश मे किया जा सकता था[173] परंतु फिर भी इन भंडारों के भुगतान के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण उदार था।[174]

निकासी के विरोधी भारतीय नेता निकासी के जिस एक भाग को किसी भी स्थिति मे क्षमा करने के लिए सर्वथा तैयार नही थे, वह था भारत सरकार द्वारा यूरोपीय कर्मचारियों पर किया जाने वाला व्यय। उनके विचार मे सेवाओं के लिए किया जाने वाला भुगतान निकासी की जड था। स्पष्ट है कि भारत को निकासी के इस भाग के बदले मे तुल्य मूल्य का कुछ भी तो प्राप्त नही होता। दूसरी ओर भारतीय नेता यह मानने को तैयार नही थे कि गैर आर्थिक सेवाओं के द्वारा इस मद की निकासी की क्षति-पूर्ति हो जाती है।[175] वस्तुत. ये सेवाएं आवश्यक ही नही थी। सत्य तो यह है कि देश को इन सेवाओ की कोई आवश्यकता ही नही है क्योंकि स्वयं भारतीयो द्वारा अपेक्षाकृत अधिक योग्यता और अधिक सस्तेपन के साथ ये सेवाए की जा सकती है।[176] अत. इन सेवाओ के लिए किया जाने वाला भुगतान अनिवार्य रूप मे थोपा गया है और वास्तव मे निकासी का ही एक निश्चित रूप है। यह भी एक रोचक तथ्य है कि भारतीय नेताओ ने भारतीय कारखानो मे विदेशी तकनीशनो की नियुक्ति[177] पर कोई आपत्ति नही की अथवा भारतीय विश्वविद्यालयो मे योग्य अध्यापकों की नियुक्ति का भी विरोध नही किया।[178] इन नेताओं ने विदेशो मे भारतीय छात्रों की शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय मे वृद्धि के लिए सक्रिय सघर्ष किया।[179] इन दोनो मदो मे होने वाली निकासी को आवश्यक और उपयोगी माना गया। दूसरे, राष्ट्रवादियो का कथन था कि भारत सरकार द्वारा सैनिक और असैनिक प्रशासन पर किए जाने वाले व्यय का एक बहुत बडा भाग भारत के हित को दृष्टि मे रखकर नही किया जा रहा था प्रत्युत इसका उद्देश्य ब्रिटिश और उसके नागरिकों के हितो को सुरक्षित करना था।[180] अत कानून और व्यवस्था के नाम पर भी किया गया व्यय स्पष्ट रूप से धन की निकासी था। इसके अतिरिक्त दादा भाई नौरोजी ने सरकारी अधिकारियो को भारत की सुरक्षा के दावे को चुनौती देते हुए प्रश्न किया कि भारत समुचित रूप से सुरक्षित कहा है जबकि स्वयं अग्रेजो को इसे लूटने की खुली छूट मिली हुई है।[181]

कुछ एक भारतीय नेताओ ने यह भी टिप्पणी की कि यूरोपीय कर्मचारियों को दिए जाने वाले भुगतान को गैर आर्थिक पहलू से कितना ही न्यायसंगत सिद्ध करने का प्रयास क्यों न किया जाए, आर्थिक दृष्टि से तो वह निश्चित रूप से ही धन की निकासी था।[182] दादा भाई ने इस संबंध में व्यंग्य प्रहार करते हुए ब्रिटिश जनता से प्रश्न किया कि ,क्या वे उपयोगी सेवा के तर्क पर अपने प्रशासन के उच्च पदों पर और प्रमुख स्थानों पर फ्रांसीसी युवकों जैसे विदेशियों को आरूढ़ होने की अनुमति देंगे ?[183] उन्होंने इस बात का भी

निर्देश किया कि स्वयं अंग्रेजों ने 16वीं शताब्दी की अवधि में अपने देश से इटली और पाये को हो रही संपत्ति की निकासी पर तीव्र आपत्ति उठाई थी।[184]

अंतिम, इस तर्क का कि भारत को ब्रिटिश नागरिकों की नियुक्ति से गैर आर्थिक लाभ प्राप्त होते है, खंडन करते हुए भारतीय नेताओं ने लाभो के मुकाबले होने वाली गैर आर्थिक हानियों का रेखाचित्र प्रस्तुत किया। उन हानियों मे प्रमुख थी – नैतिकता की हानि, बौद्धिकता की हानि, अनुभव की हानि तथा सारे राष्ट्र को बौना और नपुंसक बनाने के रूप मे हानि। 1897 मे विलबी कमीशन के सामने इस सबध मे भारतीयो के मामले को जी० के० गोखले ने अत्यंत ही स्पष्टता और प्रौढता के साथ प्रस्तुत किया :

> विदेशी अभिकरण की प्रशासनिक मंहगाई ही एकमात्र बुराई नही है। इसके साथ नैतिकता की बुराई जुडी हुई है, जो किसी भी अन्य तत्व से अपेक्षाकृत बढ-चढ कर है। वर्तमान पद्धति के अतर्गत भारतवासियो को बौना और नपुंसक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। ऐसा प्रयास किया जा रहा है कि हम हीन भावना से ग्रस्त होकर ही अपना सारा जीवन जिएं और इस देश का श्रेष्ठतम व्यक्ति भी इसलिए झुक जाए ताकि वर्तमान प्रशासन का अहम् संतुष्ट हो सके। उन्नति की प्रवृत्तिया, यदि मुझे इस शब्द के प्रयोग की अनुमति दी जाए, ऐटन और हैरो मे शिक्षा पाने वाले प्रत्येक बच्चे को यह प्रेरणा मिलती है कि वह एक दिन बडा होकर ग्लैडस्टन, नेल्सन अथवा विलिगटन बने। इसके लिए उसे प्रत्येक उपलब्ध सुविधा जुटाई जाती है, सर्वोत्तम प्रयत्न किए जाते हैं—परंतु हमे प्रेरणा और प्रोत्साहन की इन सब प्रवृत्तियों से वचित रखा जाता है। वर्तमान शासन प्रणाली मे हमारे देश के लोग उन्नति के जिस चरम शिखर पर पहुचने के योग्य है वहा कभी नही पहुंच सकेंगे। स्वशासित देश के व्यक्ति जिस नैतिकता के उत्थान की आशा करते है वह हमारे लिए कभी संभव नही। प्रयोग मे न आने के कारण हमारी प्रशासनिक क्षमता तथा सैन्य प्रतिभा भी धीरे धीरे नष्ट हो जाएगी और हम अपने ही देश मे कमरतोड मजदूरी से आजीविका जुटाने वाले बन कर रह जाएगे।[185]

इस विषय मे यहा यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय अधीनता के कारण उत्पन्न गैर आर्थिक क्षतियों की ओर आध्यात्मिक पतन की चर्चा करते समय भारतीय नेता सचमुच ही उस समय हक्के-बक्के से अवश्य रह जाते होगे जबकि उनके शासक उन्हे विदेशी शासन के आर्थिक लाभों को देखने के उपदेश झाड़ते होंगे। जब इन नेताओं ने भौतिक अधिमान को स्वीकार कर लिया और विदेशी शासन द्वारा की गई आर्थिक हानियों की शिकायत की तो उन्हें गैर आर्थिक और आध्यात्मिक लाभो की ओर ध्यान देने को कहा गया। उन लोगों का उस समय आर्थिक और गैरआर्थिक मामलों को एक साथ जोड़ने और इससे संबधित भ्रांतिक तर्क पर आपत्ति करना उचित था। किसी भी रूप मे भारतीय नेता विशेषतया 1905 के उपरात ही विदेशी शासन के विरोध में आध्यात्मिक आकांक्षाओं और आर्थिक आवश्यकताओं को प्रभावी ढंग से मिलाकर उनका उपयोग करना सीख पाए।

निकासी सिद्धात के विरोधियों के इस अंतिम तर्क के विरुद्ध, कि निकासी के बदले भारत को आर्थिक विकास के उपयुक्त उत्तम प्रशासन मिलता है, सारे ही भारतीय नेता

एक स्वर में भडक उठे। राष्टवादी नेताओं की आर्थिक नीतियों के समग्र विश्लेषण मे यह स्पष्ट है कि जस्टिम रानाडे—जो अन्यथा निकासी पर आवश्यकता मे अधिक बल देने के पक्ष में नहीं थे—सहित सभी राष्ट्रवादी नेता इस एक प्रश्न पर समान रूप से सहमत थे कि भारत में ब्रिटिश प्रशासन देश के आर्थिक विकास के हित मे कदापि नहीं है। वस्तुत: उनका सारा आर्थिक आंदोलन प्राय: सभी क्षेत्रों मे सरकारी नीति की घातक प्रवृत्ति से बचाने की भावना से ही प्रेरित था।

निकामी सिद्धात के उपर्युक्त विश्लेषणों और इसके समर्थकों द्वारा इसकी पुष्टि मे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि उनके हाथ में निकामी सिद्धात एक अलग-थलग आलोचना नही था प्रत्युत उद्योग, रेल, विदेशी व्यापार, विदेशी पूजी, मुद्रा और विनिमय, भूमि लगान, श्रम और कराधान तथा व्यय से संबधित सरकारी नीति के मूल्यांकन का एक अंग था। यह सिद्धात भारतीय नेताओ की आर्थिक नीतियो के लगभग प्रत्येक पहलू से घनिष्ठ तथा गहन रूप से जुड़ा हुआ था। वास्तव मे दादा भाई नौरोजी, आर० सी० दत्त और एक लोकप्रिय स्तर पर राष्ट्रवादी समाचार-पत्रो ने सभी आर्थिक प्रश्नो को उठाया और निकामी सिद्धात का उपयोग सरकारी आर्थिक नीतियों की समग्र राष्ट्रवादी आलोचना को प्रकाश मे लाने के लिए तथा भारत मे ब्रिटिश राज्य की शोषक प्रवृति को प्रकाश मे लाने के लिए किया। सर्व साधारण के मन मे निकामी आर्थिक शोषण को सरल और सजीव रूप देने मे समर्थ थी। अन्यथा शोषण के जटिल रहस्यों के समझने के लिए समय व क्षमता तो केवल अर्थशास्त्रियों के पास थी। निकासी वह बिंदु थी जिस पर भारतीय राष्ट्रीयतावाद की चोट पूरी ताकत से लगती थी।

राजनीतिक आशय

निकासीवाद की आर्थिक महत्ता कुछ भी क्यों न रही हो, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ मे तो इसकी वास्तविक महत्ता इसके राजनैतिक आशयों मे निहित है। क्योंकि इसने बात साफ कर दी और भारतीयों को उस समय भारतीय स्थिति के प्रमुख विरोधी को समझने अर्थात भारतीयों को अपनी स्थिति और भारतीय साम्राज्य मे अंतर्विरोध को समझने के योग्य बना दिया। इस अनुभूति की प्रक्रिया को समझने के लिए उस प्रक्रिया को देखना पड़ेगा जिसके अंतर्गत निकासी सिद्धात की रचना और प्रचार ने अंत में इस सिद्धांत के प्रवर्तक दादा भाई नौरोजी के राजनैतिक दृष्टिकोण को एक विशिष्ट रूप दिया।

सर्वप्रथम, निकासी की मूल परिभाषा और उसके कारण ने दादा भाई नौरोजी को यह मानने से कि यह भारत के पिछड़ेपन का उपकरण और परिणाम था, इनकार करने पर तथा उसके बदले यह मानने पर विवश कर दिया कि यह भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का कारण अथवा यथार्थत: भारत के विदेशी सत्ता द्वारा शासित होने का ही परिणाम था। अपने निबंध, 'पावर्टी आफ इंडिया' में, उन्होने इस तथ्य पर जोर दिया कि प्रधानतया भारत पर राजनैतिक अधिकारो के कारण इंग्लैंड भारत के निर्यातों के एक बड़े भाग को रखने में समर्थ था।[186] 1896 मे लार्ड विलबी को

लिखे अपने पत्र में उन्होंने बार बार और जोर देते हुए लिखा : हमारे लिए निकासी एक व्यापारिक मामला नहीं है। यह विदेशी सत्ता द्वारा भारत के संसाधनों के खर्चों के अस्वाभाविक प्रशासन और अस्वाभाविक प्रबंध का परिणाम है।[187] उन्होंने दृढ़तापूर्वक लिखा कि जहां तक इंग्लैंड में प्रभारों की देयता का संबंध हैं, वे भारत की किसी भी प्रकार की सहमति के बिना, अत्याचार के द्वारा बलपूर्वक ही लिए जा रहे हैं।[188] इस प्रश्न के समग्र राजनैतिक पक्ष ने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। और उन्होंने लिखा कि लार्ड मैकाले ने ठीक ही फरमाया है कि कंधों पर रखे जाने वाले सभी प्रकार के जुओं में अजनबियों का जुआ सर्वाधिक भारी होता है।[189] बाद में 1897 में विलबी कमीशन के समक्ष जिरह के दौरान उन्होंने यह टिप्पणी की, भारत में ब्रिटिश राज्य का स्वाभाविक और आवश्यक दोष भारत की आर्थिक, राजनैतिक और बौद्धिक निकासी है। इसे समुद्र पार के विदेशी शासन से पृथक् किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि यह प्रशासन इस सुदृढ़ सिद्धांत पर विश्वास ही नहीं रखता कि भारतीयों को अपने देश की सेवा में समुचित भाग और उनके अपने ही खर्चों में उन्हें कुछ कहने का अधिकार मिलना चाहिए। इस टिप्पणी के साथ उन्होंने बड़ी ही सुस्पष्ट भाषा में निकासी के राजनीतिक कारणों की ओर इशारा किया।[190] निकासी सिद्धांत के अध्ययन से निकलने वाले निष्कर्षों ने भारत में ब्रिटिश राज्य के स्वरूप व प्रयोजनों के विषय में दादा भाई के विचार व दृष्टिकोण को धीरे धीरे रंगना शुरू कर दिया। अब निकासी पर विचार करते समय सामान्य रूप से ब्रिटिश राज्य को दैवी वरदान बतलाने वाले दादा भाई एक दूसरी भाषा में ही बोलने लगे। धीरे धीरे और लगभग अपनी इच्छाओं के विरुद्ध वे यह अनुभव ही नहीं करने लगे पत्युत सार्वजनिक रूप से घोषित करने लगे कि ब्रिटिश राज्य को उपयोगी, दयालु और लोकहितकारी मानना मात्र एक भ्रम था। जैसाकि इसी अध्याय के प्रारंभिक भाग में हम निर्देश कर चुके हैं, दादा भाई के अनुसार, भारत में औद्योगिक विकास के अभाव का और भारतीयों की दरिद्रता का सारे का सारा ही दायित्व निकासी पर है और यह निकासी शासकों की दूषित नीति का ही परिणाम है। उन्होंने यह मानने से इनकार कर दिया कि निकासी को समक्ष रखकर सोचने पर ब्रिटिश राज्य के अन्य कल्पित लाभों, न्याय और व्यवस्था, जीवन और संपत्ति की सुरक्षा, विदेशी आक्रमण से बचाव तथा अकाल से बचाव, की भारतीय जनता के लिए कोई उपयोगिता थी। 1880 में उन्होंने अकाल से बचाव के लिए उठाए गए पगों पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा : भारत के शासक अपने लिए इस संबंध में किसी प्रकार का श्रेय लेने का कोई दावा नहीं कर सकते क्योंकि वस्तुत: इन अकालों के लिए वे ही प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं। वे ही तो भारत की संपदा की निकासी कर रहे हैं जो परिणाम में भारतीयों के द्वार पर दुर्भाग्य भुखमरी और लाखों मौतें लाती है।[191] न ही भारत ब्रिटिश शासन द्वारा बाहरी आक्रमण के विरुद्ध जुटाई गई सुरक्षा से किसी भी प्रकार से लाभान्वित होता है, क्योंकि अंग्रेज लोग भारत के प्रवेश द्वार पर तो संतरी बनकर खड़े हैं और सारे विश्व को चुनौती देते हैं कि वे भारत की सभी बाहरी आक्रमणकारियों से रक्षा कर रहे हैं और करेंगे परंतु जिस खजाने की रक्षा का वे दम भरते हैं, चोर दरवाजे से उसी खजाने को चुपचाप ले जा रहे

हैं।[192] स्थिति की वास्तविकता यह है कि देश की रक्षा करना तो दूर रहा, अंग्रेजी शासन तो विदेशी आक्रमण को स्थाई रूप दे रहा है, उसे बढ़ा रहा है, दिन प्रतिदिन उसकी संभावना में वृद्धि कर रहा है। इसके साथ ही अंग्रेजी शासन देश को समग्रत: परंतु धीरे धीरे विनाश के गढे में धकेल रहा है।[193] वस्तुत: अंग्रेज निकृष्टतम आक्रमणकारी था और भारत को इससे बुरे दुर्भाग्य का सामना कभी नही करना पड़ा।[194] जीवन और संपत्ति की सुरक्षा के लाभों के संबंध मे दादा भाई ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

> यह एक मिथ्या धारणा है कि भारत मे देशवासियों को जीवन और संपत्ति की सुरक्षा प्राप्त है। वास्तविकता यह है कि सुरक्षा नाम की कोई वस्तु है ही नही। एक रूप में जीवन और संपत्ति की सुरक्षा उपलब्ध है और वह इस प्रकार से है कि लोग किसी प्रकार की हिंसा मे, आपसी मार-पीट से तथा देसी निरंकुश शासकों के भय से सुरक्षित है। यह जीवन और संपत्ति की निस्संदेह वास्तविक सुरक्षा है और भारत इसके लिए कृतज्ञता प्रकट करने से इनकार नही करता, परंतु इंग्लैंड के स्वयं अपने पंजे से उसे संपत्ति की किसी प्रकार की सुरक्षा सर्वथा ही प्राप्त नही है। फलतः जीवन की सुरक्षा भी प्राप्त नही। भारत की संपत्ति सुरक्षित नही। जो सुरक्षित और पूर्णत: सुरक्षित है, वह है, इंग्लैंड, वह पूर्ण रूप मे और समग्र रूप से रक्षित और सुरक्षित है तथा वह अपनी यह सुरक्षा बनाए रखना चाहता है ताकि वह वर्तमान दर पर 30,000,000 से 40,000,000 पौंड की संपत्ति प्रतिवर्ष भारत से ले जा सके और इसे हजम कर सके।···इसलिए मै यह कहने का साहस कर सकता हू कि भारत को संपत्ति और जीवन की सुरक्षा प्राप्त नही है। इतना ही नही, उसे तो ज्ञान और बुद्धि की सुरक्षा भी प्राप्त नही है। भारत मे लाखो करोडो लोगो के लिए तो जीवन का केवल यही अर्थ है, आधे पेट खाना नसीब होना, अथवा भूखो मरना अथवा दुर्भिक्ष का सामना करना अथवा रोगों मे जूझना।[195]

कानून और व्यवस्था के संबंध मे 1876 मे दादा भाई ने लिखा :

> एक भारतीय कहावत है कि 'किसी की पीठ पर भले ही लात मारो परतु किसी के पेट पर कभी लात नही मारनी चाहिए। देसी निरकुश शासन मे लोग अपने उत्पादनो को सुरक्षित रख सकते थे और उनका उपभोग कर सकते थे। यह दूसरी बात है कि इसके पीछे उन्हें कभी कभी हिसा का सामना भी करना पडता था। ब्रिटिश निरंकुश शासन मे लोगों को शांति तो प्राप्त है, हिसा का अस्तित्व नही है परतु उसका कोष शातिपूर्वक, अनदेखे रूप से और चालाकी के साथ लूटा जा रहा है। अब भारतीय कानून और व्यवस्था के अंतर्गत शातिपूर्वक भूखा मरता है और शातिपूर्वक ही मृत्यु का ग्रास बनता है।[196]

उन्होंने इसके साथ आगे कहा : मैं नही कह सकता कि अंग्रेजो की ऐसी स्थिति के बारे मे क्या प्रतिक्रिया होगी।

निकासी सिद्धात ने भारत में ब्रिटिश राज्य की प्रकृति और उसके स्वरूप को समझने की दिशा में उन पर गहरा प्रभाव डाला। इस प्रकार उन्होंने अपने निबंध, 'दी पावर्टी आफ इंडिया' के लगभग निष्कर्ष के रूप में ही लिखा : निकासी के कारण सारा ही शासन

चक्र एक गलत, अप्राकृतिक और आत्मघाती दिशा मे घूम रहा है।[197] 12 फरवरी 1895 को हाऊस आफ कामन्स मे दिए गए अपने भाषण मे उन्होने घोषणा की कि ब्रिटिश भारत वास्तव में ब्रिटिश भारत ही था, भारत का भारत नही।[198] उन्होंने और आगे कहा, एक प्रकार से तो बिपुलसंख्यक भारतीयो की स्थिति दक्षिणी राज्यों के दासों की स्थिति से भी बहतर है।···दास मालिको की भूमि पर और मालिकों के साधनों से काम करते हैं। मालिक उनके केवल श्रम का ही लाभ उठाते हैं, इसके विपरीत भारतीय अपनी ही धरती पर और अपने ही साधनों से काम करते हैं, इतने पर भी उन्हें अपने लाभ विदेशी मालिको को सौंप देने पडते है।[199] इसी प्रकार 31 जनवरी 1897 को लार्ड विलन्बी को लिखे अपने एक पत्र मे दादा भाई ने वकालत की, वे (ब्रिटिश नागरिक) हमें मित्र नागरिक कहते है, उन्हे अपने इस कथन को अवश्यमेव यथार्थ का रूप देना चाहिए। इस समय तो सत्य की बजाय यह एक निरा झूठ और भद्दा मजाक है, इस समय तो दोनों का नाता दास और स्वामी का ही है।[200] दादाभाई यह देखकर आश्चर्य चकित रह गए कि उपकार के नाम पर ब्रिटिश ने शोषण का यह कैसा भ्रमजाल फैला रखा है। देश का शोषण ब्रिटिश राज्य द्वारा इस ढंग मे किया जा रहा है कि देखने मे न किसी प्रकार का दबाव खुले रूप मे सामने आता है, न किसी प्रकार से जीवन तथा संपत्ति को क्षति पहुंचाई जाती है, जिससे कि संसार इस लूट को देख पाए और इस पर काप उठे।[201] उन्होंने दृढ स्वर मे कहा, भारतीय खर्चों के इस चालू अन्यान्य और दुर्भाग्यपूर्ण प्रशासन के अंतर्गत ब्रिटिश राज्य भारत का उपकारी होने का ढोंग करता है। सत्य यह है कि ब्रिटिश राज्य भारत का हित करना तो दूर रहा, उसका खून ही चूस रहा है।[202] 1904 तक दादाभाई भारत मे ब्रिटिश राज्य के वर्णन-प्रसंग मे कटु और कठोर शब्दो का ही प्रयोग करने लगे थे। अगस्त 1904 में हेग मे हुए अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन मे दिए गए अपने भाषण मे दादाभाई ने ब्रिटिश राज्य को 'असभ्य' बतलाया। उनके द्वारा प्रयुक्त वास्तविक शब्द थे :

> 'असभ्यता' शब्द का क्या अभिप्राय है? क्या इसका अर्थ यह है कि यदि एक क्रूर व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति की पिटाई करता है और उसे लूट लेता है तो उसका यह दूषित कर्म असभ्यता है? यही बात राष्ट्रो पर ही लागू होती है, और इसी ढंग का प्रयोग ब्रिटेन भारत के प्रति कर रहा है। इसका अंत अवश्य ही होना चाहिए। पशु शक्ति का साम्राज्य असभ्यता ही है।[203]

निकासी सिद्धात ने एक अन्य रूप में भी दादा भाई के चिंतन को गहरापन दिया, धीरे धीरे उन्होंने राष्ट्रवादियों की इस परपरागत धारणा पर अविश्वास करना प्रारभ कर दिया कि भारत में जो कुछ भी गलत काम होता है, उसका सारा दोष भारत में रहने वाले स्वार्थी और भारतीय अधिकारियो को अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करने को विवश करने वाले अंग्रेज अधिकारियो का है। विलबी कमीशन के समक्ष जिरह में उन्होंने सरकारी कर्मचारियों की बुरी कार्य प्रवृत्ति को नहीं प्रत्युत सरकार की गंदी पद्धति अथवा मशीनरी को ही निकासी के लिए उत्तरदायी ठहराया। इस प्रकार उन्होंने कहा :

मेरा सामान्य प्रहार सरकारी अधिकारियों पर नहीं, प्रत्युत उस बुरी व्यवस्था

पर है, जिसके अंतर्गत उन्हें काम करना पड़ता है। उन्हें विवश होकर वह सब कुछ करना पड़ता है जिसका परिणाम ही असंतोषप्रद है।···बुरी व्यवस्था के ही ये कारण हैं, जिसके अंतर्गत वे कार्यरत है और जिस पर विचार करने और जिसके संशोधन करने की आवश्यकता है ताकि वे स्वयं अपेक्षाकृत अधिक संतोषजनक ढंग से अपना कार्य कर सकें···।[204]

यहा यह भी उल्लेखनीय है कि जहां निकासी-सिद्धांत मे दादाभाई ब्रिटिश राज्य की प्रवृति को समझने में सफल हुए, वहां कुछ एक अन्य नेताओं ने इस सिद्धांत का उपयोग ब्रिटिश शासन के शोपक चरित्र को नंगा करने मे किया। उदाहरणार्थ 9 जून 1900 के अपने अंक में 'अमृत बाजार पत्रिका' ने निकासी-सिद्धांत के समर्थन में इस आधार पर आवाज उठाई कि इससे 'गोरे आदमी के कंधे पर भार' के सिद्धात का प्रत्यक्ष खंडन होता है :

हमें सर्वदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सामान्य धारणा यह है कि इंग्लैंड को कभी भारत मे बलपूर्वक खिराज नही लेना चाहिए। इंग्लैंड में तो यह विश्वास जम चुका है कि अंग्रेजो को काले भारतीयों का भार उठाना पड़ता है परंतु वे भारतीयों को अपना भार कभी नही उठाने देते। ब्रिटिश सरकार तो यह कभी नहीं मानेगी कि वह एक कौडी भी इस देश से ले लेती है, परंतु यदि यह दिखाया जा सके कि इग्लैंड केवल भारत मे खिराज ही नही लेता प्रत्युत बहुत भारी खिराज वसूल करता है तो अंग्रेजो को यह मानना पड़ेगा कि उन्हे अपनी असहाय तथा पराश्रित प्रजा की हानि की पूर्ति के लिए कुछ-न-कुछ करना पडेगा।

निकासी के विरुद्ध जीवन भर संघर्ष करते रहने के उपरात भारत मे ब्रिटिश राज्य की प्रवृत्ति, चरित्र और उद्देश्यों के संबंध मे निर्धारित धारणा ने उन्हे राजनैतिक युद्ध के मार्ग पर अग्रसर होने को बाध्य कर दिया। इस प्रकार जिस व्यक्ति ने अत्यंत हल्की मागों को प्रस्तुत करने के साथ ही अपना राजनैतिक जीवन प्रारंभ किया था, धीरे-धीरे एक वर्ष से दूसरे वर्ष और एक स्तर से दूसरे स्तर पर अपनी राजनीति और राजनैतिक मांगों मे उत्तरोत्तर अतिवादी बनता गया।

प्रशासनिक सेवाओं के संकीर्ण क्षेत्र में दादाभाई ने भारत सरकार के यूरोपीय कर्मचारियो को 'जोक' बतलाया[205] और 1885 के प्रारंभ मे ही उन्होंने माग पेश की कि नियंत्रण तथा अधीक्षण का उच्चतम अधिकार ही केवल अंग्रेजों के हाथ में रहना चाहिए तथा अन्य सभी सेवाओं की प्रबध व्यवस्था भारतीयों को सौप देनी चाहिए।[206] 1897 में उन्होंने अपनी माग का और अधिक स्पष्ट विश्लेषण किया तथा दृढ़ता से कहा कि केवल वायसराय, राज्यपाल तथा उपराज्यपाल के पद ही अंग्रेजों के हाथ में रहने चाहिए।[207]

क्रांतिकारी मांगों को पेश करने में अथवा ऊंचे राजनैतिक स्तर के नारे देने मे दादा भाई ने जल्दबाजी से काम नहीं लिया और प्रारंभ में निकासी समाप्त न करने की स्थिति में गंभीर परिणामों की चेतावनी देने के रूप में अपने नकारात्मक अतिवाद को प्रकट किया। हां, धीरे-धीरे परंतु अलक्षित रूप से इन चेतावनियों ने प्रत्यक्ष राजनैतिक नारों और मागों का रूप अवश्य ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया। 1880 में ही दादा भाई ने

ब्रिटिश साम्राज्य को अपनी भारत के अतीत के शासकों के साथ तुलना न करने के लिए खबरदार किया। उन्होंने घोषणा की कि यदि ब्रिटिश अपने आपको उच्च ज्ञान और श्रेष्ठ सभ्यता के अनुपात मे पर्याप्त श्रेष्ठ सिद्ध नही करते और यदि भारत उनके अधीन व्यापक प्रगति और समृद्धि प्राप्त नही करता, तो भारत मे उनके टिके रहने मे कोई औचित्य नही। इसके अतिरिक्त पिछली निकासी को दुर्भाग्य मानकर भले ही भुला दिया जाय और क्षमा कर दिया जाए परतु एक बार मामला साफ हो जाने पर भविष्य मे की जाने वाली इस प्रकार की निकासी को तो सीधी सादी भाषा मे डकैती और विध्वस ही कहा जाएगा।[208] 1896 मे उन्होने टिप्पणी की कि यद्यपि भारतीयो को अब भी ब्रिटिश जानत के स्वस्थ अंत करण मे पक्का विश्वास है परतु वर्तमान व्यवस्था का परिणाम भारतीयो को इस निष्कर्ष पर पहुचा देगा कि भारतीयो के सामने अपने वर्तमान प्रशासको से पिड छुडाने के सिवाय और कोई रास्ता नही है।[209] और फिर 'यदि निकासी जारी रही तो ब्रिटिश शासन भी एक विदेशी निचोडने वाली क्रूर शक्ति बना रहेगा, जिस के फलस्वरूप जनता यूरोपीय शासको से मुक्त होने को उत्कठित रहेगी।'[210] 'असतोष के कारण' पर लार्ड विलबी को लिखे अपने पत्र में, ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी के महान उद्घोषक, जिन्होने भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के द्वितीय अधिवेशन मे यह घोषणा करने का साहस किया था कि हमे बहादुरी से यह घोषणा करनी चाहिए कि हम पूर्ण रूप से ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादार हैं,[211] उसी व्यक्ति ने पूर्वापेक्षा अधिक स्पष्ट वाणी मे गर्जना की, क्या किसी भी मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लिए यह सोचना सभव है कि कोई एक देश दूसरे देश को अपने अधीन कर ले और फिर उससे वफादारी और स्नेह की आशा करे ? यह मानना मानव प्रकृति के विरुद्ध है। ऐसा न ही आज तक कभी हुआ है और न ही कभी होगा।[212] 1900 तक वफादार दादा भाई के मन मे कदाचित् अज्ञात रूप से ही राजद्रोह की भावनाए घर करने लगी थी। उसी वर्ष उन्होन शासको को एक और चेतावनी दी, भारतीय आज तक ब्रिटिश द्वारा किए जा रहे शोषण का सहन करते आ रहे हैं और यह विश्वास करना एक भूल ही होगी कि उनकी वफादारी डिग नही सकती और जिस रूप मे आज है, उसी रूप मे सदा के लिए बनी रहेगी।[213] भारतीय लोग अब स्थिति की वास्तविकता को समझने लगे है और यदि उनकी दशा को सुधारने के लिए कोई पग न उठाया गया तो हो सकता है कि वे शक्ति को नष्ट करने के लिए शक्ति का प्रयोग करने को प्रलोभित हो उठें।[214] यह तो थोडे समय की ही बात थी, जबकि दादा भाई इस निष्कर्ष पर पहुचे, यदि निकासी को रोकना है तो भारत को अवश्य ही राजनैतिक दृष्टि से स्वतत्र होना पडेगा। दादा भाई के दिल और दिमाग की ताजगी, जिन्दादिली और वीरता के लिए उनका अभिनदन ही करना पडेगा कि उन्होने 79 वर्ष की पक्की आयु में जबकि धमनियो मे रक्त प्रवाह शिथिल पड जाता है, ब्रिटिश के भारत पर शासन की अंतिम प्रकृति के सबध मे अपने पूर्व विश्वास से हटकर स्व-शासन की गुणात्मक छलांग लगाई।[215] 1904 मे अतर्राष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन मे, जिसने भारत के राष्ट्रवादी क्षेत्रों मे विशेषत: उदारपंथी क्षेत्रो मे यथार्थ मे ही हलचल मचा दी, निकासी पर दिए गए अपने प्रसिद्ध भाषण मे दादा भाई ने अपनी राजनैतिक मान्यता को निम्न-

लिखित रूप से सुस्पष्ट भाषा में अभिव्यक्ति दी :

> इसका एकमात्र उपाय भारतीयों को स्वशासन देना है। भारत के प्रति अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों के समान ही व्यवहार अपेक्षित है। भारतीयों के इंग्लैंड के साथ संबंध अवश्य जुड़े रहें परंतु उन्हें दास बने रहने पर घोर आपत्ति है। वे अपने पर अपना ही शासन चाहते हैं तथा विश्व के अन्यान्य देशों के साथ प्रगति में भागीदार बनना चाहते हैं।[216]

उनकी इस घोषणा को समाजवादी सम्मेलन के क्रांतिकारी वातावरण में उत्तेजित मन की एकाएक और जल्दबाजी में निकाली गई भड़ास नहीं कहा जा सकता। उन्होंने इस कथन के एक ही वर्ष उपरांत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बनारस अधिवेशन को दिए गए अपने संदेश में विशेष निर्देश करते हुए सुस्पष्ट रूप में अपना दृढ़मत इस प्रकार से प्रकट किया :

> स्वशासन के बिना भारतीय चालू निकासी और उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली घोर दरिद्रता दुर्भाग्य और विनाश से कभी छुटकारा नहीं पा सकते। किसी प्रकार के कैसी भी तसल्ली देने वाले उपाय क्यों न किए जाएं, प्रशासनतंत्र में किसी प्रकार की कैसी भी रद्दो बदल अथवा इधर-उधर की हेर-फेर क्यों न की जाए, इनमें न तो कोई ... हो सकता है और न ही सर्वथा कोई लाभ होगा। स्वयं सरकार और स्वयं प्रजा ही निकासी को बंद कर सकती है। ... भारत के दुर्भाग्य और व्यथाओं की निवृत्ति के स्वशासन ही एकमात्र उपचार है।[217]

यहां यह स्मरणीय है कि ये दादा भाई ही थे जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऐतिहासिक कलकत्ता अधिवेशन में दिए गए अपने भाषण में राष्ट्रीय आंदोलन के भावी लक्ष्य का निर्देश करते हुए यह घोषणा की थी कि भारतीय जनता की सभी राजनैतिक मांगों को जिस एक ही शब्द में समेटा जा सकता है, वह है, स्वशासन अथवा स्वराज्य, जैसा स्वराज्य इंग्लैंड में है अथवा दूसरे-दूसरे उपनिवेशों में है।[218]

दादा भाई के इस अतिवादी दृष्टिकोण, निकासी भारत के दुर्भाग्य का एक महत्व-पूर्ण कारण है, के राजनैतिक महत्व को भली प्रकार समझने के लिए उसकी राजनैतिक महत्ता के तथा भारत की दरिद्रता के कारण माने गए अन्यान्य तत्वों, आधुनिक औद्योगिकता का अभाव अथवा अत्यधिक भूमि लगान अथवा ऊंचे कराधान अथवा राजनैतिक अधिकारों की अनुपस्थिति, से तुलना अपेक्षित है। इनकी तुलना से पूर्व दो बातों का ध्यान रखना अत्यावश्यक है क्योंकि उनकी उपेक्षा का अर्थ उपयुक्त परिप्रेक्ष्य से हाथ धोना होगा। प्रथम, अपने अंतिम विश्लेषण में स्वयं दादा भाई ने भी भारत में उद्योग के अभाव को ही भारत की दरिद्रता का कारण बताया। अंतर केवल यह है कि उन्होंने इस अभाव के कारण के रूप में निकासी को ही उत्तरदायी बताया। द्वितीय, भले ही इसे 'निर्धनता का औद्योगिक सिद्धांत' नाम दिया जाए, तार्किक विश्लेषण से तो हर हालत में ही यही क्रांतिकारी राष्ट्रवादी, राजनैतिक अनुमान निष्कर्ष के रूप में उभर कर सामने आता है कि ब्रिटिश भारत की सरकार ब्रिटिश व्यापार और ब्रिटिश उद्योग के हितों की रक्षा में ही तत्पर है तथा भारतीय उद्योग और व्यापार अपनी पूर्णता में तब तक नहीं आ

सकते जब तक कि प्रमुख रूप से भारनीय उद्योग के हितों की ही देखभाल के उद्देश्य को लेकर चलने वाला अपना ही राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित नही होता। फलतः 19वी शताब्दी के परवर्ती काल के और 20वी शताब्दी के प्रारंभिक काल के बहुत सारे उग्रवादी नेताओं यथा बाल गंगाधर तिलक, लाजपत राय और बी० सी० पाल ने भारतीय उद्योग के विकास पर लगे प्रतिबंधों को हटाने के लिए प्रबल संघर्ष किया। इसी प्रकार भूमि लगान सिद्धात और ऊंचे कराधान के सिद्धात से भी समय-समय पर क्रातिकारी राजनैतिक मागें उठी। इस ग्रंथ मे इन सब की चर्चा हम यथास्थान पहले ही कर चुके है।

निकासी तथा भारत की दरिद्रता के अन्यान्य सिद्धातो के राजनैतिक परिणामों के बीच मुख्य अंतर इस तथ्य मे निहित था कि किसी सीमा तक और कभी-कभी दरिद्रता के अन्यान्य सिद्धात विदेशी शासन को सहन कर सकते थे परतु निकासी-सिद्धात के बारे मे यह नहीं कहा जा सकता।

उदाहरण के रूप में उद्योग के सिद्धात को ही लीजिए, इस क्षेत्र मे जहा भारत और ब्रिटेन के औद्योगिक हितो मे संघर्ष के कारण बहुत सारे मतभेद उत्पन्न हुए और उनमे कटुता भी बढी, वहा इस कटुता के फलस्वरूप उत्पन्न राजनैनिक दुर्भावनाओ को दूर करने की दिशा मे कुछ उपाय भी दिखाई देने लगे :— प्रथम, औद्योगिक सिद्धात के समर्थको के अनुसार भारत मे ब्रिटिश राज्य भारत के औद्योगीकरण के मार्ग मे दुर्लघ्य बाधा नही था। वर्तमान आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियो मे भी कुछ न कुछ औद्योगिक विकास संभव था। अतएव औद्योगिक संघर्ष को स्वराज्य-आदोलन के साथ जोड़ने की कोई स्वाभाविक अथवा पूर्ण आवश्यकता नही थी। उदाहरण के रूप मे जस्टिस रानाडे द्वारा राज्य-सहायता पर बल देने के बावजूद भारतीय उद्योग के विकास के लिए राजनीतिक स्वतत्रता पूर्ण रूप से आवश्यक नही थी।[219]

द्वितीय, कभी-कभी इस बात ने सारे मामले को और भी अधिक जटिल बना दिया कि ब्रिटिश भारतीय सरकार प्रायः ही उद्योगीकरण के पक्ष मे बोलती रहती थी और कभी कभी तो स्वयं भारतीयों द्वारा प्रदर्शित उत्साह की अपेक्षा कथनी के रूप मे भी औद्योगिक विकास के लिए अधिक उत्साह दिखाती थी।[220] इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने उद्योग के विकास के लिए 1905 मे वाणिज्य और उद्योग संबंधी एक पृथक् शाही विभाग की स्थापना और उसे सर्वोच्च महत्व देने के रूप मे साधारण और नगण्य होने पर भी कुछ न कुछ पग तो उठाए ही थे।[221] किसी भी रूप में क्यो न हो, यह आशावादी दृष्टिकोण सदैव बना रहा कि कराधान और भंडारो, तकनीकी शिक्षा और राज्य सहायता आदि से संबधित सरकारी नीति मे भारतीयों की इच्छानुरूप ही परिवर्तन किया जा सकता है। जैसाकि 1918 के उपरांत भारतीय उद्योग आयोग की सिफारिशों के उपरांत एक सीमित परिमाण मे हुआ भी।[222] जब एक बार सरकार अपनी नीति मे परिवर्तन कर लेती है तो उसे सतही तौर पर तो अधिक समय तक उद्योग-विरोधी घोषित नही किया जा सकता। उद्योग-सिद्धात के समर्थक सदैव अपने तर्कों मे जटिलता को अपनाते रहे और सदैव यह दिखाने का प्रयास करते रहे कि ब्रिटिश भारत की सरकार इस दिशा मे काफी कुछ नहीं कर रही है और यदि भारत की अपनी सरकार होती तो वह इससे बहुत अधिक

ही करती। यह काम आसान नहीं था और इसके लिए विशेषज्ञों की सहायता लेनी पडी। राजनीति में तो जब कोई भी कार्य विशेषज्ञों की सहायता से किया जाता है तो उसे जन साधारण पर प्रभाव की दृष्टि से नष्ट हुआ ही समझना चाहिए। फलत: जहा भारत की निर्धनता के उपाय के रूप में औद्योगिक विकास पर अधिक बल देने की बात थी, इसे शिक्षित वर्ग को प्रभावित करने का साधन तो बनाया जा सकता था परंतु इसे जनता और सरकार के बीच राजनैतिक संबंध विच्छेद को गहरा करने का शस्त्र नहीं बनाया जा सकता था। इसके सर्वथा विपरीत सरकार, दिखाने के लिए, यह तर्क प्रस्तुत कर सकती थी कि उद्योग तो दोनों सरकार और राष्ट्रवादियों के लिए समान रूप से उद्यम का क्षेत्र जुटाता है।[23] तृतीय, उद्योग-सिद्धात के प्रवर्तकों को यह स्वीकार करना पडा कि जहा देश के औद्योगिक पिछड़ेपन का आशिक आरोप ईमानदारी से ही सरकार पर लगाया जा सकता है, वहा आरोप के एक बहुत बड़े भाग के पात्र स्वय भारतीय है, जिन्होंने स्वय पूजी, श्रम, उद्यम और तकनीक के उपलब्ध साधनों का उपयोग करने में तत्परता नहीं दिखाई।[24] इसका निष्कर्ष स्पष्ट था कि भारतीयों को अपने शासकों पर आरोप लगाने और उनकी आलोचना करने मे अपनी सारी शक्तियो का अपव्यय नहीं करना चाहिए और अवश्य ही रचनात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा अपनी प्रतिभा को निजी प्रयास के रूप मे प्रयुक्त करना चाहिए।[25] बहुत सारे सरकारी प्रवक्ताओं ने राष्ट्रवादियों के निजी प्रयास के दृष्टिकोण को सरकार के विरुद्ध संचालित राजनैतिक तथा आर्थिक आंदोलन को स्पष्टतः क्षीण बनाने वाला अनुभव किया और वे देश के औद्योगिक और आर्थिक पिछडेपन का सारा दोष अपने कंधों से उतार कर स्वय भारतीयों के ही कंधों पर डालना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार उदाहरणार्थ, डफरिन ने 1884 में यह घोषणा की कि व्यापार पर लगी पाबन्दिया हटाकर और परिवहन के साधनों, सड़क, रेल तथा अन्यान्य यातायात सुविधाओं का बहुगुणा विस्तार करके हम उत्पाद और व्यापारिक गतिविधि को तीव्रता दे सकते है और इस समय भी अपनी ओर से यह सब कर रहे है परन्तु उत्पादक केंद्रों का वास्तविक कार्य तो आखिर निजी उद्यमियो को ही करना चाहिए। इसके उपरात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं को आड़े हाथो लेते हुए कहा कि सरकार जो काम नहीं कर पा रही, उसे करने मे आप लोग पीछे क्यों रह रहे है?[26] भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के इतिहास से इस सबंध मे एक घटना को उद्धृत करना बडा ही रोचक होगा। 1901 मे कांग्रेस ने एक समिति का गठन इस उद्देश्य से किया कि वह प्रतिवेदन प्रस्तुत करे कि क्या अगले अधिवेशन से इस प्रकार के प्रस्ताव उठाए जा सकते हैं, जिनके अंतर्गत राज्य की आर्थिक मंदी का तथा उत्पादन और वितरण के साधनों के ज्ञान के अभाव का भारी दायित्व सरकार पर डाला जा सके। इस समिति ने भारतीयों से अनुरोध किया कि वे इस प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति और उसके प्रसार के लिए यत्नशील बनें और इस तथ्य को स्वीकार करें कि पूजी और साख का प्रश्न निस्संदेह सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न है परंतु उसका हल स्वयं हमारे अपने ही हाथ मे है। समिति ने भारतीयों से अनुरोध किया कि वे निरंतर और ईमानदारी के साथ पूजी का संगठन करके देश की आर्थिक दशा के सुधार के मार्ग की कठिनाइयों में से एक को दूर

करने की चेष्टाएं करें।[227] इन प्रस्तावों में 1890 में पूना में हुए प्रथम औद्योगिक सम्मेलन में दिए गए जस्टिस रानाडे के भाषण की भावना को ही रूपायित किया जाना था। इसके उन्नायक कदाचित् लगभग तीन दशाब्दियों तक कांग्रेस को सतत प्रेरणा देने वाले महानुभाव के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट करना चाहते थे परतु ये प्रस्ताव कभी पारित नही हुए। हमे सीमित अथवा कांग्रेस द्वारा की गई इन प्रस्तावों की अस्वीकृति का कारण ज्ञात नही। हा, यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि कांग्रेस के नेताओ ने यह अवश्य अनुभव किया होगा कि ये प्रस्ताव यदि उठाए गए तो सरकार के विरुद्ध राष्ट्रवादी दबाव के लिए निरंतर और क्रमश· बनाए जाने वाले वातावरण के प्रमुख लक्ष्य से हटकर राष्ट्रवादी शक्ति बिखर जाएगी। अतः कांग्रेस ने अपने नकारात्मक, अरचनात्मक और आदोलनात्मक पक्ष को ही अपनाए रखा। उसने देश की दरिद्रता के लिए निम्नलिखित तत्वो पर अभियोग लगाना ही जारी रखा। स्वदेशी उत्पादनो का ह्रास, सपदा की निकासी, अत्यधिक कराधान, अत्यधिक महंगा प्रशासन, तथा भूमि के भारी लगान,[228] जिन सबके लिए अकेले सरकार को उत्तरदायी ठहराया जा सकता था।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन और उसकी कुछ आर्थिक नीतियां तथा इस विश्वास को कि भारत की आर्थिक दुर्बलता का अर्थात औद्योगिक पिछडेपन का प्रमुख कारण प्रमुख रूप से भारतीयों की अपनी ही दुर्बलताए थी, तथा 'निजी प्रयत्न' से इस पिछडेपन को दूर किया जा सकता है, स्वीकार करने का यह परिणाम निकला कि औद्योगिक सिद्धात ने भारतीय अर्थशास्त्रियों के एक आशावादी वर्ग को जन्म दिया और कम से कम प्रारभ मे तथा कुछ समय तक कोमल नीतियो के लिए आर्थिक सैद्धातिक आधार का काम किया।[229]

इसी प्रकार यहा तक कि सरकार की भूराजस्व नीति का एक अतिवादी आलोचक भी भूमि लगान मे कटौती कर देने से अथवा भविष्य मे किसी प्रकार की वृद्धि न होने से अथवा यहा तक कि अपने मतव्य मे सरकार द्वारा कपटपूर्ण ढग मे अतिशयोक्ति दिखाने पर सतोष कर लेता था जैसाकि 1901 मे आर० सी० दत्त के मामले मे कर्जन ने भूमि लगान पर अपने प्रस्ताव द्वारा किया। सरकार भी कराधान और व्ययो के इन समीक्षको को इधर-उधर सीमित परिमाण मे थोडे बहुत कर भार को घटा कर तथा किसी लोक कल्याण अथवा विकास की गतिविधि अथवा विभाग मे सरकारी खर्चों को बढाकर थोडा-बहुत प्रसन्न कर सकती थी। रेलों की आलोचना जो पहले कितनी भी न्यायसगत क्यो न हो, अब रेलों के उपयोगी और लाभप्रद सिद्ध हो जाने से क्रमशः धीरे-धीरे मद पड़ती जा रही थी। यहा तक कि राष्ट्रीय राजनैतिक प्रगति की मागों से उत्पन्न अतिवादिता को भी थोड़े-से प्रयत्न से सावधानी के साथ संगणित राजनैतिक रियायतो और सुधारों की खुराकें देकर शात किया जा सकता था। किसी भी स्थिति मे भारतीय राष्ट्रवादी फिर भी तर्क कर सकते थे और यह सिद्ध कर सकते थे कि इन सभी मामलों में और साथ ही साथ विदेश-व्यापार, मुद्रा तथा श्रम आदि के मामले में ब्रिटेन की आर्थिक नीति स्वार्थपूर्ण और भारतीय हितों के विरुद्ध थी। इस विषय में सरकारी तर्कों और बहानों के भ्रम जाल को उखाड़ने तथा वास्तविकता को देखने के लिए एक निश्चित परिमाण में राजनैतिक तथा आर्थिक सूक्ष्म दृष्टि अपेक्षित थी। यह सूक्ष्म दृष्टि नेताओं को भले ही प्राप्त हो,

परतु जनता को इस सूक्ष्म दृष्टि से परिचित कराना असंभव नही तो कठिन और लंबा कार्य अवश्य था।

निकासी-सिद्धात के योद्धा दादा भाई नौरोजी ने और उनके साथी योद्धा 'अमृत बाजार पत्रिका' ने निकासी के अतिरिक्त अन्यान्य सिद्धातो के राजनैतिक सघर्ष की प्रबलता को मद करने की भूमिका को अच्छी तरह समझ लिया था। इसीलिए तो दादा भाई ने 1900 मे भारत के नवयुवको को भारत की दरिद्रता के लिए प्रस्तुत कारणो, स्वदेशी उद्योगो का ह्रास तथा ऊचे भूमि लगान आदि, बहानो से सावधान रहने और बचने का अनुरोध किया। उन्होने चेतावनी दी कि यह सब मूल समस्या से ध्यान हटाने की एक चाल है। उन्होन आगे कहा जब तक भारत का खून चूसना (निकासी) जारी है, भारत सपन्नता की कोई आशा कभी नही कर सकता।[230] दादा भाई के जीवनी लेखक आर० पी० मसानी के अनुसार दादा भाई ने 1903 मे आर० सी० दत्त को चेतावनी दी थी कि उनका भूमि लगान पद्धति के दोषो पर अधिक बल देना भारत की दरिद्रता के मूल कारण निकासी और उसके एकमात्र उपचार-स्वशासन से जनता का ध्यान हटाना है।[1] इसी प्रकार 'अमृत बाजार पत्रिका' ने अपने 9 जून 1900 के अक मे टिप्पणी की कि यह [illegible] है कि भूराजस्व भारत की दरिद्रता का कारण है परन्तु निकासी की अपेक्षा इस पर अधिक बल देना फिर भी गलत है। 'ऊचे लगान के प्रश्न को उठाना फिर भी विवादास्पद हो सकता है परतु वार्षिक निकासी पर तो किसी प्रकार के विवाद की सभावना ही नही।[232] 28 मार्च 1901 के अक मे पत्रिका ने यह आशका प्रकट की कि दत्त महाशय लगान के प्रश्न को उठाकर एक गौण विषय को महत्व दे रहे हैं, वे देखेंगे कि वे तर्कजाल मे उलझ कर रह गए हे। पत्रिका ने सलाह दी कि इस समय आवश्यकता उन निश्चित और सुस्पष्ट विषयो को उठाने की है, जिन पर हम दृढता से डट सकें और अपनी बात स्पष्ट कर सके।'[233]

औद्योगिक-सिद्धात आदि के सर्वथा विपरीत निकासी सिद्धान्त ने देखा भारत की दुर्दशा के कारणभूत आर्थिक रोगो का मूल उद्‌गम स्वय ब्रिटिश राज्य ही है। इसने बिना किसी सकोच के ब्रिटिश भारतीय सरकार की विदेशी प्रकृति तथा उसके शोषक स्वरूप को नगा करके रख दिया। अपनी परिभाषा मे ही निकासी समग्रत ब्रिटेन के शासन का ही परिणाम था और इसके फलस्वरूप उत्पन्न होन वाली भारत की दरिद्रता का सारा दोष ब्रिटेन को अपने कधो पर लेना ही चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार इस स्थिति मे भारतीय निकासी को कम करने की दिशा मे कुछ भी नही कर सकते थे। जो कुछ उनके वस मे था, वह था भारतीयकरण के लिए, ब्रिटिश और भारत के मध्य खर्चों के समुचित बटवारे के लिए, गृह प्रभारो मे कटौती आदि के लिए आदोलन करना। इसके अतिरिक्त निकासी-सिद्धात के पक्षधर केवल इतना ही नही मानते थे कि जब तक निकासी जारी है तब तक भारत आर्थिक प्रगति नही कर सकता और इतना ही तर्क नही देते थे कि निकासी मे सारे का सारा ब्रिटेन का दोष है, प्रत्युत इसकी परिभाषा देते हुए इसे ब्रिटिश राज्य और उसकी मूल आर्थिक और राजनैतिक नीतियो, सस्थाओ और अवस्थापना, जैसेकि, ब्रिटिश इडियन सिविल सेवा, ब्रिटिश सेना, इग्लैंड मे भारतीय

कार्यालय, ब्रिटेन की पूंजी का भारत में निवेश, रेल, विदेश व्यापार, भूमि लगान और सामान्यत: कराधान का पर्यायवाची बताया और लोगों के मन मे उन्होंने धीरे-धीरे यह विश्वास उत्पन्न कर दिया कि भारत के आर्थिक पिछड़ेपन और दरिद्रता का कारण प्रमुख रूप से स्वयं ब्रिटेन के शासन का भारत में अस्तित्व और विदेशी राज्य की नीतियां है। वही देश की उन्नति के मार्ग में प्रधान बाधाएं हैं। भारत परंपरा से दरिद्र नही है प्रत्युत स्वयं ब्रिटिश राज्य द्वारा बनाया गया है। सिविल सेवा के यूरोपीय चरित्र पर बल देने से भी वही राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध होता था क्योंकि इसमे एक ओर तो जनता के सामने देश की राजनैतिक और आर्थिक पराधीनता के तथ्य को सामने रखने में सहायता मिलती थी और दूसरी ओर इससे इस मांग को बल मिलता था कि भारत में ब्रिटिश राज्य अवश्य बना रहे परंतु स्वय ब्रिटिश लोगों को नहीं बना रहना चाहिए। स्पष्ट है कि इस मांग की स्वीकृति की कोई संभावना नहीं थी, फलत: इससे शासकों के विरुद्ध जनता के मन में रोष की भावना को भड़काने मे सहायता मिलती।

इस प्रकार निकासी सिद्धात ने एक जटिल समस्या को जन्म दिया और उस समस्या का एक ऐसा हल सुझाया कि जिससे भारत में ब्रिटिश राज्य की जडें ही कट जाती थी, और एक ऐसे अंतर्विरोध को उजागर किया जिससे अतिवादी राष्ट्रीय दृष्टिकोण का उदगम होता था, भारत सरकार और जनता के मध्य स्थायी रूप से राजनैतिक मुठभेड की स्थिति उत्पन्न होती थी और अंतत: ब्रिटिश राज्य को उखाड फेकने की क्रांतिकारी राजनैतिक माग को जन्म मिलता था। निकासी सिद्धांत के समर्थक तो राजनैतिक सुधारों से संतुष्ट होने वाले नही थे क्योंकि इन सुधारों से निकासी किसी प्रकार कम होने वाली नही थी। अत: राजनैतिक सुधारों के किए जाने पर भी निकासी पर आधृत राजनैतिक संघर्ष मे कमी नही होने जा रही थी।[231] इसके अतिरिक्त निकासी सिद्धात ने भारतीय समाज के सभी आतरिक झगडों को पीछे धकेल दिया तथा सारे समाज का ध्यान विदेशी राज्य की देन निकासी की ओर ही समग्रत: केंद्रित कर दिया। इस प्रकार दादा भाई के आर्थिक दृष्टि-कोण के निराशावादी चरित्र ने 1872 मे प्रारंभ में स्वीकार करने के उपरात अत मे उसे छोडने को विवश रानाडे के आशावादी दृष्टिकोण की तुलना में, उन्हें विनाश का भविष्य-वक्ता बना दिया और 1904 में उस समय निश्चित रूप से नकारात्मक व निराशाजनक लगने वाले स्वराज्य के लिए आह्वान देने के योग्य बना दिया।

निकासी-सिद्धात के क्रांतिकारी राजनैतिक अभिप्रायों से इसके समर्थक ही नहीं प्रत्युत आलोचक भी कहीं अधिक बढ़-चढ कर परिचित थे। 1886 में भारत राज्य सचिव रंडोल्फ चर्चिल ने निर्देश किया :

> 'देश पर थोपे गए विदेशी राज्य के फलस्वरूप समझे जाने वाले और देश के बाहर हुए खर्चों की अतिरिक्त राशि की पूर्ति के लिए समग्रत: भार रूप में उठाए जाने वाले नए कराधान के भार की अधीरता एक गंभीर राजनैतिक खतरे का रूप धारण कर लेगी। हमें आशंका तो यह है कि भारत सरकार से संबंध अथवा उसकी जान-कारी न रखने वाले महानुभाव इस खतरे की गुरुता को समझ ही नहीं पाएंगे, परंतु जिनको भारत सरकार की जानकारी है और जिन पर उसके संचालन का दायित्व

है, उन्होने बहुत पहले से ही इसे एक अत्यंत गंभीर प्रकृति का खतरा बताया है।[235] इसी प्रकार जे० डी० रीस ने अपनी पुस्तक 'दि रियल इंडिया' मे दादा भाई को आड़े हाथों लिया कि उन्होने इस तथ्य को समझा ही नही कि गृह-प्रभारों के बिना भारत मे ब्रिटिश सरकार रह ही नही सकती थी।[236] बहुत सारे भारतीयों ने निकामी सिद्धात के प्रचंड प्रचार का इस आधार पर विरोध किया कि यह देर अबेर राजनैतिक स्वतंत्रता की अपरिपक्व माग को जन्म देगा।[237] इसी कारण कदाचित रानाडे ने निकासी पर आवश्यकता से अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति का विरोध किया।

संक्षेपत निकासी सिद्धान अपने राजनैतिक आशयो मे क्रातिकारी तत्त्व था; इसने राजनैतिक अधिकार के प्रश्न को राजनीति का केंद्र बिंदु बना दिया। इसकी स्वीकृति ने न केवल ब्रिटेन और भारत के स्वाभाविक राजनैतिक संघर्ष को सतह पर ला दिया प्रत्युत ब्रिटेन के भारत पर राजनैतिक प्रभुत्व को भी अमान्य बना दिया। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि क्यो अन्यान्य कितने ही क्षेत्रो मे राष्ट्रवादियों द्वारा की गई ब्रिटिश की अर्थ-नीति की आलोचना ओर उसके फलस्वरूप उन राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा सुझाए गए उपचार तो ब्रिटिश साम्राज्य के प्रबल श्रद्धालुओ को भी स्वीकार थे, परन्तु निकासी की बात प्रबलतम क्रातिकारियों तक को भी मान्य नही थी।

निकासी सिद्धान ने आर्थिक प्रश्न को राजनैतिक स्तर पर उठाकर सार्वजनिक जीवन को राजनैतिक प्रशिक्षण देने मे भी सहयोग दिया। जहा अन्यान्य आर्थिक प्रश्न कदाचित आर्थिक उपचारो द्वारा साध्य थे अतः विशेष परिस्थितियो मे आर्थिक विवाद की परिधि मे ही आते थे, वहा निकासी का हल केवल राजनैतिक था। अत निकामी सिद्धान ने राजनैतिक निष्क्रियता को सक्रियता मे बदलने मे भी योगदान दिया।

निकासी सिद्धात मे सर्वसाधारण लोकप्रिय बनने की प्रबल राजनैतिक क्षमता थी। यह एक ऐसी सरल और सीधी सादी धारणा थी कि जिसे एक किसान भी आसानी से समझ पाता था। राष्ट्रवादी वक्ता निकासी पर भाषण करते समय अपने अत्यत अशिक्षित श्रोताओ से भी शीघ्र समझ जाने की प्रतिक्रिया पा लेते थे। एक देश से दूसरे देश को धन का स्थानातरण, आर्थिक शोषण के सिद्धातो का एक ऐसा विषय था, जिसे सर्वथा आसानी से समझा जा सकता था, क्योकि यह उनके दैनिक अनुभव से सबधित था। निकासी पर प्रहार को सुनते समय किसान इस प्रकार अनुभव करता था जैसेकि धन उसकी जेब से खिसक रहा है। उन्हे इस जैसा और कोई विचार इतना क्षुब्ध नही कर सकता था कि उन पर इसलिए कर लगाए जा रहे है कि दूर देश मे रहने वाले गुलछर्रे उड़ा सकें। अतः निकासी मे किसानो के देश को संघटित करने के नारे की सामर्थ्य थी। 'निकासी नही' एक ऐसा नारा था, जिसकी सभी सफल क्रातियो को आवश्यकता रही है और वे इसे अपनाती रही है। इसे सिद्ध करने के लिए किसी प्रकार के ऊंचे और जटिल तर्कों की आवश्यकता नही, इसके बदले स्वत स्पष्टता तो इसका आतरिक गुण है। भारत के विषय में यह स्वत. सिद्ध थी और इस विश्वास ने कि भारत सोने की चिड़िया थी और धीरे धीरे उसकी सारी संपदा लूट ली गई है और उसे आज की दरिद्रता और दुर्भाग्य की स्थिति में ला फेंका गया है, जब भारतीय राष्ट्रीयतावाद चरम सीमा पर ही लटक रहा

था, उस समय उन वर्षों में राष्ट्रवादियों की शिकायतों ने अत्यंत लोकप्रिय और प्रबल शक्तिशाली रूप ग्रहण कर लिया। अतः यह आकस्मिक नही था कि निकासीवादी पर सरकारी और साथ ही साथ गैर सरकारी ब्रिटिश लेखकों ने पूरी शक्ति और निरंतरता के साथ तीखे प्रहार किए। संभवत ऐसा भाग्य किसी भी अन्य सिद्धात अथवा माग का नही रहा। इस सिद्धांत के प्रमुख जन्मदाता और प्रचारक दादा भाई नौरोजी की, जिनकी ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादारी सबसे गहरी थी और जिनका ब्रिटिश जनता मे सबसे गहरा विश्वास था, स्वप्नदर्शी और अतिवादी रूप मे निदा की गई।[238] यहा तक कि उन्हे धूर्त और छिपा विद्रोही कहा गया।[239] परंतु दूसरी ओर गाधीयुग के राष्ट्रीयता की दृष्टि से उग्र विचार वाले नवयुवको ने 19वी शताब्दी के रानाडे, फिरोजशाह मेहता और गोखले जैसे अत्यंत कोमल और समझौतावादी नेताओं को थोड़े समय के लिए ही सही, घृणा की दृष्टि से देखा और उन्हे 'अर्जीनवीस' कहकर उनका तिरस्कार किया। गांधी युग के राष्ट्रीय प्रेमी नवयुवको की दृष्टि मे उस समय भी दादा भाई अत्यंत सम्मानित थे और भारतीय राष्ट्रीयतावाद के पिता के समान आदरणीय थे।

संदर्भ

1. नौराजी, एसेज, पृ० 26-50.
2. वही, पृ० 29-31.
3. वही, पृ० 32-3. दादाभाई ने इस भेद को भी उजागर किया कि 20 वर्ष से भी काफी पहले भारत पर ब्रिटिश शासन के प्रभावों पर विचार करने के लिए कुछ थोडे से हिंदू विद्यार्थी और विचार-शील लोग गुप्त रूप से बैठके किया करते थे उनकी शिकायतो के प्रमुख अंग थे : गृह प्रभार, विभिन्न रूपो मे भारत से इग्लैंड को सपत्ति का निष्कासन, भारत के सपूतो को अपने ही देश के प्रशासन मे योगदान देने तथा विचार अभिव्यक्त करने की सुविधा का अभाव आदि. (वही) वास्तव से इससे बहुत पहले ही 1830 के आसपास भारत द्वारा इग्लैंड को दिए जाने वाले उपहार-शुल्क के विरुद्ध राजाराम मोहन राय ने शिकायत की थी (बी० बी० मजूमदार : पूर्वोद्धृत, पृ० 71-2 पर)
4. नौरोजी, एसेज, पृ० 39 और देखिए पृ० 40-1 भारत के ससाधनो के विकास के इस विचार को दादाभाई नौरोजी के परवर्ती विचार, 'विदेशी पूजी के भारत मे निवेश का अर्थ है भारत की सपदा का अपहरण' मे भिन्न रूप मे देखना उचित है.
5. वही, पृ० 97-111.
6. वही, पृ० 112-36.
7. वही, पृ० 123
8. वही.
9. वही, पृ० 98-9, 108, 123.
10. वही, पृ० 133-4.
11. वही, पृ० 135-6.

12. वही, पृ० 102,
13 वही, पृ० 106.
14. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 164.
15. वही, परिशिष्ट, पृ० 165 इसके साथ ही उन्होने इस प्रवाह के हानिकारक परिणामो की चर्चा की : 'जहा तक इस समय मै जाच पडताल कर सका हू, उससे मे इम निष्कर्ष पर पहुचा हू कि ईस्ट इडिया कपनी जिम किसी प्रदेश पर अपना अधिकार करती थी, दरिद्रता भी उनके पद चिह्नो पर चलती हुई उम प्रदेश पर अपना अधिकार कर लेती थी' जब मे सिचाई के लिए, रेल पथो के लिए, तथा अन्य लाक कार्यों के लिए ऋण अमरीका के साथ युद्धो के लाभो की की दुर्लभ प्राप्ति लौट कर आई है तब से ऐसा लगना है कि भारत ने जो रक्त गवाया उमकी कुछ ही बूदे लौटी हैं. (परिशिष्ट, पृ० 167) तथा देखिए, परिशिष्ट, पृ० 172, 181.
16. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 125.
17 1901 मे उन्होने इम विषय पर अपेक्षाकृत अधिक सुप्रसिद्ध लेखो और भाषणो को 'पावर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इडिया' शीर्षक एक ही पुस्तक मे सग्रहीत किया, जिमका शीर्षक स्वय ही उनके राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण का सक्षिप्त रूप था उनके अन्य बहुत सारे लेखो, तथा भाषणो आदि को, जिनम से उन्होने प्राय. सभी मे निकासी पर प्रहार किए हैं, 1887 मे सग्रहीत किय. गया है उनके भाषणो, लेखो, निबधो तथा प्रवचनो के सस्करण का सी० एल० पारिख तथा नटेसन ने 'नौरोजी : स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज' शीर्षक से सपादन किया है अगस्त 1904 मे ऐंमस्टरडम मे हुई अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी काग्रेम के समक्ष दिया गया उनका एक रोचक भाषण 'इडिया' के 2 सितबर 1904 के अक मे उपलब्ध है.
18 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 201
19 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 329
20 प्रधान और भागवत, पूर्वोद्धृत, पृ० 8 दुर्भाग्यवश हम इस भाषण की प्रति अथवा प्रतिवेदन को ढूढने मे असफल रहे हैं, हमारे विचार मे कदाचित कोई प्रति उपलब्ध नही है.
21 रानाड, एसेज, पृ० 23.
22. एम० एम०, मार्च 1873 खड II पृ० 89-90 और देखिए पृ० 92-3
23 दत्त, स्पीचेज II पृ० 27, 47-8 61 84
24 दत्त, ई० एच० I पृ० XIII और देखिए पृ० XII.
25. वही, पृ० 420
26. दत्त, ई० एच० II पृ० XIV और देखिए पृ० 213, 344, 348, 529-9.
27. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 636-41, 683, 793-4; राय, पावर्टी, पृ० 6-8, 242, 278, 315-20, 328-29, और इडियन फैमिस, पृ० 37, मालवीय स्पीचेज, पृ० 232-3, 248-51; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1846 पृ० 62, सी० पी० ए०, पृ० 602-07, रिप० आई० एन० सी० 1898 पृ० 104, गोखले स्पीचेज, पृ० 15, 87-8, 908-10; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18963 और ई० ए०, पृ० 59, 125. 128-9, 336-8, 357-8; एस० एन० बॅनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 253-5, 269-70, 637, 708-11; बी० एम० मालबारी : इडियन प्राब्लम (बबई 1894) पृ० 23; 'स्टडीज इन दि बगाल रिनेसि (जादवपुर 1958) में अतुलचद्र गुप्ता द्वारा संपादित. पृ० 209 पर राजनारायण बोस, आर० एन० मुधोलकर, इडियन पालिटिक्स, पृ० 41; ए० नंदी, इडियन पालिटिक्स पृ० 124-7; 28 दिसबर 1897 लदन की इडियन

सोसाइटी द्वारा सम्मेलन में पारित प्रस्ताव; इंडिया, 14 जनवरी 1898; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए० पृ० 351-4, 366; सी० वाई० चितामणि, एच० आर० जनवरी 1902 पृ० 28-9; एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 762 और रिप० आई एन० सी० 1904, पृ० 114; एल० एम० घोष, सी० पी० ए० पृ० 743, 750-3.

28. और देखिए ए० बी० पी०, 6 फरवरी 1880; 29 जनवरी और 18 जून, 1885; 22 मई 1892; 24 दिस० 1896; 13 फरवरी और 7 अप्रैल 1897; 22 फरवरी और 1, 8 और 9 जून 1900; 13 नव० 1901.

29. उदाहरण के लिए देखिए, माधारणी, 31 अक्तू० (आर० एन० पी० बंग०, 6 नव० 1880); मराठा, 6 फरवरी और 19 जून 1881 तथा 13 अप्रैल 1884; इंडियन स्पेक्टेटर, 25 फरवरी (आर० एन०पी० बंब, 3 मार्च 1883); इंडियन स्पेक्टेटर, 18 मई सिंध टाइम्स, 20 मई (वही, 24 मई 1884); समय, 30 जून (आर० एन० पी० बंग०, 5 जुलाई 1884); प्रतिकार, 22 अगस्त, (वही, 6 सित० 1884); सारस्वत पत्र, 6 सितंबर, (वही, 13 सित० 1884); पताका, 17 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1885); समय, 28 जून (वही, 3 जुलाई 1886); बंगवासी, 7 अगस्त, प्रजाबंधु, 6 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1886); इंडियन स्पेक्टेटर, 5 जुलाई 1885; भारतीय समाचारपत्रों के मत का संपादकीय सार संक्षेप, वी० ओ० आई०, अक्तू० 1887; इंदु प्रकाश, 5 सित० और ट्रिब्यून, 14 सित० (वी० ओ० आई०, अक्तू० 1887); हिंदू, 25 जून 1894, 7 जुलाई 1898; बंगाली, 13 मार्च 1897; हिंदुस्तान, 20 जुलाई, (आर० एन० पी० एन०, 27 जुलाई 1898); स्वदेशमित्रन, 15 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1900); प्रभात, दिस० 1900, और राजहंस, 2 जनवरी (आर० एन० पी० बंब, 12 जन० 1901); न्यू इंडिया, 16 सित० 1901; कासिम उल अखबार, 11 मई (वही, 16 मई 1903); हिंदू निशान, 27 मई (वही, 30 मई 1903); वृत्तांत चिंतामणि, 14 नव० (वही, 14 नव० 1903); केसरी, 21 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 25 जुलाई 1903); केसरी, 9 मई (वही, 13 मई 1905). 1880 से पहले निकासी का विरोध करने वाले कुछ समाचारपत्र थे : इंदु प्रकाश, 13 दिस० (आर० एन० पी० बंब, 18 दिसंबर 1875); जामे जमशेद, 23 अगस्त (वही, 26 अगस्त 1876); शुभसूचक, 15 जून (वही, 23 जून 1877); नेटिव ओपीनियन, 30 दिस० 1877 (वही, 5 जन० 1878).

30 प्रस्ताव XII.

31. आई० एन० सी० (1897, 1901, 1902 और 1904 के प्रस्ताव स० IX, VIII (ए), III और III

32. नौरोजी, एसेज, पृ० 30-1. पावर्टी, पृ० 211, 638 तथा अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस में दिया गया भाषण, इंडिया 2 सित० 1904 पृ० 116; ए० बी० पी० 28 जुलाई 1870; जामे जमशेद, 23 अगस्त (आर० एन० पी० बंब, 23 अगस्त, 1876); शुभ सूचक, 15 जून (वही, 23 जून 1877); समय, 28 जून (आर० एन० पी० बंग०, 3 जुलाई 1886); बंगवासी. 7 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1886); स्वदेशमित्रन, तिमिरहित (आर० एन० पी० एम०, सित० 1887); आंध्र प्रकाशिका, 5 नव० (वही, नव० 1887); हिंदू, 29 जन० 1891. राय, पावर्टी, पृ० 251-3 विशंभर नाथ, एल०सी०पी० 1898 खंड XXXVII पृ० 519; बंगाली, 25 मई 1901; एस० एम० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 709; दत्त, ई० एच पृ० 85.

33. प्रमाण के रूप में देखिए, इंडियन स्पेक्टेटर ने अपने 5 जुलाई 1885 के अंक में लिखा : 'आइ

कह सकते है कि जितना आपने हम पर कर लगा रखा है उससे दुगना कर मुगलो ने हम पर लगाया था उनके कराधान मे क्या अतर था, देखिए वे भारत के ही निवासी थे अथवा उन्होंने प्रत्येक रूप मे भारत को अपनी जन्मभूमि के रूप मे अपना लिया था कराधान, अत्याचार तथा लूटमार द्वारा वे जितना भी राजस्व वसूल करते थे, वह सारा इसी देश मे खर्च होता था एक कौडी भी इस देश से बाहर नही जाती थी भले ही वह पैसा सिचाई नहरो के, लबी दूरीवाली सडको के और पुलो के अथवा महलो और मसजिदो के निर्माण पर और यहा तक कि आतिश-बाजी और नाचने वाली सुदरियो पर खर्च होता था, यह सारा पैसा उन लोगो के पास वापस पहुच जाता था, जिनसे लिया गया था' और देखिए, ए० बी० पी०, 18 जून 1885 राय, पावर्टी, पृ० 251-3; नौरोजी स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 41, 52, ए० नदी, इडियन पालिटिक्स, पृ० 126; दत्त, ई० एच० I पृ० XII, 100, वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 605, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 759

34 नौरोजी, एसेज, पृ० 30, पावर्टी, पृ० 211, स्पीचेज, पृ० 238 9, अतर्राष्ट्रीय समाजवादी काग्रेस मे दिया गया भाषण, इडिया, 2 सित० 1904, पृ० 116, समय, 30 जून (आर० एन० पी० बग०, 5 जुलाई 1884), सिंध टाइम्स, 20 मई (आर० एन० पी० बब, 24 मई 1884), केसरी, 21 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1903), केसरी, 9 मई (वही, 13 मई 1905)

35 इस अवधि म भारतीय अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण चरित्रगत विशेषता थी निर्यातो मे बचतें, जिसकी भारतीय नेताओ ने आलोचना की देखिए, इसी पुस्तक म विदेश व्यापार से सबधित पाचवा अध्याय वास्तव मे आवश्यक और समुचित परिणाम मे आयातो से निर्यातो की अधिकता बनाए रखने के उद्देश्य से निर्यातो का सरकारी तौर पर ही प्रोत्साहित किया गया था ब्रिटिश शासनकाल मे व्यापार का सतुलन बनाए रखने के लिए निर्यातो को बढाने का सरकारी प्रयास भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख रूप से सचालक, साथ ही प्रमुख विरोधी तत्व था एक ओर तो सरकारी नीति ब्रिटिश उद्योग के पोषण के लिए निर्यातो मे वृद्धि करने की थी और दूसरी ओर आयातो के अपेक्षाकृत प्रचुरता ने आयातो पर निर्यातो की अधिकता को सकुचित रूप दे दिया और इसका भुगतान सतुलन अव्यवस्थित हो गया और सरकार इग्लैंड स ऋण लेने के उपाय को अपनाने के लिए विवश हो गई इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि इन ऋणो के भुगतान के लिए फिर और अधिक परिमाण मे निर्यात करने की स्थिति उत्पन्न हो गई इस प्रकार भारत से होने वाले निर्यातो का उपयोग या तो ऋणो के भुगतान के लिए होने लगा अथवा आयातो के भुगतान के लिए इससे भारत से लाभरहित उद्योगो और निर्यातको के हितो का ब्रिटेन के लाभ सपन्न उद्योगो और निर्यात के हितो से सघर्ष का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था यह सघर्ष भारत से धन की निकासी पर ब्रिटिश प्रेस के और ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के एक वर्ग द्वारा किए गए प्रारभिक प्रहार को स्पष्ट करता है ब्रिटिश शासन की सारी अवधि मे भारत से सपत्ति की निकासी के राजनीतिक प्रभावो और परिणामो के सबध मे विभिन्न स्तर पर मतभेद बने ही रहे

36. नौरोजी, एसेज, पृ० 101, 113 4, पावर्टी, पृ० 33, 141, 198, 568-9, 574, स्पीचेज, पृ० 317-8, 323, 381-2, 665-7, परिशिष्ट, पृ० 42-3, ए० बी० पी०, 28 जुलाई 1870 और 6 फरवरी 1880; भोलानाथ चद्र, एम० एम०, मार्च 1873, खड II पृ० 89-90, मराठा, 25 मई 1884; सिंध टाइम्स, 20 मई इडियन स्पैक्टेर, 18 मई (आर० एन० पी० बब, 24 मई 1884); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 636-40, 683, 695; राय, पावर्टी, पृ० 7-8; आर० एन०,

मुधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 40-1; ए० नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 112-3, 125; हिंदू, 7 जुलाई 1898, न्यू इंडिया, 19 अगस्त और 16 सित० 1901; इंडियन पीपुल, 24 जुलाई 1903; दत्त : इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 143, ई० एच० II पृ० 343-4, 528-9, स्पीचेज II पृ० 47-8; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 336, 338, 353, 357-8, गोखले, स्पीचेज, पृ० 87-8 एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 750, 753. और देखिए पीछे अध्याय 4 लार्ड सैलिसबरी द्वारा 26 अप्रैल 1875 के एक भाषण मे की गई इस टिप्पणी का भारतीय नेताओ ने अक्सर हवाला दिया है कि 'भारत के सबध मे इस चोट का अतिरजित रूप मे वर्णन किया जा रहा है कि वहा से बिना किसी प्रकार के प्रत्यक्ष प्रतिदान के इतने अधिक राजस्व का निर्यात किया जा रहा है भारत मे उन अगो मे तो नश्तर चुभोकर वहा से रक्त निकालना ही चाहिए जहा उसका अत्यधिक सग्रह हो गया है अथवा वह समुचित मात्रा मे उपलब्ध है, पहले से ही, रक्त के अभाव से दुखियो निर्धनो और दुर्बलो को तो छुआ ही नही जाता (नौरोजी, पावर्टी, पृ० IX) और देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 130, 233, 288, परिशिष्ट, पृ० 13, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 708-09, दत्त, स्पीचेज II पृ० 84 और देखिए, जान स्ट्रेची, फाइनाशल स्टेटमेट (वित्त विवरण) 1878-9 कंडिका, 52 और रिपोर्ट आफ इंडियन फेमीन कमीशन, 1880, पृ० 94.

37 नौरोजी, एमेज, पृ० 113-4; पावर्टी, पृ० 33, 131, 136-9, 198 स्पीचेज, पृ० 317-8, 381-2, 667. और देखिए, आर० एन० मुधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 41 और जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 336-7

38 उदाहरणार्थ देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 32-33. उन्होने कहा कि किसी देश के विदेश व्यापार की सामान्य स्थिति प्राय यह होती है कि उसके निर्यात के बदले सदैव निर्यात के मूल्य और उसके लाभ के समकक्ष आयात होता है

39. वही, पृ० 131, 138, 196

40 वही, प० 33, 139 इसके अतिरिक्त जब विलबी कमीशन ने उन पर यह सिद्ध करने के लिए दबाव डाला कि बताइए किस प्रकार आप यह कह सकते हैं कि निर्यातको के लाभ भारतीय निर्यातो के वर्तमान मूल्यो मे सम्मिलित नहीं किए गए हैं तो वे इसका सतोषप्रद और सशक्त उत्तर नही दे पाए (स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 53-4).

41. निम्न उद्धृत गणनाओ मे आकडे पौंड और रुपये दोनो में दिए गए हैं, इसका कारण है यह कि दोनो के अनुपात मे प्राय; अतर आता रहता था.

42. नौरोजी, एसेज, पृ० 50

43. वही, पृ० 115

44 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 34

45. वही, पृ० 566.

46. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 318-21.

47. वही, पृ० 667.

48. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 639-40.

49. सी० पी० ए०, पृ० 604, 606.

50. वही, पृ० 709.

51. दत्त, ई० एच० II, पृ० XIV तथा देखिए, पृ० 528-9.

52. राय, इंडियन फैमिस, पृ० 37.
53. दत्त, स्पीचेज, II पृ० 21, 48, 85; ई० एच० I पृ० XIII, ई० एच० II पृ० 613.
54. देखिए पीछे अध्याय-12.
55. नौरोजी, एसेज,, पृ० 47-9; दत्त, ई० एच० I पृ० XII, 263, 409, 420, ई० एच० II पृ० 115-6.
56 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 38-48; दत्त; ई० एच० I पृ० 408-20 ई० एच० II, पृ० 116, 123-6, 140, 213-4; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 330-4.
57. दत्त, ई० एच० II, पृ० 127.
58. विचारहीन भूतकालीन निकासी को हम अपना दुर्भाग्य मानते हैं परंतु इसी प्रकार के भविष्य को हम सीधी सादी अंग्रेजी में जानबूझकर डाला गया डाका और जानबूझकर किया गया विध्वसमानते हैं (नौरोजी, पावर्टी, पृ० 218).
59 इस प्रकार उदाहरण के रूप मे दादाभाई नौरोजी ने 1880 मे शिकायत की कि भारत पहले शासक शिकार की खोज में इधर-उधर भटकने वाले कसाई थे. अंगरेज शासक अपने वैज्ञानिक नश्तर से दिल चीर-फाड कर रख देते है परतु आश्चर्य यह है कि कही घाव का चिन्ह दिखाई देने को नही रहने देते और शीघ्र ही सभ्यता की प्रगति की बडी बड़ी बातो आदि के पलस्तर से घाव की मरहमपट्टी कर देते है (पावर्टी पृ० 211). इसी प्रकार अमृत बाजार पत्रिका ने अपने 14 अप्रैल 1881 के अंक मे शिकायत की कि विभिन्न दल विभिन्न रूपो मे भारत का शोषण कर रहे हैं और आश्चर्य यह है कि वे विभिन्न दल न तो एक दूसरे के ठिकाने की ओर न एक दूसरे की कार्यवाहियो की जानकारी रखते हैं. वे तो यह भी नही मानते कि उनकी इन कार्यवाहियो से उनका रोगी किस विषम और असह्य वेदना का शिकार बन गया है.
60 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 123, 135-6, 183-4, 565-6, स्पीचेज, पृष्ठ 134, 153, 287, 597, 614, परिशिष्ट, पृ०3-6, 43; अमृत बाजार पत्रिका, 28 जुलाई 1870, 6 फर० 1880; मराठा, 6 फरवरी 1881, 20 दिस० 1885; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 62, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 29, सी० पी० ए०, पृ० 605-07; ट्रिब्यून, 14 सित० (वी० ओ० आई० अक्तू० 1887); मालवीय, स्पीचेज, पृ० 232-3, 248-51, 514-5; राय, पावर्टी, पृ० 6, 318, 325-6; बगाली, 19 जन० 1895; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए० पृ० 269- 70, 711; आर० एम० सयानी, एल० सी० पी० 1897 खड XXXVI पृ० 191 और सी० पी० ए० पृ० 366; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18638; ए० नदी, इडियन पालिटिक्स पृ० 124; दत्त, ई० एच-I पृ० 410, ई० एच० II पृ० XIV-XV, 613; सी० वाई० चिंतामणि, एच० आर० जनवरी 1902 पृ० 28; एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 77; आई० एन० सी० 1903 का प्रस्ताव सं० II (सी).
61. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 123, 135, 183; स्पीचेज, पृ० 196, 339, 391.
62 (बल दिया गया) नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 115.
63. देखिए पीछे अध्याय 3.
64. देखिए आगे तथा साथ ही पीछे अध्याय 3.
65 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 38, 565, स्पीचेज, पृ० 596 और परिशिष्ट, पृ० 6; भोलानाथ चंद्र, एम० एस०, खड II (मार्च 1873) पृ० 92; ए० बी० पी०, 28 जुलाई 1870, और 6 फरवरी 1880; मराठा, 6 फरवरी 1881; और 13 अप्रैल 1884; इडियन स्पैक्टेटर, 25 फरवरी (आर०

एन० पी० बंब, 3 मार्च 1883); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 618, 637-8; राय, पावर्टी, पृ० 6, 318-21; एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 254; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 366; हिंदुस्तान, 20 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 27 जुलाई 1898); स्वदेशमित्रन, 15 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1900); वाचा, सी०पी०ए०, पृ० 605; दत्त, स्पीचेज II पृ० 84, ई० एच० I पृ० XIII. ई० एच० II, पृ० XIV-XV, 127, 215, 613; केसरी, 21 जुलाई (आर०एन०पी० बब 25 जुलाई 1903); एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 752-3

66. 1902-03 में गृह प्रभारो की राशि 17, 700,000 पोंड थी और इसका वितरण निम्नलिखित रूप से किया गया गया था; रेल पथ राजस्व खाता, 6, 500, 000 पोंड; ऋणो का सूद और उनकी सचालन व्यवस्था, 2, 800,000 पोंड; भडार, 1, 800,000 पोंड सेना के प्रभावी खर्च 1,300,000 पोंड , नगर प्रशासन, 400,000 पोंड; पनडुब्बी, 200,000 पोंड; नगर तथा सैन्य सेवा के कर्मचारियों की पेंशनों और अवकाश भत्तो पर होने वाले अप्रभावी खर्च 4,700,000 पोंड इपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (1908) खड IV पृ० 194.

67. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 319-20; 397. परिशिष्ट पृ० 3; राय, पावर्टी, पृ० 315-6; दत्त: इग्लैंड ऐंड इडिया, पृ० 143, सी० पी० ए०, पृ० 490, स्पीचेज II पृ० 47 ई० एच० I पृ० XIII ई० एच० II पृ० XV-XVI, 215-20, 373-5; ए० नदी, इडियन पालिटिक्स, पृ० 113; एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 76; जी० एम० अय्यर, ई० ए, 353. रेलवे के लिए देखिए पीछे अध्याय स० 5 भडारो के लिए देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 35,37; ए० बी० पी०, 14 अप्रैल 1881 और 17 अप्रैल 1884; राय, पावर्टी, पृ० 317. भारत सचिवालय के रख-रखाव पर होने वाले व्यय के लिए देखिए पीछे अध्याय 12.

68 देखिए इसी पुस्तक के अध्याय 3 की पाद टिप्पणी में उद्धृत भारतीय नेता और ए० बी० पी०, 6 फरवरी 1880; पताका, 17 जुलाई (आर० एन० पी० बग; 25 जुलाई 1885); जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18638; हिंदुस्तान, 20 जुलाई (आर० एन० पी० एन०, 27 जुलाई 1898); स्वदेशमित्रन, 15 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1900); हिंदू निशान, 27 मई (वही, 30 मई 1903); केसरी, 21 जुलाई (आर० एन० पी० बब, 25 जुलाई 1903).

69. मसानी : पूर्वोद्धृत; पृ० 413-4, पर.

70. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 216 और देखिए, नौरोजी, एसेज, पृ० 114, 134; पावर्टी, पृ० 141, 199, 203, 217. 224-5, 655-6; स्पीचेज, पृ० 232, 250, 294,315, 384-6, 389, 616 परिशिष्ट, पृ० 3, 23.

71. ए० बी० पी०, 28 जुलाई 1870, 29 जन० और 18 जून 1885. 22 मई 1892, 27 मार्च और 24 दिस० 1896, 13 फरवरी और 7 अप्रैल 1897, 22 फर० 1, 4, 8, 9 जून, 3 अगस्त और 1 अक्तू० 1900 13 नव० 1901

72. भोलानाथ चंद्र, एम० एम० खड II (1873) पृ० 90, 93; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 640, 683, 794; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 232-3, 248-51, 514-5; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 62, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 32 और सी० पी० ए०, पृ० 366 पृ० 604-07; राय, पावर्टी, पृ० 6-7, 241-2, 278, 315 और इंडियन फेमींस पृ० 37; एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए० पृ० 254 269, 637, 708; आर० एम० सयानी. सी० पी० ए० पृ० 366; आर० एन०, मुधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 46-7; ए० नंदी इडियन पालिटिक्स, पृ० 124-6; 28 दिसंबर

1897 के लंदन इंडियन सोसाइटी के सम्मेलन में पारित प्रस्ताव, इंडिया, 14 जन० 1898 पृ०25; सी०वाई० चिंतामणि, एच०आर०, जनवरी 1902 पृ० 29, दत्त, स्पीचेज-I पृ० 13, स्पीचेज II पृ० 21, 48, 61-2, 84-5, ई०एच० I पृ० XIII-XVII 409, 420 ई०एच० II पृ० 14, 16, 127 पाद टिप्पणी, 343-4, 528, 612-3 जी०एस०अय्यर, विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 186-38, ई० ए, पृ० 59, 357-8, एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1902 पृ० 76-7, इंदु प्रकाश, 13 दिस० (आर० एन० पी० बंब 18 दिस० 1875), नेटिव ओपीनियन, 30 दिस० 1877 (वही, 5 जनवरी 1878), साधारणी, 31 अक्तू० (आर०एन०पी० बंग, 6 नवंबर 1880), मराठा, 6 फरवरी 1881, और 13 अप्रैल 1884, बाम्बे क्रानिकल 7 अक्तू० (आर० एन० पी० बंब, 13 अक्तू० 1883), सिंध टाइम्स, 20 मई (आर० एन० पी० बंब, 24 मई 1884), साधारणी, 27 जुलाई (आर० एन० पी० बंग, 2 अगस्त 1884), प्रतिकार, 22 अगस्त, (वही 6 सित० 1884), संजीवनी, 18 जुलाई, पताका, 17 जुलाई (वही, 25 जुलाई 1885), इंडियन स्पैक्टेटर, 5 जुलाई 1885, समय, 28 जून (आर० एन० पी० बंग, 3 जुलाई 1886), बंगवासी, 7 अगस्त (वही, 14 अगस्त 1886), स्वदेशमित्रन, तिथिरहित (आर० एन० पी० एम, सितंबर 1887), आंध्र प्रकाशिका, 5 नव० (वही, नवंबर 1887), ट्रिब्यून, 14 सित० (वी० ओ० आई०, अक्तू० 1887), हिंदू, 25 जून 1894, 7 जुलाई 1888, 5 अप्रैल और 4 जून 1900, बंगाली, 13 मार्च 1897, 24 और 25 मई 1901; हिंदुस्तान, 19 जून (आर० एन० पी० एन, 23 जून 1897), प्रपंच मित्रन, 19 जन० (आर० एन० पी० एम० 31 जन० 1900), स्वदेश-मित्रन, 28 अप्रैल और 15 मई (वही, क्रमश 30 अप्रैल और 31 मई 1900), न्यू इंडिया, 16 सित० 1901, 7 अप्रैल 1902, कृष्णा पत्रिका, 1 सित० (आर० एन० पी० एम० 6 सित० 1902) वृतांत चिंतामणि, 14 नव० (वही, 14 नव० 1902) केसरी, 21 जुलाई (आर० एन० पी० बंब, 25 जुलाई 1903), एडवोकेट, 2 फरवरी (आर० एन० पी० यू० पी०, 4 फर० 1905)

73 आई० एन० सी० 1896 1897, 1901, 1902 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश XII IX, VIII (a) III और III

74 उदाहरणार्थ देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 124, 184, 195, 203, 631, स्पीचेज, पृ० 135, 287, 587, परिशिष्ट, पृ० 5-6, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 233, राय पावर्टी, पृ० 329-30, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए० पृ० 254, 709, आर० एम० सयानी, सी० पी०- ए०, पृ० 353, दत्त, स्पीचेज-II पृ० 48, 85

75 दत्त, ई० एच II, पृ० XIV और देखिए, 'एप्ली फार दि स्क्वायलेशन आफ इंडिया, जे० पी० एस० एस०, जनवरी 1885 (खंड VII स० 3) पृ० 17

76 दत्त, ई० एच-I, पृ० 418-9, ई० एच II पृ० 213-4, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 129-30 296, परिशिष्ट, पृ० 13-4, मालवीय, स्पीचेज, पृ० 251-2 और देखिए, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए० पृ० 254, 709

77 सी० पी० ए०, पृ० 709

78 दत्त, ई० एच० I पृ० XI-XII और देखिए, वही, पृ० 100, एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 759

79 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 184, स्पीचेज, पृ० 117, 668, परिशिष्ट पृ० 5.

80 दत्त ई० एच० I पृ० XII, 426; ई० एच० II पृ० XIV

81. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 286-7. और देखिए वही, पृ० 119, 134-5, 153, 615, परिशिष्ट, पृ० 5-6, 10; और नौरोजी, पावर्टी, पृ० 184, 195, 203, 216, 224, 566.
82. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 181.
83. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 59.
84. वही, पृ० 56, 64.
85. वही, पृ० 135.
86. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 595
87. वही, पृ० 152-3.
88. वही, परिशिष्ट, पृ० 52. और देखिए; वही, पृ० 196, 382, एसेज, पृ० 101, पावर्टी, पृ० 38, 217, 225
89. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृष्ठ 18-21, 24.
90. मैं तो यही कहूंगा कि उसने गलतफहमी मे रहने का ढोंग रचा था क्योंकि उसके सभी प्रश्नों का स्वर यही सिद्ध करता है कि उसने मूर्ख का मुखौटा धारण कर रखा था अन्यथा वित्तीय मामलों की गहरी पकड़ के लिए वह प्रसिद्ध था. उसने दादाभाई को परेशान करने के लिए जानबूझकर यह ढंग अपनाया. यह विपरीत धारणा कि इससे तत्कालीन सरकारी आर्थिक चिंतन का काफी हद तक पता चलता है यह सिद्ध करेगी कि बिलबी और सरकारी तर्क का स्तर बहुत नीचा था जो अपेक्षाकृत दादाभाई नौरोजी के महत्व को बढाता है. कुछ भी हो इसमें कोई संदेह नही कि इस बहस में विलबी को मुह की खानी पडी.
91. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 683
92 वही, पृ० 793-4 वह थोड़ा और आगे बढ़े और यह मत व्यक्त किया कि सरकार द्वारा देश के भीतर से ऋण लेना भी देश के पूंजीगत साधनो की निकासी का एक अन्य द्वार है क्योंकि इससे देश की बचत की रकम का एक बहुत बड़ा अंश अनुत्पादक मद मे चला जाता है जिसका उपयोग अन्यथा देश की निवेशित पूंजी की वृद्धि में होता (वही, पृ० 794).
93. भोलानाथ चंद्र, एम० एम० खंड II (1873), पृ० 93; नेटिव ओपीनियन 30 सितंबर 1877 (आर० एन० पी० बंब, 5 जन० 1878); मराठा, 19 जून 1881, 13 अप्रैल 1884; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 61-2. रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 104, सी० पी० ए०, पृ० 625; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन खंड III प्रश्न 18675, 18702 ई० ए०, पृ० 125; एम० के० पटेल, रिप० आई० एन० सी० 1904 पृ० 114.
94. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 55-6, और देखिए पृ० 64 और 135.
95. वही, पृ० 217.
96 नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 9.
97. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 659 और देखिए गोखले, स्पीचेज, पृ० 909.
98. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 793-4
99. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 625-6 और देखिए, वही, पृ० 602-03, 606; जी० एस० अय्यर, विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18702; बंगाली, 19 जनवरी 1895; स्वदेशमित्रन, 29 मई (आर० एन० पी० एम० 31 मई 1900)
100. विलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18168-9.
101. नौरोजी, एसेज, पृ० 101, स्पीचेज, पृ० 232; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 695; जी०

एस० अय्यर; ई० ए०, पृ० 243; हितवादी, 3 अक्तू० (आर० एन० पी० बम०, 7 नवबर 1903) और देखिए वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 61

102. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 152-3, 196, 319, 382, परिशिष्ट पृ० 3, 5, 7-8 उसने आगे टिप्पणी की कि यदि हमे अपनी पूजी के सग्रह की पूर्ण स्वतत्रता हो तो हम देश मे आने वाली विदेशी पूजी का ईमानदारी से बराबर मुकाबला कर सकते हैं और उस समय विदेशी पूजी से हानि की अपेक्षा कदाचित लाभ ही अधिक होगा इस समय हमे विदेशी पूजी की हानि से ही व्यथित होना पडता है क्योकि हम असहाय हैं और पतित अवस्था मे हैं (वही, परिशिष्ट, पृ० 7) तथा देखिए गोखले के दादाभाई के प्रश्नों के दिए गए उत्तर, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18169-71, 18183-4

103. वही, पृ० 250 1 परिशिष्ट, पृ० 6-7

104 वही, पृ० 153 663

105 दत्त, ई० एच० II, पृ० XIV तथा पृ० 372-3.

106. वही, पृ० 348 9, 534-6

107. दत्त, स्पीचेज II, पृ० 27-8

108. वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1886 पृ० 61

109 देखिए पीछे अध्याय 4, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 641, ए० बी० पी० 17 जुलाई 1892 वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1898, पृ० 105, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 357-8

109-ए ऐडम स्मिथ, 'दि वैल्थ आफ नेशस' (माडर्न लाइब्रेरी न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित कैनन सस्करण, तिथिरहित) खड 5 अध्याय 1 भाग III पृ० 710

109-बी 'ब्रिटिश इनकम्स इन इडिया' न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून, 21 सितबर 1857. 'मार्क्स ऐड एजेल्स आन कालोनियलिज्म (मास्को, तिथि रहित) पृ० 143

109-सी एन० एफ डेनियल्सन के नाम मार्क्स का पत्र, 19 फरवरी 1881, वही, पृ० 304

109 डी इपीरियल गजेटियर आफ इडिया (1908) पृ० 201 उदाहरणार्थ, अवकाश यात्रा भत्ते और सेवानिवृत्ति भत्ते के रूप मे इग्लैड मे ही भुगतान की गई राशि भारत के 1902-03 के शुद्ध वार्षिक राजस्व के 12 प्रतिशत के लगभग थी (उसमे से ही आकडे सगणित किए गए हैं, पृ० 194, 201) 1895 मे पी० सी० राय ने दावा किया कि यह अनुपात 16 प्रतिशत है (पावर्टी, पृ० 8) बहुत सारे भारतीय नेताओ ने भी 1892 के ससदीय हिसाब खाते के आधार पर सगणना करने की चेष्टा की सैनिको को छोडकर यूरोपीय कर्मचारियो द्वारा वेतनो और पेंशनो के रूप में भारत मे और इग्लैंड मे प्राप्त किए जाने वाले धन की राशि, सगणना करने पर सचमुच चौंकाने वाली थी यह राशि लगभग 15 करोड रुपये थी अथवा दूसरे शब्दो मे भारत सरकार के कुल राजस्व का लगभग 30 प्रतिशत थी नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 134, परिशिष्ट, पृ० 6, 89-90; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 232-3, 248, 515-6, राय, पावर्टी, पृ० 325 6; ए० नदी, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 124; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 607; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 711; दत्त, ई० एच० I पृ० XIII, 427 पादटिप्पणी और देखिए गोखले, स्पीचेज, पृ० 1187-8.

110 मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 316 पर दादाभाई नौरोजी और देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 142, 200-01, 203, 574-6, स्पीचेज पृ० 115-6, 120, 361, 378, 527, 529-30 परिशिष्ट, पृ० 6, 26; लंदन इंडियन सोसाइटी द्वारा 14 जून 1898 को पारित प्रस्ताव पृ० 25; ए० बी० पी०, 4, 9 जून 1900, 28 मार्च 1901.

111. उदाहरण के रूप में देखिए, वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 61 और रिप० आई० एन० सी० 1898 पृ० 104; मालवीय, स्पीचेज, पृ० 252; श्रीराम, एल० सी० पी० 1901 खंड XL पृ० 238; दत्त, स्पीचेज I पृ० 13, 25, स्पीचेज II पृ० 21, 62, 87, ई० एच० I पृ० XIV, ई० एच० II पृ० XVII; आई० एन० सी० 1901 का प्रस्ताव III और आई० एन० सी० 1902 का प्रस्ताव III एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 691, 711. जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 59, 129.

112. नौरोजी, एसेज, पृ० 123, पावर्टी, पृ० 226. स्पीचेज, पृ० 120, 525, परिशिष्ट, पृ० 52.

113. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 142, 201, 658 स्पीचेज, पृ० 115-6, 162, 232-3, 323-4, 530 दत्त, स्पीचेज, II पृ० 62-3, ई० एच० II, पृ० 613.

114. नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 164 तथा देखिए, नोरोजी, स्पीचेज, पृ० 233, 323

115. उदाहरणार्थ देखिए, नोरोजी, पावर्टी पृ० 123-4, 135, 142, 639, 657, स्पीचेज, पृ० 115, 196-7, 529, 580, परिशिष्ट, पृ० 5, 23 25, 74-5, बगाली, 28 अगस्त 1880; वाचा, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 61, डी० जी० पाध्या, रिप० आई० एन० सी० 1886 पृ० 99; आई० एन० सी० 1901, 1902, 1903 और 1904 के प्रस्ताव क्रमश. III, III, II (सी) और III (सी). आर० एन० मुधोलकर, रिप० आई० एन० सी० 1901 पृ० 88; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 709, 711; दत्त, स्पीचेज, I पृ० 93, स्पीचेज, II, पृ० 21

116. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 196-7, 529. तुलनीय रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 289.

117. देखिए पीछे अध्याय 7 की पादटिप्पणी स० 63 मे उल्लिखित सदर्भ, और देखिए, रानाडे, 'रिव्यू आफ फासेट्स थ्यू एसेज आन इडियन फाइनास' जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1880 (खड III स० I) पृ० 80, हिंदू, 26 जुलाई 1893; आई० एन० सी० 1893 का प्रस्ताव XVII पी० ए० चारलू, एल० सी० पी० 1896 खड XXXV पृ० 286, दत्त, स्पीचेज, I पृ० 13, 93, ई० एच० II, पृ० 612. इग्लैड ऐंड इडिया, पृ० 144.

118 देखिए पीछे अध्याय सख्या XII.

119 दत्त, स्पीचेज I पृ० 97-8. और ई० एच० II, पृ० XVII, 599, 612. और देखिए जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 106, 131-3.

120 देखिए पीछे अध्याय सख्या 12

121. जी० एस० अय्यर, बिलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18954-5; स्वदेशमित्तन 29 मई (आर० एन० पी० एम०, 31 मई 1900). और देखिए जामे जमशेद, 5 जुलाई (आर० एन० पी० बम, 19 जुलाई 1880); समय, 3 मार्च (आर० एन० पी० बम०, 8 मार्च 1884). दूसरी ओर जी० वी० जोशी स्टर्लिंग पौंड के ऋणो के पक्ष में थे क्योंकि वे रुपये के रूप में मिलने वाले ऋण की अपेक्षा सस्ते थे; रुपये के रूप मे मिलने वाले ऋण उद्योग में निवेशित की जाने वाली पूंजी को निकाल कर उपलब्ध होते थे. इसके अलावा उन्होंने विशिष्ट प्रतिभा और सूक्ष्म चिंतन से यह पाया कि रुपये के रूप में मिलने वाले ऋण भी अधिकांशतया अंगरेज ऋणकर्ता से प्राप्त होते थे अतः रुपये के रूप मे ऋण प्राप्ति का एकमात्र उद्देश्य, निकासी रोकना, पूर्ण नहीं हो पाता था. (पूर्वोद्धृत, पृ० 114-30).

122. देखिए पीछे अध्याय 5 और दत्त, ई० एच० II पृ० 375.

123. ए० बी० पी०, 14 अप्रैल 1881; एस० के० नायर, रिप० आई० एन० सी० 1895, पृ० 74.

124. देखिए पीछे अध्याय 2 जी० एस० अय्यर, ई० एच०, पृ० 85, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए० पृ० 709.

125. देखिए पीछे अध्याय 3.

126. देखिए पीछे अध्याय 12.

127. केलाक : पूर्वोद्धृत, पृ० 127 तथा देखिए, बे० सी० मोयाजी, 'रानाडेज वर्क ऐज ऐन इकोनामिस्ट' इंडियन जरनल आफ इकोनामिक्स, जन० 1942 खंड XXII सं० 3 पृ० 308.

128. रानाडे, एसेज, पृ० 186-7.

129. देखें ऊपर.

130. जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV, सं० 1), पृ० 16.

131, आई० एन० सी० 1896 और 1897 के प्रस्ताव XII और XI क्रमशः.

132. जी० वी० जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 640, 683, 793-4; गोखले, स्पीचेज, पृ० 15, 87-8, 908-10 और विलवी कमीशन, खंड III प्रश्न 18169-84 1905 तक गोखले के विचार बड़े ही सकोच-पूर्वक प्रस्तुत किए गए थे. (स्पीचेज, पृ० 15, 87-8, 908-10) परंतु 1905 की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण मे उन्होंने दृढ़तापूर्वक घोषणा की कि अनेक वर्षों से देश से संपत्ति की भारी और विनाशकारी निकासी शुद्ध आयातों पर निर्यातो की अधिकता के (कोश सहित) रूप में चल रही है पिछले चालीस वर्षों में हुई इस निकासी की राशि 1 अरब स्टर्लिंग पौंड से कम नहीं होगी (सी० पी० ए०, पृ० 844).

133 निकासीवाद के प्रारंभिक खंडनो मे एक था जान स्ट्रेची का प्रयास, जो उन्होंने 1878 के 'वित्तीय विवरण' मे तथा 1880 के रिपोर्ट आफ दि इंडियन फेमीन कमीशन भाग VIII, कंडिका-4 में प्रस्तुत किया हा विस्तृत खंडन सर्वप्रथम 1911 मे ही देखने को मिला जो थियोडोर मोरिसन की पुस्तक 'दि इकोनामिक ट्रांजीशन इन इंडिया' से (लंदन 1911) (1916 का पुन मुद्रण) अध्याय-7 और 10 में उपलब्ध है

134 एल० सी० ए० नौल्स : दि इकोनामिक डेवलपमेंट आफ दि ब्रिटिश ओवरसीज एपायर (लंदन 1928) पृ० 392-3. ऐंस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 509-11 तथा देखिए जी० फिंडले शिराम · पावर्टी ऐंड किंडर्ड इकोनामिक प्राब्लम्स इन इंडिया (भारत सरकार 1935, तृतीय संस्करण)

135. कंडिका-52

136. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 193, और देखिए, चिसनी, पूर्वोक्त, पृष्ठ 397; नौल्स . पूर्वोद्धृत, पृ० 392-3. केवल जी० डी० रीस ने तथ्यों की उपेक्षा की और दृढ़तापूर्वक कहा : 'जो कुछ भी बाहर जाता है, उस सबका मूल्य चुकाया जाता है और उपभोग की ऐसी सभी वस्तुएं, उदाहरणार्थ, सूती सामान और सोना-चांदी जो कि देश की सर्वाधिक मांगें हैं कल्पना कीजिए कि भारत व्यापक परिमाण में इनका निर्यात बंद कर देता है, इसके फलस्वरूप उसे उसी अनुपात में भुगतान भी कम मिलेगा और तदनुसार उसकी जनता दुखी होगी वस्तुतः बदले में दिया गया सामान अथवा पैसा जनता को ही मिलता है न कि सरकार को (पूर्वोद्धृत, पृ० 302).

137. मोरिसन : पूर्वोद्धृत. पृ० 188-92; नौल्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 392 ऐंस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 333. जी० एफ० शिरास : पूर्वोद्धृत, पृ० 25.

138. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 184-6, 200-02, नौल्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 392.

139. कर्जन स्पीचेज, III पृ० 388, रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 302 यहां तक कि नौल्स का भी अनुमान था कि निकासीवाद के समीक्षकों द्वारा संबंधित निर्यातों की अधिकता में सोने चांदी के आयात

सम्मिलित नही थे.

140 मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 223.

141. स्ट्रेची, फाइनांशल स्टेटमेंट-1878, कंडिका, 52; रिपोर्ट आफ दि इंडियन फेमीन कमीशन 1880, भाग VIII कंडिका-4; चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 397; स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 195-6, 235-6; रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 80, 124, 289, 302; मोरिसन, पूर्वोद्धृत, पृ० 205 तथा आगे, 218-222 नोल्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 392, ऐंस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 509; जी० एफ० शिरास, पूर्वोद्धृत, पृ० 23-4

142. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 224 ऐंस्टे, पूर्वोद्धृत, पृ० 509; जी० एफ० शिरास : पूर्वोद्धृत, पृ० 23-4.

143. रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 302 मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 239-41. ऐंस्टे, पूर्वोद्धृत, पृ० 509-11.

144 मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 239 40 तथा देखिए जी० एफ० शिरास, पूर्वोद्धृत, पृ० 24

145. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 241 तथा देखिए ऐंस्टे · पूर्वोद्धृत, पृ० 510.

146. चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 397. स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 194; रीस, पूर्वोद्धृत; पृ०289, 302; मोरिसन : पूर्वोद्धृत पृ० 183, 204-16; जी० एफ० शिरास : पूर्वोद्धृत, पृ० 22, 24

147. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 205, 229

148. वही, पृ० 235-6. स्ट्रेची : इंडिया (1903) पृ० 236

149. स्ट्रेची, फाइनांशल स्टेटमेंट 1878 कंडिका 52 रिपोर्ट आफ दि इंडियन फेमिन कमीशन, 1880, भाग VIII कंडिका-4; चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ०397-8;जार्ज हैमिल्टन, हंसार्ड (चौथी सिरीज) ख० XCIX, 1901, पृ० 1213; स्ट्रेची . इंडिया (1903) पृ० 192-5, इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, (1908) पृ० 194; मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 237, वी० लावेट पूर्वोद्धृत, पृ० 236; नोल्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 393; ऐंस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 510; जी० एफ० शिरास : पूर्वोद्धृत, पृ० 23 निकासीवाद के पीछे आलोचको का यह विश्वास काम कर रहा था कि राजनीतिक निकासी न केवल लाभदायक है प्रत्युत अपरिहार्य भी है इस प्रकार चिसनी ने 1893 मे दृढ़तापूर्वक कहा कि यद्यपि गृह प्रभार और यूरोपीय कर्मचारियो द्वारा अपनी बचतो को इंग्लैंड ले जाना शब्द के अर्थ के रूप मे सचमुच ही धन की निकासी थी परतु इसके लिए शिकायत करना फूहड़पन ही था, क्योंकि इसका अर्थ तो यह अनुमान लगाना होगा कि अंगरेज अधिकारियो द्वारा सचालित अंगरेज प्रशासन के अभाव में भारत अपने आप आतरिक शांति और सुरक्षा प्राप्त कर लेता. जो लोग इस विश्वास के पीछे किसी क्षुद्रतम आधार की भी कल्पना करते हैं, ऐसा लगता है कि उन्हें भारत के इतिहास की और भारतीय लोगों की साधारण सी भी जानकारी नही है, (पूर्वोद्धृत, पृ० 398) तथा देखिए स्ट्रेची . इंडिया (1903) पृ० 194-5.

150. मोरिसन : पूर्वोद्धृत, पृ० 237.

151. वही, पृ० 241.

152. नौरोजी, एसेज, पृ० 36, 85, 889, 101, 112-4, स्पीचेज, पृ० 665.

153. नौरोजी, एसेज, पृ० 101, 113, पावर्टी, पृ० 33, 137, 568-9. स्पीचेज, पृ० 382-3; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 618, 638-9; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 338, 353; गोखले, स्पीचेज, पृ० 87-8.

154. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 320-1, 382, 666, और देखिए नौरोजी, पावर्टी, पृ० 131, 138, 196 तथा आगे, ऐंस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 333 की पादटिप्पणी : यह ध्यान देने की बात है कि आयात की घोषित कीमत में माल भाड़ा सम्मिलित है परंतु निर्यात के घोषित मूल्य में वह सम्मिलित

नही है, तथा ई० ला, एन० सी० पी० 1904 खड XLIII पृ० 538.

155 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 320-1, 666.

156. देखिए पीछे अध्याय 3. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 33-4, 38, 566-9, स्पीचेज, पृ० 133, 319, 322, 615, परिशिष्ट, पृ० 3, 7-8, 55-6; जी० एम० अय्यर ई० ए०, पृ० 127-8; गोखले, विलबी कमीशन, खड III प्रश्न 18169, 18183-4.

157. देखिए पीछे अध्याय 5

158 देखिए पीछे अध्याय 3

159 देखिए अध्याय 5

160 देखिए अध्याय 3, 5.

161 देखिए अध्याय 3, 8.

162 देखिए अध्याय 3.

163 वही " 3.

164 वही.

165 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 37, 131-2, 136 पादटिप्पणी, 141 568-9. 574 स्पीचेज, पृ० 382-3; मराठा 25 मई 1884; न्यू इडिया, सितबर 1902; और पीछे अध्याय 4

166 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 3-4, 565, स्पीचेज, पृ० 133, 319, 596, दत्त, ई० एच II पृ० 375.

167 नौरोजी, पूर्वोद्धृत, पृ० 87, 746, इडियन स्पेक्टेटर, 26 अक्तूबर 1884, मराठा, 9 अगस्त 1885 जैसाकि हम पहले ही निर्देश कर चुके है, 1860 के आसपास तक तो दादा भाई भी रेल पथो के निर्माण के लिए विदेशो से ऋण लेने के पक्ष मे थे (स्पीचेज, पृ० 124-6, 132).

168 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 319, दत्त, ई० एच II पृ० XV जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 353

169 नौरोजी स्पीचेज, पृ० 319-20; दत्त, ई० एच० I, पृ० 398-9, 406-09, ई० एच० II पृ० XV-XVI, 215-20, 373-5, 604, एक दूसरे सदर्भ मे भी भारतीयो ने निर्देश किया कि भारतीयो के रक्त और धन के मूल्य पर ही भारतीय साम्राज्य हथियाया गया है नौरोजी, पावर्टी पृ० 567, 640, स्पीचेज, 221-2, गोखले, स्पीचेज पृ० 1207, दत्त, ई० एच० I पृ० 399.

170 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 319-20, गोखले, स्पीचेज, पृ० 1205-06, दत्त, ई० एच० II, पृ०XV-XVI, 604 और देखिए, अध्याय XII सैनिक व्यय सबधी भाग.

171 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 320-1.

172. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 35, 37

173. देखिए पीछे पादटिप्पणी 67

174. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 565

175 विशेषतया देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 42-3, 54.

176. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 196-7 395 और आगे, 484-5, 496-7, 506 परिशिष्ट पृ० 6, 25, 32, 47, 73, 171-2; गोखले, स्पीचेज, पृ० 908-09. 1866 के प्रारभ दादाभाई ने 'दि यूरोपियन ऐंड एशियाटिक रेसेस' शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख का उद्देश्य यह दिखाना था कि भारत और एशिया के लोगो मे भी यूरोप के लोगो के समान ही ऊची नैतिकता और उच्च स्तर की प्रतिभा है (स्पीचेज, पृ० 535 और आगे)

177. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 47.

178. गोखले, स्पीचेज, पृ० 62.

179. देखिए पीछे अध्याय 2.
180. देखिए पीछे अध्याय 12.
181. आगे देखिए.
182. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 640-1; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 605; गोखले, स्पीचेज, पृ० 908.
183. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 227, स्पीचेज, पृ० 134.
184. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 52-3 तथा देखिए वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 607.
185. गोखले, स्पीचेज, पृ० 1188 और देखिए, उदाहरण के लिए नौरोजी, एसेज, पृ० 123, 374, पावर्टी, पृ० 56-8, 203-05, 225, 631, स्पीचेज, पृ० 134, परिशिष्ट, पृ० 171; सी० शंकरन नायर, सी० पी० ए०, पृ० 388 9; गोखले, स्पीचेज, पृ० 120.
186. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 33.
187. उदाहरण के लिए देखिए नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 316-7, 319, 329, 361, 378.
188. वही, पृ० 339.
189. वही, पृ० 322, और देखिए पृ० 668.
190. वही, परिशिष्ट, पृ० 3 यहा यह उल्लेखनीय है कि कितने ही और भारतीय नेताओं ने भी इस बात पर ध्यान दिया था कि निकासी के मूल कारण राजनीतिक ही है देखिए जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 683; राय, पावर्टी, पृ० 7, 242; गोखले, स्पीचेज, पृ० 15
191 नौरोजी, पावर्टी, पृ० 212.
192. वही, पृ० 211-2.
193. वही, पृ० 224.
194. वही, पृ० 225.
195. वही, पृ० 224-5. 31 जनवरी 1901 को लदन के श्रोताओं को सबोधित करते हुए उन्होने फिर दोहराया, 'जिस ढग से तुम जीवन और सपत्ति की रक्षा दूसरो के द्वारा की जाने वाली खुली हिंसा से करते हो उसका वास्तविक रूप यह है कि तुम सपत्ति की रक्षा इसलिए करते हो कि दूसरा कोई उस सपत्ति को न हथिया सके और तुम स्वय उस पर अधिकार जमा सको। यदि ऐसा करना दुखद न होता तो जिंदगी मजाक हो जाती है। जरा आख उठा कर भारत के लाखो करोड़ो आदमियो को देखिए तो सही जो दिन प्रति दिन, वर्ष प्रतिवर्ष, अच्छी फसल के वर्षों में अभावग्रस्त जीवन बिताने और दुःख भोगने को विवश हैं (स्पीचेज, पृ० 228).
196 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 389
197 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 125.
198 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 153
199 वही, पृ० 153-4
200. वही, पृ० 400 पृ० 387 भी देखिए.
201. वही, पृ० 328.
202. वही, पृ० 329.
203. इंडिया, 2 सितंबर 1904. उन्होंने व्यंग्यपूर्वक टिप्पणी की : ब्रिटिश इस देश से संपदा बाहर ले जाते हैं। अतः जब देश में फसल कम होती है, लाखों-करोड़ों भूख से मर जाते होते हैं, तब ब्रिटिश प्रशासन ने अपनी उदार लोकोपकारी प्रवृत्ति का यह प्रमाण दिया है।
204. नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 29, और देखिए, वही, परिशिष्ट, पृ० 4-5, 27, 78 और

सी० पी० ए० पृ० 158. उन्होंने फिर भी निकासी के मामले में ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश संसद को निर्दोष बताया परंतु ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों, भारत और ब्रिटिश सरकार के राज्य सचिव को पूरी तरह दोषी सिद्ध किया (वही, परिशिष्ट, पृ० 58-60).

205. उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 227.

206. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 120

207. वही, परिशिष्ट, पृ० 74 और देखिए, वही, परिशिष्ट पृ० 43, 75.

208. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 218 तथा पृ० 216.

209. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 334 उन्होंने लिखा : 'भारतीयों का प्यार ही एक ऐसी सुदृढ आधार शिला है जिस पर विदेशी शासक मजबूती और निरंतरता के साथ खड़ा हो सकता है अन्यथा वह एक दिन सपने की तरह बिखर जाएगा. (वही, पृ० 332)

210 वही, पृ० 368

211. नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 8

212. नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 392

213 वही, पृ० 223

214 नौरोजी, पावर्टी पृ० 659

215 उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 21-2, 25-6.

216 इंडिया, 2 सितंबर 1904

217 नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 671 इन्हीं भावों को दादाभाई ने इससे पूर्व दिसंबर 1903 में उस समय भी अभिव्यक्त किया था जब उन्होंने 'हिंदुस्तान रिव्यू' और 'कायस्थ समाचार' को भेजे गए अपने संदेश में ब्रिटिश सर्वोच्चता के अंतर्गत स्वशासन अथवा स्वराज्य की मांग की थी। (एच० आर० दिसंबर, 1903 पृ०.474)

218 नौरोजी, सी० पी० ए०, पृ० 863 तथा देखिए, पृ० 883, 886.

219 देखिए 1890 के प्रथम औद्योगिक सम्मेलन में उनका उद्घाटन भाषण. एसेज, पृ० 180-94. और देखिए वही, पृ० 119-20

220 उदाहरणार्थ 1858 के प्रारंभ में महारानी की घोषणा में यह कहा गया था : 'भारत के शांतिपूर्ण उद्योग को प्रोत्साहन देना हमारी हार्दिक अभिलाषा है' डफरिन ने अपने सुप्रसिद्ध सेंट एंड्रयूज भाषण में घोषणा की कि भारत की दरिद्रता को दूर करने के दो ही उपचार हैं : उत्पादक उद्योगों का विस्तार और उत्प्रवास (स्पीचेज, पृ० 242) कर्जन ने भी 1903 में वकालत की कि जब से मैं भारत में हूं, जिन विषयों ने मेरा गहरा ध्यान आकृष्ट किया है, उनमें प्रथम है भारत की औद्योगिक गतिविधि का विकास मेरी दृष्टि में इसी पर भारत की भावी आशा निर्भर है (स्पीचेज, III, पृ० 114) और देखिए, वही, पृ० 117, 133, 139-41 और देखिए जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 101-02

221 रिपोर्ट ग्राफ दि इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन, पूर्वोद्धृत, 1916-18, पृ० 75-8, 105-07; ऐस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 210 3 न्यायमूर्ति रानाडे ने 1890 में घोषणा की : 'यह ठीक है कि सरकार सहायता कर सकती है परंतु नगण्य रूप से प्रारंभिक कार्य में नेतृत्व दीजिए, सरकार हमारी सहायता को उत्सुक है (एसेज, पृ० 190).

222. ऐस्टे : पूर्वोद्धृत, पृ० 216-26

223. रानाडे तक ने घोषणा की कि औद्योगिक क्षेत्र में शासकों और शासितों के हितों में किसी प्रकार

का कोई संघर्ष नहीं. दोनों ही समान रूप से देश की औद्योगिक और आर्थिक प्रगति को अग्रसर करने को इच्छुक हैं (एसेज, पृ० 180). और देखिए, वही, पृ० 181 190.

224. रानाडे, एसेज, पृ० 187-188. 193-4. ए० एस० मुदालियर, रिप० आई० एन० सी०, 1886 पृ० 65; और पीछे अध्याय 2. तुलनीय जे० सी० गोयाजी, 'रानाडेज वर्क्स ऐज ऐन इकानोमिस्ट' इंडियन जरनल आफ इकोनामिक्स, जनवरी 1942, खंड XXII, संख्या 3 पृ० 307-16.

225. रानाडे, एसेज, पृ० 119-20, 187, 190-4; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 805-806, 814. और पीछे अध्याय 2.

226. डफरिन, स्पीचेज, पृ० 242. और देखिए, कर्जन, स्पीचेज III पृ० 139-41. फिरोजशाह मेहता खुले तौर पर यूरोपियों पर यह आरोप लगाने की सीमा तक बढ़ गए कि वे औद्योगिक विकास के आंदोलन का उपयोग भारतीयों को राजनीतिक आंदोलन से विमुख करने के एक साधन के रूप में कर रहे थे (स्पीचेज, पृ० 817) इससे पूर्व मार्च 1904 में कर्जन यह घोषित कर चुके थे कि मैं नहीं समझता कि भारत के विकास के वर्तमान स्तर पर राजनीतिक क्षेत्र में मुक्ति की मांग का कोई औचित्य है? (स्पीचेज II पृ० 49).

227. आई० एन० सी० 1901 का प्रस्ताव XVI.

228. आई० एन० सी० 1902 का प्रस्ताव III और 1904 का प्रस्ताव III

229.* आर० पी० पराजपे ने गोखले के राजनीतिक कार्यक्रम के 'नरम' साधनों का विश्लेषण निम्नलिखित रूप से किया है : 'उनकी यह धारणा थी कि ब्रिटिश राज्य के अंतर्गत और विश्व में अपना समुचित स्थान पाने के लिए 9-10 भाग का कार्य तो भारत में और स्वयं भारतीयों को ही पूरा करना है कार्य के इस बड़े अंश के सम्पन्न हो जाने पर विदेशी शासन की नौकरशाही के कारण स्वाभाविक थोड़ी बहुत कठिनाइयों का आना स्वाभाविक ही है परंतु उन्हें दूर करने में बहुत समय नहीं लगेगा.' पराजपे ने आगे यह टिप्पणी ठीक ही की कि अपनी त्रुटियों के इतने गहरे ज्ञान का अर्थ यह कदापि नहीं कि जनता के सामने गला फाड़ फाड़ कर अपने को वृद्ध घोषित करो और दूसरों की दृष्टि में नीचे गिरो' 'गोपालकृष्ण गोखले' (पूना, 1915, द्वितीय संस्करण) पृ० 34 यहां जस्टिस रानाडे के संतुलित राजनीतिक दृष्टिकोण की परिभाषा को जानना भी रोचक होगा 1896 में उन्होंने लिखा 'उपयुक्तता का अर्थ है कि असंभव के पीछे भटकने का दंभ न करना, अथवा दुष्प्राप्य की कामना न करना प्रत्युत समझौता और औचित्य की भावना से यथासंभव हस्तगत हो सकने वाले लक्ष्य के प्रति स्वाभाविक विकास के रूप में प्रतिदिन एक एक पग आगे बढ़ते जाना' आर्थिक क्षेत्र में जनता की घोर दरिद्रता का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के उपरांत रानाडे ने लिखा : 'हां, यह वस्तुस्थिति कल की तो है नहीं, और न ही यह विदेशी विजय और प्रतियोगिता का एकमात्र परिणाम है. यह तो पुरानी और बहुत पुरानी परंपरागत स्थिति है (एसेज, पृ० 182).

230. मसानी; पूर्वोद्धृत, प 414 पर

231. वही, पृ० 523.

232. वस्तुतः दादाभाई और 'पत्रिका' दोनों इसे निकासी से संबंधित न करने पर यह मानने को प्रस्तुत थे कि भारत में भूमि लगान काफी बहुत ऊंचे कतई नहीं थे (नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट, पृ० 52 और ए० बी० पी०, 1 जून 1900). 'पत्रिका' ने 18 अक्तूबर 1900 के अंक में भी निर्देश किया कि निकासी के प्रस्तुत तथ्य के अंतर्गत भुगतान करने के लिए अंततः धन की उगाही तो

करनी ही है। यदि भूमि लगान घटाए गए तो देश को किसी और मद से धन की व्यवस्था करनी पड़ेगी

233 उसने इस बात पर भी ध्यान दिया कि दत्त भूमि लगान पर आवश्यकता से अधिक बल देने की अपनी पूर्व स्थिति से बदल चुके हैं और अब भारत को निर्धन बनाने के लिए निकासी और उद्योग के अभाव पर भी बराबर आरोप लगाने लगे हैं

234 उदाहरणार्थ, दादाभाई ने 1887 मे वाचा को लिखा विधान परिषदो मे प्रतिनिधित्व के सुधार मात्र से तब तक कोई लाभ नही होगा जब तक साथ मे निकासी को बद करने क अन्यान्य सुधार नही अपनाए जाते (मसानी पूर्वोद्धृत, पृ० 316 पर) तथा देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 361

235. 26 जनवरी 1886 को खजाने को लिखा गया पत्र, जो स० 26 दिनाक 28 जनवरी के डिस्पैच आफ सेक्रेटरी आफ स्टेट टु गवर्नमेंट आफ इडिया (फाइनास) मे सलग्नक सख्या-2 के रूप मे भेजा गया

236 रीस, पूर्वोद्धृत, पृ० 288.

237. उदाहरण के रूप मे दिसबर 1881 के 'बगाल मैगजीन' ने लिखा · इस प्रकार की जगली बात-चीत से श्रीमान दादाभाई का क्या अभिप्राय है ? राजस्व की जिस हानि पर दादाभाई विलाप क रते हैं तभी रुक सकती है जब भारत स्वतत्र हो जाएगा तथा स्वय भारतीयो द्वारा ही प्रशासित होगा, परतु वह दिन आने वाला नही है और बहुत लबे समय तक आन वाला नही है अत. विदेशियो द्वारा देश के साधनो के उपभाग किए जाने की बात करना मूर्खता ही है (पृ० 177-8) और देखिए, 'न्यू इडिया', 7 अप्रैल 1902

238 उदाहरण के लिए देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, परिशिष्ट पृ० 77-8

239 1908 म जे० डी० रीस ने लिखा यह सत्य है कि ब्रिटिश राज्य मे विश्वास की दृढता क कारण दादाभाई बहुत से अभियोगो से बच निकलते हैं परतु इस कथन को केवल इस फ्रासीसी उक्ति के समान ही समझा जा सकता है 'हमारे दुर्भाग्य हमे खा न जाए, उससे पहले ही हमे उन्हे खा जाना चाहिए' (पूर्वोद्धृत पृ० 238).

अध्याय 14

भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था

> सिद्धात केवल व्यवहार का व्यापक रूप है और समीवर्ती कारणो के संदर्भ मे सिद्धात का अध्ययन ही व्यवहार है।
>
> जस्टिस रानाडे

> समाज की प्रचलित परिस्थितिया तथा इसके भावी और समकालीन हित के सबध मे व्याप्त मान्यताए उन आर्थिक धारणाओं के निर्धारक तत्व है जिन्हे चितको का अनुमोदन और राजनीतिज्ञो की स्वीकृति प्राप्त रहती है।
>
> जी० सुब्रह्मण्य ऐयर

हमारे अध्ययन के अतर्गत अवधि मे कुछ एक भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने 'भारतीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था' की धारणा को जन्म दिया। 1892 मे दक्कन कालेज पूना मे 'भारतीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था' पर अपने प्रतिष्ठित भाषण मे जस्टिस रानाडे ने इस विषय का समग्र और पूर्ण रूप मे वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया।[1] भारतीय अर्थशास्त्र के इतिहास मे उनके मूल सिद्धात अत्यन्त प्रसिद्ध है, अत यहा उनके विस्तृत विवरण देने की आवश्यकता नही।[2] परन्तु जो बात इतनी अच्छी तरह विदित नही है वह यह है कि उनके सिद्धातो को कितने व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय नेताओ मे मान्यता प्राप्त थी। इस विषय पर रानाडे के विचारो का हम यहा नीचे सक्षेप मे विवेचन करेगे :

क्लासिकी राजनैतिक अर्थव्यवस्था को सभी समयो मे और सभी स्थानो पर, सार्वदेशिक रूप मे समग्र रूप और प्रमाण रूप से तथा आर्थिक विकास के सभी स्तरो पर सही मानने का दावा वास्तविकता मे कोसो दूर था।[3] क्लासिकी अर्थव्यवस्था का आधार वे प्रकल्पनाएं थीं, जिन्हे सार्वदेशिक रूप मे प्रयोग मे नही लाया जा सकता था। वस्तुत इग्लैंड की विशेष परिस्थितिया ही उनके जन्म के लिए उत्तरदायी थी अन्यथा वे उस समय के किसी भी समाज के लिए अनुरूप कदापि नही थी।[4] विशेषतः भारत जैसे पिछड़े, अप्रगतिशील तथा कृषि प्रधान देश के लिए तो, जिसमे प्रतियोगिता के बदले यथास्थिति और रस्मो रिवाज ही हावी रहते हैं, उनकी शायद ही कोई उपयोगिता थी।[5] द्वितीय, ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के अतीत मे व्यवहार और अन्य देशों द्वारा किए जा रहे समकालीन

व्यवहार क्लासिकी अर्थव्यवस्था की मान्यताओं अथवा प्रकल्पनाओं की कदापि पुष्टि नही करते थे।[6] वस्तुस्थिति तो यह थी कि ब्रिटिश सरकार ने रेलों को प्रतिभूति देते हुए, बागान उद्योग को सहायता देते हुए अथवा भूमि पर राज्य-स्वामित्व का दावा करते हुए अथवा कानून के द्वारा किसानों की क्षुद्र संस्कृति की रक्षा करते हुए इन सिद्धांतों का कठोरता से पालन नहीं किया था।[7] तृतीय, क्लासिकी अर्थशास्त्रियो के दावों के आगे यूरोपीय और अमेरिकन अर्थशास्त्रियों ने प्रश्न-चिह्न लगा दिया था।[8] यहा तक कि उन पर कितने ही अंग्रेज अर्थशास्त्रियों ने भी प्रहार किया था।[9] इसके अतिरिक्त कुछ एक क्लासिकी अर्थ-शास्त्री स्वयं अपने आप ही अपने विज्ञान की सर्वव्यापकता और समग्रता के दावे को छोडने की पूरी चेष्टा कर रहे थे।[10] चतुर्थ, क्लासिकी अर्थशास्त्री अधिक से अधिक निश्चल आर्थिक परिस्थितियों का ही विश्लेषण कर सकते थे परंतु वे गतिशील आर्थिक विकास पर प्रकाश डालने मे लगभग असमर्थ थे।[11] इन सब तत्वों को देखते हुए अपरिहार्य निष्कर्ष यही निकलता था कि अर्थशास्त्र के सिद्धांत अथवा नियम भौतिकी और गणित के नियमों के अनुसार अमूर्त तथा सार्वभौमिक नहीं थे प्रत्युत वे सापेक्ष और ऐतिहासिक दृष्टि से परिस्थिति पर निर्भर तथा इसी से निकलते थे। वह समय और स्थान के अनुसार परिवर्तन-शील थे।[12] अत: किसी देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण के लिए निर्णायक तत्व अमूर्त आर्थिक सिद्धात न होकर आर्थिक विकास की विशिष्ट अवस्था ही होनी चाहिए।

यहां यह उल्लेखनीय है कि रानाडे ने आर्थिक सिद्धातों की उपयोगिता तथा अर्थ-शास्त्र की वैज्ञानिक तर्कसंगति को मानने से कभी इनकार नही किया।[13] इसके विपरीत उन्होने अर्थशास्त्र को स्वतः सिद्ध कानूनो की स्थिति को कला का रूप देकर उसका अवमूल्यन करने वालों की विशेष रूप से ही भर्त्सना की।[14] वे तो केवल व्यवहारिकता का सुदृढ़ आधार देकर उसे और अधिक सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक बनाना चाहते थे।[15] उनका कथन था कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है अत: उसके सिद्धांतों की स्थापना इतिहास के माध्यम से विशिष्ट आर्थिक गतिविधियों के अध्ययन से ही करनी अपेक्षित है न कि वियोजक रीति के अनुसार, ताकि उन्हें ऐतिहासिक अनुभव, व्यावहारिक निरीक्षण तथा समाजिक यथार्थता के साथ निकटता से जोड़ा जा सके। अथवा जैसा कि डी० जी० कर्वे ने लिखा है : रानाडे को केवल विस्तृत, समाजशास्त्रीय तथा रचनात्मक आर्थिक दृष्टि-कोण ही मान्य था।[16] 1881 में रानाडे ने स्वतंत्र व्यापार के प्रश्न को समग्रतः आर्थिक दृष्टिकोण से देखने के लिए तथा प्रश्न के साथ जुडे राजनैतिक तथा सामाजिक तत्वों की उपेक्षा करने के लिए अंग्रेज अर्थशास्त्रियों की तीव्र निंदा की तथा अपना निश्चित मत व्यक्त किया कि यदि राजनैतिक आर्थिकता को विद्यालय के अध्यापक की अध्यात्म विद्या से भिन्न रूप मे ग्रहण करना है तो आर्थिक पक्ष को.जनता के ऊंचे हितों और आकांक्षाओं के अधीन ही कर देना चाहिए। वस्तुत: उन्होंने निर्देश किया कि यही कारण है कि लोग व्यावहारिक अर्थात् राजनैतिक आर्थिकता की बात करते है विशुद्ध आर्थिकता की कोई बात नहीं करते।[17] इस संबंध में रानाडे क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के व्यवहार के प्रति ईमानदार रहे और उन्होंने प्राय: ही आर्थिकता का राजनैतिक आर्थिकता के रूप में जिक्र किया।

समय आने पर रानाडे की क्लासिकी आर्थिकता की आलोचना ने राष्ट्रीय अथवा

भारतीय राजनैतिक आर्थिक चिंतन की आधारशिला रखी। हमारा विश्वास है कि यह विकास प्रमुख रूप से इन दो तत्वों की उपज था : (ए) रानाडे का निष्कर्ष, इस विश्वास से उद्भूत था कि आर्थिक सिद्धांत, सामाजिक यथार्थ पर अत्यंत निर्भर होने के कारण तथा आर्थिक व्यवहार की प्रतिबिंबात्मक विशेषता लिए रहने के कारण सापेक्षता लिए रहते हैं। इस रूप में क्योंकि भारत के आर्थिक हित और परिस्थितियां इंग्लैंड के आर्थिक हितों और परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न है, अतः भारत पर लागू होने वाले आर्थिक सिद्धांत भी सर्वथा भिन्न होने चाहिए।[18-बी] तथा अन्य बहुसंख्यक समकालीन राष्ट्रवादियों द्वारा रानाडे के पक्ष और निष्कर्ष की स्वीकृति।

इस प्रकार 1877 में ही के० टी० तैलंग ने सभी देशों पर राजनैतिक आर्थिकता के सिद्धांतों के समान रूप से लागू न होने के तथ्य के प्रदर्शन के लिए एक अंग्रेज अर्थशास्त्री टी० ई० कलिफ लेसली को उद्धृत किया।[18-ए] उनका यह भी कथन था कि व्यावहारिक प्रश्नों का निर्णय करते समय आर्थिक सिद्धांतो के केवल एक तत्व को ही नही लिया जा सकता। सामाजिक और राजनैतिक कल्याण के अन्य तत्व भी समान रूप से महत्व रखते हैं।[19] दादाभाई ने अपने लेख, 'दी पावर्टी आफ इंडिया' में यह तर्क प्रस्तुत किया कि स्वदेशियों द्वारा शासित देशों मे राजनैतिक आर्थिकता सही हो सकती है परंतु गृह प्रभारों और संप्रेषणों की व्यवस्था करने को विवश विदेशियों द्वारा शासित देश मे कठोरता से इसे लागू नही किया जा सकता।[20] पृथ्वीशचन्द्र ने भी राजनैतिक आर्थिकता के अमूर्त सिद्धांतों को लेकर किसी देश की समाज-शास्त्रीय स्थितियो पर विचार किए बिना ही उन सिद्धातों को कठोरता से लागू करने की निंदा की। उन्होंने अपने पक्ष के समर्थन मे अंग्रेज अर्थशास्त्रियो की आत्मतुष्ट हठधर्मी की गलतियो के प्रमाण के रूप मे अमेरिका, आस्ट्रेलिया और यूरोप के महाद्वीप को उद्धृत किया।[21] जी० वी० जोशी ने आर्थिक सिद्धात की सीधी चर्चा तो नही की परंतु उनके द्वारा राज्य की भूमिका, उन्मुक्त व्यापार, आदि प्रश्नो पर किये गए चिंतन से रानाडे के मौलिक सैद्धांतिक कार्यक्रम के प्रति उनकी सहमति और आस्था स्पष्ट सिद्ध हो जाती है।[22] आर० पी० दत्त ने आर्थिकवाद पर विचार प्रकट नही किए परंतु उन्होंने इस तथ्य को अवश्य देखा कि जब अंग्रेज लोग इंग्लैंड मे उन्मुक्त व्यापार के पक्ष मे आंदोलन चला रहे थे, उस समय भी इंग्लैंड मे प्रवेश करने वाले भारतीय माल पर लगने वाले भारी करों की रिकार्डो, कोब्डन ब्राइट और राबर्ट पील उपेक्षा ही कर रहे थे। दत्त महोदय ने स्थिति का निष्पक्ष विश्लेषण करने के लिए यूरोपीय अर्थशास्त्रियों की प्रशंसा की जिन्होंने अंग्रेज राजनीतिज्ञो के इंग्लैंड और भारत मे बरते जाने वाले दोगले व्यवहार की निर्भ्रांत शब्दों मे निंदा की।[23]

यद्यपि वे स्पष्ट रूप मे ही रानाडे के चरण चिह्नों का अनुकरण कर रहे थे तथापि उनका इस प्रश्न से संबंधित विवेचन ऐतिहासिक महत्ता लिए हुए है। उन्मुक्त व्यापार के प्रश्न पर विचार करते हुए उन्होने यह दिखाने के लिए कि किसी देश की आर्थिक नीतियों का निर्धारण उस देश की आवश्यकताओं के संदर्भ म होता है न कि आर्थिक सिद्धातों के परिप्रेक्ष्य में, जर्मनी और अमेरिका की संरक्षक नीतियों को उद्धृत किया। उन्होंने टिप्पणी की कि उन्मुक्त व्यापार की नीति इंग्लैंड की अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के कारण ही

उसके अनुकूल बैठती है। भारत की परिस्थितियां तो इस संबंध मे रूस और अमेरिका से ही मिलती-जुलती हैं।[24] सिद्धांत की समस्या के रूप में चर्चा करते हुए उन्होने कहा, क्लासिकी अर्थशास्त्र एकपक्षीय और अधूरा था। वह दूसरे देशो पर लागू नही होता था।[25] इसके अतिरिक्त उन्होंने टिप्पणी की और उसमे रानाडे के मत को प्रतिध्वनित करते हुए कहा, आर्थिक विज्ञान के सत्य राष्ट्रीय विकास की विशिष्ट स्थितियों और विशिष्ट वातावरण तथा परिस्थितियो की अपेक्षा किये बिना सार्वभौमिक रूप से व्यवहार मे आने योग्य नही हैं।[26] उन्होने यह भी निर्देश किया कि यूरोपीय राजनैतिक आर्थिकता कभी स्थिर नही रही है। उसकी मान्यताओं, धारणाओ, सिद्धांतों और व्यावहारिक प्रयोगो मे मध्य युग की विदाई के समय कितने ही परिवर्तन आए है।[27] एडम स्मिथ स्वयं एक युगविशेष मे सबधित है।[28] जी० एस० ऐयर ने आर्थिक चिंतन के सामाजिक उदगम-स्रोतो पर बल देते हुए लिखा, समाज की निर्दिष्ट स्थितिया, भविष्य के तथा समकालीन हितो के सबध मे प्रचलित मान्यताएं ही उन आर्थिक दृष्टिकोणों का निर्धारण करती हैं जिन्हें विचारको का समर्थन और राजनीतिज्ञो की स्वीकृति प्राप्त होती है। अत: उन्हे यह स्पष्ट दीख रहा था कि पुराने अर्थशास्त्रीय नियमो को भारत पर लागू करने मे पूर्व उनमे सुधार अपेक्षित है, क्योंकि भारत के सरक्षणीय आर्थिक हित और परिस्थितिया यूरोप और अमेरिका के हितो और परिस्थितियो मे भिन्न है।[29] उन्होंने इस ओर भी निर्देश किया। भारत मे अंग्रेजो द्वारा प्रयुक्त आर्थिक नियम यह स्पष्ट करते है कि पुराने नियमों के पालन करने के बहुत सारे अपवाद उपलब्ध है, परन्तु दुर्भाग्यवश सिद्धांतो का यह उल्लंघन केवल प्रबल वर्ग के हितो की सुरक्षा और संरक्षण के लिए ही किया जा रहा है।[30]

आर्थिक सिद्धांतो और भारत की विचित्र स्थितियो मे उनके प्रयोग की सापेक्षता के प्रश्न को भी कभी-कभी लोकप्रिय प्रेस के स्तर तक मुद्रण अभिव्यक्ति दी गई। इस प्रकार उदाहरण के रूप मे 1 दिसंबर 1870 के अंक मे' अमृत बाजार पत्रिका' ने लिखा था, भारत की स्थितियां बहुत मामलो मे सर्वथा भिन्न हैं अतः आवश्यक नही कि दूसरे देशों मे उपयोगी सिद्ध होने वाला कानून भारत मे भी सही सिद्ध हो। अपने 7 दिसंबर 1883 के अंक मे हिंदू ने टिप्पणी की, यूरोपीय आर्थिक नियमों को पूर्वीय देशो पर लागू करने समय उन देशो की विशिष्ट स्थितियो पर विचार अवश्य करना चाहिए। ...आपकी राजनैतिक अर्थव्यवस्था आखिर अपने आप में अतिम लक्ष्य तो नही है। 2 अप्रैल 1899 के अंक मे 'मराठा' ने रसायनशास्त्र की तरह राजनैतिक अर्थव्यवस्था को विज्ञान का दर्जा देने की चेष्टा करने वाले एडम स्मिथ और काबडन की तीखी आलोचना की। इन अर्थशास्त्रियों ने प्रारंभ तो सही ढंग से किया। उन्होंने लिखा कि मूल प्रश्न तो यह है कि इग्लैंड की सपत्ति कैसे बढाई जाए। परन्तु दुर्भाग्यवश इस प्रश्न ने क्रमश: अपनी विशिष्टता खो दी और वह आसानी मे तथा शीघ्रता से विशेष से सामान्य का रूप ग्रहण कर गया। मराठा ने विभिन्न आर्थिक सिद्धातो के प्रयोग के सबध में इस बात पर दृढतापूर्वक बल दिया कि भारत की आर्थिक परिस्थितियां इग्लैंड की आर्थिक परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न होने के कारण यहा भिन्न सिद्धातों के प्रयोग की आवश्यकता है। इसने यह भी घोषित किया कि 'आर्थिक सिद्धातो की भख मे भारत को बेचा नही जा सकता।' मराठा ने भारत सरकार

से अनुरोध किया कि वह घोषणा करे कि वह अपने अर्थशास्त्रीय सिद्धांत इंग्लैंड से उधार लेने नहीं जा रही है। निष्कर्ष रूप में इसने राष्ट्रीय आर्थिकता के निर्माण की वकालत की।[31] विपिनचंद्र पाल के 'न्यू इंडिया' ने भी अपने 21 अप्रैल 1902 के अंक में आर्थिक सिद्धांतों की सापेक्षता पर विचार किया। इसके अनुसार भारत और अन्य यूरोपीय देशों की जनता में तथा उन दोनों देशों के सामाजिक संगठन और जलवायु तथा ऐतिहासिक वातावरण, में व्यापक भेद है। इसी प्रकार दोनों देशों के आर्थिक सिद्धांतों के सामाजिक मूल कारण भिन्न-भिन्न हैं। इसने यह निष्कर्ष निकाला कि आर्थिक दृष्टिकोण किसी देश के किसी विशिष्ट समय की विशिष्ट औद्योगिक स्थितियों का परिणाम है अतः उनका एक युग में दूसरे युग में तथा एक देश से दूसरे देश में परिवर्तित तथा भिन्न रूप ग्रहण करना अनिवार्य है।[32] बहुत सारे अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत में उन्मुक्त व्यापार के प्रयोग में लाए जाने के विरुद्ध किए जाने वाले आंदोलन के समय आर्थिक सिद्धांतों की सापेक्षता की ओर संकेत किया।[33]

उपर्युक्त बहुत सारे नेता इस संबंध में रानाडे से एक विषय में आगे बढ़ गए। वे यह समझने और कहने में सफल हो गए कि भारत की स्थितियों की इंग्लैंड में तथा यूरोप और अमेरिका के अन्य बहुत सारे राष्ट्रों की स्थितियों से भिन्नता का कारण इस देश की राजनैतिक परिस्थिति ही थी क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था और वित्त पर विदेशी सत्ता का नियंत्रण था।[34]

राज्य की भूमिका

क्लासिकी अर्थव्यवस्था का एक पक्ष सरकार की तटस्थता नीति का सिद्धांत था जिसे राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों ने निरंतर और बड़ी प्रबलता के साथ चुनौती दी। उन्होंने इस धारणा को सर्वथा अस्वीकार कर दिया कि सरकार का कार्यक्षेत्र न्याय और व्यवस्था को बनाए रखने तक सीमित है।[35] उन्होंने इस बात की वकालत की कि राज्य की गतिविधि का क्षेत्र इस प्रकार विस्तृत और व्यापक बनाया जाए कि जिससे उन सभी मामलों में, जिनमें राष्ट्रीय प्रयास की अपेक्षा निजी प्रयास कम प्रभावी हो सकते हैं, सरकार हस्तक्षेप कर सके।[36] राज्य को राष्ट्रीय उद्देश्य के लिए राष्ट्रीय इच्छा के सामूहिक अंग के रूप में ही कार्य करना चाहिए।[37] उनका यह और भी दृढ़ मत था कि पश्चिम के विकसित देशों की अपेक्षा भारत जैसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश में राज्य द्वारा राष्ट्रीय आर्थिक और औद्योगिक हितों के संरक्षक के रूप में कार्य करने की आवश्यकता अधिक प्रबल थी क्योंकि लोगों की वंशानुगत दुर्बलताओं पर काबू पाने में राज्य ही सहायक हो सकता है। और यह राज्य का कर्त्तव्य है कि वह देशवासियों की सशक्त विदेशियों के मुकाबले हीन स्थिति और जड़ता से उभरने में सहायता करे।[38] जी० वी० जोशी ने तो विशेष रूप से यह अनुभव किया कि भारत में राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रतियोगिता के आर्थिक कानूनों के कठोर प्रवर्तन पर इस प्रकार से नियंत्रण करे और मार्ग प्रदर्शन करे कि जिससे दस्तकारी का आधुनिक उद्योगों में अप्रतिहार्य परिवर्तन इस प्रकार से नियमित हो जाए कि उसके फलस्वरूप होने वाली आर्थिक अव्यवस्था और दुर्भाग्य न्यूनतम रह जाएं।[39] राज्य के

आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप की सीमा के संबंध मे जस्टिस रानाडे और जी० वी० जोशी मे थोडा बहुत मतभेद था। रानाडे किसी प्रकार की सैद्धांतिक सीमाओं के निर्धारण के विरुद्ध थे। उनका कथन था, 'राष्ट्रीय आवश्यकताएं ही एकमात्र कसौटी होनी चाहिएं।' उनका यह सुदृढ मत था, 'प्रश्न तो समय अनुरूपता और उपयोगिता का है न कि स्वतत्रता और अधिकारो का।[40]' इसके दूसरी ओर जी० वी० जोशी का विश्वास था कि राज्य की कार्यवाही एक असामान्य उपाय था अत: उसे प्रतिबंधित करना आवश्यक था ताकि वह कही निजी प्रयास को सहायता देने के बदले उसे दबाना और यहा तक कि अपदस्थ करना ही प्रारंभ न कर दे।[11]

आर्थिक मामलो मे राज्य के हस्तक्षेप को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए जस्टिस रानाडे और जी० सुब्रह्मण्य ऐयर ने भी 'आर्थिक व्यक्ति' 'स्वनियमित आर्थिकता' जैसी धारणाओ के केंद्रबिंदु व्यक्तिगत सर्वोच्चता और व्यक्तिगत हितों के सिद्धात पर तीखे प्रहार किए। उन्होने व्यक्ति हितो के संरक्षण के स्थान पर सामूहिक हितों के सरक्षण को प्राथमिकता देने के सिद्धात का पक्ष ग्रहण किया। रानाडे ने अपने इस दृष्टिकोण को इस प्रकार मे प्रस्तुत किया :

> आधुनिक चिंतन इस निष्कर्ष पर पहुचा है कि किसी भी सिद्धात का केंद्रबिंदु, सच्चा केंद्रबिंदु, सामान्य जन अर्थात समाज जिसके कि व्यक्ति निजी तौर पर सदस्य है, की (सर्वसाधारण की) सामूहिक रक्षा की और सामूहिक कल्याण की भावना ही होना चाहिए। यदि सिद्धात कोरी कल्पना नही तो केवल व्यक्ति के अधिकार ही नही प्रत्युत समाज शिक्षा और अनुशासन तथा उसके कर्तव्यों को भी गौरव प्राप्त होना चाहिए।[1]'

इसी प्रकार जी० एस० ऐयर ने ऐडम स्मिथ की, मनुष्य को विशुद्ध रूप मे निजी लाभ की दिशा मे एकरूपता से कार्यशील 'अहंवादी शक्ति' सिद्ध करने के लिए तथा इस तथ्य की ओर, कि मनुष्य को अपने पडौसियो, अपने देश और व्यापक रूप मे मानवता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार मे मधुर सबधो की स्थापना करनी चाहिए समुचित ध्यान न देने के लिए, आलोचना की। जर्मन ऐतिहासिक विचारधारा को दोहराते हुए उन्होने लिखा :

> समाज के पृथक पृथक सदस्यों के तात्कालिक निजी स्वार्थ कुल मिलाकर समाज को उच्चतम लक्ष्य की ओर नही ले जा सकते। इतना ही नही प्रत्युत प्राय: ही वे इस दिशा के विरोधी हैं। राष्ट्र की एकता और प्रगति बनाए रखने पर ही व्यक्तिगत सुरक्षा, कल्याण और सभ्यता निर्भर है। अन्य सभी हितों के समान निजी आर्थिक हितों को भी राष्ट्रीयता की परिपूर्णता और सुदृढता के सामने गौण बना देना चाहिए।[43]

जी० वी० जोशी ने इस दिशा मे एक रोचक तथ्य प्रस्तुत किया कि वस्तुत: राज्य की तटस्थ्य नीति के सिद्धांत का जन्म इग्लैंड मे राज्य द्वारा समाज के एक समुदाय की उपेक्षा करके उसके मूल्य पर दूसरे समुदाय की सहायता करने की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुआ है। उनका विचार था कि जहा राज्य एक वर्ग के प्रति पक्षपात करता हुआ, तथा राष्ट्रीय हितों के स्थान पर केवल वर्गगत अथवा जातिगत हितों का संवर्धन करता हुआ पाया जाए वहां राज्य के हस्तक्षेप पर आपत्ति सही समझी जा सकती है, परंतु उनका

कथन था कि भारत में तो स्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। यहा तो हितों में किसी प्रकार का कोई वर्गगत संघर्ष नही है, अन्य स्थानो के समान इस देश मे तो वर्गों मे किसी प्रकार की कोई मोटी दरार नही है। यहा हम राज्य से एक वर्ग के विरुद्ध दूसरे वर्ग की सहायता करने अथवा पूजीपति वर्ग के प्रति पक्षपात करने के लिए तो नही कह रहे हैं। हम तो राज्य मे सारे समाज की ही वर्तमान असहाय स्थिति में उसकी सहायता के लिए निवेदन कर रहे हैं। भारतीय समाज के सभी वर्ग शक्तिशाली विदेशियो से प्रतियोगिता मे पिछड रहे हैं और दुखी हैं और सभी वर्ग समान रूप से भारत के द्रुत आर्थिक विकास मे रुचि रखते है।[44]

राज्य के आर्थिक मामलों मे हस्तक्षेप तथा निजी हितो के ऊपर सामुदायिक कल्याण को प्राथमिकता देने के उपर्युक्त सिद्धात को आधार मानते हुए भारतीय नेताओ ने भारत सरकार से माग की कि वह देश के औद्योगिक विकास के लिए प्रत्यक्ष, सुविचारित तथा सुनियमित नीति का अनुसरण करे क्योंकि उनकी दृष्टि मे देश का औद्योगिक विकास राष्ट्रीय आर्थिक कल्याण की एक आवश्यक शर्त थी।[45] उनमे से बहुतों ने कृषि को भी राज्य द्वारा अनेक प्रकार से सहायता दिए जाने की बात कही।[46] रानाडे ने तो इस सिद्धात को इस रूप मे लिया कि राज्य तो सारे समाज का सरक्षक है और जिस किसी भी क्षेत्र मे दुर्बल को सबल से बचाने की आवश्यकता हो, राज्य का उधर प्रवृत्त होना कर्तव्य बन जाता है।[47] उन्होने किसानों को सुरक्षित करने और साहूकारो को नियमित करने के लिए कानून बनाने का समर्थन किया।[48] उन्होने सपत्ति के और अधिक न्यायोचित वितरण की भी वकालत की।[49] इसी प्रकार जी० एस० ऐयर ने श्रमिको के पक्ष मे राज्य के हस्तक्षेप की इस तर्क के आधार पर वकालत की कि श्रम और पूजी के असमान सघर्ष मे दुर्बल की रक्षा करना राज्य का दायित्व है।[50] यहा यह फिर दोहरा दिया जाए कि बहुत सारे अन्य भारतीयो ने शातिपूर्वक चल रहे निजी औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे सरकारी हस्तक्षेप का तीव्र विरोध किया।[51]

यहा हम अपने पाठको को सावधान करना चाहेगे कि कही वे राष्ट्रवादियों के राज्य द्वारा आर्थिक मामलो मे हस्तक्षेप करने के सैद्धातिक सुरक्षात्मक पग मे और समाजवादी तथा यहा तक कि लोक कल्याणकारी राज्य की इच्छा मे उद्योग के लिए राजकीय सहायता की माग मे, जो किन्ही मामलों मे स्वयं राज्य द्वारा किसी उद्योग के संचालन का रूप ले सकती थी,[52] घपला न कर बैठें तथा इस विषय मे सचेत रहे। समाजवाद और यहां तक कि सरकारी पूजीवाद की वकालत करने की तो कोई बात ही नही थी, ये अर्थशास्त्री तो केवल यही चाहते थे कि सरकार कृषि अर्थव्यवस्था के औद्योगिक पूजीवादी अर्थव्यवस्था मे संक्रमण के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन जुटाए। इस रूप मे ये नेता लोग केवल यही चाहते थे कि भारत जैसे पिछडे देश मे निजी उद्यम की कमियो की पूर्ति सरकार करे। रानाडे राज्य की भूमिका मे यही अभिप्राय लेते थे, इस तथ्य की पुष्टि उनके लेखों, 'नीदरलैंड्स इंडिया एंड दी कलचर सिस्टम', 'आइरन इंडस्ट्री, पायनीयर्स अटैम्पट्स' तथा 'इंडस्ट्रियल कान्फ्रेंस' के अध्ययन से सुस्पष्ट हो जाती है।[53] उनकी 1886 की एक अप्रसिद्ध रचना से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। जहां वे एक ओर सामान्य रूप से भंडारों

के लिए अपेक्षित सामग्री के लिए सरकारी कारखानो मे सभी प्रकार के कुशल उत्पादनों की बात करते है,[51] वहा वे 1886 की वित्त समिति के प्रतिवेदन से भी अपनी असहमति प्रकट करते हुए सरकार पर जेलो के उत्पादन पर लगे समिति द्वारा प्रस्तावित प्रतिबंधो को हटाने पर तीव्र आपत्ति करते हैं क्योकि उनके विचार मे इससे सरकारी धन की सहायता मे सरकारी अधिकारियो को प्रतियोगिता मे निजी उद्यम को पीछे धकेलने मे प्रोत्साहन मिलता। उन्होंने विशेष रूप से ही सरकारी कार्य की सहायता मे वाष्प यत्र, छापाखाना, तम्बू, कागज, गलीचे आदि बनाने के लिए जेलो का उपयोग करने की आलोचना की। दूसरे शब्दों मे जिस सामान का उत्पादन निजी उद्यमी कर रहे थे, सरकार द्वारा उसी सामान के उत्पादन के लिए जेलो का उपयोग करने पर आपत्ति की।[52]

जी० वी० जोशी ने सरकारी समाजवाद के अथवा सरकारी पूँजीवाद के किसी भी सुझाव का और भी अधिक सुदृढता और स्पष्टता से विरोध किया। इस प्रकार उन्होंने 1890 मे लिखा, हमारी योजना निश्चित रूप से तो सरकारी समाजवाद जैसी योजना नही है, उदाहरणार्थ जैसे कि 1848 मे अस्थायी सरकार ने घातक और दुर्भाग्यपूर्ण असफलता के साथ चेष्टा की थी।[56] प्रथम, उन्होंने बार-बार दोहराते हुए यह टिप्पणी की कि राज्य की कार्यवाही का एकमात्र उद्देश्य शक्तिशाली और उन्नत विदेशियों से ... साधन हीन भारतीय उद्यमियो के असमान सघर्ष मे सतुलन की व्यवस्था करना है ताकि भारतीय उद्यम का आरम्भ मे ही गला न घोट दिया जाए।[57] द्वितीय, उनका दृढ मत था कि मूल रूप से औद्योगिक विकास निजी प्रयत्न का ही कार्यक्षेत्र तथा अधिकार क्षेत्र है। राज्य की भूमिका तो निजी उद्यमी को स्वतंत्र रूप से दायित्व सभालने के योग्य बनाने तक ही सीमित है। ज्यो ही निजी उद्यमी अपने पैरो पर खड़ा हो जाए त्यो ही सरकार को उसके मार्ग से एकदम हट जाना चाहिए। उस स्थिति मे राज्य के लिए औद्योगिक क्षेत्र पर एकाधिकार का प्रयत्न करना सर्वथा अनुचित ही होगा।[58] तृतीय, राजकीय सहायता द्वारा निजी उद्यम को नष्ट करने के लिए राज्य के आक्रामक और घातक रूप ग्रहण कर लेने की आशका को स्वीकार करते हुए उन्होंने उसके क्षेत्र, दिशा और अवधि पर कडी सीमाए लगाने का प्रस्ताव रखा।[59] अतिम, उन्होंने सरकार की इस बात के लिए आलोचना की कि वह सिंचाई, वन सरक्षण और तकावी भत्ते जैसे कार्यो को अपने ही अभिकरणो द्वारा पूरा कर रही है, जबकि ये सभी कार्य इस देश के ही निजी उद्यमियो द्वारा सपन्न किए जाने चाहिए और सरकार का तो केवल इस दिशा मे निजी उद्यमियो को प्रशिक्षित और प्रोत्साहित करना चाहिए तथा इन कार्यों के सचालन के लिए यदि आवश्यकता हो तो उपदान देना चाहिए।[60]

भूमि लगान : कर अथवा किराया

भारतीय नेताओ द्वारा सरकारी सिद्धानवादी दावे पर आपत्ति किया जाने वाला क्षेत्र भूमि-राजस्व प्रशासन था। मतभेद के प्रमुख विषय थे, भूमि-लगान का स्वरूप और कृषि-भूमि पर अंतिम स्वामित्व। भारतीय प्रशासको का यह व्यापक मत था कि अनन्त काल से भारत मे भूमि पर राज्य का अंतिम अधिकार चला आ रहा है। अतः धरती बोने वाले अथवा

जमीदार सरकार के किरायेदार है। फलतः जमीदारो द्वारा सरकार को चुकाया जाने वाला लगान किराया है कर नही।[61] राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों और दूसरे नेताओं ने इस धारणा को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया। उनका कथन था कि भारतीय जमीदार अपनी भूमि का ठीक उसी प्रकार स्वामी है, जिस प्रकार विश्व के किसी अन्य भाग का जमींदार अपनी भूमि का है। उन्होने इस बात को दृढतापूर्वक सामने रखा कि अतीत इतिहास की गलत व्याख्या की जा रही है और यहा तक कि भूमि पट्टेदारी मे निहित सिद्धान्तो की भी अवहेलना की जा रही है। अतः उनकी मान्यता थी कि सरकार द्वारा वसूल किया जाने वाला भूराजस्व एक कर है और सरकार की आवश्यकताओ के लिए उसे इस ढग से वसूल किया जा रहा है, जिस ढग से कि अन्य देशो मे वहा की सरकारे करती है।[62] यह एक रोचक तथ्य है कि सरकारी प्रवक्ता प्राय इस बात पर बल देते थे कि ब्रिटिश शासक सारी भूमि पर स्वामित्व का दावा करते हुए केवल देश के भूतपूर्व शासको का ही अनुकरण कर रहे थे। जी० वी० जोशी ने बल देकर कहा कि यह दावा इसलिए किया जा रहा है क्योकि सभी तार्किक कठोरताओ के साथ भारतीय जीवन के तथ्यो पर पश्चिमी सिद्धातो को अविचारपूर्वक ही लागू किया जा रहा है।[63]

रानाडे और जोशी जी ने भारतीय पद्धति के भूमि लगान के रिकार्डियन आधार पर भी प्रहार किया। सरकारी दृष्टिकोण और सिद्धात के पीछे यह धारणा काम कर रही थी कि भारत मे राज्य के किरायेदार अथवा जमीदार पूजीपति किसान है और वह 'आर्थिक किराया' चुकाते है।[64] यही बढिया भूमि के उत्पादन के और सबसे अधिक घटिया भूमि, जिसे जोतकर केवल खर्चा पूरा होता है, के उत्पादन के बीच का मूल्य सबधी अतर है। इस परिभाषा के अनुसार जोत के मूल्य के अतर्गत किसान के श्रम के मूल्य के साथ ही साथ लाभ की वर्तमान दर पर उसकी पूजी का मूल्य भी सम्मिलित था।[65] इससे स्पष्ट था कि किराये के इस सिद्धात के अनुसार सीमात भूमि पर उत्पादन मूल्य द्वारा निर्धारित मूल्यो मे किसी प्रकार की वृद्धि किए बिना तथा मजदूरी को किसी प्रकार से प्रभावित किए बिना ही राज्य भूमि के स्वामी के रूप मे भूमि के आर्थिक किराये को भूराजस्व के तौर पर हडप सकता था।[66] रानाडे और जोशी ने रिकार्डो के किराये के सिद्धात के मूल रूप की आलोचना नही की परतु उन्होने यह मानने से इनकार कर दिया कि भारत मे इस सिद्धात की कोई उपयोगिता है। क्लासिकी राजनैतिक अर्थव्यवस्था मे पूजीपति किसान का किराया पूजी की प्रतियोगिता, जनसख्या के आकार तथा भूमि की विभिन्न स्तरीय उत्पादन क्षमता द्वारा निर्धारित किया जाता है।[67] रानाडे की आपत्ति यह थी कि क्योकि राज्य देश मे एकमात्र भू-स्वामी बन गया है अत. खेतिहरो को प्रतियोगी मूल्य न देकर एकाधिकार के रूप मे मनमाना किराया चुकाना पडता है। सरकार मनमाने ढग से जितना चाहे, किराया बढा सकती है और यह प्राय खेतिहरो के लाभो और परिश्रम पर छापा मारना है।[68] जोशी जी की इसमे और अधिक मौलिक आपत्ति यह थी कि उन्होने निर्देश किया कि रिकार्डो के सिद्धात के अंतर्गत पूजीपति किसानो की आवश्यकता है और भारत मे पूजीपति किसानो का अस्तित्व ही नही। भारतीय किसान जमीदारो और रैयतवाडी दोनो इलाको, मे अधिक लाभो से प्रेरित पूजीपति किसान की अपेक्षा भूस्वामी

से किराये पर लेकर भूमि जोतने वाला ही है। उनके अनुसार स्थिति के दो मौलिक पक्ष हैं: (क) खेतिहर का तात्कालिक उद्देश्य आजीविका प्राप्ति है न कि निवेशित पूंजी पर लाभ का अर्जन करना है। (ख) खेतिहरो मे भूमि के लिए प्रबल प्रतियोगिता है। इसके कारण बढती हुई जनसंख्या क्रमश खेति योग्य खाली भूमि की उत्तरोत्तर अनुपलब्ध तथा कृषि उद्योगो की असफलता आदि है। इनके फलस्वरूप किसान क्रूर आर्थिक आवश्यकताओ का शिकार बन गया है और उसे शीघ्र ही अपनी भूमि मे हाथ धोने तथा भूमिहीन मजदूर बनने के बदले सरकार द्वारा अथवा निजी जमीदार द्वारा निर्धारित मनमाने किराये का भुगतान करने के लिए राजी होना पड़ता है, भले ही उसे इसके लिए क्यो न सामान्य जीवन के स्तर मे भी नीचे का जीवन बिताना पडे।[69]

रानाडे और जोशी जी ने रिकार्डो के किराया सिद्धात के प्राकृतिक परिणाम अनुपार्जित आय के सिद्धात की भी आलोचना की। इस सिद्धात के अनुसार, यदि किसी भूखड पर उस समय तक निवेशित पूंजी पर लाभ की चालू दर से अधिक किराया बढाया जाता है तो दोनो का अतर किराये मे अनुपार्जित वृद्धि कहलाएगी, जो लाभ की दर मे सामान्य गिरावट का तथा समाज की सामान्य प्रगति का परिणाम होगा। अत उस पर समाज का ही न्यायोचित अधिकार होगा न कि दूसरो के रक्त को चूसने वाले भूखड के स्वामी का।[70] रानाडे और जोशी जी का तर्क था कि भारतीय भूमि लगान पद्धति मे इस सिद्धात को लागू करने से समाज, अर्थव्यवस्था तथा किराया ऊचे हुए है और जमीदारी व्यवस्था की स्थिति स्थिर हुई है। परतु वास्तव मे ऐसा नही था। इग्लैड मे जहा पीढियो से भूमि एक ही परिवार के हाथ मे रहती आती है, वहा भारत मे उसके विरुद्ध भूमि का स्वामित्व निरतर बदलता रहता है। फलत प्रत्येक नया खरीदार भूमि का पूरा ही चालू मूल्य, उपार्जित और अनुपार्जित दोनो का भुगतान करता है। उस प्रक्रिया मे भूतकाल की अनुपार्जित आय-सर्वथा लुप्त हो जाती है।[71] इसके अतिरिक्त जोशी जी ने टिप्पणी की कि लगान अधिकारी प्राय ही अनुपार्जित आय की खोज मे बलपूर्वक ही वृद्धि करने का रास्ता अपनाते हैं और इस प्रकार बेचारे किसानो की आजीविका को ही हडप लेते है।[72]

उन्मुक्त व्यापार बनाम संरक्षण

राष्ट्रवादी प्रारभ से ही उन्मुक्त व्यापार बनाम सरक्षण के प्रश्न मे गहरी रुचि रखते थे। 1877 मे ही अपने विस्तृत लेख, 'फ्री ट्रेड एड प्रोटैक्शन', मे के० टी० तैलग ने एक भारतीय के दृष्टिकोण से टिप्पणी की कि यह विषय हमारे देश के समग्र भविष्य, सामाजिक, राजनैतिक व औद्योगिक, के साथ इतनी घनिष्टता से जुडा हुआ है कि इसके सबध मे सही दृष्टिकोण को अपनाने की महत्ता स्वत. सिद्ध है, इसमे किसी प्रकार की अतिरजना संभव ही नही।[73]

राष्ट्रवादी नेताओ ने लगभग एक मत से ही यह माग की कि देश के स्वस्थ आर्थिक विकास के हित मे भारत सरकार को देश के विकासशील उद्योग को संरक्षण देकर उसकी सहायता करनी चाहिए।[74] उदाहरणार्थ जी० सुब्रह्मण्य ऐयर ने 1903 मे लिखा : 'कृषि

से अलग विभिन्न प्रकार के व्यवसायों को अस्तित्व में लाना देश की अत्यधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है और इसकी पूर्ति···संरक्षण की नीति को अपनाने के द्वारा···ही हो सकती है। जब तक तथाकथित उन्मुक्त व्यापार और असमान प्रतियोगिता की स्थिति जारी है तब तक देश ऐसे किसी उज्ज्वल भविष्य की आशा नही कर सकता, जिसे भौतिक दृष्टि संपन्न कहा जा सके।···अपने देश के बाजारों मे खपत के लिए देश मे उत्पादित खाद्यान्न और कच्चे माल के निर्यात पर कर लगाने के माध्यम मे उसे देश मे ही सुरक्षित बनाना तथा देशी उद्योगों के विकास की दृष्टि से विदेशी प्रतियोगी उत्पादनो के आयात पर प्रतिरक्षात्मक शुल्क लगाकर उसे प्रतिबंधित करना, यही एक मात्र नीति भारत को बचा सकती है।[75] किन्तु, यह कम आश्चर्यजनक बात नही कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने प्रथम बीस वर्षो के जीवन मे एक बार भी संरक्षण की मांग नही की। इसका कारण अंशतः शायद उसके अपने मित्र इंग्लैंड के क्रांतिकारियो को संतुष्ट रखने की भावना थी और अंशत. ब्रिटेन के उन्मुक्त व्यापार के प्रति दृढ और निश्चयात्मक रुझान के कारण हिचकिचाहट स्पष्टतया राजनैतिक दृष्टि से इस मांग को मनवाना संभव नही था।[76]

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने उन्मुक्त व्यापार को, संरक्षण के माध्यम से, भारत के औद्योगिक विकास के मार्ग की एक प्रमुख बाधा अनुभव करते हुए भारतीय परिस्थितियों मे उन्मुक्त व्यापार की उपयोगिता को निरर्थक सिद्ध करना प्रारंभ कर दिया। उनका कथन था कि इसके विपरीत भारत के सुदीर्घ और व्यापक हितों में संरक्षण लाभदायक है न कि हानिप्रद। इस संबंध मे 1877 मे सर्वप्रथम और सर्वाधिक वैज्ञानिक प्रयास पूर्वोद्धृत लेख के माध्यम से के०टी० तैलग ने किया। बाद के बहुत सारे लेखक तैलंग महोदय के लेख को ही आधार बनाते दिखाई देते है।

उन्मुक्त व्यापार के विरुद्ध राष्ट्रवादियो का प्रमुख तर्क यह था कि यह भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नही है।[77]भारतीय नेताओ का कथन था कि इसने इंग्लैंड मे उपयोगी भूमिका निभाई होगी परंतु यहा भारत मे तो उसने उद्योग को बडी भारी हानि पहुचाई है।[78] उन्होंने आगे दृढ स्वर मे कहा कि वस्तुतः उन्मुक्त व्यापार तो बराबर के देशो के मध्य चल सकता है। यहा भारत और इंग्लैंड की स्थिति तो कुछ-कुछ ऐसी है कि एक (भारत) भूखा, थका-मादा (बीमार) और पंगु है तथा दूसरा (इंग्लैंड) केवल शक्तिशाली ही नही प्रत्युत उसके पास सवारी के लिए घोड़ा भी है।[79]

कुछ एक भारतीय नेताओं ने इस धारणा, संरक्षण से उपभोक्ता की स्वतंत्रता और उद्यमी की स्वाधीनता प्रतिबंधित होती है, का भी खंडन किया। उनका कथन था कि स्वतंत्रता और स्वाधीनता का अर्थ शायद असीमित प्रतियगिता के द्वारा भारत के विकासशील उद्यम को नष्ट-भ्रष्ट करने की विदेशियों को खुली छूट देना नही हो सकता। वास्तव में भारतीय स्थितियों में वास्तविक स्वतंत्रता संरक्षण और कृत्रिम पोषण के माध्यम से ही प्राप्त हो सकेगी, जबकि उन्मुक्त व्यापार का अर्थ ही अपेक्षाकृत सशक्त दल, इंग्लैंड, को संरक्षण प्रदान करना सिद्ध हो रहा है।[80] उपभोक्ता के लिए जहां तक संरक्षण के मूल्य का संबंध है भारतीय राष्ट्रवादी नेता इस बात से सहमत थे कि राष्ट्र इस भार को सहन कर लेगा क्योंकि मूल्यों के, गिरावट के वेतन और नौकरी में वृद्धि के तथा राष्ट्रीय

आय में सामान्य विकास के दूरगामी लाभ इस भार को पीछे ही छोड़ जाएंगे।[81] तैलंग महोदय को यह सिद्ध करने में कोई कठिनाई नही हुई कि भारत में संरक्षण से केवल प्राकृतिक साधनो से ही पूंजी के मोड़ मे सहायता नही मिलेगी प्रत्युत देश के बेकार धन संग्रहो से भी धन जुटाने मे सहायता प्राप्त होगी।[82] उन्होने अपना वक्तव्य जारी रखते हुए आगे कहा कि जहा तक संरक्षण के श्रमिकों पर पड़ने वाले प्रभाव का संबंध है, इसके फलस्वरूप होने वाला औद्योगिक विकास समग्र रूप से लाभदायक ही होगा। इसमे माग के बढ़ जाने के कारण श्रम का मूल्य बढ़ जाएगा। इसमें उन्हे यह कहने पर विवश होना पड़ा कि संरक्षण किसी देश के कुल उत्पादन में भले ही ह्रास ला दे फिर भी भारत जैसे देश मे राष्ट्रीय आय के न्यायोचित वितरण के लिए उसकी उपयोगिता को नकारा नही जा सकता। उन्होने लिखा कि देशवासियो की विपुल जनसख्या के भुखमरी और अभावग्रस्तता का शिकार बने रहने पर थोड़े से लोगों की सपन्नता कोई महत्व नही रखती। मेरा विनम्र निवेदन यह है कि यदि बहुसख्यक जनता की भुखमरी और अभावग्रस्तता दूर की जा सके तो भले ही थोड़े से लोगो को मिलने वाली सपन्नता न भी मिले तो कोई बात नही।[83]

कितने ही भारतीय अर्थशास्त्रियों ने क्लासिकी अर्थशास्त्रियों की इस मान्यता-उन्मुक्त व्यापार तुलनात्मक मूल्यो के माध्यम से काम करता हुआ श्रम के योग्यतम भौगोलिक विभाजन में सहायक होता है, के आगे प्रश्न चिह्न लगाया। उन्होने यह मानने से इनकार कर दिया कि श्रम का किसी भी रूप में इस प्रकार का विभाजन लगभग लाभदायक होगा कि जिसमे भारत सदा के लिए कच्चे माल का उत्पादक देश बना रहे। उन्होंने इस धारणा को पूरे तौर पर मानने से इनकार कर दिया कि भारत सदा के लिए कच्चे माल का इग्लैंड का निर्यात करे और इग्लैंड से उत्पादित माल का आयात करे।[84] उन्होंने दृढ़ स्वर मे कहा कि इतिहास, भूगोल और साधनो की दृष्टि से भारत एक महान उत्पादक देश के रूप में पूर्ण रूप से उपयुक्त देश है।[85] किसी भी रूप मे हो, यह जाचने के लिए कि नए देशो को उनके परपरागत व्यवसायों की अपेक्षा नए उद्योग अनुकूल बैठते है कि नही, अस्थायी सरक्षण की आवश्यकता है।[86] इसके अतिरिक्त जब तक प्रत्येक देश की पूर्ण क्षमता का ज्ञान और विकास नही हो जाता, तब तक श्रम का पारस्परिक रूप मे उपयोगी और न्यायोचित विभाजन हो ही नहीं सकता। इस समय सार्वभौमिक तथ्य के रूप मे उन्मुक्त व्यापार को अपनाना श्रम के अतर्राष्ट्रीय विभाजन की चालू प्रणाली को अपरिवर्तित रूप देना है, जिसका अर्थ यह होगा कि जो देश पहले मे ही विकसित हो चुके है, सदा के लिए औद्योगिक दृष्टि से अगुवा बने रहेगे तथा भारत जैसे पिछड़े देश और अधिक पिछड़ जाएगे तथा विशुद्ध रूप मे कृषि प्रधान देश बनकर रह जाएगे।[87] के० टी० तैलग ने किसी देश को एक ही उद्योग वाला देश बनाए रखने के विरुद्ध चेतावनी देते हुए कहा कि देश के उत्पादनो को प्रभावित करने वाले व्यवहारो, रुचियो और आवश्यकताओं मे किसी प्रकार के परिवर्तन उस देश के लिए विनाशकारी सिद्ध होंगे।[88]

भारतीय नेताओ मे से कितनों ने ही यह तर्क भी प्रस्तुत किया कि एक सीमित अवधि के लिए शिशु उद्योग को संरक्षण देना तटस्थता की नीति के सिद्धातों के भी विरुद्ध नहीं। उन्होंने जान स्टुअर्ट मिल के उन लेखो को प्रमाण रूप मे उद्धृत किया, जिनमें उसने

भारत में व्याप्त स्थितियों जैसी स्थितियों में संरक्षण की स्वीकृति दी थी।[89] वस्तुतः भारत के लिए एक विशिष्ट स्थिति के रूप में संरक्षण की मांग करने वाले अपने को सिद्धांत रूप में स्वतंत्र व्यापारी सिद्ध करने का ही दावा कर रहे थे।[90]

भारत के मामले में संरक्षण को उचित तथा न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए भारतीय नेताओं में से कइयों ने एक बहुत ही बढ़िया तर्क प्रस्तुत किया। उदाहरणार्थ 19वीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड में भारतीय उत्पादकों के आयात पर थोपे गए भारी करों को उद्धृत करते हुए के० टी० तैलंग ने दृढ़ स्वर में कहा, हमारे स्वदेशी उत्पादनों को नष्ट करने के लिए अपनाया गया उपाय यही संरक्षण है। उन्होंने दावा किया कि सभी भारतीयों की यह मांग है कि हमारे विरुद्ध तलवार के रूप में प्रयोग किए गए शस्त्र का प्रयोग अब हमारे रक्षक के रूप में करना चाहिए।[91] इसी प्रकार आर० सी० दत्त ने जली-कटी सुनाते हुए टिप्पणी की, उद्योगों के विरुद्ध संरक्षण ने भारत में जनता की उत्पादन-क्षमता को समाप्त कर दिया है और उसके उपगत प्रतियोगी को पुनः प्रतियोगिता में आने से हटाने के लिए भारत पर उन्मुक्त व्यापार थोप दिया गया है।[92]

अपनी संरक्षण की मांग को मजबूत बनाने के लिए भारतीय नेताओं ने राजनैतिक आर्थिकता के सिद्धांतों के बदले राष्ट्रों के व्यवहार को देखने का अनुरोध किया। उन्होंने स्पष्ट निर्देश किया कि लगभग यूरोप और अमेरिका के सभी स्वतंत्र राष्ट्रों और यहां तक कि कैनेडा और आस्ट्रेलिया जैसे ब्रिटेन के अपने उपनिवेशों ने विदेशी प्रतियोगिता के खतरे के उपस्थित होने पर अपने नवजात उद्योगों को संरक्षण प्रदान किया है।[93] उन्होंने बड़े ध्यानपूर्वक यह देखा कि 18वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में और 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में स्वयं इंग्लैंड ने संरक्षण की देखभाल में ही अपने आधुनिक उद्योगों का विकास किया है। इसी संरक्षण की कृपा का ही फल था कि औद्योगिक-यंत्र गतिशील होकर पूर्णता के उस चरम शिखर पर पहुंचा कि जहां से इंग्लैंड स्वतंत्र व्यापार के सिद्धांत की घोषणा करने में समर्थ हो सका है।[94] आर० सी० दत्त और जी० सुब्रह्मण्य यह देखने में भी नहीं चूके कि जहां 18वीं शताब्दी की समाप्ति के बाद से ऐडम स्मिथ जैसे ब्रिटिश अर्थशास्त्री उन्मुक्त व्यापार के सिद्धांत का गला फाड़कर प्रचार करते चले आ रहे हैं वहां ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने उन्मुक्त व्यापारी का रूप बहुत पीछे ही ग्रहण किया और वह भी तब, जबकि उन्हें यह अपने अनुकूल लगा।[95] बहुत सारे राष्ट्रवादी नेता इस सीमा तक कहने लगे कि ब्रिटेन ईमानदारी से उन्मुक्त व्यापार के सिद्धांत पर विश्वास नहीं करता और उसका प्रयोग एक बहाने के रूप में कर रहा है। जी० वी० जोशी ने भारत में अपने उत्पादनों को धकेलने के लिए और प्रतियोगी औद्योगिक विकास को रोकने के लिए इसे 'आध्यात्मिक ढांचे' का नाम दिया।[96]

उन्मुक्त व्यापार की आलोचना तथा उद्योगों के लिए संरक्षण की वकालत करते हुए भी किसी महत्वपूर्ण राष्ट्रवादी नेता ने संरक्षण के पक्ष में कट्टर सैद्धांतिक नीति नहीं अपनाई। इस संबंध में उनका दृष्टिकोण विभिन्न सिद्धांतों पर आधारित था। स्वभावतः ही उन्मुक्त व्यापार की अस्वीकृति भी किसी सिद्धांत विशेष पर आधृत नहीं थी। अन्यान्य आर्थिक विषयों में उनके दृष्टिकोण के समान उनकी सीमा-शुल्क नीति भी सामान्य आर्थिक

सिद्धांतों की उपज नहीं थी, प्रत्युत सुस्पष्ट आर्थिक विषयों में उत्पन्न और उनसे घनिष्ठता से संबंधित थी। संरक्षण के बचाव के संबंध में उनका यह सारग्राही दृष्टिकोण कभी-कभी अत्यंत सुस्पष्ट हो जाता था। उदाहरणार्थ आर० सी० दत्त ने 1901 में लिखा, मैं अपना विश्वास न तो उन्मुक्त व्यापार के प्रति निश्चित करता हूं और न ही संरक्षण के प्रति। मेरी मान्यता तो यह है कि भारत की जनता की संपन्नता और समृद्धि के लिए सर्वथा और सर्वाधिक अनुकूल नीति ही सच्ची नीति है और उसी नीति को भारत के लिए अपनाना चाहिए।[97] वास्तव में 20वीं शताब्दी के प्रथम वर्ष में जैसे कि कुछ एक राष्ट्रवादी नेताओं ने स्पष्ट शब्दों में कहना प्रारंभ कर दिया कि वे संरक्षण को इतना नहीं चाहते जितना कि सीमा-शुल्क-नीति के निर्धारण में स्वतंत्रता चाहते हैं।[98] इस समय कुछ भारतीयों ने विभिन्न प्रकार के संरक्षणों के बीच अंतर करना भी प्रारंभ कर दिया और वे स्पष्ट रूप में देखने लगे कि गलत ढंग से संरक्षण का परिणाम विदेशी पूंजी का बड़े पैमाने पर अंतःप्रवाह होगा। विदेशी पूंजी का यह व्यापक प्रवाह संरक्षण के माध्यम से औद्योगिक क्षेत्र पर एकाधिकार कर लेगा। इस प्रकार 'हिंदुस्तान रिव्यू' और कायस्थ समाचार के संपादकों ने 1903 में लिखा : भारत की इंग्लैंड के अधीन वर्तमान राजनैतिक और आर्थिक पराधीनता के अंतर्गत संरक्षण की नीति को अपनाने का परिणाम आंग्ल भारतीय (ऐंग्लो-इंडियन) उत्पादकों और क्रमश विदेशी शोषकों के पक्ष में उसके दुरुपयोग के रूप में सामने आने की ही सर्वाधिक संभावना है। ... यह संघर्ष ब्रिटिश पूंजीपतियों और विदेशी पूंजीपतियों के मध्य छिड़ जाएगा। उस समय एक ओर सभी विदेशी और दूसरी ओर भारतीय हों ऐसी स्थिति नहीं रहेगी।[99]

इसी प्रकार 13 अक्टूबर 1903 के अंक में हिंदू ने टिप्पणी की :

भारतीय लोगों के हितों को इस देश में पूंजी के निवेश के द्वारा प्रभुत्व जमाने वाले यूरोपीयों से कम खतरा नहीं है। इस समय भारत के लिए वरदान माना जाने वाला संरक्षण वास्तव में ही यूरोपीय बागान मालिकों और व्यापारियों का ही भाग्य निर्माता बन सकता है। जनता के कुछ वर्गों में भारत के हितों की रट लगाने का फैशन चल पड़ा है, भले ही उसमें वास्तविक हित देश के शोषण में संलग्न मुट्ठी-भर यूरोपियों का ही क्यों न हो ?[100]

कुछ अन्य महत्वपूर्ण बातें

निष्कर्ष रूप में राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के सैद्धांतिक दृष्टिकोण के कुछ एक अन्य महत्वपूर्ण पक्षों की ओर भी ध्यान देना अनुचित न होगा।

राष्ट्रवादियों के आर्थिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष इसका सामाजिक दृष्टिकोण था। जैसा कि हम ऊपर दिखा चुके हैं राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों का यह अनुभव था कि सामाजिक दृष्टि से निर्धारित उद्देश्यों और परिप्रेक्ष्यों के सामने आर्थिक विचारों और नीतियों को गौण स्थान ही दिया जाना चाहिए। वस्तुत राष्ट्रवादियों का समग्र आर्थिक चिंतन इसी धारणा से व्याप्त था। जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, भारतीय अर्थशास्त्रियों ने अनुभव कर लिया कि आर्थिक चिंतन और नीति को सामाजिक रूप से एकीकृत लक्ष्यों

के अधीन करने की प्रवृत्ति ने भारतीय अर्थशास्त्र का विशिष्ट मूलतत्व दिया। आर्थिक विचारों और नीति के इस दृष्टिकोण ने प्रारभ से ही भारतीय अर्थशास्त्र और भारतीय राजनीति मे घनिष्ठ सबध स्थापित कर दिए। इसने राष्ट्रीय नेताओ को इस योग्य बना दिया कि वे लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को देश की राजनीतिक पराधीनता की स्थिति से जोड सकें और भारतीय वास्तविकता के इस सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक पक्ष पर विचार कर सके कि भारत विदेशी शासक द्वारा आर्थिक शोषण के लिए ही शासित किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त जब राष्ट्रवादी नेताओ का आर्थिक चितन समकालीन अग्रेजी चितन से आगे था और यूरोप तथा अमेरिका के चितन के साथ कदम से कदम मिला रहा था, जबकि वह इस बात पर बल दे रहा था कि आर्थिक विकास के विभिन्न स्तरो पर विद्यमान देशो के लिए एक से आर्थिक सिद्धातो का प्रयोग नही किया जा सकता और दृढतापूर्वक यह माग कर रहा था कि प्रत्येक देश के लिए आर्थिक सिद्धातो का विधान सबधित देश की सामान्य आर्थिक आवश्यकताओ के सदर्भ मे ही किया जाना चाहिए, तब भी भारतीय पद्धतियो के किसी नए आर्थिक विचार अथवा सिद्धात का उदय नही हुआ।[101] आर्थिक चितन के साथ 'भारतीय राष्ट्रवादी' जैसे विश्लेषण तो अवश्य जोडे गए परतु भारतीय राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो ने ऐसे नए आर्थिक नियमो का आविष्कार नही किया, जो असामान्य भारतीय परिस्थितियो की उपज हो और जिनका प्रयोग विशिष्ट भारतीय परिस्थितियो मे ही सभव हो, हमे उनमे जो मिलता है, वह है क्लासिकी अर्थशास्त्रियो और उनके परिवर्ती आलोचको के चितन का मिश्रित रूप। वस्तुतः भारतीय राजनैतिक आर्थिकता को आर्थिक चितन की पद्धति न कहकर 'आर्थिक चितन का एक दृष्टिकोण', 'भारतीय आर्थिक समस्याओ पर विचार' तथा 'आर्थिक विचार विमर्श की शैली' आदि नाम देना ही अधिक उपयुक्त होगा।

यह व्यापक रूप मे इस तथ्य का परिणाम है कि राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियो की आर्थिक सिद्धात मे रुचि गौण अथवा परिस्थिति मे उद्भूत थी। वे आर्थिक सिद्धातो के विकास मे अथवा अर्थशास्त्र को भारतीय रूप देने मे रुचि रखने वाले व्यावसायिक अर्थशास्त्री नही थे। अत उन्होने स्वय सिद्धात के रूप मे उस पर काबू पाने की कोई चेष्टा नही की। आर्थिक सिद्धात पर उनके विचारो को वस्तुतः समकालीन आर्थिक समस्याओ पर उनकी बहुत सी रचनाओ मे ही निकाला जा सकता है। उनकी राजनैतिक अर्थव्यवस्था सर्वथा व्यावहारिक विचारो की ही उपज थी क्योकि भारत के शासक राष्ट्रवादियो की माग का विरोध करने के लिए क्लासिकी अर्थव्यवस्था का सहारा लेते थे, इसलिए भारतीय अर्थशास्त्रियों ने भी क्लासिकी अर्थव्यवस्था की सार्वदेशिकता को तथा भारत की परिस्थितियो में उसकी उपयोगिता को चुनौती देना आवश्यक समझा। उनके आर्थिक चितन के इस अपेक्षाकृत लौकिक उद्गम को उन्होंने कभी-कभी जानबूझ कर अभिव्यक्ति दी। इस प्रकार उन्होंने कहा कि उन्हें तटस्थता नीति के सिद्धात का खडन करना है क्योकि वह उद्योगों को राज्य द्वारा दिए जाने वाले संरक्षण के मार्ग मे आडे आता है।[102] किराए के रिकार्डियन सिद्धांत का खंडन उन्हें इसलिए करना पड़ा क्योंकि इसका उपयोग भूमि लगानों की ऊंची

दरो को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए तथा भूमि के स्थायी बंदोबस्त की माग को अस्वीकार करने के लिए तथा उनके इस आरोप का खंडन करने के लिए किया गया था कि भारत मे कराधान का परिमाण बहुत ऊचा है।[103] उन्मुक्त व्यापार का विरोध इसलिए किया, क्योकि यह अंशत कपास के आयात पर लगे शुल्को का हटाने के लिए, कपास पर उत्पादन शुल्क लगाने के लिए तथा स्वदेशी विकासशील उद्योगो को सरक्षण देने मे इनकार करने के लिए उत्तरदायी था।[104]

भले ही राष्ट्रवादियो के आर्थिक चिंतन मे कुछ भी नया न हो फिर भी भारतीय दृष्टिकोण की केवल अभिव्यक्ति तथा भारतीय परिस्थिति मे यूरोपीय चिंतन को ढालना एक अपनी निजी महत्ता रखता है। आखिरकार विभिन्न सैद्धांतिक स्थितियो मे किसी एक स्थिति का चुनाव करना भी अपने आप मे सिद्धांतीकरण है तथा सैद्धांतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। भारतीय नेता भले ही अग्रेजी शिक्षा प्रणाली की उपज थे पर वे किसी भी स्थिति मे इसके बहाव मे नही बह गए और न ही उन्होने अग्रेजो के मन मे जड पकडे दकियानूसी विचारो पर प्रहार करने मे किसी प्रकार का सकोच किया। इसके अतिरिक्त वे आर्थिक विज्ञान के प्रति व्यापक और पूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के श्रेय के ही भागी है। भले ही उन्होने सुसगत आर्थिक सिद्धात का विकास नही किया अथवा उन्होने विकास की राजनैतिक अर्थव्यवस्था मे योग नही दिया तथापि उन्होने उससे अगला सर्वोत्तम कार्य यह किया कि उन्होने भारतीय अर्थव्यवस्था का सुसगत पूर्ण और सह सबधित चित्र, उसके रोगो उन रोगो का विदेशी शासको से सबध तथा प्रयोग किए जाने वाले योग्य उपचारो का विवरण प्रस्तुत किया। हम इस सीमा तक यह सकते है कि उन्होने विकास के राजनैतिक अर्थव्यवस्था के आविष्कार का प्रयास किया जिसके अतर्गत उद्योग का विदेश व्यापार को, कराधान सबधी नीति को तथा कृषि का परस्पर घनिष्टता से सन्निचित किया गया था और जिसका सर्वप्रथम देश के द्रुतगति से औद्योगीकरण के लिए उपयोग किया गया था। इस सबध मे यह भी उल्लेखनीय है कि प्रारभिक राष्ट्रवादी नेताओ ने भारतीय आर्थिकता की विशुद्ध, स्वदेशी अथवा आधुनिकता से पूर्ववर्ती पद्धति का न्यायोचित सिद्ध करने के बदले आधुनिकीकरण की गति को तीव्र बनाने के लिए आर्थिक सिद्धातो की सापेक्षता तथा भारत की अपवादात्मक स्थिति की धारणा का उपयोग किया। उन्होने क्लासिकी अर्थव्यवस्था को इसलिए अस्वीकार नही किया कि वह सदियो पुराने भारतीय जीवन को अस्त-व्यस्त कर रही थी प्रत्युत इसलिए कि वह परपरागत दुर्बलताओ तथा पुरानी मान्यताओ को निरतर बनाए रखने वाले अपरिवर्तनशील और अविवेकपूर्ण व्यवहार का पोषण कर रही थी।[105] इसके अतिरिक्त वह सामंतवादी तथा पदगत परपरागत बधनो को और अधिक सुदृढ बनाती थी।[106] इसके विपरीत भारतीय राजनैतिक अर्थव्यवस्था को राष्ट्रीय आर्थिक जीवन मे द्रुतगति से परिवर्तन लाने तथा उसके आधुनिकीकरण के लिए ही अपनाया गया।

संदर्भ

1. रानाडे, एसेज, पृ० 1-39 क्लासिक अर्थशास्त्र पर रानाडे के विचारों का प्रारंभिक परिचय आगस्टस मोग्रेडियन के फ्री ट्रेड ऐंड इंग्लिश कामर्स की उनकी समीक्षा से होता है जे० पी०एस० एम०, जुलाई 1881 (खंड IV संख्या 1) प० 50 और आगे तुलनीय मानकर, पूर्वोद्धृत, खंड-I पृ० 2 4-5
2. रानाडे के दृष्टिकोण की विस्तृत परीक्षा के लिए देखिए, जेम्स केलाक, 'रानाडे ऐंड आफ्टर', इंडियन जनरल आफ इकोनामिक्स, जनवरी 1942 (खंड XXII सं० 3), भवतोश दत्त, दि बैकग्राऊंड आफ रानाडेज इकोनामिक्स', वही: जे० पी० कोयाजी, 'रानाडेज वर्क ऐज ऐन इकनोनामिस्ट' वही · डी० जी० कर्वे : रानाडे, दि प्रोफेट आफ लिबरेटेड इंडिया (पूना, 1942), अध्याय 4 पी० के० गोपालकृष्णन, डेवलमेंट आफ इकोनामिक्स आइडियाज इन इंडिया (दिल्ली, 1959) अध्याय-3
3. रानाडे, एसेज, पृ० 2
4. वही, पृ० 4-5, 9-10
5. वही, पृ० 8-10, 22-3 42-3, और 'रिव्यू आफ फ्री ट्रेड ऐंड इंग्लिश कामर्स', पूर्वोद्धृत, पृ० 51.
6. एसेज, पृ० 4-6, 14 उन्होंने यह भी निर्देश किया कि भारत की समस्याएं और दशाएं इंग्लैंड की अपेक्षा यूरोप और अमरीकी महाद्वीपों की समस्याओं और दशाओं से अधिक मेल खाती हैं। अत महाद्वीपीय अर्थव्यवस्था के अध्ययन से प्राप्त शिक्षा अंग्रेजी राजनीतिक अर्थव्यवस्था की पाठ्यपुस्तकों में निहित नीतिवाक्यों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक प्रभाव डालेगी
7. वही, पृ० 3, 28-9, 32-3, 89
8. वही, पृ० 16-21
9. वही, पृ० 10 11, 34-9
10. वही, पृ० 6-7, 16
11. वही, पृ० 8-9
12. वही. पृ० 1-5, 21-2 89-90. यहां रानाडे ने इंग्लैंड से भिन्न होने के आधार पर भारत के पाश्चात्य राजनीतिक संस्थान दान म अंग्रेज राजनीतिज्ञों के इनकार करने पर तो व्यंग्य प्रहार किया परंतु आर्थिक नीतियों की चर्चा करते समय वे इस तथ्य का सर्वथा भूल गए (वही, पृ० 2, 4-5).
13. तुलनीय, केलाक, 'रानाडे ऐंड आफ्टर', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 253, कर्वे पूर्वोद्धृत, पृ० 54-6.
14. रानाडे, एसेज, पृ० 21
15. उन्होंने लिखा . 'व्यापक व्यवहार का नाम ही तो सिद्धांत है तथा अनुमानित कारणों के संदर्भ में किया गया अध्ययन ही वस्तुत व्यवहार है। सिद्धांत का निर्णायक तत्व व्यवहार ही है, वही उनकी सत्यता की परीक्षा करता है तथा गहरी जड़ पकड़े, स्थाई और विभिन्न मौलिक सत्यों की सुदृढ़ पकड़ के कारण विभिन्न परिस्थितियों को ग्रहण करता है (वही).
16. कर्वे . पूर्वोद्धृत, पृ० 55 और रानाडे की टिप्पणियां भी देखिए . 'ऐडम स्मिथ ने आर्थिक रूप और सामाजिक स्थिति को कभी पृथक करके नहीं देखा और इस प्रकार उपयोगिता की स्थिति बनाए रखी, जिसे अब उसके उत्तराधिकारियों ने उसके सिद्धांत पर आवश्यकता से अधिक बल देते हुए छोड़ दिया है (एसेज, पृ० 16).

17. 'रिव्यू आफ "फ्री ट्रेड ऐंड इंग्लिश कामर्स", पूर्वोक्त स्थल, पृ० 51, 53-4.
18. वही, पृ० 56, एसेज, पृ० 11, 22 और आगे, 42-3, 89.
18-ए. तैलग : फ्री ट्रेड प्रोटैक्शन—'फ्राम ऐन इंडियन पांइट आफ व्यू' (बंबई, 1877) पृ० 47 तथा देखिए पृ० 2, 15, 17, 69
19. वही, पृ० 2-3, 53.
20. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 136.
21. राय, पावर्टी, पृ० 66. संरक्षण बनाम उन्मुक्त व्यापार विवाद का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा : 'वास्तव में उन्मुक्त व्यापार और संरक्षण समय और स्थान की स्वतःसिद्ध कल्पनाए हैं। यह तो औचित्य का प्रश्न है न कि प्राकृतिक कानून का (वही, पृ० 65).
22. उदाहरण के लिए देखिए, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 749, 808 और 886.
23. दत्त, ई० एच० पृ० 299-302 और देखिए उनकी स्पीचेज II पृ० 122-5.
24. जी० एस० अय्यर, ई० ए० 104-07.
25 वही, पृ० 129-30.
26. वही, परिशिष्ट, पृ० 4.
27. वही, परिशिष्ट, पृ० 5. उन्होंने व्यापारवाद के उदय से अंतिम जर्मन सप्रदाय तक यूरोप में आर्थिक चिंतन के विकास के संक्षिप्त इतिहास की खोज की (वही, परिशिष्ट, पृ० 7-22). यह भी पर्याप्त रोचक है कि जब उन्होंने व्यक्तिगत लाभ पर राष्ट्रीय विकास को गौरव देने के लिए आर्थिक सिद्धांतो और उनके ऐतिहासिक मोड़ो की सापेक्षकता की समर्थक सूची की प्रशसा की, उस समय उन्होंने यह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख लिया था कि यह सूची समकालीन समाज के प्रभावी सुधार मे सहायक होने के बदले व्यापारिता के नए रूप की स्थापना के लक्ष्य की ही साधक अधिक है. (वही, परिशिष्ट पृ० 22-3).
28 वही, परिशिष्ट, पृ० 5.
29 वही, परिशिष्ट, पृ० 1-2 तथा देखिए पृ० 210-1, 242, 267 और परिशिष्ट, पृ० 4.
30. वही, परिशिष्ट, पृ० 3.
31. और देखिए मराठा, 26 मार्च 1899.
32. और देखिए न्यू इंडिया, 18 दिसंबर 1902.
33. एस० एम० बैनर्जी, स्पीचेज I पृ० 202; ए० बी० पी०, 1 दिसंबर 1870; सोमप्रकाश, 3 अप्रैल (आर० एन० पी० बग, 8 अप्रैल 1882); मद्रास स्टैंडर्ड, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एम० 25 जनवरी 1902).
34. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 136; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 207; राय, पावर्टी, पृ० 38-9, 66; न्यू इंडिया, 18 दिसंबर 1902; जी० एस० अय्यर ई० ए०, पृ० 358 तथा देखिए ए० बी० पी०, 6 अप्रैल 1882.
35, रानाडे, एसेज, पृ० 32; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 809; जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 155.
36. रानाडे, एसेज, पृ० 32; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 671-2, 74; जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 155, परिशिष्ट, पृ० 6; गोखले, स्पीचेज, पृ० 54-5.
37. रानाडे, एसेज, पृ० 87; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 612, 746, 748, 785-6, 808; जी०एस० अय्यर, ई० ए०, परिशिष्ट, पृ० 6, रानाडे ने 1896 में यह टिप्पणी की थी : 'आखिर राज्य का अस्तित्व इसलिए तो है कि वह अलग अलग सदस्यों को उनके सभी प्रयत्नों में सफल बनाते हुए उन्हें

अधिक ऊचा, अधिक प्रसन्न, अधिक समृद्ध और अधिक पूर्ण बनाए' दि मिसलेनियस राइटिंग्ज आफ दि लेट आनरेबल मिस्टर जस्टिस एम० पी० रानाडे (बबई 1915), पृ० 172 तथा देखिए वही, पृ० 78

38 रानाडे, एसेज, पृ० 86, 90-2, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 672-3, 747-8, 785-6, 807-09, 826. हा 1877 मे रानाडे के विचार अवश्य कुछ भिन्न थे। पूना सार्वजनिक सभा की ओर से डकन रायट्स कमीशन की रिपोर्ट पर लिखे एक पत्र म उन्होने घोषणा की देश की भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति म किसी प्रकार का स्थाई परिवर्तन लाना सरकार की शक्ति और सामर्थ्य के बाहर है। भारतवासी किसी विदेशी अभिकरण द्वारा सुधार किए जाने म विश्वास नही रखते। कम से कम विकास की तात्कालिकता की माग के अनुसार इतने थोडे समय मे तो कुछ सुधार हो पाना सभव नही जी० सी० एस० एस०, जनवरी 1879 (खड I सख्या 3) पृ० 36 तुलनीय मानकर पूर्वोद्धृत, खड I पृ० 213

39 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 650 3 785-6

40 रानाडे, एसेज, पृ० 32 तथा लोक का पार्थनिर्धारण करने वाली सरकार को लोक कल्याण की दिशा मे सर्वोत्तम रूप से किए जाने वाले सभी कार्यों को अपने हाथ म लेने का अधिकार है और यह उसका तदनुरूप नैतिक दायित्व है, (वही, पृ० 87)

41. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 822

42. रानाडे, एसेज, पृ० 21

43 जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 130-1 तथा देखिए, वहा परिशिष्ट पृ० 6, 10-11

44 जोशी, पूर्वोद्धृत पृ० 748-9.

45 देखिए पीछे अध्याय 3, उदाहरणार्थ रानाडे, एसेज, पृ० 32 4, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 671-701, 752-830 राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा औद्योगिक विकास पर दिए बल के लिए देखिए, पीछे अध्याय 2

46 देखिए पीछे अध्याय 10

47 रानाडे एसेज, पृ० 31

48 देखिए पीछे अध्याय 10 उदाहरणार्थ देख एसेज पृ० 30-1 हा, इसस पूर्व 1881 मे उन्होने राज्य द्वारा जमीदारो और किरायादारो के सबधो को नियमित करने के किसी भी प्रयास का विरोध किया था। उनके विरोध का आधार यह था कि ये मामले इतने नाजुक और इतने जटिल हैं कि इन्हे सुलझाने की बात निजी प्रयास और आपसी समझौते पर ही छोड देनी चाहिए। इस दिशा मे किसी भी प्रकार के सरकारी प्रयास का परिणाम असफलता और नैतिक रूप से कुठा के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलेगा (दि सेट्रल प्राविसेज लैंड रैवेन्यू ऐंड टेनेंसी बिल्स, क्वे० पी० एस० एस०, अप्रैल 1881 खड III सख्या 4, पृ० 22) और देखिए पृ० 17 तुलनीय मानकर, पूर्वोद्धृत, खड I पृ० 214

49. उन्होंने लिखा · 'प्रगतिशील सिद्धात वहा इस स्वतत्रता की अनुमति देता है जहा दो दल योग्यता और साधनो में मुकाबले मे बराबर के हैं। परतु जहा यह स्थिति नही है, वहां समानता और स्वतत्रता की बात कोढ म खाज का काम करती है। इसी भावना से बहुत सारे जरूरतमदों और थोडे से शक्तिशालियों मे उत्पादन के वितरण की व्यवस्था करनी है अर्थात् न्याय और औचित्य का ध्यान रखना है। इस प्रकार के मामलो मे पुरातनपथियो के अतिम स्थिति के दृष्टिकोण को जीवन के सभी आयामो के सदर्भ मे नए ढग से देखना होगा (एसेज, पृ० 31).

50 देखिए पीछे अध्याय 8 उदाहरण के लिए, ई० ए० पृ० 227-8 तथा देखिए, मराठा, 1 जुलाई 1888

51 देखिए पीछे अध्याय 8 उदाहरण के लिए, ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियम, 27 फरवरी 1879; 'फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया' जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1881 (खंड IV, संख्या 1) पृ० 31, इंदु प्रकाश, 9 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 14 फरवरी 1885), हिंदू, 14 मई 1889, 26 मार्च 1901

52 कम से कम एक लेखक, डा० जी० कर्वे, यह इस गलती करने से नहीं बच सके (पूर्वोद्धृत, पृ० 119, 132) दूसरी और जेम्स क्नाक (रानाडे, पृ० 130), बी० दत्त (पूर्वोद्धृत, पृ० 262, 272), और गोपालकृष्णन (पूर्वोद्धृत, पृ० 124) मात्र ही इस अंतर को देख सके थे.

53 विशेष रूप से देखिए, गगज, पृ० 89-90, 169, 190, 193-4

54 वही, पृ० 33

55. रिपोर्ट आफ दि फाइनांस कमेटी 1886 खंड I, पृ० 407

56 जोशी, पूर्वोद्धृत. पृ० 819.

57 वही, पृ० 746-50, 820

58 वही पृ० 673-4, 808, 820, 826 हिंदू 21 अप्रैल 1902 भी देखें.

59 जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 822

60 वही, पृ० 821 तथा देखिए पृ० 835 861-2

61 उदाहरण के लिए देखिए, रिपोर्ट आफ इंडियन फैमिन कमीशन 1880, भाग II वर्ग VII कंडिका-2, रिचार्ड स्ट्रैची और जान स्ट्रैची पूर्वोद्धृत पृ० 14-5; चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 331, कर्जन, स्पीचेज I पृ० 128 'रेजोल्यूशन आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया दिनांक 16 जनवरी 1902, कंडिका-9, स्ट्रेची इंडिया 1903) पृ० 120 ई० ला, एल० सी० पी०, 1904, खंड XLIII पृ० 539 यह उल्लेखनीय है कि कितने ही सरकारी अधिकारी और लेखक इस व्यापक दृष्टिकोण से असहमत थे उदाहरण के रूप में देखिए, लुइस मैलेट, लार्ड सैलिसबरी एच० ई० सुलेवान की कार्यवाही और दत्त . फैमिस इन इंडिया, परिशिष्ट, एम० एन० ओ० क्यू० में उद्धृत; भारत सरकार के संप्रेषण दिनांक 8 जून 1880, होम (पब्लिक) प्राग 45 (ए) जून 1880; बीडन पावेल पूर्वोद्धृत, पृ० 49

62. माडलिक, स्पीचेज, पृ० 466, 488, 514-5; ज्ञान प्रकाश, 3 फरवरी (आर० एन० पी० बंब, 5 फरवरी 1881); जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 547-8, 573-4, 824, 887; रानाडे, 'प्रोटेस्ट अगेंस्ट न्यू डिपार्चर आफ गवर्नमेंट इन लैंड पालिसी' जे० पी० एस० एस० अप्रैल 1884 (खंड VI संख्या-4) पृ० 45; पूना सार्वजनिक सभा का 4 जून 1884 का पत्र, जे० पी० एस० एस० जुलाई 1886 (खंड IX संख्या, 1) पृ० 5, स्वदेशमित्रन, 23 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, 30 अप्रैल 1897); पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 680-2; वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 570; दत्त · फैमिन इन इंडिया, पृ० 94 और आगे, ई० एच० I पृ० 372-4, 381-2, ई० एच० II पृ० 140, 321-2. और देखिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 60, 220-1, स्पीचेज, पृ० 316, परिशिष्ट पृ० 40, 182; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 223 पादटिप्पणी, राय, पावर्टी, पृ० 254

63. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 886 उन्होंने आगे कहा 'यह समाजवादी सिद्धांत इस विषय के यूरोपीय अर्थशास्त्र संबंधी अपसिद्धांतों का अपभ्रंश मात्र है और जिसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति ब्रिटिश भारत के बाहर भूमि के राष्ट्रीयकरण के मताग्रही आंदोलन के माध्यम से होती है (पृ० 887)

जोशी एक दृष्टि से सही थे : न तो रिकार्डो ने और न ही जेम्स मिल ने यह सुझाव देने का साहस किया कि अनुपार्जित आय में निहित क्रांतिकारी कर नीति इंग्लिश परिस्थितियों में लागू की जाए तुलनीय, स्टोक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 89-90.

64. देखिए स्टोक्स, पूर्वोद्धृत, विशेष रूप से अध्याय 2, पृ० 108-09, 114, 137.
65. वही, पृ० 88; डेविड रिकार्डो : दि प्रिंसिपल्स आफ पोलिटिकल इकानोमी ऐंड टैक्सेशन (एवरीमैन लायब्रेरी संस्करण, लंदन 1943). अध्याय 2 और 32, एरिक रोल : ए हिस्ट्री आफ इकोनामिक थाट (न्यूयार्क 1947), पृ० 195-6.
66. स्टोक्स, पूर्वोद्धृत, पृ० 77, 89, 93, 127-8, 131-3.
67. वही, पृ० 135 तथा रिकार्डो : पूर्वोद्धृत, अध्याय 2.
68. रानाडे, एसेज, पृ० 30. 'लैंड ला रिफार्म्स ऐंड ऐग्रीकल्चरल बैंक्स' जे० पी० एस० एस०, अक्तूबर 1881 (खंड IV संख्या-2) पृ० 54
69. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 892-4, 900-01. यहां यह उल्लेखनीय है कि रानाडे और जोशी जान स्टुअर्ट के राजनीतिक अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों पर बहुत विश्वास करके चल रहे थे, अध्याय 10.
70. स्टोक्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 89-90; रिकार्डो : पूर्वोद्धृत अध्याय 2 और 32, उदाहरणार्थ अनुपर्जित वृद्धि के सिद्धांत को लार्ड कर्जन के 16 जनवरी 1902 के भूमि प्रस्ताव में भी स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली. देखिए कंडिका-18 22.
71. रानाडे, एसेज, पृ० 29-30; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 363, 894-6.
72. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 894, 901. इस सरकारी तर्क पर कि सरकार के सारे समाज के न्यासधर होने के नाते उसके लिए लगान में अनुपार्जित वृद्धि को समाज के एक छोटे से वर्ग विशेष के लाभ के लिए छोड़ना कहां का न्याय होगा, टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा : काश खेतिहर जनसंख्या का एक छोटा अंश होते ? (वही, पृ० 902) यह सचमुच व्यंगात्मक भले न हो परंतु विचित्र स्थिति अवश्य है कि इंग्लैंड में मुट्ठी भर जमींदारों के शोषण से विशाल जन समुदाय को बचाने के लिए इंग्लैंड के लेखक रिकार्डो द्वारा दिए गए सिद्धांत का भारत में समाज के हित के नाम पर जनता के विशाल समुदाय पर ऊंचे कर थोपने के लिए प्रयोग किया जा रहा है.
73 पृष्ठ 1.
74. भोलानाथ चंद्र, एम० एम०, जून 1873 (खंड II) पृ० 99, 109, 235; नौरोजी, पावर्टी, पृ० 62; तैलंग : फ्री ट्रेड ऐंड प्रोटेक्शन, पृ० 32, 62-4, 69-70. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 680-2, 749; रानाडे, एसेज, पृ० 25, राय, पावर्टी, अध्याय 1 (विशेष रूप से पृ० 44, 51); गोखले, बिलबी कमीशन, खंड III प्रश्न 18165-7; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 750; दत्त, इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 133, स्पीचेज II पृ० 127-8. इन इंडिया, 27 नवंबर 1903; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 101, 107, 255, 345-6, 349-50. 'ईस्ट ऐंड वैस्ट', अगस्त 1903 पृ० 884 पर; एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी० 1896 पृ० 136. सी० पी० ए०, पृ० 636. जी० आर० एम० चितनवीस, एल० सी० पी० 1894 खंड XXXIII पृ० 156; पी० ए० चारलु, एल० सी०पी० 1899 खंड XXXVIII पृ० 178-9; वाचा, स्पीचेज, पृ० 442. रास्त गुफ्तार, 24 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 30 मार्च 1878); गुजरात मित्र, 7 अप्रैल (वही, 13 अप्रैल 1878); मराठा, 12, 19 जून, 4 दिस० 1881, 26 मार्च 1882, 11 अप्रैल 1897, 26 मार्च, 21 अप्रैल 1899, 11 नवंबर 1900, 30 मार्च 1902; बंबई समाचार, 8 जुलाई (आर० एन० पी० बंब 9 जुलाई 1881). 'ए स्टेटमेंट आफ इंडियन ग्रीवेंसेस', जे० पी० एस० एस०, जुलाई

1881 (खंड IV संख्या-1), पृ० 15; बंबई समाचार, 11 मार्च (आर० एन० पी० बंब 14 मार्च 1885); केरल पत्रम, 21 नवबर (आर० एन० पी० एम०, 30 नवबर 1890); बंगाली, 15 अप्रैल 1893, 22 दिसंबर 1894, 19 मई 1901, 14 अक्तूबर 1903; ए० बी० पी०, 8 सितंबर 1897; हिंदू, 26 नवंबर 1900, 13 अक्तूबर 1903; मद्रास स्टैंडर्ड, 21 जनवरी (आर० एन० पी० एम०, 25 जनवरी 1902); न्यू इंडिया, 21 अप्रैल 1902.

75. ई० ए०, पृ० 350

76. अनेक प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं ने सरक्षण की मांग पर दबाव न डालने का कारण ब्रिटेन द्वारा उसकी स्वीकृति की असंभावना को बताया देखिए, जोशी, पूर्वोद्धत, पृ० 749, 822; रानाडे, एसेज, पृ० 33, 189, 191; एन० पी० चदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 526-7; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 696; दत्त : इंग्लैंड एंड इंडिया, पृ० 134

77. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 12, 15, 17, 69; ए० बी० पी०, 1 दिस० 1870; नौरोजी, पावर्टी, पृ० 62, रानाडे, एसेज, पृ० 25, राय, पावर्टी, पृ० 66; जी० एम० अय्यर, ई० ए० पृ० 240-2, 245, बगाली, 15 अप्रैल 1893, 19 मई 1901; मद्रास स्टैंडर्ड, 21 जून० (आर० एन० पी० एम०, 25 जन० 1902). अपनी भावनाए अभिव्यक्त करते हुए मराठा ने अपने 26 मार्च 1899 के अक में लिखा : 'उन्मुक्त व्यापार का सिद्धात भारत मे विदेशी सत्ता को स्थिर रखने के लिए विदेश से लाया गया एक पौधा है परन्तु भारत की भूमि इस पौधे के लिए उपयुक्त नही और आने वाले समय मे इसे दीर्घकाल तक चलाया नही जा सकता अत: इसे स्थिर रखने के लिए बलपूर्वक किए जाने वाले सभी प्रयत्न असफल ही होगे.

78. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 12, 49; सोम प्रकाश, 24 अप्रैल (आर० एन० पी० बग०, 29 अप्रैल 1882), जोशी, पूर्वोद्धत पृ० 680; राय पावर्टी, पृ० 33-4, 51, गोखले, विलबी कमीशन खड III प्रश्न 18141, 18155, 18163-4, वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 623; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 692-3; पी० मेहता स्पीचेज, पृ० 750; जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 240, 350

79. नौरोजी, पावर्टी, पृ० 62 तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 65, मुरलीधर, रिप० आई० एन० सी०, 1891, पृ० 21; राय, पावर्टी, पृ० 66, 70-3, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 103.

80. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 68-9, मराठा, 12 जून 1881; जोशी पूर्वोद्धृत, पृ० 684; राय, पावर्टी, पृ० 39; जी० एम० अय्यर, ई० ए०, पृ० 104, 329.

81 तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 10-11; राय, पावर्टी, पृ० 136-7. जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 244-5.

82. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 14-24.

83. वही, पृ० 24 और देखिए, राय, पावर्टी, पृ० 47-8.

84. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 34-5; रानाडे, एसेज, पृ० 24-5; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 257-9, 274-5, 329-30 तथा देखिए, रानाडे, 'रिव्यू आफ फ्री ट्रेड ऐंड इंग्लिश कांग्रेस', पृ० 54-5.

85 रानाडे, एसेज, पृ० 25; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 274-5.

86. रानाडे, एसेज, पृ० 25; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 274-5. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 12-3. भी देखें.

87. तैलंग, पूर्वोक्त, स्थल, पृ० 34-5; मराठा, 12 जून 1881; हिंदू, 23 मार्च 1885; रानाडे, एसेज, पृ० 25-6.

88. तैलंग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 36-7.
89. तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 67; मराठा, 19 जून 1881; ए० बी० पी०, 6 अप्रैल, 1882; रानाडे, एसेज, पृ० 25; राय, पावर्टी, पृ० 45-6; एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी०, 1896, पृ० 136; दत्त, इंडिया, 27 नवबर, 1903 मे.
90 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 822; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 750; वाचा, रिप० आई० एन० सी०, 1895 पृ० 159 स्पीचेज, पृ० 422 पी० मेहता, स्पीचेज, की भूमिका पृ० 14 और तैलग, स्पीचेज, पृ० XI-XII. नौरोजी, पावर्टी (पृ० 62) की भूमिका, सी० पी० ए०, पृ० 881; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 754 और देखिए, कर्वे . पूर्वोद्धृत, पृ० 134
91. उन्होने यहा तक कहा कि भारत मे सरक्षण इग्लैंड के प्रति अन्याय नही होगा। यदि यह अन्याय हो भी तो उसकी क्षतिपूर्ति हो जाएगी अत वह लागू किया जा सकता है (पूर्वोक्त स्थल, पृ० 63-4). और देखिए, पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 750.
92 दत्त, ई० एच० I पृ० 302 दत्त ने अपनी 'इकोनामिक हिस्टरी आफ इडिया' पुस्तक के दोनो खडो मे तथा अपने अनेक भाषणो और लेखो मे इस विवरण को विस्तार के साथ प्रमाणित किया और देखिए ए० बी० पी०, 30 मार्च 1882; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 106, 242-3. वाचा, सी० पी० ए०, पृ० 623, एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 692-6.
93 'ए स्टेटमेट आफ सर्वेश्चम' जे० पी० एस० एम०, जुलाई 1881 (खड IV स० 1), पृ० 15; ए० बी० पी०, 30 मार्च, 6 अप्रैल 1882 रानाडे, एसेज पृ० 25 राय, पावर्टी, पृ० 58-66, मराठा, 17 जनवरी 1886, 11 अप्रैल 1897, 11 नवबर 1900, दत्त, ई० एच० I पृ० 302, इडिया, 27 नवबर 1903; एस० एन० बनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 696; जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० 104-05, 109, 245, 328 ए० पृ० 52(एस० एन० बैनर्जी इन सी० पी० ए०, पृ० 696 जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 104-05, 109, 245, 328
94 तैलग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 65; राय, पावर्टी, पृ० 53-8; मराठा, 11 अप्रैल 1897; दत्त, इडिया, 27 नव० 1903, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 244-5, 328, ईस्ट एड वेस्ट, अगस्त 1903, पृ० 884; एन० जी० चंदावरकर, सी० पी० ए०, पृ० 526; एस० एन० बैनर्जी, सी० पी० ए०, पृ० 696
95 दत्त, ई० एच० I पृ० 302; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 252-3
96 जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 674, मराठा, 17 जनवरी 1886, एस० एन० बैनर्जी, रिप० आई० एन० सी०, 1896, पृ० 136, राय, पावर्टी, पृ० 39; दत्त, इंडिया, 27 नवबर 1903, जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 116-7, 258-9, 329
97 दत्त, स्पीचेज, II पृ० 127. इसी प्रकार 22 नवबर 1903 के ग्रक मे मराठा ने घोषणा की कि भारत न तो उन्मुक्त व्यापार चाहता है न ही शुद्ध सरक्षण वह तो दोनो को इस रूप में चाहता है जिससे वर्तमान परिस्थितियो के सर्वाधिक अनुकूल उसकी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सुधार हो सके और देखिए, रानाडे, 'रिव्यू आफ फ्री ट्रेड ऐंड इंग्लिश कामर्स', पूर्वोक्त स्थल, पृ० 56; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 822, राय, पावर्टी, पृ० 65.
98 ट्रिब्यून, 1 अप्रैल (आर० एन० पी० पी०, 12 अप्रैल 1902); मराठा, 5 जुलाई 1903; इडियन पीपुल, 16 अक्तूबर 1903 हिंदू, 27 नवबर 1903; एच० आर० नवबर 1903 पृ० 442; बगाली, 13 फरवरी 1904.
99. पृ० 441.

100. और देखिए, इंडियन पीपुल, 16 अक्तूबर 1903. जी० के० गोखले ने 1911 में इस भावना को और अधिक अधिकृत अभिव्यक्ति दी. देखिए, गोखले, स्पीचेज, पृ० 514-5.

101. तुलनीय केलाक, 'रानाडे ऐंड आफ्टर' पूर्वोक्त स्थल, पृ० 253. कर्वे : पूर्वोद्धृत, पृ० 45-47.

102. रानाडे, एसेज, पृ० 27-33

103. जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 574, 901; दत्त : फैमिस इन इंडिया, पृ० 95.

104 तैलंग, पूर्वोक्त स्थल, पृ० 1, रानाडे, 'रिव्यू ग्राफ "फ्री ट्रेड एंड इंग्लिश कामर्स" ' पूर्वोक्त स्थल पृ० 51; मराठा, 11 नवंबर, 1900; जी० एस० अय्यर, ई० ए० पृ० VI और परिशिष्ट पृ० 3.

105. रानाडे, एसेज पृ० 23.

106. वही, पृ० 65.

अध्याय 15

आर्थिक राष्ट्रवाद

वस्तुस्थिति यह है कि कोई भी राष्ट्र एक ही समय विजेता राष्ट्र और परोपकारी राष्ट्र नही बन सकता।

अमृत बाजार पत्रिका, 22 फरवरी, 1892

आप अपने ब्रिटिश शासन के ईमानदार समर्थक होने की घोषणा करते है और उस शासन को बनाए रखने के लिए अनिवार्यत अपेक्षित तथा अविभाज्य स्थितियो और परिणामो की घोर निंदा करते है।

जार्ज हैमिल्टन.

भारत में ब्रिटिश शासन के स्वरूप और उद्देश्य का विश्लेषण

हमारे अध्ययन के अतर्गत अवधि मे भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा ब्रिटिश शासन के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण का निर्धारक तत्व अतत उसके स्वरूप और उद्देश्य का बोध था। उनमे से अधिकाश के बारे मे यह जानकारी सैद्धातिक तर्क वितर्क अथवा कोरी कल्पनाओ से प्राप्त नही थी। उनका सच्चा और व्यावहारिक ज्ञान ही उनकी धारणा का मूल आधार था। उनकी इस जानकारी का एक क्षेत्र आर्थिक नीतिया थी। समकालीन प्रशासन और राजनीति से सबधित लगभग प्रत्येक आर्थिक विषय पर एक ओर स्वय भारतीयो के बीच आपसी विचार विमर्श का और दूसरी ओर भारतीयो तथा शासको के बीच हुए तर्क वितर्क का इस मौलिक राजनैतिक जानकारी पर प्रभाव पडा। अत मे आर्थिक नीतियों और विशेषत भारत की दरिद्रता के कारणो और परिणामी उपचारो के सबध मे उत्पन्न विविध वादविवादो मे राष्ट्रवादी नेताओ के अनेक बडे वर्गों, जी० के० गोखले, जी० वी० जोशी, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, डी० ई० वाचा और आर० सी० दत्त आदि को हिचकिचाहट व अस्पष्ट रूप से तथा दादा भाई नौरोजी, बी० जी० तिलक, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, अमृत बाजार पत्रिका और मराठा तथा अन्य अनेक राष्ट्रवादी पत्र-पत्रिकाओ आदि जैसो को साफ़ तौर से, यह विश्वास करने को विवश होना पडा कि कुल मिलाकर भारत मे ब्रिटिश

राज्य आर्थिक दृष्टि से हानिकारक है और कदाचित इसका उद्देश्य ही भारत को हानि पहुंचाना है।

बहुत सारे भारतीय नेता, विशेषत: कालांतर में समझौतावादी के रूप में प्रसिद्ध नेता ब्रिटिश शासन से बडी-बडी आशाएं रखते थे। वे भारत पर समकालीन विश्व के सर्वाधिक प्रगतिशील राष्ट्र ब्रिटेन के प्रारंभिक प्रभाव से चुंधिया गए थे। उनकी दृष्टि में 18वी और 19वी शताब्दी की लगभग अराजकता की सी स्थिति के उपरांत कानून और व्यवस्था की स्थापना, आधुनिक केंद्रित प्रशासन, पश्चिमी लोक तंत्रीय विचार और ज्ञान के माध्यम से आधुनिक शिक्षा का प्रसार, भाषण और लेख द्वारा विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा सामाजिक स्वाधीनता और इन सबसे कदाचित् बढ चढ कर थी, भारत के लोगों को एक सामान्य राष्ट्रीयता मे ढालने की प्रक्रिया और उसके फलस्वरूप सारे ही देश मे एक राष्ट्र के निवासी होने की भावना का उदय तथा नए राजनैतिक जीवन का उद्भव, ये सब ब्रिटिश राज्य के आगमन के परिणाम थे; अत इनका श्रेय ब्रिटिश राज्य को ही दिया जा रहा था। ब्रिटिश राज्य को इस प्रकार नव प्रभात का अग्रदूत माना जाने लगा था। वे लोग इस राज्य मे देश के द्रुत औद्योगिक विकास का उज्ज्वल भविष्य देख रहे थे और इसमे वे ब्रिटिश राज्य के प्रति आकृष्ट थे। उनका विश्वास था कि पश्चिमी विज्ञान और तकनीक, आर्थिक गठन तथा पश्चिमी कठोर उद्यम का उदाहरण देश को आर्थिक पिछडेपन और गतिहीनता के गढे से निकाल सकेंगे। रेलें, सडकें, नहरे और विश्व की समृद्ध मडियों के साथ जुड जाना, प्रारंभिक सूती कपडा उद्योग तथा विदेशी वाणिज्य, उद्योग और बागान संबंधी उद्यम आदि उन्हे देश मे आने वाली उस औद्योगिक क्रांति की तैयारी अथवा भूमिका के रूप लग रहे थे, जिसके प्रथम चिह्न पहले मे ही दृष्टिगोचर हो रहे थे।[1]

यह बात नही थी कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेता देश मे निर्धनता की व्यवस्था और अन्यान्य आर्थिक बुराइयो से परिचित नही थ, परतु उनका विश्वास था कि ब्रिटिश शासन का उज्ज्वल पक्ष उसके अंधेरे पक्ष को पीछे छोड देगा। उन्हे आशा थी कि समय बीतने के साथ आर्थिक रोगो मे उत्तरोत्तर कमी और लाभों मे अधिकाधिक वृद्धि ही होती जाएगी। दूसरे शब्दो मे भौतिक क्षेत्र मे वे नेता लोग वास्तविकता की अपेक्षा संभावना से और सिद्धि की अपेक्षा आशा मे ही अधिक आकृष्ट थे।[2]

समय के बीतने के साथ देश की, भले ही मदगति मे परतु उत्तरोत्तर और अधिकाधिक, प्रगति की प्रतीक्षा करने के उपरात कुछ एक ने धीरता मे और कुछ एक ने अधीरता से अनुभव किया कि उनकी आशाए निरर्थक ही सिद्ध हुई हैं और उसके पूरे होने की सभावना घटती ही जा रही है। इससे उन्हे निराशा और कुठा ही हाथ लगी। उनके मन मे ब्रिटिश राज्य का उज्ज्वल स्वरूप धीरे धीरे धुधला पडने लगा। जहा तक आर्थिक जीवन का संबंध था, प्रगति बहुत ही मद थी और कुछ एक नेताओ को तो ऐसा लगा कि प्रगति के विपरीत देश आर्थिक दृष्टि मे अधोगति की ओर उन्मुख हो रहा है। समय आने पर भारत की घोर दरिद्रता ने उनके समग्र आर्थिक चिंतन पर अपना प्रभाव जमाना प्रारभ कर दिया। आशा की एक किरण थी, आधुनिक उद्योग का विकास, और यहा उन्हें लगा कि सरकारी आर्थिक नीतियां कदाचित इस मार्ग मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाधा थी।

आर्थिक मामलों के संबंध में कृतज्ञता और प्रशंसा का स्थान निरंतर की जाने वाली शिकवा शिकायत और दोष निकालने की प्रवृत्ति ने ले लिया।[3] भारतीय नेता यह शिकायत करने लगे कि निर्धनता इस देश मे जड पकड रही है। सरकारी राजस्व अधिकारियों द्वारा किसान को लूटा खसूटा जा रहा है। स्वदेशी उद्योगों को नष्ट कर दिया गया है और आधुनिक उद्योग को जानबूझकर निरुत्साहित किया जा रहा है अथवा कम से कम पर्याप्त प्रोत्साहन नही दिया जा रहा है, देश के लिए आवश्यक खाद्य सभरण का निर्यात किया जा रहा है। भारतीय उद्योग और कृषि के हितों के विरुद्ध ही मुद्रानीति अपनाई जा रही है। विदेशियो के स्वामित्व वाले बागान उद्योगो मे भारतीय श्रमिक को दास बनाया जा रहा है, भारतीय राजस्व और कृषि विकास की आवश्यकताओ की उपेक्षा करके रेलो का विस्तार किया जा रहा है। कराधान का भार लोगो को निचोड रहा है। लोकधनों को राष्ट्र निर्माण के विभागो से हटाकर इतर भारतीय हितो के पोषण मे, अनावश्यक आजीविका जुटाने मे तथा विस्तारवादी युद्ध लडने मे खर्च किया जा रहा है। अंतिम, सबसे भारी शिकायत उन्हें यह थी कि भारत मे सपत्ति और पूजी की निकासी की जा रही है। वे यह अनुभव करने लगे कि ये सभी आर्थिक दोष प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भारत मे बरती जा रही ब्रिटिश आर्थिक नीति के ही परिणाम थे। यदि भारतीय आर्थिक जगत् असंगठित है तो व्यापक रूप से इसका दायित्व ब्रिटेन पर ही है। इस प्रकार इन राष्ट्रवादी नेताओं की दृष्टि मे ब्रिटिश राज्य के भूतकाल के और वर्तमान काल के अन्य सभी लाभ आर्थिक अवगति के सामने निरर्थक से हो जाते हैं।[4] 'विश्वास के इस भंग' ने न केवल ब्रिटिश शासन के परिणामो के संबध मे प्रश्न करने प्रारंभ कर दिए, प्रत्युत 'क्यों', और 'किसलिए' यह स्थिति है इस पर भी विचार करना प्रारभ कर दिया. भारत ने भौतिक प्रगति क्यों नही की? इस संबंध मे प्रारंभिक आशाओ की पूर्ति क्यों नही हुई? इस असफलता के लिए कौन उत्तरदायी है? क्या भारत को यह क्षति अनजाने पहुची है अथवा जानबूझकर कर पहुंचाई गई है? दूसरे शब्दो मे भारत मे ब्रिटिश शासन का उद्देश्य क्या था? निष्कर्ष रूप में ब्रिटिश राज्य के परोपकारी स्वरूप मे उनका विश्वास उठने लगा और उन्हे यह दिखाई देने लगा कि ब्रिटिश शासन भौतिक विकास की दृष्टि से भारत के लिए हानिकारक ही रहा है।

जैसाकि सर्वविदित है, विशाल संख्या मे भारतीय नेता वर्षों तक यह विश्वास करते रहे कि भारत की आर्थिक दुर्गति का कारण ब्रिटिश जनता ब्रिटिश ससद और ब्रिटिश शासक वर्ग द्वारा भारत की स्थिति से भली प्रकार परिचित न होना है अथवा अधिक से अधिक यह सब ब्रिटेन की दलगत राजनीति का फल है और उसके परिणामस्वरूप गलत नीतियों का प्रवर्तन होता है और नौकरशाही द्वारा सही नीतियों तक को भी गलत ढंग से लागू किया जाता है। इसके अतिरिक्त अंशतः स्वयं नेताओं द्वारा अपने ही देश में गलत नीतियों का अपनाया जाना है। दूसरे शब्दों मे भारत के आर्थिक पिछड़ेपन के लिए शासकों का अज्ञान अथवा निर्णय में गलतिया अथवा अधिक से अधिक लोकतंत्रीय राजनीति के दोष ही उत्तरदायी थे न कि किसी प्रकार की सोच समझकर निर्धारित की गई नीति अथवा इच्छा का यह परिणाम था। अतः इन राष्ट्रवादी नेताओं के लिए तसल्ली का मुख्य

आधार ब्रिटेन की जनता की न्यायपरायणता, ईमानदारी और उदारता अर्थात इंग्लैंड के अंत करण मे दृढ विश्वास था। अत वे यह मानते रहे कि यदि भारत सरकार को, इंग्लैंड की सरकार को, ब्रिटेन की जनता को और ब्रिटेन की ससद को स्थिति की वास्तविकताओं का पूरा ज्ञान हो जाए तो सब ठीक हो जाएगा। अतएव उन्होने इस दिशा मे यथावश्यक सभी कुछ किया, उन सबको स्थिति से परिचित कराने के लिए सभी सभव प्रयत्न किए।[5] परतु ब्रिटिश आत्मा को जगाने के लिए उनके शैक्षिक अभियान, उनके अर्थशास्त्रीय विश्लेषण तथा उनके आर्थिक आदोलन, आर्थिक कष्टो के निवारण मे उनको अपेक्षित परिणाम न दिखा सके। फलत धीरे धीरे उनका विश्वास हिल गया। शासको की न्याय-परायणता पर उनकी आस्था डगमगा गई और घृणा के बीज ने गहरी जड पकड ली।

धीरे धीरे और समय के बीतने पर सुस्पष्ट आर्थिक प्रश्नो विशेषत सीमा शुल्क नीति और निवासी से सबधित प्रश्नो पर आदोलन मे भारतीय जनता और नेताओं को[6] यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश राज्य की आर्थिक नीतिया (निजी रूप मे अग्रेजो, प्रशासको, और राजनीतिज्ञो की सद्भावना के होते हुए भी) तो ब्रिटिश राज्य के स्वरूप और प्रवृत्ति की देन है। निर्धनता और आर्थिक पिछडापन इतना अधिक शासको की सुविचारित गलतियो का परिणाम नही जितना कि उनके शासन के साथ सबद्ध दोषो का परिणाम है। इस शासन का मूल रूप म उद्देश्य ही आर्थिक दृष्टि म भारत का शोषण करना है अत स्वभावत वह भारत के आर्थिक विकास के लिए हानिप्रद है। भारत के आर्थिक साधनो को अपने लाभ के लिए उपयोग मे लाने की इच्छा ने अग्रेजो की न्यायपरायणता और उदारता पर काबू पा लिया है। हम पहले ही विस्तार के साथ यह दिखा चुके है कि कैसे भारतीय नेता सरकारी आर्थिक नीति के विशेष उपायो से असतुष्ट हुए और उनमे से बहुत कितने ही मामलो मे इस निष्कर्ष पर पहुचे कि ब्रिटेन भारत पर ब्रिटेन के हित मे ही शासन कर रहा है न कि भारत के हित मे। यहा हम केवल इतना जोडना चाहेंगे कि बहुत सारे नेता स्थिति के सामान्यीकरण के रूप मे भी इस निष्कर्ष पर पहुचे।[7] समाचार पत्रो मे इस सामान्यीकरण को प्राय ही अभिव्यक्ति इस प्रकार से मिली, 'भारत इंग्लैंड की कामधेनु' अथवा 'भारत इग्लैंड के लिए दूध देने वाली गाय' है।[8]

भारतीय नेताओ द्वारा ब्रिटिश शासन की शोषक प्रवृत्ति को समझने और कालातर मे उसका प्रचार करने के ऐतिहासिक तथ्य को अपेक्षाकृत और अधिक भली प्रकार से समझने के लिए तीन बातो को ध्यान मे रखना आवश्यक है। प्रथम, भारतीय नेताओ के एक महत्वपूर्ण वर्ग ने, जिसके अतर्गत प्रधान रूप से कुछ एक राष्ट्रवादी समाचार पत्र थे, किसी भी स्थिति मे शासको की उदार इच्छा पर विश्वास प्रकट नही किया। इस वर्ग के अतर्गत वे लोग थे, जिन्हे 1888 मे ए० ओ० ह्यूम ने ऐसे आपत्तिजनक प्राणी बताया जो हमारे सर्वोत्तम तथा मित्रतापूर्ण सबधो की निंदा करते है और गाली देते है तथा सरकार अच्छा, बुरा अथवा तटस्थ रूप मे जो कुछ भी करे, उस पर नाक-भौं सिकोडते है, बुरा भला कहते है और उस सबका तिरस्कार करते है।[9] द्वितीय, उनमे से बहुतो के लेखो और भाषणो मे विश्वास की विडबना बनी रहे। एक ओर वे ब्रिटेन की लोकोपकारिता मे विश्वास प्रकट करते रहे और दूसरी ओर ब्रिटिश स्वार्थपरता पर बल देते रहे। वे कभी

कभी तो एक ही सांस में ब्रिटिश स्वार्थपरता को उजागर करते रहे तथा ब्रिटिश के दूसरों की उन्नति के लिए मिशनरी भाव से अपनी आस्था की भी पुष्टि करते रहे, उन्हे अपने राजनैतिक विश्वास और आर्थिक बोध के बीच न सुलझ सकने वाला अंतर विरोध दिखाई ही नही दिया। उदाहरणार्थ दादा भाई नौरोजी ने भारत मे ब्रिटिश शासन को 'अन-ब्रिटिश' कहकर ऐसा किया।[10] तृतीय, समाचार पत्रो ने प्राय: ही जन नेताओं की अपेक्षा सामान्य राष्ट्रवादी नेताओं की भावनाओं को अधिक सुस्पष्ट, अधिक प्रत्यक्ष और अधिक साहसपूर्ण अभिव्यक्ति दी। इन पत्रों ने आर्थिक प्रश्नो पर और उनके राजनैतिक परिणामो पर लोकप्रिय राष्ट्रीय धारणा को विकसित करने तथा उसे एक विशेष रूप देने में महत्व-पूर्ण योग दिया। किसी भी स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि जहां तक बहुसंख्यक भारतीय राष्ट्रीय नेताओं व जनता का संबंध है, भारतीय नेताओ के सभी वर्गो द्वारा आर्थिक नीतियो से संबंधित चलाये गए आंदोलन ने ही ब्रिटिश सरकार के उपकारिकता के भ्रम को तोड़ा।[11] ब्रिटिश राजनीतिज्ञों और भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ ने इस रहस्य को भली प्रकार समझ लिया था कि ब्रिटिश सत्ता का रहस्य केवल शारीरिक शक्ति न होकर नैतिक शक्ति भी था। यह सत्ता खाली तलवार पर टिकी हुई नही थी, जिससे उन्होने इस देश को विजित किया था प्रत्युत जनता की लगातार सहमति पर भी आधारित थी।[12] केवल राजनैतिक और भावनात्मक अपीलें ब्रिटिश राज्य के नैतिक आधार को कमजोर नही कर सकती थी। वे अधिक से अधिक ब्रिटिश राज्य की परोपकारी निरकुशता के तौर पर निंदा कर सकती थी।[13] सत्य तो यह है कि बहुत सारे ब्रिटिश प्रशासकों और राज-नीतिज्ञो ने अपने शासन के निरंकुश स्वरूप को प्रसन्नतापूर्वक न केवल अभिस्वीकार किया प्रत्युत उसका समर्थन भी किया। उनका दावा केवल यह था कि शासन की निरकुशता, मैकाले का सुदृढ शाही निरंकुशतावाद, अथवा जिसकी प्रसिद्धि पैतृकवाद के रूप मे हुई, लोकोपकारिता के लिए आवश्यक थी और यह 'शक्ति' के बिना संभव नहीं थी।[14] किसी भी स्थिति मे राजनैतिक स्वतंत्रता का अभाव सबके सामने था परन्तु यह अभाव एक राजनैतिक दोष था, जिसे विशुद्ध रूप मे उन सीधे सादे लोगो को दिखाया जाना था, जो अपने आप मे इस बुराई को नही देख सकते थे। अत ब्रिटिश राज्य के दोनों, शुभपरि-णामो और शुभ भावनाओं, के रूप में लोकोपकारी चरित्र के प्रति लोकप्रिय विश्वास को क्रमश: क्षीण करने वाली आर्थिक नीतियों से संबंधित राष्ट्रवादी आंदोलन का अपना एक ऐतिहासिक महत्व है। इससे राजनैतिक वफादारी के क्षेत्र मे अनिवार्यतया विश्वास की भावना क्षीण होने लगी। बहुत सुलझे हुए नेता भले ही कुछ कहते रहते, इस आंदोलन की अवधि मे शासन पर लगाए गए आरोपो की प्रवृत्ति के कारण जनसाधारण के मन में वफादारी की भावना रह नही सकती थी।[15] इस आंदोलन मे सभी राजनैतिक विचार-धारा के नेता, मृदु प्रकृति के दादा भाई नौरोजी, रानाडे, दत्त, गोखले और जोशी से लेकर उग्रवादी तिलक, दोनो भाई शिशिरकुमार और मोतीलाल घोष, और असंख्य राष्ट्र-वादी समाचार पत्रों, ने समान रूप से भाग लिया। इस रूप मे यह कहना सर्वथा न्यायसंगत होगा कि सभी राष्ट्रवादी नेताओं ने विद्रोह का नहीं तो असंतोष का बीज अवश्य बोया। वस्तुत: उन दोनों के बीच कदाचित वास्तविक अंतर केवल यह था कि जहां कुछ एक

जानते हुए भी राजद्रोही थे, वहा दूसरे वफादार थे और अपनी राज्यभक्ति का ढिंढोरा पीटते थे और ब्रिटिश राज्य को स्थायी रूप देने के इच्छुक थे। ऐसे लोग व्यक्तिगत रूप से ब्रिटिश राज्य के अंतिम दिनों तक वफादार बने रहे परतु उन्होंने जहां भी उपयुक्त समझा, वहा ही वस्तुगत रूप में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें काटने मे कोई कसर नही छोडी। वस्तुत: वे राजद्रोह के मूलाधार थे और यही प्रधान कारणों मे से एक कारण है कि 1880-1905 की अवधि को बौद्धिक असतोष और राष्ट्रीय जागरूकता के प्रसार, आधुनिक राष्ट्रीय आदोलन की शुरुआत का काल कहा जाता है।

यह भी एक पर्याप्त रोचक तथ्य है कि बहुत सारे समकालीन सरकारी अधिकारियों और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने इस तथ्य को भली प्रकार समझ लिया, कि अपने युग के राष्ट्रवादियो मे सर्वाधिक मृदुभाषी नेता भी यही भूमिका वस्तुगत रूप मे निभा रहे थे। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि मृदु और समझौतावादी भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस भी अपनी सरकार मे उपलब्ध दोषो के प्रति निरतर आलोचनात्मक, दोषो को ढकने के बदले उन्हे अच्छी तरह उघाडने की, प्रवृत्ति के कारण परिवर्तित रूप लेती जा रही थी। इस प्रकार उदाहरण के रूप मे भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन ने 1897 मे काग्रेस की, भारतीय प्रशासन पर प्रहार करने का कोई अवसर न खोने के लिए तथा भारत की जनता पर उस प्रशासन के प्रभाव को क्षीण करने के प्रयास के लिए आलोचना की।[16] जनरल चिसनी ने तो काग्रेस को 'पूर्णत. राजद्रोही' बताया।[17] राष्ट्रवादी प्रेस की भूमिका के सबध मे 1886 मे डफरिन ने लिखा कि इस ढग से निस्सदेह इन पत्रो के पढने वालो के मन मे एक भावना जड जमाती जाएगी कि हम अग्रेज सामान्यतया मानव जाति के और विशेषतया भारतीयो के कट्टर शत्रु है।[18]

आर्थिक साम्राज्यवाद का विरोध

1880-1905 की अवधि मे भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ द्वारा आर्थिक नीति के जिस स्वरूप की वकालत की गई उसने इन वर्षो को 'आर्थिक राष्ट्रीयतावाद के युग' का नाम दे दिया। इन नेताओ के अनुसार भारतीय जनमानस को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली समस्या आर्थिक समस्या थी जिसे 'निर्धनता' का नाम दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह एक राष्ट्रीय समस्या थी, अर्थात् यह भारतीय समाज के सभी वर्गो के हितो को बुरी तरह से दुष्प्रभावित करती थी। इससे भी बढ़ चढ़ कर बात यह थी कि भारतीय नेताओं ने इस निर्धनता का दायित्व न तो प्रकृति पर डाला और न ही भारतीय समाज पर; प्रत्युत इसके लिए विदेशी शासकों को ही उत्तरदायी ठहराया। उन्होंने निर्धनता से छुटकारे के कुछ उपचार सुझाए परतु उन्हे स्वीकार नही किया गया। इसका परिणाम यह निकला कि बहुत सारे नेता शासको की ईमानदारी पर सदेह करने लगे और यह अनुभव करने लगे कि भारत द्वारा आर्थिक दृष्टि से उन्नति न कर पाने का मूल कारण विदेशी शासकों का और उनकी नीतियो का अस्तित्व ही है। वे यह मानने लगे कि जब तक देश सर्वप्रथम इन यूरोपीय शासको से छुटकारा नही पा लेता, तब तक देश का राष्ट्रीय आर्थिक पुनरुद्धार हो ही नहीं सकता।

भारतीय नेताओं द्वारा सुझाए गए उपचारों अथवा उनकी आर्थिक नीतियों का स्वरूप साम्राज्यवाद-विरोधी था। वे ब्रिटेन और भारत के मध्य चालू आर्थिक सबधो मे मौलिक परिवर्तन चाहते थे। यहा तक कि जहा उनकी राजनैतिक मागे मृदु थी वहा उनकी आर्थिक मागें क्रातिकारी रूप से राष्ट्रीय थी। उनकी आर्थिक नीतियो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हे भारत पर ब्रिटिश के प्रभुत्व अथवा आधुनिक साम्राज्यवाद की पद्धति के जटिल आर्थिक तत्र की गहरी जानकारी हो गई थी। आर्थिक विकास के गठन के अतर्गत सभी आर्थिक प्रश्नो की शृखला पर विचार करने के तथा भारत रूप मे उनके पारस्परिक सबधो के सदर्भ म अध्ययन करने के उपरान्त ही उन्होने यह सारी जानकारी प्राप्त की, इसके पश्चात् इस पद्धति पर आधारित लगभग सभी सरकारी नीतियो का ही उन्होने विरोध किया। उन्होने समकालीन आर्थिक शोषणो के तीन रूपो पर विशेष ध्यान दिया, वाणिज्य के माध्यम से, उद्योग के माध्यम से तथा वित्त के माध्यम से, और उन्होने स्पष्ट रूप से समस्या की जड़ को पकड़ा कि ब्रिटिश आर्थिक साम्राज्यवाद का उद्देश्य भारत की अर्थ व्यवस्था को ब्रिटेन के अधीनस्थ करना है। विदेशी शासको द्वारा भारत मे उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था की मूल चरित्रगत विशेषताओ का निम्नलिखित रूप से विकसित करने की चेष्टा का भारतीय नेताओ ने बड़ी तीव्रता से विरोध किया भारत को कच्चे माल के पूरक देश का रूप देना ब्रिटिश उत्पादनो की मण्डी बनाना तथा विदेशी पूजी के निवेश का क्षेत्र बनाना। उन्होने देश के औद्योगिक विकास मे सहायक होने के बदले घातक सिद्ध होने तथा देश की औद्योगिक प्रगति मे और अधिक वृद्धि करने वाले सिद्ध होने के कारण सरकार की सीमा शुल्क, व्यापार, परिवहन और कराधान की नीतियो का विरोध किया। इन नेताओ मे बहुतो ने तो दोनो, राजनैतिक तथा आर्थिक, आधारो पर रेलो बागान और उद्योगो मे बड़े पैमाने पर विदेशी पूजी के आयात का तथा सरकार द्वारा इन क्षेत्रो को दी गई सुविधाओ का विरोध किया। सेना और असैनिक सेवा पर हो रहे व्ययो पर प्रहार करते हुए उन्होने ब्रिटिश सर्वोच्चता के भौतिक आधार को ही चुनौती दे डाली। सरकार की भूमि लगान और करारोपण की नीतियो पर प्रहार करते हुए उन्होने ब्रिटिश शासन के आर्थिक आधार को कमजोर करने की चेष्टा की। उन्होने भारतीय सेना और भारतीय वित्तो के एशिया और अफ्रीका मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रसार के लिए प्रयोग को आर्थिक शोषण का एक अन्य रूप बताते हुए उसकी निदा की। कुछ नेता तो इस सीमा तक बढ़ गए कि वे स्वय ब्रिटिश शासन के खर्चे के सारे भार को भारतीय वित्तो पर डालने के औचित्य पर ही प्रश्न करने लगे। निकासी के प्रश्न को तो उन्होने साम्राज्यवादी प्रवृत्ति के आर्थिक दृष्टिकोण का सजीव उदाहरण बताया। उन्होने साधारण लोकप्रिय परन्तु सशक्त भावनाओ के अनुसार इसे विदेशी आर्थिक शोषण का प्रतीक बताया।

उनकी सभी आर्थिक मागो का अतत मूल आधार यह इच्छा थी कि वास्तविक राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निर्धारण इग्लैड के नही प्रत्युत भारत के हितो के ही सदर्भ मे किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे भारतीय आर्थिकता की इग्लैड की अधीनता को कम करने और यहा तक कि समाप्त करने की

वकालत करते थे। अपने आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए जब वे लोग ब्रिटिश भारतीय प्रशासन पर, ब्रिटिश जनता पर और ब्रिटिश संसद पर निर्भर कर रहे थे, उस समय भी उनका उद्देश्य एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था की नींव डालना ही था, उनकी मांगों की स्वीकृति का परिणाम क्रमश परन्तु निश्चित रूप से भारत में ब्रिटेन की अधीनता वाली आर्थिक स्थिति से मुक्ति पाना ही था।

राष्ट्रवादी आर्थिक आंदोलन के दो अन्य पक्ष भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम, भारतीय नेता प्रधान रूप से समग्रतया ही आर्थिक विकास की समस्या से संबंध रखते थे न कि छिट-पुट और छितरे क्षेत्रों में आर्थिक उन्नति से। उन्होंने आर्थिक विकास के मुख्य प्रश्न से पृथक रूप में आर्थिक जीवन के विभिन्न पक्षों की छानबीन करने से इन-कार कर दिया। उनका कथन था कि परिवहन तथा विदेश व्यापार आदि के विकास को देश के आर्थिक विकास में उसके योगदान के संदर्भ में ही देखना चाहिए। उनके अनुसार तो निर्धनता की समस्या तक को भी प्रमुख रूप से उत्पादन के अभाव और आर्थिक विकास की अनुपस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए। उनका विश्वास था कि आर्थिक विकास का आधार प्रधान रूप से देश का सर्वतोमुखी और द्रुत औद्योगिक विकास था। आर्थिक विकास का मूल मंत्र विदेश व्यापार के विकास से अथवा यातायात के साधनों के विकास से अथवा सरकार की कर उगाहने की क्षमता या उसका संतुलित बजट पेश करने में कदापि नहीं था प्रत्युत वास्तविक औद्योगीकरण में ही था। इस दृष्टिकोण ने उन्हें द्रुत औद्योगीकरण को पूर्ण तथा हार्दिक समर्थन देने को ही नहीं प्रत्युत उसके प्रति आतुर-भक्ति प्रकट करने को विवश कर दिया। औद्योगिक विकास उन नेताओं के लिए एक ऐसा मापयंत्र था, जिसके आधार पर ही उन्होंने लगभग सभी समकालीन आर्थिक प्रश्नों को न केवल देखा प्रत्युत उन पर निर्णय भी दिया। उन्होंने विदेश व्यापार, रेल, सीमा शुल्क, मुद्रा और विनिमय, श्रम, लोकवित्त और यहां तक कि कृषि के क्षेत्र में सरकारी आर्थिक नीतियों को औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं के ही संदर्भ में देखा। यहां तक कि निकासी पर उनके प्रहार का आधार भी उसका उद्योग पर पड़ने वाला बुरा प्रभाव ही था।

यहां यह पुन उल्लेखनीय है कि उन्होंने वाणिज्य के उद्देश्य के प्रति नहीं प्रत्युत उद्योग के उद्देश्य के प्रति ही अपनी निष्ठा प्रकट की। अपने औद्योगिक, विदेश व्यापार संबंधी, यातायात संबंधी, सीमा शुल्क संबंधी, विनिमय संबंधी तथा वित्तीय नीतियों में उन्होंने सदैव उद्योग के हितों को ही सर्वोच्चता दी न कि वाणिज्य के हितों को। सत्य तो यह है कि उन्होंने कई बार जान-बूझकर उद्योग पर वाणिज्य की बलि चढ़ा दी।

द्वितीय, उन्होंने आर्थिक विकास के प्रति राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। उनका समग्र उद्देश्य समाज का सामान्य कल्याण था अत उन्होंने समाज के सभी वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने का प्रयास किया। उन्होंने कराधान की एक न्यायसंगत पद्धति अप-नाने की वकालत की जिसके अंतर्गत भुगतान कर सकने में समर्थ लोग ही लोक वित्तों का भार सहन करें, विशेषत. उन्होंने भूमि लगान और नमक कर को घटाने के लिए निरंतर आंदोलन किया। उन्होंने द्रुत औद्योगीकरण पर इसलिए बल दिया ताकि राष्ट्रीय आय के

साधनो मे वृद्धि की जा सके। उन्होने सरकारी राजस्व को इस प्रकार से व्यय करने पर बल दिया जिससे समाज के अधिक से अधिक लोगों को अधिक से अधिक लाभ मिल सके। यह ठीक है कि उन्होने कृषक वर्ग अथवा श्रमिक वर्ग की मागो को अलग से नही उठाया, न ही उन्होने जमीन की पट्टेदारी की चालू प्रथा मे किसी प्रकार के सुधार की माग को उठाया और न ही कारखाने के कर्मचारियो की आवश्यकताओ को वाणी दी। यहा तक कि यह तत्व परिवर्ती समय मे भी राष्ट्रवादी आदोलन की एक दुर्बलता का ही सूचक है परतु उनका यह विवेकपूर्ण दृष्टिकोण था क्योकि उनका विश्वास था कि इस देश के समाज के सभी वर्ग ब्रिटिश राज्य मे आर्थिक दृष्टि से विपन्न है और उनके आदोलन के फलस्वरूप होने वाले राष्ट्रीय आर्थिक पुनरुद्धार के व्यापक कार्यक्रम मे सभी का लाभान्वित होना आवश्यक है।[19] उनका विचार था कि जब वे सारे ही राष्ट्र के लिए आर्थिक न्याय और समानता की प्राप्ति के सघर्ष मे सलग्न थे, वे वर्गों मे न्याय और औचित्य के प्रश्न को न ही उठाए तो अच्छा है। उन्होने ऐसा कोई काम न करने का निश्चय किया जिसमे लोगो मे अलगाव की भावना पनपे जब कि समय की माग सभी लोगो को एक राष्ट्र के रूप मे सगठित करने की थी। इस परिप्रेक्ष्य ने, जो उस समय निश्चित रूप से सही था, उन्हे समकालीन यथार्थता के अन्य पक्षो की उपेक्षा करने के लिए ही विवश किया। भारत की अर्थव्यवस्था की दुर्बलताओ की उनके द्वारा विवेकपूर्ण पकड का ही यह परिणाम था कि उन्होने अपना सारा ध्यान, सारा चितन भारत को औपनिवेशिक ढाचे पर ही केंद्रित किया। इस कारण से कम से कम बौद्धिक प्रकाश की प्रथम चकाचौध मे भारत के आतरिक सस्थागत ढाचे की दुर्बलताए उनके ध्यान मे ओझल ही हो गईं और वे यह न सोच सके कि वे राष्ट्रवादी दृष्टिकोण की सीमाओ के अतर्गत दलित वर्गों और समुदायो के हितो के रक्षण के लिए बहुत कुछ कर सकते थे। इसका अर्थ यह कदापि नही कि उन्होन इस दिशा मे कुछ किया ही नही। अपने द्वारा निर्धारित सीमाओ के अतर्गत उन्होन विशेषत किसानो और श्रमिको के कल्याण के लिए आदोलन किया। उदाहरण के रूप मे उन्होने बागान मजदूरो के सरक्षण के लिए व्यापक और प्रबल राजनैतिक आदोलन किया, यहा उनके इस कार्य म भारतीयो के किसी अन्य हित के साथ कोई टकराव नही था क्योकि इन श्रमिको के नियोजक बागान मालिक विदेशी थे। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि 19वी शताब्दी के अत मे कई राष्ट्रवादी नेताओ के दृष्टिकोण मे नया श्रमिक समर्थक रूप दिखाई देने लगा था। किसानो के मामले मे उन्होने भूमि लगानो को कम करने और स्थायी बदोबस्त करने के लिए निरतर और अत मे थोडा सफल आदोलन किया। बहुतो ने जमीदारो द्वारा बहुत ऊचे लगान लगाए जाने के विरुद्ध किसानो को सरक्षण देने की वकालत की।[20] इसके अतिरिक्त उनका विश्वास था कि उनका मुख्य सबध किसानो की दरिद्रता से था, वह किसान उनके सारे आर्थिक आदोलन मे लगभग अदृश्य मानव के रूप मे विद्यमान था। शायद ही कोई राष्ट्रवादी माग थी, जिसका अततः किसानो की सहायता से कोई सरोकार नही था। राष्ट्रवादी नेताओ का विश्वास था कि जिस प्रकार आर्थिक साम्राज्यवाद का प्रमुख शिकार किसान था, उसी प्रकार राष्ट्रीय आर्थिक विकास का वह प्रमुख लाभ प्राप्त करने वाला होगा। कुल मिलाकर राष्ट्रीय

नेताओं का कृषि संबंधी दृष्टिकोण उनकी आर्थिक नीतियों की कदाचित् प्रधान दुर्बलता ही रहा।

इसके साथ ही यह तथ्य भी यहां ध्यान देने योग्य है कि जहां भारतीय नेताओं ने किसानों और श्रमिकों के वर्गगत हितों की वकालत करना स्वीकार नही किया, वहां उन्होंने उनमें से अधिकांश के अपने ही संबंधित वर्ग, शहरी, शिक्षित मध्य वर्ग, के संकुचित हितों के विरुद्ध जाने वाली नीतियों को प्रस्तावित करके एक बहुत ही ऊंचे स्तर की परोपकारिता के सिद्धांत का पालन किया। दूसरे शब्दों मे उनकी आर्थिक नीतियां रोजगार तलाश करने वाले मध्यवर्ग के हितों से प्रेरित नहीं थी। यह परिणाम उनकी आर्थिक नीतियो के अध्ययन का ही निष्कर्ष है। संक्षेप मे कहा जा सकता है कि यद्यपि मध्यवर्ग विदेशी वस्त्रों का प्रधान उपभोक्ता था तथापि उन्होने कपास पर आयात शुल्क हटाने की मांग की उन्होंने उद्योगों के संरक्षण की मांग की। इसका मूल्य भी अंततः इसी वर्ग को चुकाना पड़ता। यद्यपि बढिया दानेदार चीनी का उपयोग इसी वर्ग द्वारा अधिकाशतः किया जाता था तो भी दानेदार चीनी पर लगे कर के औचित्य का इस वर्ग के बहुत सारे नेताओं ने समर्थन ही किया। यद्यपि विदेशी सामान अतेक्षाकृत अधिक सस्ते थे तो भी इन लोगों ने स्वदेशी का प्रचार किया। उन्होने रुपये के अवमूल्यन का स्वागत किया यद्यपि इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि आयातित विदेशी सामान के खरीदार होने के नाते इस वर्ग के सदस्यो को, निश्चित आय वाले शिक्षित कर्मचारी होने के कारण, रुपये के किसी प्रकार के अधिमूल्यन से लाभ और अवमूल्यन से हानि ही संभावित थी। बहुतों ने आयकर का समर्थन और नमक शुल्क का विरोध किया। वे ऊंचे वेतनो मे कटौती और निम्न वेतनभोगियों, चपड़ासियों, सिपाहियों और क्लर्कों, के वेतनों मे वृद्धि चाहते थे। उद्योग की उन्नति और लोक हितकारी गतिविधियों के लिए वे ऊंचे कराधान की वकालत करने को प्रस्तुत थे। उन्होंने मध्यवर्ग को आराम पहुचाने वाले रेलों के विकास का विरोध किया और उसके बदले सिचाई और उद्योग के विकास का पक्ष ग्रहण किया। बहुत सारे राष्ट्रवादियों ने विदेशी पूजी से राष्ट्र के विकास का विरोध किया, यद्यपि इस विकास से शिक्षित भारतीयों के लिए आजीविका के अनेक नए क्षेत्र उपलब्ध होते थे। उन्होने मुकदमेबाजी द्वारा किसानों का सर्वनाश करने वाली ब्रिटिश द्वारा निर्मित कचहरियों का स्थान समझौता न्यायालयो अथवा ग्राम पंचायतो को देने के लिए सक्रिय आंदोलन किया। यह ठीक है कि उन्होंने कुछ एक शहरी मध्यवर्गीय और उच्चवर्गीय लोगों की कुछ एक मांगों को उठाया परंतु भारतीय समाज के सभी वर्गों की आर्थिक मांगों के आधार पर किए जा रहे आंदोलन के एक अंग के रूप में ही यह सब कुछ किया।

इस संबंध में दोनों, भारतीय और विदेशी, लेखकों द्वारा एक गलती प्रायः ही यह की जाती है कि प्रारंभिक भारतीय राष्ट्रवादी लेखकों, लोक नेताओं, पत्रकारों और चिंतकों को भारत के नए वर्गों के और भारतीय राष्ट्रीयतावाद के बौद्धिक प्रतिनिधि के रूप में ग्रहण करने के स्थान पर उन्हें मध्यवर्गीय के रूप में ही देखा जाता है। बुद्धिजीवी होने के नाते उनमें से कुछ एक विभिन्न हितों और वर्गों और समुदायों का भी प्रतिनिधित्व कर सकते थे और उन्होंने ऐसा किया भी, परंतु क्योंकि वे बुद्धिजीवी थे, उनका चिंतन स्वार्थ

से प्रेरित न होकर जागरूकता के स्तर पर विचारधारा से ही प्रेरित था। एक चिंतक, एक दार्शनिक और परिभाषा के व्यापक रूप में एक बुद्धिजीवी अपनी जाति, वर्ग, समाज, जहां वह उत्पन्न हुआ है, के संकुचित स्वार्थों से ऊपर उठ सकता है और प्रायः उठता है। वह अपने निजी स्वार्थों की अपेक्षा वर्ग, समुदाय और राष्ट्र के हितो का ही प्रतिनिधित्व कर सकता है। यह बात द्रुत सामाजिक परिवर्तन के, पुराने सामाजिक. राजनैतिक ढांचे के नष्टभ्रष्ट होने के, नए वर्गों और आर्थिक तथा राजनैतिक पद्धतियो के उदय के समय और भी विशेष रूप से सही हो जाती है। संपूर्ण विश्व के सभी इतिहासों में सर्वोत्तम और सच्चे चिंतकों तथा बुद्धिजीवियो के समान 19वी शताब्दी के भारतीय विचारक और बुद्धिजीवी भी दार्शनिक ही थे, किसी दल अथवा वर्ग के भाड़े के टट्टू नही थे। यह ठीक है कि वे वर्गों और समुदायो से ऊपर नही उठ पाए तथा उन्होंने वर्गों और समुदायो के हितों का विशुद्ध रूप से प्रतिनिधित्व भी किया परंतु यह सब उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से उस वर्ग अथवा जाति के सदस्य होने के नाते अथवा उसके वफादार सेवक होने के नाते नही किया प्रत्युत उन्होंने तो यह सिद्धात के अंतर्गत ही किया। दूसरे शब्दों मे उन्होंने अपना सारा चिंतन व्यक्तिगत रूप मे और राष्ट्रीय दृष्टिकोण से ही किया परंतु ऐसा हुआ कि वस्तुगत रूप से तथा अपनी सचेत धारणाओ के परिप्रेक्ष्य के बाहर उनका चिंतन सामाजिक हित से जुड़ने के साथ-साथ, जैसा कि वास्तव मे हुआ, विशिष्ट दलो व वर्गों के हितों मे भी जुड़ गया। विचारणीय विषय तो यह है कि भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं और लेखकों का चिंतन और उनकी गतिविधि का सुस्पष्ट रूप मे अध्ययन और विश्लेषण किया जाना चाहिए जिसमे कि यह देखा जा सके कि वे किसका प्रतिनिधित्व करना चाहते थे और और किसका प्रतिनिधित्व कर रहे थे। यह किसी राजनैतिक नेता का अथवा व्यवहारशील बुद्धिजीवी का प्रथम किसी एक वर्ग अथवा जाति-विशेष से उद्‌भव मानना और फिर उस पर इस अथवा उस वर्ग अथवा जाति-विशेष का होने का ठप्पा लगाना यांत्रिक भौतिकवाद के बचकाना प्रयोग (समाज शास्त्रीय दृष्टि मे भी) के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। वास्तव मे प्रारंभिक भारतीय राष्ट्रवादी नेता अपने आप मे कोई एक वर्ग नही थे। उनके आर्थिक विचार और नीतियो की प्रतिक्रिया का स्तर तथा अन्यान्य स्तर विचारक के थे न कि किसी संकुचित निजी स्वार्थों वाले शिक्षित समुदाय के।

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ का आर्थिक दृष्टिकोण मूलतः पूंजीवादी था। आर्थिक जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र मे उन्होंने पूंजीवाद के विकास की सामान्यतया और औद्योगिक पूंजीपतियों के हितो की विशेषतया वकालत की। परंतु यदि कभी-कभी ऐसा लगता है कि भारतीय नेताओं ने औद्योगिक पूंजीपतियों पर आवश्यकता से कुछ अधिक ध्यान दिया तो यह इसलिए नही हुआ कि उनका दृष्टिकोण इस वर्ग-विशेष के निहित स्वार्थों तक ही सीमित था। वास्तविकता यह थी कि उनका यह विश्वास था कि आर्थिक क्षेत्र मे देश के पुनरुद्धार का एकमात्र उपाय पूंजीवादी प्रणाली पर औद्योगिक विकास था। अथवा, दूसरे शब्दों में उस समय वस्तुगत रूप से औद्योगिक पूंजीपतियों का हित ही राष्ट्र के प्रमुख हित के साथ मेल खाता था। वे पूंजीपतियों के समर्थक थे क्योंकि उनका विश्वास था कि अपने भाषणों और लेखों में जिस द्रुत औद्योगीकरण की वे रट लगाते आ रहे थे,

उसे यही वर्ग कार्य रूप दे सकता था। वे केवल औद्योगिक पूंजीवादी वर्ग का केवल इस रूप में प्रतिनिधित्व करते थे कि उनका आर्थिक चिंतन और कार्यक्रम पूंजीपतियों के पथ पर व्यवहार में आने वाले औद्योगीकरण की सीमा के बाहर जा ही नही पाता था।

इस संदर्भ मे यह बात स्मरणीय है कि 19वी शताब्दी के अंतिम चरण मे भारतीय पूंजीपति वर्ग, औद्योगिक और व्यापारिक, मूलत: सरकार-समर्थक था और उसने पनपते राष्ट्रवादी आंदोलन को सक्रिय समर्थन नही दिया, कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में कोश की कमी के रोने-चिल्लाने के अभिलेख का अध्ययन यह मानने को विवश करता है। मुख्य वाणिज्य और उद्योग प्रारंभिक राष्ट्रवादियों को वित्तीय सहायता के रूप में एक पाई तक नही देते थे। दादाभाई नौरोजी, ए० ओ० ह्यूम और विलियम वेडरबर्न ने इंग्लैंड मे काम करते समय अपना निजी धन लगाया। सक्रिय रूप मे भारत समर्थक अंग्रेज लोक नेता विलियम डिगबी को अपने जीवन निर्वाह के लिए बहुत सारे भारतीय राजकुमारों के निजी हितों के इंग्लैंड मे प्रतिनिधित्व करने का काम करना पडा। जस्टिस रानाडे, ए० एम० बोस, एल० एम० घोष, पी० एम० मेहता, डी० ई० वाचा, लाजपतराय, मदन मोहन मालवीय और अन्यान्य को अपनी व्यावसायिक आय पर जीवन निर्वाह करना पडा। लोकमान्य तिलक कानून के प्राइवेट छात्रों के लिए खोले गए ट्यूशन के कालेज मे अपनी आजीविका चलाते थे। जी० के० गोखले दक्षिण शिक्षा समिति के सदस्य के रूप मे थोडा-सा ही वेतन पाते थे। सुरेंद्रनाथ बैनर्जी एक प्राइवेट कालेज चलाते थे। जी० सुब्रह्मण्य और विपिनचन्द्र पाल पत्रकार के रूप में काम करते थे। पाल महोदय को को तो तुच्छ वेतन मिलता था। इस युग मे राष्ट्रवादी पत्रकार सच्चे अर्थो मे वह व्यक्ति होता था, जो मामूली से वेतन पर और प्राय: भूखे पेट राष्ट्रीय विचारो का प्रचार करता रहता था। इस अवधि मे कांग्रेस द्वारा इकट्ठी की गई विपुल धनराशि केवल राष्ट्रीय विचारधारा के समर्थक महाराजा दरभंगा जैसे राजकुमारो और बडे-बडे जमीदारो से ही प्राप्त हुई। बम्बई सूती कपडा उत्पादक मिलो के प्रवक्ताओ ने यहा तक कि 1905 मे भी स्वदेशी आदोलन को समर्थन देने से इनकार कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरात ही भारतीय पूंजीपति वर्ग राष्ट्रवादी आदोलन का उल्लेखनीय परिमाण मे समर्थन और राष्ट्रवादी नेताओ तथा दलों को वित्तीय सहायता देने लगा।

यहा हम इस तथ्य को फिर दोहराना चाहेगे कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी आंदोलन एक ऐसा आंदोलन था जिसका संचालन राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी, यदि आप कहना चाहे तो दार्शनिक, कर रहे थे। उन्होंने पूंजीवादी दृष्टिकोण इसलिए नही अपनाया कि इसके पीछे उनके संकुचित स्वार्थ निहित थे प्रत्युत इसके पीछे उनका यह विश्वास काम कर रहा था कि पूंजीवादी विकास ही एक ऐसा मार्ग था कि जिस पर चलकर भारत आर्थिक दृष्टि से विकसित और संपन्न हो सकता था। बुद्धिजीवी होने के नाते वे चालू सुस्थापित आर्थिक सिद्धांत और पश्चिमी व्यवहार के ढांचे के अंतर्गत ही कार्य करते रहे परंतु इस समझ के साथ उन्होंने राष्ट्रीय क्रांतिकारी स्थिति अपनाई जिसका स्वाभाविक परिणाम भारत में साम्राज्यवाद के वर्तमान ढांचे को उखाड़ फेंकना और इस रूप में देश की आर्थिक गति-हीनता को समाप्त करना था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारतीय सरकारी अधिकारियो

के चितन की अपेक्षा इन नेताओं के चिंतन में समकालीन यथार्थता अधिक झलकती थी। ब्रिटिश भारतीय आर्थिक नीतियों की अपेक्षा इन नेताओं की आर्थिक नीतियो में भारतीय समाज के सभी वर्गों के हितो को प्रतिनिधित्व प्राप्त था। यह सत्य है कि उनका पूजीवादी वर्ग को भारत का आर्थिक कर्णधार मानने का विश्वास आर्थिक दृष्टि से उनकी एक बहुत बडी दुर्बलता सिद्ध हुआ। यह एक ऐसा पक्ष था जिसने प्रारभिक भारतीय नेताओं को राजनैनिक समर्थन के लिए जनता के कुछ एक उच्च और मध्यम वर्ग पर निर्भर रहने को विवश कर दिया। यही कारण था कि इस अवधि मे राष्ट्रीय आदोलन मे न गहराई आ पाई और न ही जन जन मे उसे व्यापक समर्थन मिला, अत वह अप्रभावी बन गया।

समय आने पर आर्थिक आदोलनो ने भारतीय राष्ट्रवादी नेताओ को राजनैतिक मागे पेश करने को प्रेरित किया क्योकि वे अब अनुभव करने लगे थे कि राजनैतिक शक्ति प्राप्त होने पर ही आर्थिक नीतियो को भली प्रकार लागू किया जा सकता है। वे अब स्वतन्त्र औद्योगिक अर्थ व्यवस्था के, विकास पर पडने वाले प्रभाव की दृष्टि से ही राजनैतिक प्रश्नो पर विचार करने लगे। हा, उनकी राजनैतिक रिआयतो की माग उनके आर्थिक अभिप्राय मे हटकर ही उठाई गई। उनकी प्रशासन मे सुधार और राजनैतिक सत्ता मे भागीदारी की मागो का एक महत्वपूर्ण कारण प्रशासन को आर्थिक विकास और लोककल्याण का एक बेहतर साधन बनाने की इच्छा थी। जैसा कि हम पहले दिखा चुके है कि लगभग प्रत्येक महत्वपूर्ण आर्थिक प्रश्न को राष्ट्रवादी नेताओ के एक वर्ग ने अथवा दूसरे वर्ग ने देश की राजनैतिक दृष्टि मे पराधीनता की स्थिति के साथ अथवा राजनैतिक स्वशासिता के साथ अथवा कम-से-कम राजनैतिक अधिकारो मे भारतीयो की भागीदार बनने की इच्छा के साथ जोड दिया।[21] अत मे बहुत सारे राष्ट्रीय नेता इस निष्कर्ष को निकालने पर विवश हो गए कि क्योंकि ब्रिटिश भारतीय प्रशासन केवल शोषण के कार्य की पूर्ति का साधन था,[22] अत देश तभी आर्थिक दृष्टि मे विकसित हो सकता है जब विशुद्ध ब्रिटिश शासन का स्थान एक ऐसी राजनैतिक व्यवस्था ले जिसमे भारतीय महत्वपूर्ण और प्रभावी भूमिका निभाए।

हमारे अध्ययन के अतर्गत अवधि मे यदि राष्ट्रवादी नेताओ के पास राजनैतिक अथवा आर्थिक लाभों के रूप मे दिखाने के लिए कुछ नही था तो इसका कारण कदाचित् उनके राजनैनिक कार्य और आदोलन का एक अपना ही ढग था। इस अवधि मे राष्ट्रवादी गतिविधि का एक महत्वपूर्ण पक्ष, विरल अपवादो को छोड़कर, लोकप्रिय आदोलनो और गतिविधियो तथा राजनैनिक सघर्षों का अभाव था, जिनके बिना प्रस्तावो, स्मरण-पत्रों, समाचार-पत्रों के सपादकीयो और लेखों का कोई राजनीतिक प्रभाव ही नही पड सकता था। आर्थिक प्रश्नों की गहरी और यहा तक कि बुद्धिमत्ता पूर्ण जानकारी के बावजूद भारतीय राष्ट्रवादी नेता भारत सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में यदि सफल नही हो पाए अथवा राष्ट्रवादी आदोलन को विशेष शक्ति नही दे पाए तो इसका कारण उनकी आर्थिक नीतियों और मागों के पीछे जनता के आदोलन और संघर्ष का अभाव था। उनकी असफलता इस दोहरे विश्वास को न तोड़ने मे निहित थी कि ब्रिटिश राज्य अपराजेय है और पूजीवादी उत्पादन शैली एकमात्र संभव उपाय है। ब्रिटिश सत्ता

की पूर्ण शक्ति को चुनौती देने का आत्म विश्वास और सामर्थ्य जुटाने में उन्हें दशाब्दियां लग गईं। उस समय तक वे ब्रिटिश भारतीय प्रशासन में सुधार की बात कहते थे जिससे कि उसे भारतीय आर्थिक विकास का एक अच्छा साधन बनाया जा सके। उन्होंने ब्रिटिश शासकों की खुशामद की, उन पर प्रभाव डालने की चेष्टा की परंतु उखाड़-फेंकने की नही सोची। भारतीय नेता इसके अतिरिक्त स्वयं अपने और विशाल जनता के बीच की गहराई खाई को पाट नही सके अथवा जनता के विशाल समुदाय को राजनैतिक गति-विधि मे अपना सक्रिय साथी नही बना सके। परंतु उनके पास मनुष्य के मन का अध्ययन करने की प्रतिभा थी। अतएव उनकी ठोस उपलब्धियो के अभाव का कारण सही आर्थिक जानकारी का अभाव और नीतियां न होकर राजनैतिक जन समर्थन का अभाव ही था। यह सुझाया जा सकता है कि यह वस्तुत: राजनैतिक जन समर्थन था न कि अपेक्षाकृत अच्छी आर्थिक जानकारी अथवा नीतिया अथवा उनकी वकालत थी, जो इस अध्ययन के अंतर्गत बाद के समय के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को हमारे अध्ययन के अतर्गत-अवधि के आदोलन से भिन्न करता है। इस प्रारंभिक काल में ही ब्रिटिश प्रशासन की आर्थिक परिधि की राष्ट्रवादी आलोचना की प्रमुख रूपरेखा का भली प्रकार और वैज्ञानिक ढग से निर्धारण किया गया। परवर्ती राष्ट्रवादियो को तो इस पर बहुत निर्भर करना पडा। निस्संदेह उन्होने पुराने आर्थिक सत्यो और तर्कों का व्यापक परिमाण मे प्रचार किया। उन्होने पुराने सत्यों मे राजनैतिक जीवन फूका परतु फिर भी यह कहा जा सकता है कि वे इनसे आगे नही बढ पाए।

महत्वपूर्ण विषय यह है कि उन्होने मुख्य आर्थिक प्रश्नों को इस ढंग से पेश किया कि उससे ब्रिटेन और भारत के आर्थिक हितों के मध्य सघर्ष उजागर हो गया। उन्होने इस तथ्य का निर्देश किया कि भारतीय यथार्थता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक और आर्थिक पक्ष यह था कि भारत आर्थिक शोषण के लिए विदेशी शक्ति द्वारा शासित किया जा रहा था। उनके अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था का इग्लैंड तथा यूरोपीय राष्ट्रो की अर्थव्यवस्था से भिन्न पक्ष सक्षेपत यह था कि इस देश की अर्थव्यवस्था और वित्त विदेशी शक्ति द्वारा नियंत्रित है। उन्होने आर्थिक समस्या के समाधान के लिए स्पष्टत ऐसे सुझाव दिए, जिन्हे ब्रिटिश सरकार कभी स्वीकार नही कर सकती थी, इस रूप मे उन्होंने इस तथ्य को सामने रखा कि राष्ट्रीय आर्थिक मागो की पूर्ति के लिए तथा नीतियो को लागू करने के लिए राजनैतिक स्वायत्तता आवश्यक थी। उन्होने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जिसमे शासक और शासित के बीच टकराव इस प्रकार से बढता गया कि राज-नैतिक सत्ता अथवा स्वतंत्रता के लिए सघर्ष अनिवार्य हो गया। एक बार विदेशी शासको और राष्ट्रवादी आंदोलन कर्त्ताओं के बीच जब विवाद के मुख्य विषय इस रूप मे प्रस्तुत किए गए, जब एक बार भारत व ब्रिटिश शासन के बीच अंतर्विरोध स्पष्ट हो गया तो सही रणनीति अपनाना तो समय की बात ही रह गई। वास्तविक राजनैतिक संघर्ष बाद में आ सकता था और आया। शक्तियों और रणनीति को समझने की गलतियो को प्रमुख संबंधित विषयों के संदर्भ में ठीक किया जा सकता था।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इस युग के लगभग सभी राष्ट्रवादी नेताओं की राज-

नैतिक गतिविधि जनता को सावधानी के साथ राजनैतिक शिक्षण देने तथा उन्हें आधुनिक राजनैतिक और राष्ट्रवादी चिंतन तथा गतिविधि के योग्य बनाने के ही उद्देश्य को लिए हुए थी। भारतीय नेता यह भली प्रकार समझते थे कि उनका कार्य भावी राजनैतिक संघर्ष के लिए भूमिका तैयार करने का ही था। उदाहरणार्थ डी० ई० वाचा को 12 जनवरी 1905 को लिखे एक पत्र में दादा भाई नौरोजी ने लिखा—

कांग्रेस ने पनपती पीढ़ी के मन मे स्वयं अपनी मंदगति और अप्रगतिशीलता के विरुद्ध असंतोष और अधैर्य के जो भाव उत्पन्न किए हैं, वह अपने आप में एक उपलब्धि है। यह उसका अपना ही विकास और प्रगति है···कार्य अपेक्षित क्रांति को सिरे चढ़ाना है, भले ही वह हिंसापूर्ण हो अथवा शांतिपूर्ण, क्रांति के स्वरूप का निर्धारण ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जनता की बुद्धिमत्ता या मूर्खता पर निर्भर रहेगा।[23]

इस युग के नेताओं की उपलब्धिया बहुत हैं। हां, इसके लिए तात्कालिक लाभों को सफलता का मापदंड नही बनाना होगा। उन्होंने भारत की जनता को सामान्य आर्थिक हितों के प्रति जागरुक किया। उन्होने भारतीयों को सामान्य शत्रु से परिचित कराया और इस प्रकार एक सामान्य राष्ट्रीयता की भावना को सुदृढ बनाने मे सहायता की। उन्होंने जनता को अपनी आर्थिक दुर्दशा और अपमानित स्थिति से तथा उसमे सुधार की संभावना से परिचित कराया। उन्होंने अस्पष्ट आर्थिक आकाक्षाओ को एक सुस्पष्ट राष्ट्रवादी स्वरूप दिया तथा आर्थिक विकास के विचारों का प्रचार किया। उन्होने लोगों के मन मे राष्ट्रीय संपत्ति में वृद्धि करने की लालसा उत्पन्न की और इसके लिए उनके सामने आर्थिक विकास का सुनियोजित कार्यक्रम प्रस्तुत किया तथा आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मार्ग की आर्थिक और राजनैतिक बाधाओं को और उन पर विजय पाने के उपायों का निर्देश किया। इन महान कार्यों को पूरा करने मे दोनो, मृदु प्रवृति और उग्रवादी, नेताओ ने समान रूप से ही योगदान दिया। दोनों ने ही आर्थिक विश्लेषण की उच्च स्तर की क्षमता और राष्ट्रभक्ति का प्रदर्शन किया। हमारा यह निष्कर्ष निकालना गलत नही होगा कि इतनी असफलताओं के बावजूद उन्होने राष्ट्रीय आदोलन के विकास के लिए सुदृढ़ आधारशिला रखी। इस प्रकार वे आधुनिक भारत के निर्माताओं में गौरवमय स्थान रखते हैं। उस युग के नेताओं मे से ही एक के निम्नलिखित वक्तव्य से बढ़कर कदाचित् इस युग के महापुरुषों के कार्यों का अधिक उत्तम मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है :

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम देश की प्रगति की उस स्थिति में हैं, जहां हमारी उपलब्धियों का छोटा दिखाई देना स्वाभाविक है तथा हमारे लिए बारबार दुखदायक असफलता का मुंह देखना भी स्वाभाविक है। इस संघर्ष में यही हमारी नियति है। हम जब सौंपे गए कार्य को निभा चुकते हैं तो हमारा उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। अब आगे का कार्य देश की भावी पीढ़ी को दिया जाना चाहिए ताकि वे सफलतापूर्वक देश की सेवा कर सकें। हम वर्तमान पीढ़ी के लोगों को प्रमुख रूप से अपनी असफलताओं के साथ ही अपने देश की सेवा करने में संतुष्ट होना चाहिए। यह कहना कितना ही कठिन क्यों न हो, हमारी इन असफलताओं

से भावी पीढ़ी को वह शक्ति मिलेगी जिससे वह महान लक्ष्यो को प्राप्त कर सकेगी।[24]

संदर्भ

1. उदाहरण के रूप में देखिए, नौरोजी, एसेज, पृ० 26-7, और रानाडे, एसेज, पृ० 23, 65-6, 118-9
2. उदाहरणार्थ देखिए, नौरोजी, एसेज, पृ० 37, 131-5, 'दि एक्सीजेंसीस आफ प्रोग्रेस इन इंडिया', जे० पी० एस० एस० अप्रैल 1893 (खंड XV संख्या 4) पृ० 15-6
3. यहा तक कि 1904 मे वित्त सदस्य एडवर्ड ला ने उस समय के नेताओ मे सर्वाधिक मृदुभाषी जी० के० गोखले की सतत आलोचना के विरुद्ध उत्तेजित होकर इस प्रकार से चीखे चिल्लाए की : 'जब वह सदन में अपना स्थान ग्रहण करते हैं तो वह कदाचित अचेतन रूप से हैं, वे आदतन विलाप करने वाले की भूमिका और आचरण करने लगते हैं सरकार के दोषो पर उनका शोक और रुदन इतना अधिक करुणापूर्ण होता है मानो उन्होने लंबे अभ्यास और प्रशिक्षण द्वारा ऐसा किया है (एल० सी० पी० 1904 खंड XLIII पृ० 542)
4. उदाहरणार्थ, दादा भाई नौरोजी ने लिखा 'हमे बार बार यह याद दिलाना सर्वथा निरर्थक और ओछापन है कि ब्रिटिश राज्य ने अराजकता के बाद व्यवस्था ला दी है इसे देश के अनुवर्ती दोषो का तथा देश के भौतिक और नैतिक दिवालियेपन का स्थाई बहाना नही बनाया जा सकता आज के भारतीयो ने वह अराजकता न देखी है और न ही वह उसका अनुभव करते हैं भले ही वे उसे समझते हैं और व्यवस्था लाने के लिए आभार भी प्रकट करते हैं परतु साथ ही वर्तमान मे वे निकासी, दुर्गति, और विनाश ही देख रहे हैं तथा उस पर विलाप कर रहे हैं (पावर्टी, पृ० 219) इसी प्रकार आर० सी० दत्त ने लिखा : 'ब्रिटिश शासन ने शांति अवश्य स्थापित की है परतु ब्रिटिश प्रशासन ने भारत मे राष्ट्रीय सपदा के स्रोतो को उन्नत अथवा विस्तृत नही किया है (ई० एच० II पृ० VII) और केसरी ने अपने 31 मार्च 1903 के अक मे लिखा : 'भारतीयो में एकता और समानता है परतु यह उसी प्रकार की एकता और समानता है जिस प्रकार की समानता एक स्वामी के सेवको मे पाई जाती है अथवा एक गडरिए की भेडो के समुदाय मे पाई जाती है हमारे शासक हमे उत्तरदायी कार्य सौंपने को अथवा व्यापार और उद्योग मे हमे साझीदार बनाने को तैयार नही (आर० एन० पी० बंब, 4 अप्रैल 1903), और देखिए प्रमाण के लिए, नौरोजी, पावर्टी, पृ० 209-12, 224-8 579, 652-3, मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 443, 447 पर उद्धृत, सी० पी० ए०, पृ० 22 पर, बंगाली, 10 मई 1884, मराठा के 6 जून 1886 के अंक में ए० एम० राय का लेख; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 762; आर० एन० मुधोलकर, इंडियन पालिटिक्स, पृ० 37; जी० एस० अय्यर, ई० ए०, पृ० 330.
5. यह पर्याप्त रोचक तथ्य है कि समझौता पसंद नेताओ ने ही नहीं प्रत्युत अमृत बाजार पत्रिका और बी० जी० तिलक ने भी भारत के उद्देश्य के लिए ब्रिटिश जनता और संसद का हृदय जीतने की आवश्यकता अनुभव की. उदाहरण के लिए देखिए, ए० बी० पी० 8 अक्तूबर 1874,

26 अप्रैल 1883; तिलक, रिप० आई० एन० सी० 1904 पृ० 150-1, और प्रधान ऐंड भागवत, पूर्वोद्धृत, पृ० 80.

6. यहां यह ध्यान में रखना चाहिए कि विभिन्न नेताओं ने यह धारणा को विभिन्न अवसरों पर और विभिन्न प्रश्नों के संबंध में अपनाई. उदाहरण के लिए आर० सी० दत्त के लिए संक्रमण 1897-1901 की थोड़ी सी अवधि में अर्थात 'इंग्लैंड और इंडिया' ग्रंथ के तथा इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया के प्रथम खंड के वर्षों की मध्यावधि मे आया.

7. नौरोजी, पावर्टी, पृ० V, VII, 211, 214, स्पीचेज, पृ० 142, 227-8, 276-8, 328, 396, 19 जनवरी 1898 के स्टेट्समैन में, 7 अगस्त 1903 के 'इंडिया' में पृ० 67; जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 674-7; राय, पावर्टी, पृ० 37-9; पी० मेहता, स्पीचेज, पृ० 815; जी० एस० अय्यर, ई० ए० शीर्षक (प्रथम) पृ० तथा पृ० 116-7, 123-5, 239, 329. ईस्ट ऐंड वेस्ट, 1903 (खंड II) पृ० 888; दत्त, ई० एच० I पृ० XV ई० एच० II पृ० XVIII (वस्तुतः उनके 'इकोनामिक हिस्टरी' ग्रंथ के दोनों खंडों में यह भावना अन्तःप्रविष्ट है); प्रधान ऐंड भागवत; पूर्वोद्धृत, पृ० 72 पर तिलक; एल० एम० घोष, सी० पी० ए०, पृ० 761; गोखले, स्पीचेज, पृ० 1084, 1156-7; 30 मई और 6 जून 1886 के मराठा में ए० एल० राय का लेख समाचारपत्रों के लिए देखिए, हितेच्छु, 25 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 3 अप्रैल 1880); ए० बी० पी० 19 अक्तू० 1882, 4 जून 1883, 7 अक्तू० 1886, 12 फर० 1892, 20 मई 1896; मराठा, 21 दिस० 1884, 30 दिस० 1894, 30 अक्तू० 1904; आनंद बाजार पत्रिका, 31 मार्च (आर० एन० पी० बंग०, 5 अप्रैल 1884); नवविभाकर, 21 अप्रैल (वही, 26 अप्रैल 1884); साधारणी, 15 जून (वही, 21 जून 1884); समय, 30 नव० (वही, 5 दिस० 1885); शमसुल अखबार, 12 अप्रैल (आर० एन० पी० एम०, अप्रैल 1886); खसमुल अखबार, 17 जून (वही, जून 1886); धूमकेतु, 20 मई (आर० एन० पी० बंग०, 28 मई 1887); बंगवासी, 30 जून (वही, 7 जुलाई 1888); 14 जून (वही, 21 जून 1890); तोहफा ए-हिंद, 13 अगस्त, (आर० एन० पी० एन०, 19 अगस्त 1891); हितकारी-तिमिरहित (आर० एन० पी० बंग०, 17 दिस० 1892); बगवासी, 1 सित० (वही, 8 सित० 1884); पूना वैभव, 15 मार्च (आर० एन० पी० बंब, 21 मार्च 1896); जमी उल उलूम, 14 अप्रैल (आर० एन० पी० एन०, 21 अप्रैल 1896); इंदु प्रकाश, 8 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 18 अगस्त 1898 बंगाली, 9 अप्रैल 1900; केसरी, तारीख नहीं है (आर० एन० पी० बंब० 18 जन० 1902); इंडियन पीपुल 27 फर० 1903; हिंदू, 13 अक्तू० 1903; हिंद विजय 8 फर० (आर० एन० पी० बंब 11 फर० 1905).

8. उदाहरणार्थ, अरुणोदय, 15 मई (आर० एन० पी० बंब, 21 मई 1881); ए० बी० पी०, 19 अक्तू० 1882, 13 फरवरी 1894; सोम प्रकाश, 21 अगस्त (आर० एन० पी० बंग०, 26 अगस्त 1882); हिंदी प्रदीप, जनवरी-फरवरी (आर० एन० पी० एन०, 8 जून 1901); सी० वाई० चिंतामणि, 'एच० आर०' में, फरवरी 1903, पृ० 233.

9. ए० ओ० ह्यूम, 'ए स्पीच आन दि इंडियन नेशनल कांग्रेस ऐंड इट्स ओरिजिंस, एम्स, ऐंड ओब्जेक्ट्स' 30 अप्रैल 1888 को इलाहाबाद की जनसभा में दिया गया भाषण, पृ० 16.

10. फ़िरोजशाह मेहता ने इस धारणा को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया. उन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन को ब्रिटिश शासन के बनिया वाले भाग से अधिक परिष्कृत बनाने का एक प्रयास बताया. (स्पीचेज, पृ० 483).

11. 1903 में कांग्रेस के अध्यक्ष लालमोहन घोष ने इसे बड़े ही रोचक ढंग से निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया : 'हमें क्या यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या हम उस नीति पर विश्वास करें जिसने बहुत वर्षों पूर्व हमारे स्वदेशी उद्योगों की हत्या कर दी है, अभी कल की ही बात है जिसने बिना किसी प्रकार का संकोच किए उदार प्रशासन के अंतर्गत हमारे सूती उत्पादों पर भारी उत्पादन कर लगा दिए हैं, जो निरंतर 200 लाख पौंड की सीमा तक प्रति वर्ष हमारे राष्ट्रीय संसाधनों की निकासी कर रही है और जो हमारी कृषक जनता तथा कृषि उत्पादनों पर भारी कर थोप कर अतीत में सर्वथा अज्ञात विषम अकालों की तीव्रता व्यापकता और निरंतरता में वृद्धि कर रही है ? क्या हम विश्वास करें कि इन परिणामों को लाने के लिए उत्तरदायी विविध प्रशासनिक कृत्य ब्रिटिश राज्य के लोकोपकारी स्वरूप से ही सीधे प्रेरित थे ? (सी० पी० ए०, में पृ० 743 पर).
12 ब्रिटिश दृष्टिकोण के लिए देखिए, (जार्ज हैमिल्टन के विचार) स्टोक : पूर्वोद्धृत, पृ० 300 पर. कर्जन, स्पीचेज I, पृ० VI भारतीय दृष्टिकोण के लिए देखिए, नौरोजी, स्पीचेज, पृ० 123, 332. एसेज, पृ० 36, पावर्टी, पृ० 216 सी० पी० ए०, पृ० 181 पर; आर० बी० घोष, स्पीचेज, पृ० 152; ए० एम० बोस०, सी० पी० ए०, पृ० 436, 'दि ब्रोकेन प्लेज ऐंड इट्स कांसीक्वेंसेज' जे० पी० एस० एस०, जुलाई 1879 (खंड II संख्या-1) पृ० 43, 46; मराठा, ' नव ". 1881; दत्त : इंग्लैंड ऐंड इंडिया, पृ० 118.
13. उदाहरण के रूप मे देखिए, 'गोखले, स्पीचे, पृ० 1079.
14. उदाहरणार्थ कर्जन, स्पीचेज II पृ० 91 और स्पीचेज III पृ० 98; जे० स्ट्रेची · इंडिया (1903), पृ० 495-6; चिसनी, पूर्वोद्धृत, पृ० 390, 394, 398-9. इस दृष्टिकोण के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, स्ट्रोक्स : पूर्वोद्धृत, पृ० 65 और अध्याय 4. जेम्स मिल के दृष्टिकोण के लिए देखिए, डिगबी, पूर्वोद्धृत, पृ० 264. डफरिन के अनुसार भारत में ब्रिटिश राज्य का आधार 'हमारी सेनाएं हैं जो अशिक्षित और उदासीन जनता की पराधीनता को बनाए हुए हैं और जनता के शेष वर्ग मे यह सार्वदेशिक भावना जड पकडे हुए है कि हमारे प्रशासन मे कितनी ही त्रुटियां क्यो न हो, वह न्यायपरायण, निष्पक्ष और लाभकारी है और इसका एकमात्र विकल्प या तो मुसलमानों की क्रूरता और अराजकता को वापस लाना होगा अथवा रूस की भारत पर विजय' (डफरिन टु सेक्रेटरी आफ स्टेट, 9 जुलाई 1886 'डफरिन पेपर्स') इसी प्रकार 30 दिसबर 1897 के अंक में 'टाइम्स' ने यह शेखी बघारी कि उनकी अपनी जाति के इतिहास में ऐसी कोई उपलब्धि नही जिसमे अपनी भारत सरकार की अपेक्षा ब्रिटिश जनता किसी अन्य में अधिक गर्व का अनुभव करे. किसी और मे ये सभी गुण, साहस, न्याय, दूरदृष्टि तथा आत्म त्याग, सर्वोत्तम रूप में निरंतर और गौरव के साथ दृष्टिगोचर नही हुए. ···किन्ही विशेष बातों के लिए कितनी भी आलोचना क्यों न की जाए, मुख्य तथ्यो को चुनौती नही दी जा सकती यह सब लिखने के उपरांत उसने घोषणा की : 'भारत में संसदीय सरकार के नियम लागू नही हो सकते उसने लिखा कि ऐसा करना अराजकता को बुलावा देना हैं भारत की जनता किसी भी रूप में स्वशासन के सर्वथा और पूर्णतया अयोग्य है और वे अपने देशवासियों द्वारा शासित होना कभी स्वीकार नहीं करेंगे.'
15. 1887 में जे० बी० पीले ने डफरिन को लिखे एक पत्र में टिप्पणी की : 'वास्तव में भारत के लोगों को ऐसी कोई शिकायत नहीं है कि जिससे क्षुब्ध होकर वे शांति और चैन को परे फेंक दें तथा शासकों के विरुद्ध तलवार निकाल कर खड़े हो जाएं (2 अक्तूबर 1887, डफरिन पेपर्स)

प्रारंभिक राष्ट्रवादियों द्वारा किए गए आर्थिक आंदोलन ने इस शिकायत की भावना को ही जन्म दिया

16. हसार्ड, चौथी सिरीज खंड XLV, 26 जनवरी 1897 लगभग 534. भारत सचिव जार्ज हैमिल्टन ने दादाभाई नौरोजी को 6 दिसंबर 1900 को लिखे एक पत्र में शिकायत की : 'आप स्वयं अपने को ब्रिटिश राज्य का सच्चा समर्थक घोषित करते हैं परंतु उस राज्य की व्यवस्था के लिए उसके साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी स्थितियो और परिणामो की आप निंदा करते हैं (मसानी : पूर्वोद्धृत, पृ० 459 पर) 30 दिसंबर 1897 के अंक में टाइम्स ने इसी प्रकार की भावना व्यक्त की लिखा, राष्ट्रवादी नेताओ के प्रति ब्रिटिश के शत्रुतापूर्ण व्यवहार के लिए देखिए, एच० एल० सिंह पूर्वोद्धृत, अध्याय 4 तथा देखिए डब्ल्यू० एस० सितो कर, दि नेटिव प्रेस आफ इंडिया, एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू खंड VII, 1889 पृ० 62 रीस, पूर्वोद्धृत, अध्याय 10 और पृ० 286-8

17 उन्होने आगे कहा · 'वे सदैव ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादारी का दम भरते हैं परंतु जो प्रस्ताव वेपारित करते हैं, उनसे स्पष्ट है कि वे इस सरकार के लिए काम करना असंभव बना देना चाहते हैं' (पूर्वोक्त स्थल, पृ० 385 (पृ० 432-7 भी देखें

18 डफरिन द्वारा 17 मई 1886 को भारत सचिव को लिखा पत्र, डफरिन पेपर्स कुछ महीनो के उपरात 7 अगस्त 1889 को ए० ओ० ह्यूम को लिखे पत्र मे डफरिन ने स्पष्ट शब्दो मे कहा : कि वह भारतीय समाचारपत्रो की स्वतंत्रता की एक सीमा निर्धारित करना चाहते हैं इस तथ्य को दृढ़तापूर्वक कहने के उपरात कि ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्र प्रेस इस आवश्यक उद्देश्य के लिए दिया है कि वह सरकार के कार्यों की यथोचित आलोचना और समर्थन करे तथा जनता की भावनाओ और आकाक्षाओ को अभिव्यक्ति दे, उन्होने प्रेस से अपने निम्नलिखित दो दायित्वो के निभाने की अपील करते हुए कहा 'प्रथम सरकार की आलोचना यथार्थ तथ्यो पर आधृत होनी चाहिए, सरकार के कल्पित अभिप्रायो अथवा अनुमान पर आश्रित धारणाओ को लेकर किसी प्रकार की निंदा कदापि उचित नही द्वितीय सरकारी नीति की किसी प्रकार की आलोचना क्यो न हो, ब्रिटिश प्रशासन पर इस देश मे अथवा इग्लैड मे यह अभियोग नही लगाया जाना चाहिए कि वह यह सब कुछ द्वेषपूर्ण भावनाओ से प्रेरित होकर कर रहा है' (डफरिन पेपर्स)

19 उदाहरण के रूप मे दादाभाई नौरोजी ने 1893 में भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस मे सभापतिपद से भाषण करते हुए इस तथ्य पर बल दिया उन्होने कहा मैं इस बात को मानता हू कि हमे यह पूर्णत विश्वास करना चाहिए कि हम जो भी राजनीतिक व राष्ट्रीय लाभ प्राप्त करें, किसी न किसी प्रकार से समाज के सभी वर्ग उनसे लाभान्वित होगे प्रत्येक वर्ग को मिलने वाले लाभ का रूप भिन्न भिन्न होगा हम सबके हित समान हैं और हम एक ही दिशा में यत्नशील हैं हम इकट्ठे ही डूबेंगे और इकट्ठे ही तरेंगे ··यदि देश सपन्न है और एक को यदि जीवन के एक क्षेत्र में उन्नति का अवसर मिलता है तो दूसरे को दूसरे क्षेत्र में मिलेगा. जैसे कि हमारे यहां देश में यह उक्ति प्रचलित है 'यदि कुएं में पानी होगा तो कुंड में पहुंचेगा ही' यदि हमारे पास समृद्धि का कुआ है तो हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपना भाग ले सकेगा परंतु यदि कुआ ही सूखा है तो हम सबको बिल्कुल प्यासा रहने पर विवश होना पड़ेगा (इन सी० पी० ए०, पृ० 180-1 पर). और देखिए, जोशी, पूर्वोद्धृत, पृ० 748-9; आर० एम० सयानी, सी० पी० ए०, पृ० 309.

20. यहां यह उल्लेखनीय है कि 1920 और 1940 के बीच की अवधि के दौरान अधिक प्रबलता के

साथ सक्रिय आदोलन के लिए अखिल भारतीय काग्रेस द्वारा ग्रहण की गई भूमि लगानों को कम करने की माग ही कृषि सबधी एकमात्र माग थी 1936 तक ऊचे लगान से किसानो के सरक्षण के प्रश्न को अलग अलग निजी तौर पर काग्रेसियो के प्रयत्नो पर ही छोड़ रखा था. 1936 मे काग्रेस ने पहली बार काश्तकारी पद्धति और भूमि लगान पद्धति मे मौलिक परिवर्तन की माग की. उन्होने कृषि सबधी करों और लगानो मे छूट देकर छोटे किसानो की तत्काल सहायता करने की पहली बार ही माग की(इडियन नेशनल काग्रेस, रिजाल्यूशस आन इकोनामिक पालिसी ऐड प्रोग्राम, 1924-54, नई दिल्ली, 1954 पृ० 13-3) गाधी जी द्वारा प्रस्तुत ग्यारह सूत्रो मे कृषि सबधी एकमात्र माग थी, सविनय अवज्ञा आदोलन समाप्त करने के मूल्य के रूप मे किसानो को भूमि लगान मे कटौती के रूप मे राहत (वी० पट्टाभि सीतारमैया . दि हिस्टरी आफ इडियन नेशनल काग्रेस 1885-1935 मद्रास 1935, पृ० 619)

21 यह पर्याप्त रोचक है कि आर० सी० दत्त ने कम से कम एक भारतीय को वायसराय की कार्यकारिणी परिषद मे सम्मिलित करने का तथा उसे भूमि लगान, उद्योग और कृषि विभाग सौपने का अनुरोध किया (सी० पी० ए०, पृ० 497-8)

22 इडियन पीपुल, 27 फरवरी 1903 अन्यान्य सदर्भों के लिए देखिए, पीछे पृ० 7 पर पादटिप्पणी स० 79

23 मसानी पूर्वोद्धृत, पृ० 441 पर इसी प्रकार पूना सार्वजनिक सभा द्वारा बडी मेहनत से तैयार किए गए ज्ञापन पर सरकार की दो पक्तियो के उत्तर पर गोखले ने निराशा प्रकट की तो जस्टिस रानाडे ने समझाते हुए कहा आप अपने देश के इतिहास मे अपने स्थान को क्यो नही समझते ये ज्ञापन नाममात्र के लिए सरकार को दिए जाते हैं, वस्तुत ये जनता को सबोधित है ताकि वे यह समझ सके कि इन मामलो मे उन्हे क्या विचार करना है किसी प्रकार के सफल परिणामो की अपेक्षा किए बिना ही इस कार्य को वर्षों तक चलाना चाहिए क्योकि इस देश मे इस प्रकार की राजनीति सर्वथा एक नई वस्तु है गोखले, स्पीचेज, पृ० 929 पर).

24 गोखले, स्पीचेज, पृ० 1113.

ग्रंथसूची

नोट : संक्षेप की दृष्टि मे केवल ग्रंथ मे उद्धृत स्रोतो का ही उल्लेख किया जा रहा है। पुस्तक मे प्रयुक्त सक्षिप्त शीर्षक प्रत्येक शब्द के पूरे शीर्षको के पश्चात कोष्ठक मे दे दिए गए है

प्राथमिक स्रोत

(क) पुस्तकें

ऐबस्ट्रैक्ट्स आफ दि प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर जनरल आफ इडिया, कानून और विनिमयो की रचना के उद्देश्य से सकलित (वार्षिक) 1877-1905 (एल० सी० पी०)

बैनर्जी सुरेंद्रनाथ, स्पीचेज, खड 1-5, कलकत्ता, 1880, 1885, 1890, 1894, 1996 (स्पीचेज I आदि) स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज (जी० ए० नारायण ऐंड कंपनी मद्रास द्वारा तिथि निर्देश के बिना प्रकाशित) (एस० ऐंड डब्ल्यू).

बंगाल नेशनल चेंबर्स आफ कामर्स रिपोर्ट (वार्षिक) 1887-91, 1894-1905 भरूचा, एम० बी०, स्पीचेज आफ इडियन एकोनामिक्स, (बबई तिथि रहित).

बबई मिल ओनर्स एसोसिएशन की रिपोर्ट (वार्षिक) 1885-6, 1886-7, चदावरकर एन० जी०, स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज कैंकिनी द्वारा संपादित एल० वी० बंबई 1911.

कर्जन लार्ड (केडोलस्टोन) स्पीचेज, खड 1-4 कलकत्ता, 1900, 1902, 1904, 1906 (स्पीचेज I आदि).

देसाई, अंबालाल शेखरलाल, स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज (बंबई 1918) भारत सचिव द्वारा तथा भारत सचिव को किए गए संप्रेषण, 1875-1905.

डफरिन, मारकिस आफ, ऐंड आवा, स्पीचेज (कलकत्ता 1889).

डफरिन पेपर्स माइक्रोफिल्म प्रतिलिपियां, के (नेशनल आर्काइव्ज आफ इंडिया, नई दिल्ली).

दत्त, आर० सी०; दि पैजटरी आफ बंगाल 1874. इंग्लैंड ऐंड इंडिया, (लंदन 1897).

सर फिलिप फ्रांसिस मिनिट्स आन दि सबजेक्ट आफ ए परमनेंट सैटलमैंट फार बंगाल, बिहार ऐंड ओरिसा, आर० सी० दत्त द्वारा भूमिका (कलकत्ता 1901), फैमिन ऐंड लैंड एसैसमैंट इन इंडिया, (लंदन 1900) (फैमिन इन इंडिया), इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया, अर्ली ब्रिटिश रूल, 1956-1901 में लंदन में प्रथम प्रकाशित का मुद्रित रूप (ई० एच० I) इकोनामिक हिस्टरी आफ इंडिया इन दि विक्टोरिया एज (लंदन में प्रथम प्रकाशित का छटा संस्करण) (ई० एच० II) स्पीचेज ऐंड पेपर्स आन इंडियन क्वेश्चंस, 1897-1900. (कलकत्ता 1904) (स्पीचेज II) ओपन लैटर्स टु लार्ड कर्जन, (कलकत्ता 1904) (ओपन लैटर्स).

एलगिन अर्ल आफ, स्पीचेज (कलकत्ता 1898).

ऐमिनेंट इंडियंस आन इंडियन पालिटिक्स, सी० एल० पारिख द्वारा संपादित, (बंबई 1892) (ऐमिनेंट इंडियंस).

फाइनांस कमेटी रिपोर्ट आफ 1886.

फाइनांशल स्टेटमैंट आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया (वार्षिक 1877-1905).

घोष, लालमोहन, स्पीचेज दो भाग (कलकत्ता 1883-1884).

घोष, डा० राम बिहारी, (स्पीचेज एंड राइटिंग्ज, तृतीय संस्करण मद्रास तिथि रहित).

गोखले जी० के० स्पीचेज, जी० ए० नाटेसन द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण (मद्रास, 1916), पत्र व्यवहार, अप्रकाशित, दि लाइब्रेरी आफ दि गोखले इंस्टीच्यूट आफ पोलिटिक्स ऐंड इकोनामिक्स, पूना.

गवर्नमेंट आफ इंडिया (भारत सरकार) के अधिनियम, 1880-1905.

हंसार्ड (संसदीय विवाद) 1880-1905.

होम (पब्लिक) डिपार्टमेंट आफ गवर्नमेंट आफ इंडिया, प्रोसिडिंग्ज, 1880-1905.

ह्यूम, ए० ओ० : ए स्पीच आन इंडियन नेशनल कांग्रेस ऐंड इट्स ओरिजिन एम्स ऐंड आब्जेक्ट्स, 30 अप्रैल 1888 में इलाहाबाद में हुई जनसभा में भाषण.

इंडियन एसोसिएशन की रिपोर्ट (वार्षिक) 1880-1905 छिटपुट (स्ट्रे रिपोर्ट).

इंडियन करेंसी कमेटी की रिपोर्ट, 1893, (कलकत्ता 1893).

इंडियन करेंसी कमेटी, मिनिट्स आफ एविडेंस ऐंड इंडिक्स 1893, सी-7060-2.

इंडियन डिबेट्स (हंसार्ड्स) फरवरी 1902.

इंडियन एजुकेशन कमीशन की रिपोर्ट, 1883.

इंडियन फैमिन कमीशन की रिपोर्ट, (1880 लंदन).

इंडियन फैमिन कमीशन की रिपोर्ट (1898 कलकत्ता).

इंडियन फैमिन कमीशन की रिपोर्ट (1901 कलकत्ता).

इंडियन लीफलैट्स (इश्तहार) इंडियाज अपील टु दि इंग्लिश इलैक्टर्स पब्लिशिड ऐंड डिस्ट्रीब्यूटेड आन बिहाफ आफ पिपुल आफ इंडिया बाई दि ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन आफ कलकत्ता, दि बौंबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन, दि पूना सार्वजनिक सभा

आफ मद्रास, दि सिंध सभा आफ कराची, दि प्रजा हितवर्धक सभा आफ सूरत, 1885.
इंडियन नेशनल कांग्रेस की रिपोर्टें (वार्षिक) 1885-1904 (रिप० आई० एन० सी०).
इंडियन नेशनल कांग्रेस कंटेनिंग फुल टैक्स्ट आफ प्रेसीडेंशियल ऐड्रेस. रिप्रिंट आफ आल दि कांग्रेस रिजाल्यूशन्ज आदि. मद्रास, तिथि निर्देश नहीं (सी० पी० ए०).
इंडियन नेशनल कांग्रेस, रिजुल्यूशन आन इकोनामिक पालिसी ऐंड प्रोग्राम 1924-54 (नई दिल्ली 1954).
इंडियन पालिटिक्स, (जी० ए० नटेमन, मद्रास द्वारा 1898 मे प्रकाशित)
अय्यर, जी० सुब्रह्मणय : सम इकोनामिक आस्पैक्ट्स आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया (मद्रास 1903) (ई० ए०).
अय्यर, एस० सुब्रह्मण्य (स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज, मद्राम, तिथि रहित)
जोशी जी० वी० : राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज, (पूना 1912).
लाजपत राय : लाला लाजपत राय, दि मैन इन हिज वर्ड, (मद्रास 1907).
लैंड प्राब्लम्स इन इंडिया, पेपर्स बाई आर० सी० दत्त ऐंड अदर्स, (मद्रास 1902).
लैंड रैवेन्यू पालिसी आफ इंडियन गवर्नमेंट, (कलकत्ता 1902) (इन्क्ल्यूडिंग रिजाल्यूशन बाई दि गवर्नर जनरल आफ इंडिया इन कौंसिल न० 1 तिथि 16 जनवरी 1902)।
लैंसडोन, मारकिस आफ स्पीचेज, 1888-94, 2 खंड (कलकत्ता 1894).
मालाबरी, बहराम जी० एम० : दि इंडियन प्राब्लम (बंबई 1894).
मालवीय, मदनमोहन · स्पीचेज, (गणेश ऐंड कंपनी मद्रास द्वारा प्रकाशित, तिथि रहित)
माडलिक, वी० एन० राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज (बंबई 1896).
मेहता फिरोजशाह एम० स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज, सी० वाई० चिंतामणि द्वारा संपादित, (इलाहाबाद 1905) (स्पीचेज) सम अनपब्लिशड ऐंड लेटर स्पीचेज एंड राइ-टिंग्ज (बंबई 1918).
मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, दि थर्ड डिसैनियल, जे० ए० बेंस द्वारा तैयार की गई, (लंदन 1894).
मारल ऐंड मैटिरियल प्रोग्रेस रिपोर्ट, दि फोर्थ डिसैनियल, फ्रांसिस सी० ड्रेक द्वारा तैयार की गई, (लंदन 1903).
नौरोजी, दादाभाई : एसेज, स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज, सी० एल० पारिख द्वारा संपादित, (बंबई 1887) (एसेज) पावर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया, (लंदन 1901) (पावर्टी) स्पीचेज ऐंड राइटिंग्ज, (जी० ए० नटेसन ऐंड कंपनी द्वारा प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, मद्रास, तिथि रहित) (स्पीचेज).
पाल, विपिनचंद्र, दि न्यू स्पिरिट, (कलकत्ता 1907).
पेपर्स रिलेटिंग, टु चेंजेस इन दि इंडियन करेंसी सिस्टम, (शिमला 1893).
पार्लियामेंटरी पेपर्स (1876-1905) (पी० पी०).
पूना सार्वजनिक सभा, भारत से संबंधित विषयों को ईस्ट इंडिया फाइनांस कमेटी के समक्ष रखने के लिए सूचनाएं संग्रहीत करने के लिए नियुक्त पूना सार्वजनिक सभा

की उपसमितियों की रिपोर्ट, पूना 1873.
प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ मद्रास, 1898, 1899, 1902, 1903.
प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बौंबे, 1895, 1896, 1899, 1900, 1901, 1905.
प्रोसीडिंग्स आफ दि कौंसिल आफ दि लैफ्टिनेंट गवर्नर आफ बंगाल, 1898.
प्रोसीडिंग्स आफ दि लैजिस्लेटिव कौंसिल फार दि एन० डब्ल्यू० पी० ऐंड अवध 1901.
प्रोसीडिंग्स आफ दि पब्लिक मीटिंग आफ दि इंडियन करेंसी एसोसिएशन 13 जुलाई 1892.
प्रोसीडिंग्ज आफ दि पब्लिक मीटिंग हेल्ड ऐट दि फ्रामजी कावसजी इंस्टीच्यूट अंडर दि आस्पीसिज आफ दि बोंबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन आन सैटरडे, 15 जुलाई 1893. (15 जुलाई 1893 को शनिवार के दिन बंबई प्रांतीय सभा द्वारा फ्रामजी कावसजी संस्थान में हुई जनसभा की कार्यवाही).
प्रोसीडिंग्स आफ दि फस्ट नार्थ अरकाट डिस्ट्रिक्ट कांफ्रेंस हैल्ड आन 21, 22 जुलाई 1900 ऐट चित्तौड.
पब्लिक वर्किंग कमीशन प्रोसीडिंग्ज, 1887. 7 खंड (कलकत्ता).
रानाडे, एम० जी० : एस्सेज आन इंडियन इकोनामिक्स (बंबई 1898) (एस्सेज) दि मिसलेनियस राइटिंग्ज, बाइ रमाबाई रानाडे द्वारा प्रकाशित (बंबई 1915) 'प्ली फार प्रोटैक्शन, इंडियन शुगर इंडस्ट्री,' मई और जून 1890 को टाइम्स आफ इंडिया मे दिए गए तीन लेख जिनकी भूमिका वी०जी० काले ने लिखी (बंबई तिथि रहित).
राय, पृथ्वीशचंद्र : दि पावर्टी प्राब्लम्स इन इंडिया (कलकत्ता 1895) (पावर्टी) दि इंडियन शुगर ड्यूटीज (कलकत्ता 1899), इंडियन फैमिंस, देयर काजेज ऐंड रेमैडीज, (कलकत्ता 1901) (फैमिंस).
रिजाल्यूशन आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया, सर्कुलर नं० 96 एफ. 6-59, 19 अक्तूबर 1888, फैमिन प्राग नं० 19, सि० 1888.
रिजाल्यूशन आफ दि गवर्नमेंट आफ इंडिया, 27 नव० 1893 (जनरल) फाइल नं० 95 सीरियल नं० 7.
रायल कमीशन आफ दि ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ दि एक्सपेंडीचर आफ इंडिया, रिपोर्ट आफ खंड 3 और 4 पार्लियामेंटरी पेपर (हाउस आफ कामंस) 1900, खंड 29, सी 130 और सी 131 (विलबी कमीशन)
रणछोड़लाल छोटेलाल : लैटर्स आन दि करेंसी क्वेश्चन, (अहमदाबाद, 1895).
सेन, केशवचंद्र : लाइफ ऐंड वर्क्स आफ ब्रह्मानंद केशव, प्रेम सुंदर बसु द्वारा संकलित, (कलकत्ता 1940).
सोर्स मैटिरियल फार ए हिस्टरी आफ दि फ्रीडम मूवमैंट इन इंडिया, (बंबई, खंड I 1957).
तैलंग, के० टी० : फ्री ट्रेड ऐंड प्रोटेक्शन : फ्राम ऐन इंडियन प्वाइंट आफ व्यू, (बंबई 1877) सिलेक्ट राइटिंग्ज ऐंड स्पीचेज, (बंबई 1885)।
वकील, एम० एच० : दि करेंसी प्राब्लम इन इंडिया ऐंड सर डेविड बारबोर, दि ऐंग्लो

इंडियन, ऐंड दि रूपी, (बंबई 1892).
वाचा, डी० ई० : स्पीचेज ऐंड राइटिंग्स. (जी० ए० नटेसन ऐंड कंपनी द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण, मद्रास, तिथिरहित) (स्पीचेज).
वाडिया, जे० ए० : दि आर्टिफिशल करेंसी ऐंड दि कामर्स आफ इंडिया, बंबई, 1902.

(ख) पत्र-पत्रिकाएं

अमृत बाजार पत्रिका, (कलकत्ता) 1870-1905 (ए० बी० पी०) *
एशियाटिक क्वार्टरली रिव्यू, (लंदन) 1886-1905.
बंगाल मैगजीन, (कलकत्ता) 1873-82.
बंगाली, (कलकत्ता), 1880-1905.
ब्राह्मो पब्लिक ओपीनियन (कलकत्ता) 1878-1881.
कलकत्ता रिव्यू.
कनकार्ड, (कलकत्ता) 1887.
डान, (कलकत्ता) 1897-1905.
ईस्ट ऐंट वेस्ट, (बंबई) 1901-1905.
हिंदू, (मद्रास) 1880-1905.
हिंदुस्तान रिव्यू ऐंड कायस्थ समाचार (1899-1902) तक कायस्थ समाचार नाम से प्रसिद्ध (इलाहाबाद) 1899-1905 (एच० आर०)
इंडिया (लदन) 1890-1905.
इंडियन पीपुल, (इलाहाबाद) 1903-04.
इंडियन रिव्यू, (मद्रास) 1901-1905.
इंडियन स्पेक्टेटर ऐंड वायस आफ इंडिया, बबई 1890-1901, (आई० एस० वी० ओ० आई०).
इदु प्रकाश, (बंबई) 1883-1895 (छिटपुट प्रतियां).
जरनल आफ ईस्ट इंडिया एसोसिएशन, (लंदन) 1867-1895.
जरनल आफ दि पूना सार्वजनिक सभा क्वार्टरली (पूना) 1878-1897 (जे० पी० एस० एस०)
जरनल आफ दि रायल स्टेटिस्टिकल सोसाइटी, 1902, 1911.
मराठा, पूना 1881-1905.
मुकर्जी'ज मैगजीन, कलकत्ता 1872-1876 (एम० एम०).

* पत्रिका के तीन विभिन्न संस्करणों, नगर, मुफस्सिल और विदेश का प्रयोग किया गया है. इसकी तिथियों में एक सावधान पाठक को मिलने वाले अंतर का कारण इस तथ्य से स्पष्ट हो जाएगा. हमारे लिए इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं था क्योंकि पत्रिका के कार्यालय में संग्रहीत पत्रिका के अंक इसी रूप में उपलब्ध हैं. इस प्रकार सभी प्रयुक्त तिथियां कार्यालय के संग्रह के ही अनुरूप हैं.

नेटिव ओपीनियन (बंबई), 1880-1889 (बिखरी हुई प्रतियां).
न्यू इंडिया, (कलकत्ता) 1901-1904 (बहुत सारे संस्करण अप्राप्य).
रिपोर्ट आफ दि नेटिव प्रेस फार बौंबे (साप्ताहिक)1870-1905 (आर० एन० पी० बंब).
रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार बंगाल (साप्ताहिक) 1875-1905 (आर० एन० पी० बंग०).
रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार मद्रास (मासिक और बाद में साप्ताहिक) 1875-1905 (आर० एन० पी० एम०)
रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार पंजाब, नार्थ वेस्ट प्राविसेज ऐंड अवध आदि (साप्ताहिक) 1875-1888 (आर० एन० पी० पी० एन०)
रिपोर्ट आन दि नेटिव प्रेस फार पंजाब(साप्ताहिक)1888-1905(आर० एन० पी० पी०)
स्टेट्समैन, हेमंत प्रसाद घोष् ज द्वारा संकलित अखबार की कटिंग.
दि टाइम्स (लंदन) (छिटपुट प्रतियां).
टाइम्स आफ इंडिया, 11 और 18 मार्च 1896.
वायस आफ इंडिया बंबई 1883-89. न्यू सिरीज, 1901-1904 (वी० ओ० आई०)

गौण स्रोत

ऐंस्टे वीरा : दि इकोनामिक डेवलपमेंट आफ इंडिया, (लंदन 1949), तृतीय संस्करण.
बेडेन पावेल, बी० एच० : ए शार्ट एकाउंट आफ दि लैंड रैविन्यू ऐंड इट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ब्रिटिश इंडिया विद ए स्कैच आफ दि लैंड टैन्योर (आक्सफोर्ड 1894).
बागल, जे० सी० : हिस्टरी आफ दि इंडियन एसोसिएशन 1876-1951. (कलकत्ता, 1953).
बालफोर, लेडी बी० : दि हिस्टरी आफ लार्ड लिटंस इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेशन, *1876-80*, (लंदन 1899).
बैनर्जी, पी० एन० : फिस्कल पालिसी इन इंडिया (कलकत्ता 1922). ए हिस्टरी आफ इंडियन टैक्सेशन (कलकत्ता 1930).
बैनर्जी, एस० एन० : ए नेशन इन मेकिंग, (कलकत्ता 1925).
बैरन पाल ए० : दि पोलिटिकल इकोनामी आफ ग्रोथ, (इंडियन एडिशन, न्यू दिल्ली 1957).
बसु, बी० डी० : दि रूइन आफ इंडियन ट्रेड ऐंड इंडस्ट्रीज, (तृतीय संस्करण, कलकत्ता 1935).
भाटिया, बी० एम० : फैमिंस इन इंडिया 1860-1945, (बंबई 1963)
बांबे फैक्टरी लेबर कमीशन—रिपोर्ट 1885 (बबई).
बोस, बिपिन कृष्ण : स्ट्रे थाट्स आन सम इंसीडेंट्स आफ माई लाइफ (कलकत्ता, 1919).
बुकानन, डी० एच० : दि डेवलपमेंट आफ कैपटलिस्टिक इंटरप्राइजं इन इंडिया,(न्यूयार्क, 1934).

बुकलैंड, सी० ई० : बंगाल अंडर दि लैफ्टिनेंट गवर्नर 1854-1898, 2 खंड (कलकत्ता, 1901).

चबलानी, एच० एल० : स्टडीज इन इंडियन करेंसी ऐंड ऐक्सचेंज (बंबई 1931).

चमनलाल, डी० : कुली, दि स्टोरी आफ लेबर ऐंड कैपीटल इन इंडिया, 2 खंड, (लाहौर 1932).

चंद्रा, भोलानाथ : राजा दिगंबर मित्र, खंड-1 द्वितीय संस्करण, 1896, खंड-2 (कलकत्ता, 1906).

चिसने, जनरल जार्ज : इंडियन पालिटी (तृतीय संस्करण, लदन 1904).

चौधरी, आर० : दि इवाल्यूशन आफ इंडियन इंडस्ट्रीज, (कलकत्ता 1939).

चिंतामणि, सी० वाई० : इंडियन पालिसीज सिस दि म्यूटिनी, (इलाहाबाद 1937), 1947 का पुनः मुद्रण.

क्लो, ए० जी० : इंडियन फैक्टरी लैजिस्लेशन, ए हिस्टोरिकल सर्वे इंडियन इंडस्ट्रीज ऐंड लेबर की बुलेटिन सं० 37 (कलकत्ता 1926).

कोयाजी, जे० सी० : दि इंडियन करेंसी सिस्टम 1835-1926 (मद्रास 1930).

डकोस्टा, जान : फैक्ट्स ऐंड फैलिसीज रिगार्डिंग इरिगेशन एज ए प्रिवेंटिव आफ फैमिन इन इंडिया, (लंदन 1878).

दास, आर० के० : फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया. (बर्लिन 1923) दि लेबर मूवमेंट इन इंडिया, (बर्लिन 1923); प्लांटेशन लेबर इन इंडिया (कलकत्ता 1931); हिस्टरी आफ इंडियन लेबर लैजिस्लेशन, (कलकत्ता 1931).

डेविस, सी० कोलिन : दि प्राब्लम आफ दि नार्थ वेस्ट फ्रंटियर, 1890-1908 (कैंब्रिज 1932).

डिगबी, विलियम : 'प्रास्पेरस' ब्रिटिश इंडिया, (लंदन 1901).

फारेस्ट. जी० डब्ल्यू० : ऐडमिनिस्ट्रेशन आफ दि मारकिस आफ लैंसडौन ऐज वायसराय ऐंड गवर्नर जनरल आफ इंडिया 1888-1894 (कलकत्ता 1894).

फ्रेसर लावेट : इंडिया अंडर कर्जन ऐंड आफ्टर (तृतीय संस्करण, लंदन 1912).

गाडगिल, डी० आर० : दि इंडस्ट्रियल इवाल्यूशन आफ इंडिया इन रीसेंट टाइम्स, (चतुर्थ संस्करण, कलकत्ता 1948).

घोष, पी० सी० : दि डेवलपमेंट आफ दि इंडियन नेशनल कांग्रेस 1892-1909 (कलकत्ता 1960).

गोपाल, एस० : दि वायसरायल्टी आफ लार्ड रिपन 1880-1884. (लंदन 1953).

गोपालकृष्णन, पी० के० : डेवलपमेंट आफ इकोनामिक आइडियाज इन इंडिया 1880-1950, (नई दिल्ली, 1959).

गुप्ता, जे० एन० : लाइफ ऐंड वर्क आफ रोमेश चंद्र दत्त, (लंदन 1911).

हैमिल्टन, सी० जे० : दि ट्रेड रिलेशंस बिटवीन इंग्लैंड ऐंड इंडिया (1600-1896), (कलकत्ता 1919).

होमलैंड, जान एस० : गोपालकृष्ण गोखले, (कलकत्ता 1933).

ह्यूम, ए० ओ० : हिंट्स आन ऐग्रीकल्चरल रिफार्म इन इंडिया, (कलकत्ता 1879).
हंटर, डब्ल्यू० डब्ल्यू० : दि मारकिस आफ डलहौजी (आक्सफोर्ड 1895).
इंडियन इकोनामिक जनरल 1953.
इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, खंड-3 1908 खंड III 1908 (आक्सफोर्ड)
इंडियन फैक्टरी लेबर कमीशन रिपोर्ट 1890.
इंडियन इंडस्ट्रियल कमीशन रिपोर्ट 1918, कलकत्ता.
इंडियन जनरल आफ इकनामिक्स, 1916
इंडियन नेशन बिल्डर्स 3 भाग (गणेश ऐंड कंपनी मद्रास द्वारा प्रकाशित, तिथि निर्देश नही).
जगतियानी, एच० एम० : दि रोल आफ दि स्टेट इन दि प्रोविजन आफ रेलवेज (लंदन 1924).
जेंक्स लिलेंड हैमिल्टन : दि माइग्रेशन आफ ब्रिटिश कैपीटल टु 1875 (न्यूयार्क 1927).
काले, वी० जी० : गोखले ऐंड इकोनामिक रिफार्म्स (पूना 1916).
करंदीकर, एस० एल० · लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, (पूना 1957).
कर्वे, डी० जी० : रानाडे, दि प्राफेट आफ लिबरेटेड इंडिया, (पूना 1942)
केलाक, जेम्स . महादेव गोविंद रानाडे, (कलकत्ता 1926), लंदन
केन्स, जे० एम० : इडियन करेंसी ऐंड फाइनास (1924), 1913 के लदन संस्करण का पुन: मुद्रित संस्करण
नौल्स, एल० सी० ए० : दि इंडस्ट्रियल ऐंड कर्मशल रिवाल्यूशन इन ग्रेट ब्रिटेन ड्यूरिंग दि नाइनटीथ संचुरी, (लंदन 1927) दि इकोनामिक डेवलपमेंट आफ दि ब्रिटिश ओवरसीज एंपायर (लदन 1928)
कुजनेत्स, एस० ऐंड अदर्स · इकोनामिक ग्रोथ : ब्राजील, इडिया, जापान. (डरहाम. एन० सी० 1955)
किड, जे० सी० : ए हिस्टरी आफ फैक्टरी लैजिस्लेशन इन इंडिया, (कलकत्ता 1920)
लोवेट, वर्नी : ए हिस्टरी आफ दि इंडियन नेशलिस्ट मूवमेंट, (लंदन 1920)
लायल, आलफ्रेड . लाइफ आफ दि मारकिस डफरिन ऐंड आवा, 2 खंड (लदन 1905).
मजुमदार, बी० बी० : हिस्टरी आफ पोलिटिकल थाट फ्राम राममोहन टु दयानद (1821-84), खंड-1 (बंगाल, कलकत्ता 1934).
मलहोत्रा, डी० के० : हिस्टरी ऐंड प्राबलम्स आफ इंडियन करंसी, 1835-1945 (तृतीय संस्करण, लाहौर 1945).
मनकर, जी० ए० : ए स्केच आफ दि लाइफ ऐंड वर्क्स आफ दि लेट मिस्टर जस्टिस एम० जी० रानाडे, 2 खंड, (बंबई 1902).
मसानी, आर० पी० : दादाभाई नौरोजी, दि ग्रांड ओल्डमैन आफ इंडिया, (लंदन 1939).
मजुमदार, ए० सी० : इंडियन नेशनल इवाल्यूशन, (मद्रास 1915).
मार्क्स, के० और ऐंगल्स, एफ० : आन कोलोनियलिजम, (मास्को, तिथि नहीं).

मेहता, एस० डी० : दि इडियन काटन टैक्सटाइल इंडस्ट्री, (बंवई 1953).
मिट्जलेर, लायड ए० : दि थ्योरी आफ इंटरनेशनल ट्रेड, ए सर्वे आफ काटेंम्परी इको-नामिक्स, हारवर्ड एम एलिस, द्वारा संपादित. (फिलाडेल्फिया, 1948).
मिल, जान स्टुअर्ट : प्रिंसिपल्म आफ पोलिटिकल इकोनामी (लंदन 1920).
मिश्र बी० बी० : दि इंडियन मिडिल क्लासेज, (लंदन 1961).
मिश्र, बी० आर० : लैंड रैविन्यू पालिसी इन दि युनाइटेड प्राविंसेज अंडर ब्रिटिश रूल (बनारस 1942)
मित्रा, ए० : संसस आफ इंडिया 1951 खंड-6 वेस्ट बगाल, सिक्किम और चंद्रनगर भाग-1 ए रिपोर्ट (दिल्ली, 1953).
मोदी, एच० पी० : सर फिरोजशाह मेहता : ए पोलिटिकल बायोग्राफी 2 खंडो मे (बंबई 1921).
मौरिसन, थियोडर : दि इकोनामिक ट्रांजीशन इन इंडिया, (लदन 1916). 1911 के सस्करण का पुन: मुद्रण
मुकर्जी, राधाकमल : लैंड प्रावलम्स आफ इंडिया, (लदन 1933).
मुखतार अहमद : फैक्टरी लेबर इन इंडिया, (मद्रास 1930).
मुरदोच जान : फैमिन, फैक्ट्स ऐंड फैलेमीज, (तिथि रहित).
नियोगी, जे० पी० : दि इवाल्यूशन आफ इंडियन इनकम टैक्स, (लंदन 1929).
पैसा फड सिल्वर जुबली नंबर (पूना 1935)
पाल, बिपिनचद्र : मिमोरीज आफ माई लाइफ ऐंड टाइम, 2 खंडों मे (कलकत्ता, 1932 और 1951).
पाल्नेकर, एम० ए० : ट्रेड इन इंडिया (बंबई 1944).
प्रसाद, आई० दुर्गा : सम आसपैक्ट्स आफ इंडियन फारेन ट्रेड 1757-1893, (लदन 1932)
पिल्लई, पी० पी० : इकोनामिक कंडीशंस इन इंडिया (लंदन 1925).
प्रधान, जी० पी० और भागवत, ए० के० : लोकमान्य तिलक (बंबई 1958).
पुणेकर, एम० डी० ट्रेड यूनियनिज्म इन इंडिया, बंबई 1948.
रामगोपाल : लोकमान्य तिलक (बंबई 1956)
राव, वी० के० आर० वी० . टैक्सेशन आफ इनकम इन इंडिया (कलकत्ता 1931);
एन एस्से आन इंडियाज नेशनल इनकम 1925-29 (लदन 1939).
दि नेशनल इनकम आफ ब्रिटिश इंडिया 1931-32, (लंदन 1940).
राय, परिमल : इंडियाज फारेन ट्रेड सिंस 1870, (लंदन 1934).
रीस, जे० डी० . दि रियल इंडिया (द्वितीय संस्करण, लदन 1908).
रिकार्डो, डैविड : दि प्रिंसिपल्स आफ पोलिटिकल इकोनमी ऐंड टैक्सेशन. (एवरीमैन्स लाइब्रेरी, लदन 1943)
रोल एरिक : ए हिस्टरी आफ इकोनामिक थाट : संशोधित संस्करण, (न्यूयार्क 1947).
राय, पार्वती चरण : दि रेंट क्वैश्चन इन बंगाल (कलकत्ता 1883).

सान्याल, एन . डेवलपमेंट आफ इंडियन रेलवेज (कलकत्ता 1930)
सान्याल, रामगोपाल. ए जनरल बायोग्राफी आफ बगाल सिलिब्रिटीज, (कलकत्ता 1889)
शास्त्री, शिवनाथ मेन आई हैव सीन (कलकत्ता 1919)
सेन, अमित. नोट्स आन दि बगाल रिनेसिया (द्वितीय सस्करण, कलकत्ता 1957)
शाह, के० टी० · सिक्सटी इयर्स आफ इडियन फाइनास (बबई 1921)
शाह, के० टी० और खभात के० जी०. वेल्थ एंड टैक्सेबल कैपासिटी आफ इंडिया (बबई 1924)
शिलवंकर, के० एम०. दि प्राब्लम आफ इंडिया (लदन 1940)
शिरास, जी० एफ० पावर्टी एंड किंडड इकानामिक प्राब्लम्स इन इंडिया (1935 तृतीय सस्करण)
सिंह, हीरालाल · प्राब्लम्स ऐंड पालिसीज आफ दि ब्रिटिश इन इंडिया 1885-1898 (बबई 1963).
सीतारमैया, बी० पट्टाभि दि हिस्टरी आफ दि इडियन नेशनल काग्रेस 1885-1935 (मद्रास 1935)
स्पियर, परसीवल इडिया, ए माडर्न हिस्टरी (ऐन आर्बर 1961)
स्टेटिस्टिकल ऐब्स्ट्रैक्ट फार ब्रिटिश इंडिया फ्राम 1891-2 टु 1900-01
स्टोक्स, एरिक दि इंग्लिश युटिलिटेरियन एंड इंडिया (आक्सफोर्ड 1959).
स्ट्रैची जान और स्ट्रैची रिचर्ड दि फाइनासेज एंड पब्लिक वर्क्स आफ इंडिया फ्राम 1869 टु 1881 (लदन 1882)
ए० गुप्त (सपा०) स्टडीज इन दि बगाल रिनेसा (कलकत्ता जादवपुर 1958).
तहमकर डी० वी० लोकमान्य तिलक (लदन 1956)
थाम्प्सन ई० और गैरेट जी० टी० राइज एंड फुलफिलमेंट आफ ब्रिटिश रूल इन इंडिया (लंदन, 1935)
थामस, पी० जे० ग्रोथ आफ फेडरल फाइनास इन इंडिया (मद्रास 1939)
थार्नर, डेनियल : इन्वेस्टमेंट इन एंपायर (फिलाडेल्फिया, 1950)
तिवारी, आर० डी०. रेलवेज इन माडर्न इंडिया (बबई, 1941)
वकील, सी० एन० और मुराजन एस० के० करेंसी ऐंड प्राइसेज इन इंडिया (बबई 1927).
वकील, सी० एन०. फाइनेंशियल डेवलपमेंट्स इन माडर्न इंडिया (बबई 1925)
वाडिया, पी० ए० और मर्चेंट के० टी०. अवर इकानामिक प्राब्लम (द्वितीय संस्करण बंबई 1946)

अनुक्रमणिका

भारत सरकार से रियायती दर पर प्राप्त कागज इस पुस्तक में इस्तेमाल किया गया है.